महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल



हिन्दी अनुवाद

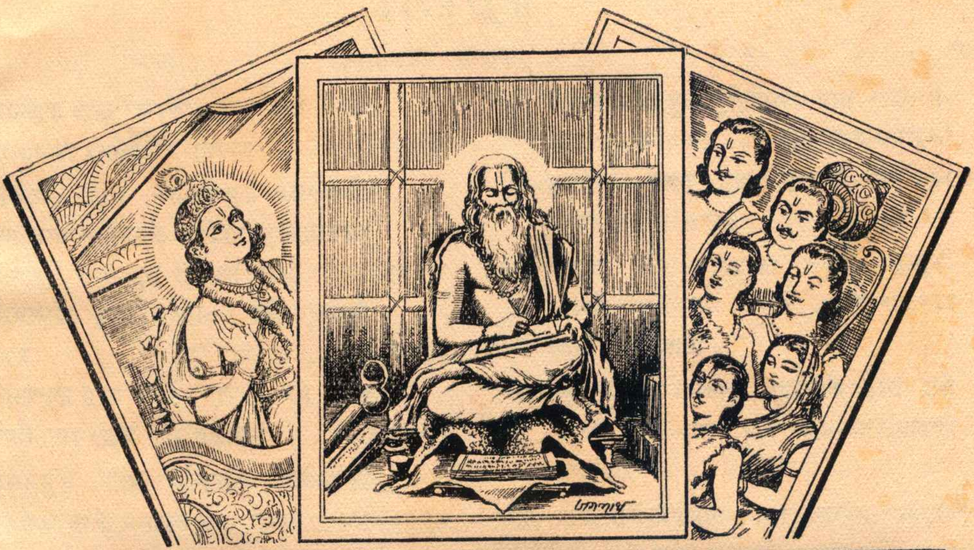
हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ५

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, फाल्गुन २०१३, मार्च १९५७ { संख्या ५ पूर्ण संख्या १७

वेदमय महाभारत

हरिः सद्भक्तानां सकलपुरुषार्थैकनिलयो
हरेः स्वे भक्तास्ते हरिरतिरसास्वादनपराः ।
इति स्वान्तं व्यासः श्रुतिनिधिरखण्डामृतरसं
जगौ लोके कृत्वा श्रुतिमयमहाभारतमसौ ॥

'भगवान् श्रीहरि अपने श्रेष्ठ भक्तोंके सम्पूर्ण पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके एकमात्र आश्रय हैं और भगवान्‌के वे अपने भक्त भगवत्-प्रेम-रसका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं ।' वेदनिधि व्यासजीने वेदमय महाभारतका निर्माण करके संसारमें अपने इसी अखण्डामृतरसस्वरूप सिद्धान्तका गान किया है।

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

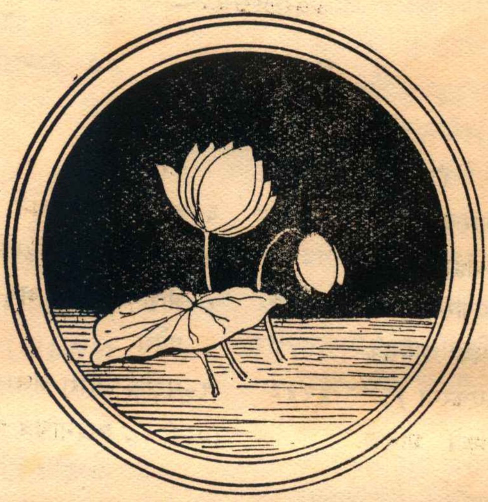
॥ श्रीहरिः ॥

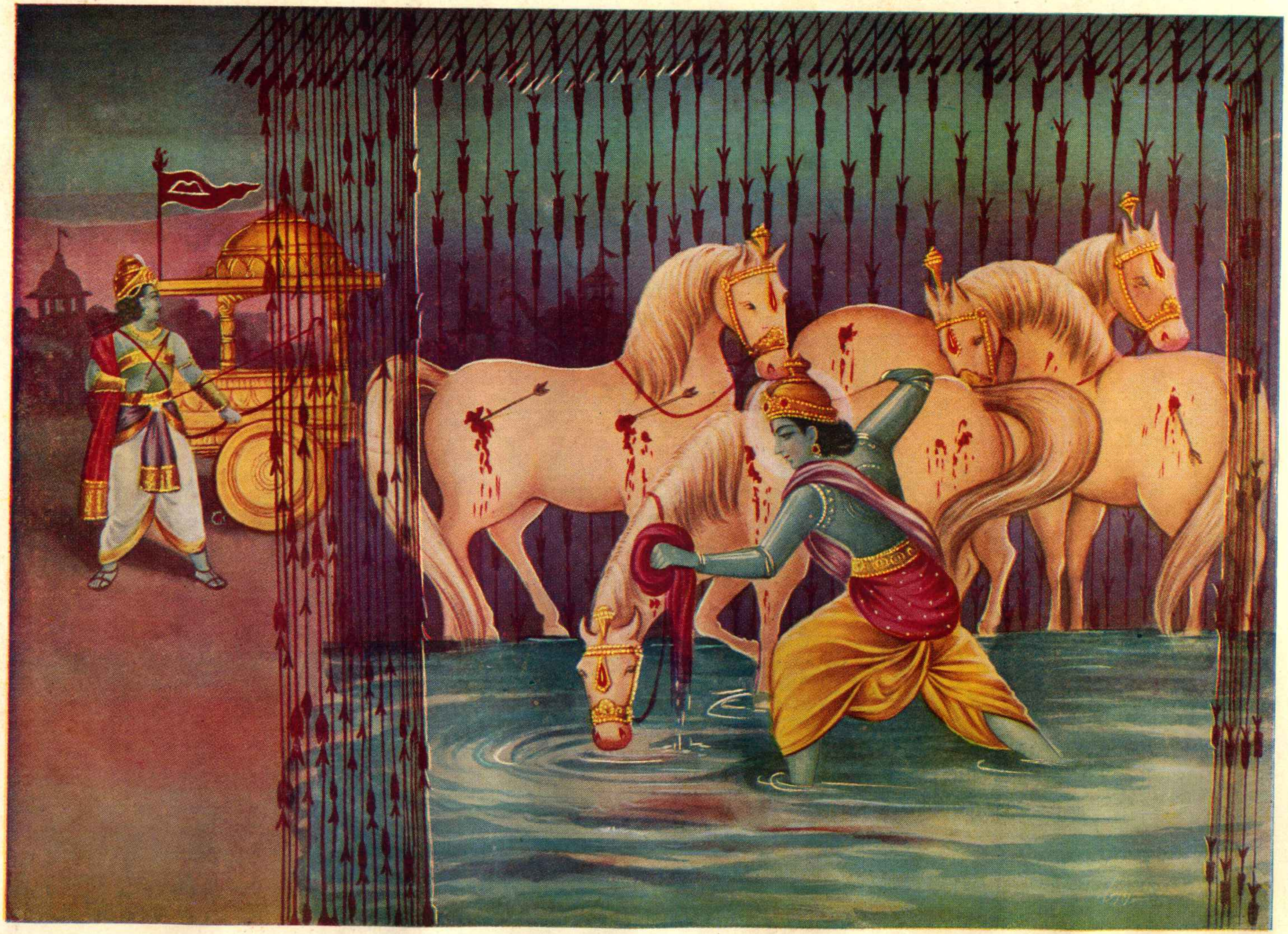
विषय-सूची

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

(जयद्रथवधपर्व)

चित्र-सूची





श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके अश्वोंकी परिचर्या

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा शल्यके भाईका वध तथा द्रोणाचार्यकी रथसेनाका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अर्जुनकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार अपने बाणोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको मथ रहा था, उस समय मेरे पक्षके किन योद्धाओंने उसे युद्धमें रोका था ?॥

संजय उवाच

शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत्।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रणक्षेत्रमें कुमार अभिमन्यु-की विशाल रणक्रीड़ाका वर्णन सुनिये। वह द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित रथियोंकी सेनाको विदीर्ण करना चाहता था ॥ २ ॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् बाणान् समभ्ययात् ॥ ३ ॥

सुभद्राकुमारने रणभूमिमें अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यको धराशायी कर दिया, यह देखकर उनका छोटा भाई कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ अभिमन्युपर चढ़ आया ॥ ३ ॥

स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम्।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥

उसने दस बाणोंद्वारा घोड़े और सारथिसहित अभिमन्यु-को क्षत-विक्षत करके बड़े जोरसे गर्जना की और कहा–'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ४ ॥

तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान्।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६ ॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥ ७ ॥
वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा।

तब शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अर्जुनकुमारने अपने सायकोंद्वारा शल्यके भाईके मस्तक, ग्रीवा, हाथ, पैर, धनुष, अश्व, छत्र, ध्वज, सारथि, त्रिवेणु, तल्प (शय्या), पहिये, जूआ, तरकस, अनुकर्ष, पताका, चक्ररक्षक तथा अन्य समस्त उपकरणोंको काट डाला। उस समय कोई भी उसे देख न सका। जैसे वायुके वेगसे कोई महान् पर्वत टूटकर गिर पड़े, उसी प्रकार अमिततेजस्वी अभिमन्युका मारा हुआ वह शल्यराजका भाई छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके वस्त्र और आभूषणोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे ॥५–७½॥

अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ ८ ॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥

उसके सेवक भयभीत होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये। भारत ! अर्जुनकुमारके उस अद्भुत पराक्रमको देखकर समस्त प्राणी साधुवाद देते हुए सब ओर हर्षध्वनि करने लगे ॥ ८-९ ॥

शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ १० ॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः।

शल्यके भाईके मारे जानेपर उसके बहुत-से सैनिक अपने कुल और निवासस्थानके नाम सुनाते हुए कुपित हो हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अर्जुनकुमार अभिमन्यु-की ओर दौड़े ॥ १०½ ॥

रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः ॥ ११ ॥
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च।
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ १२ ॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम्।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन् मोक्ष्यसे जीवितादिति ॥ १३ ॥

कितने ही वीर रथ, घोड़े और हाथीपर सवार होकर आये। दूसरे बहुत-से प्रचण्ड बलशाली योद्धा पैदल ही दौड़ पड़े। बाणोंकी सनसनाहट, रथके पहियोंकी जोर-जोरसे होने-वाली घर्घराहट, हुङ्कार, कोलाहल, ललकार, सिंहनाद, गर्जना, धनुषकी टङ्कार तथा हस्तत्राणके चट-चट शब्दके साथ गर्जन-तर्जन करते हुए अन्यान्य बहुत-से योद्धा अर्जुन-कुमार अभिमन्युपर यह कहते हुए टूट पड़े, 'अब तू हमारे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। तुझे जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा' ॥ ११–१३ ॥

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव।
यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥

उनको ऐसा कहते देख सुभद्राकुमार अभिमन्यु मानो जोर-जोरसे हँसने लगा और जिस-जिस योद्धाने उसपर पहले प्रहार किया, उस-उसको उसने भी अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १४ ॥

संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १५ ॥

शूरवीर अर्जुनकुमारने समराङ्गणमें अपने विचित्र एवं शीघ्रगामी अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए पहले मृदुभावसे ही युद्ध किया ॥ १५ ॥

वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनंजयात्।
अदर्शयत तत् कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे अभिमन्युने जो-जो अस्त्र प्राप्त किये थे, उनका उन्हीं दोनोंकी भाँति वह युद्धस्थलमें प्रदर्शन करने लगा ॥ १६ ॥

दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः।
संदधद् विसृजंश्चेषून् निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥

भारी भार और भय उससे दूर हो गया था। वह बारंबार बाणोंका संधान करता और छोड़ता हुआ एक-सा दिखायी देता था ॥ १७ ॥

चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद् दिक्ष्वदृश्यत।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवका मण्डल दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार अभिमन्युका मण्डलाकार धनुष ही सम्पूर्ण दिशाओंमें उद्भासित होता दिखायी देता था ॥ १८ ॥

ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥

उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीका शब्द वर्षाकालमें महान् वज्र गिरानेवाले मेघकी गर्जनाके समान भयंकर सुनायी पड़ता था ॥ १९ ॥

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत् प्रियदर्शनः।
सम्मिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत ॥ २० ॥

लज्जाशील, अमर्षी, दूसरोंको मान देनेवाला और देखनेमें प्रिय लगनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु विपक्षी वीरोंका सम्मान करनेकी इच्छासे धनुष-बाणोंद्वारा युद्ध करता रहा ॥

मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्छरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥

महाराज! जैसे वर्षाकाल बीतनेपर शरत्कालमें भगवान् सूर्य प्रचण्ड हो उठते हैं, उसी प्रकार अभिमन्यु पहले मृदु होकर अन्तमें शत्रुओंके लिये अति उग्र हो उठा ॥ २१ ॥

शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥

जैसे सूर्य अपनी सहस्रों किरणोंको सब ओर बिखेर देते हैं, उसी प्रकार क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्यु सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त सैकड़ों विचित्र एवं बहुसंख्यक बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २२ ॥

क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः।
नाराचैरर्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
अवाकिरद् रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः।
ततस्तत्सैन्यमभवद् विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

उस महायशस्वी वीरने द्रोणाचार्यके देखते-देखते उनकी रथसेनापर क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार बाण, भल्ल एवं अञ्जलिक आदिकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे उन बाणोंद्वारा पीड़ित हुई वह सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युपराक्रमविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा तथा दुर्योधनके आदेशसे दुःशासनका अभिमन्युके साथ युद्ध आरम्भ करना

धृतराष्ट्र उवाच

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! सुभद्राकुमारने मेरे पुत्रकी सेनाको जो आगे बढ़नेसे रोक दिया, इसे सुनकर लज्जा और प्रसन्नतासे मेरे चित्तकी दो अवस्थाएँ हो रही हैं ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह ॥ २ ॥

गवल्गणनन्दन! जैसे कुमार कार्तिकेयने असुरोंके साथ रणक्रीड़ा की थी, उसी प्रकार कुमार अभिमन्युने जो युद्धका खेल किया था, वह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम्।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत् तुमुलो रणः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज! मैं अत्यन्त खेदके साथ आपको उस अत्यन्त भयंकर नरसंहारका वृत्तान्त बता रहा हूँ, जिसके लिये एक वीरका बहुत-से महारथियोंके साथ तुमुल युद्ध हुआ था ॥ ३ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिंदमान्।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥

अभिमन्यु युद्धके लिये उत्साहसे भरा था। वह रथपर बैठकर आपके उत्साहभरे शत्रुदमन समस्त रथारोहियोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम्।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥

नानानृपान् नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत् सर्वांश्चरन् बाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥

द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, भोजवंशी कृतवर्मा, बृहद्बल, दुर्योधन, भूरिश्रवा, महाबली शकुनि, अनेकानेक नरेश, राजकुमार तथा उनकी विविध प्रकारकी सेनाओंपर अभिमन्यु अलातचक्रकी भाँति चारों ओर घूमकर बाणोंका प्रहार कर रहा था ॥ ५-६ ॥

निघ्नन्नमित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥

भारत ! प्रतापी एवं तेजस्वी वीर सुभद्राकुमार अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा शत्रुओंका नाश करता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ ७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥

अमिततेजस्वी अभिमन्युका वह चरित्र देखकर आपके सहस्रों सैनिक भयसे काँपने लगे ॥ ८ ॥

अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् और प्रतापी वीर द्रोणाचार्यके नेत्र हर्षसे खिल उठे । भारत ! उन्होंने युद्धविशारद अभिमन्युको युद्धमें स्थित देखकर आपके पुत्रके मर्मस्थलपर चोट करते हुए-से उस समय तुरंत ही कृपाचार्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ९-१० ॥

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून् सम्बन्धिनश्चान्यान् मध्यस्थान् सुहृदस्तथा ।१२।

'यह पार्थकुलका प्रसिद्ध तरुण वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने समस्त सुहृदोंको, राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र भीमसेनको, अन्यान्य भाई-बन्धुओं, सम्बन्धियों तथा मध्यस्थ सुहृदोंको भी आनन्द प्रदान करता हुआ जा रहा है ॥ ११-१२ ॥

नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥

'मैं दूसरे किसी धनुर्धर वीरको युद्धभूमिमें इसके समान नहीं मानता । यदि यह चाहे तो इस सारी सेनाको नष्ट कर सकता है; परंतु न जाने यह क्यों ऐसा चाहता नहीं है' ॥

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥
अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद् बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथान्यान् महारथान् ॥ १५ ॥

अभिमन्युके सम्बन्धमें द्रोणाचार्यका यह प्रीतियुक्त वचन सुनकर आपका पुत्र राजा दुर्योधन क्रोधमें भर गया और द्रोणाचार्यकी ओर देखकर मुसकराता हुआ-सा कर्ण, बाह्लिक, दुःशासन, मद्रराज शल्य तथा अन्य महारथियोंसे बोला—॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥

ये सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आचार्य तथा सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता द्रोण अर्जुनके इस मूढ़ पुत्रको मारना नहीं चाहते हैं ॥ १६ ॥

न ह्यस्य समरे युद्ध्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

'प्रिय सैनिको ! मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कहता हूँ । यदि ये युद्धमें मारनेके लिये उद्यत हो जायँ तो इनके सामने यमराज भी युद्ध नहीं कर सकता; फिर दूसरा कोई मनुष्य तो इनके सामने टिक ही कैसे सकता है ? ॥ १७ ॥

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥

'परंतु ये अर्जुनके पुत्रकी रक्षा करते हैं; क्योंकि अर्जुन इनके शिष्य हैं । शिष्य और पुत्र तो प्रिय होते ही हैं । उनकी संतानें भी धर्मात्मा पुरुषोंको प्रिय जान पड़ती हैं ॥

संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥

'यह द्रोणाचार्यसे रक्षित होनेके कारण अपने बल और पराक्रमपर अभिमान कर रहा है । यह मूर्ख अभिमन्यु आत्मश्लाघा करनेवाला है । तुम सब लोग मिलकर इसे शीघ्र ही मथ डालो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सब वीर अत्यन्त कुपित हो सुभद्राकुमार अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके देखते-देखते उसपर टूट पड़े ॥ २० ॥

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत् कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उस समय दुर्योधनके उपर्युक्त वचनको सुनकर दुःशासनने उससे यह बात कही—॥ २१ ॥

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥

'महाराज ! मैं आपसे (प्रतिज्ञापूर्वक) कहता हूँ । मैं पाञ्चालों और पाण्डवोंके देखते-देखते इस अभिमन्युको मार डालूँगा ॥ २२ ॥

ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाब्रवीद् वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥

'जैसे राहु सूर्यपर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार आज मैं सुभद्राकुमार अभिमन्युको ग्रस लूँगा।' इतना कहकर उसने जोर-जोरसे गर्जना करके पुनः कुरुराज दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २४ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युको मेरे द्वारा कालकवलित हुआ सुनकर अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस जीवलोकसे प्रेतलोकको चले जायँगे—इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥

'उन दोनोंको मरा हुआ सुनकर पाण्डुके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए ये चारों पाण्डव कायरतावश अपने सुहृद्वर्गके साथ एक ही दिन प्राण त्याग देंगे ॥ २५ ॥

तस्मादस्मिन् हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥

'अतः इस अपने शत्रु अभिमन्युके मारे जानेपर आपके सारे दुश्मन स्वतः नष्ट हो जायँगे। राजन्! आप मेरा कल्याण मनाइये। मैं अभी आपके शत्रुओंका नाश किये देता हूँ' ॥

एवमुक्त्वानदद् राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥

महाराज! ऐसा कहकर आपका पुत्र दुःशासन जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। वह क्रोधमें भरकर सुभद्राकुमार-पर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उसके सामने गया ॥ २७ ॥

तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिंदमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ २८ ॥

आपके पुत्रको अत्यन्त कुपित हो आते देख शत्रुसूदन अभिमन्युने छब्बीस पैने बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥

मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान क्रोधमें भरा हुआ दुःशासन उस रणक्षेत्रमें अभिमन्युसे और अभिमन्यु दुःशासनसे युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥

रथ-युद्धकी शिक्षामें निपुण वे दोनों योद्धा अपने रथोंद्वारा दायें-बायें विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां
क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रु-
र्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

उस समय बाजे बजानेवाले लोग ढोल, मृदंग, दुन्दुभि, क्रकच, बड़ी ढोल, भेरी और झाँझके अत्यन्त भयंकर शब्द करने लगे। उसमें शङ्ख और सिंहनादकी भी ध्वनि मिली हुई थी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुःशासनयुद्धविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा दुःशासन और कर्णकी पराजय

संजय उवाच

(ततः समभवद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
तस्मिन् काले महाबाहुः सौभद्रः परवीरहा ॥
सशरं कार्मुकं छित्त्वा लाघवेन व्यपातयत् ।
दुःशासनं शरैर्घोरैः संततक्ष समन्ततः ॥)

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर उन दोनों पुरुषसिंहोंमें घोर युद्ध होने लगा। उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने बड़ी फुर्तीके साथ दुःशासनके बाणसहित धनुषको काट गिराया और उसे अपने भयंकर बाणोंद्वारा सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

शरविक्षतगात्रं तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन् धीमान् दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके बाद बुद्धिमान् अभिमन्यु किंचित् मुसकराकर सामने विपक्षमें खड़े हुए दुःशासनसे, जिसका शरीर बाणोंसे अत्यन्त घायल हो गया था, इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥

'बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं युद्धमें सामने आये हुए और अपनेको शूरवीर माननेवाले तुझ अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले शत्रुको प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥ २ ॥

यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम् ॥ ४ ॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।

'ओ मूर्ख ! तूने द्यूतक्रीडामें विजय पानेसे उन्मत्त होकर सभामें राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए जो अपने निष्ठुर वचनोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको कुपित किया था और शकुनिके आत्मबल—जूएमें छल-कपटका आश्रय लेकर जो भीमसेनके प्रति बहुत-सी अंट-संट बातें कही थीं, इससे उन महात्मा धर्मराजको जो क्रोध हुआ, उसीका यह फल है कि तुझे आज यह दुर्दिन प्राप्त हुआ है ॥ ३–४½ ॥

परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ॥ ५ ॥
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च।
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद् वै महात्मनाम्।

'दूसरोंके धनका अपहरण, क्रोध, अशान्ति, लोभ, ज्ञानलोप, द्रोह, दुःसाहसपूर्ण बर्ताव तथा मेरे उग्र धनुर्धर पितरोंके राज्यका अपहरण—इन सभी बुराइयोंके फलस्वरूप उन महात्मा पाण्डवोंके क्रोधसे तुझे आज यह बुरा दिन प्राप्त हुआ है ॥ ५–६½ ॥

स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

'दुर्मते ! तू अपने उस अधर्मका भयंकर फल प्राप्त कर। आज मैं सारी सेनाओंके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा तुझे दण्ड दूँगा। आज मैं युद्धमें उन महात्मा पितरोंके उस क्रोधका बदला चुकाकर उऋण हो जाऊँगा ॥ ७–८ ॥

अमर्षितायाः कृष्णायाः काङ्क्षितस्य च मे पितुः।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥

'कुरुकुलकलङ्क ! आज रोषमें भरी हुई माता कृष्णा तथा पितृतुल्य (ताऊ) भीमसेनका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करके इस युद्धमें उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा ॥ ९ ॥

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम्।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम्।

'यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायगा तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा।' ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले महाबाहु अभिमन्युने काल, अग्नि और वायुके समान तेजस्वी बाणका संधान किया, जो दुःशासनके प्राण लेनेमें समर्थ था ॥ १०½ ॥

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥

वह बाण तुरंत ही उसके वक्षःस्थलपर पहुँचकर उसके गलेकी हँसलीको विदीर्ण करता हुआ पंखसहित भीतर घुस गया, मानो कोई सर्प बाँबीमें समा गया हो। तत्पश्चात् अभिमन्युने दुःशासनको पचीस बाण और मारे ॥ ११–१२ ॥

शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत्।

धनुषको कानतक खींचकर चलाये हुए उन बाणोंद्वारा, जिनका स्पर्श अग्निके समान दाहक था, गहरी चोट खाकर दुःशासन व्यथित हो रथकी बैठकमें बैठ गया। महाराज ! उस समय उसे भारी मूर्छा आ गयी ॥ १३½ ॥

सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम्।

तब अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुए दुःशासनको सारथि बड़ी उतावलीके साथ युद्धस्थलसे बाहर हटा ले गया ॥ १४½ ॥

पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथानदन्।

उस समय पाण्डव, पाँचों द्रौपदीकुमार, राजा विराट, पाञ्चाल और केकय दुःशासनको पराजित हुआ देख जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५½ ॥

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः।
अपश्यन् स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥

पाण्डवोंके सैनिक वहाँ हर्षमें भरकर नाना प्रकारके सभी रणवाद्य बजाने लगे और मुसकराते हुए वे सुभद्राकुमारका पराक्रम देखने लगे ॥ १६–१७ ॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम्।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृंजयाः।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः।

घमंडमें भरे हुए अपने कट्टर शत्रुको पराजित हुआ देख अपनी ध्वजाओंके अग्रभागमें धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंकी प्रतिमा धारण करनेवाले महारथी द्रौपदीकुमार, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय-राजकुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य, पाञ्चाल, सृंजय तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े हर्षके साथ उतावले होकर द्रोणाचार्यके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे उसपर टूट पड़े ॥ १८–२०½ ॥

ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
जयमाकाङ्क्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम्।

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखकर युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले आपके शूरवीर सैनिकोंका शत्रुओंके साथ महान् युद्ध होने लगा ॥ २१½ ॥

तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयंकरे ॥ २२ ॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।

महाराज ! जब इस प्रकार अत्यन्त भयंकर संग्राम हो रहा था, उस समय दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे यों कहा—॥

पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥ २३ ॥
प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।

'कर्ण ! देखो, वीर दुःशासन सूर्यके समान शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करता हुआ युद्धमें उन्हें मार रहा था, इसी अवस्थामें वह अभिमन्युके वशमें पड़ गया है ॥ २३½ ॥

अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।

'इधर ये क्रोधमें भरे हुए पाण्डव सुभद्राकुमारकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हो प्रचण्ड बलशाली सिंहोंके समान धावा कर चुके हैं' ॥ २४½ ॥

ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत् तव ।

यह सुनकर आपके पुत्रका हित करनेवाला कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २५½ ॥

तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।

शूरवीर कर्णने समराङ्गणमें सुभद्राकुमारके सेवकोंको भी तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा अवहेलनापूर्वक बींध डाला ॥

अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥
अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ।

राजन् ! उस समय महामनस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके समीप पहुँचनेकी इच्छा रखकर तुरंत ही तिहत्तर बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

तं तथा नाशकत् कश्चिद् द्रोणाद् वारयितुं रथी ॥ २८ ॥
आरुजन्तं रथव्रातान् वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।

कोई भी रथी रथसमूहोंको नष्ट-भ्रष्ट करते हुए इन्द्रकुमार अर्जुनके उस पुत्रको द्रोणाचार्यकी ओर जानेसे रोक न सका ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।

विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले, सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें मानी, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परशुरामजीके शिष्य और प्रतापी वीर कर्णने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए सैकड़ों बाणोंद्वारा शत्रुदुर्जय सुभद्राकुमार अभिमन्युको बींध डाला और समराङ्गणमें उसे पीड़ा देना आरम्भ किया ॥

स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

कर्णके द्वारा उसकी अस्त्रवर्षासे पीड़ित होनेपर भी देवतुल्य अभिमन्यु समरभूमिमें शिथिल नहीं हुआ ॥ ३१½ ॥

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकुमारने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा शूरवीरोंके धनुष काटकर कर्णको सब ओरसे पीड़ा दी ॥ ३२½ ॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ।

उसने मुसकराते हुए-से अपने मण्डलाकार धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयानक बाणोंद्वारा छत्र, ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित कर्णको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥

कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् संनतपर्वणः ॥ ३४ ॥
असम्भ्रान्तश्च तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः ।

कर्णने भी उसके ऊपर झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाण चलाये; परंतु अर्जुनकुमारने उन सबको बिना किसी घबराहटके सह लिया ॥ ३४½ ॥

ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें पराक्रमी वीर अभिमन्युने एक बाण मारकर कर्णके ध्वजसहित धनुषको पृथ्वीपर काट गिराया॥

ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
सौभद्रमभ्ययात् तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः ।
वादित्राणि च संजघ्नुः सौभद्रं चापि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

कर्णको संकटमें पड़ा देख उसका छोटा भाई सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये आ पहुँचा। उस समय कुन्तीके सभी पुत्र और उनके अनुगामी सैनिक जोर-जोरसे गरजने, बाजे बजाने और अभिमन्युकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३६—३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें कर्ण तथा दुःशासनकी पराजयविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा कर्णके भाईका वध तथा कौरवसेनाका संहार और पलायन

संजय उवाच

सोऽतिगर्जन् धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णका वह भाई हाथमें धनुष ले अत्यन्त गरजता और प्रत्यञ्चाको बार-बार खींचता हुआ तुरंत ही उन दोनों महामनस्वी वीरोंके रथोंके बीचमें आ पहुँचा ॥ १ ॥

सोऽविध्यद् दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम्।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥

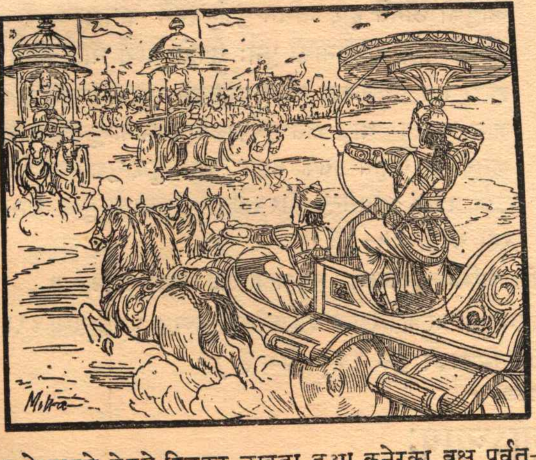
उसने मुसकराते हुए-से दस बाण मारकर दुर्जय वीर अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथि और घोड़ोंसहित शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ २ ॥

पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥ ३ ॥

अपने पिता-पितामहोंके अनुसार मानवीय शक्तिसे बढ़-कर पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनकुमार अभिमन्युको उस समय बाणोंसे पीड़ित देखकर आपके सैनिक हर्षसे खिल उठे॥

तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि ॥ ४ ॥
कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात्।

तब अभिमन्युने मुसकराते हुए-से अपने धनुषको खींच-कर एक ही बाणसे कर्णके भाईका मस्तक धड़से अलग कर दिया। उसका वह सिर रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा,



मानो वायुके वेगसे हिलकर उखड़ा हुआ कनेरका वृक्ष पर्वत-शिखरसे नीचे गिर गया हो ॥ ४½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥

राजन्! अपने भाईको मारा गया देख कर्णको बड़ी व्यथा हुई। इधर सुभद्राकुमार अभिमन्युने गीधकी पाँखवाले बाणोंद्वारा कर्णको युद्धसे भगाकर दूसरे-दूसरे महाधनुर्धर वीरोंपर भी तुरंत ही धावा किया ॥ ५-६ ॥

ततस्तद् विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत्।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत् तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए प्रचण्ड तेजस्वी महारथी अभिमन्युने हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस विशाल चतुरङ्गिणी सेनाको विदीर्ण कर डाला ॥ ७ ॥

कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥

अभिमन्युके चलाये हुए बहुसंख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ कर्ण अपने वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे शीघ्र ही रणभूमिसे भाग गया। इससे सारी सेनामें भगदड़ मच गयी ॥

शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते।
अभिमन्योः शरै राजन् न प्राज्ञायत किंचन ॥ ९ ॥

राजन्! उस दिन अभिमन्युके बाणोंसे सारा आकाश-मण्डल इस प्रकार आच्छादित हो गया था, मानो टिड्डी-दलोंसे अथवा वर्षाकी धाराओंसे व्याप्त हो गया हो। उस आकाशमें कुछ भी सूझता नहीं था ॥ ९ ॥

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः।
अन्यत्र सैन्धवाद् राजन् न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥

महाराज! पैने बाणोंद्वारा मारे जाते हुए आपके योद्धाओंमेंसे सिंधुराज जयद्रथको छोड़कर दूसरा कोई वहाँ ठहर न सका ॥ १० ॥

सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः।
शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब पुरुषप्रवर सुभद्राकुमार अभिमन्युने शङ्ख बजाकर पुनः शीघ्र ही भारतीय सेनापर धावा किया ॥

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत ॥ १२ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगके समान वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ अभिमन्यु कौरव-सेनाके बीचमें विचरने लगा॥

रथनागाश्वमनुजानर्दयन् निशितैः शरैः।
सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥

उस सेनामें प्रवेश करके उसने अपने तीखे बाणोंद्वारा रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंको पीड़ित करते हुए सारी रणभूमिको बिना मस्तकके शरीरोंसे पाट दिया ॥ १३ ॥

सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः।

त्वामेवाभिमुखान् घ्नन्तः प्राद्रवन् जीवितार्थिनः॥ १४ ॥

सुभद्राकुमारके धनुषसे छूटे हुए उत्तम बाणोंसे क्षत-विक्षत हो आपके सैनिक अपने जीवनकी रक्षाके लिये सामने आये हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको मारते हुए भाग चले ॥

ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः ।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुंधराम् ॥ १५ ॥

अभिमन्युके वे भयंकर कर्म करनेवाले, घोर, तीक्ष्ण और बहुसंख्यक विपाठ नामक बाण आपके रथों, हाथियों और घोड़ोंको नष्ट करते हुए शीघ्र ही धरतीमें समा जाते थे ॥

सायुधाः साङ्गुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥

उस युद्धमें आयुध, दस्ताने, गदा और बाजूबंदसहित वीरोंकी सुवर्णभूषण-भूषित भुजाएँ कटकर गिरी दिखायी देती थीं ॥ १६ ॥

शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः ॥ १७ ॥

उस युद्धभूमिमें धनुष, बाण, खड्ग, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे विभूषित मस्तक सहस्रोंकी संख्यामें छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे ॥ १७ ॥

सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः ।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥ २० ॥

आवश्यक सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, अक्ष, पहिए और जूए चूर-चूर और टुकड़े-टुकड़े होकर गिरे थे। शक्ति, धनुष, खड्ग, गिरे हुए विशाल ध्वज, ढाल और बाण भी छिन्न-भिन्न होकर सब ओर बिखरे पड़े थे। प्रजानाथ ! बहुत-से क्षत्रिय, घोड़े और हाथी भी मारे गये थे । इन सबके कारण वहाँकी भूमि क्षणभरमें अत्यन्त भयंकर और अगम्य हो गयी थी ॥ १८–२० ॥

वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥

बाणोंकी चोट खाकर परस्पर क्रन्दन करते हुए राजकुमारोंका महान् शब्द सुनायी पड़ता था, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाला था ॥ २१ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन् वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर रहा था । सुभद्राकुमार श्रेष्ठ घड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करता हुआ कौरव-सेनापर टूट पड़ा था ॥ २२ ॥

कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगकी भाँति अर्जुनकुमार अभिमन्यु वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ कौरवसेनाओंके बीचमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ २३ ॥

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत ।
तं तदा नानुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥

भारत ! धूलसे आच्छादित हुई सेनाके भीतर सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युको उस समय हमलोग देख नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत ।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यंदिने यथा ॥ २५ ॥
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् ।
स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः ।
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥२६ ॥
(यथा पुरा वह्निसुतोऽसुरसैन्येषु वीर्यवान् ।)

भरतनन्दन ! हाथियों, घोड़ों और पैदल-सैनिकोंकी आयुको छीनते हुए अभिमन्युको हमने क्षणभरमें दोपहरके सूर्यकी भाँति शत्रुसेनाको पुनः तपाते देखा था । महाराज ! इन्द्रकुमार अर्जुनका वह पुत्र युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी जान पड़ता था । जैसे पूर्वकालमें पराक्रमी कुमार कार्तिकेय असुरोंकी सेनामें उसका संहार करते हुए सुशोभित होते थे, उसी प्रकार अभिमन्यु कौरव-सेनामें विचरता हुआ शोभा पा रहा था ॥ २५–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २६½ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके पीछे जानेवाले पाण्डवोंको जयद्रथका वरके प्रभावसे रोक देना

धृतराष्ट्र उवाच

बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् ।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः ।
अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद् बली ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! अत्यन्त सुखमें पला हुआ वीर

बालक अभिमन्यु युद्धमें कुशल था। उसे अपने बाहुबलपर गर्व था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके कारण अपने शरीरको निछावर करके युद्ध कर रहा था। जिस समय वह तीन सालकी अवस्थावाले उत्तम घोड़ोंके द्वारा मेरी सेनाओंमें प्रवेश कर रहा था, उस समय युधिष्ठिरकी सेनासे क्या कोई बलवान् वीर उसके पीछे-पीछे व्यूहके भीतर आ सका था? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३ ॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ ४ ॥
अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः।

संजयने कहा—राजन्! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय-राजकुमार, रोषमें भरा हुआ धृष्टकेतु तथा मत्स्यदेशीय योद्धा—ये सब-के-सब युद्धस्थलमें आगे बढ़े। अभिमन्युके ताऊ, चाचा तथा मामागण अपनी सेनाको व्यूहद्वारा संगठित करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हो अभिमन्युकी रक्षाके लिये उसीके बनाये हुए मार्गसे व्यूहमें जानेके उद्देश्यसे एक साथ दौड़ पड़े ॥ ३-४½ ॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ५ ॥
ततस्तद् विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद् बलम्।
जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत् ॥ ६ ॥

उन शूरवीरोंको आक्रमण करते देख आपके सैनिक भाग खड़े हुए। आपके पुत्रकी विशाल सेनाको रणसे विमुख हुई देख उसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करनेकी इच्छासे आपका तेजस्वी जामाता जयद्रथ वहाँ दौड़ा हुआ आया ॥ ५-६ ॥

सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान् सहसैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥

महाराज! सिंधुनरेशके पुत्र राजा जयद्रथने अपने पुत्रको बचानेकी इच्छा रखनेवाले कुन्तीकुमारोंको सेनासहित आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ७ ॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८ ॥

जैसे हाथी नीची भूमिमें आकर वहींसे शत्रुका निवारण करता है, उसी प्रकार भयंकर एवं महान् धनुष धारण करनेवाले वृद्धक्षत्रकुमार जयद्रथने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके शत्रुओंकी प्रगति रोक दी ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे संजयाहितम्।
यदेकः पाण्डवान् क्रुद्धान् पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! मैं तो समझता हूँ, सिंधुराज जयद्रथपर यह बहुत बड़ा भार आ पड़ा था, जो अकेले होनेपर भी उसने पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक एवं क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोका ॥ ९ ॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः ॥ १० ॥

सिंधुराजमें ऐसे बल और शौर्यका होना मैं अत्यन्त आश्चर्यकी बात मानता हूँ। महामना जयद्रथके बल और श्रेष्ठ पराक्रमका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १० ॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो तपः।
सिंधुराजो हि येनैकः पाण्डवान् समवारयत् ॥ ११ ॥

सिंधुराजने कौन-सा ऐसा दान, होम, यज्ञ अथवा उत्तम तप किया था, जिससे वह अकेला ही समस्त पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हो सका ॥ ११ ॥

(दमो वा ब्रह्मचर्यं वा सूत यच्चास्य सत्तम।
देवं कतममाराध्य विष्णुमीशानमब्जजम् ॥
सिन्धुराट् तनये सक्तान् क्रुद्धः पार्थानवारयत्।
नैवं कृतं महत् कर्म भीष्मेणाज्ञासिषं तथा ॥)

साधुशिरोमणे सूत! जयद्रथमें जो इन्द्रियसंयम अथवा ब्रह्मचर्य हो, वह बताओ। विष्णु, शिव अथवा ब्रह्मा किस देवताकी आराधना करके सिन्धुराजने अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हुए पाण्डवोंको क्रोधपूर्वक रोक दिया? भीष्मने भी ऐसा महान् पराक्रम किया हो, उसका पता मुझे नहीं है ॥

संजय उवाच

द्रौपदीहरणे यत् तद् भीमसेनेन निर्जितः।
मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत् तपः ॥ १२ ॥

संजयने कहा—महाराज! द्रौपदीहरणके प्रसंगमें जो जयद्रथको भीमसेनसे पराजित होना पड़ा था, उसीसे अभिमानवश अपमानका अनुभव करके राजाने वर प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर बड़ी भारी तपस्या की ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसंततः ॥ १३ ॥

प्रिय लगनेवाले विषयोंकी ओरसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंको हटाकर भूख-प्यास और धूपका कष्ट सहन करता हुआ जयद्रथ अत्यन्त दुर्बल हो गया। उसके शरीरकी नस-नाड़ियाँ दिखायी देने लगीं ॥ १३ ॥

देवमाराधयच्छर्वं गृणन् ब्रह्म सनातनम्।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम्।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥

वह सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शङ्करकी स्तुति करता हुआ उनकी आराधना करने लगा। तब भक्तोंपर दया करनेवाले

भगवान्‌ने उसपर कृपा की और स्वप्नमें जयद्रथको दर्शन देकर उससे कहा—'जयद्रथ ! तुम क्या चाहते हो ? वर माँगो । मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथने अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर उन रुद्रदेवको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ १६ ॥



पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७ ॥
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत् ।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनंजयम् ॥ १८ ॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाबुद्ध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥

'प्रभो ! मैं युद्धमें भयंकर बल-पराक्रमसे सम्पन्न समस्त पाण्डवोंको अकेला ही रथके द्वारा परास्त करके आगे बढ़नेसे रोक दूँ' ।भारत ! उसके ऐसा कहनेपर देवेश्वर भगवान् शिवने जयद्रथसे कहा—'सौम्य ! मैं तुम्हें वर देता हूँ । तुम कुन्तीपुत्र अर्जुनको छोड़कर शेष चार पाण्डवोंको (एक दिन) युद्धमें आगे बढ़नेसे रोक दोगे ।' तब देवेश्वर महादेवसे 'एवमस्तु' कहकर राजा जयद्रथ जाग उठा ॥ १७–१९ ॥

स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च ।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥

उसी वरदानसे अपने दिव्य अस्त्र-बलके द्वारा जयद्रथने अकेले ही पाण्डवोंकी सेनाको रोक दिया ॥ २० ॥

तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान् भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥

उसके धनुषकी टंकार सुनकर शत्रुपक्षके क्षत्रियोंके मनमें भय समा गया; परंतु आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥२१॥

दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन् येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

राजन् ! उस समय सारा भार जयद्रथके ही ऊपर पड़ा देख आपके क्षत्रियवीर कोलाहल करते हुए जिस ओर युधिष्ठिरकी सेना थी, उसी ओर टूट पड़े ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथयुद्धविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल २४ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पाण्डवोंके साथ जयद्रथका युद्ध और व्यूहद्वारको रोक रखना

संजय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र ! आप मुझसे जो सिंधुराज जयद्रथके पराक्रमका समाचार पूछ रहे हैं, वह सब सुनिये । उसने जिस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया था, वह सारा वृत्तान्त बताऊँगा ॥ १ ॥

तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥

सारथिके वशमें रहकर अच्छी तरह सवारीका काम देनेवाले, वायुके समान वेगशाली तथा नाना प्रकारकी चाल दिखाते हुए चलनेवाले सिंधुदेशीय विशाल अश्व जयद्रथको वहन करते थे ॥ २ ॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याभ्यशोभयत् केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥

विधिपूर्वक सजाया हुआ उसका रथ गन्धर्वनगरके समान जान पड़ता था । उसका रजतनिर्मित एवं वाराह-चिह्नसे युक्त महान् ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ा रहा था ॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे ॥ ४ ॥

श्वेत छत्र, पताका, चँवर और व्यजन—इन राजचिह्नोंसे वह आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥४॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तदयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥

उसके रथका मुक्ता, मणि, सुवर्ण तथा हीरोंसे विभूषित लोहमय आवरण नक्षत्रोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ ५ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् ।
तत् खण्डं पूरयामास यद् व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥

उसने अपना विशाल धनुष फैलाकर बहुत-से बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए व्यूहके उस भागको योद्धाओंद्वारा भर दिया, जिसे अभिमन्युने तोड़ डाला था ॥ ६ ॥

स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

उसने सात्यकिको तीन, भीमसेनको आठ, धृष्टद्युम्नको साठ, विराटको दस, द्रुपदको पाँच, शिखण्डीको सात, केकयराजकुमारोंको पचीस, द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन तथा युधिष्ठिरको सत्तर तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया। तत्पश्चात् बाणोंका बड़ा भारी जाल-सा बिछाकर उसने शेष सैनिकोंको भी पीछे हटा दिया। यह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ ७–९ ॥



अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥

तब प्रतापी राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिरने एक तीखे और पानीदार भल्लके द्वारा उसके धनुषको काटनेकी घोषणा करके हँसते-हँसते काट डाला ॥ १० ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥

उस समय जयद्रथने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधिष्ठिरको दस तथा अन्य वीरोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ११ ॥

तत् तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥

उसकी इस फुर्तीको देख और समझकर भीमसेनने तीन-तीन भल्लोंद्वारा उसके धनुष, ध्वज और छत्रको शीघ्र ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १२ ॥

सोऽन्यदादाय बलवान् सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! तब उस बलवान् वीरने दूसरा धनुष ले उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर भीमके धनुष, ध्वज और घोड़ोंको धराशायी कर दिया ॥ १३ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर अपने अश्वहीन उत्तम रथसे कूदकर भीमसेन सात्यकिके रथपर जा बैठे, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरपर जा चढ़ा हो ॥ १४ ॥

ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत् कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥

सिंधुराजके उस अद्भुत पराक्रमको, जो सुननेपर विश्वास करने योग्य नहीं था, प्रत्यक्ष देख आपके सभी सैनिक अत्यन्त हर्षमें भरकर उसे साधुवाद देने लगे ॥ १५ ॥

संक्रुद्धान् पाण्डवानेको यद् दधारास्त्रतेजसा ।
तत् तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥

जयद्रथने अकेले ही अपने अस्त्रोंके तेजसे जो क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोक लिया, उसके उस पराक्रमकी सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥

सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युने पहले गजारोहियोंसहित बहुत-से गजराजोंको मारकर व्यूहमें प्रवेश करनेके लिये जो पाण्डवोंको मार्ग दिखा दिया था, उसे जयद्रथने बंद कर दिया ॥ १७ ॥

यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥

वे वीर मत्स्य, पाञ्चाल, केकय तथा पाण्डव बारंबार प्रयत्न करके व्यूहपर आक्रमण करते थे; परंतु सिंधुराजके सामने टिक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

आपका जो-जो शत्रु द्रोणाचार्यके व्यूहको तोड़नेका प्रयत्न करता, उसी उसी श्रेष्ठ वीरके पास पहुँचकर जयद्रथ उसे रोक देता था ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथका युद्धविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम और उसके द्वारा वसातीय आदि अनेक योद्धाओंका वध

संजय उवाच

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डवोंको जब सिंधुराज जयद्रथने रोक दिया, उस समय आपके सैनिकोंका शत्रुओंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १ ॥

प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसंधो दुरासदः।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥

तदनन्तर सत्यप्रतिज्ञ दुर्धर्ष और तेजस्वी वीर अभिमन्युने आपकी सेनाके भीतर घुसकर इस प्रकार तहलका मचा दिया, जैसे बड़ा भारी मगर समुद्रमें हलचल पैदा कर देता है ॥ २ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम्।
यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥

इस प्रकार बाणोंकी वर्षासे कौरवसेनामें हलचल मचाते हुए शत्रुदमन सुभद्राकुमारपर आपकी सेनाके प्रधान-प्रधान महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया ॥ ३ ॥

तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥

उस समय अति तेजस्वी कौरव योद्धा परस्पर सटे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उनके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥

यद्यपि शत्रुओंने अपने रथसमूहके द्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया था, तो भी उसने वृषसेनके सारथिको घायल करके उसके धनुषको भी काट डाला ॥

तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

तब बलवान् वृषसेन अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा अभिमन्युके घोड़ोंको बींधने लगा। इससे उसके घोड़े हवाके समान वेगसे भाग चले। इस प्रकार उन अश्वोंद्वारा वह रणभूमिसे दूर पहुँचा दिया गया ॥ ६ ॥

तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद् रथम्।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥

अभिमन्युके कार्यमें इस प्रकार विघ्न आ जानेसे वृषसेनका सारथि अपने रथको वहाँसे दूर हटा ले गया। इससे वहाँ जुटे हुए रथियोंके समुदाय हर्षमें भरकर 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥ ७ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन्।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर सिंहके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको मथते हुए अभिमन्युको समीप आते देख वसातीय तुरंत वहाँ उपस्थित हो उसका सामना करनेके लिये गया ॥ ८ ॥

सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत्।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

उसने अभिमन्युपर सुवर्णमय पंखवाले साठ बाण बरसाये और कहा—'अब तू मेरे जीते-जी इस युद्धमें जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ९ ॥

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥

तब अभिमन्युने लोहमय कवच धारण करनेवाले वसातीयको दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाले बाणद्वारा उसकी छातीमें चोट पहुँचायी, जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १० ॥

वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥

राजन्! वसातीयको मारा गया देख क्रोधमें भरे हुए क्षत्रियशिरोमणि वीरोंने आपके पौत्र अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे उस समय चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः।
तद् युद्धमभवद् रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥

वे अपने नाना प्रकारके धनुषोंकी बारंबार टंकार करने लगे । सुभद्राकुमारका शत्रुओंके साथ वह बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १२ ॥

तेषां शरान् सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥१३॥

उस समय अर्जुनकुमारने कुपित होकर उनके धनुष, बाण, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे युक्त मस्तकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥

सखड्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित उनकी भुजाएँ खड्ग, दस्ताने, पट्टिश और फरसोंसहित कटी दिखायी देने लगीं ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाभवन्मही ॥ १७ ॥

काटकर गिराये हुए हार, आभूषण, वस्त्र, विशाल भुजा, कवच, ढाल, मनोहर मुकुट, छत्र, चँवर, आवश्यक सामग्री, रथकी बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, चूर-चूर हुई धुरी, टूटे हुए पहिये, टूक-टूक हुए जूए, अनुकर्ष, पताका, सारथि, अश्व, टूटे हुए रथ और मरे हुए हाथियोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी ॥ १५—१७ ॥

निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विभिन्न जनपदोंके स्वामी क्षत्रियवीर उस युद्धमें मारे गये । उनकी लाशोंसे पटी हुई पृथ्वी बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ १८ ॥

दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस रणक्षेत्रमें कुपित होकर सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युका रूप अदृश्य हो गया था ॥ १९ ॥

काञ्चनं यद्यदस्यासीद् वर्म चाभरणानि च।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥

उसके कवच, आभूषण, धनुष और बाणके जो-जो अवयव सुवर्णमय थे, केवल उन्हींको हम दूरसे देख पाते थे ॥

तं तदा नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम्।
आददानं शरैर्योधान् मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

अभिमन्यु जिस समय बाणोंद्वारा योद्धाओंके प्राण ले रहा था और व्यूहके मध्यभागमें सूर्यके समान खड़ा था, उस समय कोई वीर उसकी ओर आँख उठाकर देखनेका साहस नहीं कर पाता था ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा सत्यश्रवा, क्षत्रियसमूह, रुक्मरथ तथा उसके मित्रगणों और सैकड़ों राजकुमारोंका वध और दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जैसे यमराज समस्त प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकुमार अभिमन्यु भी वीरोंकी आयुका अपहरण करते हुए उनके लिये यमराज ही हो गये थे ॥ १ ॥

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत ॥ २ ॥

इन्द्रकुमार अर्जुनका बलवान् पुत्र अभिमन्यु इन्द्रके समान पराक्रमी था । वह उस समय सारे व्यूहका मन्थन करता दिखायी देता था ॥ २ ॥

प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! क्षत्रियशिरोमणियोंके लिये यमराजके समान अभिमन्युने उस सेनामें प्रवेश करते ही जैसे उन्मत्त व्याघ्र हरिणको दबोच लेता है, उसी प्रकार सत्यश्रवाको ले बैठा ॥

सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

सत्यश्रवाके मारे जानेपर उन सभी महारथियोंने प्रचुर अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़ी उतावलीके साथ अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥

वे सभी क्षत्रियशिरोमणि 'पहले मैं, पहले मैं' इस प्रकार परस्पर होड़ लगाते हुए अर्जुनकुमारको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े ॥ ५ ॥

क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्रास तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥

उस समय धावा करनेवाले क्षत्रियोंकी उन आगे बढ़ती हुई सेनाओंको अभिमन्युने उसी प्रकार कालका ग्रास बना लिया, जैसे महासागरमें तिमि नामक महामत्स्य छोटे-छोटे मत्स्योंको निगल जाता है ॥ ६ ॥

ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥

युद्धसे न भागनेवाले जो कोई शूरवीर उस समय अभिमन्युके पास गये, वे फिर नहीं लौटे । जैसे समुद्रमें मिली हुई नदियाँ फिर वहाँसे लौट नहीं पाती हैं ॥ ७ ॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥ ८ ॥

जिसका समुद्रमें मार्ग भूल गया हो, जो वायुके वेगसे भयाक्रान्त हो रही हो तथा जिसे किसी बहुत बड़े ग्राहने पकड़ लिया हो—ऐसी नौका जैसे डगमगाने लगती है, उसी प्रकार वह सेना अभिमन्युके भयसे काँप रही थी ॥ ८ ॥

अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन् सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इसी समय मद्रराजका बलवान् पुत्र रुक्मरथ आकर अपनी डरी हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ निर्भय होकर बोला—॥ ९ ॥

अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥

'शूरवीरो ! तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं । यह अभिमन्यु मेरे रहते कुछ भी नहीं है । मैं अभी इसे जीते-जी पकड़ लूँगा । इसमें संशय नहीं है' ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर पराक्रमी रुक्मरथ सुन्दर सजे-सजाये तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दौड़ा ॥

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥

उसने अभिमन्युकी छातीमें तीन बाण मारकर सिंहनाद किया । फिर तीन बाण दाहिनी और तीन तीखे बाण बायीं भुजामें मारे ॥ १२ ॥

स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनकुमारने रुक्मरथका धनुष काटकर उसकी बायीं-दायीं भुजाओंको तथा सुन्दर नेत्र एवं भौंहोंसे सुशोभित मस्तकको भी तुरंत ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १६ ॥

राजन् ! राजा शल्यके अभिमानी पुत्र रुक्मरथको जो, अभिमन्युको जीते-जी पकड़ना चाहता था, यशस्वी सुभद्राकुमारके द्वारा मारा गया देख शल्यपुत्रके बहुत-से मित्र राजकुमार, जो प्रहार करनेमें कुशल और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे, अर्जुनकुमारको चारों ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उनके ध्वज सुवर्णके बने हुए थे, वे महाबली वीर चार हाथके धनुष खींच रहे थे ॥ १४-१६ ॥

शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥

शिक्षा और बलसे सम्पन्न, तरुण अवस्थावाले, अत्यन्त अमर्षशील और शूरवीर राजकुमारोंद्वारा, किसीसे परास्त न होनेवाले शौर्यसम्पन्न सुभद्राकुमारको अकेले ही समराङ्गणमें बाणसमूहोंसे आच्छादित होते देख राजा दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ । उसने यह मान लिया कि अब अभिमन्यु यमराजके लोकमें पहुँच गया ॥ १७-१८ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात् ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥

उन राजकुमारोंने सोनेके पंखवाले नाना प्रकारके चिह्नोंसे सुशोभित और पैने बाणोंद्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको पलक मारते-मारते अदृश्य कर दिया ॥ १९ ॥

ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥

आर्य ! सारथि, घोड़े और ध्वजसहित अभिमन्युके उस रथको मैंने उसी प्रकार बाणोंसे व्याप्त देखा, जैसे साही (सेह) का शरीर काँटोंसे भरा रहता है ॥ २० ॥

स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद् रथमायां च भारत ॥ २१ ॥

भारत ! बाणोंसे गहरी चोट खाकर अभिमन्यु अङ्कुशसे पीड़ित हुए गजराजकी भाँति कुपित हो उठा । उसने गान्धर्वास्त्रका प्रयोग किया और रथमाया (रथयुद्धकी शिक्षामें निपुणता) प्रकट की ॥ २१ ॥

अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥

अर्जुनने तपस्या करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंसे जो अस्त्र प्राप्त किया था, उसीसे अभिमन्युने अपने शत्रुओंको मोहित कर दिया ॥ २२ ॥

एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत् संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्रसंचालनका कौशल दिखाता हुआ युद्धमें अलातचक्रकी भाँति एक, शत तथा सहस्रों रूपोंमें दृष्टिगोचर होता था ॥ २३ ॥

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले अभिमन्युने रथ-चर्या तथा अस्त्रोंकी मायासे मोहित करके राजाओंके शरीरोंके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥ २४ ॥

प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषितानि शितैः शरैः ।
राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस युद्धस्थलमें उसके पैने बाणोंसे प्रेरित हुए प्राणधारियोंके शरीर तो पृथ्वीपर गिर पड़े, परंतु प्राण परलोकमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥

धनूंष्यश्वान् नियन्तॄंश्च ध्वजान् बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥२६॥

अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंद्वारा उनके धनुष, घोड़े, सारथि, ध्वज, अङ्गदयुक्त बाहु तथा मस्तक भी काट डाले ॥ २६ ॥

चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत् सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥

जैसे पाँच वर्षोंका लगाया हुआ आमका बाग, जो फल देनेके योग्य हो गया हो, काट दिया जाय, उसी प्रकार सैकड़ों राजकुमारोंको सुभद्राकुमारने वहाँ मार गिराया ॥

क्रुद्धाशीविषसंकाशान् सुकुमारान् सुखोचितान् ।
एकेन निहतान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥

क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर तथा सुख भोगनेके योग्य उन सुकुमार राजकुमारोंको एकमात्र अभिमन्युद्वारा मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो गया ॥

रथिनः कुञ्जरानश्वान् पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात् तममर्षितः ॥ २९ ॥

रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदलोंको भी अभिमन्यु-रूपी समुद्रमें डूबते देख अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनने शीघ्र ही उसपर धावा किया ॥ २९ ॥

तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाभवत् ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

उन दोनोंमें एक क्षणतक अधूरा-सा युद्ध हुआ । इतनेहीमें आपका पुत्र दुर्योधन सैकड़ों बाणोंसे आहत होकर वहाँसे भाग गया ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुर्योधनकी पराजयविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा लक्ष्मण तथा क्राथपुत्रका वध और सेनासहित छः महारथियोंका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥
अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं सौभद्रस्याथ विक्रमम् ।
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत ! जैसा कि तुम बता रहे हो, अकेले महामना अभिमन्युका बहुत-से योद्धाओंके साथ अत्यन्त भयंकर संग्राम हुआ और उसमें विजय भी उसीकी हुई—सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है । उसपर सहसा विश्वास नहीं होता; परंतु जिन लोगोंका धर्म ही आश्रय है, उनके लिये यह कोई अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है ॥ १-२ ॥

दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

संजय ! जब दुर्योधन भाग गया और सैकड़ों राजकुमार मारे गये, उस समय मेरे पुत्रोंने सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये क्या उपाय किया ? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! आपके सभी सैनिकोंके मुँह सूख गये थे, आँखें भयसे चञ्चल हो रही थीं, सारे अंग पसीने-पसीने हो रहे थे और रोंगटे खड़े हो गये थे । वे भागनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे । शत्रुओंको जीतनेका उत्साह उनके मनमें तनिक भी नहीं था ॥ ४ ॥

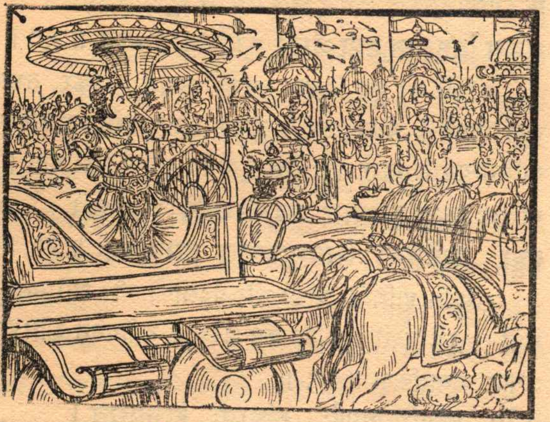
हतान् भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥

वे युद्धमें मारे गये भाइयों, पितरों, पुत्रों, सुहृदों, सम्बन्धियों तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपने घोड़े

और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥

तान् प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः ॥ ६ ॥
अभ्यधावन् सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम्।
ते तु पौत्रेण ते राजन् प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥

राजन्! उन सबको भागते देख द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि—



ये सब अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपराजित वीर अभिमन्युपर टूट पड़े; परंतु आपके उस पौत्र अभिमन्युने उन सबको प्रायः युद्धसे भगा दिया ॥ ६-७ ॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद् दर्पाच्च निर्भयः।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥

उस समय सुखमें पला हुआ, धनुर्वेदका ज्ञाता, एकमात्र महातेजस्वी लक्ष्मण अपने बालस्वभाव तथा अभिमानके कारण निर्भय हो अभिमन्युके सामने आ गया ॥ ८ ॥

तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत।
अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥

पुत्रकी रक्षा चाहनेवाला पिता दुर्योधन भी उसीके साथ-साथ लौट पड़ा। फिर दुर्योधनके पीछे दूसरे महारथी लौट आये ॥ ९ ॥

तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः।
स तु तान् प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥ १० ॥

जैसे बादल किसी पर्वतको अपने जलकी धाराओंसे सींचते हैं, उसी प्रकार वे महारथी अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। जैसे चारों ओरसे बहनेवाली हवा (चौवाई) बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार अकेले अभिमन्युने उन सबको मथ डाला ॥ १० ॥

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम्।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम्।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥

राजन्! आपका प्रियदर्शन पौत्र लक्ष्मण बड़ा दुर्धर्ष वीर था। वह धनुष उठाये अपने पिताके ही पास खड़ा था। अत्यन्त सुखमें पला हुआ वह वीर कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था। जैसे मतवाला हाथी किसी मदोन्मत्त गजराजसे भिड़ जाय, उसी प्रकार अर्जुनकुमारने लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ११-१२ ॥

लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पितः ॥ १३ ॥

लक्ष्मणसे भिड़नेपर उसके द्वारा शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारकी भुजाओं और छातीमें अत्यन्त तीखे बाणों-द्वारा प्रहार किया गया ॥ १३ ॥

संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहत इवोरगः।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥

महाराज! उस प्रहारसे लाठीकी चोट खाये हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके पौत्र अभिमन्युने आपके दूसरे पौत्र लक्ष्मणसे कहा—॥ १४ ॥

सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥

'लक्ष्मण! इस संसारको अच्छी तरह देख लो। अब शीघ्र ही परलोककी यात्रा करोगे। इन बान्धव-जनोंके देखते-देखते मैं तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ' ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसंनिभम् ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान एक भल्लको तरकससे निकाला ॥ १६ ॥

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम्।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत् सकुण्डलम् ॥ १७ ॥

अभिमन्युके हाथोंसे छूटे हुए उस भल्लने लक्ष्मणके देखनेमें सुन्दर, सुघड़ नासिका, मनोहर भौंह, सुन्दर केशान्तभाग और रुचिर कुण्डलोंसे युक्त मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥

लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।

लक्ष्मणको मारा गया देख सब लोग जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे। अपने प्यारे पुत्रके मारे जानेपर क्षत्रियशिरोमणि दुर्योधन कुपित हो उठा और समस्त क्षत्रियोंसे बोला—'अहो! इस अभिमन्युको मार डालो' ॥ १८½ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन्।

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल

और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने अभिमन्युको घेर लिया ॥ १९½ ॥

तांस्तु विद्ध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ॥ २० ॥
वेगेनाभ्यपतत् क्रुद्धः सैन्धवस्य महद् बलम् ।

यह देख अर्जुनकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा उन सबको घायल करके भगा दिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे जयद्रथकी विशाल सेनापर धावा किया ॥ २०½ ॥

आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।

उस समय कलिङ्गदेशीय सैनिक, निषादगण तथा पराक्रमी क्राथपुत्र—इन सबने कवच धारण करके गजसेनाके द्वारा अभिमन्युका रास्ता रोक दिया ॥ २१½ ॥

तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥
ततस्तत् कुञ्जरानीकं व्यधमद् धृष्टमार्जुनिः ।
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥

प्रजानाथ ! तब वहाँ अत्यन्त निकटसे घोर युद्ध आरम्भ हो गया । अर्जुनकुमारने पैने बाणोंद्वारा उस धृष्ट गजसेनाको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे सदागति वायु आकाशमें सैकड़ों मेघखण्डोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ २२-२३ ॥

ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे संनिवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥

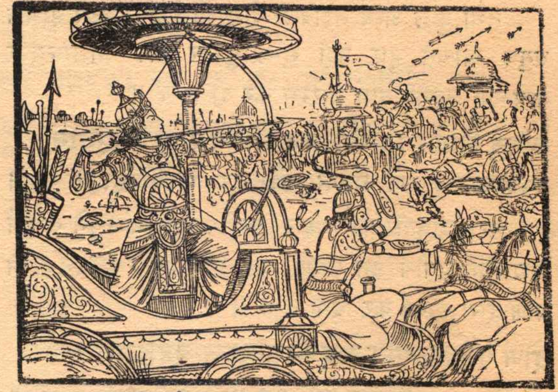
तदनन्तर क्राथने अर्जुनकुमार अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इतनेहीमें द्रोण आदि दूसरे महारथी भी पुनः लौट आये ॥ २४ ॥

परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ।
तान् निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत् ॥ २५ ॥

उन सबने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए सुभद्राकुमारपर आक्रमण किया । अभिमन्युने अपने बाणोंद्वारा उन सबका निवारण करके क्राथपुत्रको अधिक पीड़ा दी ॥

शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ।
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान् न्यपातयत् ।

फिर उसने असंख्य बाणसमूहोंद्वारा क्राथपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे जल्दी करते हुए उसकी धनुष-बाणों और केयूरसहित दोनों भुजाओं, मुकुटमण्डित मस्तक, छत्र, ध्वज और सारथिसहित रथ तथा घोड़ोंको भी मार गिराया ॥



कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन् हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥ २७ ॥

कुल, शील, शास्त्रज्ञान, बल, कीर्ति तथा अस्त्र-बलसे सम्पन्न उस वीर क्राथपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेनाके प्रायः सभी शूरवीर सैनिक युद्ध छोड़कर भाग गये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें लक्ष्मणवधविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम, छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उसके द्वारा वृन्दारक तथा दश हजार अन्य राजाओंके सहित कोसलनरेश बृहद्बलका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ १ ॥
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! कभी पराजित न होनेवाला तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाला तरुण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार जयद्रथकी सेनामें प्रवेश करके अपने कुलके अनुरूप पराक्रम प्रकट कर रहा था और तीन वर्षकी अवस्थावाले अच्छी जातिके बलवान् घोड़ोंद्वारा मानो आकाशमें तैरता हुआ आक्रमण करता था, उस समय किन शूरवीरोंने उसे रोका था ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान् निशितैः शरैः ।
अकरोत् पार्थिवान् सर्वान् विमुखान् पाण्डुनन्दनः ३

संजयने कहा—राजन् ! पाण्डुकुलनन्दन अभिमन्युने उस सेनामें प्रविष्ट होकर आपके इन सभी राजाओंको अपने तीखे बाणोंद्वारा युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ३ ॥

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

महाराज ! सिंधुराज जयद्रथपर बहुत बड़ा भार आया देख आपकी सेनाने राजा युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ५ ॥

सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥

तथा कुछ अन्य महाबली योद्धाओंने अपने चार हाथके धनुष खींचते हुए वहाँ सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युपर बाणरूपी जलकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ६ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद् रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥

परंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अभिमन्युने सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण उन समस्त महाधनुर्धरोंको रणक्षेत्रमें अपने बाणोंद्वारा स्तब्ध कर दिया ॥ ७ ॥

द्रोणं पञ्चाशताविध्यद् विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद् दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्युने द्रोणको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको असी, कृपाचार्यको साठ और अश्वत्थामाको कानतक खींचकर छोड़े हुए स्वर्णमय पंखयुक्त, महावेगशाली दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥

अर्जुनकुमारने शत्रुओंके मध्यमें खड़े हुए कर्णके कानमें पानीदार पैने और उत्तम बाणद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥

पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

कृपाचार्यके चारों घोड़ों तथा उनके दो पार्श्वरक्षकोंको धराशायी करके उनकी छातीमें दस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद् बली ॥ १२ ॥

तदनन्तर बलवान् अभिमन्युने कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको आपके वीर पुत्रोंके देखते-देखते मार डाला ॥ १२ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥

तब शत्रुदलके प्रधान-प्रधान वीरोंका बेखटके वध करते हुए अभिमन्युको अश्वत्थामाने पचीस बाण मारे ॥ १३ ॥

स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥

आर्य ! अर्जुनकुमारने भी आपके पुत्रोंके देखते-देखते तुरंत ही अश्वत्थामाको पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १४ ॥

षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाकम्पयद् विद्ध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥

तब द्रोणपुत्रने तीखी धारवाले तेज और भयंकर साठ बाणोंद्वारा अभिमन्युको बींध डाला; परंतु बींधकर भी वह मैनाक पर्वतके समान स्थित अभिमन्युको कम्पित न कर सका ॥

स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥

महातेजस्वी बलवान् अभिमन्युने सुवर्णमय पंखसे युक्त तिहत्तर बाणोंद्वारा अपने अपकारी अश्वत्थामाको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन् पितरं रणे ॥ १७ ॥

तब अपने पुत्रके प्रति स्नेह रखनेवाले द्रोणाचार्यने अभिमन्युको सौ बाण मारे । साथ ही अश्वत्थामाने भी अपने पिताकी रक्षा करते हुए रणक्षेत्रमें उसपर आठ बाण चलाये ॥

कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् कर्णने बाईस, कृतवर्माने बीस, बृहद्बलने पचास तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने अभिमन्युको दस भल्ल मारे ॥

तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

उन सबके चलाये हुए तीखे बाणोंद्वारा सब ओरसे पीड़ित हुए सुभद्राकुमारने उन सभीको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि ।
स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतं चापातयत् क्षितौ ॥ २० ॥

तत्पश्चात् कोसलनरेश बृहद्बलने एक बाणद्वारा अभिमन्युकी छातीमें चोट पहुँचायी । यह देख अभिमन्युने उनके चारों घोड़ों तथा ध्वज, धनुष एवं सारथिको भी पृथ्वीपर मार गिराया ॥ २० ॥

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥

रथहीन होनेपर कोसलनरेशने हाथमें ढाल और तलवार ले ली तथा अभिमन्युके शरीरसे उसके कुण्डलयुक्त

मस्तकको काट लेनेका विचार किया ॥ २१ ॥

स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम्।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

इतनेहीमें अभिमन्युने एक बाणद्वारा कोसलनरेश राजपुत्र बृहद्बलके हृदयमें गहरी चोट पहुँचायी। इससे उनका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वे गिर पड़े ॥ २२ ॥

बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम्।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥

इसके बाद अशुभ वचन बोलनेवाले तथा खड्ग एवं धनुष धारण करनेवाले दस हजार महामनस्वी राजाओंका भी उसने संहार कर डाला ॥ २३ ॥

तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद् रणे।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

इस प्रकार महाधनुर्धर अभिमन्यु बृहद्बलका वध करके आपके योद्धाओंको अपने बाणरूपी जलकी वर्षासे स्तब्ध करता हुआ रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बृहद्बलवधविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युद्वारा अश्वकेतु, भोज और कर्णके मन्त्री आदिका वध एवं छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उन महारथियोंद्वारा अभिमन्युके धनुष, रथ, ढाल और तलवारका नाश

संजय उवाच

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत् कोपयन् भृशम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अर्जुनकुमार अभिमन्युने एक बाणद्वारा कर्णके कानमें पुनः चोट पहुँचायी और उसे क्रोध दिलाते हुए उसने पचास बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन! तब राधापुत्र कर्णने भी अभिमन्युको उतने ही बाणोंसे बींध डाला। उसका सारा अंग बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण वह बड़ी शोभा पा रहा था ॥ २ ॥

कर्णं चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम्।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः॥ ३ ॥
(संध्यानुगतपर्यन्तः शरदीव दिवाकरः।)

फिर क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने कर्णको भी बाणोंसे क्षत-विक्षत करके उसे रक्तकी धारा बहानेवाला बना दिया। उस समय शूरवीर कर्ण भी बाणोंसे छिन्न-भिन्न और खूनसे लथपथ हो बड़ी शोभा पाने लगा, मानो शरत्कालका सूर्य संध्याके समय सम्पूर्ण रूपसे लाल दिखायी दे रहा हो ॥ ३ ॥

तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उन दोनोंके शरीर बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। दोनों ही रक्तसे भींग गये तथा वे दोनों महामनस्वी वीर फूलोंसे भरे हुए पलाश-वृक्षके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥

तदनन्तर सुभद्राकुमारने कर्णके विचित्र युद्ध करनेवाले छः शूरवीर मन्त्रियोंको उनके घोड़े, सारथि, रथ तथा ध्वज-सहित मार डाला ॥ ५ ॥

तथेतरान् महेष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इतना ही नहीं, उसने बिना किसी घबराहटके दस-दस बाणोंद्वारा अन्य महाधनुर्धरोंको भी आहत कर दिया। वह अद्भुत-सी बात थी ॥ ६ ॥

मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार उसने मगधराजके तरुण पुत्र अश्वकेतुको छः बाणोंद्वारा मारकर उसे घोड़ों और सारथिसहित रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ७ ॥

मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम्।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् हाथीके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले मार्तिकावतक-नरेश भोजको एक क्षुरप्रद्वारा नष्ट करके अभिमन्युने बाणोंकी वर्षा करते हुए सिंहनाद किया ॥ ८ ॥

तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥

तब दुःशासनकुमारने चार बाणोंद्वारा अभिमन्युके चारों घोड़ोंको घायल करके एकसे सारथिको और दस बाणोंद्वारा स्वयं अभिमन्युको बींध डाला ॥ ९ ॥

ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
संरम्भाद् रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १० ॥

यह देख अर्जुनकुमारने क्रोधसे लाल आँखें करके

सात बाणोंद्वारा दुःशासनपुत्रको बींध डाला और उच्च स्वरसे यह बात कही—॥ १० ॥

पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥

'अरे ! तेरा पिता कायरकी भाँति युद्ध छोड़कर भाग गया है । सौभाग्यकी बात है कि तू भी युद्ध करना जानता है; किंतु आज तू जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ११ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥

यह वचन कहकर अभिमन्युने कारीगरके माँजे हुए एक नाराचको दुःशासनपुत्रपर चलाया; परंतु अश्वत्थामाने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही काट दिया ॥ १२ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥
हृद्यसम्भ्रान्तवद् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तब अर्जुनकुमारने अश्वत्थामाका ध्वज काटकर शल्यको तीन बाण मारे । राजन् ! शल्यने भी मनमें तनिक भी सम्भ्रम या घबराहटका अनुभव न करते हुए-से गीधके पंखसे युक्त नौ बाणोंद्वारा अभिमन्युको आहत कर दिया । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १३½ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ १४ ॥
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद् रथान्तरम् ।

उस समय अभिमन्युने शल्यके ध्वजको काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला और उनको भी लोहेके बने हुए छः बाणोंसे बींध दिया; फिर तो शल्य भागकर दूसरे रथपर चले गये ॥ १४½ ॥

शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौबलम् ।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास—इन पाँच वीरोंको मारकर अभिमन्युने सुबलपुत्र शकुनिको भी घायल कर दिया । तब शकुनिने भी तीन बाणोंसे अभिमन्युको घायल करके दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥

सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥

'राजन् ! यह एक-एकके साथ युद्ध करके हमें मारे, इसके पहले ही हम सब लोग मिलकर इस अभिमन्युको मथ डालें ।' तदनन्तर विकर्तनपुत्र कर्णने रणक्षेत्रमें पुनः द्रोणाचार्यसे पूछा—॥ १७ ॥

पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥

'आचार्य ! अभिमन्यु हमलोगोंको मार डाले' इसके पहले ही हमें शीघ्र यह बताइये कि इसका वध किस प्रकार होगा ?' तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने उन सबसे कहा—॥ १८ ॥

अस्ति वास्यान्तरं किंचित् कुमारस्याथ पश्यत ।
अण्वप्यस्यान्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥

'देखो, क्या इस कुमार अभिमन्युमें कहीं कोई दुर्बलता या छिद्र है ? सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युमें आज कोई छोटा-सा भी छिद्र हो तो देखो ॥ १९ ॥

शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।
धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
संदधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।

'इस पुरुषसिंह पाण्डवपुत्रकी शीघ्रता तो देखो । शीघ्रतापूर्वक बाणोंका संधान करते और छोड़ते समय रथके मार्गोंमें इसके धनुषका मण्डलमात्र दिखायी देता है ॥ २०½ ॥

आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु यद्यपि अपने बाणोंद्वारा मेरे प्राणोंको अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मुझे मूर्छित किये देता है, तथापि बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहा है । रणक्षेत्रमें विचरता हुआ सुभद्राका यह पुत्र मुझे अत्यन्त आनन्दित कर रहा है ॥ २१-२२ ॥

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।

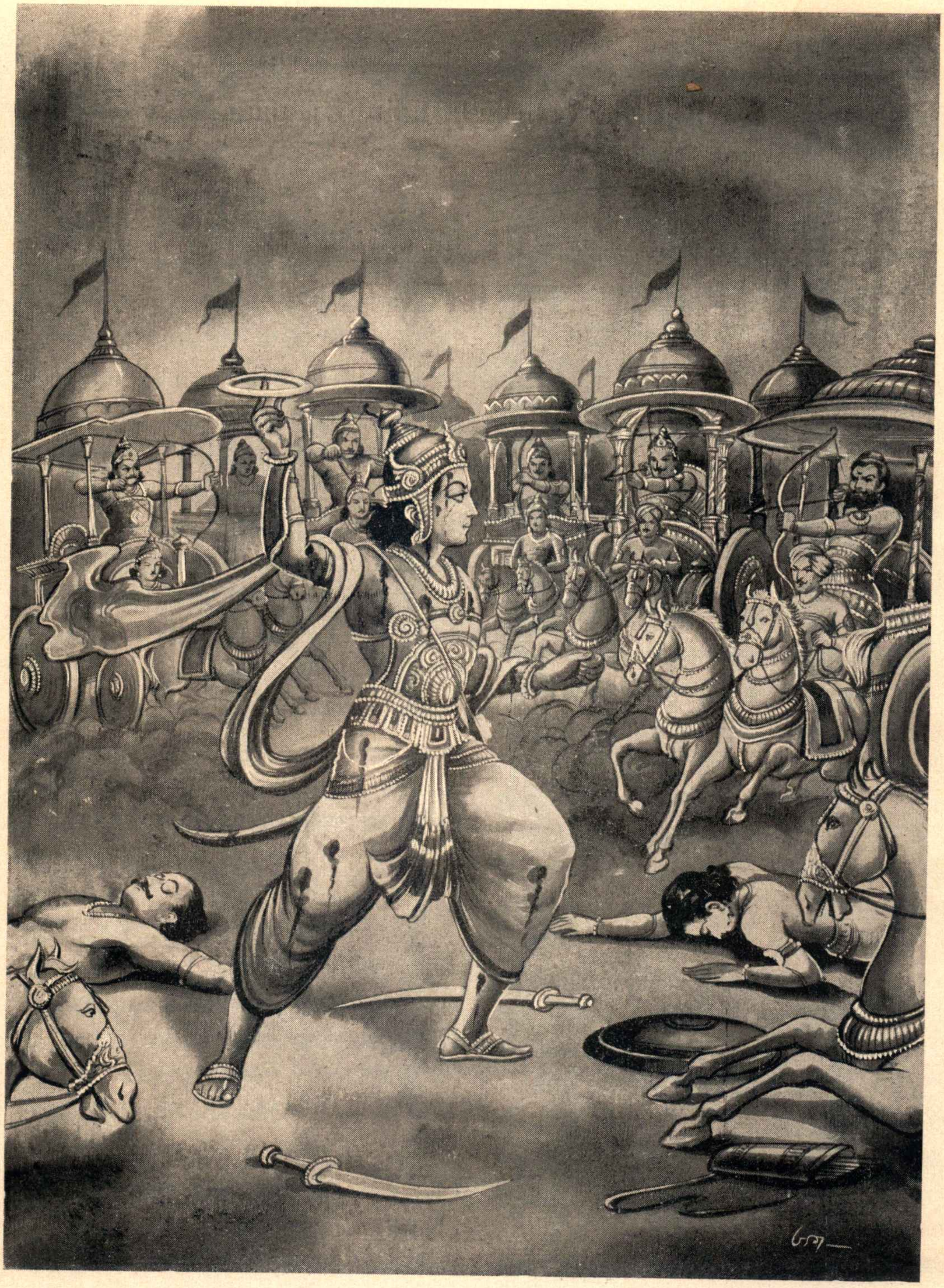
'क्रोधमें भरे हुए महारथी इसके छिद्रको नहीं देख पाते हैं । यह शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाता हुआ अपने महान् बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर रहा है । मैं युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुन और इस अभिमन्युमें कोई अन्तर नहीं देख पाता हूँ' ॥ २३½ ॥

अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।

तदनन्तर कर्णने अभिमन्युके बाणोंसे आहत होकर पुनः द्रोणाचार्यसे कहा—'आचार्य ! मैं अभियन्युके बाणोंसे पीड़ित होता हुआ भी केवल इसलिये यहाँ खड़ा हूँ कि युद्धके मैदानमें डटे रहना ही क्षत्रियका धर्म है (अन्यथा मैं कभी भाग गया होता) ॥ २४½ ॥

तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।
तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥

'तेजस्वी कुमार अभिमन्युके ये अत्यन्त दारुण और अग्निके समान तेजस्वी घोर बाण आज मेरे वक्षः-



अभिमन्युपर अनेक महारथियोंद्वारा एक साथ प्रहार

स्थलको विदीर्ण किये देते हैं ।' यह सुनकर द्रोणाचार्य ठहाका मारकर हँसते हुए-से धीरे-धीरे कर्णसे इस प्रकार बोले—॥ २५-२६ ॥

अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः ।
उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरंजयः ।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥२८॥

'कर्ण ! अभिमन्युका कवच अभेद्य है । यह तरुण वीर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाला है । मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेकी विधि बतायी है। शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला यह वीर कुमार निश्चय ही वह सारी विधि जानता है (अतः इसका कवच तो अभेद्य ही है); परंतु मनोयोगपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे इसके धनुष और प्रत्यञ्चाको काटा जा सकता है ॥ २७–२८ ॥

अभीशूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
एतत् कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९ ॥

'साथ ही इसके घोड़ोंकी बागडोरोंको, घोड़ोंको तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी नष्ट किया जा सकता है। महाधनुर्धर राधापुत्र ! यदि कर सको तो यही करो ॥ २९ ॥

अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु ।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३० ॥

'अभिमन्युको युद्धसे विमुख करके पीछे इसके ऊपर प्रहार करो, धनुष लिये रहनेपर तो इसे सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीत नहीं सकते ॥ ३० ॥

विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
अश्वानस्यावधीद् भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥

'यदि तुम इसे परास्त करना चाहते हो तो इसके रथ और धनुषको नष्ट कर दो ।' आचार्यकी यह बात सुनकर विकर्तनपुत्र कर्णने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले अभिमन्युके धनुषको काट दिया । भोजवंशी कृतवर्माने उसके घोड़े मार डाले और कृपाचार्यने दोनों पार्श्वरक्षकोंका काम तमाम कर दिया ॥ ३१–३२ ॥

शेषास्तु च्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥ ३३ ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।

शेष महारथी धनुष कट जानेपर अभिमन्युके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार शीघ्रता करनेके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले छः निर्दय महारथी एक रथहीन बालकपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ३३½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।

धनुष कट जाने और रथ नष्ट हो जानेपर तेजस्वी वीर अभिमन्यु अपने धर्मका पालन करते हुए ढाल और तलवार हाथमें लेकर आकाशमें उछल पड़ा ॥ ३४½ ॥

मार्गैः सकौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
आर्जुनिर्व्यचरद् व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।

अर्जुनकुमार अभिमन्यु कौशिक आदि मार्गों (पैतरों) द्वारा तथा शीघ्रकारिता और बल-पराक्रमसे पक्षिराज गरुड़की भाँति भूतलकी अपेक्षा आकाशमें ही अधिक विचरण करने लगा ॥

मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः ।

समराङ्गणमें छिद्र देखनेवाले योद्धा 'जान पड़ता है यह मेरे ही ऊपर तलवार लिये टूटा पड़ता है' इस आशङ्कासे ऊपरकी ओर दृष्टि करके महाधनुर्धर अभिमन्युको बींधने लगे ॥

तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।

उस समय शत्रुओंपर विजय पानेवाले महातेजस्वी द्रोणाचार्यने शीघ्रता करते हुए एक क्षुरप्रके द्वारा अभिमन्यु-की मुट्ठीमें स्थित हुए मणिमय मूठसे युक्त खड्गको काट डाला ॥

राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥

राधानन्दन कर्णने अपने पैने बाणोंद्वारा उसके उत्तम ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । ढाल और तलवारसे वञ्चित हो जानेपर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला अभिमन्यु पुनः आकाशसे पृथ्वीपर उतर आया और चक्र हाथमें ले कुपित हो द्रोणाचार्यकी ओर दौड़ा ॥ ३८–३९ ॥

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो
बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः
स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥

अभिमन्युका शरीर चक्रकी प्रभासे उज्ज्वल तथा धूल-राशिसे सुशोभित था । उसके हाथमें तेजोमय उज्ज्वल चक्र प्रकाशित हो रहा था । इससे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । उस रणक्षेत्रमें चक्रधारणद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अनुकरण करता हुआ अभिमन्यु क्षणभरके लिये बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा ॥ ४० ॥

स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो
भ्रुकुटिपुटाकुटिलोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्यु-
र्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४१ ॥

अभिमन्युके वस्त्र उसके शरीरसे बहनेवाले एकमात्र रुधिरके रंगमें रँग गये थे। भौंहें टेढ़ी होनेसे उसका मुखमण्डल सब ओरसे कुटिल प्रतीत होता था और वह बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहा था। ऐसी अवस्थामें प्रभावशाली अनन्त बलवान् अभिमन्यु उस रणक्षेत्रमें पूर्वोक्त नरेशोंके बीचमें खड़ा होकर अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युको रथहीन करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४१½ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अभिमन्युका कालिकेय, वसाति और कैकय रथियोंको मार डालना एवं छः महारथियोंके सहयोगसे अभिमन्युका वध और भागती हुई अपनी सेनाको युधिष्ठिरका आश्वासन देना

संजय उवाच

विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः ।
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राको आनन्दित करनेवाला तथा श्रीकृष्णके ही समान चक्ररूपी आयुधसे सुशोभित होनेवाला अतिरथी वीर अभिमन्यु उस युद्धस्थलमें दूसरे श्रीकृष्णके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १ ॥

मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः संचिच्छिदुरनेकधा ।

हवा उसके केशान्तभागको हिला रही थी। उसने अपने हाथमें चक्रनामक उत्तम आयुध उठा रक्खा था। उस समय उसके शरीर और उस चक्रको—जिसकी ओर दृष्टिपात करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था—देखकर समस्त भूपालगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे और उन सबने मिलकर उस चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २½ ॥

महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः ।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥

तब महारथी अभिमन्युने एक विशाल गदा हाथमें ले ली। शत्रुओंने उसे धनुष, रथ, खड्ग और चक्रसे भी वञ्चित कर दिया था। इसलिये गदा हाथमें लिये हुए अभिमन्युने अश्वत्थामापर धावा किया ॥ ३-४ ॥

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।
अपाक्रामद् रथोपस्थाद् विक्रमांस्त्रीन् नरर्षभः ॥ ५ ॥

प्रज्वलित वज्रके समान उस गदाको ऊपर उठी हुई देख नरश्रेष्ठ अश्वत्थामा अपने रथकी बैठकसे तीन पग पीछे हट गया ॥ ५ ॥



तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत् समदृश्यत ॥ ६ ॥

उस गदासे अश्वत्थामाके चारों घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको मारकर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला सुभद्राकुमार साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ ६ ॥

ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत् ।
जघान चास्यानुचरान् गान्धारान् सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर उसने सुबलपुत्र कालिकेयको मार गिराया और उसके पीछे चलनेवाले सतहत्तर गान्धारोंका भी संहार कर डाला ॥ ७ ॥

पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत् ।

इसके बाद दस वसातीय रथियोंको मार डाला। केकयोंके सात रथों और दस हाथियोंको मारकर दुःशासनकुमारके घोड़ोंसहित रथको भी गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला ॥

ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

आर्य! इससे दुःशासनपुत्र कुपित हो गदा हाथमें

लेकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा और इस प्रकार बोला— 'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ९½ ॥

तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ १० ॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।

वे दोनों वीर एक दूसरेके शत्रु थे । अतः गदा हाथमें लेकर एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर प्रहार करने लगे । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शंकर और अन्धकासुर परस्पर गदाका आघात करते थे ॥

तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परंतपौ ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर रणक्षेत्रमें गदाके अग्रभागसे एक दूसरेको चोट पहुँचाकर नीचे गिराये हुए दो इन्द्र-ध्वजोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ११½ ॥

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले दुःशासनपुत्रने पहले उठकर उठते हुए सुभद्राकुमारके मस्तकपर गदाका प्रहार किया ॥ १२½ ॥

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥

गदाके उस महान् वेग और परिश्रमसे मोहित होकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला अभिमन्यु अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ा । राजन् ! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत-से योद्धाओंने मिलकर एकाकी अभिमन्युको मार डाला । १३-१४ ।

क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥

जैसे हाथी कभी सरोवरको मथ डालता है, उसी प्रकार सारी सेनाको क्षुब्ध करके व्याधोंके द्वारा जंगली हाथीकी भाँति मारा गया वीर अभिमन्यु वहाँ अद्भुत शोभा पा रहा था ॥

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥
विमृद्य नगशृङ्गाणि संनिवृत्तमिवानिलम् ।
अस्तंगतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥ १७ ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥

इस प्रकार रणभूमिमें गिरे हुए शूरवीर अभिमन्युको आपके सैनिकोंने चारों ओरसे घेर लिया । जैसे ग्रीष्म ऋतुमें जंगलको जलाकर आग बुझ गयी हो, जिस प्रकार वायु वृक्षोंकी शाखाओंको तोड़-फोड़कर शान्त हो रही हो, जैसे संसारको संतप्त करके सूर्य अस्ताचलको चले गये हों, जैसे चन्द्रमापर ग्रहण लग गया हो तथा जैसे समुद्र सूख गया हो, उसी प्रकार समस्त कौरव-सेनाको संतप्त करके पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाला अभिमन्यु पृथ्वीपर पड़ा था; उसके सिरके बड़े-बड़े बालों (काकपक्ष) से उसकी आँखें ढक गयी थीं । उस दशामें उसे देखकर आपके महारथी बड़ी प्रसन्नताके साथ बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १६-१९ ॥

आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥

प्रजानाथ ! आपके पुत्रोंको तो बड़ा हर्ष हुआ; परंतु पाण्डव वीरोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगा ॥ २० ॥

अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥ २१ ॥

महाराज ! उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाके समान वीर अभिमन्युको रणभूमिमें पड़ा देख उच्च स्वरसे आपके महारथियोंकी निन्दा करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥

द्रोण और कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंके द्वारा असहाय अवस्थामें मारा गया यह एक बालक यहाँ सो रहा है । हमारे मतमें यह धर्म नहीं है ॥ २२ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥

वीर अभिमन्युके मारे जानेपर वह रणभूमि पूर्ण चन्द्रमा-से युक्त तथा नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत आकाशकी भाँति बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २३ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
तथाश्वनरनागानामलंकारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥

सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे वहाँकी भूमि भरी हुई थी । रक्तकी धाराओंमें डूबी हुई थी । शूरवीरोंके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकों, हाथियोंके विचित्र झूलों, पताकाओं, चामरों, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बलों, इधर-उधर पड़े हुए उत्तम वस्त्रों, हाथी, घोड़े और मनुष्योंके चमकीले आभूषणों, केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान पैने और पानीदार खड्गों, भाँति-भाँतिके कटे हुए धनुषों, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कम्पन तथा अन्य नाना प्रकारके आयुधोंसे आच्छादित हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार गिराये हुए रक्त-स्नात निर्जीव और सजीव घोड़ों और घुड़सवारोंके कारण वह भूमि विषम एवं दुर्गम हो गयी थी ॥ २८ ॥

साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३१ ॥

अङ्कुश, महावत, कवच, आयुध और ध्वजाओंसहित बड़े-बड़े गजराज बाणोंद्वारा मथित होकर भहराये हुए पर्वतोंके समान जान पड़ते थे । जिन्होंने बड़े-बड़े गजराजोंको मार डाला था, वे श्रेष्ठ रथ घोड़े, सारथि और योद्धाओंसे रहित हो मथे गये सरोवरोंके समान चूर-चूर होकर पृथ्वीपर बिखरे पड़े थे । नाना प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे युक्त पैदल सैनिकोंके समूह भी उस युद्धमें मारे गये थे । इन सबके कारण वहाँकी भूमि अत्यन्त भयानक तथा भीरु पुरुषोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली हो गयी थी ॥ २९—३१ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाभवद् व्यथा ॥ ३२ ॥

चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् अभिमन्युको पृथ्वीपर पड़ा देख आपके पुत्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और पाण्डवोंकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठी ॥ ३२ ॥

अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

राजन् ! जो अभी युवावस्थाको प्राप्त नहीं हुआ था, उस बालक अभिमन्युके मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते उनकी सारी सेना भागने लगी ॥ ३३ ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

सुभद्राकुमारके धराशायी होनेपर अपनी सेनामें भगदड़ पड़ी देख अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपने पक्षके उन वीरोंसे यह वचन कहा—॥ ३४ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥

'यह शूरवीर अभिमन्यु जो प्राणोंपर खेल गया, परंतु युद्धमें पीठ न दिखा सका, निश्चय ही स्वर्गलोकमें गया है । तुम सब लोग धैर्य धारण करो । भयभीत न होओ । हम लोग रणक्षेत्रमें शत्रुओंको अवश्य जीतेंगे' ॥ ३५ ॥

इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन् दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥

महातेजस्वी और परम कान्तिमान् योद्धाओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने अपने दुखी सैनिकोंसे ऐसा कहकर उनके दुःखका निवारण किया ॥ ३६ ॥

युद्धे ह्याशीविषाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥

युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर शत्रुरूप राजकुमारोंको पहले मारकर पीछेसे अर्जुनकुमार अभिमन्यु स्वर्गलोकमें गया था ॥ ३७ ॥

हत्वा दश सहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

दस हजार रथियों और महारथी कोसलनरेश बृहद्बलको मारकर श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी अभिमन्यु निश्चय ही इन्द्रलोकमें गया है ॥ ३८ ॥

रथाश्वनरमातङ्गान् विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतां लोकाञ्शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ३९

रथ, घोड़े, पैदल और हाथियोंका सहस्रोंकी संख्यामें संहार करके भी वह युद्धसे तृप्त नहीं हुआ था । पुण्यकर्म करनेके कारण अभिमन्यु शोकके योग्य नहीं है । वह पुण्यात्माओंके पुण्योपार्जित सनातन लोकोंमें जा पहुँचा है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युवधविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तीसरे (तेरहवें) दिनके युद्धकी समाप्तिपर सेनाका शिबिरको प्रस्थान एवं रणभूमिका वर्णन

संजय उवाच

**वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः।
निवेशायाभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः॥ १॥**

संजय कहते हैं—राजन्! हमलोग शत्रुओंके उस प्रमुख वीरका वध करके उनके बाणोंसे पीड़ित हो संध्याके समय शिबिरमें विश्रामके लिये चले आये। उस समय हमलोगोंके शरीर रक्तसे भीग गये थे॥ १॥

**निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः॥ २॥**

महाराज! हम और शत्रुपक्षके लोग युद्धस्थलको देखते हुए धीरे-धीरे वहाँसे हट गये। पाण्डव-दलके लोग अत्यन्त शोकग्रस्त हो अचेत हो रहे थे॥ २॥

**ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः
शिवारुतैः संधिरवर्तताद्भुतः।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम्॥ ३॥**

उस समय जब सूर्य अस्ताचलपर पहुँचकर ढल रहे थे, कमलनिर्मित मुकुटके समान जान पड़ते थे। दिन और रात्रिकी संधिरूप वह अद्भुत संध्या सियारिनोंके भयंकर शब्दोंसे अमङ्गलमयी प्रतीत हो रही थी॥ ३॥

**वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां
विभूषणानां च समाक्षिपन् प्रभाः।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव
प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम्॥ ४॥**

सूर्यदेव श्रेष्ठ तलवार, शक्ति, ऋष्टि, वरूथ, ढाल और आभूषणोंकी प्रभाको छीनते तथा आकाश और पृथ्वीको समान अवस्थामें लाते हुए-से अपने प्रिय शरीर—अग्निमें प्रवेश कर रहे थे॥ ४॥

**महाभ्रकूटाचलशृङ्गसंनिभै-
र्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः।
स वैजयन्त्यङ्कुशवर्मयन्तृभि-
र्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः॥ ५॥**

महान् मेघोंके समुदाय तथा पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय बहुसंख्यक हाथी इस प्रकार पड़े थे, मानो वज्रसे मार गिराये गये हों। वैजयन्ती पताका, अङ्कुश, कवच और महावतोंसहित धराशायी किये गये उन गजराजोंकी लाशोंसे सारी धरती पट गयी थी, जिसके कारण वहाँ चलने-फिरनेका मार्ग बंद हो गया था॥ ५॥

**हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करै-
र्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः
पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप॥ ६॥**

नरेश्वर! शत्रुओंके द्वारा तहस-नहस किये गये विशाल नगरोंके समान बड़े-बड़े रथ चूर-चूर होकर गिरे थे। उनके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे तथा ध्वजा-पताकाएँ नष्ट कर दी गयी थीं। इसी प्रकार उनके सवार मरे पड़े थे, पैदल सैनिक तथा युद्धसम्बन्धी अन्य उपकरण चूर-चूर हो गये थे। इन सबके द्वारा उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी॥

**रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः
प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनै-
र्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना॥ ७॥**

रथों और अश्वोंके समूह सवारोंके साथ नष्ट हो गये थे। भिन्न-भिन्न प्रकारके भाण्ड और आभूषण छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे। मनुष्यों और पशुओंकी जिह्वा, दाँत, आँत और आँखें बाहर निकल आयी थीं। इन सबसे वहाँकी भूमि अत्यन्त घोर और विकराल दिखायी देती थी॥ ७॥

**प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा
विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा
क्षितावनाथा इव शेरते हताः॥ ८॥**

योद्धाओंके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये। हाथी, घोड़े तथा रथोंका अनुसरण करनेवाले पैदल मनुष्य अपने प्राण खोकर पड़े थे। जो राजा और राजकुमार बहुमूल्य शय्याओं तथा बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य थे, वे ही उस समय मारे जाकर अनाथकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे॥

**अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा
बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः
पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे॥ ९॥**

कुत्ते, सियार, कौए, बगले, गरुड़, भेड़िये, तेंदुए, रक्त पीनेवाले पक्षी, राक्षसोंके समुदाय तथा अत्यन्त भयंकर पिशाचगण उस रणभूमिमें बहुत प्रसन्न हो रहे थे॥ ९॥

**त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक्
तथैव मज्जाः पिशितानि चाश्नुवन्।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः॥ १०॥**

वे मृतकोंकी त्वचा विदीर्ण करके उनके वसा तथा रक्तको पी रहे थे, मज्जा और मांस खा रहे थे, चर्बियोंको काटकर चबा लेते थे तथा बहुत-से मृतकोंको इधर-उधर खींचते हुए वे हँसते और गीत गाते थे ॥ १० ॥

शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला
रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा
प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा
प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं
भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥

उस समय श्रेष्ठ योद्धाओंने रणभूमिमें रक्तकी नदी बहा दी, जो वैतरणीके समान दुष्कर एवं भयंकर प्रतीत होती थी । उसमें जलकी जगह रक्तकी ही धारा बहती थी । ढेर-के-ढेर शरीर उसमें बह रहे थे । उसमें तैरते हुए रथ नावके समान जान पड़ते थे । हाथियोंके शरीर वहाँ पर्वतकी चट्टानों-के समान व्याप्त हो रहे थे । मनुष्योंकी खोपड़ियाँ प्रस्तर-खण्डोंके समान और मांस कीचड़के समान जान पड़ते थे । वहाँ टूटे-फूटे पड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्रसमूह मालाओंके समान प्रतीत होते थे । वह अत्यन्त भयंकर नदी रणक्षेत्रके मध्यभागमें बहती और मृतकों तथा जीवितोंको भी बहा ले जाती थी ॥ ११-१२ ॥

पिबन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः
पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां क्षयङ्कराः
समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥

जिनकी ओर देखना भी कठिन था, ऐसे भयंकर पिशाचसमूह वहाँ खाते-पीते और गर्जना करते थे । समस्त प्राणियोंका विनाश करनेवाले वे पिशाच बहुत ही प्रसन्न थे । कुत्तों, सियारों और पक्षियोंको भी समानरूपसे भोजनसामग्री प्राप्त हुई थी ॥ १३ ॥

तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं
निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः
समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥

प्रदोषकालमें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाली वह युद्धभूमि बड़ी भयंकर दिखायी देती थी । वहाँ सब ओर नाचते हुए कबन्ध (धड़) व्याप्त हो रहे थे । यह सब देखते हुए उभय पक्षके योद्धाओंने वहाँसे धीरे-धीरे चलकर उस युद्धस्थलको त्याग दिया ॥ १४ ॥

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं
निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना
व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

उस समय लोगोंने देखा, इन्द्रके समान महाबली अभिमन्यु रणक्षेत्रमें गिरा दिया गया है । उसके बहुमूल्य आभूषण छिन्न-भिन्न होकर शरीरसे दूर जा पड़े हैं और वह यज्ञवेदीपर हविष्यरहित अग्निके समान निस्तेज हो गया है ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें तीसरे दिनके युद्धमें सेनाके शिबिरमें प्रस्थान करते समय समरभूमिका वर्णनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका विलाप

संजय उवाच

हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसंनाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महापराक्रमी रथयूथपति सुभद्राकुमार अभिमन्युके मारे जानेपर समस्त पाण्डव महारथी रथ और कवचका त्याग कर और धनुषको नीचे डालकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर उनके पास बैठ गये । उन सबका मन सुभद्राकुमार अभिमन्युमें ही लगा था और वे उसी युद्धका चिन्तन कर रहे थे ॥ १-२ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर अपने भाईके वीर पुत्र महारथी अभिमन्युके मारे जानेके कारण अत्यन्त दुखी हो विलाप करने लगे—॥ ३ ॥

(एष जित्वा कृपं शल्यं राजानं च सुयोधनम् ।
द्रोणं द्रौणिं महेष्वासं तथैवान्यान् महारथान् ॥)
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
(हत्वा शत्रुगणान् वीरानेष शेते निपातितः ।
कृतास्त्रान् युद्धकुशलान् महेष्वासान् महारथान् ॥
कुलशीलगुणैर्युक्ताञ्छूरान् विख्यातपौरुषान् ।

द्रोणेन विहितं व्यूहमभेद्यममरैरपि ॥
अदृष्टपूर्वमस्माभिः चक्रं चक्रायुधप्रियः ।)
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥

'अहो ! कृपाचार्य, शल्य, राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य, महाधनुर्धर अश्वत्थामा तथा अन्य महारथियोंको जीतकर, मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके निर्बाध सैन्यव्यूहको विनष्ट करके वीर शत्रुसमूहोंका संहार करनेके पश्चात् यह पुत्र अभिमन्यु मार गिराया गया और अब रणक्षेत्रमें सो रहा है ! जो अस्त्रविद्याके विद्वान्, युद्धकुशल, कुल-शील और गुणोंसे युक्त, शूरवीर तथा अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थे, उन महाधनुर्धर महारथियोंको परास्त करके देवताओंके लिये भी जिसका भेदन करना असम्भव है तथा हमने जिसे पहले कभी देखातक नहीं था, उस द्रोणनिर्मित चक्रव्यूहका भेदन करके चक्रधारी श्रीकृष्णका प्यारा भानजा वह अभिमन्यु उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश कर गया, जैसे सिंह गौओं-के झुंडमें घुस जाता है ॥ ४ ॥

(विक्रीडितं रणे तेन निघ्नता वै परान् वरान् ।)
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥

'उसने रणक्षेत्रमें प्रमुख-प्रमुख शत्रुवीरोंका वध करते हुए अद्भुत रणक्रीडा की थी। युद्धमें उसके सामने जानेपर शत्रुपक्षके अस्त्रविद्याविशारद युद्धदुर्मद और महान् धनुर्धर शूरवीर भी हतोत्साह हो भाग खड़े होते थे ॥ ५ ॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥
स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥

'जिस वीर अर्जुनकुमारने युद्धस्थलमें हमारे अत्यन्त शत्रु दुःशासनको सामने आनेपर शीघ्र ही अपने बाणोंसे अचेत करके भगा दिया, वही महासागरके समान दुस्तर द्रोण-सेना-को पार करके भी दुःशासनपुत्रके पास जाकर यमलोकमें पहुँच गया ॥ ६-७ ॥

कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युके मार दिये जानेपर अब मैं कुन्तीकुमार अर्जुनकी ओर आँख उठाकर कैसे देखूँगा ? अथवा अपने प्रियपुत्रको अब नहीं देख पानेवाली महाभागा सुभद्राके सामने कैसे जाऊँगा ? ॥ ८ ॥

किंस्विद् वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनंजयौ ॥ ९ ॥

'हाय ! हमलोग भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंके सामने किस प्रकार यह अनर्थपूर्ण, असंगत और अनुचित वृत्तान्त कह सकेंगे ॥ ९ ॥

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥

'मैंने ही अपने प्रिय कार्यकी इच्छा, विजयकी अभिलाषा रखकर सुभद्रा, श्रीकृष्ण और अर्जुनका यह अप्रिय कार्य किया है ॥ १० ॥

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥

'लोभी मनुष्य किसी कार्यके दोषको नहीं समझता । वह लोभ और मोहके वशीभूत होकर उसमें प्रवृत्त हो जाता है। मैंने मधुके समान मधुर लगनेवाले राज्यको पानेकी लालसा रखकर यह नहीं देखा कि इसमें ऐसे भयंकर पतनका भय है ॥ ११ ॥

यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥

'हाय ! जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण, वस्त्र पहननेमें आगे रखना चाहिये था, उसे हमलोगोंने युद्धमें आगे कर दिया ॥ १२ ॥

कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥

'वह तरुण कुमार अभी बालक था । युद्धकी कलामें पूरा प्रवीण नहीं हुआ था । फिर गहन वनमें फँसे हुए सुन्दर अश्वकी भाँति वह उस विषम संग्राममें कैसे सकुशल रह सकता था ? ॥ १३ ॥

नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनु शयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥

'यदि हमलोग अभिमन्युके साथ ही उस रणक्षेत्रमें शयन न कर सके तो अब क्रोधसे उत्तेजित हुए अर्जुनके शोकाकुल नेत्रोंसे हमें अवश्य दग्ध होना पड़ेगा ॥ १४ ॥

अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान् क्षमावान् रूपवान् बली ।
वपुष्मान् मानकृद् वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥
यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥ १८ ॥

'जो लोभरहित, बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, रूप-वान्, बलवान्, सुन्दर शरीरधारी, दूसरोंको मान देनेवाले, प्रीतिपात्र, वीर तथा सत्यपराक्रमी हैं, जिनके कर्मोंकी देवता-लोग भी प्रशंसा करते हैं, जिनके कर्म सबल एवं महान् हैं,

जिन पराक्रमी वीरने निवातकवचों तथा कालकेय नामक दैत्योंका विनाश किया था, जिन्होंने आँखोंकी पलक मारते-मारते हिरण्यपुरनिवासी इन्द्रशत्रु पौलोम नामक दानवोंका उनके गणोंसहित संहार कर डाला था तथा जो सामर्थ्यशाली अर्जुन अभयकी इच्छा रखनेवाले शत्रुओंको भी अभय-दान देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रकी भी हमलोग रक्षा नहीं कर सके ॥ १५-१८ ॥

भयं तु सुमहत् प्राप्तं धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात् क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥ १९ ॥

'अहो ! महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है; क्योंकि अपने पुत्रके वधसे कुपित हुए कुन्तीकुमार अर्जुन कौरवोंको सोख लेंगे—उनका मूलोच्छेद कर डालेंगे ॥ १९ ॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयमातुरः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥

'दुर्योधन नीच है । उसके सहायक भी ओछे स्वभावके हैं, अतः वह निश्चय ही (अर्जुनके हाथों) अपने पक्षका विनाश देखकर शोकसे व्याकुल हो जीवनका परित्याग कर देगा ॥ २० ॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं
न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं
निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

'जिसके बल और पुरुषार्थकी कहीं तुलना नहीं थी, देवेन्द्रकुमार अर्जुनके पुत्र इस अभिमन्युको रणक्षेत्रमें मारा गया देख अब मुझे विजय, राज्य, अमरत्व तथा देवलोककी प्राप्ति भी प्रसन्न नहीं कर सकती' ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें युधिष्ठिरप्रलापविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल २५ श्लोक हैं)

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विलाप करते हुए युधिष्ठिरके पास व्यासजीका आगमन और अकम्पन-नारद-संवादकी प्रस्तावना करते हुए मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसंग आरम्भ करना

संजय उवाच

अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार विलाप करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके पास वहाँ महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी आये ॥ १ ॥

अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥

उस समय युधिष्ठिरने उनकी यथायोग्य पूजा की और जब वे बैठ गये, तब भतीजेके वधसे शोकसंतप्त हो युधिष्ठिर उनसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥

'मुने ! बहुत-से अधर्मपरायण महाधनुर्धर महारथियोंने चारों ओरसे घेरकर रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए सुभद्राकुमार अभिमन्युको असहायावस्थामें मार डाला है ॥ ३ ॥

बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला अभिमन्यु अभी बालक था; बालोचित बुद्धिसे युक्त था । विशेषतः संग्राममें वह उपयुक्त साधनोंसे रहित होकर युद्ध कर रहा था ॥ ४ ॥

मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं संजनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन् सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥

'मैंने युद्धस्थलमें उससे कहा था कि तुम व्यूहमें हमारे प्रवेशके लिये द्वार बना दो । तब वह द्वार बनाकर भीतर प्रविष्ट हो गया और जब हमलोग उसी द्वारसे व्यूहमें प्रवेश करने लगे, उस समय सिंधुराज जयद्रथने हमें रोक दिया ॥

ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कृतं परैः ॥ ६ ॥

'युद्धजीवी क्षत्रियोंको अपने समान साधनसम्पन्न वीरके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनी चाहिये । शत्रुओंने जो अभिमन्युके साथ इस प्रकार युद्ध किया है, यह कदापि समान नहीं है ॥ ६ ॥

तेनास्मि भृशसंतप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

'इसीलिये मैं अत्यन्त संतप्त हूँ, शोकाश्रुओंसे मेरे नेत्र भरे हुए हैं । मैं बारंबार चिन्तामग्न होकर शान्ति नहीं पा रहा हूँ' ॥ ७ ॥

संजय उवाच

तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शोकसे व्याकुल-

चित्त होकर विलाप करते हुए राजा युधिष्ठिरसे भगवान् वेदव्यासने इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, परम बुद्धिमान्, भरतकुलभूषण युधिष्ठिर ! तुम्हारे-जैसे पुरुष संकट-के समय मोहित नहीं होते हैं ॥ ९ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून् हत्वा बहून् रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥

यह पुरुषोत्तम अभिमन्यु शूरवीर था । इसने रणक्षेत्रमें अबालोचित पराक्रम करके बहुत-से शत्रुओंको मारकर स्वर्ग-लोककी यात्रा की है ॥ १० ॥

अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान् मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥

भरतनन्दन युधिष्ठिर! यह विधाताका विधान है। इसका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता । मृत्यु देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंके भी प्राण हर लेती है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुने ! ये महाबली भूपालगण सेनाके मध्यमें मारे जाकर 'मृत' नाम धारण करके पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ १२ ॥

नागायुतबलाश्चान्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥

इनमेंसे कितने ही राजा दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे तथा कितनोंके वेग और बल वायुके समान थे । ये सब मनुष्य एक समान रूपवाले हैं, जो दूसरे मनुष्योंद्वारा युद्धमें मार डाले गये हैं ॥ १३ ॥

नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४ ॥

इन प्राणशक्तिसम्पन्न वीरोंका युद्धमें कहीं कोई वध करनेवाला मुझे नहीं दिखायी देता था; क्योंकि ये सबके सब पराक्रमसे सम्पन्न और तपोबलसे संयुक्त थे ॥ १४ ॥

जेतव्यमिति चान्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥

जिनके हृदयमें सदा एक-दूसरेको जीतनेकी अभिलाषा रहती थी, वे ही ये बुद्धिमान् नरेश आयु समाप्त होनेपर युद्ध-में मारे जाकर धरतीपर सो रहे हैं ॥ १५ ॥

मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥

अतः इनके विषयमें 'मृत' शब्द सार्थक हो रहा है । ये भयंकर पराक्रमी भूमिपाल प्रायः 'मर गये' कहे जाते हैं ॥ १६ ॥

निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशंगताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥

ये शूरवीर राजकुमार चेष्टा और अभिमानसे रहित हो शत्रुओंके अधीन हो गये थे । वे कुपित होकर बाणोंकी आगमें कूद पड़े थे ॥ १७ ॥

अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः केन मृत्युरिमाः प्रजाः ॥ १८ ॥
हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

मुझे संदेह होता है कि इन्हें 'मर गये' ऐसा क्यों कहा जाता है ? मृत्यु किसकी होती है ? किस निमित्तसे होती है ? तथा वह किसलिये इन प्रजाओं (प्राणियों) का अपहरण करती है ? देवतुल्य पितामह ! ये सब बातें आप मुझे बताइये॥

संजय उवाच

तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पूछते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे मुनिवर भगवान् व्यासने यह आश्वासन-जनक वचन कहा ॥ १९ ॥

व्यास उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥

व्यासजी बोले—नरेश्वर ! जानकार लोग इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया करते हैं । वह इतिहास पूर्वकालमें नारदजीने राजा अकम्पनसे कहा था ॥ २० ॥

स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥

राजेन्द्र ! राजा अकम्पनको भी अपने पुत्रकी मृत्युका बड़ा भारी शोक प्राप्त हुआ था, जो मेरे विचारमें सबसे अधिक असह्य दुःख है ॥ २१ ॥

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात् स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥

इसलिये मैं तुम्हें मृत्युकी उत्पत्तिका उत्तम वृत्तान्त बताऊँगा, उसे सुनकर तुम स्नेह-बन्धनके कारण होनेवाले दुःखसे छूट जाओगे ॥ २२ ॥

समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
पवित्रमरिसंघघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥

यह उपाख्यान समस्त पापराशिका नाश करनेवाला है ।

मैं इसका वर्णन करता हूँ, सुनो। यह धन और आयुको बढ़ानेवाला, शोकनाशक, पुष्टिवर्धक, पवित्र, शत्रुसमूहका निवारक और मङ्गलकारी कार्योंमें सबसे अधिक मङ्गलकारक है। जैसे वेदोंका स्वाध्याय पुण्यदायक होता है, उसी प्रकार यह उपाख्यान भी है ॥ २३-२४ ॥

श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥

महाराज! दीर्घायु पुत्र, राज्य और धन-सम्पत्ति चाहनेवाले श्रेष्ठ राजाओंको प्रतिदिन प्रातःकाल इस इतिहासका श्रवण करना चाहिये ॥ २५ ॥

पुरा कृतयुगे तात आसीद् राजा ह्यकम्पनः।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥

तात! प्राचीनकालकी बात है, सत्ययुगमें अकम्पन नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे युद्धमें शत्रुओंके वशमें पड़ गये ॥ २६ ॥

तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले।
श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥

राजाके एक पुत्र था, जिसका नाम था हरि। वह बलमें भगवान् नारायणके समान था। वह अस्त्रविद्यामें पारंगत, मेधावी, श्रीसम्पन्न तथा युद्धमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी था ॥

स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि।
व्यस्यन् बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥

वह रणक्षेत्रमें शत्रुओंद्वारा घिर जानेपर शत्रुपक्षके योद्धाओं और गजारोहियोंपर बारंबार सहस्रों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २८ ॥

स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर! वह शत्रुओंको संताप देनेवाला वीर राजकुमार संग्राममें दुष्कर पराक्रम दिखाकर अन्तमें शत्रुओंके हाथसे वहाँ सेनाके बीचमें मारा गया ॥ २९ ॥

स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचान्वितः।
शोचन्नहनि रात्रौ च नालभत् सुखमात्मनः ॥ ३० ॥

राजा अकम्पनको बड़ा शोक हुआ। वे पुत्रका अन्त्येष्टि संस्कार करके दिन-रात उसीके शोकमें मग्न रहने लगे। उनकी अन्तरात्माको (थोड़ा-सा भी) सुख नहीं मिला ॥ ३० ॥

तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम्।
आजगामाथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

राजा अकम्पनको अपने पुत्रकी मृत्युसे महान् शोक हो रहा है, यह जानकर देवर्षि नारद उनके समीप आये ॥ ३१ ॥

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम्।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत् तदा ॥ ३२ ॥

उस समय महाभाग राजा अकम्पनने देवर्षिप्रवर नारदजीको आया देख उनकी यथायोग्य पूजा करके उनसे अपने पुत्रकी मृत्युका वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥

तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥

राजाने क्रमशः शत्रुओंकी विजय और युद्धस्थलमें अपने पुत्रके मारे जानेका सब समाचार उनसे ठीक-ठीक कह सुनाया ॥

मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥

(वे बोले—) 'देवर्षे! मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुके समान तेजस्वी, महापराक्रमी और बलवान् था; परंतु युद्धमें बहुत-से शत्रुओंने मिलकर एक साथ पराक्रम करके उसे मार डाला है ॥ ३४ ॥

क एष मृत्युर्भगवन् किंवीर्यबलपौरुषः।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥ ३५ ॥

'भगवन्! यह मृत्यु क्या है? इसका वीर्य, बल और पौरुष कैसा है? बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महर्षे! मैं यह सब यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ' ॥ ३५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥

राजाकी यह बात सुनकर वर देनेमें समर्थ एवं प्रभावशाली नारदजीने यह पुत्रशोकनाशक उत्तम उपाख्यान कहना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

नारद उवाच

शृणु राजन् महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम्।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयापि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥

नारदजी बोले—पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु जिस प्रकार घटित हुई है, वह सब वृत्तान्त मैंने भी यथार्थरूपसे सुन लिया है। महाबाहु नरेश! अब मैं तुम्हारे सामने एक बहुत विस्तृत कथा आरम्भ करता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो ॥

प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव।
चिन्तयन् ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥

आदि सृष्टिके समय महातेजस्वी एवं शक्तिशाली पितामह ब्रह्माने जब प्रजावर्गकी सृष्टि की थी, उस समय संहारकी कोई व्यवस्था नहीं की थी, अतः इस सम्पूर्ण जगत्‌को प्राणियोंसे परिपूर्ण एवं मृत्युरहित देख प्राणियोंके संहारके लिये चिन्तित हो उठे। राजन्! पृथ्वीपते! बहुत सोचने-विचारनेपर भी ब्रह्माजीको प्राणियोंके संहारका कोई उपाय नहीं ज्ञात हो सका ॥ ३८-३९ ॥



रुद्रदेवका ब्रह्माजीसे उनके क्रोधकी शान्तिके लिये वर माँगना

तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥

महाराज ! उस समय क्रोधवश ब्रह्माजीके श्रवण-नेत्र आदि इन्द्रियोंसे अग्नि प्रकट हो गयी। वह अग्नि इस जगत्को दग्ध करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओं (कोणों) में फैल गयी ॥ ४० ॥

ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम्।
चराचरं जगत् सर्वं ददाह भगवान् प्रभुः ॥ ४१ ॥
ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर आकाश और पृथ्वीमें सब ओर आगकी प्रचण्ड लपटें व्याप्त हो गयीं। दाह करनेमें समर्थ एवं अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव महान् क्रोधके वेगसे सबको त्रस्त-से करते हुए सम्पूर्ण चराचर जगत्को दग्ध करने लगे। इससे बहुत-से स्थावर-जंगम प्राणी नष्ट हो गये॥

ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् राक्षसोंके स्वामी जटाधारी दुःखहारी स्थाणु नामधारी भगवान् रुद्र परमेष्ठी भगवान् ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥

तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया।
अब्रवीत् परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥

प्रजावर्गके हितकी इच्छासे भगवान् रुद्रके आनेपर परमदेव महामुनि ब्रह्माजी अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए-से इस प्रकार बोले—॥ ४४ ॥

किं कुर्मः कामं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक।
करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५ ॥

'अपने अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करने योग्य पुत्र ! तुम मेरे मानसिक संकल्पसे उत्पन्न हुए हो। मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ ? स्थाणो ! तुम जो कुछ चाहते हो, बतलाओ। मैं तुम्हारा सम्पूर्ण प्रिय कार्य करूँगा' ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शंकर और ब्रह्माका संवाद, मृत्युकी उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजाके संहारका कार्य सौंपा जाना

स्थाणुरुवाच

प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥

स्थाणु (रुद्रदेव) ने कहा—प्रभो ! आपने प्रजाकी सृष्टिके लिये स्वयं ही यत्न किया है। आपने ही नाना प्रकारके प्राणिसमुदायकी सृष्टि एवं वृद्धि की है ॥ १ ॥

तास्तवेह पुनः क्रोधात् प्रजा दह्यन्ति सर्वशः।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन् प्रभो ॥ २ ॥

आपकी वे ही सारी प्रजाएँ पुनः आपके ही क्रोधसे यहाँ दग्ध हो रही हैं। इससे उनके प्रति मेरे हृदयमें करुणा भर आयी है। अतः भगवन् ! प्रभो ! आप उन प्रजाओंपर कृपादृष्टि करके प्रसन्न होइये ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—रुद्र ! मेरी इच्छा यह नहीं है कि इस प्रकार इस जगत्का संहार हो। वसुधाके हितके लिये ही मेरे मनमें क्रोधका आवेश हुआ था ॥ ३ ॥

इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचूचुदत्।
संहारार्थं महादेव भारेणाभिहता सती ॥ ४ ॥

महादेव ! इस पृथ्वीदेवीने भारसे पीड़ित होकर मुझे जगत्के संहारके लिये प्रेरित किया था। यह सती-साध्वी देवी महान् भारसे दबी हुई थी ॥ ४ ॥

ततोऽहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

मैंने अनेक प्रकारसे इस अनन्त जगत्के संहारके उपायपर विचार किया; परंतु मुझे कोई उपाय सूझ न पड़ा। इसीलिये मुझमें क्रोधका आवेश हो गया ॥ ५ ॥

रुद्र उवाच

संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जंगमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥

रुद्रने कहा—वसुधाके स्वामी पितामह ! आप रोष न कीजिये। जगत्का संहार बंद करनेके लिये प्रसन्न होइये। इन स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका विनाश न कीजिये ॥

तव प्रसादाद् भगवन्निदं वर्तेत् त्रिधा जगत्।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥

भगवन् ! आपकी कृपासे यह जगत् भूत, भविष्य और वर्तमान—तीन रूपोंमें विभक्त हो जाय ॥ ७ ॥

भगवन् क्रोधसंदीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत्।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥

प्रभो ! आपने क्रोधसे प्रज्वलित होकर क्रोधपूर्वक जिस

अग्निकी सृष्टि की है, वह पर्वत-शिखरों, वृक्षों और सरिताओं-को दग्ध कर रही है ॥ ८ ॥

पल्वलानि च सर्वाणि सर्वांश्चैव तृणोलपान्।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥
तदेतद् भस्मसाद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्याद् वरो मम ॥ १०॥

यह समस्त छोटे-छोटे जलाशयों, सब प्रकारके तृण और लताओं तथा स्थावर और जङ्गम जगत्‌को सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर रही है। इस प्रकार यह सारा चराचर जगत् जलकर भस्म हो गया। भगवन्! आप प्रसन्न होइये। आपके मनमें रोष न हो, यही मेरे लिये आपकी ओरसे वर प्राप्त हो।९-१०।

सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथंचन।
तस्मान्निवर्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥

देव! आपके रचे हुए समस्त प्राणी किसी-न-किसी रूप-में नष्ट होते चले जा रहे हैं; अतः आपका यह तेजस्वरूप क्रोध जगत्‌के संहारसे निवृत्त हो आपमें ही विलीन हो जाय॥

तत् पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२ ॥

प्रभो! आप प्रजावर्गके अत्यन्त हितकी इच्छासे इनकी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे देखिये, जिससे ये समस्त प्राणी नष्ट होनेसे बच जायँ, वैसा कीजिये ॥ १२ ॥

अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥१३॥

संतानोंका नाश हो जानेसे इस जगत्‌के सम्पूर्ण प्राणियों-का अभाव न हो जाय। आदिदेव! आपने सम्पूर्ण लोकोंमें मुझे लोकस्रष्टाके पदपर नियुक्त किया है ॥ १३ ॥

मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम्।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥१४॥

जगन्नाथ! यह चराचर जगत् नष्ट न हो, इसीलिये सदा कृपा करनेको उद्यत रहनेवाले प्रभुके सामने मैं ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

नारद उवाच

श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे।
तेजः संधारयामास पुनरेवान्तरात्मनि ॥१५॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! प्रजाके हितके लिये महादेवका यह वचन सुनकर भगवान् ब्रह्माने पुनः अपनी अन्तरात्मामें ही उस तेज (क्रोध) को धारण कर लिया ॥

ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥१६॥

तब विश्ववन्दित भगवान् ब्रह्माने उस अग्निका उपसंहार करके मनुष्योंके लिये प्रवृत्ति (कर्म) और निवृत्ति (ज्ञान) मार्गोंका उपदेश दिया ॥ १६ ॥

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥१७॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥१८॥

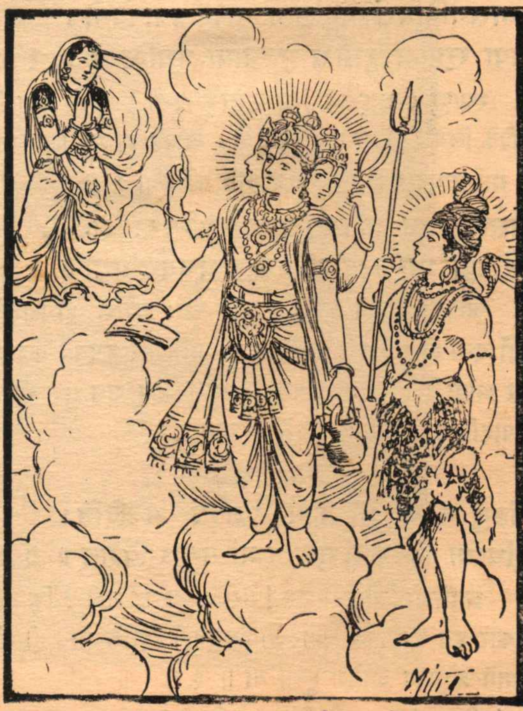
उस क्रोधाग्निका उपसंहार करते समय महात्मा ब्रह्माजी-की सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे एक नारी प्रकट हुई, जो काले और लाल रंगकी थी। उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र पीले और लाल रंगके थे। राजेन्द्र! वह तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे सुशोभित थी और उसके सभी आभूषण तप्त सुवर्णके बने हुए थे ॥ १७-१८ ॥

सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता।
स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥१९॥

वह उनकी इन्द्रियोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें खड़ी हुई और उन दोनों देवताओं एवं जगदीश्वरोंकी ओर देख-कर मन्द-मन्द मुसकराने लगी ॥ १९ ॥

तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः।
(उक्तवान् मधुरं वाक्यं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः।)
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥२०॥

महीपाल! उस समय सम्पूर्ण लोकोंके आदि और अन्तके स्वामी ब्रह्माजीने उस नारीको अपने पास बुलाकर उसे बारंबार सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें 'मृत्यो' (हे मृत्यु) कह करके पुकारा और कहा—'तू इन समस्त प्रजाओंका संहार कर ॥ २० ॥



त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम।
तस्मात् संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥२१॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।

'देवि ! तू संहारबुद्धिसे मेरे रोषद्वारा प्रकट हुई है, इसलिये मूर्ख और पण्डित सभी प्रजाओंका संहार करती रह, मेरी आज्ञासे तुझे यह कार्य करना होगा। इससे तू कल्याण प्राप्त करेगी' ॥ २१½ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥२२॥
दध्यौ चात्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम्।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह मृत्युनामवाली कमललोचना अबला अत्यन्त चिन्तामग्न हो गयी और फूट-फूटकर रोने लगी ॥ २२½ ॥

पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाप्यनुनयत् तदा ॥२३॥

पितामह ब्रह्माने उसके उन आँसुओंको समस्त प्राणियोंके हितके लिये अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और उस नारीको भी अनुनयसे प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युवर्णनविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २३½ श्लोक हैं)

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृत्युकी घोर तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उसे वरकी प्राप्ति तथा नारद-अकम्पन-संवादका उपसंहार

नारद उवाच

विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता पुनः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वह अबला अपने भीतर ही उस दुःखको दबाकर झुकायी हुई लताके समान विनम्र हो हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे बोली ॥ १ ॥

मृत्युरुवाच

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर।
क्रूरं कर्माहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥

मृत्युने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रजापते ! आपने मुझे ऐसी नारीके रूपमें क्यों उत्पन्न किया ? मैं जान-बूझकर वही क्रूरतापूर्ण अहितकर कर्म कैसे करूँ ? ॥ २ ॥

बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन् प्रभो।
प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च भ्रातॄन् मातॄः पितॄन् पतीन्॥३॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो बिभेम्यहम्।

भगवन् ! मैं पापसे डरती हूँ। प्रभो ! मुझपर प्रसन्न होइये। जब मैं लोगोंके प्यारे पुत्रों, मित्रों, भाइयों, माताओं, पिताओं तथा पतियोंको मारने लगूँगी, देव ! उस समय उनके सम्बन्धी इन लोगोंके मेरे द्वारा मारे जानेपर सदा मेरा अनिष्ट-चिन्तन करेंगे। अतः मैं इन सबसे बहुत डरती हूँ ॥ ३½ ॥

कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥
तेभ्योऽहं भगवन् भीता शरणं त्वाहमागता।

भगवन् ! रोते हुए दीन-दुखी प्राणियोंके नेत्रोंसे जो आँसुओंकी बूँदें गिरती हैं, उनसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ ॥ ४½ ॥

यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोद्ग्रनखेन च।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥

देव ! सुरश्रेष्ठ ! लोकपितामह ! मैं शरीर और मस्तकको झुकाकर, हाथ जोड़कर विनीतभावसे आपकी शरणागत होकर केवल इसी अभिलाषाकी पूर्ति चाहती हूँ कि मुझे यमराजके भवनमें न जाना पड़े ॥ ५-६ ॥

इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७ ॥

प्रजेश्वर ! मैं आपकी कृपासे तपस्या करना चाहती हूँ। देव ! भगवन् ! प्रभो ! आप मुझे यही वर प्रदान करें ॥

त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम्।
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८ ॥

आपकी आज्ञा लेकर मैं उत्तम धेनुकाश्रमको चली जाऊँगी और वहाँ आपकी ही आराधनामें तत्पर रहकर कठोर तपस्या करूँगी ॥ ८ ॥

न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान् प्राणभृतां प्रियान्।
हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥

देवेश्वर ! मैं रोते-विलखते प्राणियोंके प्यारे प्राणोंका अपहरण नहीं कर सकूँगी, आप इस अधर्मसे मुझे बचावें ॥

ब्रह्मोवाच

मृत्यो संकल्पितासि त्वं प्रजासंहारहेतुना।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥१०॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! प्रजाके संहारके लिये ही मेरे द्वारा संकल्पपूर्वक तेरी सृष्टि की गयी है। जा, तू सारी प्रजाका संहार कर। तेरे मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १० ॥

भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।
भव त्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥११॥

यह बात इसी प्रकार होनेवाली है। इसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। तू लोकमें निन्दित न हो, मेरी आज्ञाका पालन कर ॥ ११ ॥

नारद उवाच

एवमुक्ताभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥१२॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उन्हींकी ओर मुँह करके हाथ जोड़े खड़ी हुई वह नारी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई; परंतु उसने प्रजाके हितकी कामनासे संहार-कार्यमें मन नहीं लगाया ॥ १२ ॥

तूष्णीमासीत् तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चागमत् क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥१३॥

तब प्रजेश्वरोंके भी स्वामी भगवान् ब्रह्मा चुप हो गये। फिर वे भगवान् प्रजापति तुरंत अपने आप ही प्रसन्नताको प्राप्त हुए॥

स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन् यथापूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना ॥१४॥

देवेश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकोंकी ओर देखकर मुसकराये । उन्होंने क्रोधशून्य होकर देखा, इसलिये वे सभी लोक पहले-के समान हरे-भरे हो गये ॥ १४ ॥

निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्यापि जगामाथ समीपात् तस्य धीमतः ॥१५॥

उन अपराजित भगवान् ब्रह्माका रोष निवृत्त हो जानेपर वह कन्या भी उन परम बुद्धिमान् देवेश्वरके निकटसे अन्यत्र चली गयी ॥ १५ ॥

अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥१६॥

राजेन्द्र ! उस समय प्रजाका संहार करनेके विषयमें कोई प्रतिज्ञा न करके मृत्यु वहाँसे हट गयी और बड़ी उतावली-के साथ धेनुकाश्रममें जा पहुँची ॥ १६ ॥

सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥१७॥
पञ्च चाब्दानि कारुण्यात् प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सा ॥१८॥

उसने वहाँ अत्यन्त कठोर और उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया । उस समय वह दयावश प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छा-से अपनी इन्द्रियोंको प्रिय विषयोंसे हटाकर इक्कीस पद्म वर्षोंतक एक पैरपर खड़ी रही ॥ १७-१८ ॥

ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥१९॥

नरेश्वर ! तदनन्तर पुनः अन्य इक्कीस पद्म वर्षोंतक वह एक पैरसे खड़ी होकर तपस्या करती रही ॥ १९ ॥

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥२०॥
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च सानयत् ।

तात ! इसके बाद दस हजार पद्म वर्षोंतक वह मृगोंके साथ विचरती रही, फिर शीतल एवं निर्मल जलवाली पुण्य-मयी नन्दानदीमें जाकर उसके जलमें उसने आठ हजार वर्ष व्यतीत किये ॥ २०½ ॥

धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥२१॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥२२॥

इस प्रकार नन्दानदीमें नियमोंके पालनपूर्वक रहकर वह निष्पाप हो गयी । तदनन्तर व्रत-नियमोंसे सम्पन्न हो मृत्यु पहले पुण्यमयी कौशिकी नदीके तटपर गयी और वहाँ वायु तथा जलका आहार करती हुई पुनः कठोर नियमोंका पालन करने लगी ॥ २१-२२ ॥

पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद् देहमात्मनः ॥२३॥

उस पवित्र कन्याने पञ्चगङ्गामें तथा वेतसवनमें बहुत-सी भिन्न-भिन्न तपस्याओंद्वारा अपने शरीरको अत्यन्त दुर्बल कर दिया ॥ २३ ॥

ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥२४॥

इसके बाद वह गङ्गाजीके तट और प्रमुख तीर्थ महामेरुके शिखरपर जाकर प्राणायाममें तत्पर हो प्रस्तर-मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट भावसे बैठी रही ॥ २४ ॥

पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् ।
तत्राङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥२५॥

फिर हिमालयके शिखरपर जहाँ पहले देवताओंने यज्ञ किया था, वहाँ वह परम शुभलक्षणा कन्या एक निखर्व वर्षोंतक अँगूठेके बलपर खड़ी रही ॥ २५ ॥

पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत् स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥२६॥

तदनन्तर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिषारण्य तथा मलयाचलके तीर्थोंमें रहकर मनको प्रिय लगनेवाले नियमोंद्वारा उसने अपने शरीरको अत्यन्त क्षीण कर दिया ॥ २६ ॥

अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥२७॥

दूसरे किसी देवतामें मन न लगाकर वह सदा पितामह ब्रह्मामें ही सुदृढ़ भक्तिभाव रखती थी । उस कन्याने अपने धर्माचरणसे पितामहको संतुष्ट कर लिया ॥ २७ ॥

ततस्तामब्रवीत् प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥२८॥

राजन् ! तब लोकोंकी उत्पत्तिके कारणभूत अविनाशी ब्रह्मा उस समय मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो सौम्य हृदयसे प्रीतिपूर्वक उससे बोले—॥ २८ ॥

मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह।
ततोऽब्रवीत् पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥२९॥

'मृत्यो ! तू किसलिये इस प्रकार अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही है ?' तब मृत्युने भगवान् पितामहसे फिर इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोशतीस्तथा।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥३०॥

'देव ! प्रभो ! सर्वेश्वर ! मैं आपसे यही वर पाना चाहती हूँ कि मुझे रोती-चिल्लाती हुई स्वस्थ प्रजाओंका वध न करना पड़े॥

अधर्मभयभीतास्मि ततोऽहं तप आस्थिता।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाभयमव्यय ॥३१॥

'महाभाग ! मैं अधर्मके भयसे बहुत डरती हूँ, इसीलिये तपस्यामें लगी हुई हूँ। अविनाशी परमेश्वर ! मुझ भयभीत अबलाको अभय-दान दीजिये ॥ ३१ ॥

आर्ता चानागसी नारी याचामि भव मे गतिः।
तामब्रवीत् ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥३२॥

'नाथ ! मैं एक निरपराध नारी हूँ और आपके सामने आर्तभावसे याचना करती हूँ, आप मेरे आश्रयदाता हों।' तब भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता भगवान् ब्रह्माने उससे कहा—॥ ३२ ॥

अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथंचन ॥३३॥

'मृत्यो ! इन प्रजाओंका संहार करनेसे तुझे अधर्म नहीं होगा। भद्रे ! मेरी कही हुई बात किसी प्रकार झूठी नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः।
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥३४॥

'इसलिये कल्याणि ! तू चार श्रेणियोंमें विभाजित समस्त प्राणियोंका संहार कर। सनातन धर्म तुझे सब प्रकारसे पवित्र बनाये रखेगा ॥ ३४ ॥

लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥३५॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि।

'लोकपाल, यम तथा नाना प्रकारकी व्याधियाँ तेरी सहायता करेंगी। मैं और सम्पूर्ण देवता तुझे पुनः वरदान देंगे, जिससे तू पापमुक्त हो अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी' ॥ ३५½ ॥

सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥३६॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर मृत्यु हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न करके उस समय पुनः यह वचन बोली—॥ ३६½ ॥

यद्येवमेतत् कर्तव्यं मया न स्याद् विना प्रभो ॥३७॥
तवाज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत् ते वक्ष्यामि तच्छृणु।

'प्रभो ! यदि इस प्रकार यह कार्य मेरे बिना नहीं हो सकता तो आपकी आज्ञा मैंने शिरोधार्य कर ली है, परंतु इसके विषयमें मैं आपसे जो कुछ कहती हूँ, उसे (ध्यान देकर) सुनिये ॥ ३७½ ॥

लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः।

'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक दूसरेके प्रति कही हुई कठोर वाणी—ये विभिन्न दोष ही देहधारियोंकी देहका भेदन करें' ॥ ३८½ ॥

ब्रह्मोवाच

तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः।
अधर्मस्ते न भविता नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥३९॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! ऐसा ही होगा। तू उत्तम रीतिसे प्राणियोंका संहार कर। शुभे ! इससे तुझे पाप नहीं लगेगा और मैं भी तेरा अनिष्ट-चिन्तन नहीं करूँगा ॥ ३९ ॥

यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममासं-
स्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः।
ते मारयिष्यन्ति नरान् गतासून्
नाधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥

तेरे आँसुओंकी बूँदें, जिन्हें मैंने हाथमें ले लिया था, प्राणियोंके अपने ही शरीरोंसे उत्पन्न हुई व्याधियाँ बनकर गतायु प्राणियोंका नाश करेंगी। तुझे अधर्मकी प्राप्ति नहीं होगी; इसलिये तू भय न कर ॥ ४० ॥

नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै
त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री
तस्मात् प्राणान् सर्वथेमान् नियच्छ ॥४१॥

निश्चय ही, तुझे पाप नहीं लगेगा। तू प्राणियोंका धर्म और उस धर्मकी स्वामिनी होगी। अतः सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर इन समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण कर ॥ ४१ ॥

सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ
संत्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान्।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो
मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥

काम और क्रोधका परित्याग करके इस जगत्के समस्त प्राणियोंके प्राणोंका संहार कर। ऐसा करनेसे तुझे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा ॥ ४२ ॥

तेनात्मानं पावयस्वात्मना त्वं
पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात्।
तस्मात् कामं रोषमप्यागतं त्वं
संत्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥ ४३॥

तू धर्माचरणद्वारा स्वयं ही अपने आपको पवित्र कर। असत्यका आश्रय लेनेसे प्राणी स्वयं अपने आपको पाप-पङ्कमें डुबो लेंगे। इसलिये अपने मनमें आये हुए काम और क्रोधका त्याग करके तू समस्त जीवोंका संहार कर॥ ४३॥

नारद उवाच

सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशा-
च्छापाद् भीता बाढमित्यब्रवीत् तम्।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वह मृत्यु नामवाली नारी ब्रह्माजीके उस उपदेशसे और विशेषतः उनके शापके भयसे भीत होकर उनसे बोली—'बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा स्वीकार है'। वही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्याग करके अनासक्त भावसे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है॥ ४४॥

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्॥ ४५॥

यही प्राणियोंकी मृत्यु है, इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। व्याधि नाम है रोगका, जिससे प्राणी रुग्ण होता है (उसका स्वास्थ्य भंग होता है)। आयु समाप्त होनेपर सभी प्राणियोंकी मृत्यु इसी प्रकार होती है। अतः राजन्! तुम व्यर्थ शोक न करो॥ ४५॥

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह ॥ ४६ ॥

आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार सभी प्राणी देवलोकमें जाकर वहाँ देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्म-देवता मनुष्योंकी भाँति भोगोंकी समाप्ति होनेपर पुनः इस लोकमें लौट आते हैं॥ ४६॥

वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ।
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७॥

भयंकर शब्द करनेवाला महान् बलशाली भयानक प्राणवायु प्राणियोंके शरीरोंका ही भेदन करता है (चेतन आत्माका नहीं, क्योंकि) वह सर्वव्यापी, उग्र प्रभावशाली और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता॥ ४७॥

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टा-
स्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह।
स्वर्गे प्राप्तो मोदते ते तनूजो
नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥

राजसिंह! सम्पूर्ण देवता भी मर्त्य (मरणधर्मा) नामसे विभूषित हैं, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक न करो। तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है और नित्य रमणीय वीर-लोकोंमें रहकर आनन्दका अनुभव करता है॥ ४८॥

त्यक्त्वा दुःखं संगतः पुण्यकृद्भि-
रेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम्।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥

वह दुःखका परित्याग करके पुण्यात्मा पुरुषोंसे जा मिला है। प्राणियोंके लिये यह मृत्यु भगवान्की ही दी हुई है; जो समय आनेपर यथोचित रूपसे (प्रजाजनोंका) संहार करती है। प्रजावर्गके प्राण लेनेवाली इस मृत्युको स्वयं ब्रह्माजीने ही रचा है॥ ४९॥

आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।
तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा
पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥

सब प्राणी स्वयं ही अपने आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है। अतः धीर पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान समझकर मरे हुए प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टिको ही मृत्युके वशीभूत जानकर तुम अपने पुत्रके मर जानेसे प्राप्त होनेवाले शोकका शीघ्र परित्याग कर दो॥ ५०॥

द्वैपायन उवाच

एतच्छ्रुत्वार्थवद् वाक्यं नारदेन प्रकाशितम्।
उवाचाकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नारदजीकी कही हुई यह अर्थभरी बात सुनकर राजा अकम्पन अपने मित्र नारदसे इस प्रकार बोले—॥ ५१॥

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

'भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! आपके मुँहसे यह इतिहास सुनकर मेरा शोक दूर हो गया। मैं प्रसन्न और कृतार्थ हो गया हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥

राजा अकम्पनके इस प्रकार कहनेपर ऋषियोंमें श्रेष्ठतम अमितात्मा देवर्षि नारद शीघ्र ही नन्दन वनको चले गये ॥

पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥

जो इस इतिहासको सदा सुनता और सुनाता है, उसके लिये यह पुण्य, यश, स्वर्ग, धन तथा आयु प्रदान करनेवाला है ॥ ५४ ॥

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिर।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यैः स्वर्गलोकं महारथः।

युधिष्ठिर! उस समय महारथी महापराक्रमी राजा अकम्पन इस उत्तम अर्थको प्रकाशित करनेवाले वृत्तान्तको सुनकर तथा क्षत्रियधर्म एवं शूरवीरोंकी परम गतिके विषयमें जानकर यथासमय स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ५५½ ॥

अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः।
विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ॥ ५७ ॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु पूर्वजन्ममें चन्द्रमाका पुत्र था, वह महारथी वीर समराङ्गणमें समस्त धनुर्धरोंके सामने शत्रुओंका वध करके खड्ग, शक्ति, गदा और धनुषद्वारा सम्मुख युद्ध करता हुआ मारा गया है तथा दुःखरहित हो पुनः चन्द्रलोकमें ही चला गया है ॥ ५६–५७ ॥

तस्मात् परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव।
अप्रमत्तः सुसंनद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

अतः पाण्डुनन्दन! तुम भाइयोंसहित उत्तम धैर्य धारण करके प्रमाद छोड़कर भलीभाँति कवच आदिसे सुसज्जित हो पुनः शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जाओ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युप्रजापतिसंवादविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

षोडशराजकीयोपाख्यानका आरम्भ, नारदजीकी कृपासे राजा सृञ्जयको पुत्रकी प्राप्ति, दस्युओंद्वारा उसका वध तथा पुत्रशोकसंतप्त सृञ्जयको नारदजीका मरुत्तका चरित्र सुनाना

संजय उवाच

श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मृत्युकी उत्पत्ति और उसके अनुपम कर्म सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने पुनः व्यासजीको प्रसन्न करके उनसे यह बात कही ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! इन्द्रके समान पराक्रमी, श्रेष्ठ, पुण्यकर्मा, निष्पाप तथा सत्यवादी राजर्षिगण अपने योग्य उत्तम स्थान (लोक) में निवास करते हैं ॥ २ ॥

भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥

अतः आप पुनः उन प्राचीन राजर्षियोंके सत्कर्मोंका बोध करानेवाले अपने यथार्थ वचनोंद्वारा मेरा सौभाग्य बढ़ाइये और मुझे आश्वासन दीजिये ॥ ३ ॥

कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

पूर्वकालके किन-किन महामनस्वी पुण्यात्मा राजर्षियोंने यज्ञोंमें कितनी-कितनी दक्षिणाएँ दी थीं। यह सब आप मुझे बताइये ॥ ४ ॥

व्यास उवाच

शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा—राजन्! राजा शैब्यके सृंजय नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था। उसके पर्वत और नारद—ये दो ऋषि मित्र थे ॥ ५ ॥

तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया।
विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥

एक दिन वे दोनों महर्षि सृंजयसे मिलनेके लिये उसके घर पधारे। उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे दोनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ६ ॥

तं कदाचित् सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता।
दुहिताभ्यागमत् कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥

एक समय उन दोनों ऋषियोंके साथ राजा सृंजय सुखपूर्वक बैठे थे। उसी समय पवित्र मुसकानवाली परम सुन्दरी सृंजयकी कुमारी पुत्री वहाँ आयी ॥ ७ ॥

तयाभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद् यथाविधि।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥

आकर उसने राजाको प्रणाम किया। राजाने उसके अनुरूप अभीष्ट आशीर्वाद देकर अपने पार्श्वभागमें खड़ी हुई उस कन्याका विधिपूर्वक अभिनन्दन किया ॥ ८ ॥

तां निरीक्ष्याब्रवीद् वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥

तब महर्षि पर्वतने उस कन्याकी ओर देखकर हँसते हुए-से कहा—'राजन्! यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्मानित चञ्चल कटाक्षवाली कन्या किसकी पुत्री है ? ॥ ९ ॥

उताहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम्।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥

'अहो! यह सूर्यकी प्रभा है या अग्निदेवकी शिखा है अथवा श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि या चन्द्रमाकी प्रभा है ?' ॥ १० ॥

एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत्।
ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥

इस प्रकार पूछते हुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृंजयने कहा—'भगवन्! यह मेरी कन्या है, जो मुझसे वर प्राप्त करना चाहती है' ॥ ११ ॥

नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥

इसी समय नारदजी राजासे बोले—'नरेश्वर! यदि तुम परम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेके लिये मुझे दे दो' ॥ १२ ॥

ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम्।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत ॥ १३ ॥

तब सृंजयने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा—'दे दूँगा'। यह सुनकर पर्वत अत्यन्त कुपित हो नारदजीसे बोले—॥ १३ ॥

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि।
यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥

'ब्रह्मन्! मैंने मन-ही-मन पहले ही जिसका वरण कर लिया था, उसीका तुमने वरण किया है। अतः तुमने मेरी मनोनीत पत्नीको वर लिया है, इसलिये अब तुम इच्छानुसार स्वर्गमें नहीं जा सकते' ॥ १४ ॥

एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥

उनके ऐसा कहनेपर नारदजीने उन्हें यह उत्तर दिया—'मनसे संकल्प करके, वाणीद्वारा प्रतिज्ञा करके, बुद्धिके द्वारा पूर्ण निश्चयके साथ, परस्पर सम्भाषणपूर्वक तथा संकल्पका जल हाथमें लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वरके द्वारा जो कन्याका पाणिग्रहण होता है और वैदिक मन्त्रके पाठ किये जाते हैं, यही विधि-विधान कन्या-परिग्रहके साधकरूपसे प्रसिद्ध है; परंतु इतनेसे ही पाणिग्रहणकी पूर्णताका निश्चय नहीं होता है। उसकी पूर्ण निष्ठा तो सप्तपदी ही मानी गयी है ॥ १५-१६ ॥

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि।
तस्मात् त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥

'अतः इस कन्याके ऊपर पतिरूपसे तुम्हारा अधिकार नहीं हुआ है—ऐसी अवस्थामें भी तुमने मुझे शाप दे दिया है, इसलिये तुम भी मेरे बिना स्वर्ग नहीं जा सकोगे' ॥ १७ ॥

अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः।

इस प्रकार एक दूसरेको शाप देकर वे दोनों उस समय वहीं ठहर गये। इधर राजा सृंजयने पुत्रकी इच्छासे पवित्र हो पूरी शक्ति लगाकर बड़े यत्नसे भोजन, पीने योग्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंकी आराधना की ॥ १८½ ॥

तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २० ॥

एक दिन राजापर प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र देनेकी इच्छावाले सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न रहनेवाले तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् थे, एक साथ नारदजीसे बोले—'देवर्षे! आप इन राजा सृंजयको अभीष्ट पुत्र प्रदान कीजिये' ॥ १९-२० ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत्।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर नारदजीने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। फिर वे सृंजयसे इस प्रकार बोले—'राजर्षे! ये ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर तुम्हारे लिये अभीष्ट पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं ॥ २१ ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम्।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिंदमम्।

यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥
(सर्वं भवेत् प्रसादाद् वै तादृशं तनयं वृणे ।

'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें जैसा पुत्र अभीष्ट हो, उसके लिये वर माँगो'। नारदजीके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर उनसे एक सद्गुणसम्पन्न, यशस्वी, कीर्तिमान्, तेजस्वी तथा शत्रुदमन पुत्र माँगा। वह बोला—'मुने! मैं ऐसे पुत्रकी याचना करता हूँ, जिसका मल, मूत्र, थूक और पसीना सब कुछ आपके कृपाप्रसादसे सुवर्णमय हो जाय'॥

व्यास उवाच

तथा भविष्यतीत्युक्ते जज्ञे तस्येप्सितः सुतः ॥
काञ्चनस्याकरः श्रीमान् प्रसादाच्च सुकाङ्क्षितः।
अपतत् तस्य नेत्राभ्यां रुदतस्तस्य नेत्रजम् ॥)
सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाभवत् कृतम्।
तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तब मुनिने कहा—'ऐसा ही होगा'। उनके ऐसा कहनेपर राजाको मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त हुआ। मुनिके प्रसादसे वह शोभाशाली पुत्र सुवर्णकी खान निकला। राजा वैसा ही पुत्र चाहते थे। रोते समय उसके नेत्रोंसे सुवर्णमय आँसू गिरता था। इसीलिये उस पुत्रका नाम सुवर्णष्ठीवी प्रसिद्ध हो गया। वरदानके प्रभावसे वह अनन्त धनराशिकी वृद्धि करने लगा॥ २४॥

कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम्।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
शय्यासनानि यानानि स्थाली पिठरभाजनम्।
तस्य राज्ञोऽपि यद् वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम्।

राजाने घर, परकोटे, दुर्ग एवं ब्राह्मणोंके निवासस्थान सारी अभीष्ट वस्तुएँ सोनेकी बनवा लीं। शय्या, आसन, सवारी, बटलोई, थाली, अन्य बर्तन, उस राजाका महल तथा बाह्य उपकरण—ये सब कुछ सुवर्णमय बन गये थे, जो समयके अनुसार बढ़ रहे थे॥ २५–२६½॥

अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम्।

तदनन्तर लुटेरोंने राजाके वैभवकी बात सुनकर तथा उन्हें वैसा ही सम्पन्न देखकर संगठित हो उनके यहाँ लूट-पाट आरम्भ कर दी॥ २७½॥

केचित् तत्राब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८॥
सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे।

उन डाकुओंमेंसे कोई-कोई इस प्रकार बोले—'हम सब लोग स्वयं इस राजाके पुत्रको अधिकारमें कर लें; क्योंकि वही इस सुवर्णकी खान है। अतः हम उसीको पकड़नेका यत्न करें'॥ २८½॥

ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
राजपुत्रं तथा जहुः सुवर्णष्ठीविनं बलात्।

तब उन लोभी लुटेरोंने राजमहलमें प्रवेश करके राजकुमार सुवर्णष्ठीवीको बलपूर्वक हर लिया॥ २९½॥

गृहीत्वैनमनुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद् वरदं वसु ॥ ३१ ॥

योग्य उपायको न जाननेवाले उन विवेकशून्य डाकुओंने उसे वनमें ले जाकर मार डाला और उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके देखा, परंतु उन्हें थोड़ा-सा भी धन नहीं दिखायी दिया। उसके प्राणशून्य होते ही वह वरदायक वैभव नष्ट हो गया॥ ३०–३१॥

दस्यवश्च तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः।

उस समय वे विचारशून्य मूर्ख एवं दुराचारी दस्यु भूमण्डलके उस अद्भुत और असम्भव कुमारका वध करके परस्पर एक दूसरेको मारने लगे। इस प्रकार मार-पीट करके वे भी नष्ट हो गये और भयंकर नरकमें पड़ गये॥ ३२½॥

तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृपः।

मुनिके वरसे प्राप्त हुए उस पुत्रको मारा गया देख वे महातपस्वी नरेश अत्यन्त दुःखसे आतुर हो नाना प्रकारसे करुणाजनक विलाप करने लगे॥ ३३½॥

विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य संनिधौ।

पुत्रशोकसे पीड़ित हुए राजा सृञ्जय विलाप कर रहे हैं—यह सुनकर देवर्षि नारद उनके समीप दिखायी दिये। ३४½।

उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर।

युधिष्ठिर! दुःखसे पीड़ित हो अचेत होकर विलाप करते हुए राजा सृंजयके निकट आकर नारदजीने जो कुछ कहा था, वह सुनो॥ ३५½॥

(नारद उवाच

त्यज शोकं महाराज वैक्लव्यं त्यज बुद्धिमन्।
न मृतः शोचतो जीवेन्मुह्यतो वा जनाधिप ॥

नारदजी बोले—महाराज! शोकका त्याग करो! बुद्धिमान् नरेश! व्याकुलता छोड़ो। जनेश्वर! कोई कितना ही शोक क्यों न करे या दुःखसे मूर्छित क्यों न हो जाय, इससे मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता॥

त्यज मोहं नृपश्रेष्ठ न हि मुह्यन्ति त्वद्विधाः ।
धीरो भव महाराज ज्ञानवृद्धोऽसि मे मतः ॥)

नृपश्रेष्ठ ! मोह त्याग दो ! तुम्हारे-जैसे पुरुष मोहित नहीं होते हैं । महाराज ! धैर्य धारण करो ! मैं तुम्हें ज्ञानमें बढ़ा-चढ़ा मानता हूँ ॥

कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।

सृंजय ! जिसके घरमें ये हम-जैसे ब्रह्मवादी मुनि निवास करते हैं, वह तुम भी यहाँ एक दिन भोगोंसे अतृप्त रहकर ही मर जाओगे ॥ ३६½ ॥

आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
संवर्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद् धनं स भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः स वै ।
यस्य सेन्द्राऽमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः ॥ ४० ॥
यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोऽभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥
पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्त प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे ॥ ४३ ॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक् क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनयानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान् गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।

सृंजय ! अविक्षितके पुत्र राजा मरुत्त भी मर गये, ऐसा हमने सुना है । बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण उनके भाई संवर्तने जिन राजर्षि मरुत्तका यज्ञ कराया था, भाँति-भाँतिके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करनेकी इच्छा होनेपर जिन्हें साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रचुर धन-राशिके रूपमें हिमालयका एक सुवर्णमय शिखर प्रदान किया था तथा प्रतिदिन यज्ञकार्यके अन्तमें जिनकी सभामें इन्द्र आदि देवता और बृहस्पति आदि समस्त प्रजापतिगण सभासद्‌के रूपमें बैठा करते थे, जिनके यज्ञ-मण्डपकी सारी सामग्रियाँ सोनेकी बनी हुई थीं, जिनके यहाँ उन दिनों सब प्रकारका अन्न, मनकी इच्छाके अनुरूप और पवित्र रूपमें उपलब्ध होता था और सभी भोजनार्थी ब्राह्मण एवं द्विज जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार दूध, दही, घी, मधु एवं सुन्दर भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भोजन करते थे, जिनके सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रसन्नतासे भरे हुए वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण प्राप्त होते थे, जिन अविक्षित-कुमार (राजर्षि मरुत्त) के घरमें मरुद्गण रसोई परोसने-का काम करते थे और विश्वेदेवगण सभासद् थे, जिन पराक्रमी नरेशके राज्यमें उत्तम वृष्टिके कारण खेतीकी उपज बहुत होती थी, जिन्होंने उत्तम विधिसे समर्पित किये हुए हविष्योंद्वारा देवताओंको तृप्त किया था, जो ब्रह्मचर्यपालन और वेदपाठ आदि सत्कर्मोंद्वारा तथा सब प्रकारके दानोंसे सदा ऋषियों, पितरों एवं सुखजीवी देवताओंको भी संतुष्ट करते थे तथा जिन्होंने इच्छानुसार ब्राह्मणोंको शय्या, आसन, सवारी और दुस्त्यज स्वर्णराशि आदि वह सारा अपरिमित धन दान कर दिया था, देवराज इन्द्र जिनका सदा शुभ चिन्तन करते थे, वे श्रद्धालु नरेश मरुत्त अपनी प्रजाको नीरोग करके अपने सत्कर्मोंद्वारा जीते हुए पुण्यफलदायक अक्षय लोकोंमें चले गये ॥ ३७—४७½ ॥

सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८ ॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।

राजा मरुत्तने युवावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्म-पत्नी, पुत्र और भाइयोंके साथ एक हजार वर्षोंतक राज्य-शासन किया था ॥ ४८½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ५० ॥

श्वैत्य सृंजय ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य—इन चारों बातोंमें राजा मरुत्त तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें कोई उदारता ही थी । अतः उसको लक्ष्य करके तुम चिन्ता न करो—नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ५४ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा सुहोत्रकी दानशीलता

नारद उवाच

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम्॥ १॥

नारदजी कहते हैं—संजय! राजा सुहोत्रकी भी मृत्यु सुनी गयी है। वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे। देवता भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते थे॥

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान्।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः॥ २॥

उन्होंने धर्मके अनुसार राज्य पाकर ऋत्विजों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितोंसे अपने कल्याणका उपाय पूछा और पूछकर वे उनकी सम्मतिके अनुसार चलते रहे॥ २॥

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः।
एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद् धनागमम्॥ ३॥

प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंपर विजय पाना—इन सबको राजा सुहोत्रने अपने लिये श्रेयस्कर जानकर धर्मके द्वारा ही धन पानेकी अभिलाषा की॥ ३॥

धर्मेणाराधयन् देवान्
बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा।
सर्वाण्यपि च भूतानि
स्वगुणैरप्यरञ्जयत्॥ ४॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं
म्लेच्छाटविकवर्जिताम्।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो
हिरण्यं परिवत्सरान्॥ ५॥

उन्होंने इस पृथ्वीको म्लेच्छों तथा तस्करोंसे रहित करके इसका उपभोग किया और धर्माचरणद्वारा देवताओंकी आराधना तथा बाणोंद्वारा शत्रुओंपर विजय करते हुए अपने गुणोंसे समस्त प्राणियोंका मनोरञ्जन किया था, उनके लिये मेघने अनेक वर्षोंतक सुवर्णकी वर्षा की थी॥४-५॥

हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा।
ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान् बहून्॥ ६॥

राजा सुहोत्रके राज्यमें पहले स्वच्छन्द गतिसे बहनेवाली स्वर्णरससे भरी हुई सरिताएँ सुवर्णमय ग्राहों, केकड़ों, मत्स्यों तथा नाना प्रकारके बहुसंख्यक जल-जन्तुओंको अपने भीतर बहाया करती थीं॥ ६॥

कामान् वर्षति पर्जन्यो रूप्याणि विविधानि च।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः॥ ७॥

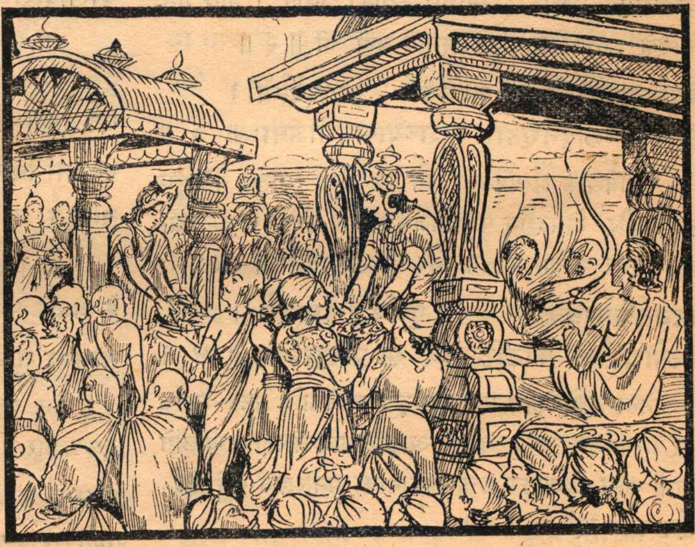
मेघ अभीष्ट वस्तुओंकी तथा नाना प्रकारके रजत और असंख्य सुवर्णकी वर्षा करते थे। उनके राज्यमें एक-एक कोसकी लंबी-चौड़ी बावलियाँ थीं॥ ७॥

सहस्रं वामनान् कुब्जान् नक्रान् मकरकच्छपान्।
सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा॥ ८॥

उनमें सहस्रों नाटे-कुबड़े ग्राह, मगर और कछुए रहते थे, जिनके शरीर सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें देखकर राजाको उन दिनों बड़ा विस्मय होता था॥ ८॥

तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत॥ ९॥

राजर्षि सुहोत्रने कुरुजाङ्गल देशमें यज्ञ किया और उस विशाल यज्ञमें अपनी अनन्त सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको बाँट दी॥ ९॥



सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः॥ १०॥

उन्होंने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा बहुत-सी श्रेष्ठ दक्षिणावाले अनेक पुण्यमय क्षत्रिय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था॥ १०॥

काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्ट्वा गतिमवाप्तवान्।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया॥ ११॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

राजाने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य यज्ञोंके निरन्तर अनुष्ठानसे मनोवाञ्छित गति प्राप्त कर ली। श्वैत्य सृंजय! वे भी तुमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी विषयोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी वे अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब तुम्हें अपने पुत्रके लिये अनुताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें दाक्षिण्य (उदारताका गुण) ही था। नारदजीने राजा सृञ्जयसे यही बात कही ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त

नारद उवाच

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! हमने वीर राजा पौरवकी भी मृत्यु हुई सुनी है, जिन्होंने दस लाख श्वेत घोड़ोंका दान किया था ॥ १ ॥

तस्याश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात् समीयुषाम्।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नासीत् संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥

उन राजर्षिके अश्वमेध यज्ञमें देश-देशसे आये हुए शिक्षाशास्त्र, अक्षर (विभिन्न देशोंकी लिपि) और यज्ञ-विधिके ज्ञाता विद्वानोंकी गिनती नहीं थी ॥ २ ॥

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥

वेदविद्याके अध्ययनका व्रत पूर्ण करके स्नातक बने हुए उदार और प्रियदर्शन पण्डितजन राजासे उत्तम अन्न, वस्त्र, गृह, सुन्दर शय्या, आसन और भोजन पाते थे ॥ ३ ॥

नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ॥ ४ ॥

नित्य उद्योगशील एवं खेल-कूद करनेवाले नट, नर्तक और गन्धर्वगण कुक्कुटकी-सी आकृतिवाले आरतीके प्यालोंसे अपनी कला दिखाकर उक्त विद्वानोंका मनोरञ्जन एवं हर्ष वर्द्धन करते रहते थे ॥ ४ ॥

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत्।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥

राजा पौरव प्रत्येक यज्ञमें यथासमय प्रचुर दक्षिणा बाँटते थे। उन्होंने स्वर्णकी-सी कान्तिवाले दस हजार मतवाले हाथी, ध्वजा और पताकाओंसहित सुवर्णमय बहुत-से रथ तथा एक लाख स्वर्णभूषित कन्याओंका दान किया था ॥ ५-६ ॥

धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमालिमहात्मनाम् ॥ ७ ॥
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत्।

वे कन्याएँ रथ, अश्व एवं हाथियोंपर आरूढ़ थीं। उनके साथ ही उन्होंने सौ-सौ घर, क्षेत्र और गौएँ प्रदान की थीं। राजाने सुवर्णमालामण्डित विशालकाय एक करोड़ गाय-बैलों और उनके सहस्रों अनुचरोंको दक्षिणारूपसे दान किया था ॥ ७½ ॥

हेमशृङ्ग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
दासीदासखरोष्ट्राश्च प्रादादाजाविकं बहु।

सोनेके सींग, चाँदीके खुर और काँसेके दुग्धपात्रवाली बहुत-सी बछड़ेसहित गौएँ तथा दास, दासी, गदहे, ऊँट एवं बकरी और भेड़ आदि भारी संख्यामें दान किये ॥ ८½ ॥

रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
तस्मिन् संवितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत्।

उस विशाल यज्ञमें नाना प्रकारके रत्नों तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंके पर्वत-समान ढेर उन्होंने दक्षिणारूपमें दिये ॥ ९½ ॥

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥

उस यज्ञके सम्बन्धमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले लोग इस प्रकार गाथा गाते हैं— ॥ १० ॥

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥

'यजमान अङ्गनरेशके सभी यज्ञ स्वधर्मके अनुसार प्राप्त और शुभ थे। वे उत्तरोत्तर गुणवान् और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले थे' ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

सृंजय! राजा पौरव धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—

इन चारों बातोंमें तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वैत्य सृंजय! जब वे भी मर गये, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा शिबिके यज्ञ और दानकी महत्ता

नारद उवाच

शिबिमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! जिन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी भाँति लपेट लिया था, (सर्वथा अपने अधीन कर लिया था) वे उशीनरपुत्र राजा शिबि भी मरे थे, यह हमने सुना है ॥ १ ॥

साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन्।
स शिबिर्वै रिपून् नित्यं मुख्यान् निघ्नन् सपत्नजित् ॥ २ ॥

राजा शिबिने पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनोंसहित इस पृथ्वीको अपने रथकी घरघराहटसे प्रतिध्वनित करते हुए प्रधान-प्रधान शत्रुओंको मारकर सदा ही अपने विपक्षियोंपर विजय प्राप्त की थी ॥ २ ॥

तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः।
स राजा वीर्यवान् धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद् युधि।
अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥

उन्होंने प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे पराक्रमी और बुद्धिमान् नरेश पर्याप्त धन पाकर युद्धमें सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंकी दृष्टिमें सम्माननीय वीर हो गये थे। उन्होंने इस पृथ्वीको जीतकर अनेक अश्वमेध-यज्ञ किये थे ॥ ३-४ ॥

निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोऽजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत्।

उनके वे यज्ञ प्रचुर फल देनेवाले थे और सदा निर्बाधरूपसे चलते रहते थे। उन्होंने सहस्रकोटि स्वर्णमुद्राओंका दान किया था। राजा शिबिने हाथी, घोड़े, मृग, गौ, भेड़ और बकरी आदि पशुओं तथा धान्योंसहित नाना प्रकारके पवित्र भूखण्ड ब्राह्मणोंके अधीन कर दिये थे ॥ ५½ ॥

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ॥ ७ ॥
तावतीरददद् गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे।

बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखायी देते हैं, गङ्गाके किनारे जितने बालूके कण हैं, सुमेरु पर्वतमें जितने स्थूल प्रस्तरखण्ड हैं तथा महासागरमें जितने रत्न और प्राणी निवास करते हैं, उतनी गौएँ उशीनरपुत्र शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी थीं ॥ ६-७½ ॥

नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ॥ ८ ॥
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम्।

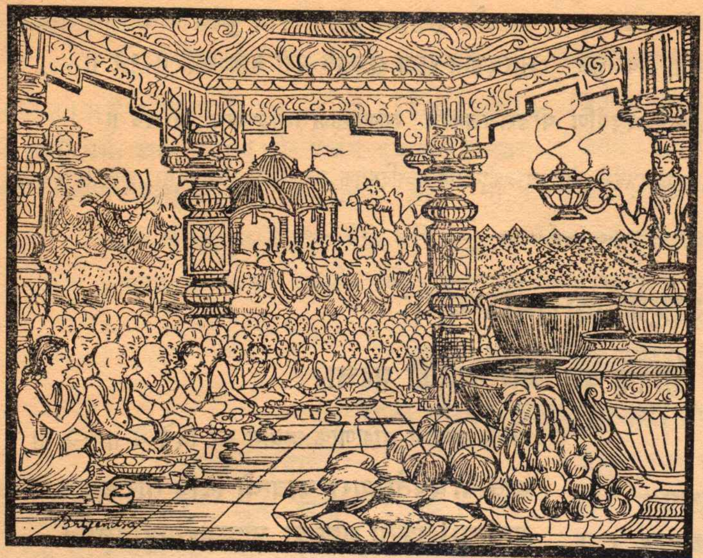
प्रजापतिने भी अपनी सृष्टिमें भूत, भविष्य और वर्तमान कालके किसी भी दूसरे नरश्रेष्ठ राजाको ऐसा नहीं पाया, जो शिबिके कार्यभारको सँभाल सकता हो ॥ ८½ ॥

तस्यासन् विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः।

उन्होंने नाना प्रकारके बहुत-से यज्ञ किये, जिनमें प्रार्थियोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं। उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, गृह, परकोटे और दरवाजे सुवर्णके बने हुए थे ॥ ९½ ॥

शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः।
तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥

उन यज्ञोंमें खाने-पीनेकी वस्तुएँ पवित्र और स्वादिष्ट होती थीं। वहाँ दूध-दहीके बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे। वहाँ हजारों और लाखों ब्राह्मण भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ पाकर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली बातें कहते थे। उनकी यज्ञशालाओंमें पीने योग्य पदार्थोंकी नदियाँ बहती थीं और शुद्ध अन्नके पर्वतोंके समान ढेर लगे रहते थे ॥ १०-११ ॥



पिबत स्नात खादध्वमिति यद् रोचते जनाः।
यस्मै प्रादाद् वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वहाँ सबके लिये यह घोषणा की जाती थी कि 'सज्जनो! स्नान करो और जिसकी जैसी रुचि हो उसके अनुसार अन्न-पान लेकर खूब खाओ-पीओ'। भगवान् शिवने राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर उन्हें यह वर दिया था कि राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा, तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति और पुण्यकर्म भी अक्षय होंगे। तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सब प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी ॥ १२-१३ ॥

एतॉल्लब्ध्वा वरानिष्टा-
न्शिबिः काले दिवं गतः।
स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं
मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १५ ॥

इन अभीष्ट वरोंको पाकर राजा शिबि समय आनेपर स्वर्गलोकमें गये। सृंजय! वे तुम्हारी अपेक्षा पूर्वोक्त चारों बातोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वित्यनन्दन! जब वे शिबि भी मर गये, तब तुम्हें यज्ञ और दानसे रहित अपने पुत्रके लिये इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामका चरित्र

नारद उवाच

रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम भी यहाँसे परमधामको चले गये थे, यह मेरे सुननेमें आया है। उनके राज्यमें सारी प्रजा निरन्तर आनन्दमग्न रहती थी। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार वे समस्त प्रजाका स्नेहपूर्वक संरक्षण करते थे॥

असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः ॥ २ ॥
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः।

वे अत्यन्त तेजस्वी थे और उनमें असंख्य गुण विद्यमान थे। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षोंतक अपनी पत्नी सीता (और भाई लक्ष्मण) के साथ वनमें निवास किया था ॥ २½ ॥

जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश।

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था ॥ ३½ ॥

तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम्।

वहीं रहते समय लक्ष्मणसहित श्रीरामको मोहमें डालकर रावण नामक राक्षसने उनकी पत्नी विदेहनन्दिनी सीताको हर लिया ॥ ४½ ॥

(रामां हृतां राक्षसेन भार्यां श्रुत्वा जटायुषः।
आतुरः शोकसंतप्तोऽगच्छद् रामो हरीश्वरम् ॥

अपनी मनोरमा पत्नीके राक्षसद्वारा हर लिये जानेका

समाचार जटायुके मुखसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी आतुर एवं शोकसंतप्त हो वानरराज सुग्रीवके पास गये ॥

तेन रामः सुसङ्गम्य वानरैश्च महाबलैः ।
आजगामोदधेः पारं सेतुं कृत्वा महार्णवे ॥

सुग्रीवसे मिलकर श्रीरामने (उनके साथ मित्रता की और) महाबली वानरोंको साथ ले महासागरमें पुल बाँधकर समुद्रको पार किया ॥

तत्र हत्वा तु पौलस्त्यान् ससुहृद्गणबान्धवान् ।
मायाविनं महाघोरं रावणं लोककण्टकम् ॥)
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।

वहाँ पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको उनके सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर श्रीरामने अपने प्रधान अपराधी अत्यन्त घोर मायावी लोककंटक पुलस्त्यनन्दन रावणको, जो दूसरोंके द्वारा कभी जीता नहीं गया था, कुपित होकर समर-भूमिमें मार डाला । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने अन्धकासुरको मारा था ॥ ५½ ॥

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।

जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अवध्य था, देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पुलस्त्यवंशी रावणका रणक्षेत्रमें महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने उसके दलबल-सहित संहार कर डाला ॥ ६½ ॥

(हत्वा तत्र रिपुं संख्ये भार्यया सह सङ्गतः ।
लङ्केश्वरं च चक्रे स धर्मात्मानं विभीषणम् ॥

इस प्रकार वहाँ युद्धस्थलमें अपने वैरी रावणका वध करके वे धर्मपत्नी सीतासे मिले । तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषण-को उन्होंने लङ्काका राजा बना दिया ॥

भार्यया सह संयुक्तस्ततो वानरसेनया ।
अयोध्यामागतो वीरः पुष्पकेण विराजता ॥

तदनन्तर वीर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी तथा वानरसेनाके साथ शोभाशाली पुष्पकविमानके द्वारा अयोध्यामें आये ॥

तत्र राजन् प्रविष्टः स अयोध्यायां महायशाः ।
मातृर्वयस्यान् सचिवानृत्विजः सपुरोहितान् ॥
शुश्रूषमाणः सततं मन्त्रिभिश्चाभिषेचितः ।

राजन् ! अयोध्यामें प्रवेश करके महायशस्वी श्रीराम वहाँ माताओं, मित्रों, मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंकी सेवामें सदैव संलग्न रहने लगे । फिर मन्त्रियोंने उनका राज्याभिषेक कर दिया ॥

विसृज्य हरिराजानं हनुमन्तं सहाङ्गदम् ॥
भ्रातरं भरतं वीरं शत्रुघ्नं चैव लक्ष्मणम् ।
पूजयन् परया प्रीत्या वैदेह्या चाभिपूजितः ॥
चतुःसागरपर्यन्तां पृथिवीमन्वशासत ॥)
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥

इसके बाद वानरराज सुग्रीव, हनुमान् और अङ्गदको विदा करके अपने वीर भ्राता भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणका आदर करते हुए विदेहनन्दिनी सीताद्वारा परम प्रेमपूर्वक सम्मानित हो श्रीरामचन्द्रजीने चारों समुद्रोंतककी सारी पृथ्वीका शासन किया और समस्त प्रजाओंपर अनुग्रह करके वे देवताओंद्वारा सम्मानित हुए ॥ ७ ॥

व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विधिवद् राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥

देवर्षिगणोंसे सेवित श्रीरामने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनी कीर्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे । भगवान् रामने निर्बाधरूपसे राजसूय और अश्व-मेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्रको हविष्यसे तृप्त करके उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान किया । राजा रामने नाना प्रकारके दूसरे-दूसरे यज्ञ भी किये थे, जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न थे ॥

क्षुत्पिपासेऽजयद् रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भूख और प्यासको जीत लिया था । सम्पूर्ण देहधारियोंके रोगोंको नष्ट कर दिया था । वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हो सदैव अपने तेजसे प्रकाशित होते थे ॥ ११ ॥

अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥ १२ ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

दशरथनन्दन श्रीराम (अपने महान् तेजके कारण) सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़कर शोभा पाते थे । श्रीरामके राज्यशासन करते समय ऋषि, देवता और मनुष्य सभी एक साथ इस पृथ्वीपर निवास करते थे ॥ १२½ ॥

नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ॥ १३ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ।

उस समय उनके राज्य शासनकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान और समान आदि प्राणवायुका क्षय नहीं होता था; इस नियममें कोई हेर-फेर नहीं था ॥ १३½ ॥

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानर्थाश्च नाभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।

(यज्ञों अथवा अग्निहोत्र-गृहोंमें) सब ओर अग्निदेव प्रज्वलित होते रहते थे । उन दिनों किसी प्रकारका अनर्थ नहीं होता था । सारी प्रजा दीर्घायु होती थी । किसी युवककी मृत्यु नहीं हुआ करती थी ॥ १४½ ॥

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ।

चारों वेदोंके स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए देवता तथा पितृगण नाना प्रकारके हव्य और कव्य प्राप्त करते थे । सब ओर इष्ट (यज्ञयागादि) और पूर्त (वापी, कूप, तडाग और वृक्षारोपण आदि) का अनुष्ठान होता रहता था ॥ १५½ ॥

अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनोऽदहत् ।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसी भी देशमें डाँस और मच्छरोंका भय नहीं था । साँप और बिच्छू नष्ट हो गये थे । जलमें पड़नेपर भी किसी प्राणीकी मृत्यु नहीं होती थी । चिताकी अग्निने किसी भी मनुष्यको असमयमें नहीं जलाया था (किसीकी अकालमृत्यु नहीं हुई थी) ॥ १६½ ॥

अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टयज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन् ।

उन दिनों लोग अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे । उस समय सभी वर्णके लोग अपने लिये शास्त्रविहित यज्ञ-यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करते थे ॥ १७½ ॥

स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।

जनस्थानमें राक्षसोंने जो पितरों और देवताओंकी पूजा-अर्चा नष्ट कर दी थी, उसे भगवान् श्रीरामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया और पितरोंको श्राद्धका तथा देवताओंको यज्ञका भाग दिया ॥ १८½ ॥

सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।

श्रीरामके राज्यकालमें एक-एक मनुष्यके हजार-हजार पुत्र होते थे और उनकी आयु भी एक-एक सहस्र वर्षोंकी होती थी । बड़ोंको अपने छोटोंका श्राद्ध नहीं करना पड़ता था ॥ १९½ ॥

(न तस्करा वा व्याधिर्वा विविधोपद्रवाः क्वचित् ।
अनावृष्टिभयं चात्र दुर्भिक्षो व्याधयः क्वचित् ॥
सर्वं प्रसन्नमेवासीदत्यन्तसुखसंयुतम् ।
एवं लोकोऽभवत् सर्वो रामे राज्यं प्रशासति ॥)

श्रीरामके राज्यमें कहीं भी चोर, नाना प्रकारके रोग और भाँति-भाँतिके उपद्रव नहीं थे । दुर्भिक्ष, व्याधि और अनावृष्टिका भय भी कहीं नहीं था । सारा जगत् अत्यन्त सुखसे सम्पन्न और प्रसन्न ही दिखायी देता था । इस प्रकार श्रीरामके राज्य करते समय सब लोग बहुत सुखी थे ॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।

भगवान् श्रीरामकी श्यामसुन्दर छवि, तरुण अवस्था और कुछ-कुछ अरुणाई लिये बड़ी-बड़ी आँखें थीं । उनकी चाल मतवाले हाथी-जैसी थी, भुजाएँ सुन्दर और घुटनोंतक लंबी थीं । कंधे सिंहके समान थे । उनमें महान् बल था । उनकी कान्ति समस्त प्राणियोंके मनको मोह लेनेवाली थी । उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ २०-२१½ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा ॥ २२ ॥
रामाद् रामं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

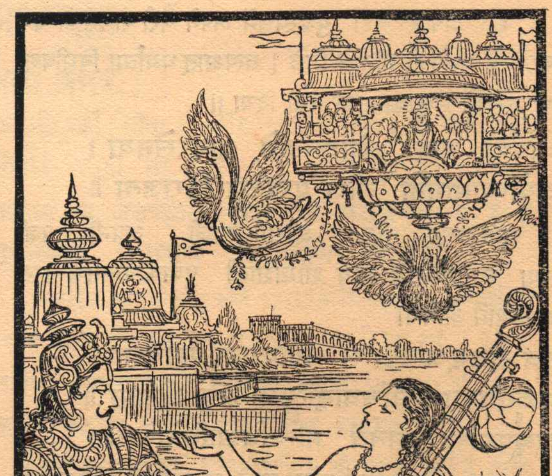
श्रीरामचन्द्रजीके राज्य शासन-कालमें समस्त प्रजाओंमें 'राम, राम, राम' यही चर्चा होती थी । श्रीरामके कारण सारा जगत् ही राममय हो रहा था ॥ २२½ ॥

चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा ।

फिर समयानुसार अपने और भाइयोंके अंशभूत दो-दो पुत्रोंद्वारा आठ प्रकारके राजवंशकी स्थापना करके उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको अपने धाममें भेजकर स्वयं ही सदेह परम धामको गमन किया ॥ २३½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २५ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे श्रीरामचन्द्रजी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे



और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी यहाँ नहीं रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ! अतः तुम यज्ञ एवं दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १०½ श्लोक मिलाकर कुल ३५½ श्लोक हैं)

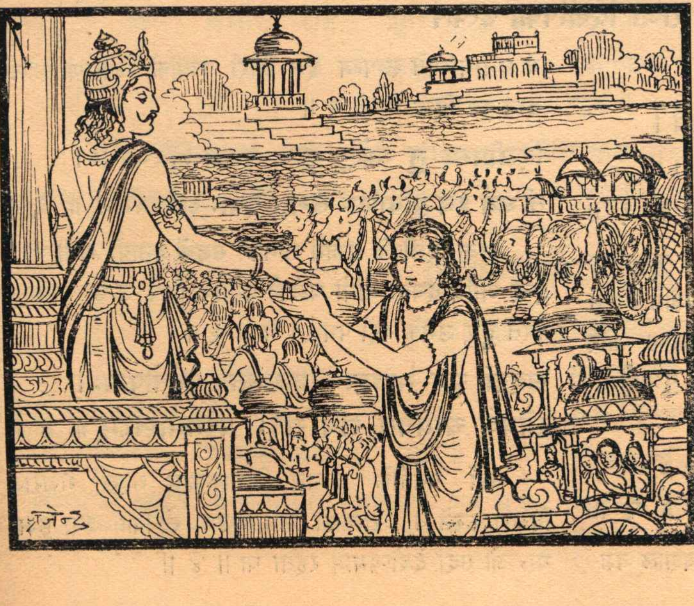
षष्टितमोऽध्यायः

राजा भगीरथका चरित्र

नारद उवाच

भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
परित्राणाय पूर्वेषां येन गङ्गावतारिता।
यस्येन्द्रो बाहुवीर्येण प्रीतो राज्ञो महात्मनः॥
योऽश्वमेधशतैरीजे समाप्तवरदक्षिणैः।
हविर्मन्त्रान्नसम्पन्नैर्देवानामादधान्मुदम् ॥
यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः।
असुराणां सहस्राणि बहूनि च सुरेश्वरः॥
अजयद् बाहुवीर्येण भगवाँल्लोकपूजितः।)
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता॥ १॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! हमारे सुननेमें आया है कि राजा भगीरथ भी मर गये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये इस भूतलपर गङ्गाजीको उतारा था। जिन महामना नरेशके बाहुबलसे इन्द्र बहुत प्रसन्न थे, जिन्होंने प्रचुर एवं उत्तम दक्षिणासे युक्त हविष्य, मन्त्र और अन्नसे सम्पन्न सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और देवताओं-का आनन्द बढ़ाया; जिनके महान् यज्ञमें इन्द्र सोमरस पीकर मदोन्मत्त हो उठे थे तथा जिनके यहाँ रहकर लोकपूजित भगवान् देवेन्द्रने अपने बाहुबलसे अनेक सहस्र असुरोंको पराजित किया, उन्हीं राजा भगीरथने यज्ञ करते समय गङ्गाके दोनों किनारोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनवाये थे ॥ १ ॥



यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत॥ २॥

इतना ही नहीं, उन्होंने कितने ही राजाओं तथा राज-पुत्रोंको जीतकर उनके यहाँसे सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ लाकर उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ २ ॥

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः॥ ३॥

वे सभी कन्याएँ रथोंमें बैठी थीं। उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते थे। प्रत्येक रथके पीछे सोनेके हारोंसे अलंकृत सौ-सौ हाथी चलते थे ॥ ३ ॥

सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम्॥ ४॥

एक-एक हाथीके पीछे हजार-हजार घोड़े जा रहे थे और एक-एक घोड़ेके साथ सौ-सौ गौएँ एवं गौओंके पीछे भेड़ और बकरियोंके झुंड चलते थे ॥ ४ ॥

तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत्।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याङ्के निषसाद ह॥ ५॥

राजा भगीरथ गङ्गाके तटपर भूयसी (प्रचुर) दक्षिणा देते हुए निवास करते थे। अतः उनके संकल्पकालिक जलप्रवाहसे आक्रान्त होकर गङ्गादेवी मानो अत्यन्त व्यथित हो उठीं और समीपवर्ती राजाके अङ्कमें आ बैठीं ॥ ५ ॥

तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत् तदा॥ ६॥

इस प्रकार भगीरथकी पुत्री होनेसे गङ्गाजी भागीरथी कहलायीं और उनके ऊरुपर बैठनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुईं। राजाके पुत्रीभावको प्राप्त होकर उनका नरकसे त्राण करनेके कारण वे उस समय पुत्रभावको भी प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥

तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी और मधुरभाषी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर देवताओं, पितरों और मनुष्योंके सुनते हुए यह गाथा गायी थी ॥ ७ ॥

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥

यज्ञ करते समय भूयसी दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशी ऐश्वर्यशाली राजा भगीरथको समुद्रगामिनी गङ्गादेवीने अपना पिता मान लिया था ॥ ८ ॥

तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥

इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने उनके यज्ञको सुशोभित किया था। उसमें प्राप्त हुए हविष्यको भलीभाँति ग्रहण करके उसके विघ्नोंको शान्त करते हुए उसे निर्बाधरूपसे पूर्ण किया था ॥ ९ ॥

यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद् वशी ॥ १० ॥

जिस-जिस ब्राह्मणने जहाँ-जहाँ अपने मनको प्रिय लगनेवाली जिस-जिस वस्तुको पाना चाहा, जितेन्द्रिय राजाने वहीं-वहीं प्रसन्नतापूर्वक वह वस्तु उसे तत्काल समर्पित की ॥

नादेयं ब्राह्मणस्यासीद् यस्य यत्स्यात् प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥

उनके पास जो भी प्रिय धन था, वह ब्राह्मणके लिये अदेय नहीं था। राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥

शत्रुओंकी दशा और आशाका हनन करनेवाले सृंजय ! राजा भगीरथने यज्ञोंमें प्रधान ज्ञानयज्ञ और ध्यानयज्ञको ग्रहण किया था। इसलिये किरणोंका पान करनेवाले महर्षिगण भी उस ब्रह्मलोकमें जितेन्द्रिय राजा भगीरथके निकट जाकर उसी स्थानपर रहनेकी इच्छा करते थे ॥ १२ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।

श्वैत्य सृंजय ! वे भगीरथ उपर्युक्त चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़कर थे। तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा उनका पुण्य बहुत अधिक था। जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १३½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल १७ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

राजा दिलीपका उत्कर्ष

नारद उवाच

दिलीपं चेदैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ।
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! इलविलाके पुत्र राजा दिलीपकी भी मृत्यु सुनी गयी है, जिनके सौ यज्ञोंमें लाखों ब्राह्मण नियुक्त थे। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके तात्पर्यको जाननेवाले, यज्ञकर्ता तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १ ॥

य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥

पृथ्वीपति दिलीपने यज्ञ करते समय अपने विशाल यज्ञमें धन-धान्यसे सम्पन्न इस सारी पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया था ॥ २ ॥

दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ॥ ३ ॥

राजा दिलीपके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं। इन्द्र आदि देवता मानो धर्मकी प्राप्तिके लिये उन्हें अलंकृत करते हुए उनके यहाँ पधारते थे ॥ ३ ॥

सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत् सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥ ४ ॥

वहाँ पर्वतोंके समान विशालकाय सहस्रों गजराज विचरा करते थे। राजाका सभामण्डप सोनेका बना हुआ था, जो सदा देदीप्यमान रहता था ॥ ४ ॥



रसानां चाभवन् कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासन् हिरण्मयाः ॥ ५ ॥

वहाँ रसकी नहरें बहती थीं और अन्नके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे हुए थे । राजन् ! उनके यज्ञमें सहस्र व्याम-विस्तृत सुवर्णमय यूप सुशोभित होते थे ॥ ५ ॥

चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट् सहस्राणि सप्त च ॥ ६ ॥

उनके यूपमें सुवर्णमय चषाल[1] और प्रचषाल लगे हुए थे । उनके यहाँ तेरह हजार अप्सराएँ नृत्य करती थीं ॥६॥

यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥ ७ ॥

उस समय वहाँ साक्षात् गन्धर्वराज विश्वावसु प्रेमपूर्वक वीणा बजाते थे । समस्त प्राणी राजा दिलीपको सत्यवादी मानते थे ॥ ७ ॥

रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते ।
तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८ ॥
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।

उनके यहाँ आये हुए अतिथि 'रागखाण्डव' नामक मोदक और विविध भोज्यपदार्थ खाकर मतवाले हो सड़कोंपर लेट जाते थे । मेरे मतमें उनके यहाँ यह एक अद्भुत बात थी, जिसकी दूसरे राजाओंसे तुलना नहीं हो सकती थी । राजा दिलीप युद्ध करते समय जलमें भी चले जाते तो उनके रथके पहिये वहाँ डूबते नहीं थे ॥ ८½ ॥

राजानं दृढधन्वानं
दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
येऽपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं
तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले सत्यवादी राजा दिलीपका जो लोग दर्शन कर लेते थे, वे मनुष्य भी स्वर्गलोकके अधिकारी हो जाते थे ॥ ९½ ॥

पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।

खट्वाङ्ग (दिलीप) के भवनमें ये पाँच प्रकारके शब्द कभी बंद नहीं होते थे—वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायका शब्द, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी ध्वनि तथा अतिथियोंके लिये कहे जानेवाले 'खाओ, पीओ और अन्न ग्रहण करो' ये तीन शब्द ॥ १०½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे दिलीप धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे, तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है ? अतः जिसने अभी यज्ञ नहीं किया, दक्षिणाएँ नहीं बाँटीं, अपने उस पुत्रके लिये तुम शोक न करो—इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राजा मान्धाताकी महत्ता

नारद उवाच

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मरे थे, यह सुना गया है । वे देवता, असुर और मनुष्य—तीनों लोकोंमें विजयी थे ॥ १ ॥

यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥

१. यज्ञीय यूप या स्तम्भके ऊपर लगाये जानेवाले काठके छल्लेको 'चषाल' कहते हैं, इसीका उत्कृष्ट रूप 'प्रचषाल' है ।

पूर्वकालमें दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उन्हें पिताके पेटसे निकाला था। एक समयकी बात है, राजा युवनाश्व वनमें शिकार खेलनेके लिये विचर रहे थे। वहाँ उनका घोड़ा थक गया और उन्हें भी प्यास लग गयी ॥ २ ॥

धूमं दृष्ट्वागमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जह्रतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ।

इतनेमें दूरसे उठता हुआ धूआँ देखकर वे उसी ओर चले और एक यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे। वहाँ एक पात्रमें रक्खे हुए घृतमिश्रित अभिमन्त्रित जलको उन्होंने पी लिया। उस जलको युवनाश्वके पेटमें पुत्ररूपमें परिणत हुआ देख वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उसे पिताके गर्भसे बाहर निकाला ॥ ३½ ॥

तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥
अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै।
मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥ ५ ॥

देवताके समान तेजस्वी उस शिशुको पिताकी गोदमें शयन करते देख देवता आपसमें कहने लगे, यह किसका दूध पीयेगा? यह सुनकर इन्द्रने कहा—यह पहले मेरा ही दूध पीये ॥ ४-५ ॥

ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत् पयोऽमृतम्।
मां धास्यतीति कारुण्याद् यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम्।

तदनन्तर इन्द्रकी अङ्गुलियोंसे अमृतमय दूध प्रकट हो गया; क्योंकि इन्द्रने करुणावश 'मां धास्यति' (मेरा दूध पीयेगा) ऐसा कहकर उसपर कृपा की थी, इसलिये उसका 'मान्धाता' यह अद्भुत नाम निश्चित कर दिया गया ॥ ६½॥

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्।
अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य स चाप्यह्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् महामना मान्धाताके मुखमें इन्द्रके हाथने दूध और घीकी धारा बहायी। वह बालक इन्द्रका हाथ पीने लगा और एक ही दिनमें बहुत बढ़ गया ॥ ७-८ ॥

सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान्।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥

वह पराक्रमी राजकुमार बारह दिनोंमें ही बारह वर्षोंकी अवस्थावाले बालकके समान हो गया। (राजा होनेपर) मान्धाताने एक ही दिनमें इस सारी पृथ्वीको जीत लिया ॥ ९ ॥

धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत्।

वे धर्मात्मा, धैर्यवान्, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। मानव मान्धाताने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया ॥ १०½ ॥

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।

सूर्य जहाँसे उदय होते थे और जहाँ जाकर अस्त होते थे, वह सारा-का-सारा प्रदेश युवनाश्वपुत्र मान्धाताका क्षेत्र (राज्य) कहलाता था ॥ ११½ ॥

सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
अदद् रोहितान् मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते।
हैरण्यान् यो जनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥ १३ ॥

राजन्! उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके सौ योजन विस्तृत रोहितक, मत्स्य तथा हिरण्मय (सोनेकी खानोंसे युक्त) जनपदोंको, जो लोगोंमें ऊँची भूमिके रूपमें प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणोंको दे दिया ॥१२-१३॥

बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान्।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥

अनेक प्रकारके सुस्वादु भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके पर्वत भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दे दिये। ब्राह्मणोंके भोजनसे भी जो अन्न बच गया, उसे दूसरे लोगोंको दिया गया। उस अन्नको खानेवाले लोगोंकी ही वहाँ कमी रहती थी। अन्न कभी नहीं घटता था ॥ १४ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः।
घृतह्रदाः सूपकूपाः दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
रुरुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः।

वहाँ भक्ष्य-भोज्य अन्न और पीने योग्य पदार्थोंकी अनेक राशियाँ संचित थीं। अन्नके तो पहाड़ों-जैसे ढेर सुशोभित होते थे। उन पर्वतोंको मधु और दूधकी सुन्दर नदियाँ घेरे हुए थीं। पर्वतोंके चारों ओर घीके कुण्ड और दालके कुएँ भरे थे। वहाँ कई नदियोंमें फेनकी जगह दही और जलके स्थानमें गुड़के रस बहते थे ॥ १५½ ॥

देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
विप्रास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदाङ्गपारगाः।
ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः ॥ १७ ॥

वहाँ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, नाग, पक्षी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण एवं ऋषि भी पधारे थे; किंतु वहाँ कोई मनुष्य ऐसे नहीं थे, जो विद्वान् न हों ॥ १६-१७ ॥

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामास्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥

उस समय राजा मान्धाता सब ओरसे धन-धान्यसे सम्पन्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको ब्राह्मणोंके अधीन करके सूर्यके समान अस्त हो गये ॥ १८ ॥

गतः पुण्यकृतां लोकान् व्याप्य स्वयशसा दिशः।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २० ॥

उन्होंने अपने सुयशसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करके पुण्यात्माओंके लोकोंमें पदार्पण किया । श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है । अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १९-२० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

राजा ययातिका उपाख्यान

नारद उवाच

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! नहुषनन्दन राजा ययातिकी भी मृत्यु हुई थी, यह मैंने सुना है । राजाने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, एक हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजपेय यज्ञ, एक सहस्र अतिरात्र याग तथा अपनी इच्छाके अनुसार चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १-२ ॥

अब्राह्मणानां यद् वित्तं पृथिव्यामस्ति किंचन।
तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥

इस पृथ्वीपर ब्राह्मणद्रोहियोंके पास जो कुछ धन था, वह सब उनसे छीनकर उन्होंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां
तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे
घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥

नदियोंमें परम पवित्र सरस्वती नदी, समुद्रों, पर्वतों तथा अन्य सरिताओंने यज्ञमें लगे हुए परम पुण्यात्मा राजा ययातिको घी और दूध प्रदान किये ॥ ४ ॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम्।
चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम्।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजहारामरोपमः।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥

देवासुरसंग्राम छिड़ जानेपर उन्होंने देवताओंकी सहायता करके नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा परमात्माका यजन किया और इस सारी पृथ्वीको चार भागोंमें विभक्त करके उसे ऋत्विज, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता—इन चार प्रकारके ब्राह्मणोंको बाँट दिया । फिर शुक्रकन्या देवयानी और दानवराजकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे धर्मतः उत्तम संतान उत्पन्न करके वे देवोपम नरेश दूसरे इन्द्रकी भाँति समस्त देवकाननोंमें अपनी इच्छाके अनुसार विहार करते रहे।५—७।

यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित्।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद् वनम् ॥ ८ ॥

जब भोगोंके उपभोगसे उन्हें शान्ति नहीं मिली, तब सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता राजा ययाति निम्नाङ्कित गाथाका गान करके अपनी पत्नियोंके साथ वनमें चले गये ॥ ८ ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥

वह गाथा इस प्रकार है—इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक मनुष्यको भी संतोष करानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; ऐसा समझकर मनको शान्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥

इस प्रकार ऐश्वर्यशाली राजा ययातिने धैर्यका आश्रय ले कामनाओंका परित्याग करके अपने पुत्र पूरुको राज्यसिंहासनपर बिठाकर वनको प्रस्थान किया ॥ १० ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ११ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी जीवित न रह सके, तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम अपने उस पुत्रके लिये शोक न करो, जिसने न तो यज्ञ किया था और न दक्षिणा ही दी थी। ऐसा नारदजीने कहा ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

राजा अम्बरीषका चरित्र

नारद उवाच

नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! मैंने सुना है कि नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्युको प्राप्त हुए थे, जिन्होंने अकेले ही दस लाख राजाओंसे युद्ध किया था ॥ १ ॥

जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद् वैरिणोऽभ्ययुः।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा गिरः ॥ २ ॥

राजाके शत्रुओंने उन्हें युद्धमें जीतनेकी इच्छासे चारों ओरसे उनपर आक्रमण किया था। वे सब अस्त्रयुद्धकी कलामें निपुण और भयंकर थे तथा राजाके प्रति अभद्र वचनोंका प्रयोग कर रहे थे ॥ २ ॥

बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान् गतव्यथः ॥ ३ ॥

परंतु राजा अम्बरीषको इससे तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उन्होंने शारीरिक बल, अस्त्र-बल, हाथोंकी फुर्ती और युद्धसम्बन्धी शिक्षाके द्वारा शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा, रथ और प्रासोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३ ॥

त एनं मुक्तसंनाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः।
शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ॥ ४ ॥

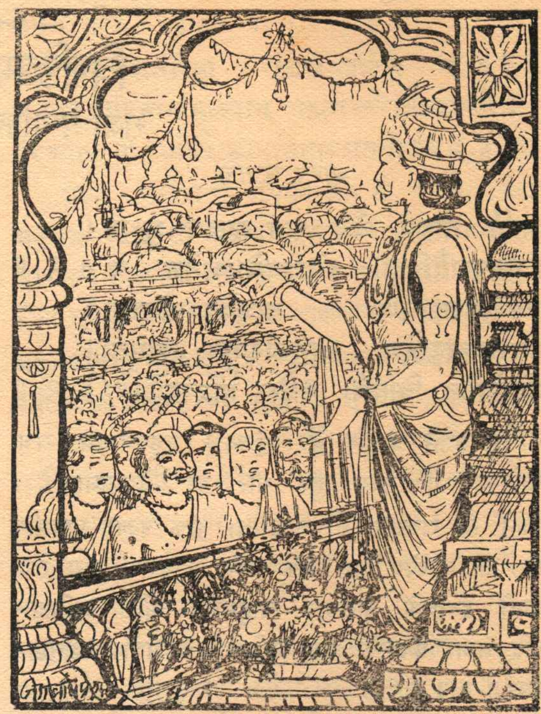
तब वे शत्रु अपने प्राण बचानेके लिये कवच खोलकर उनसे प्रार्थना करने लगे और हम सब प्रकारसे आपके हैं; ऐसा कहते हुए उन शरणदाता नरेशकी शरणमें चले गये ॥ ४ ॥

स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम्।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ॥ ५ ॥

अनघ ! इस प्रकार उन शत्रुओंको वशीभूत करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार सौ अभीष्ट यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ५ ॥

बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा।
तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः ॥ ६ ॥

उन यज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अन्य लोग भी सदा सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन करते और अत्यन्त आदर-सत्कार पाकर अत्यन्त संतुष्ट होते थे ॥ ६ ॥



मोदकान् पूरिकापूपान् स्वादपूर्णाश्च शष्कुलीः।
करम्भान् पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान्।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥

लड्डू, पूरी, पुए, स्वादिष्ट कचौड़ी, करम्भ, मोटे मुनक्के, तैयार अन्न, मैरेयक, अपूप, रागखाण्डव, पानक, शुद्ध एवं सुन्दर ढंगसे बने हुए मधुर और सुगन्धित भोज्य पदार्थ, घी, मधु, दूध, जल, दही, सरस वस्तुएँ तथा सुस्वादु फल, मूल वहाँ ब्राह्मणलोग भोजन करते थे ॥ ७–९ ॥

मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः सुखम्।
अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥

मादक वस्तुएँ पापजनक होती हैं, यह जानकर भी पीनेवाले लोग अपने सुखके लिये गीत और वाद्योंके साथ इच्छानुसार उनका पान करते थे ॥ १० ॥

तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीबा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥

पीकर मतवाले बने हुए सहस्रों मनुष्य वहाँ हर्षमें भरकर गाथा गाते, अम्बरीषकी स्तुतिसे युक्त कविताएँ पढ़ते और नृत्य करते थे ॥ ११ ॥

तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दश प्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥

उन यज्ञोंमें राजा अम्बरीषने दस लाख यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें दस लाख राजाओंको ही दे दिया था ॥ १२ ॥

हिरण्यकवचान् सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥

वे सब राजा सोनेके कवच धारण किये, श्वेत छत्र लगाये, सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुए तथा अपने अनुगामी सेवकों और आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न थे ॥ १३ ॥

ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥
सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उस विस्तृत यज्ञमें यजमान अम्बरीषने उन मूर्धाभिषिक्त नरेशों और सैकड़ों राजकुमारोंको दण्ड और खजानोंसहित ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥ १४½ ॥

नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १५ ॥
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥

महर्षिलोग उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनके कार्योंका अनुमोदन करते हुए कहते थे कि असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ कर रहे हैं, वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे कोई करेंगे ॥ १५–१६ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

राजा शशबिन्दुका चरित्र

नारद उवाच

शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! मेरे सुननेमें आया है कि राजा शशबिन्दुकी भी मृत्यु हो गयी थी । उन सत्यपराक्रमी श्रीमान् नरेशने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ॥ १ ॥

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥

महामना शशबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥

वे सभी राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे । वे राजा होनेपर दस लाख यज्ञ करनेका संकल्प ले प्रधान-प्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ३ ॥

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशबिन्दवः ॥ ४ ॥

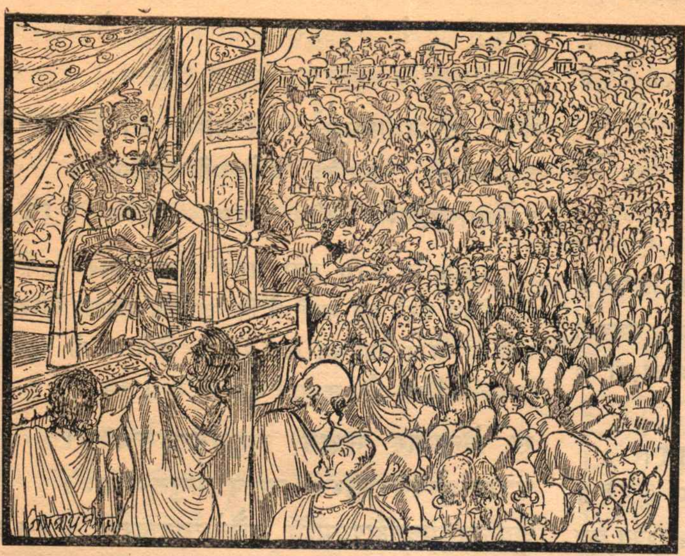
शशबिन्दुके उन सभी पुत्रोंने सोनेके कवच धारण कर रक्खे थे । वे सब उत्तम धनुर्धर थे और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ४ ॥

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥

पिता महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें अपने वे सभी पुत्र ब्राह्मणोंको दे डाले । एक-एक राजकुमारके पीछे सौ-सौ रथ और हाथी गये थे ॥ ५ ॥

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥

उस समय प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णभूषित सौ-सौ कन्याएँ थीं । एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी



और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ थे ॥ ६ ॥

रथे रथे शतं चाश्वा बलिनो हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥

हर एक रथके साथ सोनेके हारोंसे विभूषित सौ-सौ बलवान् अश्व थे । प्रत्येक अश्वके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा एक-एक गायके पीछे पचास-पचास भेंड़ें थीं ॥ ७ ॥

एतद् धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे ।
शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥

यह अपार धन महाभाग शशबिन्दुने अपने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था ॥ ८ ॥

वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे ।
ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥

उनके महायज्ञ अश्वमेधमें जितने काष्ठके यूप थे, वे तो ज्यों-के-त्यों थे ही, फिर उतने ही और सुवर्णमय यूप बनाये गये थे ॥ ९ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः ।
तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥

उस यज्ञमें भक्ष्य-भोज्य अन्न-पानके पर्वतोंके समान एक कोस ऊँचे ढेर लगे हुए थे । राजाका अश्वमेध-यज्ञ पूरा हो जानेपर अन्नके तेरह पर्वत बच गये थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम् ।
शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥

शशबिन्दुके राज्यकालमें यह पृथ्वी हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी थी । यहाँ कोई विघ्न-बाधा और रोग-व्याधि नहीं थी । शशबिन्दु इस वसुधाका दीर्घकालतक उपभोग करके अन्तमें स्वर्गलोकको चले गये ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रोंसे तो बहुत अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

राजा गयका चरित्र

नारद उवाच

गयं चामूर्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! राजा अमूर्तरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गयी है । राजा गयने सौ वर्षोंतक नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके होमावशिष्ट अन्नका ही भोजन किया ॥ १ ॥

तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात् ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाविहिंस्यान्यान् धनमिच्छामि चाक्षयम् ॥ ३ ॥
विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चास्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥

इससे प्रसन्न होकर अग्निदेवने उन्हें वर देनेकी इच्छा प्रकट की । (अग्निदेवकी आज्ञासे) गयने उनसे यह वरदान माँगा—'मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजनोंकी कृपासे वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ । दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना अपने धर्मके अनुसार चलकर अक्षय धन

पाना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंको दान देता रहूँ और इस कार्यमें प्रतिदिन मेरी अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ती रहे। अपने ही वर्णकी पतिव्रता कन्याओंसे मेरा विवाह हो और उन्हींके गर्भसे मेरे पुत्र उत्पन्न हों। अन्नदानमें मेरी श्रद्धा बढ़े तथा धर्ममें ही मेरा मन लगा रहे। अग्निदेव! मेरे धर्मसम्बन्धी कार्योंमें कभी कोई विघ्न न आवे' ॥ २–५ ॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत।
गयो ह्यवाप्य तत् सर्वं धर्मेणारीनजीजयत्‌ ॥ ६ ॥

'ऐसा ही होगा' यों कहकर अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा गयने वह सब कुछ पाकर धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पायी ॥ ६ ॥

स दर्शपौर्णमासाभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सरान्‌ शतम्‌।

राजाने यथासमय सौ वर्षोंतक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास, आग्रयण और चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये तथा उनमें प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ७½ ॥

गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाप्ययुतानि षट्‌।
उत्थायोत्थाय स प्रादात्‌ परिसंवत्सरान्‌ शतम्‌॥९॥

वे सौ वर्षोंतक प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे ॥ ८-९ ॥

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥

वे सोम और अङ्गिराकी भाँति सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें नक्षत्र-दक्षिणा देते हुए नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते थे ॥ १० ॥

सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम्‌।
विप्रेभ्यः प्राददद्‌ राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥

राजा गयने अश्वमेध नामक महायज्ञमें मणिमय रेतवाली सोनेकी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणोंको दान की थी ॥ ११ ॥

जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः।
गयस्यासन्‌ समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥

गयके यज्ञमें सम्पूर्ण यूप जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें रत्नोंसे विभूषित किया गया था। वे समृद्धिशाली यूप सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको हर लेते थे ॥ १२ ॥

सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥

राजा गयने यज्ञ करते समय हर्षसे उल्लसित हुए ब्राह्मणों तथा अन्य समस्त प्राणियोंको सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न उत्तम अन्न दिया था ॥ १३ ॥

स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन्‌ ॥ १४ ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः संतृप्ता यज्ञसम्पदा।
गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन्‌ ॥ १५ ॥

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, कानन, नगर, राष्ट्र, आकाश तथा स्वर्गमें जो नाना प्रकारके प्राणिसमुदाय रहते थे, वे उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहने लगे, राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है ॥ १४-१५ ॥

षट्त्रिंशद्‌ योजनायामा त्रिंशद्‌ योजनमायता।
पश्चात्‌ पुरश्चतुर्विंशद्‌ वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणिस्तृता।
प्रादात्‌ स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च॥१७॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः।

यजमान गयके यज्ञमें छत्तीस योजन लम्बी, तीस योजन चौड़ी और आगे-पीछे (अर्थात्‌ नीचेसे ऊपरको) चौबीस योजन ऊँची सुवर्णमयी वेदी बनवायी गयी थी*। उसके ऊपर हीरे-मोती एवं मणिरत्न बिछाये गये थे। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले गयने ब्राह्मणोंको वस्त्र, आभूषण तथा अन्य शास्त्रोक्त दक्षिणाएँ दी थीं ॥ १६-१७½ ॥

यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥

उस यज्ञमें खाने-पीनेसे बचे हुए अन्नके पचीस पर्वत शेष थे। रसोंको कौशलपूर्वक प्रवाहित करनेवाली कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ तथा वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित पदार्थोंकी विभिन्न राशियाँ भी उस समय शेष रह गयी थीं ॥१८-१९॥

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत्‌ ॥ २० ॥

उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये। साथ ही पुण्यको अक्षय्य करनेवाला अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मसरोवर भी उनके कारण प्रसिद्ध हो गये ॥



* एक विद्वान्‌ व्याख्याकारने ऐसे स्थलोंमें योजनका अर्थ 'बित्ता' माना है। इसके अनुसार वह वेदी १८ हाथ लंबी १५ हाथ चौड़ी और १२ हाथ ऊँची थी।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २१ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म-ज्ञानादि चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंके लिये क्या कहना है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये अनुताप न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

राजा रन्तिदेवकी महत्ता

नारद उवाच

सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः ।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! सुना है कि संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रह सके। उन महामना नरेशके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घरपर आये हुए ब्राह्मण अतिथियोंको अमृतके समान मधुर कच्चा-पक्का उत्तम अन्न दिन-रात परोसते रहते थे ॥ १-२ ॥

न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धनका दान किया और चारों वेदोंका अध्ययन करके धर्मके द्वारा समस्त शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददन्निष्कान् सौवर्णान् स प्रभावतः।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोंको सोनेके चमकीले निष्क देते हुए वे बार-बार प्रत्येक ब्राह्मणसे यही कहते थे कि यह निष्क तुम्हारे लिये है, यह निष्क तुम्हारे लिये है ॥ ४ ॥

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान् निष्कान् सहस्रशः।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ५ ॥

'तुम्हारे लिये, तुम्हारे लिये' कहकर वे हजारों निष्क दान किया करते थे। इतनेपर भी जो ब्राह्मण पाये बिना रह जाते, उन्हें पुनः आश्वासन देकर वे बहुत-से निष्क ही देते थे ॥ ५ ॥

अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत् सम्प्रदास्यति॥ ६ ॥

राजा रन्तिदेव एक दिनमें सहस्रों कोटि निष्क दान करके भी यह खेद प्रकट किया करते थे कि आज मैंने बहुत कम दान किया; ऐसा सोचकर वे पुनः दान देते थे। भला दूसरा कौन इतना दान दे सकता है ? ॥ ६ ॥

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न संदेह एवं राजाददद् वसु ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंके हाथका वियोग होनेपर मुझे सदा महान् दुःख होगा, इसमें संदेह नहीं है। यह विचारकर राजा रन्तिदेव बहुत धन दान करते थे ॥ ७ ॥

सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान्।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ ८ ॥

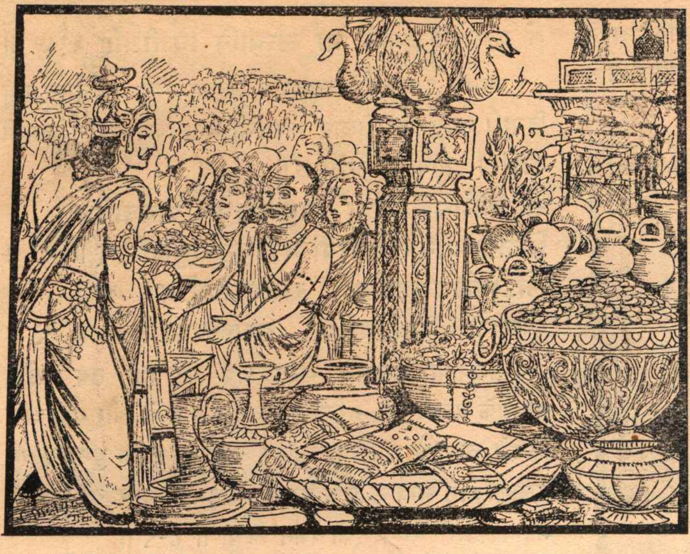
सृंजय ! एक हजार सुवर्णके बैल, प्रत्येकके पीछे सौ-सौ गायें और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ—इतने धनको निष्क कहते हैं ॥ ८ ॥

अध्यर्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ९ ॥

राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मणोंको (करोड़ों) निष्क दिया करते थे। इसके साथ अग्निहोत्रके उपकरण और यज्ञकी सामग्री भी होती थी। उनका यह नियम सौ वर्षोंतक चलता रहा ॥ ९ ॥

ऋषिभ्यः करकान् कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १० ॥
वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च।
सर्वं सौवर्णमेवासीद् रन्तिदेवस्य धीमतः ॥ ११ ॥

वे ऋषियोंको करवे, घड़े, बटलोई, पिठर, शय्या, आसन, सवारी, महल और घर, भाँति-भाँतिके वृक्ष तथा अन्न-धन दिया करते थे। बुद्धिमान् रन्तिदेवकी सारी देय वस्तुएँ सुवर्णमय ही होती थीं ॥ १०-११ ॥



समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस हजार गौएँ छूकर दान की जाती थीं ॥ १४½ ॥

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १५ ॥
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मासं यथा पुरा ।

वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किये रसोइये पुकार-पुकारकर कहते थे, आपलोग खूब दाल और कढ़ी खाइये । यह आज जैसी स्वादिष्ट बनी है, वैसी पहले एक महीनेतक नहीं बनी थी ॥ १५½ ॥

रन्तिदेवस्य यत् किंचित् सौवर्णमभवत् तदा ॥ १६ ॥

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥ १२ ॥

राजा रन्तिदेवकी वह अलौकिक समृद्धि देखकर पुराणवेत्ता पुरुष वहाँ इस प्रकार उनकी यशोगाथा गाया करते थे ॥ १२ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १३ ॥

हमने कुबेरके भवनमें भी पहले कभी ऐसा (रन्तिदेवके समान) भरा-पूरा धनका भंडार नहीं देखा है; फिर मनुष्योंके यहाँ तो हो ही कैसे सकता है ? ॥ १३ ॥

व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।

वास्तवमें रन्तिदेवकी समृद्धिका सारतत्त्व उनका सुवर्णमय राजभवन और स्वर्णराशि ही है । इस प्रकार विस्मित होकर लोग उस गाथाका गान करने लगे ॥ १३½ ॥

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥ १४ ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।

संकृतिपुत्र रन्तिदेवके यहाँ जिस रातमें अतिथियोंका

तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उन दिनों राजा रन्तिदेवके पास जो कुछ भी सुवर्णमयी सामग्री थी, वह सब उन्होंने उस विस्तृत यज्ञमें ब्राह्मणोंको बाँट दी ॥ १६½ ॥

प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १७ ॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः ।

उनके यज्ञमें देवता और पितर प्रत्यक्ष दर्शन देकर यथासमय हव्य और कव्य ग्रहण करते थे तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको पाते थे ॥ १७½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १८ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १९ ॥

श्वैत्य संजय ! वे रन्तिदेव चारों कल्याणमय गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या बात है । अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

राजा भरतका चरित्र

नारद उवाच

दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! दुष्यन्तपुत्र राजा भरतकी भी मृत्यु हुई सुनी गयी है, जिन्होंने शैशवावस्थामें ही वनमें ऐसे-ऐसे कर्म किये थे, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर है ॥ १ ॥

हिमावदातान् यः सिंहान् नखदंष्ट्रायुधान् बली ।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥ २ ॥

बलवान् भरत बाल्यावस्थामें ही नखों और दाढ़ोंसे

प्रहार करनेवाले बरफके समान सफेद रंगके सिंहोंको अपने बाहुबलके वेगसे पराजित एवं निर्बल करके उन्हें खींच लाते और बाँध देते थे ॥ २ ॥



क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान् दमित्वा चाकरोद् वशे।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३ ॥

वे अत्यन्त भयंकर और क्रूर स्वभाववाले व्याघ्रोंका दमन करके उन्हें अपने वशमें कर लेते थे। मैनसिलके समान पीली और लाक्षाराशिसे संयुक्त लाल रंगकी बड़ी-बड़ी शिलाओंको वे सुगमतापूर्वक हाथसे उठा लेते थे ॥ ३ ॥

व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद् वशे ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान् भरत सर्प आदि जन्तुओंको और सुप्रतीक जातिके गजराजोंके भी दाँत पकड़ लेते और उनके मुख सुखाकर उन्हें विमुख करके अपने अधीन कर लेते थे ॥

महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह।
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद् बलात् ॥ ५ ॥

भरतका बल असीम था। वे बलवान् भैंसों और सौ-सौ गर्वीले सिंहोंको भी बलपूर्वक घसीट लाते थे ॥ ५ ॥

बलिनः सृमरान् खड्गान् नानासत्त्वानि चाप्युत।
कृच्छ्रप्राणं वने बद्ध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥

बलवान् सामरों, गेंड़ों तथा अन्य नाना प्रकारके हिंसक जन्तुओंको वे वनमें बाँध लेते और उनका दमन करते-करते उन्हें अधमरा करके छोड़ते थे ॥ ६ ॥

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥

उनके इस कर्मसे ब्राह्मणोंने उनका नाम सर्वदमन रख दिया। माता शकुन्तलाने भरतको मना किया कि तू जंगली जीवोंको सताया न कर ॥ ७ ॥

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥

पराक्रमी महाराज भरत जब बड़े हुए, तब उन्होंने यमुनाके तटपर सौ, सरस्वतीके तटपर तीन सौ और गङ्गाजीके किनारे चार सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके पुनः उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया ॥ ८-९ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १० ॥
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान् धनैः।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः।

इसके बाद भरतने अग्निष्टोम और अतिरात्र याग करके विश्वजित् नामक यज्ञ किया। तत्पश्चात् सर्वथा सुरक्षित दस लाख वाजपेय यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करके महायशस्वी शकुन्तलाकुमार राजा भरतने धनद्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करते हुए आचार्य कण्वको विशुद्ध जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल भेंट किये ॥ १०-११½ ॥

यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः।

इन्द्र आदि देवताओंने वहाँ ब्राह्मणोंके साथ मिलकर राजा भरतके यज्ञमें सोनेके बने हुए सौ व्याम (चार सौ हाथ) लंबे सुवर्णमय यूपका आरोपण किया ॥ १२½ ॥

अलंकृतान् राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानुष्ट्रानजाविकम्।
दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४ ॥
ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान्।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः।

शत्रुविजयी, दूसरोंसे पराजित न होनेवाले अदीनचित्त चक्रवर्ती सम्राट् भरतने ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण मनोहर रत्नोंसे विभूषित, कान्तिमान् एवं सुवर्णशोभित घोड़े, हाथी, रथ, ऊँट, बकरी, भेड़, दास, दासी, धन-धान्य, दूध देनेवाली सवत्सा गायें, गाँव, घर, खेत तथा वस्त्राभूषण आदि नाना प्रकारकी सामग्री एवं दस लाख कोटि स्वर्णमुद्राएँ दी थीं ॥ १३—१५½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मृत्युसे बच न सके, तब दूसरे कैसे बच सकते हैं ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १६-१७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

राजा पृथुका चरित्र

नारद उवाच

पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! वेनके पुत्र राजा पृथु भी जीवित नहीं रह सके; यह हमने सुना है । महर्षियोंने राजसूय-यज्ञमें उन्हें सम्राट्के पदपर अभिषिक्त किया था ॥ १ ॥

यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥

'ये समस्त शत्रुओंको पराजित करके अपने प्रयत्नसे प्रथित (विख्यात) होंगे'—ऐसा महर्षियोंने कहा था । इसलिये वे 'पृथु' कहलाये । ऋषियोंने यह भी कहा कि 'ये क्षतसे हमारा त्राण करेंगे', इसलिये वे 'क्षत्रिय' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २ ॥

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥

वेनकुमार पृथुको देखकर प्रजाने कहा, हम इनमें अनुरक्त हैं । इसलिये उस प्रजारञ्जनजनित अनुरागके कारण उनका नाम 'राजा' हुआ ॥ ३ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद् वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥

वेननन्दन पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु हो गयी थी । उनके राज्यमें बिना जोते ही पृथ्वीसे अनाज पैदा होता था । उस समय सभी गौएँ कामधेनुके समान थीं । पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था ॥ ४ ॥

आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥

कुश सुवर्णमय होते थे । उनका स्पर्श कोमल था और वे सुखद जान पड़ते थे । उन्हींके चीर बनाकर प्रजा उनसे अपना शरीर ढकती थी तथा उन कुशोंकी ही चटाइयोंपर सोती थी ॥ ५ ॥

फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत् तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ६ ॥

वृक्षोंके फल अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट होते थे । उन दिनों उन फलोंका ही आहार किया जाता था । कोई भी भूखा नहीं रहता था ॥ ६ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥

सभी मनुष्य नीरोग थे । सबकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और उन्हें कहींसे भी कोई भय नहीं था । वे अपनी इच्छाके अनुसार वृक्षोंके नीचे और पर्वतोंकी गुफाओंमें निवास करते थे ॥ ७ ॥

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत् तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥

उस समय राष्ट्रों और नगरोंका विभाग नहीं था । सबको इच्छानुसार सुख और भोग प्राप्त थे । इससे यह सारी प्रजा प्रसन्न थी ॥ ८ ॥

तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते थे, तब पानी थम जाता था और पर्वत उन्हें जानेके लिये मार्ग दे देते थे । उनके रथकी ध्वजा कभी खण्डित नहीं हुई थी ॥ ९ ॥

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥ ११ ॥
देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥

एक दिन सुखपूर्वक बैठे हुए राजा पृथुके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सप्तर्षि, पुण्यजन (यक्ष), गन्धर्व, अप्सरा तथा पितरोंने आकर इस प्रकार कहा—'महाराज ! तुम हमारे सम्राट् हो, क्षत्रिय हो तथा राजा, रक्षक और पिता हो । तुम हमें अभीष्ट वर दो, जिससे हमलोग अनन्त कालतक तृप्ति और सुखका अनुभव करें । तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ १०—१२ ॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः।
शरांश्चाप्रतिमान् घोरांश्चिन्तयित्वाब्रवीन्महीम्॥१३॥

'बहुत अच्छा' ऐसा ही होगा, यह कहकर वेनकुमार पृथुने अपना आजगव नामक धनुष और जिनकी कहीं तुलना नहीं थी, ऐसे भयंकर बाण हाथमें ले लिये और कुछ सोचकर पृथ्वीसे कहा—॥ १३ ॥

एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः काङ्क्षितं पयः।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम्॥ १४॥

'वसुधे ! तुम्हारा कल्याण हो। आओ-आओ, इन प्रजाजनोंके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित दूधकी धारा बहाओ। तब मैं जिसका जैसा अभीष्ट अन्न है, उसे वैसा दे सकूँगा'॥१४॥

वसुधोवाच

दुहितृत्वेन मां वीर संकल्पयितुमर्हसि।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद् वशी॥ १५॥

वसुधा बोली—वीर ! तुम मुझे अपनी पुत्री मान लो, तब जितेन्द्रिय राजा पृथुने 'तथास्तु' कहकर वहाँ सारी आवश्यक व्यवस्था की॥ १५ ॥

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः॥ १६॥

तदनन्तर प्राणियोंके समुदायने उस समय वसुधाको दुहना आरम्भ किया। सबसे पहले दूधकी इच्छावाले वनस्पति उठे॥ १६ ॥

सातिष्ठद् वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती।
वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाभवत् तदा १७
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम्।

उस समय गोरूपधारिणी पृथ्वी वात्सल्य-स्नेहसे परिपूर्ण हो बछड़े, दुहनेवाले और दुग्धपात्रकी इच्छा करती हुई खड़ी हो गयी। वनस्पतियोंमेंसे खिला हुआ शालवृक्ष बछड़ा हो गया। पाकरका पेड़ दुहनेवाला बन गया। गूलर सुन्दर दुग्धपात्रका काम देने लगा। कटनेपर पुनः पनप जाना यही दूध था॥ १७½ ॥

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः॥ १८॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा।

पर्वतोंमें उदयाचल बछड़ा, महागिरि मेरु दुहनेवाला, रत्न और ओषधि दूध तथा प्रस्तर ही दुग्धपात्र था॥ १८½॥

दोग्धा चासीत् तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम्॥१९॥

देवताओंमें भी उस समय कोई दुहनेवाला और कोई बछड़ा बन गया। उन्होंने पुष्टिकारक अमृतमय प्रिय दूध दुह लिया१९

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद् वत्सश्चासीद् विरोचनः॥२०॥

असुरोंने कच्चे बर्तनमें मायामय दूधका ही दोहन किया। उस समय द्विमूर्धा दुहनेवाला और विरोचन बछड़ा बना था॥

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाभवत् पृथुः॥२१॥

भूतलके मनुष्योंने कृषिकर्म और खेतीकी उपजको ही दूधके रूपमें दुहा। उनके बछड़ेके स्थानपर स्वायम्भू मनु थे और दुहनेका कार्य पृथुने किया॥ २१ ॥

अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुंधरा।
धृतराष्ट्रोऽभवद् दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः॥ २२॥

सर्पोंने तुम्बीके बर्तनमें पृथ्वीसे विषका दोहन किया। उनकी ओरसे दुहनेवाला धृतराष्ट्र और बछड़ा तक्षक था॥२२॥

सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट्॥ २३॥

अक्लिष्टकर्मा सप्तर्षियोंने ब्रह्म (वेद एवं तप) का दोहन किया। उनके दोग्धा बृहस्पति, पात्र छन्द और बछड़ा राजा सोम थे॥ २३ ॥

अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट्।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः॥ २४॥

यक्षोंने कच्चे बर्तनमें पृथ्वीसे अन्तर्धान विद्याका दोहन किया। उनके दोग्धा कुबेर और बछड़ा महादेवजी थे॥२४॥

पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः॥ २५॥

गन्धर्वों और अप्सराओंने कमलके पात्रमें पवित्र गन्धको ही दूधके रूपमें दुहा। उनका बछड़ा चित्ररथ और दुहनेवाले गन्धर्वराज विश्वरुचि थे॥ २५ ॥

स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम्।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धान्तकस्तदा॥ २६॥

पितरोंने पृथ्वीसे चाँदीके पात्रमें स्वधारूपी दूधका दोहन किया। उस समय उनकी ओरसे वैवस्वत यम बछड़ा और अन्तक दुहनेवाले थे॥ २६ ॥

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट्।
यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः॥ २७॥

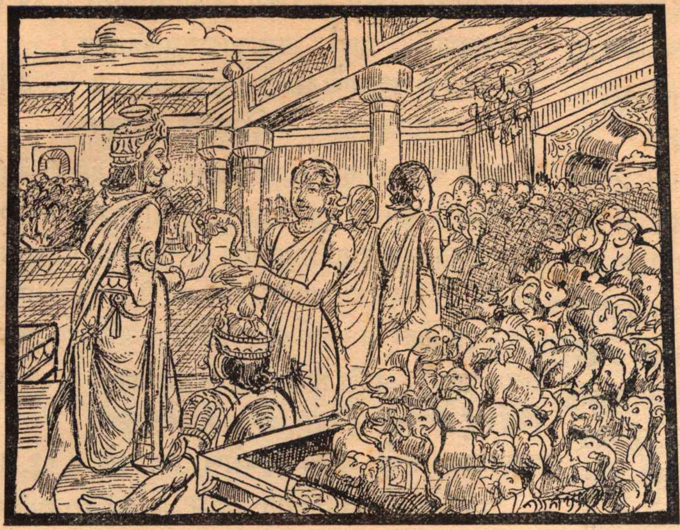
संजय ! इस प्रकार सभी प्राणियोंने बछड़ों और पात्रोंकी कल्पना करके पृथ्वीसे अपने अभीष्ट दूधका दोहन किया था, जिससे वे आजतक निरन्तर जीवन-निर्वाह करते हैं॥ २७ ॥

यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।
संतर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः॥ २८॥

तदनन्तर प्रतापी वेनकुमार पृथुने नाना प्रकारके यज्ञों-द्वारा यजन करके मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराकर सब प्राणियोंको तृप्त किया॥ २८ ॥

हैरण्यानकरोद् राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि।
तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे॥ २९॥

भूतलपर जो कोई भी पार्थिव पदार्थ हैं, उनकी सोनेकी आकृति बनवाकर राजा पृथुने महायज्ञ अश्वमेधमें उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया॥ २९ ॥



षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ॥ ३० ॥

राजाने छाछठ हजार सोनेके हाथी बनवाये और उन्हें ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३० ॥

इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥

राजा पृथुने इस सारी पृथ्वीकी भी मणि तथा रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमयी प्रतिमा बनवायी और उसे ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३१ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्य-मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ३२॥

श्वैत्य सृंजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या गिनती है ! अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

परशुरामजीका चरित्र

नारद उवाच

**रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥**

नारदजी कहते हैं—संजय ! महातपस्वी शूरवीर, वीरजनवन्दित महायशस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी अतृप्त अवस्थामें ही मौतके मुखमें चले जायँगे ॥ १ ॥

**यः स्माद्यमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद् विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥**

जिन्होंने इस पृथ्वीको सुखमय बनाते हुए आदि युगके धर्मका जहाँ निरन्तर प्रचार किया था तथा परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर भी जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं आया ॥ २ ॥

**यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत् कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥**

जब क्षत्रियोंने गायके बछड़ेको पकड़ लिया और पिता जमदग्निको मार डाला, तब जिन्होंने मौन रहकर ही समरभूमिमें दूसरोंसे कभी पराजित न होनेवाले कृतवीर्यकुमार अर्जुनका वध किया था ॥ ३ ॥

**क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥**

उस समय मरने-मारनेका निश्चय करके एकत्र हुए चौंसठ करोड़ क्षत्रियोंको उन्होंने एकमात्र धनुषके द्वारा जीत लिया ॥ ४ ॥

**ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यानि जग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५ ॥**

उसी युद्धके सिलसिलेमें परशुरामजीने चौदह हजार दूसरे ब्रह्मद्रोहियोंका दमन किया और दन्तक्रूर नामक राजाको भी मार डाला ॥ ५ ॥

**सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् ।
उद्बन्धनात् सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥**

उन्होंने एक सहस्र क्षत्रियोंको मूसलसे मार गिराया, एक सहस्र राजपूतोंको तलवारसे काट डाला, फिर एक सहस्र क्षत्रियोंको वृक्षोंकी शाखाओंमें फाँसीपर लटकाकर मार डाला और पुनः एक सहस्रको पानीमें डुबो दिया ॥ ६ ॥

**दन्तान् भङ्क्त्वा सहस्रस्य कर्णान् नासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥**

एक सहस्र राजपूतोंके दाँत तोड़कर नाक और कान काट डाले तथा सात हजार राजाओंको कड़ुवा धूप पिला दिया ॥

शिष्टान् बद्ध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद् दक्षिणेन च।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥ ८ ॥
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥

शेष क्षत्रियोंको बाँधकर उनका वध कर डाला। उनमेंसे कितनोंके ही मस्तक विदीर्ण कर डाले। गुणावतीसे उत्तर और खाण्डव वनसे दक्षिण पर्वतके निकटवर्ती प्रदेशमें लाखों हैहयवंशी क्षत्रिय वीर पिताके वधसे कुपित हुए बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा समरभूमिमें मारे गये। वे अपने रथ, घोड़े और हाथियोंसहित मारे जाकर वहाँ धराशायी हो गये ॥

निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा।
न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः।

परशुरामजीने उस समय अपने फरसेसे दस हजार क्षत्रियों-को काट डाला। आश्रमवासियोंने आर्तभावसे जो बातें कही थीं, वहाँके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने 'भृगुवंशी परशुराम! दौड़ो, बचाओ' इस प्रकार कहकर जो करुण क्रन्दन किया था, उनकी वह कातर पुकार परशुरामजीसे नहीं सही गयी ॥ १०½ ॥

ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान्।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥ १२ ॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान् देशान् सहस्रशः।
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

तदनन्तर प्रतापी परशुरामने काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग, कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि तथा अन्य सहस्रों देशोंके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया ॥

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।

सहस्रों और लाखों कोटि क्षत्रियोंके इन्द्रगोप (वीर-बहूटी) नामक कीट तथा बन्धुजीव (दुपहरिया)-पुष्पके समान रंगवाले रक्तकी धाराओंसे भृगुनन्दन परशुरामने कितने ही तालाब भर दिये और समस्त अठारह द्वीपोंको अपने वशमें करके उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १४-१५½ ॥

वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम्।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः।

उस यज्ञमें विधिपूर्वक बत्तीस हाथ ऊँची सोनेकी वेदी बनायी गयी थी, जो सब प्रकारके सैकड़ों रत्नोंसे परिपूर्ण और सौ पताकाओंसे सुशोभित थी। जमदग्निनन्दन परशुराम-की उस वेदीको तथा ग्रामीण और जंगली पशुओंसे भरी-पूरी इस पृथ्वीको भी महर्षि कश्यपने दक्षिणारूपसे ग्रहण किया॥

ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम्।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥

उस समय परशुरामजीने लाखों गजराजोंको सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करके तथा पृथ्वीको चोर-डाकुओंसे सूनी और साधु पुरुषोंसे-भरी पूरी करके महायज्ञ अश्वमेधमें कश्यपजीको दे दिया ॥ १८-१९ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥

वीर एवं शक्तिशाली परशुरामजीने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य करके सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया और इस वसुधाको ब्राह्मणोंके अधिकारमें दे दिया॥

सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ॥ २१ ॥

ब्रह्मर्षि कश्यपने जब सातों द्वीपोंसे युक्त यह पृथ्वी दान-में ले ली, तब उन्होंने परशुरामजीसे कहा—'अब तू मेरी आज्ञासे इस पृथ्वीसे निकल जाओ' (और कहीं अन्यत्र जाकर रहो) ॥ २१ ॥

स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम्।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
अध्यावसद् गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम्।

कश्यपके इस आदेशसे योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामने जितनी दूर बाण फेंका जा सकता है, समुद्रको उतनी ही दूर पीछे हटाकर ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करते हुए उत्तम पर्वत गिरिश्रेष्ठ महेन्द्रपर निवास किया ॥ २२½ ॥

एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः।

इस प्रकार भृगुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महायशस्वी, महातेजस्वी और सैकड़ों गुणोंसे सम्पन्न जमदग्निनन्दन परशुराम भी एक-न-एक दिन मरेंगे ही ॥ २३½ ॥

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।

संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा हैं । अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो ॥

एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

नरश्रेष्ठ संजय ! अबतक जिन लोगोंका वर्णन किया गया है, ये चतुर्विध कल्याणकारी गुणोंमें तो तुमसे बढ़कर थे ही, तुम्हारी अपेक्षा उनमें सैकड़ों मङ्गलकारी गुण अधिक भी थे; तथापि वे मर गये और जो विद्यमान हैं, वे भी मरेंगे ही ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

नारदजीका सृंजयके पुत्रको जीवित करना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अन्तर्धान होना

व्यास उवाच

पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ॥ १ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इन सोलह राजाओंका पवित्र एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला उपाख्यान सुनकर राजा सृंजय कुछ भी नहीं बोलते हुए मौन रह गये ॥ १ ॥

तमब्रवीत् तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २ ॥

उन्हें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख भगवान् नारदमुनिने उनसे पूछा—'महातेजस्वी नरेश ! मैंने जो कुछ कहा है, उसे तुमने सुना और समझा है न ? ॥ २ ॥

आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ ३ ॥

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि जैसे शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको दिया हुआ श्राद्धका दान नष्ट (निष्फल) हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह सारा कहना अन्ततोगत्वा व्यर्थ हो गया हो ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर उस समय संजयने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—॥ ३ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम् ।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा ।
विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥

'महाबाहु महर्षे ! यज्ञ करने और दक्षिणा देनेवाले प्राचीन राजर्षियोंका यह परम उत्तम सराहनीय उपाख्यान सुनकर मुझे ऐसा विस्मय हुआ है कि उसने मेरा सारा शोक हर लिया है । ठीक उसी तरह, जैसे सूर्यका तेज सारा अन्धकार हर लेता है । अब मैं पाप (दुःख) और व्यथासे शून्य हो गया हूँ । बताइये, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ' ॥

नारद उवाच

दिष्ट्यापहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
तत् तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया । अब तुम्हारी जो इच्छा हो, यहाँ मुझसे माँग लो । तुम्हारी वह सारी अभिलषित वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायगी । हमलोग झूठ नहीं बोलते हैं ॥ ६ ॥

सृंजय उवाच

एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान् मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

सृंजयने कहा—मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ । जिसपर आप प्रसन्न हों, उसे इस जगत्में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ७ ॥

नारद उवाच

मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! लुटेरोंने तुम्हारे पुत्रको प्रोक्षित पशुकी भाँति व्यर्थ ही मार डाला है । तुम्हारे उस मरे हुए पुत्रको मैं कष्टप्रद नरकसे निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रादुरासीत् ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः ।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! नारदजीके इतना कहते ही सृंजयका अद्भुत कान्तिमान् पुत्र वहाँ प्रकट हो गया । उसे ऋषिने प्रसन्न होकर राजाको दिया था । वह देखनेमें कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था ॥ ९ ॥

ततः संगम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥

अपने उस पुत्रसे मिलकर राजा सृंजयको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पुण्यमय यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया ॥ १० ॥

अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः ।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥

सृंजयका पुत्र कवच बाँधकर युद्धमें लड़ता हुआ नहीं

मारा गया था। उसे अकृतार्थ और भयभीत अवस्थामें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़ा था। वह यज्ञकर्मसे रहित और संतानहीन भी था। इसलिये नारदजीने पुनः उसे जीवित कर दिया था ॥ ११ ॥

शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्यारीन् सहस्रशः।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥

परंतु शूरवीर अभिमन्यु तो कृतार्थ हो चुका है। वह वीर शत्रुसेनाके सम्मुख युद्धतत्पर हो सहस्रों वैरियोंको संतप्त करके मारा गया और स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है ॥१२॥

ब्रह्मचर्येण यान् कांश्चित् प्रज्ञया च श्रुतेन च।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान् गतः ॥ १३ ॥

पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मचर्यपालन, उत्तम ज्ञान, वेद-शास्त्रोंके स्वाध्याय तथा यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिन किन्हीं लोकोंमें जाते हैं, उन्हीं अक्षय लोकोंमें तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु भी गया है ॥ १३ ॥

विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः।
न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥

विद्वान् पुरुष पुण्यकर्मोंद्वारा सदा स्वर्गलोकमें जानेकी इच्छा करते हैं; परंतु स्वर्गवासी पुरुष स्वर्गसे इस लोकमें आनेकी कामना नहीं करते हैं ॥ १४ ॥

तस्मात् स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे।
न चेहानयितुं शक्यं किंचिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५ ॥

अर्जुनका पुत्र युद्धमें मारे जानेके कारण स्वर्गलोकमें गया हुआ है। अतः उसे यहाँ नहीं लाया जा सकता। कोई अप्राप्य वस्तु केवल इच्छा करनेमात्रसे नहीं सुलभ हो सकती ॥ १५ ॥

यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः
प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः।
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा
तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥

जिन्होंने ध्यानके द्वारा पवित्र ज्ञानमयी दृष्टि प्राप्त कर ली है, वे योगी निष्कामभावसे उत्तम यज्ञ करनेवाले पुरुष तथा अपनी उज्ज्वल तपस्याओंद्वारा तपस्वी मुनि जिस अक्षय गतिको पाते हैं, तुम्हारे पुत्रने भी वही गति प्राप्त की है॥

अन्तात् पुनर्भावगतो विराजते
राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां
गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥

वीर अभिमन्यु मृत्युके पश्चात् पुनः पूर्वभावको प्राप्त होकर चन्द्रमासे उत्पन्न अपने द्विजोचित शरीरमें प्रतिष्ठित हो अपनी अमृतमयी किरणोंसे राजा सोमके समान प्रकाशित हो रहा है। अतः उसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये॥

एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन् धैर्यमाप्नुहि।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ ॥ १८ ॥

राजन्! ऐसा जानकर सुस्थिर हो धैर्यका आश्रय लो और उत्साहपूर्वक शत्रुओंका वध करो। अनघ! हमें इस संसारमें जीवित पुरुषोंके लिये ही शोक करना चाहिये। जो स्वर्गमें चला गया है, उसके लिये शोक करना उचित नहीं है॥

शोचतो हि महाराज अघमेवाभिवर्धते।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥ १९ ॥
प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन्।

महाराज! शोक करनेसे केवल दुःख ही बढ़ता है। अतः विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट हर्ष, अतिशय सम्मान और सुख-प्राप्तिका चिन्तन करते हुए शोकका परित्याग करके अपने कल्याणके लिये ही प्रयत्न करे ॥ १९½ ॥

एतद् बुद्ध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥२०॥

यही सब सोच-समझकर ज्ञानवान् पुरुष शोक नहीं करते हैं। शोकको शोक नहीं कहते हैं (उसका अनुभव करनेवाला मन ही शोकरूप होता है) ॥ २० ॥

एवं विद्वान् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः।
श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१ ॥

राजन्! ऐसा जानकर तुम युद्धके लिये उठो। मन और इन्द्रियोंको संयममें रक्खो तथा शोक न करो। तुमने मृत्युकी उत्पत्ति और उसकी अनुपम तपस्याका वृत्तान्त सुन लिया है ॥ २१ ॥

सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं संजीवितं पुनः ॥ २२ ॥

मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियोंको समभावसे प्राप्त होती है और धन-ऐश्वर्य चञ्चल है—यह बात भी जान ली है। सृंजयका पुत्र मरा और पुनः जीवित हुआ, यह कथा भी तुमने सुन ही ली है ॥ २२ ॥

एवं विद्वान् महाराज मा शुचः साधयाम्यहम्।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३ ॥

महाराज! यह सब तुम जानते हो। अतः शोक न करो। अब मैं अपनी साधनामें लग रहा हूँ। ऐसा कहकर भगवान् व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २३ ॥

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम्।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान् विशोकोऽभूद् युधिष्ठिरः।
पुनश्चाचिन्तयद् दीनः किंस्विद् वक्ष्ये धनंजयम् ॥२६॥

बिना बादलके आकाशकी-सी कान्तिवाले, बुद्धिमानोंमें

श्रेष्ठ वागीश्वर भगवान् व्यास जब युधिष्ठिरको आश्वासन देकर चले गये, तब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी और न्यायसे धन प्राप्त करनेवाले प्राचीन राजाओंके उस यज्ञ-वैभवकी कथा सुनकर विद्वान् युधिष्ठिर मन-ही-मन उनके प्रति आदरकी भावना करते हुए शोकसे रहित हो गये। तदनन्तर फिर दीनभावसे यह सोचने लगे कि अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

(प्रतिज्ञापर्व)

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

अभिमन्युकी मृत्युके कारण अर्जुनका विषाद और क्रोध

(धृतराष्ट्र उवाच

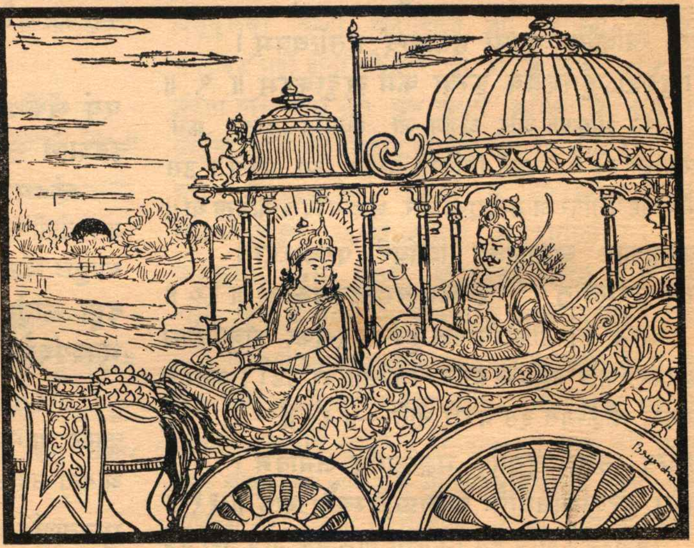
अथ संशप्तकैः सार्धं युध्यमाने धनंजये ।
अभिमन्यौ हते चापि बाले बलवतां वरे ॥
महर्षिसत्तमे याते युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
पाण्डवाः किमथाकार्षुः शोकेन हतचेतसः ॥
कथं संशप्तकेभ्यो वा निवृत्तो वानरध्वजः ।
केन वा कथितस्तस्य प्रशान्तः सुतपावकः ॥
एतन्मे शंस तत्त्वेन सर्वमेवेह संजय ।)

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहे थे, जब बलवानोंमें श्रेष्ठ बालक अभिमन्यु मारा गया और जब महर्षियोंमें श्रेष्ठ व्यास (युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर) चले गये, तब शोकसे व्याकुल चित्तवाले युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवोंने क्या किया ? कपिध्वज अर्जुन संशप्तकोंकी ओरसे कैसे लौटे तथा किसने उनसे कहा कि तुम्हारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र सदाके लिये शान्त हो गया। इन सब बातोंको तुम यथार्थ-रूपसे मुझे बताओ ॥

संजय उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान् संध्याकाल उपस्थिते ॥ १ ॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥ २ ॥
प्रायात् स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

संजय बोले—भरतश्रेष्ठ ! प्राणधारियोंका संहार करनेवाले उस भयङ्कर दिनके बीत जानेपर जब सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और संध्याकाल उपस्थित हुआ, उस समय समस्त सैनिक जब शिबिरमें विश्रामके लिये चल दिये, तब विजयशील श्रीमान् कपिध्वज अर्जुन अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा संशप्तकसमूहोंका वध करके अपने उस विजयी रथपर बैठे हुए शिबिरकी ओर चले। चलते-चलते ही वे अश्रुगद्गदकण्ठ हो भगवान् गोविन्दसे इस प्रकार बोले—॥ १-३ ॥



किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक् च सज्जति केशव ।
स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाप्युत ॥ ४ ॥

'केशव ! न जाने क्यों आज मेरा हृदय धड़क रहा है, वाणी लड़खड़ा रही है, अनिष्टसूचक बायें अङ्ग फड़क रहे हैं और शरीर शिथिल होता जा रहा है ॥ ४ ॥

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति ।
भुवि ये दिक्षु चाप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥

'मेरे हृदयमें अनिष्टकी चिन्ता घुसी हुई है, जो किसी प्रकार वहाँसे निकलती ही नहीं है। पृथ्वीपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले भयंकर उत्पात मुझे डरा रहे हैं ॥ ५ ॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्वे एवाघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद् राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

'ये उत्पात अनेक प्रकारके दिखायी देते हैं और सब-के-सब भारी अमङ्गलकी सूचना दे रहे हैं । क्या मेरे पूज्य भ्राता राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल होंगे ?' ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच

व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किञ्चिदेवान्यत् तत्रानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! शोक न करो । मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि मन्त्रियोंसहित तुम्हारे भाईका कल्याण ही होगा । इस अपशकुनके अनुसार कोई दूसरा ही अनिष्ट हुआ होगा ॥ ७ ॥

संजय उवाच

ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वे दोनों वीर उस वीरसंहारक रणभूमिमें संध्या-वन्दन करके पुनः रथपर बैठकर युद्धसम्बन्धी बातें करते हुए आगे बढ़े ॥ ८ ॥

ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन जो अत्यन्त दुष्कर कर्म करके आ रहे थे, अपने शिबिरके निकट आ पहुँचे । उस समय वह शिबिर आनन्दशून्य और श्रीहीन दिखायी देता था ॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥

अपनी छावनीको विध्वस्त हुई-सी देखकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनका हृदय चिन्तित हो उठा । अतः वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

नदन्ति नाद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह ॥ ११ ॥

'जनार्दन ! आज इस शिबिरमें माङ्गलिक बाजे नहीं बज रहे हैं । दुन्दुभि-नाद तथा तुरहीके शब्दोंके साथ मिली हुई शङ्खध्वनि भी नहीं सुनायी देती है ॥ ११ ॥

वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह ।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥ १२ ॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः ।

'ढाक और करतारकी ध्वनिके साथ आज वीणा भी नहीं बज रही है । मेरी सेनाओंमें वन्दीजन न तो मङ्गलगीत गा रहे हैं और न स्तुतियुक्त मनोहर श्लोकोंका ही पाठ करते हैं ॥ १२½ ॥

योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥

'मेरे सैनिक मुझे देखकर नीचे मुख किये लौट जाते हैं । पहलेकी भाँति अभिवादन करके मुझसे युद्धका समाचार नहीं बता रहे हैं । माधव ! क्या आज मेरे भाई सकुशल होंगे ? ॥ १३-१४ ॥

न हि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत ।

'आज इन स्वजनोंको व्याकुल देखकर मेरे हृदयकी आशंका नहीं दूर होती है । दूसरोंको मान देनेवाले अच्युत श्रीकृष्ण ! राजा द्रुपद, विराट तथा मेरे अन्य सब योद्धाओंका समुदाय तो सकुशल होगा न ? ॥ १५½ ॥

न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥

'आज प्रतिदिनकी भाँति सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हर्षमें भरकर हँसता हुआ-सा युद्धसे लौटते हुए मेरी उचित अगवानी करने नहीं आ रहा है (इसका क्या कारण है ?)' ॥ १६ ॥

संजय उवाच

एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान् पाण्डवान् नष्टचेतसः ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार बातें करते हुए उन दोनोंने शिबिरमें पहुँचकर देखा कि पाण्डव अत्यन्त व्याकुल और हतोत्साह हो रहे हैं ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा भ्रातृंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

भाइयों तथा पुत्रोंको इस अवस्थामें देख और सुभद्राकुमार अभिमन्युको वहाँ न पाकर कपिध्वज अर्जुनका मन अत्यन्त उदास हो गया तथा वे इस प्रकार बोले—॥ १८ ॥

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥

'आज आप सभी लोगोंके मुखकी कान्ति अप्रसन्न दिखायी दे रही है, इधर मैं अभिमन्युको नहीं देख पाता हूँ और आपलोग भी मुझसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप नहीं कर रहे हैं ॥ १९ ॥

मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥

'मैंने सुना है कि आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहकी रचना की थी । आपलोगोंमेंसे बालक अभिमन्युके सिवा दूसरा कोई उस व्यूहका भेदन नहीं कर सकता था ॥ २० ॥

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद् विनिर्गमः।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः॥ २१॥

'परंतु मैंने उसे उस व्यूहसे निकलनेका ढंग अभी नहीं बताया था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आपलोगोंने उस बालकको शत्रुके व्यूहमें भेज दिया हो ?॥ २१॥

भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा॥ २२॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्यु युद्धमें शत्रुओंके उस व्यूहका अनेकों बार भेदन करके अन्तमें वहीं मारा तो नहीं गया ?॥ २२॥

लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः॥ २३॥

'पर्वतोंमें उत्पन्न हुए सिंहके समान लाल नेत्रोंवाले, श्रीकृष्णतुल्य पराक्रमी महाबाहु अभिमन्युके विषयमें आप लोग बतावें। वह युद्धमें किस प्रकार मारा गया ?॥ २३॥

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम्।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः॥ २४॥

'इन्द्रके पौत्र तथा मुझे सदा प्रिय लगनेवाले सुकुमार शरीर महाधनुर्धर अभिमन्युके विषयमें बताइये। वह युद्धमें कैसे मारा गया ?॥ २४॥

सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत् कालमोहितः॥ २५॥

'सुभद्रा और द्रौपदीके प्यारे पुत्र अभिमन्युको, जो श्रीकृष्ण और माता कुन्तीका सदा दुलारा रहा है, किसने कालसे मोहित होकर मारा है ?॥ २५॥

सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः॥ २६॥

'वृष्णिकुलके वीर महात्मा केशवके समान पराक्रमी, शास्त्रज्ञ और महत्त्वशाली अभिमन्यु युद्धमें किस प्रकार मारा गया है ?॥ २६॥

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम्।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्॥ २७॥

'सुभद्राके प्राणप्यारे शूरवीर पुत्रको, जिसको मैंने सदा लाड़-प्यार किया है, यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोक चला जाऊँगा॥ २७॥

मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम्।
मत्तद्विरदविक्रान्तं शालपोतमिवोद्गतम्॥ २८॥
स्मिताभिभाषिणं शान्तं गुरुवाक्यकरं सदा।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम्॥ २९॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम्।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम्॥ ३०॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम्।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम्॥ ३१॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम्।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम्॥ ३२॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्।

'जिसके केशप्रान्त कोमल और घुँघराले थे, दोनों नेत्र मृगछौनेके समान चञ्चल थे, जिसका पराक्रम मतवालेहाथीके समान और शरीर नूतन शालवृक्षके समान ऊँचा था, जो मुसकराकर बातें करता था, जिसका मन शान्त था, जो सदा गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करता था, बाल्यावस्थामें भी जिसके पराक्रमकी कोई तुलना नहीं थी, जो सदा प्रिय वचन बोलता और किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता था, जिसमें महान् उत्साह भरा था, जिसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और दोनों नेत्र विकसित कमलके समान सुन्दर एवं विशाल थे, जो भक्त-जनोंपर दया करता, इन्द्रियोंको वशमें रखता और नीच पुरुषोंका साथ कभी नहीं करता था, जो कृतज्ञ, ज्ञानवान्, अस्त्र-विद्यामें पारङ्गत, युद्धसे मुँह न मोड़नेवाला, युद्धका अभिनन्दन करनेवाला तथा सदा शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था, जो स्वजनोंके प्रिय और हितमें तत्पर तथा अपने पितृकुलकी विजय चाहनेवाला था, संग्राममें जिसे कभी घबराहट नहीं होती थी और जो शत्रुपर पहले प्रहार नहीं करता था, अपने उस पुत्र बालक अभिमन्युको यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोककी राह लूँगा॥ २८–३२½॥

रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम्॥ ३३॥
मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम्।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च॥ ३४॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम्।

'रथियोंकी गणना होते समय जो महारथी गिना गया था, जिसे युद्धमें मेरी अपेक्षा ड्योढ़ा समझा जाता था तथा अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाला जो तरुण वीर प्रद्युम्न-को, श्रीकृष्णको और मुझे भी सदैव प्रिय था, उस पुत्रको यदि मैं नहीं देखूँगा तो यमराजके लोकमें चला जाऊँगा॥

सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम्॥ ३५॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे।

'जिसकी नासिका, ललाटप्रान्त, नेत्र, भौंह तथा ओष्ठ—ये सभी परम सुन्दर थे, अभिमन्युके उस मुखको न देखने-पर मेरे हृदयमें क्या शान्ति होगी ?॥ ३५½॥

तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम्॥ ३६॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे।

'अभिमन्युका स्वर वीणाकी ध्वनिके समान सुखद, मनोहर तथा कोयलकी काकलीके तुल्य मधुर था। उसे न सुननेपर मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ?॥ ३६½॥

रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। देवताओंके लिये भी वैसा रूप दुर्लभ है। यदि वीर अभिमन्युके उस रूपको नहीं देख पाता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३७½ ॥

अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'प्रणाम करनेमें कुशल और पितृवर्गकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर अभिमन्युको यदि आज मैं नहीं देखता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३८½ ॥

सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।

'जो सदा बहुमूल्य शय्यापर सोनेके योग्य और सुकुमार था, वह सनाथशिरोमणि वीर अभिमन्यु आज निश्चय ही अनाथकी भाँति पृथ्वीपर सो रहा है ॥ ३९½ ॥

शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।

'आजसे पहले सोते समय परम सुन्दरी स्त्रियाँ जिसकी उपासना करती थीं, अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वीपर पड़े हुए उस अभिमन्युके पास आज अमङ्गलजनक शब्द करनेवाली सियारिनें बैठी होंगी ॥ ४०½ ॥

यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।

'जिसे पहले सो जानेपर सूत, मागध और बन्दीजन जगाया करते थे, उसी अभिमन्युको आज निश्चय ही हिंसक जन्तु अपने भयंकर शब्दोंद्वारा जगाते होंगे ॥ ४१½ ॥

छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद् वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।

'उसका वह सुन्दर मुख सदा छत्रकी छायामें रहने योग्य था; परंतु आज युद्धभूमिमें उड़ती हुई धूल उसे आच्छादित कर देगी ॥ ४२½ ॥

हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।

'हा पुत्र ! मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ। निरन्तर तुम्हें देखते रहनेपर भी मुझे तृप्ति नहीं होती थी, तो भी काल आज बलपूर्वक तुम्हें मुझसे छीनकर लिये जा रहा है ॥ ४३½ ॥

सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
स्वभाभिर्भासिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते ।

'निश्चय ही वह संयमनी पुरी सदा पुण्यवानोंका आश्रय है; जो आज अपनी प्रभासे प्रकाशित और मनोहारिणी होती हुई भी तुम्हारे द्वारा अत्यन्त उद्भासित हो उठी होगी ॥ ४४½ ॥

नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।

'अवश्य ही आज वैवस्वत यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर वहाँ तुम-जैसे निर्भय वीरको अपने प्रिय अतिथिके रूपमें पाकर तुम्हारा बड़ा आदर-सत्कार करते होंगे' ॥ ४५½ ॥

एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग् यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।

इस प्रकार बारंबार विलाप करके टूटे हुए जहाजवाले व्यापारीकी भाँति महान् दुःखसे व्याप्त हो अर्जुनने युधिष्ठिरसे इस प्रकार पूछा—॥ ४६½ ॥

कच्चित् स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।

'कुरुनन्दन ! क्या उन श्रेष्ठ वीरोंके साथ युद्ध करता हुआ अभिमन्यु रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके सम्मुख मारा जाकर स्वर्गलोकमें गया है ? ॥ ४७½ ॥

स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम् ।

'अवश्य ही बहुत-से श्रेष्ठ एवं सावधानीके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंके साथ अकेले लड़ते हुए अभिमन्युने सहायताकी इच्छासे मेरा बारंबार स्मरण किया होगा॥

पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
इत्येवं विलपन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।

'जब कर्ण, द्रोण और कृपाचार्य आदिने चमकते हुए अग्रभागवाले नाना प्रकारके तीखे बाणोंद्वारा मेरे पुत्रको पीड़ित किया होगा और उसकी चेतना मन्द होने लगी होगी, उस समय अभिमन्युने बारंबार विलाप करते हुए यह कहा होगा कि यदि यहाँ मेरे पिताजी होते तो मेरे प्राणोंकी रक्षा हो जाती। मैं समझता हूँ, उसी अवस्थामें उन निर्दयी शत्रुओंने उसे पृथ्वीपर मार गिराया होगा ॥ ४९-५०½ ॥

अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
सुभद्रायां च सम्भूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।

'अथवा वह मेरा पुत्र, श्रीकृष्णका भानजा था, सुभद्राकी कोखसे उत्पन्न हुआ था; इसलिये ऐसी दीनतापूर्ण बात नहीं कह सकता था ॥ ५१½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।

'निश्चय ही मेरा यह हृदय अत्यन्त सुदृढ़ एवं वज्रसारका बना हुआ है, तभी तो लाल नेत्रोंवाले महाबाहु अभिमन्युको न देखनेपर भी यह फट नहीं जाता है ॥ ५२½ ॥

कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान् ।

'उन क्रूरकर्मा महान् धनुर्धरोंने श्रीकृष्णके भानजे और मेरे बालक पुत्रपर मर्मभेदी बाणोंका प्रहार कैसे किया ? ॥

यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति ॥ ५४ ॥
उपायान्तं रिपून् हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ।

'जब मैं शत्रुओंको मारकर शिबिरको लौटता था, उस समय जो प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो आगे बढ़कर मेरा अभिनन्दन करता था, वह अभिमन्यु आज मुझे क्यों नहीं देख रहा है ? ॥

नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
शोभयन् मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।

'निश्चय ही शत्रुओंने उसे मार गिराया है और वह खूनसे लथपथ होकर धरतीपर पड़ा सो रहा है एवं आकाशसे नीचे गिराये हुए सूर्यकी भाँति वह अपने अङ्गोंसे इस भूमिकी शोभा बढ़ा रहा है ॥ ५५½ ॥

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनङ्क्ष्यति ।

'मुझे बारंबार सुभद्राके लिये शोक हो रहा है, जो युद्धसे मुँह न मोड़नेवाले अपने वीर पुत्रको रणभूमिमें मारा गया सुनकर शोकसे आतुर हो प्राण त्याग देगी ॥ ५६½ ॥

सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहम् ।

'अभिमन्युको न देखकर सुभद्रा मुझे क्या कहेगी ? द्रौपदी भी मुझसे किस प्रकार वार्तालाप करेगी ? इन दोनों दुःखकातर देवियोंको मैं क्या जवाब दूँगा ? ॥ ५७½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।

'निश्चय ही मेरा हृदय वज्रसारका बना हुआ है, जो शोकसे कातर हुई बहू उत्तराको रोती देखकर सहस्रों टुकड़ोंमें विदीर्ण नहीं हो जाता ? ॥ ५८½ ॥

दृप्तानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ।

'मैंने घमंडमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद सुना है और श्रीकृष्णने यह भी सुना है कि युयुत्सु उन कौरववीरोंको इस प्रकार उपालम्भ दे रहा था ॥ ५९½ ॥

अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् ।

'युयुत्सु कह रहा था, धर्मको न जाननेवाले महारथी कौरवो ! अर्जुनपर जब तुम्हारा वश न चला, तब तुम एक बालककी हत्या करके क्यों आनन्द मना रहे हो ? कल पाण्डवोंका बल देखना ॥ ६०½ ॥

किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।

'रणक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका अपराध करके तुम्हारे लिये शोकका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें तुमलोग प्रसन्न होकर सिंहनाद कैसे कर रहे हो ? ॥ ६१½ ॥

आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।

'तुम्हारे पापकर्मका फल तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा । तुमलोगोंने घोर पाप किया है । उसका फल मिलनेमें अधिक विलम्ब कैसे हो सकता है ? ॥ ६२½ ॥

इति तान् परिभाषन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।

'राजा धृतराष्ट्रकी वैश्यजातीय पत्नीका परम बुद्धिमान् पुत्र युयुत्सु कोप और दुःखसे युक्त हो कौरवोंसे उपर्युक्त बातें कहकर शस्त्र त्यागकर चला आया है ॥ ६३½ ॥

किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
अधक्ष्यं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान् ।

'श्रीकृष्ण ! आपने रणक्षेत्रमें ही यह बात मुझसे क्यों नहीं बता दी ? मैं उसी समय उन समस्त क्रूर महारथियोंको जलाकर भस्म कर डालता' ॥ ६४½ ॥

संजय उवाच

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अर्जुनको पुत्रशोकसे पीड़ित और उसीका चिन्तन करते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाते देख भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें पकड़कर सँभाला । वे पुत्रवियोगके कारण होनेवाली गहरी मनोव्यथामें डूबे हुए थे और तीव्र शोक उन्हें संतप्त कर रहा था । भगवान् बोले—'मित्र ! ऐसे व्याकुल न होओ ॥ ६५-६६ ॥

सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥

'युद्धमें पीठ न दिखानेवाले सभी शूरवीरोंका यही मार्ग है । विशेषतः उन क्षत्रियोंको, जिनकी युद्धसे जीविका चलती है, इस मार्गसे जाना ही पड़ता है ॥ ६७ ॥

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वीर ! जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं, उन युद्धपरायण शूरवीरोंके लिये सम्पूर्ण शास्त्रज्ञोंने यही गति निश्चित की है ॥ ६८ ॥

ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।

गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥

'पीछे पैर न हटानेवाले शूरवीरोंका युद्धमें मरण अवश्यम्भावी है। अभिमन्यु पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकमें गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ ६९ ॥

एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें सम्मुख युद्ध करते हुए वीरको मृत्युकी प्राप्ति हो, यही सम्पूर्ण शूरवीरोंका अभीष्ट मनोरथ हुआ करता है ॥ ७० ॥

स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान्।
वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१॥

'अभिमन्युने रणक्षेत्रमें महाबली वीर राजकुमारोंका वध करके वीर पुरुषोंद्वारा अभिलषित संग्राममें सम्मुख मृत्यु प्राप्त की है ॥ ७१ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२॥

'पुरुषसिंह ! शोक न करो । प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंने संग्राममें वध होना क्षत्रियोंका सनातन धर्म नियत किया है।७२।

इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे शोकाकुल हो जानेसे ये तुम्हारे सभी भाई, नरेशगण तथा सुहृद् दीन हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥

'मानद ! इन सबको अपने शान्तिपूर्ण वचनसे आश्वासन दो। तुम्हें जाननेयोग्य तत्त्वका ज्ञान हो चुका है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ७४ ॥

एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
ततोऽब्रवीत् तदा भ्रातॄन् सर्वान् पार्थः सगद्गदान्।७५।

अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके इस प्रकार समझाने-बुझानेपर अर्जुन उस समय वहाँ गद्गद कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे बोले—॥ ७५ ॥

स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः।
अभिमन्युर्यथावृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥

'मोटे कंधों, बड़ी भुजाओं तथा कमलसदृश विशाल नेत्रोंवाला अभिमन्यु संग्राममें जिस प्रकार लड़ा था, वह सब वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ७६ ॥

सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान् मया।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७॥

'कल आपलोग देखेंगे कि मेरे पुत्रके वैरी अपने हाथी, रथ, घोड़े और सगे-सम्बन्धियोंसहित युद्धमें मेरेद्वारा मार डाले गये ॥ ७७ ॥

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम्।
सौभद्रो निधनं गच्छेद् वज्रिणापि समागतः ॥७८॥

'आप सब लोग अस्त्रविद्याके पण्डित और हाथमें हथियार लिये हुए थे। सुभद्राकुमार अभिमन्यु साक्षात् वज्रधारी इन्द्रसे भी युद्ध करता हो तो भी आपके सामने कैसे मारा जा सकता था ? ॥ ७८ ॥

यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान् रक्षणे मम।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत् ततः ॥ ७९ ॥

'यदि मैं ऐसा जानता कि पाण्डव और पाञ्चाल मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं तो मैं स्वयं उसकी रक्षा करता ॥

कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥

'आपलोग रथपर बैठे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे तो भी शत्रुओंने आपकी अवहेलना करके कैसे अभिमन्युको मार डाला ? ॥ ८० ॥

अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः।
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥

'अहो ! आपलोगोंमें पुरुषार्थ नहीं है और पराक्रम भी नहीं है; क्योंकि समरभूमिमें आपलोगोंके देखते-देखते अभिमन्यु मार डाला गया ॥ ८१ ॥

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान्।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥

'मैं अपनी ही निन्दा करूँगा; क्योंकि आपलोगोंको अत्यन्त दुर्बल, डरपोक और सुदृढ़ निश्चयसे रहित जानकर भी मैं (अभिमन्युको आपलोगोंके भरोसे छोड़कर) अन्यत्र चला गया ॥ ८२ ॥

आहोस्विद् भूषणार्थाय वर्म शस्त्रायुधानि वः।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥

'अथवा आपलोगोंके ये कवच और अस्त्र-शस्त्र क्या शरीरका आभूषण बनानेके लिये हैं ? मेरे पुत्रकी रक्षा न करके वीरोंकी सभामें केवल बातें बनानेके लिये हैं ?' ॥ ८३ ॥

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान्।
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४॥

ऐसा कहकर फिर अर्जुन धनुष और श्रेष्ठ तलवार लेकर खड़े हो गये। उस समय कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सका ॥ ८४ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥

वे यमराजके समान कुपित हो बारंबार लंबी साँसें छोड़ रहे थे। उस समय पुत्रशोकसे संतप्त हुए अर्जुनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी ॥ ८५ ॥

न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥

उस अवस्थामें वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अथवा ज्येष्ठ पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको छोड़कर दूसरे सगे-सम्बन्धी न तो उनसे कुछ बोल सकते थे और न तो देखनेका ही साहस करते थे ॥ ८६ ॥

सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर सभी अवस्थाओंमें अर्जुनके हितैषी और उनके मनके अनुकूल चलनेवाले थे; क्योंकि अर्जुनके प्रति उनका बड़ा आदर और प्रेम था। अतः वे ही दोनों इनसे उस समय कुछ कहनेका अधिकार रखते थे ॥ ८७ ॥

ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर मन-ही-मन पुत्रशोकसे अत्यन्त पीड़ित हुए क्रोधभरे कमलनयन अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनकोपविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ९१½ श्लोक हैं)

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनकी जयद्रथको मारनेके लिये शपथपूर्ण प्रतिज्ञा

युधिष्ठिर उवाच

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत् तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले--महाबाहो ! जब तुम संशप्तक सेनाके साथ युद्धके लिये चले गये, उस समय आचार्य द्रोणने मुझे पकड़नेके लिये घोर प्रयत्न किया ॥ १ ॥

व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥ २ ॥

वे रथोंकी सेनाका व्यूह बनाकर बारंबार उद्योग करते थे और हमलोग रणक्षेत्रमें अपनी सेनाको व्यूहाकारमें संघटित करके सब प्रकारसे द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोक देते थे ॥ २ ॥

स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाशु पीडयन् निशितैः शरैः ॥ ३ ॥

जब रथियोंके द्वारा आचार्य रोक दिये गये और मैं सर्वथा सुरक्षित रह गया, तब उन्होंने अपने तीखे बाणोंद्वारा हमें पीड़ा देते हुए हमलोगोंपर तीव्र वेगसे आक्रमण किया ॥

ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत् कुत एव तु ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्यसे पीड़ित होनेके कारण हमलोग उनके सैन्य-व्यूहकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे; फिर युद्धभूमिमें उसका भेदन तो कर ही कैसे सकते थे ? ॥ ४ ॥

वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥

तब हम सब लोग अनुपम पराक्रमी अपने पुत्र सुभद्रानन्दन अभिमन्युसे बोले--'तात ! तुम इस व्यूहका भेदन करो; क्योंकि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ ५ ॥

स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥

हमारे इस प्रकार आज्ञा देनेपर उस पराक्रमी वीरने अच्छे घोड़ेकी भाँति उस असह्य भारको भी वहन करनेका ही प्रयत्न किया ॥ ६ ॥

स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत् तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥

तुम्हारे दिये हुए अस्त्र-विद्याके उपदेश और पराक्रमसे सम्पन्न बालक अभिमन्युने उस सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे गरुड़ समुद्रमें घुस जाते हैं ॥ ७ ॥

तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् हमलोग रणक्षेत्रमें वीर सुभद्राकुमार अभिमन्युके पीछे उस व्यूहमें प्रवेश करनेकी इच्छासे चले। हम भी उसी मार्गसे उसमें घुसना चाहते थे, जिसके द्वारा उसने शत्रुसेनामें प्रवेश किया था ॥ ८ ॥

ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान् नः समवारयत् ॥ ९ ॥

तात ! ठीक इसी समय नीच सिंधुनरेश राजा जयद्रथने सामने आकर भगवान् शंकरके दिये हुए वरदानके प्रभावसे हम सब लोगोंको रोक दिया ॥ ९ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड् रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥

तदनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा--इन छः महारथियोंने सुभद्राकुमारको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥

परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।

यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥

घिरा होनेपर भी वह बालक पूरी शक्ति लगाकर उन सबको जीतनेका प्रयत्न करता रहा; तथापि वे संख्यामें अधिक थे, अतः उन समस्त महारथियोंने उसे घेरकर रथहीन कर दिया ॥ ११ ॥

ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् दुःशासनपुत्रने अभिमन्युके प्रहारसे भारी प्राणसंकटमें पड़कर पूर्वोक्त महारथियोंद्वारा रथहीन किये हुए अभिमन्युको शीघ्र ही (गदाके आघातसे) मार डाला ॥ १२ ॥

स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।

इसके पहले उसने हजारों हाथी, रथ, घोड़े और मनुष्योंको मार डाला था । आठ हजार रथों और नौ सौ हाथियोंका संहार किया था । दो हजार राजकुमारों तथा और भी बहुत-से अलक्षित वीरोंका वध करके राजा बृहद्बलको भी युद्धस्थलमें स्वर्गलोकका अतिथि बनाया । इसके बाद परम धर्मात्मा अभिमन्यु स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १३-१४½ ॥

(गतः पुण्यकृतां लोकान् ये च स्वर्गजितां शुभाः ।
अदीनस्त्रासयञ्छत्रून् नन्दयित्वा च बान्धवान् ॥
असकृन्नाम विश्राव्य पितॄणां मातुलस्य च ।
वीरो दिष्टान्तमापन्नः शोचयन् बान्धवान् बहून् ॥
ततः स्म शोकसंतप्ता भवताद्य समेयुषः ।)

वह पुण्यात्माओंके लोकोंमें गया है । अपने पुण्यके बलसे स्वर्गलोकपर विजय पानेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो शुभ लोक सुलभ होते हैं, वे ही उसे भी प्राप्त हुए हैं । उसने कभी युद्धमें दीनता नहीं दिखायी । वह वीर शत्रुओंको त्रास और बान्धवोंको आनन्द प्रदान करता हुआ अपने पितरों और मामाके नामको बारंबार विख्यात करके अपने बहुसंख्यक बन्धुओंको शोकमें डालकर मृत्युको प्राप्त हुआ है । तभीसे हमलोग शोकसे संतप्त हैं और इस समय तुमसे हमारी भेंट हुई है ॥

एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।

यही हमलोगोंके लिये शोक बढ़ानेवाली घटना घटित हुई है । पुरुषसिंह अभिमन्यु इस प्रकार स्वर्गलोकमें गया है ॥

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद् भुवि ।

धर्मराज युधिष्ठिरकी कही हुई यह बात सुनकर अर्जुन व्यथासे पीड़ित हो लंबी साँस खींचते हुए 'हा पुत्र' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६½ ॥

विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ १७ ॥
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम् ।

उस समय सबके मुखपर विषाद छा गया । सब लोग अर्जुनको घेरकर दुखी हो एकटक नेत्रोंसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ १७½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥ १९ ॥
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।

तदनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुन होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हो मानो ज्वरसे काँप रहे हों—इस प्रकार बारंबार लंबी साँस खींचते और हाथपर हाथ मलते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे और उन्मत्तके समान देखते हुए इस तरह बोले ॥

अर्जुन उवाच

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद् वधभयाद् भीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति ॥ २० ॥
न चास्माञ्शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥

अर्जुनने कहा—मैं आपलोगोंके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कल जयद्रथको अवश्य मार डालूँगा । महाराज ! यदि वह मारे जानेके भयसे डरकर धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोड़ नहीं देगा, मेरी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अथवा आपकी शरणमें नहीं आ जायगा तो कल उसे अवश्य मार डालूँगा ॥

धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥

जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंका प्रिय कर रहा है, जिसने मेरे प्रति अपना सौहार्द भुला दिया है तथा जो बालक अभिमन्युके वधमें कारण बना है, उस पापी जयद्रथको कल अवश्य मार डालूँगा ॥ २२ ॥

रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ राजन् छादयिष्यामि ताञ्छरैः ॥ २३ ॥

राजन् ! युद्धमें जयद्रथकी रक्षा करते हुए जो कोई मेरे साथ युद्ध करेंगे, वे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ही क्यों न हों, उन्हें अपने बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दूँगा ॥ २३ ॥

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
मा स्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ वीरो ! यदि संग्रामभूमिमें मैं ऐसा न कर सकूँ तो पुण्यात्मा पुरुषोंके उन लोकोंको, जो शूरवीरोंको प्रिय हैं, न प्राप्त करूँ ॥ २४ ॥



अर्जुनका जयद्रथवधके लिये प्रतिज्ञा करना

ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम् ॥ २८ ॥
तानन्हायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

माता-पिताकी हत्या करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, गुरु-पत्नीगामी और चुगलखोरोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, साधुपुरुषोंकी निन्दा करनेवालों और दूसरोंको कलंक लगानेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, धरोहर हड़पने और विश्वासघात करनेवालोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, दूसरेके उपभोगमें आयी हुई स्त्रीको ग्रहण करनेवाले, पापकी बातें करनेवाले, ब्रह्महत्यारे और गोघातियोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, खीर, यवान्न, साग, खिचड़ी, हलुआ, पूआ आदिको बलिवैश्वदेव किये बिना ही खानेवाले मनुष्योंको जो लोक प्राप्त होते हैं, यदि मैं कल जयद्रथका वध न कर डालूँ तो मुझे भी तत्काल उन्हीं लोकोंको जाना पड़े ॥ २५–२८½ ॥

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाग्निं च या भवेत् ॥ ३० ॥
याऽप्सु श्लेष्म पुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१॥

वेदोंका स्वाध्याय अथवा अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणकी तथा बड़े-बूढ़ों, साधु पुरुषों और गुरुजनोंकी अवहेलना करनेवाला पुरुष जिन नरकोंमें पड़ता है, ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवाले पुरुषकी जो गति होती है तथा जलमें थूक अथवा मल-मूत्र छोड़नेवालोंकी जो दुर्गति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो उसी कष्टदायिनी गतिको मैं भी प्राप्त करूँ ॥ २९–३१ ॥

नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम्।
भृत्यैः संदिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम्।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥

नंगे नहानेवाले तथा अतिथिको भोजन दिये बिना ही उसे असफल लौटा देनेवाले पुरुषकी जो गति होती है; घूसखोर, असत्यवादी तथा दूसरोंके साथ वञ्चना (ठगी) करनेवालोंकी जो दुर्गति होती है; आत्माका हनन करनेवाले, दूसरोंपर झूठे दोषारोपण करनेवाले, भृत्योंकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले तथा स्त्री, पुत्र एवं आश्रित जनोंके साथ यथायोग्य बँटवारा किये बिना ही अकेले मिष्टान्न उड़ानेवाले क्षुद्र पुरुषोंको जिस घोर नारकी गतिकी प्राप्ति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो मुझे भी वही दुर्गति प्राप्त हो । ३२–३४।

संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम्।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३५ ॥
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद् वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

जो नृशंस स्वभावका मनुष्य शरणागत, साधुपुरुष तथा आज्ञापालनमें तत्पर रहनेवाले पुरुषको त्यागकर उसका भरण-पोषण नहीं करता, जो उपकारीकी निन्दा करता है, पड़ोसमें रहनेवाले योग्य व्यक्तिको श्राद्धका दान नहीं देता और अयोग्य व्यक्तियोंको तथा शूद्राके स्वामी ब्राह्मणको देता है, जो मद्य पीनेवाला, धर्म-मर्यादाको तोड़नेवाला, कृतघ्न और स्वामीकी निन्दा करनेवाला है--इन सभी लोगोंको जो दुर्गति प्राप्त होतीहै, उसीको मैं भी शीघ्र ही प्राप्त करूँ; यदि कल जयद्रथका वध न कर डालूँ ॥ ३५–३७ ॥

भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि।

जो बायें हाथसे भोजन करते हैं, गोदमें रखकर खाते हैं, जो पलासके आसनका और तेंदूकी दातुनका त्याग नहीं करते तथा उषःकालमें सोते हैं, उनको जो नरक-लोक प्राप्त होते हैं (वे ही मुझे भी मिलें; यदि मैं जयद्रथको न मार डालूँ) ॥ ३८½ ॥

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥ ४० ॥
दिवामैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम्।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद् ददाति न।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण होकर सर्दीसे और क्षत्रिय होकर युद्धसे डरते हैं, जिस गाँवमें एक ही कुएँका जल पीया जाता हो और जहाँ कभी वेदमन्त्रोंकी ध्वनि न हुई हो, ऐसे स्थानोंमें

जो छः महीनोंतक निवास करते हैं, जो शास्त्रकी निन्दामें तत्पर रहते, दिनमें मैथुन करते और सोते हैं, जो दूसरोंके घरोंमें आग लगाते और दूसरोंको जहर दे देते हैं, जो कभी अग्निहोत्र और अतिथि-सत्कार नहीं करते तथा गायोंके पानी पीनेमें विघ्न डालते हैं, जो रजस्वला स्त्रीका सेवन करते और शुल्क लेकर कन्या देते हैं, जो बहुतोंकी पुरोहिती करते, ब्राह्मण होकर सेवा-वृत्तिसे जीविका चलाते, मुँहमें मैथुन करते अथवा दिनमें स्त्री-सहवास करते हैं, जो ब्राह्मण-को कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर लोभवश नहीं देते हैं, उन सबको जिन लोकों अथवा दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, उन्हींको मैं भी प्राप्त होऊँ; यदि कलतक जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ३९–४४ ॥

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः ।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।

ऊपर जिन पापियोंका नाम मैंने गिनाया है तथा जिन दूसरे पापियोंका नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको शीघ्र ही मैं भी प्राप्त करूँ; यदि यह रात बीतनेपर कल जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ४५½ ॥

इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥

अब आपलोग पुनः मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुन लें। यदि इस पापी जयद्रथके मारे जानेसे पहले ही सूर्यदेव अस्ताचलको पहुँच जायँगे तो मैं यहीं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४६–४७ ॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा
पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्
तदपि ममरिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ४८ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत् तथा इसके परे जो कुछ है, वह—ये सब मिलकर भी मेरे शत्रु जयद्रथकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥

यदि विशति रसातलं तदग्र्यं
वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते
भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥

यदि जयद्रथ पातालमें घुस जाय या उससे भी आगे बढ़ जाय अथवा आकाश, देवलोक या दैत्योंके नगरमें जाकर छिप जाय तो भी मैं कल अपने सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युके उस घोर शत्रुका सिर अवश्य काट लूँगा ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद् दिवम् ॥ ५० ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने दाहिने और बायें हाथसे भी गाण्डीव धनुषकी टङ्कार की। उसकी ध्वनि दूसरे शब्दोंको दबाकर सम्पूर्ण आकाशमें गूँज उठी ॥ ५० ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥

अर्जुनके इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भी अत्यन्त कुपित होकर पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। इधर अर्जुनने भी देवदत्त नामक शङ्खको फूँका ॥ ५१ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना
भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।
जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं
प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥ ५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे भीतरी भाग भर जानेके कारण अत्यन्त भयंकर ध्वनि प्रकट करनेवाले पाञ्चजन्यने आकाश, पाताल, दिशा और दिक्पालों-सहित सम्पूर्ण जगत्को कम्पित कर दिया, मानो प्रलय-काल आ गया हो ॥ ५२ ॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

महामना अर्जुनने जब उक्त प्रतिज्ञा कर ली, उस समय पाण्डवोंके शिबिरमें अनेक बाजोंके हजारों शब्द और पाण्डव वीरोंका सिंहनाद भी सब ओर गूँजने लगा ॥ ५३ ॥

(*भीम उवाच*

प्रतिज्ञोद्भवशब्देन कृष्णशङ्खस्वनेन च ।
निहतो धार्तराष्ट्रोऽयं सानुबन्धः सुयोधनः ॥

भीमसेनने कहा—अर्जुन ! तुम्हारी प्रतिज्ञाके शब्दसे और भगवान् श्रीकृष्णके इस शङ्खनादसे मुझे विश्वास हो गया कि यह धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपने सगे-सम्बन्धियों-सहित अवश्य मारा जायगा ॥

अथ मृदिततमाग्र्यदाममाल्यं
तव सुतशोकमयं च रोषजातम् ।
व्यपनुदति महाप्रभावमेत-
न्नरवर वाक्यमिदं महार्थमिष्टम् ॥)

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह वचन महान् अर्थसे युक्त और मुझे अत्यन्त प्रिय है। यह अत्यन्त प्रभावशाली वाक्य तुम्हारे पुत्रशोकमय उस रोष-समूहका निवारण कर रहा है, जिसने तुम्हारे गलेके सुन्दर पुष्पहारको मसल डाला था ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनप्रतिज्ञाविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ५७½ श्लोक हैं)

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

जयद्रथका भय तथा दुर्योधन और द्रोणाचार्यका उसे आश्वासन देना

संजय उवाच

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम्।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः।
मज्जमान इवागाधे विपुले शोकसागरे ॥ २ ॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन् बहु।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथने जब विजयाभिलाषी पाण्डवोंका वह महान् शब्द सुना और गुप्तचरोंने आकर जब अर्जुनकी प्रतिज्ञाका समाचार निवेदन किया, तब वह सहसा उठकर खड़ा हो गया, उसका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया। वह दुःखसे व्याप्त हो शोकके विशाल एवं अगाध महासागरमें डूबता हुआ-सा बहुत सोच-विचारकर राजाओंकी सभामें गया और उन नरदेवोंके समीप रोने-बिलखने लगा ॥ १-३ ॥

अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत्।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥ ४ ॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम्।
तत् स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया ॥ ५ ॥

जयद्रथ अभिमन्युके पितासे बहुत डर गया था, इसलिये लज्जित होकर बोला—'राजाओ! कामी इन्द्रने पाण्डुकी पत्नीके गर्भसे जिसको जन्म दिया है, वह दुर्बुद्धि अर्जुन केवल मुझको ही यमलोक भेजना चाहता है; यह बात सुननेमें आयी है। अतः आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं अपने प्राण बचानेकी इच्छासे अपनी राजधानीको चला जाऊँगा ॥ ४-५ ॥

अथवास्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त ममाभयम् ॥ ६ ॥

'अथवा क्षत्रियशिरोमणि वीरो! आपलोग अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें अर्जुनके समान ही शक्तिशाली हैं। उधर अर्जुनने मेरे प्राण लेनेकी प्रतिज्ञा की है। इस अवस्थामें आप मेरी रक्षा करें और मुझे अभयदान दें ॥ ६ ॥

द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाह्लिकाः।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम् ॥ ७ ॥
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥

'द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य, बाह्लिक तथा दुःशासन आदि वीर मुझे यमराजके संकटसे भी बचानेमें समर्थ हैं। प्रिय नरेशगण! फिर जब अकेला अर्जुन ही मुझे मारनेकी इच्छा रखता है तो उसके हाथसे आप समस्त भूपतिगण मेरी रक्षा क्यों नहीं कर सकते हैं ॥ ७-८ ॥

प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद् भयम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥ ९ ॥

'राजाओ! पाण्डवोंका हर्षनाद सुनकर मुझे महान् भय हो रहा है। मरणासन्न मनुष्यकी भाँति मेरे सारे अङ्ग शिथिल होते जा रहे हैं ॥ ९ ॥

वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः ॥ १० ॥

'निश्चय ही गाण्डीवधारी अर्जुनने मेरे वधकी प्रतिज्ञा कर ली है, तभी शोकके समय भी पाण्डव योद्धा बड़े हर्षके साथ गर्जना करते हैं ॥ १० ॥

तन्न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥

'उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा राक्षस भी पलट नहीं सकते हैं। फिर ये नरेश उसे भङ्ग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? ॥ ११ ॥

तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥

'अतः नरश्रेष्ठ वीरो! आपका कल्याण हो। आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें। मैं अदृश्य हो जाऊँगा। पाण्डव मुझे नहीं देख सकेंगे' ॥ १२ ॥

एवं विलपमानं तं भयाद् व्याकुलचेतसम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद् राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

भयसे व्याकुलचित्त होकर विलाप करते हुए जयद्रथसे राजा दुर्योधनने अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥



न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद् युधि ॥ १४ ॥

'पुरुषसिंह! नरश्रेष्ठ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये।

युद्धस्थलमें इन क्षत्रिय वीरोंके बीचमें खड़े रहनेपर कौन तुम्हें मारनेकी इच्छा कर सकता है ? ॥ १४ ॥

अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥१७॥
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः॥१८॥

'मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वीर वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, काम्बोज-राज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, अस्त्र-शस्त्रधारी कलिंगराज, अवन्तीके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा और शकुनि—ये तथा और भी बहुत-से नरेश जो विभिन्न देशोंके अधिपति हैं, अपनी सेनाके साथ तुम्हारी रक्षाके लिये चलेंगे । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ १५—१८ ॥

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥

'अमित तेजस्वी सिंधुराज ! तुम स्वयं भी तो रथियोंमें श्रेष्ठ शूरवीर हो, फिर पाण्डुके पुत्रोंसे अपने लिये भय क्यों देख रहे हो ? ॥ १९ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम्॥२०॥

'मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ तुम्हारी रक्षाके लिये उद्यत होकर युद्ध करेंगी; अतः सिंधुराज ! तुम भय मत मानो । तुम्हारा भय निकल जाना चाहिये' ॥ २० ॥

संजय उवाच

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनके आश्वासन देनेपर जयद्रथ उसके साथ रात्रिके समय द्रोणाचार्यके पास गया ॥ २१ ॥

उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥

महाराज ! उस समय उसने द्रोणाचार्यके चरण छूकर विधि-पूर्वक प्रणाम किया और पास बैठकर प्रणतभावसे इस प्रकार पूछा—॥ २२ ॥

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान् विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥

'दूरतक बाण चलानेमें, लक्ष्य वेधनेमें, हाथकी फुर्तीमें तथा अचूक निशाना मारनेमें मुझमें और अर्जुनमें कितना अन्तर है, यह पूज्य गुरुदेव मुझे बतावें ॥ २३ ॥

विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्यात्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥

'आचार्य ! मैं अर्जुनकी और अपनी विद्याविषयक विशेषताको ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ । आप मुझे यथार्थ बात बताइये' ॥ २४ ॥

द्रोण उवाच

सममाचार्यकं तात तव चैवार्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥२५॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! यद्यपि तुम्हारा और अर्जुनका आचार्यत्व मैंने समानरूपसे ही किया है, तथापि सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति एवं अभ्यास और क्लेशसहनकी दृष्टिसे अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं ॥ २५ ॥

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ २६ ॥
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २७ ॥

वत्स ! तो भी तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार भी अर्जुनसे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं उनके भयसे तुम्हारी रक्षा करनेवाला हूँ—इसमें संशय नहीं है । मेरी भुजाएँ जिसकी रक्षा करती हों, उसपर देवताओंका भी जोर नहीं चल सकता । मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे अर्जुन पार नहीं कर सकेंगे ॥ २६-२७ ॥

तस्माद् युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥

इसलिये तुम डरो मत । उत्साहपूर्वक युद्ध करो और अपने क्षत्रिय-धर्मका पालन करो । महारथी वीर ! अपने बाप-दादोंके मार्गपर चलो ॥ २८ ॥

अधीत्य विधिवद् वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः ॥ २९ ॥

तुमने वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन करके भलीभाँति अग्निहोत्र किया है । बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान भी कर लिया है । तुम्हें तो मृत्युका भय करना ही नहीं चाहिये ॥ २९ ॥

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान् दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥

जो मन्दभागी मनुष्योंके लिये दुर्लभ है, रणक्षेत्रमें मृत्युरूप उस परम सौभाग्यको पाकर तुम अपने बाहुबलसे

१. यद्यपि अब दुर्योधनके पास पूरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ नहीं रह गयी थीं; तथापि ग्यारह भागोंमें विभक्त उन सेनाओंमेंसे जो लोग शेष बचे थे, उन्हींको लेकर यहाँ 'ग्यारह अक्षौहिणी' का उल्लेख किया गया है ।

जीते हुए परम उत्तम दिव्य लोकोंमें पहुँच जाओगे ॥ ३० ॥

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥

कौरव-पाण्डव, वृष्णिवंशी योद्धा, अन्य मनुष्य तथा पुत्रसहित मैं—ये सभी अस्थिर (नाशवान्) हैं—ऐसा चिन्तन करो ॥ ३१ ॥

पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥

बारी-बारीसे हम सभी लोग बलवान् कालके हाथों मारे जाकर अपने-अपने शुभाशुभ कर्मोंके साथ परलोकमें चले जायँगे ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वा तु याँल्लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥

तपस्वीलोग तपस्या करके जिन लोकोंको पाते हैं, क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेनेवाले वीर क्षत्रिय उन्हें अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३३ ॥

एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद् भयं पार्थाद् युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्यके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजा जयद्रथने अर्जुनका भय छोड़ दिया और युद्ध करनेका विचार किया॥

ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाप्यासीद् विशाम्पते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

महाराज ! तदनन्तर आपकी सेनामें भी हर्षध्वनि होने लगी, सिंहनादके साथ-साथ रणवाद्योंकी भयंकर ध्वनि गूँज उठी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें जयद्रथको आश्वासनविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनको कौरवोंके जयद्रथकी रक्षाविषयक उद्योगका समाचार बताना

संजय उवाच

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनंजयमभाषत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली, उस समय महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—॥ १ ॥

भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥

'धनंजय ! तुमने अपने भाइयोंका मत जाने बिना ही जो वाणीद्वारा यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सिंधुराज जयद्रथको मार डालूँगा, यह तुमने दुःसाहसपूर्ण कार्य किया है ॥ २ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥

'मेरे साथ सलाह किये बिना ही तुमने यह बड़ा भारी भार उठा लिया । ऐसी दशामें हम सम्पूर्ण लोकोंके उपहास-पात्र कैसे नहीं बनेंगे ? ॥ ३ ॥

धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥

'मैंने दुर्योधनके शिबिरमें अपने गुप्तचर भेजे थे । वे शीघ्र ही वहाँसे लौटकर अभी-अभी वहाँका समाचार मुझे बता गये हैं ॥ ४ ॥

त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥

'शक्तिशाली अर्जुन ! जब तुमने सिंधुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यहाँ रणवाद्योंके साथ-साथ महान् सिंहनाद किया गया था, जिसे कौरवोंने सुना था ॥ ५ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाकस्मात् सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

'उस शब्दसे जयद्रथसहित सभी धृतराष्ट्रपुत्र संत्रस्त हो उठे । वे यह सोचकर कि यह सिंहनाद अकारण नहीं हुआ है, सावधान हो गये ॥ ६ ॥

सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥

'महाबाहो ! फिर तो कौरवोंके दलमें भी बड़े जोरका कोलाहल मच गया । हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथ-सेनाओं-का भयंकर घोष सब ओर गूँजने लगा ॥ ७ ॥

अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो धनंजयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

'वे यह समझकर युद्धके लिये उद्यत हो गये कि अभिमन्यु-के वधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनको अवश्य ही महान् कष्ट हुआ होगा; अतः वे क्रोध करके रातमें ही युद्धके लिये निकल पड़ेंगे ॥ ८ ॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥

'कमलनयन ! युद्धके लिये तैयार होते-होते उन कौरवोंने सदा सत्य बोलनेवाले तुम्हारी जयद्रथ-वधविषयक यह सच्ची प्रतिज्ञा सुनी ॥ ९ ॥

ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन् सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'फिर तो दुर्योधनके मन्त्री और स्वयं राजा जयद्रथ—ये सब-के-सब (सिंहसे डरे हुए) क्षुद्र मृगोंके समान भयभीत और उदास हो गये ॥ १० ॥

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात् सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥

'तदनन्तर सिंधुसौवीरदेशका स्वामी जयद्रथ अत्यन्त दुखी और दीन हो मन्त्रियोंसहित उठकर अपने शिविरमें आया ॥ ११ ॥

स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियाम्।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद् राजसंसदि ॥ १२ ॥

'उसने मन्त्रणाके समय अपने लिये श्रेयस्कर सिद्ध होनेवाले समस्त कार्योंके सम्बन्धमें मन्त्रियोंसे परामर्श करके राजसभामें आकर दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ १२ ॥

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनंजयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥

'राजन् ! मुझे अपने पुत्रका घातक समझकर अर्जुन कल सबेरे मुझपर आक्रमण करनेवाला है; क्योंकि उसने अपनी सेनाके बीचमें मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥

तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥

'सव्यसाची अर्जुनकी उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥ १४ ॥

ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनंजयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥

'अतः आपलोग संग्राममें मेरी रक्षा करें । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन आपलोगोंके सिरपर पैर रखकर अपने लक्ष्यतक पहुँच जाय; अतः इसके लिये आप आवश्यक व्यवस्था करें ॥ १५ ॥

अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६ ॥

'कुरुनन्दन ! यदि आप युद्धमें मेरी रक्षा न कर सकें तो मुझे आज्ञा दें; राजन् ! मैं अपने घर चला जाऊँगा' ॥१६॥

एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः ।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

'जयद्रथके ऐसा कहनेपर दुर्योधन अपना सिर नीचे किये मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया और तुम्हारी उस प्रतिज्ञाको सुनकर उसे बड़ी भारी चिन्ता हो गयी ॥ १७ ॥

तमार्तमभिसंप्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चात्महितं चैव साक्षेपमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥

'दुर्योधनको उद्विग्नचित्त देखकर सिन्धुराज जयद्रथने व्यंग्य करते हुए कोमल वाणीमें अपने हितकी बात इस प्रकार कही–॥ १८ ॥

नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥

'राजन् ! आपकी सेनामें किसी भी ऐसे पराक्रमी धनुर्धरको नहीं देखता, जो उस महायुद्धमें अपने अस्त्रद्वारा अर्जुनके अस्त्रका निवारण कर सके ॥ १९ ॥

वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेत् साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥

'श्रीकृष्णके साथ आकर गाण्डीव धनुषका संचालन करते हुए अर्जुनके सामने कौन खड़ा हो सकता है ? साक्षात् इन्द्र भी तो उसका सामना नहीं कर सकते ॥ २० ॥

महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥

'मैंने सुना है कि पूर्वकालमें हिमालयपर्वतपर पैदल अर्जुनने महापराक्रमी भगवान् महेश्वरके साथ भी युद्ध किया था॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥

'देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर उसने एकमात्र रथकी सहायतासे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका संहार कर डाला था॥

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुन देवताओंसहित तीनों लोकोंको नष्ट कर सकता है ॥ २३ ॥

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातं रक्षितुं वा महात्मना ।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥

'इसलिये मैं यहाँसे चले जानेकी अनुमति चाहता हूँ। अथवा यदि आप ठीक समझें तो पुत्रसहित वीर महामना द्रोणाचार्यके द्वारा मैं अपनी रक्षाका आश्वासन चाहता हूँ' ।२४।

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥

'अर्जुन ! तब राजा दुर्योधनने स्वयं ही आचार्य द्रोणसे जयद्रथकी रक्षाके लिये बड़ी प्रार्थना की है । अतः उसकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है तथा रथ भी सजा दिये गये हैं ॥ २५ ॥

कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥

'कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वीर वृषसेन, कृपाचार्य और मद्रराज शल्य ये–छः महारथी उसके आगे रहेंगे ॥ २६ ॥

शकटः पद्मकश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिंधुराट् स सुदुर्मदः।

'द्रोणाचार्यने ऐसा व्यूह बनाया है, जिसका अगला आधा भाग शकटके आकारका है और पिछला कमलके समान। कमलव्यूहके मध्यकी कर्णिकाके बीच सूचीव्यूहके पार्श्व भागमें युद्धदुर्मद सिन्धुराज जयद्रथ खड़ा होगा और अन्यान्य वीर उसकी रक्षा करते रहेंगे ॥ २७½ ॥

धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड् रथाः।
एतानजित्वा षड् रथान् नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥२९ ॥

'पार्थ ! ये पूर्व निश्चित छः महारथी धनुष, बाण, पराक्रम, प्राणशक्ति तथा मनोबलमें अत्यन्त असह्य माने गये हैं। इन छः महारथियोंको जीते बिना जयद्रथको प्राप्त करना असम्भव है ॥ २८-२९ ॥

तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥

'पुरुषसिंह ! पहले तुम इन छः महारथियोंमें एक-एकके बल-पराक्रमका विचार करो। फिर जब ये छः एक साथ होंगे, उस समय इन्हें सुगमतासे नहीं जीता जा सकता। ३०।

भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

'अब मैं पुनः अपने हितका ध्यान रखते हुए कार्यकी सिद्धिके लिये मन्त्रज्ञ मन्त्रियों और हितैषी सुहृदोंके साथ सलाह करूँगा'॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित वचन

अर्जुन उवाच

षड् रथान् धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधिकान्।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन ! दुर्योधनके जिन छः महारथियोंको आप बलमें अधिक मानते हैं, उनका पराक्रम मेरे आधेके बराबर भी नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है। जयद्रथके वधकी इच्छासे मेरे युद्ध करते समय आप देखेंगे कि मैंने इन सबके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे काट गिराया है ॥ १-२ ॥

द्रोणस्य मिषतश्चाहं सगणस्य विलप्यतः।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥

मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते अपने सैनिकोंसहित विलाप करते हुए सिन्धुराज जयद्रथका मस्तक पृथ्वीपर गिरा दूँगा॥३॥

यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागराद्रयः।
द्यौर्वियत् पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्रामारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण ! यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, देवेश्वरगण, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, दिशाएँ, दिक्पाल, गाँवों तथा जंगलोंमें निवास करनेवाले प्राणी और सम्पूर्ण चराचर जीव भी सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके लिये उद्यत हो जायँ तो भी मैं सत्यकी शपथ खाकर और अपना धनुष छूकर कहता हूँ कि कल युद्धमें आप मेरे बाणोंद्वारा जयद्रथको मारा गया देखेंगे ॥ ४–७ ॥

यस्तु गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥

केशव ! उस दुर्बुद्धि पापी जयद्रथकी रक्षाका बीड़ा उठाये हुए जो महाधनुर्धर आचार्य द्रोण हैं, पहले उन्हींपर आक्रमण करूँगा ॥ ८ ॥

तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः।
तस्मात् तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥९॥

दुर्योधन आचार्यपर ही इस युद्धरूपी द्यूतको आबद्ध (अवलम्बित) मानता है; अतः उसीकी सेनाके अग्रभागका भेदन करके मैं सिन्धुराजके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान् नाराचैस्तिग्मतेजितैः।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान् मया युधि ॥ १० ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रद्वारा पर्वतोंके शिखरोंको विदीर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार कल युद्धमें मैं अच्छी तरह तेज किये हुए नाराचोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको चीर डालूँगा; यह आप देखेंगे ॥ १० ॥

नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम्।

पतद्‍भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥

मेरे तीखे बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर गिरते और गिरे हुए मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके शरीरोंसे खूनकी धारा बह चलेगी ॥ ११ ॥

गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे।
नृनागाश्वान् विदेहासून् कर्तारश्च सहस्रशः ॥१२॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण मन और वायुके समान वेगशाली होते हैं। वे शत्रुओंके सहस्रों हाथी-घोड़े और मनुष्योंको शरीर और प्राणोंसे शून्य कर देंगे ॥ १२ ॥

यमात् कुबेराद् वरुणादिन्द्राद् रुद्राच्च यन्मया।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥१३॥

यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा रुद्रसे मैंने जो भयंकर अस्त्र प्राप्त किये हैं, उन्हें कलके युद्धमें सब लोग देखेंगे ॥१३॥

ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥१४॥

जयद्रथके समस्त रक्षकोंद्वारा छोड़े हुए अस्त्रोंको मैं युद्धमें ब्रह्मास्त्रद्वारा काट डालूँगा, यह आप देखेंगे ॥१४॥

शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥१५॥

केशव ! कलके युद्धमें आप देखेंगे कि इस पृथ्वीपर मेरे बाणोंके वेगसे कटे हुए राजाओंके मस्तक बिछ गये हैं।१५।

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान्।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥

कल मैं मांसभोजी प्राणियोंको तृप्त कर दूँगा, शत्रुसैनिकोंको मार भगाऊँगा, सुहृदोंको आनन्द प्रदान करूँगा और सिन्धुराज जयद्रथको मथ डालूँगा ॥ १६ ॥

बह्वागस्कृत् कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वान् शोचयिष्यति ॥१७॥

सिन्धुराज जयद्रथ पापपूर्ण प्रदेशमें उत्पन्न हुआ है। उसने बहुत-से अपराध किये हैं। वह एक दुष्ट सम्बन्धी है। अतः कल मेरेद्वारा मारा जाकर अपने सुजनोंको शोकमें निमग्न कर देगा ॥ १७ ॥

सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

सदा सब प्रकारसे दूध-भात खानेवाले पापाचारी जयद्रथको रणाङ्गणमें आप राजाओंसहित मेरे बाणोंद्वारा विदीर्ण हुआ देखेंगे ॥ १८ ॥

तथा प्रभाते कर्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः।
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं कल सबेरे ऐसा युद्ध करूँगा, जिससे दुर्योधन रणक्षेत्रके भीतर संसारके दूसरे किसी धनुर्धरको मेरे समान नहीं मानेगा ॥ १९ ॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया॥ २०॥

नरश्रेष्ठ हृषीकेश ! जहाँ गाण्डीव-जैसा दिव्य धनुष है, मैं योद्धा हूँ और आप सारथि हैं, वहाँ मैं किसको नहीं जीत सकता ? ॥ २० ॥

तव प्रसादाद् भगवन् किमिवास्ति रणे मम।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन् मां विगर्हसे ॥ २१ ॥

भगवन् ! आपकी कृपासे इस युद्धस्थलमें कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो मेरे लिये असह्य हो। हृषीकेश ! आप यह जानते हुए भी क्यों मेरी निन्दा करते हैं ? ॥ २१ ॥

यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥

जनार्दन ! जैसे चन्द्रमामें काला चिह्न स्थिर है, जैसे समुद्रमें जलकी सत्ता सुनिश्चित है, उसी प्रकार आप मेरी इस प्रतिज्ञाको भी सत्य समझें ॥ २२ ॥

मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम्।
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनंजयम् ॥ २३ ॥

प्रभो ! आप मेरे अस्त्रोंका अनादर न करें। मेरे इस सुदृढ़ धनुषकी अवहेलना न करें। इन दोनों भुजाओंके बलका तिरस्कार न करें और अपने इस सखा धनंजयका अपमान न करें ॥ २३ ॥

तथाभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥

मैं संग्राममें इस प्रकार चलूँगा, जिससे कोई मुझे जीत न सके, वरं मैं ही विजयी होऊँ। इस सत्यके प्रभावसे आप रणक्षेत्रमें जयद्रथको मारा गया ही समझें ॥ २४ ॥

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु संनतिः।
श्रीर्ध्रुवापि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥

जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणमें सत्य, साधुपुरुषोंमें नम्रता और यज्ञोंमें लक्ष्मीका होना ध्रुव सत्य है, उसी प्रकार जहाँ आप नारायण विद्यमान हैं, वहाँ विजय भी अटल है ॥ २५ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना।
संदिदेशार्जुनो नर्दन् वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इन्द्रकुमार अर्जुनने गर्जना करते हुए इस प्रकार उपर्युक्त बातें कहकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता तथा सब कुछ करनेमें समर्थ अपने आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको स्वयं ही मनसे सोचकर इस प्रकार आदेश दिया—॥ २६ ॥

यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद् रथो मम।

तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ऐसा प्रबन्ध कर लें कि कल सबेरा होते ही मेरा रथ तैयार हो जाय; क्योंकि हमलोगोंपर महान् कार्यभार आ पड़ा है' ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वण्यर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नाना प्रकारके अशुभसूचक उत्पात, कौरवसेनामें भय और श्रीकृष्णका अपनी बहिन सुभद्राको आश्वासन देना

संजय उवाच

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःख और शोकसे पीड़ित हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे । उन दोनोंको उस रातमें नींद नहीं आयी ॥ १ ॥

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद् भविष्यति॥ २ ॥

नर और नारायणको कुपित जान इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता व्यथित हो चिन्ता करने लगे; यह क्या होनेवाला है ? ।२।

ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत ॥ ३ ॥

रूक्ष, भयसूचक एवं दारुण वायु बहने लगी। (दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर) सूर्यमण्डलमें कबन्धयुक्त घेरा देखा गया॥३॥

शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥

बिना वर्षाके ही वज्र गिरने लगे । आकाशमें बिजलीकी चमकके साथ भयंकर गर्जना होने लगी । पर्वत, वन और काननोंसहित पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४ ॥

चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥

महाराज ! ग्राहोंके निवासस्थान समुद्रोंमें ज्वार आ गया । समुद्रगामिनी नदियाँ उल्टी धारामें बहकर अपने उद्गमकी ओर जाने लगीं ॥ ५ ॥

रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥

मांसभक्षी प्राणियोंके आनन्द और यमराजके राज्यकी वृद्धिके लिये रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंके नीचे-ऊपरके ओष्ठ फड़कने लगे ॥ ६ ॥

वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान् दृष्ट्वा दारुणान् सर्वानुत्पाताँल्लोमहर्षणान्॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! हाथी, घोड़े आदि वाहन मल-मूत्र करने और रोने लगे । उन सब भयंकर एवं रोमाञ्चकारी उत्पातोंको देखकर और महाबली सव्यसाची अर्जुनकी उस भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर आपके सभी सैनिक व्यथित हो उठे ॥

अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत् पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥
स्नुषां चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥

इधर इन्द्रकुमार महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव ! आप पुत्रवधू उत्तरासहित अपनी बहिन सुभद्राको धीरज बँधाइये । उत्तरा और उसकी सखियोंका शोक दूर कीजिये । प्रभो ! शान्तिपूर्ण, सत्य और युक्तियुक्त वचनोंद्वारा इन सबको आश्वासन दीजिये' ॥ ९-१० ॥

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥

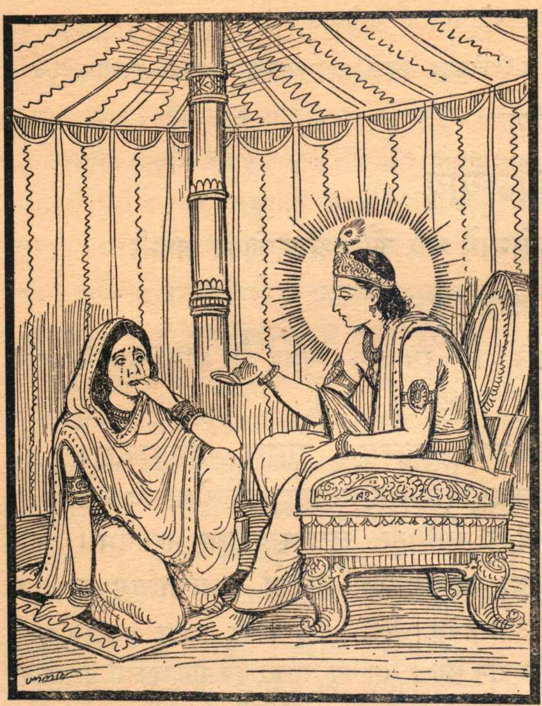
तब भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त उदास मनसे अर्जुनके शिविरमें गये और पुत्रशोकसे पीड़ित हुई अपनी दुखिया बहिनको आश्वासन देने लगे ॥ ११ ॥

वासुदेव उवाच

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वृष्णिनन्दिनी ! तुम और पुत्रवधू उत्तरा कुमार अभिमन्युके लिये शोक न करो ।

भीरु ! काल एक दिन सभी प्राणियोंकी ऐसी ही अवस्था कर देता है ॥ १२ ॥



कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः।
सदृशं मरणं ह्येतत् तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥

तुम्हारा पुत्र उत्तम कुलमें उत्पन्न धीर-वीर और विशेषतः क्षत्रिय था। यह मृत्यु उसके योग्य ही हुई है; इसलिये शोक न करो ॥ १३ ॥

दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥

यह सौभाग्यकी बात है कि पिताके तुल्य पराक्रमी धीर महारथी अभिमन्यु क्षत्रियोचित कर्तव्यका पालन करके उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है, जिसकी वीर पुरुष अभिलाषा करते हैं ॥ १४ ॥

जित्वा सुबहुशः शत्रून् प्रेषयित्वा च मृत्यवे।
गतः पुण्यकृतां लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥

वह बहुत-से शत्रुओंको जीतकर और बहुतोंको मृत्युके लोकमें भेजकर पुण्यात्माओंको प्राप्त होनेवाले उन अक्षय लोकोंमें गया है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥

तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और सद्बुद्धिके द्वारा साधुपुरुष जिस गतिको पाना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी प्राप्त हुई है ॥ १६ ॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥

सुभद्रे ! तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या और वीर भाइयोंकी बहिन हो। तुम पुत्रके लिये शोक न करो। वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्।
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥

वरारोहे ! बालककी हत्या करानेवाला वह पापकर्मा पापी सिंधुराज जयद्रथ रात बीतनेपर प्रातःकाल होते ही अपने सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित इस अपराधका फल पायेगा। वह अमरावतीपुरीमें जाकर छिप जाय तो भी अर्जुनके हाथसे उसका छुटकारा नहीं होगा ॥ १८-१९ ॥

श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम्।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥

तुम कल ही सुनोगी कि रणक्षेत्रमें जयद्रथका मस्तक काट लिया गया है और वह समन्तपञ्चक क्षेत्रसे बाहर जा गिरा है। अतः शोक त्याग दो और रोना बंद करो ॥ २० ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम्।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥

शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मको आगे रखकर सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग और इस संसारके दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं ॥ २१ ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत्।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥

सुन्दरी ! चौड़ी छाती और विशाल भुजाओंसे सुशोभित युद्धसे पीछे न हटनेवाला तथा शत्रुपक्षके रथियोंपर विजय पानेवाला तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें गया है। तुम चिन्ता छोड़ो ॥

अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान्।
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥

बलवान्, शूरवीर और महारथी अभिमन्यु पितृकुल तथा मातृकुलकी मर्यादाका अनुसरण करते हुए सहस्रों शत्रुओंको मारकर मरा है ॥ २३ ॥

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम्।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥

रानी बहिन ! अधिक चिन्ता छोड़ो और बहूको धीरज बँधाओ। अपने कुलको आनन्दित करनेवाली क्षत्रियकन्ये ! कल अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर शोकरहित हो जाओ ॥ २४ ॥

यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥

अर्जुनने जिस बातके लिये प्रतिज्ञा कर ली है, वह उसी रूपमें पूर्ण होगी। उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते॥ २६॥

यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता और असुर भी रणक्षेत्रमें आये हुए सिंधुराज जयद्रथकी सहायताके लिये आ जायँ तो भी वह कल उन सहायकोंके साथ ही जीवनसे हाथ धो बैठेगा॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्राको श्रीकृष्णका आश्वासनविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सुभद्राका विलाप और श्रीकृष्णका सबको आश्वासन

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिता॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! महात्मा केशवका यह कथन सुनकर पुत्रशोकसे व्याकुल और अत्यन्त दुःखित हुई सुभद्रा इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १॥

हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगे।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः॥ २॥

'हा पुत्र! हा बेटा अभिमन्यु! तुम मुझ अभागिनीके गर्भमें आकर क्रमशः पिताके तुल्य पराक्रमी होकर युद्धमें मारे कैसे गये?॥ २॥

कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम्।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना॥ ३॥

'वत्स! नील कमलके समान श्याम, सुन्दर दन्तपङ्क्तियोंसे सुशोभित, मनोहर नेत्रोंवाला तुम्हारा मुख आज युद्धकी धूलसे आच्छादित होकर कैसा दिखायी देता होगा?॥ ३॥

नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम्।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम्॥ ४॥
चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम्।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम्॥ ५॥

'बेटा! तुम शूरवीर थे। युद्धसे कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। मस्तक, ग्रीवा, बाहु और कंधे आदि तुम्हारे सभी अङ्ग सुन्दर थे, छाती चौड़ी थी, उदर एवं नाभिदेश नीचा था, समस्त अङ्ग मनोहर और हृष्ट-पुष्ट थे। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विशेषतः नेत्र बड़े सुन्दर थे तथा तुम्हारे सारे अङ्ग शस्त्रजनित आघातसे व्याप्त थे। इस दशामें तुम धरतीपर पड़े होगे और निश्चय ही समस्त प्राणी उदय होते हुए चन्द्रमाके समान तुम्हें देख रहे होंगे॥ ४-५॥

शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम्।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः॥ ६॥

'हाय! पहले जिसके शयन करनेके लिये बहुमूल्य बिछौनेसे ढकी हुई शय्या बिछायी जाती थी, वही बेटा अभिमन्यु सुख भोगनेके योग्य होकर भी आज बाणविद्ध शरीरसे भूतल-पर कैसे सो रहा होगा?॥ ६॥

योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे॥ ७॥

'जिस महाबाहु वीरके पास पहले सुन्दरी स्त्रियाँ बैठा करती थीं, वही आज युद्धभूमिमें पड़ा होगा और उसके आस-पास सियारिनें बैठी होंगी; यह सब कैसे सम्भव हुआ?॥

योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधवन्दिभिः।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते॥ ८॥

'पहले हर्षमें भरे हुए सूत, मागध और वन्दीजन जिसकी स्तुति किया करते थे, उसीकी आज विकट गर्जना करते हुए भयंकर मांसभक्षी जन्तुओंके समुदाय उपासना करते होंगे॥

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत्॥ ९॥

'शक्तिशाली पुत्र! तुम्हारे रक्षक पाण्डवों, वृष्णिवीरों तथा पाञ्चालवीरोंके होते हुए भी तुम्हें अनाथकी भाँति किसने मारा?॥ ९॥

अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम्॥ १०॥

'बेटा! तुम्हें देखनेके लिये मेरी आँखें तरस रही हैं, इनकी प्यास नहीं बुझी। अनघ! कितनी मन्दभागिनी हूँ। निश्चय ही आज मैं यमलोकको चली जाऊँगी॥ १०॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम्॥ ११॥

'वत्स ! बड़े-बड़े नेत्र, सुन्दर केशप्रान्त, मनोहर वाक्य और उत्तम सुगंधसे युक्त तुम्हारा घावरहित सुन्दर मुख मैं फिर कब देख पाऊँगी ?॥ ११ ॥

धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम्।
धिग् वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग् बलम्॥ १२॥

'भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुनके धनुषधारणको धिक्कार है, वृष्णिवंशी वीरोंके पराक्रमको धिक्कार है तथा पाञ्चालोंके बलको भी धिक्कार है ! ॥ १२ ॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन् मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान्।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम्॥ १३॥

'केकय, चेदि तथा मत्स्यदेशके वीरों और सृंजयवंशी क्षत्रियोंको भी धिक्कार है, जो युद्धमें गये हुए तुम-जैसे वीरकी रक्षा न कर सके ॥ १३ ॥

अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम्।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना॥ १४॥

'अभिमन्युको न देखनेके कारण मेरे नेत्र शोकसे व्याकुल हो रहे हैं। आज मुझे सारी पृथ्वी सूनी एवं कान्तिहीन-सी दिखायी देती है ॥ १४ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः।
कथं त्वातिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम्॥ १५॥

'वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके अतिरथी वीर पुत्र अभिमन्युको आज मैं धरतीपर पड़ा हुआ कैसे देख सकूँगी ? ॥ १५ ॥

एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने॥ १६॥

'बेटा ! आओ, आओ। तुम्हें प्यास लगी होगी। तुम्हें देखनेके लिये प्यासी हुई मुझ अभागिनी माताकी गोदमें बैठकर मेरे दूधसे भरे हुए इन स्तनोंको शीघ्र पी लो ॥१६॥

हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम्॥ १७॥

'हा वीर ! तुम सपनेमें मिले हुए धनकी भाँति मुझे दिखायी दिये और नष्ट हो गये। अहो ! यह मनुष्य-जीवन पानीके बुलबुलेके समान चञ्चल एवं अनित्य है ॥ १७ ॥

इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम्।
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम्॥ १८॥

'बेटा ! तुम्हारी यह तरुणी पत्नी तुम्हारे विरहशोकमें डूबी हुई है। जिसका बछड़ा खो गया हो, उस गायकी भाँति व्याकुल है। मैं इसे कैसे धीरज बँधाऊँगी ? ॥ १८ ॥

(उत्तरामुत्तमां जात्या सुशीलां प्रियभाषिणीम्।
शनकैः परिरभ्यैनां स्नुषां मम यशस्विनीम्॥
सुकुमारीं विशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
बालपल्लवतन्वङ्गीं मत्तमात्तङ्गगामिनीम्॥
बिम्बाधरोष्ठीमबलामभिमन्यो प्रहर्षय।)

'यह उत्तरा जातिसे उत्तम, सुशीला, प्रियभाषिणी, यशस्विनी तथा मेरी प्यारी बहू है। यह सुकुमारी है। इसके नेत्र बड़े-बड़े और मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति परम मनोहर है। इसके अङ्ग नूतन पल्लवोंके समान कृश हैं। यह मतवाले हाथीके समान मन्दगतिसे चलनेवाली है। इसके ओठ बिम्बफलके समान लाल हैं। बेटा अभिमन्यु ! तुम मेरी इस बहूको धीरे-धीरे हृदयसे लगाकर आनन्दित करो॥

अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने॥ १९॥

'अहो वत्स ! जब पुत्रके होनेका फल मिलनेका समय आया है, तब तुम मुझे अपने दर्शनोंके लिये भी तरसती हुई छोड़कर असमयमें ही चल बसे ॥ १९ ॥

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः॥ २०॥

'निश्चय ही कालकी गति बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अत्यन्त दुर्बोध है, जिसके अधीन होकर तुम श्रीकृष्ण-जैसे संरक्षकके रहते हुए संग्राम-भूमिमें अनाथकी भाँति मारे गये॥

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम्।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम्॥ २१॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि॥ २२॥

'वत्स ! यज्ञकर्ता, दानी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्यतीर्थोंमें नहानेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवा-परायण और सहस्रोंकी संख्यामें दक्षिणा देनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले॥२१-२२॥

या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज॥ २३॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो कभी पीछे पैर न हटानेवाले और शत्रुओंको मारकर मरनेवाले शूरवीरोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ २३ ॥

गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा॥ २४॥

'सहस्र गोदान करनेवाले, यज्ञके लिये दान देनेवाले तथा मनके अनुरूप सब सामग्रियोंसहित निवासस्थान प्रदान करनेवाले पुरुषोंको जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले॥

ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक॥ २५॥

'जो शरणागत वत्सल ब्राह्मणोंके लिये निधि स्थापित करते

हैं तथा किसी भी प्राणीको दण्ड नहीं देते, उन्हें जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २५ ॥

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनि ब्रह्मचर्यके द्वारा जिस गतिको पाते हैं और पतिव्रता स्त्रियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी सुलभ हो ॥२६॥

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥

'पुत्र ! सदाचारके पालनसे राजाओंको तथा सुरक्षित पुण्यके प्रभावसे पवित्र हुए चारों आश्रमोंके लोगोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है; दीनोंपर दया करनेवाले, उत्तम वस्तुओंको घरमें बाँटकर उपयोगमें लेनेवाले तथा चुगलीसे दूर रहनेवाले लोगोंको जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें भी मिले ॥ २७-२८ ॥

व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥

'वत्स ! व्रतपरायण, धर्मशील, गुरुसेवक एवं अतिथिको निराश न लौटानेवाले लोगोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २९ ॥

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥

'बेटा ! जो लोग भारी-से-भारी कठिनाइयोंमें और संकटोंमें पड़नेपर तथा शोकाग्निसे दग्ध होनेपर भी धैर्य धारण करके अपने आपको स्थिर रखते हैं, उन्हें मिलनेवाली गतिको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३० ॥

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥

'जो सदा इस जगत्‌में माता-पिताकी सेवा करते हैं और अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखते हैं, उनकी जैसी गति होती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम्।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥

'पुत्र ! ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास करते हुए परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहनेवाले मनीषी पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ ३२ ॥

साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः।
नारुंतुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥

'जो ईर्ष्या-द्वेषसे दूर रहकर समस्त प्राणियोंको समभावसे देखते हैं तथा जो किसीके मर्मस्थानको वाणीद्वारा चोट नहीं पहुँचाते एवं सबके प्रति क्षमाभाव रखते हैं, उनकी जो गति होती है, उसीको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

मधुमांसनिवृत्तानां मदाद् दम्भात् तथानृतात्।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥

'पुत्र ! जो मद्य और मांसका सेवन नहीं करते, मद, दम्भ और असत्यसे अलग रहते और दूसरोंको संताप नहीं देते हैं, उन्हें मिलनेवाली सद्गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥

'बेटा ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, लज्जाशील, ज्ञानसे परितृप्त, जितेन्द्रिय श्रेष्ठपुरुष जिस गतिको पाते हैं, उसीको तुम भी प्राप्त करो' ॥ ३५ ॥

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहितां तदा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उत्तरासहित विलाप करती हुई दीन-दुखी एवं शोकसे दुर्बल सुभद्राके पास उस समय द्रौपदी भी आ पहुँची ॥ ३६ ॥

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः।
उन्मत्तवत् तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे सब-की-सब अत्यन्त दुखी हो इच्छानुसार रोती और विलाप करती हुई पगली-सी हो गयीं और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३७ ॥

सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः।
सिक्त्वाम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः ३८
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम्।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तब कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी हो उन सबको होशमें लानेके लिये उपचार करने लगे। उन्होंने अपनी दुःखिनी बहिन सुभद्रापर जल छिड़ककर नाना प्रकारके हितकर वचन कहते हुए उसे आश्वासन दिया। पुत्रशोकसे मर्माहत हो वह रोती हुई काँप रही थी और अचेत-सी हो गयी थी। उस अवस्थामें भगवान्‌ने उससे कहा—॥ ३८-३९॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम्।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥

'सुभद्रे ! तुम पुत्रके लिये शोक न करो। द्रुपदकुमारी ! तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। वह क्षत्रियशिरोमणि सर्वश्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ है ॥ ४० ॥

ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥

'सुमुखि ! हमारी इच्छा तो यह है कि हमारे कुलमें और भी जितने पुरुष हैं, वे सब यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें ॥ ४१ ॥

कुर्याम तद् वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥

'तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले ही आज जैसा पराक्रम किया है, उसे हम और हमारे सुहृद् भी कार्यरूपमें परिणत करें'॥

एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिंदमः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपनी बहिन सुभद्रा, उत्तरा तथा द्रौपदीको आश्वासन देकर शत्रुदमन महाबाहु श्रीकृष्ण पुनः अर्जुनके ही पास चले आये ॥ ४३ ॥

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम् ।
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण राजाओं, बन्धुजनों तथा अर्जुनसे अनुमति ले अन्तःपुरमें गये और वे राजालोग भी अपने-अपने शिबिरमें चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्रा-विलापविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी विजयके लिये रात्रिमें भगवान् शिवका पूजन करवाना, जागते हुए पाण्डव सैनिकोंकी अर्जुनके लिये शुभाशंसा तथा अर्जुनकी सफलताके लिये श्रीकृष्णके दारुकके प्रति उत्साहभरे वचन

संजय उवाच

ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसंनिभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
अलंचकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके अनुपम भवनमें प्रवेश करके जलका स्पर्श किया और शुभ लक्षणोंसे युक्त वेदीपर वैदूर्यमणिके सदृश कुशोंकी सुन्दर शय्या बिछायी । तत्पश्चात् विधिपूर्वक परम मङ्गलकारी अक्षत, गन्ध एवं पुष्पमाला आदिसे उस शय्याको सजाया । उसके चारों ओर उत्तम आयुध रख दिये । इसके बाद जब अर्जुन आचमन कर चुके, तब विनीत (सुशिक्षित) परिचारकोंने उन्हें दिखाते हुए उनके निकट ही भगवान् शंकरका निशीथ-पूजन किया ॥ १—३½ ॥

ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके रात्रिका वह सारा उपहार उन्हींको समर्पित किया । तब मुसकराते हुए भगवान् गोविन्द अर्जुनसे बोले—॥ ४–५ ॥

सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान् गोप्तॄंश्चात्तायुधान् नरान् ॥ ६ ॥
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम् ।

'कुन्तीकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो । अब शयन करो । मैं तुम्हारे कल्याण-साधनके लिये ही जा रहा हूँ' ऐसा कहकर वहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये हुए मनुष्योंको द्वारपाल एवं रक्षक नियुक्त करके भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ अपने शिबिरमें चले गये ॥

शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
पार्थाय सर्वं भगवान् शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात् पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियंकरः ॥ ९ ॥

वहाँ बहुत-से कार्योंका चिन्तन करते हुए उन्होंने शुभ्र शय्यापर शयन किया । कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण सबके ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । उनका यश महान् है । वे विष्णुरूप गोविन्द अर्जुनका प्रिय करनेवाले हैं और सदा उनके कल्याणकी कामना रखते हैं । उन युक्तात्मा श्रीहरिने उत्तम योगका आश्रय ले अर्जुनके लिये वह सारा विधि-विधान सम्पन्न किया, जो उनके शोक और दुःखको दूर करनेवाला तथा तेज और कान्तिको बढ़ानेवाला था ॥ ७–९ ॥

न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥

राजन् ! उस रातमें पाण्डवोंके शिबिरमें कोई नहीं सोया । सब लोगोंमें जागरणका आवेश हो गया था ॥ १० ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥

सब लोग इसी चिन्तामें पड़े थे कि पुत्रशोकसे संतप्त हुए गाण्डीवधारी महामना अर्जुनने सहसा सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वे महाबाहु इन्द्रकुमार अपनी उस प्रतिज्ञाको कैसे सफल करेंगे?

कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ॥ १३ ॥
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥

महामना पाण्डवने यह बड़ा कष्टप्रद निश्चय किया है। उन्होंने पुत्रशोकसे संतप्त होकर बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर ली है। उधर राजा जयद्रथका पराक्रम भी महान् है, तथापि अर्जुन अपनी उस प्रतिज्ञाको पूरी कर लेंगे; क्योंकि उनके भाई भी बड़े पराक्रमी हैं और उनके पास सेनाएँ भी बहुत हैं ॥ १३–१४ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनंजयः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जयद्रथको सब बातें बता दी होंगी। अर्जुन युद्धमें सिंधुराज जयद्रथको मारकर पुनः सकुशल लौट आवें (यही हमारी शुभ कामना है) ॥ १५ ॥

जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनंजयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥

अर्जुन शत्रुओंको जीतकर अपना व्रत पूरा करें। यदि वे कल सिंधुराजको न मार सके तो अग्निमें प्रवेश कर जायँगे। कुन्तीकुमार धनंजय अपनी बात झूठी नहीं कर सकते। यदि अर्जुन मर गये तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर कैसे राजा होंगे? ॥ १६–१७ ॥

तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद् यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ।

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अर्जुनपर ही सारा विजयका भार रख दिया। यदि हमलोगोंका किया हुआ कुछ भी सत्कर्म शेष हो, यदि हमने दान और होम किये हों तो हमारे उन सभी शुभकर्मोंके फलसे सव्यसाची अर्जुन अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ १८½ ॥

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्तत ।

राजन्! प्रभो! इस प्रकार बातें करते और अर्जुनकी विजय चाहते हुए उन सभी सैनिकोंकी वह रात्रि महान् कष्टसे बीती थी ॥ १९½ ॥

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।

भगवान् श्रीकृष्ण उस रात्रिके मध्यकालमें जाग उठे और अर्जुनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके दारुकसे बोले—॥ २०½॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।

'दारुक! अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेसे शोकार्त होकर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं कल जयद्रथका वध कर डालूँगा' ॥ २१½ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।

'यह सब सुनकर दुर्योधन अपने मन्त्रियोंके साथ ऐसी मन्त्रणा करेगा' जिससे अर्जुन समरभूमिमें जयद्रथको मार न सकें॥

अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम्॥ २३ ॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।

'वे सारी अक्षौहिणी सेनाएँ जयद्रथकी रक्षा करेंगी तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विधिके पारंगत विद्वान् द्रोणाचार्य भी अपने पुत्र अश्वत्थामाके साथ उसकी रक्षामें रहेंगे ॥ २३½ ॥

एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।

'त्रिलोकीके एकमात्र वीर हैं सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, जो दैत्यों और दानवोंके भी दर्पका दलन करनेवाले हैं; परंतु वे भी द्रोणाचार्यसे सुरक्षित जयद्रथको युद्धमें मार नहीं सकते ॥

सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।२५।
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।

'अतः मैं कल वह उद्योग करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहले जयद्रथको मार डालेंगे ॥

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ।

'मुझे स्त्री, मित्र, कुटुम्बीजन, भाई-बन्धु तथा दूसरा कोई भी कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अधिक प्रिय नहीं है ॥ २६½ ॥

अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत् तथा ।

'दारुक! मैं अर्जुनसे रहित इस संसारको दो घड़ी भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता (कि मेरे रहते अर्जुनका कोई अनिष्ट हो) ॥ २७½ ॥

अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान् ।

'मैं अर्जुनके लिये हाथी, घोड़े, कर्ण और दुर्योधन-

सहित उन समस्त शत्रुओंको जीतकर सहसा उनका संहार कर डालूँगा ॥ २८½ ॥

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
धनंजयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।

'दारुक ! कलके महासमरमें तीनों लोक धनंजयके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए मेरे बल और प्रभावको देखें ॥

श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।

'दारुक ! कल युद्धमें मैं सहस्रों राजाओं तथा सैकड़ों राजकुमारोंको उनके घोड़े, हाथी एवं रथोंसहित मार भगाऊँगा ॥

श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।

'तुम कल देखोगे कि मैंने समराङ्गणमें कुपित होकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये सारी राजसेनाको चक्रसे चूर-चूर करके धरतीपर मार गिराया है ॥ ३१½ ॥

श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।

'कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस आदि समस्त लोक यह अच्छी तरह जान लेंगे कि मैं सव्यसाची अर्जुनका हितैषी मित्र हूँ ॥ ३२½ ॥

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ ३३ ॥
इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्द्धं ममार्जुनः ।

'जो अर्जुनसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो अर्जुनका अनुगामी है, वह मेरा अनुगामी है, तुम अपनी बुद्धिसे यह निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है ॥ ३३½ ॥

यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।

'कल प्रातःकाल तुम शास्त्रविधिके अनुसार मेरे उत्तम रथको सुसजित करके सावधानीके साथ लेकर युद्धस्थलमें चलना ॥ ३४½ ॥

गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।

'सूत ! कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष, बाण तथा अन्य सब आवश्यक सामग्रियोंको रथपर रखकर उसके पिछले भागमें समराङ्गणमें रथपर शोभा पानेवाले वीर विनतानन्दन गरुड़के चिह्नवाले ध्वजके लिये भी स्थान बना लेना ॥ ३५-३६½ ॥

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ।

'दारुक ! साथ ही उसमें छत्र लगाकर अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले तथा विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य सुवर्णमय जालोंसे विभूषित मेरे चारों श्रेष्ठ घोड़ों—बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य तथा सुग्रीवको जोत लेना और स्वयं भी कवच धारण करके तैयार रहना ॥ ३७-३८½ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।

'पाञ्चजन्य शङ्खका ऋषभ स्वरसे बजाया हुआ शब्द और भयंकर कोलाहल सुनते ही तुम बड़े वेगसे मेरे पास पहुँच जाना ॥ ३९½ ॥

एकाह्नाहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।

'दारुक ! मैं अपनी बुआजीके पुत्र भाई अर्जुनके सारे दुःख और अमर्षको एक ही दिनमें दूर कर दूँगा ॥ ४०½ ॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।

'सभी उपायोंसे ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे अर्जुन युद्धमें धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते-देखते जयद्रथको मार डालें ॥ ४१½ ॥

यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

'सारथे ! कल अर्जुन जिस-जिस वीरके वधका प्रयत्न करेंगे, मैं आशा करता हूँ, वहाँ-वहाँ उनकी निश्चय ही विजय होगी' ॥ ४२ ॥

दारुक उवाच

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥

दारुक बोला—पुरुषसिंह ! आप जिनके सारथि बने हुए हैं, उनकी विजय तो निश्चित है ही । उनकी पराजय कैसे हो सकती है ? ॥ ४३ ॥

एवं चैतत् करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

अर्जुनकी विजयके लिये कल सबेरे जो कुछ करनेकी आप मुझे आज्ञा देते हैं, उसे उसी रूपमें मैं अवश्य पूर्ण करूँगा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसम्भाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्ण और दारुककी बातचीतविषयक उन्नासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शिवजीके समीप जाना और उनकी स्तुति करना

संजय उवाच

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनंजयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचिन्त्यविक्रमः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर अचिन्त्य पराक्रमशाली कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये (वनवासकालमें व्यासजीके बताये हुए शिवसम्बन्धी) मन्त्रका चिन्तन करते-करते नींदसे मोहित हो गये॥ १॥

तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः॥ २॥

उस समय स्वप्नमें महातेजस्वी गरुड्ध्वज भगवान् श्रीकृष्ण शोकसंतप्त हो चिन्तामें पड़े हुए कपिध्वज अर्जुनके पास आये॥ २॥

प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनंजयः।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा॥ ३॥

धर्मात्मा धनंजय किसी भी अवस्थामें क्यों न हों, सदा प्रेम और भक्तिके साथ खड़े होकर श्रीकृष्णका स्वागत करते थे। अपने इस नियमका वे कभी लोप नहीं होने देते थे॥ ३॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ।
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात् तदा॥ ४॥

अर्जुनने खड़े होकर गोविन्दको बैठनेके लिये आसन दिया और स्वयं उस समय किसी आसनपर बैठनेका विचार उन्होंने नहीं किया॥ ४॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम्।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत्॥ ५॥

तब महातेजस्वी श्रीकृष्ण पार्थके इस निश्चयको जानकर अकेले ही आसनपर बैठ गये और खड़े हुए कुन्तीकुमारसे इस प्रकार बोले—॥ ५॥

मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ॥ ६॥

'कुन्तीनन्दन! तुम अपने मनको विषादमें न डालो; क्योंकि कालपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। काल ही समस्त प्राणियोंको विधाताके अवश्यम्भावी विधानमें प्रवृत्त कर देता है॥ ६॥

किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः॥ ७॥

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन! बताओ तो सही, तुम्हें किस लिये विषाद हो रहा है? विद्वद्वर! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक समस्त कर्मोंका विनाश करनेवाला है॥

यत् तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनंजय॥ ८॥

'जो कार्य करना हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करो। धनंजय! उद्योगहीन मनुष्यका जो शोक है, वह उसके लिये शत्रुके समान है॥ ८॥

शोचन् नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान्।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ९॥

'शोक करनेवाला पुरुष अपने शत्रुओंको आनन्दित करता और बन्धु-बान्धवोंको दुःखसे दुर्बल बनाता है। इसके सिवा वह स्वयं भी शोकके कारण क्षीण होता जाता है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये'॥ ९॥

इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत्॥ १०॥

वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर किसीसे पराजित न होनेवाले विद्वान् अर्जुनने यह अर्थयुक्त वचन उस समय कहा—॥ १०॥

मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव॥ ११॥

'केशव! मैंने जयद्रथ-वधके लिये यह भारी प्रतिज्ञा कर ली है कि कल मैं अपने पुत्रके घातक दुरात्मा सिंधुराजको अवश्य मार डालूँगा॥ ११॥

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः॥ १२॥

'परंतु अच्युत! धृतराष्ट्र-पक्षके सभी महारथी मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेके लिये सिंधुराजको निश्चय ही सबसे पीछे खड़े करेंगे और वह उन सबके द्वारा सुरक्षित होगा॥ १२॥

दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया॥ १३॥
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः।
कथं शक्येत संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः॥ १४॥

'माधव! श्रीकृष्ण! कौरवोंकी वे ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ, जो अत्यन्त दुर्जय हैं और उनमें मरनेसे बचे हुए जितने सैनिक विद्यमान हैं, उनसे तथा पूर्वोक्त सभी महारथियोंसे युद्धस्थलमें घिरे होनेपर दुरात्मा सिंधुराजको कैसे देखा जा सकता है?॥ १३-१४॥

प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवेत मद्विधः॥ १५॥

'केशव! ऐसी अवस्थामें प्रतिज्ञाकी पूर्ति नहीं हो

सकेगी और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर मेरे-जैसा पुरुष कैसे जीवन धारण कर सकता है ? ॥ १५ ॥

दुःखोपायस्य मे वीर विकाङ्क्षा परिवर्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

'वीर ! अब इस कष्टसाध्य (जयद्रथवधरूपी कार्य) की ओरसे मेरी अभिलाषा परिवर्तित हो रही है । इसके सिवा इन दिनों सूर्य जल्दी अस्त हो जाते हैं; इसलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ' ॥ १६ ॥

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥१७॥
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥

अर्जुनके शोकका आधार क्या है, यह सुनकर महातेजस्वी विद्वान् गरुड़ध्वज कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण आचमन करके पूर्वाभिमुख होकर बैठे और पाण्डुपुत्र अर्जुनके हित तथा सिंधुराज जयद्रथके वधके लिये इस प्रकार बोले—१७-१८

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान् मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! पाशुपत नामक एक परम उत्तम सनातन अस्त्र है, जिससे युद्धमें भगवान् महेश्वरने समस्त दैत्योंका वध किया था ॥ १९ ॥

यदि तद् विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनंजय ।
ततस्तस्य प्रसादात् त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥

'यदि वह अस्त्र आज तुम्हें विदित हो तो तुम अवश्य कल जयद्रथको मार सकते हो और यदि तुम्हें उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन भगवान् वृषभध्वज (शिव) की शरण लो । धनंजय ! तुम मनमें उन महादेवजीका ध्यान करते हुए चुपचाप बैठ जाओ । तब उनके दया-प्रसादसे तुम उनके भक्त होनेके कारण उस महान् अस्त्रको प्राप्त कर लोगे' ॥

ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनंजयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुन जलका आचमन करके धरतीपर एकाग्र होकर बैठ गये और मनसे महादेवजीका चिन्तन करने लगे ॥ २२ ॥

ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद् गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥

तब शुभ लक्षणोंसे युक्त ब्राह्म मुहूर्तमें ध्यानस्थ होनेपर अर्जुनने अपने आपको भगवान् श्रीकृष्णके साथ आकाशमें जाते देखा ॥ २३ ॥

पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥

पवित्र हिमालयके शिखर तथा तेजःपुञ्जसे व्याप्त एवं सिद्धों और चारणोंसे सेवित मणिमान् पर्वतको भी देखा ॥२४॥

वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥

उस समय अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके साथ वायुवेगके समान तीव्रगतिसे आकाशमें बहुत ऊँचे उठ गये । भगवान् केशवने उनकी दाहिनी बाँह पकड़ रक्खी थी ॥ २५ ॥

प्रेक्षमाणो बहून् भावाञ्जगामाद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥२६॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा अर्जुनने अद्भुत दिखायी देनेवाले बहुत-से पदार्थोंको देखते हुए क्रमशः उत्तर दिशामें जाकर श्वेत पर्वतका दर्शन किया ॥ २६ ॥

कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥

इसके बाद उन्होंने कुबेरके उद्यानमें कमलोंसे विभूषित सरोवर तथा अगाध जलराशिसे भरी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाका अवलोकन किया ॥ २७ ॥

सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥

गङ्गाके तटपर स्फटिकमणिमय पत्थर सुशोभित होते थे । सदा फूल और फलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह वहाँकी शोभा बढ़ा रहे थे । गङ्गाके उस तटप्रान्तमें बहुत-से सिंह और व्याघ्र विचरण करते थे । नाना प्रकारके मृग वहाँ सब ओर भरे हुए थे ॥ २८ ॥

पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥

अनेक पवित्र आश्रमोंसे युक्त और मनोहर पक्षियोंसे सेवित रमणीय गङ्गानदीका दर्शन करते हुए आगे बढ़नेपर उन्हें मन्दराचलके प्रदेश दिखायी दिये, जो किन्नरोंके उच्चस्वरसे गाये हुए मधुर गीतोंसे मुखरित हो रहे थे ।२९।

हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥

सोने और चाँदीके शिखर तथा फूलोंसे भरे हुए पारिजातके वृक्ष उन पर्वतीय प्रान्तोंकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा भाँति-भाँतिकी तेजोमयी ओषधियाँ वहाँ अपना प्रकाश फैला रही थीं ॥ ३० ॥

स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥

वे क्रमशः आगे बढ़ते हुए स्निग्ध कज्जलराशिके समान आकारवाले काल पर्वतके समीप जा पहुँचे । फिर



अर्जुनका स्वप्नदर्शन

ब्रह्मतुंग पर्वत, अन्यान्य नदियों तथा बहुत-से जनपदोंको भी उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥

स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रमशः उच्चतम शतशृङ्ग, शर्यातिवन, पवित्र अश्वशिरःस्थान, आथर्वण मुनिका स्थान और गिरिराज वृषदंशका अवलोकन करते हुए वे महा-मन्दराचलपर जा पहुँचे, जो अप्सराओंसे व्याप्त और किन्नरोंसे सुशोभित था ॥ ३२-३३ ॥

तस्मिञ्शैले व्रजन् पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।

उस पर्वतके ऊपरसे जाते हुए श्रीकृष्णसहित अर्जुनने नीचे देखा कि नगरों एवं गाँवोंके समुदायसे सुशोभित, सुवर्णमय धातुओंसे विभूषित तथा सुन्दर झरनोंसे युक्त पृथ्वीके सम्पूर्ण अङ्ग चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३४½ ॥

समुद्रांश्चाद्भुताकारानपश्यद् बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥
वियद् द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६ ॥

बहुत-से रत्नोंकी खानोंसे युक्त समुद्र भी अद्भुत आकारमें दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाशका एक साथ दर्शन करके आश्चर्यचकित हुए अर्जुन श्रीकृष्णके साथ विष्णुपद (उच्चतम आकाश) में यात्रा करने लगे। वे धनुषसे चलाये हुए बाणके समान आगे बढ़ रहे थे ॥ ३५-३६ ॥

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने एक पर्वतको देखा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान उसकी प्रभा सब ओर फैल रही थी ॥ ३७ ॥

समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद् वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥

उस पर्वतपर पहुँचकर अर्जुनने उसके एक शिखरपर खड़े हुए नित्य तपस्यापरायण परमात्मा भगवान् वृषभध्वजका दर्शन किया ॥ ३८ ॥

सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥

वे अपने तेजसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे। उनके हाथमें त्रिशूल, मस्तकपर जटा और श्रीअङ्गोंपर वल्कल एवं मृगचर्मके वस्त्र शोभा पा रहे थे। उनकी कान्ति गौरवर्णकी थी ॥ ३९ ॥

नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसंघैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥

सहस्रों नेत्रोंसे युक्त उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी। वे तेजस्वी महादेव अपनी धर्मपत्नी पार्वतीजीके साथ विराजमान थे और तेजोमय शरीरवाले भूतोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे ॥ ४० ॥

गीतवादित्रसंनादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्कुष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥

उनके सम्मुख गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही थी। हास्य-लास्य (नृत्य) का प्रदर्शन किया जा रहा था। प्रमथगण उछल-कूदकर बाहें फैलाकर और उच्चस्वरसे बोल-बोलकर अपनी कलाओंसे भगवान्‌का मनोरंजन करते थे। उनकी सेवामें पवित्र, सुगन्धित पदार्थ प्रस्तुत किये गये थे ॥

स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मवादी महर्षिगण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले वे समस्त प्राणियोंके रक्षक भगवान् शिव धनुष धारण किये हुए (अद्भुत शोभा पा रहे) थे ॥ ४२ ॥

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥

अर्जुनसहित धर्मात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने उन्हें देखते ही वहाँकी पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम किया और उन सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥
कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥

वे जगत्‌के आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मनकी उत्पत्तिके प्रधान कारण, आकाश एवं वायुस्वरूप, तेजके आश्रय, जलकी सृष्टि करनेवाले, पृथ्वीके भी परम कारण, देवताओं, दानवों, यक्षों तथा मनुष्योंके भी प्रधान कारण, सम्पूर्ण योगोंके परम आश्रय, ब्रह्मवेत्ताओंकी

प्रत्यक्ष निधि, चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले तथा इन्द्रके ऐश्वर्य आदि और सूर्यदेवके प्रताप आदि गुणोंको प्रकट करनेवाले परमात्मा थे। उनके क्रोधमें कालका निवास था। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने मन, वाणी, बुद्धि और क्रियाओंद्वारा उनकी वन्दना की ॥ ४४-४७ ॥

यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥

सूक्ष्म अध्यात्मपदकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् जिनकी शरण लेते हैं, उन्हीं कारणस्वरूप अजन्मा भगवान् शिवकी शरणमें श्रीकृष्ण और अर्जुन भी गये ॥ ४८ ॥

अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽभ्यवन्दत।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥

अर्जुनने भी उन्हें समस्त भूतोंका आदि कारण और भूत, भविष्य एवं वर्तमान जगत्का उत्पादक जानकर बारंबार उन महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥

उन दोनों नर और नारायणको वहाँ आया देख भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए-से बोले—॥

स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम्॥ ५१ ॥

'नरश्रेष्ठो! तुम दोनोंका स्वागत है। उठो। तुम्हारा श्रम दूर हो। वीरो! तुम दोनोंके मनकी अभीष्ट वस्तु क्या है? यह शीघ्र बताओ ॥ ५१ ॥

येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत् साधयामि किम्।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत् सर्वं प्रददानि वाम् ॥ ५२ ॥

'तुम दोनों जिस कार्यसे यहाँ आये हो, वह क्या है? मैं उसे सिद्ध कर दूँगा। अपने लिये कल्याणकारी वस्तुको माँगो। मैं तुम दोनोंको सब कुछ दे सकता हूँ' ॥ ५२ ॥

ततस्तद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर अनिन्दित महात्मा परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हाथ जोड़कर खड़े हो गये और दिव्य स्तोत्रद्वारा भक्तिभावसे उन भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

कृष्णार्जुनावूचतुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन बोले—भव (सबकी उत्पत्ति करनेवाले), शर्व (संहारकारी), रुद्र[1] (दुःख दूर करनेवाले), वरदाता, पशुपति (जीवोंके पालक), सदा उग्ररूपमें रहनेवाले और जटाजूटधारी भगवान् शिवको नमस्कार है ॥५५॥

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५६ ॥

महान् देवता, भयंकर रूपधारी, तीन नेत्र धारण करनेवाले, शान्तिस्वरूप, सबका शासन करनेवाले, दक्ष-यज्ञनाशक तथा अन्धकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् शंकरको प्रणाम है ॥ ५६ ॥

कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥

प्रभो! आप कुमार कार्तिकेयके पिता, कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले, लोकस्रष्टा, पिनाकधारी, हविष्यके अधिकारी, सत्यस्वरूप और सर्वत्र व्यापक हैं, आपको सदैव नमस्कार है ॥ ५७ ॥

विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
हन्त्रे गोप्त्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ६० ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥

विशेष लोहित एवं धूम्रवर्णवाले, मृगव्याधस्वरूप, समस्त प्राणियोंको पराजित करनेवाले, सर्वदा नीलकेश धारण करनेवाले, त्रिशूलधारी, दिव्यलोचन, संहारक, पालक, त्रिनेत्रधारी, पापरूपी मृगोंके बधिक, हिरण्यरेता (अग्नि), अचिन्त्य, अम्बिकापति, सम्पूर्ण देवताओंद्वारा प्रशंसित, वृषभ-चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले, मुण्डित मस्तक, जटाधारी, ब्रह्मचारी, जलमें तप करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, अपराजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वको व्याप्त करके स्थित, सबके सेवन करनेयोग्य तथा सदा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारणभूत आप भगवान् शिवको बारंबार नमस्कार है।५८-६१।

ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण जिनके मुख हैं, उन सर्वस्वरूप कल्याणकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। वाणीके अधीश्वर और प्रजाओंके पालक आपको नमस्कार है ॥ ६२ ॥

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे।

१. रुद्दुःखं तद् द्रावयति इति रुद्रः।

विश्वके स्वामी और महापुरुषोंके पालक भगवान् शिवको नमस्कार है, जिनके सहस्रों सिर और सहस्रों भुजाएँ हैं, जो मृत्युस्वरूप हैं, जिनके नेत्र और पैर भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं तथा जिनके कर्म असंख्य हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ६३½

नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥

सुवर्णके समान जिनका रंग है, जो सुवर्णमय कवच धारण करते हैं, उन आप भक्तवत्सल भगवान्‌को मेरा नित्य नमस्कार है। प्रभो! हमारा अभीष्ट वर सिद्ध हो ॥ ६४ ॥

संजय उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

संजय कहते हैं—इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके उस समय अर्जुनसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिके लिये भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनस्वप्नविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनको स्वप्नमें ही पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

संजय उवाच

ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम्।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने प्रसन्नचित्त हो हाथ जोड़कर समस्त तेजोंके भण्डार भगवान् वृषभध्वजका हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे दर्शन किया ॥ १ ॥

तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपनेद्वारा समर्पित किये हुए रात्रिकालके उस नैत्यिक उपहारको, जिसे श्रीकृष्णको निवेदित किया था, भगवान् त्रिनेत्रधारी शिवके समीप रक्खा हुआ देखा ॥ २ ॥

ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्ण और शिवकी पूजा करके भगवान् शङ्करसे कहा—'प्रभो! मैं आपसे दिव्य अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ' ॥ ३ ॥

ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुनका वर-प्राप्तिके लिये वह वचन सुनकर महादेवजी मुसकराने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे बोले— ॥

स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम्।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ! तुम दोनोंका स्वागत है। तुम्हारा मनोरथ मुझे विदित है। तुम दोनों जिस कामनासे यहाँ आये हो, उसे मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥ ५ ॥

सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ।
तत्र मे तद् धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥

'शत्रुसूदन वीरो! यहाँ पास ही दिव्य अमृतमय सरोवर है, वहीं पूर्वकालमें मेरा वह दिव्य धनुष और बाण रक्खा गया था, जिसके द्वारा मैंने युद्धमें सम्पूर्ण देव-शत्रुओंको मार गिराया था। कृष्ण! तुम दोनों उस सरोवरसे बाणसहित वह उत्तम धनुष ले आओ' ॥ ६-७ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
निर्दिष्टं यद् वृषाङ्केण पुण्यं सर्वार्थसाधकम्।
तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे दोनों वीर भगवान् शङ्करके पार्षदगणोंके साथ सैकड़ों दिव्य ऐश्वर्योंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले उस पुण्यमय दिव्य सरोवरकी ओर प्रस्थित हुए, जिसकी ओर जानेके लिये महादेवजीने स्वयं ही संकेत किया था। वे दोनों नर-नारायण ऋषि बिना किसी घबराहटके वहाँ जा पहुँचे ॥ ८-९ ॥

ततस्तौ तत् सरो गत्वा सूर्यमण्डलसंनिभम्।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥

उस सरोवरके तटपर पहुँचकर अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनोंने जलके भीतर एक भयंकर नाग देखा, जो सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित हो रहा था॥ १० ॥

द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं वरम्।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥

वहीं उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी और सहस्र फणोंसे युक्त दूसरा श्रेष्ठ नाग भी देखा, जो अपने मुखसे आगकी प्रचण्ड ज्वालाएँ उगल रहा था ॥ ११ ॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याम्भः कृताञ्जली।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥

तब श्रीकृष्ण और अर्जुन जलसे आचमन करके हाथ जोड़ भगवान् शङ्करको प्रणाम करते हुए उन दोनों नागोंके निकट खड़े हो गये ॥ १२ ॥

गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद् ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥

वे दोनों ही वेदोंके विद्वान् थे। अतः उन्होंने शतरुद्री मन्त्रोंका पाठ करते हुए साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अप्रमेय शिवकी सब प्रकारसे शरण लेकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १३ ॥

ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवान् शङ्करकी महिमासे वे दोनों महानाग अपने उस रूपको छोड़कर दो शत्रुनाशक धनुष-बाणके रूपमें परिणत हो गये ॥ १४ ॥

तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥

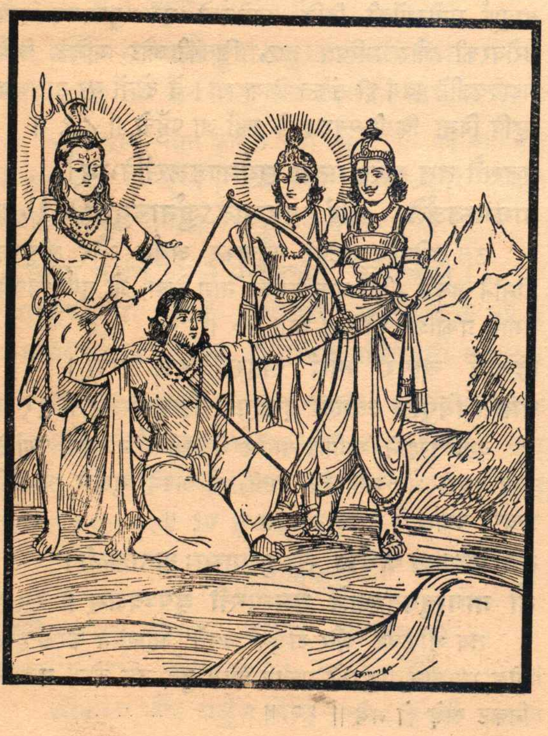
उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस प्रकाशमान धनुष और बाणको हाथमें ले लिया । फिर वे उन्हें महादेवजीके पास ले आये और उन्हीं महात्माके हाथोंमें अर्पित कर दिया ॥ १५ ॥

ततः पार्श्वाद् वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान् नीललोहितः ॥ १६ ॥

तब भगवान् शङ्करके पार्श्वभागसे एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जो पिङ्गल नेत्रोंसे युक्त, तपस्याका क्षेत्र, बलवान् तथा नील-लोहित वर्णका था ॥ १६ ॥

स तद् गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाथ विधिवत् सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥

वह एकाग्रचित्त हो उस श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर एक धनुर्धरको जैसे खड़ा होना चाहिये, वैसे खड़ा हुआ। फिर उसने बाणसहित उस उत्तम धनुषको विधिपूर्वक खींचा ॥ १७ ॥



तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥

उस समय अचिन्त्य पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसका मुट्ठीसे धनुष पकड़ना, धनुषकी डोरीको खींचना और विशेष प्रकारसे उसका खड़ा होना—इन सब बातोंकी ओर लक्ष्य रखते हुए भगवान् शङ्करके द्वारा उच्चारित मन्त्रको सुनकर मनसे ग्रहण कर लिया ॥ १८ ॥

स सरस्येव तं बाणं मुमोचातिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन् सरसि तद् धनुः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त बलशाली वीर भगवान् शिवने उस बाणको उसी सरोवरमें छोड़ दिया । फिर उस धनुषको भी वहीं डाल दिया ॥ १९ ॥

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।

तब स्मरणशक्तिसे सम्पन्न अर्जुनने भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रसन्न जानकर वनवासके समय जो भगवान् शङ्करका दर्शन और वरदान प्राप्त हुआ था, उसका मन-ही-मन चिन्तन किया और यह इच्छा की कि मेरा वह मनोरथ पूर्ण हो ॥ २०½ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद् वरं भवः ॥ २१ ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।

उनके इस अभिप्रायको जानकर भगवान् शङ्करने प्रसन्न हो वरदानके रूपमें वह घोर पाशुपत अस्त्र, जो उनकी प्रतिज्ञाकी पूर्ति करानेवाला था, दे दिया ॥ २१½ ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।

भगवान् शङ्करसे उस दिव्य पाशुपतास्त्रको पुनः प्राप्त करके दुर्धर्ष वीर अर्जुनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब मेरा कार्य पूर्ण हो जायगा ॥

ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥

फिर तो अत्यन्त हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महापुरुषोंने मस्तक नवाकर भगवान् महेश्वरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले उसी क्षण वे दोनों वीर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिबिरको लौट आये ॥ २३-२४ ॥

तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना ।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥ २५ ॥

जैसे पूर्वकालमें जम्भासुरके वधकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और विष्णु महासुरविनाशक भगवान् शङ्करकी अनुमति पाकर प्रसन्नतापूर्वक लौटे थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन भी आनन्दित होकर अपने शिविरमें आये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनको पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंको दान देना, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासनपर बैठना और वहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना

संजय उवाच

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा।
सात्यगाद् रजनी राजन्नथ राजान्वबुध्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर श्रीकृष्ण और दारुकमें पूर्वोक्त प्रकारसे बातें हो ही रही थीं कि वह रात बीत गयी। दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर भी जाग गये ॥ १ ॥

पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

उस समय हाथसे ताली देकर गीत गानेवाले तथा माङ्गलिक वस्तुओंको प्रस्तुत करनेवाले सूत, मागध और वैतालिक जन पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥

नर्तक नाचने और रागयुक्त कण्ठवाले गायक कुरुकुलकी स्तुतिसे युक्त मधुर गीत गाने लगे ॥ ३ ॥

मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥

भारत! सुशिक्षित एवं कुशल वादक अत्यन्त हर्षमें भरकर मृदङ्ग, झाँझ, भेरी, पणव, आनक, गोमुख, आडम्बर, शङ्ख और बड़े जोरसे बजनेवाली दुन्दुभियाँ तथा दूसरे प्रकारके वाद्योंको भी बजाने लगे ॥ ४-५ ॥

स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद् दिवम्।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥

वाद्योंका वह मेघके समान गम्भीर एवं महान् घोष आकाशतक फैल गया। उस ध्वनिने सोये हुए नृपश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरको जगा दिया ॥ ६ ॥

प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे।
उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥

बहुमूल्य एवं उत्तम शय्यापर सुखपूर्वक सोकर जगे हुए राजा युधिष्ठिर वहाँसे उठकर आवश्यक कार्यके लिये स्नान करने गये ॥ ७ ॥

ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक सौ आठ युवक सोनेके घड़ोंमें जल भरकर उन्हें नहलानेके लिये उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

भद्रासने सूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥

उस समय एक हल्का वस्त्र पहनकर राजा युधिष्ठिर भद्रासन (चौकी) पर बैठ गये और चन्दनयुक्त मन्त्रपूत जलसे स्नान करने लगे ॥ ९ ॥



उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन स सुगन्धिना ॥ १० ॥

सबसे पहले बलवान् तथा सुशिक्षित पुरुषोंने सर्वौषधि आदिद्वारा तैयार किये हुए उबटनसे उनके शरीरको अच्छी तरह मला, फिर उन्होंने अधिवासित एवं सुगन्धित जलसे स्नान किया ॥ १० ॥

राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम्।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् राजहंसके समान सफेद ढीली-ढाली पगड़ी लेकर माथेका जल सुखानेके लिये उसे मस्तकपर लपेट लिया॥ ११॥

हरिणा चन्दनेनाङ्गमुपलिप्य महाभुजः।
स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः॥ १२ ॥

फिर वे महाबाहु युधिष्ठिर अपने सारे अङ्गोंमें हरिचन्दनका अनुलेपन करके नूतन वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये हाथ जोड़े पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ १२ ॥

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः।
तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥

सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने जपने योग्य गायत्री मन्त्रका जप किया और प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशित अग्निशालामें विनीतभावसे प्रवेश किया ॥ १३ ॥

समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात् ततः ॥ १४ ॥

वहाँ पवित्री (कुशके दो पत्तों) सहित समिधाओं तथा मन्त्रपूत आहुतियोंसे अग्निदेवकी पूजा करके वे उस अग्निहोत्रगृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥

द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद् ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥

फिर शिविरकी दूसरी ड्योढ़ी पार करके पुरुषसिंह राजा युधिष्ठिरने वेदवेत्ता वृद्ध ब्राह्मणशिरोमणियोंको देखा ॥ १५ ॥

दान्तान् वेदव्रतस्नातान् स्नातानवभृथेषु च।
सहस्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान् ॥ १६ ॥

वे सबके-सब जितेन्द्रिय, वेदाध्ययनके व्रतमें निष्णात, यज्ञान्तस्नानसे पवित्र तथा सूर्यदेवके उपासक थे। वे संख्यामें एक हजार आठ थे और उनके साथ एक सहस्र अनुचर थे ॥ १६ ॥

अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः।
तान् द्विजान् मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥
प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः।

तब महाबाहु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने अक्षत-फूल देकर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणको मधु, घी एवं श्रेष्ठ माङ्गलिक फलोंके साथ एक-एक स्वर्णमुद्रा प्रदान की ॥ १७½ ॥

अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सवत्साः पाण्डुनन्दनः।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्त्वा चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥

इसके सिवा उन पाण्डुनन्दनने ब्राह्मणोंको सजे-सजाये सौ घोड़े, उत्तम वस्त्र, इच्छानुसार दक्षिणा और बछड़ोंसहित दूध देनेवाली बहुत-सी कपिला गौएँ दीं। उन गौओंके सींगोंमें सोने और खुरोंमें चाँदी मढ़े हुए थे। उन सबको देकर युधिष्ठिरने उन (गौओं एवं ब्राह्मणों)की परिक्रमा की ॥

स्वस्तिकान् वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान्।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
मङ्गल्यान् पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् सोनेके बने हुए स्वस्तिक, सिकोरे, बन्द मुँहवाले अर्घपात्र, माला, जलसे भरे हुए कलश, प्रज्वलित अग्नि, अक्षतसे भरे हुए पूर्णपात्र, बिजौरा नीबू, गोरोचन, आभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी कन्याएँ, दही, घी, मधु, जल, माङ्गलिक पक्षी तथा अन्यान्य भी जो प्रशस्त वस्तुएँ हैं, उन सबको देखकर और उनमेंसे कुछका स्पर्श करके कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने बाहरी ड्योढ़ीमें प्रवेश किया ॥ २०—२२ ॥

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत्।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥

उस ड्योढ़ीमें खड़े हुए महाबाहु युधिष्ठिरके सेवकोंने उनके लिये सोनेका बना हुआ एक सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसन दिया, जिसमें मुक्ता और वैदूर्यमणि जड़ी हुई थी। उसपर बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था। उसके ऊपर सुन्दर चादर बिछायी गयी थी। वह दिव्य एवं समृद्धिशाली सिंहासन साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ २३-२४ ॥

तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥

वहाँ बैठे हुए महात्मा राजा युधिष्ठिरको उनके सेवकोंने सब प्रकारके उज्ज्वल एवं बहुमूल्य आभूषण भेंट किये ॥ २५ ॥

मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥

महाराज ! मुक्तामय आभूषणोंसे विभूषित वेशवाले महात्मा कुन्तीनन्दनका स्वरूप उस समय शत्रुओंका शोक बढ़ा रहा था ॥ २६ ॥

चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥

चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत तथा सुवर्णमय दण्डवाले सुन्दर शोभाशाली अनेक चँवर डुलाये जा रहे थे। उनसे राजा युधिष्ठिरकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे बिजलियोंसे मेघ सुशोभित होता है ॥ २७ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥ २८ ॥

उस समय सूतगण स्तुति करते थे, वन्दीजन वन्दना कर रहे थे और गन्धर्वगण उनके सुयशके गीत गाते थे। इन सबसे घिरे हुए युधिष्ठिर वहाँ सिंहासनपर विराजमान थे। २८।

ततो मुहूर्तादासीत् स्यन्दनानां स्वनो महान्।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें रथोंका महान् शब्द गूँज उठा। रथियोंके रथोंके पहियोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी टापोंके शब्द सुनायी देने लगे ॥ २९ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥

हाथियोंके घंटोंकी घनघनाहट, शङ्खोंकी ध्वनि तथा पैदल चलनेवाले मनुष्योंके पैरोंकी धमकसे यह पृथ्वी काँपती-सी जान पड़ती थी ॥ ३० ॥

ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः संनद्धकवचो युवा।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने।

इसी समय कानोंमें कुण्डल पहने, कमरमें तलवार बाँधे और वक्षःस्थलपर कवच धारण किये एक तरुण द्वारपालने उस ड्योढ़ीके भीतर प्रवेश करके धरतीपर दोनों घुटने टेक दिये और वन्दनीय महाराज युधिष्ठिरको मस्तक नवाकर प्रणाम किया। इस प्रकार सिरसे प्रणाम करके उसने धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरको यह सूचना दी कि भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं ॥ ३१-३२½ ॥

सोऽब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥ ३३ ॥
अर्घ्यं चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम्।

तब पुरुषसिंह युधिष्ठिरने द्वारपालसे कहा—'तुम माधवको स्वागतपूर्वक ले आओ और उन्हें अर्घ्य तथा परम उत्तम आसन अर्पित करो' ॥ ३३½ ॥

ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने।
पूजयामास विधिवद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

तब द्वारपालने भगवान् श्रीकृष्णको भीतर ले आकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा दिया। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें युधिष्ठिरके सुसज्जित होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना और श्रीकृष्णका उन्हें आश्वासन देना

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम्।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त प्रसन्न हो देवकीनन्दन जनार्दनका अभिनन्दन करके पूछा—॥ १ ॥

सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित् ते मधुसूदन।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत ॥ २ ॥

'मधुसूदन! क्या आपकी रात सुखपूर्वक बीती है? अच्युत! क्या आपकी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न हैं?' ॥ २ ॥

वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरम्।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने भी उनसे समयोचित प्रश्न किये। तत्पश्चात् सेवकने आकर सूचना दी कि मन्त्री, सेनापति आदि उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥

उस समय महाराजकी अनुमति पाकर विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजकुमार, कुरुवंशी युयुत्सु, पाञ्चाल वीर उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र–इन सब लोगोंको द्वारपाल भीतर ले आया॥४–६॥

एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासने शुभे ॥ ७ ॥

ये तथा और भी बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुए और सुन्दर आसनपर बैठे॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥

महाबली और महातेजस्वी महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि ये दोनों वीर एक ही आसनपर बैठे थे ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥

तब युधिष्ठिरने उन सब लोगोंके सुनते हुए कमलनयन भगवान् मधुसूदनको सम्बोधित करके मधुर वाणीमें कहा–॥

एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥

'प्रभो ! जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार हमलोग एकमात्र आपका सहारा लेकर युद्धमें विजय और शाश्वत सुख पाना चाहते हैं ॥ १० ॥

त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! शत्रुओंने जो हमारे राज्यका नाश करके हमारा तिरस्कार किया और भाँति-भाँतिके क्लेश दिये, उन सबको आप अच्छी तरह जानते हैं ॥ ११ ॥

त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥

'भक्तवत्सल सर्वेश्वर ! मधुसूदन ! हम सब लोगोंका सुख और जीवननिर्वाह पूर्णरूपसे आपके ही अधीन है॥१२॥

स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥

'वार्ष्णेय ! हमारा मन आपमें ही लगा हुआ है । अतः आप ऐसा करें, जिससे अर्जुनकी अभीष्ट प्रतिज्ञा सत्य होकर रहे॥

स भवांस्तारयत्वस्माद् दुःखामर्षमहार्णवात् ।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥

'माधव ! आज इस दुःख और अमर्षके महासागरसे पार होनेकी इच्छावाले हम सब लोगोंके लिये आप नौका बन जाइये । आप ही इस संकटसे हमारा उद्धार कीजिये ॥ १४ ॥

न हि तत् कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः ।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! संग्राममें शत्रुवधके लिये उद्यत हुआ रथी भी वैसा कार्य नहीं कर पाता, जैसा कि प्रयत्नशील सारथि कर दिखाता है ॥ १५ ॥

यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन ।
तथैवास्मान् महाबाहो वृजिनात् त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥

'महाबाहु जनार्दन ! जैसे आप वृष्णिवंशियोंको सम्पूर्ण आपत्तियोंसे बचाते हैं, उसी प्रकार हमारी भी इस संकटसे रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे ।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले परमेश्वर ! नौका-रहित अगाध कौरव-सागरमें निमग्न पाण्डवोंका आप स्वयं ही नौका बनकर उद्धार कीजिये ॥ १७ ॥

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥

'शत्रुनाशक ! सनातन देवदेवेश्वर ! विष्णो ! जिष्णो ! हरे ! कृष्ण ! वैकुण्ठ ! पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥

नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् ।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥

'माधव ! देवर्षि नारदने बताया है कि आप शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, सर्वोत्तम वरदायक, पुरातन ऋषिश्रेष्ठ नारायण हैं, उनकी वह बात सत्य कर दिखाइये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि ।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २०॥

उस राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उत्तम



श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन

वक्ता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने सजल मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २० ॥

वासुदेव उवाच

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः।
शरासनधरः कश्चिद् यथा पार्थो धनंजयः ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी वैसा धनुर्धर नहीं है, जैसे आपके भाई कुन्तीकुमार धनंजय हैं ॥ २१ ॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः।
युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ २२ ॥

वे शक्तिशाली, अस्त्रज्ञानसम्पन्न, पराक्रमी, महाबली, युद्धकुशल, सदा अमर्षशील और मनुष्योंमें परम तेजस्वी हैं ॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान् द्विषतस्ते हनिष्यति ॥ २३ ॥

अर्जुनके कंधे वृषभके समान सुपुष्ट हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, उनकी चाल भी श्रेष्ठ सिंहके सदृश है, वे महान् बलवान् युवक और श्रीसम्पन्न है, अतः आपके शत्रुओंको अवश्य मार डालेंगे ॥ २३ ॥

अहं च तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ २४ ॥

मैं भी वही करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन दुर्योधनकी सारी सेनाओंको उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधनको जलाती है ॥ २४ ॥

अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥ २५ ॥

आज सुभद्राकुमार अभिमन्युकी हत्या करनेवाले उस नीच पापी जयद्रथको अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उस मार्गपर डाल देंगे, जहाँ जानेपर उस जीवका पुनः इस लोकमें दर्शन नहीं होता ॥ २५ ॥

तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः ॥ २६ ॥

आज गीध, बाज, क्रोधमें भरे हुए गीदड़ तथा अन्य नरभक्षी जीव-जन्तु जयद्रथका मांस खायेंगे ॥ २६ ॥

यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ।
राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥

यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षाके लिये आ जायँ तथापि वह आज संग्राममें मारा जाकर यमराजकी राजधानीमें अवश्य जा पहुँचेगा ॥ २७ ॥

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति।
विशोको विज्वरो राजन् भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

राजन् ! आज विजयशील अर्जुन जयद्रथको मारकर ही आपके पास आयेंगे, आप ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहकर शोक और चिन्ताको त्याग दीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद, अर्जुनका स्वप्न सुनकर समस्त सुहृदोंकी प्रसन्नता, सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ रथपर बैठकर अर्जुनकी रणयात्रा तथा अर्जुनके कहनेसे सात्यकिका युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये जाना

संजय उवाच

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद् धनंजयः।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार उन लोगोंमें बात-चीत हो ही रही थी कि सुहृदोंसहित भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे अर्जुन वहाँ आ गये ॥

तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम्।
तमुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥

उस सुन्दर ड्योढ़ीमें प्रवेश करके राजाको प्रणाम करनेके पश्चात् उनके सामने खड़े हुए अर्जुनको पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरने उठकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

उनका मस्तक सूँघकर और एक बाँहसे उनका आलिंगन करके उन्हें उत्तम आशीर्वाद देते हुए राजाने मुसकराकर कहा—॥ ३ ॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥

'अर्जुन ! आज संग्राममें तुम्हें निश्चय ही महान् विजय प्राप्त होगी, यह बात स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर हो रही है; क्योंकि इसीके अनुरूप तुम्हारे मुखकी कान्ति है और भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हैं' ॥ ४ ॥

तमब्रवीत् ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥

'तब विजयशील अर्जुनने उनसे कहा—राजन् ! आपका कल्याण हो । आज मैंने बहुत उत्तम और आश्चर्यजनक स्वप्न देखा है । भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही वैसा स्वप्न प्रकट हुआ था' ॥ ५ ॥

ततस्तत् कथयामास यथा दृष्टं धनंजयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥

यों कहकर अर्जुन अपने सुहृदोंके आश्वासनके लिये जिस प्रकार भगवान् शंकरसे मिलनका स्वप्न देखा था, वह सब कह सुनाया ॥ ६ ॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥

यह स्वप्न सुनकर वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो उठे और सबने धरतीपर मस्तक टेककर भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा—'यह तो बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' ॥ ७ ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसंनद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर कवच धारण किये हुए समस्त सुहृद् हर्षमें भरकर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे युद्धके लिये निकले ॥ ८ ॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन बड़े हर्षके साथ उनके शिबिरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ॥ १० ॥

दुर्धर्ष वीर सात्यकि और श्रीकृष्ण एक रथपर आरूढ़ हो एक साथ अर्जुनके शिविरमें गये ॥ १० ॥

तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ।
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने एक सारथिके समान रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले रथको युद्धके लिये सुसज्जित किया ॥ ११ ॥

स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद् यथा ॥ १२ ॥

मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाला और तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभासे उद्भासित होनेवाला वह सजाया हुआ श्रेष्ठ रथ प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था ॥

ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर युद्धके लिये सुसज्जित पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ पुरुषसिंह श्रीकृष्णने नित्य-कर्म सम्पन्न करके बैठे हुए अर्जुनको यह सूचित किया कि रथ तैयार है ॥ १३ ॥

तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४ ॥

तब पुरुषोंमें श्रेष्ठ लोकप्रवर अर्जुनने सोनेके कवच और किरीट धारण करके धनुष-बाण लेकर उस रथकी परिक्रमा की॥

तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ॥ १५ ॥

उस समय तपस्या, विद्या तथा अवस्थामें बड़े-बूढ़े, क्रियाशील, जितेन्द्रिय ब्राह्मण उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए उनकी स्तुति-प्रशंसा कर रहे थे । उनकी की हुई वह स्तुति सुनते हुए अर्जुन उस विशाल रथपर आरूढ़ हुए ॥ १५ ॥

जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ॥ १६ ॥

उस उत्तम रथको पहलेसे ही विजयसाधक युद्धसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित किया गया था । उसपर आरूढ़ हुए तेजस्वी अर्जुन उदयाचलपर चढ़े हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे ॥ १६ ॥

स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान् मेराविव दिवाकरः ॥ १७ ॥

सुवर्णमय कवचसे आवृत हो उस स्वर्णमय रथपर आरूढ़ हुए रथियोंमें श्रेष्ठ उज्ज्वल कान्तिधारी तेजस्वी अर्जुन मेरु पर्वतपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥

अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८ ॥

अर्जुनके बैठनेके बाद सात्यकि और श्रीकृष्ण भी उस रथपर आरूढ़ हो गये, मानो राजा शर्यातिके यज्ञमें आते हुए इन्द्रदेवके साथ दोनों अश्विनीकुमार आ रहे हों ॥१८॥

अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिविदां वरः ।
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ॥ १९ ॥

उन घोड़ोंकी रास पकड़नेकी कलामें सर्वश्रेष्ठ भगवान् गोविन्दने रथकी बागडोर अपने हाथमें ले ली, ठीक उसी प्रकार जैसे, वृत्रासुरका वध करनेके लिये जानेवाले इन्द्रके रथकी बागडोर मातलिने पकड़ी थी ॥ १९ ॥

स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ।

सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा शशी ॥ २० ॥

सात्यकि और श्रीकृष्ण दोनोंके साथ उस श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए अर्जुन बुध और शुक्रके साथ स्थित हुए अन्धकार-नाशक चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥

सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ॥ २१ ॥

शत्रुसमूहका नाश करनेवाले अर्जुन जब सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ सिंधुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे प्रस्थित हुए, उस समय वरुण और मित्रके साथ तारकामय संग्राममें जानेवाले इन्द्रके समान सुशोभित हुए ॥ २१ ॥

ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ।
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२ ॥

तदनन्तर रणवाद्योंके घोष तथा शुभ एवं माङ्गलिक स्तुतियोंके साथ यात्रा करते हुए वीर अर्जुनकी मागधजन स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ।
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ॥ २३ ॥

विजयसूचक आशीर्वाद तथा पुण्याहवाचनके साथ सूत, मागध एवं बन्दीजनोंका शब्द रणवाद्योंकी ध्वनिसे मिलकर उन सबकी प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ २३ ॥

तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ।
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ २४ ॥

अर्जुनके प्रस्थान करनेपर पीछेसे मङ्गलमय पवित्र एवं सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी, जो अर्जुनका हर्ष बढ़ाती हुई उनके शत्रुओंका शोषण कर रही थी ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् विविधानि शुभानि च ।
प्रादुरासन् निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥

माननीय महाराज ! उस समय बहुत-से ऐसे शुभ शकुन प्रकट हुए, जो पाण्डवोंकी विजय और आपके सैनिकोंकी पराजयकी सूचना दे रहे थे ॥ २५ ॥

दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

अर्जुनने अपने दाहिने प्रकट होनेवाले उन विजयसूचक शुभ लक्षणोंको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ २६ ॥

युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

'शिनिप्रवर युयुधान ! आज जैसे ये शुभ लक्षण दिखायी देते हैं, उनसे युद्धमें मेरी निश्चित विजय दृष्टिगोचर हो रही है॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥

'अतः मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ सिंधुराज जयद्रथ यमलोकमें जानेकी इच्छासे मेरे पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ २८ ॥

यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत् कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥

'मेरे लिये सिंधुराज जयद्रथका वध जैसे अत्यन्त महान् कार्य है, उसी प्रकार धर्मराजकी रक्षा भी परम महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है ॥ २९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत् तथा ॥ ३० ॥

'महाबाहो ! आज तुम्हीं राजा युधिष्ठिरकी सब ओरसे रक्षा करो । जिस प्रकार वे मेरे द्वारा सुरक्षित होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा भी उनकी सुरक्षा हो सकती है ॥ ३० ॥

न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥

'मैं संसारमें ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें तुम्हें पराजित कर सके । तुम संग्रामभूमिमें साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो । साक्षात् देवराज इन्द्र भी तुम्हें नहीं जीत सकते ॥ ३१ ॥

त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥

'नरश्रेष्ठ ! इस कार्यके लिये मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही पूरा भरोसा करता हूँ । सिंधुराज जयद्रथका वध तो मैं किसीकी सहायताकी अपेक्षा किये बिना ही कर सकता हूँ ॥

मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथंचिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥

'सात्वतवीर ! तुम किसी प्रकार भी मेरा अनुसरण न करना । तुम्हें सब प्रकारसे राजा युधिष्ठिरकी ही पूर्णरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किंचिद् व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

'जहाँ महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं और मैं भी उपस्थित हूँ, वहाँ अवश्य ही कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता है' ॥ ३४ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वागमत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सात्यकि 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

(जयद्रथवधपर्व)

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

धृतराष्ट्र उवाच

श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र के वायुध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! अभिमन्युके मारे जानेपर दुःख और शोकमें डूबे हुए पाण्डवोंने सबेरा होनेपर क्या किया ? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंमेंसे किन लोगोंने युद्ध किया?॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत् किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥

सव्यसाची अर्जुनके पराक्रमको जानते हुए भी मेरे पक्षवाले कौरव योद्धा उनका अपराध करके कैसे निर्भय रह सके ? यह बताओ ॥ २ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥

पुत्रशोकसे संतप्त हो क्रोधमें भरे हुए प्राणान्तकारी मृत्युके समान आते हुए पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर मेरे पुत्र युद्धमें कैसे देख सके ? ॥ ३ ॥

कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद् धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥ ४ ॥

जिनकी ध्वजामें कपिराज हनुमान् विराजमान हैं, उन पुत्रवियोगसे व्यथित हुए अर्जुनको युद्धस्थलमें अपने विशाल धनुषकी टंकार करते देख मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ४ ॥

किं नु संजय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ॥ ५ ॥

संजय ! संग्रामभूमिमें दुर्योधनपर क्या बीता है ? इन दिनों मैंने महान् विलापकी ध्वनि सुनी है । आमोद-प्रमोदके शब्द मेरे कानोंमें नहीं पड़े हैं ॥ ५ ॥

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥

पहले सिंधुराजके शिबिरमें जो मनको प्रिय लगनेवाले और कानोंको सुख देनेवाले शब्द होते रहते थे, वे सब अब नहीं सुनायी पड़ते हैं ॥ ६ ॥

स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिबिरे मम ।
सूतमागधसंघानां नर्तकानां च सर्वशः ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रोंके शिबिरमें अब स्तुति करनेवाले सूतों, मागधों एवं नर्तकोंके शब्द सर्वथा नहीं सुनायी पड़ते हैं ॥ ७ ॥

शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद् यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥

जहाँ मेरे कान निरन्तर स्वजनोंके आनन्द-कोलाहलसे गूँजते रहते थे, वहीं आज मैं अपने दीन दुखी पुत्रोंके द्वारा उच्चारित वह हर्षसूचक शब्द नहीं सुन रहा हूँ ॥ ८ ॥

निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य संजय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥

तात संजय ! पहले मैं यथार्थ धैर्यशाली सोमदत्तके भवनमें बैठा हुआ उत्तम शब्द सुना करता था ॥ ९ ॥

तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥

परंतु आज पुण्यहीन मैं अपने पुत्रोंके घरको उत्साह-शून्य एवं आर्तनादसे गूँजता हुआ देख रहा हूँ ॥ १० ॥

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥

विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे अन्य पुत्रोंके घरोंमें अब पूर्ववत् आनन्दित ध्वनि नहीं सुनी जाती है ॥ ११ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥
वितण्डालापसंलापैर्द्रुतवादित्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥

सूत संजय ! मेरे पुत्रोंके परम आश्रय जिस महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जातियोंके शिष्य उपासना (निकट रहकर सेवा) करते रहे हैं, जो वितण्डावाद, भाषण, पारस्परिक बातचीत, द्रुतस्वरमें बजाये हुए वाद्योंके शब्दों तथा भाँति-भाँतिके अभीष्ट गीतोंसे दिन-रात मन बहलाया करता था, जिसके पास बहुत-से कौरव, पाण्डव और सात्वतवंशी वीर बैठा करते थे, उस अश्वत्थामाके घरमें आज पहलेके समान हर्षसूचक शब्द नहीं हो रहा है ॥ १२–१४ ॥

द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर द्रोणपुत्रकी सेवामें जो गायक और नर्तक अधिक उपस्थित होते थे, उनकी ध्वनि अब नहीं सुनायी देती है ॥ १५ ॥

विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे योमहाध्वनिः ॥ १६ ॥
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ।

नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।

विन्द और अनुविन्दके शिविरमें संध्याके समय जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुननेमें आता है। तात सदा अनन्दित रहनेवाले केकयोंके भवनोंमें झुंड-के झुंड नर्तकोंका ताल स्वरके साथ गीतका जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुना जाता है ॥

सप्त तन्तून् वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।

वेद-विद्याके भण्डार जिस सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाके यहाँ सातों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले याजक सदा रहा करते थे, अब वहाँ उन ब्राह्मणोंकी आवाज नहीं सुनायी देती है ॥

ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।

द्रोणाचार्यके घरमें निरन्तर धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष, वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनि तथा तोमर, तलवार एवं रथके शब्द गूँजते रहते थे; परंतु अब मैं वहाँ वह शब्द नहीं सुन रहा हूँ ॥ १९½ ॥

नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत् स्वनः ॥ २० ॥
वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।

नाना प्रदेशोंसे आये हुए लोगोंके गाये हुए गीतोंका और बजाये हुए बाजोंका भी जो महान् शब्द श्रवण गोचर होता था, वह अब नहीं सुनायी देता है ॥ २०½ ॥

यदा प्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥

संजय ! जब अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये शान्ति स्थापित करनेकी इच्छा लेकर उपप्लव्यसे हस्तिनापुरमें पधारे थे, उस समय मैंने अपने मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा था—॥

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २३ ॥

'बेटा ! भगवान् श्रीकृष्णको साधन बनाकर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। मैं इसीको समयोचित कर्तव्य मानता हूँ। दुर्योधन ! तुम इसे टालो मत ॥ २३ ॥

शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवास्ति रणे जयः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी ही बात कहते हैं और स्वयं संधिके लिये याचना कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि तुम इनकी बात नहीं मानोगे तो युद्धमें तुम्हारी विजय नहीं होगी' ॥

प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥ २५ ॥

परंतु उसने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णकी बात माननेसे इनकार कर दिया। यद्यपि वे अनुनयपूर्ण वचन बोलते थे, तथापि दुर्योधनने अन्यायवश उन्हें नहीं माना ॥ २५ ॥

(कर्णदुःशासनमते सौबलस्य च दुर्मतेः ।
प्रत्याख्यातो महाबाहुः कुलान्तकरणेन मे ॥)

कर्ण, दुःशासन और खोटी बुद्धिवाले शकुनिके मतमें आकर मेरे कुलका नाश करनेवाले दुर्योधनने महाबाहु श्रीकृष्णका तिरस्कार कर दिया ॥

ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥

फिर तो कालसे आकृष्ट हुए दुर्बुद्धि दुर्योधनने मुझे छोड़कर दुःशासन और कर्ण इन्हीं दोनोंके मतका अनुसरण किया ॥ २६ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥

मैं जूआ खेलना नहीं चाहता था, विदुर भी उसकी प्रशंसा नहीं करते थे, सिंधुराज जयद्रथ भी जूआ नहीं चाहते थे और भीष्मजी भी द्यूतकी अभिलाषा नहीं रखते थे ॥

शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति संजय ॥ २८ ॥

संजय ! शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी जूआ होने देना नहीं चाहते थे ॥

एतेषां मतमादाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥

यदि बेटा दुर्योधन इन सबकी राय लेकर चलता तो भाई-बन्धु, मित्र और सुहृदोंसहित दीर्घकालतक नीरोग एवं स्वस्थ रहकर जीवन धारण करता ॥ २९ ॥

श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः सम्मताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३० ॥

'पाण्डव सरल, मधुरभाषी, भाई-बन्धुओंके प्रति प्रिय वचन बोलनेवाले, कुलीन, सम्मानित और विद्वान् हैं; अतः उन्हें सुखकी प्राप्ति होगी ॥ ३० ॥

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥

'धर्मकी अपेक्षा रखनेवाला मनुष्य सदा सर्वत्र सुखका भागी होता है। मृत्युके पश्चात् भी उसे कल्याण एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥

अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥

'पाण्डव पृथ्वीका राज्य भोगनेमें और उसे प्राप्त करनेमें भी समर्थ हैं। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी उनके बाप-दादोंकी भी है ॥ ३२ ॥

नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥३३॥

'तात! पाण्डवोंको यदि आदेश दिया जाय तो वे उसे मानकर सदा धर्ममार्गपर ही स्थिर रहेंगे। मेरे अनेक ऐसे भाई-बन्धु हैं, जिनकी बात पाण्डव सुनेंगे ॥ ३३ ॥

शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः।
द्रोणस्याथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य च ॥३४॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥३५॥

'वत्स! शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा अन्य जो बड़े-बूढ़े महामना भरतवंशी हैं, वे यदि तुम्हारे लिये उनसे कुछ कहेंगे तो पाण्डव उनकी बात अवश्य मानेंगे ॥ ३४-३५ ॥

कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान् ब्रूयादतोऽन्यथा।
कृष्णो न धर्मं संजह्यात् सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥३६॥

'बेटा दुर्योधन! तुम उपर्युक्त व्यक्तियोंमेंसे किसको ऐसा मानते हो जो पाण्डवोंके विषयमें इसके विपरीत कह सके। श्रीकृष्ण कभी धर्मका परित्याग नहीं कर सकते और समस्त पाण्डव उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले हैं ॥३६॥

मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम्।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥३७॥

'मेरे कहनेपर भी वे मेरे धर्मयुक्त वचनकी अवहेलना नहीं करेंगे; क्योंकि वीर पाण्डव धर्मात्मा हैं' ॥ ३७ ॥

इत्यहं विलपन् सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान्।
न च मे श्रुतवान् मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥३८॥

सूत! इस प्रकार विलाप करते हुए मैंने अपने पुत्र दुर्योधनसे बहुत कुछ कहा, परंतु उस मूर्खने मेरी एक नहीं सुनी। अतः मैं समझता हूँ कि कालचक्रने पलटा खाया है ॥ ३८ ॥

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥३९॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥४०॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४१॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः।
क एतान्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन् वै जिजीविषुः ॥४२॥

जिस पक्षमें भीमसेन, अर्जुन, वृष्णिवीर सात्यकि, पाञ्चालवीर उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, दुर्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, अश्मक, केकयराजकुमार, सोमकपुत्र क्षत्रधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराजके पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, राजा विराट और महारथी द्रुपद हैं, जहाँ पुरुषसिंह नकुल, सहदेव और मन्त्रदाता मधुसूदन हैं, वहाँ इस संसारमें कौन ऐसा वीर है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखकर इन वीरोंके साथ कभी युद्ध करेगा ॥ ३९-४२ ॥

दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान् प्रसहेद् वा परान् मम।
अन्यो दुर्योधनात् कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥४३॥
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम्।

अथवा दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा चौथे दुःशासनके सिवा मैं पाँचवें किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो दिव्यास्त्र प्रकट करनेवाले मेरे इन शत्रुओंका वेग सह सके ॥ ४३½ ॥

येषामभीषुहस्तः स्याद् विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥
संनद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः।

रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण हाथोंमें बागडोर लेकर जिनका सारथ्य करते हैं तथा जिनकी ओरसे कवचधारी अर्जुन युद्ध करनेवाले हैं, उनकी कभी पराजय नहीं हो सकती ॥ ४४½ ॥

तेषामथ विलापानां नायं दुर्योधनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै।

संजय! यह दुर्योधन मेरे उन विलापोंको कभी याद नहीं करेगा। तुम कहते हो कि 'पुरुषसिंह भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये' ॥ ४५½ ॥

तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शैनेयेनार्जुनेन च ॥ ४७ ॥

विदुरने भविष्यमें होनेवाली दूरतककी घटनाओंको ध्यानमें रखकर जो बातें कही थीं, उन्हींके अनुसार इस समय हमें यह फल मिल रहा है। इसे देखकर मैं यह समझता हूँ कि मेरे पुत्र सात्यकि और अर्जुनके द्वारा अपनी सेनाका संहार देखते हुए शोक कर रहे होंगे ॥ ४६-४७ ॥

शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥
अग्निर्दहेत् तथा सेनां मामिकां स धनंजयः।
आचक्ष्व मम तत् सर्वं कुशलो ह्यसि संजयः ॥४९॥

बहुत-से रथोंकी बैठकोंको रथियोंसे शून्य देखकर मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे; ऐसा मेरा विश्वास है। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें वायुका सहारा पाकर बढ़ी हुई अग्नि सूखे घासको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन मेरी सेनाको दग्ध कर डालेंगे। संजय! तुम कथा कहनेमें कुशल हो; अतः युद्धका सारा समाचार मुझसे कहो ॥ ४८-४९ ॥

यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम्।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥

तात ! जब तुमलोग अभिमन्युके मारे जानेपर अर्जुनका महान् अपराध करके सायंकालमें शिबिरको लौटे थे, उस समय तुम्हारे मनकी क्या अवस्था थी ? ॥ ५० ॥

न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः।
अपकृत्य महत् तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ५१ ॥

तात ! गाण्डीवधारी अर्जुनका महान् अपकार करके मेरे पुत्र युद्धमें उनके पराक्रमको कभी नहीं सह सकेंगे ॥५१॥

किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत्।
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥ ५२ ॥

उस समय उनकी ऐसी अवस्था होनेपर भी दुर्योधनने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिने क्या करनेकी सलाह दी ? ॥ ५२ ॥

सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम संजय।
यद् वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५४ ॥

तात संजय ! युद्धमें मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनके अत्यन्त अन्यायसे एकत्र हुए मेरे अन्य सभी पुत्रोंपर जो कुछ बीता था तथा लोभका अनुसरण करनेवाले, क्रोधसे विकृत चित्तवाले, रागसे दूषित हृदयवाले, राज्यकामी मूढ़ और दुर्बुद्धि दुर्योधनने जो न्याय अथवा अन्याय किया हो, वह सब मुझसे कहो ॥ ५३-५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५५ श्लोक हैं)

षडशीतितमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको उपालम्भ

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! मैंने सब कुछ प्रत्यक्ष देखा है, वह सब आपको अभी बताऊँगा। स्थिर होकर सुननेकी इच्छा कीजिये। इस परिस्थितिमें आपका महान् अन्याय ही कारण है ॥ १ ॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयं तव।
विलापो निष्फलो राजन् मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ राजन् ! जैसे पानी निकल जानेपर वहाँ पुल बाँधना व्यर्थ है, उसी प्रकार इस समय आपका यह विलाप भी निष्फल है। आप शोक न कीजिये ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥ ३ ॥

कालके इस अद्भुत विधानका उल्लङ्घन करना असम्भव है। भरतभूषण ! शोक त्याग दीजिये। यह सब पुरातन प्रारब्धका फल है ॥ ३ ॥

यदि त्वं हि पुरा द्यूतात् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
निवर्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥

यदि आप कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर तथा अपने पुत्रोंको पहले ही जूएसे रोक देते तो आपपर यह संकट नहीं आता॥

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥

फिर जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आपने क्रोधमें भरे हुए अपने पुत्रोंको बलपूर्वक रोक दिया होता तो आपपर यह संकट नहीं आ सकता था ॥ ५ ॥

दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि।
कुरून् चोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥

यदि आप पहले ही कौरवोंको यह आज्ञा दे देते कि इस दुर्विनीत दुर्योधनको कैद कर लो तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ६ ॥

तत् ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चान्येऽपि नराधिपाः ॥ ७ ॥

आपकी बुद्धिके वैपरीत्यका फल पाण्डव, पाञ्चाल, समस्त वृष्णिवंशी तथा अन्य जो-जो नरेश हैं, वे सभी भोगेंगे ॥७॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

यदि आपने अपने पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित करके पिताके कर्तव्यका पालन करते हुए धर्मके अनुसार बर्ताव किया होता तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ८ ॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम्।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगा मतम् ॥ ९ ॥

आप संसारमें बड़े बुद्धिमान् समझे जाते हैं तो भी आपने सनातनधर्मका परित्याग करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके मतका अनुसरण किया है ॥ ९ ॥

तत् तं विलपितं सर्वं मया राजन् निशामितम्।

अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

राजन्! आप स्वार्थमें सने हुए हैं। आपका यह सारा विलाप-कलाप मैंने सुन लिया। यह विषमिश्रित मधुके समान ऊपरसे ही मीठा है (इसके भीतर घातक कटुता भरी हुई है) ॥ १० ॥

नामन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥

अपनी महिमासे च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण पहले आपका जैसा सम्मान करते थे, वैसा उन्होंने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर, भीष्म तथा द्रोणाचार्यका भी समादर नहीं किया है ॥ ११ ॥

अजानात् स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम्।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥

परंतु जबसे श्रीकृष्णने यह जान लिया है कि आप राजोचित धर्मसे नीचे गिर गये हैं, तबसे वे आपका उस तरह अधिक आदर नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे।
तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥

पुत्रोंको राज्य दिलानेकी अभिलाषा रखनेवाले महाराज! कुन्तीके पुत्रोंको कठोर बातें (गालियाँ) सुनायी जाती थीं और आप उनकी उपेक्षा करते थे। आज उसी अन्यायका फल आपको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥

पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥

निष्पाप नरेश! आपने उन दिनों बाप-दादोंके राज्यको तो अपने अधिकारमें कर ही लिया था; फिर कुन्तीके पुत्रोंद्वारा जीती हुई सम्पूर्ण पृथ्वीका विशाल साम्राज्य भी हड़प लिया ॥ १४ ॥

पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा।
ततश्चाप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥

राजा पाण्डुने भूमण्डलका राज्य जीता और कौरवोंके यशका विस्तार किया था। फिर धर्मपरायण पाण्डवोंने अपने पितासे भी बढ़-चढ़कर राज्य और सुयशका प्रसार किया है। १५।

तेषां तत् तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम्।
यत् पित्र्याद् भ्रंशिता राज्यात् त्वयेहामिषगृद्धिना॥१६॥

परंतु उनका वैसा महान् कर्म भी आपको पाकर अत्यन्त निष्फल हो गया; क्योंकि आपने राज्यके लोभमें पड़कर उन्हें अपने पैतृक राज्यसे भी वञ्चित कर दिया ॥ १६ ॥

यत् पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान् गर्हयसे नृप।
बहुधा व्याहरन् दोषान् न तदद्योपपद्यते ॥१७॥

नरेश्वर! आज जब युद्धका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें जो आप अपने पुत्रोंके नाना प्रकारके दोष बताते हुए उनकी निन्दा कर रहे हैं यह इस समय आपको शोभा नहीं देता है ॥ १७ ॥

न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं रणे।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥

राजा लोग रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर रहे हैं। वे क्षत्रियशिरोमणि नरेश पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर युद्ध करते हैं ॥ १८ ॥

यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ।
रक्षेरन् को नु तां युध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि तथा भीमसेन जिस सेनाकी रक्षा करते हों, उसके साथ कौरवोंके सिवा दूसरा कौन युद्ध कर सकता है? ॥ १९ ॥

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
को हि तान् विषहेद् योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥

जिनके योद्धा गुडाकेश अर्जुन हैं, जिनके मन्त्री भगवान् श्रीकृष्ण हैं तथा जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले योद्धा सात्यकि और भीमसेन हैं, उनके साथ कौरवों तथा उनके चरणचिह्नों-पर चलनेवाले अन्य नरेशोंको छोड़कर दूसरा कौन मरणधर्मा धनुर्धर युद्ध करनेका साहस कर सकता है? ॥ २०-२१ ॥

यावत् तु शक्यते कर्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥

अवसरको जाननेवाले, क्षत्रिय-धर्मपरायण, शूरवीर राजा लोग जितना कर सकते हैं, कौरवपक्षी नरेश उतना पराक्रम करते हैं ॥ २२ ॥

यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसंकटम्।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत् सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जिस प्रकार अत्यन्त संकटपूर्ण युद्ध हुआ है, वह सब आप ठीक-ठीक सुनिये ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संजयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सैनिकोंका उत्साह तथा आचार्य द्रोणके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण

संजय उवाच

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! वह रात बीतनेपर प्रातःकाल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी सारी सेनाओंका व्यूह बनाना आरम्भ किया॥ १॥

शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम्।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम्॥ २॥

राजन्! उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेके वधकी इच्छासे गर्जना करनेवाले अमर्षशील शूरवीरोंकी विचित्र बातें सुनायी देती थीं॥ २॥

विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनंजयः॥ ३॥

कोई धनुष खींचकर और कोई प्रत्यञ्चापर हाथ फेरकर रोषपूर्ण उच्छ्वास लेते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि इस समय वह अर्जुन कहाँ है?॥ ३॥

विकोशान् सुत्सरूनन्ये कृतधारान् समाहितान्।
पीतानाकाशसंकाशानसीन् केचिच्च चिक्षिपुः॥ ४॥

कितने ही योद्धा आकाशके समान निर्मल पानीदार, सँभालकर रक्खी हुई, सुन्दर मूठ और तेजधारवाली तलवारोंको म्यानसे निकालकर चलाने लगे॥ ४॥

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः॥ ५॥

मनमें संग्रामके लिये पूर्ण उत्साह रखनेवाले सहस्रों शूरवीर अपनी शिक्षाके अनुसार खड्गयुद्ध और धनुर्युद्धके मार्गों (पैतरों) का प्रदर्शन करते दिखायी देते थे॥ ५॥

सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः।
समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम्॥ ६॥

दूसरे बहुत-से योद्धा घंटानादसे युक्त, चन्दनचर्चित तथा सुवर्ण एवं हीरोंसे विभूषित गदाएँ ऊपर उठाकर पूछते थे कि पाण्डुपुत्र अर्जुन कहाँ है?॥ ६॥

अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः॥ ७॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले कितने ही योद्धा अपने बलके मदसे उन्मत्त हो ऊँचे फहराते हुए इन्द्र-ध्वजके समान उठे हुए परिघोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर रहे थे॥

नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलङ्कृताः।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः॥ ८॥

दूसरे शूरवीर योद्धा विचित्र मालाओंसे अलंकृत हो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये मनमें युद्धके लिये उत्साहित होकर जहाँ-तहाँ खड़े थे॥ ८॥

क्वार्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा॥ ९॥

वे उस समय रणक्षेत्रमें शत्रुओंको ललकारते हुए इस प्रकार कहते थे, कहाँ है अर्जुन? कहाँ हैं श्रीकृष्ण? कहाँ है घमंडी भीमसेन? और कहाँ हैं उनके सारे सुहृद्॥ ९॥

ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम्।
इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः॥ १०॥

तदनन्तर द्रोणाचार्य शङ्ख बजाकर स्वयं ही अपने घोड़ोंको उतावलीके साथ हाँकते और उन सैनिकोंका व्यूह-निर्माण करते हुए इधर-उधर बड़े वेगसे विचर रहे थे॥ १०॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत्॥ ११॥

महाराज! युद्धसे प्रसन्न होनेवाले उन समस्त सैनिकोंके व्यूहबद्ध हो जानेपर द्रोणाचार्यने जयद्रथसे कहा—॥ ११॥

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा॥ १२॥
शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट्।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश॥ १३॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत॥ १४॥

'राजन्! तुम, भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन तथा कृपाचार्य, एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथ, चौदह हजार मदस्रावी गजराज तथा इक्कीस हजार कवचधारी पैदल सैनिकोंको साथ लेकर मुझसे छः कोसकी दूरीपर जाकर डटे रहो॥ १२—१४॥

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव॥ १५॥

'सिंधुराज! वहाँ रहनेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकते; फिर समस्त पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं? अतः तुम धैर्य धारण करो'॥ १५॥

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः।
सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः॥ १६॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः।

उनके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथको बड़ा आश्वासन मिला। वह गान्धार महारथियोंसे घिरा हुआ युद्धके लिये चल दिया। कवचधारी घुड़सवार हाथोंमें प्रास लिये पूरी सावधानीके साथ उन्हें घेरे हुए चल रहे थे॥ १६½॥

चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैव सप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥

राजेन्द्र ! जयद्रथके घोड़े सवारीमें बहुत अच्छा काम देते थे । वे सबके सब चवँरकी कलँगीसे सुशोभित और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित थे । उन सिंधुदेशीय अश्वोंकी संख्या दस हजार थी ॥ १७-१८ ॥

मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥

जिनपर युद्धकुशल हाथीसवार आरूढ थे, ऐसे भयंकर रूप तथा पराक्रमवाले डेढ़ हजार कवचधारी मतवाले गजराजोंके साथ आकर आपका पुत्र दुर्मर्षण युद्धके लिये उद्यत हो सम्पूर्ण सेनाओंके आगे खड़ा हुआ ॥ १९-२० ॥

ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आपके दो पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए ॥ २१ ॥

दीर्घो द्वादश गव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥

आचार्य द्रोणने चक्रगर्भ शकट-व्यूहका निर्माण किया था, जिसकी लम्बाई बारह गव्यूति (चौबीस कोस) थी और पिछले भागकी चौड़ाई पाँच गव्यूति (दस कोस) थी ॥२२॥

नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥

यत्र-तत्र खड़े हुए अनेक नरपतियों तथा हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल सैनिकोंद्वारा द्रोणाचार्यने स्वयं उस व्यूहकी रचना की थी ॥ २३ ॥

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूची पद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥

उस चक्रशकटव्यूहके पिछले भागमें पद्मनामक एक गर्भव्यूह बनाया गया था, जो अत्यन्त दुर्भेद्य था । उस पद्मव्यूहके मध्यभागमें सूची नामक एक गूढ़ व्यूह और बनाया गया था ॥ २४ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके द्रोणाचार्य युद्धके लिये तैयार खड़े थे । सूचीमुख व्यूहके प्रमुख भागमें महाधनुर्धर कृतवर्मा खड़ा किया गया था ॥ २५ ॥

अनन्तरं च काम्बोजो जलसंधश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥

आर्य ! कृतवर्माके पीछे काम्बोजराज और जलसंध खड़े हुए, तदनन्तर दुर्योधन और कर्ण स्थित हुए ॥२६॥

ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् युद्धमें पीठ न दिखानेवाले एक लाख योद्धा खड़े हुए थे । वे सबके सब शकटव्यूहके प्रमुख भागकी रक्षाके लिये नियुक्त थे ॥ २७ ॥

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥

उनके पीछे विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा जयद्रथ सूचीव्यूहके पार्श्वभागमें खड़ा था ॥ २८ ॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याभवद् भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥

राजेन्द्र ! उस शकटव्यूहके मुहानेपर भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य थे और उनके पीछे भोज था, जो स्वयं आचार्यकी रक्षा करता था ॥ २९ ॥

श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यका कवच श्वेत रंगका था । उनके वस्त्र और उष्णीष (पगड़ी) भी श्वेत ही थे । छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं । उस समय धनुष खींचते हुए द्रोणाचार्य वहाँ क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान खड़े थे ॥ ३० ॥

पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥

उस समय वेदी और काले मृगचर्मके चिह्नसे युक्त ध्वजवाले, पताकासे सुशोभित और लाल घोड़ोंसे जुते हुए द्रोणाचार्यके रथको देखकर समस्त कौरव बड़े प्रसन्न हुए ३१

सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा रचित वह महाव्यूह क्षुब्ध महासागरके समान जान पड़ता था । उसे देखकर सिद्धों और चारणोंके समुदायोंको महान् विस्मय हुआ ॥ ३२ ॥

सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद् व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥

उस समय समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे कि वह व्यूह पर्वत, समुद्र और काननोंसहित अनेकानेक जनपदोंसे भरी हुई इस सारी पृथ्वीको अपना ग्रास बना लेगा ॥ ३३ ॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं
प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।

अहितहृदयभेदनं महद् वै
शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

बहुत-से रथ, पैदल मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, भयंकर कोलाहलसे युक्त एवं शत्रुओंके हृदयको विदीर्ण करनेमें समर्थ, अद्भुत और समयके अनुरूप बने हुए उस महान् शकटव्यूहको देखकर राजा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कौरव-सेनाके व्यूहका निर्माणविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सेनाके लिये अपशकुन, दुर्मर्षणका अर्जुनसे लड़नेका उत्साह तथा अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश एवं शङ्खनाद

संजय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥
अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने ।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु संनादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—आर्य ! जब इस प्रकार कौरव-सेनाओंकी व्यूह-रचना हो गयी, युद्धके लिये उत्सुक सैनिक कोलाहल करने लगे, नगाड़े पीटे जाने लगे, मृदङ्ग बजने लगे, सैनिकोंकी गर्जनाके साथ-साथ रणवाद्योंकी तुमुल ध्वनि फैलने लगी, शङ्ख फूँके जाने लगे, रोमाञ्चकारी शब्द गूँजने लगा और युद्धके इच्छुक भरतवंशी वीर जब कवच धारण करके धीरे-धीरे प्रहारके लिये उद्यत होने लगे, उस समय उग्र मुहूर्त आनेपर युद्धभूमिमें सव्यसाची अर्जुन दिखायी दिये ॥

बलानां वायसानां च पुरस्तात् सव्यसाचिनः ।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥

भारत ! वहाँ सव्यसाची अर्जुनके सम्मुख आकाशमें कई हजार कौए और वायस क्रीडा करते हुए उड़ रहे थे ॥ ४ ॥

मृगाश्च घोरसंनादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः ।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥

और जब हमलोग आगे बढ़ने लगे, तब भयंकर शब्द करनेवाले पशु और अशुभ दर्शनवाले सियार हमारे दाहिने आकर कोलाहल करने लगे ॥ ५ ॥

(लोकक्षये महाराज यादृशास्तादृशा हि ते ।
अशिवा धार्तराष्ट्राणां शिवाः पार्थस्य संयुगे ॥)

महाराज ! उस लोक-संहारकारी युद्धमें जैसे-तैसे अपशकुन प्रकट होने लगे, जो आपके पुत्रोंके लिये अमङ्गलकारी और अर्जुनके लिये मङ्गलकारी थे ॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥

महान् भय उपस्थित होनेके कारण आकाशसे भयंकर गर्जनाके साथ सहस्रों जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं और सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ६ ॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥

अर्जुनके आने और संग्रामका अवसर उपस्थित होनेपर रेतकी वर्षा करनेवाली विकट गर्जन-तर्जनके साथ रूखी एवं चौबाई हवा चलने लगी ॥ ७ ॥

नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

उस समय नकुलपुत्र शतानीक और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—इन दोनों बुद्धिमान् वीरोंने पाण्डव सैनिकोंके व्यूहका निर्माण किया ॥ ८ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तदनन्तर एक हजार रथी, सौ हाथीसवार, तीन हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिकोंके साथ आकर अर्जुन-से डेढ़ हजार धनुषकी दूरीपर स्थित हो समस्त कौरव सैनिकोंके आगे होकर आपके पुत्र दुर्मर्षणने इस प्रकार कहा— ॥ ९-१० ॥

अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥

'जिस प्रकार तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार आज मैं युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले शत्रु-संतापी गाण्डीवधारी अर्जुनको रोक दूँगा ॥ ११ ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥ १२ ॥

'आज सब लोग देखें, जैसे पत्थर दूसरे प्रस्तरसमूहसे टकराकर रह जाता है, उसी प्रकार अमर्षशील दुर्धर्ष अर्जुन युद्धस्थलमें मुझसे भिड़कर अवरुद्ध हो जायँगे ॥ १२ ॥

तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकाङ्क्षिणः ।

युध्यामि संहतानेतान् यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥

'संग्रामकी इच्छा रखनेवाले रथियो ! आपलोग चुपचाप खड़े रहें। मैं कौरवकुलके यश और मानकी वृद्धि करता हुआ आज इन संगठित होकर आये हुए शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः।
महेष्वासैर्वृतो राजन् महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥

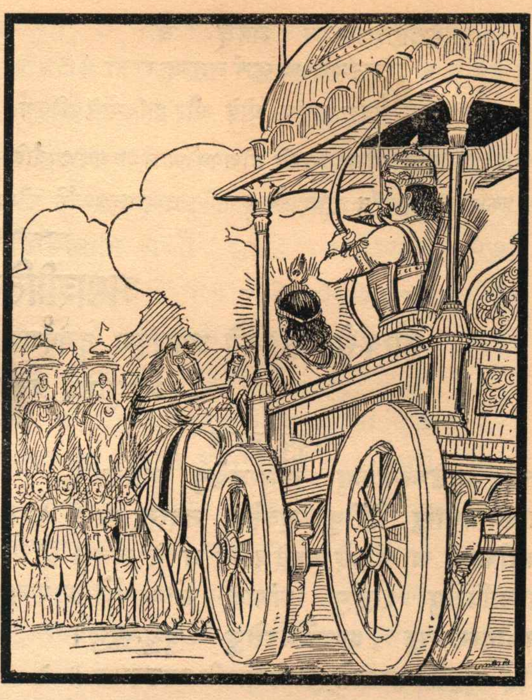
राजन् ! महाराज ! ऐसा कहता हुआ वह महामनस्वी महाबुद्धिमान् एवं महाधनुर्धर दुर्मर्षण बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे घिरकर युद्धके लिये खड़ा हो गया ॥ १४ ॥

ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः।
दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
शूलपाणिरिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् प्रधक्ष्यन् वै पुनः प्रजाः ॥१६॥
क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतम् ॥१७॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत्।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥
रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः।
विधुन्वन् गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, दण्डधारी असह्य अन्तक, कालप्रेरक मृत्यु, किसीसे भी क्षुब्ध न होनेवाले त्रिशूलधारी रुद्र, पाशधारी वरुण तथा पुनः समस्त प्रजाको दग्ध करनेके लिये उठे हुए ज्वालाओंसे युक्त प्रलयकालीन अग्निदेवके समान दुर्धर्ष वीर अर्जुन युद्धस्थलमें अपने श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए नवोदित सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे। वे क्रोध, अमर्ष और बलसे प्रेरित होकर आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने ही पूर्वकालमें निवातकवच नामक दानवोंका संहार किया था। वे जय नामके अनुसार ही विजयी होते थे। सत्यमें स्थित होकर अपने महान् व्रतको पूर्ण करनेके लिये उद्यत थे। उन्होंने कवच बाँध रक्खा था। मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ किरीट धारण किया था। उनके कमरमें तलवार लटक रही थी। वे नरस्वरूप अर्जुन नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अनुसरण करते हुए सुन्दर अंगदों (बाजूबन्द) और मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहन रक्खे थे ॥१५-१९॥

सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनंजयः।
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥

राजन् ! प्रतापी अर्जुनने अपने सामने खड़ी हुई विशाल शत्रुसेनाके सम्मुख, जितनी दूरसे बाण मारा जा सके उतनी ही दूरीपर अपने रथको खड़ा करके शङ्ख बजाया ॥ २० ॥



अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष।
प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं शङ्खं प्रवरमोजसा ॥ २१ ॥

आर्य ! तब श्रीकृष्णने भी अर्जुनके साथ बिना किसी घबराहटके अपने श्रेष्ठ शङ्ख पाञ्चजन्यको बलपूर्वक बजाया ॥

तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते।
आसन् संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उन दोनोंके शङ्खनादसे आपकी सेनाके समस्त योद्धाओंके रोंगटे खड़े हो गये, सब लोग काँपते हुए अचेत-से हो गये ॥ २२ ॥

यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात्।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥

जैसे वज्रकी गड़गड़ाहटसे सारे प्राणी थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी शङ्खध्वनिसे आपके समस्त सैनिक संत्रस्त हो उठे ॥ २३ ॥

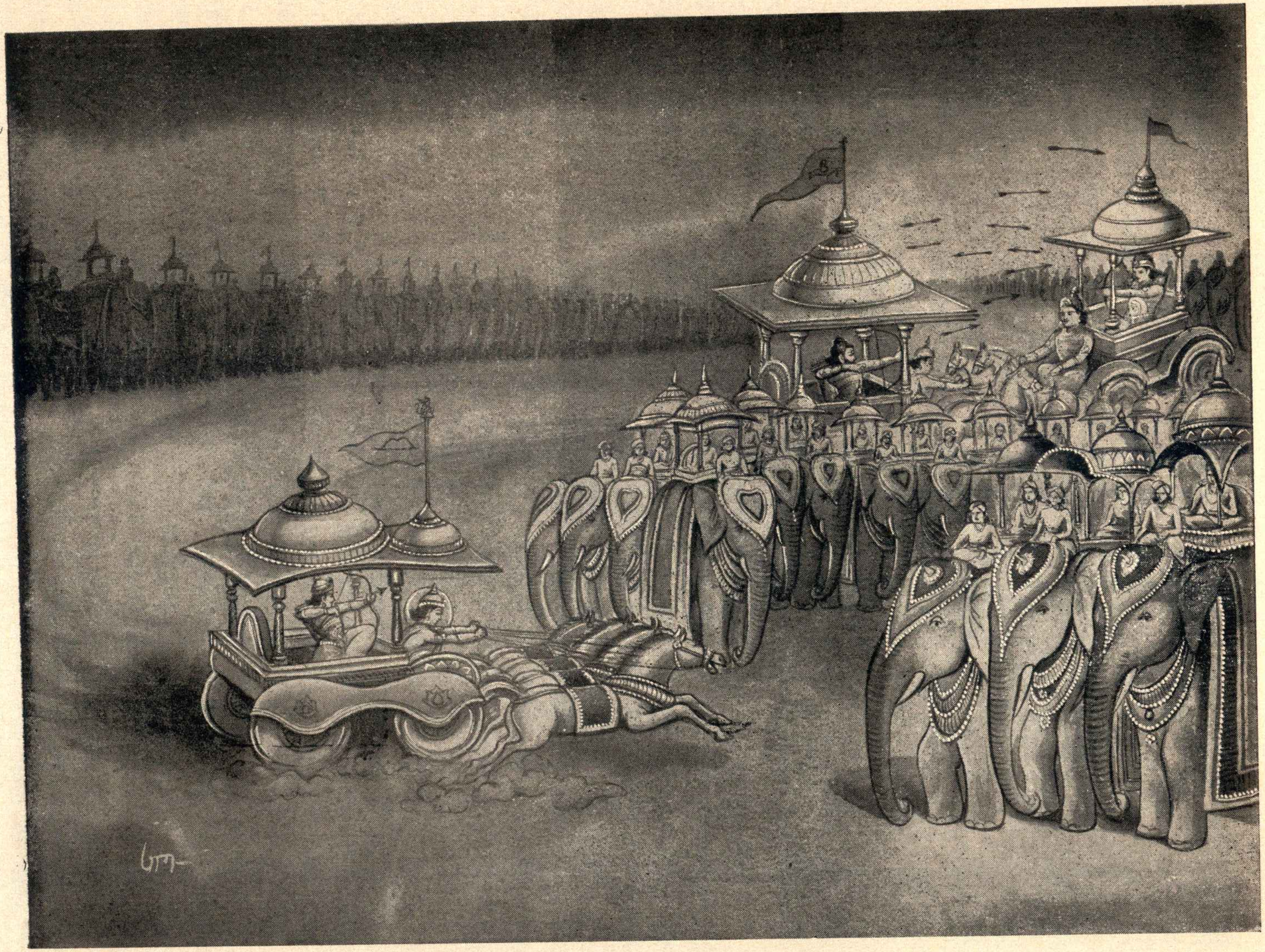
प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद् बलम् ॥ २४ ॥

सेनाके सभी वाहन भयके मारे मल-मूत्र करने लगे। इस प्रकार सवारियोंसहित सारी सेना उद्विग्न हो गयी ॥२४॥

सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष।
विसंज्ञाश्चाभवन् केचित् केचिद् राजन् वित्रसुः॥२५॥

आदरणीय महाराज ! अपनी सेनाके सब मनुष्य वह शङ्खनाद सुनकर शिथिल हो गये। नरेश्वर ! कितने ही तो मूर्च्छित हो गये और कितने ही भयसे थर्रा उठे ॥ २५ ॥

ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः।
अकरोद् व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥



श्रीकृष्ण और अर्जुनका दुर्मर्षणकी गजसेनामें प्रवेश

तत्पश्चात् अर्जुनकी ध्वजामें निवास करनेवाले भूतगणोंके साथ वहाँ बैठे हुए हनूमान्जीने मुँह बाकर आपके सैनिकोंको भयभीत करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २६ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह ।
पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥

तब आपकी सेनामें भी पुनः मृदङ्ग और ढोलके साथ शङ्ख तथा नगाड़े बज उठे, जो आपके सैनिकोंके हर्ष और उत्साहको बढ़ानेवाले थे ॥ २७ ॥

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्कृष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिसे, गर्जन-तर्जन करनेसे, ताल ठोंकनेसे, सिंहनादसे और महारथियोंके ललकारनेसे जो शब्द होते थे, वे सब मिलकर भयंकर हो उठे और भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय उत्पन्न करने लगे। उस समय अत्यन्त हर्षमें भरे हुए इन्द्रपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेशविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३० श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार और समस्त सैनिकोंका पलायन

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
एतद् भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश ! जहाँ दुर्मर्षण खड़ा है, उसी ओर घोड़ोंको बढ़ाइये। मैं उसकी इस गजसेनाका भेदन करके शत्रुओंकी विशाल वाहिनीमें प्रवेश करूँगा ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महाबाहु श्रीकृष्णने, जहाँ दुर्मर्षण खड़ा था, उसी ओर घोड़ोंको हाँका ॥ २ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥

उस समय एक वीरका बहुत-से योद्धाओंके साथ बड़ा भयंकर घमासान युद्ध छिड़ गया, जो रथों, हाथियों और मनुष्योंका संहार करनेवाला था ॥ ३ ॥

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥

तदनन्तर अर्जुन बाणोंकी वर्षा करते हुए जल बरसानेवाले मेघके समान प्रतीत होने लगे। जैसे मेघ पानीकी वर्षा करके पर्वतोंको आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे शत्रुओंको ढक दिया ॥ ४ ॥

ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन् बाणजालैस्तत्र कृष्णधनंजयौ ॥ ५ ॥

उधर उन समस्त कौरव रथियोंने भी सिद्धहस्त पुरुषोंकी भाँति शीघ्रतापूर्वक अपने बाणसमूहोंद्वारा वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥

उस समय युद्धस्थलमें शत्रुओंके द्वारा रोके जानेपर महाबाहु अर्जुन कुपित हो उठे और अपने बाणोंद्वारा रथियोंके मस्तकोंको उनके शरीरोंसे काटकर गिराने लगे ॥ ६ ॥

उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टौष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥

कुण्डल और टोपोंसहित उन रथियोंके घूमते हुए नेत्रों तथा दाँतोंद्वारा चबाये जाते हुए ओठोंवाले सुन्दर मुखोंसे सारी रणभूमि पट गयी ॥ ७ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥

सब ओर बिखरे हुए योद्धाओंके मुख कटकर गिरे हुए कमल-समूहोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णमय कवच धारण किये और खूनसे लथपथ हो एक दूसरेसे सटे हुए हताहत योद्धाओंके शरीर विद्युत्सहित मेघसमूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद् वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥

राजन् ! कालसे परिपक्व हुए ताड़के फलोंके पृथ्वीपर गिरनेसे जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार रणभूमिमें कटकर गिरते हुए योद्धाओंके मस्तकोंका शब्द होता था ॥ १० ॥

ततः कबन्धं किंचित् तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किंचित् खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥

कोई-कोई कबन्ध (बिना सिरका धड़) धनुष लेकर

खड़ा था और कोई तलवार खींचकर उसे हाथमें उठाये खड़ा हुआ था ॥ ११ ॥

पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥१२॥

संग्राममें विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही श्रेष्ठ पुरुष कुन्तीपुत्र अर्जुनके प्रति अमर्षशील होकर यह भी न जान पाये कि उनके मस्तक कब कटकर गिर गये ॥१२॥

हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥१३॥

घोड़ोंके मस्तकों, हाथियोंकी सूँड़ों और वीरोंकी भुजाओं तथा सिरोंसे सारी रणभूमि आच्छादित हो गयी थी॥

अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥१४॥

प्रभो ! आपकी सेनाओंके समस्त योद्धाओंकी दृष्टिमें सब ओर अर्जुनमय-सा हो रहा था । वे बार-बार 'यह अर्जुन है, कहाँ अर्जुन है ? यह अर्जुन है' इस प्रकार चिल्ला उठते थे ॥

अन्योन्यमपि चाजघ्नुरात्मानमपि चापरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत् कालेन मोहिताः ॥१५॥

बहुत-से दूसरे सैनिक आपसमें ही एक दूसरेपर तथा अपने ऊपर भी प्रहार कर बैठते थे । वे कालसे मोहित होकर सारे संसारको अर्जुनमय ही मानने लगे ॥ १५ ॥

निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥१६॥

बहुत-से वीर रक्तसे भीगे शरीरसे धराशायी होकर गहरी वेदनाके कारण कराहते हुए अपनी चेतना खो बैठते थे और कितने ही योद्धा धरतीपर पड़े-पड़े अपने बन्धु-बान्धवोंको पुकार रहे थे ॥ १६ ॥

सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः।
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥१७॥
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
महाभुजगसंकाशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८॥
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संचेष्टन्ति च सर्वशः ।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥१९॥

अर्जुनके श्रेष्ठ बाणोंसे कटी हुई वीरोंकी परिघके समान मोटी और महान् सर्पके समान दिखायी देनेवाली भिन्दिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, निर्व्यूह, खड्ग, धनुष, तोमर, बाण, कवच, आभूषण, गदा और भुजबंद आदिसे युक्त भुजाएँ आवेशमें भरकर अपना महान् वेग प्रकट करती, ऊपरको उछलती, छटपटाती और सब प्रकारकी चेष्टाएँ करती थीं ॥ १७-१९ ॥

यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः ।
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥ २०॥

जो-जो मनुष्य उस समराङ्गणमें अर्जुनका सामना करनेके लिये चलता था, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण आ गिरता था ॥ २० ॥

नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
न कश्चित् तत्र पार्थस्य ददर्शोऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥

अर्जुन वहाँ इस प्रकार निरन्तर रथके मार्गोंपर विचरते और धनुषको खींच रहे थे कि उस समय कोई भी उनपर प्रहार करनेका थोड़ा-सा भी अवसर नहीं देख पाता था ॥ २१ ॥

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।
लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन पूर्ण सावधान हो विजय पानेकी चेष्टा करते और शीघ्रतापूर्वक बाण चलाते थे । उस समय उनकी फुर्ती देखकर दूसरे लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था ॥ २२ ॥

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत् फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ २३ ॥

अर्जुनने हाथी और महावतको, घोड़े और घुड़सवारको तथा रथी और सारथिको भी अपने बाणोंसे विदीर्ण कर डाला॥

आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किंचिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥

जो लौटकर आ रहे थे, जो आ चुके थे, जो युद्ध करते थे और जो सामने खड़े थे—इनमेंसे किसीको भी पाण्डुकुमार अर्जुन मारे बिना नहीं छोड़ते थे ॥ २४ ॥

यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत् तमः ।
तथार्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥

जैसे आकाशमें उदित हुआ सूर्य महान् अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कंककी पाँखवाले बाणोंद्वारा उस गजसेनाका संहार कर डाला ॥ २५ ॥

हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्विनिकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥

राजन् ! बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े हुए हाथियोंसे आपकी सेना वैसी ही दिखायी देती थी, जैसे प्रलयकालमें यह पृथ्वी इधर-उधर बिखरे हुए पर्वतोंसे आच्छादित देखी जाती है ॥ २६ ॥

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनंजयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥

जैसे दोपहरके सूर्यकी ओर देखना समस्त प्राणियोंके लिये सदा ही कठिन होता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुनकी ओर शत्रुलोग बड़ी कठिनाईसे देख पाते थे ॥ २७ ॥

तत् तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुई आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखड़ गये और वह अत्यन्त उद्विग्न हो तुरंत ही वहाँसे भाग चली ॥

मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।
प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं नाशकत् प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥

जैसे बड़े वेगसे उठी हुई वायु बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार दुर्मर्षणकी सेनाका व्यूह टूट गया और वह अर्जुनके खदेड़नेपर इस प्रकार जोर-जोरसे भागने लगी कि उसे पीछे फिरकर देखनेका भी साहस न हुआ ॥

प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए आपके पैदल, घुड़सवार और रथी सैनिक चाबुक, धनुषकी कोटि, हुंकार, हाँकनेकी सुन्दर कला, कोड़ोंके प्रहार, चरणोंके आघात तथा भयंकर वाणीद्वारा अपने घोड़ोंको बड़ी उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥ ३०-३१ ॥

पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः सम्मोहिताश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः ।
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३२ ॥

दूसरे गजारोही सैनिक अपने पैरोंके अँगूठों और अंकुशोंद्वारा हाथियोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन कर रहे थे । कितने ही योद्धा अर्जुनके बाणोंसे मोहित होकर उन्हींके सामने चले जाते थे । उस समय आपके सभी योद्धाओंका उत्साह नष्ट हो गया था और मनमें बड़ी भारी घबराहट पैदा हो गयी थी ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनयुद्धविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे हताहत होकर सेनासहित दुःशासनका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनंजयम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर उस अग्रगामी सैन्यदलके पलायन कर जानेपर वहाँ रणक्षेत्रमें किन वीरोंने अर्जुनपर धावा किया था ? ॥ १ ॥

आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तं प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥

अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपना मनोरथ सफल न होनेपर वे परकोटेकी भाँति खड़े हुए द्रोणाचार्यका आश्रय लेकर सर्वथा निर्भय शकटव्यूहमें घुस गये हों ॥ २ ॥

संजय उवाच

तथार्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥
पाकशासनिनाभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित् संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥

संजयने कहा—निष्पाप नरेश ! जब इन्द्रपुत्र अर्जुनने पूर्वोक्त प्रकारसे आपकी सेनाके वीरोंको मारकर उसे हतोत्साह एवं भागनेके लिये विवश कर दिया, सभी सैनिक पलायन करनेका ही अवसर देखने लगे तथा उनके ऊपर निरन्तर श्रेष्ठ बाणोंकी मार पड़ने लगी, उस समय वहाँ संग्राममें कोई भी अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख न सका ॥ ३-४ ॥

ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥

राजन् ! सेनाकी वह दुरवस्था देखकर आपके पुत्र दुःशासनको बड़ा क्रोध हुआ और वह युद्धके लिये अर्जुनके सामने जा पहुँचा ॥ ५ ॥

स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥

उसने अपने-आपको सुवर्णमय विचित्र कवचके द्वारा ढक लिया था, उसके मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ शिरस्त्राण (टोप) शोभा पा रहा था । वह दुःसह पराक्रम करनेवाला शूरवीर था ॥ ६ ॥

नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥

महाराज ! दुःशासनने अपनी विशाल गजसेनाद्वारा अर्जुनको इस प्रकार चारों ओरसे घेर लिया, मानो वह सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेके लिये उद्यत हो ॥ ७ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत् समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥

हाथियोंके घंटोंकी ध्वनि, शङ्खनाद, धनुषकी टंकार और गजराजोंके चिग्घाड़नेके शब्दसे पृथ्वी, दिशाएँ तथा आकाश—ये सभी गूँज उठे थे । उस समय दुःशासन दो घड़ीके लिये अत्यन्त भयंकर एवं दारुण हो उठा ॥ ८-९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णमङ्कुशैरभिचोदितान्।
व्यालम्बहस्तान् संरब्धान् सपक्षानिव पर्वतान्॥ १०॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनंजयः।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः॥ ११॥

महावतोंद्वारा अंकुशोंसे हाँके जानेपर लम्बी सूँड़ उठाये और क्रोधमें भरे, पंखधारी पर्वतोंके समान उन हाथियोंको बड़े वेगसे अपने ऊपर आते देख मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद करके शत्रुओंकी उस गजसेनाका बिना किसी भयके बाणोंद्वारा संहार कर डाला॥

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम्।
किरीटी तद् गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा॥ १२॥

वायुद्वारा ऊपर उठाये हुए ऊँची-ऊँची तरंगोंसे युक्त महासागरके समान उस गजसैन्यमें किरीटधारी अर्जुनने मकरके समान प्रवेश किया॥ १२॥

काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरंजयः॥ १३॥

जैसे प्रलयकालमें सूर्यदेव सीमाका उल्लङ्घन करके तपने लगते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें असीम पराक्रम करते हुए दिखायी देने लगे॥ १३॥

खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च॥ १४॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च॥ १५॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना॥ १६॥

घोड़ोंकी टापोंके शब्दसे, रथके पहियोंकी उस घरघराहटसे, उच्चस्वरसे किये जानेवाले गर्जन-तर्जनकी उस आवाजसे, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी उस टंकारसे, भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनिसे, पाञ्चजन्यके हुंकारसे, देवदत्त नामक शङ्खके गम्भीर घोषसे तथा गाण्डीवकी टंकार-ध्वनिसे मनुष्यों और हाथियोंके वेग मन्द पड़ गये और वे सब-के-सब भयके मारे अचेत हो गये। सव्यसाची अर्जुनने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उन्हें विदीर्ण कर दिया॥ १४—१६॥

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः॥ १७॥

गाण्डीव धनुषद्वारा चलाये हुए लाखों तीखे बाण युद्धस्थलमें खड़े हुए उन हाथियोंके सम्पूर्ण अङ्गोंमें बिंध गये थे॥ १७॥

आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः॥ १८॥

अर्जुनके बाणोंकी मार खाकर बड़े जोरसे चीत्कार करके वे हाथी पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर निरन्तर गिर रहे थे॥ १८॥



अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद् व्यनदन् मुहुः॥ १९॥

कुछ दूसरे गजराज नीचेके ओठोंमें, कुम्भस्थलोंमें और कनपटियोंमें बाणोंसे छिद जानेके कारण कुरर पक्षीके समान बारंबार आर्तनाद कर रहे थे॥ १९॥

गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः॥ २०॥

किरीटधारी अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले भल्ल नामक बाणोंद्वारा हाथीकी पीठपर बैठे हुए पुरुषोंके मस्तक भी धड़ाधड़ काटते जा रहे थे॥ २०॥

सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले।
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम्॥ २१॥

पृथ्वीपर गिरते हुए कुण्डलयुक्त मस्तक कमलपुष्पोंके ढेरके समान जान पड़ते थे, मानो अर्जुनने उन मस्तकोंके रूपमें पृथ्वीको पद्मके समूह भेंट किये हों॥ २१॥

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे॥ २२॥

युद्धके मैदानमें चक्कर काटते हुए हाथियोंपर बहुत-से मनुष्य इस प्रकार लटक रहे थे, मानो उन्हें किसी यन्त्रसे वहाँ जड़ दिया गया हो। उनके कवच नष्ट हो गये थे। वे घावसे पीड़ित और खूनसे लथपथ हो रहे थे॥ २२॥

केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले॥ २३॥

कुछ हाथी तो अच्छी तरहसे चलाये हुए सुन्दर पंख-युक्त एक ही बाणद्वारा दो-दो तीन-तीनकी संख्यामें एक साथ विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ २३ ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः।
सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

सवारोंसहित कितने ही हाथी नाराचोंसे अत्यन्त घायल होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए वृक्षयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ २४ ॥

मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तदनन्तर अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा रथियोंकी प्रत्यञ्चा, ध्वजा, धनुष, जुआ तथा ईषादण्डके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २५ ॥

न संदधन् न चाकर्षन् न विमुञ्चन् न चोद्वहन्।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥

उस समय अर्जुन मण्डलाकार धनुषके साथ सब ओर नृत्य करते हुए-से दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे कब धनुषपर बाणोंको रखते, कब प्रत्यञ्चा खींचते, कब बाण छोड़ते और कब उन्हें तरकससे निकालते हैं; यह कोई नहीं देख पाता था॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः।
मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥

दो ही घड़ीमें और भी बहुत-से हाथी नाराचोंकी मार-से अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए धरतीपर लोटने लगे ॥ २७ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८ ॥

महाराज! उस अत्यन्त भयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध (धड़) उठे दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥

वीरोंकी कटी हुई स्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित भुजाएँ धनुष, दस्ताने, तलवार और भुजबन्दोंसहित कटकर रण-भूमिमें पड़ी दिखायी देती थीं ॥ २९ ॥

सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥

सुन्दर उपकरणों, बैठकों, ईषादण्ड, बन्धनरज्जुओं और पहियोंसहित रथ चूर-चूर हो रहे थे। उनके धुरे टूट गये थे और जूए टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े थे। बहुत-सी ढालों और धनुषोंको लिये-दिये वे टूटे हुए रथ इधर-उधर बिखरे पड़े थे। बहुत-से हार, आभूषण, वस्त्र और बड़े-बड़े ध्वज धरतीपर गिरे हुए थे। अनेक हाथी और घोड़े मारे गये थे तथा बहुत-से क्षत्रिय भी धराशायी कर दिये गये थे। इन सबके कारण वहाँकी भूमि देखनेमें अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी ॥ ३०—३२ ॥

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥

महाराज! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर अत्यन्त व्यथित हुई दुःशासनकी सेना अपने नायक-सहित भाग चली ॥ ३३ ॥

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः।
द्रोणं त्रातारमाकाङ्क्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

तब अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और भयभीत हो सेनाओंसहित दुःशासन अपने रक्षक द्रोणाचार्यके आश्रयमें जानेकी इच्छा रखकर शकट-व्यूहके भीतर घुस गया ॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुःशासनकी सेनाका पराभवविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

अर्जुन और द्रोणाचार्यका वार्तालाप तथा युद्ध एवं द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़े हुए अर्जुनका कौरव सैनिकोंद्वारा प्रतिरोध

संजय उवाच

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुःशासनकी सेनाका संहार करके सव्यसाची महारथी अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथको पानेकी इच्छा रखकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥१॥

स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम्।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥

व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए आचार्य द्रोणके पास पहुँचकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति ले हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे।

भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥

'ब्रह्मन् ! आप मेरा कल्याण चिन्तन कीजिये । मुझे स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दीजिये । मैं आपकी कृपासे ही इस दुर्भेद्य सेनाके भीतर प्रवेश करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

'आप मेरे लिये पिता पाण्डु, भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर तथा सखा श्रीकृष्णके समान हैं । यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयानघ ।
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

'तात ! निष्पाप द्विजश्रेष्ठ ! जैसे अश्वत्थामा आपके लिये रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मैं भी सदैव आपसे संरक्षण पानेका अधिकारी हूँ ॥ ५ ॥

तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! मैं आपके प्रसादसे इस युद्धमें सिन्धुराज जयद्रथको मारना चाहता हूँ । प्रभो ! आप मेरी इस प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये' ॥ ६ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर उस समय द्रोणाचार्यने उन्हें हँसते हुए-से उत्तर दिया—'अर्जुन ! मुझे पराजित किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है' ॥ ७ ॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम् ॥ ८ ॥

अर्जुनसे इतना ही कहकर द्रोणाचार्यने हँसते-हँसते रथ, घोड़े, ध्वज तथा सारथिसहित उनके ऊपर तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद् बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके बाणसमूहोंका निवारण करके बड़े-बड़े भयंकर बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

विव्याध चरणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! उन्होंने द्रोणाचार्यका समादर करते हुए क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले पुनः नौ बाणोंद्वारा उनके चरणोंमें आघात किया ॥ १० ॥

तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनके उन बाणोंको काटकर प्रज्वलित विष एवं अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको घायल कर दिया ॥ ११ ॥

इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥

तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके धनुषको काट देनेकी इच्छा की । महामना अर्जुन अभी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि पराक्रमी द्रोणाचार्यने बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा शीघ्र ही उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली और अर्जुनके घोड़ों, ध्वज और सारथिको भी बींध डाला ॥ १२-१३ ॥

अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद् धनुः ॥ १४ ॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान् बाणान् गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥

इतना ही नहीं, वीर द्रोणाचार्यने मुसकराकर अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया । इसी बीचमें सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने विशाल धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और आचार्यसे बढ़कर पराक्रम दिखानेकी इच्छासे तुरंत छः सौ बाण छोड़े । उन बाणोंको उन्होंने इस प्रकार हाथमें ले लिया था, मानो एक ही बाण हो ॥ १४-१५ ॥

पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्रं चानिवर्तिनः ।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूम् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् सात सौ और फिर एक हजार ऐसे बाण छोड़े जो किसी प्रकार प्रतिहत होनेवाले नहीं थे । तदनन्तर अर्जुनने दस-दस हजार बाणोंद्वारा प्रहार किया । उन सभी बाणोंने द्रोणाचार्यकी उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १६ ॥

तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥

विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले अस्त्रवेत्ता महाबली अर्जुनके द्वारा भलीभाँति चलाये हुए उन बाणोंसे घायल हो बहुत-से मनुष्य, घोड़े और हाथी प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १७ ॥

विसूताश्वध्वजाः पेतुः संछिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए बहुतेरे रथी सारथि,

अश्व, ध्वज, अस्त्र-शस्त्र और प्राणोंसे भी वञ्चित हो सहसा श्रेष्ठ रथोंसे नीचे जा गिरे ॥ १८ ॥

चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥ १९ ॥

वज्रके आघातसे चूर-चूर हुए पर्वतों, वायुके द्वारा संचालित हुए भयंकर बादलों तथा आगमें जले हुए गृहोंके समान रूपवाले बहुत-से हाथी धराशायी हो रहे थे ॥ १९ ॥

पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २० ॥

अर्जुनके बाणोंसे मारे गये सहस्रों घोड़े रणभूमिमें उसी प्रकार पड़े थे, जैसे वर्षाके जलसे आहत हुए बहुत-से हंस हिमालयकी तलहटीमें पड़े हुए हों ॥ २० ॥

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्मयाभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥

प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंके समान अर्जुनके तेजस्वी बाणोंद्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंके समूह सूर्यकिरणोंद्वारा सोखे गये अद्भुत जलप्रवाहके समान जान पड़ते थे ॥ २१ ॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं
कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः
प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २२ ॥

जैसे बादल सूर्यकी किरणोंको छिपा देता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अपनी बाणवर्षाके वेगसे अर्जुनरूपी सूर्यके इस बाणरूपी किरणसमूहको आच्छादित कर दिया, जो युद्धमें मुख्य-मुख्य कौरव वीरोंको संतप्त कर रहा था ॥ २२ ॥

अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनंजयम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंके प्राण लेनेवाले एक नाराचका प्रहार करके द्रोणाचार्यने अर्जुनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २४ ॥

उस आघातसे अर्जुनका सारा शरीर विह्वल हो गया, मानो भूकम्प होनेपर पर्वत हिल उठा हो। तथापि अर्जुनने धैर्य धारण करके पंखयुक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २४ ॥

द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः ॥ २५ ॥

फिर द्रोणने भी पाँच बाणोंसे भगवान् श्रीकृष्णको, तिहत्तर बाणोंसे अर्जुनको और तीन बाणोंद्वारा उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

विशेषयिष्यञ्छिष्यं च द्रोणो राजन् पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥

राजन्! पराक्रमी द्रोणाचार्यने अपने शिष्य अर्जुनसे अधिक पराक्रम प्रकट करनेकी इच्छा रखकर पलक मारते-मारते अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥

प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥

हमने देखा, द्रोणाचार्यके बाण परस्पर सटे हुए गिरते थे। उनका अद्भुत धनुष सदा मण्डलाकार ही दिखायी देता था ॥ २७ ॥

तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनंजयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके छोड़े हुए कंकपत्रविभूषित बहुत-से बाण श्रीकृष्ण और अर्जुनपर पड़ने लगे ॥ २८ ॥

तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥

उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुनका वैसा युद्ध देखकर परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने मन-ही-मन कर्तव्यका निश्चय कर लिया ॥ २९ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धनंजयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ ३० ॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—'अर्जुन! अर्जुन! महाबाहो! हमारा अधिक समय यहाँ न बीत जाय, इसलिये द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे चलें; यही इस समय सबसे महान् कार्य है' ॥ ३०½ ॥

पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद् विसृजञ्शरान् ॥ ३२ ॥

तब अर्जुनने भी सच्चिदानन्दस्वरूप केशवसे कहा—'प्रभो! आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये।' तत्पश्चात् अर्जुन महाबाहु द्रोणाचार्यकी परिक्रमा करके लौट पड़े और बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे चले गये ॥ ३१-३२ ॥

ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे ॥ ३३ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने स्वयं कहा—'पाण्डुनन्दन! तुम इस प्रकार कहाँ चले जा रहे हो? तुम तो रणक्षेत्रमें शत्रुको पराजित किये बिना कभी नहीं लौटते थे' ॥ ३३ ॥

अर्जुन उवाच

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥

अर्जुन बोले—ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरु हैं । शत्रु नहीं हैं । मैं आपका पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूँ । इस जगत्में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो युद्धमें आपको पराजित कर सके ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहते हुए महाबाहु अर्जुनने जयद्रथ-वधके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ आपकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३६ ॥

आपकी सेनामें प्रवेश करते समय उनके पीछे-पीछे पाञ्चाल वीर महामना युधामन्यु और उत्तमौजा चक्र-रक्षक होकर गये ॥ ३६ ॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनंजयमवारयन् ॥ ३७ ॥

महाराज ! तब जय, सात्वत-वंशी कृतवर्मा, काम्बोज-नरेश तथा श्रुतायुने सामने आकर अर्जुनको रोका ॥ ३७ ॥

तेषां दश सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९ ॥
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥

इनके पीछे दस हजार रथी, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक, नारायण नामक गोपालगण तथा काम्बोजदेशीय सैनिकगण भी थे । इन सबको पूर्वकालमें कर्णने रणभूमिमें जीतकर अपने अधीन कर लिया था । ये सब-के-सब शूरवीरोंद्वारा सम्मानित योद्धा थे और प्रसन्नचित्त हो द्रोणाचार्यको आगे करके अर्जुनपर चढ़ आये थे ॥ ३८–४० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् संनद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥
गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥

अर्जुन पुत्रशोकसे संतप्त एवं कुपित हुए प्राणान्तक मृत्युके समान प्रतीत होते थे । वे उस भयंकर युद्धमें अपने प्राणोंको निछावर करनेके लिये उद्यत, कवच आदिसे सुसज्जित और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे । जैसे यूथपति गज-राज गजसमूहमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार आपकी सेनाओंमें घुसते हुए महाधनुर्धर परम पराक्रमी उन नरश्रेष्ठ अर्जुनको पूर्वोक्त योद्धाओंने आकर रोका ॥ ४१–४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको ललकारते हुए कौरव योद्धाओं तथा अर्जुनमें रोमाञ्चकारी एवं भयंकर युद्ध छिड़ गया ॥४३॥

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जैसे चिकित्साकी क्रिया उभड़ते हुए रोगको रोक देती है, उसी प्रकार जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे आते हुए पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समस्त कौरव वीरोंने एक साथ मिलकर रोक दिया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणातिक्रमणविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनका द्रोणाचार्य और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए कौरव-सेनामें प्रवेश तथा श्रुतायुधका अपनी गदासे और सुदक्षिणका अर्जुनद्वारा वध

संजय उवाच

संनिरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—रथियोंमें श्रेष्ठ एवं महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न अर्जुन जब उन कौरव सैनिकोंद्वारा रोक दिये गये, उस समय द्रोणाचार्यने भी तुरंत ही उनका पीछा किया ॥ १ ॥

किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान् स रश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत् सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥

जैसे रोगोंका समुदाय शरीरको संतप्त कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कौरवोंकी उस सेनाको अत्यन्त संताप दिया । जैसे सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥

उन्होंने घोड़ोंको घायल कर दिया, रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, गजारोहियोंसहित हाथीको मार गिराया, छत्र इधर-उधर बिखेर दिये तथा रथोंको पहियोंसे सूना कर दिया ॥ ३ ॥

विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्तानि समन्ततः।
इत्यासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥

उनके बाणोंसे पीड़ित होकर सारे सैनिक सब ओर भाग चले। वहाँ इस प्रकार भयंकर युद्ध हो रहा था कि किसीको कुछ भी भान नहीं हो रहा था ॥ ४ ॥

तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥

राजन्! उस युद्धस्थलमें कौरव-सैनिक एक दूसरेको काबूमें रखनेका प्रयत्न करते थे और अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उनकी सेनाको बारंबार कम्पित कर रहे थे ॥ ५ ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः।
अभ्यद्रवद् रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्वेतवाहन अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा सच्ची करनेकी इच्छासे लाल घोड़ोंवाले रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य-पर धावा किया ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥

उस समय आचार्य द्रोणने अपने महाधनुर्धर शिष्य अर्जुनको पचीस मर्मभेदी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ७ ॥

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥

तब सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने भी तुरंत ही उनके बाणोंके वेगका विनाश करनेवाले भल्लोंका प्रहार करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

तस्याशुक्षिप्तान् भल्लान् हि भल्लैः संनतपर्वभिः।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने अर्जुनके तुरंत चलाये हुए उन भल्लोंको झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा ही काट दिया और ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ९ ॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद् यदर्जुनः ॥ १० ॥

उस युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यकी अद्भुत अस्त्रशिक्षा हमने देखी कि नवयुवक अर्जुन प्रयत्नशील होनेपर भी उन्हें अपने बाणोंद्वारा चोट न पहुँचा सके ॥ १० ॥

क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥

जैसे महान् मेघ जलकी सहस्रों धाराएँ बरसाता रहता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अर्जुनरूपी पर्वतपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ११ ॥

अर्जुनः शरवर्षं तद् ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान् निशातयन् ॥ १२ ॥

पूजनीय नरेश! उस समय अपने बाणोंद्वारा उनके बाणोंको काटते हुए तेजस्वी अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रद्वारा ही आचार्यकी उस बाण-वर्षाको रोका ॥ १२ ॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत्।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः ॥ १३ ॥

तब द्रोणाचार्यने पचीस बाण मारकर श्वेतवाहन अर्जुन-को पीड़ित कर दिया। साथ ही श्रीकृष्णकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें भी उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ १३ ॥

पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम्।
विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥

परम बुद्धिमान् अर्जुनने हँसते हुए ही युद्धस्थलमें तीखे बाणोंकी बौछार करनेवाले द्रोणाचार्यको उनकी बाण-वर्षा-सहित रोक दिया ॥ १४ ॥

अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यके द्वारा घायल किये जाते हुए वे दोनों रथिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय प्रलयकालकी अग्निके समान उठे हुए उन दुर्धर्ष आचार्यको छोड़कर अन्यत्र चल दिये ॥ १५ ॥

वर्जयन् निशितान् बाणान् द्रोणचापविनिःसृतान्।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंका निवारण करते हुए किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुनने कृतवर्माकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ १६ ॥

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
अभ्ययाद् वर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥

वे मैनाक पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए कृतवर्मा तथा काम्बोजराज सुदक्षिण-के बीचसे होकर निकले ॥ १७ ॥

ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम्।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥

तब पुरुषसिंह कृतवर्माने कुरुकुलके श्रेष्ठ एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनको कंकपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया। उस समय उसके मनमें तनिक भी व्यग्रता नहीं हुई ॥ १८ ॥

तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणाम्।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥

राजन्! अर्जुनने कृतवर्माको उस युद्धस्थलमें सौ बाणों-द्वारा बींध डाला। फिर उसे मोहित-सा करते हुए उन्होंने तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवं च माधवम्।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥

तब कृतवर्माने भी हँसकर कुन्तीकुमार अर्जुन और मधुवंशी भगवान् वासुदेवमेंसे प्रत्येकको पचीस-पचीस बाण मारे ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसंनिभैः ॥ २१ ॥

यह देख अर्जुनने उसके धनुषको काटकर क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर और आगकी लपटोंके समान तेजस्वी इक्कीस बाणोंद्वारा उसे भी घायल कर दिया २१

अथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा महारथः।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥

भारत ! तब महारथी कृतवर्माने दूसरा धनुष लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥२२॥

पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥

फिर पाँच तीखे बाण और मारकर अर्जुनको घायल कर दिया। यह देख अर्जुनने कृतवर्माकी छातीमें नौ बाण मारे ॥

दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनको कृतवर्माके रथसे उलझे हुए देखकर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा कि हमलोगोंका अधिक समय यहीं न व्यतीत हो जाय ॥ २४ ॥

ततः कृष्णोऽब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम्।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम कृतवर्मापर दया न करो । इस समय सम्बन्धी होनेका विचार छोड़कर इसे मथकर मार डालो' ॥ २५ ॥

ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥२६॥

तब अर्जुन अपने बाणोंद्वारा कृतवर्माको मूर्छित करके अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा काम्बोजोंकी सेनापर आक्रमण करने लगे ॥

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने।
विधुन्वन् सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥२७॥

श्वेतवाहन अर्जुनके व्यूहमें प्रवेश कर जानेपर कृतवर्माको बड़ा क्रोध हुआ। वह बाणसहित धनुषको हिलाता हुआ पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजासे भिड़ गया॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥२८॥

वे दोनों पाञ्चाल वीर अर्जुनके चक्ररक्षक होकर उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। कृतवर्माने अपने रथ और बाणोंद्वारा वहाँ आते हुए उन दोनों वीरोंको रोक दिया ॥ २८ ॥

तावविध्यत् ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥२९॥

भोजवंशी कृतवर्माने अपने तीन तीखे बाणोंद्वारा युधामन्युको और चार बाणोंसे उत्तमौजाको घायल कर दिया॥२९।

तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥

तब उन दोनोंने भी कृतवर्माको दस-दस बाणोंसे बींध दिया। फिर युधामन्युने तीन और उत्तमौजाने भी तीन बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचायी ॥ ३० ॥

संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च।
अथान्यद् धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत्।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥

साथ ही उन्होंने कृतवर्माके ध्वज और धनुषको भी काट डाला। यह देख कृतवर्मा क्रोधसे मूर्छित हो उठा और उसने दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन दोनों वीरोंके धनुष काट दिये। तत्पश्चात् वह उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। इसी तरह वे दोनों पाञ्चाल वीर भी दूसरे धनुषोंपर डोरी चढ़ाकर भोजवंशी कृतवर्माको चोट पहुँचाने लगे ॥ ३१-३२ ॥

तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम्।
न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ।

इसी बीचमें अवसर पाकर अर्जुन शत्रुओंकी सेनामें घुस गये। परंतु कृतवर्माद्वारा रोक दिये जानेके कारण वे दोनों नरश्रेष्ठ युधामन्यु और उत्तमौजा प्रयत्न करनेपर भी आपके पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करनेका द्वार न पा सके ३३½

अनीकान्यर्दयन् युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
नावधीत् कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः।

श्वेत घोड़ोंवाले शत्रुसूदन अर्जुन उस युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ शत्रु-सेनाओंको पीड़ा दे रहे थे। परंतु उन्होंने (सम्बन्धका विचार करके) कृतवर्माको सामने पाकर भी मारा नहीं ॥ ३४½ ॥

तं दृष्ट्वा तु तथा यान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद् धनुः।

अर्जुनको इस प्रकार आगे बढ़ते देख शूरवीर राजा श्रुतायुध अत्यन्त कुपित हो उठे और अपना विशाल धनुष हिलाते हुए उनपर टूट पड़े ॥ ३५½ ॥

स पार्थं त्रिभिरानर्छत् सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत्।

उन्होंने अर्जुनको तीन और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे। फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे अर्जुनकी ध्वजापर प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥

आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम्।

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर अंकुशोंसे महान् गजराजको पीड़ित करनेकी भाँति झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे राजा श्रुतायुधको चोट पहुँचायी ॥ ३७½ ॥

स तन्न ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत्।

राजन्! उस समय राजा श्रुतायुध पाण्डुकुमार अर्जुनके उस पराक्रमको न सह सके। अतः उन्होंने अर्जुनको सतहत्तर बाण मारे ॥ ३८½ ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः।

तब अर्जुनने उनका धनुष काटकर उनके तरकसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले सात बाणोंद्वारा उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ३९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।

फिर तो राजा श्रुतायुधने क्रोधसे अचेत होकर दूसरा धनुष हाथमें लिया और इन्द्रकुमार अर्जुनकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें नौ बाण मारे ॥ ४०½ ॥

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिंदमः ॥ ४१॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत।

भारत! यह देख शत्रुदमन अर्जुनने मुसकराते हुए ही श्रुतायुधको कई हजार बाण मारकर पीड़ित कर दिया ४१½

अश्वांश्चास्यावधीत् तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः।

साथ ही उन महारथी एवं महाबली वीरने उनके घोड़ों और सारथिको भी शीघ्रतापूर्वक मार डाला और सत्तर नाराचोंसे श्रुतायुधको भी घायल कर दिया ॥ ४२½ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३॥
अभ्यद्रवद् रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान्।

घोड़ोंके मारे जानेपर पराक्रमी राजा श्रुतायुध उस रथको छोड़कर हाथमें गदा ले समराङ्गणमें अर्जुनपर टूट पड़े ॥

वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी।

वीर राजा श्रुतायुध वरुणके पुत्र थे। शीतसलिला महानदी पर्णाशा उनकी माता थी ॥ ४४½ ॥

तस्य माताब्रवीद् राजन् वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम।

राजन्! उनकी माता पर्णाशा अपने पुत्रके लिये वरुणसे बोली—'प्रभो! मेरा यह पुत्र संसारमें शत्रुओंके लिये अवध्य हो' ॥ ४५½ ॥

वरुणस्त्वब्रवीत् प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनावध्यो भविष्यति।

तब वरुणने प्रसन्न होकर कहा—'मैं इसके लिये हितकारक वरके रूपमें यह दिव्य अस्त्र प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा तुम्हारा यह पुत्र अवध्य होगा ॥ ४६½ ॥

नास्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथंचन ॥ ४७ ॥
सर्वेणावश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे।

'सरिताओंमें श्रेष्ठ पर्णाशे! मनुष्य किसी प्रकार भी अमर नहीं हो सकता। जिन लोगोंने यहाँ जन्म लिया है, उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है ॥ ४७½ ॥

दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
अस्त्रस्यास्य प्रभावाद् वै व्येतु ते मानसो ज्वरः।

'तुम्हारा यह पुत्र इस अस्त्रके प्रभावसे रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये सदा ही दुर्धर्ष होगा। अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता निवृत्त हो जानी चाहिये' ॥ ४८½ ॥

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद् गदां मन्त्रपुरस्कृताम्॥ ४९ ॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः।

ऐसा कहकर वरुणदेवने श्रुतायुधको मन्त्रोपदेशपूर्वक वह गदा प्रदान की, जिसे पाकर वे सम्पूर्ण जगत्‌में दुर्जय वीर माने जाते थे ॥ ४९½ ॥

उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१॥

गदा देकर भगवान् वरुणने उनसे पुनः कहा—'वत्स! जो युद्ध न कर रहा हो, उसपर इस गदाका प्रहार न करना; अन्यथा यह तुम्हारे ऊपर ही आकर गिरेगी। शक्तिशाली पुत्र! यह गदा प्रतिकूल आचरण करनेवाले प्रयोक्ता पुरुषको भी मार सकती है' ॥ ५०-५१ ॥

न चाकरोत् स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥

परंतु काल आ जानेपर श्रुतायुधने वरुण देवके उक्त आदेशका पालन नहीं किया। उन्होंने उस वीरघातिनी गदाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको चोट पहुँचायी ॥ ५२ ॥

प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांसेन वीर्यवान्।
नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ५३॥

पराक्रमी श्रीकृष्णने अपने हृष्ट-पुष्ट कंधेपर उस गदाका आघात सह लिया। परंतु जैसे वायु विन्ध्यपर्वतको नहीं हिला सकती है, उसी प्रकार वह गदा श्रीकृष्णको कम्पित न कर सकी ॥ ५३ ॥

प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता।
जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥

जैसे दोषयुक्त आभिचारिक क्रियासे उत्पन्न हुई कृत्या उसका प्रयोग करनेवाले यजमानका ही नाश कर देती है, उसी प्रकार उस गदाने लौटकर वहाँ खड़े हुए अमर्षशील वीर श्रुतायुधको मार डाला ॥ ५४ ॥

हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत ।
गदां निवर्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।

वीर श्रुतायुधका वध करके वह गदा धरतीपर जा गिरी । लौटी हुई उस गदाको और उसके द्वारा मारे गये वीर श्रुतायुधको देखकर वहाँ आपकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ५५½ ॥

स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ५६ ॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात् तमवधीद् गदा ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! शत्रुदमन श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मारा गया देख यह बात ध्यानमें आयी कि श्रुतायुधने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्णपर गदा चलायी है । इसीलिये उस गदाने उन्हींका वध किया है ॥ ५६–५७ ॥

यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाप्यपतद् भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥

वरुणदेवने जैसा कहा था, युद्धभूमिमें श्रुतायुधकी उसी प्रकार मृत्यु हुई । वे सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५८ ॥

पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥

गिरते समय पर्णाशाके प्रिय पुत्र श्रुतायुध आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्षके समान प्रतीत हो रहे थे ॥५९॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ६० ॥

शत्रुसूदन श्रुतायुधको इस प्रकार मारा गया देख सारे सैनिक और सम्पूर्ण सेनापति वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ६० ॥

ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् काम्बोजराजका शूरवीर पुत्र सुदक्षिण वेगशाली अश्वोंद्वारा शत्रुसूदन अर्जुनका सामना करनेके लिये आया॥

तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम् ॥ ६२ ॥

भारत ! अर्जुनने उसके ऊपर सात बाण चलाये । वे बाण उस शूरवीरके शरीरको विदीर्ण करके धरतीमें समा गये ॥ ६२ ॥

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥

गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेपर सुदक्षिणने उस रणक्षेत्रमें कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा अर्जुनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६३ ॥

वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६४ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको तीन बाणोंसे घायल करके उसने अर्जुनपर पुनः पाँच बाणोंका प्रहार किया । आर्य ! तब अर्जुनने उसका धनुष काटकर उसकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ६४ ॥

भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत् ॥ ६५ ॥

इसके बाद पाण्डुकुमार अर्जुनने दो अत्यन्त तीखे भल्लोंसे सुदक्षिणको बींध डाला । फिर सुदक्षिण भी तीन बाणोंसे पार्थको घायल करके सिंहके समान दहाड़ने लगा ॥ ६५ ॥

सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
सघण्टां प्राहिणोद् घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥

शूरवीर सुदक्षिणने कुपित होकर पूर्णतः लोहेकी बनी हुई घण्टायुक्त भयंकर शक्ति गाण्डीवधारी अर्जुनपर चलायी॥

सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥

वह बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित होती और चिनगारियाँ बिखेरती हुई महारथी अर्जुनके पास जा उनके शरीरको विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६७ ॥

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥

उस शक्तिके द्वारा गहरी चोट खाकर महातेजस्वी अर्जुन मूर्छित हो गये, फिर धीरे-धीरे सचेत हो अपने मुखके दोनों कोनोंको जीभसे चाटते हुए अचिन्त्य पराक्रमी पार्थने कंकके पाँखवाले चौदह नाराचोंद्वारा घोड़े, ध्वज, धनुष और सारथिसहित सुदक्षिणको घायल कर दिया ॥ ६८-६९ ॥

रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।

फिर दूसरे बहुत-से बाणोंद्वारा उसके रथको टूक-टूक कर दिया और काम्बोजराज सुदक्षिणके संकल्प एवं पराक्रमको व्यर्थ करके पाण्डुपुत्र अर्जुनने मोटी धारवाले बाणसे उसकी छाती छेद डाली ॥ ७०½ ॥

स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥
पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।

इससे उसका कवच फट गया, सारे अङ्ग शिथिल हो गये, मुकुट और बाजूबंद गिर गये तथा शूरवीर सुदक्षिण मशीनसे फेंके गये ध्वजके समान मुँहके बल गिर पड़ा ॥

गिरेः शिखरजः श्रीमान् सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥

जैसे सर्दी बीतनेके बाद पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ सुन्दर शाखाओंसे युक्त, सुप्रतिष्ठित एवं शोभासम्पन्न कनेरका वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर गिर जाता है, उसी प्रकार काम्बोज-देशके मुलायम बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य सुदक्षिण वहाँ मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा था ॥ ७२-७३ ॥

महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।

बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित एवं शिखरयुक्त पर्वतके समान सुदर्शनीय अरुण नेत्रोंवाले काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको अर्जुनने एक ही बाणसे मार गिराया था ॥ ७४½ ॥

धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।

अपने मस्तकपर अग्निके समान दमकते हुए सुवर्णमय हारको धारण किये महाबाहु सुदक्षिण यद्यपि प्राणशून्य करके पृथ्वीपर गिराया गया था, तथापि उस अवस्थामें भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७५½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर श्रुतायुध तथा काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको मारा गया देख आपके पुत्रकी सारी सेनाएँ वहाँसे भागने लगीं ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें श्रुतायुध और सुदक्षिणका वधविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक और अम्बष्ठ आदिका वध

संजय उवाच

हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! काम्बोजराज सुदक्षिण और वीर श्रुतायुधके मारे जानेपर आपके सारे सैनिक कुपित हो बड़े वेगसे अर्जुनपर टूट पड़े ॥ १ ॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनंजयम् ॥ २ ॥

महाराज ! वहाँ अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति-देशीय सैनिकगण अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेषां षष्टिशतानन्यान् प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥

उस समय पाण्डुकुमार अर्जुनने उपर्युक्त सेनाओंके छः हजार सैनिकों तथा अन्य योद्धाओंको भी अपने बाणोंद्वारा मथ डाला। जैसे छोटे-छोटे मृग बाघसे डरकर भागते हैं, उसी प्रकार वे अर्जुनसे भयभीत हो वहाँसे पलायन करने लगे॥

ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान् निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान् युधि ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुन रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छासे उनका संहार कर रहे थे। यह देख उन भागे हुए सैनिकोंने पुनः लौटकर पार्थको चारों ओरसे घेर लिया ॥४॥

तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चापि धनंजयः ॥ ५ ॥

उन आक्रमण करनेवाले योद्धाओंके मस्तकों और भुजाओंको अर्जुनने गाण्डीव-धनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे तुरंत ही काट गिराया ॥ ५ ॥

शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्वाङ्क्षगृध्रबलैर्युधि ॥ ६ ॥

वहाँ गिराये हुए मस्तकोंसे वह रणभूमि ठसाठस भर गयी थी और उस युद्धस्थलमें कौओं तथा गीधोंकी सेनाके आ जानेसे वहाँ मेघकी छाया-सी प्रतीत होती थी ॥ ६ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनंजयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार जब उन समस्त सैनिकोंका संहार होने लगा, तब श्रुतायु तथा अच्युतायु—ये दो वीर क्रोध और अमर्षमें भरकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥

वे दोनों बलवान्, अर्जुनसे स्पर्धा रखनेवाले, वीर, उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले थे। उन दोनोंने अर्जुनपर दायें-बायेंसे बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद् यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥

महाराज ! वे दोनों वीर महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए आपके पुत्रके लिये अर्जुनके वधकी इच्छा रखकर हाथमें धनुष ले बड़ी उतावलीके साथ बाण चला रहे थे ॥ ९ ॥

तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटागं जलदौ यथा ॥ १० ॥

जैसे दो मेघ किसी तालाबको भरते हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंने झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाणोंद्वारा अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनंजयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

फिर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायुने कुपित होकर पानीदार तीखी धारवाले तोमरसे अर्जुनपर आघात किया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२ ॥

उस बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए शत्रुसूदन अर्जुन उस रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णको मोहित करते हुए स्वयं भी अत्यन्त मूर्छित हो गये ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥

इसी समय महारथी अच्युतायुने अत्यन्त तीखे शूलके द्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनपर प्रहार किया ॥ १३ ॥

क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥

उसने इस प्रहारद्वारा महामना पाण्डुपुत्र अर्जुनके घावपर नमक छिड़क दिया । अर्जुन भी अत्यन्त घायल होकर ध्वज-दण्डके सहारे टिक गये ॥ १४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनंजयम् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अर्जुनको मरा हुआ मानकर आपके सारे सैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५ ॥

कृष्णश्च भृशसंतप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनंजयम् ॥ १६ ॥

अर्जुनको अचेत हुआ देख भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त संतप्त हो उठे और मनको प्रिय लगनेवाले वचनोंद्वारा वहाँ उन्हें आश्वासन देने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्ष्यौ धनंजयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायु और अच्युतायुने अपना लक्ष्य सामने पाकर अर्जुन तथा वृष्णिवंशी श्रीकृष्णपर चारों ओरसे बाणवर्षा करके चक्र, कूबर, रथ, अश्व, ध्वज और पताका-सहित उन्हें उस रणक्षेत्रमें अदृश्य कर दिया । वह अद्भुत-सी बात हो गयी ॥ १७-१८ ॥

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥

भारत ! फिर अर्जुन धीरे-धीरे सचेत हुए, मानो यमराजके नगरमें पहुँचकर पुनः वहाँसे लौटे हों ॥ १९ ॥

संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ ॥ २० ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन् सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णसहित अपने रथको बाण समूहसे आच्छादित और सामने खड़े हुए दोनों शत्रुओंको अग्निके समान देदीप्यमान देखकर महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया । उससे झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाण प्रकट होने लगे ॥ २०-२१ ॥

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥

उन बाणोंने उन दोनों महाधनुर्धरोंको तथा उनके छोड़े हुए सायकोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया । अर्जुनके बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर उन शत्रुओंके बाण आकाशमें विचरने लगे ॥

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महारथान् ॥ २३ ॥

अपने बाणोंके वेगसे शत्रुओंके बाणोंको नष्ट करके पाण्डु-कुमार अर्जुनने जहाँ-तहाँ अन्य महारथियोंसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥

अर्जुनके उन बाण-समूहोंसे श्रुतायु और अच्युतायुके मस्तक कट गये । भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं । वे दोनों आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धराशायी हो गये ॥ २४ ॥

श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥

श्रुतायु और अच्युतायुका वह वध समुद्रशोषणके समान सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला था ॥ २५ ॥

तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६ ॥

उन दोनोंके पीछे आनेवाले पचास रथियोंको मारकर अर्जुनने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरोंको चुन-चुनकर मारते हुए पुनः कौरवसेनामें प्रवेश किया ॥ २६ ॥

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥

पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान् बाणान् पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥

भारत ! श्रुतायु तथा अच्युतायुको मारा गया देख उन दोनोंके पुत्र नरश्रेष्ठ नियुतायु और दीर्घायु पिताके वधसे दुखी हो अत्यन्त क्रोधमें भरकर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनका सामना करनेके लिये आये ॥ २७-२८ ॥

तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः संनतपर्वभिः ।
प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दो ही घड़ीमें उन दोनोंको यमराजके घर भेज दिया ॥

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥

जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए सरोवरको मथ डालता हो, उसी प्रकार आपकी सेनाओंका मन्थन करते हुए पार्थको आपके क्षत्रियशिरोमणि योद्धा रोक न सके ॥ ३० ॥

अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसी समय युद्धविषयक शिक्षा पाये हुए अङ्गदेशके सहस्रों गजारोही योद्धाओंने क्रोधमें भरकर हाथियोंके समूहद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥

फिर दुर्योधनकी आज्ञा पाकर पूर्व और दक्षिण देशोंके कलिंग आदि नरेशोंने भी अर्जुनपर पर्वताकार हाथियोंद्वारा घेरा डाल दिया ॥ ३२ ॥

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥

तब उग्ररूपधारी अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सारे आक्रमणकारियोंके मस्तकों तथा उत्तम भूषणभूषित भुजाओंको भी शीघ्र ही काट डाला ॥ ३३ ॥

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥

उस समय उन मस्तकों और भुजबंदसहित भुजाओंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि सर्पोंसे घिरी हुई स्वर्ण-प्रस्तरयुक्त भूमिके समान शोभा पा रही थी ॥ ३४ ॥

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥

बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई भुजाएँ और कटे हुए मस्तक इस प्रकार गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो वृक्षोंसे पक्षी गिर रहे हों ॥ ३५ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥

सहस्रों बाणोंसे बिंधकर खूनकी धारा बहाते हुए हाथी वर्षाकालमें गेरुमिश्रित जलके झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३६ ॥

निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर दूसरे-दूसरे म्लेच्छ-सैनिक हाथीकी पीठपर ही लेट गये थे। उनकी नाना प्रकारकी आकृति बड़ी विकृत दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥

नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके वेश धारण करनेवाले तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न योद्धा अर्जुनके विचित्र बाणोंसे मारे जाकर अद्भुत शोभा पा रहे थे। उनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ ३८ ॥

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥

सवारों और अनुचरोंसहित सहस्रों हाथी अर्जुनके बाणोंसे आहत हो मुँहसे रक्त वमन करते थे। उनके सम्पूर्ण अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे थे ॥ ३९ ॥

चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपास्तीक्ष्णविषोपमाः ।

बहुत-से हाथी चिग्घाड़ रहे थे, बहुतेरे धराशायी हो गये थे, दूसरे कितने ही हाथी सम्पूर्ण दिशाओंमें चक्कर काट रहे थे और बहुत-से गज अत्यन्त भयभीत हो भागते हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको कुचल रहे थे। तीक्ष्ण विषवाले सर्पोंके समान भयंकर वे सभी हाथी गुप्तास्त्रधारी सैनिकोंसे युक्त थे ॥

विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाह्लिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥

जो आसुरी मायाको जानते हैं, जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है तथा जो भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं एवं जो कौओंके समान काले, दुराचारी, स्त्रीलम्पट और कलहप्रिय होते हैं वे यवन, पारद, शक और बाह्लीक भी वहाँ युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ ४१-४२ ॥

द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥

मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी द्राविड तथा नन्दिनी गायसे उत्पन्न हुए कालके समान प्रहारकुशल म्लेच्छ भी वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ४३ ॥

दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्रात्याः शतसहस्रशः॥ ४४ ॥

दार्वातिसार, दरद और पुण्ड्र आदि हजारों लाखों संस्कार-शून्य म्लेच्छ वहाँ उपस्थित थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी ॥ ४४ ॥

अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥

नाना प्रकारके युद्धोंमें कुशल वे सभी म्लेच्छगण पाण्डुपुत्र अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करने लगे ॥ ४५ ॥

तेषामपि ससर्जाशु शरवृष्टिं धनंजयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः ॥ ४६ ॥

तब अर्जुनने उनके ऊपर भी तुरंत बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ की । उनकी वह बाण-वृष्टि टिड्डी-दलोंकी सृष्टि-सी प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनंजयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥ ४७ ॥
म्लेच्छानशातयत् सर्वान् समेतानस्त्रतेजसा ।

बाणोंद्वारा उस विशाल सेनापर बादलोंकी छाया-सी करके अर्जुनने अपने अस्त्रके तेजसे मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटाधारी, अपवित्र तथा दाढ़ीभरे मुखवाले उन समस्त म्लेच्छोंका, जो वहाँ एकत्र थे, संहार कर डाला ॥ ४७½ ॥

शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८॥

उस समय पर्वतोंपर विचरने और पर्वतीय कन्दराओंमें निवास करनेवाले सैकड़ों म्लेच्छ-संघ अर्जुनके बाणोंसे विद्ध एवं भयभीत हो रणभूमिसे भागने लगे ॥ ४८ ॥

गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
बलाः कंका वृका भूमावपिबन् रुधिरं मुदा ॥ ४९॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरे हुए उन हाथीसवार और घुड़सवार म्लेच्छोंका रक्त कौए, बगले और भेड़िये बड़ी प्रसन्नताके साथ पी रहे थे ॥ ४९ ॥

पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ।
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥
छिन्नाङ्गुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसंनिभाम् ।
प्राकरोद् गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।

उस समय अर्जुनने वहाँ रक्तकी एक भयंकर नदी बहा दी, जो प्रलयकालकी नदीके समान डरावनी प्रतीत होती थी । उसमें पैदल मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंको बिछाकर मानो पुल तैयार किया गया था, बाणोंकी वर्षा ही नौकाके समान जान पड़ती थी । केश सेवार और घासके समान जान पड़ते थे । उस भयंकर नदीसे रक्त-प्रवाहकी ही तरङ्गें उठ रही थीं । कटी हुई अँगुलियाँ छोटी-छोटी मछलियोंके समान जान पड़ती थीं । हाथी, घोड़े और रथोंकी सवारी करनेवाले राजकुमारोंके शरीरोंसे बहनेवाले रक्तसे लबालब भरी हुई उस नदीको अर्जुनने स्वयं प्रकट किया था । उसमें हाथियोंकी लाशें व्याप्त हो रही थीं ॥ ५०-५१½ ॥

यथास्थलं च निम्नं च न स्याद् वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥
तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।

जैसे इन्द्रके वर्षा करते समय ऊँचे-नीचे स्थलका भान नहीं होता है, उसी प्रकार वहाँकी सारी पृथ्वी रक्तकी धारामें डूबकर समतल-सी जान पड़ती थी ॥ ५२½ ॥

षट्सहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्दशशतान् वरान् ॥५३॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

क्षत्रियशिरोमणि अर्जुनने वहाँ छः हजार घुड़सवारों तथा एक हजार श्रेष्ठ शूरवीर क्षत्रियोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ५३½ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥ ५४ ॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।

विधिपूर्वक सुसजित किये गये हाथी सहस्रों बाणोंसे बिंधकर वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे॥

सवाजिरथमातङ्गान् निघ्नन् व्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन् नलवनं यथा ।

जैसे मदकी धारा बहानेवाला मतवाला हाथी नरकुलके जंगलोंको रौंदता चलता है, उसी प्रकार अर्जुन घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे ॥ ५५½ ॥

भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥
शरार्चिरदहत् क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनंजयः ।

जैसे वायुप्रेरित अग्नि सूखे ईंधन, तृण और लताओंसे युक्त तथा बहुसंख्यक वृक्षों और लतागुल्मोंसे भरे हुए जंगलको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णरूपी वायुसे प्रेरित हो बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुनरूपी अग्निने कुपित होकर आपकी सेनारूप वनको दग्ध कर दिया ॥ ५६–५७½ ॥

शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान् मानवैः संस्तरन् महीम् ॥ ५८
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनंजयः ।

रथकी बैठकोंको सूनी करके धरतीपर मनुष्योंकी लाशोंका बिछौना करते हुए चापधारी धनंजय उस युद्धके मैदानमें नृत्य-सा कर रहे थे ॥ ५८½ ॥

वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनंजयः ।
तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥

क्रोधमें भरे हुए धनंजयने वज्रोपम बाणोंद्वारा पृथ्वीको रक्तसे आप्लावित करते हुए कौरवी सेनामें प्रवेश किया । उस समय सेनाके भीतर जाते हुए अर्जुनको श्रुतायु तथा अम्बष्ठने रोका ॥ ५९-६० ॥

तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥

मान्यवर ! तब अर्जुनने कंककी पाँखोंवाले तीखे बाणोंद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले अम्बष्ठके घोड़ोंको शीघ्र ही मार गिराया ॥ ६१ ॥

धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।

फिर दूसरे बाणोंसे उसके धनुषको भी काटकर पार्थने विशेष बल-विक्रमका परिचय दिया । तब अम्बष्ठकी आँखें क्रोधसे व्याप्त हो गयीं । उसने गदा लेकर रणक्षेत्रमें महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ६२½ ॥

ततः सम्प्रहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।

भारत ! तदनन्तर वीर अम्बष्ठने प्रहार करनेके लिये उद्यत हो गदा उठाये आगे बढ़कर अर्जुनके रथको रोक दिया और भगवान् श्रीकृष्णपर गदासे आघात किया ।६३½।

गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।

भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको गदासे आहत हुआ देख अम्बष्ठके प्रति अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ६४½ ॥

ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।

फिर तो जैसे बादल उदित हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समराङ्गणमें सोनेके पंखवाले बाणोंद्वारा गदासहित रथियोंमें श्रेष्ठ अम्बष्ठको आच्छादित कर दिया ॥

अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥
अचूर्णयत् तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तत्पश्चात् दूसरे बहुत-से बाण मारकर अर्जुनने महामना अम्बष्ठकी उस गदाको उसी समय चूर-चूर कर दिया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ६६½ ॥

अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।

उस गदाको गिरी हुई देख अम्बष्ठने दूसरी विशाल गदा ले ली और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर बारंबार प्रहार किया॥

तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा ।

तब अर्जुनने उसकी गदासहित, इन्द्रध्वजके समान उठी हुई दोनों भुजाओंको दो क्षुरप्रोंसे काट डाला और पंखयुक्त दूसरे बाणसे उसके मस्तकको भी काट गिराया ॥६८½॥

स पपात हतो राजन् वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ।

राजन् ! यन्त्रद्वारा बन्धनमुक्त होकर गिरे हुए इन्द्रध्वजके समान वह मरकर पृथ्वीपर धमाकेकी आवाज करता हुआ गिर पड़ा ॥ ६९½ ॥

रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः ॥ ७० ॥

उस समय रथियोंकी सेनामें घुसकर सैकड़ों हाथियों और घोड़ोंसे घिरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुन बादलोंमें छिपे हुए सूर्यके समान दिखायी देते थे ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अम्बष्ठवधविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर द्रोणाचार्यका उसके शरीरमें दिव्य कवच बाँधकर उसीको अर्जुनके साथ युद्धके लिये भेजना

संजय उवाच

ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिंधुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन् सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर जब कुन्तीकुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्माका दुस्तर सेना-व्यूह भेदन करके आपकी सेनामें प्रविष्ट हो गये और सव्यसाची अर्जुनके हाथसे

जब काम्बोजराजकुमार सुदक्षिण तथा पराक्रमी श्रुतायुध मार दिये गये तथा जब सारी सेनाएँ नष्ट-भ्रष्ट होकर चारों ओर भाग खड़ी हुईं, उस समय अपनी सम्पूर्ण सेनामें भगदड़ मची देख आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथके द्वारा द्रोणाचार्यके पास गया और उनसे मिलकर इस प्रकार बोला—॥ १—३½ ॥

गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥

'गुरुदेव ! पुरुषसिंह अर्जुन हमारी इस विशाल सेनाको मथकर व्यूहके भीतर चला गया । अब आप अपनी बुद्धिसे यह विचार कीजिये कि इसके बाद अर्जुनके विनाशके लिये क्या करना चाहिये ? इस भयंकर नरसंहारमें जिस प्रकार भी पुरुषसिंह जयद्रथ न मारे जायँ, वैसा उपाय कीजिये । आपका कल्याण हो । हमारा सबसे बड़ा सहारा आप ही हैं ॥ ४—६ ॥

असौ धनंजयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥

'जैसे सहसा उठा हुआ दावानल सूखे घास-फूँस अथवा जंगलको जलाकर भस्म कर देता है, उसी प्रकार यह धनंजय-रूपी अग्नि कोपरूपी प्रचण्ड वायुसे प्रेरित हो मेरे सैन्यरूपी सूखे वनको दग्ध किये देती है ॥ ७ ॥

अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परंतप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जबसे कुन्तीकुमार अर्जुन आपकी सेनाका व्यूह भेदकर आपको भी लाँघकर आगे चले गये हैं, तबसे जयद्रथकी रक्षा करनेवाले योद्धा महान् संशयमें पड़ गये हैं ॥ ८ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविदां वर ।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन् धनंजयः ॥ ९ ॥

'ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! हमारे पक्षके नरेशोंको यह दृढ़ विश्वास था कि अर्जुन द्रोणाचार्यके जीते-जी उन्हें लाँघ-कर सेनाके भीतर नहीं घुस सकेगा ॥ ९ ॥

योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥

'परंतु महातेजस्वी वीर ! आपके देखते-देखते वह कुन्ती-कुमार अर्जुन आपको लाँघकर जो व्यूहमें घुस गया है, इससे मैं अपनी इस सारी सेनाको व्याकुल और विनष्ट हुई-सी मानता हूँ । अब मेरी इस सेनाका अस्तित्व नहीं रहेगा ॥ १० ॥

जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

'ब्रह्मन् ! महाभाग ! मैं यह जानता हूँ कि आप पाण्डवों-के हितमें तत्पर रहनेवाले हैं; इसीलिये अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके मोहित हो रहा हूँ ॥ ११ ॥

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥

'विप्रवर ! मैं यथाशक्ति आपके लिये उत्तम जीविका-वृत्तिकी व्यवस्था करता रहता हूँ और अपनी शक्तिभर आपको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता रहता हूँ; परंतु इन सब बातोंको आप याद नहीं रखते हैं ॥ १२ ॥

अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

'अमितपराक्रमी आचार्य ! हम आपके चरणोंमें सदा भक्ति रखते हैं तो भी आप हमें नहीं चाहते हैं और जो सदा हमलोगोंका अप्रिय करनेमें तत्पर रहते हैं, उन पाण्डवोंको आप निरन्तर प्रसन्न रखते हैं ॥ १३ ॥

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्ययं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥

'हमसे ही आपकी जीविका चलती है तो भी आप हमारा ही अप्रिय करनेमें संलग्न रहते हैं । मैं नहीं जानता था कि आप शहदमें डुबोये हुए छुरेके समान हैं ॥ १४ ॥

नादास्यच्चेद् वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे ।
नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥

'यदि आप मुझे अर्जुनको रोके रखनेका वर न देते तो मैं अपने घरको जाते हुए सिन्धुराज जयद्रथको कभी मना नहीं करता ॥ १५ ॥

मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद् दत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥

'मुझ मूर्खने आपसे संरक्षण पानेका भरोसा करके सिन्धुराज जयद्रथको समझा-बुझाकर यहीं रोक लिया और इस प्रकार मोहवश मैंने उन्हें मौतके हाथमें सौंप दिया ॥ १६ ॥

यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः ।
नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥

'मनुष्य यमराजकी दाढ़ोंमें पड़कर भले ही बच जाय, परंतु रणभूमिमें अर्जुनके वशमें पड़े हुए जयद्रथके प्राण नहीं बच सकते ॥ १७ ॥

स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः ।
मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

'लाल घोड़ोंवाले आचार्य ! आप कोई ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे सिन्धुराज जयद्रथ मृत्युसे छुटकारा पा सके । मैंने आर्त होनेके कारण जो प्रलाप किये हैं, उनके लिये क्रोध न कीजियेगा; जैसे भी हो, सिन्धुराजकी रक्षा कीजिये' ॥ १८ ॥

द्रोण उवाच

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नासि मे समः।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन् ! तुमने जो बात कही है, उसके लिये मैं बुरा नहीं मानता; क्योंकि तुम मेरे लिये अश्वत्थामाके समान हो । परंतु जो सच्ची बात है, वह तुम्हें बता रहा हूँ; उसे ध्यान देकर सुनो ॥ १९ ॥

सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनंजयः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सारथि हैं तथा उनके उत्तम घोड़े भी तेज चलनेवाले हैं । इसलिये थोड़ा-सा भी अवकाश बनाकर अर्जुन तत्काल सेनामें घुस जाते हैं ॥ २० ॥

किं न पश्यसि बाणौघान् क्रोशमात्रे किरीटिनः।
पश्चाद् रथस्य पतितान् क्षिप्ताञ्शीघ्रं हि गच्छतः॥२१॥

क्या तुम देखते नहीं हो कि मेरे चलाये हुए बाणसमूह शीघ्रगामी अर्जुनके रथके एक कोस पीछे पड़े हैं ॥ २१ ॥

न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसान्वितः।
सेनामुखे च पार्थानामेतद् बलमुपस्थितम् ॥ २२॥

मैं बूढ़ा हो गया । अतः अब मैं शीघ्रतापूर्वक रथ चलानेमें असमर्थ हूँ । इधर मेरी सेनाके सामने यह कुन्तीकुमारोंकी भारी सेना उपस्थित है ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम्।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३॥

महाबाहो ! मैंने क्षत्रियोंके बीचमें यह प्रतिज्ञा की है कि समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते युधिष्ठिरको कैद कर लूँगा ।२३।

धनंजयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृप।
तस्माद् व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनम्॥२४॥

नरेश्वर ! इस समय युधिष्ठिर अर्जुनसे रहित होकर मेरे सामने खड़े हैं । ऐसी अवस्थामें मैं व्यूहका द्वार छोड़कर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥ २४ ॥

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान्।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५॥

तुम्हारे शत्रु अर्जुन भी तो तुम्हारे-जैसे ही कुल और पराक्रमसे युक्त हैं । इस समय वे अकेले हैं और तुम सहायकोंसे सम्पन्न हो । (वे राज्यसे च्युत हो गये हैं और तुम) इस सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हो । अतः डरो मत । जाकर अर्जुनसे युद्ध करो ॥ २५ ॥

राजा शूरः कृती दक्षो वैरमुत्पाद्य पाण्डवैः।
वीर स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनंजयः ॥ २६ ॥

तुम राजा, शूरवीर, विद्वान् और युद्धकुशल हो। वीर ! तुमने ही पाण्डवोंके साथ वैर बाँधा है । अतः जहाँ कुन्तीकुमार अर्जुन गये हैं, वहाँ उनसे युद्ध करनेके लिये स्वयं ही शीघ्रतापूर्वक जाओ ॥ २६ ॥

दुर्योधन उवाच

कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
धनंजयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य ! आप सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं । जो आपको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, वह अर्जुन मेरेद्वारा कैसे रोका जा सकता है ? ॥ २७ ॥

अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः।
नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरंजयः ॥ २८ ॥

युद्धमें वज्रधारी इन्द्रको भी जीता जा सकता है; परंतु समराङ्गणमें शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुनको जीतना असम्भव है ॥ २८ ॥

येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः।
अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥ २९ ॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चायुतशो हताः ॥ ३० ॥
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम्।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

जिसने भोजवंशी कृतवर्मा तथा देवताओंके समान तेजस्वी आपको भी अपने अस्त्रके प्रतापसे पराजित कर दिया, श्रुतायुका संहार कर डाला, काम्बोजराज सुदक्षिण तथा राजा श्रुतायुधको भी मार डाला, श्रुतायु, अच्युतायु तथा सहस्रों म्लेच्छ सैनिकोंके भी प्राण ले लिये, युद्धमें अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करनेवाले और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता उस दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा ?॥

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य संयुगे।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद् रक्ष मद्यशः ॥ ३२ ॥

यदि आज युद्धस्थलमें आप अर्जुनके साथ मेरा युद्ध करना उचित मानते हैं तो मैं एक सेवककी भाँति आपकी आज्ञाके अधीन हूँ । आप मेरे यशकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच

सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनंजयः।
अहं तु तत् करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—कुरुनन्दन ! तुम ठीक कहते हो । अर्जुन अवश्य दुर्जय वीर हैं । परंतु मैं एक ऐसा उपाय कर दूँगा, जिससे तुम उनका वेग सह सकोगे ॥३३॥

अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

आज संसारके सम्पूर्ण धनुर्धर भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही कुन्तीकुमार अर्जुनको तुम्हारे साथ युद्धमें उलझे रहनेकी अद्भुत घटना देखें ॥ ३४ ॥

एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५॥

राजन् ! मैं यह सुवर्णमय कवच तुम्हारे शरीरमें इस प्रकार बाँध देता हूँ, जिससे युद्धस्थलमें छूटनेवाले बाण और अन्य अस्त्र तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकेंगे ॥ ३५ ॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयम्॥३६॥

यदि मनुष्योंसहित देवता, असुर, यक्ष, नाग, राक्षस तथा तीनों लोकके प्राणी तुमसे युद्ध करते हों तो भी आज तुम्हें कोई भय नहीं होगा ॥ ३६ ॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद् रणे ।
शरानर्पयितुं कश्चित् कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७॥

इस कवचके रहते हुए श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे कोई शस्त्रधारी योद्धा भी तुम्हें बाणोंद्वारा चोट पहुँचानेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वासौ विसहिष्यति ॥ ३८॥

अतः तुम यह कवच धारण करके शीघ्रतापूर्वक रणक्षेत्र-में कुपित हुए अर्जुनका सामना करनेके लिये स्वयं ही जाओ । वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा त्वरन् द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम्।
आबबन्धाद्भुततमं जपन् मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९॥
रणे तस्मिन् सुमहति विजयाय सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकान् विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४०॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी विद्याके प्रभावसे सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेकी इच्छा रखते हुए तुरंत आचमन करके उस महायुद्धमें आपके पुत्र दुर्योधनकी विजयके लिये उसके शरीरमें विधिपूर्वक मन्त्रजपके साथ-साथ वह अत्यन्त तेजस्वी अद्भुत कवच बाँध दिया ॥ ३९-४० ॥

द्रोण उवाच

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः ।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१॥

द्रोणाचार्य बोले—भरतनन्दन ! परब्रह्म परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें । ब्रह्माजी तथा ब्राह्मण तुम्हारा मङ्गल करें । जो श्रेष्ठ सर्प हैं, उनसे भी तुम्हारा कल्याण हो ॥४१॥

ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२॥

नहुषपुत्र ययाति, धुन्धुमार और भगीरथ आदि सभी राजर्षि सदा तुम्हारी भलाई करें ॥ ४२ ॥

स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥

इस महायुद्धमें एक पैरवाले, अनेक पैरवाले तथा पैरोंसे रहित प्राणियोंसे तुम्हारा नित्य मङ्गल हो ॥ ४३ ॥

स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥

निष्पाप नरेश ! स्वाहा, स्वधा और शची आदि देवियाँ तुम्हारा सदा कल्याण करें । लक्ष्मी और अरुन्धती भी तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ४४ ॥

असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥

नरेश्वर ! असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ तथा कश्यप तुम्हारा भला करें ॥ ४५ ॥

धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥४६ ॥

धाता, विधाता, लोकनाथ ब्रह्मा, दिशाएँ, दिक्पाल तथा षडानन कार्तिकेय भी आज तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥४६॥

विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥

भगवान् सूर्य सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल करें । चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश और ग्रह तुम्हारा भला करें ॥४७॥

अधस्ताद् धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥

राजन् ! जो सदा इस पृथ्वीके नीचे रहकर इसे अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे पन्नगश्रेष्ठ भगवान् शेषनाग तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥ ४८ ॥

गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥

गान्धारीनन्दन ! प्राचीन कालकी बात है, वृत्रासुरने युद्धमें पराक्रमपूर्वक सहस्रों श्रेष्ठ देवताओंके शरीरको विदीर्ण करके उन्हें परास्त कर दिया था ॥ ४९ ॥

हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद् भीता महासुरात् ॥ ५० ॥

उस समय तेज और बलसे हीन हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महान् असुर वृत्रसे भयभीत हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥

देवा ऊचुः

प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥

देवता बोले—देवप्रवर ! सुरश्रेष्ठ ! वृत्रासुरने जिन्हें सब प्रकारसे कुचल दिया है, उन देवताओंके लिये आप आश्रयदाता हों । महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥ ५१ ॥

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान्।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान् सुरसत्तमान्॥५२॥

तब अपने पास खड़े हुए भगवान् विष्णु तथा विषादमें भरे हुए इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंसे ब्रह्माजीने यह यथार्थ बात कही—॥ ५२ ॥

रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः॥ ५३॥

'देवताओ! इन्द्र आदि देवता और ब्राह्मण सदा ही मेरे रक्षणीय हैं। परंतु वृत्रासुरका जिससे निर्माण हुआ है, वह त्वष्टा प्रजापतिका अत्यन्त दुर्धर्ष तेज है॥ ५३ ॥

त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात्॥ ५४॥

'देवगण! प्राचीन कालमें त्वष्टा प्रजापतिने दस लाख वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शङ्करसे वरदान पाकर वृत्रासुरको उत्पन्न किया था॥ ५४ ॥

स तस्यैव प्रसादाद् वो हन्यादेव रिपुर्बली।
नागत्वा शंकरस्थानं भगवान् दृश्यते हरः॥ ५५॥

'वह बलवान् शत्रु भगवान् शङ्करके ही प्रसादसे निश्चय ही तुम सब लोगोंको मार सकता है। अतः भगवान् शङ्करके निवासस्थानपर गये बिना उनका दर्शन नहीं हो सकता॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम्।
यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः॥ ५६॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः।

'उनका दर्शन पाकर तुमलोग वृत्रासुरको जीत सकोगे। अतः शीघ्र ही मन्दराचलको चलो, जहाँ तपस्याके उत्पत्ति-स्थान, दक्षयज्ञविनाशक तथा भगदेवताके नेत्रोंका नाश करनेवाले सर्वभूतेश्वर पिनाकधारी भगवान् शिव विराजमान हैं'॥ ५६½ ॥

ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम्॥ ५७॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम्।

'तब एकत्र हुए उन सब देवताओंने ब्रह्माजीके साथ मन्दराचलपर जाकर करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् तेजोराशि भगवान् शिवका दर्शन किया॥ ५७½ ॥

सोऽब्रवीत् स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम्॥५८॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः।

उस समय भगवान् शिवने कहा—'देवताओ! तुम्हारा स्वागत है। बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ? मेरा दर्शन अमोघ है। अतः तुम्हें अपने अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति हो'॥ ५८½ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः॥ ५९॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम्।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर॥ ६०॥

उनके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता इस प्रकार बोले—'देव! वृत्रासुरने हमारा तेज हर लिया है। आप देवताओंके आश्रयदाता हों। महेश्वर! आप हमारे शरीरोंकी दशा देखिये। हम वृत्रासुरके प्रहारोंसे जर्जर हो गये हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें आश्रय दीजिये'॥५९-६०॥

शर्व उवाच

विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याकृतात्मभिः॥ ६१॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ! तुम्हें विदित हो कि यह प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न हुई अत्यन्त प्रबल एवं भयंकर कृत्या है। जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये इस कृत्याका निवारण करना अत्यन्त कठिन है॥ ६१ ॥

अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम्।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम्॥ ६२॥

तथापि मुझे सम्पूर्ण देवताओंकी सहायता अवश्य करनी चाहिये। अतः इन्द्र! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए इस तेजस्वी कवचको ग्रहण करो॥ ६२ ॥

बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर।
वधायासुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः॥ ६३॥

सुरेश्वर! मेरे बताये हुए इस मन्त्रका मानसिक जप करके असुरमुख्य देवशत्रु वृत्रका वध करनेके लिये इसे अपने शरीरमें बाँध लो॥ ६३ ॥

द्रोण उवाच

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद् वर्म तन्मन्त्रमेव च।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद् वृत्रचमूं प्रति॥ ६४॥

द्रोणाचार्य कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर वरदायक भगवान् शङ्करने वह कवच और उसका मन्त्र उन्हें दे दिया। उस कवचसे सुरक्षित हो इन्द्र वृत्रासुरकी सेनाका सामना करनेके लिये गये॥ ६४ ॥

नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे।
न संधिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु॥ ६५॥

उस महान् युद्धमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके समुदाय उनके ऊपर चलाये गये; परंतु उनके द्वारा इन्द्रके उस कवच-बन्धनकी सन्धि भी नहीं काटी जा सकी॥ ६५ ॥

ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम्।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ॥ ६६॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रने स्वयं ही समराङ्गणमें वृत्रासुरको मार डाला। इसके बाद उन्होंने वह कवच तथा उसे

बाँधनेकी मन्त्रयुक्त विधि अङ्गिराको दे दी ॥ ६६ ॥

अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः।
बृहस्पतिरथोवाच आग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥

अङ्गिराने अपने मन्त्रज्ञ पुत्र बृहस्पतिको उसका उपदेश दिया और बृहस्पतिने परम बुद्धिमान् आग्निवेश्यको यह विद्या प्रदान की ॥ ६७ ॥

आग्निवेश्यो मम प्रादात् तेन बध्नामि वर्म ते।
तवाद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥

आग्निवेश्यने मुझे उसका उपदेश किया था। नृपश्रेष्ठ ! उसी मन्त्रसे आज तुम्हारे शरीरकी रक्षाके लिये मैं यह कवच बाँध रहा हूँ ॥ ६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम्।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! वहाँ आपके महातेजस्वी पुत्रसे यह प्रसंग सुनाकर आचार्यशिरोमणि द्रोणने पुनः धीरेसे यह बात कही—॥ ६९ ॥

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥

'भारत ! जैसे पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें भगवान् ब्रह्माने श्रीविष्णुके शरीरमें कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी ब्रह्मसूत्रसे तुम्हारे इस कवचको बाँधता हूँ ॥ ७० ॥

यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥

'तारकामय संग्राममें ब्रह्माजीने इन्द्रके शरीरमें जिस प्रकार दिव्य कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे शरीरमें बाँध रहा हूँ' ॥ ७१ ॥

बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम्।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार मन्त्रके द्वारा राजा दुर्योधनके शरीरमें विधिपूर्वक कवच बाँधकर विप्रवर द्रोणाचार्यने उसे महान् युद्धके लिये भेजा ॥ ७२ ॥

स संनद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम्।
अश्वानां नियुतेनैव तथान्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥

महामना आचार्यके द्वारा अपने शरीरमें कवच बँध जानेपर महाबाहु दुर्योधन प्रहार करनेमें कुशल एक सहस्र त्रिगर्तदेशीय रथियों, एक सहस्र पराक्रमशाली मतवाले हाथीसवारों एक लाख घुड़सवारों तथा अन्य महारथियोंसे घिरकर नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिके साथ अर्जुनके रथकी ओर चला। ठीक उसी तरह, जैसे राजा बलि (इन्द्रके साथ युद्धके लिये) यात्रा करते हैं ॥ ७३–७५ ॥

ततः शब्दो महानासीत् सैन्यानां तव भारत।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

भारत ! उस समय अगाध समुद्रके समान कुरुनन्दन दुर्योधनको युद्धके लिये प्रस्थान करते देख आपकी सेनामें बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका कवच-बन्धनविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

द्रोण और धृष्टद्युम्नका भीषण संग्राम तथा उभय पक्षके प्रमुख वीरोंका परस्पर संकुल युद्ध

संजय उवाच

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥
जवेनाभ्यद्रवन् द्रोणं महता निःस्वनेन च।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस रणक्षेत्रमें जब श्रीकृष्ण और अर्जुन पाण्डवसेनाके भीतर प्रवेश कर गये तथा पुरुषप्रवर दुर्योधन उनका पीछा करता हुआ आगे बढ़ गया, तब सोमकोंसहित पाण्डवोंने बड़ी भारी गर्जनाके साथ द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक धावा किया। फिर तो वहाँ बड़े जोरसे युद्ध होने लगा ॥ १–२ ॥

तद् युद्धमभवत् तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥

व्यूहके द्वारपर होनेवाला कौरवों तथा पाण्डवोंका वह अद्भुत युद्ध अत्यन्त तीव्र एवं भयंकर था। उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ ३ ॥

राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम्।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ ४ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! वहाँ मध्याह्नकालमें जैसा वह युद्ध हुआ था, वैसा न तो मैंने कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षीय सब प्रहारकुशल योद्धा

अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५ ॥

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥

उस समय हमलोग सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवसैनिकोंपर बाण-वर्षा कर रहे थे ॥ ६ ॥

महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥

रथोंसे विभूषित हुई वे दोनों प्रधान एवं सुन्दर सेनाएँ हेमन्तके अन्त (शिशिर) में उठे हुए वायुयुक्त दो महामेघोंके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ७ ॥

समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम्।
जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥

वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर विजयके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़नेका प्रयत्न करने लगीं; मानो वर्षा-ऋतुमें जलकी बाढ़ आनेसे बढ़ी हुई गङ्गा और यमुना दोनों नदियाँ बड़े वेगसे मिल रही हों ॥ ८ ॥

नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान्।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥

उस समय महान् सैन्यदलसे संयुक्त एवं हाथी, घोड़े और रथोंसे भरा हुआ वह संग्राम महान् मेघके समान जान पड़ता था। नाना प्रकारके शस्त्र पूर्ववात (पुरवैया) के तुल्य चल रहे थे। गदाएँ विद्युत्के समान प्रकाशित होती थीं। देखनेमें वह संग्राम-मेघ बड़ा भयंकर जान पड़ता था। द्रोणाचार्य वायुके समान उसे संचालित कर रहे थे तथा उससे बाणरूपी जलकी सहस्रों धाराएँ गिर रही थीं और इस प्रकार वह अग्निके समान उठी हुई पाण्डव-सेनापर सब ओरसे वर्षा कर रहा था ॥ ९-१० ॥

समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुके अन्तमें बड़े जोरसे उठी हुई भयंकर वायु महासागरमें क्षोभ उत्पन्न करके वहाँ ज्वारका दृश्य उपस्थित कर देती है, उसी प्रकार विप्रवर द्रोणाचार्यने पाण्डवसेनामें हलचल मचा दी ॥ ११ ॥

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन्।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥

पाण्डव-योद्धाओंने भी सारी शक्ति लगाकर द्रोणपर ही धावा किया था; मानो पानीके प्रखर प्रवाह किसी महान् पुलको तोड़ डालना चाहते हों ॥ १२ ॥

वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा।
पाण्डवान् समरे क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥

जैसे सामने खड़ा हुआ पर्वत आती हुई जलराशिको रोक देता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें द्रोणाचार्यने कुपित हुए पाण्डवों, पाञ्चालों तथा केकयोंको रोक दिया था ॥ १३ ॥

अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दूसरे महाबली शूरवीर नरेश भी उस युद्धस्थलमें सब ओरसे लौटकर पाञ्चालोंका ही प्रतिरोध करने लगे ॥ १४ ॥

ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह।
संजघानासकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें पाण्डवोंसहित नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्नने शत्रुसेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यपर बारंबार प्रहार किया ॥ १५ ॥

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥

आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्नपर जैसे बाणोंकी वर्षा करते थे, धृष्टद्युम्न भी द्रोणपर वैसे ही बाण बरसाते थे ॥

सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो दिशम्।
निघ्नन् रथवराश्वौघान् प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥

उस समय धृष्टद्युम्न एक महामेघके समान जान पड़ते थे। उनकी तलवार पुरवैया हवाके समान चल रही थी। वे शक्ति, प्रास एवं ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। उनकी प्रत्यञ्चा विद्युत्के समान प्रकाशित होती थी। धनुषकी टंकार मेघगर्जनाके समान जान पड़ती थी। उस धृष्टद्युम्नरूपी मेघने श्रेष्ठ रथी और घुड़सवारोंके समूहरूपी खेतीको नष्ट करनेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणरूपी जलकी धारा और अस्त्र-शस्त्ररूपी पत्थर बरसाते हुए शत्रु-सेनाको आप्लावित कर दिया ॥ १७-१८ ॥

यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी जिस जिस रथसेनापर आक्रमण करते थे, धृष्टद्युम्न तत्काल बाणोंकी वर्षा करके उस-उस ओरसे उन्हें लौटा देते थे ॥ १९ ॥

तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥

भारत ! युद्धमें इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए द्रोणाचार्यकी सेना धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर तीन भागोंमें बँट गयी ॥ २० ॥

भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसंधं तथापरे ।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः ॥ २१ ॥

पाण्डव-योद्धाओंकी मार खाकर कुछ सैनिक कृतवर्माके पास चले गये, दूसरे जलसंधके पास भाग गये और शेष सभी योद्धा द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करने लगे ॥ २१ ॥

संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण बारंबार अपनी सेनाओंको संगठित करते और महारथी धृष्टद्युम्न उनकी सब सेनाओंको छिन्न-भिन्न कर देते थे ॥ २२ ॥

धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥

जैसे वनमें बिना रक्षकके पशुओंको बहुत-से हिंसक जन्तु मार डालते हैं, उसी प्रकार पाण्डव और सृंजय आपके सैनिकोंका वध कर रहे थे ॥ २३ ॥

कालः स ग्रसते योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहितान्।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥ २४ ॥

उस भयंकर संग्राममें सब लोग ऐसा मानने लगे कि काल ही धृष्टद्युम्नके द्वारा कौरवयोद्धाओंको मोहित करके उन्हें अपना ग्रास बना रहा है ॥ २४ ॥

कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥

जैसे दुष्ट राजाका राज्य दुर्भिक्ष, भाँति-भाँतिकी बीमारी और चोर-डाकुओंके उपद्रवके कारण उजाड़ हो जाता है, उसी प्रकार पाण्डव सैनिकोंद्वारा विपत्तिमें पड़ी हुई आपकी सेना इधर-उधर खदेड़ी जा रही थी ॥ २५ ॥

अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥

योद्धाओंके अस्त्र-शस्त्रों और कवचोंपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे वहाँ आँखें चौंधिया जाती थीं और सेनासे इतनी धूल उठती थी कि उससे सबके नेत्र बंद हो जाते थे ॥

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्यधमच्छरैः॥ २७ ॥

जब पाण्डवोंके द्वारा मारी जाती हुई कौरवसेना तीन भागोंमें बँट गयी, तब द्रोणाचार्यने अत्यन्त कुपित होकर अपने बाणोंद्वारा पाञ्चालोंका विनाश आरम्भ किया ॥ २७ ॥

मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८॥

पाञ्चालोंकी उन सेनाओंको रौंदते और बाणोंद्वारा उनका संहार करते हुए द्रोणाचार्यका स्वरूप प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! महारथी द्रोणने उस युद्धस्थलमें शत्रुसेनाके प्रत्येक रथ, हाथी, अश्व और पैदल सैनिकको एक-एक बाणसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

पाण्डवानां तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत ।
दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो ॥ ३० ॥

भारत ! प्रभो ! उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं था, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको धैर्यपूर्वक सह सका हो ॥ ३० ॥

तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥

भरतनन्दन ! सूर्यके द्वारा अपनी किरणोंसे पकायी जाती हुई-सी धृष्टद्युम्नकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे संतप्त हो जहाँ-तहाँ चक्कर काटने लगी ॥ ३१ ॥

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार धृष्टद्युम्नके द्वारा खदेड़ी जाती हुई आपकी सेना भी सब ओरसे आग लग जानेके कारण प्रज्वलित हुए सूखे वनकी भाँति दग्ध हो रही थी ॥ ३२ ॥

बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥ ३३॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके बाणोंद्वारा सेनाओंके पीड़ित होनेपर भी सब लोग प्राणोंका मोह छोड़कर पूरी शक्तिसे सब ओर युद्ध कर रहे थे ॥ ३३ ॥

तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नासीत् कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत् संयुगं भयात्॥३४॥

भरतभूषण ! महाराज ! वहाँ युद्ध करते हुए आपके और शत्रुओंके योद्धाओंमें कोई ऐसा नहीं था, जिसने भयके कारण युद्धका मैदान छोड़ दिया हो ॥ ३४ ॥

भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥

उस समय विविंशति, चित्रसेन तथा महारथी विकर्ण—इन तीनों भाइयोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनको घेर लिया ॥ ३५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा पराक्रमी क्षेमधूर्ति—ये तीनों ही आपके पूर्वोक्त तीनों पुत्रोंके अनुयायी थे ॥ ३६ ॥

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए तेजस्वी महारथी बाह्लीकराजने सेना और मन्त्रियोंसहित जाकर द्रौपदीपुत्रोंको रोका ॥ ३७ ॥

शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥

शिबिदेशीय राजा गोवासनने कम-से-कम एक सहस्र योद्धा साथ लेकर काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रका सामना किया ॥ ३८ ॥

अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अजातशत्रु कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरका सामना मद्रदेशके स्वामी राजा शल्यने किया॥

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः।
सात्यकिं प्रत्ययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥

अमर्षशील शूरवीर दुःशासनने अपनी भागती हुई सेनाको पुनः स्थिरतापूर्वक स्थापित करके कुपित हो युद्धस्थलमें रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

स्वकेनाहमनीकेन संनद्धः कवचावृतः।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥

अपनी सेना तथा चार सौ महाधनुर्धरोंके साथ कवच धारण करके सुसज्जित हो मैंने चेकितानको रोका ॥ ४१ ॥

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत्।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥

सेनासहित शकुनिने माद्रीपुत्र नकुलका प्रतिरोध किया। उसके साथ हाथोंमें धनुष, शक्ति और तलवार लिये सात सौ गान्धार-देशीय योद्धा मौजूद थे ॥ ४२ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने मत्स्यनरेश विराटपर आक्रमण किया। उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंने प्राणोंका मोह छोड़कर अपने मित्र दुर्योधनके लिये हथियार उठाया था ॥ ४३ ॥

शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम्।
बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥

किसीसे परास्त न होनेवाले पराक्रमी यज्ञसेन-कुमार शिखण्डीको, जो राह रोककर खड़ा था, बाह्लीकने पूर्ण प्रयत्नशील होकर रोका ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः।
आवन्त्यः सहसौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥

अवन्तीके एक-दूसरे वीरने क्रूर स्वभाववाले प्रभद्रकों और सौवीरदेशीय सैनिकोंके साथ आकर क्रोधमें भरे हुए पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको रोका ॥ ४५ ॥

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम्।
अलायुधोऽद्रवत् तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥

क्रोधमें भरकर युद्धके लिये आते हुए क्रूरकर्मा तथा शूरवीर राक्षस घटोत्कचपर अलायुधने शीघ्रतापूर्वक आक्रमण किया ॥

अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥

पाण्डवपक्षके महारथी राजा कुन्तिभोजने विशाल सेनाके साथ आकर कुपित हुए कौरवपक्षीय राक्षसराज अलम्बुषका सामना किया ॥ ४७ ॥

सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारत।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सिंधुराज जयद्रथ सारी सेनाके पीछे महाधनुर्धर कृपाचार्य आदि रथियोंसे सुरक्षित था ॥

तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन् सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥

राजन् ! जयद्रथके दो महान् चक्ररक्षक थे। उसके दाहिने चक्रकी अश्वत्थामा और बायें चक्रकी रक्षा सूतपुत्र कर्ण कर रहा था ॥ ४९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् सौमदत्तिपुरोगमाः।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥
नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

भूरिश्रवा आदि वीर उसके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे। कृप, वृषसेन, शल और दुर्जय वीर शल्य—ये सभी नीतिज्ञ, महान् धनुर्धर एवं युद्धकुशल थे और इस प्रकार सिंधुराजकी रक्षाका प्रबन्ध करके वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ५०-५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

दोनों पक्षोंके प्रधान वीरोंका द्वन्द्व-युद्ध

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ था, उस आश्चर्यमय संग्रामका मैं वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनिये ॥ १ ॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥

व्यूहके द्वारपर खड़े हुए द्रोणाचार्यके पास आकर पाण्डवगण उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद् रणे पार्थान् प्रार्थयानो महद् यशः ॥ ३ ॥

द्रोणाचार्य भी महान् यशकी अभिलाषा रखकर अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए बहुत-से सैनिकोंको साथ लेकर समराङ्गणमें कुन्तीपुत्रोंके साथ युद्धमें संलग्न हो गये ॥ ३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥

आपके पुत्रका हित चाहनेवाले अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने अत्यन्त कुपित हो राजा विराटको दस बाण मारे ॥ ४ ॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥

महाराज ! राजा विराटने भी समरभूमिमें अनुचरोंसहित खड़े हुए उन दोनों पराक्रमी वीरोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध किया ॥ ५ ॥

तेषां युद्धं समभवद् दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

जैसे वनमें सिंहका दो मदस्रावी महान् हाथियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार विराट और विन्द-अनुविन्दमें बड़ा भयंकर संग्राम होने लगा, जहाँ पानीकी तरह खून बहाया जा रहा था ॥ ६ ॥

बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

महाबली शिखण्डीने युद्धस्थलमें वेगशाली बाह्लीकको मर्मस्थानों और हड्डियोंको विदीर्ण कर देनेवाले भयंकर तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७ ॥

बाह्लीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥

इससे बाह्लीक अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने शानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त और झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ८ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥

उन दोनोंके उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसमें बाणों और शक्तियोंका ही अधिक प्रहार हो रहा था । वह भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय और शूरवीरोंके हृदयमें हर्षकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ९ ॥

ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १० ॥

उन दोनों भाइयोंके छोड़े हुए बाणोंसे वहाँ आकाश और दिशाएँ—सब कुछ व्याप्त हो गया । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ १० ॥

शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

शिबिदेशीय गोवासनने सेनासहित सामने जा काशिराजके महारथी पुत्रके साथ रणक्षेत्रमें उसी प्रकार युद्ध किया, जैसे एक हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी दूसरे हाथीके साथ युद्ध करता है ॥ ११ ॥

बाह्लीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान् महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे ॥ १२ ॥

क्रोधमें भरे हुए बाह्लीकराज महारथी द्रौपदीपुत्रोंके साथ रण-क्षेत्रमें युद्ध करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मन पाँचों इन्द्रियोंसे युद्ध करता हुआ सुशोभित होता है ॥ १२ ॥

अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद् देहवतां वर ॥ १३ ॥

देहधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज ! द्रौपदीके पुत्र भी चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ बाह्लीकराजके साथ उसी प्रकार बड़े वेगसे युद्ध करने लगे, जैसे इन्द्रियोंके विषय शरीरके साथ सदा जूझते रहते हैं ॥ १३ ॥

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥

आपके पुत्र दुःशासनने युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंद्वारा वृष्णिवंशी सात्यकिको घायल कर दिया ॥

सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ १५ ॥

बलवान् एवं महान् धनुर्धर दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त बिंध जानेके कारण सत्यपराक्रमी सात्यकिको तुरंत ही थोड़ी-सी मूर्छा आ गयी ॥ १५ ॥

समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥

थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर सात्यकिने आपके महारथी पुत्र दुःशासनको कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥

राजन् ! वे दोनों एक दूसरेके बाणोंसे पीड़ित और अत्यन्त घायल हो समराङ्गणमें दो खिले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥

अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥

राजा कुन्तिभोजके बाणोंसे पीड़ित हो अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ राक्षस अलम्बुष फूलोंसे लदे हुए पलाश वृक्षके समान एक विशेष शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगा ॥

कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः।
अनदद् भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९ ॥

फिर राक्षसने बहुत-से लोहेके बाणोंद्वारा राजा कुन्तिभोजको घायल करके आपकी सेनाके प्रमुख भागमें बड़ी भयंकर गर्जना की ॥ १९ ॥

ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम्।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २०॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सेनाएँ पूर्वकालमें एक दूसरेसे युद्ध करनेवाले इन्द्र और जम्भासुरके समान समराङ्गणमें परस्पर जूझते हुए उन दोनों शूरवीरोंको देखने लगीं ॥ २० ॥

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चार्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥

भारत ! क्रोधमें भरे हुए दोनों माद्रीकुमारोंने पहलेसे वैर बाँधनेवाले और युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले शकुनिको अपने बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित किया ॥ २१ ॥

तुमुलः स महान् राजन् प्रावर्तत जनक्षयः।
त्वया संजनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥

राजन् ! इस प्रकार वह महाभयंकर जनसंहार चालू हो गया, जिसकी परिस्थितिको आपने ही उत्पन्न किया है और कर्णने उसे अत्यन्त बढ़ावा दिया है ॥ २२ ॥

रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः।
य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥

महाराज ! आपके पुत्रोंने उस क्रोधमूलक वैरकी आगको सुरक्षित रक्खा है, जो इस सारी पृथ्वीको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत है ॥ २३ ॥

शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः।
न स्म जानाति कर्तव्यं युद्धे किंचित् पराक्रमम् ॥ २४ ॥

पाण्डुकुमार नकुल और सहदेवने अपने बाणोंद्वारा शकुनिको युद्धसे विमुख कर दिया। उस समय उसे युद्धविषयक कर्तव्यका ज्ञान न रहा और न कुछ पराक्रमका ही भान हुआ ॥ २४ ॥

विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥

उसे युद्धसे विमुख हुआ देखकर भी महारथी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव उसके ऊपर पुनः उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे दो मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ २५ ॥

स वध्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः।
सम्प्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥

झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंकी मार खाकर सुबलपुत्र शकुनि वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे द्रोणाचार्यकी सेनाके पास जा पहुँचा ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम्।
अभ्ययाद् रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

इधर घटोत्कचने अपने प्रतिद्वन्द्वी शूर राक्षस अलायुधका जो युद्धमें बड़ा वेगशाली था, मध्यम वेगका आश्रय ले सामना किया ॥ २७ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत्।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥

महाराज ! पूर्वकालमें श्रीराम और रावणके युद्धमें जैसी आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी, उसी प्रकार उन दोनों राक्षसोंका युद्ध भी विचित्र-सा ही हुआ ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे।
विद्ध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मद्रराज शल्यको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सात बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥ २९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप।
यथा पूर्वं महद् युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! जैसे पूर्वकालमें शम्बरासुर और देवराज इन्द्रमें महान् युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय उन दोनोंमें अत्यन्त अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः।
अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण—ये तीनों विशाल सेनाके साथ रहकर भीमसेनके साथ युद्ध करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिद्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा

संजय उवाच

तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस रोमाञ्चकारी संग्रामके

होते समय वहाँ तीन भागोंमें बँटे हुए कौरवोंपर पाण्डव-सैनिकोंने धावा किया ॥ १ ॥

जलसंधं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥

भीमसेनने महाबाहु जलसंधपर आक्रमण किया और सेनासहित युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें कृतवर्मापर धावा बोल दिया॥

किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद् रणे ॥ ३ ॥

महाराज ! जैसे प्रकाशमान सूर्य सहस्रों किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर परस्पर क्रोधमें भरे और उतावले हुए कौरव-पाण्डवपक्षके सम्पूर्ण धनुर्धरोंका आपसमें युद्ध होने लगा ॥

संक्षये तु तथाभूते वर्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत् पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार जब महाभयंकर जनसंहार होने लगा और सारे सैनिक निर्भय-से होकर द्वन्द्व-युद्ध करने लगे, उस समय बलवान् द्रोणाचार्यने शक्तिशाली पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करते हुए जो बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ की, वह अद्भुत-सी प्रतीत होने लगी ॥ ५-६ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नने मनुष्योंके बहुत-से मस्तक काट गिराये, जो चारों ओर नष्ट होकर पड़े हुए कमलवनोंके समान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥

चारों ओर सेनाओंमें वीरोंके बहुत-से वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज, कवच तथा आयुध छिन्न-भिन्न होकर बिखरे पड़े थे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णका कवच बाँधे तथा खूनसे लथपथ हुए सैनिक परस्पर सटे हुए बिजलियोंसहित मेघ-समूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥

बहुत-से दूसरे महारथी चार हाथके धनुष खींचते हुए अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े और पैदल मनुष्योंको मार गिराते थे ॥ १० ॥

असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥

उन महामनस्वी वीरोंके संग्राममें योद्धाओंके खड्ग, ढाल, धनुष, मस्तक और कवच कटकर इधर-उधर बिखरे जाते थे॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२ ॥

महाराज ! उस महाभयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १२ ॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहुशः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! वहाँ बहुत-से गीध, कङ्क, बगले, बाज, कौए, सियार तथा अन्य मांसभक्षी प्राणी दृष्टिगोचर होते थे ॥१३॥

भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वे मांस खाते, रक्त पीते और केशों तथा मज्जाको बारंबार नोचते थे ॥ १४ ॥

आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥

मनुष्यों, घोड़ों तथा हाथियोंके समूहोंके सम्पूर्ण शरीरों और अवयवों एवं मस्तकोंको इधर-उधर खींचते थे ॥१५॥

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥

अस्त्रविद्याके ज्ञाता और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर रणयज्ञकी दीक्षा लेकर संग्राममें विजय चाहते हुए उस समय बड़े जोरसे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

असिमार्गान् बहुविधान् विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥

समस्त सैनिक उस रणक्षेत्रमें तलवारके बहुत-से पैंतरे दिखाते हुए विचर रहे थे । युद्धकी रंगभूमिमें आये हुए मनुष्य परस्पर कुपित हो एक दूसरेपर ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, पट्टिश, गदा, परिघ, अन्यान्य आयुध तथा भुजाओंद्वारा चोट पहुँचाते थे ॥ १७-१८ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥

रथी रथियोंके, घुड़सवार घुड़सवारोंके, मतवाले हाथी श्रेष्ठ गजराजोंके और पैदल योद्धा पैदलोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९ ॥

क्षीबा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुक्रुशुरथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥

रंगस्थलके समान उस रणक्षेत्रमें अन्य बहुत-से मत्त और उन्मत्त हाथी एक दूसरेको देखकर चिग्घाड़ते और परस्पर आघात-प्रत्याघात करते थे ॥ २० ॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥

राजन् ! जिस समय वह मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्नने अपने रथके घोड़ोंको द्रोणाचार्यके घोड़ोंसे मिला दिया ॥ २१ ॥

ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्नके घोड़ोंका रंग कबूतरके समान था और द्रोणाचार्यके घोड़े लाल थे। उस युद्धके मैदानमें परस्पर मिले हुए वे वायुके समान वेगशाली अश्व बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥

राजन् ! कबूतरके समान वर्णवाले घोड़े लाल रंगके घोड़ोंसे मिलकर बिजलियोंसहित मेघोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥

धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥

भारत ! वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अत्यन्त निकट आया हुआ देख धनुष छोड़कर हाथमें ढाल और तलवार ले ली॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न दुष्कर कर्म करना चाहते थे। अतः ईषादण्डके सहारे अपने रथको लाँघकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ २५ ॥

अतिष्ठद् युगमध्ये स युगसंनहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥

वे एक पैर जूएके ठीक बीचमें और दूसरा पैर उस जूएसे सटे हुए (आचार्यके) घोड़ोंके पिछले आधे भागोंपर रखकर खड़े हो गये। उनके इस कार्यकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २६ ॥

खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥

लाल घोड़ोंपर खड़े हो तलवार घुमाते हुए धृष्टद्युम्नके ऊपर प्रहार करनेके लिये आचार्य द्रोणको थोड़ा-सा भी अवसर नहीं दिखायी दिया। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥

जैसे वनमें मांसकी इच्छा रखनेवाला बाज झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धृष्टद्युम्नका यह सहसा आक्रमण हुआ था ॥ २८ ॥

ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने सौ बाण मारकर द्रुपदकुमारकी ढालको, जिसमें सौ चन्द्राकार चिह्न बने हुए थे, काट गिराया और दस बाणोंसे उनकी तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥

हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान् बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी॥ ३० ॥

बलवान् आचार्यने चौसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ों-को मार डाला। फिर दो भल्लोंसे ध्वज और छत्र काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार गिराया ॥ ३० ॥

अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥

तदनन्तर तुरंत ही एक दूसरा प्राणान्तकारी बाण कानतक खींचकर उनके ऊपर चलाया, मानो वज्रधारी इन्द्रने वज्र मारा हो ॥ ३१ ॥

तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥

उस समय सात्यकिने चौदह तीखे बाण मारकर उस बाणको काट डाला और इस प्रकार आचार्यप्रवरके चंगुलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया ॥ ३२ ॥

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥

पूजनीय नरेश ! जैसे सिंहने किसी मृगको दबोच लिया हो, उसी प्रकार नरसिंह द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको ग्रस लिया था; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन्हें छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३४ ॥

उस महासमरमें सात्यकि धृष्टद्युम्नके रक्षक हो गये, यह देखकर द्रोणाचार्यने तुरंत ही उनपर छब्बीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृंजयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥

तब शिनिके पौत्र सात्यकिने सृंजयोंके संहारमें लगे हुए द्रोणाचार्यकी छातीमें छब्बीस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३५ ॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।

सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

जब द्रोणाचार्य सात्यकिके साथ उलझ गये, तब विजयाभिलाषी समस्त पाञ्चाल रथी तुरंत ही धृष्टद्युम्नको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्धविषयक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

बाणे तस्मिन् निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन संजय ॥ १ ॥
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद् युधि ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब वृष्णिवंशके प्रमुख वीर युयुधानने आचार्य द्रोणके उस बाणको काट दिया और धृष्टद्युम्नको प्राणसंकटसे बचा लिया, तब अमर्षमें भरे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर नरव्याघ्र द्रोणाचार्यने उस युद्धस्थलमें सात्यकिके प्रति क्या किया ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन्।

संजयने कहा—महाराज ! उस समय क्रोध और अमर्षसे लाल आँखें किये द्रोणाचार्यने फुफकारते हुए महानागके समान बड़े वेगसे सात्यकिपर धावा किया। क्रोध ही उस महानागका विष था, खींचा हुआ धनुष फैलाये हुए मुखके समान जान पड़ता था, तीखी धारवाले बाण दाँतोंके समान थे और तेज धारवाले नाराच दाढ़ोंका काम देते थे ॥ ३½ ॥

नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम्।
रुक्मपुङ्खाञ्छरानस्यन् युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

हर्षमें भरे हुए नरवीर द्रोणाचार्यने अपने महान् वेगशाली लाल घोड़ोंद्वारा, जो मानो आकाशमें उड़ रहे और पर्वतको लाँघ रहे थे, सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानपर आक्रमण किया ॥ ४–५ ॥

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम्।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम्।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

उस समय द्रोणाचार्य अश्वरूपी वायुसे संचालित अनिवार्य मेघके समान हो रहे थे। बाणोंका प्रहार ही उनके द्वारा की जानेवाली महावृष्टि था। रथकी घर्घराहट ही मेघकी गर्जना थी, धनुषका खींचना ही धारावाहिक वृष्टिका साधन था, बहुत-से नाराच ही विद्युत्‌के समान प्रकाशित होते थे, उस मेघने खड्ग और शक्तिरूपी अशनिको धारण कर रक्खा था और क्रोधके वेगसे ही उसका उत्थान हुआ था ॥ ६-७ ॥

दृष्ट्वाभिपतन्तं तं शूरः परपुरंजयः।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन् युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रणदुर्मद शूरवीर सात्यकि द्रोणाचार्यको अपने ऊपर आक्रमण करते देख सारथिसे जोर-जोरसे हँसते हुए बोले—॥ ८ ॥

एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम्।
आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत्।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥

'सूत ! ये शौर्यसम्पन्न ब्राह्मणदेवता अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें स्थिर नहीं हैं। ये धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनके आश्रय होकर उसके दुःख और भयका निवारण करनेवाले हैं। समस्त राजकुमारोंके ये ही आचार्य हैं और सदा अपनेको शूरवीर मानते हैं। तुम प्रसन्नचित्त होकर अपने वेगशाली अश्वोंद्वारा शीघ्र इनका सामना करनेके लिये चलो' ॥ ९–१० ॥

ततो रजतसंकाशा माधवस्य हयोत्तमाः।
द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः ॥ ११ ॥

तदनन्तर चाँदीके समान श्वेत रंगवाले और वायुके समान वेगशाली सात्यकिके उत्तम घोड़े द्रोणाचार्यके सामने शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे ॥ ११ ॥

ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परंतपौ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥

फिर तो शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य और सात्यकि एक दूसरेपर सहस्रों बाणोंका प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥

उन दोनों पुरुषशिरोमणि वीरोंने आकाशको

बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दिया और दसों दिशाओं-को बाणोंसे भर दिया ॥ १३ ॥

मेघाविवातपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥

जैसे वर्षाकालमें दो मेघ एक दूसरेपर जलकी धाराएँ गिराते हों, उसी प्रकार वे परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे। उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न हवा ही चलती थी ॥ १४ ॥

इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत् तदा ॥ १५ ॥

चारों ओर बाणोंका जाल-सा बिछ जानेके कारण वहाँ घोर अन्धकार छा गया था। उस समय अन्य शूरवीरोंका वहाँ पहुँचना असम्भव-सा हो गया ॥ १५ ॥

अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
नान्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेकी कलाको जाननेवाले द्रोणाचार्य तथा सात्वतवंशी सात्यकिके बाणोंसे लोकमें अन्धकार छा जानेपर भी उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंकी बाण-वर्षामें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ १६½ ॥

इषूणां संनिपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥ १७ ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।

बाणोंके परस्पर टकरानेसे उनकी धारोंके आघात-प्रत्याघातसे जो शब्द होता था, वह इन्द्रके छोड़े हुए वज्रास्त्रोंकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ता था ॥ १७½ ॥

नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥ १८ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।

भरतनन्दन ! नाराचोंसे अत्यन्त विद्ध हुए बाणोंका स्वरूप विषधर नागोंके डँसे हुए सर्पोंके समान जान पड़ता था ॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव ।

उन दोनों युद्धकुशल वीरोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि ऐसी सुनायी देती थी, मानो पर्वतोंके शिखरोंपर निरन्तर वज्रसे आघात किया जा रहा हो ॥ १९½ ॥

उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।

राजन् ! उन दोनोंके वे रथ, वे घोड़े और वे सारथि सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर उस समय विचित्ररूपसे सुशोभित हो रहे थे ॥ २०½ ॥

निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत् सुदारुणः ।

प्रजानाथ ! केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान निर्मल और सीधे जानेवाले नाराचोंका प्रहार वहाँ बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ २१½ ॥

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।

दोनोंके छत्र कटकर गिर गये, ध्वज धराशायी हो गये और दोनों ही विजयकी अभिलाषा रखते हुए खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ २२½ ॥

स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।

सारे अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहनेके कारण वे दोनों वीर मदवर्षी गजराजोंके समान जान पड़ते थे। वे एक दूसरेको प्राणान्तकारी बाणोंसे बेध रहे थे ॥ २३½ ॥

गर्जितोत्क्रुष्टसंनादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
उपारमन् महाराज व्याजहार न कश्चन ।

महाराज ! उस समय गरजने, ललकारने और सिंहनाद-के शब्द तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके घोष बंद हो गये थे। कोई बातचीततक नहीं करता था ॥ २४½ ॥

तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।

सारी सेनाएँ मौन थीं, योद्धा युद्धसे विरत हो गये थे, सब लोग कौतूहलवश उन दोनोंके द्वैरथ युद्धका दृश्य देखने लगे ॥ २५½ ॥

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।

रथी, महावत, घुड़सवार और पैदल सभी उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको घेरकर उन्हें एकटक नेत्रोंसे निहारने लगे ॥

हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।

हाथियोंकी सेनाएँ चुपचाप खड़ी थीं, घुड़सवार सैनिकोंकी भी यही दशा थी तथा रथसेनाएँ भी व्यूह बनाकर वहाँ स्थिरभावसे खड़ी थीं ॥ २७½ ॥

मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।
वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्कम्बलैः ॥ २९ ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्धसु ॥ ३० ॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ।

भारत ! मोती और मूँगोंसे चित्रित तथा मणियों और सुवर्णों-से विभूषित ध्वज, विचित्र आभूषण, सुवर्णमय कवच, वैजयन्ती,

पताका, हाथियोंके झूल और कम्बल, चमचमाते हुए तीखे शस्त्र, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले वस्त्र, हाथियोंके कुम्भस्थलमें और मस्तकोंपर सुशोभित होनेवाली सोने-चाँदी-की मालाएँ तथा दन्तवेष्टन—इन सब वस्तुओंके कारण उभयपक्षकी सेनाएँ वर्षाकालमें बगलोंकी पाँति, खद्योत, ऐरावत और बिजलियोंसे युक्त मेघसमूहोंके समान दृष्टि-गोचर हो रही थीं ॥ २८-३१½ ॥

अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
तद् युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।

राजन्! हमारी और युधिष्ठिरकी सेनाके सैनिक वहाँ खड़े होकर महामना द्रोण और सात्यकिका वह युद्ध देख रहे थे॥

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विद्याधरमहोरगाः ।

ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि सब देवता विमानोंपर बैठकर वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये थे । उनके साथ ही सिद्धों और चारणोंके समूह, विद्याधर और बड़े-बड़े नागगण भी थे ॥

गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४ ॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।

वे सब लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंके विचित्र गमन-प्रत्यागमन, आक्षेप तथा नाना प्रकारके अस्त्रनिवारक व्यापारोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ३४½ ॥

हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।

महावीर द्रोणाचार्य और सात्यकि अस्त्र चलानेमें अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए बाणोंद्वारा एक दूसरेको बेध रहे थे॥

ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।

इसी बीचमें सात्यकिने महातेजस्वी द्रोणाचार्यके धनुष और बाणोंको पंखयुक्त सुदृढ़ बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें शीघ्र ही काट डाला ॥ ३६½ ॥

निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य च सात्यकिः ।

तब भरद्वाजनन्दन द्रोणने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परंतु सात्यकिने उनके उस धनुषको भी काट डाला ॥ ३७½ ॥

ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥
सज्यं सज्यं धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।

तब द्रोणाचार्य पुनः बड़ी उतावलीके साथ दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़े हो गये; परंतु ज्यों ही वे धनुष-पर डोरी चढ़ाते, त्यों ही सात्यकि अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे काट देते थे ॥ ३८½ ॥

एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधाने छेदनेऽपि च ।

इस प्रकार सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले सात्यकिने आचार्यके एक सौ धनुष काट डाले; परंतु कब वे संधान करते हैं और सात्यकि कब उस धनुषको काट देते हैं, उन दोनोंके इस कार्यमें किसीको कोई अन्तर नहीं दिखायी दिया ॥

ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४० ॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।

राजेन्द्र! तदनन्तर रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस अमानुषिक पराक्रमको देखकर द्रोणाचार्यने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया ॥ ४०½ ॥

एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनंजये ॥ ४१ ॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥

सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिमें जो यह अस्त्रबल दिखायी देता है, ऐसा तो केवल परशुराममें, कार्तवीर्य अर्जुनमें, धनंजयमें तथा पुरुषसिंह भीष्ममें ही देखा-सुना गया है । द्रोणाचार्यने मन-ही-मन उनके पराक्रमकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४१-४२ ॥

लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥

इन्द्रके समान सात्यकिके उस हस्तलाघव तथा पराक्रम-को देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर द्रोणाचार्य और इन्द्र आदि देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥

न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।

प्रजानाथ! रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक विचरनेवाले सात्यकि-की उस फुर्तीको देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और चारण-समूहोंने पहले कभी नहीं देखा था । वे जानते थे कि केवल द्रोणाचार्य ही वैसा पराक्रम कर सकते हैं (परंतु उस दिन उन्होंने सात्यकिका पराक्रम भी प्रत्यक्ष देख लिया) ॥४४½॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।

भारत! तत्पश्चात् अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ क्षत्रियसंहारक द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर विभिन्न अस्त्रोंद्वारा युद्ध आरम्भ किया ॥ ४५½ ॥

तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

सात्यकिने अपने अस्त्रोंकी मायासे आचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उन्हें तीखे बाणोंसे घायल कर दिया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४६½ ॥

तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥

युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।

उस रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस युक्तियुक्त अलौकिक कर्मको, जिसकी दूसरोंसे कोई तुलना नहीं थी, देखकर आपके रणकौशलवेत्ता सैनिक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४७½ ॥

यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
तमाचार्योऽप्यसम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।

द्रोणाचार्य जिस अस्त्रका प्रयोग करते, उसीका सात्यकि भी करते थे । शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य द्रोण भी घबराहट छोड़कर सात्यकिसे युद्ध करते रहे ॥ ४८½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।

महाराज ! तदनन्तर धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् द्रोणाचार्यने कुपित हो सात्यकिके वधके लिये एक दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ४९½ ॥

तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।

शत्रुओंका नाश करनेवाले उस अत्यन्त भयंकर आग्नेयास्त्रको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिने भी वारुणनामक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५०½ ॥

हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥
न विचेरुस्तदाकाशे भूतान्याकाशगाम्यपि ।

उन दोनोंको दिव्यास्त्र धारण किये देख वहाँ महान् हाहाकार मच गया । उस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाशमें विचरण नहीं करते थे ॥ ५१½ ॥

अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्तदथ भास्करः ।

वे वारुण और आग्नेय दोनों अस्त्र उन दोनोंके द्वारा अपने बाणोंमें स्थापित होकर जबतक एक दूसरेके प्रभावसे प्रतिहत नहीं हो गये, तभीतक भगवान् सूर्य दक्षिणसे पश्चिमके आकाशमें ढल गये ॥ ५२½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुकुमार भीमसेन, नकुल और सहदेव सब ओरसे सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ ५३½ ॥

धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।

धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके साथ विराट, केकयराजकुमार, मत्स्यदेशीय सैनिक तथा शाल्वदेशकी सेनाएँ—ये सब-के-सब अनायास ही द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ५४½ ॥

दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।

उधरसे सहस्रों राजकुमार दुःशासनको आगे करके शत्रुओंसे घिरे हुए द्रोणाचार्यके पास उनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ५५½ ॥

ततो युद्धमभूद् राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डवोंके और आपके धनुर्धरोंका परस्पर युद्ध होने लगा । उस समय सब लोग धूलसे आवृत और बाणसमूहसे आच्छादित हो गये थे ॥ ५६½ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ॥ ५७ ॥

वहाँका सब कुछ उद्विग्न हो रहा था । सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे ध्वस्त होनेके कारण किसीको कुछ ज्ञात नहीं होता था । वहाँ मर्यादाशून्य युद्ध चल रहा था ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोण और सात्यकिका युद्धविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा तीव्र गतिसे कौरवसेनामें प्रवेश, विन्द और अनुविन्दका वध तथा अद्भुत जलाशयका निर्माण

संजय उवाच

(वर्तमाने तदा युद्धे द्रोणस्य सह पाण्डुभिः ॥)
विवर्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति ।
रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ युद्ध हो रहा था और सूर्य अस्ताचलके शिखरकी ओर ढल चुके थे, उस समय धूलसे आवृत होनेके कारण दिवाकरकी रश्मियाँ मन्द दिखायी देने लगी थीं । योद्धाओंमेंसे कोई तो खड़े थे, कोई युद्ध करते थे, कोई भागकर पुनः पीछे लौटते थे और कोई विजयी हो रहे थे । इस प्रकार

उन सब लोगोंका वह दिन धीरे-धीरे बीतता चला जा रहा था ॥ १-२ ॥

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाली वे समस्त सेनाएँ जब युद्धमें इस प्रकार अनुरक्त हो रही थीं, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण सिन्धुराज जयद्रथको प्राप्त करनेके लिये ही आगे बढ़ते चले गये ॥ ३ ॥

रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार यत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन अपने तीखे बाणोंद्वारा वहाँ रथके जाने योग्य रास्ता बना लेते थे, जिससे श्रीकृष्ण रथ लिये आगे बढ़ जाते थे ॥ ४ ॥

यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! महामना पाण्डुनन्दन अर्जुनका रथ जहाँ-जहाँ जाता था, वहीं-वहीं आपकी सेनामें दरार पड़ जाती थी ॥५॥

रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥

दशार्हवंशी परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकारके मण्डल दिखाते हुए अपनी उत्तम रथ-शिक्षाका प्रदर्शन करते थे ॥ ६ ॥

ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसंनिभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥
वैणवाश्चायसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥

अर्जुनके बाणोंपर उनका नाम अङ्कित था। उनपर पानी चढ़ाया गया था। वे कालाग्निके समान भयंकर, ताँतमें बँधे हुए, सुन्दर पंखवाले, मोटे तथा दूरतक जानेवाले थे। उनमेंसे कुछ तो बाँसके बने हुए थे और कुछ लोहेके। वे सभी भयंकर थे और नाना प्रकारके शत्रुओंका संहार करते हुए पक्षियोंके साथ उड़कर युद्धस्थलमें प्राणियोंका रक्त पीते थे ॥ ७-८ ॥

रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥

रथपर बैठे हुए अर्जुन अपने आगे एक कोसकी दूरीतक जिन बाणोंको फेंकते थे, वे बाण उनके शत्रुओंका जबतक संहार करते, तबतक उनका रथ एक कोस और आगे निकल जाता था ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः ।
तदागच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥

उस समय भगवान् हृषीकेश अच्छी प्रकारसे रथका भार वहन करनेवाले गरुड़ एवं वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को आश्चर्यचकित करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ १० ॥

न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! सूर्य, इन्द्र, रुद्र तथा कुबेरका भी रथ वैसी तीव्र गतिसे नहीं चलता था, जैसे अर्जुनका चलता था ॥ ११ ॥

नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥

राजन् ! समरभूमिमें दूसरे किसीका रथ पहले कभी उस प्रकार तीव्र गतिसे नहीं चला था, जैसे अर्जुनका रथ मनकी अभिलाषाके अनुरूप शीघ्र गतिसे चलता था ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे राजन् केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥

महाराज ! भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें सेनाके भीतर प्रवेश करके अपने घोड़ोंको तीव्र वेगसे हाँका ॥ १३ ॥

ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥

तदनन्तर रथियोंके समूहके मध्यभागमें पहुँचकर भूख और प्याससे पीड़ित हुए वे उत्तम घोड़े बड़ी कठिनाईसे उस रथका भार वहन कर पाते थे ॥ १४ ॥

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

युद्धकुशल योद्धाओंने बहुत-से शस्त्रोंद्वारा उन्हें अनेक बार घायल कर दिया और वे क्षत-विक्षत हो बारंबार विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरण करते रहे ॥ १५ ॥

हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥

रण-भूमिमें सहस्रों पर्वताकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य मरे पड़े थे। उन सबको अर्जुनके घोड़े ऊपर-ही-ऊपर लाँघ जाते थे ॥ १६ ॥

(श्रमेण महता युक्तास्ते हया वातरंहसः ।
मन्दवेगगता राजन् संवृत्तास्तत्र संयुगे ॥)

राजन् ! वे वायुके समान वेगशाली अश्व उस युद्धस्थलमें अधिक परिश्रमसे थक जानेके कारण मन्दगतिसे चलने लगे ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें अवन्तीके वीर राजकुमार दोनों

भाई विन्द और अनुविन्द थके हुए घोड़ोंवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनका सामना करनेके लिये अपनी सेनाके साथ आये ॥ १७ ॥

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम्।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥

उन दोनोंने अर्जुनको चौसठ और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे तथा उनके घोड़ोंको सौ बाणोंसे घायल कर दिया। ऐसा करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥

महाराज ! मर्मको जाननेवाले अर्जुनने रणक्षेत्रमें कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले नौ मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन दोनोंको चोट पहुँचायी ॥ १९ ॥

ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम्।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥

तब उन दोनों भाइयोंने कुपित हो श्रीकृष्णसहित अर्जुनको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २० ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥

तदनन्तर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने समराङ्गणमें दो बाणोंद्वारा उनके दोनों विचित्र धनुषों और सुवर्णके समान प्रकाशित होनेवाले दोनों ध्वजोंको भी तुरंत ही काट डाला ॥ २१ ॥

अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥

राजन् ! फिर वे दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो उठे और उस समय समराङ्गणमें दूसरे धनुष लेकर उन्होंने बाणोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको गहरी पीड़ा दी ॥ २२ ॥

तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनंजयः ॥ २३ ॥

यह देख पाण्डुनन्दन धनंजय अत्यन्त क्रोधसे जल उठे और दो बाण मारकर तुरंत ही उन्होंने उन दोनोंके धनुष पुनः काट डाले ॥ २३ ॥

तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥ २४ ॥

फिर सुवर्णमय पंखोंवाले और शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए दूसरे बाणोंद्वारा उनके घोड़ोंको एवं दोनों सारथियों, पार्श्वरक्षकों तथा पदानुगामी सेवकोंको भी शीघ्र ही मार डाला ॥ २४ ॥

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥

इसके बाद एक क्षुरप्रद्वारा बड़े भाई विन्दका मस्तक धड़से काट दिया। विन्द आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥

विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान्।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन्।

विन्दको मारा गया देख महाबली और प्रतापी अनुविन्द अपने भाईके वधका बारंबार चिन्तन करता हुआ अश्वहीन रथको त्यागकर हाथमें गदा ले संग्रामभूमिमें डटा रहा ॥ २६½ ॥

गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥
अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम्।
स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी अनुविन्दने कुपित हो नृत्य-सा करते हुए गदाद्वारा मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णके ललाटमें आघात किया; परंतु मैनाकपर्वतके समान श्रीकृष्णको कम्पित न कर सका ॥ २७-२८ ॥

तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः।
निचकर्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने छः बाणोंद्वारा उसकी गर्दन, दोनों पैरों दोनों भुजाओं तथा मस्तकको भी काट डाला। इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर वह पर्वतसमूहके समान धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥

राजन् ! तब उन दोनों भाइयोंको मारा गया देख उनके सेवकगण अत्यन्त कुपित हो अर्जुनपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ ३० ॥

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुन बाणोंद्वारा तुरंत ही उन सबका संहार करके ग्रीष्मऋतुमें वनको जलाकर प्रकाशित होनेवाले अग्निदेवके समान सुशोभित हुए ॥ ३१ ॥

तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनंजयः।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥

उन दोनोंकी सेनाका बड़ी कठिनाईसे उल्लङ्घन करके अर्जुन मेघोंका आवरण भेदकर उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन्हें देखकर कौरवसैनिक पहले तो भयभीत हुए। फिर प्रसन्न भी हो गये। वे चारों ओरसे कुन्तीकुमारका सामना करनेके लिये डट गये ॥ ३३ ॥

श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम्।

सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥

अर्जुनको थका हुआ देख और सिन्धुराज जयद्रथको उनसे बहुत दूर जानकर आपके सैनिकोंने महान् सिंहनाद करते हुए उन्हें सब ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन् पुरुषर्षभः।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

उन सबको क्रोधमें भरा देख पुरुषशिरोमणि अर्जुनने मुसकराते हुए धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३५ ॥

शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः।
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥

'मेरे घोड़े बाणोंसे पीड़ित हो बहुत थक गये हैं और सिन्धुराज जयद्रथ अभी बहुत दूर है। अतः इस समय यहाँ कौन-सा कार्य आपको श्रेष्ठ जान पड़ता है ॥ ३६ ॥

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ही सदा सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं। अतः मुझे यथार्थ बात बताइये। आपको नायक बनाकर ही पाण्डव इस रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजयी होंगे ॥ ३७ ॥

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद् वै तत् त्वं निबोध मे।
हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान् कुरु माधव ॥ ३८ ॥

'माधव ! मेरी दृष्टिमें इस समय जो कर्तव्य है, वह बताता हूँ, आप मुझसे सुनिये। घोड़ोंको खोलकर इन्हें सुख पहुँचानेके लिये इनके शरीरसे बाण निकाल दीजिये' ॥ ३८ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम्।
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'पार्थ ! तुमने इस समय जो बात कही है, यही मुझे भी अभीष्ट है' ॥ ३९ ॥

अर्जुन उवाच

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥

अर्जुन बोले—केशव ! मैं इन समस्त सेनाओंको रोक रक्खूँगा। आप भी यहाँ इस समय करनेयोग्य यथोचित कार्य सम्पन्न करें ॥ ४० ॥

संजय उवाच

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनंजयः।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुन बिना किसी घबराहटके रथकी बैठकसे उतर पड़े और गाण्डीव धनुष हाथमें लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

तमभ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकाङ्क्षिणः।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनंजयम् ॥ ४२ ॥

धनंजयको धरतीपर खड़ा जान 'यही अवसर है' ऐसा कहते हुए विजयाभिलाषी क्षत्रिय हल्ला मचाते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ४२ ॥

तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन्।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥

उन सबने महान् रथसमूहके द्वारा एकमात्र अर्जुनको चारों ओर घेर लिया। वे सब-के-सब धनुष खींचते और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते थे ॥ ४३ ॥

शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन्।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको आच्छादित करते हुए कुपित कौरव-सैनिक वहाँ विचित्र अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥४४॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥

जैसे मतवाले हाथी सिंहपर धावा करते हों, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ रथी क्षत्रिय क्षत्रियशिरोमणि नरसिंह अर्जुनपर बड़े वेगसे टूट पड़े थे ॥ ४५ ॥

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत।
यत् क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥

उस समय वहाँ अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महान् बल देखनेमें आया। उन्होंने कुपित होकर उन विशाल सेनाओंको सब ओर जहाँ-की-तहाँ रोक दिया ॥ ४६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥

शक्तिशाली अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा तुरंत उन सबको ही आच्छादित कर दिया ॥ ४७ ॥

तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते।
संघर्षेण महार्चिष्मान् पावकः समजायत ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ अन्तरिक्षमें ठसाठस भरे हुए बाणोंकी रगड़से भारी लपटोंसे युक्त आग प्रकट हो गयी ॥ ४८ ॥

तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९ ॥
संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥

तदनन्तर जहाँ-तहाँ हाँफते और खूनसे लथपथ हुए महाधनुर्धर योद्धाओं, अर्जुनके शत्रुनाशक बाणोंद्वारा विदीर्ण हो चीत्कार करते हुए हाथियों और घोड़ों तथा युद्धमें

विजयकी अभिलाषा लिये रोषावेशमें भरकर एक जगह कुपित खड़े हुए बहुतेरे वीर शत्रुओंके जमघटसे उस स्थानपर गर्मी-सी होने लगी ॥ ४९-५० ॥

शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम्।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम्।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय अर्जुनने उस असंख्य, अपार, दुर्लङ्घ्य एवं अक्षोभ्य रण-समुद्रको सीमावर्ती तटप्रान्तके समान होकर अपने बाणोंद्वारा रोक दिया। उस रण-सागरमें बाणोंकी तरङ्गें उठ रही थीं, फहराते हुए ध्वज भौंरोंके समान जान पड़ते थे, हाथी ग्राह थे, पैदल सैनिक मत्स्य और कीचड़के समान प्रतीत होते थे, शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस रण-सिन्धुकी गम्भीर गर्जना थी, रथ ऊँची-ऊँची लहरोंके समान जान पड़ते थे, योद्धाओंकी पगड़ी और टोप कछुओंके समान थे, छत्र और पताकाएँ फेनराशि-सी प्रतीत होती थीं तथा मतवाले हाथियोंकी लाशें ऊँचे-ऊँचे शिलाखण्डोंके समान उस सैन्यसागरको व्याप्त किये हुए थीं ॥ ५१—५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब अर्जुन धरतीपर उतर आये और भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी चिकित्सामें हाथ लगाया, तब यह अवसर पाकर मेरे सैनिकोंने कुन्तीकुमारका वध क्यों नहीं कर डाला? ॥ ५४ ॥

संजय उवाच

सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥

संजयने कहा—महाराज! उस समय पार्थने पृथ्वीपर खड़े होकर रथपर बैठे हुए समस्त भूपालोंको सहसा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे वेदविरुद्ध वाक्य अग्राह्य कर दिया जाता है ॥ ५५ ॥

स पार्थः पार्थिवान् सर्वान् भूमिस्थोऽपि रथस्थितान्।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥

अर्जुनने अकेले ही पृथ्वीपर खड़े रहकर भी रथपर बैठे हुए समस्त पृथ्वीपतियोंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे लोभ सम्पूर्ण गुणोंका निवारण कर देता है ॥ ५६ ॥

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम्।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर सम्भ्रमरहित महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अपने प्रिय सखा पुरुषप्रवर अर्जुनसे यह बात कही—॥ ५७ ॥

उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥

'अर्जुन! यहाँ घोड़ोंके पीनेके लिये पर्याप्त जल नहीं है। ये पीनेयोग्य जल चाहते हैं। इन्हें स्नानकी इच्छा नहीं है' ॥ ५८ ॥

इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम्।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥

'यह रहा इनके पीनेके लिये जल' ऐसा कहकर अर्जुनने बिना किसी घबराहटके अस्त्रद्वारा पृथ्वीपर आघात करके घोड़ोंके पीनेयोग्य जलसे भरा हुआ सुन्दर सरोवर उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥

उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे हुए थे, चक्रवाक उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। स्वच्छ जलसे युक्त उस विशाल सरोवरमें सुन्दर कमल खिले हुए थे ॥ ६० ॥

कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥

वह अगाध जलाशय कछुओं और मछलियोंसे भरा था। ऋषिगण उसका सेवन करते थे। तत्काल प्रकट किये हुए ऐसी योग्यतावाले उस सरोवरका दर्शन करनेके लिये देवर्षि नारदजी वहाँ आये ॥ ६१ ॥

शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम्।
शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥

विश्वकर्माके समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने वहाँ बाणोंका एक अद्भुत घर बना दिया था, जिनमें बाणोंके ही बाँस, बाणोंके ही खम्भे और बाणोंकी ही छाजन थी ॥ ६२ ॥

ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत्।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३ ॥

महामना अर्जुनके द्वारा वह बाणमय गृह निर्मित हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'शाबास अर्जुन, शाबास' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वध तथा अर्जुनके द्वारा जलाशयका निर्माणविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ६४½ श्लोक हैं)

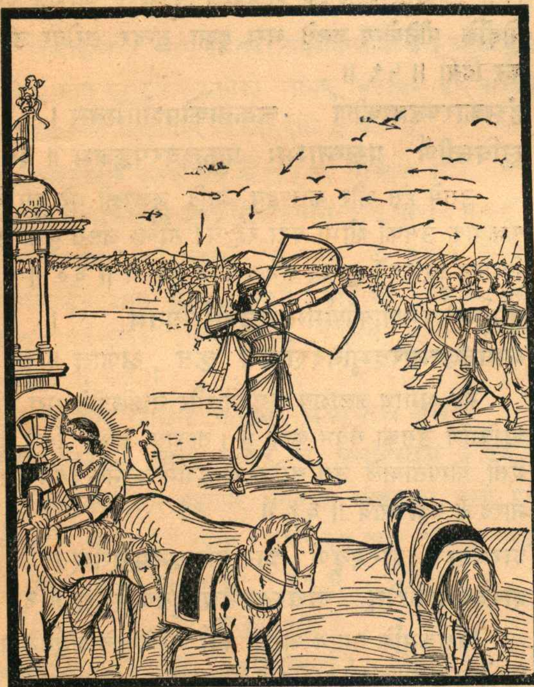
शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा अश्वपरिचर्या तथा खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हुए अश्वोंद्वारा अर्जुनका पुनः शत्रुसेनापर आक्रमण करते हुए जयद्रथकी ओर बढ़ना

संजय उवाच

सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना ।
निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
वासुदेवो रथात् तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान् विनुन्नान् कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब महात्मा कुन्तीकुमारने वह जल उत्पन्न कर दिया, शत्रुओंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और बाणोंका घर बना दिया, तब महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही रथसे उतरकर कंकपत्रयुक्त बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए घोड़ोंको खोल दिया ॥ १-२ ॥



अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसंघानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

यह अदृष्टपूर्व कार्य देखकर सिद्ध, चारण तथा सैनिकोंके मुखसे निकला हुआ महान् साधुवाद सब ओर गूँज उठा ॥ ३ ॥

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

पैदल युद्ध करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनको समस्त महारथी मिलकर भी न रोक सके; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४ ॥

आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नासम्भ्रमत् तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥

रथियोंके समूह तथा बहुत-से हाथी-घोड़े सब ओरसे उनपर टूट पड़े थे, तो भी उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उनका यह धैर्य और साहस समस्त पुरुषोंसे बढ़-चढ़कर था ॥ ५ ॥

व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण भूपाल पाण्डुनन्दन अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे, तो भी शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकुमार धर्मात्मा पार्थ तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६ ॥

स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत् पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥

उन पराक्रमी कुन्तीकुमारने शत्रुओंके उन बाणसमूहों, गदाओं और प्रासोंको अपने पास आनेपर उसी प्रकार ग्रस लिया, जैसे समुद्र सरिताओंको अपनेमें मिला लेता है ॥७॥

अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत् तान् शरोत्तमान्॥ ८ ॥

अर्जुनने अस्त्रोंके महान् वेग और बाहुबलसे समस्त राजाधिराजोंके उत्तमोत्तम बाणोंको नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥

तत् तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन् महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥

महाराज! अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंके उस अत्यन्त अद्भुत पराक्रमकी समस्त कौरवोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ९ ॥

किमद्भुततमं लोके भविताप्यथवा ह्यभूत् ।
यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥

संसारमें इससे बढ़कर और कोई अत्यन्त अद्भुत घटना क्या होगी अथवा हुई होगी कि अर्जुन और श्रीकृष्णने उस भयंकर संग्राममें भी घोड़ोंको रथसे खोल दिया ॥ १० ॥

भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने हमलोगोंमें महान् भय उत्पन्न कर दिया और युद्धके मुहानेपर निर्भय और निश्चिन्त होकर अपने भयानक तेजका प्रदर्शन किया ॥ ११ ॥

अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें अर्जुनके बनाये हुए उस बाणनिर्मित गृहमें भगवान् श्रीकृष्ण उसी प्रकार मुसकराते हुए निर्भय खड़े थे, मानो वे स्त्रियोंके बीचमें हों ॥ १२ ॥

उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥

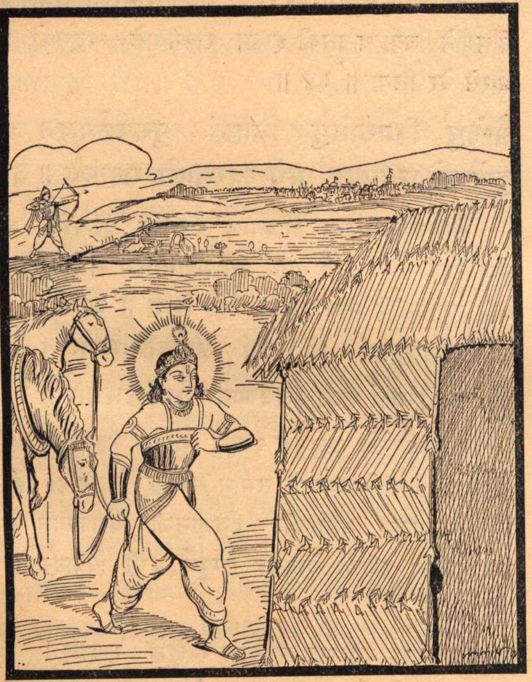
प्रजानाथ ! कमलनयन श्रीकृष्णने आपके सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उद्वेगशून्य होकर उन घोड़ोंको टहलाया ॥

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥

घोड़ोंकी चिकित्सा करनेमें कुशल श्रीकृष्णने उनके परिश्रम, थकावट, वमन, कम्पन और घाव—सारे कष्टोंको दूर कर दिया ॥ १४ ॥

शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान् हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥१५॥

उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे बाण निकालकर उन घोड़ोंको मला और यथोचित रूपसे टहलाकर उन्हें पानी पिलाया ॥



स ताँल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने पानी पिलाकर उन्हें नहलाया, घास और दाने खिलाये तथा जब उनकी सारी थकावट दूर हो गयी, तब पुनः उस उत्तम रथमें उन्हें बड़ी प्रसन्नताके साथ जोत दिया ॥ १६ ॥

स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीकृष्ण उस उत्तम रथपर अर्जुनसहित आरूढ़ हो बड़े वेगसे आगे बढ़े॥

रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके उस रथको समराङ्गणमें पानी पीकर सुस्ताये हुए घोड़ोंसे जुता हुआ देख कौरवसेनाके श्रेष्ठ वीर फिर उदास हो गये ॥ १८ ॥

विनिःश्वसन्तस्ते राजन् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक्॥ १९ ॥

राजन् ! टूटे दाँतवाले सर्पोंके समान लंबी सांस खींचते हुए वे पृथक्-पृथक् कहने लगे—'अहो ! हमें धिक्कार है, धिक्कार है, अर्जुन और श्रीकृष्ण तो चले गये' ॥ १९ ॥

त्वत्सेनाः सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाक्रन्दन् नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥ २० ॥

आपकी सम्पूर्ण सेनाएँ वह अद्भुत रोमाञ्चकारी व्यापार देखकर अपने साथियोंको पुकार-पुकारकर कहने लगीं—'वीरो ! ऐसा नहीं हो सकता । तुम सब लोग शीघ्रतापूर्वक उनका पीछा करो' ॥ २० ॥

सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥

हमलोग चीखते-चिल्लाते तथा रोकनेकी चेष्टा करते ही रह गये; परंतु कुछ न हो सका । शत्रुओंको संताप देनेवाले कवचधारी श्रीकृष्ण और अर्जुन हम सब क्षत्रियोंके देखते-देखते हमारे बलकी अवहेलना करके एकमात्र रथके द्वारा सम्पूर्ण राजमण्डलीमें अपना पराक्रम दिखाकर उसी प्रकार बेरोक-टोक आगे बढ़ गये हैं, जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता हुआ निकल जाता है ॥ २१-२२ ॥

(यथा दैवासुरे युद्धे तृणीकृत्य च दानवान् ।
इन्द्राविष्णू पुरा राजञ्जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥)

राजन् ! पूर्वकालमें जैसे देवासुर-संग्राममें जम्भासुरका वध करनेकी इच्छावाले इन्द्र और भगवान् विष्णु दानवोंको तिनकोंके समान तुच्छ मानते हुए आगे बढ़ गये थे (उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये बड़े वेगसे अग्रसर हो रहे हैं) ॥

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥
रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥

उन दोनोंको पुनः आगे बढ़ते देख दूसरे सैनिक बोल उठे—'कौरवो ! श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये तुम सब लोग शीघ्र चेष्टा करो । इस रणक्षेत्रमें रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण हमारी अवहेलना करके हम सब धनुर्धरोंके देखते-देखते जयद्रथकी ओर बढ़े जा रहे हैं' ॥ २३-२४ ॥

तत्र केचिन्मिथो राजन् समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥

राजन् ! वहाँ कुछ भूमिपाल समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका वह अत्यन्त अद्भुत अदृष्टपूर्व कार्य देखकर आपसमें इस प्रकार बातें करने लगे—॥ २५ ॥

सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।

'एकमात्र दुर्योधनके अपराधसे राजा धृतराष्ट्र तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाएँ भारी विपत्तिमें फँस गयीं । सारा क्षत्रिय-समाज और सम्पूर्ण पृथ्वी विनाशके द्वारपर जा पहुँची है । इस बातको राजा धृतराष्ट्र नहीं समझ रहे हैं' ॥

इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
सिन्धुराजस्य यत् कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत् करोतु वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी प्रकार वहाँ दूसरे क्षत्रिय निम्नाङ्कित बातें कहते थे—'योग्य उपायको न जाननेवाले और मिथ्या-दृष्टि रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र यमलोकमें गये हुए सिन्धुराज जयद्रथका जो और्ध्वदैहिक कृत्य है, उसका सम्पादन करें'॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर पानी पीकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए घोड़ोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथकी ओर बड़े वेगसे बढ़ने लगे । उस समय सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरकी ओर ढलते चले जा रहे थे ॥ २९ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥३०॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए यमराजको रोकना असम्भव है, उसी प्रकार आगे बढ़ते हुए समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनको आपके सैनिक रोक न सके ॥ ३० ॥

विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥

जैसे सिंह मृगोंके झुंडको खदेड़ता हुआ उन्हें मथ डालता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुकुमार अर्जुन आपकी सेनाको खदेड़-खदेड़कर मारने और मथने लगे ॥ ३१ ॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥

सेनाके भीतर घुसते हुए श्रीकृष्णने तीव्र वेगसे अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया और बगुलोंके समान श्वेत रंगवाले अपने पाञ्चजन्य शङ्खको बड़े जोरसे बजाया ॥ ३२ ॥

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात् तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन् वातरंहसः ॥ ३३ ॥

वायुके समान वेगशाली अश्व इतनी तीव्रातितीव्र गतिसे रथको लिये हुए भाग रहे थे कि कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा आगेकी ओर फेंके हुए बाण उनके रथके पीछे गिरते थे ॥ ३३ ॥

ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनंजयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए बहुत-से नरेशों तथा अन्य क्षत्रियोंने जयद्रथ-वधकी इच्छा रखनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात् पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥

सेनाओंके सहसा आक्रमण करनेपर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुछ ठहर गये । इसी समय उस महासमरमें राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ उनका पीछा किया ॥ ३५ ॥

वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३६ ॥

हवा लगनेसे अर्जुनके रथकी पताका फहरा रही थी । उस रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी और ध्वजापर वानरवीर हनुमान्‌जी विराजमान थे । उस भयंकर रथको देखकर सम्पूर्ण रथी विषादग्रस्त हो गये ॥ ३६ ॥

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

उस समय सब ओर इतनी धूल उड़ रही थी कि सूर्यदेव छिप गये । उस रणक्षेत्रमें बाणोंसे पीड़ित हुए सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सेनाविस्मयविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३८ श्लोक हैं)

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़ा देख कौरवसैनिकोंकी निराशा तथा दुर्योधनका युद्धके लिये आना

संजय उवाच

स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ॥ १॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको सबको लाँघकर आगे बढ़ा हुआ देख भयके कारण आपके सैनिकोंकी मज्जा खिसकने लगी॥ १॥

सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन् धनंजयम्॥ २॥

फिर वे लज्जित हुए समस्त महामनस्वी सैनिक धैर्य और साहससे प्रेरित हो युद्धके लिये स्थिरचित्त होकर रोषपूर्वक अर्जुनकी ओर जाने लगे॥ २॥

ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः।
तेऽद्यापि न निवर्तन्ते सिन्धवः सागरादिव॥ ३॥

जो लोग युद्धमें रोष और अमर्षसे भरकर पाण्डुनन्दन अर्जुनके सामने गये, वे समुद्रतक गयी हुई नदियोंके समान आजतक नहीं लौटे॥ ३॥

असन्तस्तु न्यवर्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम्॥ ४॥

जैसे नास्तिक पुरुष वेदोंसे (उनकी बतायी हुई विधियोंसे) दूर रहते हैं, उसी प्रकार जो अधम मनुष्य थे, वे ही अर्जुनके सामने जाकर भी लौट आये (पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए)। वे नरकमें पड़कर अपने पापका फल भोग रहे होंगे॥

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ॥ ५॥

रथियोंकी सेनाको लाँघकर उनके घेरेसे मुक्त हुए पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुके मुँहसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान दिखायी दिये॥ ५॥

मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत्॥ ६॥

जैसे दो मत्स्य किसी महाजालको फाड़कर निकल जानेपर क्लेशशून्य हो जाते हैं, उसी प्रकार उस सेनासमूहको विदीर्ण करके श्रीकृष्ण और अर्जुन क्लेशरहित दिखायी देते थे॥

विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात्।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ॥ ७॥

शस्त्रोंसे भरे हुए आचार्य द्रोणके दुर्भेद्य सैन्य-व्यूहसे छुटकारा पाकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उदित हुए प्रलयकालके सूर्यके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ७॥

अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसंकटात्।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ॥ ८॥
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव।

शत्रुओंको संतप्त करनेवाले वे दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन अग्निके समान दाहक स्पर्शवाले मगरके मुखसे छूटे हुए दो मत्स्योंके समान अस्त्र-शस्त्रोंकी बाधाओं तथा संकटोंसे मुक्त दिखायी दे रहे थे॥ ८½॥

अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव॥ ९॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम्॥ १०॥

जैसे दो मगर समुद्रको क्षुब्ध कर देते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने सारी सेनाको व्याकुल कर दिया। आपके सैनिकों तथा पुत्रोंने उस समय द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहमें घुसे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें यह विचार किया था कि ये दोनों द्रोणको नहीं लाँघ सकेंगे॥ ९-१०॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती।
नाशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम्॥ ११॥

परंतु महाराज! जब वे दोनों महातेजस्वी वीर द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहको लाँघ गये, तब उन्हें देखकर आपके पुत्रोंको सिन्धुराजके जीवित रहनेकी आशा नहीं रह गयी॥ ११॥

आशा बलवती राजन् सिन्धुराजस्य जीविते।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो॥ १२॥

राजन्! प्रभो! सब लोगोंको यह सोचकर कि श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माके हाथसे नहीं छूट सकेंगे, सिन्धुराजके जीवनकी आशा प्रबल हो उठी थी॥ १२॥

तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परंतपौ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम्॥ १३॥

महाराज! शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन लोगोंकी उस आशाको विफल करके द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघ गये॥ १३॥

अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे॥ १४॥

दो प्रज्वलित अग्नियोंके समान सारी सेनाको लाँघकर खड़े हुए उन दोनों वीरोंको सकुशल देख आपके सैनिकोंने निराश होकर सिन्धुराजके जीवनकी आशा त्याग दी॥ १४॥

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनंजयौ॥ १५॥

दूसरोंका भय बढ़ाने और स्वयं निर्भय रहनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन आपसमें जयद्रथवधके विषयमें इस प्रकार बातें करने लगे—॥ १५॥

असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥

'यद्यपि धृतराष्ट्रके छः महारथी पुत्रोंने जयद्रथको अपने बीचमें छिपा रक्खा है, तथापि यदि वह मेरी आँखोंको दीख गया तो मेरे हाथसे जीवित नहीं बच सकेगा ॥ १६ ॥

यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥

'यदि देवताओंसहित साक्षात् इन्द्र भी समराङ्गणमें इसकी रक्षा करें, तो भी हम दोनों इसे अवश्य मार डालेंगे '। इस प्रकार दोनों कृष्ण आपसमें बात कर रहे थे ॥ १७ ॥

इति कृष्णौ महाबाहू मिथोऽकथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥

सिन्धुराज जयद्रथकी खोज करते हुए महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय जब आपसमें उपर्युक्त बातें कहीं, तब आपके पुत्र बहुत कोलाहल करने लगे ॥ १८ ॥

अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तामरिंदमौ ॥ १९ ॥

जैसे मरुभूमिको लाँघकर जाते हुए दो प्यासे हाथी पानी पीकर तृप्त एवं संतुष्ट हो गये हों, उसी प्रकार शत्रुओं-का दमन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन भी शत्रुसेनाको लाँघकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे ॥ १९ ॥

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥

जैसे व्याघ्र, सिंह और हाथियोंसे भरे हुए पर्वतोंको लाँघकर दो व्यापारी प्रसन्न दिखायी देते हों, उसी प्रकार मृत्यु और जरासे रहित श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उस सेनाको लाँघकर संतुष्ट दीखते थे ॥ २० ॥

तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥ २१ ॥
द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥

इन दोनोंके मुखकी कान्ति वैसी ही थी, ऐसा सभी सैनिक मान रहे थे । विषधर सर्प और प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर द्रोणाचार्य तथा अन्य नरेशोंके हाथसे छूटे हुए दो प्रकाशमान सूर्योंके सदृश श्रीकृष्ण और अर्जुनको वहाँ देखकर आपके समस्त सैनिक सब ओरसे कोलाहल मचा रहे थे ॥ २१-२२ ॥

विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिंदमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥ २३ ॥

समुद्रके समान विशाल द्रोणसेनासे मुक्त हुए वे दोनों शत्रुदमन वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐसे प्रसन्न दिखायी देते थे, मानो महासागर लाँघ गये हों ॥ २३ ॥

अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्य और कृतवर्माद्वारा सुरक्षित महान् अस्त्र-समुदायसे छूटकर वे दोनों वीर समराङ्गणमें इन्द्र और अग्नि-के समान प्रकाशमान दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥

द्रोणाचार्यके तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीर छिदे हुए थे और उनसे रक्तकी धारा बह रही थी । उस समय वे लाल कनेरसे भरे हुए दो पर्वतोंके समान सुशोभित होते थे ॥ २५ ॥

द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसंकटात् ।
अयःशरोग्रमकरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद् गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्य जिस सैन्य-सरोवरके ग्राहतुल्य जन्तु थे, जो शक्तिरूपी विषधर सर्पोंसे भरा था, लोहेके बाण जिसके भीतर भयंकर मगरका भय उत्पन्न करते थे, बड़े-बड़े क्षत्रिय जिसमें जलके समान शोभा पाते थे, धनुषकी टंकार जहाँ मेघगर्जनाके समान सुनायी पड़ती थी, गदा और खड्ग जहाँ विद्युत्के समान चमक रहे थे और द्रोणाचार्यके बाण ही जहाँ मेघ बनकर बरस रहे थे, उससे मुक्त हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६-२७ ॥

बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥

उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वर्षा ऋतुमें जलसे लबालब भरी हुई बड़े-बड़े ग्राहोंसे व्याप्त समुद्र-गामिनी इरावती (रावी), विपाशा (व्यास), वितस्ता (झेलम), शतद्रू (शतलज) और चन्द्रभागा (चनाब)— इन पाँचों नदियोंके साथ छठी सिंधु नदीको श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपनी भुजाओंसे तैरकर पार किया हो ॥२८॥

इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यके अस्त्र-बलका निवारण करनेके कारण समस्त प्राणी श्रीकृष्ण और अर्जुनको लोकविख्यात प्रशस्त गुणयुक्त महाधनुर्धर मानने लगे ॥ २९ ॥

जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥३०॥

जैसे पानी पीनेके घाटपर आये हुए रुरुमृगको दबोच लेनेकी इच्छासे दो व्याघ्र खड़े हों, उसी प्रकार निकटवर्ती

जयद्रथको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर देखते हुए वे दोनों वीर खड़े थे ॥ ३० ॥

यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

महाराज ! उस समय उन दोनोंके मुखपर जैसी समुज्ज्वल कान्ति थी, उसके अनुसार आपके योद्धाओंने जयद्रथको मरा हुआ ही माना ॥ ३१ ॥

लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥

एक साथ बैठे हुए लाल नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथको देखकर हर्षसे उल्लसित हो बारंबार गर्जना करने लगे ॥ ३२ ॥

शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः।
तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥

राजन् ! हाथोंमें बागडोर लिये श्रीकृष्ण और धनुष धारण किये अर्जुन—इन दोनोंकी प्रभा सूर्य और अग्निके समान जान पड़ती थी ॥ ३३ ॥

हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥

जैसे मांसका टुकड़ा देखकर दो बाजोंको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त हुए उन दोनों वीरोंको अपने पास ही जयद्रथको देखकर सब प्रकारसे हर्ष ही हुआ ॥ ३४ ॥

तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्तमानमिवान्तिके।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषम् ॥ ३५ ॥

अपने समीप ही खड़े हुए-से सिन्धुराज जयद्रथको देखकर तत्काल वे दोनों वीर कुपित हो उसी प्रकार सहसा उसपर टूट पड़े, जैसे दो बाज मांसपर झपट रहे हों ॥ ३५ ॥

तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनंजयौ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं, यह देखकर आपके पुत्र दुर्योधनने सिन्धुराजकी रक्षाके लिये पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः।
ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७ ॥

प्रभो ! घोड़ोंके संस्कारको जाननेवाला राजा दुर्योधन उस समय द्रोणाचार्यके बाँधे हुए कवचको धारण करके एकमात्र रथकी सहायतासे युद्धभूमिमें गया था ॥ ३७ ॥

कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनको लाँघकर आपका पुत्र कमलनयन श्रीकृष्णके सामने जा पहुँचा ॥

ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत्।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनंजयम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन जब अर्जुनको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, तब सारी सेनाओंमें हर्षपूर्ण बाजे बजने लगे ॥ ३९ ॥

सिंहनादरवाश्चासन्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥

दुर्योधनको वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने खड़ा देख शङ्खोंकी ध्वनिसे मिले हुए सिंहनादके शब्द सब ओर गूँजने लगे ॥ ४० ॥

ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः।
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥

प्रभो ! सिन्धुराजकी रक्षा करनेवाले जो अग्निके समान तेजस्वी वीर थे, वे आपके पुत्रको समराङ्गणमें डटा हुआ देख बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम्।
अब्रवीदर्जुनं राजन् प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥

राजन् ! सेवकोंसहित दुर्योधन सबको लाँघकर सामने आ गया—यह देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह समयोचित बात कही ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमने एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका आगमनविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी प्रशंसापूर्वक उसे प्रोत्साहन देना, अर्जुन और दुर्योधनका एक दूसरेके सम्मुख आना, कौरव-सैनिकोंका भय तथा दुर्योधनका अर्जुनको ललकारना

वासुदेव उवाच

दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनंजय।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले—धनंजय ! सबको लाँघकर सामने आये हुए इस दुर्योधनको देखो। मैं तो इसे अत्यन्त अद्भुत योद्धा मानता हूँ। इसके समान दूसरा कोई रथी नहीं है ॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥

यह महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाला, महान् धनुर्धर, अस्त्र-विद्यामें निपुण और युद्धमें दुर्मद है। इसके अस्त्र-शस्त्र अत्यन्त सुदृढ़ हैं तथा यह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला है ॥ २ ॥

अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार ! महारथी दुर्योधन अत्यन्त सुखसे पला हुआ सम्मानित और विद्वान् है। यह तुम-जैसे बन्धु-बान्धवोंसे नित्य-निरन्तर द्वेष रखता है ॥ ३ ॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥

निष्पाप अर्जुन ! मैं समझता हूँ, इस समय इसीके साथ युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। यहाँ तुमलोगोंके अधीन जो रणद्यूत होनेवाला है, वही विजय अथवा पराजयका कारण होगा ॥ ४ ॥

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम्।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥

पार्थ ! तुम बहुत दिनोंसे सँजोकर रक्खे हुए अपने क्रोधरूपी विषको इसके ऊपर छोड़ो। महारथी दुर्योधन ही पाण्डवोंके सारे अनर्थोंकी जड़ है ॥ ५ ॥

सोऽयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः।
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम्॥ ६ ॥

आज यह तुम्हारे बाणोंके मार्गमें आ पहुँचा है। इसे तुम अपनी सफलता समझो; अन्यथा राज्यकी अभिलाषा रखनेवाला राजा दुर्योधन तुम्हारे साथ युद्ध-भूमिमें कैसे उतर सकता था ? ॥ ६ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम्।
यथायं जीवितं जह्यात् तथा कुरु धनंजय ॥ ७ ॥

धनंजय ! सौभाग्यवश यह दुर्योधन इस समय तुम्हारे बाणोंके पथमें आ गया है। तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह अपने प्राणोंको त्याग दे ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान्।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

पुरुषरत्न ! ऐश्वर्यके घमंडमें चूर रहनेवाले इस दुर्योधनने कभी कष्ट नहीं उठाया है। यह युद्धमें तुम्हारे बल-पराक्रमको नहीं जानता है ॥ ८ ॥

त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥

पार्थ ! देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोक भी रणक्षेत्रमें तुम्हें जीत नहीं सकते। फिर अकेले दुर्योधनकी तो औकात ही क्या है ? ॥ ९ ॥

स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम्।
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः ॥ १० ॥

कुन्तीकुमार ! सौभाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे रथके निकट आ पहुँचा है। महाबाहो ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार तुम भी इस दुर्योधनको मार डालो ॥

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवानघ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥

अनघ ! यह सदा तुम्हारा अनर्थ करनेमें ही पराक्रम दिखाता आया है। इसने धर्मराज युधिष्ठिरको जूएमें छल-कपटसे ठग लिया है ॥ ११ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥

मानद ! तुमलोग कभी इसकी बुराई नहीं करते थे, तो भी इस पापबुद्धि दुर्योधनने सदा तुमलोगोंके साथ बहुत-से क्रूरतापूर्ण बर्ताव किये हैं ॥ १२ ॥

तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामचारिणम्।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन् ॥ १३ ॥

पार्थ ! तुम युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले बिना किसी सोच-विचारके, सदा क्रोधमें भरे रहनेवाले इस स्वेच्छाचारी दुष्ट पुरुषको मार डालो ॥ १३ ॥

निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमम् ॥ १४ ॥

पाण्डुनन्दन ! दुर्योधनने छलसे तुमलोगोंका राज्य छीन लिया है, तुम्हें जो वनवासका कष्ट भोगना पड़ा है तथा द्रौपदीको जो दुःख और अपमान उठाना पड़ा है—इन सब बातोंको मन-ही-मन याद करके पराक्रम करो ॥ १४ ॥

दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्तते।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥

सौभाग्यसे ही यह दुर्योधन तुम्हारे बाणोंकी पहुँचके भीतर चक्कर लगा रहा है। यह भी भाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे कार्यमें बाधा डालनेके लिये सामने आकर प्रयत्नशील हो रहा है ॥ १५ ॥

दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६ ॥

पार्थ ! भाग्यवश समराङ्गणमें तुम्हारे साथ युद्ध करना यह अपना कर्तव्य समझता है और भाग्यसे ही न चाहनेपर भी तुम्हारे सारे मनोरथ सफल हो रहे हैं ॥ १६ ॥

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम्।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥

कुन्तीकुमार ! जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने देवासुर-संग्राममें जम्भका वध किया था, उसी प्रकार तुम रणक्षेत्रमें कुलकलङ्क धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मार डालो ॥ १७ ॥

अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम् ।
वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥

इसके मारे जानेपर अनाथ हुई इस कौरवसेनाका संहार करो, दुरात्माओंकी जड़ काट डालो, जिससे इस वैररूपी यज्ञका अन्त होकर अवभृथस्नानका अवसर प्राप्त हो ॥१८॥

संजय उवाच

तं तथेत्यब्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम ।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तब कुन्तीकुमार अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'यह मेरे लिये सबसे महान् कर्तव्य प्राप्त हुआ है । अन्य सब कार्योंकी अवहेलना करके आप वहीं चलिये, जहाँ दुर्योधन खड़ा है ॥

येनैतद् दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्य छिन्द्यां मूर्धानमाहवे ॥ २० ॥

'जिसने दीर्घकालतक हमारे इस अकंटक राज्यका उपभोग किया है, मैं युद्धमें पराक्रम करके उस दुर्योधनका मस्तक काट डालूँगा ॥ २० ॥

अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥ २१ ॥

'माधव ! जो क्लेश भोगनेके योग्य नहीं है, उस द्रौपदीका केश पकड़कर जो उसे अपमानित किया गया है, उसका बदला इस दुर्योधनको मारकर ही चुका सकता हूँ ॥ २१ ॥

(अप्यहं तानि दुःखानि पूर्ववृत्तानि माधव ।
दुर्योधनं रणे हत्वा प्रतिमोक्ष्ये कथंचन ॥)

'श्रीकृष्ण ! समराङ्गणमें दुर्योधनका वध करके मैं किसी प्रकार उन सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाऊँगा, जो पूर्वकालमें भोगने पड़े हैं' ॥

इत्येवंवादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान् हयोत्तमान् ।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥

इस प्रकारकी बातें करते हुए उन दोनों कृष्णोंने युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको अपना लक्ष्य बनानेके लिये हर्षपूर्वक अपने उत्तम सफेद घोड़ोंको उसकी ओर बढ़ाया ॥ २२ ॥

तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३ ॥

आर्य ! भरतभूषण ! आपके पुत्रने उन दोनोंके समीप पहुँचकर महान् भयका अवसर प्राप्त होनेपर भी भय नहीं माना॥

तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् ॥ २४ ॥

अपने सामने आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको दुर्योधनने जो रोक दिया, उसके इस कार्यकी वहाँ सभी क्षत्रियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
महानादो ह्यभूत् तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥

प्रजानाथ ! युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको उपस्थित देख आपकी सारी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा ॥ २५ ॥

तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥

जिस समय वह भयंकर जन-कोलाहल हो रहा था, उसी समय आपके पुत्रने अपने शत्रुको कुछ भी न समझकर आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २६ ॥

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद् भूयः स च तस्मिन् परंतपः ॥ २७ ॥

आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनद्वारा रोके जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन पुनः उसके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ २७ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनंजयौ ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥

दुर्योधन तथा अर्जुनको परस्पर कुपित देख भयंकर नरेशगण सब ओर खड़े हो चुपचाप देखने लगे ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥

आर्य ! अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त रोषमें भरे देख आपके पुत्रने जोर-जोरसे हँसते हुए ही युद्धकी इच्छासे उन दोनोंको ललकारा ॥ २९ ॥

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनंजयः ।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ ॥ ३० ॥

तब हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद किया और अपने उत्तम शङ्खोंको बजाया॥

तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः ।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥

उन दोनोंको हर्षोल्लाससे परिपूर्ण देख सम्पूर्ण कौरव-सैनिक आपके पुत्रके जीवनसे निराश हो गये ॥ ३१ ॥

शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥

अन्य सब कौरव भी शोकमग्न हो गये और आपके पुत्रको आगके मुखमें होम दिया गया—ऐसा मानने लगे ॥

तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार हर्षमग्न देख आपके समस्त सैनिक भयसे पीड़ित हो ऐसा कहते हुए कोलाहल करने लगे कि 'हाय ! राजा दुर्योधन मारे गये, मारे गये' ॥ ३३ ॥

जनस्य संनिनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥

लोगोंका वह आर्तनाद सुनकर दुर्योधन बोला—'तुम लोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। मैं इन दोनों कृष्णोंको मृत्युके घर भेज दूँगा' ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा सैनिकान् सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अपने सम्पूर्ण सैनिकोंसे ऐसा कहकर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजा दुर्योधनने कुन्तीकुमारको सम्बोधित करके क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ ३५ ॥

पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च।
तद् दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! यदि तुम पाण्डुके बेटे हो तो तुमने जो लौकिक एवं दिव्य अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है, उन सबको मेरे ऊपर शीघ्र दिखाओ ॥ ३६ ॥

यद् बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च।
तत् कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥

'तुममें और श्रीकृष्णमें जो बल और पराक्रम हो, उसे मेरे ऊपर शीघ्र प्रकट करो। हम देखते हैं कि तुममें कितना पुरुषार्थ है ॥ ३७ ॥

अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

'हमारे परोक्षमें लोग स्वामीके सत्कारसे युक्त तुम्हारे किये हुए जिन कर्मोंका वर्णन करते हैं, उन्हें यहाँ दिखाओ'॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनवचनविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और अर्जुनका युद्ध तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुनसे ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने तीन अत्यन्त वेगशाली मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला और चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ १ ॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥

इसी प्रकार दस बाण मारकर उसने श्रीकृष्णकी भी छाती छेद डाली और एक भल्लसे उनके चाबुकको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २ ॥

तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥

तब व्यग्रतारहित अर्जुनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए विचित्र पंखवाले चौदह बाणोंद्वारा तुरंत उसे घायल किया; परंतु उनके वे बाण दुर्योधनके कवचपर जाकर फिसल गये ॥ ३ ॥

तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च।
प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणः॥ ४ ॥

उन्हें निष्फल हुआ देख अर्जुनने पुनः चौदह तीखे बाण चलाये; परंतु वे भी कवचसे फिसल गये ॥ ४ ॥

अष्टाविंशांस्तु तान् बाणानस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान्।
अब्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥

अर्जुनके चलाये हुए उन अट्ठाईस बाणोंको निष्फल हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा—॥५॥

अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम्।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥

'पार्थ ! आज तो मैं प्रस्तरखण्डोंके चलनेके समान ऐसी बात देख रहा हूँ, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। तुम्हारे चलाये हुए बाण तो कोई काम नहीं कर रहे हैं ॥६॥

कच्चिद् गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे गाण्डीव-धनुषकी शक्ति पहले-जैसी ही है न ? तुम्हारी मुट्ठी एवं बाहुबल भी पूर्ववत् हैं न ? ॥

न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः।
तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥

'आज तुम्हारी और तुम्हारे इस शत्रुकी अन्तिम भेंटका समय नहीं आया है क्या ? मैं जो पूछता हूँ, उसका उत्तर दो॥

विस्मयो मे महान् पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान्।
व्यर्थान् निपतितान् संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! आज युद्धस्थलमें दुर्योधनके रथके पास निष्फल होकर गिरे हुए तुम्हारे इन बाणोंको देखकर मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है ॥ ९ ॥

वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः।
शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काद्य विडम्बना ॥ १० ॥

'पार्थ ! वज्र और अशनिके समान भयंकर तथा शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले तुम्हारे वे बाण आज कुछ काम नहीं कर रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है ?' ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता।
अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! मेरा तो यह विश्वास है कि दुर्योधनको द्रोणाचार्यने अभेद्य कवच बाँधकर उसमें यह अद्भुत शक्ति स्थापित कर दी है। यह कवचधारणा मेरे अस्त्रोंके लिये अभेद्य है ॥ ११ ॥

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण ! इस कवचके भीतर तीनों लोकोंकी शक्ति संनिहित है। एकमात्र आचार्य द्रोण ही इस विद्याको जानते हैं और उन्हीं सद्गुरुसे सीखकर मैं भी इसे जान पाया हूँ ॥

न शक्यमेतत् कवचं बाणैर्भेत्तुं कथंचन।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥

इस कवचको किसी प्रकार बाणोंद्वारा विदीर्ण नहीं किया जा सकता। गोविन्द ! युद्धस्थलमें साक्षात् देवराज इन्द्र अपने वज्रसे भी इसका विदारण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम्।
यद् वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्तते ॥ १४ ॥
तथा भविष्यद् यच्चैव तत् सर्वं विदितं तव।
न त्विदं वेद वै कश्चिद् यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! आप यह सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोहमें कैसे डाल रहे हैं ? केशव ! तीनों लोकोंमें जो बात हो चुकी है, जो हो रही है तथा जो कुछ आगे होनेवाली है, वह सब आपको विदित है। मधुसूदन ! इसे आप जैसा जानते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ १४-१५ ॥

एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम्।
तिष्ठत्यभीतवत् संख्ये बिभ्रत् कवचधारणाम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्यके द्वारा विधिपूर्वक धारण करायी हुई इस कवचधारणाको ग्रहण करके यह दुर्योधन युद्धस्थलमें निर्भय-सा खड़ा है ॥ १६ ॥

यस्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद् वेत्ति माधव।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥

माधव ! इसे धारण करनेपर जिस कर्तव्यके पालनका विधान किया गया है, उसे यह नहीं जानता है। जैसे स्त्रियाँ गहने पहन लेती हैं, उसी प्रकार यह दूसरेके द्वारा दी हुई इस कवचधारणाको अपनाये हुए है ॥ १७ ॥

पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् ॥ १८ ॥

जनार्दन ! अब आप मेरी भुजाओं और धनुषका बल देखिये। मैं कवचसे सुरक्षित होनेपर भी दुर्योधनको पराजित कर दूँगा ॥ १८ ॥

इदमङ्गिरसे प्रादाद् देवेशो वर्म भास्वरम्।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरंदरः ॥ १९ ॥

देवेश्वर ! ब्रह्माजीने यह तेजस्वी कवच अङ्गिराको दिया था। उनसे बृहस्पतिजीने प्राप्त किया था। बृहस्पतिजीसे वह इन्द्रको मिला ॥ १९ ॥

पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम्।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया।

फिर देवराज इन्द्रने विधि एवं रहस्यसहित वह कवच मुझे प्रदान किया। यदि दुर्योधनका यह कवच देवताओंद्वारा निर्मित हो अथवा स्वयं ब्रह्माजीका बनाया हुआ हो तो भी आज मेरे बाणोंद्वारा मारे गये इस दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह बचा नहीं सकेगा ॥ २०½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनो बाणमभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर माननीय अर्जुनने कठोर आवरणका भेदन करनेवाले मानवास्त्रसे अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके धनुषकी डोरीको खींचा ॥ २१½ ॥

विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना।

धनुषके बीचमें रखकर अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले उन बाणोंको अश्वत्थामाने सर्वास्त्रघातक अस्त्रके द्वारा काट डाला ॥

तान् निकृत्तानिषून् दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥
न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः।

ब्रह्मवादी अश्वत्थामाके द्वारा दूरसे ही काट दिये गये उन बाणोंको देखकर श्वेतवाहन अर्जुन चकित हो उठे और श्रीकृष्णको सूचित करते हुए बोले—॥ २३½ ॥

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम।

'जनार्दन ! इस अस्त्रका मैं दो बार प्रयोग नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा करनेपर यह मुझे ही मार डालेगा और मेरी सेनाका भी संहार कर देगा' ॥ २४½ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥
अविध्यत रणे राजञ्छरैराशीविषोपमैः।

राजन् ! इसी समय दुर्योधनने रणक्षेत्रमें विषधर सर्पके समान भयंकर नौ-नौ बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥
शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः।
चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥

उसने समरभूमिमें बड़ी भारी बाणवर्षा करके श्रीकृष्ण और पाण्डुकुमार धनंजयपर पुनः बाणोंकी झड़ी लगा दी। इससे आपके सैनिक बड़े प्रसन्न हुए। वे बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २६-२७ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन्।
नापश्यच्च ततोऽस्याङ्गं यन्न स्याद् वर्मरक्षितम्॥२८॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुन अपने मुँहके कोने चाटने लगे। उन्होंने दुर्योधनका कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं देखा, जो कवचसे सुरक्षित न हो ॥ २८ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥२९॥

तदनन्तर अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए कालोपम तीखे बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ों और दोनों पृष्ठ-रक्षकोंको मार डाला ॥ २९ ॥

धनुरस्याच्छिनत् तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान्।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३०॥

तत्पश्चात् पराक्रमी सव्यसाची अर्जुनने तुरंत ही उसके धनुष और दस्तानेको काट दिया और रथको टूक-टूक करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम्।
आविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१॥

उस समय पार्थने रथहीन हुए दुर्योधनकी दोनों हथेलियोंमें दो पैने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१ ॥

प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२॥

उपायको जाननेवाले कुन्तीकुमारने अपने बाणोंद्वारा दुर्योधनके नखोंके मांसमें प्रहार किया। तब वह वेदनासे व्याकुल हो युद्धभूमिसे भाग चला ॥ ३२ ॥

तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः।
समापेतुः परीप्सन्तो धनंजयशरार्दितम् ॥३३॥

धनंजयके बाणोंसे पीड़ित हुए दुर्योधनको भारी विपत्तिमें पड़ा हुआ देख श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा उसकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥३४॥

उन्होंने कई हजार रथों, सजे-सजाये हाथियों, घोड़ों तथा रोषमें भरे हुए पैदल सैनिकोंद्वारा अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया॥ ३४ ॥

अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५॥

उस समय बड़ी भारी बाणवर्षा और जनसमुदायसे घिरे हुए अर्जुन, श्रीकृष्ण और उनका रथ—इनमेंसे कोई भी दिखायी नहीं देता था ॥ ३५ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम्।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३६ ॥

तब अर्जुन अपने अस्त्रबलसे उस कौरवसेनाका विनाश करने लगे। वहाँ सैकड़ों रथ और हाथी अंग-भंग होनेके कारण धराशायी हो गये ॥ ३६ ॥

ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम्।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७ ॥

उन हताहत होनेवाले कौरवसैनिकोंने उत्तम रथी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। वे जयद्रथसे एक कोसकी दूरीपर चारों ओरसे रथसेनाद्वारा घिरे हुए खड़े थे ॥ ३७ ॥

ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत्।
धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चाम्बुजम् ॥ ३८ ॥

तब वृष्णिवीर श्रीकृष्णने तुरंत ही अर्जुनसे कहा—'तुम जोर-जोरसे धनुषको खींचो और मैं अपना शङ्ख बजाऊँगा।' ॥

ततो विस्फार्य बलवद् गाण्डीवं जघ्निवान् रिपून्।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३९ ॥

यह सुनकर अर्जुनने बड़े जोरसे गाण्डीव धनुषको खींचकर हथेलीके चटचट शब्दके साथ भारी बाणवर्षा करते हुए शत्रुओंका संहार आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

पाञ्चजन्यं च बलवान् दध्मौ तारेण केशवः।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्ताः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४० ॥

बलवान् केशवने उच्चस्वरसे पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय उनकी पलकें धूलधूसरित हो रही थीं और उनके मुखपर बहुत-सी पसीनेकी बूँदें छा रही थीं ॥ ४० ॥

(तेनाच्युतोष्ठयुगपूरितमारुतेन
शङ्खान्तरोदरविवृद्धविनिःसृतेन।
नादेन सासुरवियत्सुरलोकपाल-
मुद्विग्नमीश्वर जगत् स्फुटतीव सर्वम् ॥)

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१ ॥

'नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्णके दोनों ओठोंसे भरी हुई वायु शङ्खके भीतरी भागमें प्रवेश करके पुष्ट हो जब गम्भीर नादके रूपमें बाहर निकली, उस समय असुरलोक (पाताल), अन्तरिक्ष, देवलोक और लोकपालोंसहित सम्पूर्ण जगत् भयसे उद्विग्न हो विदीर्ण होता-सा जान पड़ा। उस शङ्खकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे उद्विग्न हो निर्बल और सबल सभी शत्रु-सैनिक उस समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥

तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाम्बुदः।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२ ॥

उनके घेरेसे मुक्त हुआ अर्जुनका रथ वायुसंचालित मेघके समान शोभा पाने लगा। इससे जयद्रथके रक्षक सेवकोंसहित क्षुब्ध हो उठे ॥ ४२ ॥

ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु।
चक्रुर्नादान् महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुंधराम् ॥ ४३ ॥

जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए महाधनुर्धर वीर सहसा अर्जुनको देखकर पृथ्वीको कँपाते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४३ ॥

बाणशब्दरवांश्चोग्रान् विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४ ॥

उन महामनस्वी वीरोंने शङ्खध्वनिसे मिले हुए बाणजनित भयंकर शब्दों और सिंहनादको भी प्रकट किया ।४४।

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम्।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४५ ॥

आपके सैनिकोंद्वारा किये हुए उस भयंकर कोलाहलको सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने श्रेष्ठ शङ्खोंको बजाया ॥

तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुंधरा।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! उस महान् शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालसहित यह सारी पृथ्वी गूँज उठी ॥ ४६ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह शब्द सम्पूर्ण दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर वहीं कौरव-पाण्डव सेनाओंमें प्रतिध्वनित होता रहा ॥

तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनंजयौ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥

आपके रथी और महारथी वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको उपस्थित देख बड़े भारी उद्वेगमें पड़कर उतावले हो उठे ॥

अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४९ ॥

आपके योद्धा कवच धारण किये महाभाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको आया हुआ देख कुपित हो उनकी ओर दौड़े, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधन-पराजयविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध

संजय उवाच

तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके सैनिक इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण तथा कुरुकुलरत्न अर्जुनको आगे देखकर उनका वध करनेकी इच्छासे उतावले हो उठे। इसी प्रकार अर्जुन भी शत्रुओंके वधकी अभिलाषासे शीघ्रता करने लगे ॥ १ ॥

सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥

वे कौरव सैनिक व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुवर्णजटित और गम्भीर घोष करनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विशाल रथोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ २ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते।
कूजद्भिरतुलान् नादान् कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! वे सोनेके पंखवाले दुर्लक्ष्य बाणों और क्रोधमें भरे हुए घोड़ोंके समान अनुपम टंकारध्वनि करनेवाले धनुषोंके द्वारा भी समस्त दिशाओंमें दीप्ति बिखेर रहे थे ॥

भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥

ते पिबन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः।
व्यराजयन् दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥

भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा—ये आठ महारथी व्याघ्रचर्मद्वारा आच्छादित तथा सुवर्णमय चन्द्रचिह्नोंसे विभूषित अश्वोंद्वारा आकाशको पीते हुए-से दसों दिशाओंको सुशोभित कर रहे थे ॥ ४-५ ॥

ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः।
समावृण्वन् दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान् महारथान्।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥

रोसमें भरे हुए उन कवचधारी वीरोंने मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले रथों और पैने बाणों द्वारा अर्जुनकी दसो दिशाओंको आच्छादित कर दिया कुलूतदेशके विचित्र एवं शीघ्रगामी घोड़े उस समय उन महारथियोंके वाहन बनकर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः।
पर्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः।
धनंजयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥

राजन्! नाना देशोंमें उत्पन्न महान् वेगशाली आजानेय[1], पर्वतीय[2] (पहाड़ी), नदीज[3] (दरियाई) तथा सिंधुदेशीय उत्तम घोड़ोंद्वारा आपके पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक हुए श्रेष्ठ कौरव योद्धा सब ओरसे शीघ्र ही अर्जुनके रथपर टूट पड़े ॥ ८-९ ॥

ते प्रगृह्य महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः।
पूरयन्तो दिवं राजन् पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥

नरेश्वर! उन पुरुषप्रवर योद्धाओंने समुद्रसहित पृथ्वी और आकाशको शब्दोंसे व्याप्त करते हुए बड़े-बड़े शङ्ख लेकर बजाये ॥ १० ॥

तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन भूतलके समस्त शङ्खोंमें उत्तम अपने दिव्य शङ्ख बजाने लगे ॥

देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनंजयसमीरितः ॥ १२ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत्।

कुन्तीकुमार अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य। धनंजयके बजाये हुए देवदत्तका शब्द पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके बजाये हुए पाञ्चजन्यने भी सम्पूर्ण शब्दोंको दबाकर अपनी ध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको भर दिया ॥ १३½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः।
महारथाः समाख्याता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६ ॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥
अमर्षिता महाशङ्खान् दध्मुर्वीरा महारथाः।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १८ ॥

राजेन्द्र! इस प्रकार जब वहाँ भयंकर शब्द व्याप्त हो गया, जो कायरोंको डराने और शूरवीरोंके हर्षको बढ़ानेवाला था, जब भेरी, झाँझ, ढोल और मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने और बजाये जाने लगे, उस समय दुर्योधनका हित चाहनेवाले विख्यात महारथी उस शब्दको न सह सकनेके कारण कुपित हो उठे। वे नाना देशोंमें उत्पन्न वीर, महारथी, महाधनुर्धर महीपाल, जो अपनी सेनाका संरक्षण कर रहे थे, अमर्षमें भरकर बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे; वे श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रत्येक कार्यका बदला चुकानेको उद्यत थे ॥ १४-१८ ॥

बभूव तव तत् सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम्।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥

प्रभो! आपकी वह सेना शङ्खके शब्दसे व्याप्त होनेके कारण अस्वस्थ-सी दिखायी देती थी। उसके हाथी, घोड़े और रथी सभी उद्विग्न हो उठे थे ॥ १९ ॥

तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शङ्खविनादितम्।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥

शूरवीरोंने शङ्खध्वनिसे आकाशको विद्ध-सा कर डाला। वह वज्रकी गड़गड़ाहटसे व्याप्त सा होकर अत्यन्त उद्वेगजनक हो गया ॥ २० ॥

स शब्दः सुमहान् राजन् दिशः सर्वा व्यनादयत्।
त्रासयामास तत् सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥

राजन्! प्रलयकालके समान सब ओर फैला हुआ वह महान् शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने और आपकी सेनाको डराने लगा ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥

तदनन्तर दुर्योधन तथा आठ महारथी नरेशोंने जयद्रथकी रक्षाके लिये अर्जुनको घेर लिया ॥ २२ ॥

ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत्।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥

उस समय अश्वत्थामाने भगवान् श्रीकृष्णको तिहत्तर

---

१. आजानेयका लक्षण इस प्रकार है—गुणगन्धाः काये ये शुभलक्षणाः कान्तितो जितक्रोधाः। सारयुता जितेन्द्रियाः क्षुत्तृडाहितं चापि नो दुःखम् ॥ जानन्त्याजानेया निर्दिष्टा वाजिनो धीरैः। अर्थात् जिनके शरीरसे गुड़की-सी गन्ध आती हो, जो कान्तिसे अत्यन्त चिकने और चमकीले जान पड़ते हों, क्रोधको जीत चुके हों, बलवान् और जितेन्द्रिय हों तथा भूख-प्यासके कष्टका अनुभव न करते हों, उन घोड़ोंको धीर पुरुषोंने 'आजानेय' कहा है।

२. पर्वतीय घोड़ोंका लक्षण यों होना चाहिये—वाहास्तु पर्वतीया बलान्विताः स्निग्धकेशाश्च वृत्तखुरा दृढपादा महाजवास्तेऽतिविख्याताः। अर्थात् अत्यन्त विख्यात 'पर्वतीय' घोड़े बलवान् होते हैं, उनके बाल चिकने, टाप गोल, पैर सुदृढ़ और वेग महान् होते हैं।

३. नदीज या दरियाई घोड़ोंका लक्षण इस प्रकार है—अश्वाः सकर्णिकाराः कचन नदीतीरजाः समुद्दिष्टाः। पूर्वार्धेंऽयूदग्राः पश्चार्धे चानताः किंचित्। कहीं नदीके तटपर उत्पन्न हुए कनेरयुक्त अश्व 'नदीज' कहलाते हैं। वे आगेके आधे शरीरसे ऊँचे और पिछले आधे शरीरसे कुछ नीचे होते हैं।

बाण मारे, तीन भल्लोंसे अर्जुनको चोट पहुँचायी और पाँचसे उनके ध्वज एवं घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ २३ ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥

श्रीकृष्णके घायल हो जानेपर अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने छः सौ बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २४ ॥

कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २५ ॥

फिर पराक्रमी अर्जुनने दस बाणोंसे कर्णको और तीन बाणोंद्वारा वृषसेनको घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला ॥ २५ ॥

गृहीत्वा धनुरन्यत् तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥

तब शल्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला । भूरिश्रवाने सानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥

कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७ ॥
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।

फिर कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दस तथा मद्रराज शल्यने भी दस बाण मारकर रणक्षेत्रमें अर्जुनको बींध डाला ॥ २७½ ॥

ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८ ॥
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने अर्जुनपर साठ बाण बरसाये, फिर श्रीकृष्णको बीस और अर्जुनको भी पाँच बाण मारे ॥

प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यत् स तान् सर्वान् दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

तब श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन पुरुषसिंह अर्जुनने जोर-जोरसे हँसते और हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उन सबको बींधकर बदला चुकाया ॥ २९½ ॥

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३० ॥
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।

कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे पुनः काट डाला ॥ ३०½ ॥

सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ॥ ३१ ॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाष्टभिः ।

इसके बाद भूरिश्रवाको तीन और शल्यको दस बाणोंसे बींधकर अग्निकी ज्वालाके समान आकारवाले आठ तीखे बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ३१½ ॥

गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२ ॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कृपाचार्यको पचीस, जयद्रथको सौ तथा अश्वत्थामाको पुनः उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ ३२½ ॥

भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ॥ ३४ ॥

भूरिश्रवाने कुपित होकर श्रीकृष्णका चाबुक काट डाला और अर्जुनको तिहत्तर बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३३-३४ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ।
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥

तदनन्तर जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्वेतवाहन अर्जुनने कुपित हो सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा उन शत्रुओंको तुरंत पीछे हटा दिया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुन तथा कौरव-महारथियोंके ध्वजोंका वर्णन और नौ महारथियोंके साथ अकेले अर्जुनका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

ध्वजान् बहुविधाकारान् भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तान् ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे तथा कुन्तीके पुत्रोंके जो नाना प्रकारके ध्वज अत्यन्त शोभासे उद्भासित हो रहे थे, उनका मुझसे वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

ध्वजान् बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! उन महामनस्वी वीरोंके जो नाना प्रकारकी आकृतिवाले ध्वज फहरा रहे थे, उनका रूप-रंग और नाम मैं बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २ ॥

तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! उन श्रेष्ठ महारथियोंके रथोंपर भाँति-भाँतिके ध्वज प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी दिखायी देते थे ॥

काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव श्रृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥

वे ध्वज सोनेके बने थे। उनके ऊपरी भागको सुवर्णसे ही सजाया गया था। सोनेकी ही मालाओंसे वे अलंकृत थे। अतः सुवर्णमय महापर्वत सुमेरुके स्वर्णमय शिखरोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४ ॥

अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः ।

वे परम शोभासम्पन्न अनेक प्रकारके बहुरंगे ध्वज सब ओरसे नाना रंगकी पताकाओंद्वारा घिरकर बड़ी शोभा पाते थे ॥ ५½ ॥

पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ।

उनकी वे पताकाएँ वायुसे संचालित हो रंगमंचपर नृत्य करनेवाली विलासिनियोंके समान दिखायी देती थीं ॥ ६½ ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्रधनुषके समान प्रभावाली फहराती हुई पताकाएँ रथियोंके विशाल रथोंकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ७½ ॥

सिंहलाङ्गलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥
धनंजयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।

उस संग्राममें अर्जुनका भयंकर ध्वज वानरके चिह्नसे सुशोभित दिखायी देता था। उस वानरकी पूँछ सिंहके समान थी और उसका मुख बड़ा ही उग्र था ॥ ८½ ॥

स वानरवरो राजन् पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥
त्रासयामास तत् सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।

राजन् ! श्रेष्ठ वानरसे सुशोभित तथा पताकाओंसे अलंकृत गाण्डीवधारी अर्जुनका वह ध्वज आपकी उस सेनाको भयभीत किये देता था ॥ ९½ ॥

तथैव सिंहलाङ्गलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।

भारत ! इसी प्रकार हमलोगोंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके श्रेष्ठ ध्वजको प्रातःकालीन सूर्यके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित देखा था। उसमें सिंहकी पूँछका चिह्न था ॥ १०½ ॥

काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।

अश्वत्थामाका इन्द्रध्वजके समान प्रकाशमान सुवर्णमय ऊँचा ध्वज वायुकी प्रेरणासे फहराता हुआ कौरव-नरेशोंका आनन्द बढ़ा रहा था ॥ ११½ ॥

हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।

अधिरथपुत्र कर्णका ध्वज हाथीकी सुवर्णमयी रस्सीके चिह्नसे युक्त था। महाराज ! वह संग्राममें आकाशको भरता हुआ-सा दिखायी देता था ॥ १२½ ॥

पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।

युद्धस्थलमें कर्णके ध्वजपर सुवर्णमयी मालासे विभूषित पताका वायुसे आन्दोलित हो रथकी बैठकपर नृत्य-सा कर रही थी ॥ १३½ ॥

आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥
गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य सुपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद् गोवृषेण विराजता ।

पाण्डवोंके आचार्य, तपस्वी ब्राह्मण, गौतमगोत्रीय कृपाचार्यके ध्वजपर एक बैलका सुन्दर चिह्न अङ्कित था। राजन् ! उनका वह विशाल रथ उस वृषभचिह्नसे बड़ी शोभा पा रहा था; ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरनाशक महादेवजीका रथ सुन्दर वृषभचिह्नसे शोभायमान होता था ॥ १४–१५½ ॥

मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् ।

वृषसेनका मणिरत्नविभूषित सुवर्णमय ध्वज मयूर-चिह्नसे युक्त था। वह मयूर सेनाके अग्रभागकी शोभा बढ़ाता हुआ इस प्रकार खड़ा था, मानो बोल देगा ॥ १६½ ॥

तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥
यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ।

राजेन्द्र ! जैसे स्वामी स्कन्दका रथ सुन्दर मयूरचिह्नसे शोभित होता है, उसी प्रकार महामना वृषसेनका रथ उस मयूरचिह्नसे शोभा पा रहा था ॥ १७½ ॥

मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥ १८ ॥
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् ।

मद्रराज शल्यकी ध्वजाके अग्रभागमें हमने अग्निशिखाके समान उज्ज्वल, सुवर्णमय, अनुपम तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त एक सीता (हलसे भूमिपर खींची हुई रेखा) देखी थी ॥ १८½ ॥

सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ।

माननीय नरेश ! जैसे खेतमें हलकी नोकसे बनी हुई

रेखा सभी बीजोंके अङ्कुरित होनेपर शोभासम्पन्न दिखायी देती है, उसी प्रकार मद्रराजके रथका आश्रय ले वह सीता (हलद्वारा बनी हुई रेखा) बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १९½ ॥

वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ।

सिन्धुराज जयद्रथकी ध्वजाके अग्रभागमें उज्ज्वल सूर्यके समान श्वेत कान्तिमान् और सोनेकी जालीसे विभूषित चाँदीका बना हुआ वराहचिह्न अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २०½ ॥

शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।

जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें पूषा शोभा पाते थे, उसी प्रकार उस रजतनिर्मित ध्वजसे जयद्रथकी शोभा हो रही थी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥
ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते ।

सदा यज्ञमें लगे रहनेवाले बुद्धिमान् भूरिश्रवाके रथमें यूपका चिह्न बना था । वह ध्वज सूर्यके समान प्रकाशित होता था और उसमें चन्द्रमाका चिह्न भी दृष्टिगोचर होता था ॥ २२½ ॥

स यूपः काञ्चनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।

राजन् ! जैसे यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूयमें ऊँचा यूप सुशोभित होता है, भूरिश्रवाका वह सुवर्णमय यूप वैसे ही शोभा पा रहा था ॥ २३½ ॥

शलस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥ २४ ॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ।
स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

महाराज ! शलके ध्वजमें चाँदीका महान् गजराज बना हुआ था । भरतश्रेष्ठ ! वह ध्वज सुवर्णनिर्मित विचित्र अङ्गोंवाले मयूरोंसे सुशोभित था और आपकी सेनाकी शोभा बढ़ा रहा था ॥ २४-२५ ॥

यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥ २६ ॥

जैसे श्वेत वर्णका महान् ऐरावत हाथी देवराजकी सेनाको सुशोभित करता है, उसी प्रकार राजा दुर्योधनका सुवर्णमण्डित ध्वज मणिमय गजराजके चिह्नसे उपलक्षित होता था ॥ २६ ॥

किंकिणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ।

प्रजानाथ ! वह विचित्र ध्वज दुर्योधनके उत्तम रथपर सैकड़ों क्षुद्रघंटिकाओंकी ध्वनिसे शोभायमान था । उस महान् ध्वजसे युद्धस्थलमें आपके पुत्र कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी उस समय बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २७½ ॥

नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥ २८ ॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसंनिभाः ।

ये नौ उत्तम ध्वज आपकी सेनामें बहुत ऊँचे थे और प्रलयकालके सूर्यके समान अपना प्रकाश फैलाते हुए आपकी सेनाको उद्भासित कर रहे थे ॥ २८½ ॥

दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ।

दसवाँ ध्वज एकमात्र अर्जुनका ही था, जो विशाल वानरचिह्नसे सुशोभित था । उससे अर्जुन उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे, जैसे अग्निसे हिमालय पर्वत उद्भासित होता है ॥ २९½ ॥

ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परंतपाः ।

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन सब महारथियोंने अर्जुनको मारनेके लिये तुरंत ही विचित्र, चमकीले और विशाल धनुष हाथमें ले लिये ॥ ३०½ ॥

तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद् राजन् दुर्मन्त्रिते तव ।

राजन् ! उसी प्रकार दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशन पार्थने भी आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप अपने गाण्डीव धनुषको खींचा ॥ ३१½ ॥

तवापराधाद् राजानो निहता बहुशो युधि ॥ ३२ ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।

महाराज ! आपके अपराधसे उस युद्धस्थलमें अनेक दिशाओंसे आमन्त्रित होकर आये हुए बहुत-से राजा अपने घोड़ों, रथों और हाथियोंसहित मारे गये हैं ॥ ३२½ ॥

तेषामासीद् व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।

उस समय एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करनेवाले दुर्योधन आदि महारथियों तथा पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनमें परस्पर आघात-प्रतिघात होने लगा ॥ ३३½ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥ ३४ ॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।

वहाँ श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया कि अकेले ही बहुतोंके साथ निर्भय होकर युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ३५ ॥

जिगीषुस्तान् नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।

उनपर विजय पानेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे गाण्डीव धनुषको खींचते हुए पुरुषसिंह महाबाहु अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३५½ ॥

तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥
अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः ।

उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले नरव्याघ्र अर्जुनने अपने छोड़े हुए सहस्रों बाणोंद्वारा आपके योद्धाओंको अदृश्य कर दिया ॥ ३६½ ॥

ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।

तब उन सभी पुरुषसिंह महारथियोंने भी समराङ्गणमें सब ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥ ३७½ ॥

संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ।
महानासीत् समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥ ३८ ॥

जब कुरुश्रेष्ठ अर्जुन उन पुरुषसिंहोंद्वारा घेर लिये गये, तब उस सेनामें महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें ध्वजवर्णनविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

द्रोण और उनकी सेनाके साथ पाण्डव-सेनाका द्वन्द्वयुद्ध तथा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय रथ-भंग हो जानेपर युधिष्ठिरका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये, तब द्रोणाचार्यद्वारा रोके हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने कौरवोंके साथ क्या किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस दिन अपराह्ण-कालमें, जब रोमाञ्चकारी युद्ध चल रहा था, पाञ्चालों और कौरवोंमें द्रोणाचार्यको दाँवपर रखकर द्यूत-सा होने लगा ॥ २ ॥

पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः ।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! पाञ्चाल-सैनिक द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे प्रसन्नचित्त होकर गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्ततात्भुतः ।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥

तदनन्तर उन पाञ्चालों और कौरवोंमें घोर देवासुर-संग्रामके समान अद्भुत एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥

समस्त पाञ्चाल पाण्डवोंके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जाकर उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥ ५ ॥

द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥

वे पाञ्चाल रथी रथपर बैठकर मध्यम वेगका आश्रय ले पृथ्वीको कँपाते हुए द्रोणाचार्यके रथके अत्यन्त निकट जाकर उनका सामना करने लगे ॥ ६ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन् निशितान् बाणान् महेन्द्राशनिसंनिभान् ॥ ७ ॥

केकयदेशके महारथी वीर बृहत्क्षत्रने महेन्द्रके वज्रके समान तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ७ ॥

तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन् निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

उस समय महायशस्वी क्षेमधूर्ति सैकड़ों और हजारों तीखे बाण छोड़ते हुए शीघ्रतापूर्वक बृहत्क्षत्रका सामना करनेके लिये गये ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥

अत्यन्त बलसे विख्यात चेदिराज धृष्टकेतुने भी बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यपर धावा किया, मानो देवराज इन्द्रने शम्बरासुरपर चढ़ाई की हो ॥ ९ ॥

तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥

मुँह बाये हुए कालके समान सहसा आक्रमण करनेवाले धृष्टकेतुका सामना करनेके लिये महाधनुर्धर वीरधन्वा बड़े वेगसे आ पहुँचे ॥ १० ॥

युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम्।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान्॥ ११॥

तदनन्तर पराक्रमी द्रोणाचार्यने विजयकी इच्छासे सेनासहित खड़े हुए महाराज युधिष्ठिरको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ११॥

नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी।
अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो॥१२॥

प्रभो! आपके पराक्रमी पुत्र विकर्णने वहाँ आते हुए पराक्रमशाली युद्धकुशल नकुलका सामना किया॥ १२॥

सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः॥ १३॥

शत्रुसूदन दुर्मुखने अपने सामने आते हुए सहदेवपर कई हजार बाणोंकी वर्षा की॥ १३॥

सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत्।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः॥१४॥

व्याघ्रदत्तने अत्यन्त तेज किये हुए तीखे बाणोंद्वारा बारंबार शत्रुसेनाको कम्पित करते हुए वहाँ पुरुषसिंह सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोका॥ १४॥

द्रौपदेयान् नरव्याघ्रान् मुञ्चतः सायकोत्तमान्।
संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत्॥१५॥

मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी तथा श्रेष्ठ रथी द्रौपदीके पाँचों पुत्र कुपित होकर शत्रुओंपर उत्तम बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। सोमदत्तकुमार शलने उन सबको रोक दिया॥ १५॥

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यश्रृङ्गिर्महारथः॥ १६॥

भयंकर रूपधारी एवं भयानक महारथी ऋष्यश्रृङ्गकुमार अलम्बुषने उस समय क्रोधमें भरकर आते हुए भीमसेनको रोका॥ १६॥

तयोः समभवद् युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप॥ १७॥

राजन्! पूर्वकालमें जिस प्रकार श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें मानव भीमसेन तथा राक्षस अलम्बुषका युद्ध हुआ॥ १७॥

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम्।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत॥ १८॥

भरतनन्दन! तदनन्तर भरतभूषण युधिष्ठिरने झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया॥ १८॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना॥१९॥

भरतश्रेष्ठ! यशस्वी कुन्तीकुमारके क्रोध दिलानेपर द्रोणाचार्यने उनकी छातीमें पचीस बाण मारे॥ १९॥

भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत्।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ २०॥

फिर द्रोणने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते घोड़े, सारथि और ध्वजसहित युधिष्ठिरको बीस बाण मारे॥ २०॥

ताञ्शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ २१॥

धर्मात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए द्रोणाचार्यके छोड़े हुए उन बाणोंको अपनी बाण-वर्षाद्वारा रोक दिया॥ २१॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः॥ २२॥

तब धनुर्धर द्रोणाचार्य उस युद्धस्थलमें महात्मा धर्मराज युधिष्ठिरपर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने समराङ्गणमें युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया॥ २२॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः॥ २३॥

धनुष काट देनेके पश्चात् महारथी द्रोणाचार्यने बड़ी उतावलीके साथ कई हजार बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सब ओरसे ढक दिया॥ २३॥

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम्॥ २४॥

राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके बाणोंसे अदृश्य हुआ देख समस्त प्राणियोंने उन्हें मारा गया ही मान लिया॥२४॥

केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम्।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना॥ २५॥

राजेन्द्र! कुछ लोग ऐसा समझते थे कि युधिष्ठिर पराजित होकर भाग गये। कुछ लोगोंकी यही धारणा थी कि महामनस्वी ब्राह्मण द्रोणाचार्यके हाथसे राजा युधिष्ठिर मार डाले गये॥ २५॥

स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
त्यक्त्वा तत् कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे॥ २६॥
आददेऽन्यद् धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम्।

इस प्रकार भारी संकटमें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा काट दिये गये उस धनुषको त्यागकर दूसरा प्रकाशमान एवं अत्यन्त वेगशाली दिव्य धनुष धारण किया॥ २६½॥

ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान् सहस्रशः॥ २७॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत्।

तदनन्तर वीर युधिष्ठिरने समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके

चलाये हुए सहस्रों बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ २७½ ॥

छित्त्वा तु ताञ्छरान् राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः॥२८॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें क्रोधसे लाल आँखें किये युधिष्ठिरने द्रोणके उन बाणोंको काटकर एक शक्ति हाथमें ली, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाली थी। उसमें सोनेका डंडा और आठ घंटियाँ लगी थीं। वह अत्यन्त घोर शक्ति मनमें भय उत्पन्न करनेवाली थी ॥ २८-२९ ॥

समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद् बली।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥

भारत! उसे चलाकर हर्षमें भरे हुए बलवान् युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उन्होंने उस सिंहनादसे सम्पूर्ण भूतोंमें भय-सा उत्पन्न कर दिया ॥ ३० ॥

शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन् ॥ ३१॥

युद्धस्थलमें धर्मराजके द्वारा उठायी हुई उस शक्तिको देखकर समस्त प्राणी सहसा बोल उठे—'द्रोणाय स्वस्ति (द्रोणाचार्यका कल्याण हो)' ॥ ३१ ॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा।

केंचुलसे छूटे हुए सर्पके समान राजाकी भुजाओंसे मुक्त हुई वह शक्ति आकाश, दिशाओं तथा विदिशाओं (कोणों) को प्रकाशित करती हुई जलते मुखवाली नागिनके समान द्रोणाचार्यके निकट जा पहुँची ॥ ३२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः।

प्रजानाथ! तब सहसा आती हुई उस शक्तिको देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥३३½॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः।

वह अस्त्र भयंकर दीखनेवाली उस शक्तिको भस्म करके तुरंत ही यशस्वी युधिष्ठिरके रथकी ओर चला ॥ ३४½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुद्यतम् ॥ ३५ ॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।

माननीय नरेश! तब महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिरने द्रोणद्वारा चलाये गये उस ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रद्वारा ही शान्त कर दिया ॥ ३५½ ॥

विद्ध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद् धनुः।

इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यको घायल करके तीखे क्षुरप्रसे उनके विशाल धनुषको काट दिया ॥ ३६½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३७ ॥
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष।

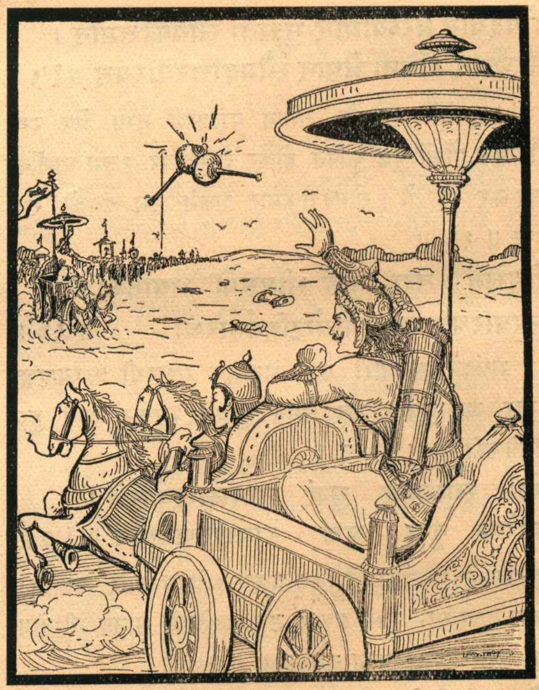
आर्य! क्षत्रियमर्दन द्रोणने उस कटे हुए धनुषको फेंककर सहसा धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर गदा चलायी ॥ ३७½ ॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परंतप।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी गदा ही उठा ली और द्रोणाचार्यपर चला दी ॥ ३८½ ॥

ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥ ३९ ॥
संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले।

एकबारगी छोड़ी हुई वे दोनों गदाएँ एक दूसरीसे टकराकर संघर्षसे आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई



पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३९½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः।

माननीय नरेश! तब द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए चार तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा धर्मराजके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ४०½ ॥

चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत् त्रिभिः ।

फिर एक भल्ल चलाकर उनका धनुष काट दिया। एक भल्लसे इन्द्रध्वजके समान उनकी ध्वजा खण्डित कर दी और तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी पीड़ा पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही कूदकर राजा युधिष्ठिर बिना आयुधके हाथ ऊपर उठाये धरतीपर खड़े हो गये ॥ ४२½ ॥

विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥ ४३॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून् सर्वसैन्यानि वा विभो ।

प्रभो ! उन्हें रथ और विशेषतः आयुधसे रहित देख द्रोणाचार्यने शत्रुओं तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाओंको मोहित कर दिया ॥ ४३½ ॥

मुञ्चंश्चेषुगणांस्तीक्ष्णाल्लँघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।

दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले द्रोणके हाथ बड़ी फुर्तीसे चलते थे। जैसे प्रचण्ड सिंह किसी मृगका पीछा करता हो, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनामित्रघातिना ॥ ४५ ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ।

शत्रुनाशक द्रोणाचार्यके द्वारा युधिष्ठिरका पीछा होता देख पाण्डवदलमें सहसा हाहाकार मच गया ॥ ४५½ ॥

हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥
इत्यासीत् सुमहाञ्छब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत ।

भारत ! माननीय नरेश ! पाण्डुसेनामें यह महान् कोलाहल होने लगा कि 'राजा मारे गये, राजा मारे गये' ॥

ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

तदनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर तुरंत ही सहदेवके रथपर आरूढ़ हो अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा वहाँसे हट गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ छवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

कौरवसेनाके क्षेमधूर्ति, वीरधन्वा, निरमित्र तथा व्याघ्रदत्तका वध और दुर्मुख एवं विकर्णकी पराजय

संजय उवाच

बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर सुदृढ़ पराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको आते देख क्षेमधूर्तिने अनेक बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १ ॥

बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥

राजन् ! तब राजा बृहत्क्षत्रने भी झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा तुरंत ही द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहका विघटन करनेकी इच्छासे क्षेमधूर्तिको घायल कर दिया ॥ २ ॥

क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥

इससे क्षेमधूर्ति अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने पानीदार तीखे भल्लसे महामनस्वी केकयराजका धनुष काट डाला॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥

धनुष कट जानेपर समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ बृहत्क्षत्र-को समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उसने तुरंत ही बींध डाला ॥ ४ ॥

अथान्यद् धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर बृहत्क्षत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर हँसते हँसते महारथी क्षेमधूर्तिको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥

इसके बाद दूसरे पानीदार तीखे भल्लसे राजा क्षेमधूर्तिके प्रज्वलित कुण्डलोंवाले मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥ ६ ॥

तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ७ ॥

सहसा कटा हुआ घुँघराले बालोंवाला क्षेमधूर्तिका वह मस्तक मुकुटसहित पृथ्वीपर गिरकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान प्रतीत हुआ ॥ ७ ॥

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाभ्यपतत् सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥

रणक्षेत्रमें क्षेमधूर्तिका वध करके प्रसन्न हुए महारथी बृहत्क्षत्र युधिष्ठिरके हितके लिये सहसा आपकी सेनापर टूट पड़े॥

धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥

भारत ! इसी प्रकार द्रोणाचार्यके हितके लिये महाधनुर्धर पराक्रमी वीरधन्वाने वहाँ आते हुए धृष्टकेतुको रोका ॥ ९ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥

वे दोनों वेगशाली वीर बाणरूपी दाढ़ोंसे युक्त हो परस्पर भिड़कर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ १० ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥

महान् वनमें तीव्र मदवाले दो यूथपति गजराजोंके समान वे दोनों पुरुषसिंह परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥

दोनों ही महान् पराक्रमी थे और एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे रोषमें भरकर पर्वतकी गुफामें पहुँचकर लड़नेवाले दो सिंहोंके समान आपसमें जूझ रहे थे ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! उनका वह घमासान युद्ध देखने ही योग्य था। वह सिद्धों और चारणसमूहोंको भी आश्चर्यजनक एवं अद्भुत दिखायी देता था ॥ १३ ॥

वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! तत्पश्चात् वीरधन्वाने कुपित होकर हँसते हुए-से ही एक भल्लद्वारा धृष्टकेतुके धनुषके दो टुकड़े कर दिये॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥

महारथी चेदिराज धृष्टकेतुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर एक लोहेकी बनी हुई स्वर्णदण्डविभूषित विशाल शक्ति हाथमें ले ली ॥ १५ ॥

तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥

भारत ! उस अत्यन्त प्रबल शक्तिको दोनों हाथोंसे उठाकर यत्नशील धृष्टकेतुने सहसा वीरधन्वाके रथपर उसे दे मारा ॥ १६ ॥

तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥

उस वीरघातिनी शक्तिकी गहरी चोट खाकर वीरधन्वाका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह तुरंत ही रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १७ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥

प्रभो ! त्रिगर्तदेशके उस महारथी वीरके मारे जानेपर पाण्डव सैनिकोंने चारों ओरसे आपकी सेनाको विघटित कर दिया ॥ १८ ॥

सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥

तदनन्तर दुर्मुखने रणक्षेत्रमें सहदेवपर साठ बाण चलाये और उन पाण्डुकुमारको डाँट बताते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १९ ॥

माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥

यह देख माद्रीकुमार कुपित हो उठे। वे दुर्मुखके भाई लगते थे। उन्होंने अपने पास आते हुए भ्राता दुर्मुखको हँसते हुए-से तीखे बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ २० ॥

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥

भारत ! रणक्षेत्रमें महाबली सहदेवका वेग बढ़ता देख दुर्मुखने नौ बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ २१ ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

तब महाबली सहदेवने एक भल्लसे दुर्मुखकी ध्वजा काटकर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥

अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥

फिर दूसरे पानीदार एवं तीखे भल्लसे उसके सारथिके चमकीले कुण्डलवाले मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २३ ॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद् धनुः ।
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् सहदेवने तीखे क्षुरप्रसे समराङ्गणमें दुर्मुखके विशाल धनुषको काटकर उसे भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २४ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन् निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! तब दुर्मुख दुखी मनसे उस अश्वहीन रथको त्यागकर निरमित्रके रथपर जा चढ़ा ॥ २५ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥

इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सहदेव कुपित हो उठे और उन्होंने उस महासमरमें सेनाके बीचों-बीच एक भल्लसे निरमित्रको मार डाला ॥ २६ ॥

स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥२७॥

त्रिगर्तराजका पुत्र राजा निरमित्र अपने वियोगसे आपकी सेनाको व्यथित करता हुआ रथकी बैठकसे नीचे गिर पड़ा ॥ २७ ॥

तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८॥

जैसे पूर्वकालमें दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम महाबली खरका वध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार महाबाहु सहदेव निरमित्रको मारकर शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

हाहाकारो महानासीत् त्रिगर्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९॥

नरेश्वर ! महारथी राजकुमार निरमित्रको मारा गया देख त्रिगर्तोंके दलमें महान् हाहाकार मच गया ॥ २९ ॥

नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३०॥

राजन् ! नकुलने विशाल नेत्रोंवाले आपके पुत्र विकर्णको दो ही घड़ीमें पराजित कर दिया; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३० ॥

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः संनतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१॥

व्याघ्रदत्तने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित सात्यकिको अदृश्य कर दिया ॥ ३१ ॥

तान् निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥

तब शूरवीर शिनिनन्दन सात्यकिने सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति उन बाणोंका निवारण करके अपने बाणोंद्वारा घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित व्याघ्रदत्तको मार गिराया ॥ ३२ ॥

कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥

प्रभो ! मगधनरेशके पुत्र राजकुमार व्याघ्रदत्तके मारे जानेपर मगधदेशीय वीरोंने सब ओरसे प्रयत्नशील होकर युयुधानपर धावा किया ॥ ३३ ॥

विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३४ ॥
अयोधयन् रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।

वे शूरवीर मागध सैनिक बहुत-से बाणों, सहस्रों तोमरों, भिन्दिपालों, प्रासों, मुद्गरों और मुसलोंका प्रहार करते हुए समराङ्गणमें रणदुर्जय सात्यकिके साथ युद्ध करने लगे ॥

तांस्तु सर्वान् स बलवान् सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।

बलवान् युद्धदुर्मद पुरुषप्रवर सात्यकिने हँसते हुए ही उन सबको अधिक कष्ट उठाये बिना ही परास्त कर दिया ॥

मागधान् द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।

प्रभो ! मरनेसे बचे हुए मागधसैनिकोंको चारों ओर भागते देख सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हुई आपकी सेनाका व्यूह भंग हो गया ॥ ३६½ ॥

नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।

इस प्रकार मधुवंशके श्रेष्ठ वीर महायशस्वी सात्यकि रणक्षेत्रमें आपकी सेनाका विनाश करके अपने उत्तम धनुषको हिलाते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३७½ ॥

भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाभ्यवर्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।

राजन् ! महामना महाबाहु सात्यकिके द्वारा डरायी गयी और तितर-बितर की हुई आपकी सेना फिर युद्धके लिये सामने नहीं आयी ॥ ३८½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने सहसा आँखें घुमाकर सत्यकर्मा सात्यकिपर स्वयं ही आक्रमण किया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

द्रौपदी-पुत्रोंके द्वारा सोमदत्तकुमार शलका वध तथा भीमसेनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय

संजय उवाच

द्रौपदेयान् महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महायशस्वी शलने महाधनुर्धर द्रौपदी-पुत्रोंमेंसे एक-एकको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधकर पुनः सात बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १ ॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन ॥ २ ॥

प्रभो ! उस भयंकर वीरके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वे सहसा मोहित हो यह नहीं जान सके कि इस समय युद्धमें हमारा कर्तव्य क्या है ? ॥ २ ॥

नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम्।
द्वाभ्यां विद्ध्वानदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥ ३ ॥

तब नकुलके पुत्र शत्रुसूदन शतानीकने दो बाणोंद्वारा नरश्रेष्ठ शलको घायल करके बड़े हर्षके साथ सिंहनाद किया॥

तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अन्य द्रौपदीपुत्रोंने भी समराङ्गणमें प्रयत्नशील होकर अमर्षशील शलको तुरंत ही तीन-तीन बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४ ॥

स तान् प्रति महाराज पञ्च चिक्षेप सायकान्।
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥

महाराज ! तब महायशस्वी शलने उनपर पाँच बाण चलाये, जिनमेंसे एक-एकके द्वारा एक-एककी छाती छेद डाली॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥

फिर महामना शलके बाणोंसे घायल हुए उन पाँचों भाइयोंने उस वीरको रणक्षेत्रमें चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ६ ॥

आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥

अर्जुनकुमार श्रुतकीर्तिने अत्यन्त कुपित हो चार तीखे बाणोंद्वारा शलके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया ॥ ७ ॥

भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥

फिर भीमसेनके पुत्र सुतसोमने पैने बाणोंद्वारा महामना सोमदत्तकुमारके धनुषको काटकर उन्हें भी बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत्।
नाकुलिश्चाथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरकुमार प्रतिविन्ध्यने शलकी ध्वजा काटकर पृथ्वीपर गिरा दी। फिर नकुलपुत्र शतानीकने उनके सारथिको मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम्।
क्षुरप्रेण शिरो राजन् निचकर्त महात्मनः ॥ १० ॥

राजन् ! अन्तमें सहदेवकुमारने यह जानकर कि मेरे भाइयोंने शलको युद्धसे विमुख कर दिया है, महामनस्वी शलके मस्तकको क्षुरप्रसे काट डाला ॥ १० ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ तपनीयविभूषितम्।
भ्राजयत् तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥

सोमदत्तकुमारका प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशमान सुवर्णभूषित वह मस्तक उस रणभूमिको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः।
वित्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥

महाराज ! महामना शलके मस्तकको कटा हुआ देख आपके सैनिक अत्यन्त भयभीत हो अनेक दलोंमें बँटकर भागने लगे ॥ १२ ॥

अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम्।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें रावणकुमार मेघनादने लक्ष्मणके साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए राक्षस अलम्बुषने महाबली भीमसेनके साथ संग्राम आरम्भ किया ॥ १३ ॥

सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४ ॥

उस रणक्षेत्रमें उन दोनों मनुष्य एवं राक्षसको युद्ध करते देख समस्त प्राणियोंको अत्यन्त आश्चर्य और हर्ष हुआ॥

आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥

राजन् ! फिर भीमसेनने हँसते हुए नौ पैने बाणोंद्वारा ऋष्यशृङ्गकुमार अमर्षशील राक्षसराज अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

तद् रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम्।
अभ्यद्रवत् ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥

तब समराङ्गणमें घायल हुआ वह राक्षस भयंकर गर्जना करके भीमसेनकी ओर दौड़ा। उसके सेवकोंने भी उसीका साथ दिया ॥ १६ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः।
भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल करके उनके साथ आये हुए तीन सौ रथियोंका समरभूमिमें शीघ्र ही संहार कर डाला ॥ १७ ॥

पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः।

फिर चार सौ योद्धाओंको मारकर भीमसेनको भी एक बाणसे घायल किया। इस प्रकार राक्षसके द्वारा अत्यन्त

घायल किये जानेपर महाबली भीमसेन मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़े ॥ १८½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥

तदनन्तर पुनः होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हुए वायुपुत्र भीमने भार वहन करनेमें समर्थ, उत्तम तथा भयंकर धनुष तानकर पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषको पीड़ित कर दिया ॥ १९-२० ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥

राजन् ! काले काजलके ढेरके समान वह राक्षस बहुत-से बाणोंद्वारा सब ओरसे घायल होकर लोहू-लुहान हो खिले हुए पलाशके वृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ २१ ॥

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन् भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समरभूमिमें घायल होकर और महात्मा पाण्डुकुमार भीमके द्वारा किये गये अपने भाईके वधका स्मरण करके उस राक्षसने भयंकर रूप धारण कर लिया और भीमसेनसे कहा—॥ २२½ ॥

तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद् वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥

'पार्थ ! इस समय तुम रणक्षेत्रमें डटे रहो और आज मेरा पराक्रम देखो । दुर्मते ! मेरे बलवान् भाई राक्षसराज बकको जो तुमने मार डाला था, वह सब कुछ मेरी आँखोंकी ओटमें हुआ था (मेरे सामने तुम कुछ नहीं कर सकते थे)'॥

एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥

भीमसेनसे ऐसा कहकर वह राक्षस उसी समय अन्तर्धान हो गया और फिर उनके ऊपर बाणोंकी भारी वर्षा करने लगा ॥

भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ २६ ॥

राजन् ! उस समय समराङ्गणमें राक्षसके अदृश्य हो जानेपर भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा वहाँके समूचे आकाशको भर दिया ॥ २६ ॥

स वध्यमानो भीमेन निमेषाद् रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसागमत् ॥ २७ ॥

भीमसेनके बाणोंकी मार खाकर राक्षस अलम्बुष पलक मारते-मारते अपने रथपर आ बैठा । वह क्षुद्र निशाचर कभी तो धरतीपर आ जाता और कभी सहसा आकाशमें पहुँच जाता था ॥ २७ ॥

उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत् पुनः स्थूलो नादान् मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २८ ॥

उसने वहाँ छोटे-बड़े बहुत-से रूप धारण किये । वह मेघके समान गर्जना करता हुआ कभी बहुत छोटा हो जाता और कभी महान्, कभी सूक्ष्मरूप धारण करता और कभी स्थूल बन जाता था ॥ २८ ॥

उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥

इसी प्रकार वहाँ सब ओर घूम-घूमकर वह भिन्न-भिन्न प्रकारकी बोलियाँ भी बोलता था । उस समय भीमसेनपर आकाशसे बाणोंकी सहस्रों धाराएँ गिरने लगीं ॥ २९ ॥

शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥ ३० ॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥
जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्धनि ।

शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, फरसे, शिलाएँ, खड्ग, लोहेकी गोलियाँ, ऋष्टि और वज्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी । राक्षस-द्वारा की हुई उस भयंकर शस्त्रवर्षाने युद्धके मुहानेपर पाण्डुपुत्र भीमके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥

तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥
हयाश्च बहवो राजन् पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥ ३३ ॥

राजन् ! राक्षस अलम्बुषने युद्धस्थलमें पाण्डव-सेनाके बहुत-से हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंका बारंबार संहार किया उसके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर बहुतेरे रथी रथोंसे गिर पड़े ॥ ३२-३३ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥
नदीं प्रावर्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥

उसने युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जिसमें रक्त ही पानीके समान बहता था, रथ भँवरोंके समान जान पड़ते थे, हाथियोंके शरीर उस नदीमें ग्राहके समान सब ओर छा रहे थे, छत्र हंसोंका भ्रम उत्पन्न करते थे, वहाँ कीच जम गयी थी, कटी हुई भुजाएँ सर्पोंके समान सब ओर व्याप्त हो रही थीं । राजन् ! बारंबार चेदि, पाञ्चाल और संजयोंको बहाती हुई वह नदी राक्षसोंसे घिरी हुई थी॥

तं तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत्।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस निशाचरको समराङ्गणमें इस प्रकार निर्भय-सा विचरते देख पाण्डव अत्यन्त उद्विग्न हो उसका पराक्रम देखने लगे ॥ ३६ ॥

तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥

उस समय आपके सैनिकोंको महान् हर्ष हो रहा था। वहाँ रणवाद्योंका रोमाञ्चकारी एवं भयंकर शब्द बड़े जोर-जोरसे होने लगा ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥

आपकी सेनाका वह घोर हर्षनाद सुनकर पाण्डुकुमार भीमसेन नहीं सहन कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ताल ठोंकनेका शब्द नहीं सह सकता ॥ ३८ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः।
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥

तब वायुकुमार भीमसेनने जलानेको उद्यत हुए अग्निके समान क्रोधसे लाल आँखें करके त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका संधान किया, मानो साक्षात् त्वष्टा ही उसका प्रयोग कर रहे हों ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समन्ततः।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥

उससे चारों ओर सहस्रों बाण प्रकट होने लगे। उन बाणोंद्वारा आपकी सेनाका महान् संहार होने लगा ॥ ४० ॥

तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए उस अस्त्रने राक्षसकी महामायाको नष्ट करके उसे गहरी पीड़ा दी ॥ ४१ ॥

स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः।
संत्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

बारंबार भीमसेनकी मार खाकर राक्षसराज अलम्बुष रणक्षेत्रमें उनका सामना छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनामें भाग गया ॥ ४२ ॥

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम् ॥ ४३ ॥

राजन् ! महामना भीमसेनके द्वारा राक्षसराज अलम्बुषके पराजित हो जानेपर पाण्डव-सैनिकोंने सम्पूर्ण दिशाओंको अपने सिंहनादोंसे निनादित कर दिया ॥ ४३ ॥

अपूजयन् मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम्।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥

उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर महाबली भीमसेनकी उसी प्रकार भूरि-भूरि प्रशंसा की, जैसे मरुद्गणोंने समराङ्गणमें प्रह्लादको जीतकर आये हुए देवराज इन्द्रकी स्तुति की थी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध और पाण्डवसेनामें हर्ष-ध्वनि

संजय उवाच

अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धमें इस प्रकार निर्भय-से विचरते हुए अलम्बुषके पास हिडिम्बाकुमार घटोत्कच बड़े वेगसे जा पहुँचा और उसे अपने तीखे बाणोंद्वारा बींधने लगा ॥

तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद् राक्षससिंहयोः।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥

वे दोनों राक्षसोंमें सिंहके समान पराक्रमी थे और इन्द्र तथा शम्बरासुरके समान नाना प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करते थे। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ २ ॥

अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्।
तयोर्युद्धं समभवद् रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो।

अलम्बुषने अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचको घायल कर दिया। वे दोनों राक्षस समाजके मुखिया थे। प्रभो ! जैसे पूर्वकालमें श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उन दोनोंमें भी युद्ध हुआ ॥ ३½ ॥

घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥ ४ ॥
अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।

घटोत्कचने बीस नाराचोंद्वारा अलम्बुषकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाकर बारंबार सिंहके समान गर्जना की ॥

तथैवालम्बुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥
विद्ध्वा विद्ध्वा नदद्धृष्टः पूरयन् खं समन्ततः।

राजन् ! इसी प्रकार अलम्बुष भी युद्धदुर्मद घटोत्कच-को बारंबार घायल करके समूचे आकाशको हर्षपूर्वक गुँजाता हुआ सिंहनाद करता था ॥ ५½ ॥

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥ ६ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम्।

इस प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए वे दोनों महाबली

राक्षसराज परस्पर मायाओंका प्रयोग करते हुए समानरूपसे युद्ध करने लगे ॥ ६½ ॥

मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।

वे प्रतिदिन सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले थे और दोनों ही मायायुद्धमें कुशल थे। अतः एक दूसरेको मोहित करते हुए मायाद्वारा ही युद्ध करने लगे ॥ ७½ ॥

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ॥ ८ ॥
तां तामलम्बुषो राजन् माययैव निजघ्निवान् ।

नरेश्वर ! घटोत्कच युद्धस्थलमें जो-जो माया दिखाता, उसे अलम्बुष अपनी मायाद्वारा ही नष्ट कर देता था ॥

तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।

मायायुद्धविशारद राक्षसराज अलम्बुषको इस प्रकार युद्ध करते देख समस्त पाण्डव कुपित हो उठे ॥ ९½ ॥

त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।

राजन् ! वे अत्यन्त उद्विग्न हुए भीमसेन आदि श्रेष्ठ वीर क्रोधमें भरकर रथोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषपर टूट पड़े ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥
सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।

माननीय नरेश ! जैसे जलती हुई उल्काओंद्वारा चारों ओरसे घेरकर हाथीपर प्रहार किया जाता है, उसी प्रकार रथसमूहके द्वारा अलम्बुषको कोष्ठबद्ध करके वे सब लोग चारों ओरसे उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११½ ॥

स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२ ॥
तस्माद् रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।

उस समय अलम्बुष अपने अस्त्रोंकी मायासे उनके उस महान् अस्त्रवेगको दबाकर रथसमूहके उस घेरेसे मुक्त हो गया, मानो कोई गजराज दावानलके घेरेसे बाहर हो गया हो ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।

उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले अपने भयंकर धनुषको तानकर भीमसेनको पचीस और उनके पुत्र घटोत्कचको पाँच बाण मारे ॥ १३½ ॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ १४ ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥

आर्य ! उसने युधिष्ठिरको तीन, सहदेवको सात, नकुलको तिहत्तर और द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके घोर गर्जना की ॥ १४-१५ ॥

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥

तब भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच और युधिष्ठिरने सौ बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।

तत्पश्चात् नकुलने चौसठ और द्रौपदीकुमारोंने तीन-तीन बाणोंसे अलम्बुषको बींध डाला। तदनन्तर महाबली हिडिम्बाकुमारने युद्धस्थलमें उस राक्षसको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंद्वारा बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १७½ ॥

तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुंधरा ॥ १८ ॥
सपर्वतवना राजन् सपादपजलाशया ।

राजन् ! उसके महान् सिंहनादसे वृक्षों, जलाशयों, पर्वतों और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी काँप उठी ॥ १८½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥
प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।

उन महाधनुर्धर महारथियोंद्वारा सब ओरसे अत्यन्त घायल होकर बदलेमें अलम्बुषने भी पाँच-पाँच बाणोंसे उन सबको वेध दिया ॥ १९½ ॥

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।

भरतश्रेष्ठ ! उस युद्धस्थलमें कुपित हुए राक्षस अलम्बुषको क्रोधमें भरे हुए निशाचर घटोत्कचने सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खान् शिलाशितान् ।

बलवान् घटोत्कचद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर उस महाबली राक्षसराजने तुरंत ही सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २१½॥

ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद् गिरिशृङ्गं महाबलाः ।

जैसे रोषमें भरे हुए महाबली सर्प पर्वतके शिखरपर चढ़ जाते हैं, उसी प्रकार अलम्बुषके वे झुकी हुई गाँठवाले बाण उस समय घटोत्कचके शरीरमें घुस गये ॥ २२½ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्तात्त्रिशिताञ्शरान् ॥ २३ ॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डव तथा हिडिम्बाकुमार घटोत्कच सबने उद्विग्न होकर सब ओरसे अलम्बुषपर पैने बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २३½ ॥

स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नान्वपद्यत ।

विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा समरभूमिमें विद्ध होकर मर्त्यधर्मको प्राप्त हुए अलम्बुषसे कुछ भी करते न बना ॥ २४½ ॥

ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥ २५ ॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे ।

तब समरकुशल महाबली भीमसेन-कुमारने अलम्बुषको उस अवस्थामें देखकर मन-ही-मन उसके वधका निश्चय किया॥

वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥ २६ ॥
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।

उसने जले हुए पर्वतशिखर तथा कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान प्रतीत होनेवाले राक्षसराज अलम्बुषके रथपर पहुँचनेके लिये महान् वेग प्रकट किया ॥ २६½ ॥

रथाद् रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥ २७ ॥
उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा ।

क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने अपने रथसे अलम्बुषके रथपर कूदकर उसे पकड़ लिया और जैसे गरुड़ सर्पको टाँग लेता है, उसी प्रकार उसने भी अलम्बुषको रथसे उठा लिया ॥

समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि ।

दोनों भुजाओंसे अलम्बुषको ऊपर उठाकर घटोत्कचने बारंबार घुमाया और जैसे जलसे भरे हुए घड़ेको पत्थरपर पटक दिया जाय, उसी प्रकार उसे शीघ्र ही पृथ्वीपर दे मारा॥

बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ।

घटोत्कचमें बल और फुर्ती दोनों विद्यमान थे। वह अद्भुत पराक्रमसे सम्पन्न था। उसने रणक्षेत्रमें कुपित होकर आपकी समस्त सेनाओंको भयभीत कर दिया ॥ २९½ ॥

स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।

वीर घटोत्कचके द्वारा मारे गये शालकटंकटाके पुत्र अलम्बुषके सारे अङ्ग फट गये थे। उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थीं और वह बड़ा भयंकर दिखायी देता था॥३०½॥

ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन् निशाचरे ॥ ३१ ॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ।

उस निशाचर अलम्बुषके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र प्रसन्नचित्त हो सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥

तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥ ३२ ॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समान महाबली राक्षसराज अलम्बुषको मारा गया देख आपके शूरवीर योद्धा तथा उनकी सारी सेनाएँ हाहाकार करने लगीं। ३२-३३।

जनाश्च तद् ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपर अकस्मात् टूटकर गिरे हुए मंगल ग्रहके समान धराशायी हुए उस राक्षसको बहुत-से मनुष्य कौतूहलवश देखने लगे ॥ ३४ ॥

घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥

जैसे इन्द्रने बलासुरका वध करके महान् सिंहनाद किया था, उसी प्रकार घटोत्कचने उस बलवानोंमें श्रेष्ठ अलम्बुषको मारकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

(ततोऽभिगम्य राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
स्वकर्मावेदयन्मूर्ध्ना साञ्जलिर्निपपात ह ॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय तं ज्येष्ठः परिष्वज्य च पाण्डवः ।
प्रीतोऽस्मीत्यब्रवीद् राजन् हर्षादुत्फुल्ललोचनः ॥
घटोत्कचेन निष्पिष्टे मृते शालकटङ्कटे ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हते तस्मिन् निशाचरे ॥)

तदनन्तर घटोत्कच धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास जाकर हाथ जोड़ मस्तक नवाकर अपना कर्म निवेदन करता हुआ उनके चरणोंमें गिर पड़ा। राजन् ! तब ज्येष्ठ पाण्डवने उसका मस्तक सूँघकर उसे हृदयसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' उस समय युधिष्ठिरके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। शालकटंकटाके पुत्र राक्षस अलम्बुषको जब घटोत्कचने पृथ्वीपर रगड़कर मार डाला, तब सब लोग बहुत प्रसन्न हुए ॥

स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवै-
र्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा
ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा ॥ ३६ ॥

पके हुए अलम्बुष (मुंडीर) फलके समान अपने शत्रु अलम्बुषको मारकर घटोत्कच वह दुष्कर पराक्रम करनेके कारण अपने पिता पाण्डवों तथा बन्धु-बान्धवोंसे सम्मानित एवं प्रशंसित हो उस समय बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगा ॥ ३६ ॥

ततो निनादः सुमहान् समुत्थितः
सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवा-
स्ततो ध्वनिर्भुवनमथास्पृशद् भृशम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् पाण्डवपक्षमें शङ्खध्वनि तथा नाना प्रकारके



घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध

बाणोंकी सनसनाहटके शब्दसे मिला हुआ बड़ा भारी आनन्द-कोलाहल प्रकट हुआ। उसे सुनकर समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। वह आनन्दध्वनि जगत्‌में बहुत दूरतक फैल गयी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

दशाधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका युद्ध तथा युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उसे अर्जुनकी सहायताके लिये कौरवसेनामें प्रवेश करनेका आदेश

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत्।
संजयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सात्यकिने युद्धमें द्रोणाचार्यको किस प्रकार रोका? यह यथार्थरूपसे बताओ। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें महान् कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम्।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन्! महामते! द्रोणाचार्यका सात्यकि आदि पाण्डव-योद्धाओंके साथ जो रोमाञ्चकारी संग्राम हुआ था, उसका वर्णन सुनिये ॥ २ ॥

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष।
अभ्यद्रवत् स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥

माननीय नरेश! द्रोणाचार्यने जब अपनी सेनाको युयुधानके द्वारा पीड़ित होते देखा, तब वे सत्यपराक्रमी सात्यकिपर स्वयं ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम्।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥

उस समय सहसा आते हुए महारथी द्रोणाचार्यको सात्यकिने पचीस बाण मारे ॥ ४ ॥

द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः।
अविध्यत् पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥

तब पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी युद्धस्थलमें एकाग्रचित्त हो तुरंत ही सोनेके पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युयुधानको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥

राजन्! द्रोणाचार्यके बाण शत्रुओंके मांस खानेवाले थे। वे सात्यकिके सुदृढ़ कवचको छिन्न-भिन्न करके फुफकारते हुए सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ ६ ॥

दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः।
द्रोणं पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसंनिभैः ॥ ७ ॥

तब अंकुशकी मार खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त कुपित हुए महाबाहु सात्यकिने अग्निके समान तेजस्वी पचास नाराचोंद्वारा द्रोणाचार्यको वेध दिया ॥ ७ ॥

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम्।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥

सात्यकिके द्वारा समराङ्गणमें घायल हो द्रोणाचार्यने शीघ्र ही बहुत-से बाण मारकर विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः।
सात्वतं पीडयामास शरेणानतपर्वणा ॥ ९ ॥

तदनन्तर महाधनुर्धर महाबली द्रोणने पुनः कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले एक बाणद्वारा सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः।
नान्वपद्यत कर्तव्यं किंचिदेव विशाम्पते ॥ १० ॥

प्रजानाथ! समरभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा क्षत-विक्षत होकर सात्यकिसे कुछ भी करते नहीं बना ॥ १० ॥

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥

नरेश्वर! रणक्षेत्रमें पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यको देखकर युयुधानके मुखपर विषाद छा गया ॥ ११ ॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद् व्यनदन् मुहुः ॥ १२ ॥

प्रजापालक नरेश! उन्हें उस अवस्थामें देखकर आपके पुत्र और सैनिक प्रसन्नचित्त होकर बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १२ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम्।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद् राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥

भारत! उनकी वह घोर गर्जना सुनकर और सात्यकिको पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिरने अपने समस्त सैनिकोंसे कहा— ॥

एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते।

'योद्धाओ ! जैसे राहु सूर्यको ग्रस लेता है, उसी प्रकार यह वृष्णिवंशका श्रेष्ठ वीर सत्यपराक्रमी सात्यकि युद्धस्थलमें वीर द्रोणाचार्यके द्वारा कालके गालमें जाना चाहता है। अतः तुमलोग दौड़ो और वहीं जाओ, जहाँ सात्यकि युद्ध करता है' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत।
न पश्यसि भयं द्रोणाद् घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥

इसके बाद राजाने पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'द्रुपदनन्दन ! खड़े क्यों हो ? तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा करो। क्या तुम नहीं देखते कि द्रोणकी ओरसे हमलोगोंपर घोर भय उपस्थित हो गया है ?' ॥ १५-१६ ॥

असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥

'जैसे कोई बालक डोरमें बँधे हुए पक्षीके साथ खेलता है, उसी प्रकार ये महाधनुर्धर द्रोण युद्धस्थलमें युयुधानके साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ १७ ॥

तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८ ॥

'अतः तुम्हारे साथ भीमसेन आदि सभी महारथी वहीं युयुधानके रथके समीप जायँ ॥ १८ ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः।
सात्यकिं मोक्षयस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १९ ॥

'फिर मैं भी सम्पूर्ण सैनिकोंके साथ तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा। इस समय यमराजकी दाढ़ोंमें पहुँचे हुए सात्यकिको छुड़ाओ' ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत।
अभ्यद्रवद् रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥

भारत ! ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरने उस समय रणक्षेत्रमें युयुधानकी रक्षाके लिये अपनी सारी सेनाके साथ द्रोणाचार्य-पर आक्रमण किया ॥ २० ॥

तत्रारावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम्।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २१ ॥

राजन् ! आपका भला हो। अकेले द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे आये हुए पाण्डवों और सृञ्जयोंका वहाँ सब ओर महान् कोलाहल छा गया ॥ २१ ॥

ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥

वे मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी सैनिक महारथी द्रोणाचार्यके पास जाकर कंक और मोरके पंखोंसे युक्त तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

स्मयन्नेव तु तान् वीरान् द्रोणः प्रत्यग्रहीत् स्वयम्।
अतिथीनागतान् यद्वत् सलिलेनासनेन च ॥ २३ ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः।
आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २४ ॥

राजन् ! जैसे घरपर आये हुए अतिथियोंका जल और आसन आदिके द्वारा सत्कार किया जाता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने स्वयं उन समस्त आक्रमणकारी वीरोंकी मुसकराते हुए ही अगवानी की। जैसे अतिथिसत्कारमें निपुण गृहस्थके घर जाकर अतिथि तृप्त होते हैं, उसी प्रकार धनुर्धर द्रोणाचार्यके बाणोंसे उन सबकी यथेष्ट तृप्ति की गयी ॥ २३-२४ ॥

भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्।
मध्यंदिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥

प्रभो ! जैसे दोपहरके प्रचण्ड मार्तण्डकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार वे समस्त योद्धा भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ २५ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २६ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उन समस्त महाधनुर्धरोंको अपने बाणसमूहोंद्वारा उसी प्रकार संतप्त करने लगे, जैसे अंशुमाली सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्को संताप देते हैं ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥

महाराज ! उस समय द्रोणाचार्यकी मार खाते हुए पाण्डव और सृंजय सैनिक कीचड़में फँसे हुए हाथियोंके समान कोई रक्षक न पा सके ॥ २७ ॥

द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः।
गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें सब ओर ताप प्रदान करती हुई फैल जाती हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके विशाल बाण सब ओर फैलते और शत्रुओंको संतप्त करते दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

तस्मिन् द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥

उस युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा पाञ्चालोंके पचीस सुप्रसिद्ध महारथी मारे गये, जो धृष्टद्युम्नको बहुत ही प्रिय थे ॥ २९ ॥

पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान् वरान् ॥ ३० ॥

लोगोंने देखा, पाण्डवों और पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंमें जो मुख्य-मुख्य योद्धा हैं, उन्हें शूरवीर द्रोणाचार्य चुन-चुन-कर मार रहे हैं ॥ ३० ॥

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सौ केकय-योद्धाओंको मारकर शेष सैनिकोंको चारों ओर खदेड़नेके पश्चात् द्रोणाचार्य मुँह बाये हुए यमराजके समान खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

पञ्चालान् सृञ्जयान् मत्स्यान् केकयांश्च नराधिप।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! महाबाहु द्रोणाचार्यने पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और केकयोंके सैकड़ों तथा सहस्रों वीरोंको परास्त किया ॥

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः।
वनौकसामिवारण्ये व्याप्तानां धूम्रकेतुना ॥ ३३ ॥

जैसे घोर जंगलमें दावानलसे व्याप्त हुए वनवासी जन्तुओंकी क्रन्दनध्वनि सुनायी पड़ती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल हुए उन विपक्षी योद्धाओंका आर्तनाद वहाँ श्रवणगोचर होता था ॥ ३३ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन् नृप।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥

नरेश्वर ! उस समय वहाँ आकाशमें खड़े हुए देवता, पितर और गन्धर्व कहते थे, ये पाञ्चाल और पाण्डव अपने सैनिकोंके साथ भागे जा रहे हैं ॥ ३४ ॥

तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान् रणे।
न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें सोमकोंका वध करते हुए द्रोणाचार्यके सामने न तो कोई जा सके और न कोई उन्हें चोट ही पहुँचा सके ॥ ३५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये।
अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम्॥ ३६ ॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था कि सहसा कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने पाञ्चजन्यकी ध्वनि सुनी ॥ ३६ ॥

पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम्।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेपर वह शङ्खराज पाञ्चजन्य बड़े जोरसे अपनी ध्वनिका विस्तार कर रहा था। सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए वीरगण युद्धमें संलग्न थे। अर्जुनके रथके पास आपके पुत्र और सैनिक गरज रहे थे तथा गाण्डीव धनुषकी टङ्कार सब ओरसे दब गयी थी ॥३७-३८॥

कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः।

तब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मोहके वशीभूत होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'जिस प्रकार शङ्खराज पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो रही है और जिस तरह कौरव-सैनिक बारंबार हर्षनाद कर रहे हैं, उससे जान पड़ता है, निश्चय ही अर्जुनकी कुशल नहीं है' ॥ ३९½॥

एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः।
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥

ऐसा विचारकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिरका हृदय व्याकुल हो उठा। वे चाहते थे कि जयद्रथवधका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाय; अतः बारंबार मोहित हो अश्रुगद्गद वाणीमें शिनिप्रवर सात्यकिको सम्बोधित करके बोले ॥

युधिष्ठिर उवाच

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—शैनेय ! साधु पुरुषोंने पूर्वकालमें विपत्तिके समय एक सुहृद्के कर्तव्यके विषयमें जिस सनातन धर्मका साक्षात्कार किया है, आज उसीके पालनका अवसर उपस्थित हुआ है ॥ ४२ ॥

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥

शिनिप्रवर सात्यके ! इस दृष्टिसे विचार करनेपर मैं समस्त योद्धाओंमें किसीको भी तुमसे बढ़कर अपना अतिशय सुहृद् नहीं समझ पाता हूँ ॥ ४३ ॥

यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥

जो सदा प्रसन्नचित्त रहता हो तथा जो नित्य-निरन्तर अपने प्रति अनुराग रखता हो, उसीको संकटकालमें किसी महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये, ऐसा मेरा मत है ॥ ४४ ॥

यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम्।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥

वार्ष्णेय ! जैसे भगवान् श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके परम आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम भी हो। तुम्हारा पराक्रम भी श्रीकृष्णके समान ही है ॥ ४५ ॥

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥

अतः मैं तुमपर जो कार्यभार रख रहा हूँ, उसका तुम्हें निर्वाह करना चाहिये। मेरे मनोरथको सदा सफल बनानेकी ही तुम्हें चेष्टा करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥

नरश्रेष्ठ ! अर्जुन तुम्हारा भाई, मित्र और गुरु है। वह युद्धके मैदानमें संकटमें पड़ा हुआ है। अतः तुम उसकी सहायताके लिये प्रयत्न करो ॥ ४७ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥

तुम सत्यव्रती, शूरवीर तथा मित्रोंको अभय देनेवाले हो। वीर ! तुम अपने कर्मोंद्वारा संसारमें सत्यवादीके रूपमें विख्यात हो ॥ ४८ ॥

यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत् तनुम्।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो भवेत् ॥ ४९ ॥

शैनेय ! जो मित्रके लिये युद्ध करते हुए शरीरका त्याग करता है तथा जो ब्राह्मणोंको समूची पृथ्वीका दान कर देता है, वे दोनों समान पुण्यके भागी होते हैं ॥ ४९ ॥

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५० ॥

हमने सुना है कि बहुत-से राजा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक इस समूची पृथ्वीका दान करके स्वर्गलोकमें गये हैं ॥ ५० ॥

एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५१ ॥

धर्मात्मन् ! इसी प्रकार तुमसे भी मैं अर्जुनकी सहायताके लिये हाथ जोड़कर याचना करता हूँ। प्रभो ! ऐसा करनेसे तुम्हें पृथ्वीदानके समान अथवा उससे भी अधिक फल प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥

एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः।
रणे संत्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥ ५२ ॥

सात्यके ! मित्रोंको अभय प्रदान करनेवाले एक तो भगवान् श्रीकृष्ण ही सदा हमारे लिये युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये उद्यत रहते हैं और दूसरे तुम ॥ ५२ ॥

विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥

युद्धमें सुयश पानेकी इच्छा रखकर पराक्रम करनेवाले वीर पुरुषकी सहायता कोई शूरवीर पुरुष ही कर सकता है। दूसरा कोई निम्न कोटिका मनुष्य उसका सहायक नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

ईदृशे तु परामर्दे वर्तमानस्य माधव।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥

माधव ! ऐसे घोर युद्धमें लगे हुए रणक्षेत्रमें अर्जुनका सहायक एवं संरक्षक होनेयोग्य तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है ॥

श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः।
मम संजनयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुम्हारे सैकड़ों कार्योंकी प्रशंसा करते और मेरा हर्ष बढ़ाते हुए बारंबार तुम्हारे गुणोंका वर्णन किया था ॥ ५५ ॥

लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५६ ॥

वह कहता था—'सात्यकिके हाथोंमें बड़ी फुर्ती है। वह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम दिखानेवाला है। सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता, विद्वान् एवं शूरवीर सात्यकि युद्धस्थलमें कभी मोहित नहीं होता है ॥ ५६ ॥

महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५७ ॥

'उसके कंधे महान्, छाती चौड़ी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और ठोढ़ी विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट हैं। वह महाबली, महापराक्रमी, महामनस्वी और महारथी है ॥ ५७ ॥

शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥

'सात्यकि मेरा शिष्य और सखा है। मैं उसको प्रिय हूँ और वह मुझे। युयुधान मेरा सहायक होकर मेरे विपक्षी कौरवोंका संहार कर डालेगा ॥ ५८ ॥

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद् यदि केशवः।
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥
गदो वा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६० ॥
तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१ ॥

'राजेन्द्र ! महाराज ! यदि युद्धके श्रेष्ठ मुहानेपर हमारी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा वृष्णिवंशियोंसहित साम्ब कवच धारण करके तैयार होंगे, तो भी मैं पुरुषसिंह सत्यपराक्रमी शिनिपौत्र सात्यकिको अवश्य ही अपनी सहायताके कार्यमें नियुक्त करूँगा; क्योंकि मेरी दृष्टिमें दूसरा कोई सात्यकिके समान नहीं है' ॥ ५९—६१ ॥

इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥

तात ! इस प्रकार अर्जुनने द्वैतवनमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी सभामें तुम्हारे यथार्थ गुणोंका वर्णन करते हुए परोक्षमें मुझसे उपर्युक्त बातें कही थीं ॥ ६२ ॥

तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि।
धनंजयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥

वार्ष्णेय ! अर्जुनका, मेरा, भीमसेनका तथा दोनों माद्रीकुमारोंका तुम्हारे विषयमें जो वैसा संकल्प है, उसे तुम्हें व्यर्थ नहीं करना चाहिये ॥ ६३ ॥

यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति।
तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥

जब मैं तीर्थोंमें विचरता हुआ द्वारकामें गया था, वहाँ भी अर्जुनके प्रति जो तुम्हारा भक्तिभाव है, उसे मैंने प्रत्यक्ष देखा था ॥ ६४ ॥

न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम्।
यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥

शैनेय ! इस विनाशकारी संकटमें पड़े हुए हमलोगोंकी तुम जिस प्रकार सेवा एवं सहायता कर रहे हो, वैसा सौहार्द मैंने तुम्हारे सिवा दूसरोंमें नहीं देखा है ॥ ६५ ॥

सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर माधव ! वही तुम हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण, अर्जुनके प्रति भक्तिभाव, मैत्री, गुरुभाव, सौहार्द, पराक्रम, कुलीनता और सत्यके अनुरूप कर्म करो ॥ ६६-६७ ॥

सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः।
पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा दी गयी कवचधारणासे सुरक्षित हो दुर्योधन सहसा अर्जुनका सामना करनेके लिये गया है। बहुतेरे कौरव महारथियोंने पहलेसे ही उसका पीछा किया था॥

सुमहान् निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति।
स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥

जहाँ अर्जुन हैं, उस ओर बड़े जोरकी गर्जना सुनायी दे रही है। अतः दूसरोंको मान देनेवाले शैनेय ! तुम्हें शीघ्रतापूर्वक बड़े वेगसे वहाँ जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

भीमसेनो वयं चैव संयत्ताः सहसैनिकाः।
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रति यास्यति ॥ ७० ॥

भीमसेन और हमलोग अपने सैनिकोंके साथ सब प्रकारसे सावधान हैं। यदि द्रोणाचार्य तुम्हारा पीछा करेंगे तो हम सब लोग उन्हें रोकेंगे ॥ ७० ॥

पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७१ ॥

शैनेय ! वह देखो, उधर युद्धस्थलमें सेनाएँ भाग रही हैं। रणक्षेत्रमें महान् कोलाहल हो रहा है और मोरचेबंदी करके खड़ी हुई कौरवी सेनामें दरारें पड़ रही हैं॥

महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु।
धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥

तात ! पूर्णिमाके दिन प्रचण्ड वायुके वेगसे विक्षुब्ध हुए समुद्रके समान सव्यसाची अर्जुनके द्वारा पीड़ित हुई दुर्योधनकी सेनामें हलचल मच गयी है ॥ ७२ ॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह।
सैन्यं रजःसमुद्धूतमेतत् सम्परिवर्तते ॥ ७३ ॥

इधर-उधर भागते हुए रथों, मनुष्यों और घोड़ोंके द्वारा उड़ी हुई धूलसे आच्छादित हुई यह सारी सेना चक्कर काट रही है ॥ ७३ ॥

संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥

शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाला अर्जुन, नखर (बघनखे) और प्रासोंद्वारा युद्ध करनेवाले तथा अधिक संख्यामें एकत्र हुए सिन्धु-सौवीर देशके शूरवीर सैनिकोंसे घिर गया है॥ ७४॥

नैतद् बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे संत्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥

इस सेनाका निवारण किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है। ये सभी सैनिक सिन्धुराजके लिये अपना जीवन न्योछावर कर चुके हैं ॥ ७५ ॥

शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम्।
पश्यैतद् धार्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥

बाण, शक्ति और ध्वजाओंसे सुशोभित तथा घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई कौरवोंकी इस दुर्जय सेनाको देखो ॥७६॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान्।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥

सुनो, डंकोंकी आवाज हो रही है, जोर-जोरसे शङ्ख बज रहे हैं, वीरोंके सिंहनाद तथा रथोंके पहियोंकी घर्घराहटके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं ॥ ७७ ॥

नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥

हाथियोंके चिग्घाड़नेकी आवाज सुनो। सहस्रों पैदल सिपाहियों तथा पृथ्वीको कम्पित करते हुए दौड़ लगानेवाले घुड़सवारोंके शब्द सुन लो ॥ ७८ ॥

पुरस्तात् सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥

नरव्याघ्र ! अर्जुनके सामने सिन्धुराजकी सेना है और पीछे द्रोणाचार्यकी। इसकी संख्या इतनी अधिक है कि यह देवराज इन्द्रको भी पीड़ित कर सकती है ॥ ७९ ॥

अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम्।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति।

इस अनन्त सैन्यसमुद्रमें डूबकर अर्जुन अपने प्राणोंका भी परित्याग कर देगा। युद्धमें उसके मारे जानेपर मेरे-जैसा

मनुष्य कैसे जीवित रह सकता है ? युयुधान ! तुम्हारे जीते-जी मैं सब प्रकारसे बड़े भारी संकटमें पड़ गया हूँ ॥८०½॥

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम्।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते ॥ ८२॥

निद्राविजयी पाण्डुकुमार अर्जुन श्यामवर्णवाला दर्शनीय तरुण है। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाता और विचित्र रीतिसे युद्ध करता है। तात ! उस महाबाहु वीरने सूर्योदयके समय अकेले ही कौरवी सेनामें प्रवेश किया था और अब दिन बीतता चला जा रहा है ॥ ८१-८२ ॥

तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा।
कुरूणां चापि तत् सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम्।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥

वार्ष्णेय ! पता नहीं, इस समयतक अर्जुन जीवित है या नहीं। महासमरमें जिसके वेगको सहन करना देवताओंके लिये भी असम्भव है, कौरवोंकी वह सेना समुद्रके समान विशाल है, तात ! उस कौरवी सेनामें महाबाहु अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है ॥ ८३-८४ ॥

न हि मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथंचन।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥ ८५ ॥

आज किसी प्रकार मेरी बुद्धि युद्धमें नहीं लग रही है। इधर द्रोणाचार्य भी युद्धस्थलमें बड़े वेगसे आक्रमण करके मेरी सेनाको पीड़ित कर रहे हैं ॥ ८५ ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः।
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥

महाबाहो ! विप्रवर द्रोणाचार्य जैसा कार्य कर रहे हैं, वह सब तुम्हारी आँखोंके सामने है । एक ही समय प्राप्त हुए अनेक कार्योंमेंसे किसका पालन आवश्यक है, इसका निर्णय करनेमें तुम कुशल हो ॥ ८६ ॥

महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७ ॥
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे।

मानद ! सबसे महान् प्रयोजनको तुम्हें शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। मुझे तो सब कार्योंमें सबसे महान् कार्य यही जान पड़ता है कि युद्धस्थलमें अर्जुनकी रक्षा की जाय ॥ ८७½ ॥

नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥
स हि शक्तो रणे तात त्रींल्लोकानपि संगतान्।
विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥
किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम्।

तात ! मैं दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके लिये शोक नहीं करता। वे तो सम्पूर्ण जगत्के संरक्षक और स्वामी हैं। युद्धस्थलमें तीनों लोक संघटित होकर आ जायँ तो भी वे पुरुषसिंह श्रीकृष्ण उन सबको परास्त कर सकते हैं, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। फिर दुर्योधनकी इस अत्यन्त दुर्बल सेनाको जीतना उनके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ८८-८९½ ॥

अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥
प्रजह्यात् समरे प्राणांस्तस्माद् विन्दामि कश्मलम्।

परंतु वार्ष्णेय ! यह अर्जुन तो युद्धस्थलमें बहुसंख्यक सैनिकोंद्वारा पीड़ित होनेपर समराङ्गणमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देगा। इसीलिये मैं शोक और दुःखमें डूबा जा रहा हूँ ॥ ९०½ ॥

तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिनोदितः।

अतः तुम मेरे-जैसे मनुष्यसे प्रेरित हो ऐसे संकटके समय अर्जुन-जैसे प्रिय सखाके पथका अनुसरण करो, जैसा कि तुम्हारे-जैसे वीर पुरुष किया करते हैं ॥ ९१½ ॥

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ ॥ ९२ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः।

सात्वत ! वृष्णिवंशी प्रमुख वीरोंमें रणक्षेत्रके लिये दो ही व्यक्ति अतिरथी माने गये हैं—एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे सुविख्यात वीर तुम ॥ ९२½ ॥

अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले ॥ ९३ ॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनंजयसमो ह्यसि।

नरव्याघ्र ! तुम अस्त्रविद्याके ज्ञानमें भगवान् श्रीकृष्णके समान, बलमें बलरामजीके तुल्य और वीरतामें धनंजयके समान हो ॥ ९३½ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते।

इस जगत्में भीष्म और द्रोणके बाद तुझ पुरुषसिंह सात्यकिको ही श्रेष्ठ पुरुष सम्पूर्ण युद्धकलामें निपुण बताते हैं ॥९४½॥

(सदेवासुरगन्धर्वान् सकिन्नरमहोरगान्।
योधयेत् स जगत् सर्वं विजयेत रिपून् बहून् ॥
इति ब्रुवन्ति लोकेषु जनास्तव गुणान् सदा।
समागमेषु जल्पन्ति पृथगेव च सर्वदा ॥)

जब अच्छे पुरुषोंका समाज जुटता है, उस समय उसमें आये हुए सब लोग संसारमें तुम्हारे गुणोंको सदा-सर्वदा सबसे विलक्षण ही बतलाते हैं। उनका कहना है कि सात्यकि देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर तथा बड़े-बड़े नागोंसहित बहुसंख्यक शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं। सम्पूर्ण जगत्से अकेले ही युद्ध कर सकते हैं ॥

नाशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥ ९५ ॥
तत् त्वां यदभिवक्ष्यामि तत् कुरुष्व महाबल ।
सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ९६ ॥
नान्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहार्हसि ।
परित्यज्य प्रियान् प्राणान् रणे चर विभीतवत् ॥ ९७ ॥

माधव ! लोग कहते हैं कि संसारमें सात्यकिके लिये कोई कार्य असाध्य नहीं है । महाबली वीर ! सब लोगोंकी तथा मेरी और अर्जुनकी— दोनों भाइयोंकी तुम्हारे विषयमें बड़ी उत्तम भावना है । अतः मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसका पालन करो । महाबाहो ! तुम हमारी पूर्वोक्त धारणाको बदल न देना । समराङ्गणमें प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भयके समान विचरो ॥ ९५–९७ ॥

न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ।

शैनेय ! दशार्हकुलके वीर पुरुष रणक्षेत्रमें अपने प्राण बचानेकी चेष्टा नहीं करते हैं । युद्धसे मुँह मोड़ना, युद्धस्थलमें डटे न रहना और संग्रामभूमिमें पीठ दिखाकर भागना यह कायरों और अधम पुरुषोंका मार्ग है । दशार्हकुलके वीर पुरुष इससे दूर रहते हैं ॥ ९८½ ॥

तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ।

तात ! शिनिप्रवर ! धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारा गुरु है तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे और बुद्धिमान् अर्जुनके भी गुरु हैं ॥ ९९½ ॥

कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥ १०० ॥
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ।

इन दोनों कारणोंको जानकर मैं तुमसे इस कार्यके लिये कह रहा हूँ । तुम मेरी बातकी अवहेलना न करो; क्योंकि मैं तुम्हारे गुरुका भी गुरु हूँ ॥ १००½ ॥

वासुदेवमतं चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१ ॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनंजयः ।

तुम्हारा वहाँ जाना भगवान् श्रीकृष्णको, मुझको तथा अर्जुनको भी प्रिय है । यह मैंने तुमसे सच्ची बात कही है । अतः जहाँ अर्जुन है, वहाँ जाओ ॥ १०१½ ॥

एतद् वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ १०२ ॥
प्रविशैतद् बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।

सत्यपराक्रमी वत्स ! तुम मेरी इस बातको मानकर दुर्बुद्धि दुर्योधनकी इस सेनामें प्रवेश करो ॥ १०२½ ॥

प्रविश्य च यथान्यायं संगम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ १०३ ॥

सात्वत ! इसमें प्रवेश करके यथायोग्य सब महारथियोंसे मिलकर युद्धमें अपने अनुरूप पराक्रम दिखाओ ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल १०५ श्लोक हैं)

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! धर्मराजका वह वचन प्रेमपूर्ण, मनको प्रिय लगनेवाला, मधुर अक्षरोंसे युक्त, सामयिक, विचित्र, कहने योग्य तथा न्यायसङ्गत था । भरतश्रेष्ठ ! उसे सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिने युधिष्ठिरको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १-२ ॥

श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥

'अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले नरेश ! आपने अर्जुनकी सहायताके लिये जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैंने सुन लीं । आपका कथन अद्भुत, न्यायसङ्गत और यशकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३ ॥

एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥ ४ ॥

'राजेन्द्र ! ऐसे समयमें मेरे-जैसे प्रिय व्यक्तिको देखकर आप जैसी बात कह सकते हैं, वैसी ही कही है । आप अर्जुनसे जो कुछ कह सकते हैं, वही आपने मुझसे भी कहा है ॥ ४ ॥

न मे धनंजयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथंचन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥

'महाराज ! अर्जुनके हितके लिये मुझे किसी प्रकार भी अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिन्ता नहीं करनी है; फिर आपका आदेश मिलनेपर मैं इस महायुद्धमें क्या नहीं कर सकता हूँ ! ॥ ५ ॥

लोकत्रयं योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत् सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥

'नरेन्द्र ! आपकी आज्ञा हो तो देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित तीनों लोकोंके साथ मैं युद्ध कर सकता हूँ । फिर यहाँ इस अत्यन्त दुर्बल कौरवी सेनाका सामना करना कौन बड़ी बात है ? ॥ ६ ॥

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन् ! मैं रणक्षेत्रमें आज चारों ओर घूमकर दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्ध करूँगा और उसपर विजय पाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ७ ॥

कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनंजयम् ।
हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥

'राजन् ! मैं कुशलपूर्वक रहकर सकुशल अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा और जयद्रथके मारे जानेपर उनके साथ ही आपके पास लौट आऊँगा ॥ ८ ॥

अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद् वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥

'परंतु नरेश्वर ! भगवान् श्रीकृष्ण तथा बुद्धिमान् अर्जुनने युद्धके लिये जाते समय मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब आपको सूचित कर देना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ ९ ॥

दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥

'अर्जुनने सारी सेनाके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए मुझे बारंबार कहकर दृढ़तापूर्वक बाँध लिया है ॥१०॥

अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥

'उन्होंने कहा था—'माधव ! आज मैं जबतक जयद्रथका वध करता हूँ, तबतक युद्धमें तुम श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर पूरी सावधानीके साथ राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो ॥ ११ ॥

त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥

''महाबाहो ! मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही भरोसा करके राजाको धरोहरकी भाँति सौंपकर निरपेक्षभावसे जयद्रथके पास जा सकता हूँ ॥ १२ ॥

जानीषे हि रणे द्रोणं रभसं श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञा चापि ते नित्यं श्रुता द्रोणस्य माधव ॥ १३ ॥

''माधव ! तुम जानते ही हो कि रणक्षेत्रमें श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित आचार्य द्रोण कितने वेगशाली हैं । उन्होंने जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसे भी तुम प्रतिदिन सुनते ही होगे ॥ १३ ॥

ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥

''द्रोणाचार्य भी धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं और वे समराङ्गणमें राजा युधिष्ठिरको कैद करनेमें समर्थ भी हैं ॥ १४ ॥

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥

''ऐसी अवस्थामें नरश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षाका सारा भार तुमपर ही रखकर आज मैं सिन्धुराजके वधके लिये जाऊँगा ॥ १५ ॥

जयद्रथं च हत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद् रणे बलात् ॥ १६ ॥

''माधव ! यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें धर्मराजको बलपूर्वक बंदी न बना सकें तो मैं जयद्रथका वध करके शीघ्र ही लौट आऊँगा ॥ १६ ॥

निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥

''मधुवंशी वीर ! यदि द्रोणाचार्यने नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको कैद कर लिया तो सिन्धुराजका वध नहीं हो सकेगा और मुझे भी महान् दुःख होगा ॥ १७ ॥

एवंगते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः ॥ १८ ॥

''यदि सत्यवादी नरश्रेष्ठ पाण्डुकुमार युधिष्ठिर इस प्रकार बंदी बनाये गये तो निश्चय ही हमें पुनः वनमें जाना पड़ेगा ॥ १८ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद् युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥

''यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें कुपित होकर युधिष्ठिरको कैद कर लेंगे तो मेरी यह विजय अवश्य ही व्यर्थ हो जायगी ॥ १९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥

''महाबाहु माधव ! इसलिये तुम आज मेरा प्रिय करने, मुझे विजय दिलाने और मेरे यशकी वृद्धि करनेके लिये युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो' ॥ २० ॥

स भवान् मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद् भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥

'प्रभो ! इस प्रकार द्रोणाचार्यसे निरन्तर भय मानते हुए सव्यसाची अर्जुनने आपको मेरे पास धरोहरके रूपमें रख छोड़ा है ॥ २१ ॥

तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे ।
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥

'महाबाहो ! प्रभो ! मैं प्रतिदिन युद्धस्थलमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होकर उनसे युद्ध कर सके ॥२२॥

मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥ २३ ॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ।

'अर्जुन मुझे भी बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका सामना करनेमें समर्थ योद्धा मानते हैं । महीपते ! मैं अपने आचार्यकी इस सम्भावनाको तथा उनके उस आदेशको न तो पीछे ढकेल सकता हूँ और न आपको ही त्याग सकता हूँ ॥ २३½ ॥

आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद् यथा शकुनिना शिशुः ।

'द्रोणाचार्य अभेद्य कवचसे सुरक्षित हैं । वे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेके कारण रणक्षेत्रमें अपने विपक्षीको पाकर उसी प्रकार क्रीड़ा करते हैं, जैसे कोई बालक पक्षीके साथ खेल रहा हो ॥ २४½ ॥

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥२५॥
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद् यथार्जुनः ।

'यदि कामदेवके अवतार श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यहाँ हाथमें धनुष लेकर खड़े होते तो उन्हें मैं आपको सौंप देता । वे अर्जुनके समान ही आपकी रक्षा कर सकते थे ॥ २५½ ॥

कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥
यः प्रतीयाद् रणे द्रोणं यावद् गच्छामि पाण्डवम् ।

'आप पहले अपनी रक्षाकी व्यवस्था कीजिये । मेरे चले जानेपर कौन आपका संरक्षण करनेवाला है, जो रणक्षेत्रमें तबतक द्रोणाचार्यका सामना करता रहे, जबतक कि मैं अर्जुनके पास जाता (और लौटता) हूँ ॥ २६½ ॥

मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥ २७ ॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।

'महाराज ! आज आपके मनमें अर्जुनके लिये भय नहीं होना चाहिये । वे महाबाहु किसी कार्यभारको उठा लेनेपर कभी शिथिल नहीं होते हैं ॥ २७½ ॥

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥ २८ ॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

'राजन् ! जो सौवीर, सिन्धु तथा पुरुदेशके योद्धा हैं, जो उत्तर और दक्षिणके निवासी एवं अन्य महारथी हैं तथा जो कर्ण आदि श्रेष्ठ रथी बताये गये हैं; वे कुपित हुए अर्जुनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ॥२८-२९½॥

उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥
सराक्षसगणा राजन् सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥

'नरेश्वर ! देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर तथा महान् सर्पगणोंसहित यह समूची पृथ्वी और सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी युद्धके लिये उद्यत हो जायँ, तो भी सब मिलकर भी युद्धस्थलमें अर्जुनका सामना नहीं कर सकते हैं ॥३०-३१॥

एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनंजये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥ ३२ ॥
न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते ।

'महाराज ! ऐसा जानकर अर्जुनके विषयमें आपका भय दूर हो जाना चाहिये । जहाँ सत्यपराक्रमी और महाधनुर्धर वीर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन विद्यमान हैं, वहाँ किसी प्रकार भी कार्यमें व्याघात नहीं हो सकता ॥ ३२½ ॥

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३ ॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।

'आपके भाई अर्जुनमें जो दैवीशक्ति, अस्त्रविद्याकी निपुणता, योग, युद्धस्थलमें अमर्ष, कृतज्ञता और दया आदि सद्गुण हैं, उनका आप बारंबार चिन्तन कीजिये ॥ ३३½ ॥

मयि चापि सहाये ते गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ३४ ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।

'राजन् ! मैं आपका सहायक रहा हूँ, यदि मैं भी अर्जुनके पास चला जाता हूँ तो युद्धमें द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, उनपर भी आप अच्छी तरह विचार कर लीजिये ॥ ३४½ ॥

आचार्यो हि भृशं राजन् निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्तुं च भारत ।

'भरतवंशी नरेश ! द्रोणाचार्य आपको कैद करनेकी बड़ी इच्छा रखते हैं । वे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए उसे सत्य कर दिखाना चाहते हैं ॥ ३५½ ॥

कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ ३६ ॥
यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति ।

'अब आप अपनी रक्षाका प्रबन्ध कीजिये । पार्थ ! मेरे चले जानेपर कौन आपका रक्षक होगा, जिसपर विश्वास करके मैं अर्जुनके पास चला जाऊँ ॥ ३६½ ॥

न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥ ३७ ॥
क्वचिद् यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'महाराज ! कुरुनन्दन ! मैं आपको इस महासमरमें किसी वीरके संरक्षणमें रक्खे बिना कहीं नहीं जाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ३७½ ॥

एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम्॥ ३९ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाराज ! अपनी बुद्धिसे इस विषयमें बहुत सोच-विचार करके आपको जो परम मङ्गलकारक कृत्य जान पड़े, उसके लिये मुझे आज्ञा दें' ॥ ३८-३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहु माधव ! तुम जैसा कहते हो, वही ठीक है। आर्य ! श्वेतवाहन द्रोणाचार्यकी ओरसे मेरा हृदय शुद्ध (निश्चिन्त) नहीं हो रहा है ॥ ४० ॥

करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम्।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनंजयः ॥ ४१ ॥

मैं अपनी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करूँगा। तुम मेरी आज्ञासे वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन गया है ॥ ४१ ॥

आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति।
विचार्यैतत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचय ॥ ४२ ॥

मुझे युद्धमें अपनी रक्षा करनी चाहिये या अर्जुनके पास तुम्हें भेजना चाहिये। इन दोनों बातोंपर तुम स्वयं ही अपनी बुद्धिसे विचार करके वहाँ जाना ही पसंद करो ॥

स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनंजयः।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥

अतः जहाँ अर्जुन गया है, वहाँ जानेके लिये तुम तैयार हो जाओ। महाबली भीमसेन मेरी भी रक्षा कर लेंगे ॥४३॥

पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥

तात ! भाइयोंसहित धृष्टद्युम्न, महाबली भूपालगण तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र मेरी रक्षा कर लेंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ ४४ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥
धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः।

तात ! पाँच भाई केकय-राजकुमार, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखण्डी, धृष्टकेतु, बलवान् मामा कुन्तिभोज (पुरुजित्), नकुल, सहदेव, पाञ्चाल तथा सृंजय-वीरगण—ये सभी सावधान होकर निःसंदेह मेरी रक्षा करेंगे ॥ ४५-४६½ ॥

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति।

सेनासहित द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा—ये युद्धस्थलमें मेरे पास नहीं पहुँच सकते और न मुझे परास्त ही कर सकेंगे ॥

धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः ॥ ४८ ॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम्।

शत्रुओंको संताप देनेवाला धृष्टद्युम्न समराङ्गणमें कुपित हुए द्रोणाचार्यको पराक्रम करके रोक लेगा। ठीक वैसे ही, जैसे तटकी भूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोक देती है ॥

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत् क्रामेत् तत्र कथंचन।

जहाँ शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला द्रुपदकुमार संग्राम-भूमिमें खड़ा होगा, वहाँ मेरी प्रबल सेनापर द्रोणाचार्य किसी तरह आक्रमण नहीं कर सकते ॥ ४९½ ॥

एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥ ५० ॥
कवची स शरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः।

यह धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये कवच, धनुष, बाण, खड्ग और श्रेष्ठ आभूषणोंके साथ अग्निसे प्रकट हुआ है ॥ ५०½ ॥

विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम्।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

अतः शिनिनन्दन ! तुम निश्चिन्त होकर जाओ। मेरे लिये संदेह मत करो। धृष्टद्युम्न रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्य-को सर्वथा रोक देगा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिर और सात्यकिका संवादविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिकी अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और सम्मानपूर्वक विदा होकर उनका प्रस्थान तथा साथ आते हुए भीमको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटा देना

संजय उवाच

धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः।
स पार्थाद् भयमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः।

ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! धर्मराजका वह कथन सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिके मनमें राजाको छोड़कर जानेसे अर्जुनके अप्रसन्न होनेकी आशङ्का उत्पन्न हुई। विशेषतः उन्हें अपने लिये लोकापवादका भय दिखायी देने लगा। वे सोचने लगे—मुझे अर्जुनकी ओर आते देख सब लोग यही कहेंगे कि यह डरकर भाग आया है ॥ १-२ ॥

निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥

युद्धमें दुर्जय वीर पुरुषरत्न सात्यकिने इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके धर्मराजसे यह बात कही—॥ ३ ॥

कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते ।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥

'प्रजानाथ! यदि आप अपनी रक्षाकी व्यवस्था की हुई मानते हैं तो आपका कल्याण हो। मैं अर्जुनके पास जाऊँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ४ ॥

न हि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥

'राजन्! मैं आपसे सच कहता हूँ कि तीनों लोकोंमें कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे पाण्डुनन्दन अर्जुनसे अधिक प्रिय हो ॥ ५ ॥

तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात् तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किंचिदकर्तव्यं कथंचन ॥ ६ ॥

'मानद! मैं आपके आदेश और संदेशसे अर्जुनके पथका अनुसरण करूँगा। आपके लिये कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं किसी प्रकार न कर सकूँ ॥ ६ ॥

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥

'नरश्रेष्ठ! मेरे गुरु अर्जुनका वचन मेरे लिये जैसा महत्त्व रखता है, आपका वचन भी वैसा ही है, बल्कि उससे भी बढ़कर है ॥ ७ ॥

प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥ ८ ॥

'नृपश्रेष्ठ! दोनों भाई श्रीकृष्ण और अर्जुन आपके प्रिय साधनमें लगे हुए हैं और उन दोनोंके प्रिय कार्यमें आप मुझे तत्पर जानिये ॥ ८ ॥

तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥

'प्रभो! नरश्रेष्ठ! मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके पाण्डुनन्दन अर्जुनके लिये इस दुर्भेद्य सैन्यव्यूहका भेदनकर उनके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवार्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन् राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'राजन्! जैसे महामत्स्य महासागरमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार मैं भी कुपित होकर द्रोणाचार्यकी सेनामें घुसता हूँ। मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ राजा जयद्रथ है ॥ १० ॥

यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन अर्जुनसे भयभीत हो अपनी सेनाका आश्रय लेकर जयद्रथ जहाँ अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि श्रेष्ठ महारथियोंसे सुरक्षित होकर खड़ा है, वहीं मुझे पहुँचना है ॥ ११ ॥

इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥

'प्रजापालक नरेश! इस समय जहाँ जयद्रथ-वधके लिये उद्यत हुए अर्जुन खड़े हैं, उस स्थानको मैं यहाँसे तीन योजन दूर मानता हूँ ॥ १२ ॥

त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद् राजन् सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥

'राजन्! अर्जुनके तीन योजन दूर चले जानेपर भी मैं जयद्रथ-वधके पहले ही सुदृढ़ हृदयसे अर्जुनके स्थानपर पहुँच जाऊँगा ॥ १३ ॥

अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥

'नरेश्वर! गुरुकी आज्ञा प्राप्त हुए बिना कौन मनुष्य युद्ध करेगा और गुरुकी आज्ञा मिल जानेपर मेरे-जैसा कौन वीर युद्ध नहीं करेगा? ॥ १४ ॥

अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।

'प्रभो! मुझे जहाँ जाना है, उस स्थानको मैं जानता हूँ। वह हल, शक्ति, गदा, प्रास, ढाल, तलवार, ऋष्टि और तोमरोंसे भरा है। श्रेष्ठ धनुष-बाणोंसे परिपूर्ण शत्रु-सैन्यरूपी महासागरको मैं मथ डालूँगा ॥ १५½ ॥

यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥ १७ ॥

'महाराज! यह जो आप हजारों हाथियोंकी सेना देखते हैं, इसका नाम है आञ्जनककुल। इसमें पराक्रमशाली गजराज खड़े हैं, जिनके ऊपर प्रहारकुशल और युद्धनिपुण बहुत-से म्लेच्छ योद्धा सवार हैं ॥ १६-१७ ॥

नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः ।
नैते जातु निवर्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः ।

'राजन् ! ये हाथी मेघोंकी घटाके समान दिखायी देते हैं और पानी बरसानेवाले बादलोंके समान मदकी वर्षा करते हैं। हाथीसवारोंके हाँकनेपर ये कभी युद्धसे पीछे नहीं हटते हैं। महाराज ! वधके अतिरिक्त और किसी उपायसे इनकी पराजय नहीं हो सकती ॥ १८½ ॥

अथ यान् रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥

'राजन् ! आप जिन सहस्रों रथियोंको देख रहे हैं, ये रुक्मरथ नामवाले महारथी राजकुमार हैं। प्रजानाथ ! ये रथों, अस्त्रों और हाथियोंके संचालनमें भी निपुण हैं॥१९-२०॥

धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥

'ये सब-के-सब धनुर्वेदके पारंगत विद्वान् हैं। मुष्टि-युद्धमें भी निपुण हैं, गदायुद्धके विशेषज्ञ हैं और मल्लयुद्धमें भी कुशल हैं ॥ २१ ॥

खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥

'तलवार चलानेका भी इन्हें अच्छा अभ्यास है। ये ढाल, तलवार लेकर विचरनेमें समर्थ हैं। शूर और अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान् होनेके साथ ही परस्पर स्पर्धा रखते हैं ॥

नित्यं हि समरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥

'नरेश्वर ! ये सदा समरभूमिमें मनुष्योंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। महाराज ! कर्णने इन्हें दुःशासनका अनुगामी बना रक्खा है ॥ २३ ॥

एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण भी इन श्रेष्ठ महारथियोंकी प्रशंसा करते हैं, ये सब-के-सब कर्णके वशमें स्थित हैं और सदा उसका प्रिय करनेकी अभिलाषा रखते हैं ॥ २४ ॥

तस्यैव वचनाद् राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात्।
ते न क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥

'राजन् ! कर्णके ही कहनेसे ये अर्जुनकी ओरसे इधर लौट आये हैं। इनके कवच और धनुष अत्यन्त सुदृढ़ हैं। वे न तो थके हैं और न पीड़ित ही हुए हैं ॥ २५ ॥

मदर्थेऽधिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः ।

'दुर्योधनके आदेशसे ये निश्चय ही मुझसे युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। कुरुनन्दन ! मैं आपका प्रिय करनेके लिये इन सबको संग्राममें मथकर सव्यसाची अर्जुनके मार्गपर जाऊँगा॥

यांस्त्वेतानपरान् राजन् नागान् सप्त शतानिमान्॥ २७॥
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान् किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः॥२८॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ।

'महाराज ! जिन दूसरे इन सात सौ हाथियोंको आप देख रहे हैं, जो कवचसे आच्छादित हैं और जिनपर किरात योद्धा चढ़े हुए हैं, ये वे ही हाथी हैं, जिन्हें दिग्विजयके समय अपने प्राण बचानेकी इच्छा रखकर किरातराजने सव्य-साची अर्जुनको भेंट किया था। ये सजे-सजाये हाथी उन दिनों आपके सेवक थे ॥ २७-२८½ ॥

आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।

'महाराज ! यह कालचक्रका परिवर्तन तो देखिये—जो पूर्वकालमें दृढ़तापूर्वक आपकी सेवा करनेवाले थे, वे आज आपसे ही युद्ध करना चाहते हैं ॥ २९½ ॥

एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥

'ये रणदुर्मद किरात इन हाथियोंके महावत और इन्हें शिक्षा देनेमें कुशल हैं। ये सब-के-सब अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। सव्यसाची अर्जुनने इन सबको संग्रामभूमिमें पराजित कर दिया था ॥ ३०-३१ ॥

मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान् हत्वा शरै राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान्॥ ३२ ॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।

'राजन् ! आज दुर्योधनके वशीभूत होकर ये मेरे साथ युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं। इन रण-दुर्मद किरातोंका अपने बाणोंद्वारा संहार करके मैं सिंधुराजके वधके प्रयत्नमें लगे हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास जाऊँगा॥ ३२½ ॥

ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वे वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥
लब्धलक्ष्या रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिराश्रिताः ॥ ३५ ॥

'ये जो बड़े-बड़े गजराज दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये अञ्जन-नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए हैं*। इनका स्वभाव

---

* अञ्जनके कुलमें उत्पन्न हुए हाथियोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

स्निग्धनीलाम्बुदप्रख्या बलिनो विपुलैः करैः।
सुविभक्तमहाशीर्षा करिणोऽञ्जनवंशजाः ॥

'स्निग्ध एवं नील-वर्णके मेघोंकी घटाके समान काले,

बड़ा ही कठोर है। इन्हें युद्धकी अच्छी शिक्षा मिली है। इनके गण्डस्थल और मुखसे मदकी धारा बहती रहती है। वे सब-के-सब सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित हैं। राजन्! ये पहले भी युद्धस्थलमें अपने लक्ष्यपर विजय पा चुके हैं और समराङ्गणमें ऐरावतके समान पराक्रम प्रकट करते हैं। उत्तर पर्वत (हिमाचल-प्रदेश) से आये हुए तीखे स्वभाववाले लुटेरे और डाकू इन हाथियोंपर सवार हैं ॥३३-३५॥

कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः।
सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥
अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः।

'वे कर्कश स्वभाववाले तथा श्रेष्ठ योद्धा हैं। उन्होंने काले लोहेके बने हुए कवच धारण कर रक्खे हैं। उनमेंसे बहुत-से दस्यु गायोंके पेटसे उत्पन्न हुए हैं। कितने ही बंदरियोंकी संतानें हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें अनेक योनियोंका सम्मिश्रण है तथा कितने ही मानव-संतान भी हैं॥

अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥ ३७ ॥
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम्।

'यहाँ एकत्र हुए हिमदुर्गनिवासी पापाचारी म्लेच्छोंकी यह सेना धूएँके समान काली प्रतीत होती है ॥ ३७½ ॥

एतद् दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम्।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥ ३९ ॥
कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः।

'कालसे प्रेरित हुआ दुर्योधन इन समस्त राजाओंके समुदायको तथा रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, जयद्रथ और कर्णको पाकर पाण्डवोंका अपमान करता है तथा अपने-आपको कृतार्थ मान रहा है ॥ ३८-३९½ ॥

ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः।

'कुन्तीनन्दन! वे सब लोग आज मेरे नाराचोंके लक्ष्य बने हुए हैं। वे मनके समान वेगशाली हों तो भी मेरे हाथोंसे छूट नहीं सकेंगे ॥ ४०½ ॥

तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥ ४१ ॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः।

'दूसरोंके बलपर जीनेवाले दुर्योधनने इन सब लोगोंका सदा आदरपूर्वक भरण-पोषण किया है; परंतु ये मेरे बाण-समूहोंसे पीड़ित होकर आज विनष्ट हो जायँगे ॥ ४१½ ॥

ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ॥ ४२ ॥
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः।

बलवान्, विशाल शुण्डदण्डसे सुशोभित तथा सुन्दर विभागयुक्त विशाल मस्तकवाले हाथी अंजनकुलकी संतानें हैं।

'राजन्! ये जो सोनेकी ध्वजावाले रथी दिखायी देते हैं, ये दुर्वारण नामवाले काम्बोज सैनिक हैं। आपने इनका नाम सुना होगा ॥ ४२½ ॥

शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः।

'ये शूर, विद्वान् तथा धनुर्वेदमें परिनिष्ठित हैं। इनमें परस्पर बड़ा संगठन है। ये एक दूसरेका हित चाहनेवाले हैं॥

अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥

'भरतनन्दन! दुर्योधनकी क्रोधमें भरी हुई ये कई अक्षौहिणी सेनाएँ कौरववीरोंसे सुरक्षित हो मेरे लिये तैयार खड़ी हैं। महाराज! ये सब सावधान होकर मुझपर ही आक्रमण करनेवाली हैं॥ ४४-४५ ॥

तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः।
तस्मात् सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद् रथकल्पकाः।

'परंतु जैसे आग तिनकोंको जला डालती है, उसी प्रकार मैं उन समस्त कौरव-सैनिकोंको मथ डालूँगा। अतः राजन्! रथको सुसज्जित करनेवाले लोग आज मेरे रथपर यथावत् रूपसे भरे हुए तरकसों तथा अन्य सब आवश्यक उपकरणोंको रख दें॥

अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥ ४७ ॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः।

'इस संग्राममें नाना प्रकारके आयुधोंका उसी प्रकार संग्रह कर लेना चाहिये, जैसा कि आचार्योंने उपदेश किया है। रथपर रक्खी जानेवाली युद्धसामग्री पहलेसे पाँचगुनी कर देनी चाहिये ॥ ४७½ ॥

काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ ४८ ॥
नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः।

'आज मैं विषधर सर्पके समान क्रूर स्वभाववाले उन काम्बोज-सैनिकोंके साथ युद्ध करूँगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रसमुदायोंसे सम्पन्न और भाँति-भाँतिके आयुधोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हैं ॥ ४८½ ॥

किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः।

'दुर्योधनका हित चाहनेवाले और विषके समान घातक उन प्रहारकुशल किरात-योद्धाओंके साथ भी संग्राम करूँगा, जिनका राजा दुर्योधनने सदा ही लालन-पालन किया है ॥

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः।

'प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, दुर्धर्ष एवं इन्द्रके

समान पराक्रमी शकोंके साथ भी आज मैं भिड़ जाऊँगा ॥

तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥
समेष्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।

'राजन् ! इनके सिवा और भी जो नाना प्रकारके बहुसंख्यक युद्धदुर्मद, कालके तुल्य भयंकर तथा दुर्जय योद्धा हैं, रणक्षेत्रमें उन सबका सामना करूँगा ॥ ५१½ ॥

तस्माद् वै वाजिनो मुख्या विश्रान्ताः शुभलक्षणाः॥ ५२॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।

'इसलिये उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न श्रेष्ठ घोड़े, जो विश्राम कर चुके हों, जिन्हें टहलाया गया हो और पानी भी पिला दिया गया हो, पुनः मेरे रथमें जोते जायँ' ॥ ५२½ ॥

संजय उवाच

तस्य सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥
रथे चास्थापयद् राजा शस्त्राणि विविधानि च ।

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथपर भरे हुए सारे तरकसों, समस्त उपकरणों तथा भाँति-भाँतिके शस्त्रोंको रखवा दिया ॥ ५३½ ॥

ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः॥ ५४ ॥
रसवत् पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।

तदनन्तर सब प्रकारसे सुशिक्षित उन चारों उत्तम घोड़ोंको सेवकोंने मदमत्त बना देनेवाला रसीला पेय पदार्थ पिलाया ॥ ५४½ ॥

पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धान्नान् समलंकृतान् ॥५५॥
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ।
तान् युक्तान् रुक्मवर्णाभान् विनीताञ्शीघ्रगामिनः॥५६॥
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत्कल्पितान् रथे।
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥
संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५९ ॥

जब वे पी चुके तो उन्हें टहलाया और नहलाया गया । उसके बाद दाना और चारा खिलाया गया । फिर उन्हें सब प्रकारसे सुसजित किया गया । उनके अङ्गोंमें गड़े हुए बाण पहले ही निकाल दिये गये थे । वे चारों घोड़े सोनेकी मालाओंसे विभूषित थे । उन योग्य अश्वोंकी कान्ति सुवर्णके समान थी । वे सुशिक्षित और शीघ्रगामी थे । उनके मनमें हर्ष और उत्साह था । तनिक भी व्यग्रता नहीं थी । उन्हें विधिपूर्वक सजाया गया था । स्वर्णमय अलङ्कारोंसे अलङ्कृत उन अश्वोंको सारथिने विधिपूर्वक रथमें जोता । वह रथ सुवर्णमय केशरोंसे सुशोभित सिंहके चिह्नवाले विशाल ध्वजसे सम्पन्न था । मणियों और मूँगोंसे चित्रित सोनेकी शलाकाओंसे शोभायमान एवं श्वेत पताकाओंसे अलंकृत था । उस रथके ऊपर स्वर्णमय दण्डसे विभूषित छत्र तना हुआ था तथा रथके भीतर नाना प्रकारके शस्त्र तथा अन्य आवश्यक सामान रक्खे गये थे ॥ ५५-५९ ॥

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद् रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥

जैसे मातलि इन्द्रका सारथि और सखा भी है, उसी प्रकार दारुकका छोटा भाई सात्यकिका सारथि और प्रिय सखा था । उसने सात्यकिको यह सूचना दी कि रथ जोतकर तैयार है ॥ ६० ॥

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥ ६१ ॥

तदनन्तर सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो यात्राकालिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न करनेके पश्चात् एक सहस्र स्नातकोंको सोनेकी मुद्राएँ दान कीं ॥ ६१ ॥

आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महतान्वितः ॥ ६३ ॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४ ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः॥ ६५ ॥

ब्राह्मणोंके आशीर्वाद पाकर तेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ एवं मधुपर्कके अधिकारी सात्यकिने कैलातक नामक मधुका पान किया । उसे पीते ही उनकी आँखें लाल हो गयीं । मदसे नेत्र चञ्चल हो उठे, फिर उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर वीरकांस्यपात्रका स्पर्श किया । उस समय प्रज्वलित अग्निके समान रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिका तेज दूना हो गया । उन्होंने बाणसहित धनुषको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंके मुखसे स्वस्तिवाचनका कार्य सम्पन्न कराकर कवच एवं आभूषण धारण किये, फिर कुमारी कन्याओंने लावा, गन्ध तथा पुष्पमालाओंसे उनका पूजन एवं अभिनन्दन किया ॥ ६२-६५ ॥

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥

इसके बाद सात्यकिने हाथ जोड़कर युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया और युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूँघा । फिर वे उस विशाल रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ६६ ॥

ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टाः वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर वे हृष्ट-पुष्ट वायुके समान वेगशाली एवं अजेय सिंधुदेशीय घोड़े मदमत्त हो उस विजयशील रथको लेकर चल दिये ॥ ६७ ॥

तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात् सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार धर्मराजसे सम्मानित भीमसेन भी युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकिके साथ चले ॥ ६८ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिंदमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥

उन दोनों शत्रुदमन वीरोंको आपकी सेनामें प्रवेश करनेके लिये इच्छुक देख द्रोणाचार्य आदि आपके सारे सैनिक सावधान होकर खड़े हो गये ॥ ६९ ॥

संनद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याब्रवीद् वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥

उस समय भीमसेनको कवच आदिसे सुसज्जित होकर अपने पीछे आते देख उनका अभिनन्दन करके वीर सात्यकिने उनसे यह हर्षवर्धक वचन कहा—॥ ७० ॥

त्वं भीम रक्ष राजानमेतत् कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥

'भीमसेन ! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो। यही तुम्हारे लिये सबसे महान् कार्य है। जिसे कालने राँधकर पका दिया है, इस कौरवसेनाको चीरकर मैं भीतर प्रवेश कर जाऊँगा ॥

आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिंदम ॥ ७२ ॥
तस्माद् भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।

'शत्रुदमन वीर ! इस समय और भविष्यमें भी राजाकी रक्षा करना ही श्रेयस्कर है। तुम मेरा बल जानते हो और मैं तुम्हारा। अतः भीमसेन ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो लौट जाओ ॥ ७२½ ॥

तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।

सात्यकिके ऐसा कहनेपर भीमसेनने उनसे कहा—'अच्छा भैया ! तुम कार्यसिद्धिके लिये आगे बढ़ो। पुरुषप्रवर ! मैं राजाकी रक्षा करूँगा' ॥ ७३½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।

भीमसेनके ऐसा कहनेपर सात्यकिने उनसे कहा—'कुन्तीकुमार ! तुम जाओ। निश्चय ही लौट जाओ। मेरी विजय अवश्य होगी ॥ ७४½ ॥

यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥
निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६ ॥
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

'भीमसेन ! तुम जो मेरे गुणोंमें अनुरक्त होकर मेरे वशमें हो गये हो तथा इस समय दिखायी देनेवाले शुभ शकुन मुझे जैसी बात बता रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि महात्मा अर्जुनके द्वारा पापी जयद्रथके मारे जानेपर मैं निश्चय ही लौटकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका आलिङ्गन करूँगा' ॥ ७५-७६½ ॥

एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ॥ ७७ ॥
सम्प्रैक्षत् तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ।

भीमसेनसे ऐसा कहकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् महायशस्वी सात्यकिने आपकी सेनाकी ओर उसी प्रकार देखा, जैसे बाघ मृगोंके झुंडकी ओर देखता है ॥ ७७½ ॥

तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ॥ ७८ ॥
भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ।

नरेश्वर ! सात्यकिको अपने भीतर प्रवेश करनेके लिये उत्सुक देख आपकी सेनापर पुनः मोह छा गया और वह बारंबार काँपने लगी ॥ ७८½ ॥

ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ॥ ७९ ॥
दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात् ।

राजन् ! तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनसे मिलनेके लिये सात्यकि आपकी सेनाकी ओर वेगपूर्वक बढ़े ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेशविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका द्रोण और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए काम्बोजोंकी सेनाके पास पहुँचना

संजय उवाच

प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ १ ॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।

संजय कहते हैं—महाराज ! जब युयुधान युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर बढ़े, उस समय अपने सैनिकोंसे घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके रथका सामना करनेके लिये उनके पीछे-पीछे गये ॥ १½ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २ ॥
प्राक्रोशत् पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥ ४ ॥

तदनन्तर समरभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न तथा राजा वसुदानने पाण्डवसेनामें पुकारकर कहा—'योद्धाओ ! आओ, दौड़ो और शीघ्रतापूर्वक प्रहार करो, जिससे रणदुर्मद सात्यकि सुखपूर्वक आगे जा सकें; क्योंकि बहुत-से कौरव महारथी इन्हें पराजित करनेका प्रयत्न करेंगे' ॥ २–४ ॥

इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान् समभिद्रुताः ॥ ५ ॥

सेनापतिकी पूर्वोक्त बात दुहराते हुए सभी पाण्डव महारथी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे । उस समय हमलोगोंने भी उन्हें जीतनेकी अभिलाषासे उनपर धावा कर दिया ॥

(बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ।
युयुधानरथं दृष्ट्वा तावका अभिदुद्रुवुः ॥)

युयुधानके रथको देखकर आपके सैनिक शङ्खध्वनिसे मिश्रित बाणोंका शब्द प्रकट करते हुए उनके सामने दौड़े आये॥

ततः शब्दो महानासीद् युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ ६ ॥
सात्वतेन महाराज शतधाभिव्यशीर्यत ।

तदनन्तर सात्यकिके रथके समीप महान् कोलाहल मच गया । महाराज ! चारों ओरसे दौड़कर आती हुई आपके पुत्रकी सेना सात्यकिके बाणोंसे आच्छादित हो सैकड़ों टुकड़ियोंमें बँटकर तितर-बितर हो गयी ॥ ६½ ॥

तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पौत्रो महारथः ॥ ७ ॥
सप्त वीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।

उस सेनाके छिन्न-भिन्न होते ही शिनिके महारथी पौत्रने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए सात महाधनुर्धर वीरोंको मार गिराया ॥ ७½ ॥

अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥ ८ ॥
शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर विभिन्न जनपदोंके स्वामी अन्यान्य वीर राजाओंको भी उन्होंने अपने अग्निसदृश बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया ॥ ८½ ॥

शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥
द्विपारोहान् द्विपांश्चैव हयारोहान् हयांस्तथा ।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥ १० ॥

वे एक बाणसे सैकड़ों वीरोंको और सैकड़ों बाणोंसे एक-एक वीरको घायल करने लगे । जिस प्रकार भगवान् पशुपति पशुओंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार सात्यकिने हाथीसवारों और हाथियोंको, घुड़सवारों और घोड़ोंको तथा घोड़े और सारथिसहित रथियोंको मार डाला ॥ ९-१० ॥

तं तथाद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् ।
न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥

इस प्रकार बाणधाराकी वर्षा करनेवाले उस अद्भुत पराक्रमी सात्यकिके सामने जानेका साहस आपके कोई सैनिक न कर सके ॥ ११ ॥

ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥

उस महाबाहु वीरने अपने बाणोंसे रौंदकर आपके सारे सिपाहियोंको मसल डाला । वे वीर सिपाही ऐसे डर गये कि उस अत्यन्त मानी शूरवीरको देखते ही युद्धका मैदान छोड़ देते थे॥

तमेकं बहुधापश्यन् मोहितास्तस्य तेजसा ।
रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥
चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गाभोगसंनिभैः ॥ १५ ॥
ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।

माननीय नरेश ! सारे कौरव सैनिक सात्यकिके तेजसे मोहित हो अकेले होनेपर भी उन्हें अनेक रूपोंमें देखने लगे । वहाँ बहुसंख्यक रथ चूर-चूर हो गये थे । उनकी बैठकें टूट-फूट गयी थीं । पहियोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे । छत्र और ध्वज छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े थे । अनुकर्ष, पताका, शिरस्त्राण, सुवर्णभूषित अङ्गदयुक्त चन्दनचर्चित भुजाएँ, हाथीकी सूँड़ तथा सर्पोंके शरीरके समान मोटे-मोटे ऊरु सब ओर बिखरे पड़े थे । नरेश्वर ! मनुष्योंके विभिन्न अंगों तथा रथके पूर्वोक्त अवयवोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी॥

शशाङ्कसंनिभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।

वृषभके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले वीरोंके गिरे हुए मनोहर कुण्डलमण्डित चन्द्रमा-जैसे मुखोंसे वहाँकी भूमि अत्यन्त शोभा पा रही थी ॥ १६½ ॥

गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥
रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।

अनेकों टुकड़ोंमें कटकर धराशायी हुए पर्वताकार गजराजोंसे वहाँकी भूमि इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न हो रही थी, मानो वहाँ बहुत-से पर्वत बिखरे हुए हों ॥

तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्त्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १९ ॥

कितने ही घोड़े सुनहरी रस्सियों तथा मोतीकी जालियोंसे विभूषित विचित्र आच्छादन वस्त्रोंसे विशेष शोभायमान हो रहे थे। महाबाहु सात्यकिके द्वारा रौंदे जाकर वे धरतीपर पड़े थे और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ १८-१९ ॥

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ २० ॥

इस प्रकार आपकी नाना प्रकारकी सेनाओंका संहार करके तथा बहुत-से सैनिकोंको भगाकर सात्यकि आपकी सेनाके भीतर घुस गये ॥ २० ॥

ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनंजयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥

तदनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गये, उसीसे सात्यकिने भी जानेका विचार किया; परंतु द्रोणाचार्यने उन्हें रोक दिया॥

भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।
न न्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए सत्यकनन्दन युयुधान द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर रुक तो गये; परंतु पीछे नहीं लौटे। जैसे क्षुब्ध जलाशय अपनी तटभूमितक पहुँचकर फिर पीछे नहीं लौटता है ॥ २२ ॥

निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें महारथी युयुधानको रोककर मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले पाँच पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २३ ॥

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥

राजन्! तब सात्यकिने भी समराङ्गणमें शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पाँखवाले तथा कंक और मोर-की पाँखोंसे संयुक्त हुए सात बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर डाला ॥ २४ ॥

तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥

फिर द्रोणने छः बाण मारकर घोड़ों और सारथिसहित सात्यकिको पीड़ित कर दिया। द्रोणाचार्यके इस पराक्रमको महारथी युयुधान सहन न कर सके ॥ २५ ॥

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥

उन्होंने सिंहनाद करके लगातार दस, छः और आठ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २६ ॥

युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।

माननीय नरेश! तदनन्तर युयुधानने पुनः दस बाण मारकर द्रोणाचार्यको घायल कर दिया। फिर एक बाणसे उनके सारथिको, चारसे चारों घोड़ोंको और एक बाणसे उनकी ध्वजाको युद्धस्थलमें बींध डाला ॥ २७½ ॥

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥
त्वरन् प्राच्छादयद् बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।

इसके बाद द्रोणाचार्यने उतावले होकर टिड्डीदलोंके समान अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ २८½ ॥

तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।

इसी प्रकार सात्यकिने भी बिना किसी घबराहटके बहुत-से शीघ्रगामी बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको ढक दिया। तब द्रोणाचार्य बोले—॥ २९½ ॥

तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत ।
त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।

'माधव! तुम्हारे आचार्य अर्जुन तो कायरके समान युद्धका मैदान छोड़कर चले गये हैं। मैं युद्ध कर रहा था तो भी मुझे छोड़कर मेरी परिक्रमा करते हुए चल दिये। तुम भी अपने आचार्यके समान तुरंत ही समराङ्गणमें मुझे छोड़कर चले नहीं जाओगे तो युद्धमें तत्पर रहते हुए मेरे हाथसे आज जीवित बचकर नहीं जा सकोगे' ॥ ३०-३१½ ॥

सात्यकिरुवाच

धनंजयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन् न मे कालात्ययो भवेत् ।
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।

सात्यकिने कहा—ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो । मैं धर्मराजकी आज्ञासे धनंजयके मार्गपर जा रहा हूँ । आप ऐसा करें, जिससे मुझे विलम्ब न हो । शिष्यगण तो सदासे ही अपने आचार्यके मार्गका ही अनुसरण करते आये हैं । अतः जिस प्रकार मेरे गुरुजी गये हैं, उसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही चला जाता हूँ ॥ ३२-३३½ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर सात्यकि सहसा द्रोणाचार्यको छोड़कर चल दिये और सारथिसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।

'सूत ! द्रोणाचार्य मुझे रोकनेके लिये सब प्रकारसे प्रयत्न करेंगे, अतः तुम रणक्षेत्रमें सावधान होकर चलो और मेरी यह दूसरी बात भी सुन लो ॥ ३५½ ॥

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥
अस्यानन्तरतस्त्वेतद् दाक्षिणात्यं महद् बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च बाह्लिकानां महद् बलम् ॥ ३७ ॥

'यह अवन्तिनिवासियोंकी अत्यन्त तेजस्विनी सेना दिखायी देती है । इसके बाद यह दाक्षिणात्योंकी विशाल सेना है । उसके पश्चात् यह बाह्लिकोंकी विशाल वाहिनी है ॥

बाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद् बलम् ।
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥

'बाह्लिकोंके पास ही उनसे जुड़ी हुई कर्णकी बड़ी भारी सेना खड़ी है । सारथे ! ये सारी सेनाएँ एक दूसरीसे भिन्न हैं॥

अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ।
एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥

'ये सब-की-सब एक दूसरीका सहारा लेकर युद्धके लिये डटी हुई हैं । ये कभी भी समराङ्गणका परित्याग नहीं करेंगी । तुम इन्हींके बीचमें होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥ ३९ ॥

मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।
बाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ४० ॥

'सारथे ! मध्यम वेगका आश्रय लेकर तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये युद्धके लिये उद्यत हुए बाह्लिकदेशीय सैनिक दिखायी देते हैं ॥ ४० ॥

दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चानीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।

'जहाँ सूतपुत्र कर्णको आगे करके बहुत-से दाक्षिणात्य योद्धा खड़े हैं, हाथी, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई जो वह सेना दृष्टिगोचर हो रही है, उसमें अनेक देशोंके पैदल सैनिक मौजूद हैं; तुम वहाँ भी मेरे रथको ले चलो' ॥ ४१½ ॥

एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥
स व्यतीयाय यत्रोग्रं कर्णस्य च महद् बलम् ।

सारथिसे ऐसा कहकर सात्यकि ब्राह्मण द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए सबको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कर्णकी भयंकर एवं विशाल सेना खड़ी थी ॥ ४२½ ॥

तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन् विशिखान् बहून् ॥ ४३ ॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।

युद्धसे पीछे न हटनेवाले महाभाग युयुधानको आगे बढ़ते देख द्रोणाचार्य कुपित हो उठे और वे बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए कुछ दूरतक उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ४३½ ॥

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनामपर्यन्तां च सात्यकिः ।

सात्यकि कर्णकी विशाल वाहिनीको अपने पैने बाणोंद्वारा घायल करके अपार कौरवी सेनामें घुस गये ॥ ४४½ ॥

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।

सात्यकिके प्रवेश करते ही सारे कौरव-सैनिक भागने लगे । तब क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने उन्हें आ घेरा ॥ ४५½ ॥

तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् ।

उसे आते देख पराक्रमी सात्यकिने छः बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचाकर चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ ४६½ ॥

ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

तदनन्तर पुनः झुकी हुई गाँठवाले सोलह बाण मारकर सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४७½ ॥

स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।

महाराज ! सात्यकिके प्रचण्ड तेजवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल होनेपर कृतवर्मा सहन न कर सका ॥ ४८½ ॥

स वत्सदन्तं संधाय जिह्मगानलसंनिभम् ॥ ४९ ॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद् विव्याधोरसि सात्यकिम् ।

राजन् ! वक्रगतिसे चलनेवाले अग्निके समान तेजस्वी

वत्सदन्तनामक बाणको धनुषपर रखकर कृतवर्माने उसे कानतक खींचा और उसके द्वारा सात्यकिकी छातीमें प्रहार किया॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ ५० ॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।

वह बाण सात्यकिके शरीर और कवच दोनोंको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो पङ्ख एवं पत्रसहित धरतीमें समा गया ॥

अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत् परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥
समार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम् ।

राजन्! कृतवर्मा उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता है। उसने बहुत-से बाण चलाकर बाणसमूहोंसहित सात्यकिके शरासनको काट दिया ॥ ५१½ ॥

विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५२ ॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।

नरेश्वर! इसके बाद क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने सत्यपराक्रमी सात्यकिकी छातीमें पुनः दस पैने बाणोंद्वारा गहरा आघात किया ॥ ५२½ ॥

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशाली शूरवीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने कृतवर्माकी दाहिनी भुजापर शक्तिद्वारा ही प्रहार किया ॥ ५३½ ॥

ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥
व्यसृजद् विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥

तदनन्तर दूसरे सुदृढ़ धनुषको अच्छी तरह खींचकर सात्यकिने तुरंत ही सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वर्षा की और रथसहित कृतवर्माको सब ओरसे ढक दिया ॥ ५४-५५ ॥

छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥

राजन्! रणक्षेत्रमें इस प्रकार कृतवर्माको आच्छादित करके सात्यकिने एक भल्लद्वारा उसके सारथिका सिर काट दिया ॥ ५६ ॥

स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवंस्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥

उनके द्वारा मारा गया सारथि कृतवर्माके विशाल रथसे नीचे गिर पड़ा। फिर तो सारथिके बिना उसके घोड़े बड़े जोरसे भागने लगे ॥ ५७ ॥

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान् स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५८ ॥

इससे कृतवर्माको बड़ी घबराहट हुई; परंतु वह वीर स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें करके हाथमें धनुष ले युद्धके लिये डट गया। उसके इस कर्मकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५८ ॥

स मुहूर्तमिवाश्वस्य सदश्वान् समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत् सुमहद् भयम् ॥ ५९ ॥

उसने थोड़ी ही देरमें आश्वस्त होकर अपने उत्तम घोड़ोंको आगे बढ़ाया तथा स्वयं निर्भय रहकर शत्रुओंके हृदयमें महान् भय उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

सात्यकिश्चाभ्यगात् तस्मात् स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद् विनिःसृतः ॥ ६० ॥
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।
स तत्र बहुभिः शूरैः संनिरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥
न चचाल तदा राजन् सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

राजेन्द्र! यही अवसर पाकर सात्यकि वहाँसे आगे निकल गये। तब कृतवर्माने भीमसेनपर धावा किया। कृतवर्माकी सेनासे निकलकर युयुधान तुरंत ही काम्बोजोंकी विशाल वाहिनीके पास आ पहुँचे। वहाँ बहुत-से शूरवीर महारथियोंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। महाराज! तो भी उस समय सत्यपराक्रमी सात्यकि विचलित नहीं हुए ॥ ६०-६१½ ॥

संधाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ॥ ६२ ॥
अभ्यधावद् रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।

द्रोणाचार्यने अपनी बिखरी हुई सेनाको एकत्र करके उसकी रक्षाका भार कृतवर्माको सौंपकर समराङ्गणमें सात्यकिके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे उद्यत हो उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ६२½ ॥

तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।

इस प्रकार उन्हें युयुधानके पीछे दौड़ते देख पाण्डव-सेनाके प्रमुख वीर हर्षमें भरकर द्रोणाचार्यको रोकनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ६३½ ॥

समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।

परंतु रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माके पास पहुँचकर भीमसेनको आगे करके आक्रमण करनेवाले पाञ्चालोंका उत्साह नष्ट हो गया ॥ ६४½ ॥

विक्रम्य वारिता राजन् वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥
यतमानांश्च तान् सर्वानीषद्विगतचेतसः ।

अभितस्ताञ्शरौघेण क्रान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! वीर कृतवर्माने पराक्रम करके उनको रोक दिया । वे सभी वीर कुछ-कुछ शिथिल एवं अचेत-से हो रहे थे, तो भी अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे; परंतु कृतवर्माने सब ओरसे उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा करके उनके वाहनोंको व्याकुल कर दिया ॥ ६५-६६ ॥

निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे ।
अतिष्ठन्नार्यवद् वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६७ ॥

कृतवर्माद्वारा रोके जानेपर वे पाण्डव वीर रणक्षेत्रमें महान् यशकी इच्छा करते हुए उसीकी सेनाके साथ युद्धकी अभिलाषा करके श्रेष्ठ पुरुषोंके समान डटकर खड़े हो गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥११३॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६८ श्लोक हैं)

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विषादयुक्त वचन, संजयका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना, कृतवर्माका भीमसेन और शिखण्डीके साथ युद्ध तथा पाण्डवसेनाकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् ।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मेरी सेना इस प्रकार अनेक गुणोंसे सम्पन्न है और इस तरह अधिक संख्यामें इसका संग्रह किया गया है । पाण्डवसेनाकी अपेक्षा यह प्रबल भी है । इसकी व्यूहरचना भी इस प्रकार शास्त्रीय विधिके अनुसार की जाती है और इस तरह बहुत-से योद्धाओंका समूह जुट गया है ॥ १ ॥

नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा ।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥

हमलोगोंने सदा अपनी सेनाका आदर-सत्कार किया है तथा वह हमारे प्रति सदासे ही अनुरक्त भी है । हमारे सैनिक युद्धकी कलामें बढ़े-चढ़े हैं । हमारा सैन्य-समुदाय देखनेमें अद्भुत जान पड़ता है तथा इस सेनामें वे ही लोग चुन-चुनकर रक्खे गये हैं, जिनका पराक्रम पहलेसे ही देख लिया गया है ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च नाकृशं नातिपीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

इसमें न तो कोई अधिक बूढ़ा है, न बालक है, न अधिक दुबला है और न बहुत ही मोटा है । उनका शरीर हल्का, सुडौल तथा प्रायः लंबा है । शरीरका एक-एक अवयव सारवान् (सबल) तथा सभी सैनिक नीरोग एवं स्वस्थ हैं ॥ ३ ॥

आत्तसंनाहसंछन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥

इन सैनिकोंका शरीर बँधे हुए कवचसे आच्छादित है । इनके पास शस्त्र आदि आवश्यक सामग्रियोंकी बहुतायत है । ये सभी सैनिक शस्त्रग्रहणसम्बन्धी बहुत-सी विद्याओंमें प्रवीण हैं ॥ ४ ॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥

चढ़ने, उतरने, फैलने, कूद-कूदकर चलने, भली-भाँति प्रहार करने, युद्धके लिये जाने और अवसर देखकर पलायन करनेमें भी कुशल हैं ॥ ५ ॥

नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥

हाथियों, घोड़ों तथा रथोंपर बैठकर युद्ध करनेकी कलामें सब लोगोंकी परीक्षा ली जा चुकी है और परीक्षा लेनेके पश्चात् उन्हें यथायोग्य वेतन दिया गया है ॥ ६ ॥

न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः ।
नानाहूतं नाप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥

हमने किसीको भी गोष्ठीद्वारा बहकाकर, उपकार करके अथवा किसी सम्बन्धके कारण सेनामें भर्ती नहीं किया है । इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जिसे बुलाया न गया हो अथवा जिसे बेगारमें पकड़कर लाया गया हो । मेरी सारी सेनाकी यही स्थिति है ॥ ७ ॥

कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम् ।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥

इसमें सभी लोग कुलीन, श्रेष्ठ, हृष्ट-पुष्ट, उद्दण्डताशून्य, पहलेसे सम्मानित, यशस्वी तथा मनस्वी हैं ॥ ८ ॥

सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥

तात ! हमारे मन्त्री तथा अन्य बहुतेरे प्रमुख कार्यकर्ता जो पुण्यात्मा, लोकपालोंके समान पराक्रमी और मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं, सदा इस सेनाका पालन करते आये हैं ॥ ९ ॥

बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानभिसृतैः कामात् सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥

हमारा प्रिय करनेकी इच्छावाले तथा सेना और अनुचरों-सहित स्वेच्छासे ही हमारे पक्षमें आये हुए बहुत-से भूपालगण भी इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं ॥ १० ॥

महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसंकाशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंसे बहकर आयी हुई नदियोंसे परिपूर्ण होनेवाले महासागरके समान हमारी यह सेना अगाध और अपार है । पक्षरहित एवं पक्षियोंके समान तीव्र वेगसे चलने-वाले रथों और घोड़ोंसे यह भरी हुई है ॥ ११ ॥

प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद् भागधेयतः ॥ १२ ॥

गण्डस्थलसे मद बहानेवाले गजराजोंद्वारा आवृत यह मेरी विशाल वाहिनी यदि शत्रुओंद्वारा मारी गयी है तो इसमें भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥१२ ॥

योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसंचितम् ।
वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसंधमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥

संजय ! मेरी सेना भयंकर समुद्रके समान जान पड़ती है । योद्धा ही इसके अक्षय्य जल हैं, वाहन ही इसकी तरङ्गमालाएँ हैं, क्षेपणीय, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्र इसमें मछलियोंके समान भरे हुए हैं । ध्वजा और आभूषणोंके समुदाय इसके भीतर रत्नोंके समान संचित हैं । दौड़ते हुए वाहन ही वायुके वेग हैं, जिनसे यह सैन्यसमुद्र कम्पित एवं क्षुब्ध-सा जान पड़ता है । द्रोणाचार्य ही इसकी पातालतक फैली हुई गहराई है । कृतवर्मा इसमें महान् ह्रदके समान है, जलसंध विशाल ग्राह है और कर्णरूपी चन्द्रमाके उदयसे यह सदा उद्वेलित होता रहता है ॥ १३–१५ ॥

गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
संजयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य संजय ॥ १७ ॥

संजय ! ऐसे मेरे सैन्यरूपी महासागरका वेगपूर्वक भेदन करके जब पाण्डवश्रेष्ठ सव्यसाची अर्जुन तथा सात्वत-वंशी उदार महारथी युयुधान एकमात्र रथकी सहायतासे इसके भीतर घुस गये, तब मैं अपनी सेनाके शेष रहनेकी आशा नहीं देखता हूँ ॥ १६-१७ ॥

तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वातीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥
किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥

उन दोनों अत्यन्त वेगशाली वीरोंको वहाँ सबका उल्लङ्घन करके घुसे हुए देख तथा सिन्धुराज जयद्रथको गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंकी सीमामें उपस्थित पाकर काल-प्रेरित कौरवोंने वहाँ कौन-सा कार्य किया ? उस दारुण संहारके समय, जहाँ मृत्युके सिवा दूसरी कोई गति नहीं थी, किस प्रकार उन्होंने कर्तव्यका निश्चय किया ? ॥१८-१९॥

ग्रस्तान् हि कौरवान् मन्ये मृत्युना तात संगतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥

तात ! मैं युद्धस्थलमें एकत्र हुए कौरवोंको कालका ग्रास ही मानता हूँ; क्योंकि रणक्षेत्रमें उनका पराक्रम भी पहले-जैसा नहीं दिखायी देता है ॥ २० ॥

अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित् तयोरस्तीह संजय ॥ २१ ॥

संजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन बिना कोई क्षति उठाये युद्धस्थलमें मेरी सेनाके भीतर घुस गये; परंतु इसमें कोई भी वीर उन दोनोंको रोकनेवाला न निकला ॥ २१ ॥

भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चापरे ॥ २२ ॥

हमने दूसरे बहुत-से महारथी योद्धाओंकी परीक्षा करके ही उन्हें सेनामें भर्ती किया है और यथायोग्य वेतन देकर तथा प्रिय वचन बोलकर उनका सत्कार किया है ॥२२॥

असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥

तात ! मेरी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे अनादर-पूर्वक रक्खा गया हो । सबको उनके कार्यके अनुरूप ही भोजन और वेतन प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

न चायोधोऽभवत् कश्चिन्मम सैन्ये तु संजय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाभृतको नरः ॥ २४ ॥

तात संजय ! मेरी सेनामें ऐसा एक भी योद्धा नहीं रहा होगा, जिसे थोड़ा वेतन दिया जाता हो अथवा बिना वेतनके ही रक्खा गया हो ॥ २४ ॥

पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥

तात ! मैंने, मेरे पुत्रोंने तथा कुटुम्बीजनों एवं बन्धु-बान्धवोंने भी सभी सैनिकोंका यथाशक्ति दान, मान और आसन आदि देकर सत्कार किया है ॥ २५ ॥

ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद् भागधेयतः ॥ २६ ॥

तथापि सव्यसाची अर्जुनने संग्रामभूमिमें पहुँचते ही उन सबको पराजित कर दिया है और सात्यकिने भी उन्हें कुचल डाला है। इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २६ ॥

रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च संजय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥

संजय ! संग्राममें जिसकी रक्षा की जाती है और जो लोग रक्षक हैं, उन रक्षकोंसहित रक्षणीय पुरुषके लिये एकमात्र साधारण मार्ग रह गया है पराजय ॥ २७ ॥

अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥

अर्जुनको समराङ्गणमें सिन्धुराजके सामने खड़ा देख अत्यन्त मोहग्रस्त हुए मेरे पुत्रने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? ॥ २८ ॥

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २९ ॥

सात्यकिको रणक्षेत्रमें निर्भय-सा प्रवेश करते देख दुर्योधनने उस समयके लिये कौन-सा कर्तव्य उचित माना ?॥ २९ ॥

सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण शस्त्रोंकी पहुँचसे परे होकर जब रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि और अर्जुन मेरी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब उन्हें देखकर मेरे पुत्रोंने युद्धस्थलमें किस प्रकार धैर्य धारण किया?॥

दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥

मैं समझता हूँ कि अर्जुनके लिये रथपर बैठे हुए दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको तथा शिनिप्रवर सात्यकिको देखकर मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥

सात्यकि और अर्जुनको सेना लाँघकर जाते और कौरव-सैनिकोंको युद्धस्थलसे भागते देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे ॥ ३२ ॥

विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
पलायनकृतोत्साहान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि अपने रथियोंको शत्रु-विजयकी ओरसे उत्साहशून्य होकर भागते और भागनेमें ही बहादुरी दिखाते देख मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे॥३३॥

शून्यान् कृतान् रथोपस्थान् सात्वतेनार्जुनेन च ।
हतांश्च योधान् संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥

सात्यकि और अर्जुनने हमारी रथोंकी बैठकें सूनी कर दी हैं और योद्धाओंको मार गिराया है, यह देखकर मैं सोचता हूँ कि मेरे पुत्र बहुत दुखी हो गये होंगे ॥३४॥

व्यश्वनागरथान् दृष्ट्वा तत्र वीरान् सहस्रशः ।
धावमानान् रणे व्यग्रान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः॥ ३५ ॥

सहस्रों वीरोंको वहाँ युद्धके मैदानमें घोड़े, रथ और हाथियोंसे रहित एवं उद्विग्न होकर भागते देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३५ ॥

महानागान् विद्रवतो दृष्ट्वार्जुनशराहतान् ।
पतितान् पततश्चान्यान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥

अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर बड़े-बड़े गजराजोंको भागते, गिरते और गिरे हुए देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे ॥ ३६ ॥

विहीनांश्च कृतानश्वान् विरथांश्च कृतान् नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥

सात्यकि और अर्जुनने घोड़ोंको सवारोंसे हीन और मनुष्योंको रथसे वञ्चित कर दिया है। यह देख-सुनकर मेरे पुत्र शोकमें डूब रहे होंगे ॥ ३७ ॥

हयौघान् निहतान् दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥

रणक्षेत्रमें सात्यकि और अर्जुनद्वारा मारे गये तथा इधर-उधर भागते हुए अश्वसमूहोंको देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकदग्ध हो रहे होंगे ॥ ३८ ॥

पत्तिसंघान् रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥

पैदल सिपाहियोंको रणक्षेत्रमें सब ओर भागते देख मैं समझता हूँ, मेरे सभी पुत्र विजयसे निराश हो शोक कर रहे होंगे ॥ ३९ ॥

द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि किसीसे पराजित न होनेवाले दोनों वीर अर्जुन और सात्यकिको क्षणभरमें द्रोणा-

चार्यकी सेनाका उल्लङ्घन करते देख मेरे पुत्र शोकाकुल हो गये होंगे ॥ ४० ॥

सम्मूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनंजयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाच्युतौ ॥ ४१ ॥

तात ! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनके सात्यकिसहित अपनी सेनामें घुसनेका समाचार सुनकर मैं अत्यन्त मोहित हो रहा हूँ ॥ ४१ ॥

तस्मिन् प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥

शिनिप्रवर महारथी सात्यकि जब कृतवर्माकी सेनाको लाँघकर कौरवी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब कौरवोंने क्या किया ? ॥ ४२ ॥

तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत् तत्र तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४३ ॥

संजय ! जब द्रोणाचार्यने समर-भूमिमें पूर्वोक्त प्रकारसे पाण्डवोंको रोक दिया, तब वहाँ किस प्रकार युद्ध हुआ ? यह सब मुझे बताओ ॥ ४३ ॥

द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन् कथं रणे ॥ ४४ ॥
बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनंजयजयैषिणः ।

द्रोणाचार्य अस्त्रविद्यामें निपुण, युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले, बलवान् एवं श्रेष्ठ वीर हैं । पाञ्चालसैनिकोंने उस समय रणक्षेत्रमें महाधनुर्धर द्रोणको किस प्रकार घायल किया ? क्योंकि वे द्रोणाचार्यसे वैर बाँधकर अर्जुनकी विजयकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४४½ ॥

भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४६ ॥

संजय ! भरद्वाजके पुत्र महारथी अश्वत्थामा भी पाञ्चालोंसे दृढ़तापूर्वक वैर बाँधे हुए थे । अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेके लिये जो-जो उपाय किया, वह सब मुझसे कहो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो ॥ ४५-४६ ॥

संजय उवाच

आत्मापराधात् सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद् वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! यह सारी विपत्ति आपको अपने ही अपराधसे प्राप्त हुई है । वीर ! इसे पाकर निम्न कोटिके मनुष्योंकी भाँति शोक न कीजिये ॥ ४७ ॥

पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान् राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८ ॥

पहले जब आपके बुद्धिमान् सुहृद् विदुर आदिने आपसे कहा था कि राजन् ! आप पाण्डवोंके राज्यका अपहरण न कीजिये, तब आपने उनकी यह बात नहीं सुनी थी ॥ ४८ ॥

सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद् व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥

जो हितैषी सुहृदोंकी बात नहीं सुनता है; वह भारी संकटमें पड़कर आपके ही समान शोक करता है ॥ ४९ ॥

याचितोऽसि पुरा राजन् दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान् कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५० ॥

राजन् ! दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने पहले आपसे शान्तिके लिये याचना की थी; परंतु आपकी ओरसे उन महायशस्वी श्रीकृष्णकी वह इच्छा पूरी नहीं की गयी ॥

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति ।
आर्तप्रलापांश्च बहून् मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण लोकोंके तत्त्वज्ञ तथा सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब यह जान लिया कि आप सर्वथा सद्गुणशून्य हैं, अपने पुत्रोंपर पक्षपात रखते हैं, धर्मके विषयमें आपके मनमें दुविधा बनी हुई है, पाण्डवोंके प्रति आपके हृदयमें डाह है, आप उनके प्रति कुटिलतापूर्ण मनसूबे बाँधते रहते हैं और व्यर्थ ही आर्त मनुष्योंके समान बहुत-सी बातें बनाते हैं, तब उन्होंने कौरव-पाण्डवोंके महान् युद्धका आयोजन किया ॥ ५१–५३ ॥

आत्मापराधात् सुमहान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्तुमर्हसि मानद ॥ ५४ ॥

मानद ! अपने ही अपराधसे आपके सामने यह महान् जनसंहार प्राप्त हुआ है । आपको यह सारा दोष दुर्योधनपर नहीं मढ़ना चाहिये ॥ ५४ ॥

न हि ते सुकृतं किंचिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥

भारत ! मुझे तो आगे, पीछे या बीचमें आपका कोई भी शुभ कर्म नहीं दिखायी देता । इस पराजयकी जड़ आप ही हैं ॥ ५५ ॥

तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥

इसलिये स्थिर होकर और लोकके नियत स्वभावको

जानकर देवासुर-संग्रामके समान भयंकर इस कौरव-पाण्डव-युद्धका यथार्थ वृत्तान्त सुनिये ॥ ५६ ॥

प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ५७ ॥

जब सत्यपराक्रमी सात्यकि कौरव-सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब भीमसेन आदि कुन्तीकुमारोंने आपकी विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया ॥ ५७ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा क्रुद्धरूपान् सहानुगान्।
दधारैको रणे पाण्डून् कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥

सेवकोंसहित कुपित होकर सहसा आक्रमण करनेवाले उन पाण्डववीरोंको रणक्षेत्रमें एकमात्र महारथी कृतवर्माने रोका ॥

यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥

जैसे उद्वेलित हुए महासागरको किनारेकी भूमि आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें कृतवर्माने पाण्डव-सेनाको रोक दिया ॥ ५९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥

वहाँ हमने कृतवर्माका अद्भुत पराक्रम देखा । सारे पाण्डव एक साथ मिलकर भी समराङ्गणमें उसे लाँघ न सके॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर महाबाहु भीमने तीन बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल करके समस्त पाण्डवोंका हर्ष बढ़ाते हुए शङ्ख बजाया॥

सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥

सहदेवने बीस, धर्मराजने पाँच और नकुलने सौ बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६२ ॥

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंद्वारा उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥६३॥

विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥६४॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।

विराट, द्रुपद और उनके पुत्र धृष्टद्युम्नने पाँच-पाँच बाणोंसे उसको घायल किया । फिर शिखण्डीने पहले पाँच बाणोंद्वारा चोट करके फिर हँसते हुए ही बीस बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६४½ ॥

कृतवर्मा ततो राजन् सर्वतस्तान् महारथान् ॥ ६५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं चास्य तथा रथाद् भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! उस समय कृतवर्माने चारों ओर बाण चलाकर उन महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच बाणोंद्वारा बींध डाला और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया । फिर तत्काल ही उनके धनुष और ध्वजको काटकर रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६५–६६ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥

भीमसेनका धनुष कट जानेपर महारथी कृतवर्माने कुपित हो बड़ी उतावलीके साथ सत्तर पैने बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ६७ ॥

स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ ६८ ॥

कृतवर्माके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हुए बलवान् भीमसेन रथके भीतर बैठे हुए ही भूकम्पके समय हिलनेवाले पर्वतके समान काँपने लगे ॥ ६८ ॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान् राजन् कृतवर्माणमार्दयन् ॥ ६९ ॥

राजन् ! भीमसेनको वैसी अवस्थामें देखकर धर्मराज आदि महारथियोंने बाणोंकी वर्षा करके कृतवर्माको बड़ी पीड़ा दी ॥ ६९ ॥

तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ ७० ॥

माननीय नरेश ! हर्षमें भरे हुए पाण्डव सैनिक भीमसेनकी रक्षाके लिये अपने रथसमूहद्वारा कृतवर्माको कोष्ठबद्ध-सा करके उसे युद्धस्थलमें अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे ॥ ७० ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ ७१ ॥

इसी बीचमें महाबली भीमसेनने सचेत होकर समराङ्गणमें सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक लोहेकी शक्ति हाथमें ले ली॥

चिक्षेप च रथात् तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा ॥ ७२ ॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।

और शीघ्र ही उसे अपने रथसे कृतवर्माके रथपर चला दिया । भीमसेनके हाथोंसे छूटी हुई, केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान वह भयङ्कर शक्ति कृतवर्माके समीप जाकर प्रज्वलित हो उठी ॥ ७२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ ७३ ॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा ।

उस समय अपने ऊपर आती हुई प्रलयकालकी अग्निके समान उस शक्तिको सहसा दो बाण मारकर कृतवर्माने उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ७३½ ॥

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४ ॥
द्योतयन्ती दिशो राजन् महोल्केव नभश्च्युता ।

राजन् ! सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति कटकर आकाशसे गिरी हुई बड़ी भारी उल्काके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७४½ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ ७५ ॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय वेगवत् सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ ७६ ॥

अपनी शक्तिको कटी हुई देख भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने बड़ी भारी टङ्कारध्वनि करनेवाले दूसरे वेगशाली धनुषको हाथमें लेकर समराङ्गणमें कुपित हो कृतवर्माका सामना किया ॥ ७५–७६ ॥

अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ७७ ॥

राजन् ! आपकी ही कुमन्त्रणासे वहाँ भयङ्कर बलशाली भीमसेनने कृतवर्माकी छातीमें पाँच बाण मारे ॥ ७७ ॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ ७८ ॥

माननीय नरेश ! भीमसेनने उन बाणोंद्वारा कृतवर्माके सम्पूर्ण अङ्गोंको क्षत-विक्षत कर दिया । वह रणाङ्गणमें खूनसे लथपथ हो खिले हुए लाल फूलोंवाले अशोकवृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ ७८ ॥

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान् सर्वान् प्रत्यविध्यत ॥ ७९ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान् महारथान् ।

तदनन्तर उस महाधनुर्धरने क्रोधमें भरकर हँसते हुए ही तीन बाणोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचाकर युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सभी महारथियोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ७९½ ॥

तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ ८० ॥
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥ ८१ ॥

तब उन महारथियोंने भी कृतवर्माको सात-सात बाण मारे । उस समय क्रोधमें भरे हुए महारथी कृतवर्माने हँसते हुए ही समराङ्गणमें एक क्षुरप्रद्वारा शिखण्डीका धनुष काट डाला ॥ ८०–८१ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥ ८२ ॥

धनुष कट जानेपर शिखण्डीने तुरंत ही कुपित हो उस युद्धस्थलमें सौ चन्द्रमाओंके चिह्नसे युक्त चमकीली ढाल और तलवार हाथमें ले ली ॥ ८२ ॥

भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३ ॥

उसने स्वर्णभूषित विशाल ढालको घुमाकर कृतवर्माके रथपर वह तलवार दे मारी ॥ ८३ ॥

स तस्य सशरं चापं छित्त्वा राजन् महानसिः ।
अभ्यगाद् धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ८४ ॥

राजन् ! वह महान् खड्ग कृतवर्माके बाणसहित धनुषको काटकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान धरतीमें समा गया ॥ ८४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ८५ ॥

इसी समय पाण्डव महारथियोंने युद्धमें जल्दी-जल्दी हाथ चलानेवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा भारी चोट पहुँचायी ॥ ८५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद् धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ८६ ॥
विव्याध पाण्डवान् युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ८७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कृतवर्माने टूटे हुए उस विशाल धनुषको त्यागकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और युद्धमें पाण्डवोंको तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया । साथ ही शिखण्डीको भी तीन और पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ ८६-८७ ॥

धनुरन्यत् समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।
अवारयन् कूर्मनखैराशुगैर्हृदिकात्मजम् ॥ ८८ ॥

तत्पश्चात् महायशस्वी शिखण्डीने भी दूसरा धनुष लेकर कछुओंके नखोंके समान धारवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माका सामना किया ॥ ८८ ॥

ततः क्रुद्धो रणे राजन् हृदिकस्यात्मसम्भवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन् मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन् बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९० ॥

राजन्! जैसे सिंह हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कुपित हुए शूरवीर कृतवर्माने समराङ्गणमें महात्मा भीष्मकी मृत्युका कारण बने हुए महारथी शिखण्डीपर अपने बलका प्रदर्शन करते हुए बड़े वेगसे धावा किया ॥ ८९-९० ॥

तौ दिशां गजसंकाशौ ज्वलिताविव पावकौ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिंदमौ ॥ ९१ ॥

प्रज्वलित अग्नियोंके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर अपने बाण-समूहोंद्वारा दो दिग्गजोंके समान एक दूसरेपर टूट पड़े ॥ ९१ ॥

विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे संदधानौ च सायकान्।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्वरौ ॥ ९२ ॥

जैसे दो सूर्य पृथक्-पृथक् अपनी किरणोंका विस्तार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने श्रेष्ठ धनुष हिलाते और उनपर सैकड़ों बाणोंका संधान करके छोड़ते थे ॥ ९२ ॥

तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ९३ ॥

अपने पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देते हुए वे दोनों महारथी वीर प्रलयकालके दो सूर्योंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९३ ॥

कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम्।
विद्ध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ९४ ॥

कृतवर्माने समराङ्गणमें महारथी शिखण्डीको पहले तिहत्तर बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९४ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥ ९५ ॥

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर शिखण्डी व्यथित एवं मूर्छित हो धनुष-बाण त्यागकर रथकी बैठकमें बैठ गया ॥ ९५ ॥

तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ ९६ ॥

नरश्रेष्ठ! रणक्षेत्रमें शिखण्डीको विषादग्रस्त देख आपके सैनिक कृतवर्माकी प्रशंसा करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ ९६ ॥

शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम्।
अपोवाह रणाद् यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ९७ ॥

महारथी शिखण्डीको कृतवर्माके बाणोंसे पीड़ित जान सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रणभूमिसे बाहर ले गया ॥ ९७ ॥

सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम्।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८ ॥

कुन्तीकुमारोंने शिखण्डीको रथके पिछले भागमें बेसुध होकर बैठा देख तुरंत ही कृतवर्माको रणभूमिमें अपने रथोंद्वारा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९८ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः।
यदेकः समरे पार्थान् वारयामास सानुगान् ॥ ९९ ॥

वहाँ महारथी कृतवर्माने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम प्रकट किया। उसने अकेले होनेपर भी सेवकोंसहित समस्त पाण्डवोंका समरभूमिमें सामना किया ॥ ९९ ॥

पार्थाञ्जित्वाजयच्चेदीन् पञ्चालान् सृञ्जयानपि।
केकयांश्च महावीर्यान् कृतवर्मा महारथः ॥१००॥

महारथी कृतवर्माने पाण्डवोंको जीतकर चेदिदेशीय सैनिकोंको परास्त किया, फिर पाञ्चालों, संजयों और महापराक्रमी केकयोंको भी हरा दिया ॥ १०० ॥

ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥१०१॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके बाणोंकी मार खाकर पाण्डव सैनिक इधर-उधर भागने लगे। वे रणभूमिमें कहीं भी स्थिर न हो सके ॥ १०१ ॥

जित्वा पाण्डुसुतान् युद्धे भीमसेनपुरोगमान्।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद् विधूम इव पावकः ॥१०२॥

युद्धमें भीमसेन आदि पाण्डवोंको जीतकर कृतवर्मा उस रणक्षेत्रमें धूमरहित अग्निके समान शोभा पाता हुआ खड़ा था ॥ १०२ ॥

ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥१०३॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके द्वारा खदेड़े गये और उसकी बाणवर्षासे पीड़ित हुए पूर्वोक्त सभी महारथियोंने युद्धसे मुँह मोड़ लिया ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा कृतवर्माका पराक्रमविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

रजि० सं० ए० ८५४

श्रीहरिः

ग्राहक बनिये ! *ग्राहक बनाइये !!*

कल्याणका जनवरी १९५७ का विशेषाङ्क 'तीर्थाङ्क'

पृष्ठ-संख्या ७३६, रंगीन चित्र ३४, दुरंगा १, लाइन १, मान-चित्र ८, सादे चित्र ५३२, मू० ७॥), वार्षिक चन्दा विशेषाङ्कसहित ७॥), डाक-खर्च हमारा।

इस तीर्थाङ्कमें १८०० से ऊपर तीर्थोंका विवरण दिया गया है। उनमेंसे प्रायः सभी प्राचीन पुराणप्रसिद्ध तीर्थोंका शास्त्रोक्त माहात्म्य भी दिया गया है। साथ ही २१ प्रधान गणपति-क्षेत्रों, १०८ दिव्य शिव-क्षेत्रों, २७४ पवित्र शैव-स्थलों, १२ ज्योतिर्लिङ्गों, १०८ दिव्य विष्णु-स्थानों, १०८ वैष्णव दिव्य-देशों, १०८ दिव्य शक्ति-स्थानों, ५१ शक्तिपीठों एवं १२ प्रधान देवी-विग्रहोंका वर्णन भी आया है। इनके अतिरिक्त प्रायः सभी मुख्य धार्मिक सम्प्रदायोंके तीर्थस्थलोंका भी विवरण संगृहीत किया गया है। कुछ उपयोगी लेख भी दिये गये हैं। साथ ही पञ्चदेवोंकी पूजन-विधि, विष्णु-शिव आदिके ध्यान, तीर्थयात्राकी विधि, तीर्थयात्रियोंके लिये पालनीय नियम, तीर्थोंमें श्राद्ध करनेकी विधि तथा प्रधान-प्रधान तीर्थों एवं प्रसिद्ध विग्रहोंकी स्तुतियाँ भी दी गयी हैं। अङ्ककी उपयोगिता एवं रोचकता बढ़ानेके लिये इसमें ८ मानचित्र, ३४ रंगीन एवं पाँच सौसे ऊपर सादे स्थल-चित्रोंका समावेश किया गया है। इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे यह अङ्क अत्यन्त संग्रहणीय एवं कामकी वस्तु बन गया है। रोचकतामें तथा चित्रोंकी संख्या एवं सामग्रीकी विविधताकी दृष्टिसे तो यह अङ्क 'कल्याण'के अबतकके सभी विशेषाङ्कोंसे बाजी मार ले गया है।

इस 'तीर्थाङ्क' में जिन तीर्थों एवं भगवद्विग्रहोंका वणन तथा चित्राङ्कन किया गया है, उनकी स्मृति भी अन्तःकरणको पवित्र करनेवाली, पापोंका नाश करनेवाली तथा भगवद्भाव एवं संत-महिमासे हृदयको भर देनेवाली है। साथ ही इसमें आये हुए वर्णनोंके पढ़नेसे पवित्र भारतभूमिके विभिन्न भागोंका महत्त्व प्रकट होता है, वहाँकी विशेषताओंका ज्ञान होता है, राष्ट्रियता एवं पारस्परिक एकताके भाव जाग्रत् होते हैं तथा क्षुद्र, संकीर्ण विचारोंसे ऊपर उठकर व्यापक दृष्टिकोण बनानेमें सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त इस अङ्कमें विविध लेखोंद्वारा तीर्थयात्रा, तीर्थदर्शन एवं तीर्थोंमें अवगाहनका महत्त्व व्यक्त किया गया है तथा उन विभिन्न स्थलोंकी यात्राका मार्गनिर्देश तथा आवश्यक परिचय भी दिया गया है, जिससे तीर्थयात्रियोंके लिये यह विशेष उपयोगी बन गया है। इस दृष्टिसे इसका जितना प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही देशका कल्याण होगा। अतएव प्रत्येक कल्याणप्रेमी महोदय विशेष प्रयत्न करके 'कल्याण' के दो-दो नये ग्राहक बना देनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

महाभारत

संस्कृत मूल



संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

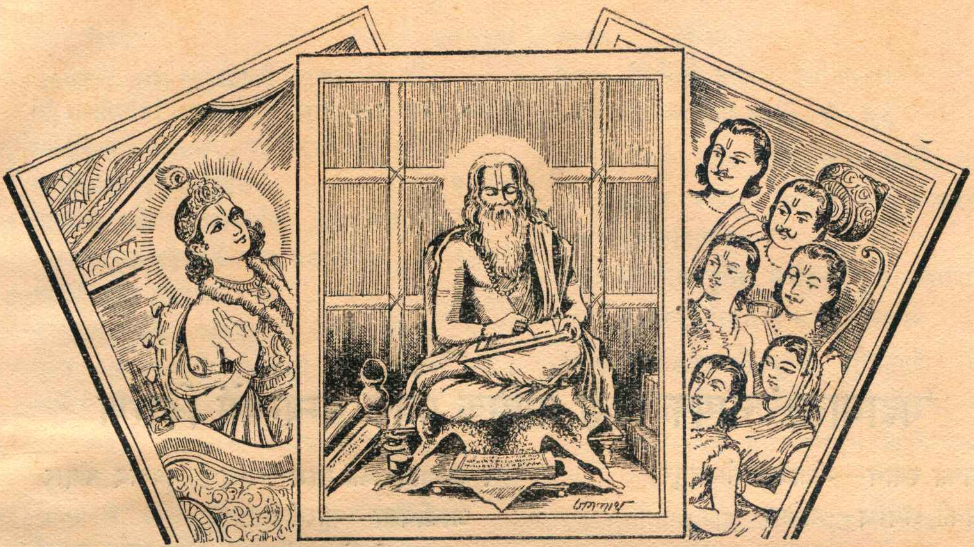
हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ६

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, चैत्र २०१४, अप्रैल १९५७ { संख्या ६ पूर्ण संख्या १८

श्रीकृष्ण-चरण-चिन्तन

देहं सुतं धनमशेषकुलादिमानं
तुच्छं विहाय मनसा भजतादरेण ।
श्रीमाधवाङ्घ्रिकमलं कमलालयत्वा-
न्नित्यं भजन्ति कवयः कमनीयमन्तः ॥

शरीर, पुत्र, धन और कुल आदिका सारा अभिमान तुच्छ है । उसे छोड़कर हृदयसे आदरपूर्वक श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी आराधना करो; क्योंकि वे लक्ष्मीके निवास-स्थान हैं । इसीलिये ज्ञानी पुरुष सदा अपने अन्तःकरणमें उन कमनीय चरणकमलोंका चिन्तन करते हैं ।

'महाभारत' नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१–**प्रकाशनका स्थान**—गीताप्रेस, गोरखपुर
२–**प्रकाशनकी अवधि**—मासिक
३–**मुद्रकका नाम**—घनश्यामदास जालान
जातीयता—भारतीय
पता—साहबगंज, गोरखपुर
४–**प्रकाशकका नाम**—घनश्यामदास जालान
जातीयता—भारतीय
पता—साहबगंज, गोरखपुर
५–**सम्पादकका नाम**—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार
जातीयता—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
६–**उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचारपत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं।** — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता–नं० ३०, बाँसतल्ला गली, कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं, घनश्यामदास जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

घनश्यामदास जालान
प्रकाशक

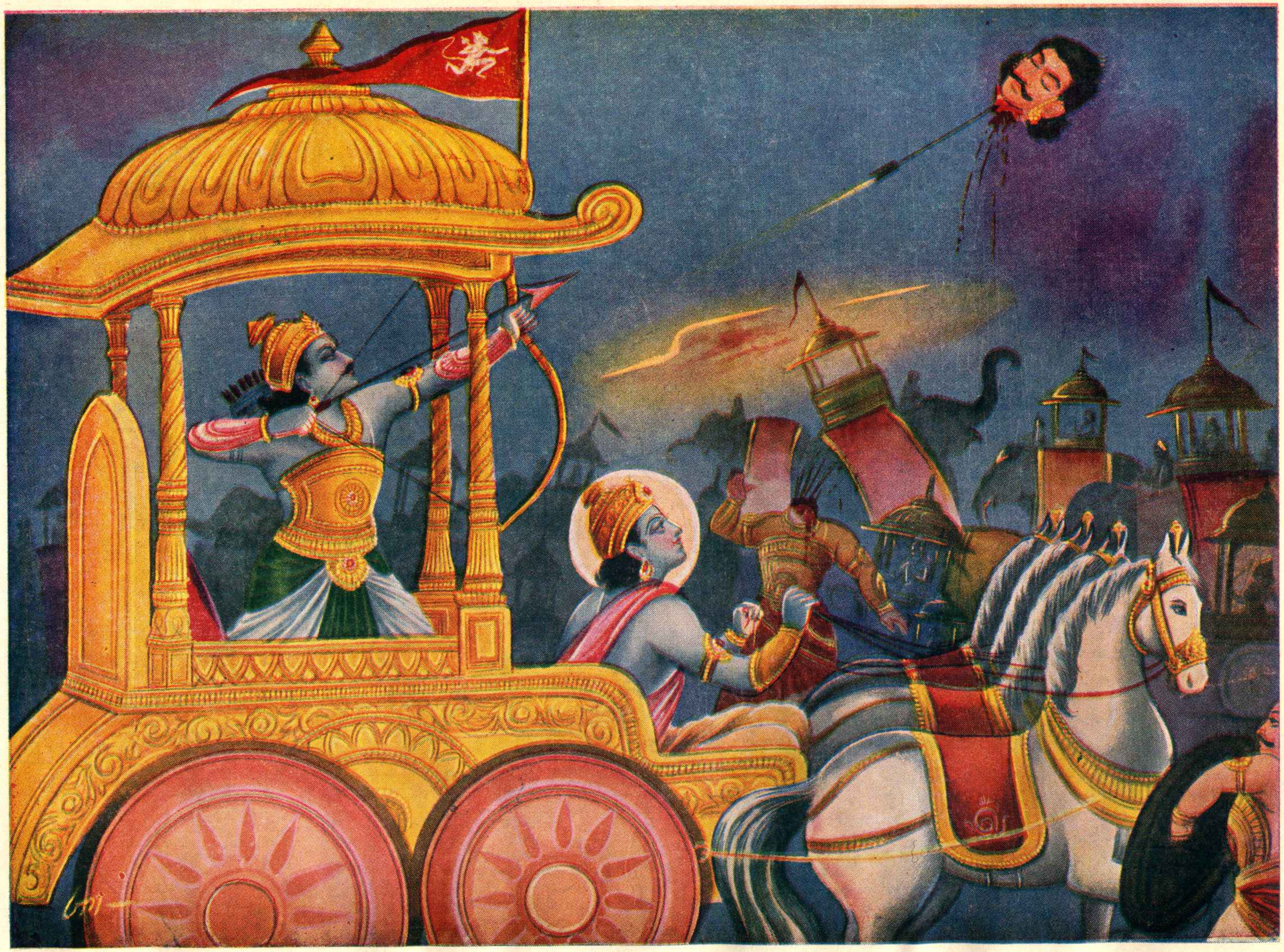
ता० २८ फरवरी १९५७

वार्षिक मूल्य	सम्पादक—**हनुमानप्रसाद पोद्दार**	एक प्रतिका
भारतमें २०)	टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'	भारतमें २)
विदेशमें २६॥)	मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर	विदेशमें २॥)
(४० शिलिंग)		(४ शिलिंग)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची (द्रोणपर्व-चालू)

चित्र-सूची



अर्जुनका जयद्रथके मस्तकको काटकर समन्त-पञ्चक क्षेत्रसे बाहर फेंकना

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा कृतवर्माकी पराजय, त्रिगर्तोंकी गजसेनाका संहार और जलसंधका वध

संजय उवाच

शृणुष्वैकमना राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन् हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥
लज्जयावनते चापि प्रहृष्टैश्चापि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत् पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनिये । महामना कृतवर्माके द्वारा खदेड़ी जानेके कारण जब पाण्डवसेना लज्जासे नतमस्तक हो गयी और आपके सैनिक हर्षसे उल्लसित हो उठे, उस समय अथाह सैन्य-समुद्रमें थाह पानेकी इच्छावाले पाण्डव सैनिकोंके लिये जो द्वीप बनकर आश्रयदाता हुआ (उस सात्यकिका पराक्रम श्रवण कीजिये) ॥ १-२ ॥

श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन् कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

राजन् ! उस महासमरमें आपके सैनिकोंका भयंकर सिंहनाद सुनकर सात्यकिने तुरंत ही कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४ ॥

उन्होंने क्रोध और अमर्षमें भरकर वहाँ सारथिसे कहा—'सूत ! तुम मेरे उत्तम रथको कृतवर्माके सामने ले चलो ॥ ४ ॥

कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥ ५ ॥

'देखो, वह अमर्षयुक्त होकर पाण्डवसेनामें संहार मचा रहा है । सारथे ! इसे जीतकर मैं पुनः अर्जुनके पास चलूँगा' ॥ ५ ॥

एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६ ॥

महामते ! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथि पलक गिरते-गिरते रथ लेकर कृतवर्माके पास जा पहुँचा ॥ ६ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत् सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्ध्यत् स सात्यकिः ॥ ७ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो सात्यकिपर पैने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इससे सात्यकिका क्रोध भी बहुत बढ़ गया ॥ ७ ॥

अथाशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८ ॥

उन्होंने तुरंत ही कृतवर्मापर समरभूमिमें एक तीखे भल्लका प्रहार किया । फिर चार बाण और मारे ॥ ८ ॥

ते तस्य जघ्निरे वाहान् भल्लेनास्याच्छिनद् धनुः ।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥

उन चारों बाणोंने कृतवर्माके चारों घोड़ोंको मार डाला । सात्यकिने भल्लसे उसके धनुषको काट दिया । फिर पैने बाणोंद्वारा उसके पृष्ठरक्षक और सारथिको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९ ॥

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्यार्दयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥

तदनन्तर सत्यपराक्रमी सात्यकिनें कृतवर्माको रथहीन करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसकी सेनाको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ १० ॥

अभज्यताथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात् स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ११ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्माकी सेना भाग खड़ी हुई । तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकि तुरंत आगे बढ़ गये ॥ ११ ॥

शृणु राजन् यदकरोत् तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ १२ ॥

महाराज ! पराक्रमी सात्यकिने द्रोणाचार्यके सैन्य-समुद्रको लाँघकर आपकी सेनाओंमें जो पराक्रम किया, उसका वर्णन सुनिये ॥ १२ ॥

पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें कृतवर्माको पराजित करके हर्षमें भरे हुए शूरवीर सात्यकि बिना किसी घबराहटके सारथिसे बोले—'सूत ! धीरे-धीरे चलो' ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत् सारथिं पुनः ॥ १४ ॥

रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे भरी हुई आपकी सेनाको देखकर सात्यकिने पुनः सारथिसे कहा—॥ १४ ॥

यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १५ ॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६ ॥

'सूत ! द्रोणाचार्यकी सेनाके बायें भागमें जो यह मेघोंकी घटाके समान विशाल गजसेना दिखायी देती है, इसके मुहानेपर रुक्मरथ खड़ा है । इसमें बहुत-से ऐसे शूरवीर हैं,

जिन्हें युद्धमें रोकना अत्यन्त कठिन है। ये दुर्योधनकी आज्ञासे प्राणोंका मोह छोड़कर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हैं ॥ १५-१६ ॥

(न चाजित्वा रणे ह्येतान्शक्यः प्राप्तुं जयद्रथः।
नापि पार्थो मया सूत शक्यः प्राप्तुं कथंचन ॥
एते तिष्ठन्ति सहिताः सर्वविद्यासु निष्ठिताः ॥)

'सूत ! इन्हें रणमें परास्त किये बिना न तो जयद्रथको प्राप्त किया जा सकता है और न किसी प्रकार अर्जुन ही मुझे मिल सकते हैं। ये समस्त विद्याओंमें प्रवीण योद्धा एक साथ संगठित होकर खड़े हैं ॥

राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः।
त्रिगर्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥

'ये त्रिगर्तदेशके उदार महारथी राजकुमार महान् धनुर्धर हैं और सभी पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं। इन सबकी ध्वजा सुवर्णमयी है ॥ १७ ॥

मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८ ॥
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः।

'ये समस्त वीर मेरी ही ओर मुँह करके युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। सारथे ! घोड़ोंको हाँको और मुझे शीघ्र ही इनके पास पहुँचा दो । मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते त्रिगर्तोंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ १८½ ॥

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥ १९ ॥
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।

तदनन्तर सात्यकिकी सम्मतिके अनुसार सारथि सूर्यके समान तेजस्वी तथा पताकाओंसे विभूषित रथके द्वारा धीरे-धीरे आगे बढ़ा ॥ १९½ ॥

तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः॥ २० ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।

उस रथके उत्तम घोड़े कुन्द, चन्द्रमा और चाँदीके समान श्वेत रंगके थे ; वे सारथिके अधीन रहनेवाले और वायुके समान वेगशाली थे तथा युद्धमें उछलते हुए उस रथका भार वहन करते थे ॥ २०½ ॥

आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकाँल्लघुवेधिनः॥ २२ ॥

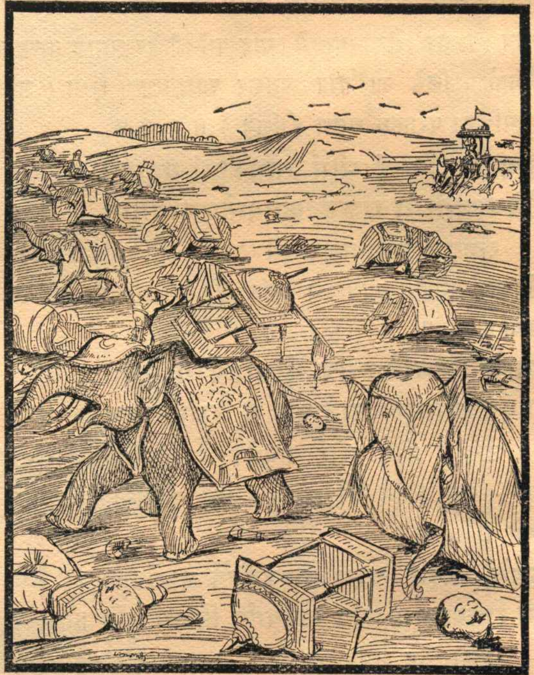
शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उन उत्तम घोड़ोंद्वारा रणभूमिमें आते हुए सात्यकिको त्रिगर्तदेशीय शूरवीरोंने सब ओरसे गजसेनाद्वारा घेर लिया। शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य वेधनेवाले वे समस्त सैनिक नाना प्रकारके तीखे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २१-२२ ॥

सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥

सात्यकिने भी पैने बाणोंद्वारा गजसेनाके साथ युद्ध प्रारम्भ किया, मानो वर्षाकालमें महान् मेघ पर्वतोंपर जलकी धारा बरसा रहा हो ॥ २३ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥

शिनिवंशके वीर सात्यकिद्वारा चलाये हुए वज्र और बिजलीके समान स्पर्शवाले उन बाणोंकी मार खाकर उस सेनाके हाथी युद्धका मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ २४ ॥



शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥
सम्भिन्नमर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥

उन हाथियोंके दाँत टूट गये, सारे अङ्गोंसे खूनकी धाराएँ बहने लगीं, कुम्भस्थल और गण्डस्थल फट गये, कान, मुख और शुण्ड छिन्न-भिन्न हो गये, महावत मारे गये और ध्वजा-पताकाएँ टूटकर गिर गयीं। उनके मर्मस्थान विदीर्ण हो गये, घंटे टूट गये और विशाल ध्वज कटकर गिर पड़े। सवार मारे गये तथा झूल खिसककर गिर गये थे। राजन् ! ऐसी अवस्थामें उन हाथियोंने भागकर विभिन्न दिशाओंकी शरण ली थी ॥ २५-२६ ॥

रुवन्तो विविधान् नादान् जलदोपमनिःस्वनाः।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

उनके चिग्घाड़नेकी ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी। वे सात्यकिके चलाये हुए नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र और अर्द्धचन्द्र नामक बाणोंसे विदीर्ण हो नाना प्रकारसे आर्तनाद करते, रक्त बहाते तथा मल-मूत्र छोड़ते हुए भाग रहे थे ॥ २७-२८ ॥

बभ्रमुश्च स्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथापरे ।
एवं तत् कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥ २९ ॥
शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।

उनमेंसे कुछ हाथी चक्कर काटने लगे, कुछ लड़खड़ाने लगे, कुछ धराशायी हो गये और कुछ पीड़ाके मारे अत्यन्त शिथिल हो गये थे। इस प्रकार युयुधानके अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा पीड़ित हुई हाथियोंकी वह सेना सब ओर भाग गयी ॥ २९½ ॥

तस्मिन् हते गजानीके जलसंधो महाबलः ॥ ३० ॥
यत्तः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।

उस गजसेनाके नष्ट होनेपर महाबली जलसंध युद्धके लिये उद्यत हो श्वेत घोड़ोंवाले सात्यकिके रथके समीप अपना हाथी ले आया ॥ ३०½ ॥

रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥ ३१ ॥
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः ।
शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥
उरसा धारयन् निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।

शूरवीर एवं पवित्र जलसंधने अपने शरीरमें सोनेका कवच धारण कर रक्खा था। उसकी दोनों भुजाओंमें सोनेके ही बाजूबंद शोभा पा रहे थे। दोनों कानोंमें कुण्डल और मस्तकपर किरीट चमक रहे थे। उसके हाथमें तलवार थी और सम्पूर्ण शरीरमें रक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। उसने अपने सिरपर सोनेकी बनी हुई चमकीली माला और वक्षःस्थलपर प्रकाशमान पदक एवं कण्ठहार धारण कर रक्खे थे ॥ ३१-३२½ ॥

चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन् गजमूर्धनि ॥ ३३ ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।

महाराज ! हाथीकी पीठपर बैठकर अपने सोनेके बने हुए धनुषको हिलाता हुआ जलसंध बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहा था ॥ ३३½ ॥

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ।

सहसा अपनी ओर आते हुए मगधराजके उस गजराजको सात्यकिने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे तटकी भूमि समुद्रको रोक देती है ॥ ३४½ ॥

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥ ३५ ॥
अक्रुद्ध्यत रणे राजन् जलसंधो महाबलः ।

राजन् ! सात्यकिके उत्तम बाणोंसे उस हाथीको अवरुद्ध हुआ देख महाबली जलसंध रणक्षेत्रमें कुपित हो उठा ॥ ३५½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसंधो महोरसि ।

महाराज ! क्रोधमें भरे हुए जलसंधने भार सहन करनेमें समर्थ बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिकी विशाल छातीपर गहरा आघात किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ।

तत्पश्चात् दूसरे तीखे, पैने और पानीदार भल्लसे उसने बाण फेंकते हुए वृष्णिवीर सात्यकिके धनुषको काट डाला ॥

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।

भारत ! धनुष काटनेके पश्चात् सात्यकिको उस मागध वीरने हँसते हुए ही पाँच तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

जलसंधके बहुत-से बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत होनेपर भी पराक्रमी महाबाहु सात्यकि कम्पित नहीं हुए। यह अद्भुत-सी बात थी ॥ ३९½ ॥

अचिन्तयन् वै स शरान्नात्यर्थं सम्भ्रमाद् बली॥ ४० ॥
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ।

बलवान् सात्यकिने उसके बाणोंको कुछ भी न गिनते हुए अधिक संभ्रममें न पड़कर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ४०½ ॥

एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसंधं महोरसि ॥ ४१ ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।

ऐसा कहकर सात्यकिने हँसते हुए ही साठ बाणोंद्वारा जलसंधकी चौड़ी छातीपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद् धनुः ॥ ४२ ॥
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।

फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे जलसंधके विशाल धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और तीन बाण मारकर उसे घायल भी कर दिया ॥ ४२½ ॥

जलसंधस्तु तत् त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।

माननीय नरेश ! जलसंधने बाणसहित उस धनुषको त्यागकर सात्यकिपर तुरंत ही तोमरका प्रहार किया ॥४३½॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥

अभ्यगाद् धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।

फुफकारते हुए महान् सर्पके समान वह भयंकर तोमर उस महासमरमें सात्यकिकी बायीं भुजाको विदीर्ण करता हुआ धरतीमें समा गया ॥

निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसंधमताडयत् ।

अपनी बायीं भुजाके घायल होनेपर सत्यपराक्रमी सात्यकिने तीस तीखे बाणोंद्वारा जलसंधको आहत कर दिया॥

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसंधो महाबलः ॥ ४६ ॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥

तब महाबली जयसंधने सौ चन्द्राकार चमकीले चिह्नोंसे युक्त वृषभ-चर्मकी बनी हुई विशालढाल और तलवार हाथमें ले ली तथा उस तलवारको घुमाकर सात्यकिपर छोड़ दिया ॥

शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥

वह खड्ग सात्यकिके धनुषको काटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। धरतीपर पहुँचकर वह अलातचक्रके समान प्रकाशित हो रहा था॥

अथान्यद् धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसंधं शरेण ह ।

तब सात्यकिने साखूके तनेके समान विशाल, इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले तथा सबके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसे कान-तक खींचा और कुपित हो एक बाणसे जलसंधको बींध डाला॥

ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥ ५० ॥
सात्यकिर्जलसंधस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।

फिर मधुवंशशिरोमणि सात्यकिने हँसते हुए-से दो छुरोंका प्रहार करके जलसंधकी आभूषणभूषित दोनों भुजाओंको काट दिया ॥ ५०½ ॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥
वसुंधराधराद् भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।

उसकी वे परिघके समान मोटी भुजाएँ उस गजराजकी पीठसे नीचे गिर पड़ीं, मानो पर्वतसे पाँच-पाँच मस्तकोंवाले दो नाग पृथ्वीपर गिरे हों ॥ ५१½ ॥

ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।

तदनन्तर सात्यकिने तीसरे छुरेसे उसके सुन्दर दाँतोंवाले मनोहर कुण्डलमण्डित विशाल मस्तकको काट गिराया ॥

तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥
द्विरदं जलसंधस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ।

मस्तक और भुजाओंके गिर जानेसे अत्यन्त भयंकर दिखायी देनेवाले जलसंधके उस धड़ने अपने खूनसे उस हाथीको नहला दिया ॥ ५३½ ॥

जलसंधं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥ ५४ ॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! युद्धस्थलमें जलसंधको मारकर फुर्ती करने-वाले सात्यकिने हाथीकी पीठसे उसके हौदेको भी गिरा दिया॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसंधस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥
विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टं परमासनम् ।

खूनसे भीगे शरीरवाला जलसंधका वह हाथी अपनी पीठसे सटकर लटकते हुए उस हौदेको ढो रहा था ॥५५½॥

शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो वह महान् गजराज घोर चीत्कार करके अपनी ही सेनाको कुचलता हुआ भाग निकला॥

हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥
जलसंधं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।

आर्य! वृष्णिप्रवर सात्यकिके द्वारा जलसंधको मारा गया देख आपकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥५७½॥

विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।

आपके योद्धा शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह खो बैठे। अब वे भाग निकलनेमें ही उत्साह दिखाने लगे और युद्धसे मुँह मोड़कर चारों ओर भाग गये ॥ ५८½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५९ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।

राजन् ! इसी समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा महारथी युयुधानका सामना करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ५९½ ॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥ ६० ॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।

शिनिपौत्र सात्यकिको बढ़ते देख नरश्रेष्ठ कौरव महारथी द्रोणाचार्यके साथ ही कुपित हो उनपर टूट पड़े ॥ ६०½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥

राजन् ! फिर तो उस रणक्षेत्रमें कौरवोंसहित द्रोणाचार्य तथा सात्यकिका देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसंधवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके अवसरपर जलसंधका वध नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ६२½ श्लोक हैं)

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका पराक्रम तथा दुर्योधन और कृतवर्माकी पुनः पराजय

संजय उवाच

ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! वे प्रहारकुशल सम्पूर्ण योद्धा सावधान हो बड़ी फुर्तीके साथ बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानके साथ युद्ध करने लगे॥ १॥

तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः॥ २॥

द्रोणाचार्यने सात्यकिको सतहत्तर तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर दुर्मर्षणने बारह और दुःसहने दस बाणोंसे उन्हें बींध डाला॥ २॥

विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा॥ ३॥

तत्पश्चात् विकर्णने भी कंककी पाँखवाले तीस तीखे बाणोंसे सात्यकिकी बायीं पसली और छाती छेद डाली॥३॥

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष॥ ४॥

आर्य! तदनन्तर दुर्मुखने दस, दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया॥ ४॥

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम्।
अपीडयद् रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः॥ ५॥

राजन्! उस रणक्षेत्रमें दुर्योधन तथा अन्य शूरवीर महारथियोंने भारी बाण-वर्षा करके सात्यकिको पीडित कर दिया॥ ५॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः।
तान् प्रत्यविध्यद् वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः॥ ६॥

आपके महारथी पुत्रोंद्वारा सब ओरसे घायल किये जानेपर वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने उन सबको पृथक्-पृथक् अपने बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया॥ ६॥

भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः॥ ७॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम्।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः॥ ८॥

उन्होंने द्रोणाचार्यको तीन, दुःसहको नौ, विकर्णको पचीस, चित्रसेनको सात, दुर्मर्षणको बारह, विविंशतिको आठ, सत्यव्रतको नौ तथा विजयको दस बाणोंसे घायल किया॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः।
अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम्॥ ९॥

तदनन्तर महारथी सात्यकिने सोनेके अङ्गदसे विभूषित अपने विशाल धनुषको हिलाते हुए तुरंत ही आपके महारथी पुत्र दुर्योधनपर आक्रमण किया॥ ९॥

राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्।
शरैरभ्याहनद् गाढं ततो युद्धमभूत् तयोः॥ १०॥

सब लोगोंके राजा और समस्त संसारके विख्यात महारथी दुर्योधनको उन्होंने अपने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो उन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया॥ १०॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् संदधानौ च सायकान्।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ॥ ११॥

उन दोनों महारथियोंने समरभूमिमें बाणोंका संधान और तीखे बाणोंका प्रहार करते हुए एक दूसरेको अदृश्य कर दिया॥ ११॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत।
अस्रवद् रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा॥ १२॥

सात्यकि कुरुराज दुर्योधनके बाणोंसे बिंधकर अधिक मात्रामें रक्त बहाने लगे। उस समय वे अपना रस बहाते हुए लाल चन्दनवृक्षके समान अधिक शोभा पा रहे थे॥

सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः॥ १३॥

सात्यकिके बाणसमूहोंसे घायल होकर आपका पुत्र दुर्योधन सुवर्णमय मुकुट धारण किये ऊँचे यूपके समान सुशोभित हो रहा था॥ १३॥

माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव॥ १४॥

राजन्! रणक्षेत्रमें सात्यकिने धनुर्धर दुर्योधनके धनुषको एक क्षुरप्रद्वारा हँसते हुए-से काट दिया॥ १४॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत्।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा॥ १५॥
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम्।

धनुष कट जानेपर उन्होंने बहुत-से बाण मारकर दुर्योधनके शरीरको चुन दिया। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अपने शत्रु सात्यकिके बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर राजा दुर्योधन रणभूमिमें विपक्षीके उस विजयसूचक पराक्रमको सह न सका॥१५½॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ १६॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह।

उसने सोनेकी पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष धनुषको लेकर शीघ्र ही सौ बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया॥१६½॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना॥ १७॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत्।

आपके बलवान् और धनुर्धर पुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर सात्यकिने भी अमर्षके वशीभूत होकर आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा दी ॥ १७½ ॥

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥
सात्यकिं शरवर्षेण छादयामासुरोजसा ।

राजाको पीड़ित देखकर आपके अन्य महारथी पुत्रोंने बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया॥

स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥ १९ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥

आपके बहुसंख्यक महारथी पुत्रोंद्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर सात्यकिने उनमेंसे एक-एकको पहले पाँच-पाँच बाणोंसे घायल किया। फिर सात-सात बाणोंसे बींध डाला। तत्पश्चात् तुरंत ही आठ शीघ्रगामी बाणोंद्वारा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ १९-२० ॥

प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१ ॥

इसके बाद युयुधानने हँसते हुए ही दुर्योधनके शत्रु-भीषण धनुषको और मणिमय नागसे चिह्नित ध्वजको भी बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २१ ॥

हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥

फिर चार तीखे बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर महायशस्वी सात्यकिने क्षुरप्रद्वारा उसके सारथिको भी मार गिराया ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

तदनन्तर हर्षमें भरे हुए सात्यकिने महारथी कुरुराज दुर्योधनपर बहुत-से मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥

स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ।

राजन्! सात्यकिके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा समराङ्गणमें क्षत-विक्षत होकर आपका पुत्र दुर्योधन सहसा भागा और धनुर्धर चित्रसेनके रथपर जा चढ़ा ॥ २४½ ॥

हाहाभूतं जगच्चासीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा ।

जैसे आकाशमें राहु चन्द्रमापर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार सात्यकिद्वारा राजा दुर्योधनको ग्रस्त होते देख वहाँ सब लोगोंमें हाहाकार मच गया ॥ २५½ ॥

तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६ ॥
अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः ।

उस कोलाहलको सुनकर महारथी कृतवर्मा सहसा वहीं आ पहुँचा, जहाँ शक्तिशाली सात्यकि खड़े थे ॥ २६½ ॥

विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥
भर्त्सयन् सारथिं चाग्रे याहि याहीति सत्वरम् ।

वह अपने श्रेष्ठ धनुषको कँपाता, घोड़ोंको हाँकता और 'आगे बढ़ो, जल्दी चलो' कहकर सारथिको फटकारता हुआ वहाँ आया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २८ ॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ।

महाराज! मुँह बाये हुए कालके समान कृतवर्माको वहाँ आते देख युयुधानने अपने सारथिसे कहा—॥२८½॥

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।

'सूत! यह कृतवर्मा बाण लेकर रथके द्वारा तीव्र वेगसे आ रहा है। यह सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ है। तुम रथके द्वारा इसकी अगवानी करो' ॥ २९½ ॥

ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च ॥ ३० ॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

तदनन्तर सात्यकि विधिपूर्वक सजाये गये तेज घोड़ों-वाले रथके द्वारा रणभूमिमें धनुर्धरोंके आदर्शभूत कृतवर्माके पास जा पहुँचे ॥ ३०½ ॥

ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।

तत्पश्चात् प्रज्वलित पावक और वेगशाली व्याघ्रोंके समान वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ ३१½ ॥

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३२ ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चास्य पञ्चभिः ।

कृतवर्माने सात्यकिपर तेजधारवाले छब्बीस तीखे बाण चलाये और पाँच बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥
अविध्यत् साधुदान्तान् वै सैन्धवान् सात्वतस्य हि ।

इसके बाद चार उत्तम बाण मारकर उसने सात्यकिके सुशिक्षित एवं विनीत चारों सिंधी घोड़ोंको भी बींध डाला ॥

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद् विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४ ॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।

तदनन्तर सोनेके केयूर और सोनेके ही कवच धारण करनेवाले सुवर्णमय ध्वजासे सुशोभित कृतवर्माने सोनेकी पीठ-वाले अपने विशाल धनुषकी टंकार करके स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान् कृतवर्मणे ॥ ३५ ॥
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनंजयम् ।

तब शिनिपौत्र सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ मनमें अर्जुनके दर्शनकी कामना लिये वहाँ कृतवर्माको अस्सी बाण मारे ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाला दुर्धर्ष वीर कृतवर्मा अपने बलवान् शत्रु सात्यकिके द्वारा अत्यन्त घायल होकर उसी प्रकार काँपने लगा, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान् सप्तभिः सारथिं तथा ॥ ३७ ॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने तिरसठ बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और सात तीखे बाणोंसे उसके सारथिको भी शीघ्र ही क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३७½ ॥

सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥ ३८ ॥
व्यसृजत् तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।

अब सात्यकिने अपने धनुषपर सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तेजस्वी बाणका संधान किया, जो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान प्रतीत होता था । उस बाणको उन्होंने कृतवर्मापर छोड़ दिया ॥ ३८½ ॥

सोऽविध्यत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३९ ॥
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद् धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥

सात्यकिका वह बाण यमदण्डके समान भयंकर था । उसने कृतवर्माके सुवर्णजटित चमकीले कवचको छिन्न-भिन्न करके उसे गहरी चोट पहुँचायी तथा खूनसे लथपथ होकर वह धरतीमें समा गया ॥ ३९-४० ॥

संजातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्मा खूनकी धारा बहाता हुआ धनुष-बाण छोड़कर उस उत्तम रथसे उसके पिछले भागमें गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥

सिंहके समान दाँतोंवाला अमितपराक्रमी नरश्रेष्ठ कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो घुटनोंके बलसे रथकी बैठकमें गिर गया ॥ ४२ ॥

सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४३ ॥

सहस्रबाहु अर्जुनके समान दुर्जय तथा महासागरके समान अक्षोभ्य कृतवर्माको इस प्रकार पराजित करके सात्यकि वहाँसे आगे बढ़ गये ॥ ४३ ॥

खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद् वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥ ४५ ॥

जैसे वृत्रनाशक इन्द्र असुरोंकी सेनाको लाँघकर जा रहे हों, उसी प्रकार शिनिप्रवर सात्यकि सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उनके बीचसे होकर उस सेनाका परित्याग करके चल दिये । उस कौरवसेनामें सैकड़ों क्षत्रियशिरोमणियोंने भयानक रक्तकी धारा बहा दी थी । वहाँ हाथी, घोड़े तथा रथ खचाखच भरे हुए थे और खड्ग, शक्ति एवं धनुष सब ओर व्याप्त थे ॥ ४४-४५ ॥

समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद् धनुः ।
तस्थौ स तत्र बलवान् वारयन् युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥

उधर बलवान् कृतवर्मा आश्वस्त होकर दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धस्थलमें पाण्डवोंका सामना करता हुआ वहीं खड़ा रहा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरव-सेनामें प्रवेशके पश्चात् दुर्योधन और कृतवर्माकी पराजयविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और द्रोणाचार्यका युद्ध, द्रोणकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब सात्यकि जहाँ-तहाँ जा-जाकर आपकी सेनाओंको कालके गालमें भेजने लगे, तब भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने उनपर महान् बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते बलि और इन्द्र-

के समान द्रोणाचार्य और सात्यकिका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया ॥ २ ॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए विचित्र तथा विषधर सर्पके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिके ललाटमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥

महाराज ! ललाटमें धँसे हुए उन सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा युयुधान तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुए॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य अवसर देखते रहते थे । उन्होंने मौका पाकर इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर शब्द करनेवाले और भी बहुत-से बाण युद्धस्थलमें सात्यकिपर चलाये ॥ ५ ॥

तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर गिरते हुए उन बाणोंको दशार्हकुलनन्दन परमास्त्रवेत्ता सात्यकिने उत्तम पंखोंसे युक्त दो दो बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ६ ॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिकी वह फुर्ती देखकर द्रोणाचार्य हँस पड़े । उन्होंने सहसा तीस बाण मारकर शिनिप्रवर सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने युयुधानकी फुर्तीको अपनी फुर्तीसे मन्द सिद्ध करते हुए तेजधारवाले पचास बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ ८ ॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद् यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद् राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

राजन् ! जैसे बाँबीसे क्रोधमें भरे हुए बहुत-से सर्प प्रकट होते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके रथसे शरीरको छेद डालनेवाले बाण प्रकट होकर वहाँ सब ओर गिरने लगे॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

उसी प्रकार युयुधानके चलाये हुए लाखों रुधिरभोजी बाण द्रोणाचार्यके रथपर बरसने लगे ॥ १० ॥

लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥

माननीय नरेश ! हाथोंकी फुर्तीकी दृष्टिसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और सात्यकिमें हमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ा था । वे दोनों ही नरश्रेष्ठ समान प्रतीत होते थे ॥ ११ ॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठ-वाले नौ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यपर गहरा आघात किया तथा तीखे बाणोंसे उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् द्रोणके देखते-देखते सात्यकिने सौ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया । युयुधानकी यह फुर्ती देखकर महारथी द्रोणने सत्तर बाणोंसे सात्यकिके सारथिको बींधकर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया । फिर एक बाणसे सात्यकिके रथपर फहराते हुए ध्वजको भी काट डाला ॥ १३–१४ ॥

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

इसके बाद सुवर्णमय पंखवाले दूसरे भल्लसे आचार्यने समराङ्गणमें महामनस्वी सात्यकिके धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ १५ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥

इससे महारथी सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने धनुष त्यागकर विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे द्रोणा-चार्यपर दे मारा ॥ १६ ॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥

वह लोहेकी गदा रेशमी वस्त्रसे बँधी हुई थी । उसे सहसा अपने ऊपर आती देख द्रोणाचार्यने अनेक रूपवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ १७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥

तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर सानपर तेज किये हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा वीर द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ १८ ॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें द्रोणको घायल करके सात्यकिने

सिंहके समान गर्जना की। उसे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सहन न कर सके ॥ १९ ॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम्।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

उन्होंने सोनेकी डंडेवाली लोहेकी शक्ति लेकर उसे सात्यकिके रथपर बड़े वेगसे चलाया ॥ २० ॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥

वह कालके समान विकराल शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर उनके रथको विदीर्ण करके भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीमें समा गयी ॥ २१ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥ २२ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! तब शिनिके पौत्रने एक बाणसे द्रोणाचार्यकी दाहिनी भुजापर चोट करके उसे पीड़ा देते हुए आचार्यको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद् धनुः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥

नरेश्वर! तब समरभूमिमें द्रोणाचार्यने भी सात्यकिके विशाल धनुषको अर्द्धचन्द्राकार बाणसे काट दिया तथा रथ-शक्तिका प्रहार करके सारथिको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२३॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥

द्रोणकी रथशक्तिसे आहत हो सारथि मूर्छित हो गया। वह रथकी बैठकमें पहुँचकर वहाँ दो घड़ीतक चुपचाप बैठा रहा ॥ २४ ॥

चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम्।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥

महाराज! उस समय सात्यकिने लोकोत्तर सारथ्य कर्म कर दिखाया। वे द्रोणाचार्यसे युद्ध भी करते रहे और स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर भी सँभाले रहे ॥ २५ ॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः।
अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥

प्रजानाथ! उस युद्धस्थलमें महारथी सात्यकिने हर्षमें भरकर विप्रवर द्रोणाचार्यको सौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥

तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥

भारत! फिर द्रोणाचार्यने सात्यकिपर पाँच बाण चलाये। वे भयंकर बाण उस रणक्षेत्रमें सात्यकिका कवच फाड़कर उनका लोहू पीने लगे ॥ २७ ॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत् सात्यकिर्भृशम्।
सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥

उन भयंकर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ २८ ॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि।
अश्वान् व्यद्रावयद् बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥

एक बाणसे युयुधानने द्रोणाचार्यके सारथिको धरतीपर गिरा दिया और सारथिहीन घोड़ोंको अपने बाणोंसे इधर-उधर मार भगाया ॥ २९ ॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः।
चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३० ॥

राजन्! वह चाँदीका बना हुआ रथ* युद्धस्थलमें दौड़ लगाता हुआ हजारों चक्कर काटता रहा! उस समय उसकी अंशुमाली सूर्यके समान शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥

उस समय समस्त राजा और राजकुमार पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अरे! दौड़ो, दौड़ो! द्रोणाचार्यके घोड़ोंको पकड़ो' ॥ ३१ ॥

ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥

नरेश्वर! उस युद्धस्थलमें वे सभी महारथी शीघ्र ही सात्यकिका सामना छोड़कर जहाँ द्रोणाचार्य थे, वहीं सहसा भाग गये ॥ ३२ ॥

तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शरार्दितान्।
प्रभग्नं पुनरेवासीत् तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो उन सबको युद्धस्थलसे पलायन करते देख आपकी संगठित हुई सारी सेना पुनः भाग खड़ी हुई ॥ ३३ ॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य पुनः व्यूहके ही द्वारपर जाकर खड़े हो गये। सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित होकर वायुके समान वेगसे भागने-वाले उनके घोड़ोंने ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान्।
शैनेये नाकरोद् यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥

पराक्रमी द्रोणने अपने व्यूहको पाण्डवों और पाञ्चालों-द्वारा भङ्ग हुआ देख सात्यकिको रोकनेका प्रयत्न छोड़

* अट्ठाईसवें श्लोकमें द्रोणके रथको सोनेका बताया है और इसमें चाँदीका बताया है। इससे यह समझना चाहिये कि उस रथमें सोना और चाँदी दोनों ही धातुएँ लगी हुई थीं।

दिया। वे पुनः व्यूहकी ही रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः प्रदहन्निव।
तस्थौ क्रोधेध्मसंदीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥ ३६ ॥

क्रोधरूपी ईंधनसे प्रज्वलित हुई द्रोणरूपी अग्नि पाण्डवों और पाञ्चालोंको रोककर सबको दग्ध करती हुई-सी खड़ी हो गयी और प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होने लगी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा पराक्रमविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सुदर्शनका वध

संजय उवाच

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान्।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—कुरुवंशशिरोमणे ! द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके प्रमुख महारथियोंको जीतकर नरवीर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए कहा——॥ १ ॥

निमित्तमात्रं वयमद्य सूत
दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम्।
हतान् निहन्मेह नरर्षभेण
वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

'सारथे ! इस विजयमें आज हमलोग तो निमित्तमात्र हो रहे हैं। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनने ही हमारे इन शत्रुओंको दग्ध कर दिया है। देवराजके पुत्र नरश्रेष्ठ अर्जुनके मारे हुए सैनिकोंको ही हमलोग यहाँ मार रहे हैं' ॥ २ ॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा।
किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली
समापतच्छ्येन इवामिषं यथा ॥ ३ ॥

उस महासमरमें सारथिसे ऐसा कहकर धनुर्धरशिरोमणि शत्रुसूदन शिनिप्रवर बलवान् सात्यकिने सहसा सब ओर बाणोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर उसी प्रकार आक्रमण किया, जैसे बाज मांसके टुकड़ेपर झपटता है ॥ ३ ॥

तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णै-
र्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं समन्ता-
दादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४ ॥

सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान रथियोंमें श्रेष्ठ नरवीर सात्यकि आपकी सेनामें घुसकर चन्द्रमा और शङ्खके समान श्वेतवर्णवाले घोड़ोंद्वारा आगे बढ़ते चले जा रहे थे। उस समय किसी ओरसे कोई योद्धा उन्हें रोक न सके ॥ ४ ॥

असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं
दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥

भारत ! सात्यकिका पराक्रम असह्य था। उनका धैर्य और बल महान् था। वे इन्द्रके समान प्रभावशाली तथा आकाशमें प्रकाशित होनेवाले शरत्कालके सूर्यके समान प्रचण्ड तेजस्वी थे। आपके समस्त सैनिक मिलकर भी उन्हें रोक न सके ॥ ५ ॥

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद् राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥

उस समय अत्यन्त विचित्र युद्ध करनेवाले, सुवर्ण-कवचधारी धनुर्धर नृपश्रेष्ठ सुदर्शनने अपनी ओर आते हुए सात्यकिको अमर्षमें भरकर बलपूर्वक रोका ॥ ६ ॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारः
सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन्।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च
वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥

भारत ! उन दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। जैसे देवगण वृत्रासुर और इन्द्रके युद्धकी गाथा गाते हैं, उसी प्रकार आपके योद्धाओं तथा सोमकोंने भी उन दोनोंके उस युद्धकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ७ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्
सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥

राजन् ! सुदर्शनने समराङ्गणमें सात्वतशिरोमणि सात्यकिपर सैकड़ों सुतीक्ष्ण बाणोंद्वारा प्रहार किया; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही काट डाला ॥ ८ ॥

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार इन्द्रके समान पराक्रमी सात्यकि भी सुदर्शन-पर जिन-जिन बाणोंका प्रहार करते थे, श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए सुदर्शन भी अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन सबके दो-दो-तीन-तीन टुकड़े कर देते थे ॥ ९ ॥

तान् वीक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं
सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः ।
क्रोधाद् दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः
शरानमुञ्चत् तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥

उस समय सात्यकिके वेगशाली बाणोंद्वारा अपने चलाये हुए बाणोंको नष्ट हुआ देख प्रचण्ड तेजस्वी राजा सुदर्शनने क्रोधसे उन्हें जला डालनेकी इच्छा रखते हुए-से सुवर्ण-जटित विचित्र बाणोंका उनपर प्रहार आरम्भ किया ॥ १० ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥

फिर उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी तथा कानतक खींचकर छोड़े हुए सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंसे सात्यकिको बींध दिया । वे बाण सात्यकिका कवच विदीर्ण करके उनके शरीरमें समा गये ॥ ११ ॥

तथैव तस्यावनिपालपुत्रः
संधाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशां-
श्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् उन राजकुमार सुदर्शनने अन्य चार तेजस्वी बाणोंका संधान करके उनके द्वारा चाँदीके समान चमकने-वाले सात्यकिके उन चारों घोड़ोंको भी बलपूर्वक घायल कर दिया ॥ १२ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णै-
र्हयान् निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥

सुदर्शनके द्वारा इस प्रकार घायल होनेपर इन्द्रके समान बलवान् और वेगशाली शिनिपौत्र सात्यकिने अपने सुतीक्ष्ण बाणसमूहोंसे सुदर्शनके अश्वोंका शीघ्र ही संहार करके उच्चस्वरसे सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसंनिभेन ।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः
क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४ ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य
बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् इन्द्रके वज्रतुल्य भल्लसे उनके सारथिका सिर काटकर शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने कालाग्निके समान तेजस्वी छुरेसे सुदर्शनके पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शोभाशाली कुण्डलमण्डित मस्तकको भी धड़से काट गिराया । ठीक उसी प्रकार, जैसे पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने समराङ्गणमें अत्यन्त बलवान् बलासुरका सिर बलपूर्वक काट लिया था ॥ १४-१५ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा
रराज राजन् सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥

नरेश्वर ! राजाके पुत्र एवं पौत्र सुदर्शनका रणभूमिमें वध करके यदुकुलतिलक देवेन्द्रसदृश पराक्रमी वेगशाली महामनस्वी सात्यकि अत्यन्त प्रसन्न होकर विजयश्रीसे सुशोभित होने लगे ॥ १६ ॥

ततो ययावर्जुन एव येन
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँ-
ल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥

राजन् ! तदनन्तर लोगोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छावाले नरवीर सात्यकि अपने सुन्दर अश्वोंसे जुते हुए रथके द्वारा बाणसमूहोंसे आपकी सेनाको हटाते हुए उसी मार्गसे चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ १७ ॥

तत् तस्य विस्मापयनीयमग्र्य-
मपूजयन् योधवराः समेताः ।
प्रवर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्
ददाह बाणैर्हुतभुग् यथैव ॥ १८ ॥

उनके उस आश्चर्यजनक उत्तम पराक्रमकी वहाँ एकत्र हुए समस्त योद्धाओंने बड़ी प्रशंसा की । सात्यकि अपने बाणोंके पथमें आये हुए शत्रुओंको उन बाणोंद्वारा अग्निदेव-के समान दग्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सुदर्शनवधविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और उनके सारथिका संवाद तथा सात्यकिद्वारा काम्बोजों और यवन आदिकी सेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततः स सात्यकिर्धीमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वृष्णिवंशावतंस बुद्धिमान् महामनस्वी सात्यकिने युद्धमें सुदर्शनको मारकर सारथिसे फिर इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम्।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम्।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम्।
जलसंधबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम् ॥ ४ ॥

'तात! रथ, घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई द्रोणाचार्यकी सेना महासागरके समान थी। उसमें बाण और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र तरंगमालाओंके समान प्रतीत होते थे। खड्ग मत्स्यके समान और गदा ग्राहके तुल्य थी। शूरवीरोंके आयुधोंके प्रहारसे जो महान् शब्द होता था, वही मानो महासागरका भयानक गर्जन था। बाजे बजानेकी ध्वनि और वीरोंके ललकारनेकी आवाजसे उस गर्जनका स्वर और भी बढ़ा हुआ था। योद्धाओंके लिये उसका स्पर्श अत्यन्त दुःखदायक था। जो विजयकी अभिलाषा नहीं रखते, ऐसे लोगोंके लिये वह प्राणनाशक भयंकर सैन्य-समुद्र दुर्धर्ष था। युद्धस्थलमें खड़ी हुई जलसंधकी सेनाने उसे राक्षसोंके समान घेर रक्खा था। उस दुस्तर सेना-सागरसे हमलोग पार हो गये हैं ॥ २-४ ॥

अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥

'उससे भिन्न जो शेष सेना है, उसे मैं सुगमतापूर्वक लाँघनेयोग्य थोड़े जलवाली छोटी नदीके समान समझता हूँ। अतः तुम निर्भय होकर घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥ ५ ॥

हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम्।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥

'सेवकोंसहित दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें जीतकर मैं ऐसा मानता हूँ कि इस समय सव्यसाची अर्जुन हमारे हाथमें ही आ गये हैं ॥ ६ ॥

हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनंजयम्।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे।

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माको पराजित करके मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मुझे मिल गये। जैसे सूखे तृण और लतावाले वनमें प्रज्वलित हुई अग्निके लिये कहीं कोई बाधा नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे इन अनेक सेनाओंको देखकर तनिक भी त्रास नहीं हो रहा है ॥ ७½ ॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम्।

'देखो, पाण्डवप्रवर किरीटधारी अर्जुन जिस मार्गसे गये हैं, वहाँकी भूमि धराशायी हुए पैदलों, घोड़ों, रथों और हाथियोंके समुदायसे विषम एवं दुर्लङ्घ्य हो गयी है ॥ ८½ ॥

द्रवते तद् यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे।
कौशेयारुणसंकाशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥

'सारथे! उन्हीं महात्मा अर्जुनकी खदेड़ी हुई वह सेना इधर-उधर भाग रही है। दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंसे लाल रेशमके समान यह धूल ऊपरको उठ रही है ॥ ९-१० ॥

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः ॥ ११ ॥

'इससे मैं समझता हूँ कि श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन हमारे निकट ही हैं, तभी यह अमितशक्तिशाली गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी दे रही है ॥ ११ ॥

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै।
अनस्तंगत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १२ ॥

'इस समय मेरे सामने जैसे शुभ शकुन प्रकट हो रहे हैं, उनसे जान पड़ता है अर्जुन सूर्यास्त होनेके पहले ही जयद्रथको मार डालेंगे ॥ १२ ॥

शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३ ॥

'सूत! धीरे-धीरे घोड़ोंको आराम देते हुए उस ओर चलो, जहाँ वह शत्रुसेना खड़ी है, जहाँ ये तलत्राण धारण किये दुर्योधन आदि योद्धा उपस्थित हैं ॥ १३ ॥

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४ ॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः।
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १६ ॥

'जहाँ कवच धारण किये रणदुर्मद क्रूरकर्मा काम्बोज, धनुष-बाण धारण किये प्रहारकुशल यवन, शक, किरात,



सात्यकिका कौरव-सेनामें प्रवेश और युद्ध

दरद, बर्बर, ताम्रलिप्त तथा हाथोंमें भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये अन्य बहुत-से म्लेच्छ—ये सबके सब जहाँ दुर्योधन-को अगुआ बनाकर दस्ताने पहने युद्धकी इच्छासे मेरी ओर मुँह करके खड़े हैं, वहीं चलो ॥ १४–१६ ॥

एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ सपत्तिनः ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥

'इन सबको युद्धस्थलमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदलों-सहित मार लेनेपर निश्चितरूपसे समझ लो कि हमलोग इस अत्यन्त भयंकर दुर्गम संकटसे पार हो गये' ॥ १७ ॥

सूत उवाच

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।
यद्यपि स्यात् तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥ १८ ॥

सारथिने कहा—सत्यपराक्रमी वृष्णिनन्दन ! आपके सामने क्रोधमें भरे हुए जमदग्निनन्दन परशुराम भी खड़े हो जायँ तो मुझे भय नहीं होगा ॥ १८ ॥

द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।
तथापि सम्भ्रमो न स्यात् त्वामाश्रित्य महाभुज ॥ १९ ॥

महाबाहो ! रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अथवा मद्रराज शल्य ही क्यों न खड़े हों, तथापि आपके आश्रित रहकर मुझे कदापि भय नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
न च मे सम्भ्रमः कश्चिद् भूतपूर्वः कथंचन ॥ २२ ॥
किमुतैतत् समासाद्य धीरसंयुगगोष्पदम् ।
आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनंजयम् ॥ २३ ॥

शत्रुसूदन ! आपने पहले भी युद्धमें बहुतेरे कवचधारी, क्रूरकर्मा रणदुर्मद काम्बोजोंको परास्त किया है । धनुष-बाण धारण करनेवाले प्रहारकुशल यवनोंको जीता है । शकों, किरातों, दरदों, बर्बरों, ताम्रलिप्तों तथा हाथोंमें नाना प्रकार-के आयुध लिये अन्य बहुत-से म्लेच्छोंको पराजित किया है । इन अवसरोंपर पहले कभी कोई किसी प्रकारका भय नहीं हुआ था । फिर इस गायकी खुरके समान तुच्छ युद्धस्थलमें आकर क्या भय हो सकता है ? आयुष्मन् ! बताइये, इन दो मार्गोंमेंसे किसके द्वारा आपको अर्जुनके पास पहुँचाऊँ२०—२३

केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः ।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४ ॥

वार्ष्णेय ! आप किनके ऊपर क्रुद्ध हैं, किनकी मौत आ गयी है और किनका मन आज यमपुरीमें जानेके लिये उत्साहित हो रहा है ? ॥ २४ ॥

के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् ।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज ।

युद्धमें काल, अन्तक और यमके समान पराक्रम दिखाने-वाले आप-जैसे बल-विक्रमसम्पन्न वीरको देखकर आज कौन-कौन-से योद्धा मैदान छोड़कर भागनेवाले हैं ? महाबाहो ! आज राजा यम किनका स्मरण कर रहे हैं ? ॥ २५½ ॥

सात्यकिरुवाच

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह ।
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥

सात्यकि बोले—सूत ! जैसे इन्द्र दानवोंका वध करते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन मथमुंडे काम्बोजोंका ही वध करूँगा और ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लूँगा । अतः तुम उन्हींकी ओर मुझे ले चलो । इन सबका संहार करके ही आज मैं अपने प्रिय सुहृद् पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास चलूँगा ॥ २६-२७ ॥

अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २८ ॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥

आज दुर्योधनसहित समस्त कौरव मेरा पराक्रम देखेंगे । सूत ! आज इन सिरमुण्डोंके मारे जाने तथा अन्य सारी सेनाओंका बारंबार विनाश होनेपर युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न होती हुई कौरवसेनाका नाना प्रकारसे आर्तनाद सुनकर दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ २८-२९ ॥

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥

आज रणक्षेत्रमें मैं अपने आचार्य पाण्डवप्रवर श्वेत-वाहन महात्मा अर्जुनके प्रकट किये हुए मार्गको दिखाऊँगा ॥ ३० ॥

अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥

आज मेरे बाणोंसे अपने सहस्रों प्रमुख योद्धाओंको मारा गया देखकर राजा दुर्योधन अत्यन्त पश्चात्ताप करेगा ॥ ३१ ॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥

आज शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाकर उत्तम बाणोंका प्रहार करते हुए मेरे धनुषको कौरवलोग अलातचक्रके समान देखेंगे ॥ ३२ ॥

मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥

मैं अपने बाणोंसे सारे कौरवसैनिकोंका शरीर व्याप्त कर दूँगा और वे बारंबार रक्त बहाते हुए प्राण त्याग देंगे । इस प्रकार अपने सैनिकोंका संहार देखकर सुयोधन संतप्त हो उठेगा ॥ ३३ ॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान् ।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥

आज क्रोधमें भरकर मैं कौरवसेनाके उत्तमोत्तम वीरोंको चुन-चुनकर मारूँगा, जिससे दुर्योधनको यह मालूम होगा कि अब संसारमें दो अर्जुन प्रकट हो गये हैं ॥ ३४ ॥

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा संतप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥

आज महासमरमें मेरे द्वारा सहस्रों राजाओंका विनाश देखकर राजा दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ ३५ ॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः ।

आज सहस्रों राजाओंका संहार करके मैं इन राजाओंके समाजमें महात्मा पाण्डवोंके प्रति अपने स्नेह और भक्तिका प्रदर्शन करूँगा । अब कौरवोंको मेरे बल, पराक्रम और कृतज्ञताका परिचय मिल जायगा ॥ ३६½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥
शशाङ्कसंनिकाशान् वै वाजिनो व्यनुदद् भृशम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथिने चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले उन घोड़ोंको, जो सुशिक्षित और अच्छी प्रकार सवारीका काम देनेवाले थे, बड़े वेगसे हाँका ॥ ३७½ ॥

ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥
प्रापयन् यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ।

मन और वायुके समान वेगवाले उन उत्तम घोड़ोंने आकाशको पीते हुए-से चलकर युयुधानको शीघ्र ही यवनोंके पास पहुँचा दिया ॥ ३८½ ॥

सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥ ३९ ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ।

युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले सात्यकिको अपनी सेनाओंके बीच पाकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले बहुतेरे यवनोंने उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३९½ ॥

तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवान् नतपर्वभिः ॥ ४० ॥
अच्छिनत् सात्यकी राजन् नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः ।

राजन् ! वेगशाली सात्यकिने झुकी हुई गाँठवाले अपने बाणोंद्वारा उन सबके बाणों तथा अन्य अस्त्रोंको काट गिराया । वे बाण उनके पासतक पहुँच न सके ॥ ४०½ ॥

रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१ ॥
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥

उन भयंकर वीरने सब ओर घूम-घूमकर सोनेके पुङ्ख और गीधकी पाँखवाले तीखे बाणोंसे यवनोंके मस्तक, भुजाएँ तथा लाल लोहे एवं काँसके बने हुए कवच भी काट डाले ॥ ४१–४२ ॥

भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ।
ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।

वे बाण उनके शरीरोंको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गये । वीर सात्यकिके द्वारा रणभूमिमें आहत होकर सैकड़ों म्लेच्छ प्राण त्यागकर धराशायी हो गये ॥ ४३½ ॥

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः ।

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए और अविच्छिन्न गतिसे परस्पर सटकर निकलते हुए बाणोंद्वारा पाँच, छः, सात और आठ यवनोंको एक ही साथ विदीर्ण कर डालते थे ॥ ४४½ ॥

काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥ ४५ ॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ।

प्रजानाथ ! सात्यकिने आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँकी भूमिको सहस्रों काम्बोजों, शकों, शबरों, किरातों और बर्बरोंकी लाशोंसे पाटकर अगम्य बना दिया था । वहाँ मांस और रक्तकी कीच जम गयी थी ॥ ४५–४६½ ॥

दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥ ४७ ॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ।

उन लुटेरोंके लंबी दाढ़ीवाले शिरस्त्राणयुक्त मुण्डित मस्तकोंसे आच्छादित हुई रणभूमि पंखहीन पक्षियोंसे व्याप्त हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४७½ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥ ४८ ॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् ।

जिनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, उन कबन्धोंसे भरा हुआ वह सारा रणक्षेत्र लाल रंगके बादलोंसे ढके हुए आकाशके समान जान पड़ता था ॥ ४८½ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुंधराम् ।

वज्र और विद्युत्‌के समान कठोर स्पर्शवाले सुन्दर पर्वयुक्त बाणोंद्वारा सात्यकिके हाथसे मारे गये उन यवनोंने वहाँकी भूमिको अपनी लाशोंसे ढक लिया ॥ ४९½ ॥

अल्पावशिष्टाः सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥ ५० ॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥ ५१ ॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ।

महाराज ! थोड़ेसे यवन शेष रह गये थे, जो बड़ी कठिनाईसे अपने प्राण बचाये हुए थे । वे अपने समुदायसे भ्रष्ट होकर अचेत-से हो रहे थे । उन सभी कवचधारी यवनोंको युयुधानने युद्धस्थलमें जीत लिया था । वे हाथों और कोड़ोंसे अपने घोड़ोंको पीटते हुए उत्तम वेगका आश्रय ले चारों ओर भयके मारे भाग गये ॥ ५०-५१½ ॥

काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥
यवनानां च तत् सैन्यं शकानां च महद् बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।

भरतनन्दन ! उस रणक्षेत्रमें दुर्जय काम्बोजसेनाको, यवनसेनाको तथा शकोंकी विशाल वाहिनीको खदेड़कर सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह सात्यकि आपके सैनिकोंपर विजयी हो कौरवसेनामें घुस गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'आगे बढ़ो' ॥ ५२-५३½ ॥

तत् तस्य समरे कर्म दृष्ट्वान्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।

जिसे पहले दूसरोंने नहीं किया था, समराङ्गणमें सात्यकिके उस पराक्रमको देखकर चारणों और गन्धर्वोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५४½ ॥

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ५५ ॥

प्रजानाथ ! अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको जाते देख चारणोंको बड़ा हर्ष हुआ और आपके सैनिकोंने भी उनकी बड़ी सराहना की ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके प्रसंगमें यवनोंकी पराजयविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा दुर्योधनकी सेनाका संहार तथा भाइयोंसहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

जित्वा यवनकाम्बोजान् युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ युयुधान यवनों और काम्बोजोंको पराजित करके आपकी सेनाके बीचसे होते हुए अर्जुनकी ओर चले ॥ १ ॥

चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥

पुरुषसिंह सात्यकिके दाँत बड़े सुन्दर थे । उनके कवच और ध्वज भी विचित्र थे । वे मृगकी गन्ध लेते हुए व्याघ्रके समान आपकी सेनाको भयभीत कर रहे थे ॥ २ ॥

स रथेन चरन् मार्गान् धनुरभ्रामयद् भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥

युयुधान रथके द्वारा विभिन्न मार्गोंपर विचरते हुए अपने उस महावेगशाली धनुषको जोर-जोरसे घुमा रहे थे, जिसका पृष्ठभाग सोनेसे मढ़ा था और जो सुवर्णमय चन्द्राकार चिह्नोंसे व्याप्त था ॥ ३ ॥

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुश्रृङ्गमिवाबभौ ॥ ४ ॥

उनके भुजबंद और शिरस्त्राण सुवर्णके बने हुए थे । वे स्वर्णमय कवचसे आच्छादित थे । सोनेके ध्वज और धनुषसे सुशोभित शूरवीर सात्यकि मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें मण्डलाकार धनुष धारण किये अपने तेजस्वरूप सूर्यरश्मियोंसे प्रकाशित, मानव-सूर्य सात्यकि शरत्कालमें उगे हुए सूर्यदेवके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥

वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥

उनके कंधे और चाल-ढाल वृषभके समान थे । नेत्र भी वृषभके ही तुल्य बड़े-बड़े थे । वे नरश्रेष्ठ सात्यकि आपके सैनिकोंके बीचमें उसी प्रकार सुशोभित होते थे, जैसे गौओंके झुंडमें साँड़की शोभा होती है ॥ ६ ॥

मत्तद्विरदसंकाशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और मदोन्मत्त गजराज-

के समान मन्दगतिसे चलनेवाले सात्यकि जब मदस्रावी मातङ्गके समान कौरवसैनिकोंके मध्यभागमें खड़े हुए, उस समय आपके योद्धा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे भूखे बाघोंके समान उनपर टूट पड़े ॥ ७½ ॥

द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ ८ ॥
जलसंधार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ।

वे सात्यकि जब द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघकर जलसंधरूपी सिन्धुको पार करके काम्बोजोंकी सेनाका संहारकर कृतवर्मारूपी ग्राहके चंगुलसे छूटकर आपकी सेनाके समुद्रसे पार हो गये, उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके रथियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८–९½ ॥

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।

दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, तरुण वीर दुर्धर्ष क्रथ तथा अन्य बहुत-से दुर्जय शूरवीर, अमर्षमें भरकर अस्त्र-शस्त्र लिये वहाँ आगे बढ़ते हुए सात्यकिके पीछे-पीछे दौड़े ॥ १०–११½ ॥

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।

माननीय नरेश ! पूर्णिमाके दिन वायुके झकोरोंसे वेगपूर्वक ऊपर उठनेवाले महासागरके समान आपकी सेनामें बड़े जोर-जोरसे गर्जन-तर्जनका शब्द होने लगा ॥ १२½ ॥

तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव ।

उन सबको आक्रमण करते देख शिनिप्रवर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए-से कहा—'सूत ! धीरे-धीरे चलो ॥

इदमेतत् समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद् बलम् ॥ १४ ॥
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
नादयन् वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन् सागरानपि ।
एतद् बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम् ।

'सूत ! यह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे भरी हुई जो दुर्योधनकी सेना युद्धके लिये उद्यत हो मेरी ही ओर तीव्र वेगसे चली आ रही है, इस सेना-समुद्रको मैं इस महान् समराङ्गणमें अपने रथकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं सागरोंको भी कँपाता हुआ आगे बढ़नेसे रोकूँगा । ठीक उसी तरह, जैसे तटकी भूमि पूर्णिमाको उद्वेलित होनेवाले महासागरको रोक देती है ॥ १४–१६½ ॥

पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।

'सारथे ! इस महायुद्धमें देवराज इन्द्रके समान मेरा पराक्रम तुम देखो । मैं अभी-अभी अपने पैने बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाओंका संहार कर डालता हूँ ॥ १७½ ॥

निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः ।

'इस युद्धस्थलमें मेरे द्वारा मारे गये सहस्रों पैदलों, घुड़सवारों, रथियों और हाथीसवारोंको देखना, जिनके शरीर मेरे अग्निसदृश बाणोंद्वारा विदीर्ण हुए होंगे' ॥ १८½ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥

अमित तेजस्वी सात्यकि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय युद्धके लिये उत्सुक हुए आपके सारे सैनिक शीघ्र ही उनके समीप आ पहुँचे । वे 'दौड़ो, मारो, ठहरो, देखो-देखो' इत्यादि बातें बोल रहे थे ॥ १९–२० ॥

तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥
(लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ।)

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले एवं विचित्र युद्धकी कलामें निपुण शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए वहाँ उपर्युक्त बातें बोलनेवाले तीन सौ वीर घुड़सवारों तथा चार सौ हाथीसवारको अपने तीखे बाणोंसे मार गिराया ॥ २१ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥

सात्यकि तथा आपकी सेनाके धनुर्धरोंका वह नरसंहारकारी युद्ध देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त भयंकर हो चला ॥

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥

माननीय नरेश ! शिनिपौत्र सात्यकिने अपने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाली आपके पुत्रकी सेनाका अकेले ही सामना किया ॥

प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असम्भ्रमन् महाराज तावकानवधीद् बहून् ॥ २४ ॥

महाराज ! उस समराङ्गणमें पराक्रमी सात्यकि बाणोंके समूहसे आच्छादित हो गये थे, तो भी उन्होंने मनमें तनिक भी घबराहट नहीं आने दी और आपके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ २४ ॥

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम्।
न मोघः सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥ २५ ॥

शक्तिशाली राजेन्द्र ! वहाँ सबसे महान् आश्चर्यकी बात मैंने यह देखी कि सात्यकिका कोई भी बाण व्यर्थ नहीं गया ॥

रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६ ॥

रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी तथा पैदलरूपी लहरोंसे व्याप्त हुई आपकी सागर-सदृश सेना सात्यकिरूपी तटभूमिके समीप आकर अवरुद्ध हो गयी ॥ २६ ॥

सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥

सात्यकिके बाणोंद्वारा सब ओरसे मारी जाती हुई आपकी सेनाके पैदल, हाथी और घोड़े सभी घबरा गये और बारंबार चक्कर काटने लगे ॥ २७ ॥

बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८ ॥
अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः।

सर्दीसे पीड़ित हुई गायोंके समान आपकी सारी सेना वहीं चक्कर लगा रही थी। मैंने वहाँ एक भी पैदल, रथी, हाथी तथा सवारसहित घोड़ेको ऐसा नहीं देखा, जो युयुधानके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ २८½ ॥

न तादृक् कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यादृक् क्षयमनीकानामकरोत् सात्यकिर्नृप।

राजन् ! नरेश्वर ! सात्यकिने आपके सैनिकोंका जैसा संहार किया था, वैसा वहाँ अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ २९½ ॥

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन्।

शिनिपौत्र पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि निर्भय हो बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाते और अपनी कुशलताका प्रदर्शन करते हुए अर्जुनसे भी अधिक पराक्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ३०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥

तब राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके सारथिको और चार पैने बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् सात्यकिको भी पहले तीन बाणोंसे बींधकर फिर आठ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१-३२ ॥

दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम्।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर दुःशासनने सोलह, शकुनिने पचीस और चित्रसेनने पाँच बाणोंद्वारा शिनिप्रवर सात्यकिको बींध डाला ॥

दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम्।
उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः।

इसके बाद दुःसहने सात्यकिकी छातीमें पंद्रह बाण मारे। महाराज ! इस प्रकार उन बाणोंसे आहत होकर वृष्णिवंशके सिंह सात्यकिने मुसकराते हुए ही उन सबको ही तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

गाढविद्धानरीन् कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥ ३५ ॥
शैनेयः श्येनवत् संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः।

उस युद्धस्थलमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाले शिनिवंशी सात्यकि अपने अत्यन्त तेज बाणोंद्वारा शत्रुओंको गहरी चोट पहुँचाकर बाजके समान सब ओर विचरने लगे ॥ ३५½ ॥

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे।

उन्होंने सुबलपुत्र शकुनिके धनुष और दस्ताने काटकर दुर्योधनकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ३६½ ॥

चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः।

फिर शिनिवंशके प्रमुख वीरने चित्रसेनको सौ, दुःसहको दस और दुःशासनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३७½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥
अष्टाभिः सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ ! तत्पश्चात् आपके सालेने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको पहले आठ बाण मारे। फिर पाँच बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। दुःशासनने दस और दुःसहने भी तीन बाण मारे ॥ ३८-३९ ॥

दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिम्।
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम्।

राजन् ! दुर्मुखने बारह बाणोंसे सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया। भारत ! इसके बाद दुर्योधनने तिहत्तर बाणोंसे युयुधानको घायल करके तीन पैने बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ ४०½ ॥

तान् सर्वान् सहिताञ्शूरान् यतमानान् महारथान् ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः।

तब सात्यकिने एक साथ विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन समस्त शूरवीर महारथियोंको पुनः पाँच-पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४१½ ॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद् भुवि।

तत्पश्चात् रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने आपके पुत्रके सारथिके ऊपर शीघ्र ही एक भल्लका प्रहार किया। सारथि उसके द्वारा मारा जाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४२½ ॥

पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात्।

प्रभो ! उस सारथिके धराशायी होनेपर आपके पुत्रका रथ हवाके समान तीव्र वेगसे भागनेवाले घोड़ोंद्वारा युद्धस्थलसे दूर हटा दिया गया ॥ ४३½ ॥

ततस्तव सुता राजन् सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन्।

राजन् ! प्रजानाथ ! तदनन्तर आपके पुत्र और सैनिक राजा दुर्योधनके रथकी वैसी दशा देखकर सैकड़ोंकी संख्यामें भाग खड़े हुए ॥ ४४½ ॥

विद्रुतं तत्र तत् सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।

भारत ! आपकी सेनाको भागती देख सात्यकिने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४५½ ॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥ ४६ ॥
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति।

राजन् ! इस प्रकार आपके सहस्रों सैनिकोंको भगाकर सात्यकि श्वेतवाहन अर्जुनके रथकी ओर चल दिये ॥४६½॥

(तं प्रयान्तं महाबाहुं तावकाः प्रेक्ष्य मारिष।
दृष्टं चाप्यदृष्टवत्कृत्वा क्रियामन्यां प्रयोजयन् ॥)

आर्य ! महाबाहु सात्यकिको आगे जाते देखकर आपके सैनिक उस देखी हुई घटनाको भी अनदेखी करके दूसरे काममें लग गये ॥

तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम्।
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

सात्यकि बाणोंको ग्रहण करते हुए अपनी और सारथिकी भी रक्षा करते थे। उनके इस कार्यकी आपके सैनिकोंने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका शत्रुसेनामें प्रवेश और दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४८½ श्लोक हैं)

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा पाषाणयोधी म्लेच्छोंकी सेनाका संहार और दुःशासनका सेनासहित पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

सम्प्रमृद्य महत् सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम्।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! मेरी विशाल सेनाको रौंदकर जाते हुए सात्यकि और अर्जुनको देखकर मेरे उन निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

कथं वैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम्।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

वे सब-के-सब मरना चाहते थे। उस समय युद्धस्थलमें अर्जुनके समान ही सात्यकिका चरित्र देखकर उनकी कैसी धारणा हुई थी ? ॥ २ ॥

किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥

वे सेनाके बीचमें परास्त होकर अपने क्षात्रबलका क्या वर्णन करेंगे ? समराङ्गणमें महायशस्वी सात्यकि किस प्रकार सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये ? ॥ ३ ॥

कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र संजय।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय ! युद्धस्थलमें मेरे पुत्रोंके जीते-जी शिनिनन्दन सात्यकि किस तरह आगे जा सके ? संजय ! यह सब मुझे बताओ ॥ ४ ॥

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम्।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥

तात ! यह मैं तुम्हारे मुँहसे अत्यन्त विचित्र बात सुन रहा हूँ कि शत्रुदलके उन बहुसंख्यक महारथियोंके साथ एकमात्र सात्यकिका ऐसा घोर संग्राम हुआ ॥ ५ ॥

विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति।
यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥

मैं अपने भाग्यहीन पुत्रके लिये सब कुछ विपरीत ही मान रहा हूँ; क्योंकि समराङ्गणमें अकेले सात्यकिने बहुत-से महारथियोंका वध कर डाला है ॥ ६ ॥

एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य संजय।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

संजय ! और सब पाण्डव तो दूर रहें, क्रोधमें भरे हुए अकेले सात्यकिके लिये भी मेरी सारी सेना पर्याप्त नहीं है ॥७॥

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम्।
यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान् मम ॥ ८ ॥

जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार

सात्यकि विचित्र युद्ध करनेवाले विद्वान् द्रोणाचार्यको भी युद्धमें परास्त करके मेरे पुत्रोंका वध कर डालेंगे ॥ ८ ॥

कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत् पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥

कृतवर्मा आदि बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें प्रयत्न करते ही रह गये; परंतु पुरुषप्रवर सात्यकि मारे न जा सके ॥ ९ ॥

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥

शिनिके महायशस्वी पौत्र सात्यकिने वहाँ जैसा युद्ध किया, वैसा तो अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ १० ॥

संजय उवाच

तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत् ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥

संजयने कहा—राजन् ! आपकी खोटी सलाह और दुर्योधनकी काली करतूतसे यह सब कुछ हुआ है । भारत ! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ११ ॥

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तकान् मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥

आपके पुत्रकी आज्ञासे युद्धके लिये अत्यन्त क्रूरतापूर्ण निश्चय करके परस्पर शपथ ले वे सभी पराजित योद्धा पुनः लौट आये ॥ १२ ॥

त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शककाम्बोजबाह्लीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पर्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।

तीन हजार घुड़सवार और हाथीसवार दुर्योधनको अपना अगुआ बनाकर चले । उनके साथ शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तंगण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर तथा पर्वतीय योद्धा भी थे । राजेन्द्र ! वे सब-के सब कुपित हो हाथोंमें पत्थर लिये सात्यकिकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे फतिंगे जलती हुई आगपर टूटे पड़ते हैं ॥ १३-१४½ ॥

युक्ताश्च पर्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥
शूराः पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् ।

राजन् ! पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले पर्वतीयोंके पाँच सौ शूरवीर रथी युद्धके लिये सुसज्जित हो सात्यकिपर चढ़ आये ॥ १५½ ॥

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६ ॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।

तत्पश्चात् एक हजार रथी, सौ महारथी, एक हजार हाथी और दो हजार घुड़सवारोंके साथ बहुत-से महारथी और असंख्य पैदल सैनिक सात्यकिपर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ १६-१७½ ॥

तांश्च संचोदयन् सर्वान् घ्नतैनमिति भारत ॥ १८ ॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।

भरतवंशी महाराज ! 'इस सात्यकिको मार डालो' इस प्रकार उन समस्त सैनिकोंको प्रेरित करते हुए दुःशासनने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।

वहाँ हमने सात्यकिका अत्यन्त अद्भुत चरित्र देखा कि वे बिना किसी घबराहटके अकेले ही बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९½ ॥

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद् बलम् ॥ २० ॥
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः ।

उन्होंने रथसेना और गजसेनाका तथा उन समस्त घुड़सवारों एवं लुटेरे म्लेच्छोंका भी सब प्रकारसे संहार कर डाला ॥ २०½ ॥

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
वर्मभिश्च तथानीकैर्व्यवकीर्णा वसुंधरा ।

वहाँ चूर-चूर हुए चक्कों, टूटे हुए उत्तमोत्तम आयुधों, टूक-टूक हुए धुरों, खण्डित हुए ईषादण्डों और बन्धुरों, मथे गये हाथियों, तोड़कर गिराये हुए ध्वजों, छिन्न-भिन्न कवचों और विनष्ट हुए सैनिकोंकी लाशोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी थी ॥ २१-२२½ ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।

माननीय भरतनरेश ! योद्धाओंके हारों, आभूषणों, वस्त्रों और अनुकर्षोंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि तारोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ २३½ ॥

गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।

भारत ! अञ्जन और वामन नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए पर्वताकार श्रेष्ठ गजराज भी वहाँ धराशायी हो गये थे ॥ २४½ ॥

सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥
ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च ।

जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥

नरेश्वर ! सुप्रतीक, महापद्म, ऐरावत तथा अन्य पुण्डरीक, पुष्पदन्त और सार्वभौम-(इन) दिग्गजोंके कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतेरे दंतार हाथी भी वहाँ धरतीपर लोट रहे थे ॥ २५-२६ ॥

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजान् बाह्लिकानपि ।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥

राजन् ! वहाँ सात्यकिने वनायु, काम्बोज (काबुल) और बाह्लीक देशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अश्वों तथा पहाड़ी घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ २७ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥

शिनिके उस वीर पौत्रने अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए विभिन्न जातिके सैकड़ों और हजारों हाथियोंका भी संहार कर डाला ॥ २८ ॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥

वे हाथी जब कालके गालमें जा रहे थे, उस समय दुःशासनने लूट-पाट करनेवाले म्लेच्छोंसे इस प्रकार कहा—'धर्मको न जाननेवाले योद्धाओ ! इस तरह भाग जानेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? लौटो और युद्ध करो' ॥ २९ ॥

तांश्चातिभग्नान् सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान् पर्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥

इतनेपर भी उन्हें जोर-जोरसे भागते देख आपके पुत्र दुःशासनने पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर पर्वतीयोंको आज्ञा दी—॥ ३० ॥

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकार्मुकम् ॥ ३१ ॥

'वीरो ! तुमलोग प्रस्तरोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हो। सात्यकिको इस कलाका ज्ञान नहीं है। प्रस्तरयुद्धको न जानते हुए भी युद्धकी इच्छा रखनेवाले इस शत्रुको तुमलोग मार डालो ॥ ३१ ॥

तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥ ३२ ॥

'इसी प्रकार समस्त कौरव भी प्रस्तरयुद्धमें प्रवीण नहीं है। अतः तुम डरो मत। आक्रमण करो। सात्यकि तुम्हें नहीं पा सकता' ॥ ३२ ॥

ते पर्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

जैसे मन्त्री राजाके पास जाते हैं, उसी प्रकार वे पाषाणयोधी समस्त पर्वतीय नरेश सात्यकिकी ओर दौड़े ॥ ३३ ॥

ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥

वे पर्वतनिवासी योद्धा हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े प्रस्तर हाथमें लेकर समराङ्गणमें युयुधानके सामने युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥

आपके पुत्र दुःशासनसे प्रेरित होकर सात्यकिके वधकी इच्छा रखनेवाले अन्य बहुतेरे सैनिकोंने भी क्षेपणीयास्त्र उठाकर सब ओरसे सात्यकिकी सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध कर लिया ॥ ३५ ॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसंधाय निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥ ३६ ॥

प्रस्तरयुद्धकी इच्छा रखनेवाले उन योद्धाओंके आक्रमण करते ही सात्यकिने तेज किये हुए बाणोंका संधान करके उन्हें उनपर चलाया ॥ ३६ ॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पर्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

पर्वतीय सैनिकोंद्वारा की हुई उस भयंकर पाषाणवर्षाको शिनिप्रवर सत्यकिने अपने सर्पतुल्य नाराचोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३७ ॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥

माननीय नरेश ! जुगनुओंकी जमातोंके समान उद्भासित होनेवाले उन प्रस्तरचूर्णोंसे प्रायः सारी सेनाएँ आहत हो हाहाकार करने लगीं ॥ ३८ ॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥

राजन् ! तदनन्तर बड़े-बड़े प्रस्तरखण्ड उठाये हुए पाँच सौ शूरवीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे धरतीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

पुनर्दशशताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥

फिर एक हजार दूसरे योद्धा तथा एक लाख अन्य सैनिक सात्यकितक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि अपने हाथमें लिये शिलाखण्डोंसे कटी हुई बाहुओंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ ४० ॥

(सात्वतस्य च भल्लेन निष्पिष्टैस्तैस्तथाद्रिभिः ।
न्यपतन् निहता म्लेच्छास्तत्र तत्र गतासवः ॥
ते हन्यमानाः समरे सात्वतेन महात्मना ।
अश्मवृष्टिं महाघोरां पातयन्ति स्म सात्वते ॥)

सात्यकिके भल्लसे चूर-चूर हुए शिलाखण्डोंद्वारा मारे गये म्लेच्छ प्राणशून्य होकर जहाँ-तहाँ पड़े थे। महामना

सात्यकिद्वारा समरभूमिमें मारे जाते हुए वे म्लेच्छ सैनिक उनपर बड़ी भयंकर पत्थरोंकी वर्षा करते थे ॥

पाषाणयोधिनः शूरान् यतमानानवस्थितान्।
न्यवधीद् बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

वे पाषाणोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर विजयके लिये यत्नशील होकर रणक्षेत्रमें डटे हुए थे। उनकी संख्या अनेक सहस्र थी; परंतु सात्यकिने उन सबका संहार कर डाला। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४१ ॥

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर पुनः हाथमें लोहेके गोले और त्रिशूल लिये मुँह फैलाये हुए दरद, तंगण, खस, लम्पाक और कुलिन्द-देशीय म्लेच्छोंने सात्यकिपर चारों ओरसे पत्थर बरसाने आरम्भ किये; परंतु प्रतीकार करनेमें निपुण सात्यकिने अपने नाराचोंद्वारा उन सबको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४२–४३ ॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः।
शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥

आकाशमें तीखे बाणोंद्वारा टूटने-फूटनेवाले प्रस्तर-खण्डोंके शब्दसे भयभीत हो रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक युद्धस्थलमें इधर-उधर भागने लगे ॥ ४४ ॥

अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥

पत्थरके चूर्णोंसे व्याप्त हुए मनुष्य, हाथी और घोड़े वहाँ ठहर न सके, मानो उन्हें भ्रमरोंने डस लिया हो ॥ ४५ ॥

हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः।
(विभिन्नशिरसो राजन् दन्तैश्छिन्नैश्च दन्तिनः।
निर्धूतैश्च करैर्नागा व्यङ्गाश्च शतशः कृताः॥
हत्वा पञ्चशतान् योधांस्तत्क्षणेनैव मारिष।
व्यचरत् पृतनामध्ये शैनेयः कृतहस्तवत् ॥)
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तथा ॥ ४६ ॥

जो मरनेसे बचे थे, वे हाथी भी खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनके कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे। राजन्! बहुत-से हाथियोंके सिर क्षत-विक्षत हो गये थे। उनके दाँत टूट गये थे, शुण्डदण्ड खण्डित हो गये थे तथा सैकड़ों गजराजोंके सात्यकिने अङ्ग भंग कर दिये थे। माननीय नरेश! सात्यकि सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति क्षणभरमें पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे। उस समय घायल हुए हाथी युयुधानके रथको छोड़कर भाग गये ॥ ४६ ॥

(अश्मनां भिद्यमानानां सायकैः श्रूयते ध्वनिः।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥)

बाणोंसे चूर-चूर होनेवाले पत्थरोंकी ऐसी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, मानो कमलदलोंपर गिरती हुई जलधाराओंका शब्द कानोंमें पड़ रहा हो ॥

ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥

आर्य! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रका गर्जन बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार सात्यकिके द्वारा पीड़ित हुई आपकी सेनाका महान् कोलाहल प्रकट हो रहा था ॥ ४७ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत्।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत्।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर द्रोणाचार्यने अपने सारथि-से कहा—'सूत! यह सात्वतकुलका महारथी वीर सात्यकि रणक्षेत्रमें क्रुद्ध होकर कौरवसेनाको बारंबार विदीर्ण करता हुआ कालके समान विचर रहा है। सारथे! जहाँ यह भयानक शब्द हो रहा है, वहीं मेरे रथको ले चलो ॥ ४८-४९ ॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥

'निश्चय ही युयुधान पाषाणयोधी योद्धाओंसे भिड़ गया है, तभी तो ये भागे हुए घोड़े सम्पूर्ण रथियोंको रणभूमिसे बाहर लिये जा रहे हैं ॥ ५० ॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥

'ये रथी शस्त्र और कवचसे हीन होकर शस्त्रोंके आघात-से रुग्ण हो यत्र-तत्र गिर रहे हैं। इस भयंकर युद्धमें सारथि अपने घोड़ोंको काबूमें नहीं रख पाते हैं' ॥ ५१ ॥

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥

द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर सारथिने सम्पूर्ण शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे इस प्रकार कहा—'आयुष्मन्! कौरव-सेना चारों ओर भाग रही है। देखिये, रणक्षेत्रमें वे सब योद्धा व्यूह-भंग करके इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ ५२-५३ ॥

इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥

'ये पाण्डवोंसहित पाञ्चाल वीर संगठित हो आपको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे आपपर ही आक्रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिंदम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥

'शत्रुदमन ! इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसपर ध्यान दीजिये; यहीं ठहरना है या अन्यत्र जाना है । सात्यकि तो बहुत दूर चले गये' ॥ ५५ ॥

तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान् रथान् ॥ ५६ ॥

द्रोणाचार्यका सारथि जब इस प्रकार कह रहा था, उसी समय शिनिनन्दन सात्यकि बहुतेरे रथियोंका संहार करते दिखायी दिये ॥ ५६ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥

समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक उनके रथको छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर भाग गये ॥ ५७ ॥

यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

पहले दुःशासन जिन रथियोंके साथ लौटा था, वे सब-के-सब भयभीत होकर द्रोणाचार्यके रथकी ओर भाग गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुःशासनको फटकारना और द्रोणाचार्यके द्वारा वीरकेतु आदि पाञ्चालोंका वध एवं उनका धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध, द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना, धृष्टद्युम्नका पलायन, आचार्यकी विजय

संजय उवाच

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःशासनके रथको अपने समीप खड़ा हुआ देख द्रोणाचार्य उससे इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित् क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥

'दुःशासन ! ये सारे रथी कहाँसे भागे आ रहे हैं ? राजा दुर्योधन सकुशल तो हैं न ? क्या सिंधुराज जयद्रथ अभी जीवित है ? ॥ २ ॥

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥

'तुम तो राजाके बेटे, राजाके भाई और महारथी वीर हो । युवराजका पद प्राप्त करके तुम इस युद्धस्थलमें किस लिये भागे फिरते हो ? ॥ ३ ॥

दासी जितासि द्यूते त्वं यथाकामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥ ४ ॥

'दुःशासन ! तुमने द्रौपदीसे कहा था 'अरी ! तू जूएमें जीती हुई दासी है । अतः हमारी इच्छाके अनुसार आचरण करनेवाली हो जा । मेरे बड़े भाई राजा दुर्योधनकी वस्त्र-वाहिका बन जा ॥ ४ ॥

न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य षण्ढतिलैः समाः ।
दुःशासनैवं कस्मात् त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥

'अब तेरे सम्पूर्ण पति थोथे तिलोंके समान नहींके बराबर हो गये हैं ।' पहले ऐसी बातें कहकर अब तुम युद्धसे भाग क्यों रहे हो ? ॥ ५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ६ ॥

'पाञ्चालों और पाण्डवोंके साथ स्वयं ही बड़ा भारी वैर ठानकर युद्धस्थलमें अकेले सात्यकिका सामना करके कैसे भयभीत हो उठे हो ? ॥ ६ ॥

न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान् दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥

'क्या पहले तुम जूएमें पासे उठाते समय नहीं जानते थे कि ये एक दिन भयंकर विषधर सर्पोंके समान विनाशकारी बाण बन जायँगे ॥ ७ ॥

अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ॥ ८ ॥

'पूर्वकालमें विशेषतः पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको जो अप्रिय वचन सुनाये गये और द्रौपदीदेवीको जो कष्ट पहुँचाया गया, इन सबकी जड़ तुम्हीं रहे हो ॥ ८ ॥

क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम् ।
आशीविषसमान् पार्थान् कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९ ॥

'कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ है तुम्हारा पराक्रम ? और कहाँ गयी तुम्हारी गर्जना ? विषैले सर्पोंके समान कुन्तीकुमारोंको कुपित करके कहाँ भागे जा रहे हो ? ॥ ९ ॥

शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ १० ॥

'यह कौरवी सेना, यह राज्य और इसका राजा दुर्योधन—ये सभी शोचनीय हो गये हैं; क्योंकि तुम राजाके क्रूरकर्मी भाई होकर आज युद्धमें पीठ दिखाकर भाग रहे हो ॥ १० ॥

ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥

'वीर ! तुम्हें तो अपने बाहुबलका आश्रय लेकर इस भागती हुई भयभीत सेनाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ।

'परंतु तुम आज युद्ध छोड़कर भयभीत हो उठे और शत्रुओंका हर्ष बढ़ा रहे हो । शत्रुसूदन ! तुम तो सेनापति हो । तुम्हारे भागनेपर दूसरा कौन युद्धभूमिमें ठहर सकेगा ? जब आश्रयदाता या रक्षक ही डर जाय, तब दूसरा क्यों न भयभीत होगा ? ॥ १२½ ॥

एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३ ॥
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्तते ।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥ १४ ॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ।

'कौरव ! अकेले सात्यकिके साथ युद्ध करते समय, जब आज तुम्हारी बुद्धि संग्रामसे पलायन करनेमें प्रवृत्त हो गयी, तुमने भागनेका विचार कर लिया, तब जिस समय तुम गाण्डीवधारी अर्जुन, भीमसेन अथवा नकुल-सहदेवको युद्धस्थलमें देखोगे, उस समय तुम क्या करोगे ? ॥ १३-१४½ ॥

युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ।

'रणक्षेत्रमें अर्जुनके बाण सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं । उनके समान सात्यकिके बाण नहीं हैं, जिनसे भयभीत होकर तुम भागे जा रहे हो ॥ १५½ ॥

त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥ १६ ॥
पृथिव्यां धावमानस्य नान्यत् पश्यामि जीवनम् ।

'वीर ! जल्दी जाओ । अपनी माता गान्धारीदेवीके पेटमें घुस जाओ; अन्यथा इस भूतलपर दूसरा कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भाग जानेसे मुझे तुम्हारे जीवनकी रक्षा दिखायी देती हो ॥ १६½ ॥

यदि तावत् कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥
पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।

'यदि तुमने भागनेका ही विचार कर लिया है, तब यह पृथ्वीका राज्य शान्तिपूर्वक ही धर्मराज युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ १७½ ॥

यावत् फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसंनिभाः ॥ १८ ॥
नाविशन्ति शरीरं ते तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान अर्जुनके बाण जबतक तुम्हारे शरीरमें नहीं घुस रहे हैं, तबतक ही तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १८½ ॥

यावत् ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥
नाक्षिपन्ति महात्मानस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'महामनस्वी कुन्तीकुमार जबतक तुम्हारे सौ भाइयोंको रणक्षेत्रमें मारकर यह सारी पृथ्वी तुमसे छीन नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १९½ ॥

यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तथा युद्धकी प्रशंसा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण क्रोध नहीं करते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २०½ ॥

यावद् भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥ २१ ॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक महाबाहु भीमसेन विशाल कौरवसेनामें घुसकर तुम्हारे सारे भाइयोंको दबोच नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २१½ ॥

पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणासौ सुयोधनः ॥ २२ ॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत् कृतवान् मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३ ॥

'पूर्वकालमें भीष्मजीने तुम्हारे भाई दुर्योधनसे यह कहा था कि 'सौम्य ! पाण्डव युद्धमें अजेय हैं । तुम उनके साथ संधि कर लो ।' परंतु तुम्हारे मूर्ख भ्राता दुर्योधनने वह कार्य नहीं किया ॥ २२-२३ ॥

स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम् ॥ २४ ॥
तच्चाप्यवितथं तस्य तत् तथैव भविष्यति ।

'अतः अब तुम रणक्षेत्रमें धैर्य धारण करके प्रयत्नपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करो । मैंने सुना है भीमसेन तुम्हारा भी खून पीयेंगे । भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा झूठी नहीं है । वह उसी रूपमें सत्य होगी ॥ २४½ ॥

किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥ २५ ॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।

'ओ मूर्ख ! क्या तुम भीमसेनके पराक्रमको नहीं जानते, जो तुमने उनके साथ वैर ठाना और अब युद्धसे भागे जा रहे हो ? ॥ २५½ ॥

गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २६ ॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद् विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २७ ॥

'भरतनन्दन ! अब तुम शीघ्र ही इसी रथके द्वारा जहाँ सात्यकि खड़े हैं, वहाँ जाओ। तुम्हारे न रहनेसे यह सारी सेना भाग जायगी। तुम अपने लाभके लिये रणक्षेत्रमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके साथ युद्ध करो' ॥ २६-२७ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत् किंचिदप्यसौ।
श्रुतं चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद् येन स सात्यकिः॥२८॥

द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर आपका पुत्र दुःशासन कुछ भी नहीं बोला। वह उनकी सुनी हुई बातोंको भी अनसुनी-सी करके उसी मार्गपर चल दिया, जिससे सात्यकि गये थे ॥

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम्।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥२९॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले म्लेच्छोंकी विशाल सेनाके साथ समराङ्गणमें सात्यकिके पास पहुँचकर उनके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध आरम्भ किया ॥ २९ ॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥

इधर रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर मध्यम वेगका आश्रय ले पाञ्चालों और पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ ३० ॥

प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम्।
द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥

द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें पाण्डवोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके उनके सैकड़ों और हजारों सैनिकोंको भगाने लगे ॥ ३१ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥

महाराज ! उस समय आचार्य द्रोण युद्धस्थलमें अपना नाम सुना-सुनाकर पाण्डव, पाञ्चाल तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंका महान् संहार करने लगे ॥ ३२ ॥

तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ ३३ ॥

इधर-उधर घूम-घूमकर समस्त सेनाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये उस समय तेजस्वी पाञ्चालराजकुमार वीरकेतु आया ॥ ३३ ॥

स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल करके एकसे उनके ध्वजको और सात बाणोंसे उनके सारथिको भी बेध दिया ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस युद्धमें मैंने यह अद्भुत बात देखी कि द्रोणाचार्य उस वेगशाली पाञ्चालराजकुमार वीरकेतुकी ओर बढ़ न सके ॥ ३५ ॥

संनिरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष।
आवव्रुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यको रणक्षेत्रमें अवरुद्ध हुआ देख धर्मपुत्रकी विजय चाहनेवाले पाञ्चालोंने सब ओरसे उन्हें घेर लिया ॥ ३६ ॥

ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥

राजन् ! उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी बाणों, बहुमूल्य तोमरों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करके अकेले द्रोणाचार्यको ढक दिया ॥ ३७ ॥

निहत्य तान् बाणगणैर्द्रोणो राजन् समन्ततः।
महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वेव चाबभौ ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यने अपने बाण-समूहोंद्वारा चारों ओरसे उन समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े करके आकाशमें महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके पश्चात् प्रवाहित होनेवाले वायुदेवके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३८ ॥

ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम्।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले आचार्यने सूर्य और अग्निके समान अत्यन्त भयंकर बाणको धनुषपर रक्खा और उसे वीरकेतुके रथपर चला दिया ॥ ३९ ॥

स भित्त्वा तु शरो राजन् पाञ्चालकुलनन्दनम्।
अभ्यगाद् धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥

राजन् ! वह प्रज्वलित होता हुआ-सा बाण पाञ्चाल-कुलनन्दन वीरकेतुको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो तुरंत ही धरतीमें समा गया ॥ ४० ॥

ततोऽपतद् रथात् तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ४१ ॥

फिर तो पाञ्चालकुलको आनन्दित करनेवाला वह राजकुमार वायुसे टूटकर पर्वतके शिखरसे नीचे गिरनेवाले चम्पाके विशाल वृक्षके समान तुरंत रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥

उस महान् धनुर्धर महाबली राजकुमारके मारे जानेपर पाञ्चालसैनिकोंने शीघ्र ही आकर द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४२ ॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ४३ ॥

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ४४ ॥

भारत ! चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ—ये चारों वीर अपने भाईकी मृत्युसे दुःखित हो युद्धकी इच्छा रखकर एक साथ ही द्रोणपर टूट पड़े और जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३-४४ ॥

स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः।
क्रोधमाहारयत् तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥

उन महारथी राजकुमारोंद्वारा बारंबार घायल किये जानेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने उनके विनाशके लिये महान् क्रोध प्रकट किया ॥ ४५ ॥

ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत्।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥ ४६ ॥
कर्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम।

तब द्रोणाचार्यने उनके ऊपर बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। नृपश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्यके कानतक खींचकर छोड़े हुए उन बाणोंद्वारा घायल होकर वे राजकुमार यह भी न जान सके कि हमें क्या करना चाहिये ? ॥ ४६½ ॥

तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे।

भरतनन्दन ! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्यने हँसते हुए-से अपने बाणोंद्वारा उन किंकर्तव्यविमूढ़ राजकुमारोंको घोड़े, सारथि तथा रथसे हीन कर दिया ॥ ४७½ ॥

अथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन् हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत्।

तत्पश्चात् दूसरे तेज धारवाले भल्लोंसे महायशस्वी द्रोणने उन राजकुमारोंके मस्तक उसी प्रकार काट गिराये, मानो वृक्षोंसे फूल चुन लिये हों ॥ ४८½ ॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सुवर्चसः ॥ ४९ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः।

राजन् ! जैसे पूर्वकालके देवासुरसंग्राममें दैत्य और दानव धराशायी हुए थे, उसी प्रकार वे सुन्दर कान्तिवाले राजकुमार मारे जाकर उस समय रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ४९½

तान् निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५० ॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम्।
(तदस्य भ्राजते राजन् मेघमध्ये तडिद् यथा ॥)

महाराज ! प्रतापी द्रोणने युद्धस्थलमें उन राजकुमारोंका वध करके सुवर्णमय पृष्ठभागवाले दुर्जय धनुषको घुमाना आरम्भ किया। राजन् ! उस समय वह धनुष मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ ५०½ ॥

पञ्चालान् निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान् महारथान् ॥ ५१ ॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम्।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥

देवताओंके समान तेजस्वी पाञ्चाल महारथियोंको मारा गया देख धृष्टद्युम्न अत्यन्त उद्विग्न हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कुपित हो उठे और संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके रथकी ओर बढ़े ॥ ५१-५२ ॥

ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥

राजन् ! रणक्षेत्रमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे द्रोणाचार्यकी गति अवरुद्ध हुई देख (कौरवसेनामें) सहसा हाहाकार मच गया ॥ ५३ ॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ५४ ॥

महामना धृष्टद्युम्नके द्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर भी द्रोणाचार्यको तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वे मुसकराते हुए ही युद्धमें संलग्न रहे ॥ ५४ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नने क्रोधसे अचेत होकर झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५५ ॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५६ ॥

बलवान् वीर धृष्टद्युम्नके द्वारा गहरी चोट पहुँचायी जानेपर महायशस्वी द्रोणाचार्य रथके पिछले भागमें बैठ गये और मूर्छित हो गये ॥ ५६ ॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५७ ॥

उनको उस अवस्थामें देखकर बल और पराक्रमसे सम्पन्न धृष्टद्युम्नने धनुष रख दिया और तुरंत ही तलवार हाथमें ले ली ॥ ५७ ॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय नरेश ! महारथी धृष्टद्युम्न शीघ्र ही अपने रथसे कूदकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ ५८ ॥

हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥ ५९ ॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया।
शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥

राजन् ! वे क्रोधसे लाल आँखें करके द्रोणाचार्यके सिरको धड़से अलग कर देना चाहते थे। इसी समय

द्रोणाचार्य होशमें आ गये और उन्होंने अपनेको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्नको निकट आया देख महान् टङ्कार करनेवाले अपने धनुषको हाथमें लेकर निकटसे वेधनेवाले बित्ते बराबर बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५९-६० ॥

योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ६१ ॥
द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।

राजन्! आचार्य समराङ्गणमें महारथी धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे। निकटसे युद्ध करनेवाले द्रोणाचार्यके पास उन्हींके बनाये हुए वैतस्तिक नामक बाण थे, जिनके द्वारा उन्होंने धृष्टद्युम्नको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६१½ ॥

स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद् धनुः ॥ ६३ ॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥

महाबली और पराक्रमी धृष्टद्युम्न उन बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल होकर अपना वेग भंग हो जानेके कारण उस रथसे कूद पड़े और पुनः अपने रथपर आरुढ़ हो वे वीर महारथी धृष्टद्युम्न महान् धनुष हाथमें लेकर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यको वेधने लगे। महाराज! द्रोणाचार्यने भी अपने बाणोंद्वारा द्रुपदपुत्रको घायल कर दिया ॥ ६२–६४ ॥

तदद्भुतमभूद् युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकाङ्क्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥

जैसे त्रिलोकीके राज्यकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और प्रह्लादमें परस्पर युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अत्यन्त अद्भुत युद्ध होने लगा ॥६५॥

मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥

वे दोनों ही युद्धकी प्रणालीके ज्ञाता थे। अतः विचित्र मण्डल, यमक तथा अन्य प्रकारके मार्गोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको बाणोंसे क्षत-विक्षत करने लगे ॥ ६६ ॥

मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥

वर्षाकालके दो मेघोंके समान बाण-वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें सम्पूर्ण योद्धाओंके मन मोहने लगे ॥ ६७ ॥

छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥

वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंद्वारा आकाश, दिशाओं तथा पृथ्वीको आच्छादित करने लगे। उन दोनोंके उस अद्भुत युद्धकी सभी प्राणियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥६८॥

क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तव सैनिकाः ।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९ ॥
वशमेष्यति नो राजन् पञ्चाला इति चुक्रुशुः ।

महाराज! सभी क्षत्रियों तथा आपके अन्य सैनिकोंने भी उन दोनोंके युद्धकी प्रशंसा की। राजन्! पाञ्चालयोद्धा यों कहकर कोलाहल करने लगे कि द्रोणाचार्य समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नके साथ उलझे हुए हैं। वे अवश्य ही हमारे अधीन हो जायँगे ॥ ६९½ ॥

द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव ।

इसी समय द्रोणने युद्धमें बड़ी उतावलीके साथ धृष्टद्युम्नके सारथिका सिर वृक्षके पके हुए फलके समान धड़से नीचे गिरा दिया ॥ ७०½ ॥

ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा ।
अयोधयद् रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥

राजन्! फिर तो महामना धृष्टद्युम्नके घोड़े भाग चले। उनके भाग जानेपर पराक्रमी द्रोणाचार्य रणभूमिमें सब ओर घूम-घूमकर पाञ्चालों और सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७१-७२ ॥

विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिंदमः ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्य पाण्डवों और पाञ्चालोंको पराजित करके पुनः अपने व्यूहमें आकर खड़े हो गये। प्रभो! उस समय पाण्डवसैनिक युद्धमें उन्हें जीतनेका साहस न कर सके ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और द्रोणाचार्यका पराक्रमविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः
सात्यकिका घोर युद्ध और दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत्।
किरञ्शतसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर दुःशासनने वर्षा करनेवाले मेघके समान लाखों बाण बिखेरते हुए वहाँ शिनि-पौत्र सात्यकिपर धावा कर दिया ॥ १ ॥

स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः।
नाकम्पयत् स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥

वह पहले साठ फिर सोलह बाणोंसे बींधकर भी युद्धमें मैनाक पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े हुए सात्यकिको कम्पित न कर सका ॥ २ ॥

तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद् भृशम्।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥

शूरवीर दुःशासनने नाना देशोंसे प्राप्त हुए विशाल रथ-समूहके द्वारा तथा बाणोंकी वर्षासे भी सात्यकिको अत्यन्त आवृत कर लिया ॥ ३ ॥

सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन् सायकान् बहून्।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन् वै दिशो दश ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ! उसने मेघके समान अपनी गम्भीर गर्जनासे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए चारों ओरसे बहुत-से बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥

तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥ ५ ॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणक्षेत्रमें आक्रमण करते देख महाबाहु सात्यकिने उसपर धावा करके अपने बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः।
प्राद्रवन् समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥

वे दुःशासन आदि योद्धा सात्यकिके बाण-समूहोंसे आच्छादित होनेपर समरभूमिमें भयभीत हो उठे और आपकी सारी सेनाके देखते-देखते भागने लगे ॥ ६ ॥

तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव।
तस्थौ व्यपेतभी राजन् सात्यकिं चार्दयच्छरैः ॥ ७ ॥

राजेन्द्र! उनके भागनेपर भी आपका पुत्र दुःशासन वहीं निर्भय खड़ा रहा। उसने सात्यकिको अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ ७ ॥

चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः।
सात्यकिं च शतेनाजौ विद्ध्वा नादं मुमोच सः ॥ ८ ॥

उसने चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको, तीनसे सारथिको और सौ बाणोंसे स्वयं सात्यकिको युद्धभूमिमें घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥

महाराज! तब मधुवंशी सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर दुःशासनके रथ, सारथि और ध्वजको अपने बाणोंद्वारा अदृश्य कर दिया ॥ ९ ॥

स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद् भृशम्।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥
त्वरन् समावृणोद् बाणैर्दुःशासनममित्रजित्।

इतना ही नहीं, उन्होंने शूरवीर दुःशासनको अपने बाणोंसे अत्यन्त आच्छादित कर दिया। जैसे मकड़ी अपने जालेसे किसी जीवको लपेट देती है, उसी प्रकार शङ्कित-भावसे पास आये हुए दुःशासनको शत्रुविजयी सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा आवृत कर लिया ॥ १०½ ॥

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति।

इस प्रकार दुःशासनको सैकड़ों बाणोंसे ढका हुआ देख राजा दुर्योधनने त्रिगर्तोंको युयुधानके रथपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी ॥ ११½ ॥

तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः।

वे त्रिगर्तोंके तीन हजार रथी, जो युद्धमें कुशल थे, कठोर कर्म करनेवाले युयुधानके समीप गये ॥ १२½ ॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः।

उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके परस्पर शपथ ग्रहण करनेके अनन्तर विशाल रथ-सेनाके द्वारा उन्हें घेर लिया ॥ १३½ ॥

तेषां प्रयततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥
योधान् पञ्चशतान् मुख्यानग्रानीके व्यपोथयत्।

तब सात्यकिने युद्धमें बाणवर्षा करते हुए आक्रमण करनेवाले पाँच सौ प्रमुख योद्धाओंको सेनाके मुहानेपर मार गिराया ॥ १४½ ॥

तेऽपतन् निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः।

जैसे आँधीके वेगसे टूटे हुए वृक्ष पर्वतसे नीचे गिरते हैं, उसी प्रकार शिनिश्रेष्ठ सात्यकिके बाणोंसे मारे गये वे त्रिगर्त योद्धा तुरंत ही धराशायी हो गये ॥ १५½ ॥

नागैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।

महाराज ! प्रजापालक नरेश ! उस समय गिरे हुए गजराजों, अनेक टुकड़ोंमें कटी हुई ध्वजाओं तथा धरतीपर पड़े हुए, सोनेकी कलंगियोंसे सुशोभित घोड़ोंसे, जो सात्यकिके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर खूनसे लथपथ हो रहे थे, आच्छादित हुई यह पृथ्वी वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो वह लाल फूलोंसे भरे हुए पलाशके वृक्षोंद्वारा ढक गयी हो ॥ १६-१७½ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।

जैसे कीचड़में फँसे हुए हाथियोंको कोई रक्षक नहीं मिलता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक कोई रक्षक न पा सके ॥ १८½ ॥

ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥
भयात् पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।

जैसे बड़े-बड़े सर्प गरुड़के भयसे बिलोंमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार आपके वे सभी पराजित सैनिक द्रोणाचार्यके रथके पास इकट्ठे हो गये ॥ १९½ ॥

हत्वा पञ्चशतान् योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥
प्रायात् स शनकैर्वीरो धनंजयरथं प्रति ।

विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके वीर सात्यकि धीरे-धीरे धनंजयके रथकी ओर बढ़ने लगे ॥ २०½ ॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः ।

उस समय आपके पुत्र दुःशासनने वहाँसे जाते हुए नरश्रेष्ठ सात्यकिको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शीघ्र ही बींध डाला ॥ २१½ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।

तब महाधनुर्धर सात्यकिने भी सोनेके पुंख तथा गीधकी पाँखवाले पाँच तीखे और सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा दुःशासनको वेधकर बदला चुकाया ॥ २२½ ॥

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।

भरतवंशी महाराज ! इसके बाद दुःशासनने हँसते हुए-से ही वहाँ तीन बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके पुनः पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २३½ ॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।

तब शिनिपौत्र सात्यकि पाँच बाणोंसे आपके पुत्रको रणक्षेत्रमें घायल करके उसका धनुष काटकर मुसकराते हुए वहाँसे अर्जुनकी ओर चल दिये ॥ २४½ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥
सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।

तदनन्तर दुःशासनने वहाँसे जाते हुए वृष्णिवीर सात्यकिपर कुपित हो उन्हें मार डालनेकी इच्छासे सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी ॥ २५½ ॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥
चिच्छेद शतधा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।

राजन् ! आपके पुत्रकी उस भयंकर शक्तिको उस समय सात्यकिने कंकपत्रयुक्त तीखे बाणोंद्वारा सौ टुकड़ोंमें खण्डित कर दिया ॥ २६½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह ।

जनेश्वर ! तत्पश्चात् आपके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको अपने बाणोंद्वारा घायल करके सिंहके समान गर्जना की ॥ २७½ ॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

इससे महाभाग सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर आपके पुत्रको मोहित करते हुए झुकी हुई गाँठवाले अग्निकी लपटोंके समान प्रज्वलित तीन बाणोंद्वारा उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २८½ ॥

सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः ॥ २९ ॥
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ।

फिर लोहेके बने हुए तीखी धारवाले आठ बाणोंसे उसे पुनः घायल कर दिया । तब दुःशासनने भी बीस बाण मारकर सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९½ ॥

सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ॥ ३० ॥
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

महाराज ! इधर महाभाग सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले तीन बाणोंद्वारा दुःशासनकी छातीमें चोट पहुँचायी॥

ततोऽस्य वाहान् निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ॥ ३१ ॥
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।

इसके बाद महारथी युयुधानने अत्यन्त कुपित हो पैने बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला । फिर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सारथिको भी यमलोक पहुँचा दिया॥ ३१½॥

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥

ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित्।
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३३॥

तदनन्तर महान् अस्त्रवेत्ता सात्यकिने एक भल्लसे दुःशासनका धनुष, पाँचसे उसके दस्ताने तथा दो भल्लोंसे उसकी ध्वजा एवं रथशक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने तीखे बाणोंद्वारा उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला ॥ ३२-३३ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ॥ ३४ ॥

धनुष कट जानेपर रथ, घोड़े और सारथिसे हीन हुए दुःशासनको त्रिगर्त-सेनापतिने अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ३४ ॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत।
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ॥ ३५ ॥

भारत ! उस समय महाबाहु सात्यकिने लगभग दो घड़ीतक दुःशासनका पीछा किया; परंतु भीमसेनकी बात याद आ जानेसे उसका वध नहीं किया ॥ ३५ ॥

भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत।
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ॥ ३६ ॥

भरतनन्दन ! भीमसेनने सभामें सबके सामने ही युद्धस्थलमें आपके पुत्रोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥ ३६ ॥

ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो।
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनंजयः ॥ ३७ ॥

राजन् ! प्रभो ! इस प्रकार समराङ्गणमें दुःशासनपर विजय पाकर सात्यकि तत्काल ही उसी मार्गपर चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दुःशासनकी पराजयविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका घोर युद्ध तथा पाण्डवोंके साथ दुर्योधनका संग्राम

धृतराष्ट्र उवाच

किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन् नाप्यवारयन्॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! क्या मेरी उस सेनामें कोई भी महारथी वीर नहीं थे, जिन्होंने जाते हुए सात्यकिको न तो मारा और न उन्हें रोका ही ॥ १ ॥

एको हि समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंके साथ युद्धमें पराक्रम दिखाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रतुल्य बलशाली सत्यपराक्रमी सात्यकिने समराङ्गणमें अकेले ही महान् कर्म किया ॥ २ ॥

अथवा शून्यमासीत् तद् येन यातः स सात्यकिः।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥

अथवा जिस मार्गसे सात्यकि आगे बढ़े थे, वह वीरोंसे शून्य तो नहीं हो गया था या वहाँके अधिकांश सैनिक मारे तो नहीं गये थे ॥ ३ ॥

यत् कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि संजय ॥ ४ ॥

संजय ! तुम रणक्षेत्रमें वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके द्वारा किये हुए जिस कर्मकी प्रशंसा कर रहे हो, वह कर्म देवराज इन्द्र भी नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥

वृष्णि और अंधक वंशके प्रमुख वीर महामना सात्यकिका वह कर्म अचिन्त्य (सम्भावनासे परे) है। उसपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे सुनकर मेरा मन व्यथित हो उठा है ॥ ५ ॥

न सन्ति तस्मात् पुत्रा मे यथा संजय भाषसे।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नत् सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥

संजय ! जैसा कि तुम बता रहे हो, यदि एक ही सत्यपराक्रमी सात्यकिने मेरी बहुत-सी सेनाओंको धूलमें मिला दिया है, तब तो मुझे यह मान लेना चाहिये कि अब मेरे पुत्र जीवित नहीं हैं ॥ ६ ॥

कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम्।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ७ ॥

संजय ! जब बहुत-से महामनस्वी वीर युद्ध कर रहे थे, उस समय अकेले सात्यकि उन्हें पराजित करके कैसे आगे बढ़ गये, यह सब मुझे बताओ ॥ ७ ॥

संजय उवाच

राजन् सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान्।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे भरा हुआ आपका सेनासम्बन्धी उद्योग महान् था।

आपके सैनिकोंका समाहार प्रलयकालके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ८ ॥

आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।
नाभूल्लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥

मानद ! जब आपकी सेनाके भिन्न-भिन्न समूह सब ओरसे बुलाये गये, उस समय जो महान् समुदाय एकत्र हुआ, उसके समान इस संसारमें दूसरा कोई समूह नहीं था, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ९ ॥

तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥

वहाँ आये हुए देवता तथा चारण ऐसा कहते थे कि इस भूतलपर सारे समूहोंकी अन्तिम सीमा यही होगी ॥१०॥

न च वै तादृशो व्यूह आसीत् कश्चिद् विशाम्पते।
यादृग् जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! जयद्रथ-वधके समय द्रोणाचार्यने जैसा व्यूह बनाया था, वैसा दूसरा कोई भी व्यूह नहीं बन सका था ॥

चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।
रणेऽभवद् बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥

प्रचण्ड वायुके थपेड़े खाकर उद्वेलित हुए समुद्रोंके जलसे जैसा भैरव गर्जन सुनायी देता है, उस रणक्षेत्रमें एक दूसरे-पर धावा करनेवाले सैन्य-समूहोंका कोलाहल भी वैसा ही भयंकर था ॥ १२ ॥

पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन् नरोत्तम ।
तद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥

नरश्रेष्ठ ! आपकी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें सब ओरसे एकत्र हुए भूमिपालोंके सैकड़ों और हजारों दल थे ॥ १३ ॥

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्रासीत् सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥

वे सभी प्रमुख वीर रोषावेशसे परिपूर्ण हो समरभूमिमें सुदृढ़ पराक्रम कर दिखानेवाले थे । वहाँ उन सबका महान् एवं तुमुल कोलाहल रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ १४ ॥

(पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दास्तत्रासन् वै सहस्रशः ॥

एक दूसरेके प्रति गर्जना करनेवाले पाण्डवों तथा कौरवों-के सिंहनाद और किलकिलाहटके शब्द वहाँ सहस्रों बार प्रकट होते थे ॥

भेरीशब्दाश्च तुमुला बाणशब्दाश्च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां चैव नराणां शुश्रुवे स्वनः ॥)

भरतनन्दन ! वहाँ नगाड़ोंकी भयानक गड़गड़ाहट, बाणोंकी सनसनाहट तथा परस्पर प्रहार करनेवाले मनुष्योंकी गर्जनाके शब्द बड़े जोरसे सुनायी दे रहे थे ॥

अथाक्रन्दद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंसे पुकारकर कहा—॥ १५ ॥

आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६ ॥

'वीरो ! आओ, शत्रुओंपर प्रहार करो । बड़े वेगसे इनपर टूट पड़ो; क्योंकि वीर सात्यकि और अर्जुन शत्रुओं-की सेनामें घुस गये हैं ॥ १६ ॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥

'वे दोनों जयद्रथका वध करनेके लिये जैसे सुखपूर्वक आगे जा सकें, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो ।' इस तरह उन्होंने सारी सेनाओंको आदेश दिया ॥ १७ ॥

तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा ।

(इसके बाद उन्होंने फिर कहा—) 'सात्यकि और अर्जुन-के न होनेपर ये कौरव तो कृतार्थ हो जायँगे और हम पराजित होंगे । अतः तुम सब लोग एक साथ मिलकर महान् वेगका आश्रय ले तुरंत ही इस सैन्य-समुद्रमें हलचल मचा दो । ठीक वैसे ही जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है' ॥ १८½ ॥

भीमसेनेन ते राजन् पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥ १९ ॥
आजघ्नुः कौरवान् संख्ये त्यक्त्वासूनात्मनः प्रियान् ।

राजन् ! भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हुए पाण्डव सैनिकोंने अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़-कर युद्धस्थलमें कौरव-योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥

इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २० ॥
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम् ।

वे उत्तम तेजवाले नरेश स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते थे । अतः उन्हें युद्धमें शस्त्रोंद्वारा मृत्यु आनेकी अभिलाषा थी । इसीलिये उन्होंने मित्रका कार्य सिद्ध करनेके प्रयत्नमें अपने प्राणोंकी परवा नहीं की ॥ २०½ ॥

तथैव तावका राजन् प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ २१ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे ।

राजन् ! इसी प्रकार आपके सैनिक भी महान् सुयश प्राप्त करना चाहते थे । अतः वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले वहाँ युद्धके लिये ही डटे रहे ॥ २१½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥

जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम्।

जिस समय वह अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय सात्यकि आपकी सारी सेनाओंको जीतकर अर्जुनकी ओर बढ़ चले ॥ २२½ ॥

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः।

वहाँ वीरोंके सुवर्णमय कवचोंकी प्रभाएँ सूर्यकी किरणोंसे उद्भासित हो युद्धस्थलमें सब ओर खड़े हुए सैनिकोंके नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा कर रही थी ॥ २३½ ॥

तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद् बलम्।

महाराज ! इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए महामनस्वी पाण्डवोंकी उस विशाल वाहिनीमें राजा दुर्योधनने प्रवेश किया ॥ २४½ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
अभवत् सर्वभूतानामभावकरणो महान्।

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त प्राणियोंके लिये महान् संहारकारी सिद्ध हुआ ॥ २५½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥ २६ ॥
कच्चिद् दुर्योधनः सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! जब इस प्रकार सारी सेनाएँ भाग रही थीं, उस समय स्वयं भी वैसे संकटमें पड़े हुए दुर्योधनने क्या उस युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ? ॥ २६½ ॥

एकस्य च बहूनां च संनिपातो महाहवे ॥ २७ ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे।

उस महासमरमें बहुत-से योद्धाओंके साथ किसी एक वीरका विशेषतः राजा दुर्योधनका युद्ध करना तो मुझे विषम (अयोग्य) प्रतीत हो रहा है ॥ २७½ ॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥ २८ ॥
एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः।

अत्यन्त सुखमें पला हुआ, इस लोक तथा राजलक्ष्मीका स्वामी अकेला दुर्योधन बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध करके रणभूमिसे विमुख तो नहीं हुआ ? ॥ २८½ ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम।

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके एकमात्र पुत्र दुर्योधनका शत्रुपक्षके बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ जो आश्चर्यजनक संग्राम हुआ था, उसे मैं बताता हूँ, सुनिये॥२९½॥

दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् प्रतिलोडिता।

दुर्योधनने समराङ्गणमें पाण्डवसेनाको सब ओरसे उसी प्रकार मथ डाला, जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए किसी पोखरेको ॥ ३०½ ॥

ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन्।

नरेश्वर ! आपके पुत्रद्वारा आपकी सेनाको आगे बढ़नेके लिये प्रेरित हुई देख भीमसेनको अगुआ बनाकर पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधन आक्रमण कर दिया ॥ ३१½ ॥

स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः।

तब दुर्योधनने पाण्डुपुत्र भीमसेनको दस बाणोंसे, वीर नकुल और सहदेवको तीन-तीन बाणोंसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः।

तत्पश्चात् उसने राजा विराट और द्रुपदको छः-छः बाणोंसे बींध डाला, फिर शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको बीस और द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया ॥३३½॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च रथान् रणे ॥३४॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः।

तदनन्तर उस रणक्षेत्रमें उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा दूसरे-दूसरे सैकड़ों योद्धाओं, हाथियों और रथोंको उसी प्रकार काट डाला, जैसे क्रोधमें भरा हुआ यमराज समस्त प्राणियोंका विनाश करता है ॥ ३४½ ॥

न संदधन् विमुञ्चन् वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥ ३५ ॥
अदृश्यत रिपून् निघ्नञ्छिक्षयास्त्रबलेन च।

दुर्योधनने अपने धनुषको खींचकर मण्डलाकार बना दिया था। वह अपनी शिक्षा और अस्त्र-बलसे इतनी शीघ्रताके साथ बाणोंको धनुषपर रखता, चलाता तथा शत्रुओंका वध करता था कि कोई उसके इस कार्यको देख नहीं पाता था ॥ ३५½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् हेमपृष्ठं महद् धनुः ॥ ३६ ॥
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः।

शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठवाले विशाल धनुषको सब लोग समराङ्गणमें सदा मण्डलाकार हुआ ही देखते थे ॥ ३६½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद् धनुः ॥३७॥
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे।

कुरुनन्दन ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर

युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले आपके पुत्रके धनुषको काट दिया ॥ ३७½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥ ३८ ॥
वर्म चाशु समासाद्य ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।

और उसे विधिपूर्वक चलाये हुए उत्तम दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी । वे बाण तुरंत ही उसके कवचमें जा लगे और उसे छेदकर धरतीमें समा गये ॥ ३८½ ॥

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।

इससे कुन्तीकुमारोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध होनेपर सम्पूर्ण देवताओं और महर्षियोंने इन्द्रको सब ओरसे घेर लिया था, उसी प्रकार पाण्डव भी युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३९½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् आपके प्रतापी पुत्रने दूसरा धनुष लेकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१ ॥
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।

उस महासमरमें आपके पुत्रको आते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाञ्चाल सैनिक संघबद्ध हो उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४१½ ॥

तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवम् ॥ ४२ ॥
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा ।

उस समय युद्धमें युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छावाले द्रोणाचार्यने उन सब योद्धाओंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उड़ाये गये जलवर्षी मेघोंको पर्वत रोक देता है ॥ ४२½ ॥

तत्र राजन् महानासीत् संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥
पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।
रुद्रस्याक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! महाबाहो ! फिर तो वहाँ युद्धस्थलमें पाण्डवों तथा आपके सैनिकोंमें महान् रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा । जो रुद्रकी क्रीडाभूमि (श्मशानके सदृश) सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये संहारका स्थान बन गया था ॥ ४३-४४ ॥

ततः शब्दो महानासीत् पुनर्येन धनंजयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥

प्रभो ! तदनन्तर जिधर अर्जुन गये थे, उसी ओर बड़े जोरका कोलाहल होने लगा, जो सम्पूर्ण शब्दोंसे ऊपर उठकर सुननेवालोंके रोंगटे खड़े किये देता था ॥ ४५ ॥

अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥ ४६ ॥

महाबाहो ! उस महासमरमें कौरवी सेनाके भीतर आपके धनुर्धरोंकी तथा अर्जुन और सात्यकिकी भीषण गर्जना सुनायी देती थी ॥ ४६ ॥

द्रोणस्यापि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥

पृथ्वीपते ! उस महायुद्धमें व्यूहके द्वारपर शत्रुओंके साथ जूझते हुए द्रोणाचार्यका भी सिंहनाद प्रकट हो रहा था । इस प्रकार अर्जुन, द्रोणाचार्य तथा महारथी सात्यकिके कुपित होनेपर युद्धभूमिमें यह भयंकर विनाशका कार्य सम्पन्न हुआ ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दोनों सेनाओंका घमासान युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ४९ श्लोक हैं)

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासन्धपुत्र सहदेव तथा धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध और चेकितानकी पराजय

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अपराह्णकालमें सोमकोंके साथ द्रोणाचार्यका पुनः महान् संग्राम छिड़ गया, जिसमें मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर सिंहनाद हो रहा था ॥ १ ॥

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत् पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥

नरवीर द्रोण लाल घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़ हो चित्तको एकाग्र करके मध्यम वेगका आश्रय ले समरभूमिमें पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ २ ॥

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥
(जघान सोमकान् राजन् सृञ्जयान् केकयानपि ।)

राजन्! आपके प्रिय और हित साधनमें लगे हुए महाधनुर्धर महाबली उत्तम कलशजन्मा द्रोणाचार्यने अपने विचित्र पंखोंवाले पैने बाणोंद्वारा सोमकों, सृंजयों तथा केकयोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३ ॥

वरान् वरान् हि योधानां विचिन्वन्निव भारत।
आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥

भरतवंशी नरेश! प्रतापी द्रोणाचार्य मानो उस युद्धस्थलमें प्रधान-प्रधान योद्धाओंको चुन रहे हों, इस प्रकार उनके साथ खेल-सा कर रहे थे ॥ ४ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥

नरेश्वर! उस समय रणकर्कश केकय महारथी बृहत्क्षत्र, जो अपने पाँचों भाइयोंमें सबसे बड़े थे, द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत्।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन् गन्धमादने ॥ ६ ॥

उन्होंने गन्धमादन पर्वतपर पानी बरसानेवाले महामेघके समान पैने बाणोंकी वर्षा करके आचार्य द्रोणको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ ६ ॥

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च ॥ ७ ॥

महाराज! तब द्रोणने अत्यन्त कुपित हो सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखवाले पंद्रह बाणोंका बृहत्क्षत्रपर प्रहार किया ॥ ७ ॥

तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसंनिभान्।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥

द्रोणाचार्यके छोड़े हुए रोषभरे विषधर सर्पोंके समान उन भयंकर बाणोंमेंसे प्रत्येकको बृहत्क्षत्रने युद्धमें पाँच-पाँच बाण मारकर प्रसन्नतापूर्वक काट डाला ॥ ८ ॥

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ संनतपर्वणः ॥ ९ ॥

उनकी इस फुर्तीको देखकर विप्रवर द्रोणने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले आठ बाणोंका प्रहार किया ॥ ९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान्।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १० ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको शीघ्र ही अपने ऊपर आते देख बृहत्क्षत्रने उतने ही तीखे बाणोंद्वारा उन्हें युद्धस्थलमें काट गिराया ॥ १० ॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः।
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन्।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १२ ॥

महाराज! इससे आपकी सेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ। बृहत्क्षत्रद्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर उनकी अपेक्षा अपनी विशेषता प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें परम दुर्जय दिव्य ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ११-१२ ॥

कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १३ ॥

राजेन्द्र! युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको देखकर केकयनरेशने ब्रह्मास्त्रद्वारा ही उसे शान्त कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १४ ॥

भरतनन्दन! ब्रह्मास्त्रका निवारण हो जानेपर बृहत्क्षत्रने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखोंसे युक्त साठ बाणोंद्वारा ब्राह्मण द्रोणाचार्यको वेध दिया ॥ १४ ॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत्।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद् धरणीतलम् ॥ १५ ॥

तब मनुष्योंमें श्रेष्ठ द्रोणने उनपर नाराच चलाया। वह नाराच बृहत्क्षत्रका कवच विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ १५ ॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम।
तथात्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे काला साँप बाँबीमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण युद्धस्थलमें केकयराजकुमार बृहत्क्षत्रको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥

महाराज! द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेपर केकयराजकुमारको बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी दोनों सुन्दर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे ॥ १७ ॥

द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
सारथिं चास्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ १८ ॥

उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त सत्तर बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींध डाला और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष।
असृजद् विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥

माननीय नरेश! जब बृहत्क्षत्रने बहुसंख्यक बाणोंसे द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया, तब उन्होंने केकयनरेशके रथपर तीखे सायकोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १९ ॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम्।

अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्त्रिभिः ॥ २० ॥

द्रोणाचार्यने महारथी बृहत्क्षत्रको व्याकुल करके अपने चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ २० ॥

सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत्।
द्वाभ्यां ध्वजं च च्छत्रं च च्छित्वा भूमावपातयत्॥२१॥

फिर एक बाणसे मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया और दो बाणोंसे उनके ध्वज और छत्रको भी पृथ्वीपर काट गिराया ॥ २१ ॥

ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः।
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए नाराचसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणने बृहत्क्षत्रकी छाती छेद डाली। वक्षःस्थल विदीर्ण होनेके कारण बृहत्क्षत्र धरतीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

राजन्! केकय महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालपुत्र धृष्टकेतुने अत्यन्त कुपित हो अपने सारथिसे इस प्रकार कहा— ॥ २३ ॥

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः।
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानां च वाहिनीम्॥२४॥

'सारथे! जहाँ ये द्रोणाचार्य कवच धारण किये खड़े हैं और समस्त केकयों तथा पाञ्चाल-सेनाका संहार कर रहे हैं, वहीं चलो' ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम्।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५ ॥

उनकी वह बात सुनकर सारथिने काम्बोजदेशीय (काबुली) वेगशाली घोड़ोंद्वारा रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टकेतुको द्रोणाचार्यके निकट पहुँचा दिया ॥ २५ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः।
वधायाभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥

अत्यन्त बलसम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे फतिंगा आगपर टूट पड़ता है ॥ २६ ॥

सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम्।
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥

उसने घोड़े, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको उस समय साठ बाणोंसे बेध दिया। फिर सोते हुए शेरको पीड़ित करते हुए-से उसने अन्य तीखे बाणोंद्वारा भी आचार्यको घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥

तब द्रोणाचार्यने गीधकी पाँखवाले तीखे क्षुरप्रद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले बलवान् धृष्टकेतुके धनुषको बीचसे ही काट दिया ॥ २८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २९ ॥

यह देख महारथी शिशुपालकुमारने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कङ्क और मोरकी पाँखोंसे युक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यने चार बाणोंसे धृष्टकेतुके चारों घोड़ोंको मारकर उनके सारथिके भी मस्तकको हँसते हुए-से काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्।
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥ ३१ ॥
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम्।

तत्पश्चात् उन्होंने धृष्टकेतुको पचीस बाण मारे। उस समय धृष्टकेतुने शीघ्रतापूर्वक रथसे कूदकर गदा हाथमें ले ली और रोषमें भरी हुई सर्पिणीके समान उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ ३१½ ॥

तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम्।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥ ३३ ॥

वह गदा लोहेकी बनी हुई और भारी थी। उसमें सोने जड़े हुए थे, उसे उठी हुई कालरात्रिके समान अपने ऊपर गिरती देख द्रोणाचार्यने कई हजार पैने बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ३२-३३ ॥

सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥

माननीय कौरवनरेश! द्रोणाचार्यद्वारा अनेक बाणोंसे छिन्न-भिन्न की हुई वह गदा भूतलको निनादित करती हुई धमसे गिर पड़ी ॥ ३४ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः।
तोमरं व्यसृजद् वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम्॥३५॥

अपनी गदाको नष्ट हुई देख अमर्षमें भरे हुए वीर धृष्टकेतुने द्रोणाचार्यपर तोमर तथा स्वर्णभूषित तेजस्विनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥

तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥

द्रोणाचार्यने तोमरको पाँच बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके पाँच बाणोंद्वारा धृष्टकेतुकी शक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

वे दोनों अस्त्र गरुड़के द्वारा खण्डित किये हुए दो सर्पोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् अपने वधकी इच्छा रखनेवाले धृष्टकेतुके वधके लिये प्रतापी द्रोणाचार्यने समरभूमिमें उसके ऊपर एक बाणका प्रहार किया ॥ ३७ ॥

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः ।
अभ्यगाद् धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥

जैसे हंस कमलवनमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह बाण अमित तेजस्वी धृष्टकेतुके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ ३८ ॥

पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥ ३९ ॥

जैसे भूखा हुआ नीलकण्ठ छोटे फतिंगेको खा जाता है, उसी प्रकार शूरवीर द्रोणाचार्यने उस महासमरमें धृष्टकेतुको अपने बाणोंका ग्रास बना लिया ॥ ३९ ॥

निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत् ।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥

चेदिराजके मारे जानेपर उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता उसका पुत्र अमर्षके वशीभूत हो पिताके स्थानपर आकर डट गया ॥

तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥

परंतु हँसते हुए द्रोणाचार्यने उसे भी अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार यमलोक पहुँचा दिया, जैसे बलवान् महाव्याघ्र विशाल वनमें किसी हिरनके बच्चेको दबोच लेता है ॥ ४१ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासंधसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उन पाण्डव योद्धाओंके इस प्रकार नष्ट होनेपर जरासंधके वीर पुत्र सहदेवने स्वयं ही द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ४२ ॥

स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे ।
अदृश्यमकरोत् तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥

जैसे बादल आकाशमें सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार महाबाहु सहदेवने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी धाराओंसे द्रोणाचार्यको तुरंत ही अदृश्य कर दिया ॥ ४३ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥

उसकी वह फुर्ती देखकर क्षत्रियोंका संहार करनेवाले द्रोणाचार्यने शीघ्र ही उसपर सैकड़ों और सहस्रों बाणोंकी बर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४४ ॥

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासंधिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ जरासंधकुमारको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित करके उसे शीघ्र ही कालके गालमें डाल दिया ॥ ४५ ॥

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः ।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथान्तकः ॥ ४६ ॥

जैसे काल आनेपर यमराज समस्त प्राणियोंको ग्रस लेता है, उसी प्रकार कालके समान द्रोणाचार्यने जो जो वीर उनके सामने पहुँचा, उसे-उसे मौतके हवाले कर दिया ॥ ४६ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् समावृणोत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें अपना नाम सुनाकर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पाण्डवसैनिकोंको ढक दिया ॥

ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनास्ताः शिलाशिताः ।
नरान् नागान् हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥

द्रोणाचार्यके चलाये हुए वे बाण सानपर चढ़ाकर तेज किये गये थे। उनपर आचार्यके नाम खुदे हुए थे। उन्होंने समरभूमिमें सैकड़ों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥

जैसे सर्दीसे पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हैं और जैसे देवराज इन्द्रकी मार खाकर बड़े-बड़े असुर काँपने लगते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर पाञ्चाल सैनिक काँप उठे ॥ ४९ ॥

ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर तो द्रोणाचार्यके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेनाओंमें घोर आर्तनाद होने लगा ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय ऊपरसे तो सूर्य तपा रहे थे और रणभूमिमें द्रोणाचार्यके सायकोंकी मार पड़ रही थी। उस अवस्थामें पाञ्चाल वीर मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो उठे ॥ ५१ ॥

मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥

उस युद्धस्थलमें भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यके बाण-समूहोंसे आहत हो पाञ्चाल महारथी मूर्छित हो रहे थे। उनकी जाँघें अकड़ गयी थीं ॥ ५२ ॥

चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥

महाराज ! उस समय चेदि, सृंजय, काशी और कोसल प्रदेशोंके सैनिक हर्ष और उत्साहमें भरकर युद्धकी अभिलाषासे द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
घ्नत द्रोणं घ्नत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥

'द्रोणाचार्यको मार डालो, द्रोणाचार्यको मार डालो' परस्पर ऐसा कहते हुए चेदि, पाञ्चाल और सृंजय वीरोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ५४ ॥

यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥

वे पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें महातेजस्वी आचार्य द्रोणको यमराजके घर भेज देनेकी इच्छासे अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने लगे ॥ ५५ ॥

यतमानांस्तु तान् वीरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार प्रयत्नमें लगे हुए उन वीरोंको विशेषतः चेदि देशके प्रमुख योद्धाओंको द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया ॥ ५६ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥

चेदि देशके प्रधान वीर जब इस प्रकार नष्ट होने लगे, तब द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित हुए पाञ्चाल योद्धा थर-थर काँपने लगे ॥ ५७ ॥

प्राक्रोशन् भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय भरतनन्दन ! वे द्रोणके वैसे पराक्रमको देखकर भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नको पुकारने लगे ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥

और परस्पर कहने लगे—'इस ब्राह्मणने निश्चय ही कोई बड़ी भारी दुष्कर तपस्या की है, तभी तो यह युद्धमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंको दग्ध कर रहा है ॥ ५९ ॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ॥ ६० ॥

'युद्ध करना तो क्षत्रियका धर्म है । तप करना ही ब्राह्मणका उत्तम धर्म माना गया है । यह तपस्वी और अस्त्रविद्याका विद्वान् ब्राह्मण अपने दृष्टिपातमात्रसे दग्ध कर सकता है' ॥

द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥

भारत ! उस युद्धमें बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि वीर अस्त्ररूपी दाहक स्पर्शवाले द्रोणाचार्यरूपी भयंकर एवं दुस्तर अग्निमें प्रविष्ट होकर भस्म हो गये ॥ ६१ ॥

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६२ ॥

पाञ्चाल सैनिक कहने लगे—'महातेजस्वी द्रोण अपने बल, उत्साह और धैर्यके अनुसार समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए हमारी सेनाओंका संहार कर रहे हैं' ॥ ६२ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।

उनकी यह बात सुनकर क्षत्रधर्मा युद्धके लिये द्रोणाचार्यके सामने आकर खड़ा हो गया । उस महाबली वीरने अर्धचन्द्राकार बाण मारकर क्रोधसे उद्विग्न मनवाले द्रोणाचार्यके धनुष और बाणको काट दिया ॥ ६३½ ॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६६ ॥

इससे क्षत्रियोंका मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और अत्यन्त वेगशाली तथा प्रकाशमान दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन्होंने एक तीखा बाण अपने धनुषपर रक्खा, जो शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था । बलवान् आचार्यने कानतक धनुषको खींचकर उस बाणको छोड़ दिया । वह बाण क्षत्रधर्माका वध करके धरतीमें समा गया ॥ ६४—६६ ॥

स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७ ॥

क्षत्रधर्मा हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । इस प्रकार धृष्टद्युम्नकुमारके मारे जानेपर सारी सेनाएँ भयसे काँपने लगीं ॥ ६७ ॥

अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः ।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविद्ध्यत् स्तनान्तरे ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।

तदनन्तर महाबली चेकितानने द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की । उन्होंने दस बाणोंसे द्रोणको घायल करके उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी । साथ ही चार बाणोंसे उनके सारथिको और चार ही बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी बींध डाला ॥ ६८½ ॥

तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत् त्रिभिः ।

तब आचार्यने उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें कुल तीन बाण मारे। फिर सात सायकोंद्वारा उनकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े करके तीन बाणोंसे सारथिका वध कर दिया ६९½

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥ ७० ॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।

चेकितानके सारथिके मारे जानेपर वे घोड़े उनका रथ लेकर भाग चले। आर्य ! द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें उनके शरीरोंको बाणोंसे भर दिया था ॥ ७०½ ॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥
तान् समेतान् रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन् द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥

जिसके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे,चेकितानके उस रथको देखकर तथा रणक्षेत्रमें एकत्र हुए चेदि, पाञ्चाल तथा सृंजय वीरोंपर दृष्टिपात करके द्रोणाचार्यने उन सबको चारों ओर भगा दिया। आर्य ! उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७१-७२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥

जिनके कानतकके बाल पक गये थे, शरीरकी कान्ति श्याम थी तथा जो पचासी (या चार सौ) वर्षोंकी अवस्थाके बूढ़े थे, वे द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें सोलह वर्षके नवजवानकी भाँति विचर रहे थे ॥ ७३ ॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४ ॥

महाराज ! रणभूमिमें निर्भय-से विचरते हुए शत्रुसूदन द्रोणको शत्रुओंने वज्रधारी इन्द्र समझा ॥ ७४ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान् नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥७५॥

नरेश्वर ! उस समय महाबाहु बुद्धिमान् राजा द्रुपदने कहा—'जैसे बाघ छोटे मृगको मारता है, उसी प्रकार यह व्याध-तुल्य ब्राह्मण क्षत्रियोंका संहार कर रहा है ॥ ७५ ॥

कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद् विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥

'दुर्बुद्धि पापी दुर्योधन अत्यन्त कष्टप्रद लोकोंमें जायगा, जिसके लोभसे इस समराङ्गणमें बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि वीर मारे गये हैं ॥ ७६ ॥

शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥

'सैकड़ों योद्धा कटकर गाय-बैलोंके समान धरतीपर सो रहे हैं। इन सबके शरीर खूनसे लथपथ हो गये हैं और ये कुत्तों तथा सियारोंके भोजन बन गये हैं' ॥ ७७ ॥

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर एक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा द्रुपदने रणक्षेत्रमें कुन्तीके पुत्रोंको आगे करके तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा बोल दिया ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणपराक्रमविषयक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७८½ श्लोक हैं)

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका चिन्तित होकर भीमसेनको अर्जुन और सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजना

संजय उवाच

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब द्रोणाचार्य पाण्डवोंके व्यूहोंको इस प्रकार जहाँ-तहाँसे रौंदने लगे, तब पार्थ, पाञ्चाल तथा सोमक योद्धा उनसे बहुत दूर हट गये ॥ १ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! वह रोमाञ्चकारी भयंकर संग्राम प्रलयकालमें होनेवाले जगत्के भीषण संहार-सा उपस्थित हुआ था ॥२॥

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥
नापश्यच्छरणं किञ्चिद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद् भविष्यति ॥ ४ ॥

जब द्रोणाचार्य युद्धमें पराक्रम प्रकट करके बारंबार गर्जना कर रहे थे, पाञ्चाल वीरोंका विनाश हो रहा था और पाण्डव सैनिक मारे जा रहे थे, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरको कोई भी अपना आश्रय या रक्षक नहीं दिखायी दिया। राजेन्द्र ! वे सोचने लगे कि यह कैसे होगा ? ॥ ३-४ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने सव्यसाची अर्जुनको देखनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी; परंतु उन्हें कहीं भी अर्जुन और सात्यकि नहीं दिखायी दिये ॥ ५ ॥

सोऽपश्यन् नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त ध्वजवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखकर और उनके गाण्डीवका गम्भीर घोष न सुनकर उनकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं ॥ ६ ॥

अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

वृष्णिवंशके प्रमुख महारथी सात्यकिको भी न देखनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिरका एक-एक अंग चिन्ताकी आगसे संतप्त हो उठा ॥ ७ ॥

नाध्यगच्छत् तदा शान्तिं तावपश्यन् नरोत्तमौ ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद् धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥

महामनस्वी धर्मराज युधिष्ठिर लोकनिन्दाके डरसे बहुत डरते थे । अतः नरश्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकिको न देखनेसे उस समय उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली ॥ ८ ॥

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९ ॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः ।
तदिदं ह्येकमेवासीद् द्विधा जातं ममाद्य वै ॥ १० ॥

महाबाहु युधिष्ठिर सात्यकिके रथके विषयमें मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो ! मैंने ही रणक्षेत्रमें मित्रोंको अभय देनेवाले सत्यवादी शिनिपौत्र सात्यकिको अर्जुनके मार्गपर जानेके लिये भेजा था । इसलिये यह मेरा हृदय जो पहले एक हीकी चिन्तामें निमग्न था, अब दो व्यक्तियोंके लिये चिन्तित होकर दो भागोंमें बँट गया है ९-१०

सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनंजयः ।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ।

'इस समय सात्यकिका भी पता लगाना चाहिये और पाण्डुपुत्र अर्जुनका भी । मैंने पाण्डुपुत्र अर्जुनके पीछे तो सात्यकिको भेज दिया । अब सात्यकिके पीछे किसको युद्धभूमिमें भेजूँगा ? ॥ ११½ ॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।

'यदि मैं युयुधानकी खोज न कराकर प्रयत्नपूर्वक केवल अपने भाई अर्जुनका ही अन्वेषण करूँगा तो संसार मेरी निन्दा करेगा ॥ १२½ ॥

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।

'सब लोग यही कहेंगे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने भाईकी खोज करके वृष्णिवंशी वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिकी उपेक्षा कर रहे हैं ॥ १३½ ॥

लोकापवादभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।

'मुझे लोकनिन्दासे बड़ा भय मालूम होता है । अतः कुन्तीनन्दन भीमसेनको मैं महामनस्वी सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजूँगा ॥ १४½ ॥

यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुनपर जैसा मेरा प्रेम है, वैसा ही रणदुर्मद वृष्णिवंशी वीर सात्यकिपर भी है । मैंने शिनिवंशका आनन्द बढ़ानेवाले सात्यकिको महान् कार्यभार सौंप रक्खा था १५-१६

स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥

'उन महाबली सात्यकिने मित्रके अनुरोधसे और अपने लिये गौरवकी बात समझकर समुद्रमें मगरकी भाँति कौरवी सेनामें प्रवेश किया था ॥ १७ ॥

असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८ ॥

'बुद्धिमान् वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके साथ परस्पर युद्ध करनेवाले उन शूरवीरोंका वह महान् कोलाहल सुनायी पड़ता है, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं ॥ १८ ॥

प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।

'इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसपर मैंने अनेक प्रकारसे प्रबल विचार कर लिया है । जहाँ महारथी अर्जुन और सात्यकि गये हैं, वहीं धनुर्धर वीर पाण्डुनन्दन भीमसेनको भी जाना चाहिये-यही मुझे ठीक जँचता है ॥ १९½ ॥

न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन ॥ २० ॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥

'इस भूतलपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो भीमसेनके लिये असह्य हो । ये अपने बाहुबलका आश्रय ले रणक्षेत्रमें प्रयत्नशील होकर भूमण्डलके समस्त धनुर्धरोंका अनायास ही सामना करनेमें समर्थ हैं ॥ २०-२१ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२ ॥

'इस महामनस्वी वीरके बाहुबलका आश्रय लेकर हम सब भाई वनवाससे सकुशल लौटे हैं और युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुए हैं ॥ २२ ॥

इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।

सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥ २३ ॥

'यहाँसे सात्यकिके पथपर पाण्डुपुत्र भीमसेनके जानेपर युद्धस्थलमें डटे हुए सात्यकि और अर्जुन सनाथ हो जायँगे ॥

कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥

'निश्चय ही सात्यकि और अर्जुन रणक्षेत्रमें शोकके योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे दोनों स्वयं तो शस्त्रविद्यामें कुशल हैं ही, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा भी पूर्णरूपसे सुरक्षित हैं ॥२४॥

अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद् भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥२५॥

'तथापि मुझे अपने मानसिक दुःखको निवारण करनेके लिये ऐसी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिये । इसलिये मैं भीमसेनको सात्यकिके मार्गका अनुगामी अवश्य बनाऊँगा ॥२५॥

ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
यन्तारमब्रवीद् राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।

'ऐसा करके ही मैं समझूँगा कि मैंने सात्यकिके प्रति समुचित कर्तव्यका पालन किया है ।' मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने सारथिसे कहा-'मुझे भीमके पास ले चलो' ॥ २६½ ॥

धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥ २७ ॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।

धर्मराजकी बात सुनकर अश्वसंचालनमें कुशल सारथिने उनके सुवर्णभूषित रथको भीमसेनके निकट पहुँचा दिया ॥ २७½ ॥

भीमसेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८ ॥
कश्मलं प्राविशद् राजा बहु तत्र समादिशन् ।

भीमसेनके पास पहुँचकर राजा युधिष्ठिर समयोचित कर्तव्यका चिन्तन करने लगे और वहाँ बहुत कुछ कहते हुए वे मूर्छित-से हो गये ॥ २८½ ॥

स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥ २९ ॥
अब्रवीद् वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

राजन् ! इस प्रकार मोहाविष्ट हुए कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेनको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा-२९½

यः सदेवान् सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥३०॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ।

'भीमसेन ! जिन्होंने एकमात्र रथकी सहायतासे देवताओं-सहित गन्धर्वों और दैत्योंपर भी विजय पायी थी, उन्हीं तुम्हारे छोटे भाई अर्जुनका आज मुझे कोई चिह्न नहीं दिखायी देता है' ॥ ३०½ ॥

ततोऽब्रवीद् धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।

तब वैसी अवस्थामें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरसे भीमसेनने कहा-'राजन् ! आपकी ऐसी घबराहट तो पहले मैंने न कभी देखी थी और न सुनी ही थी ॥ ३१½ ॥

पुरातिदुःखदीर्णानां भवान् गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ।

'पहले जब कभी हमलोग अत्यन्त दुःखसे अधीर हो उठते थे, तब आप ही हमें सहारा दिया करते थे । राजेन्द्र ! उठिये, उठिये, आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ ३२½ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥ ३३ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।

'मानद ! इस संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मेरे लिये असाध्य हो अथवा जिसे मैं आपकी आज्ञा मिलनेपर न करूँ । कुरुश्रेष्ठ ! आज्ञा दीजिये । अपने मनको शोकमें न डालिये' ॥ ३३½ ॥

तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।

तब राजा युधिष्ठिर म्लानमुख हो काले सर्पके समान लंबी साँसें खींचते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर भीमसेनसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनंजयः ॥ ३६ ॥

'भैया ! इस समय पाञ्चजन्य शङ्खकी जैसी ध्वनि सुनायी देती है और यशस्वी वासुदेवने क्रोधमें भरकर उस शङ्खको जिस तरह बजाया है, उससे जान पड़ता है, आज तुम्हारा भाई अर्जुन निश्चय ही मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥

तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद् भारतीं चमूम् ॥ ३८ ॥

'उसके मारे जानेपर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही युद्ध कर रहे हैं । जिस शक्तिशाली वीरके पराक्रमका भरोसा करके हम समस्त पाण्डव जी रहे हैं, भयके अवसरोंपर हम उसी प्रकार जिसका आश्रय लेते हैं, जैसे देवता देवराज इन्द्रका, वही शूरवीर अर्जुन सिंधुराज जयद्रथको अपने वशमें करनेके लिये कौरव-सेनामें घुसा है ॥ ३७-३८ ॥

तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥

'भीमसेन ! हमें उसके जानेका ही पता है, पुनः लौटनेका नहीं । अर्जुनकी अङ्गकान्ति श्याम है । वह नवयुवक, निद्रापर विजय पानेवाला, देखनेमें सुन्दर और महारथी है ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥ ४० ॥

'उसकी छाती चौड़ी और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं । उसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान है, आँखें चकोरके नेत्रोंके समान विशाल हैं और उसके मुख एवं ओष्ठ लाल-लाल हैं । वह शत्रुओंका भय बढ़ाता है ॥ ४० ॥

(मम प्रियहितार्थं च शक्रलोकादिहागतः ।
वृद्धोपसेवी धृतिमान् कृतज्ञः सत्यसङ्गरः ॥
प्रविष्टो महतीं सेनामपर्यन्तां धनंजयः ।
प्रविष्टे च चमूं घोरामर्जुने शत्रुनाशने ॥
प्रेषितः सात्वतो वीरः फाल्गुनस्य पदानुगः ।
तस्याभिगमनं जाने भीम नावर्तनं पुनः ॥)

'अर्जुन मेरे प्रिय और हितके लिये इन्द्रलोकसे यहाँ आया है । वह वृद्धजनोंका सेवक, धैर्यवन्, कृतज्ञ तथा सत्यप्रतिज्ञ है । वह धनंजय शत्रुओंकी विशाल एवं अपार सेनामें घुसा है । शत्रुनाशन अर्जुनके उस भयंकर सेनामें प्रवेश करनेपर मैंने सात्वतवीर सात्यकिको उसके चरणोंका अनुगामी बनाकर भेजा है । भीमसेन ! सात्यकिके भी मुझे जानेका ही पता है, लौटनेका नहीं ॥

तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिंदम ।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥
वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥४२॥

'शत्रुदमन महाबाहु भीम ! तुम्हारा कल्याण हो । यही मेरे शोकका कारण है । अर्जुन और सात्यकिके लिये ही मैं दुखी हो रहा हूँ । जैसे बारंबार घी डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मेरी शोकाग्नि बढ़ती जाती है । मैं अर्जुनका कोई चिह्न नहीं देखता, इसीसे मुझपर मोह छा रहा है ॥ ४१-४२ ॥

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३ ॥

'उन सात्वतवंशी पुरुषसिंह महारथी सात्यकिका भी पता लगाओ । वे तुम्हारे छोटे भाई महारथी अर्जुनके पीछे गये हैं ॥

तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन् हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥

'उन महाबाहु सात्यकिको न देखनेके कारण भी मैं भारी घबराहटमें पड़ गया हूँ । पार्थके मारे जानेपर अवश्य ही सात्यकि भी आगे होकर युद्ध कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

सहायो नास्य वै कश्चित् तेन विन्दामि कश्मलम् ।
तस्मिन् कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥

'उनका कोई दूसरा सहायक नहीं है । इससे मुझे बड़ी घबराहट हो रही है । निश्चय ही उनके मारे जानेपर युद्ध-कलाकोविद भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनंजयः ॥ ४६ ॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः ।
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ॥ ४८ ॥

'परंतप ! अर्जुन और सात्यकिके जीवनके विषयमें जो मेरे मनमें संशय उत्पन्न हो गया है, वह दूर नहीं हो रहा है । अतः कुन्तीनन्दन ! तुम वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन और महापराक्रमी सात्यकि गये हैं । धर्मज्ञ ! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ । यदि तुम मेरी आज्ञाका पालन करना उचित मानते हो तो ऐसा ही करो । तुम्हें अर्जुनकी उतनी खोज नहीं करनी है, जितनी सात्यकिकी । पार्थ ! सात्यकिने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे सव्यसाची अर्जुनके उस दुर्गम एवं भयंकर पथका अनुसरण किया है, जो अजितात्मा पुरुषोंके लिये अगम्य है ॥ ४६-४८ ॥

दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

'पाण्डुनन्दन ! जब तुम भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा सात्वतवंशी वीर सात्यकिको सकुशल देखना, तब उच्च स्वरसे सिंहनाद करके मुझे इसकी सूचना दे देना' ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरकी चिन्ताविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ५२ श्लोक हैं)

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका कौरवसेनामें प्रवेश, द्रोणाचार्यके सारथिसहित रथका चूर्ण कर देना तथा उनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वध, अवशिष्ट पुत्रोंसहित सेनाका पलायन

भीमसेन उवाच

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद् यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥

भीमसेनने कहा—महाराज ! जो रथ पहले ब्रह्मा,

महादेव, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका है, उसीपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धके लिये गये हैं । अतः उनके लिये तनिक भी भय नहीं है ॥ १ ॥

आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः ।
समेत्य तान् नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ २ ॥

तथापि आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके यह मैं जा रहा हूँ । आप शोक या चिन्ता न करें । मैं उन पुरुषसिंहोंसे मिलकर आपको सूचना दूँगा ॥ २ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम् ।
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर बलवान् भीमसेन राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्न तथा अन्य सुहृदोंकी देख-रेखमें सौंपकर वहाँसे चल दिये ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते ।

जाते समय महाबली भीमसेनने धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो ! तुम्हें तो यह मालूम ही है कि महारथी द्रोण सारे उपाय करके किस प्रकार धर्मराजको पकड़नेपर तुले हुए हैं ॥ ४½ ॥

न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः ।

'अतः द्रुपदनन्दन ! मेरे लिये वहाँ जानेकी वैसी आवश्यकता नहीं है, जैसी यहाँ रहकर राजाकी रक्षा करनेकी है । यही हमलोगोंके लिये सबसे महान् कार्य है ॥५½॥

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥ ६ ॥
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः ।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया ॥ ७ ॥

'परंतु जब कुन्तीनन्दन महाराजने इस प्रकार मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी है, तब मैं उन्हें कोरा जवाब नहीं दे सकता—उनकी आज्ञा टाल नहीं सकता । अतः जहाँ मरणासन्न जयद्रथ खड़ा है, वहीं मैं जाऊँगा । मुझे बिना किसी संशयके धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन रहना चाहिये॥

यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः ।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ।

'अतः अब मैं भाई अर्जुन तथा बुद्धिमान् सात्यकिके पथका अनुसरण करूँगा । अब तुम सावधान हो प्रयत्नपूर्वक रणभूमिमें कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । इस युद्धस्थलमें यही हमारे लिये सब कार्योंसे बढ़कर महान् कार्य है' ॥ ८½ ॥

तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन् ।

महाराज ! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा—'कुन्तीनन्दन ! तुम कुछ भी सोच-विचार न करके जाओ । मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार सब कार्य करूँगा ॥ ९½ ॥

नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १० ॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ।

'द्रोणाचार्य संग्राममें धृष्टद्युम्नका वध किये बिना किसी प्रकार धर्मराजको कैद नहीं कर सकेंगे' ॥ १०½ ॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ।

तब भीमसेन पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्नके हाथमें सौंपकर अपने बड़े भाईको प्रणाम करके जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीपर चल दिये ॥ ११½ ॥

परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः ।

भारत ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने कुन्तीकुमार भीमसेनको गलेसे लगाया, उनका सिर सूँघा और उन्हें शुभ आशीर्वाद सुनाये ॥ १२½ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणान् विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु ।
द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर पूजित एवं संतुष्टचित्त हुए ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके आठ प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंका[1] स्पर्श करनेके पश्चात् भीमसेनने कैरातक मधुका पान किया । फिर तो वीर भीमसेनका बल और उत्साह दुगुना हो गया, उनके नेत्र मदसे लाल हो गये थे ॥ १३-१४ ॥

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः ।
पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥

उस समय ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया, जिससे विजय-लाभ सूचित होता था । उन्हें अपनी बुद्धि विजयानन्दका अनुभव करती-सी दिखायी दी ॥ १५ ॥

अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शितजयोदयः ।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदः सतलत्राणः सरथो रथिनां वरः ।

अनुकूल हवा चलकर उन्हें शीघ्र ही अवश्यम्भावी विजयकी सूचना देने लगी । रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीमसेन

---

१. अनलो गौर्हिरण्यं च दूर्वागोरोचनामृतम् ।
अक्षतं दधि चेत्यष्टौ मङ्गलानि प्रचक्षते ॥
अग्नि, गौ, सुवर्ण, दूर्वा, गोरोचन, अमृत (घी), अक्षत और दही—इन आठ वस्तुओंको माङ्गलिक कहते हैं ।

कवच, सुन्दर कुण्डल, बाजूबन्द और तलत्राण (दस्ताने) धारण करके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ १६½ ॥

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत् ॥ १७ ॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।

उनका काले लोहेका बना हुआ सुवर्णजटित बहुमूल्य कवच उनके सारे अङ्गोंमें सटकर बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १७½ ॥

पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।

लाल, पीले, काले और सफेद वस्त्रोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करके कण्ठत्राण पहनकर वे इन्द्रधनुषयुक्त मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! जब भीमसेन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय पुनः पाञ्चजन्य शङ्खकी भयंकर ध्वनि प्रकट हुई ॥ १९½ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।

त्रिलोकीको डरा देनेवाले उस घोर एवं महान् सिंहनादको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने (जाते हुए) महाबाहु भीमसेनसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½ ॥

एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥ २१ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि ॥ २२ ॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।

'भीम ! देखो, यह वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरसे शङ्ख बजाया है । यह शङ्खराज इस समय पृथ्वी और आकाश दोनोंको अपनी ध्वनिसे परिपूर्ण किये देता है । निश्चय ही सव्यसाची अर्जुनके भारी संकटमें पड़ जानेपर चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके साथ युद्ध कर रहे हैं ॥ २१–२२½ ॥

आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः ।

'आज अवश्य ही माता कुन्ती किसी दुःखद अपशकुनकी चर्चा करती होंगी । बन्धुओंसहित द्रौपदी और सुभद्रा भी कोई असगुन देख रही होंगी ॥ २३½ ॥

स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनंजयः ॥ २४ ॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनंजयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ २५ ॥

'अतः भीम ! तुम तुरंत ही जहाँ अर्जुन हैं, वहाँ जाओ । आज अर्जुनको देखनेके लिये मेरी सारी दिशाएँ मोहाच्छन्न-सी हो रही हैं । सात्यकिको न देख पानेके कारण भी मेरे लिये सारी दिशाओंमें अँधेरा छा गया है' ॥ २४-२५ ॥

गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः ।
ततः पाण्डुसुतो राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियंकरः ॥ २७ ॥

राजन् ! इस प्रकार 'जाओ, जाओ' कहकर बड़े भाईके आज्ञा देनेपर उदरमें वृक नामक अग्निको धारण करनेवाले प्रतापी पाण्डुपुत्र भीमसेन गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहनकर हाथमें धनुष ले वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए । वे भाईका प्रिय करनेवाले भाई थे और बड़े भाईके भेजनेसे ही वहाँसे जानेको उद्यत हुए थे ॥ २६-२७ ॥

आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चासकृत् ।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः ॥ २८ ॥

भीमसेनने बारंबार डंका पीटा और अनेक बार शङ्ख बजाकर बारंबार धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते हुए सिंहके दहाड़नेके समान भयंकर गर्जना की ॥ २८ ॥

तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत ।
दर्शयन् घोरमात्मानममित्रान् सहसाभ्ययात् ॥२९॥

उस तुमुल शब्दके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंके दिल दहलाकर अपना भयंकर रूप दिखाते हुए उन्होंने सहसा शत्रुओंपर धावा बोल दिया ॥ २९ ॥

तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः ।
विशोकेनाभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥

उस समय विशोक नामक सारथिके द्वारा संचालित होनेवाले, मन और वायुके समान वेगशाली तीव्रगामी और सुशिक्षित सुन्दर घोड़े हर्षसूचक शब्द करते हुए उनका भार वहन करते थे ॥ ३० ॥

आरुजन् विरुजन् पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना ।
सम्प्रकर्षन् विमर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥

कुन्तीकुमार भीम अपने हाथसे धनुषकी डोरी खींचकर चढ़ाते, उसे भलीभाँति कानतक खींचते, बाणोंकी वर्षा करते तथा शत्रुओंको घायल करके उनके अङ्ग-भङ्ग करते हुए सेनाके अग्रभागको मथे डालते थे ॥ ३१ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार यात्रा करते हुए महाबाहु भीमसेनके पीछे पाञ्चाल और सोमक वीर भी चले, मानो देवगण देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ ३२ ॥

तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।

दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ३३ ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस समय आपके पुत्रोंने भीमसेनका सामना करके उन्हें रोका । दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन—इन शोभाशाली रथिश्रेष्ठ वीरोंने अपने सैनिकों और सेवकोंके साथ सावधान एवं प्रयत्नशील होकर समराङ्गणमें भीमसेनपर धावा किया॥

तैः समन्ताद् वृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥

उन शूरवीरोंके द्वारा समरभूमिमें महारथी भीम सब ओरसे घिर गये थे । उन सबको सामने देखकर पराक्रमशाली कुन्तीकुमार भीमसेन उसी प्रकार वेगसे आगे बढ़े, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंकी ओर बढ़ता है ॥ ३७ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥

परंतु जैसे बादल उगे हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार वे वीरगण अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करते हुए वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ३८

स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥

किंतु भीमसेन अपने वेगसे उन सबको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर टूट पड़े और सामने खड़ी हुई गजसेनाको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे ॥ ३९ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद् गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत् पवनात्मजः ॥ ४० ॥

पवनपुत्र भीमने सम्पूर्ण दिशाओंमें बारंबार बाणोंकी वर्षा करके उनके द्वारा थोड़े ही समयमें उस गजसेनाको मार भगाया ॥ ४० ॥

त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४१ ॥

जैसे शरभकी गर्जनासे भयभीत हो वनके सारे मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार भीमसेनसे डरे हुए समस्त गजराज भैरव स्वरसे आर्तनाद करते हुए भाग निकले ॥ ४१ ॥

पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥

फिर उन्होंने बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनापर चढ़ाई की । उस समय उत्ताल तरंगोंके साथ उठे हुए महासागरको जैसे तटकी भूमि रोक देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने भीमसेनको रोका ॥ ४२ ॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥

द्रोणने मुसकराते हुए-से नाराच चलाकर भीमसेनके ललाटमें चोट पहुँचायी । उस नाराचसे पाण्डुपुत्र भीमसेन ऊपर उठी किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्य यह समझकर कि यह भीम भी अर्जुनके समान मेरी पूजा करेगा, उनसे इस प्रकार बोले—॥ ४४॥

भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५ ॥

'महाबली भीमसेन ! तुम समरभूमिमें आज मुझ शत्रुको पराजित किये बिना इस शत्रुसेनामें प्रवेश नहीं कर सकोगे ॥

यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ४६ ॥

'तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन मेरी अनुमतिसे इस सेनाके भीतर घुस गये हैं । यदि इच्छा हो तो उसी तरह तुम भी जा सकते हो; अन्यथा मेरे इस सैन्यव्यूहमें प्रवेश नहीं करने पाओगे' ॥ ४६ ॥

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥

गुरुका यह वचन सुनकर भीमसेनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, वे बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यसे निर्भय होकर बोले ॥ ४७ ॥

तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद् बलम्॥ ४८ ॥

'ब्रह्मबन्धो ! अर्जुन तुम्हारी अनुमतिसे इस समराङ्गणमें नहीं प्रविष्ट हुए हैं । वे तो दुर्जय हैं । देवराज इन्द्रकी सेनामें भी घुस सकते हैं ॥ ४८ ॥

तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ ४९ ॥

'उन्होंने तुम्हारी बड़ी पूजा करके निश्चय ही तुम्हें सम्मान दिया है, परंतु द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ । मैं तो तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ ॥ ४९ ॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥

'तुम हमारे पिता, गुरु और बन्धु हो और हम तुम्हारे पुत्रके तुल्य हैं। हम सब लोग यही मानते हैं और सदा तुम्हारे सामने प्रणतभावसे खड़े होते हैं ॥ ५० ॥

अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह ॥ ५१ ॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम्।

'परंतु आज तुम्हारे मुँहसे जो बात निकल रही है, उससे हमलोगोंपर तुम्हारा विपरीत भाव लक्षित होता है। यदि तुम अपने आपको शत्रु मानते हो तो ऐसा ही सही। यह मैं भीमसेन तुम्हारे शत्रुके अनुरूप कर्म कर रहा हूँ' ॥ ५१½ ॥

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद् राजन् स रथादवपुप्लुवे।

राजन्! ऐसा कहकर भीमसेनने गदा उठा ली, मानो यमराजने कालदण्ड हाथमें ले लिया हो। उन्होंने उस गदाको घुमाकर द्रोणाचार्यपर दे मारा, किंतु द्रोणाचार्य शीघ्र ही रथसे कूद पड़े ॥ ५२½ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत् तदा ॥ ५३ ॥
प्रामृद्नाच्च बहून् योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा।

जैसे हवा अपने वेगसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार उस गदाने उस समय घोड़े, सारथि और ध्वजसहित द्रोणाचार्यके रथको चूर-चूर कर दिया और बहुत-से योद्धाओंको भी धूलमें मिला दिया ॥ ५३½ ॥

तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥

उस समय उस श्रेष्ठ महारथी वीरको आपके पुत्रोंने पुनः आकर चारों ओरसे घेर लिया। योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य दूसरे रथपर बैठकर व्यूहके द्वारपर आ पहुँचे और युद्धके लिये उद्यत हो गये ॥ ५४-५५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए पराक्रमी भीमसेनने सामने खड़ी हुई रथसेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥

युद्धस्थलमें भयंकर बलशाली विजयाभिलाषी आपके महारथी पुत्र बाणोंकी मार खाकर भी समराङ्गणमें भीमसेनके साथ युद्ध करते रहे ॥ ५७ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत्।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥

उस समय कुपित हुए दुःशासनने पाण्डुनन्दन भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके ऊपर एक तीखी रथशक्ति चलायी, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी ॥ ५८ ॥

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम्।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९ ॥

आपके पुत्रकी चलायी हुई उस महाशक्तिको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने उसके दो टुकड़े कर दिये। वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ५९ ॥

अथान्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम्।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद् बली ॥ ६० ॥

फिर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् भीमने दूसरे तीन तीखे बाणोंद्वारा कुण्डभेदी, सुषेण तथा दीर्घलोचन (दीर्घरोमा)—इन तीनोंको मार डाला (जो आपके पुत्र थे) ॥ ६० ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम्।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् आपके (अन्य) वीर पुत्रोंके युद्ध करते रहनेपर भी उन्होंने पुनः कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकका वध कर दिया ॥ ६१ ॥

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च।
त्रिभिस्त्रीनवधीद् भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥

इसके बाद भीमने पुनः तीन बाण मारकर अभय, रौद्रकर्मा तथा दुर्विमोचन (दुर्विरोचन)—आपके इन तीन पुत्रोंको भी मार गिराया ॥ ६२ ॥

वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥

महाराज! अत्यन्त बलवान् भीमसेनके बाणोंसे घायल होते हुए आपके पुत्रोंने योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेनको फिर चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६३ ॥

ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि।
मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥ ६४ ॥

जैसे वर्षा-ऋतुमें मेघ पर्वतपर जलधाराओंकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार वे आपके पुत्र युद्धस्थलमें भयंकर कर्म करनेवाले पाण्डुपुत्र भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥६४॥

स तद् बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाचलः।
प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥

जैसे पत्थरोंकी वर्षा ग्रहण करते हुए पर्वतको कोई पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार शत्रुसूदन पाण्डुपुत्र भीमसेन उस बाण-वर्षाको सहन करते हुए भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६५ ॥

विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम्।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६ ॥

कुन्तीनन्दन भीमने हँसते हुए ही अपने बाणोंद्वारा एक साथ आये हुए दोनों भाई विन्द और अनुविन्दको तथा आपके पुत्र सुवर्माको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ६६ ॥

ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च॥ ६७॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर उन्होंने समरभूमिमें आपके वीर पुत्र सुदर्शन (उर्णनाभ) को घायल कर दिया। इससे वह तुरंत ही गिरा और मर गया॥ ६७॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत् पाण्डुनन्दनः॥ ६८॥

इस प्रकार पाण्डुनन्दन भीमसेनने सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिपात करके अपने बाणोंद्वारा थोड़े ही समयमें उस रथ-सेनाको नष्ट कर दिया॥ ६८॥

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते॥ ६९॥

प्रजानाथ! तदनन्तर भीमसेनके रथकी घरघराहट और गर्जनासे समराङ्गणमें मृगोंके समान भयभीत हुए आपके पुत्रोंका उत्साह भंग हो गया॥ ६९॥

प्राद्रवन् सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः।
अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद् बलम्॥ ७०॥

वे सब-के-सब भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सहसा भाग खड़े हुए। कुन्तीकुमार भीमसेनने आपके पुत्रोंकी विशाल सेनाका दूरतक पीछा किया॥ ७०॥

विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः॥ ७१॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान्।

राजन्! उन्होंने रणक्षेत्रमें सब ओर कौरवोंको घायल किया। महाराज! भीमसेनके द्वारा मारे जाते हुए आपके सभी पुत्र उन्हें छोड़कर अपने उत्तम घोड़ोंको हाँकते हुए रणभूमिसे दूर चले गये॥ ७१½॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः॥ ७२॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः।

उन सबको संग्राममें पराजित करके महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपनी भुजाओंपर ताल ठोकी और सिंहके समान गर्जना की॥ ७२½॥

तलशब्दं च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः॥ ७३॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान् वरान् वरान्।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत्॥ ७४॥

बड़े जोरसे ताली बजाकर महाबली भीमने रथसेनाको डरा दिया और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ योद्धाओंको चुन-चुनकर मारा। फिर समस्त रथियोंको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा बोल दिया॥ ७३-७४॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और भयंकर पराक्रमविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका द्रोणाचार्य और अन्य कौरव योद्धाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यके रथको आठ बार फेंक देना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीप पहुँचकर गर्जना करना तथा युधिष्ठिरका प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी बातें सोचना

संजय उवाच

समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन् रणे।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! रथसेनाको पार करके आये हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनको युद्धमें रोकनेकी इच्छासे आचार्य द्रोणने हँसते-हँसते उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ १॥

पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान्।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान् मोहयन् बलमायया॥ २॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको पीते हुए-से भीमसेन अपने बलकी मायासे समस्त कौरव बन्धुओंको मोहित करते हुए उनपर टूट पड़े॥ २॥

तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन्॥ ३॥

उस समय आपके पुत्रोंद्वारा प्रेरित हुए बहुत-से महाधनुर्धर नरेशोंने महान् वेगका आश्रय ले युद्धस्थलमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया॥ ३॥

स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत।
उदयच्छन् स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन्।
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम्॥ ४॥

भरतनन्दन! उनसे घिरे हुए भीमने हँसते हुए-से अपनी अत्यन्त भयंकर गदा ऊपर उठायी और सिंहनाद करते हुए उन्होंने शत्रुपक्षका विनाश करनेवाली उस गदाको बड़े वेगसे उन राजाओंपर दे मारा॥ ४॥

इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना।
प्रामथ्नात् सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे॥ ५॥

महाराज! सुस्थिरचित्तवाले इन्द्र जिस प्रकार अपने वज्र-

का प्रयोग करते हैं, उसी तरह भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने युद्धस्थलमें आपके सैनिकोंका कचूमर निकाल दिया ॥ ५ ॥

घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम्।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान्॥ ६ ॥

राजन्! तेजसे प्रज्वलित होनेवाली उस भयंकर गदाने अपने महान् घोषसे इस पृथ्वीको परिपूर्ण करके आपके पुत्रोंको भयभीत कर दिया ॥ ६ ॥

तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोऽभिसंवृताम्।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान्॥ ७ ॥

उस महावेगशालिनी तेजस्विनी गदाको गिरती देख आपके समस्त सैनिक घोर स्वरमें आर्तनाद करते हुए वहाँसे भाग गये ॥ ७ ॥

तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा॥ ८ ॥

माननीय नरेश! उस गदाके असह्य शब्दको सुनकर उस समय कितने ही रथी मानव अपने रथोंसे नीचे गिर पड़े॥

ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव॥ ९ ॥

रणभूमिमें गदाधारी भीमके द्वारा मारे जानेवाले आपके सैनिक व्याघ्रोंके सूँघे हुए मृगोंके समान भयभीत होकर भाग निकले ॥ ९ ॥

स तान् विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान् दुरासदान्।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम्॥ १० ॥

कुन्तीकुमार भीमसेन युद्धस्थलमें उन दुर्जय शत्रुओंको भगाकर पक्षिराज गरुडके समान वेगसे उस सेनाको लाँघ गये ॥ १० ॥

तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम्।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात्॥ ११ ॥

महाराज! रथयूथपतियोंके भी यूथपति भीमसेनको इस प्रकार सेनाका संहार करते देख द्रोणाचार्य उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ११ ॥

भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः।
अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत्॥ १२ ॥

उस समराङ्गणमें अपने बाणरूपी तरङ्गोंसे भीमसेनको रोककर आचार्य द्रोणने पाण्डवोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए सहसा सिंहनाद किया ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोरं देवासुरोपमम्।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः॥ १३ ॥

महाराज! द्रोणाचार्य तथा महामनस्वी भीमसेनका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ १३ ॥

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४ ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात्॥ १५ ॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ।
वेगमास्थाय बलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम्॥ १६ ॥

राजन्! जब इस प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए पैने बाणोंद्वारा समराङ्गणमें सैकड़ों और हजारों वीर मारे जाने लगे, तब बलवान् पाण्डुनन्दन भीम वेगपूर्वक रथसे कूद पड़े तथा दोनों नेत्र मूँदकर सिरको कंधेपर सिकोड़कर दोनों हाथोंको छातीपर सुस्थिर करके मन, वायु तथा गरुडके समान वेगका आश्रय ले पैदल ही द्रोणाचार्यकी ओर दौड़े ॥ १४–१६ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत्॥ १७ ॥

जैसे साँड़ लीलापूर्वक वर्षाका वेग अपने शरीरपर ग्रहण करता है, उसी प्रकार पुरुषसिंह भीमसेनने आचार्यकी उस बाण-वर्षाको अपने शरीरपर ग्रहण किया ॥ १७ ॥

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः॥ १८ ॥

आर्य! समराङ्गणमें बाणोंसे आहत होते हुए महाबली भीमने द्रोणाचार्यके रथके ईषादण्डको हाथसे पकड़कर समूचे रथको दूर फेंक दिया ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः॥ १९ ॥

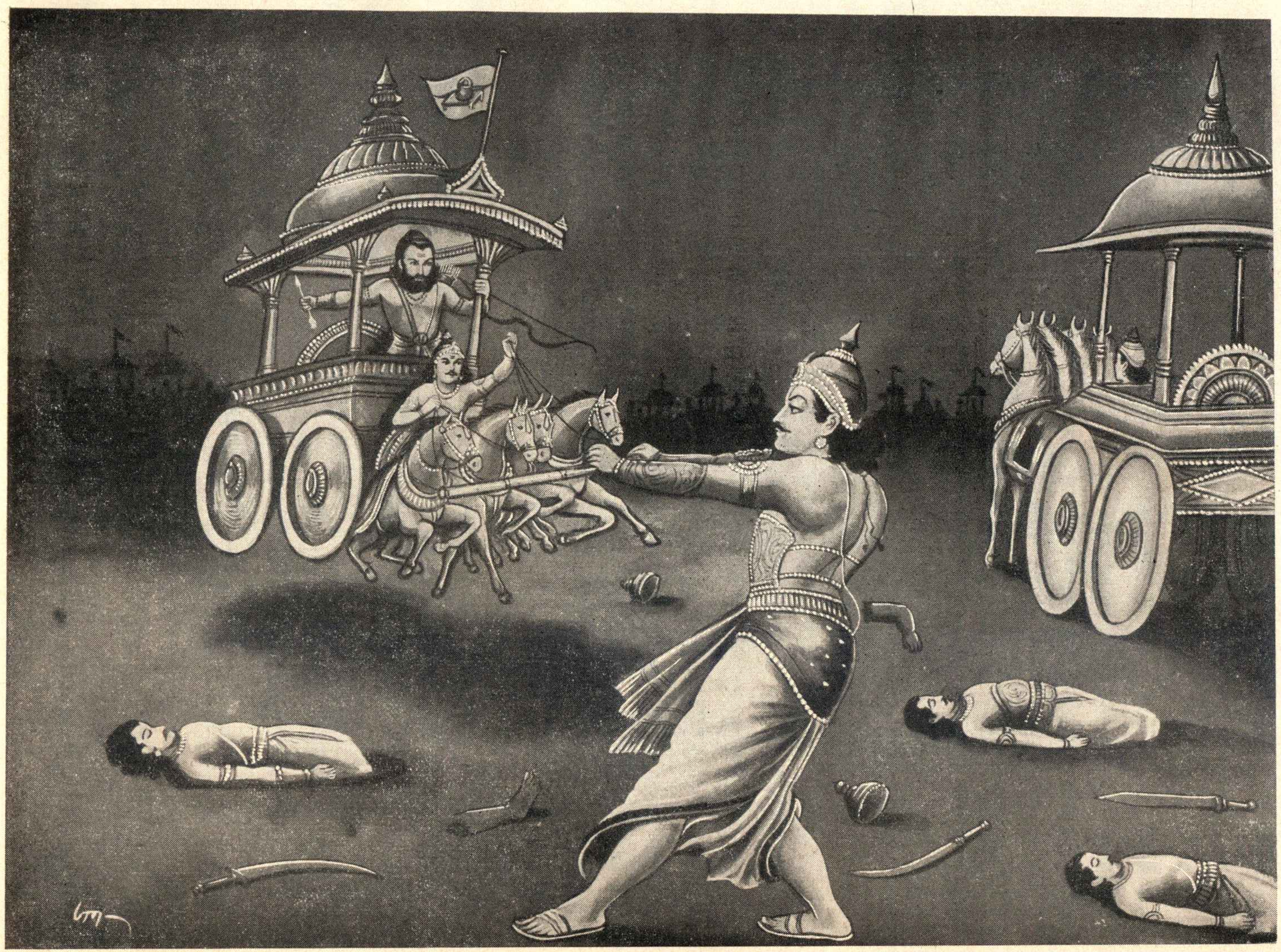
राजन्! उस युद्धस्थलमें भीमसेनद्वारा फेंके गये आचार्य द्रोण तुरंत ही दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः व्यूहके द्वारपर जा पहुँचे ॥ १९ ॥

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा।
गत्वा वेगात् पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु॥ २० ॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया॥ २१ ॥

उस समय गुरु द्रोणका उत्साह भंग हो गया था। उन्हें उस अवस्थामें आते देख भीमने पुनः वेगपूर्वक आगे बढ़कर उनके रथकी धुरी पकड़ ली और अत्यन्त रोषमें भरकर उन अतिरथी वीर द्रोणको भी पुनः रथके साथ ही फेंक दिया। इस प्रकार भीमसेनने खेल-सा करते हुए आठ रथ फेंके ॥ २०–२१ ॥

व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः॥ २२ ॥

परंतु द्रोणाचार्य पुनः पलक मारते-मारते अपने रथपर बैठे दिखायी देते थे। उस समय आपके योद्धा विस्मयसे



भीमसेनके द्वारा द्रोणाचार्यके रथको दूर फेंकनेका उपक्रम

आँखें फाड़-फाड़कर यह दृश्य देख रहे थे ॥ २२ ॥

तस्मिन् क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन ! इसी समय भीमसेनका सारथि तुरंत ही घोड़ोंको हाँककर वहाँ ले आया। वह एक अद्भुत-सी बात थी॥

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् महाबली भीमसेन पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ २४ ॥

स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
आगच्छद् दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव॥ २५॥

जैसे उठी हुई आँधी वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है और सिंधुका वेग पर्वतोंको विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें क्षत्रियोंको रौंदते और कौरव-सेनाको विदीर्ण करते हुए भीमसेन आगे बढ़ गये ॥ २५ ॥

भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तद्प्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६ ॥

फिर अत्यन्त बलशाली वीर भीमसेन कृतवर्माद्वारा सुरक्षित भोजवंशियोंकी सेनाके पास जा पहुँचे और उसे वेगपूर्वक मथकर आगे चले गये ॥ २६ ॥

संत्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २७ ॥

जैसे सिंह गाय-बैलोंको जीत लेता है, उसी प्रकार पाण्डुनन्दन भीमने ताली बजाकर शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए समस्त सैनिकोंपर विजय पा ली ॥ २७ ॥

भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान् बहून् युद्धविशारदान्॥ २८ ॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥

उस समय कुन्तीकुमार भीमसेन भोजवंशियोंकी सेनाको लाँघकर दरदोंकी विशाल वाहिनीको पार कर गये तथा बहुत-से युद्धविशारद म्लेच्छोंको परास्त करके महारथी सात्यकिको शत्रुओंके साथ युद्ध करते देख सावधान हो रथके द्वारा वेगपूर्वक आगे बढ़े ॥

भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥

महाराज ! अर्जुनको देखनेकी इच्छा लिये पाण्डुनन्दन भीमसेन समराङ्गणमें आपके योद्धाओंको लाँघते हुए वहाँ पहुँचे थे ॥ ३० ॥

सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थे हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ ३१ ॥

पराक्रमी भीमने वहाँ सिंधुराजके वधके लिये पराक्रम करते हुए युद्धतत्पर महारथी अर्जुनको देखा ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥ ३२ ॥

महाराज ! उन्हें देखते ही पुरुषसिंह भीमने वर्षाकालमें गरजते हुए मेघके समान बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३२ ॥

तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन ! गरजते हुए भीमसेनके उस भयंकर सिंहनादको युद्धस्थलमें कुन्तीकुमार अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णने सुना ॥ ३३ ॥

तौ श्रुत्वा युगपद् वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥

उस महाबली वीरके सिंहनादको एक ही साथ सुनकर उन दोनों वीरोंने भीमसेनको देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए बारंबार गर्जना की ॥ ३४ ॥

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥

महाराज ! गरजते हुए दो साँड़ोंके समान अर्जुन और श्रीकृष्ण महान् सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ ३५॥

भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! भीमसेन तथा धनुर्धर अर्जुनकी गर्जना सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥

विशोकश्चाभवद् राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनंजयस्य समरे जयमाशास्तवान् विभुः ॥ ३७ ॥

उन दोनोंका सिंहनाद सुनकर राजाका शोक दूर हो गया। वे शक्तिशाली नरेश समरभूमिमें अर्जुनकी विजयके लिये शुभ कामना करने लगे ॥ ३७ ॥

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।

मदोन्मत्त भीमसेनके बारंबार गर्जना करनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर मुसकराकर मन-ही-मन कुछ सोचते हुए अपने हृदयकी बात इस प्रकार कहने लगे—॥

दत्ता भीम त्वया संवित् कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः ॥ ४० ॥

'भीम ! तुमने सूचना दे दी और गुरुजनकी आज्ञाका पालन कर दिया। पाण्डुनन्दन ! जिनके शत्रु तुम हो, उन्हें युद्धमें विजय नहीं प्राप्त हो सकती। सौभाग्यकी बात है कि संग्रामभूमिमें सव्यसाची अर्जुन जीवित है ॥ ३९-४० ॥

दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४१ ॥

'यह भी आनन्दकी बात है कि सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि सकुशल हैं। मैं सौभाग्यवश इस समय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी गर्जना सुन रहा हूँ ॥ ४१ ॥

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४२॥

'जिसने रणक्षेत्रमें इन्द्रको जीतकर अग्निदेवको तृप्त किया था, वह शत्रुहन्ता अर्जुन मेरे सौभाग्यसे युद्धस्थलमें जीवित है ॥ ४२ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४३॥

'जिसके बाहुबलका भरोसा करके हम सब लोग जीवन धारण करते हैं, शत्रुसेनाओंका संहार करनेवाला वह अर्जुन हमारे सौभाग्यसे जीवित है ॥ ४३ ॥

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४४ ॥

'जिसने देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय निवातकवच नामक दानवोंको एकमात्र धनुषकी सहायतासे जीत लिया था, वह कुन्तीकुमार अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥

कौरवान् सहितान् सर्वान् गोग्रहार्थे समागतान्।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥

'विराटकी गौओंका अपहरण करनेके लिये एक साथ आये हुए समस्त कौरवोंको जिसने मत्स्य देशकी राजधानीके समीप पराजित किया था, वह पार्थ जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४५ ॥

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे।
योऽवधीद् भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४६॥

'जिसने महासमरमें अपने बाहुबलसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध किया था, वह अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥ ४६ ॥

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै।
जितवान् योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४७॥

'जिसने अपने अस्त्र-बलसे दुर्योधनके लिये बलवान् गन्धर्वराज चित्रसेनको परास्त किया था, वह पार्थ सौभाग्यवश जीवित है ॥ ४७ ॥

किरीटमाली बलवाञ्छ्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४८ ॥

'जिसके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जिसके रथमें श्वेत घोड़े जोते जाते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं तथा जो सदा ही मुझे प्रिय लगता है, वह बलवान् अर्जुन अभी जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४८ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥ ४९ ॥
कच्चित् स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः।
कच्चित् तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥ ५० ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम्।

'जिसने पुत्रशोकसे संतप्त हो दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे भारी प्रतिज्ञा कर ली है, वह अर्जुन क्या आज युद्धमें सिंधुराजको मार डालेगा ? क्या सूर्यास्त होनेसे पहले ही प्रतिज्ञा पूर्ण करके लौटे हुए, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित अर्जुनसे मैं मिल सकूँगा ? ॥ ४९–५०½ ॥

कच्चित् सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान् हि फाल्गुनेन निपातितः।

'क्या दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाला राजा जयद्रथ अर्जुनके हाथसे मारा जाकर शत्रुपक्षको आनन्दित करेगा ? ॥

कच्चिद् दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति।

'क्या युद्धमें सिंधुराजको अर्जुनके हाथसे मारा गया देखकर राजा दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा ?॥५२½॥

दृष्ट्वा विनिहतान् भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ५३ ॥
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति।

'क्या मूर्ख दुर्योधन संग्रामभूमिमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंका वध होता देखकर हमारे साथ संधि कर लेगा ?॥

दृष्ट्वा चान्यान् महायोधान् पातितान् धरणीतले।
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ५४ ॥

'अन्यान्य बड़े-बड़े योद्धाओंको भी धराशायी किये गये देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधनको पश्चात्ताप होगा ? ॥५४॥

कच्चिद् भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति।
शेषस्य रक्षणार्थं च संधास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥

'क्या एकमात्र भीष्मकी मृत्युसे हमलोगोंका वैर शान्त हो जायगा ? क्या शेष वीरोंकी रक्षाके लिये दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा ?' ॥ ५५ ॥

एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा।
कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५६ ॥

इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जब दयासे द्रवित होकर भाँति-भाँतिकी बातें सोच रहे थे, उस समय दूसरी ओर घोर युद्ध हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका कौरव-सेनामें प्रवेश तथा युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम्।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद करते हुए महाबली भीमसेनको किन वीरोंने रोका? ॥ १ ॥

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कंचन।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे॥ २॥

मैं तो तीनों लोकोंमें किसीको ऐसा नहीं देखता, जो क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने युद्धस्थलमें खड़ा हो सके॥

गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह संजय।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्॥ ३॥

संजय! मुझे ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं दिखायी देता, जो कालके समान गदा उठाकर युद्धकी इच्छा रखनेवाले भीमसेनके सामने समरभूमिमें ठहर सके ॥ ३ ॥

रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं कुञ्जरेण च।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरंदरः॥ ४॥

जो रथसे रथको और हाथीसे हाथीको मार सकता है, उस वीर पुरुषके सामने साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, कौन युद्धके लिये खड़ा होगा? ॥ ४ ॥

क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् जिघांसतः।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः॥ ५॥

क्रोधमें भरकर मेरे पुत्रोंका वध करनेकी इच्छावाले भीमसेनके आगे दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाले कौन-कौन योद्धा खड़े हो सके? ॥ ५ ॥

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान्।
प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः॥ ६॥

भीमसेन दावानलके समान हैं और मेरे पुत्र तिनकोंके समान। उन्हें जला डालनेकी इच्छावाले भीमसेनके सामने युद्धके मुहानेपर कौन-कौन-से वीर खड़े हुए? ॥ ६ ॥

काल्यमानांस्तु पुत्रान् मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन्॥ ७॥

जैसे काल समस्त प्रजाको अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा मेरे पुत्रोंको कालके गालमें जाते देख किन वीरोंने आगे बढ़कर भीमसेनको रोका?॥

न मेऽर्जुनाद् भयं तादृक् कृष्णान्नापि च सात्वतात्।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद् भयं मम॥ ८॥

मुझे भीमसेनसे जैसा भय लगता है, वैसा न तो अर्जुनसे और न श्रीकृष्णसे, न सात्यकिसे और न धृष्टद्युम्नसे ही लगता है ॥ ८ ॥

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान् दिधक्षतः।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ९॥

संजय! मेरे पुत्रोंको दग्ध करनेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए भीमरूपी अग्निदेवके सामने कौन-कौन शूरवीर डटे रह सके, यह मुझे बताओ ॥ ९ ॥

संजय उवाच

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम्।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् बली॥ १०॥

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार गरजते हुए महाबली भीमसेनपर बलवान् कर्णने भयंकर सिंहनादके साथ आक्रमण किया ॥ १० ॥

व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः।
कर्णः सुयुद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् बलं मृधे॥ ११॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः।

अत्यन्त अमर्षशील कर्णने रणभूमिमें अपना बल दिखानेके लिये अपने विशाल धनुषको खींचते और युद्धकी अभिलाषा रखते हुए, जैसे वृक्ष वायुका मार्ग रोकता है, उसी प्रकार भीमसेनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया ॥ ११½ ॥

भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम्॥ १२॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान्।

वीर भीमसेन भी अपने सामने कर्णको खड़ा देख अत्यन्त कुपित हो उठे और तुरंत ही उसके ऊपर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए बाण बलपूर्वक छोड़ने लगे ॥ १२½ ॥

तान् प्रत्यगृह्णात् कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान्॥ १३॥

कर्णने भी उन बाणोंको ग्रहण किया और उनके विपरीत बहुत-से बाण चलाये ॥ १३ ॥

ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे॥ १४॥

उस समय कर्ण और भीमसेनके संघर्षमें विजयके लिये प्रयत्नशील होकर देखनेवाले सम्पूर्ण योद्धाओंके शरीर काँपने-से लगे ॥ १४ ॥

रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम्।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे॥ १५॥

उन दोनोंके ताल ठोकनेकी आवाज सुनकर तथा समराङ्गणमें भीमसेनकी घोर गर्जना सुनकर रथियों और घुड़सवारोंके भी शरीर थर-थर काँपने लगे ॥ १५ ॥

खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

वहाँ आये हुए क्षत्रियशिरोमणि योद्धा महामना पाण्डुनन्दन भीमसेनके बारंबार होनेवाले घोर सिंहनादसे आकाश और पृथ्वीको व्याप्त मानने लगे ॥ १६ ॥

समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ।
शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः केषांचिच्चासवोऽद्रवन्॥१७॥

उस समराङ्गणमें प्रायः सम्पूर्ण योद्धाओंके धनुष तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र हाथोंसे छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंके तो प्राण ही निकल गये ॥ १७ ॥

वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥
प्रादुरासन् निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत।
गृध्रकङ्कबलैश्चासीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥ १९ ॥
तस्मिन् सुतुमुले राजन् कर्णभीमसमागमे।

सारी सेनाके समस्त वाहन संत्रस्त होकर मल-मूत्र त्यागने लगे। उनका मन उदास हो गया। बहुत-से भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे। राजन्! कर्ण और भीमके उस भयंकर युद्धमें आकाश गीधों, कौवों और कंकोंसे छा गया १८-१९½

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः।

तदनन्तर कर्णने बीस बाणोंसे भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी। फिर तुरंत ही उनके सारथिको पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २०½ ॥

प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद् रणे ॥ २१ ॥
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः।

तब शीघ्रता करनेवाले महायशस्वी भीमसेनने भी हँसकर चौंसठ बाणोंद्वारा रणभूमिमें कर्णपर आक्रमण किया ॥२१½॥

तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
असम्प्राप्तांश्च तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः।
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥

राजन्! फिर महाधनुर्धर कर्णने चार बाण चलाये। परंतु भीमसेनने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाणोंद्वारा अपने पास आनेके पहले ही कर्णके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २२-२३ ॥

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः।
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तब कर्णने अनेकों बार बाण-समूहोंकी वर्षा करके भीमसेनको आच्छादित कर दिया। कर्णके द्वारा बारंबार आच्छादित होते हुए पाण्डुनन्दन महारथी भीमने कर्णके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ २४-२५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् भयंकर कर्म करनेवाले महारथी सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और समरभूमिमें भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २६ ॥

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान् नतपर्वणः।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥

तब भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने वेगपूर्वक सूतपुत्रकी छातीमें झुकी हुई गाँठवाले तीन बाण धँसा दिये ॥

तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ! ठीक छातीके बीचमें गड़े हुए उन बाणोंद्वारा कर्ण तीन शिखरोंवाले ऊँचे पर्वतके समान सुशोभित हुआ ॥ २८ ॥

सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद् यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥

उन उत्तम बाणोंसे बिंधे हुए कर्णकी छातीसे बहुत रक्त गिरने लगा, मानो धातुकी धाराएँ बहानेवाले पर्वतसे गैरिक धातु (गेरु) प्रवाहित हो रहा हो ॥ २९ ॥

किंचिद् विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥

उस गहरे प्रहारसे पीड़ित हो कर्ण कुछ विचलित हो उठा। फिर धनुषको कानतक खींचकर उसने अनेक बाणोंद्वारा भीमसेनको बींध डाला ॥ ३० ॥

चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना।
धनुर्ज्यामच्छिनत् तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् उनपर पुनः सैकड़ों और हजारों बाणोंका प्रहार किया। सुदृढ़ धनुर्धर कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो भीमसेनने एक क्षुरके द्वारा तुरंत ही उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी ॥ ३१ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ ३२ ॥

साथ ही उसके सारथिको एक भल्लसे मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, महारथी भीमने उसके चारों घोड़ोंके भी प्राण ले लिये ॥ ३२ ॥

हताश्वात् तु रथात् कर्णः समाप्लुत्य विशाम्पते।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ! उस समय कर्ण भयके मारे उस अश्वहीन रथसे कूदकर तुरंत ही वृषसेनके रथपर जा बैठा ॥ ३३ ॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान्।
ननाद बलवान् नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४॥

इस प्रकार बलवान् एवं प्रतापी भीमसेनने रणभूमिमें कर्णको पराजित करके मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद किया ॥ ३४ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद् युधिष्ठिरः।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५॥

भीमसेनका वह महान् सिंहनाद सुनकर उनके द्वारा युद्धमें कर्णको पराजित हुआ जान राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥

समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाकरोत् तदा।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन् भृशम् ॥ ३६॥

उस समय पाण्डव-सेना सब ओर शङ्खनाद करने लगी। शत्रुसेनाकी शङ्खध्वनि सुनकर आपके सैनिक भी जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ३६ ॥

स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद् राजा स्ववाहिनीम्।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥ ३७॥

राजा युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें हर्षके कारण अपनी सेनाको शङ्ख और बाणोंकी ध्वनि तथा हर्षनादसे व्याप्त कर दिया ॥

गाण्डीवं व्याक्षिपत् पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत्।
तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः।
अश्रूयत तदा राजन् सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८॥

इसी समय अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार की और भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। परंतु उसकी ध्वनिको तिरोहित करके गरजते हुए भीमसेनका भयंकर सिंहनाद सम्पूर्ण सेनाओंमें सुनायी देने लगा ॥ ३८ ॥

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगजिह्मगैः।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९॥

तदनन्तर वे दोनों वीर एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् सीधे जानेवाले बाणोंका प्रहार करने लगे। राधानन्दन कर्ण मृदुतापूर्वक बाण चलाता था और पाण्डुनन्दन भीमसेन कठोरतापूर्वक ॥ ३९ ॥

(दृष्ट्वा कर्णं च पार्थेन बाधितं बहुभिः शरैः।
दुर्योधनो महाराज दुःशलं प्रत्यभाषत ॥
कर्णं कृच्छ्रगतं पश्य शीघ्रं यानं प्रयच्छ ह।

महाराज! कुन्तीपुत्र भीमसेनके द्वारा कर्णको बहुसंख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ देख, दुर्योधनने दुःशलसे कहा—'दुःशल! देखो, कर्ण संकटमें पड़ा है। तुम शीघ्र उसके लिये रथ प्रस्तुत करो' ॥

एवमुक्तस्ततो राज्ञा दुःशलः समुपाद्रवत्।
दुःशलस्य रथं कर्णश्चारुरोह महारथः ॥
तौ पार्थः सहसा गत्वा विव्याध दशभिः शरैः।
पुनश्च कर्णं विव्याध दुःशलस्य शिरोऽहरत् ॥)

राजाके ऐसा कहनेपर दुःशल कर्णके पास दौड़ा गया; फिर महारथी कर्ण दुःशलके रथपर आरूढ़ हो गया। इसी समय भीमसेनने सहसा जाकर दस बाणोंसे उन दोनोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् पुनः कर्णपर आघात किया और दुःशलका सिर काट लिया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और कर्णकी पराजयविषयक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४२½ श्लोक हैं)

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना, द्रोणाचार्यका उसे द्यूतका परिणाम दिखाकर युद्धके लिये वापस भेजना और उसके साथ युधामन्यु तथा उत्तमौजाका युद्ध

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन्।

संजय कहते हैं—महाराज! इस प्रकार जब वह सेना विचलित होकर भाग चली, अर्जुन सिंधुराजके वधके लिये आगे बढ़ गये और उनके पीछे सात्यकि तथा भीमसेन भी वहाँ जा पहुँचे, तब आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथद्वारा बहुत-से आवश्यक कार्योंके सम्बन्धमें सोचता-विचारता हुआ द्रोणाचार्यके पास गया ॥ १½ ॥

स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ॥ २ ॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान्।

आपके पुत्रका वह रथ मन और वायुके समान वेगशाली था। वह बड़ी तेजीके साथ तत्काल द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ २½ ॥

उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद् रक्तलोचनः ॥ ३ ॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः।

उस समय आपका पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन क्रोधसे लाल आँखें करके घबराहटके स्वरमें द्रोणाचार्यसे इस प्रकार बोला—॥ ३½ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ४ ॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥

'आचार्य ! अर्जुन, भीमसेन और अपराजित वीर सात्यकि—ये तीनों महारथी मेरी सम्पूर्ण एवं विशाल सेनाओं-को पराजित करके सिंधुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सका है ॥ ४-५ ॥

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्वं एवापराजिताः।
यदि तावद् रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद।

'वहाँ भी वे सब-के-सब अपराजित होकर मेरी सेनापर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया, महारथी अर्जुन रणभूमिमें (अधिक शक्तिशाली होनेके कारण) आपको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं; परंतु दूसरोंको मान देनेवाले गुरुदेव ! सात्यकि और भीमसेनने किस तरह आपका लंघन किया है ? ॥ ६½ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥

'विप्रवर ! सात्यकि, भीमसेन तथा अर्जुनके द्वारा आपकी पराजय समुद्रको सुखा देनेके समान इस संसारमें एक आश्चर्य-भरी घटना है। लोग बड़े जोरसे इस बातकी चर्चा कर रहे हैं ॥ ७-८ ॥

कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥

'सारे योद्धा यह कह रहे हैं कि धनुर्वेदके पारंगत आचार्य द्रोण कैसे युद्धमें पराजित हो गये। आपका यह हारना लोगों-के लिये अविश्वसनीय हो गया है ॥ ९ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥

'वास्तवमें मेरा भाग्य ही खोटा है। ये तीनों महारथी जहाँ आप-जैसे पुरुषसिंह वीरको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, उस युद्धमें मेरा विनाश ही अवश्यम्भावी है ॥ १० ॥

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
यद् गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥

'ऐसी परिस्थितिमें जो कर्तव्य है, उसके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है, यह बताइये। मानद ! जो हो गया सो तो हो ही गया। अब जो शेष कार्य है, उसका विचार कीजिये ११

यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत् संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥

'ब्रह्मन् ! इस समय सिंधुराजकी रक्षाके लिये तुरंत करने योग्य जो कार्य हमारे सामने प्राप्त है, उसे अच्छी तरह सोच-विचारकर शीघ्र सम्पन्न कीजिये' ॥ १२ ॥

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहुविधं तात यत् कृत्यं तच्छृणुष्व मे।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥
यावत् तेषां भयं पश्चात् तावदेषां पुरःसरम्।
तद् गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! सोचने-विचारनेको तो बहुत कुछ है, किंतु इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, वह मुझसे सुनो। पाण्डवपक्षके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं। पीछे उनका जितना भय है, उतना ही आगे भी है। परंतु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वहीं मेरी समझमें अधिक भयकी आशंका है ॥ १३-१४ ॥

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५ ॥

इस समय कौरव-सेना आगे और पीछेसे भी शत्रुओंके आक्रमणका शिकार हो रही है। इस परिस्थितिमें मैं सबसे आवश्यक कार्य यही मानता हूँ कि सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा की जाय ॥ १५ ॥

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद् भीतो धनंजयात्।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥

तात ! जयद्रथ कुपित हुए अर्जुनसे डरा हुआ है। अतः वह हमारे लिये सबसे रक्षणीय है। भयंकर वीर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथको ही लक्ष्य करके गये हैं ॥ १६ ॥

सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।

शकुनिकी बुद्धिमें जो जूआ खेलनेकी बात पैदा हुई थी, वह वास्तवमें आज इस रूपमें सफल हो रही है। उस दिन सभामें किसी पक्षकी जीत या हार नहीं हुई थी। आज यहाँ जो हमलोग प्राणोंकी बाजी लगाकर जूआ खेल रहे हैं, इसीमें वास्तविक हार-जीत होनेवाली है ॥ १७½ ॥

यान् स्म तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः।

शकुनि कौरवसभामें पहले जिन भयंकर पासोंको हाथमें लेकर जूएका खेल खेलता था, उन्हें वह तो पासे ही समझता था, परंतु वास्तवमें वे दुर्धर्ष बाण थे ॥ १८½ ॥

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥

तात ! (असली जूआ तो वहाँ हो रहा है) जहाँ तुम्हारे बहुत-से कौरव योद्धा खड़े हैं। इस सेनाको ही तुम जुआरी समझो। प्रजानाथ ! बाणोंको ही पासे मान लो। राजन् ! सिंधुराज जयद्रथको ही बाजी या दाँव समझो। उसीपर जूए-की हार-जीतका फैसला होगा ॥ १९-२० ॥

सैन्धवे तु महद् द्यूतं समासक्तं परैः सह।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥

महाराज ! सिंधुराजके ही जीवनकी बाजी लगाकर शत्रुओंके साथ हमारी भारी द्यूतक्रीड़ा चल रही है। यहाँ तुम सब लोग अपने जीवनका मोह छोड़कर रणभूमिमें विधिपूर्वक जयद्रथकी रक्षा करो। निश्चय ही उसीपर हम द्यूतक्रीड़ा करनेवालोंकी असली हार-जीत निर्भर है ॥ २१-२२ ॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥ २३ ॥

राजन् ! जहाँ वे महाधनुर्धर योद्धा सावधान होकर सिंधुराजकी रक्षा करने लगे हैं, वहीं तुम स्वयं भी शीघ्र चले जाओ और सिंधुराजके उन रक्षकोंकी रक्षा करो ॥ २३ ॥

इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥२४॥

मैं तो यहीं रहूँगा और तुम्हारे पास दूसरे-दूसरे रक्षकोंको भेजता रहूँगा। साथ ही पाण्डवों तथा सृंजयोंसहित आये हुए पाञ्चालोंको व्यूहके भीतर जानेसे रोकूँगा ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनोऽगच्छत् तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५ ॥

तदनन्तर आचार्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने आपको उग्र कर्म करनेके लिये तैयार करके अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र वहाँसे चला गया ॥ २५ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् ॥ २६ ॥

अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा सेनाके बाहरी भागसे होकर सव्यसाची अर्जुनके समीप जाने लगे ॥ २६ ॥

यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २७ ॥

महाराज ! जब अर्जुन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाके भीतर घुसे थे, उस समय (ये दोनों भीमके साथ ही थे, किंतु) कृतवर्माने उन दोनोंको पहले रोक दिया था ॥ २७ ॥

पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम्।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥ २८ ॥

अब वे दोनों वीर पार्श्वभागसे आपकी सेनाका भेदन करके उसके भीतर घुस गये। पार्श्वभागसे सेनाके भीतर आते हुए उन दोनों वीरोंको कुरुराज दुर्योधनने देखा ॥२८॥

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत् संख्यमुत्तमम्।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥ २९ ॥

तब उस बलवान् भरतवंशी वीर दुर्योधनने तुरंत आगे बढ़कर बड़ी उतावलीके साथ आते हुए उन दोनों भाइयोंके साथ भारी युद्ध छेड़ दिया ॥ २९ ॥

तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ ३० ॥

वे दोनों क्षत्रियशिरोमणि विख्यात महारथी वीर थे। उन दोनोंने युद्धस्थलमें धनुष उठाकर दुर्योधनपर धावा बोल दिया ॥ ३० ॥

तमविध्यद् युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३१ ॥

युधामन्युने कंकपत्रयुक्त तीस बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया। फिर बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३१ ॥

दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत्।
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव ॥ ३२ ॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनने एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा काट डाली और एकसे उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३२ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत्।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३३ ॥

इतना ही नहीं, एक भल्ल मारकर उसने युधामन्युके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। फिर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे।
व्यसृजत् तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे ॥ ३४ ॥

इससे युधामन्यु भी कुपित हो उठा। उसने युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रकी छातीमें तीस बाण मारे ॥

तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत् सारथिं चास्य प्राहिणोद् यमसादनम् ॥३५॥

इसी प्रकार उत्तमौजाने भी अत्यन्त कुपित हो अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उसके सारथिको गहरी चोट पहुँचायी और उसे यमलोक भेज दिया ॥ ३५ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः।
जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! तब दुर्योधनने भी पाञ्चालराज उत्तमौजाके चारों घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको सारथिसहित मार डाला ॥ ३६ ॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥ ३७ ॥

युद्धमें घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर उत्तमौजा शीघ्रतापूर्वक अपने भाई युधामन्युके रथपर जा चढ़ा ॥३७॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन् भुवि ॥ ३८ ॥

भाईके रथपर बैठकर उत्तमौजाने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा दुर्योधनके घोड़ोंपर इतना प्रहार किया कि वे प्राणशून्य होकर धरतीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥ ३९ ॥

घोड़ोंके धराशायी हो जानेपर युधामन्युने उस युद्धस्थलमें उत्तम बाणका प्रहार करके दुर्योधनके धनुष और तरकसको भी शीघ्रतापूर्वक काट गिराया ॥ ३९ ॥

हताश्वसूतात् स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४० ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर आपका पुत्र राजा दुर्योधन रथसे उतर पड़ा और गदा हाथमें लेकर पाञ्चाल देशके उन दोनों वीरोंकी ओर दौड़ा ॥ ४० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद् युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए कुरुराज दुर्योधनको अपनी ओर आते देख दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजा रथके पिछले भागसे नीचे कूद गये ॥ ४१ ॥

ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए गदाधारी दुर्योधनने घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस सुवर्णजटित सुन्दर रथको गदाके आघातसे चूर-चूर कर दिया ॥ ४२ ॥

भङ्क्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार उस रथको तोड़-फोड़कर घोड़ों और सारथिसे हीन हुआ शत्रुसंतापी दुर्योधन शीघ्र ही मद्रराज शल्यके रथपर जा चढ़ा ॥ ४३ ॥

पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् पाञ्चालसेनाके वे दोनों प्रधान महारथी राजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा दूसरे दो रथोंपर आरूढ़ होकर अर्जुनके समीप चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका युद्धविषयक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३० ॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥
राधेयो भीममानर्च्छद् युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ महाराज ! इस प्रकार रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ जानेपर जब सारी सेनाएँ सब ओरसे पीड़ित और व्याकुल हो गयीं, तब राधानन्दन कर्ण युद्धके लिये पुनः भीमसेनके सामने आया । ठीक उसी तरह, जैसे वनमें एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर आक्रमण करता है ॥ १-२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद् रणः ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! महाबली कर्ण और भीमसेनने अर्जुनके रथके निकट जाकर जो बड़े वेगसे युद्ध किया, उनका वह संग्राम कैसा हुआ ? ॥ ३ ॥

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥

भीमसेनने युद्धमें जब राधानन्दन महारथी कर्णको पहले ही जीत लिया था, तब वह पुनः उनका सामना करनेके लिये कैसे आया ? ॥ ४ ॥

भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥

अथवा भीमसेन भूमण्डलके श्रेष्ठ एवं विख्यात महारथी सूतपुत्र कर्णसे समराङ्गणमें युद्ध करनेके लिये कैसे आगे बढ़े ? ॥ ५ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥

भीष्म और द्रोणसे पार पाकर धर्मराज युधिष्ठिरको अब महारथी कर्णके सिवा दूसरे किसीसे भय नहीं रह गया है ॥

भयाद् यस्य महाबाहोर्न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन् नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७ ॥

पहले जिस महाबाहु महामना राधानन्दन कर्णके बलपराक्रमका नित्य चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर भयके मारे बहुत वर्षोंतक नींद नहीं लेते थे, उसी सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने समरभूमिमें किस तरह युद्ध किया ? ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणभक्त, पराक्रमसम्पन्न और समरभूमिमें कभी पीछे न हटनेवाला है, योद्धाओंमें श्रेष्ठ उस कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ८ ॥

यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥

जो वीर पहले आपसमें भिड़ चुके थे, वे ही महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कर्ण और भीमसेन यहाँ पुनः कैसे युद्धमें प्रवृत्त हुए ? ॥ ९ ॥

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ १० ॥

पहले तो सूतपुत्र कर्णने अर्जुनके सिवा अन्य पाण्डवोंके प्रति बन्धुत्व दिखाया था और वह दयालु भी है ही, तथापि कुन्तीके वचनोंको बारंबार स्मरण करते हुए भी उसने भीमसेनके साथ कैसे युद्ध किया ? ॥ १० ॥

भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वैरं पुरा कृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥

अथवा शूरवीर भीमसेनने पहलेके किये हुए वैरका स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके साथ उस रणक्षेत्रमें किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ११ ॥

आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान् पाण्डवानिति ॥१२॥

संजय ! मेरा बेटा दुर्योधन सदा यही आशा करता है कि कर्ण संग्राममें समस्त पाण्डवोंको जीत लेगा ॥ १२ ॥

जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥

युद्धस्थलमें जिसके ऊपर मेरे मूर्ख पुत्रकी विजयकी आशा लगी हुई है, उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥

तात ! जिसका आश्रय लेकर मेरे पुत्रोंने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर ठाना है, उस सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १४ ॥

अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥

सूतपुत्रके द्वारा किये गये अनेक अपकारोंको स्मरण करके भीमसेनने उसके साथ किस तरह युद्ध किया ? ॥१५॥

योऽजयत् पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥

जिस पराक्रमी वीरने एकमात्र रथकी सहायतासे सारी पृथ्वीको जीत लिया, उस सूतपुत्रके साथ रणभूमिमें भीमसेनने किस तरह युद्ध किया ? ॥ १६ ॥

यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥

जो जन्मसे ही कवच और कुण्डलोंके साथ उत्पन्न हुआ था, उस सूतपुत्रके साथ समराङ्गणमें भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १७ ॥

यथा तयोर्युद्धमभूद् यश्चासीद् विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ १८ ॥

संजय ! उन दोनों वीरोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ और उनमेंसे जिस एकको विजय प्राप्त हुई, उसका वह सब समाचार मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम इस कार्यमें कुशल हो ॥ १८ ॥

संजय उवाच

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनंजयौ ॥ १९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीमसेनने रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको छोड़कर वहाँ जानेकी इच्छा की, जहाँ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान थे ॥ १९ ॥

तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

महाराज ! वहाँसे जाते हुए भीमसेनपर आक्रमण करके राधापुत्र कर्णने उनके ऊपर कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करता है ॥ २० ॥

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीमसेनमाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥

बलवान् अधिरथपुत्रने खिलते हुए कमलके समान मुखसे हँसकर जाते हुए भीमसेनको युद्धके लिये ललकारा ॥ २१ ॥

कर्ण उवाच

भीमाहितैस्तव रणे स्वप्नेऽपि न विभावितम् ।
तद् दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥ २२ ॥

कर्णने कहा—भीमसेन ! तुम्हारे शत्रुओंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि तुम युद्धमें पीठ दिखाओगे; परंतु इस समय अर्जुनसे मिलनेके लिये तुम मुझे पीठ क्यों दिखा रहे हो ? ॥ २२ ॥

कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुम्हारा यह कार्य कुन्तीके पुत्रके योग्य नहीं है । अतः मेरे सम्मुख रहकर मुझपर बाणोंकी वर्षा करो ॥ २३ ॥

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद् युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥

कर्णकी ओरसे रणक्षेत्रमें वह युद्धकी ललकार भीमसेन न सह सके । उन्होंने अर्धमण्डल गतिसे घूमकर सूतपुत्रके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ २४ ॥

अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥

महायशस्वी भीमसेन सम्पूर्ण शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, कवचधारी तथा द्वैरथ युद्धके लिये तैयार कर्णके ऊपर सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
हत्वा तस्यानुगांस्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥

कलहका अन्त करनेकी इच्छासे महाबली भीमसेन कर्णको मार डालना चाहते थे और इसीलिये उसे बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर रहे थे । वे कर्णको मारकर उसके अनुगामी सेवकोंका भी वध करनेकी इच्छा रखते थे ॥ २६ ॥

तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परंतपः ।
अमर्षात् पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २७ ॥

माननीय नरेश ! शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुनन्दन भीमसेन कुपित हो अमर्षवश कर्णपर नाना प्रकारके भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत् परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥

उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे मतवाले हाथीके समान मस्तीसे चलनेवाले भीमसेनकी उस बाणवर्षाको ग्रस लिया ॥ २८ ॥

स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद् बली ॥ २९ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर बलवान् कर्ण अपनी विद्याद्वारा आचार्य द्रोणके समान यथावत् पूजित हो रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २९ ॥

युध्यमानं तु संरम्भाद् भीमसेनं हसन्निव ।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ॥ ३० ॥

राजन् ! क्रोधपूर्वक युद्ध करनेवाले कुन्तीपुत्र भीमसेनकी हँसी उड़ाता हुआ-सा कर्ण उनके सामने जा पहुँचा ॥ ३० ॥

तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥

कुन्तीकुमार भीम युद्धस्थलमें कर्णकी उस हँसीको न सह सके । सब ओर युद्ध करते हुए समस्त वीरोंको देखते-देखते बलवान् भीमसेनने कुपित हो सामने आये हुए कर्णकी छातीमें वत्सदन्त नामक बाणोंद्वारा उसी प्रकार चोट पहुँचायी, जैसे महावत महान् गजराजको अंकुशोंद्वारा पीड़ित करता है ॥ ३१-३२ ॥

पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् विचित्र कवच धारण करनेवाले सूतपुत्रको सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तथा अच्छी तरह छोड़े हुए इक्कीस बाणोंद्वारा पुनः क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३३ ॥

कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः संछन्नान् वातरंहसः ।
हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४ ॥

उधर कर्णने भीमसेनके सोनेकी जालियोंसे आच्छादित हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको पाँच-पाँच बाणोंसे वेध दिया ॥ ३४ ॥

ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन् निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥

राजन् ! तदनन्तर आधे निमेषमें ही भीमसेनके रथपर कर्णद्वारा बाणोंका जाल-सा बिछाया जाता दिखायी दिया ॥ ३५ ॥

सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥

महाराज ! वहाँ कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस समय रथ, ध्वज और सारथिसहित पाण्डुनन्दन भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ३६ ॥

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत् कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥

कर्णने चौंसठ बाण मारकर भीमसेनके सुदृढ़ कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं । फिर कुपित होकर उसने मर्मभेदी नाराचोंसे कुन्तीकुमारको अच्छी तरह घायल किया ॥ ३७ ॥

ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥

महाबाहु भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंकी कोई परवा न करके बिना किसी घबराहटके सूतपुत्रके इतने समीप पहुँच गये, मानो उससे सटे जा रहे हों ॥ ३८ ॥

स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद् भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंको अपने शरीरपर धारण करते हुए भीमसेन रणक्षेत्रमें व्यथित नहीं हुए ॥ ३९ ॥

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अच्छी तरह तेज किये हुए बत्तीस तीखे भल्लोंसे प्रतापी भीमसेनने समराङ्गणमें कर्णको भारी चोट पहुँचायी ॥ ४० ॥

अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१ ॥

उधर कर्ण जयद्रथके वधकी इच्छावाले महाबाहु भीमसेन-पर अनायास ही बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्वं वैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥

राधानन्दन कर्ण तो भीमसेनपर कोमल प्रहार करता हुआ रणभूमिमें उनके साथ युद्ध करता था; परंतु भीमसेन पहलेके वैरको बारंबार स्मरण करते हुए क्रोधपूर्वक उसके साथ जूझ रहे थे ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो नामृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत् तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले अमर्षशील भीमसेन कर्णद्वारा दिखायी जानेवाली कोमलता या ढिलाईको अपने लिये अपमान समझकर उसे सह न सके । अतः उन्होंने भी तुरंत ही उसपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ४३ ॥

ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए वे बाण कूजते हुए पक्षियोंके समान वीर कर्णपर सब ओरसे पड़ने लगे ॥४४॥

हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥ ४५ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए चमचमाती हुई धारवाले सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित उन बाणोंने राधानन्दन कर्णको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे पतिंगे आगको आच्छादित कर लेते हैं ॥ ४५ ॥

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥

भरतवंशी नरेश ! इस प्रकार सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भी भीमपर भयंकर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून् समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः ॥ ४७ ॥

परंतु समरभूमिमें शोभा पानेवाले कर्णके उन वज्रोपम बाणोंको भीमसेनने अपने पास आनेसे पहले ही बहुत-से भल्लोंद्वारा काट गिराया ॥ ४७ ॥

पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिंदमः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! शत्रुओंका दमन करनेवाले सूर्यपुत्र कर्णने युद्धमें पुनः बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥ ४८ ॥

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥

भारत ! उस समय युद्धस्थलमें बाणोंसे चिने हुए शरीर-वाले भीमसेनको सब लोगोंने कंटकोंसे युक्त साहीके समान देखा ॥ ४९ ॥

हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान् कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिवान् ॥ ५० ॥

वीर भीमसेनने कर्णके धनुषसे छूटे और शिलापर तेज किये हुए सुवर्णपंखयुक्त बाणोंको समराङ्गणमें अपने शरीरपर उसी प्रकार धारण किया था, जैसे अंशुमाली सूर्य अपने किरणोंको धारण करते हैं ॥ ५० ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥

भीमसेनका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था । वे वसन्तऋतुमें खिले हुए अधिकाधिक पुष्पोंसे सम्पन्न अशोक वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ५१ ॥

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे ।
नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥

महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें विशालबाहु कर्णके उस चरित्रको न सह सके । उस समय क्रोधसे उनके नेत्र घूमने लगे ॥ ५२ ॥

स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥

उन्होंने कर्णपर पचीस नाराच चलाये; उनके लगनेसे कर्ण छिपे हुए पैरोंवाले विषैले सर्पोंसे युक्त श्वेत पर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ५३ ॥

पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४ ॥

फिर देवोपम पराक्रमी भीमने अपने शरीरकी परवा न करनेवाले सूतपुत्रको उसके मर्मस्थानोंमें छः और आठ बाण मारकर घायल कर दिया ॥ ५४ ॥

पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥

इसके बाद हँसते हुए-से प्रतापी भीमसेनने दूसरा बाण मारकर तुरंत ही कर्णके धनुषको काट दिया ॥ ५५ ॥

जघान चतुरश्चाश्वान् सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक बाणोंका प्रहार करके उसके चारों घोड़ों और सारथिको भी मार डाला । साथ ही सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी नाराचोंसे कर्णकी छातीमें भारी आघात किया ॥ ५६ ॥

ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर सब ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार भीमसेनके बाण कर्णके शरीरको छेदकर शीघ्र ही धरतीमें समा गये ॥ ५७ ॥

स वैक्लव्यं महत् प्राप्य छिन्नधन्वा शरार्दितः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

यद्यपि कर्णको अपने पुरुषत्वका बड़ा अभिमान था, तो भी भीमसेनके बाणोंसे घायल हो धनुष कट जानेपर रथहीन होनेके कारण वह बड़ी भारी घबराहटमें पड़ गया और दूसरे रथपर बैठनेके लिये वहाँसे भाग निकला ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णकी पराजयविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भृगुवंशशिरोमणि धनुर्धर परशुरामजी साक्षात् भगवान् शङ्करके शिष्य हैं तथा कर्ण उन्हींका शिष्यत्व ग्रहण करके अस्त्रविद्यामें उनके समान ही सुयोग्य हो गया था ॥ १ ॥

तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥ २ ॥

अथवा शिष्योचित सद्गुणोंसे सम्पन्न परशुरामका वह शिष्य उनसे भी बढ़-चढ़कर है, तो भी उसे कुन्तीकुमार भीमसेनने खेल-खेलमें ही पराजित कर दिया ॥ २ ॥

यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम संजय ।
तं भीमाद् विमुखं दृष्ट्वा किं नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥३॥

संजय ! जिसपर मेरे पुत्रोंको विजयकी बड़ी भारी आशा लगी हुई है, उसे भीमसेनसे पराजित होकर युद्धसे विमुख हुआ देख दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ३ ॥

कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत् ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥

तात ! अपने पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले महाबली भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? अथवा कर्णने रणक्षेत्रमें भीमसेनको अग्निके समान तेजसे प्रज्वलित होते देख उसके बाद क्या किया ? ॥ ४ ॥

संजय उवाच

रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वायुके वेगसे ऊपर उठते हुए समुद्रके समान कर्णने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ होकर पुनः पाण्डुनन्दन भीमपर आक्रमण किया ॥

क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णको क्रोधमें भरा हुआ देखकर आपके पुत्रोंने यही मान लिया कि भीमसेन अब अग्निके मुखमें दी हुई आहुतिके समान नष्ट हो जायँगे ॥ ६ ॥

चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तदनन्तर धनुषकी टंकार और हथेलीका भयानक शब्द करते हुए राधानन्दन कर्णने भीमसेनके रथपर धावा बोल दिया ॥

पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥

राजन् ! शूरवीर कर्ण और महामनस्वी भीमसेन—इन दोनों वीरोंमें पुनः घोर संग्राम छिड़ गया ॥ ८ ॥

संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षांचक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥

एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों महाबाहु योद्धा अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेको नेत्रोंद्वारा दग्ध-से करते हुए परस्पर दृष्टिपात करने लगे ॥ ९ ॥

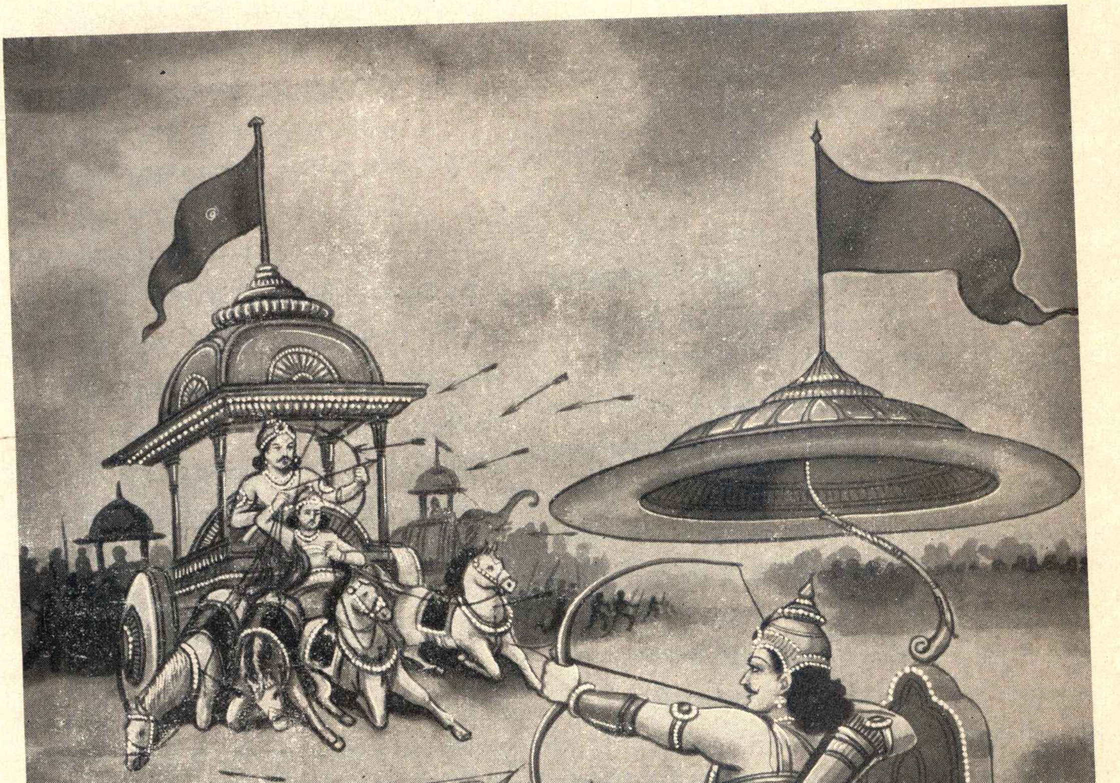
क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिंदमौ ॥ १० ॥

उन दोनोंकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी थीं । दोनों ही फुफकारते हुए सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे । दोनों ही शत्रुदमन वीर उग्र हो परस्पर भिड़कर एक दूसरेको बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करने लगे ॥ १० ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥

वे दो व्याघ्रोंके समान रोषावेशमें भरकर दो बाजोंके समान परस्पर शीघ्रतापूर्वक झपटते थे तथा अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दो शरभोंके समान परस्पर युद्ध करते थे ॥ ११ ॥

ततो भीमः स्मरन् क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिंदमः ॥ १२ ॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान् सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १३ ॥
दग्धुमैच्छच्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।



भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥ १५ ॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १६ ॥
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥
यच्चापि तान् प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां संनिधौ तव ॥ १८ ॥
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान् समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥
बाल्यात् प्रभृति चारिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥

जूआके समय, वनवासकालमें तथा विराटनगरमें जो दुःख प्राप्त हुआ था, उनका स्मरण करके, आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंके राज्यों तथा समुज्ज्वल रत्नोंका अपहरण किया था, उसे याद करके, पुत्रोंसहित आपने पाण्डवोंको जो निरन्तर क्लेश प्रदान किये हैं, उन्हें ध्यानमें लाकर, निरपराध कुन्ती-देवी तथा उनके पुत्रोंको जो आपने जला डालनेकी इच्छा की थी, सभाके भीतर आपके दुरात्मा पुत्रोंने जो द्रौपदीको महान् कष्ट पहुँचाया था, दुःशासनने जो उसके केश पकड़े थे, भारत ! कर्णने जो उसके प्रति कठोर वचन सुनाये थे तथा कुरुनन्दन ! आपकी आँखोंके सामने ही कौरवोंने जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू दूसरा पति कर ले, तेरे ये पति अब नहीं रहे, कुन्तीके सभी पुत्र थोथे तिलोंके समान निर्वीर्य होकर नरक (दुःख) में पड़ गये हैं ।' महाराज ! आपके पुत्र जो द्रौपदीको दासी बनाकर उसका उपभोग करना चाहते थे तथा काले मृगचर्म धारण करके वनकी ओर प्रस्थान करते समय पाण्डवोंके प्रति सभामें आपके समीप ही कर्णने जो कटुवचन सुनाये थे और पाण्डवोंको तिनकोंके समान समझ कर जो आपका पुत्र दुर्योधन उछलता-कूदता था, स्वयं सुखमयी परिस्थितिमें रहते हुए भी जो उस अचेत मूर्खने संकटमें पड़े हुए पाण्डवोंके प्रति क्रोधका भाव दिखाया था, इन सब बातोंको तथा बचपनसे लेकर अबतक आपकी ओरसे प्राप्त हुए अपने दुःखोंको याद करके शत्रुओंका दमन करनेवाले शत्रुनाशक धर्मात्मा भीमसेन अपने जीवनसे विरक्त हो उठे थे ॥ १२–२० ॥

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥

उस समय भरतवंशके उस सिंहने अपने जीवनका मोह छोड़कर सुवर्णमय पृष्ठभागसे सुशोभित दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ कर्णपर धावा किया ॥ २१ ॥

स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ २२ ॥

कर्णके रथपर भीमसेनने सानपर चढ़ाकर स्वच्छ किये हुए तेजस्वी बाणोंका जाल-सा बिछाकर सूर्यकी प्रभाको आच्छादित कर दिया ॥ २२ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।
व्यधमद् भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने हँसकर शिलापर तेज किये हुए पंखयुक्त बाणोंद्वारा भीमसेनके उन बाण-समूहोंको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २३ ॥

महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥

महारथी महाबाहु महाबली अधिरथपुत्र कर्णने उस समय नौ तीखे महाबाणोंसे भीमसेनको घायल कर दिया॥ २४॥

स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥

जैसे मतवाला हाथी अङ्कुशसे रोका जाय, उसी प्रकार पंखयुक्त बाणोंद्वारा रोके जाते हुए भीमसेन तनिक भी घबराहटमें न पड़कर सूतपुत्र कर्णपर चढ़ आये ॥ २५ ॥

तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥

जैसे मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीपर धावा करता है, उसी प्रकार पाण्डवशिरोमणि वेगशाली भीमको वेगपूर्वक आक्रमण करते देख कर्ण भी युद्धस्थलमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ २६ ॥

ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥

तदनन्तर कर्णने हर्षपूर्वक सैकड़ों भेरियोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले शङ्खको बजाकर सब ओर गुँजा दिया । इससे पाण्डवोंकी सेनामें विक्षुब्ध समुद्रके समान हलचल पैदा हो गयी ॥ २७ ॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस सेनाको विक्षुब्ध हुई देख भीमसेनने कर्णके पास जाकर उसे बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ २८ ॥

अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद् रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २९ ॥

उस रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमको अपने बाणोंसे आच्छादित करते हुए कर्णने रीछके समान रंगवाले अपने काले घोड़ोंको भीमसेनके हंस-सदृश श्वेतवर्णवाले उत्तम घोड़ोंके साथ मिला दिया ॥ २९ ॥

ऋक्षवर्णान् हयान् कर्कैर्मिश्रान् मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद् बलम् ॥ ३० ॥

रीछके समान रंगवाले और वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको श्वेत अश्वोंके साथ मिला हुआ देख आपके पुत्रोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ३० ॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥

महाराज ! वायुके समान वेगवाले वे सफेद और काले घोड़े परस्पर मिलकर आकाशमें उठे हुए सफेद और काले बादलोंके समान अधिक शोभा पा रहे थे ॥ ३१ ॥

संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ।
संत्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥

रोषावेशमें भरकर क्रोधसे लाल आँखें किये कर्ण और भीमसेनको देखकर आपके महारथी भयभीत हो काँपने लगे ॥

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंका संग्राम यमराजके राज्यके समान अत्यन्त भयंकर था। प्रेतराजकी पुरीके समान उसकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ ३३ ॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥

उस विचित्र-से समाजको देखते हुए महारथियोंने उस महासमरमें निश्चय ही उन दोनोंमेंसे किसी एक ही व्यक्तिकी विजय होती नहीं देखी ॥ ३४ ॥

तयोः प्रैक्षन्त सम्मर्दं संनिकृष्टं महास्त्रयोः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ३५ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! पुत्रोंसहित आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप महान् अस्त्रधारी भीमसेन और कर्णका अत्यन्त निकटसे होनेवाला संघर्ष सब लोग देख रहे थे ॥ ३५ ॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥

उन दोनों अद्भुत पराक्रमी शत्रुहन्ता वीरोंने एक-दूसरेको तीखे बाणोंसे आच्छादित करते हुए आकाशको बाण-समूहोंसे व्याप्त कर दिया ॥ ३६ ॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३७ ॥

पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों महारथी वीर वर्षा करनेवाले बादलोंके समान अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ ३७ ॥

सुवर्णविकृतान् बाणान् विमुञ्चन्तावरिंदमौ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥

प्रभो ! उन दोनों शत्रुहन्ता वीरोंने सुवर्णनिर्मित बाणोंकी वर्षा करके आकाशको उसी प्रकार प्रकाशमान कर दिया, जैसे बड़ी-बड़ी उल्काओंके गिरनेसे वह प्रकाशित होने लगता है ॥ ३८ ॥

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३९ ॥

राजन् ! उन दोनोंके छोड़े हुए गीधकी पाँखवाले बाण शरद् ऋतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी श्रेणियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३९ ॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम्।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनंजयौ ॥ ४० ॥

शत्रुदमन भीमसेनको सूतपुत्रके साथ उलझा हुआ देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमपर यह बहुत बड़ा भार समझा ॥

तत्राधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥

उस युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए घोड़े, मनुष्य और हाथी बाणोंके गिरने-के स्थानको लाँघकर उससे दूर जा गिरते थे ॥ ४१ ॥

पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः।
कृतो राजन् महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥

राजन् ! महाराज ! कुछ सैनिक गिर रहे थे, कुछ गिर चुके थे और दूसरे बहुत-से योद्धा प्राणशून्य हो गये थे; उन सबके कारण आपके पुत्रोंकी सेनामें बड़ा भारी नर-संहार हुआ ॥ ४२ ॥

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः।
क्षणेन भूमिः संजज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३ ॥
(आक्रीडमिव रुद्रस्य दक्षयज्ञनिबर्हणे।)

भरतश्रेष्ठ ! मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके निष्प्राण शरीरोंसे वहाँकी भूमि क्षणभरमें ढक गयी और दक्षयज्ञके संहारकालमें रुद्रकी क्रीडाभूमिके समान प्रतीत होने लगी ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

(दक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णके सारथिसहित रथका विनाश तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम्।
यत् कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मैं भीमसेनके पराक्रमको

अत्यन्त अद्भुत मानता हूँ कि उन्होंने समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम दिखानेवाले कर्णके साथ भी युद्ध किया ॥ १ ॥

त्रिदशानपि वा युक्तान् सर्वशस्त्रधरान् युधि ।
वारयेद् यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥ २ ॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत् संयुगे पार्थं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

संजय ! जो कर्ण रणक्षेत्रमें युद्धके लिये सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करके सुसज्जित हुए देवताओं तथा यक्षों, असुरों और मनुष्योंका भी निवारण कर सकता है, वह युद्धमें विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए-से पाण्डुनन्दन कुन्तीकुमार भीमसेनको कैसे नहीं लाँघ सका ? इसका कारण मुझे बताओ ॥ २-३ ॥

कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाजय एव च ॥ ४ ॥

उन दोनोंमें प्राणोंकी बाजी लगाकर किस प्रकार युद्ध हुआ ? मैं समझता हूँ कि यहीं उभय पक्षकी जय अथवा विजय निर्भर है ॥ ४ ॥

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान्॥ ५ ॥

सूत ! रणक्षेत्रमें कर्णको पाकर मेरा पुत्र दुर्योधन श्रीकृष्ण तथा सात्यकि आदि यादवोंसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद् भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके द्वारा कर्णके बारंबार पराजित होनेकी बात सुनकर मेरे मनपर मोह-सा छा जाता है ॥ ६ ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
न हि कर्णो महेष्वासान् पार्थाञ्जेष्यति संजय ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रकी दुर्नीतियोंके कारण मैं समस्त कौरवोंको नष्ट हुआ ही मानता हूँ । संजय ! कर्ण कभी महाधनुर्धर कुन्तीकुमारोंको नहीं जीत सकेगा ॥ ७ ॥

कृतवान् यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥

कर्णने पाण्डुपुत्रोंके साथ जो-जो युद्ध किये हैं, उन सबमें पाण्डवोंने ही रणक्षेत्रमें कर्णको जीता है ॥ ८ ॥

अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः ।
न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥

तात ! इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी पाण्डवोंपर विजय पाना असम्भव है; परंतु मेरा मूर्ख पुत्र दुर्योधन इस बातको नहीं समझता है ॥ ९ ॥

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १० ॥

मेरा पुत्र कुबेरके समान कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके धनका अपहरण करके ऊँचे स्थानसे मधु लेनेकी इच्छावाले मूर्ख मनुष्यके समान पतनके भयको नहीं समझ रहा है ॥ १० ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥

वह छल-कपटकी विद्याको जानता है । अतः छलसे ही उन महामनस्वी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण करके उसे जीता हुआ मानकर पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ११ ॥

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः॥ १२ ॥

मुझ अकृतात्माने भी पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर सदा धर्मपर स्थित रहनेवाले महात्मा पाण्डवोंको ठगा है ॥ १२ ॥

शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३ ॥

दूरदर्शी युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित संधिकी अभिलाषा रखते थे; परंतु उन्हें असमर्थ मानकर मेरे पुत्रोंने उनकी बात ठुकरा दी ॥ १३ ॥

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥

अनेक बार दिये गये उन दुःखों और सम्पूर्ण अपकारोंको मनमें रखकर महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके साथ युद्ध किया है ॥ १४ ॥

तस्मान्मे संजय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥

अतः संजय ! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले युद्धस्थलके श्रेष्ठ वीर कर्ण और भीमसेनने समराङ्गणमें जिस प्रकार युद्ध किया, वह सब मुझे बताओ ॥ १५ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्ण और भीमसेनके युद्धका यथावत् वृत्तान्त सुनिये । वे दोनों जंगली हाथियोंके समान एक दूसरेके वधके लिये उत्सुक थे ॥ १६ ॥

राजन् वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए सूर्यपुत्र कर्णने कुपित हुए शत्रुदमन पराक्रमी भीमसेनको अपने बल-पराक्रमका परिचय देते हुए तीस बाणोंसे बींध डाला ॥ १७ ॥

महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।

अहनद् भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ! कर्णने चमकते हुए अग्रभागवाले सुवर्ण-जटित महान् वेगशाली बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ १८ ॥

तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १९ ॥

इस प्रकार बाण चलाते हुए कर्णके धनुषको भीमसेनने तीन तीखे बाणोंद्वारा काट डाला और एक भल्ल मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १९ ॥

स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम्।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥

तब भीमसेनके वधकी अभिलाषा रखकर कर्णने वेगपूर्वक एक शक्ति हाथमें ली, जिसका डंडा सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देता था ॥ २० ॥

प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम्।
समुत्क्षिप्य च राधेयः संधाय च महाबलः ॥ २१ ॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव।

वह महाशक्ति दूसरी कालशक्तिके समान प्रतीत होती थी। महाबली राधापुत्र कर्णने जीवनका अन्त कर देनेवाली उस शक्तिको लेकर ऊपर उठाया और उसे धनुषपर रखकर भीमसेनपर चला दिया ॥ २१½ ॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम् ॥ २२ ॥
ननाद सुमहानादं बलवान् सूतनन्दनः।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥ २३ ॥

इन्द्रके वज्रकी भाँति उस शक्तिको छोड़कर बलवान् सूतनन्दन कर्णने बड़े जोरसे गर्जना की। उस समय उस सिंहनादको सुनकर आपके पुत्र बड़े प्रसन्न हुए ॥२२-२३॥

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम्।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटकर आकाशमें सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित होनेवाली उस शक्तिको भीमसेनने सात बाणोंसे आकाशमें ही काट डाला ॥ २४ ॥

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसंनिभाम्।
मार्गमाण इव प्राणान् सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥
प्राहिणोत् कृतसंरम्भः शरान् बर्हिणवाससः।
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाधौतान् यमदण्डोपमान् मृधे॥ २६ ॥

माननीय नरेश! केचुलसे छूटी हुई सर्पिणीके समान उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े करके फिर भीमसेनने कुपित हो युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके प्राणोंकी खोज करते हुए-से सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए, यमदण्डके समान भयंकर, मयूरपंख एवं स्वर्णपंखसे विभूषित बाणोंको उसके ऊपर चलाना आरम्भ किया ॥ २५-२६ ॥

कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत् सायकांस्तदा ॥ २७ ॥

तब कर्णने भी सुवर्णमय पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषको हाथमें लेकर खींचा और बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २७ ॥

तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः।
वसुषेणेन निर्मुक्तान् नव राजन् महाशरान् ॥ २८ ॥

राजन्! वसुषेण (कर्ण) के छोड़े हुए नौ विशाल बाणोंको पाण्डुपुत्र भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २८ ॥

छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत्।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥
शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम्।

महाराज! भीमसेनने कर्णके बाणोंको काटकर सिंहके समान गर्जना की। वे दोनों बलवान् वीर कभी गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान हँकड़ते और कभी मांसके लिये परस्पर जूझनेवाले दो सिंहोंके समान दहाड़ते थे ॥ २९½ ॥

अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ॥ ३० ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ।

वे गोशालाओंमें लड़नेवाले दो बड़े-बड़े साँड़ोंके समान एक दूसरेपर चोट करनेकी इच्छा रखते हुए अवसर ढूँढ़ते और परस्पर आँखें तरेर कर देखते थे ॥ ३०½ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते थे ॥ ३१½ ॥

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद् विवृतलोचनौ।
प्रहसन्तौ तथान्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम्।

महाराज! वे परस्पर शस्त्रोंकी वर्षा करके एक दूसरेको दग्ध करते, क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखते, कभी हँसते और कभी बारंबार एक दूसरेको डाँटते एवं शङ्ख-नाद करते हुए परस्पर जूझ रहे थे ॥३२-३३½॥

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान् बाणैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च तथाप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥

आर्य! भीमसेनने पुनः कर्णके धनुषको मुठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला, शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उसके घोड़ों-

को भी बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया और उसके सारथि-को भी मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ३४-३५ ॥

ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ सूर्यपुत्रकर्ण दुस्तर चिन्तामें निमग्न हो गया ।

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥
वेपमान इव क्रोधाद् व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ।
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।

बाण-समूहोंसे मोहित होनेके कारण उसे यह नहीं सूझता था कि अब क्या करना चाहिये । कर्णको इस प्रकार संकट-में पड़ा देख राजा दुर्योधन क्रोधसे काँपने-सा लगा और दुर्जयको आदेश देता हुआ बोला—'दुर्जय ! जाओ । राधानन्दन कर्णको सामने ही पाण्डुपुत्र भीमसेन कालका ग्रास बनाना चाहता है । तुम कर्णका बल बढ़ाते हुए उस बिना दाढ़ी-मूँछके मुंडे भीमसेनको शीघ्र मार डालो' । ३७-३८½ ।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः ॥ ३९ ॥
अभ्यद्रवद् भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।

ऐसा आदेश मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनसे 'बहुत अच्छा' कहकर आपके दूसरे पुत्र दुर्जयने युद्धमें आसक्त हुए भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण किया ॥

स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।

उसने नौ बाणोंसे भीमसेनको, आठ बाणोंसे उनके घोड़ोंको और छः बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया । फिर तीन बाणोंद्वारा उनकी ध्वजापर आघात करके उन्हें भी पुनः सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ४०½ ॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद् यमसादनम् ।

तब भीमसेनने भी अत्यन्त कुपित होकर अपने शीघ्र-गामी बाणोंद्वारा दुर्जय(दुष्पराजय)के मर्मस्थलको विदीर्ण करके उसे सारथि और घोड़ोंसहित यमलोक भेज दिया ॥ ४१½ ॥

स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।

आभूषणभूषित दुर्जय अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वी-पर गिरकर चोट खाये हुए सर्पके समान छटपटाने लगा । उस समय कर्णने शोकार्त होकर रोते-रोते आपके पुत्रकी परिक्रमा की ॥ ४२½ ॥

स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥
समाचिनोद् बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शङ्कुभिः ।

इस प्रकार अपने अत्यन्त वैरी कर्णको रथहीन करके मुसकराते हुए भीमसेनने उसे बाण-समूहों, शतघ्नियों और शङ्कुओंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४३½ ॥

तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥ ४४ ॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ ४५ ॥

भीमसेनके बाणोंसे क्षत-विक्षत होनेपर भी शत्रुओंको संताप देनेवाला अतिरथी कर्ण समर-भूमिमें कुपित भीमसेनको छोड़कर भागा नहीं ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखका वध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सब प्रकारसे रथहीन एवं भीमसेनके द्वारा पुनः पराजित हुए कर्णने दूसरे रथपर बैठकर पाण्डुकुमार भीमसेनको पुनः बींध डाला ॥ १ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २ ॥

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाण-समूहोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया । उसने बड़े जोरसे गर्जना की और पुनः भीमसेनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥

तब भीमने सीधे जानेवाले दस बाणोंसे कर्णको मारकर

बदला चुकाया। तत्पश्चात् झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणों-द्वारा पुनः कर्णको बींध डाला ॥ ४ ॥

कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजन् स्तनान्तरे।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥

राजन्! भीमसेनने कर्णकी छातीमें नौ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर एक तीखे बाणसे उसकी ध्वजाको भी छेद दिया ॥ ५ ॥

सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत।
तोत्त्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर जैसे विशाल गजराजको अङ्कुशोंसे और घोड़ेको कोड़ोंसे पीटा जाय, उसी प्रकार कुन्तीकुमार भीमने तिरसठ बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥

महाराज! यशस्वी पाण्डुपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल होकर वीर कर्ण क्रोधसे लाल आँखें करके अपने दोनों जबड़ों-को चाटने लगा ॥ ७ ॥

ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम्।
प्राहिणोद् भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥

राजन्! तदनन्तर जैसे इन्द्रने बलासुरपर वज्र चलाया था, उसी प्रकार उसने भीमसेनपर समस्त शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले बाणका प्रहार किया ॥ ८ ॥

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः।
अगच्छद् दारयन् भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥

रणक्षेत्रमें सूतपुत्रके धनुषसे छूटा हुआ वह विचित्र पंखोंवाला बाण भीमसेनको विदीर्ण करके पृथ्वीको चीरता हुआ उसके भीतर समा गया ॥ ९ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन्।

तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले महाबाहु भीमसेनने चार वित्तेकी बनी हुई वज्रके समान भयंकर तथा सुवर्णमय भुजबंदसे विभूषित छः कोणोंवाली भारी गदा उठाकर उसे बिना विचारे सूतपुत्र कर्णपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तया जघानाधिरथेः सदश्वान् साधुवाहिनः ॥ ११ ॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।

जैसे कुपित हुए इन्द्रने वज्रसे असुरोंका वध किया था, उसी प्रकार क्रोधमें भरे भरतवंशी भीमने अपनी उस गदासे अधिरथ-पुत्र कर्णके उन उत्तम घोड़ोंको मार डाला, जो अच्छी तरह सवारीका काम देते थे ॥ ११½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः।

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् महाबाहु भीमसेनने दो छुरोंसे कर्णकी ध्वजा काटकर अपने बाणोंद्वारा उसके सारथिको भी मार डाला ॥ १२½ ॥

हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतितध्वजम् ॥ १३ ॥
विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः।

भारत! घोड़े और सारथिके मारे जाने तथा ध्वजाके गिर जानेपर कर्ण उस रथको छोड़कर धनुषकी टंकार करता हुआ दुखी मनसे वहाँ खड़ा हो गया ॥ १३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद् रिपुम्।

वहाँ हमलोगोंने राधानन्दन कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा। रथियोंमें श्रेष्ठ उस वीरने रथहीन होनेपर भी अपने शत्रुको आगे नहीं बढ़ने दिया ॥ १४½ ॥

विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम्।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥ १६ ॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम्।

राजन्! नरश्रेष्ठ कर्णको युद्धस्थलमें रथहीन खड़ा देख दुर्योधनने अपने भाई दुर्मुखसे कहा—'दुर्मुख! यह राधानन्दन कर्ण भीमसेनके द्वारा रथसे वञ्चित कर दिया गया है। इस महारथी नरश्रेष्ठ वीरको रथसे सम्पन्न करो' ॥

ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥
त्वरमाणोऽभ्ययात् कर्णं भीमं चावारयच्छरैः।
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी परिसंलिहन्।

भरतनन्दन! दुर्योधनकी यह बात सुनकर दुर्मुख बड़ी उतावलीके साथ कर्णके समीप आ पहुँचा और भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा रोका। संग्राममें सूतपुत्रके चरणोंका अनुसरण करनेवाले दुर्मुखको देखकर वायुपुत्र भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने दोनों गलफर चाटने लगे ॥ १७–१८½ ॥

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः।

महाराज! तदनन्तर कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर पाण्डुकुमार भीम तुरंत ही अपने रथको दुर्मुखके पास ले गये ॥ १९½ ॥

तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।

राजन्! फिर झुकी हुई गाँठवाले नौ सुमुख बाणोंद्वारा भीमसेनने दुर्मुखको उसी क्षण यमलोक पहुँचा दिया। २०½।

ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥
आस्थितः प्रबभौ राजन् दीप्यमान इवांशुमान्।

नरेश्वर! दुर्मुखके मारे जानेपर कर्ण उसी रथपर बैठ-कर देदीप्यमान सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ २१½ ॥

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥
दीर्घमुष्णं श्वसन् वीरो न किंचित् प्रत्यपद्यत ।

दुर्मुखका मर्मस्थान विदीर्ण हो गया था। वह खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा था। उसे उस दशामें देखकर कर्णके नेत्रोंमें आँसू भर आया। वह दो घड़ीतक विपक्षीका सामना न कर सका। जब उसके प्राणपखेरू उड़ गये, तब कर्ण उस शवकी परिक्रमा करके आगे बढ़ा। वह वीर गरम-गरम लंबी साँस खींचता हुआ किसी कर्तव्यका निश्चय न कर सका ॥ २२–२३½ ॥

तस्मिंस्तु विवरे राजन् नाराचान् गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।

राजन्! इसी अवसरमें भीमसेनने सूतपुत्रपर गीधकी पाँखवाले चौदह नाराच चलाये ॥ २४½ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥ २५ ॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।

महाराज! वे महातेजस्वी सुनहरी पाँखवाले बाण उसके सुवर्णजटित कवचको छिन्न-भिन्न करके दसों दिशाओंको सुशोभित करने लगे ॥ २५½ ॥

अपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।

नरेन्द्र! वे रक्तका आहार करनेवाले बाण क्रोधभरे कालप्रेरित भुजंगोंके समान सूतपुत्र कर्णका खून पीने लगे ॥

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ।

जैसे क्रोधमें भरे हुए महान् सर्प बिलोंमें प्रवेश करते समय आधे ही घुस पाये हों, उसी प्रकार वे बाण पृथ्वीमें घुसते हुए शोभा पा रहे थे ॥ २७½ ॥

तं प्रत्यविध्यद् राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।

तब कर्णने कुछ विचार न करके अत्यन्त भयंकर एवं सुवर्णभूषित चौदह नाराचोंसे भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ २८½ ॥

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥
प्राविशन् मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।

वे पंखधारी भयानक बाण भीमसेनकी बायीं भुजा छेदकर पृथ्वीमें समा गये, मानो पक्षी क्रौञ्च पर्वतको जा रहे हों ॥२९½॥

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ॥ ३० ॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः ।

वे नाराच इस पृथ्वीमें प्रवेश करते समय वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे सूर्यके डूबते समय उनकी चमकीली किरणें प्रकाशित होती हैं ॥ ३०½ ॥

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।

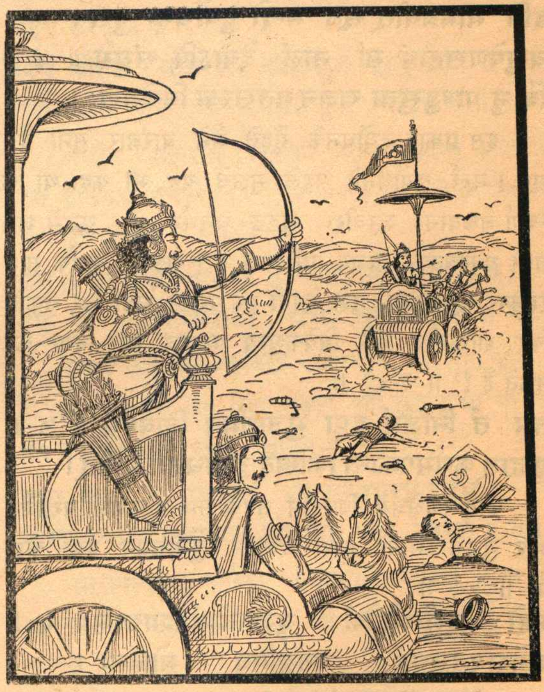
मर्मभेदी नाराचोंसे रणक्षेत्रमें विदीर्ण हुए भीमसेन उसी प्रकार भूरि-भूरि रक्त बहाने लगे, जैसे पर्वत झरनेका जल गिराता है ॥ ३१½ ॥

स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ।

तब भीमसेनने भी प्रयत्नपूर्वक गरुडके समान वेगशाली तीन बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको तथा सात बाणोंसे उसके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।

महाराज! भीमके बाणोंसे आहत होकर कर्ण विह्वल हो उठा और महान् भयके कारण युद्ध छोड़कर शीघ्रगामी घोड़ोंकी सहायतासे भाग निकला ॥ ३३½ ॥



भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३५ ॥

परंतु अतिरथी भीमसेन अपने सुवर्णभूषित धनुषको ताने हुए प्रज्वलित अग्निके समान युद्धस्थलमें ही खड़े रहे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णका पलायनविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका खेदपूर्वक भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा करना तथा भीमके द्वारा दुर्मर्षण आदि धृतराष्ट्रके पाँच पुत्रोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मैं तो दैवको ही बड़ा मानता हूँ। पुरुषार्थ तो व्यर्थ है। उसे धिक्कार है; क्योंकि उसमें स्थित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण सब प्रकारसे प्रयत्न करके भी रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमसे पार न पा सका ॥ १ ॥

कर्णः पार्थान् सगोविन्दान् जेतुमुत्सहते रणे।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥ २ ॥

'कर्ण युद्धस्थलमें कृष्णसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है। मैं संसारमें कर्णके समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देख रहा हूँ' ॥ २ ॥

इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा।
वसुषेणसहायं मां नालं देवाऽपि संयुगे ॥ ४ ॥
किं नु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः।

इस प्रकार दुर्योधनके मुँहसे मैंने बारंबार सुना है। सूत ! मूर्ख दुर्योधनने पहले मुझसे यह भी कहा था कि 'कर्ण बलवान्, शूरवीर, सुदृढ़ धनुर्धर और युद्धमें श्रम तथा थकावटपर विजय पानेवाला है। राजन् ! कर्णके साथ रहनेपर समरभूमिमें मुझे देवता भी परास्त नहीं कर सकते; फिर शक्तिहीन और विवेकशून्य पाण्डव मेरा क्या कर सकते हैं ?' ॥ ३-४½ ॥

तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥
युद्धात् कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

परंतु रणक्षेत्रमें विषहीन सर्पके समान कर्णको पराजित और युद्धसे भागा हुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ॥ ५½ ॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥ ६ ॥
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः।

अहो ! दुर्योधनने मोहित होकर युद्धकी कलासे अनभिज्ञ दुर्मुखको अकेले ही पतंगकी भाँति आगमें झोंक दिया ॥ ६½ ॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च संगताः ॥ ७ ॥
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य संजय।

संजय ! अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य और कर्ण—ये सब मिलकर भी निश्चय ही भीमके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ७½ ॥

तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥ ८ ॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९ ॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे।

वे भी वायुके तुल्य तेजस्वी भीमसेनके दस हजार हाथियोंके समान अत्यन्त घोर बलको तथा उनके क्रूरतापूर्ण निश्चयको जानते हैं; उनके बल, पराक्रम और क्रोधसे परिचित हैं। ऐसी दशामें वे यम, काल और अन्तकके समान क्रूर कर्म करनेवाले भीमसेनको युद्धमें अपने ऊपर कैसे कुपित करेंगे ? ॥ ८-९½ ॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १० ॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः।

अकेला सूतपुत्र महाबाहु कर्ण ही अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर भीमसेनका तिरस्कार करके रणभूमिमें उनके साथ जूझता रहा ॥ १०½ ॥

योऽजयत् समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम् ॥ ११ ॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे।

जिन्होंने समराङ्गणमें असुरोंपर विजय पानेवाले देवराज इन्द्रके समान कर्णको पराजित कर दिया, उन पाण्डुपुत्र भीमसेनको कोई भी युद्धमें जीत नहीं सकता ॥ ११½ ॥

द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥ १२ ॥
भीमो धनंजयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः।

जो भीमसेन अकेले ही द्रोणाचार्यको मथकर धनंजयका पता लगानेके लिये मेरी सेनामें घुस आये, उनका सामना करनेके लिये जीवित रहनेकी इच्छावाला कौन पुरुष जा सकता है ? ॥ १२½ ॥

को हि संजय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः।

संजय ! जैसे हाथमें वज्र लिये हुए देवराज इन्द्रके सामने कोई दानव खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार भीमसेनके सम्मुख भला कौन ठहर सकता है ? ॥ १३½ ॥

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः ॥ १४ ॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन।

मनुष्य यमलोकमें भी जाकर लौट सकता है; परंतु युद्धमें भीमसेनके सामने जाकर कदापि जीवित नहीं लौट सकता ॥ १४½ ॥

पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः ॥ १५ ॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन् विमोहिताः।

मेरे जो मन्दबुद्धि पुत्र मोहित होकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेनकी ओर दौड़े थे, वे पतंगोंके समान मानो आगमें ही कूद पड़े थे ॥ १५½ ॥

यत् तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥
उक्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसंचिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद् भीमादुपारमत् ।

क्रोधमें भरे हुए भयंकर भीमसेनने सभाभवनमें उस दिन समस्त कौरवोंके सुनते हुए मेरे पुत्रोंके वधके सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञा की थी, उसका विचार करके और कर्णको पराजित देखकर अपने भाई दुर्योधनसहित दुःशासन निश्चय ही भयके मारे भीमसेनसे दूर हट गया होगा ॥ १६-१७½ ॥

यश्च संजय दुर्बुद्धिरब्रवीत् समितौ मुहुः ॥ १८ ॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान् ।

संजय ! खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनने सभामें बारंबार कहा था कि 'कर्ण, दुःशासन तथा मैं—तीनों मिलकर युद्धमें अवश्य पाण्डवोंको जीत लेंगे' ॥ १८½ ॥

स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः ।

परंतु अब कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित और रथहीन हुआ देख श्रीकृष्णकी बात न माननेके कारण मेरा वह पुत्र निश्चय ही बड़ा भारी पश्चात्ताप कर रहा होगा ॥ १९½ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄन् हतान् संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।

अपने कवचधारी भ्राताओंको युद्धमें भीमसेनके द्वारा मारा गया देख मेरे पुत्रको अपने अपराधके लिये अवश्य ही महान् अनुताप हो रहा होगा ॥ २०½ ॥

को हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात् कालमिव स्थितम् ।

अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष क्रोधमें भरकर साक्षात् कालके समान खड़े हुए भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पाण्डुपुत्र भीमसेनके विरुद्ध युद्धमें जा सकता है ॥ २१½ ॥

वडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥ २२ ॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि बडवानलके मुखमें पड़ा हुआ मनुष्य शायद जीवित बच जाय; परंतु भीमसेनके सम्मुख युद्धके लिये आया हुआ कोई भी शूरमा जीवित नहीं छूट सकता ॥ २२½ ॥

न पार्थो न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥

सूत ! युद्धमें कुद्ध होनेपर पाण्डव, पाञ्चाल, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि—ये कोई भी शत्रुके जीवनकी रक्षा करना नहीं जानते हैं । अहो ! मेरे पुत्रोंका जीवन भारी विपत्तिमें पड़ गया है ॥ २३-२४ ॥

संजय उवाच

यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥

संजयने कहा—कुरुनन्दन ! यह महान् भय जब सिरपर आ गया है, तब आप शोक करने बैठे हैं, यह ठीक नहीं है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इस जगत्के विनाशका मूल कारण आप ही हैं ॥ २५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

पुत्रोंकी हाँमें हाँ मिलाकर आपने स्वयं ही इस महान् वैरकी नींव डाली है और जब इसे मिटानेके लिये आपसे किसीने कोई बात कही, तब आपने उसे नहीं माना, ठीक उसी तरह, जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारक औषध नहीं ग्रहण करता है ॥ २६ ॥

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७ ॥

नरश्रेष्ठ ! महाराज ! जिसको पचाना अत्यन्त कठिन है, उस कालकूट विषको स्वयं पीकर अब उसके सारे परिणामोंको आप ही भोगिये ॥ २७ ॥

यत् तु कुत्सयसे योधान् युध्यमानान् महाबलान् ।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८ ॥

युद्धमें लगे हुए महाबली योद्धाओंको जो आप कोस रहे हैं, वह व्यर्थ है । अब जिस प्रकार वहाँ युद्ध हुआ था, वह सब आपको बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९ ॥

भरतनन्दन ! कर्णको भीमसेनसे पराजित हुआ देख आपके पाँच महाधनुर्धर पुत्र जो परस्पर सगे भाई थे, सह न सके ॥ २९ ॥

दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसंनाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥

उन पाँचोंके नाम ये हैं—दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर(दुराधार)और जय । इन सबने विचित्र कवच धारण करके अपने विरोधी पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ३० ॥

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१ ॥

उन्होंने महाबाहु भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर टिड्डी-दलोंके समान अपने बाणसमूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३१ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥

उन देवतुल्य राजकुमारोंको सहसा देख समरभूमिमें भीमसेनने हँसते हुए-से उनका आघात सहन किया ॥ ३२ ॥

तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरोगतान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥

आपके पुत्रोंको भीमसेनके सामने गया हुआ देख राधानन्दन कर्ण पुनः महाबली भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३३ ॥

विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात् तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥

वह शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त पैने बाणोंकी वर्षा कर रहा था। उस समय आपके पुत्रोंद्वारा रोके जानेपर भी भीमसेन तुरंत ही कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ गये ॥ ३४ ॥

कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन् भीमसेनं शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३५ ॥

तब उन कौरवोंने कर्णको चारों ओरसे घेरकर भीमसेन-पर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३५ ॥

तान् बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान् राजन् नरर्षभान् ।
ससूतान् भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥

राजन्! यह देखकर भीमसेनने पचीस बाणोंका प्रहार करके सारथि और घोड़ोंसहित भयंकर धनुष धारण करनेवाले उन नरश्रेष्ठ राजकुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रापतन् स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७ ॥

वे प्राणशून्य होकर सारथियोंके साथ रथोंसे नीचे गिर पड़े, मानो प्रचण्ड आँधीने विचित्र पुष्प धारण करनेवाले विशाल वृक्षोंको उखाड़कर धराशायी कर दिया हो ॥ ३७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान् ॥ ३८ ॥

वहाँ हमने भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने सूतपुत्र कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर आपके पुत्रोंको मार डाला ॥ ३८ ॥

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥

महाराज! भीमसेनके पैने बाणोंद्वारा चारों ओरसे रोके जानेपर भी सूतपुत्र कर्णने भीमसेनकी ओर क्रोधपूर्वक देखा ॥ ३९ ॥

तं भीमसेनः संरम्भात् क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इधर क्रोधसे लाल आँखें किये भीमसेन भी अपने विशाल धनुषको फैलाकर कर्णकी ओर रोषपूर्वक बारंबार देखने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णका पलायन, धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध तथा भीमका पराक्रम

संजय उवाच

तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीवितात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रोंको रणभूमिमें गिरा हुआ देख प्रतापी कर्ण अत्यन्त कुपित हो अपने जीवनसे विरक्त हो उठा ॥ १ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥

उस समय अधिरथपुत्र कर्ण अपने आपको अपराधी-सा मानने लगा; क्योंकि भीमसेनने उसकी आँखोंके सामने रणभूमिमें आपके पुत्रोंको मार डाला था ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान स सम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके कुपित हुए भीमसेनने कर्णके शरीरमें बड़े वेगसे अपने पैने बाण धँसा दिये ॥ ३ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

तब राधानन्दन कर्णने हँसते हुए-से पाँच बाण मारकर भीमसेनको घायल कर दिया। फिर शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले सत्तर बाणोंद्वारा उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४ ॥

अविचिन्त्याथ तान् बाणान् कर्णेनास्तान् वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनानतपर्वणाम् ॥ ५ ॥

कर्णके चलाये हुए उन बाणोंकी कुछ भी परवा न करके भीमसेनने रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंद्वारा राधापुत्रको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६ ॥

माननीय नरेश ! फिर पाँच तीखे बाणोंद्वारा सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर भीमसेनने एक भल्लद्वारा उसका धनुष काट दिया ॥ ६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परंतपः ॥ ७ ॥

भारत ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णने खिन्न होकर दूसरा धनुष हाथमें ले भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम्।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥

भीमसेनने उसके घोड़ों और सारथिको मारकर उसके प्रहारका बदला चुका लेनेके पश्चात् पुनः बड़े जोरसे अट्टहास किया ॥ ८ ॥

इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥

महाराज ! पुरुषशिरोमणि भीमने अपने बाणोंद्वारा कर्णका धनुष भी फिर काट दिया । स्वर्णमय पृष्ठभागसे युक्त और गम्भीर टङ्कार करनेवाला उसका वह धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥

अवारोहद् रथात् तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद् रुषा ॥ १० ॥

महारथी कर्ण उस रथसे उतर गया और गदा लेकर उसने समरभूमिमें भीमसेनपर रोषपूर्वक चला दी ॥ १० ॥

तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११ ॥

राजन् ! उस विशाल गदाको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने सब सेनाओंके देखते-देखते बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ ११ ॥

ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥

तब सूतपुत्रके वधकी इच्छावाले पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमसेनने बड़ी उतावलीके साथ एक हजार बाण चलाये ॥ १२ ॥

तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पाटयामास सायकैः ॥ १३ ॥

परंतु कर्णने उस महासमरमें अपने बाणोंद्वारा उन सभी बाणोंका निवारण करके भीमसेनके कवचको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १३ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर उसने सब सेनाओंके देखते-देखते भीमसेनपर पचीस नाराचोंका प्रहार किया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ १४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्रको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाण मारे॥१५॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥

वे तीखे बाण कर्णके कवच तथा दाहिनी भुजाको विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ १६ ॥

स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनात् पराङ्मुखः ॥ १७ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंसे आच्छादित होकर कर्ण पुनः भीमसेनसे विमुख हो गया (उन्हें पीठ दिखाकर भाग चला) ॥ १७ ॥

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

सूतपुत्र कर्णको युद्धसे विमुख, पैदल तथा भीमसेनके बाणोंसे आच्छादित देखकर राजा दुर्योधन अपने सैनिकोंसे बोला—॥ १८ ॥

त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्छ्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।

'वीरो ! सब ओरसे राधानन्दन कर्णके रथकी ओर शीघ्र आओ और उसकी रक्षाका प्रबन्ध करो ।' राजन् ! तब भाईकी यह बात सुनकर आपके पुत्र शीघ्रतापूर्वक युद्धमें पाण्डुपुत्र भीमपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आ पहुँचे ॥१९½॥

चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ २० ॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा । ये सब-के-सब समरभूमिमें विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे ॥ २०½ ॥

तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥
एकैकेन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन् भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥

महारथी भीमसेनने उनके आते ही शीघ्रतापूर्वक एक-एक बाण मारकर आपके सभी पुत्रोंको युद्धमें धराशायी कर दिया । वे मारे जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २१-२२ ॥

दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन् महारथान् ।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥ २३ ॥

राजन् ! आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारा गया देख कर्णके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । उस समय उसे विदुरजीकी कही हुई बात याद आयी ॥ २३॥

रथं चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥

फिर उस पराक्रमी वीरने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पाण्डुपुत्र भीमसेनपर धावा किया ॥ २४ ॥

तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः ॥ २५ ॥

वे दोनों एक दूसरेको शिलापर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करके सूर्यकी किरणोंमें पिरोये हुए बादलोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ २५ ॥

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
व्यधमत् कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने प्रचण्ड तेजवाले छत्तीस तीखे भल्लोंका प्रहार करके सूतपुत्रके कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ २६ ॥

सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः संनतपर्वभिः ।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर महाबाहु सूतपुत्रने भी कुन्तीकुमार भीमसेनको झुकी हुई गाँठवाले पचास बाणोंसे बींध डाला ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥

उन दोनोंने अपने शरीरमें लाल चन्दन लगा रक्खे थे । इसके सिवा उनके शरीरमें बाणोंके आघातसे बड़े-बड़े घाव हो गये थे । इस प्रकार खूनसे लथपथ हुए वे दोनों योद्धा उदयकालीन सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
शरधारास्रजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥ ३० ॥

बाणोंद्वारा उन दोनोंके कवच कट गये थे और सारे अङ्ग रक्तसे भीग गये थे । उस दशामें वे कर्ण और भीमसेन केंचुल छोड़कर निकले हुए दो सर्पोंके समान शोभा पाने लगे । जैसे दो व्याघ्र अपनी दाढ़ोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों पुरुषव्याघ्र योद्धा परस्पर प्रहार कर रहे थे । वे दोनों वीर दो मेघोंके समान बाणधाराकी वर्षा कर रहे थे ॥ २९-३० ॥

वारणाविव चान्योन्यं विषाणाभ्यामरिंदमौ ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥ ३१ ॥

जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे एक दूसरेपर आघात करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुदमन वीर अपने बाणोंद्वारा एक दूसरेके शरीरोंको विदीर्ण करते हुए सुशोभित हो रहे थे ॥

नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् ।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ॥ ३२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीम और कर्ण सिंहनाद करते, अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठते और आपसमें खेल-सा करते हुए रथोंद्वारा मण्डलगतिसे विचरते थे ॥ ३२ ॥

वृषाविवाथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥ ३४ ॥

जैसे गायके लिये दो बलवान् साँड़ गरजते हुए लड़ जाते हैं, उसी प्रकार वे सिंहके समान पराक्रमी महान् बलशाली पुरुषसिंह कर्ण और भीम क्रोधसे लाल आँखें करके एक दूसरेको देखते हुए महापराक्रमी इन्द्र और बलिके समान युद्ध कर रहे थे ॥ ३३-३४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन् धनुः ।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें महाबाहु भीमसेन अपनी भुजाओंसे धनुषकी टंकार करते हुए बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३५ ॥

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः ।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ॥

रथके पहियोंकी घरघराहट जिसकी गम्भीर गर्जना थी और धनुष ही विद्युत्के समान प्रकाशित होता था, भीमसेन-रूपी उस महामेघने बाणरूपी जलकी वर्षासे कर्णरूपी पर्वत-को ढक दिया ॥ ३६ ॥

ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत ।
पाण्डवो व्यकिरत् कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए सहस्रों बाणोंसे भयंकर पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् ।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत् कर्णं छादयच्छरैः ॥ ३८ ॥

आपके पुत्रोंने वहाँ भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने कङ्कपत्रयुक्त सुन्दर पंखवाले बाणोंसे कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

स नन्दयन् रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम् ।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥

भीमसेन रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन, यशस्वी श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा दोनों चक्ररक्षक युधामन्यु एवं उत्तमौजाको आनन्दित करते हुए कर्णके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ३९ ॥

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः ।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

महाराज ! सुविख्यात भीमसेनके पराक्रम, बाहुबल और धैर्यको देखकर आपके सभी पुत्र उदास हो गये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा दुर्योधनके सात भाइयोंका वध

संजय उवाच

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भीमसेनके धनुषकी टंकार सुनकर राधानन्दन कर्ण उसे सहन न कर सका। जैसे मतवाला हाथी अपने प्रतिपक्षी गजराजकी गर्जनाको नहीं सहन कर पाता ॥ १ ॥

सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् ।
पुत्रांस्तव ददर्शाथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥

उसने थोड़ी देरके लिये भीमसेनकी दृष्टिसे दूर हटनेपर देखा कि भीमसेनने आपके पुत्रोंको मार गिराया है ॥ २ ॥

तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥

नरश्रेष्ठ ! उनकी वह अवस्था देखकर उस समय कर्णको बहुत दुःख हुआ। उसका मन उदास हो गया। वह गरम-गरम लंबी साँस खींचता हुआ पुनः पाण्डुनन्दन भीमसेनके सामने आया ॥ ३ ॥

स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः ।
बभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मीनिव दिवाकरः ॥ ४ ॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं और वह फुफकारते हुए महान् सर्पके समान उच्छ्वास खींच रहा था। उस समय बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्ण अपनी किरणोंका प्रसार करते हुए सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था ॥ ४ ॥

किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे सूर्यकी किरणोंसे पर्वत ढक जाता है, उसी प्रकार कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ५ ॥

ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः ।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥ ६ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए वे मयूरपंखधारी बाण सब ओरसे आकर भीमसेनके शरीरमें उसी प्रकार घुसने लगे, जैसे पक्षी बसेरा लेनेके लिये वृक्षोंपर आ जाते हैं ॥ ६ ॥

कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥

कर्णके धनुषसे छूटकर इधर-उधर पड़नेवाले सुवर्णपंख-युक्त बाण श्रेणीबद्ध हंसोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ७ ॥

चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद् युगात् ।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥

राजन् ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णके बाण केवल धनुषसे ही नहीं, ध्वज आदि अन्य समानोंसे, छत्रसे, ईषा-दण्ड आदिसे तथा रथके जूएसे भी प्रकट होते दिखायी देते थे ॥ ८ ॥

खं पूरयन् महावेगान् खगमान् गृध्रवाससः ।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥

अधिरथपुत्र कर्णने अन्तरिक्षको व्याप्त करते हुए महान् वेगशाली, आकाशमें विचरनेवाले गृध्रके पंखोंसे युक्त और सुवर्णके बने हुए विचित्र बाण चलाये ॥ ९ ॥

तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः ।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

कर्णको यमराजके समान आयासयुक्त हो आते देख भीमसेन प्राणोंका मोह छोड़कर पराक्रमपूर्वक उसे पैने बाणों-द्वारा बींधने लगे ॥ १० ॥

तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघांस्तान् न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णके वेगको असह्य देखकर उसके महान् बाणसमूहोंका निवारण किया ॥ ११ ॥

ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः ।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥

पाण्डुकुमार भीमने अधिरथपुत्रके शरसमूहोंका निवारण

करके शिलापर चढ़ाकर तेज किये हुए बीस अन्य बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ १२ ॥

यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥

जैसे कर्णने अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित किया था, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने भी कर्णको ढक दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! युद्धमें भीमसेनका वह पराक्रम देखकर आपके योद्धाओं तथा चारणोंने भी प्रसन्न होकर उनका अभिनन्दन किया ॥ १४ ॥

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन् महारथाः।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥ १६ ॥

राजन् ! भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन—ये कौरव और पाण्डव-पक्षके दस श्रेष्ठ महारथी 'साधु-साधु' कहकर वेगपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥ १५-१६ ॥

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन् दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञः सराजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥

महाराज ! उस रोमाञ्चकारी भयंकर शब्दके प्रकट होनेपर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ राजाओं, राजकुमारों और विशेषतः अपने भाइयोंसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग भीमसेनसे कर्णकी रक्षा करनेके लिये जाओ ॥ १७-१८ ॥

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥

'कहीं ऐसा न हो कि भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाण राधानन्दन कर्णको पहले ही मार डालें । अतः महाधनुर्धर वीरो ! तुम सब लोग सूतपुत्रकी रक्षाका प्रयत्न करो' ॥ १९ ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥

भारत ! दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके सात भाइयोंने कुपित हो भीमसेनपर आक्रमण करके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २० ॥

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्शरवृष्टिभिः।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें मेघ पर्वतपर जलकी धाराएँ बरसाते हैं, उसी प्रकार उन कौरवोंने कुन्तीकुमारके समीप जाकर उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया ॥ २१ ॥

तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः।
प्रजासंहरणे राजन् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥

राजन् ! उन सात महारथियोंने कुपित हो भीमसेनको उसी प्रकार पीड़ा दी, जैसे सात ग्रह प्रजाओंके संहारकालमें सोमको पीड़ा देते हैं ॥ २२ ॥

ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम्।
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान्।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥ २४ ॥

महाराज ! तब कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र भीमने अत्यन्त स्वच्छ धनुषको सुदृढ़ मुट्ठीसे वेगपूर्वक दबाकर उन सातों भाइयोंको साधारण मनुष्य जानकर उनके लिये धनुषपर सात बाणोंका संधान किया। सूर्यकिरणोंके समान उन चमकीले बाणोंको शक्तिशाली भीमने परिश्रमपूर्वक आपके उन पुत्रोंपर छोड़ दिया ॥ २३-२४ ॥

निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥

नरेश्वर ! पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके भीमसेनने आपके पुत्रोंके प्राणोंको उनके शरीरोंसे निकालते हुए-से उन बाणोंका प्रहार किया था ॥ २५ ॥

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान्।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥

भारत ! भीमसेनके चलाये हुए वे बाण सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित तथा शिलापर तेज किये गये थे। वे आपके पुत्रोंको विदीर्ण करके आकाशमें उड़ चले ॥ २६ ॥

तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥

महाराज ! वे स्वर्णविभूषित बाण उन सातों भाइयोंके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके आकाशमें विचरनेवाले गरुड़पक्षियोंके समान शोभा पाने लगे ॥ २७ ॥

शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! वे सुवर्णभूषित सातों बाण आपके पुत्रोंका रक्त पीकर लाल हो ऊपरको उछले थे। उनके पंख और अग्रभागोंपर अधिक रक्त जम गया था ॥ २८ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥

उन बाणोंसे मर्मस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण वे सातों

वीर रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो किसी हाथीने पर्वतके शिखरपर खड़े हुए विशाल वृक्षोंको तोड़ गिराया हो ॥ २९ ॥

शत्रुंजयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥

शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र (चित्रबाण), चित्रायुध (अग्रायुध), दृढ (दृढवर्मा), चित्रसेन (उग्रसेन) और विकर्ण—इन सातों भाइयोंको भीमसेनने मार गिराया ॥

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥ ३१ ॥

राजन्! वहाँ मारे गये आपके सभी पुत्रोंमेंसे विकर्ण पाण्डवोंको अधिक प्रिय था। पाण्डुनन्दन भीमसेन उसके लिये अत्यन्त दुखी होकर शोक करने लगे ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे।
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥

वे बोले—'विकर्ण! मैंने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मार डालूँगा! इसीलिये तुम मेरे हाथसे मारे गये हो। ऐसा करके मैंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है ॥ ३२ ॥

त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥

'वीर! तुम क्षत्रिय-धर्मका विचार करके समरभूमिमें आ गये। इसीलिये इस युद्धमें मारे गये; क्योंकि युद्धधर्म कठोर होता है ॥ ३३ ॥

विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः।
न्यायतोऽन्यायतो वापि हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद् युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥

'जो विशेषतः राजा युधिष्ठिरके और हमारे हितमें तत्पर रहते थे, वे बृहस्पतिके समान अगाध बुद्धिवाले महातेजस्वी गङ्गानन्दन भीष्म भी न्याय अथवा अन्यायसे मारे जाकर समरभूमिमें सो रहे हैं और प्राणत्यागकी परिस्थितिमें डाल दिये गये हैं। इसीसे कहना पड़ता है कि युद्ध अत्यन्त निष्ठुर कर्म है' ॥ ३४-३५ ॥

संजय उवाच

तान् निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः।
सिंहनादरवं घोरमसृजत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! राधानन्दन कर्णके देखते-देखते उन सातों भाइयोंको मारकर पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमने भयंकर सिंहनाद किया ॥ ३६ ॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत।
आचख्याविव तद् युद्धं विजयं चात्मनो महत् ॥ ३७ ॥

भारत! उस सिंहनादने धर्मराज युधिष्ठिरको शूरवीर भीमके उस युद्धकी तथा अपनी महान् विजयकी मानो सूचना दे दी ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

धनुर्धर भीमसेनके उस महानादको सुनकर बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३८ ॥

ततो हृष्टमना राजन् वादित्राणां महास्वनैः।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥

राजन्! तब प्रसन्नचित्त होकर युधिष्ठिरने बाजोंकी गम्भीर ध्वनिके द्वारा भाईके उस सिंहनादको स्वागतपूर्वक ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे।
अभ्ययात् समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४० ॥

इस प्रकार भीमसेनको अपनी प्रसन्नताका संकेत करके सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने बड़े हर्षके साथ रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान्।
हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥ ४१ ॥

महाराज! आपके इकतीस (दुःशलको लेकर बत्तीस) पुत्रोंको मारा गया देखकर दुर्योधनको विदुरजीकी कही हुई बात याद आ गयी ॥ ४१ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः।
इति संचिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥

विदुरजीने जो कल्याणकारी वचन कहा था, उसके अनुसार ही यह संकट प्राप्त हुआ है। ऐसा सोचकर आपके पुत्रसे कोई उत्तर देते न बना ॥ ४२ ॥

यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत् तनयस्तव।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥ ४३ ॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ४५ ॥
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम्।

द्यूतके समय कर्णके साथ आपके मन्दमति पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनने पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको सभामें बुलाकर उसके प्रति जो दुर्वचन कहा था तथा प्रजानाथ! महाराज! पाण्डवों और आपके सामने समस्त कौरवोंके सुनते हुए कर्णने सभामें द्रौपदीके प्रति जो यह कठोर वचन कहा था कि 'कृष्णे! पाण्डव नष्ट हो गये। सदाके लिये नरकमें पड़ गये। तू दूसरा पति कर ले', उसी अन्यायका आज यह फल प्राप्त हुआ है ॥ ४३-४५½ ॥

यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवात्मजैः।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः ॥ ४६ ॥

१. किसी-किसी प्रतिमें शत्रुंजय और शत्रुसह—इन दो नामोंके स्थानमें क्रमशः 'दृढसन्ध और 'जरासन्ध' नाम मिलते हैं।

तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥

आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंको कुपित करनेके लिये षण्ढतिल (सारहीन तिल या नपुंसक) आदि कठोर बातें उन महामनस्वी पाण्डवोंको सुनायी थीं, उसके कारण पाण्डु-पुत्र भीमसेनके हृदयमें तेरह वर्षोंतक जो क्रोधाग्नि धधकती रही है, उसीको निकालते हुए भीमसेन आपके पुत्रोंका अन्त कर रहे हैं ॥ ४६-४७ ॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुङ्क्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विदुरजीने आपके समीप बहुत विलाप किया, परंतु उन्हें शान्तिकी भिक्षा नहीं प्राप्त हुई । आपके उसी अन्यायका यह फल प्रकट हुआ है । अब आप पुत्रों-सहित इसे भोगिये ॥ ४८ ॥

त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥

आप वृद्ध हैं, धीर हैं, कार्यके तत्त्व और प्रयोजनको देखते और समझते हैं, तो भी आपने हितैषी सुहृदोंकी बातें नहीं मानीं । इसमें दैव ही प्रधान कारण है ॥ ४९ ॥

तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥

अतः नरश्रेष्ठ ! आप शोक न कीजिये । इसमें आपका ही महान् अन्याय कारण है । मैं तो आपको ही आपके पुत्रों-के विनाशका मुख्य हेतु मानता हूँ ॥ ५० ॥

हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चात्मजानां ते सुताश्चान्ये महारथाः ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र ! विकर्ण मारा गया । पराक्रमी चित्रसेनको भी प्राणोंका त्याग करना पड़ा । आपके पुत्रोंमें जो प्रमुख थे, वे तथा अन्य महारथी भी कालके गालमें चले गये ॥ ५१॥

यानन्यान् ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ५२ ॥

महाराज ! भीमसेनने अपने नेत्रोंके सामने आये हुए जिन-जिन पुत्रोंको देखा, उन सबको तुरंत ही मार डाला ॥

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३ ॥

आपके ही कारण मैंने भीमसेन और कर्णके छोड़े हुए हजारों बाणोंसे राजाओंकी विशाल सेना दग्ध होती देखी है॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनयुद्धविषयक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३७ ॥

अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः ।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये संजय शोचतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत संजय ! इसमें विशेषतः मेरा ही अन्याय है—यह मैं स्वीकार करता हूँ । इस समय शोकमें डूबे हुए मुझको मेरे उसी अन्यायका फल प्राप्त हुआ है ॥

यद् गतं तद् गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि संजय ॥ २ ॥

संजय ! अबतक मेरे मनमें यह बात थी कि जो बीत गया, सो बीत गया । उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है । परंतु अब यहाँ इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, उसे बताओ । मैं उसका पालन अवश्य करूँगा ॥ २ ॥

यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः ।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि संजय ॥ ३ ॥

सूत ! मेरे अन्यायसे वीरोंका जो यह विनाश हुआ है, वह सब कह सुनाओ । मैं धैर्य धारण करके बैठा हूँ ॥ ३ ॥

संजय उवाच

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान महाबली, महापराक्रमी कर्ण और भीमसेन परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥

जिनपर भीमसेनके नाम खुदे हुए थे, वे शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखयुक्त बाण कर्णके पास पहुँचकर उसके जीवनका उच्छेद करते हुए-से उसके शरीरमें घुस गये॥

तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

इसी प्रकार कर्णके छोड़े हुए मयूरपंखवाले सैकड़ों और हजारों बाणोंने वीर भीमसेनको आच्छादित कर दिया॥

तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥

महाराज ! चारों ओर गिरते हुए उन दोनोंके बाणोंसे वहाँकी सेनाओंमें समुद्रसे भी बढ़कर महान् क्षोभ होने लगा ॥७॥

भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिंदम।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥

शत्रुदमन ! भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें आपके सैनिकोंका वध हो रहा था ॥ ८ ॥

वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैः सह।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥

राजन् ! वहाँ गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंद्वारा ढकी हुई वह रणभूमि आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंसे आच्छादित-सी दिखायी देती थी ॥ ९ ॥

ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १० ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए आपके सैनिक भाग चले और आपसमें कहने लगे, अरे ! यह क्या हुआ ॥ १० ॥

ततो व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम्।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥

इस प्रकार कर्ण और भीमसेनके महान् वेगशाली बाणोंद्वारा सिन्धु, सौवीर और कौरवदलकी वह सेना उखड़ गयी और वहाँसे भाग खड़ी हुई ॥ ११ ॥

ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन् दिशः ॥ १२ ॥

वे शूरवीर सैनिक जिनमें बहुत-से लोग मारे गये थे तथा जिनके हाथी, घोड़े और रथ नष्ट हो चुके थे, भीमसेन और कर्णको छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १२ ॥

नूनं पार्थार्थमेवास्मान् मोहयन्ति दिवौकसः।
यत् कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥

'अवश्य ही कुन्तीकुमारोंके हितके लिये ही देवता हमें मोहमें डाल रहे हैं; क्योंकि कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे वे हमारी सेनाका वध कर रहे हैं' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥

ऐसा कहते हुए आपके योद्धा भयसे पीड़ित हो बाण मारनेका कार्य छोड़कर युद्धके दर्शक बनकर खड़े हो गये ॥

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें रक्तकी भयंकर नदी बह चली, जो शूरवीरोंको हर्ष देनेवाली और भीरु पुरुषोंका भय बढ़ानेवाली थी ॥ १५ ॥

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंके रुधिरसमूहसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था। वह प्राणशून्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे घिरी हुई थी ॥ १६ ॥

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः।
प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥
सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी।

भारत ! उस समय अनुकर्ष, पताका, हाथी, घोड़े, रथ, आभूषण, टूटकर बिखरे पड़े हुए स्यन्दन (रथ), टूक-टूक हुए पहिये, धुरी और कूबर, सुवर्णभूषित एवं महान् टङ्कार शब्द करनेवाले धनुष, सोनेके पंखवाले बाण, केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए सहस्रों नाराच, प्रास, तोमर, खड्ग, फरसे, सोनेकी गदा, मुसल, पट्टिश, भाँति-भाँतिके ध्वज, शक्ति, परिघ और विचित्र शतघ्नी आदिसे उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ १७–२०½ ॥

कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥
वलयैरपविद्धैश्च तत्रैवाङ्गुलिवेष्टकैः।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष ॥ २२ ॥
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुंधरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः।

माननीय भरतनन्दन ! इधर-उधर पड़े हुए सोनेके अङ्गद, हार, कुण्डल, मुकुट, वलय, अंगूठी, चूड़ामणि, उष्णीष, सुवर्णमय सूत्र, कवच, दस्ताने, हार, निष्क, वस्त्र, छत्र, टूटे हुए चँवर, व्यजन, विदीर्ण हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य, खूनसे लथपथ हुए पंखयुक्त बाण आदि नाना प्रकारकी छिन्न-भिन्न, पतित और फेंकी हुई वस्तुओंसे वहाँकी भूमि ग्रहोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ २१–२४½ ॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत।

उन दोनोंके उस अचिन्त्य, अलौकिक और अद्भुत कर्मको देखकर चारणों और सिद्धोंके मनमें भी महान् विस्मय हो गया ॥ २५½ ॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे ॥ २६ ॥
आसीद् भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।

जैसे वायुकी सहायता पाकर सूखे वनमें तथा घास-फूँसमें अग्निकी गति बढ़ जाती है, उसी प्रकार उस महायुद्धमें भीमसेनके साथ सूतपुत्र कर्णकी भयंकर गति बढ़ गयी थी ॥ २६½ ॥

निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।
मेघजालनिभं सैन्यमासीत् तव नराधिप ॥ २८ ॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ।

नरेश्वर ! जैसे दो हाथी किसीसे प्रेरित होकर नरकुलके वनको रौंद डालते हैं, उसी प्रकार मेघोंकी घटाके समान आपकी सेना बड़ी दुरवस्थामें पड़ गयी थी । उसके रथ और ध्वज गिराये जा चुके थे । हाथी, घोड़े और मनुष्य मारे गये थे। कर्ण और भीमसेनने उस युद्धस्थलमें महान् संहार मचा रक्खा था ॥ २७-२८½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीम और कर्णका युद्धविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३८॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध, पहले भीमकी और पीछे कर्णकी विजय, उसके बाद अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर कर्ण और अश्वत्थामाका पलायन

संजय उवाच

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर कर्णने तीन बाणोंसे भीमसेनको घायल करके उनपर बहुत-से विचित्र बाण बरसाये॥

वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥

सूतपुत्रके द्वारा बेधे जानेपर भी महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेनको विद्ध होनेवाले पर्वतके समान तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥ २ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! फिर उन्होंने भी युद्धस्थलमें तेलके धोये हुए पानीदार एवं तीखे 'कर्णी' नामक बाणसे कर्णके कानमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद् भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥

महाराज ! भीमने कर्णके सोनेके बने हुए विशाल एवं सुन्दर कुण्डलको आकाशसे चमकते हुए तारेके समान पृथ्वीपर काट गिराया ॥ ४ ॥

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥

तदनन्तर भीमसेनने अत्यन्त कुपित हो हँसते हुए-से दूसरे भल्लसे सूतपुत्रकी छातीमें बड़े जोरसे आघात किया ॥

पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! फिर महाबाहु भीमने बड़ी उतावलीके साथ केंचुलसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान दस नाराच उस रणक्षेत्रमें कर्णपर चलाये ॥ ६ ॥

ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥

भारत ! उनके चलाये हुए वे नाराच सूतपुत्रका ललाट छेद करके बाँबीमें सर्पोंके समान उसके भीतर घुस गये ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै यथा पुरा ॥ ८ ॥

ललाटमें स्थित हुए उन बाणोंद्वारा सूतपुत्रकी उसी प्रकार शोभा हुई, जैसे वह पहले मस्तकपर नील कमलकी माला धारण करके सुशोभित होता था ॥ ८ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥

वेगवान् पाण्डुपुत्र भीमके द्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर कर्णने रथके कूबरका सहारा लेकर आँखें बंद कर लीं ॥

स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परंतपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम् ॥ १० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णको पुनः दो ही घड़ीके बाद चेत हो गया । उस समय उसका सारा शरीर रक्तसे भीग गया था । उस दशामें उसे बड़ा क्रोध हुआ ॥१०॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले भीमसेनसे पीड़ित हुए महान् वेगशाली कर्णने रणभूमिमें कुपित हो भीमसेनके रथकी ओर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥

तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

राजन्! भरतनन्दन! अमर्षशील एवं क्रोधमें भरे हुए बलवान् कर्णने भीमसेनपर गीधके पंखवाले सौ बाण चलाये॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन्॥ १३॥

तब समरभूमिमें कर्णके पराक्रमको कुछ न समझते हुए उसकी अवहेलना करके पाण्डुनन्दन भीमसेनने उसके ऊपर भयंकर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ १३॥

कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतप॥ १४॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! तब कर्णने कुपित हो क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनकी छातीमें नौ बाण मारे॥ १४॥

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ।
जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतुराहवे॥ १५॥

वे दोनों पुरुषसिंह दाढ़ोंवाले दो सिंहोंके समान परस्पर जूझ रहे थे और आकाशमें दो मेघोंके समान युद्धस्थलमें वे दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे॥ १५॥

तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम्।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे॥ १६॥
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।

वे अपनी हथेलियोंके शब्दसे एक दूसरेको डराते हुए युद्धस्थलमें विविध बाणसमूहोंद्वारा परस्पर त्रास पहुँचा रहे थे। वे दोनों वीर समरमें कुपित हो एक दूसरेके किये हुए प्रहारका प्रतीकार करनेकी अभिलाषा रखते थे॥ १६½॥

ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत॥ १७॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा।

भरतनन्दन! तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु भीमसेनने क्षुरप्रके द्वारा सूतपुत्रके धनुषको काटकर बड़े जोरसे गर्जना की॥ १७½॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः॥ १८॥
अन्यत् कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्।

तब महारथी सूतपुत्र कर्णने उस कटे हुए धनुषको फेंककर भार निवारण करनेमें समर्थ और अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लिया॥ १८½॥

तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः॥ १९॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि।
सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा॥ २०॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथापि च।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः॥ २१॥

परंतु भीमसेनने आधे निमेषमें ही उसे भी काट दिया। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें धनुषको भी भीमसेनने काट डाला॥ १९–२१॥

तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि॥ २२॥

इतना ही नहीं, भीमने सत्रहवें, अठारहवें तथा और भी बहुत-से कर्णके धनुषोंको वेगपूर्वक काट दिया॥ २२॥

निमेषार्धात् ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत।
दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम्॥ २३॥
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम्।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून् प्रेक्ष्य सर्वशः॥ २४॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद् दीप्तं वपुरजायत।

इतनेपर भी कर्ण आधे ही निमेषमें दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़ा हो गया। कुरु, सौवीर तथा सिंधुदेशके वीरोंकी सेनाका विनाश, सब ओर गिरे हुए कवच, ध्वज तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हुई भूमि और प्राणशून्य हाथी, घोड़े एवं रथियोंके शरीरोंको सब ओर देखकर सूतपुत्र कर्णका शरीर क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा॥ २३–२४½॥

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ २५॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा।

उस समय राधानन्दन कर्णने कुपित हो अपने सुवर्ण-भूषित विशाल धनुषकी टंकार करते हुए भयानक भीमसेनको घोर दृष्टिसे देखा॥ २५½॥

ततः क्रुद्धः शरानस्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत॥ २६॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः।

तत्पश्चात् सूतपुत्र कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ शरत्कालके दोपहरके तेजस्वी सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगा॥ २६½॥

मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः॥ २७॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम्।

राजन्! अधिरथपुत्र कर्णका भयंकर शरीर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त था। वह किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान जान पड़ता था॥ २७½॥

कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान्॥ २८॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान् नान्तरं ददृशे रणे।

उस रणभूमिमें दोनों हाथोंसे बाणोंको लेते, धनुषपर रखते, खींचते और छोड़ते हुए कर्णके इन कार्योंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था॥ २८½॥

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम्॥ २९॥
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः।

भूपाल! दायें-बायें बाण चलाते हुए कर्णका मण्डलाकार धनुष अग्निचक्रके समान भयंकर प्रतीत होता था॥ २९½॥

स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तीखे बाणोंने सम्पूर्ण दिशाओं तथा सूर्यकी प्रभाको भी ढक दिया ॥ ३०½ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१ ॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।

तदनन्तर धनुषसे छूटे हुए झुकी हुई गाँठ तथा सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाणोंके समूह आकाशमें दृष्टिगोचर होने लगे ॥ ३१½ ॥

बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे ।

राजन् ! अधिरथपुत्रके धनुषसे जो बाण छूटते थे, वे श्रेणीबद्ध होकर आकाशमें क्रौञ्च पक्षियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३२½ ॥

गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ।

सूतपुत्रने गीधके पाँखवाले, शिलापर तेज किये, सुवर्णभूषित, महान् वेगशाली और प्रज्वलित अग्र भागवाले बहुत-से बाण छोड़े ॥ ३३½ ॥

ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥
अजस्रमपतन् बाणा भीमसेनरथं प्रति ।

धनुषके बलसे उठे हुए वे सुवर्णभूषित बाण भीमसेनके रथपर लगातार गिर रहे थे ॥ ३४½ ॥

ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥ ३५ ॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।

कर्णके चलाये हुए सहस्रों सुवर्णमय बाण आकाशमें टिड्डी-दलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३५½ ॥

चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।

सूतपुत्रके धनुषसे गिरते हुए बाण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो एक ही अत्यन्त विशाल-सा बाण आकाशमें खड़ा हो ३६½

पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।

क्रोधमें भरे हुए कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक देता है ॥ ३७½ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥ ३८ ॥
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः ससैनिकाः ।

भारत ! वहाँ सैनिकोंसहित आपके पुत्रोंने भीमसेनके बल, वीर्य, पराक्रम और उद्योगको देखा ॥ ३८½ ॥

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥ ३९ ॥
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने समुद्रकी भाँति उठी हुई उस बाण-वर्षाकी तनिक भी परवा न करके कर्णपर धावा बोल दिया ॥ ३९½ ॥

रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद् विशाम्पते ॥ ४० ॥
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ।
तस्माच्छराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ४१ ॥

प्रजानाथ ! सुवर्णमय पृष्ठवाला भीमसेनका विशाल धनुष प्रत्यञ्चा खींचनेसे मण्डलाकार हो दूसरे इन्द्र-धनुषके समान प्रतीत हो रहा था। उससे जो बाण प्रकट होते थे, वे मानो आकाशको भर रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥

भीमसेनने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे आकाशमें सोनेकी माला-सी रच डाली थी, जो बड़ी शोभा पा रही थी ॥ ४२ ॥

ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥

उस समय भीमसेनके बाणोंसे आहत होकर आकाशमें फैले हुए बाणोंके जाल टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये ॥ ४३ ॥

कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत् संवृता व्रजैः ।

कर्ण और भीमसेन दोनोंके बाण-समूह स्पर्श करनेपर आगकी चिनगारियोंके समान प्रतीत होते थे। अनायास ही उनकी युद्धमें सर्वत्र गति थी। सुवर्णमय पंखवाले उन बाणोंके समूहसे सारा आकाश छा गया था ॥ ४४½ ॥

न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः ॥ ४५ ॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किंचन ।

उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न वायु ही चल पाती थी। बाणोंके समूहसे आच्छादित हुए आकाशमें कुछ भी जान नहीं पड़ता था ॥ ४५½ ॥

स भीमं छादयन् बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।

सूतपुत्र कर्ण नाना प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करता हुआ उन महामनस्वी वीरके पराक्रमका तिरस्कार करके उनपर चढ़ आया ॥ ४६½ ॥

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।

माननीय नरेश ! उन दोनोंके छोड़े हुए बाण-समूह

वहाँ परस्पर सटकर अत्यन्त वेगके कारण वायुस्वरूप दिखायी देते थे ॥ ४७½ ॥

अन्योन्यशरसंस्पर्शात् तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहोंके बाणोंके परस्पर टकरानेसे आकाशमें आग प्रकट हो जाती थी ॥ ४८½ ॥

तथा कर्णः शितान् बाणान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४९ ॥
सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया ।

कर्णने कुपित होकर भीमसेनके वधकी इच्छासे सुनारके माँजे हुए सुवर्णभूषित तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ ४९½ ॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥
विशेषयन् सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

परंतु भीमसेनने अपनेको सूतपुत्रसे विशिष्ट सिद्ध करते हुए बाणोंद्वारा आकाशमें उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और कर्णसे कहा—'अरे ! खड़ा रह' ॥ ५०½ ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥ ५१ ॥
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।

फिर क्रोध एवं अमर्षमें भरे हुए बलवान् भीमसेनने जलानेकी इच्छावाले अग्निदेवके समान भयंकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५१½ ॥

ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत् तयोः ॥ ५२ ॥
तलशब्दश्च सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥ ५३ ॥

उस समय उन दोनोंके गोहचर्मके बने हुए दस्तानोंके आघातसे चटाचटकी आवाज होने लगी । साथ ही हथेलीका शब्द और महाभयंकर सिंहनाद भी होने लगा । रथके पहियोंकी घरघराहट और प्रत्यञ्चाकी भयंकर टंकार भी कानोंमें पड़ने लगी ॥ ५२-५३ ॥

योधा व्युपारमन् युद्धाद् दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।
कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥

राजन् ! परस्पर वधकी इच्छा रखनेवाले कर्ण और भीमसेनके पराक्रमको देखनेकी अभिलाषासे समस्त योद्धा युद्धसे उपरत हो गये ॥ ५४ ॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥ ५५ ॥

देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरगण 'साधु-साधु' कहकर उन दोनोंकी प्रशंसा और फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सुदृढ़ पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने अपने अस्त्रोंद्वारा कर्णके अस्त्रोंका निवारण करके उसे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५६ ॥

कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून् महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे ॥ ५७ ॥

महाबली कर्णने भी रणक्षेत्रमें भीमसेनके बाणोंका निवारण करके उनके ऊपर विषैले सर्पोंके समान नौ नाराच चलाये ॥ ५७ ॥

तावद्भिरथ तान् भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

भीमसेनने उतने ही बाणोंसे आकाशमें सूतपुत्रके सारे नाराच काट डाले और उससे कहा -'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ५८ ॥

ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु वीर भीमसेनने कर्णके ऊपर ऐसा बाण चलाया, जो क्रुद्ध यमराजके समान तथा दूसरे यमदण्डके सदृश भयंकर था ॥ ५९ ॥

तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन् पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥

राजन् ! अपने ऊपर आते हुए भीमसेनके उस बाणको प्रतापी राधानन्दन कर्णने तीन बाणोंद्वारा हँसते हुए-से काट डाला ॥ ६० ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥ ६१ ॥

तब पाण्डुनन्दन भीमने पुनः भयानक बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी; परंतु कर्णने उन सब अस्त्रोंको निर्भयता-पूर्वक आत्मसात् कर लिया ॥ ६१ ॥

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे तथा झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा युद्धपरायण भीमसेनके दो तरकसों, धनुषकी प्रत्यञ्चा, बागडोर तथा घोड़े जोतने-की रस्सियोंको भी युद्धस्थलमें काट डाला । फिर घोड़ोंको भी मारकर सारथिको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६२-६३ ॥

सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४ ॥
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत् ।

सारथि वहाँसे भागकर तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गया । इधर क्रोधमें भरे हुए कालाग्निके समान तेजस्वी

राधापुत्र कर्णने भीमसेनका उपहास-सा करते हुए उनकी ध्वजा और पताकाको भी काट गिराया ॥ ६४½ ॥

स विधन्वा महाबाहुरथ शक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।

धनुष कट जानेपर कुपित हुए महाबाहु भीमसेनने शक्ति हाथमें ली और उसे घुमाकर कर्णके रथपर दे मारा ॥ ६५½ ॥

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।

कर्ण कुछ थक-सा गया था, तो भी उसने बहुत बड़ी उल्काके समान अपनी ओर आती हुई उस सुवर्णभूषित शक्तिको दस बाणोंसे काट दिया ॥ ६६½ ॥

सापतद् दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः॥ ६७ ॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।

मित्रके हितके लिये विचित्र युद्ध करनेवाले तथा बाण-प्रहारमें तत्पर सूतपुत्र कर्णके तीखे बाणोंसे दस टुकड़ोंमें कटकर वह शक्ति धरतीपर गिर पड़ी ॥ ६७½ ॥

स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।

तब कुन्तीकुमार भीमसेनने युद्धमें सम्मुख मृत्यु अथवा विजय इन दोमेंसे एकका निश्चित रूपसे वरण करनेकी इच्छा रखकर ढाल और सुवर्णभूषित तलवार हाथमें ले ली ॥ ६८½ ॥

तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।

भारत ! उस समय क्रोधमें भरे हुए कर्णने हँसते हुए-से वेगपूर्वक बहुत-से अत्यन्त भयंकर बाण मारकर भीमसेनकी चमकीली ढाल नष्ट कर दी ॥ ६९½ ॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति ।

महाराज ! ढाल और रथसे रहित हुए भीमसेनने क्रोधसे आतुर हो बड़ी उतावलीके साथ कर्णके रथपर तलवार घुमाकर चला दी ॥ ७०½ ॥

स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्त्वा महानसिः ॥ ७१ ॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाम्बरात् ।

राजेन्द्र ! वह बड़ी तलवार आकाशसे कुपित सर्पकी भाँति आकर सूतपुत्र कर्णके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काटती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७१½ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत् स शरान् कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया ॥ ७३ ॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ।

यह देख अधिरथ-पुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और समराङ्गणमें कुपित हो उसने शत्रुविनाशकारी सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाला अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर कुन्तीपुत्रके वधकी इच्छासे सुवर्णमय पंखवाले सहस्रों अत्यन्त तीखे बाणोंका संधान किया ॥ ७२-७३½ ॥

स वध्यमानो बलवान् कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ ॥
वैहायसं प्राक्रमद् वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा घायल किये जाते हुए बलवान् भीमसेन कर्णके मनमें व्यथा उत्पन्न करते हुए उसे पकड़नेके लिये आकाशमें उछले ॥ ७४½ ॥

स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

संग्राममें विजय चाहनेवाले भीमसेनका वह चरित्र देख राधापुत्र कर्णने अपना अङ्ग सिकोड़कर भीमसेनके आक्रमणको विफल कर दिया ॥ ७५½ ॥

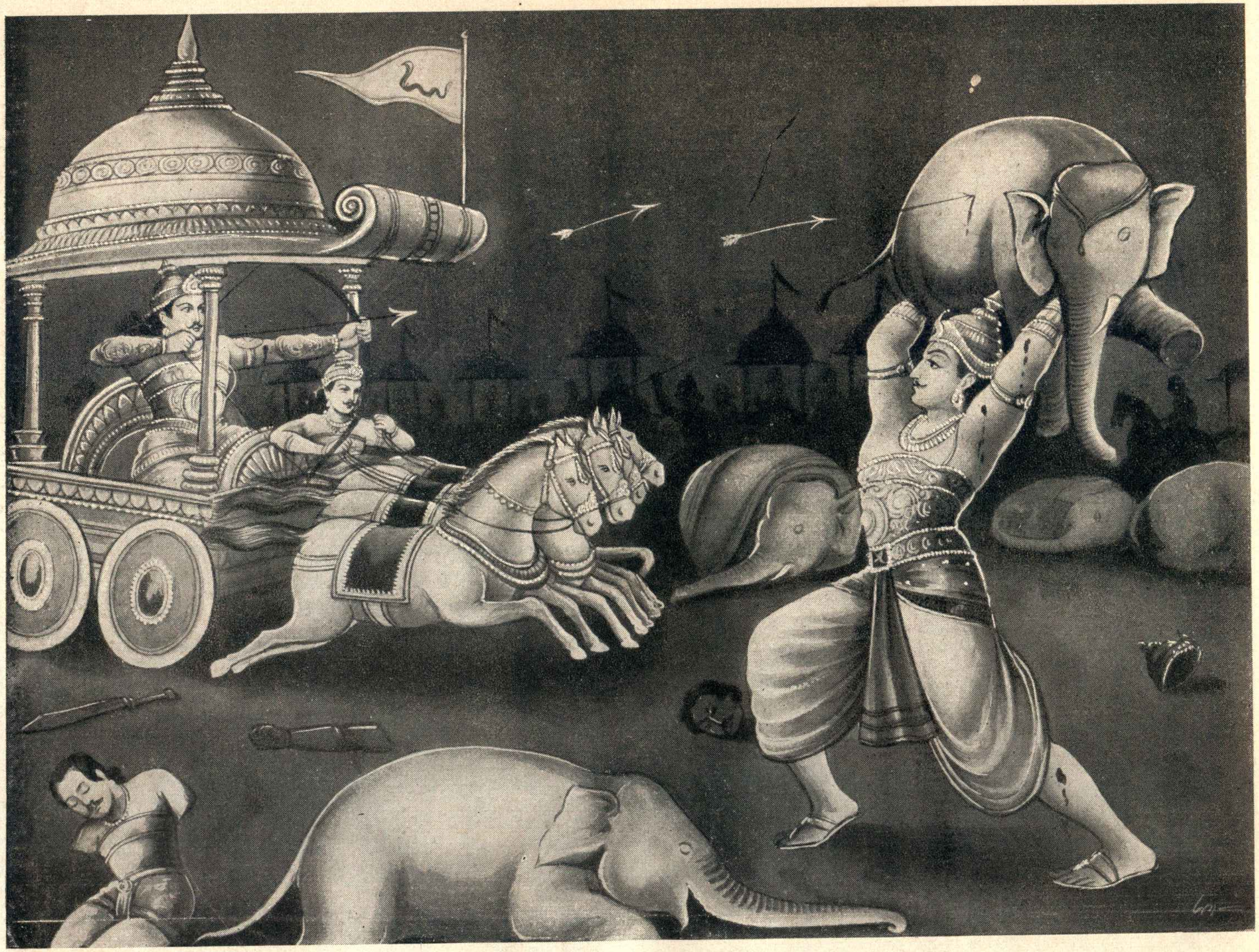


तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।

कर्णकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो गयी थीं । वह रथके पिछले भागमें दुबक गया था । उसे उस अवस्थामें देखकर भीमसेन उसके ध्वजका सहारा लेकर पृथ्वीपर खड़े हो गये ।७६½।

तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ७७ ॥
यदियेष रथात् कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।

जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने कर्णको उसके रथसे पकड़ ले जानेकी जो इच्छा की थी,



भीमसेनका कर्णके रथपर हाथीकी लाश फेंकना

उनके इस कर्मकी समस्त कौरवों तथा चारणोंने भी प्रशंसा की ॥ ७७½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ७८ ॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।

धनुष कट जाने तथा रथहीन होनेपर भी स्वधर्मका पालन करते हुए भीमसेन अपने रथको पीछे करके युद्धके लिये ही खड़े रहे ॥ ७८½ ॥

तद् विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥
संरम्भात् पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।

उनके रथ आदि साधनोंको नष्ट करके राधानन्दन कर्णने फिर क्रोधपूर्वक रणक्षेत्रमें युद्धके लिये उपस्थित हुए इन पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ७९½ ॥

तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।

महाराज ! एक दूसरेसे स्पर्धा रखनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ महाबली वीर परस्पर भिड़कर वर्षा ऋतुमें गर्जना करनेवाले दो मेघोंके समान गरज रहे थे ॥८०½ ॥

तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।

युद्धस्थलमें अमर्ष और क्रोधसे भरे हुए उन दोनों पुरुषसिंहोंका संग्राम देव-दानव-युद्धके समान भयंकर हो रहा था ॥ ८१½ ॥

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वार्जुनहतान् नागान् पतितान् पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥

जब कुन्तीकुमार भीमसेनके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये, उनके पास एक भी आयुध शेष नहीं रह गया और कर्णके द्वारा उनपर पूर्ववत् आक्रमण होता रहा, तब वे रथके मार्गको बंद कर देनेके लिये अर्जुनके मारे हुए पर्वताकार हाथियोंको वहाँ गिरा देख उनके भीतर प्रवेश कर गये ॥ ८२-८३ ॥

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाभ्यहारयत् ॥ ८४ ॥

हाथियोंके समूहमें पहुँचकर मानो वे रथके आक्रमणसे बचनेके लिये दुर्गके भीतर प्रविष्ट हो गये हों, ऐसा अनुभव करते हुए पाण्डुपुत्र भीम केवल अपने प्राण बचानेकी इच्छा करने लगे, उन्होंने राधापुत्र कर्णपर प्रहार नहीं किया ॥ ८४ ॥

व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन् धनंजयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरंजयः ॥ ८५ ॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले कुन्तीकुमार भीमसेन यह चाहते थे कि कर्णके बाणोंसे बचनेके लिये कोई व्यवधान (आड) मिल जाय; इसीलिये वे अर्जुनके बाणोंसे मारे गये एक हाथीकी लाशको उठाकर चुपचाप खड़े हो गये । उस समय वे संजीवन नामक महान् ओषधिसे युक्त पर्वत उठाये हुए हनुमान्‌जीके समान जान पड़ते थे ॥ ८५½ ॥

तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत् कुञ्जरं पुनः ॥ ८६ ॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद् यद् यत् पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥
तत् तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥ ८८ ॥

कर्णने अपने बाणोंद्वारा उस हाथीके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । तब पाण्डुनन्दन भीमने हाथीके कटे हुए अंगोंको ही कर्णपर फेंकना शुरू किया । रथोंके पहिये, घोड़ोंकी लाशें तथा और भी जो-जो वस्तुएँ वे धरतीपर पड़ी देखते, उन्हें उठाकर क्रोधपूर्वक कर्णपर फेंकते थे; परंतु वे जो-जो वस्तु फेंकते, उन सबको कर्ण अपने तीखे बाणोंसे काट डालता था ॥ ८६—८८ ॥

भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत् सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥
शक्तोऽपि नावधीत् कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥ ९० ॥

अब भीमसेनने अपने अंगूठेको मुट्ठीके भीतर करके वज्रतुल्य अत्यन्त भयंकर घूँसा तानकर सूतपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छा की । तबतक क्षणभरमें उन्हें अर्जुनकी याद आ गयी । अतः सव्यसाची अर्जुनने पहले जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी रक्षा करते हुए पाण्डुनन्दन भीमने समर्थ एवं शक्तिशाली होनेपर भी उस समय कर्णका वध नहीं किया ॥ ८९-९० ॥

तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः ।
मूर्च्छयाभिपरीताङ्गमकरोत् सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार वहाँ बाणोंके आघातसे व्याकुल हुए भीमसेनको सूतपुत्र कर्णने बारंबार अपने पैने बाणोंकी मारसे मूर्छित-सा कर दिया ॥ ९१ ॥

व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ९२ ॥

परंतु कुन्तीके वचनका स्मरण करके उसने शस्त्रहीन भीमसेनका वध नहीं किया । कर्णने उनके पास जाकर अपने धनुषकी नोकसे उनका स्पर्श किया ॥ ९२ ॥

धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत् ॥ ९३ ॥

धनुषका स्पर्श होते ही वे क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकार उठे और उन्होंने कर्णके हाथसे वह धनुष छीनकर उसे उसीके मस्तकपर दे मारा ॥ ९३ ॥

ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः ।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९४ ॥

भीमसेनकी मार खाकर राधापुत्र कर्णकी आँखें लाल हो गयीं । उसने हँसते हुए-से यह बात कही—॥ ९४ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च ।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥

'ओ बिना दाढ़ी-मूछके नपुंसक ! ओ मूर्ख ! अरे पेटू ! तू तो अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानसे सर्वथा शून्य है । युद्धभीरु कायर ! छोकरे ! अब फिर कभी युद्ध न करना ॥ ९५ ॥

यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव ।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥

'दुर्बुद्धि पाण्डव ! जहाँ अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी वस्तुएँ रक्खी हों, तू वहीं रहनेके योग्य है ! युद्धोंमें तुझे कभी नहीं आना चाहिये ॥ ९६ ॥

मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च ।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥

'भीम ! वनमें रहकर तू फल-मूल और फूल खाकर व्रत एवं नियम आदि पालन करनेके योग्य है । युद्धकौशल तुझमें नाममात्रको भी नहीं है ॥ ९७ ॥

क्व युद्धं क्व मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर ।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥

'वृकोदर ! कहाँ युद्ध और कहाँ मुनिवृत्ति ! जा, जा, वनमें चला जा । तात ! तुझमें युद्धकी योग्यता नहीं है । तू तो वनवासका ही प्रेमी है ॥ ९८ ॥

(सूदं त्वामहमाजाने मात्स्ये प्रेष्यककारकम् ।)
सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम् ।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद् भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥

'मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ । तू मत्स्यराज विराट-का नौकर एक रसोइया रहा है । वृकोदर ! तू तो घरमें रसोइयों, भृत्यजनों तथा दासोंको बहुत जल्दी भोजन तैयार करनेके लिये प्रेरणा देते हुए क्रोधसे उन्हें डाँटने और मारने-पीटनेकी योग्यता रखता है ॥ ९९ ॥

मुनिर्भूत्वाथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते ।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥१००॥

'दुर्मति कुन्तीकुमार भीम ! अथवा तू मुनि होकर वनमें चला जा । वहाँ इधर-उधरसे फल ले आ और खा । तू युद्धमें निपुण नहीं है ॥ १०० ॥

फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथातिथिपूजने ।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥१०१॥

'वृकोदर ! तू फल-मूल खाने और अतिथिसत्कार करने-में समर्थ है । मैं तुझे हथियार उठानेके योग्य नहीं मानता' ॥

कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते ।
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद् भृशम् ॥१०२॥

प्रजापालक नरेश ! कर्णने बाल्यावस्थामें जो अप्रिय वृत्तान्त घटित हुए थे, उन सबका उल्लेख करते हुए बहुत-सी रूखी बातें सुनायीं ॥ १०२ ॥

अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद् धनुषा पुनः ।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥१०३॥

तत्पश्चात् वहाँ छिपे हुए भीमसेनका कर्णने पुनः धनुष-से स्पर्श किया और उस समय उनका उपहास करते हुए फिर कहा—॥ १०३ ॥

योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥१०४॥

'आर्य ! तुझे और लोगोंके साथ युद्ध करना चाहिये । मेरे-जैसे वीरोंके साथ नहीं । मेरे-जैसे योद्धाओंसे जूझनेवालों-की ऐसी ही अथवा इससे भी बुरी दशा होती है ॥ १०४ ॥

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे ।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥१०५॥

'अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं चला जा । वे रणभूमिमें तेरी रक्षा करेंगे । अथवा कुन्तीकुमार ! तू घर चला जा । बच्चे ! तुझे युद्धसे क्या लाभ है ?' ॥ १०५ ॥

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम् ।
उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥१०६॥

कर्णके ये अत्यन्त कठोर वचन सुनकर भीमसेन ठठा-कर हँस पड़े और सबके सुनते हुए उससे इस प्रकार बोले—॥

जितस्त्वमसकृद् दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना ।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥१०७॥

'अरे दुष्ट ! मैंने तुझे एक बार नहीं, बारंबार हराया है; फिर क्यों व्यर्थ अपने ही मुँहसे अपनी बड़ाई कर रहा है । संसारमें पूर्वपुरुषोंने देवराज इन्द्रकी भी कभी जय और कभी पराजय होती देखी है ॥ १०७ ॥

मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव ।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥१०८॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु ।

'नीच कुलमें पैदा हुए कर्ण ! आ, मेरे साथ मल्ल-युद्ध कर ले । जैसे मैंने महान् बलशाली महाभोगी कीचकको पीस डाला था, उसी प्रकार इन समस्त राजाओंके देखते-देखते मैं तुझे अभी मौतके हवाले कर दूँगा' ॥ १०८½ ॥

भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥१०९॥
विरराम रणात् तस्मात् पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

भीमसेनका यह अभिप्राय जानकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ

कर्ण समस्त धनुर्धरोंके सामने ही उस युद्धसे हट गया ॥ १०९½ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णौ राजन् व्यकत्थयत् ॥११०॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततो राजञ्शिलाधौतान्शरान्शाखामृगध्वजः ॥१११॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।

राजन् ! इस प्रकार कर्णने भीमसेनको रथहीन करके जब वृष्णिवंशके सिंह भगवान् श्रीकृष्ण और महामना अर्जुन-के सामने ही अपनी इतनी प्रशंसा की, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे कपिध्वज अर्जुनने शिलापर स्वच्छ किये हुए बहुत-से बाणोंको सूतपुत्र कर्णपर चलाया ॥ ११०-१११½ ॥

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥११२॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्ण हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये तथा गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए वे सुवर्णभूषित बाण कर्णके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस क्रौञ्च पर्वतकी गुफाओंमें समा जाते हैं ॥ ११२½ ॥

स भुजङ्गैरिवाविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥११३॥
भीमसेनादपासेधत् सूतपुत्रं धनंजयः ।

इस प्रकार धनंजयने गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये रोष-भरे सर्पोंके समान बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको भीमसेनसे दूर हटा दिया ॥ ११३½ ॥

स च्छिन्नधन्वा भीमेन धनंजयशराहतः ॥११४॥
कर्णो भीमादपायासीद् रथेन महता द्रुतम् ।

भीमसेनने कर्णके धनुषको तो पहले-से ही तोड़ दिया था । इसीलिये वह धनंजयके बाणोंसे घायल हो भीमसेनको छोड़कर अपने विशाल रथके द्वारा तुरंत ही वहाँसे दूर हट गया ॥ ११४½ ॥

भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥११५॥
अन्वयाद् भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।

इधर नरश्रेष्ठ भीमसेन भी सात्यकिके रथपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें सव्यसाची पाण्डुपुत्र भाई अर्जुनके पास जा पहुँचे ॥ ११५½ ॥

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनंजयः ॥११६॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः ।

तत्पश्चात् क्रोधसे लाल आँखें किये अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ कर्णको लक्ष्य करके एक नाराच चलाया, मानो यमराजने किसीके लिये मौत भेज दी हो ॥ ११६½ ॥

स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ॥११७॥
नाराचोऽभ्यपतत् कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह नाराच आकाशमार्गसे तुरंत ही कर्णकी ओर चला, मानो गरुड़ किसी उत्तम सर्पको पकड़नेके लिये जा रहे हों ॥ ११७½ ॥

तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥११८॥
धनंजयभयात् कर्णमुज्जिहीर्षन् महारथः ।

उस समय अर्जुनके भयसे कर्णका उद्धार करनेकी इच्छा रखकर महारथी अश्वत्थामाने अपने बाणसे उस नाराचको आकाशमें ही काट दिया ॥ ११८½ ॥

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विद्‌ध्वा क्रुपितोऽर्जुनः ॥११९॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने अश्वत्थामाको चौसठ बाण मारे और कहा—'खड़े रहो, भागना मत' ॥ ११९½ ॥

स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥१२०॥
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनंजयशरार्दितः ।

परंतु अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो अश्वत्थामा तुरंत ही रथसे व्याप्त एवं मतवाले हाथियोंसे भरे हुए व्यूहके भीतर घुस गया ॥ १२०½ ॥

ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥१२१॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद् बली ।

तब बलवान् कुन्तीकुमार अर्जुनने रणक्षेत्रमें टंकार करते हुए सुवर्णमय पृष्ठभागवाले समस्त धनुषोंके सम्मिलित शब्दों-को अपने गाण्डीव धनुषके गम्भीर घोषसे दबा दिया १२१½

धनंजयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्ययात् ॥१२२॥
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन् बलम् ।

अर्जुन भागते हुए अश्वत्थामाके पीछे-पीछे अपने बाणों-द्वारा कौरवसेनाको संत्रस्त करते हुए कुछ दूरतक गये ॥ १२२½ ॥

विदार्य देहान् नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥१२३॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।

उस समय उन्होंने कंक और मोरकी पाँखोंसे युक्त नाराचोंद्वारा घोड़ों, हाथियों और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके सारी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥१२३½॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥१२४॥
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥१२५॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सावधान हुए इन्द्रकुमार, कुन्ती-पुत्र अर्जुनने हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे भरी हुई उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १२४-१२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ १३९

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १२५ ½ श्लोक हैं)

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा राजा अलम्बुषका और दुःशासनके घोड़ोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति संजय।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम्॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! प्रतिदिन मेरा उज्ज्वल यश घटता या मन्द पड़ता जा रहा है, मेरे बहुत-से योद्धा मारे गये, इसे मैं समयका ही फेर समझता हूँ॥ १॥

धनंजयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम्।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि॥ २॥

अश्वत्थामा और कर्णके द्वारा सुरक्षित मेरी सेनामें, जहाँ देवताओंका भी प्रवेश असम्भव था, क्रोधमें भरे हुए अर्जुन प्रविष्ट हो गये॥ २॥

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च॥ ३॥

महान् पराक्रमी श्रीकृष्ण और भीमसेन तथा शिनिप्रवर सात्यकिका साथ होनेसे अर्जुनका बल तथा पराक्रम और भी बढ़ गया है॥ ३॥

तदाप्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाशयम्।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान् ससैन्धवान्॥ ४॥

जबसे यह बात मुझे मालूम हुई है, तबसे शोक मुझे उसी प्रकार दग्ध कर रहा है, जैसे काष्ठसे पैदा होनेवाली आग अपने आधारभूत काष्ठको ही जला देती है। मैं सिंधुराज जयद्रथसहित समस्त राजाओंको कालके गालमें गया हुआ ही समझता हूँ॥ ४॥

अप्रियं सुमहत् कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात्॥ ५॥

सिंधुराज जयद्रथ किरीटधारी अर्जुनका महान् अप्रिय करके जब उनकी आँखोंके सामने आ गया है, तब कैसे जीवित रह सकता है?॥ ५॥

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति संजय सैन्धवः।
युद्धं तु तद् यथावृत्तं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः॥ ६॥

संजय! मैं अनुमानसे यह देख रहा हूँ कि सिंधुराज जयद्रथ अब जीवित नहीं है। अब वह युद्ध जिस प्रकार हुआ था, वह सब यथार्थरूपसे बताओ॥ ६॥

यश्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चासकृत्।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः॥ ७॥
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम्।
धनंजयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि संजय॥ ८॥

संजय! जैसे हाथी किसी पोखरेमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार जिन्होंने अकेले ही कुपित होकर मेरी विशाल सेनाको क्षुब्ध करके बारंबार उसे मथकर उसके भीतर प्रवेश किया था, उन वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने अर्जुनके लिये प्रयत्नपूर्वक जैसा युद्ध किया था, उसका वर्णन करो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो॥ ७-८॥

संजय उवाच

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम्।
समीक्ष्य राजन् नरवीरमध्ये
शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन॥ ९॥

संजयने कहा—राजन्! पुरुषोंमें प्रमुख वीर भीमसेन अर्जुनके पास जाते समय जब पूर्वोक्त प्रकारसे कर्णद्वारा पीड़ित होने लगे, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिने उन नरवीरोंके समूहमें रथके द्वारा भीमसेनकी सहायताके लिये उनका अनुसरण किया॥ ९॥

नदन् यथा वज्रधरस्तपान्ते
ज्वलन् यथा जलदान्ते च सूर्यः।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम्॥ १०॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र वर्षाकालमें मेघरूपसे गर्जना करते हैं और जैसे सूर्य शरत्कालमें प्रज्वलित होते हैं, उसी प्रकार गरजते और तेजसे प्रज्वलित होते हुए सात्यकि अपने सुदृढ़ धनुषद्वारा आपके पुत्रकी सेनाको कँपाते हुए शत्रुओंका संहार करने लगे॥ १०॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशै-
रायोधने वीरवरं नदन्तम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम्॥ ११॥

भारत! उस युद्धस्थलमें रजतवर्णके अश्वोंद्वारा आगे बढ़ते और गरजना करते हुए मधुवंशशिरोमणि वीरवर सात्यकिको आपके सारे रथी मिलकर भी रोक न सके॥ ११॥

अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्य-
मवारयद् राजवरोऽभिपत्य॥ १२॥

उस समय सोनेका कवच और धनुष धारण किये, युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले, राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने अमर्षमें भरकर मधुकुलके महान् वीर सात्यकिको सहसा सामने आकर रोका॥ १२॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारो
यथाविधो नैव बभूव कश्चित्।
प्रेक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ
योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा दूसरा कोई युद्ध नहीं हुआ था। आपके और शत्रुपक्ष-के समस्त योद्धा संग्राममें शोभा पानेवाले उन दोनों वीरोंको देखते ही रह गये थे ॥ १३ ॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राजवरः प्रसह्य।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने सात्यकिको बलपूर्वक दस बाण मारे। शिनिप्रवर सात्यकिने भी बाणोंद्वारा अपने पास आने-से पहले ही उन समस्त बाणोंको काट गिराया ॥ १४ ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सपुङ्खैः।
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥

तब अलम्बुषने धनुषको कानतक खींचकर अग्निके समान प्रज्वलित, सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंद्वारा पुनः सात्यकिपर प्रहार किया। वे बाण सात्यकिके कवचको विदीर्ण करके उनके शरीरमें घुस गये ॥ १५ ॥

तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावै-
र्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशा-
नश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥

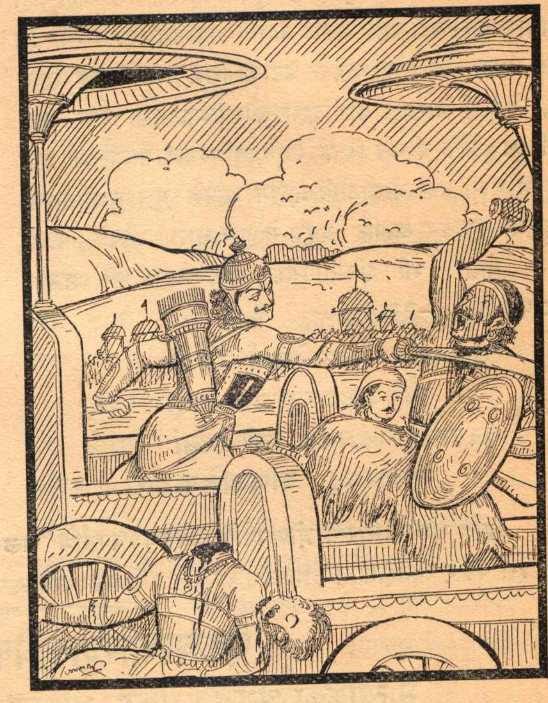
अग्नि और वायुके समान प्रभावशाली उन प्रज्वलित तीखे बाणोंद्वारा सात्यकिका शरीर विदीर्ण करके अलम्बुषने चाँदीके समान चमकनेवाले उनके उन चारों घोड़ोंको भी चार बाणोंसे हठात् घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भि-
रश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥

इस प्रकार अलम्बुषके द्वारा घायल होकर चक्रधारी विष्णुके समान प्रभावशाली और वेगवान् वीर शिनिपौत्र सात्यकिने अपने उत्तम वेगवाले चार बाणोंद्वारा राजा अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ १७ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन कालानलसंनिभेन।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उनके सारथिका भी मस्तक काटकर कालाग्नि-के समान तेजस्वी भल्लद्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिसे



प्रकाशित होनेवाले उनके कुण्डलमण्डित मुखमण्डलको भी धड़से काट गिराया ॥ १८ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः
सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥

राजन् ! शत्रुओंको मथ डालनेवाले यदुकुलतिलक वीर सात्यकिने इस प्रकार युद्धस्थलमें राजाके पुत्र और पौत्र अलम्बुषको मारकर आपकी सेनाको स्तब्ध करके फिर अर्जुन-का ही अनुसरण किया ॥ १९ ॥

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथारिमध्ये परिवर्तमानम्।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि
पुनः पुनर्वायुमिवाभ्रपूगान् ॥ २० ॥

ततोऽवहन् सैन्धवाः साधुदान्ता
गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा
यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥

अथात्मजास्ते सहिताभिपेतु-
रन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः।

कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं
दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥

उस समय गोदुग्ध, कुन्दकुसुम, चन्द्रमा तथा हिमके समान कान्तिवाले सिंधुदेशीय सुशिक्षित सुन्दर घोड़े, जो सोनेकी जालीसे आवृत थे, पुरुषसिंह सात्यकि जहाँ-जहाँ जाना चाहते, वहाँ-वहाँ उन्हें ले जाते थे। अजमीढवंशी भरतनन्दन! इस प्रकार जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करती रहती है, वैसे ही बारंबार बाणोंद्वारा कौरवसेनाओंका संहार करते और शत्रुओंके बीचमें विचरते हुए वृष्णिवीर सात्यकिको वहाँ आया हुआ देख योद्धाओंमें प्रधान आपके पुत्र दुःशासनको अगुआ बनाकर आपके बहुत-से पुत्र तथा आपके पक्षके अन्य योद्धा भी शीघ्रतापूर्वक एक साथ ही उनपर टूट पड़े ॥ २०-२२ ॥

ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये
शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान् प्रवरः सात्वतानां
न्यवारयद् बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥

वे सभी बड़ी-बड़ी सेनाओंका आक्रमण सहनेमें समर्थ थे। उन सबने युद्धस्थलमें सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया। सात्वतशिरोमणि वीर सात्यकिने भी अपने बाणोंके समूहसे उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २३ ॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याभिजघान वाहा-
नुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥

अजमीढनन्दन! उन सबको रोककर शत्रुघाती शिनिपौत्र सात्यकिने तुरंत ही धनुष उठाकर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा दुःशासनके घोड़ोंको मार डाला ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये
कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषोंमें प्रधान वीर सात्यकिको उस युद्धभूमिमें उपस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४० ॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका अद्भुत पराक्रम, श्रीकृष्णका अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना और अर्जुनकी चिन्ता

संजय उवाच

तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनंजयजयैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महाबाहु सात्यकि जल्दी करने योग्य कार्योंमें बड़ी फुर्ती दिखाते थे। वे अर्जुनकी विजय चाहते थे। उन्हें अनन्त सैन्य-सागरमें प्रविष्ट होकर दुःशासनके रथपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत देख सोनेकी ध्वजा धारण करनेवाले त्रिगर्तदेशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने सब ओरसे घेर लिया ॥ १-२ ॥

अथैनं रथवंशेन सर्वतः संनिवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥

रथसमूहद्वारा सब ओरसे सात्यकिको अवरुद्ध करके उन परम धनुर्धर योद्धाओंने उनपर क्रोधपूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

अजयद् राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान् महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥

परंतु उस महासमरमें शोभा पानेवाले अपने शत्रुरूप उन पचास राजकुमारोंको सत्यपराक्रमी सात्यकिने अकेले ही परास्त कर दिया ॥ ४ ॥

सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।

कौरवसेनाका वह मध्यभाग हथेलियोंके चट-चट शब्दसे गूँज उठा था। खड्ग, शक्ति तथा गदा आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त था और नौकारहित अगाध जलके समान दुस्तर प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचकर हमलोगोंने रणभूमिमें सात्यकिका अद्भुत चरित्र देखा ॥ ५½ ॥

प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६ ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥

वे इतनी फुर्तीसे इधर-उधर जाते थे कि मैं उन्हें पश्चिम दिशामें देखकर तुरंत ही पूर्व दिशामें भी उपस्थित देखता था, सैकड़ों रथियोंके समान वे शूरवीर सात्यकि उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम तथा कोणवर्ती दिशाओंमें भी नाचते हुए-से विचर रहे थे ॥ ६-७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त संतप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥

सिंहके समान पराक्रमसूचक गतिसे चलनेवाले सात्यकिके उस चरित्रको देखकर त्रिगर्तदेशीय योद्धा अपने स्वजनोंके लिये शोक-संताप करते हुए पीछे लौट गये ॥ ८ ॥

तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ॥ ९ ॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें दूसरे शूरसेनदेशीय शूरवीर सैनिकोंने अपने शरसमूहोंद्वारा उनपर नियन्त्रण करते हुए उन्हें उसी प्रकार रोका, जैसे महावत मतवाले हाथीको अंकुशोंद्वारा रोकते हैं ॥ ९ ॥

तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥

तब अचिन्त्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न महामना सात्यकिने उनके साथ युद्ध करके दो ही घड़ीमें उन्हें हरा दिया और फिर वे कलिङ्गदेशीय सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनंजयमुपासदत् ॥ ११ ॥

कलिङ्गोंकी उस दुर्जय सेनाको लाँघकर महाबाहु सात्यकि कुन्तीकुमार अर्जुनके निकट जा पहुँचे ॥ ११ ॥

तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥

जैसे जलमें तैरते-तैरते थका हुआ मनुष्य स्थलमें पहुँच जाय, उसी प्रकार पुरुषसिंह अर्जुनको देखकर युयुधानको बड़ा आश्वासन मिला ॥ १२ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥

सात्यकिको आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे



कहा—'पार्थ ! देखो, यह तुम्हारे चरणोंका अनुगामी शिनिपौत्र सात्यकि आ रहा है ॥ १३ ॥

एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥

'यह सत्यपराक्रमी वीर तुम्हारा शिष्य और सखा भी है। इस पुरुषसिंहने समस्त योद्धाओंको तिनकोंके समान समझकर परास्त कर दिया है ॥ १४ ॥

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥

'किरीटधारी अर्जुन ! जो तुम्हें प्राणोंके समान अत्यन्त प्रिय है, वही यह सात्यकि कौरव योद्धाओंमें घोर उपद्रव मचाकर आ रहा है ॥ १५ ॥

एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥

'फाल्गुन ! यह सात्यकि अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्य तथा भोजवंशी कृतवर्माका भी तिरस्कार करके तुम्हारे पास आ रहा है ॥ १६ ॥

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥

'फाल्गुन ! यह शूरवीर एवं उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता सात्यकि धर्मराजके प्रिय तुम्हारे समाचार लेनेके लिये बड़े-बड़े योद्धाओंको मारकर यहाँ आ रहा है ॥ १७ ॥

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन् पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! महाबली सात्यकि कौरवसेनाके भीतर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके तुम्हें देखनेकी इच्छासे यहाँ आ रहा है ॥ १८ ॥

बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान् पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य आदि बहुत-से महारथियोंके साथ एकमात्र रथकी सहायतासे युद्ध करके यह सात्यकि इधर आ रहा है ॥ १९ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥

'कुन्तीकुमार ! अपने बाहुबलका आश्रय ले कौरवसेनाको विदीर्ण करके धर्मराजका भेजा हुआ यह सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २० ॥

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथंचन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥

'कुन्तीनन्दन ! कौरवसेनामें किसी प्रकार भी जिसकी समता करनेवाला एक भी योद्धा नहीं है, वही यह रणदुर्मद सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २१ ॥

कुरुसैन्याद् विमुक्तो वै सिंहो मध्याद् गवामिव।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥ २२ ॥

'पार्थ ! जैसे सिंह गायोंके बीचसे अनायास ही निकल जाता है, उसी प्रकार कौरव-सेनाके घेरेसे छूटकर निकला हुआ यह सात्यकि बहुत-सी शत्रु-सेनाओंका संहार करके इधर आ रहा है ॥ २२ ॥

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसंनिभैः।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २३ ॥

'कुन्तीनन्दन ! यह सात्यकि सहस्रों राजाओंके कमल-सदृश मस्तकोंद्वारा इस रणभूमिको पाटकर शीघ्रतापूर्वक इधर आ रहा है ॥ २३ ॥

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे।
निहत्य जलसंधं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः॥ २४ ॥

'यह सात्यकि रणभूमिमें भाइयोंसहित दुर्योधनको जीतकर और जलसंधका वध करके शीघ्र यहाँ आ रहा है ॥ २४ ॥

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम्।
तृणवद् व्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः॥ २५ ॥

'शोणित और मांसरूपी कीचड़से युक्त खूनकी नदी बहाकर और कौरव-सैनिकोंको तिनकोंके समान उड़ाकर यह सात्यकि इधर आ रहा है' ॥ २५ ॥

ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत्।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः॥ २६ ॥

तब हर्षमें भरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुनने केशवसे कहा—'महाबाहो ! सात्यकि जो मेरे पास आ रहे हैं, यह मुझे प्रिय नहीं है ॥ २६ ॥

न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा॥ २७ ॥

'केशव ! पता नहीं, धर्मराजका क्या हाल है ? सात्यकिसे रहित होकर वे जीवित हैं या नहीं ? ॥ २७ ॥

एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः॥ २८ ॥

'महाबाहो ! सात्यकिको तो उन्हींकी रक्षा करनी चाहिये थी। श्रीकृष्ण ! उन्हें छोड़कर ये मेरे पीछे कैसे चले आये ? ॥ २८ ॥

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे॥ २९ ॥

'इन्होंने राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके लिये छोड़ दिया और सिन्धुराज जयद्रथ भी अभी मारा नहीं गया। इसके सिवा ये भूरिश्रवा रणमें शिनिपौत्र सात्यकिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं ॥ २९ ॥

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः॥ ३० ॥

'इस समय सिन्धुराज जयद्रथके कारण यह मुझपर बहुत बड़ा भार आ गया। एक तो मुझे राजाका कुशल-समाचार जानना है, दूसरे सात्यकिकी भी रक्षा करनी है ॥ ३० ॥

जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम्॥ ३१ ॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता च माधव।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव॥ ३२ ॥

'इसके सिवा जयद्रथका भी वध करना है। इधर सूर्यदेव अस्ताचलपर जा रहे हैं। माधव ! ये महाबाहु सात्यकि इस समय थककर अल्पप्राण हो रहे हैं। इनके घोड़े और सारथि भी थक गये हैं। किंतु केशव ! भूरिश्रवा और उनके सहायक थके नहीं हैं ॥ ३१-३२ ॥

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ३३ ॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः।

'क्या इन दोनोंके इस संघर्षमें इस समय सात्यकि सकुशल विजयी हो सकेंगे ? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि सत्यपराक्रमी शिनिप्रवर महाबली सात्यकि समुद्रको पार करके गायकी खुरीके बराबर जलमें डूबने लगें ॥ ३३½ ॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत्।

'कौरवकुलके मुख्य वीर अस्त्रवेत्ता महामना भूरिश्रवासे भिड़कर क्या सात्यकि सकुशल रह सकेंगे ॥ ३४½ ॥

व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव॥ ३५ ॥
आचार्याद् भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत् सात्यकिम्।

'केशव ! मैं तो धर्मराजके इस कार्यको विपरीत समझता हूँ, जिन्होंने द्रोणाचार्यका भय छोड़कर सात्यकिको इधर भेज दिया ॥ ३५½ ॥

ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम्॥ ३६ ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः॥ ३७ ॥

'जैसे बाजपक्षी मांसपर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य प्रतिदिन धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं। क्या राजा युधिष्ठिर सकुशल होंगे ?' ॥ ३६-३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकि और अर्जुनका परस्पर साक्षात्कारविषयक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवा और सात्यकिका रोषपूर्वक सम्भाषण और युद्ध तथा सात्यकिका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए भूरिश्रवाकी भुजाका अर्जुनद्वारा उच्छेद

संजय उवाच

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम्।
क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! रणदुर्मद सात्यकिको आते देख भूरिश्रवाने क्रोधपूर्वक सहसा उनपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम्।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

महाराज! कुरुनन्दन भूरिश्रवाने उस समय शिनिप्रवर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—'युयुधान! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये। आज युद्धमें मैं अपनी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। यदि तुम मैदान छोड़कर भाग नहीं गये तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं बचोगे ॥ २-३ ॥

अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम्।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥

'दाशार्ह! तुम सदा अपनेको बड़ा शूरवीर मानते हो। आज मैं समरभूमिमें तुम्हारा वध करके कुरुराज दुर्योधनको आनन्दित करूँगा ॥ ४ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥

'आज युद्धमें वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों एक साथ तुम्हें मेरे बाणोंसे दग्ध होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखेंगे ॥५॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥ ६ ॥

'आज जिन्होंने इस सेनाके भीतर तुम्हारा प्रवेश कराया है, वे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरे द्वारा तुम्हारे मारे जानेका समाचार सुनकर तत्काल लज्जित हो जायँगे ॥ ६ ॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनंजयः।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥

'आज जब तुम मारे जाकर खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो जाओगे, उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरे पराक्रमको अच्छी तरह जान लेंगे ॥ ७ ॥

चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥

'जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें इन्द्रका राजा बलिके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार तुम्हारे साथ मेरा युद्ध हो, यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा थी ॥ ८ ॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥

'सात्वत! आज मैं तुम्हें अत्यन्त घोर संग्रामका अवसर दूँगा। इससे तुम मेरे बल, वीर्य और पुरुषार्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करोगे ॥ ९ ॥

अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ १० ॥

'जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीके भाई लक्ष्मणके द्वारा युद्धमें रावणकुमार इन्द्रजित् मारा गया था, उसी प्रकार इस रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे जाकर तुम आज ही यमराजकी संयमनीपुरीकी ओर प्रस्थान करोगे ॥ १० ॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥

'माधव! आज तुम्हारे मारे जानेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर उत्साहशून्य हो युद्ध बंद कर देंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥ १२ ॥

'मधुकुलनन्दन! आज तीखे बाणोंसे तुम्हारी पूजा करके मैं उन वीरोंकी स्त्रियोंको आनन्दित करूँगा, जिन्हें रणभूमिमें तुमने मार डाला है ॥ १२ ॥

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥

'माधव! जैसे कोई क्षुद्र मृग सिंहकी दृष्टिमें पड़कर जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मेरी आँखोंके सामने आकर अब तुम जीवित नहीं छूट सकोगे' ॥ १३ ॥

युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥

राजन्! युयुधानने भूरिश्रवाकी यह बात सुनकर हँसते हुए-से यह उत्तर दिया—'कुरुनन्दन! युद्धमें मुझे कभी किसीसे भय नहीं होता है ॥ १४ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्।
स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम्॥ १५॥

'मुझे केवल बातें बनाकर नहीं डराया जा सकता। संग्राममें जो मुझे शस्त्रहीन कर दे, वही मेरा वध कर सकता है ॥ १५ ॥

समास्तु शाश्वतीर्हन्याद् यो मां हन्याद्धि संयुगे।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥ १६ ॥

'जो युद्धमें मुझे मार सकता है, वह सदा सर्वत्र अपने शत्रुओंका वध कर सकता है। अस्तु, व्यर्थ ही बहुत-सी बातें बनानेसे क्या लाभ? तुमने जो कुछ कहा है, उसे करके दिखाओ ॥ १६ ॥

शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥

'शरत्कालके मेघके समान तुम्हारे इस गर्जन-तर्जनका कुछ फल नहीं है। वीर! तुम्हारी यह गर्जना सुनकर मुझे हँसी आती है ॥ १७ ॥

चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी ॥ १८ ॥
नाहत्वाहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम।

'कौरव! इस लोकमें मेरी भी तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी। वह आज पूरी हो जाय। तात! तुमसे युद्धकी अभिलाषा रखनेवाली मेरी बुद्धि मुझे जल्दी करनेके लिये प्रेरणा दे रही है। पुरुषाधम! आज तुम्हारा वध किये बिना मैं पीछे नहीं हटूँगा' ॥ १८½ ॥

अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे।

इस प्रकार एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर परस्पर वाग्बाणोंका प्रहार करते हुए उस युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हो बाणोंद्वारा आघात करने लगे ॥ १९½ ॥

समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २० ॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ।

वे दोनों महाधनुर्धर और पराक्रमी वीर उस रणक्षेत्रमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए हथिनीके लिये अत्यन्त कुपित होकर परस्पर युद्ध करनेवाले दो मदोन्मत्त हाथियोंकी तरह एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २०½ ॥

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ ॥ २१ ॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम्।

भूरिश्रवा और सात्यकि दोनों शत्रुदमन वीरोंने दो मेघोंकी भाँति परस्पर भयंकर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः।

भरतश्रेष्ठ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने शिनिप्रवर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे शीघ्रगामी बाणोंद्वारा आच्छादित करके तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २२½ ॥

दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ॥ २३ ॥
मुमोच निशितान् बाणान् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिके वधकी इच्छासे भूरिश्रवाने उन्हें दस बाणोंसे घायल करके उनपर और भी बहुत-से पैने बाण छोड़े ॥ २३½ ॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४ ॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो।

प्रजानाथ! प्रभो! सात्यकिने भूरिश्रवाके उन तीखे बाणोंको अपने पास आनेके पूर्व ही अपने अस्त्र-बलसे आकाशमें ही नष्ट कर दिये ॥ २४½ ॥

तौ पृथक् शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ।

वे दोनों वीर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे। एक कुरुकुलकी कीर्तिका विस्तार कर रहा था तो दूसरा वृष्णिवंशका यश बढ़ा रहा था। उन दोनोंने एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की ॥ २५½ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।

जैसे दो सिंह नखोंसे और दो बड़े-बड़े गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर रथ-शक्तियों तथा बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ २६½ ॥

निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् । २७ ।
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ।

प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेके अङ्गोंको विदीर्ण करते और खून बहाते हुए एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २७½ ॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८ ॥
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ।

कुरुकुल तथा वृष्णिवंशके यशका विस्तार करनेवाले उत्तमकर्मा भूरिश्रवा और सात्यकि इस प्रकार दो यूथपति गजराजोंके समान परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २८½ ॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं संजगर्जतुः।

ब्रह्मलोकको सामने रखकर परमपद प्राप्त करनेकी इच्छावाले वे दोनों वीर कुछ कालतक एक दूसरेकी ओर देखकर गर्जन-तर्जन करते रहे ॥ २९½ ॥

सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
हृष्टवद् धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम्।

सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों परस्पर बाणोंकी बौछार कर रहे थे और धृतराष्ट्रके सभी पुत्र हर्षमें भरकर उनके युद्धका दृश्य देख रहे थे ॥ ३०½ ॥

सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधाम्पती ॥ ३१ ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ।

जैसे हथिनीके लिये दो यूथपति गजराज परस्पर घोर युद्ध करते हैं, उसी प्रकार आपसमें लड़नेवाले उन योद्धाओंके अधिपतियोंको सब लोग दर्शक बनकर देखने लगे ॥ ३१½ ॥

अन्योन्यस्य हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।

दोनोंने दोनोंके घोड़े मारकर धनुष काट दिये तथा उस महासमरमें दोनों ही रथहीन होकर खड्ग-युद्धके लिये एक दूसरेके सामने आ गये ॥ ३२½ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।

बैलके चमड़ेसे बनी हुई दो विचित्र, सुन्दर एवं विशाल ढालें लेकर और तलवारोंको म्यानसे बाहर निकालकर वे दोनों समराङ्गणमें विचरने लगे ॥ ३३½ ॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥ ३४ ॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥

क्रोधमें भरे हुए वे दोनों शत्रुमर्दन वीर पृथक्-पृथक् नाना प्रकारके मार्ग और मण्डल (पैंतरे और दाँव-पेंच) दिखाते हुए एक दूसरेपर बारंबार चोट करने लगे । उनके हाथोंमें तलवारें चमक रही थीं । उन दोनोंके ही कवच विचित्र थे तथा वे निष्क और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३४—३५ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिंदमौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों यशस्वी वीर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखाते हुए परस्पर तलवारों-का वार करने लगे ॥ ३६½ ॥

उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥

दोनों ही वीर एक दूसरेके छिद्र (प्रहार करनेके अवसर) पानेकी इच्छा रखते हुए विचित्र रीतिसे उछलते-कूदते थे । दोनों ही अपनी शिक्षा, फुर्ती तथा युद्ध-कौशल दिखाते हुए रणभूमिमें एक दूसरेको खींच रहे थे । वे दोनों ही योद्धाओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ३७—३८ ॥

मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥

राजेन्द्र ! उस समय विश्राम करती हुई सम्पूर्ण सेनाओं-के देखते देखते लगभग दो घड़ीतक एक दूसरेपर तलवारोंसे चोट करके दोनोंने दोनोंकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित विचित्र ढालें काट डालीं । नरेश्वर ! फिर वे दोनों पुरुषसिंह भुजाओंद्वारा मल्ल-युद्ध करने लगे ॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥

दोनोंके वक्षःस्थल चौड़े और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं । दोनों ही मल्ल-युद्धमें कुशल थे और लोहेके परिघोंके समान सुदृढ़ भुजाओंद्वारा एक दूसरेसे गुथ गये थे ॥ ४१ ॥

तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥

राजन् ! उन दोनोंके भुजाओंद्वारा आघात, निग्रह (हाथ पकड़ना) और प्रग्रह (गलेमें हाथ लगाना) आदि दाव उनकी शिक्षा और बलके अनुरूप प्रकट होकर समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहे थे ॥ ४२ ॥

तयोर्नृवरयो राजन् समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥

राजन् ! समरभूमिमें जूझते हुए उन दोनों नरश्रेष्ठोंके पारस्परिक आघातसे प्रकट होनेवाला महान् शब्द वज्र और पर्वतके टकरानेके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्राववबन्धैश्च शिरोभ्यां चावघातनैः ॥ ४४ ॥
पादावकर्षसंधानैस्तोमराङ्कुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥

जैसे दो हाथी दाँतोंके अग्रभागसे तथा दो साँड़ सींगोंसे लड़ते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर कभी भुजपाशोंसे बाँधकर, कभी सिरोंकी टक्कर लगाकर, कभी पैरोंसे खींचकर, कभी पैरमें पैर लपेट कर, कभी तोमर-प्रहारके समान ताल ठोंककर, कभी अङ्कुश गड़ानेके समान एक दूसरेको नोच-कर, कभी पादबन्ध, उदरबन्ध, उद्भ्रमण[1], गत[2], प्रत्यागत[3], आक्षेप[4], पातन[5], उत्थान[6] और सम्प्लुत[7] आदि दावोंका प्रदर्शन करते हुए वे दोनों महामनस्वी कुरु और सात्वतवंशके प्रमुख वीर परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥ ४४-४६ ॥

द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥ ४७ ॥

१. पृथ्वीपर घुमाना । २. प्रतिद्वन्द्वीकी ओर बढ़ना । ३. पीछे लौटना । ४. पछाड़ना ५. पृथ्वीपर पटकना । ६. उछलकर खड़ा होना । ७. पीठ लगाना ।

भारत ! इस प्रकार वे दोनों महाबली वीर परस्पर जूझते हुए मल्ल-युद्धकी जो बत्तीस कलाएँ हैं, उनका प्रदर्शन करने लगे ॥ ४७ ॥

क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने
ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं
रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर जब अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो जानेपर सात्यकि युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! रणमें समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ इस सात्यकिकी ओर देखो । यह रथहीन होकर युद्ध कर रहा है ॥ ४८ ॥

(सीदन्तं सात्यकिं पश्य पार्थैनं परिरक्ष च ॥)
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, सात्यकि शिथिल हो गया है । इसकी रक्षा करो । भारत ! पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे पीछे-पीछे यह कौरव-सेनाका व्यूह भेदकर भीतर घुस आया है और भरतवंशके प्रायः सभी महापराक्रमी योद्धाओंके साथ युद्ध कर चुका है ॥ ४९ ॥

(धार्तराष्ट्राश्च ये मुख्या ये च मुख्या महारथाः ।
निहता वृष्णिवीरेण शतशोऽथ सहस्रशः ॥)

'दुर्योधनकी सेनामें जो मुख्य योद्धा और प्रधान महारथी थे, वे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें इस वृष्णिवंशी वीरके हाथसे मारे गये हैं ॥

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकाङ्क्षी समायान्तं नैतत् सममिवार्जुन ॥ ५० ॥

'अर्जुन ! यहाँ आता हुआ योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि बहुत थक गया है, तो भी उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा आये हैं । यह युद्ध समान योग्यताका नहीं है' ॥ ५० ॥

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याभ्याहनद् राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥

राजन् ! इसी समय क्रोधमें भरे हुए रणदुर्मद भूरिश्रवाने उद्योग करके सात्यकिपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर चोट करता है ॥ ५१ ॥

रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! समराङ्गणमें रथपर बैठे हुए क्रोधभरे योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन वह युद्ध देख रहे थे ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ॥ ५३ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! देखो, वृष्णि और अंधकवंशका वह श्रेष्ठ वीर भूरिश्रवाके वशमें हो गया है ॥ ५३ ॥

परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥

'वह अत्यन्त दुष्कर कर्म करके परिश्रमसे चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर गया है । अर्जुन ! वीर सात्यकि तुम्हारा ही शिष्य है । उसकी रक्षा करो ॥ ५४ ॥

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥

'पुरुषसिंह अर्जुन ! प्रभो ! यह श्रेष्ठ वीर तुम्हारे लिये यज्ञशील भूरिश्रवाके अधीन न हो जाय, ऐसा शीघ्र प्रयत्न करो' ॥

अथाब्रवीद्‌धृष्टमना वासुदेवं धनंजयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।

तब अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन् ! देखिये, जैसे कोई सिंहोंका यूथपति वनमें मतवाले महान् गजके साथ क्रीडा करे, उसी प्रकार कुरुकुल-शिरोमणि भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिके साथ रणक्रीडा कर रहे हैं' ॥ ५६½ ॥

संजय उवाच

इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनंजये ॥ ५७ ॥
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद् भुवि ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! पाण्डुनन्दन अर्जुन इस प्रकार कह ही रहे थे कि सैनिकोंमें महान् हाहाकार मच गया । महाबाहु भूरिश्रवाने सात्यकिको उठाकर धरतीपर पटक दिया ॥ ५७–५८ ॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥

जैसे सिंह किसी मतवाले हाथीको खींचता है, उसी प्रकार प्रचुर दक्षिणा देनेवाले कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा युद्धस्थलमें सात्वत-वंशके प्रमुख वीर सात्यकिको घसीटते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ५९ ॥

अथ कोशाद् विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ६० ॥

तदनन्तर भूरिश्रवाने रणभूमिमें तलवारको म्यानसे बाहर निकालकर सात्यकिकी चुटिया पकड़ ली और उनकी छातीमें लात मारी ॥ ६० ॥

ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात् सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥

फिर उसने उनके कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर देनेका उद्योग आरम्भ किया। उस समय सात्यकि भी बड़ी शीघ्रताके साथ अपने मस्तकको घुमाने लगे ॥ ६१ ॥

यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥

भारत! जैसे कुम्हार छेदमें डंडा डालकर अपनी चाकको घुमाता है, उसी प्रकार केश पकड़े हुए भूरिश्रवाके बाँहके साथ ही सात्यकि अपने सिरको घुमाने लगे ॥ ६२ ॥

तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
वासुदेवस्ततो राजन् भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥

राजन्! इस प्रकार युद्धभूमिमें केश खींचे जानेके कारण सात्यकिको कष्ट पाते देख भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे पुनः इस प्रकार बोले— ॥ ६३ ॥

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥

'महाबाहो! देखो, वृष्णि और अन्धकवंशका वह सिंह



भूरिश्रवाके वशमें पड़ गया है। यह तुम्हारा शिष्य है और धनुर्विद्यामें तुमसे कम नहीं है ॥ ६४ ॥

असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥

'पार्थ! पराक्रम मिथ्या है, जिसका आश्रय लेनेपर भी वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिसे रणभूमिमें भूरिश्रवा बढ़ गये हैं' ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन युद्धस्थलमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा की ॥

विकर्षन् सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६७ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले भूरिश्रवा इस युद्धस्थलमें सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिको घसीटते हुए खेल-सा कर रहे हैं और बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम्।
महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥

जैसे सिंह वनमें किसी महान् गजराजको खींचता है, उसी प्रकार ये भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको खींच रहे हैं, उसे मार नहीं रहे हैं ॥ ६८ ॥

एवं तु मनसा राजन् पार्थः सम्पूज्य कौरवम्।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥

राजन्! इस प्रकार मन-ही-मन उस कुरुवंशी वीरकी प्रशंसा करके महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा— ॥ ६९ ॥

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम्।
एतत् त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७० ॥

'प्रभो! मेरी दृष्टि सिन्धुराज जयद्रथपर लगी हुई थी। इसलिये मैं सात्यकिको नहीं देख रहा था; परंतु अब मैं इस यदुवंशी वीरकी रक्षाके लिये यह दुष्कर कर्म करता हूँ' ॥

इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करते हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनने गाण्डीव धनुषपर एक तीखा क्षुरप्र रक्खा ॥ ७१ ॥

पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये उस क्षुरप्रने आकाशसे गिरी हुई बहुत बड़ी उल्काके समान उन यज्ञशील भूरिश्रवाके बाजूबंदविभूषित (दाहिनी) भुजाको खड्गसहित काट गिराया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाकी भुजाका उच्छेदविषयक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवाका अर्जुनको उपालम्भ देना, अर्जुनका उत्तर और आमरण अनशनके लिये बैठे हुए भूरिश्रवाका सात्यकिके द्वारा वध

संजय उवाच

स बाहुर्न्यपतद् भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! भूरिश्रवाकी सुन्दर बाजूबंदसे विभूषित वह उत्तम बाँह समस्त प्राणियोंके मनमें अद्भुत दुःखका संचार करती हुई खड्गसहित कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ १॥

प्रहरिष्यन् हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना।
वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः॥ २॥

प्रहार करनेके लिये उद्यत हुई वह भुजा अलक्ष्य अर्जुनके बाणसे कटकर पाँच मुखवाले सर्पकी भाँति बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद् गर्हयामास पाण्डवम्॥ ३॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके द्वारा अपनेको असफल किया हुआ देख कुरुवंशी भूरिश्रवाने कुपित हो सात्यकिको छोड़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनकी निन्दा करते हुए कहा॥ ३॥

(स विबाहुर्महाराज एकपक्ष इवाण्डजः।
एकचक्रो रथो यद्वद् धरणीमास्थितो नृपः।
उवाच पाण्डवं चैव सर्वक्षत्रस्य शृण्वतः॥)

महाराज! वे राजा भूरिश्रवा एक बाँहसे रहित हो एक पाँखके पक्षी और एक पहियेके रथकी भाँति पृथ्वीपर खड़े हो सम्पूर्ण क्षत्रियोंके सुनते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बोले॥

भूरिश्रवा उवाच

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः॥ ४॥

भूरिश्रवा बोले—कुन्तीकुमार! तुमने यह बड़ा कठोर कर्म किया है; क्योंकि मैं तुम्हें देख नहीं रहा था और दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ था, उस दशामें तुमने मेरी बाँह काट दी है॥ ४॥

किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे॥ ५॥

तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे क्या कहोगे? यही न कि 'भूरिश्रवा किसी और कार्यमें लगे थे और मैंने उसी दशामें उन्हें युद्धमें मार डाला है'॥ ५॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा॥ ६॥

पार्थ! इस अस्त्र-विद्याका उपदेश तुम्हें साक्षात् महात्मा इन्द्रने दिया है, या रुद्र, द्रोण अथवा कृपाचार्यने?॥ ६॥

ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि॥ ७॥

तुम तो इस लोकमें दूसरोंसे अधिक अस्त्र-धर्मके ज्ञाता हो, फिर जो तुम्हारे साथ युद्ध नहीं कर रहा था, उसपर संग्राममें तुमने कैसे प्रहार किया?॥ ७॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः॥ ८॥

मनस्वी पुरुष असावधान, डरे हुए, रथहीन, प्राणोंकी भिक्षा माँगनेवाले तथा संकटमें पड़े हुए मनुष्यपर प्रहार नहीं करते हैं॥ ८॥

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम्।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम्॥ ९॥

पार्थ! यह नीच पुरुषोंद्वारा आचरित और दुष्ट पुरुषोंद्वारा सेवित अत्यन्त दुष्कर पापकर्म तुमने कैसे किया?॥ ९॥

आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि॥ १०॥

धनंजय! श्रेष्ठ पुरुषके लिये श्रेष्ठ कर्म ही सुकर बताया गया है। नीच कर्मका आचरण तो इस पृथ्वीपर उसके लिये अत्यन्त दुष्कर माना गया है॥ १०॥

येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते॥ ११॥

नरव्याघ्र! मनुष्य जहाँ-जहाँ जिन-जिन लोगोंके समीप रहता है, उसमें शीघ्र ही उन लोगोंका शील-स्वभाव आ जाता है; यही बात तुममें भी देखी जाती है॥ ११॥

कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः॥ १२॥

अन्यथा राजाके वंशज और विशेषतः कुरुकुलमें उत्पन्न होकर भी तुम क्षत्रिय-धर्मसे कैसे गिर जाते? तुम्हारा शील-स्वभाव तो बहुत उत्तम था और तुमने श्रेष्ठ व्रतोंका पालन भी किया था॥ १२॥

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया।
वासुदेवमतं नूनं नैतत् त्वय्युपपद्यते॥ १३॥

तुमने सात्यकिको बचानेके लिये जो यह अत्यन्त नीच कर्म किया है, यह निश्चय ही वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका मत है, तुममें यह नीच विचार सम्भव नहीं है॥ १३॥

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद् यो न कृष्णसखो भवेत् ॥ १४ ॥

कौन ऐसा मनुष्य है, जो दूसरेके साथ युद्ध करनेवाले असावधान योद्धाको ऐसा संकट प्रदान कर सकता है । जो श्रीकृष्णका मित्र न हो, उससे ऐसा कर्म नहीं बन सकता ॥ १४ ॥

व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥

कुन्तीनन्दन ! वृष्णि और अन्धकवंशके लोग तो संस्कार-भ्रष्ट हिंसा-प्रधान कर्म करनेवाले और स्वभावसे ही निन्दित हैं । फिर उनको तुमने प्रमाण कैसे मान लिया ? ॥ १५ ॥

एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।

रणभूमिमें भूरिश्रवाके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उससे कहा ॥ १५½ ॥

अर्जुन उवाच

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥ १६ ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत् त्वया व्याहृतं प्रभो ।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥ १७ ॥

अर्जुन बोले—प्रभो ! यह स्पष्ट है कि मनुष्यके बूढ़े होनेके साथ-साथ उसकी बुद्धि भी बूढ़ी हो जाती है । तुमने इस समय जो कुछ कहा है, वह सब व्यर्थ है । तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णको और मुझ पाण्डुपुत्र अर्जुनको भी जानते हो, तो भी हमारी निन्दा करते हो ॥ १६-१७ ॥

संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥

मैं संग्रामके धर्मोंको जानता हूँ और सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत हूँ । मैं किसी प्रकार अधर्म नहीं कर सकता; यह जानते हुए भी तुम मेरे विषयमें मोहित हो रहे हो ॥ १८ ॥

युध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नराः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥ १९ ॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः ।

क्षत्रियलोग अपने-अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवों, समान अवस्थावाले साथी और मित्रोंसे घिरकर शत्रुओंके साथ युद्ध करते हैं । वे सब लोग उस प्रधान योद्धाके बाहुबलके आश्रित होते हैं ॥ १९½ ॥

स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धमेव च ॥ २० ॥
अस्मदर्थे च युध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान् ।
मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥
(निकृष्यमाणं तं दृष्ट्वा कथं शत्रुवशं गतम् ।
त्वया विकृष्यमाणं च दृष्टवानस्मि निष्क्रियम् ॥)

सात्यकि मेरा शिष्य और सुखप्रद सम्बन्धी है । वह मेरे ही लिये अपने दुस्त्यज प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है । राजन् ! रणदुर्मद सात्यकि युद्धस्थलमें मेरी दाहिनी भुजाके समान है । उसे तुम्हारे द्वारा कष्ट पाते देख मैं कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता था । मैंने देखा है तुम उसे घसीट रहे थे और वह शत्रुके अधीन होकर निश्चेष्ट हो गया था ॥ २०-२१ ॥

न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन् रणगतेन हि ।
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥ २२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें गये हुए वीरके लिये केवल अपनी ही रक्षा करना उचित नहीं है । नरेश्वर ! जो जिसके कार्योंमें संलग्न होता है, वह अवश्य ही उसके द्वारा रक्षणीय हुआ करता है ॥ २२ ॥

तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।
रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् कुध्यसि किं मयि ॥ २४ ॥

इसी प्रकार उन सुरक्षित होनेवाले सुहृदोंका भी कर्तव्य है कि वे महासमरमें अपने राजाकी रक्षा करें । यदि मैं इस महायुद्धमें सात्यकिको अपने सामने मरते देखता तो उसके वियोगसे मुझे अनर्थकारी पाप लगता । इसीलिये मैंने उसकी रक्षा की है । अतः तुम मुझपर क्यों क्रोध करते हो ? ॥ २३-२४ ॥

यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह संगतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥

राजन् ! आप जो यह कहकर मेरी निन्दा कर रहे हैं कि 'अर्जुन ! मैं दूसरेके साथ युद्धमें लगा हुआ था, उस दशामें तुमने मेरे साथ छल किया' आपकी इस बातसे मेरी बुद्धिमें भ्रम पैदा हो गया है ॥ २५ ॥

कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चारोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च संगमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः सम्भविष्यति ॥ २८ ॥

तुम स्वयं कवच हिलाते हुए रथपर चढ़े थे, धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते थे और अपने बहुसंख्यक शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे थे । इस प्रकार रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंसे भरे हुए सिंहनादकी भैरव गर्जनासे व्याप्त गम्भीर सैन्य-समुद्रमें जहाँ अपने और शत्रुपक्षके एकत्र हुए लोगोंका परस्पर युद्ध चल रहा था, तुम्हारी सात्यकिके साथ मुठभेड़ हुई थी । ऐसे तुमुल युद्धमें

योद्धाका एक ही योद्धाके साथ संग्राम कैसे माना जा सकता है ?॥ २६-२८ ॥

बहुभिः सह संगम्य निर्जित्य च महारथान्।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥ २९ ॥

सात्यकि बहुतसे योद्धाओंके साथ युद्ध करके कितने ही महारथियोंको पराजित करनेके बाद थक गया था। उसके घोड़े भी परिश्रमसे चूर-चूर हो रहे थे और वह अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो खिन्नचित्त हो गया था ॥ २९ ॥

ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम्।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥

ऐसी अवस्थामें महारथी सात्यकिको युद्धमें जीतकर तुम यह समझने लगे कि मैं सात्यकिसे बड़ा वीर हूँ और वह मेरे पराक्रमसे वशमें आ गया है ॥ ३० ॥

यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥

इसीलिये तुम युद्धस्थलमें तलवारसे उसका सिर काट लेना चाहते थे। सात्यकिको वैसे संकटमें देखकर मेरे पक्षका कौन वीर सहन करेगा ? ॥ ३१ ॥

त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥

तुम अपनी ही निन्दा करो, जो कि अपनी भी रक्षा-तक नहीं कर सकते। वीरवर ! फिर जो तुम्हारे आश्रयमें होगा, उसकी रक्षा कैसे कर सकोगे ? ॥ ३२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर यूपके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले महायशस्वी महाबाहु भूरिश्रवा सात्यकिको छोड़कर रणभूमिमें आमरण अनशनका नियम लेकर बैठ गये ॥ ३३ ॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान् प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ ३४ ॥

पवित्र लक्षणोंवाले भूरिश्रवाने बायें हाथसे बाण बिछाकर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे प्राणायामके द्वारा प्राणोंको प्राणोंमें ही होम दिया ॥ ३४ ॥

सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः।
ध्यायन् महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥

वे नेत्रोंको सूर्यमें और प्रसन्न मनको जलमें समाहित करके महोपनिषत्प्रतिपादित परब्रह्मका चिन्तन करते हुए योगयुक्त मुनि हो गये ॥ ३५ ॥

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनंजयौ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सारी कौरव-सेनाके लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा तथा नरश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियम्।
ततः प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद् यूपकेतनः ॥ ३७ ॥

उनके द्वारा निन्दित होनेपर भी श्रीकृष्ण और अर्जुनने कोई अप्रिय बात नहीं कही तथा प्रशंसित होनेपर भी यूपकेतु भूरिश्रवाने हर्ष नहीं प्रकट किया ॥ ३७ ॥

तांस्तथावादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनंजयः।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! आपके पुत्र जब भूरिश्रवाकी ही भाँति निन्दाकी बातें कहने लगे, तब अर्जुन उनके तथा भूरिश्रवाके उस कथनको मन-ही-मन सहन न कर सके ॥ ३८ ॥

असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! पाण्डुपुत्र अर्जुनके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं हुआ। उन्होंने मानो पुरानी बातें याद दिलाते हुए, कौरवोंपर आक्षेप करते हुए-से कहा—॥ ३९ ॥

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम्।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद् बाणगोचरे ॥ ४० ॥

'सब राजा मेरे इस महान् व्रतको जानते ही हैं कि जो कोई मेरा आत्मीयजन मेरे बाणोंकी पहुँचके भीतर होगा, वह किसी शत्रुके द्वारा मारा नहीं जा सकता ॥ ४० ॥

यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम्।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१ ॥

'यूपध्वज भूरिश्रवाजी ! इस बातपर ध्यान देकर आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्मके स्वरूपको जाने बिना दूसरे किसीकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ ४१ ॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥

'आप तलवार हाथमें लेकर रणभूमिमें वृष्णिवीर सात्यकिका वध करना चाहते थे। उस दशामें मैंने जो आपकी बाँह काट डाली है, वह आश्रित-रक्षारूप धर्म निन्दित नहीं है ॥ ४२ ॥

न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥

तात ! बालक अभिमन्यु शस्त्र, कवच और रथसे हीन हो चुका था, उस दशामें जो उसका वध किया गया, उसकी कौन धार्मिक पुरुष प्रशंसा कर सकता है ॥ ४३ ॥

(दुर्योधनस्य क्षुद्रस्य न प्रमाणेऽवतिष्ठतः।
सौमदत्तेर्वधः साधुः स वै साहाय्यकारिणः ॥

'जो शास्त्रीय मर्यादामें स्थित नहीं रहता, उस नीच दुर्योधनकी सहायता करनेवाले सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाका जो इस प्रकार वध हुआ है, वह ठीक ही है ॥

अस्मदीया मया रक्ष्याः प्राणबाध उपस्थिते ।
ये मे प्रत्यक्षतो वीरा हन्येरन्निति मे मतिः ॥

'मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मुझे प्राण-संकट उपस्थित होनेपर आत्मीय जनोंकी रक्षा करनी चाहिये; विशेषतः उन वीरोंकी जो मेरी आँखोंके सामने मारे जा रहे हों ॥

सात्यकिश्च वशं नीतः कौरवेण महात्मना ।
ततो मयैतच्चरितं प्रतिज्ञारक्षणं प्रति ॥

'कुरुवंशी महामना भूरिश्रवाने सात्यकिको अपने वशमें कर लिया था । इसीसे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैंने यह कार्य किया है' ॥

संजय उवाच

पुनश्च कृपयाऽऽविष्टो बहु तत्तद् विचिन्तयन् ।
उवाच चैनं कौरव्यमर्जुनः शोकपीडितः ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! फिर बहुत-सी भिन्न-भिन्न बातें सोचकर अर्जुन दयासे द्रवित और शोकसे पीड़ित हो उठे तथा कुरुवंशी भूरिश्रवासे इस प्रकार बोले ॥

अर्जुन उवाच

धिगस्तु क्षत्रधर्मं तु यत्र त्वं पुरुषेश्वरः ।
अवस्थामीदृशीं प्राप्तः शरण्यः शरणप्रदः ॥

अर्जुनने कहा—उस क्षत्रिय-धर्मको धिक्कार है, जहाँ दूसरोंको शरण देनेवाले आप-जैसे शरणागतवत्सल नरेश ऐसी अवस्थाको जा पहुँचे हैं ॥

(को हि नाम पुमाँल्लोके मादृशः पुरुषोत्तमः ।
प्रहरेत् त्वद्विधं त्वद्य प्रतिज्ञा यदि नो भवेत् ॥)

यदि पहलेसे प्रतिज्ञा न की गयी होती तो संसारमें मेरे-जैसा कौन श्रेष्ठ पुरुष आप-जैसे गुरुजनपर आज ऐसा प्रहार कर सकता था ?॥

एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके ऐसा कहनेपर भूरिश्रवाने अपने मस्तकसे भूमिका स्पर्श किया । बायें हाथसे अपना दाहिना हाथ उठाकर अर्जुनके पास फेंक दिया ॥ ४४ ॥

एतत् पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥

महाराज ! पार्थकी उपर्युक्त बात सुनकर यूपचिह्नित ध्वजावाले महातेजस्वी भूरिश्रवा नीचे मुँह किये मौन रह गये ॥४५॥

अर्जुन उवाच

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ४६ ॥

उस समय अर्जुनने कहा—शलके बड़े भाई भूरिश्रवाजी ! मेरा जो प्रेम धर्मराज युधिष्ठिर, बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, नकुल और सहदेवमें है, वही आपमें भी है ॥४६॥

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृताँल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥

मैं और महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण आपको यह आज्ञा देते हैं कि आप उशीनर-पुत्र शिबिके समान पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकोंमें जायँ ॥ ४७ ॥

वासुदेव उवाच

ये लोका मम विमलाः सकृद् विभाता
ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः ।
तान् क्षिप्रं व्रज सततानिहोत्रयाजिन्
मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—निरन्तर अग्निहोत्रद्वारा यजन करनेवाले भूरिश्रवाजी ! मेरे जो निरन्तर प्रकाशित होनेवाले निर्मल लोक हैं और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जहाँ जानेकी सदैव अभिलाषा रखते हैं, उन्हीं लोकोंमें आप शीघ्र पधारिये और मेरे ही समान गरुड़की पीठपर बैठकर विचरनेवाले होइये ॥ ४८ ॥

संजय उवाच

उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके छोड़ देनेपर शिनि-पौत्र सात्यकि उठकर खड़े हो गये । फिर उन्होंने तलवार लेकर महामना भूरिश्रवाका सिर काट लेनेका निश्चय किया ॥ ४९ ॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५० ॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।

शलके बड़े भाई प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा सर्वथा निष्पाप थे । पाण्डुपुत्र अर्जुनने उनकी बाँह काटकर उनका वध-सा ही कर दिया था और इसीलिये वे आमरण अनशनका निश्चय लेकर ध्यान आदि अन्य कार्योंमें आसक्त हो गये थे । उस अवस्थामें सात्यकिने बाँह कट जानेसे सूँड़ कटे हाथीके समान बैठे हुए भूरिश्रवाको मार डालनेकी इच्छा की ॥ ५०½ ॥

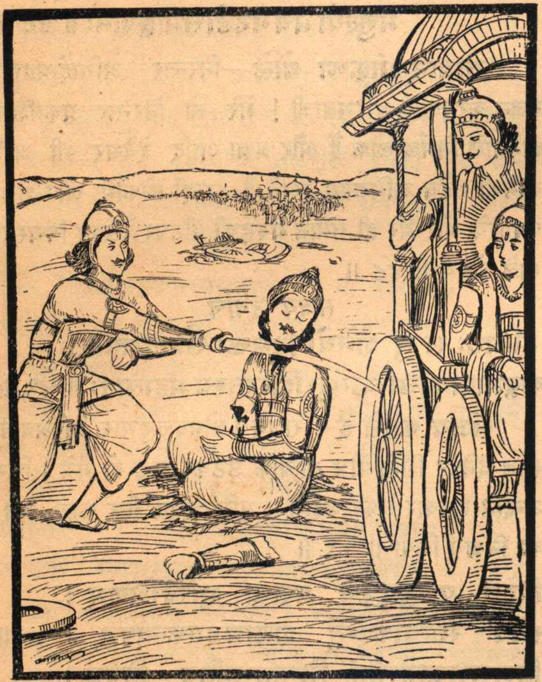
क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत् तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥

उस समय समस्त सेनाके लोग चिल्ला-चिल्लाकर

सात्यकिकी निन्दा कर रहे थे। परंतु सात्यकिकी मनोदशा बहुत बुरी थी। भगवान् श्रीकृष्ण तथा महात्मा अर्जुन भी उन्हें रोक रहे थे। भीमसेन, चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन तथा सिंधुराज जयद्रथ भी उन्हें मना करते रहे, किंतु समस्त सैनिकोंके चीखने-चिल्लानेपर भी सात्यकिने उस व्रतधारी भूरिश्रवाका वध कर ही डाला ॥ ५१-५३ ॥

प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥

रणभूमिमें अर्जुनने जिनकी भुजा काट डाली थी तथा जो आमरण उपवासका व्रत लेकर बैठे थे, उन भूरिश्रवापर सात्यकिने खड्गका प्रहार किया और उनका सिर काट लिया ॥



नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनने पहले जिन्हें मार डाला था, उन कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाका सात्यकिने जो वध किया, उनके उस कर्मसे सैनिकोंने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ५५ ॥

सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।

युद्धमें प्रायोपवेशन करनेवाले, इन्द्रके समान पराक्रमी भूरिश्रवाको मारा गया देख सिद्ध, चारण, मनुष्य और देवताओंने उनका गुणगान किया; क्योंकि वे भूरिश्रवाके कर्मोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ५६½ ॥

पक्षवादांश्च सुबहून् प्रावदंस्तत्र सैनिकाः ॥ ५७ ॥
न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत् तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥ ५८ ॥

आपके सैनिकोंने सात्यकिके पक्ष और विपक्षमें बहुत-सी बातें कहीं। अन्तमें वे इस प्रकार बोले—'इसमें सात्यकिका कोई अपराध नहीं है। होनहार ही ऐसी थी। इसलिये आपलोगोंको अपने मनमें क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोध ही मनुष्योंके लिये अधिक दुःखदायी होता है ५७-५८

हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥

'वीर सात्यकिके द्वारा ही भूरिश्रवा मारे जानेवाले थे। विधाताने युद्धस्थलमें ही सात्यकिको उनकी मृत्यु निश्चित कर दिया था; इसलिये इसमें विचार नहीं करना चाहिये ।५९।

सात्यकिरुवाच

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमास्थिताः ॥ ६० ॥

सात्यकि बोले—धर्मका चोला पहनकर खड़े हुए अधर्मपरायण पापात्माओ! इस समय धर्मकी बातें बनाते हुए तुमलोग जो मुझसे बारंबार कह रहे हो कि 'न मारो, न मारो' उसका उत्तर मुझसे सुन लो ॥ ६० ॥

यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविना कृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥

जब तुमलोगोंने सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको युद्धमें शस्त्रहीन करके मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ६१ ॥

मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन् हन्यात् पदा रुषा ॥ ६२ ॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ।

मैंने तो पहलेसे ही यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जिसके द्वारा कभी भी मेरा तिरस्कार हो जायगा अथवा जो संग्रामभूमिमें मुझे पटककर जीते-जी रोषपूर्वक मुझे लात मारेगा, वह शत्रु मुनियोंके समान मौनव्रत लेकर ही क्यों न बैठा हो, अवश्य मेरा वध्य होगा ॥ ६२½ ॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥
मन्यध्वं मृत इत्येवमेतद् वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥ ६४ ॥

मेरी बाँहें मौजूद हैं और मैं अपने ऊपर किये गये आघातका बदला लेनेकी निरन्तर चेष्टा करता आया हूँ तो भी तुमलोग आँख रहते हुए भी यदि मुझे मरा हुआ मान लेते हो, तो यह तुम्हारी बुद्धिकी मन्दताका परिचायक है। कुरुश्रेष्ठ वीरो ! मैंने तो भूरिश्रवाका वध करके बदला चुकाया है, जो सर्वथा उचित है ॥ ६३-६४ ॥

यत् तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए जो मुझे संकटमें देखकर भूरिश्रवाकी तलवारसहित बाँह काट डाली, इसीसे मैं भूरिश्रवाको मारनेके यशसे वञ्चित रह गया ॥ ६५ ॥

भवितव्यं हि यद् भावि दैवं चेष्टयतीव च।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ॥ ६६ ॥

जो होनहार होती है, उसके अनुकूल ही दैव चेष्टा कराता है। इसीके अनुसार इस संग्राममें भूरिश्रवा मारे गये हैं। इसमें अधर्मपूर्ण चेष्टा क्या है? ॥ ६६ ॥

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥

महर्षि वाल्मीकिने पूर्वकालमें ही इस भूतलपर एक श्लोकका गान किया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है—'वानर! तुम जो यह कहते हो कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये, उसके उत्तरमें मेरा यह कहना है कि उद्योगी मनुष्यके लिये सदा सब समय वह कार्य करने ही योग्य माना गया है, जो शत्रुओंको पीड़ा देनेवाला हो' ॥ ६७-६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः।
न स्म किंचिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! सात्यकिके ऐसा कहनेपर समस्त श्रेष्ठ कौरवोंने उसके उत्तरमें कुछ नहीं कहा। वे मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६९ ॥

मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु
यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च।
मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य
न तत्र कश्चिद् वधमभ्यनन्दत ॥ ७० ॥

बड़े-बड़े यज्ञोंमें मन्त्रयुक्त अभिषेकसे जो पवित्र हो चुके थे, यज्ञोंमें कई हजार स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देते थे, जिनका यश सर्वत्र फैला हुआ था और जो वनवासी मुनिके समान वहाँ बैठे हुए थे, उन भूरिश्रवाके वधका किसीने भी अभिनन्दन नहीं किया ॥ ७० ॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य
शूरस्य पारावतलोहिताक्षम्।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं
न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण ॥ ७१ ॥

वर देनेवाले भूरिश्रवाका नीले केशोंसे अलंकृत तथा कबूतरके समान लाल नेत्रोंवाला वह कटा हुआ सिर ऐसा जान पड़ता था, मानो अश्वमेधके मेध्य अश्वका कटा हुआ मस्तक अग्निकुण्डके भीतर रक्खा गया हो ॥ ७१ ॥

स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो
महाहवे देहवरं विसृज्य।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो
व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

वरदायक तथा वर पानेके योग्य भूरिश्रवाने उस महायुद्धमें शस्त्रके तेजसे पवित्र हो अपने उत्तम शरीरका परित्याग करके उत्कृष्ट धर्मके द्वारा पृथ्वी और आकाशको लाँघकर ऊर्ध्वलोकमें गमन किया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाका वधविषयक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ८०½ श्लोक हैं)

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके भूरिश्रवाद्वारा अपमानित होनेका कारण तथा वृष्णिवंशी वीरोंकी प्रशंसा

धृतराष्ट्र उवाच

अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद् भुवि निपातितः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जो वीर सात्यकि द्रोण, कर्ण, विकर्ण और कृतवर्मासे भी परास्त न हुए और युधिष्ठिरसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार कौरव-सेनारूपी समुद्रसे पार हो गये, जिन्हें समराङ्गणमें कोई भी रोक न सका, उन्हींको कुरुवंशी भूरिश्रवाने बलपूर्वक पकड़कर कैसे पृथ्वीपर गिरा दिया? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जिस विषयमें आपको संशय है, उसे स्पष्ट समझनेके लिये यहाँ पूर्वकालमें सात्यकि और भूरिश्रवाकी उत्पत्ति जिस प्रकार हुई थी, वह प्रसंग सुनिये ॥ ३ ॥

अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत् पुरूरवाः ॥ ४ ॥

महर्षि अत्रिके पुत्र सोम हुए। सोमके पुत्र बुध माने

गये हैं। बुधके एक ही पुत्र हुआ पुरूरवा, जो देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी था ॥ ४ ॥

पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥

पुरूरवाके पुत्र आयु और आयुके पुत्र नहुष हुए। नहुषके राजा ययाति हुए, जिनका देवताओं तथा ऋषियोंमें भी बड़ा आदर था ॥ ५ ॥

ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत् सुतः।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥

ययातिसे देवयानीके गर्भसे जो ज्येष्ठ पुत्र हुआ, उसका नाम यदु था। इन्हीं यदुके वंशमें देवमीढ़ नामसे विख्यात एक यादव हो गये हैं। उनके पुत्रका नाम था शूर, जो तीनों लोकोंमें सम्मानित थे। शूरके पुत्र नरश्रेष्ठ शौरि हुए, जो महायशस्वी वसुदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६-७ ॥

धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥

शूर धनुर्विद्यामें सबसे श्रेष्ठ थे। वे युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी थे। नरेश्वर! जिस कुलमें शूरका जन्म हुआ था, उसीमें उन्हींके समान बलशाली शिनि हुए ॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन् सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥

राजन्! इसी समय महात्मा देवककी पुत्री देवकीके स्वयंवरमें सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्र हुए थे ॥ ९ ॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै।
निर्जित्य पार्थिवान् सर्वान् रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥

उस स्वयंवरमें शिनिने शीघ्र ही समस्त राजाओंको जीतकर वसुदेवके लिये देवकी देवीको रथपर बैठा लिया ॥ १० ॥

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ।
नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥

नरश्रेष्ठ! नरेश्वर! उस समय महातेजस्वी शूरवीर सोमदत्तने देवकी देवीको रथपर बैठे हुए देख शिनिके पराक्रमको सहन नहीं किया ॥ ११ ॥

तयोर्युद्धमभूद् राजन् दिनार्धं चित्रमद्भुतम्।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥

पुरुषप्रवर महाराज! उन दोनों महाबली शिनि और सोमदत्तमें आधे दिनतक विचित्र एवं अद्भुत बाहुयुद्ध हुआ ॥

शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥

उसमें शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया और तलवार उठाकर उनकी चुटिया पकड़ ली एवं उन्हें लात मारी ॥ १३ ॥

मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥

चारों ओरसे सहस्रों नरेश दर्शक बनकर यह युद्ध देख रहे थे। उनके बीचमें पुनः कृपा करके 'जाओ, जीवित रहो' ऐसा कहकर शिनिने सोमदत्तको छोड़ दिया ॥ १४ ॥

तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश! जब शिनिने सोमदत्तकी ऐसी दुरवस्था कर दी, तब उन्होंने अमर्षके वशीभूत हो आराधनाद्वारा महादेवजीको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥

तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ देवताओंमें भी सर्वश्रेष्ठ वरदायक तथा सामर्थ्यशाली महादेवजीने संतुष्ट होकर उन्हें इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। तब राजा सोमदत्तने इस प्रकार वर माँगा— ॥ १६ ॥

पुत्रमिच्छामि भगवन् यो निपात्य शिनेः सुतम्।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥

'भगवन्! मैं ऐसा पुत्र पाना चाहता हूँ, जो शिनिके पुत्रको सहस्रों राजाओंके बीच युद्धमें पृथ्वीपर गिराकर उसे पैरसे मारे' ॥ १७ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव।
(सशिरःकम्पमाहेदं नैतदेवं भवेन्नृप।
स पूर्वमेव तपसा मामाराध्य जगत्त्रये ॥
कस्याप्यवध्यता मत्तः प्राप्तवान् वरमुत्तमम्।
तवाप्ययं प्रयासस्तु निष्फलो न भविष्यति ॥
तस्य पौत्रं तु समरे त्वत्पुत्रो मोहयिष्यति।
न तु मारयितुं शक्यः कृष्णसंरक्षितो ह्यसौ ॥
अहमेव तु कृष्णोऽस्मि नावयोरन्तरं क्वचित्।)
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥

राजन्! सोमदत्तका यह कथन सुनकर महादेवजीने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नरेश्वर! शिनिके पुत्रने तो पहले ही तपस्याद्वारा मेरी आराधना करके तीनों लोकोंमें किसीसे भी न मारे जानेका उत्तम वर मुझसे प्राप्त कर लिया है; परंतु तुम्हारा भी यह प्रयास निष्फल नहीं होगा। तुम्हारा पुत्र समरभूमिमें शिनिके पौत्रको तुम्हारी इच्छाके अनुसार मूर्छित कर देगा, परंतु उसके हाथसे वह मारा नहीं जा सकेगा; क्योंकि श्रीकृष्णसे वह सुरक्षित होगा। मैं ही श्रीकृष्ण हूँ। हम दोनोंमें कहीं कोई अन्तर नहीं है। जाओ, ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥

स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम्।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम्॥ १९॥

उसी वरदानके प्रभावसे सोमदत्तने प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवाको पुत्ररूपमें प्राप्त किया और उसने समराङ्गणमें शिनिवंशज सात्यकिको गिरा दिया॥ १९॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत्।
एतत् ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥२०॥

इतना ही नहीं, उसने सारी सेनाओंके देखते-देखते सात्यकिको लात भी मारी। राजन्! आप मुझसे जो पूछ रहे थे, उसके उत्तरमें यह प्रसंग सुनाया है॥ २०॥

न हि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः॥ २१॥

सात्यकिको रणभूमिमें श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं जीत सकते। वृष्णिवंशी योद्धा अपने निशानेको सफलतापूर्वक वेध लेते हैं। वे संग्रामभूमिमें अनेक प्रकारसे विचित्र युद्ध करनेवाले होते हैं॥ २१॥

देवदानवगन्धर्वान् विजेतारो ह्यविस्मिताः।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः॥ २२॥

देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंपर भी वे विजयी होते हैं। फिर भी इसके लिये उनके मनमें गर्व या विस्मय नहीं होता। वे अपने ही बलसे विजय पानेका उद्योग करते हैं। ये वृष्णिवंशी कभी पराधीन नहीं होते हैं॥ २२॥

न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किंचन प्रभो।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ॥ २३॥

शक्तिशाली भरतश्रेष्ठ! भूत, वर्तमान और भविष्य कोई भी जगत् बलमें वृष्णिवंशियोंके समान नहीं दिखायी देता॥ २३॥

न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः॥ २४॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।

ये अपने कुटुम्बीजनोंकी अवहेलना नहीं करते हैं। सदा बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस भी युद्धमें वृष्णिवीरोंपर विजय नहीं पा सकते; फिर मनुष्य किस गिनतीमें हैं?॥ २४½॥

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः॥ २५॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांचिदापदि।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः॥ २६॥

ये ब्राह्मण, गुरु तथा कुटुम्बीजनोंके धन लेनेके लिये कभी हिंसा नहीं करते हैं। इन ब्राह्मण-गुरु आदिमें जो कोई भी किसी आपत्तिमें पड़े हों, उनकी ये वृष्णिवंशी रक्षा करते हैं। ये सब-के-सब धनवान्, अभिमानशून्य, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी होते हैं॥ २५-२६॥

समर्थान् नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविकत्थनाः॥ २७॥

ये सामर्थ्यशाली पुरुषोंकी अवहेलना नहीं करते और दीन-दुखियोंका उद्धार करते हैं। सदा देवभक्त, जितेन्द्रिय, दूसरोंके संरक्षक तथा आत्मप्रशंसासे दूर रहनेवाले हैं॥

तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते।
अपि मेरुं वहेत् कश्चित् तरेद् वा मकरालयम्।
न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप॥ २८॥

इसीसे वृष्णिवीरोंका यह समूह किसीके द्वारा प्रतिहत नहीं होता है। नरेश्वर! कोई मेरुपर्वतको सिरपर उठा ले अथवा समुद्रको हाथोंसे तैर जाय; परंतु वृष्णिवीरोंके समूहका अन्त नहीं पा सकता॥ २८॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान्॥ २९॥

प्रभो! जहाँ आपको संदेह था, वह सब मैंने अच्छी तरह बता दिया है। कुरुराज नरश्रेष्ठ! इस युद्धको चालू करनेमें आपका महान् अन्याय ही कारण है॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिकी प्रशंसाविषयक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१४४॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण, कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत, कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध और कर्णकी पराजय तथा सब योद्धाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे।
यथा भूयोऽभवद् युद्धं तन्ममाचक्ष्व संजय॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! उस अवस्थामें कुरुवंशी भूरिश्रवाके मारे जानेपर पुनः जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ॥ १॥

संजय उवाच

भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत।

वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—भारत ! भूरिश्रवाके परलोकगामी हो जानेपर महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको प्रेरित करते हुए कहा—॥ २ ॥

चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः।
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! जिस ओर राजा जयद्रथ खड़ा है, उसी ओर अब इन घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँकिये। कमलनयन ! सुना जाता है कि वह इस समय तीन धर्मोंमें विद्यमान है। निष्पाप केशव ! मेरी प्रतिज्ञा आप सफल करें । महाबाहो ! सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे हैं ॥ ३-४ ॥

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह ! मैंने यह बहुत बड़े कार्यके लिये उद्योग आरम्भ किया है। कौरवसेनाके महारथी इस जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ५ ॥

तथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद् वचः।
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण! जबतक सूर्य अस्ताचलको न चले जायँ, तभी-तक जैसे भी मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जैसे भी मैं जयद्रथको मार सकूँ, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक इन घोड़ोंको हाँकिये' ॥ ६ ॥

ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान्।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥

तब अश्वविद्याके ज्ञाता महाबाहु श्रीकृष्णने जयद्रथको मारनेके उद्देश्यसे उसकी ओर चाँदीके समान श्वेत घोड़ोंको हाँका ॥ ७ ॥

तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥ ८ ॥

महाराज ! जिनके बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते, उन अर्जुनको धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समान उड़ते हुए-से अश्वोंद्वारा जयद्रथकी ओर जाते देख कौरवसेनाके प्रधान-प्रधान वीर बड़े वेगसे दौड़े ॥ ८ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट्।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—ये सभी युद्धके लिये डट गये ॥ ९ ॥

समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम्।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ १० ॥

वहाँ उपस्थित हुए सिंधुराजको सामने पाकर अर्जुनने क्रोधसे उद्दीप्त नेत्रोंद्वारा उसे इस प्रकार देखा, मानो जलाकर भस्म कर देंगे ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत्।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥

तब राजा दुर्योधनने अर्जुनको जयद्रथको मारनेके लिये उसकी ओर जाते देख तुरंत ही राधापुत्र कर्णसे कहा—॥

अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन्।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥

'सूर्यपुत्र ! यही वह युद्धका समय आया है। महात्मन् ! तुम इस समय अपना बल दिखाओ । कर्ण ! रणभूमिमें अर्जुनके द्वारा जैसे भी जयद्रथका वध न होने पावे, वैसा प्रयत्न करो॥

अल्पावशेषो दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १३ ॥

'नरवीर ! अब दिनका थोड़ा-सा ही भाग शेष है। तुम अपने बाणसमूहोंद्वारा इस समय शत्रुको घायल करके उसके कार्यमें बाधा डालो । मनुष्यलोकके प्रमुख वीर कर्ण ! दिन समाप्त होनेपर तो निश्चय ही हमारी विजय हो जायगी ॥

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥

'सूर्यास्त होनेतक यदि सिंधुराज सुरक्षित रहे तो प्रतिज्ञा झूठी होनेके कारण अर्जुन अग्निमें प्रवेश कर जायँगे ॥ १४ ॥

अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद।
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥

'मानद ! फिर अर्जुनरहित भूतलपर उनके भाई और अनुगामी सेवक दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते ॥ १५ ॥

विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम्।
वसुंधरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १६ ॥

'कर्ण ! पाण्डवोंके नष्ट हो जानेपर हमलोग पर्वत, वन और काननोंसहित इस निष्कण्टक वसुधाका राज्य भोगेंगे ॥

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान् रणे ॥ १७ ॥

'मानद ! दैवके मारे हुए अर्जुनकी बुद्धि विपरीत हो गयी थी। इसीलिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार न करके उन्होंने रणभूमिमें जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली॥ १७ ॥

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥

'कर्ण ! निश्चय ही किरीटधारी पाण्डव अर्जुनने अपने ही विनाशके लिये जयद्रथ-वधकी यह प्रतिज्ञा कर डाली है॥

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम्॥ १९॥

'राधानन्दन ! तुम-जैसे दुर्धर्ष वीरके जीते-जी अर्जुन सिंधुराजको सूर्यास्त होनेसे पहले ही कैसे मार सकेंगे ?॥ १९॥

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद् धनंजयः॥ २०॥

'मद्रराज शल्य और महामना कृपाचार्यसे सुरक्षित हुए जयद्रथको अर्जुन युद्धके मुहानेपर कैसे मार सकेंगे ?॥ २०॥

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः॥ २१॥

'मैं, दुःशासन तथा अश्वत्थामा जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन सिंधुराज जयद्रथको अर्जुन कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? जान पड़ता है कि वे कालसे प्रेरित हो रहे हैं॥ २१॥

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद॥ २२॥

'मानद ! बहुत-से शूरवीर युद्ध कर रहे हैं, उधर सूर्य भी अस्ताचलपर जा रहे हैं। अतः मुझे संदेह यह होता है कि अर्जुन जयद्रथतक नहीं पहुँच पायेंगे॥ २२॥

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च॥ २३॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे।

'कर्ण ! तुम मेरे, अश्वत्थामाके, मद्रराज शल्यके, कृपाचार्यके तथा अन्य शूरवीर महारथियोंके साथ पूरा प्रयत्न करके रणक्षेत्रमें अर्जुनके साथ युद्ध करो'॥ २३½॥

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष॥ २४॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम्।

आर्य ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर राधानन्दन कर्णने कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २४½॥

दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना॥ २५॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद॥ २६॥

'मानद ! सुदृढ़ लक्ष्यवाले वीर धनुर्धर भीमसेनने संग्राममें अपने बाणसमूहोंद्वारा अनेक बार मेरे शरीरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। मुझे खड़ा रहना चाहिये (भागना नहीं चाहिये), यह सोचकर ही इस समय मैं रणभूमिमें ठहरा हुआ हूँ॥ २५-२६॥

नाङ्गमिङ्गति किंचिन्मे संतप्तस्य महेषुभिः।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम॥ २७॥

'इस समय मेरा कोई भी अङ्ग किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर रहा है। मैं बड़े-बड़े बाणोंकी आगसे संतप्त हूँ, तथापि यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि यह मेरा जीवन तुम्हारे लिये ही है॥ २७॥

यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम्।
न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान्॥ २८॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनंजयः।

'पाण्डवोंके प्रधान वीर अर्जुन जैसे भी किसी तरह सिंधुराजको नहीं मार सकेंगे, वैसा प्रयत्न करूँगा। जबतक मैं युद्धमें तत्पर होकर पैने बाण छोड़ता रहूँगा, तबतक सव्यसाची वीर धनंजय सिंधुराजको नहीं पा सकेंगे॥ २८½॥

यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकाङ्क्षिणा॥ २९॥
तत् करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'कुरुनन्दन ! सदा मित्रका हित चाहनेवाले भक्तिमान् पुरुषको जो कार्य करना चाहिये, वह मैं करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है॥ २९½॥

सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे॥ ३०॥
त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'महाराज ! आज युद्धस्थलमें आपका प्रिय करनेके लिये मैं सिंधुराजकी रक्षाके निमित्त पूरा प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है॥ ३०½॥

अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः॥ ३१॥
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'पुरुषसिंह ! आज मैं अपने पुरुषार्थका भरोसा करके तुम्हारे हितके लिये अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है॥ ३१½॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः॥ ३२॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम्।

'कुरुश्रेष्ठ ! आज सारी सेनाएँ मेरे और अर्जुन दोनोंके भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्धको देखें'॥ ३२½॥

कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः॥ ३३॥
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम्।

जब रणक्षेत्रमें कर्ण और दुर्योधन इस तरह वार्तालाप कर रहे थे, उस समय अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया॥ ३३½॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम्॥ ३४॥
भुजान् परिघसंकाशान् हस्तिहस्तोपमान् रणे।

उन्होंने तीखे बाणोंसे रणभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंकी परिघके समान सुदृढ़ तथा हाथीकी सूँड़के समान मोटी भुजाओंको काट डाला॥ ३४½॥

शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः॥ ३५॥
हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः।

महाबाहु अर्जुनने सब ओर अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके मस्तक, हाथियोंके शुण्डदण्डों, घोड़ोंकी गर्दनों तथा रथके धुरोंको भी खण्डित कर दिया ॥ ३५½ ॥

शोणिताक्तान् हयारोहान् गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।

अर्जुनने हाथोंमें प्रास और तोमर लिये खूनसे रँगे हुए घुड़सवारोंमेंसे प्रत्येकके अपने छुरोंद्वारा दो-दो और तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३६½ ॥

हया वारणमुख्याश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।

बड़े-बड़े हाथी और घोड़े सब ओर धराशायी होने लगे । ध्वज, छत्र, धनुष, चँवर तथा योद्धाओंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे ॥ ३७½ ॥

कक्षमग्निरिवोद्भूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८ ॥
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।

जैसे प्रचण्ड अग्नि घास-फूसके जंगलको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको दग्ध करते हुए थोड़ी ही देरमें वहाँकी भूमिको रक्तसे आप्लावित कर दिया ॥ ३८½ ॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।

सत्यपराक्रमी, बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंको मारकर सिंधुराजपर आक्रमण किया ॥ ३९½ ॥

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।

भरतश्रेष्ठ ! भीमसेन और सात्यकिसे सुरक्षित अर्जुन उस समय प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ।४०½।

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।

अर्जुनको इस प्रकार बल-पराक्रमकी सम्पत्तिसे युक्त होकर युद्धके लिये डटा हुआ देख आपकी सेनाके श्रेष्ठ पुरुष एवं महाधनुर्धर वीर सहन न कर सके ॥ ४१½ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
संनद्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन् किरीटिनम् ॥४३॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—इन सबने जयद्रथकी रक्षाके लिये संनद्ध होकर किरीटधारी अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४२-४३ ॥

नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम् ।

उस समय युद्धकुशल कुन्तीकुमार धनुषकी टङ्कार करते हुए रथके मार्गोंपर नाच रहे थे और मुँह बाये हुए यमराजके समान भयंकर जान पड़ते थे । उन्हें युद्धविशारद समस्त कौरव-महारथियोंने निर्भय हो चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४४½ ॥

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥ ४५ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।

वे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे सिंधुराज जयद्रथको पीछे करके सूर्यास्त होनेकी इच्छा और प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सूर्य लाल-से हो चले थे ।४५½।

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।

उन कौरव-सैनिकोंने सर्पके शरीरके समान प्रतीत होनेवाली अपनी भुजाओंद्वारा धनुषोंको नवाकर अर्जुनपर सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले सैकड़ों बाण छोड़े ॥४६½॥

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥
द्विधा त्रिधाष्टधैकैकं छित्त्वा विव्याध तान् रथान् ।

तदनन्तर रणदुर्मद किरीटधारी अर्जुनने उन छोड़े गये बाणोंमेंसे प्रत्येकके दो-दो, तीन-तीन और आठ-आठ टुकड़े करके उन रथियोंको भी घायल कर दिया ॥ ४७½ ॥

सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयन् वीर्यमात्मनः ॥ ४८ ॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।

राजन् ! जिनकी ध्वजामें सिंहकी पूँछका चिह्न था, उन शारद्वतीपुत्र कृपाचार्यने अपना बल-पराक्रम दिखाते हुए अर्जुनको रोका ॥ ४८½ ॥

स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ॥ ४९ ॥
अतिष्ठद् रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।

वे दस बाणोंसे अर्जुनको और सातसे श्रीकृष्णको घायल करके रथके मार्गोंपर जयद्रथकी रक्षा करते हुए खड़े थे ।४९½।

अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

तत्पश्चात् कौरवसेनाके सभी श्रेष्ठ महारथियोंने विशाल रथसमूहके द्वारा कृपाचार्यको सब ओरसे घेर लिया ॥५०½॥

विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात् तनयस्य ते ।

वे आपके पुत्रकी आज्ञासे धनुष खींचते और बाण छोड़ते हुए वहाँ जयद्रथकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥५१½॥

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।

तत्पश्चात् वहाँ शूरवीर कुन्तीकुमारकी भुजाओंका बल देखा गया। उनके गाण्डीव धनुष तथा बाणोंकी अक्षयताका परिचय मिला ॥ ५२½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत्।

उन्होंने अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण करके बारी-बारीसे उन सबको दस-दस बाण मारे ॥ ५३½ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः।

अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात, दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन-तीन बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया ॥ ५४½ ॥

त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥ ५५ ॥
विधुन्वतश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन्।

वे अर्जुनको लक्ष्य करके बार-बार गरजते, उन्हें बारंबार बाणोंसे बींधते और धनुषको हिलाते हुए सब ओरसे उन्हें आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ५५½ ॥

श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः।

उन महारथियोंने सूर्यास्तकी इच्छा रखते हुए बड़ी उतावलीके साथ अपने रथसमूहको परस्पर सटाकर सब ओरसे खड़ा कर दिया ॥ ५६½ ॥

त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः।

जैसे बादल पर्वतशिखरपर अपने जलकी बूँदोंसे आघात करते हैं, उसी प्रकार वे कौरव-महारथी धनुष हिलाते तथा अर्जुनके सामने गर्जना करते हुए उनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५७½ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ॥५८॥
धनंजयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः।

राजन्! परिघके समान सुदृढ़ भुजाओंवाले उन शूरवीरों-ने अर्जुनके शरीरपर वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन किया॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः।

तथापि सत्यपराक्रमी बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका संहार करके सिन्धुराजपर आक्रमण किया ॥ ५९½ ॥

तं कर्णः संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत।

राजन्! भरतनन्दन! उस युद्धस्थलमें कर्णने भीमसेन और सात्यकिके देखते-देखते अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६०½ ॥

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद् रणाजिरे ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

तब महाबाहु अर्जुनने समराङ्गणमें सारी सेनाके देखते-देखते सूतपुत्र कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया॥६१½॥

सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥ ६२ ॥
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः।

माननीय नरेश! तदनन्तर सात्यकिने तीन बाणोंसे कर्णको बेध दिया, फिर भीमसेनने भी उसे तीन बाण मारे और अर्जुनने पुनः सात बाणोंसे कर्णको घायल कर दिया ॥ ६२½ ॥

तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥६३॥
तद् युद्धमभवद् राजन् कर्णस्य बहुभिः सह।

तब महारथी कर्णने उन तीनोंको साठ-साठ बाण मार-कर बदला चुकाया। राजन्! कर्णका वह युद्ध अनेक वीरोंके साथ हो रहा था ॥ ६३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४ ॥
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन् रथान् पर्यवारयत्।

आर्य! वहाँ हमने सूतपुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि समरभूमिमें कुपित होकर उसने अकेले ही तीन-तीन महारथियोंको रोक दिया था ॥ ६४½ ॥

फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ ६५ ॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत्।

उस समय महाबाहु अर्जुनने रणभूमिमें सौ बाणोंद्वारा सूर्यपुत्र कर्णको उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६७ ॥

प्रतापी सूतपुत्र कर्णके सारे अंग खूनसे लथपथ हो गये, तथापि उस वीरने पचास बाणोंसे अर्जुनको भी घायल कर दिया। रणक्षेत्रमें उसकी यह फुर्ती देखकर अर्जुन सहन न कर सके ॥ ६६-६७ ॥

ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार वीर धनंजयने कर्णका धनुष काटकर बड़ी उतावलीके साथ उसकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ ६८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान्।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥ ६९ ॥

तब प्रतापी सूतपुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर आठ

हजार बाणोंसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको ढक दिया ॥ ६९ ॥

तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत् सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥

कर्णके धनुषसे प्रकट हुई उस अनुपम बाण-वर्षाको अर्जुनने बाणोंद्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे वायु टिड्डियोंके दलको उड़ा देती है ॥ ७० ॥

छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे ।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने रणभूमिमें दर्शक बने हुए समस्त योद्धाओंको अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उस समय कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ ७१ ॥

वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः ॥ ७२ ॥

साथ ही शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले अर्जुनने समरभूमिमें सूतपुत्रका वध करनेके लिये उसके ऊपर सूर्यके समान तेजस्वी बाण चलाया ॥ ७२ ॥

तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद् भुवि ॥ ७३ ॥

उस बाणको वेगपूर्वक आते देख अश्वत्थामाने तीखे अर्धचन्द्रसे बीचमें ही काट दिया । कटकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम् ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४ ॥

तब शत्रुहन्ता कर्णने भी उनके किये हुए प्रहारका बदला चुकानेकी इच्छासे अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पुनः अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह महारथी दो साँड़ोंके समान हँकड़ते हुए अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित करने लगे ॥ ७५ ॥

अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम् ।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥ ७६ ॥

वे दोनों एक दूसरेपर चोट करते हुए स्वयं बाण-समूहोंसे ढककर अदृश्य हो गये थे और एक दूसरेको पुकारकर इस प्रकार कहते थे—'कर्ण ! तू खड़ा रह, मैं अर्जुन हूँ;' 'अर्जुन ! खड़ा रह, मैं कर्ण हूँ' ॥ ७६ ॥

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा ।
युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एक दूसरेको ललकारते और डाँटते हुए वे दोनों वीर वाक्यरूपी बाणोंद्वारा परस्पर चोट करते हुए समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ७७ ॥

प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।

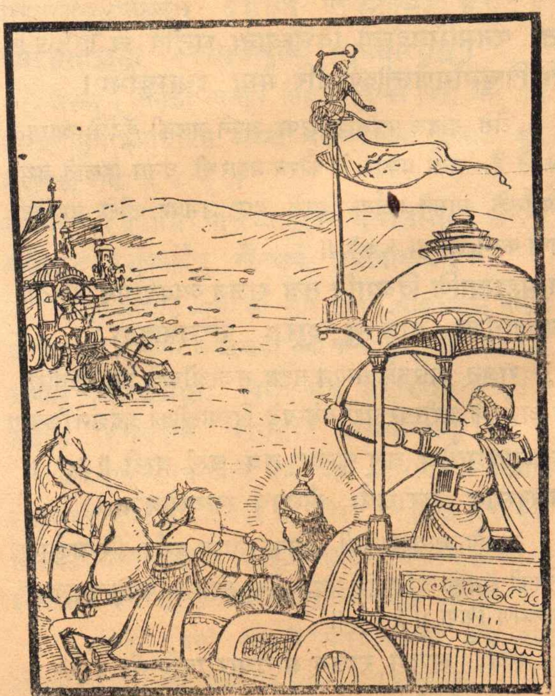
सम्पूर्ण योद्धाओंके उस सम्मेलनमें वे दोनों दर्शनीय हो रहे थे । महाराज ! समरभूमिमें सिद्ध, चारण और नागोंद्वारा प्रशंसित होते हुए कर्ण और अर्जुन एक दूसरेके वधकी इच्छासे युद्ध कर रहे थे ॥ ७८½ ॥

ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥ ७९ ॥
यत्नाद् रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान् वृषः ॥ ८० ॥

राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने आपके सैनिकोंसे कहा—'वीरो ! तुम यत्नपूर्वक राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो । वह युद्धस्थलमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटेगा; क्योंकि उसने मुझसे यही बात कही है' ॥ ७९-८० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥
अनयत् प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥

राजन् ! इसी समय कर्णका वह पराक्रम देखकर श्वेतवाहन अर्जुनने कानतक खींचकर छोड़े हुए चार बाणोंद्वारा कर्णके चारों घोड़ोंको प्रेतलोक पहुँचा दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ८१-८२ ॥



छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।

इतना ही नहीं, आपके पुत्रके देखते-देखते उन्होंने कर्णको बाणोंसे ढक दिया। घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंसे ढका हुआ कर्ण बाण-जालसे मोहित हो यह भी नहीं सोच सका कि अब क्या करना चाहिये ॥८३½॥

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।

महाराज ! कर्णको इस प्रकार रथहीन हुआ देख अश्वत्थामाने उस समय उसे रथपर बैठा लिया और वह पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ८४½ ॥

मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत् त्रिंशता शरैः ॥ ८५ ॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनंजयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥

मद्रराज शल्यने कुन्तीकुमार अर्जुनको तीस बाणोंसे घायल कर दिया। कृपाचार्यने भगवान् श्रीकृष्णको बीस बाण मारे और अर्जुनपर बारह बाणोंका प्रहार किया ॥८५-८६॥

चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक् पृथङ्महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८७ ॥

महाराज ! फिर सिन्धुराजने चार और वृषसेनने सात बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको पृथक्-पृथक् घायल कर दिया ॥ ८७ ॥

तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८ ॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थो ननाद ह ॥ ८९ ॥

इसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी उन्हें बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया। अर्जुनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चौसठ, मद्रराज शल्यको सौ, सिन्धुराज जयद्रथको दस, वृषसेनको तीन और कृपाचार्यको बीस बाणोंसे घायल करके सिंहनाद किया ॥ ८८-८९ ॥

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनंजयम् ॥ ९० ॥

यह देख सव्यसाची अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भंग करनेकी अभिलाषासे आपके वे सभी सैनिक एक साथ संगठित हो तुरंत उनपर टूट पड़े ॥ ९० ॥

अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं
प्रादुश्चक्रे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं
रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अर्जुनने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करते हुए सब ओर वारुणास्त्र प्रकट किया। कौरव-सैनिक अपने बहुमूल्य रथोंद्वारा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़े और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९१ ॥

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये ।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः
किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान् ॥ ९२ ॥

भारत ! सबको मोहमें डालनेवाले उस अत्यन्त भयंकर तुमुल युद्धके उपस्थित होनेपर भी किरीटधारी राजकुमार अर्जुन तनिक भी मोहित नहीं हुए। वे बाणसमूहोंकी वर्षा करते ही रहे ॥ ९२ ॥

राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां
स्मरन् क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा
सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥

अप्रमेय शक्तिशाली महामनस्वी सव्यसाची अर्जुन अपना राज्य प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने कौरवोंके दिये हुए क्लेशों और बारह वर्षोंतक भोगे हुए वनवासके कष्टोंको स्मरण करते हुए गाण्डीव धनुषसे छूटनेवाले बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ९३ ॥

प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं
मृतेषु देहेष्वपतन् वयांसि ।
यत् पिङ्गलज्येन किरीटमाली
क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥

आकाशमें कितनी ही उल्काएँ प्रज्वलित हो उठीं और योद्धाओंके मृत शरीरोंपर मांसभक्षी पक्षी गिरने लगे; क्योंकि उस समय क्रोधमें भरे हुए किरीटधारी अर्जुन पीली प्रत्यञ्चावाले गाण्डीव धनुषके द्वारा शत्रुओंका संहार कर रहे थे ॥ ९४ ॥

ततः किरीटी महता महायशाः
शरासनेनास्य शराननीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गतान्
कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥

तत्पश्चात् शत्रुसेनाको जीतनेवाले महायशस्वी किरीटधारी अर्जुनने विशाल धनुषके द्वारा बाणोंका प्रहार करके उत्तम घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियोंकी पीठपर बैठे हुए प्रमुख कौरव-वीरोंको मार गिराया ॥ ९५ ॥

गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मया-
नसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः
प्रगृह्य पार्थं सहसाभिदुद्रुवुः ॥ ९६ ॥

उस रणक्षेत्रमें भयंकर दिखायी देनेवाले कितने ही नरेश

भारी गदाओं, लोहेके परिघों, तलवारों, शक्तियों और बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको हाथमें लेकर कुन्तीनन्दन अर्जुनपर सहसा टूट पड़े ॥ ९६ ॥

ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं मह-
न्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम् ।
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन् भृशं ययौ
दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७ ॥

तब यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाले अर्जुनने प्रलयकालके मेघोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले तथा इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होनेवाले विशाल गाण्डीव धनुषको हँसते हुए दोनों हाथोंसे खींचा और आपके सैनिकोंको दग्ध करते हुए वे बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ ९७ ॥

स तानुदीर्णान् सरथान् सवारणान्
पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे
चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ९८ ॥

महाधनुर्धर वीर अर्जुनने रथ, हाथी और पैदलसमूहों-सहित उन कौरव सैनिकोंको प्रचण्ड गतिसे आगे बढ़ते देख उनके सम्पूर्ण आयुधों और जीवनको भी नष्ट करके उन्हें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला बना दिया ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका अद्भुत पराक्रम और सिन्धुराज जयद्रथका वध

संजय उवाच

श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य
विस्पष्टमुत्कुष्टमिवान्तकस्य ।
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं
विकृष्यमाणस्य धनंजयेन ॥ १ ॥
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद् बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाभवत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले गाण्डीव धनुषकी अत्यन्त भयंकर टंकार यमराजकी सुस्पष्ट गर्जना तथा इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी। उसे सुनकर आपकी सेना भयसे उद्विग्न हो बड़ी घबराहटमें पड़ गयी । उस समय उसकी दशा प्रलयकालकी आँधीसे क्षोभको प्राप्त एवं उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हुए उस महासागरके जलकी-सी हो गयी, जिसमें मछली और मगर आदि जलजन्तु छिप जाते हैं ॥ १-२½ ॥

स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ३ ॥
युगपद् दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।

उस रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन एक साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें देखते और सब प्रकारके अस्त्रोंका कौशल दिखाते हुए विचर रहे थे ॥ ३½ ॥

आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम् ॥ ४ ॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात् ।

महाराज ! उस समय अर्जुनकी अद्भुत फुर्तीके कारण हमलोग यह नहीं देख पाते थे कि वे कब बाण निकालते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब धनुषको खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं ॥ ४½ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन् सर्वभारतान् ।

नरेश्वर ! तदनन्तर महाबाहु अर्जुनने कुपित हो कौरव-सेनाके समस्त सैनिकोंको भयभीत करते हुए दुर्धर्ष इन्द्रास्त्रको प्रकट किया ॥ ५½ ॥

ततः शराः प्रादुरासन् दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इससे दिव्यास्त्रसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित सैकड़ों तथा सहस्रों प्रज्वलित अग्निमुख बाण प्रकट होने लगे ॥ ६½ ॥

आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत् तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।

धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये अग्निशिखा तथा सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी बाणोंसे भरा हुआ आकाश उल्काओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था । उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ७½ ॥

ततः शस्त्रान्धकारं तत् कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव ।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः ।

तदनन्तर कौरवोंने अस्त्र-शस्त्रोंकी इतनी वर्षा की कि वहाँ अँधेरा छा गया । दूसरे कोई योद्धा उस अन्धकारको नष्ट करनेका विचार भी मनमें नहीं ला सकते थे; परंतु पाण्डुपुत्र अर्जुनने बड़ी शीघ्रता-सी करते हुए दिव्यास्त्र-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित बाणोंसे पराक्रमपूर्वक उसे नष्ट कर दिया । ठीक उसी तरह, जैसे प्रातःकालमें सूर्य अपनी

किरणोंद्वारा रात्रिके अन्धकारको शीघ्र नष्ट कर देते हैं ॥ ८-९½ ॥

ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥
आक्षिपत् पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।

तत्पश्चात् जैसे ग्रीष्मऋतुके शक्तिशाली सूर्य छोटे-छोटे गड्ढोंके पानीको शीघ्र ही सुखा देते हैं, उसी प्रकार सामर्थ्यशाली अर्जुनरूपी सूर्यने अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा आपकी सेनारूपी जलको शीघ्र ही सोख लिया ॥१०½॥

ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन् द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः ।

इसके बाद दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता अर्जुनरूपी सूर्यकी छिटकायी हुई बाणरूपी किरणोंने शत्रुओंकी सेनाको उसी प्रकार आप्लावित कर दिया, जैसे सूर्यकी रश्मियाँ सारे जगत्को व्याप्त कर लेती हैं ॥ ११½ ॥

अथापरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।

तदनन्तर अर्जुनके छोड़े हुए दूसरे प्रचण्ड तेजस्वी बाण वीर योद्धाओंके हृदयमें प्रिय बन्धुकी भाँति शीघ्र ही प्रवेश करने लगे ॥ १२½ ॥

य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।

समराङ्गणमें अपनेको शूरवीर माननेवाले आपके जो-जो योद्धा अर्जुनके सामने गये, वे जलती आगमें पड़े हुए पतंगोंके समान नष्ट हो गये ॥ १३½ ॥

एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।

इस प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंके जीवन और यशको धूलमें मिलाते हुए मूर्तिमान् मृत्युके समान संग्रामभूमिमें विचरण करने लगे ॥ १४½ ॥

सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान् विपुलान् भुजान् ॥
सकुण्डलयुगान् कर्णान् केषांचिदहरच्छरैः ।

वे अपने बाणोंसे किन्हीं शत्रुओंके मुकुटमण्डित मस्तकों, किन्हींके बाजूबंदविभूषित विशाल भुजाओं तथा किन्हींके दो कुण्डलोंसे अलंकृत दोनों कानोंको काट गिराते थे ॥१५½॥

सतोमरान् गजस्थानां सप्रासान् हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
सचर्मणः पदातीनां रथीनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान् नियन्तॄणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने हाथीसवारोंकी तोमरयुक्त, घुड़सवारोंकी प्रासयुक्त, पैदल सिपाहियोंकी ढालयुक्त, रथियोंकी धनुषयुक्त और सारथियोंकी चाबुकसहित भुजाओंको काट डाला ॥१६-१७॥

प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनंजयः ।
सविस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥

उद्दीप्त एवं उग्र बाणरूपी शिखाओंसे युक्त तेजस्वी अर्जुन वहाँ चिनगारियों और लपटोंसे युक्त प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद् दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनंजयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१ ॥

देवराज इन्द्रके समान रथपर बैठे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नरश्रेष्ठ अर्जुन एक ही साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें महान् अस्त्रोंका प्रहार करते हुए सबके लिये दर्शनीय हो रहे थे। वे अपने धनुषकी टंकार करते हुए रथके मार्गोंपर नृत्य-सा कर रहे थे। जैसे आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार उनकी ओर राजालोग यत्न करनेपर भी देख नहीं पाते थे॥१९-२१॥

दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह ।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाम्बुदो महान् ॥ २२ ॥

प्रज्वलित एवं भयंकर बाण लिये किरीटधारी अर्जुन वर्षाऋतुमें अधिक जलसे भरे हुए इन्द्रधनुषसहित महामेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २२ ॥

महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते ।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥

उस युद्धस्थलमें अर्जुनने बड़े-बड़े अस्त्रोंकी ऐसी बाढ़ ला दी थी, जो परम दुस्तर और अत्यन्त भयंकर थी। उसमें कौरवदलके बहुसंख्यक श्रेष्ठ योद्धा डूब गये ॥ २३ ॥

उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः ।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः ।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसंधिभिः ।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत् ।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २७ ॥
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराभ्यर्दयतः पशून् ।

भूपाल ! अर्जुनका वह महान् युद्ध मृत्युका क्रीडास्थल बना हुआ था, जो शस्त्रोंके आघातसे ही सुन्दर लगता था। वहाँ बहुत-सी ऐसी लाशें पड़ी थीं, जिनके मस्तक कट गये थे और भुजाएँ काट दी गयी थीं। बहुत-सी ऐसी भुजाएँ दृष्टिगोचर होती थीं, जिनके हाथ नष्ट हो गये थे

और बहुत-से हाथ भी अंगुलियोंसे शून्य थे । कितने ही मदोन्मत्त हाथी धराशायी हो गये थे, जिनकी सूँड़के अग्रभाग और दाँत काट डाले गये थे । बहुतेरे घोड़ोंकी गर्दनें उड़ा दी गयी थीं और रथोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे। किन्हींकी आँतें कट गयी थीं, किन्हींके पाँव काट डाले गये थे तथा कुछ दूसरे लोगोंकी संधियाँ (अंगोंके जोड़) खण्डित हो गयी थीं । कुछ लोग निश्चेष्ट हो गये थे और कुछ पड़े-पड़े छटपटा रहे थे । इनकी संख्या सैकड़ों तथा सहस्रों थी । हमने देखा कि वह युद्धस्थल कायरोंके लिये भयवर्धक हो रहा है । मानो पूर्व (प्रलय) कालमें पशुओं (जीवों) को पीड़ा देनेवाले रुद्रदेवका क्रीडास्थल हो ॥ २४-२७½ ॥

गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥ २८ ॥
क्वचिद् बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।

क्षुरसे कटे हुए हाथियोंके शुण्डदण्डोंसे यह पृथ्वी सर्पयुक्त-सी जान पड़ती थी । कहीं-कहीं योद्धाओंके मुखकमलोंसे व्याप्त होनेके कारण रणभूमि कमलपुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत-सी प्रतीत होती थी ॥ २८½ ॥

विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥ ३० ॥
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।

विचित्र पगड़ी, मुकुट, केयूर, अंगद, कुण्डल, स्वर्णजटित कवच, हाथी-घोड़ोंके आभूषण तथा सैकड़ों किरीटोंसे यत्र-तत्र आच्छादित हुई वह युद्धभूमि नववधूके समान अत्यन्त अद्भुत शोभासे सुशोभित हो रही थी ॥ २९-३०½ ॥

मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसंकटाम् ॥ ३२ ॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम् ।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसंघाततरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।

अर्जुनने कायरोंका भय बढ़ानेवाली वैतरणीके समान एक अत्यन्त भयंकर रौद्र और घोर रक्तकी नदी बहा दी, जो प्राणशून्य योद्धाओंके सैकड़ों निश्चेष्ट शरीरोंको बहाये लिये जाती थी । मज्जा और मेद ही उसकी कीचड़ थे । उसमें रक्तका ही प्रवाह था और रक्तकी ही तरंगें उठती थीं । वीरोंके मर्मस्थान एवं हड्डियोंसे व्याप्त हुई वह नदी अगाध जान पड़ती थी । केश ही उस नदीके सेवार और घास थे । योद्धाओंके कटे हुए मस्तक और भुजाएँ ही किनारेके छोटे-छोटे प्रस्तर-खण्डोंका काम देती थीं । टूटी हुई छातीकी हड्डियोंसे वह दुर्गम हो रही थी । विचित्र ध्वज और पताकाएँ उसके भीतर पड़ी हुई थीं। छत्र और धनुषरूपी तरंगमालाओंसे वह अलंकृत थी । प्राणशून्य प्राणी ही उसके विशाल शरीरके अवयव थे, हाथियोंकी लाशोंसे वह भरी हुई थी, रथरूपी सैकड़ों नौकाएँ उसपर तैर रही थीं, घोड़ोंके समूह उसके तट थे, रथके पहिये, जूए, ईषादण्ड, धुरी और कूबर आदिके कारण वह नदी अत्यन्त दुर्गम जान पड़ती थी। प्रास, खड्ग, शक्ति, फरसे और बाणरूपी सर्पोंसे युक्त होनेके कारण उसके भीतर प्रवेश करना कठिन था । कौए और कंक आदि जन्तु उसके भीतर निवास करनेवाले बड़े-बड़े नक्र (घड़ियाल) थे । गीदड़रूपी मगरोंके निवाससे उसकी उग्रता और बढ़ गयी थी । गीध ही उसमें प्रचण्ड एवं बड़े-बड़े ग्राह थे । गीदड़ियोंके चीत्कारसे वह नदी बड़ी भयानक प्रतीत होती थी । नाचते हुए प्रेत-पिशाचादि सहस्रों भूतोंसे वह व्याप्त थी ॥ ३१—३७½ ॥

तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥ ३८ ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद् रणाजिरे ।

समराङ्गणमें मूर्तिमान् यमराजके समान अर्जुनके उस अभूतपूर्व पराक्रमको देखकर कौरवोंपर भय छा गया॥ ३८½ ॥

तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुन अपने अस्त्रोंद्वारा विपक्षी वीरोंके अस्त्र लेकर रौद्रकर्ममें तत्पर हो अपनेको रौद्र सूचित करने लगे ॥ ३९½ ॥

ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् अर्जुन बड़े-बड़े रथियोंको लाँघकर आगे बढ़ गये । उस समय आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यके समान पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर सम्पूर्ण प्राणी देख नहीं पाते थे ॥ ४०-४१ ॥

प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान् महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपङ्क्तिमिवाम्बरे ॥ ४२ ॥

उन महात्माके गाण्डीव धनुषसे छूटकर संग्राममें फैले

हुए बाण-समूहोंको हम आकाशमें हंसोंकी पंक्तिके समान देखते थे ॥ ४२ ॥

विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः ।
दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥ ४३ ॥

वीरोंके अस्त्र-शस्त्रोंको अस्त्रोंद्वारा सब ओरसे रोककर अपने रौद्रभावका दर्शन कराते हुए वे उग्र कर्ममें संलग्न हो गये ॥ ४३ ॥

स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामत् तदार्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया ।
विसृजन् दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥ ४४ ॥
सरथो व्यचरत् तूर्णं प्रेक्षणीयो धनंजयः ।

राजन् ! उस समय जयद्रथ-वधकी इच्छासे अर्जुन नाराचोंद्वारा उन महारथियोंको मोहित करते हुए-से लाँघ गये । श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे धनंजय सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंकी वृष्टि करते हुए रथसहित तुरंत वहाँ विचरने लगे । उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥४४½॥

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

शूरवीर महात्मा अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों और हजारों बाणसमूह आकाशमें घूमते हुए-से दिखायी देते थे ॥ ४५½ ॥

आददानं महेष्वासं संदधानं च सायकम् ॥ ४६ ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्याम वै तदा ।

उस समय हम कुन्तीकुमार महाधनुर्धर अर्जुनको बाण लेते, चढ़ाते और छोड़ते समय देख नहीं पाते थे ॥ ४६½॥

तथा सर्वा दिशो राजन् सर्वांश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥
कदम्बीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ।

राजन् ! इस प्रकार अर्जुनने रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण दिशाओं और समस्त रथियोंको कदम्बके फूलके समान रोमाञ्चित करके जयद्रथपर धावा किया ॥ ४७½ ॥

विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम् ।
न्यवर्तन्त रणाद् वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४९ ॥

साथ ही उसे झुकी हुई गाँठवाले चौंसठ बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया । पाण्डुपुत्र अर्जुनको सिंधुराजके सम्मुख जाते देख हमारे पक्षके वीर योद्धा उसके जीवनसे निराश होकर युद्धसे निवृत्त हो गये ॥ ४८-४९ ॥

यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे ।
तस्य तस्यान्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन् प्रभो ॥ ५० ॥

प्रभो ! उस घोर संग्राममें आपके पक्षका जो-जो योद्धा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़ा, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण पड़ने लगे ॥ ५० ॥

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥ ५१ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनने अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाको कबन्धोंसे भर दिया ॥

एवं तत् तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा ।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥

राजेन्द्र ! उस समय इस प्रकार आपकी उस चतुरङ्गिणी सेनाको व्याकुल करके कुन्तीकुमार अर्जुन जयद्रथकी ओर बढ़े ॥ ५२ ॥

द्रौणिं पञ्चाशताविध्यद् वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥ ५३ ॥

उन्होंने अश्वत्थामाको पचास और वृषसेनको तीन बाणोंसे बींध डाला । कृपाचार्यको कृपापूर्वक केवल नौ बाण मारे ॥५३॥

शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः ।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ ५४ ॥

शल्यको सोलह, कर्णको बत्तीस और सिंधुराजको चौंसठ बाणोंसे घायल करके अर्जुनने सिंहके समान गर्जना की ॥५४॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ५५ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे उस प्रकार घायल होनेपर सिंधुराज सहन न कर सका । वह अंकुशकी मार खाये हुए हाथीके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥५५॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान् ।
क्रुद्धाशीविषसंकाशान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥
आकर्णपूर्णांश्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति ।

उसकी ध्वजापर वाराहका चिह्न था । उसने गीधकी पाँखोंसे युक्त, सीधे जानेवाले, सोनारके माँजे हुए तथा कुपित विषधरके समान बहुत-से बाण धनुषको कानतक खींचकर शीघ्रतापूर्वक अर्जुनके रथकी ओर चलाये ॥ ५६½ ॥

त्रिभिस्तु विद्ध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥ ५७ ॥
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा ।

तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको, छः नाराचोंसे अर्जुनको तथा आठ बाणोंसे घोड़ोंको घायल करके जयद्रथने एक बाणसे अर्जुनकी ध्वजाको भी बींध डाला ॥ ५७½ ॥

स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥ ५८ ॥
युगपत् तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह ।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥

परंतु अर्जुनने तुरंत ही जयद्रथके चलाये हुए बाणोंको काट गिराया और एक ही साथ दो बाणोंसे सिंधुराजके सारथिका सिर तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित उसका ध्वज भी काट डाला ॥ ५८-५९ ॥

स छिन्नयष्टिः सुमहान् धनंजयशराहतः ।

वराहः सिन्धुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥

धनंजयके बाणोंसे आहत हो अग्निशिखाके समान तेजस्वी वह सिंधुराजका महान् वाराह-ध्वज दण्ड कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत् पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥

राजन् ! इसी समय जब कि सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे, उतावले हुए भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डुपुत्र अर्जुनसे कहा—॥ ६१ ॥

एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥

'महाबाहु पार्थ ! यह सिंधुराज जयद्रथ प्राण बचानेकी इच्छासे भयभीत होकर खड़ा है और उसे छः वीर महारथियोंने अपने बीचमें कर रक्खा है ॥ ६२ ॥

एताननिर्जित्य रणे षड् रथान् पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥

'नरश्रेष्ठ अर्जुन ! रणभूमिमें इन छः महारथियोंको परास्त किये बिना सिंधुराजको बिना मायाके जीता नहीं जा सकता है ॥ ६३ ॥

योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति ।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४॥

'अतः मैं यहाँ सूर्यदेवको ढकनेके लिये कोई युक्ति करूँगा, जिससे अकेला सिंधुराज ही सूर्यको स्पष्टरूपसे अस्त हुआ देखेगा ॥ ६४ ॥

हर्षेण जीविताकाङ्क्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन ॥ ६५ ॥

'प्रभो ! वह दुराचारी हर्षपूर्वक अपने जीवनकी अभिलाषा रखते हुए तुम्हारे विनाशके लिये उतावला होकर किसी प्रकार भी अपने आपको गुप्त नहीं रख सकेगा ॥६५॥

तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! वैसा अवसर आनेपर तुम्हें अवश्य उसके ऊपर प्रहार करना चाहिये । इस बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये कि 'सूर्यदेव अस्त हो गये' ॥ ६६ ॥

एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत ।
ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७ ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।

यह सुनकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो ! ऐसा ही हो ।' तब योगी, योगयुक्त और योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यको छिपानेके लिये अन्धकारकी सृष्टि की ।६७½।

सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।

नरेश्वर ! श्रीकृष्णद्वारा अन्धकारकी सृष्टि होनेपर सूर्यदेव अस्त हो गये, ऐसा मानते हुए आपके योद्धा अर्जुनका विनाश निकट देख हर्षमग्न हो गये ॥ ६८½ ॥

ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम् ॥६९॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः ।

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें हर्षमग्न हुए आपके सैनिकोंने सूर्यकी ओर देखातक नहीं । केवल राजा जयद्रथ उस समय बारंबार मुँह ऊँचा करके सूर्यकी ओर देख रहा था ६९½

वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥
पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनंजयमिदं वचः ।

जब इस प्रकार सिंधुराज दिवाकरकी ओर देखने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्ण पुनः अर्जुनसे इस प्रकार बोले—।७०½।

पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत् त्वत्तो भरतसत्तम ।

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, यह वीर सिंधुराज अब तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यदेवकी ओर दृष्टिपात कर रहा है ॥ ७१½ ॥

अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥
छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः ।

'महाबाहो ! इस दुरात्माके वधका यही अवसर है । तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा सफल करो' ॥ ७२½ ॥

इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥
न्यवधीत् तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसंनिभैः ।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर प्रतापी पाण्डुपुत्र अर्जुनने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ७३½ ॥

कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥ ७४ ॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥

उन्होंने कृपाचार्यको बीस, कर्णको पचास तथा शल्य और दुर्योधनको छः-छः बाण मारे । साथ ही वृषसेनको आठ और सिंधुराज जयद्रथको साठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७४-७५ ॥

तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान् पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विद्ध्वा शरै राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ७६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार महाबाहु पाण्डुनन्दन अर्जुनने आपके अन्य सैनिकोंको भी बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर जयद्रथपर धावा किया ॥ ७६ ॥

तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥

अपनी लपटोंसे सबको चाट जानेवाली आगके समान अर्जुनको निकट खड़ा देख जयद्रथके रक्षक भारी संशयमें पड़ गये ॥ ७७ ॥

ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८ ॥

महाराज ! उस समय विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके समस्त योद्धा युद्धस्थलमें इन्द्रकुमार अर्जुनका बाणोंकी धाराओंसे अभिषेक करने लगे ॥ ७८ ॥

संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः।
अक्रुध्यत् स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार बारंबार बाणसमूहोंसे आच्छादित किये जानेपर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ७९ ॥

ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः।
व्यसृजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥

फिर उन पुरुषसिंह इन्द्रकुमारने आपकी सेनाके संहारकी इच्छासे बाणोंका भयंकर जाल बिछाना आरम्भ किया ॥८०॥

ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन् रणे तव।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाप्यधावताम् ॥ ८१ ॥

राजन् ! उस समय रणभूमिमें वीर अर्जुनकी मार खानेवाले योद्धा भयभीत हो सिंधुराजको छोड़ भाग चले। वे इतने डर गये थे कि दो सैनिक भी एक साथ नहीं भागते थे ॥ ८१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम्।
तादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥ ८२ ॥

वहाँ हमलोगोंने कुन्तीकुमारका अद्भुत पराक्रम देखा। उन महायशस्वी वीरने उस समय जो पुरुषार्थ प्रकट किया था, वैसा न तो पहले कभी प्रकट हुआ था और न आगे कभी होगा ही ॥ ८२ ॥

द्विपान् द्विपगतांश्चैव हयान् हयगतानपि।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥

जैसे संहारकारी रुद्र समस्त प्राणियोंका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हाथियों और हाथीसवारोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा रथों एवं रथियोंको भी नष्ट कर दिया ॥ ८३ ॥

न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप।
गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥

नरेश्वर ! उस समरभूमिमें मैंने कोई भी ऐसा हाथी, घोड़ा या मनुष्य नहीं देखा, जो अर्जुनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हो गया हो ॥ ८४ ॥

रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः।
कश्मलं प्राविशन् घोरं नान्वजानन् परस्परम् ॥८५॥

उस समय धूल और अन्धकारसे सारे योद्धाओंके नेत्र आच्छादित हो गये थे। वे भयंकर मोहमें पड़ गये। उनके लिये एक दूसरेको पहचानना भी असम्भव हो गया ॥ ८५ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥

भारत ! अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे जिनके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये थे, वे सैनिक चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, व्यथित होते और प्राणशून्य होकर मलिन हो जाते थे ॥ ८६ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च।
अशाम्यत् तद् रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥८८॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते।

समस्त प्राणियोंके प्रलयकालके समान जब वह महाभीषण अत्यन्त दारुण महान् एवं दुर्लङ्घ्य संग्राम चल रहा था, उस समय रक्तकी वर्षासे और वायुके वेगपूर्वक चलनेसे रुधिरसे भीगे हुए धरातलकी धूल शान्त हो गयी। रथके पहिये नाभितक खूनमें डूबे हुए थे ॥ ८७-८८½ ॥

मत्ता वेगवतो राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥

राजन्! जिनके सवार मार डाले गये थे और समस्त अंग बाणोंसे विदीर्ण हो रहे थे, वे आपके योद्धाओंके वेगवान् और मदमत्त सहस्रों हाथी समरभूमिमें अपनी ही सेनाओंको रौंदते और आर्तनाद करते हुए जोर-जोरसे भागने लगे ॥८९-९०॥

हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप।
प्रदुद्रुवुर्भयाद् राजन् धनंजयशराहताः ॥ ९१ ॥

नरेश्वर ! राजन् ! घुड़सवार गिर गये थे और घोड़े एवं पैदल सैनिक धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो भयके मारे भागे जा रहे थे ॥ ९१ ॥

मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः।
प्रापलायन्त संत्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥

लोगोंके बाल खुले हुए थे, कवच कटकर गिर गये थे और वे अत्यन्त भयभीत हो युद्धका मुहाना छोड़कर अपने घावोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए जान बचानेके लिये भाग रहे थे ॥ ९२ ॥

ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित् तत्राभवन् भुवि।
हतानां चापरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥

कुछ लोग बिना हिले-डुले इस प्रकार भूमिपर खड़े थे, मानो उनकी जाँघें अकड़ गयी हों। दूसरे बहुत-से सैनिक वहाँ मारे गये हाथियोंके बीचमें जा छिपे थे ॥ ९३ ॥

एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा धनंजयः।
न्यवधीत् सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥

राजन्! इस प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको भगाकर भयंकर बाणोंद्वारा सिंधुराजके रक्षकोंको मारना आरम्भ किया॥

द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम्।
छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने अपने तीखे बाणसमूहसे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन तथा दुर्योधनको आच्छादित कर दिया ॥ ९५ ॥

न गृह्णन् न क्षिपन् राजन् मुञ्चन्नापि च संदधत्।
अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात् कथंचन ॥ ९६ ॥

राजन्! उस समय युद्धस्थलमें अर्जुन इतनी फुर्तीसे बाण चलाते थे कि कोई किसी प्रकार भी यह न देख सका कि वे कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब प्रत्यञ्चा खींचते हैं और कब वह बाण छोड़ते हैं ॥ ९६ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते स्मास्यतः सदा।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७ ॥

निरन्तर बाण छोड़ते हुए अर्जुनका केवल मण्डलाकार धनुष ही लोगोंकी दृष्टिमें आता था एवं चारों ओर फैलते हुए उनके बाण भी दृष्टिगोचर होते थे ॥ ९७ ॥

कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥

अर्जुनने कर्ण और वृषसेनके धनुष काटकर एक भल्लके द्वारा शल्यके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने रणभूमिमें मामा-भानजे कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनोंको बाणोंद्वारा बींधकर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९९ ॥

एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान्।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसंनिभम् ॥ १०० ॥

इस प्रकार आपके उन महारथियोंको व्याकुल करके पाण्डुकुमार अर्जुनने एक अग्निके समान तेजस्वी एवं भयंकर बाण निकाला ॥ १०० ॥

इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम्।
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥ १०१ ॥

वह दिव्य बाण दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित होकर इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहा था। वह सब प्रकारका भार सहन करनेमें समर्थ और महान् था। उसकी गन्ध और मालाओंद्वारा सदा पूजा की जाती थी ॥ १०१ ॥

वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत् कुरुनन्दनः।
समादधन्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥

कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुनने उस बाणको विधिपूर्वक वज्रास्त्रसे संयोजित करके शीघ्र ही गाण्डीव धनुषपर रक्खा ॥

तस्मिन् संधीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ १०३ ॥

नरेश्वर! जब अर्जुन अग्निके समान तेजस्वी उस बाणका संधान करने लगे, उस समय आकाशचारी प्राणियोंमें महान् कोलाहल होने लगा ॥ १०३ ॥

अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः।
धनंजय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥

उस समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुनः उतावले होकर बोल उठे—'धनंजय! तुम दुरात्मा सिंधुराजका मस्तक शीघ्र काट लो ॥ १०४ ॥

अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥ १०५ ॥

'क्योंकि सूर्य अब पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर जाना ही चाहते हैं। जयद्रथ-वधके विषयमें तुम मेरी यह बात ध्यानसे सुन लो ॥ १०५ ॥

वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥ १०६ ॥

सिंधुराजके पिता वृद्धक्षत्र इस जगत्में विख्यात हैं। उन्होंने दीर्घकालके पश्चात् इस सिंधुराज जयद्रथको अपने पुत्रके रूपमें प्राप्त किया ॥ १०६ ॥

जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाशरीरिणी।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥ १०७ ॥

'इसके जन्मकालमें मेघके समान गम्भीर स्वरवाली अदृश्य आकाशवाणीने शत्रुसूदन जयद्रथके विषयमें राजाको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा— ॥ १०७ ॥

तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ १०८ ॥

'शक्तिशाली नरेन्द्र! तुम्हारा यह पुत्र कुल, शील और संयम आदि सद्गुणोंके द्वारा दोनों वंशोंके अनुरूप होगा ॥

क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥ १०९ ॥
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुरालक्षितो भुवि।

'इस जगत्के क्षत्रियोंमें यह श्रेष्ठ माना जायगा। शूरवीर सदा इसका सत्कार करेंगे; परंतु अन्त समयमें संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय कोई क्षत्रियशिरोमणि वीर इसका शत्रु होकर इसके सामने खड़ा हो क्रोधपूर्वक इसका मस्तक काट डालेगा'॥

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिंदमः ॥ ११० ॥
ज्ञातीन् सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः।

'यह सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले सिंधुराज वृद्ध-

क्षत्र देरतक कुछ सोचते रहे, फिर पुत्रस्नेहसे प्रेरित हो वे समस्त जाति-भाइयोंसे इस प्रकार बोले—॥ ११०½ ॥

संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥१११॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११२॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो भारी भार वहन करते हुए मेरे इस पुत्रके मस्तकको जो पृथ्वीपर गिरा देगा, उसके सिरके भी सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है' ॥

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥११३॥

'ऐसा कहकर समय आनेपर वृद्धक्षत्रने जयद्रथको राज्य-सिंहासनपर स्थापित कर दिया और स्वयं वनमें जाकर वे उग्र तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ ११३ ॥

सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद् बहिर्वानरकेतन ॥११४॥

'कपिध्वज अर्जुन ! वे तेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस समय इस समन्तपञ्चक-क्षेत्रसे बाहर घोर एवं दुर्धर्ष तपस्या कर रहे हैं ॥ ११४ ॥

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥११५॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥११६॥

'अतः शत्रुसूदन ! तुम अद्भुत कर्म करनेवाले किसी भयंकर दिव्यास्त्रके द्वारा इस महासमरमें सिंधुराज जयद्रथका कुण्डलसहित मस्तक काटकर उसे इस वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरा दो । भारत ! तुम भीमसेनके छोटे भाई हो (अतः सब कुछ कर सकते हो) ॥ ११५-११६ ॥

अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११७॥

'यदि तुम इसके मस्तकको पृथ्वीपर गिराओगे तो तुम्हारे मस्तकके भी सौ टुकड़े हो जायँगे । इसमें संशय नहीं है॥

यथा चेदं न जानीयात् स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥११८॥

'कुरुश्रेष्ठ ! राजा वृद्धक्षत्र तपस्यामें संलग्न हैं । तुम दिव्यास्त्रका आश्रय लेकर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे उसे इस बातका पता न चले' ॥ ११८ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किंचन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥११९॥

'इन्द्रकुमार ! सम्पूर्ण त्रिलोकीमें कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो तुम्हारे लिये असाध्य हो अथवा जिसे तुम कर न सको' ॥ ११९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१२०॥
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥१२१॥

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अपने दोनों गलफर चाटते हुए अर्जुनने सिंधुराजके वधके लिये धनुषपर रक्खे हुए उस बाणको तुरंत ही छोड़ दिया, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान कठोर था, जिसे दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया था, जो सारे भारोंको सहनेमें समर्थ था और जिसकी प्रतिदिन चन्दन और पुष्पमालाद्वारा पूजा की जाती थी ॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥१२२॥

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण सिंधु-राजका सिर काटकर बाज पक्षीके समान उसे आकाशमें ले उड़ा ॥

तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥१२३॥

सिंधुराज जयद्रथके उस मस्तकको उन्होंने बाणोंद्वारा ऊपर-ही-ऊपर ढोना आरम्भ किया । इससे अर्जुनके शत्रुओं-को बड़ा दुःख और मित्रोंको महान् हर्ष हुआ ॥ १२३ ॥

शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥१२४॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने एकके बाद एक करके अनेक बाण मारकर उस मस्तकको कदम्बके फूल-सा बना दिया । साथ ही वे पूर्वोक्त छः महारथियोंसे युद्ध भी करते रहे ॥ १२४ ॥

ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिरो यद् व्यहरत् ततः ॥१२५॥

भारत ! उस समय हमने समन्तपञ्चकसे बाहर जहाँ वह बाण उस मस्तकको ले गया था, वहाँ बड़े भारी आश्चर्यकी घटना देखी ॥ १२५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
संध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥१२६॥

आर्य ! इसी समय आपके तेजस्वी सम्बन्धी राजा वृद्ध-क्षत्र संध्योपासना कर रहे थे ॥ १२६ ॥

उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥१२७॥

संध्योपासनामें बैठे हुए वृद्धक्षत्रके अङ्कमें उस बाणने सिंधुराज जयद्रथका वह काले केशोंवाला कुण्डलमण्डित मस्तक डाल दिया ॥ १२७ ॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिंदम ॥१२८॥

शत्रुदमन नरेश ! जयद्रथका वह सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित सिर राजा वृद्धक्षत्रकी गोदमें उनके बिना देखे ही गिर गया ॥ १२८ ॥

कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद् धरातलम् ॥१२९॥

भरतनन्दन ! जप समाप्त करके जब वृद्धक्षत्र सहसा उठने लगे, तब उनकी गोदसे वह मस्तक पृथ्वीपर जा गिरा॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्यापि शतधा मूर्धागच्छदरिंदम ॥१३०॥

शत्रुदमन महाराज ! पुत्रका मस्तक पृथ्वीपर गिरते ही राजा वृद्धक्षत्रके मस्तकके भी सौ टुकड़े हो गये ॥ १३० ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥१३१॥

तदनन्तर सारी सेनाएँ भारी आश्चर्यमें पड़ गयीं और सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे॥ १३१॥

ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना ।
तमस्तद् वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥१३२॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने रचे हुए अन्धकारको समेट लिया ॥ १३२ ॥

पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥१३३॥

नृपश्रेष्ठ ! महीपाल ! पीछे सेवकोंसहित आपके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि इस अन्धकारके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा फैलायी हुई माया थी ॥ १३३ ॥

एवं स निहतो राजन् पार्थेनामिततेजसा ।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥१३४॥

राजन् ! इस प्रकार अमित तेजस्वी अर्जुनने आपकी आठ अक्षौहिणी सेनाओंके संहारकी पूर्ति करके आपके दामाद सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३४ ॥

हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥१३५॥

नरेश्वर ! जयद्रथको मारा गया देख आपके पुत्र दुःखसे आँसू बहाने लगे और अपनी विजयसे निराश हो गये ॥

ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः ।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः ॥१३६॥

राजन् ! कुन्तीकुमारद्वारा जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण तथा शत्रुतापन महाबाहु अर्जुनने अपना-अपना शङ्ख बजाया ॥ १३६ ॥

भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥१३७॥

भारत ! तत्पश्चात् भीमसेन, वृष्णिवंशके सिंह, युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजाने पृथक्-पृथक् शङ्ख बजाये ॥१३७॥

श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥१३८॥

उस महान् शङ्खनादको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरको यह निश्चय हो गया कि महात्मा अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३८ ॥

ततो वादित्रघोषेण स्वान् योधान् पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥१३९॥

तदनन्तर युधिष्ठिर भी विजयके बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंका हर्ष बढ़ाने लगे । वे युद्धकी इच्छासे संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने डटे रहे ॥ १३९ ॥

ततः प्रववृते राजन्नस्तंगच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥१४०॥

राजन् ! तदनन्तर सूर्यास्त होते समय द्रोणाचार्यका सोमकोंके साथ रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया ॥ १४० ॥

ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥१४१॥

नरेश्वर ! सिंधुराजके मारे जानेपर समस्त सोमक महारथी द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे प्रयत्नपूर्वक युद्ध करने लगे ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥१४२॥

पाण्डव सिंधुराजको मारकर विजय पा चुके थे । अतः वे विजयोल्लाससे उन्मत्त हो जहाँ-तहाँसे आकर द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १४२ ॥

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान् रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥१४३॥

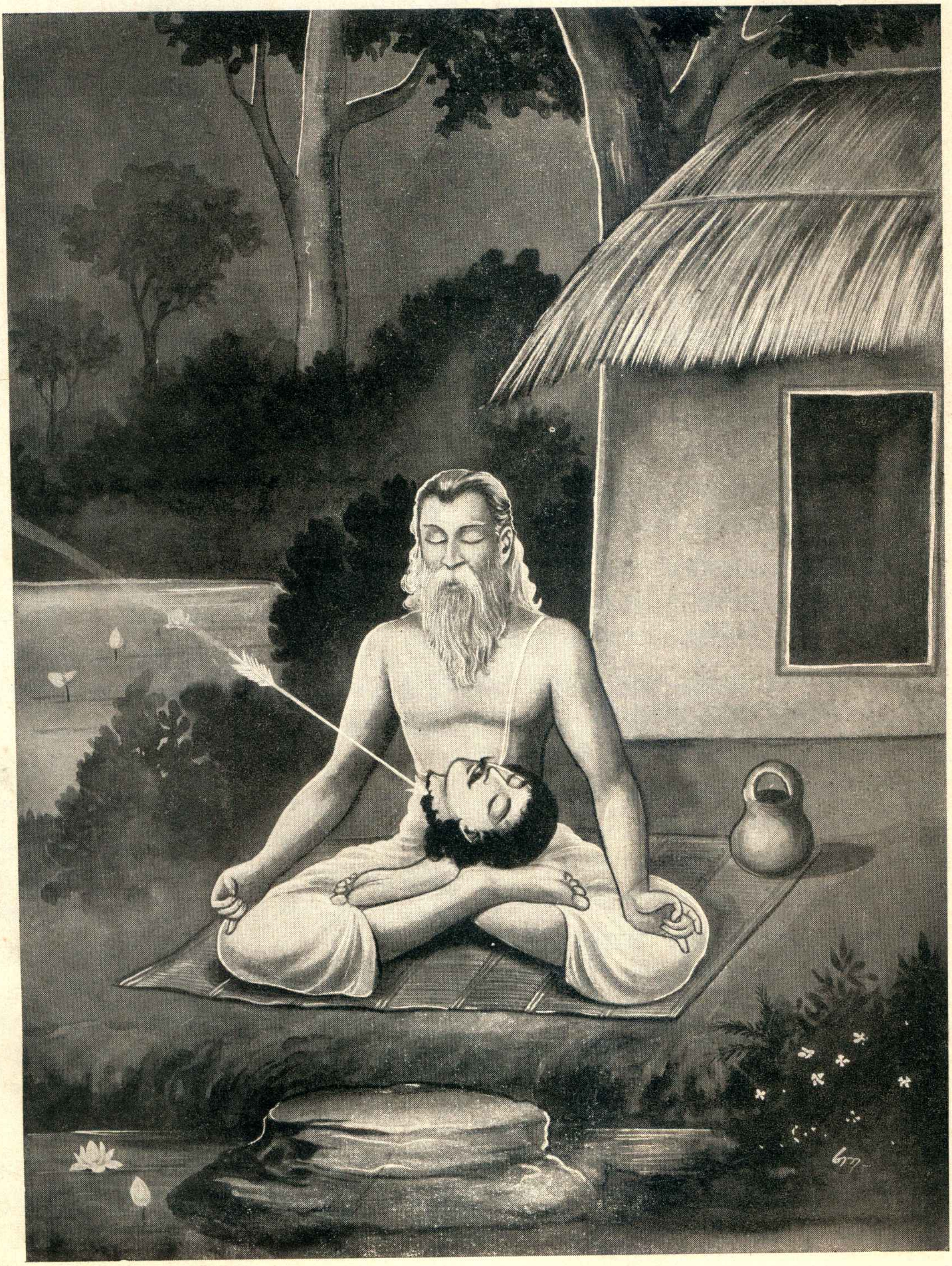
महाबाहु अर्जुनने भी सिंधुराजको मारकर आपके श्रेष्ठ रथी योद्धाओंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ १४३ ॥

स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमत् समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥१४४॥

जैसे देवराज इन्द्र देवशत्रुओंका संहार करते हैं तथा जैसे तिमिरारि सूर्य उदित होकर अन्धकारका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार किरीटधारी वीर अर्जुनने अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी करके सब ओरसे आपकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ १४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें जयद्रथवधविषयक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४६ ॥



जयद्रथके कटे हुए मस्तकका उसके पिताकी गोदमें गिरना

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे कृपाचार्यका मूर्छित होना, अर्जुनका खेद तथा कर्ण और सात्यकिका युद्ध एवं कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सव्यसाची अर्जुनके द्वारा वीर सिंधुराजके मारे जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवद् राजन् रथमास्थाय फाल्गुनम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतनन्दन! सिंधुराजको अर्जुनके द्वारा रणभूमिमें मारा गया देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अमर्षके वशीभूत हो बाणकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको आच्छादित करने लगे। राजन्! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भी रथपर बैठकर अर्जुनपर धावा किया ॥ २-३ ॥

तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों महारथी दो दिशाओंसे आकर अर्जुनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद् रथिनां वरः ॥ ५ ॥

इस प्रकार दो दिशाओंसे होनेवाली उस भारी बाण-वर्षासे पीड़ित हो रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ५ ॥

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ६ ॥

वे युद्धस्थलमें गुरु तथा गुरुपुत्रका वध करना नहीं चाहते थे। अतः कुन्तीपुत्र धनंजयने वहाँ अपने आचार्यका सम्मान किया ॥ ६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत् ॥ ७ ॥

उन्होंने अपने अस्त्रोंद्वारा अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उनका वध करनेकी इच्छा न रखते हुए उनके ऊपर मन्द वेगवाले बाण चलाये ॥ ७ ॥

ते चापि भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः।
बहुत्वात् तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम् ॥ ८ ॥

अर्जुनके चलाये हुए उन बाणोंकी संख्या अधिक होनेके कारण उनके द्वारा उन दोनोंको भारी चोट पहुँची। वे बड़ी वेदनाका अनुभव करने लगे ॥ ८ ॥

अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः।
अवासीदद् रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥

राजन्! कृपाचार्य अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो मूर्छित हो गये और रथके पिछले भागमें जा बैठे ॥ ९ ॥

विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम्।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥

अपने स्वामीको बाणोंसे पीड़ित एवं विह्वल जानकर और उन्हें मरा हुआ समझकर सारथि रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ १० ॥

तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि।
अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद् रथान्तरम् ॥ ११ ॥

महाराज! युद्धस्थलमें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यके अचेत होकर वहाँसे हट जानेपर अश्वत्थामा भी अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसी रथीका सामना करनेके लिये चला गया ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम्।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत्।

कृपाचार्यको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्छित देखकर महाधनुर्धर कुन्तीकुमार अर्जुन दयावश रथपर बैठे-बैठे ही विलाप करने लगे। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे दीनभावसे इस प्रकार कहने लगे—॥ १२½ ॥

पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥ १४ ॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम्।

'जिस समय कुलान्तकारी पापी दुर्योधनका जन्म हुआ था, उस समय महाज्ञानी विदुरजीने यही सब विनाशकारी परिणाम देखकर राजा धृतराष्ट्रसे कहा था कि 'इस कुलाङ्गार बालकको परलोक भेज दिया जाय, यही अच्छा होगा; क्योंकि इससे प्रधान-प्रधान कुरुवंशियोंको महान् भय उत्पन्न होगा' ॥ १३-१४½ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम्।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥ १६ ॥

'सत्यवादी विदुरजीका वह कथन आज सत्य हो रहा

है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने गुरुको शर-शय्यापर पड़ा देखता हूँ। क्षत्रियके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! धिक्कार है!! १५-१६ ॥

को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः।
ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥ १७ ॥
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः।

'मेरे-जैसा कौन पुरुष ब्राह्मण एवं आचार्यसे द्रोह करेगा? ये ऋषिकुमार, मेरे आचार्य तथा गुरुवर द्रोणाचार्यके परम सखा कृप मेरे बाणोंसे पीड़ित हो रथकी बैठकमें पड़े हैं ॥ १७½ ॥

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥ १८ ॥
अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे।

'मैंने इच्छा न रहते हुए भी उन्हें बाणोंद्वारा अधिक चोट पहुँचायी है। वे रथकी बैठकमें पड़े-पड़े कष्ट पा रहे हैं और मुझे अत्यन्त पीड़ित-सा कर रहे हैं ॥ १८½ ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै।

'मैंने पुत्रशोकसे संतप्त, बाणोंद्वारा पीड़ित तथा भारी दुरवस्थाको प्राप्त होकर बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उन्हें अनेक बार चोट पहुँचायी है ॥ १९½ ॥

शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥ २० ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम्।

'निश्चय ही ये कृपाचार्य आहत होकर मुझे पुत्रवधकी अपेक्षा भी अधिक शोकमें डाल रहे हैं। श्रीकृष्ण! देखिये, वे अपने रथपर कैसे सन्न और दीन होकर पड़े हैं ॥ २०½ ॥

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥ २१ ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयान्ति ते।

'आचार्योंसे विद्या ग्रहण करके जो श्रेष्ठ पुरुष उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, वे देवत्वको प्राप्त होते हैं।२१½

ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः।

'गुरुसे विद्या ग्रहण करके जो नराधम उनपर ही चोट करते हैं, वे दुराचारी मानव निश्चय ही नरकगामी होते हैं ॥ २२½ ॥

तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥ २३ ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम्।

'मैंने आचार्य कृपको अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा रथपर सुला दिया है। निश्चय ही यह कर्म मैंने आज नरकमें जानेके लिये ही किया है ॥ २३½ ॥

यत् तत् पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः ॥ २४ ॥
न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति।

'पूर्वकालमें मुझे अस्त्रविद्याकी शिक्षा देकर कृपाचार्यने जो मुझसे यह कहा था कि 'कुरुनन्दन! तुम्हें गुरुके ऊपर किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये' ॥२४½॥

तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता।

'उन श्रेष्ठ महात्मा आचार्यका यह वचन युद्धस्थलमें उन्हींपर बाणोंकी वर्षा करके मैंने नहीं माना है ॥ २५½ ॥

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ॥ २६ ॥
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम्।

'वार्ष्णेय! युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले उन परम पूजनीय गौतमवंशी कृपाचार्यको मेरा नमस्कार है। मैं जो उनपर प्रहार करता हूँ, इसके लिये मुझे धिक्कार है'।२६½।

तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत्।

सव्यसाची अर्जुन कृपाचार्यके लिये विलाप कर ही रहे थे कि सिंधुराजको मारा गया देख राधानन्दन कर्णने उनपर धावा कर दिया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन्।

राधापुत्र कर्णको अर्जुनके रथकी ओर आते देख दोनों भाई पाञ्चालराजकुमार (युधामन्यु और उत्तमौजा) तथा सात्वतवंशी सात्यकि सहसा उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥
प्रहसन् देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत्।

राधापुत्रको अपने समीप आते देख महारथी कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे हँसते हुए कहा—॥ २९½ ॥

एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे।

'यह अधिरथपुत्र कर्ण सात्यकिके रथकी ओर जा रहा है। अवश्य ही युद्धस्थलमें भूरिश्रवाका मारा जाना इसके लिये असह्य हो उठा है ॥ ३०½ ॥

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ॥ ३१ ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत् सात्यकिं वृषः।

'जनार्दन! यह जहाँ जाता है, वहीं आप भी अपने घोड़ोंको हाँकिये। कहीं ऐसा न हो कि कर्ण सात्यकिको भूरिश्रवाके पथपर पहुँचा दे' ॥ ३१½ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः।

सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महाबाहु केशवने उनसे यह समयोचित वचन कहा—॥ ३२½ ॥

अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥

किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः।

'पाण्डुनन्दन ! यह महाबाहु सात्वतशिरोमणि सात्यकि अकेला भी कर्णके लिये पर्याप्त है। फिर इस समय जब द्रुपदके दोनों पुत्र इसके साथ हैं, तब तो कहना ही क्या है ॥ ३३½ ॥

न च तावत् क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥ ३४ ॥
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी।

'कुन्तीकुमार ! इस समय कर्णके साथ तुम्हारा युद्ध होना ठीक नहीं है; क्योंकि उसके पास बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित होनेवाली इन्द्रकी दी हुई शक्ति है ३४½

त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथातथा।

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन ! तुम्हारे लिये कर्ण उसकी प्रतिदिन पूजा करते हुए उसे सदा सुरक्षित रखता है; अतः कर्ण सात्यकिके पास जैसे-तैसे जाय और युद्ध करे ॥ ३५½ ॥

अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥ ३६ ॥

'कुन्तीकुमार ! मैं उस दुरात्माका अन्तकाल जानता हूँ, जब कि तुम अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे पृथ्वीपर मार गिराओगे' ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! भूरिश्रवाके मारे जाने और सिंधुराजके धराशायी किये जानेपर कर्णके साथ वीरवर सात्यकिका जो संग्राम हुआ, वह कैसा था ? ॥ ३७ ॥

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान् रथम्।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३८॥

संजय ! सात्यकि भी तो रथहीन हो चुके थे। वे किस रथपर आरूढ़ हुए तथा चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा इन दोनों पाञ्चाल वीरोंने किसके साथ युद्ध किया ? यह सब मुझे बताओ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! मैं बड़े खेदके साथ उस महासमरमें घटित हुई घटनाओंका आपके समक्ष वर्णन करूँगा। आप स्थिर होकर अपने दुराचारका परिणाम सुनें ॥

पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४० ॥

प्रभो ! भगवान् श्रीकृष्णके मनमें पहले ही यह बात आ गयी थी कि आज वीर सात्यकिको सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा परास्त कर देगा ॥ ४० ॥

अतीतानागते राजन् स हि वेत्ति जनार्दनः।
ततः सूतं समाहूय दारुकं संदिदेश ह ॥ ४१ ॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन् महाबलः।
न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
मानवा वापि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन।

राजन् ! वे जनार्दन भूत और भविष्य दोनों कालोंको जानते हैं। इसीलिये उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुलाकर पहले ही दिन यह आज्ञा दे दी थी कि कल सबेरेसे ही मेरा रथ जोतकर तैयार रखना। महाराज ! श्रीकृष्णका बल महान् है। श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेवाले न तो कोई देवता हैं, न गन्धर्व हैं, न यक्ष, नाग तथा राक्षस हैं और न मनुष्य ही हैं ॥ ४१-४२½ ॥

पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत् तथा।

उन्हें ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध पुरुष ही यथार्थ रूपसे जान पाते हैं। उन दोनोंके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है। अच्छा, अब युद्धका वृत्तान्त सुनिये ॥ ४३½ ॥

सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं रणे ॥ ४४ ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाथ माधवः।

सात्यकिको रथहीन और कर्णको युद्धके लिये उद्यत देख भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरकी ध्वनि करनेवाले शङ्खको ऋषभस्वरसे बजाया ॥ ४४½ ॥

दारुकोऽवेत्य संदेशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥
रथमन्वानयत् तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम्।

दारुकने उस शङ्खध्वनिको सुनकर भगवान्‌के संदेशको स्मरण करके तुरंत ही उनके लिये अपना रथ ला दिया, जिसपर गरुडचिह्नसे युक्त ऊँची ध्वजा फहरा रही थी ४५½

स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसंनिभम्।

भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति पाकर शिनिपौत्र सात्यकि दारुकद्वारा जोते हुए अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ ४६½ ॥

कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ ४७ ॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन् सायकान् बहून्।

उसमें इच्छानुसार चलनेवाले महान् वेगशाली और सुवर्णमय अलङ्कारोंसे विभूषित शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प

और बलाहक नामवाले श्रेष्ठ अश्व जुते हुए थे। वह रथ विमानके समान जान पड़ता था। उसपर आरूढ़ होकर बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिने राधापुत्र कर्णपर धावा किया ॥ ४७-४८½ ॥

चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४९ ॥
धनंजयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।

उस समय चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजाने भी धनंजयका रथ छोड़कर कर्णपर ही आक्रमण किया ४९½

राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥ ५० ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कर्णने भी उस युद्धस्थलमें अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले सात्यकिपर बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया ॥ ५०½ ॥

नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ५१ ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।

राजन् ! मैंने इस पृथ्वीपर या स्वर्गमें देवताओं, गन्धर्वों, असुरों तथा राक्षसोंका भी वैसा युद्ध नहीं सुना था ५१½

उपारमत तत् सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥ ५२ ॥
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म सम्मूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद् युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥
तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं दारुकस्य च ।

महाराज ! उन दोनोंका वह संग्राम देखकर सबके चित्तमें मोह छा गया। राजन् ! सभी दर्शकके समान उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंके उस अतिमानव युद्धको और दारुकके सारथ्य कर्मको देखने लगे। हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्योंसे युक्त वह चतुरंगिणी सेना भी युद्धसे उपरत हो गयी थी ।५२-५३½।

गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः संनिवर्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥
अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६ ॥

रथपर बैठे हुए कश्यपगोत्रीय सारथि दारुकके रथसंचालनकी गमन, प्रत्यागमन, आवर्तन, मण्डल तथा संनिवर्तन आदि विविध रीतियोंसे आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और दानव भी चकित हो उठे तथा कर्ण और सात्यकिके युद्धको देखनेके लिये अत्यन्त सावधान हो गये। वे दोनों बलवान् वीर रणभूमिमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए अपने-अपने मित्रके लिये पराक्रम दिखा रहे थे ।५४-५६।

कर्णश्चामरसंकाशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ५७ ॥

महाराज ! देवताओंके समान तेजस्वी कर्ण तथा सत्यकपुत्र युयुधान दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥

प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसंधयोः ॥ ५८ ॥

कर्णने भूरिश्रवा और जलसंधके वधको सहन न करनेके कारण अपने बाणोंकी वर्षासे शिनिपौत्र सात्यकिको मथ डाला ॥ ५८ ॥

कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिंदम ।

शत्रुदमन नरेश ! कर्ण उन दोनोंकी मृत्युसे शोकमग्न हो फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति लंबी साँसें खींच रहा था। वह युद्धमें क्रुद्ध हो अपने नेत्रोंसे सात्यकिकी ओर इस प्रकार देख रहा था, मानो वह उन्हें जलाकर भस्म कर देगा। उसने बारंबार वेगपूर्वक सात्यकिपर धावा किया ॥५९½॥

तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुध्यत ॥ ६० ॥
महता शरवर्षेण गजं प्रति गजो यथा ।

कर्णको कुपित देख सात्यकि बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करते हुए उसका सामना करने लगे, मानो एक हाथी दूसरे हाथीसे लड़ रहा हो ॥ ६०½ ॥

तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१ ॥
अन्योन्यं संततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।

वेगशाली व्याघ्रोंके समान परस्पर भिड़े हुए वे दोनों पुरुषसिंह युद्धमें अनुपम पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ६१½ ॥

ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिंदम ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! तदनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिने सम्पूर्णतः लोहमय बाणोंद्वारा कर्णको उसके सारे अङ्गोंमें बारंबार चोट पहुँचायी और एक भल्लद्वारा उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ६२-६३

अश्वांश्च चतुरः श्वेतान् निजघान शितैः शरैः ।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।

नरश्रेष्ठ ! इसके बाद सात्यकिने तीखे बाणोंद्वारा कर्णके चारों श्वेत घोड़ोंको मार डाला और उसके ध्वजको काटकर रथके सैकड़ों टुकड़े करके आपके पुत्रके देखते-देखते कर्णको रथहीन कर दिया ॥ ६४½ ॥

ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥

राजन्! इससे खिन्नचित्त होकर आपके महारथी वीर कर्ण-पुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य तथा द्रोणकुमार अश्वत्थामाने सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया ॥ ६५-६६ ॥

ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ॥ ६७ ॥

सात्यकिके द्वारा वीरवर सूतपुत्र कर्णके रथहीन कर दिये जानेपर सारा सैन्यदल सब ओरसे व्याकुल हो उठा। किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता था॥ ६७ ॥

हाहाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येष्वभून्महान्।
कर्णोऽपि विरथो राजन् सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन्।

राजन्! उस समय सारी सेनाओंमें महान् हाहाकार होने लगा। महाराज! सात्यकिके बाणोंसे रथहीन किया गया कर्ण भी लंबी साँस खींचता हुआ तुरंत ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा॥ ६८½ ॥

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात् प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन्।

बचपनसे लेकर सदा ही किये हुए आपके पुत्रके सौहार्दका वह समादर करता था और दुर्योधनको राज्य दिलानेकी जो उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी, उसके पालनमें वह तत्पर था॥ ६९½ ॥

तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥ ७० ॥
दुःशासनमुखान् वीरान् नावधीत् सात्यकिर्वशी।
रक्षन् प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुराकृताम् ॥ ७१ ॥

राजन्! अपने मनको वशमें करनेवाले सात्यकिने रथहीन हुए कर्णको तथा दुःशासन आदि आपके वीर पुत्रोंको भी उस समय इसलिये नहीं मारा कि वे भीमसेन और अर्जुनकी पहलेसे की हुई प्रतिज्ञाकी रक्षा कर रहे थे॥ ७०-७१ ॥

विरथान् विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत्।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥ ७२ ॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः।

उन्होंने उन सबको रथहीन और अत्यन्त व्याकुल तो कर दिया, परंतु उनके प्राण नहीं लिये। जब दुबारा द्यूत हुआ था, उस समय भीमसेनने आपके पुत्रोंके वधकी प्रतिज्ञा की थी और अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी घोषणा की थी॥७२½॥

वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥
नाशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः।

कर्ण आदि श्रेष्ठ महारथियोंने सात्यकिके वधके लिये पूरा प्रयत्न किया; परंतु वे उन्हें मार न सके॥ ७३½ ॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ॥ ७४ ॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः।
काङ्क्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७५ ॥

अश्वत्थामा, कृतवर्मा, अन्यान्य महारथी तथा सैकड़ों क्षत्रियशिरोमणि सात्यकिद्वारा एकमात्र धनुषसे परास्त कर दिये गये। सात्यकि धर्मराजका प्रिय करना और परलोकपर विजय पाना चाहते थे॥ ७४-७५ ॥

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि श्रीकृष्ण और अर्जुन-के समान पराक्रमी थे। उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको हँसते हुए-से जीत लिया था॥ ७६ ॥

कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ७७ ॥

नरव्याघ्र! संसारमें श्रीकृष्ण, कुन्तीकुमार अर्जुन और शिनिपौत्र सात्यकि—ये तीन ही वास्तवमें धनुर्धर हैं। इनके समान चौथा कोई नहीं है॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः।
विरथं कृतवान् कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सात्यकि युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णके समान हैं। उन्होंने श्रीकृष्णके ही अजेय रथपर आरूढ़ होकर कर्णको रथहीन कर दिया। उस समय उनके साथ दारुक-जैसा सारथि था और उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान तो था ही; परंतु शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि क्या किसी दूसरे रथपर भी आरूढ़ हुए थे? ७८-७९

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम्।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८० ॥

मैं यह सुनना चाहता हूँ। तुम कथा कहनेमें बड़े कुशल हो। मैं तो सात्यकिको किसीके लिये भी असह्य मानता हूँ; अतः संजय! तुम मुझसे सारी बातें स्पष्ट-रूपसे बताओ॥ ८० ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं रथमन्यं महामतिः।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥

संजयने कहा—राजन्! सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुनिये। दारुकका एक छोटा भाई था, जो बड़ा बुद्धि-मान् था। वह तुरंत ही रथ सजानेकी विधिसे सुसज्जित किया हुआ एक दूसरा रथ ले आया॥ ८१ ॥

आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः संनद्धकूबरम्।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ८२ ॥

लोहे और सोनेके पट्टोंसे उसका कूबर अच्छी तरह

कसा हुआ था । उसमें सहस्रों तारे जड़े गये थे । उसकी ध्वजा-पताकाओंमें सिंहका चिह्न बना हुआ था ॥ ८२ ॥

अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥

उस रथमें सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, वायुके समान वेगशाली, सम्पूर्ण शब्दोंको लाँघ जानेवाले, सुदृढ़ तथा चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण सिन्धी घोड़े जुते हुए थे ८३

चित्रकाञ्चनसंनाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८४ ॥

प्रजानाथ ! उन घोड़ोंको विचित्र स्वर्णमय कवचोंसे सुसज्जित किया गया था । वे सभी अश्व अच्छी श्रेणीके थे । उनसे जुते हुए उस रथमें क्षुद्र घंटिकाओंके समूहसे निकलती हुई मधुर ध्वनि व्याप्त हो रही थी । वहाँ रक्खे हुए शक्ति और तोमर आदि शस्त्र विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे ॥ ८४ ॥

युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८५ ॥

उसमें बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि युद्धोपयोगी आवश्यक सामान एवं द्रव्य यथास्थान रक्खे गये थे । उस रथके चलनेपर मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द होता था । दारुकका छोटा भाई उस रथको सात्यकिके पास ले आया ॥

तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥

सात्यकिने उसीपर आरूढ़ होकर आपकी सेनापर आक्रमण किया । दारुक भी इच्छानुसार भगवान् श्रीकृष्णके निकट चला गया ॥ ८६ ॥

कर्णस्यापि रथं राजञ्शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसंनाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥

राजन् ! कर्णके लिये भी एक सुन्दर रथ लाया गया, जिसमें शङ्ख और गोदुग्धके समान श्वेतवर्णवाले, विचित्र सुवर्णमय कवचसे सुसज्जित और अत्यन्त वेगशाली श्रेष्ठ अश्व जुते हुए थे ॥ ८७ ॥

हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥

उसमें सुवर्णमयी रज्जुसे आवेष्टित ध्वजा फहरा रही थी । वह रथ यन्त्र और पताकाओंसे सुशोभित था । उसके भीतर बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि आवश्यक सामान रक्खे गये थे । उस श्रेष्ठ रथका सारथि भी सुयोग्य था ॥ ८८ ॥

उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् रिपून् ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥

दुर्योधनके सेवक वह रथ लेकर आये और कर्णने उसके ऊपर आरूढ़ होकर शत्रुओंपर धावा किया । राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने आपको बता दिया ॥

भूयश्चापि निबोधेमं तवापनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत् तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।

अब पुनः आपके ही अन्यायसे होनेवाले इस महान् जनसंहारका वृत्तान्त सुनिये । भीमसेनने अबतक सदा विचित्र युद्ध करनेवाले दुर्मुख आदि आपके इकतीस पुत्रोंको मार गिराया है ॥ ९०½ ॥

शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ९१ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥

भारत ! इसी प्रकार सात्यकि और अर्जुनने भी भीष्म और भगदत्त आदि सैकड़ों शूरवीरोंका संहार कर डाला है । राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप यह विनाशकार्य सम्पन्न हुआ है ॥ ९१-९२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और सात्यकिका युद्धविषयक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कर्णको फटकारना और वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको बधाई देकर उन्हें रणभूमिका भयानक दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना

धृतराष्ट्र उवाच

तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संजय ।
किं वै भीमस्तदाकार्षीत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब पाण्डवपक्षके और मेरे शूरवीर सैनिक पूर्वोक्तरूपसे युद्धके लिये उद्यत हो गये, तब भीमसेनने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रथहीन भीमसेन कर्णके वाग्बाणोंसे पीड़ित हो अमर्षके वशीभूत हो गये थे । वे अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत् कर्णः पश्यतस्ते धनंजय।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽसि भारत ॥ ४ ॥

'धनंजय ! कर्णने तुम्हारे सामने ही मुझसे बारंबार कहा है कि 'अरे ! तू निमूछिया, मूर्ख, पेटू, अस्त्रविद्याको न जाननेवाला, बालक और संग्रामभीरु है; अतः युद्ध न कर।' भारत ! जो ऐसा कह दे, वह मेरा वध्य होता है। उसने मुझे ऐसा कह दिया ॥ ३-४ ॥

एतद् व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुन्तीकुमार ! ऐसा कहनेवालेके वधकी यह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे साथ ही की थी। यह कर्णका वध जैसे मेरा कार्य है, वैसे ही तुम्हारा भी है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५ ॥

तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद् वचनं मम।
यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनंजय ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कर्णके वधके लिये तुम मेरे इस कथनपर भी ध्यान दो। धनंजय ! जैसे भी मेरी वह प्रतिज्ञा सत्य हो सके, वैसा प्रयत्न करो' ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत् कर्णं किंचिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥

भीमसेनका यह वचन सुनकर अमित पराक्रमी अर्जुन युद्धस्थलमें कर्णके कुछ निकट जाकर उससे इस प्रकार बोले--॥ ७ ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत।
अधर्मबुद्धे श्रृणु मे यत् त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

'कर्ण ! कर्ण ! तेरी दृष्टि मिथ्या है। सूतपुत्र ! तू स्वयं ही अपनी प्रशंसा करता है। अधर्मबुद्धे ! मैं इस समय तुझसे जो कुछ कहता हूँ, उसे सुन ॥ ८ ॥

द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः ॥ ९ ॥

'राधानन्दन ! युद्धमें शूरवीरोंके दो प्रकारके कर्म (परिणाम) देखे जाते हैं—जय और पराजय। यदि इन्द्र भी युद्ध करें तो उनके लिये भी वे दोनों परिणाम अनिश्चित हैं (अर्थात् यह निश्चित नहीं कि कब किसकी विजय होगी और कब किसकी पराजय) ॥ ९ ॥

(रणमुत्सृज्य निर्लज्ज गच्छसे वै पुनः पुनः।
माहात्म्यं पश्य भीमस्य कर्ण जन्म कुले तथा ॥
नोक्तवान् परुषं यत् त्वां पलायनपरायणम्।

'ओ निर्लज्ज कर्ण ! तू बार-बार युद्ध छोड़कर भाग जाता है, तो भी तुझ भागते हुएके प्रति भीमसेनने कोई कटु वचन नहीं कहा। भीमसेनके इस माहात्म्यको और उनके उत्तम कुलमें जन्म लेनेके कारण प्राप्त हुए अच्छे शील-स्वभावको प्रत्यक्ष देख ले ॥

भूयस्त्वमपि सङ्गम्य सकृदेव यदृच्छया ॥
विरथं कृतवान् वीरं पाण्डवं सूतदायद।
कुलस्य सदृशं चापि राधेय कृतवानसि ॥

'सूतपुत्र ! फिर तूने भी पुनः युद्ध करके केवल एक ही बार दैवेच्छासे पाण्डुपुत्र वीरवर भीमसेनको रथहीन किया है। राधापुत्र ! तूने भीमको कटुवचन सुनाकर अपने कुलके अनुरूप कार्य किया है ॥

त्वमिदानीं नरश्रेष्ठ प्रस्तुतं नावबुध्यसे।
श्रृगाल इव वन्यान् वै क्षत्रं त्वमवमन्यसे ॥
पित्र्यं कर्मास्य संग्रामस्तव तस्य कुलोचितम्।

'नरश्रेष्ठ ! इस समय जो संकट तेरे सामने प्रस्तुत है, उसे तू नहीं जानता है। जैसे सियार जंगली व्याघ्र आदि जन्तुओंकी अवहेलना करे, उसी प्रकार तू भी क्षत्रियसमाजका अपमान कर रहा है। संग्राम भीमसेनका तो पैतृक कर्म है और तेरा काम तेरे कुलके अनुरूप रथ हाँकना है ॥

अहं त्वामपि राधेय ब्रवीमि रणमूर्धनि ॥
सर्वशस्त्रभृतां मध्ये कुरु कार्याणि सर्वशः।
नैकान्तसिद्धिः संग्रामे वासवस्यापि विद्यते ॥)

'राधापुत्र ! मैं इस युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण शस्त्रधारी योद्धाओंके बीचमें तुझसे कहे देता हूँ, तू अपने सारे कार्य सब प्रकारसे पूर्ण कर ले। संग्राममें इन्द्रको भी एकान्ततः सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥

मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १० ॥

'सात्यकिने तुझे रथहीन करके मृत्युके निकट पहुँचा दिया था। तेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं, तो भी 'तू मेरा वध्य है' यह जानकर उन्होंने तुझे जीतकर भी जीवित छोड़ दिया ॥ १० ॥

यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम्।
कथंचिद् विरथं कृत्वा यत् त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत्।

'परंतु तूने रणभूमिमें युद्धपरायण महाबली भीमसेनको दैवेच्छासे किसी प्रकार रथहीन करके जो उनके प्रति कठोर बातें कही थीं, यह तेरा महान् अधर्म है। नीच मनुष्य वैसा कार्य करते हैं ॥ ११½ ॥

नारिं जित्वातिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः।

'नरश्रेष्ठ शूरवीर सज्जन शत्रुको जीतकर बढ़-बढ़कर बातें

नहीं बनाते, किसीको कटु वचन नहीं कहते और न किसीकी निन्दा ही करते हैं ॥ १२½ ॥

त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत् तद् वदसि सूतज ॥ १३ ॥
बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।

'सूतपुत्र ! तेरी बुद्धि बहुत ओछी है । इसीलिये तू चपलतावश बिना जाँचे-बूझे बहुत-सी न सुननेयोग्य असम्बद्ध बातें बक जाया करता है ॥ १३½ ॥

युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत् सत्यं वचस्तव ।

'तूने युद्धमें संलग्न, श्रेष्ठ व्रतके पालनमें तत्पर, पराक्रमी और शूरवीर भीमसेनके प्रति जो अप्रिय वचन कहा है, तेरा यह कथन ठीक नहीं है ॥ १४½ ॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।

'सारी सेनाओंके देखते-देखते मेरे और श्रीकृष्णके सामने युद्धस्थलमें भीमसेनने तुझे अनेक बार रथहीन कर दिया है ॥ १५½ ॥

न च त्वां परुषं किंचिदुक्तवान् पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥
यस्मात् तु बहु रूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥
तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।

'परंतु उन पाण्डुनन्दन भीमने तुझसे कोई कटु वचन नहीं कहा । तूने जो भीमको बहुत-सी रूखी बातें सुनायी हैं और मेरे परोक्षमें तुमलोगोंने जो मेरे पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युको अन्यायपूर्वक मार डाला है, अपने उस घमंडका तत्काल ही उचित फल तू प्राप्त कर ले ॥ १६-१७½ ॥

त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥
तस्माद् वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः ।

'दुर्मते ! मूढ ! तूने अपने विनाशके लिये अभिमन्युका धनुष काट दिया था, अतः तू मेरेद्वारा भृत्य, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित प्राणदण्ड पानेयोग्य है ॥ १८½ ॥

कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत् ते भयमागतम् ॥ १९ ॥
हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।

'तू अपने सारे कर्तव्य पूर्ण कर ले । तुझे भारी भय आ पहुँचा है । मैं युद्धस्थलमें तेरे देखते-देखते तेरे पुत्र वृषसेनको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥ २० ॥
तांश्च सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ।

'दूसरे भी जो राजा अपनी बुद्धिपर मोह छा जानेके कारण मेरे समीप आ जायँगे, उन सबका संहार कर डालूँगा । इस सत्यको सामने रखकर मैं अपना धनुष छूता (शपथ खाता) हूँ ॥ २०½ ॥

त्वां च मूढाकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् ।

'ओ मूढ ! तुझ अपवित्र बुद्धिवाले अत्यन्त घमंडी सहायकको युद्धस्थलमें धराशायी हुआ देखकर मूर्ख दुर्योधनको भी बड़ा पश्चात्ताप होगा' ॥ २१½ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥
महान् सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।

इस प्रकार अर्जुनके द्वारा कर्णपुत्र वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा होनेपर उस समय वहाँ रथियोंका महान् एवं भयंकर कोलाहल छा गया ॥ २२½ ॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३ ॥
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।

उस महाभयानक तुमुल संग्रामके छिड़ जानेपर मन्द किरणोंवाले भगवान् सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये ॥२३½॥

ततो राजन् हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।

राजन् ! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञासे पार होकर युद्धके मुहानेपर खड़े हुए अर्जुनको हृदयसे लगाकर इस प्रकार कहा—॥ २४½ ॥

दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ।

'विजयशील अर्जुन ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी बड़ी भारी प्रतिज्ञा पूरी कर ली । सौभाग्यसे पापी वृद्धक्षत्र पुत्रसहित मारा गया ॥ २५½ ॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ॥ २६ ॥
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ।

'भारत ! दुर्योधनकी सेनामें पहुँचकर समरभूमिमें देवताओंकी सेना भी शिथिल हो सकती है । जिष्णो ! इस विषयमें कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २६½ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन् पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद् योधयेद् बलम् ।

'पुरुषसिंह ! मैं बहुत सोचनेपर भी तीनों लोकोंमें कहीं तुम्हारे सिवा किसी दूसरे पुरुषको ऐसा नहीं देखता, जो इस सेनाके साथ युद्ध कर सके ॥ २७½ ॥

महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥ २८ ॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।

'धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके लिये बहुत-से महान् प्रभावशाली राजा यहाँ एकत्र हो गये हैं, जिनमेंसे कितने ही तुम्हारे समान या तुमसे भी अधिक बलशाली हैं ॥ २८½ ॥

ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।

'वे भी रणक्षेत्रमें कवच बाँधकर कुपित हो तुम्हारा सामना करनेके लिये आये, परंतु टिक न सके। तुम्हारा बल और पराक्रम रुद्र, इन्द्र तथा यमराजके समान है ॥ २९½ ॥

नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद् रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः।

'युद्धमें कोई भी ऐसा पराक्रम नहीं कर सकता, जैसा कि आज तुमने अकेले ही कर दिखाया है। वास्तवमें तुम शत्रुओं-को संताप देनेवाले हो ॥ ३०½ ॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम्।

'इसी प्रकार सगे-सम्बन्धियोंसहित दुरात्मा कर्णके मारे जानेपर शत्रुओंको जीतने और द्वेषी विपक्षियोंको मार डालने-वाले तुझ विजयी वीरको पुनः बधाई दूँगा' ॥ ३१½ ॥

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात् तव माधव ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा।

तब अर्जुनने उनकी बातोंका उत्तर देते हुए कहा—'माधव! आपकी कृपासे ही मैं इस प्रतिज्ञाको पार कर सका हूँ; अन्यथा इसका पार पाना देवताओंके लिये भी कठिन था ॥ ३२½ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो।
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ॥ ३४ ॥

'केशव! आप जिनके रक्षक हैं, उनकी विजय हो, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपके कृपा-प्रसादसे राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लेंगे। वृष्णिनन्दन! प्रभो! यह आपका ही प्रभाव और आपकी ही विजय है। मधुसूदन! आपकी बधाईके पात्र तो हमलोग सदा ही बने रहेंगे' ॥ ३३-३४ ॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान्।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने धीरे-धीरे घोड़ोंको बढ़ाते हुए उस विशाल एवं क्रूरतापूर्ण संग्रामका दृश्य अर्जुनको दिखाना आरम्भ किया ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद् यशः।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! युद्धमें विजय और सब ओर फैले हुए महान् सुयशकी अभिलाषा रखनेवाले ये शूरवीर भूपाल तुम्हारे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ३६ ॥



विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः।
संछिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३७ ॥

इनके अस्त्र-शस्त्र और आभूषण बिखरे पड़े हैं, घोड़े, रथ और हाथी नष्ट हो गये हैं तथा मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण ये नरेश भारी व्याकुलतामें पड़ गये हैं ॥ ३७ ॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥

कितने ही राजाओंके प्राण चले गये हैं और कितनोंके प्राण अभी नहीं निकले हैं। जिनके प्राण निकल गये हैं, वे नरेश भी अत्यन्त कान्तिसे प्रकाशित होनेके कारण जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३८ ॥

तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥

देखो, यह सारी पृथ्वी उन राजाओंके सुवर्णमय पंख-वाले बाणों, तेज धारवाले नाना प्रकारके शस्त्रों, वाहनों और आयुधोंसे भरी हुई है ॥ ३९ ॥

वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४० ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥

भारत! चारों ओर गिरे हुए कवच, ढाल, हार, कुण्डलयुक्त मस्तक, पगड़ी, मुकुट, माला, चूड़ामणि, वस्त्र, कण्ठसूत्र, बाजूबंद, चमकीले निष्क एवं अन्यान्य विचित्र आभूषणोंसे इस रणभूमिकी बड़ी शोभा हो रही है ॥ ४०-४१ ॥

अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी।

बहुत-से अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, ध्वज, सजावटकी सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धनरज्जु, टूटे-फूटे पहिये, विचित्र धुरे, नाना प्रकारके जुए, जोत, लगाम, धनुष-बाण, हाथीकी रंगीन झूल, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले गलीचे, परिघ, अङ्कुश, शक्ति, भिन्दिपाल, तरकस, शूल, फरसे, प्रास, तोमर, कुन्त, डंडे, शतघ्नी, भुसुण्डी, खड्ग, परशु, मुसल, मुद्गर, गदा, कुणप, सोनेके चाबुक, गजराजोंके घण्टे, नाना प्रकारके हौदे और जीन, माला, भाँति-भाँतिके अलंकार तथा बहुमूल्य वस्त्र रणभूमिमें सब ओर बिखरे पड़े हैं। भरतश्रेष्ठ! इनके द्वारा यह भूमि नक्षत्रोंद्वारा शरद्ऋतुके आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही है ॥ ४२–४७½ ॥

पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम्।

इस पृथ्वीके राज्यके लिये मारे गये ये पृथ्वीपति अपने सम्पूर्ण अंगोंद्वारा प्यारी प्राणवल्लभाके समान इस भूमिका आलिंगन करके इसपर सो रहे हैं ॥ ४८½ ॥

इमांश्च गिरिकूटाभान् नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः।
दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥ ५० ॥
तांश्च बाणहतान् वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ।

वीर! देखो, ये पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले ऐरावत-जैसे हाथी शस्त्रोंद्वारा बने हुए घावोंके छिद्रसे उसी प्रकार अधिकाधिक रक्तकी धारा बहा रहे हैं, जैसे पर्वत अपनी कन्दराओंके मुखसे गेरुमिश्रित जलके झरने बहाया करते हैं। वे बाणोंसे मारे जाकर धरतीपर लोट रहे हैं ॥ ४९-५०½ ॥

हयांश्च पतितान् पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्च निहतेश्वरान्।
छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन् ॥ ५२ ॥

सोनेके जीन एवं साजबाजसे विभूषित इन घोड़ोंको तो देखो, ये भी प्राणशून्य होकर पड़े हैं। ये रथ जिनके स्वामी मारे गये हैं, गन्धर्वनगरके समान दिखायी देते हैं। इनकी ध्वजा, पताका और धुरे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, पहिये नष्ट हो चुके हैं और सारथि भी मार डाले गये हैं ॥ ५१-५२ ॥

निकृत्तकूबरयुगान् भग्नेषाबन्धुरान् प्रभो।
पश्य पार्थ हयान् भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥

प्रभो! इन रथोंके कूबर और जुए खण्डित हो गये हैं। ईषादण्ड टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये हैं और इनकी बन्धन-रज्जुओंकी भी धज्जियाँ उड़ गयी हैं। पार्थ! भूमिपर पड़े हुए इन घोड़ोंको तो देखो, ये विमानके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ ५३ ॥

पत्तींश्च निहतान् वीर शतशोऽथ सहस्रशः।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥

वीर! अपने मारे हुए इन सैकड़ों और हजारों पैदल सैनिकोंको देखो, जो धनुष और ढाल लिये खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो रहे हैं ॥ ५४ ॥

महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान्।
पश्य योधान् महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥

महाबाहो! तुम्हारे बाणोंसे जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, उन योद्धाओंकी दशा तो देखो। उनके बाल धूलमें सन गये हैं और वे अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके सो रहे हैं ॥ ५५ ॥

निपातितद्विपरथवाजिसंकुल-
मसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम्।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं
महीतलं नरवर पश्य दुर्दशम् ॥ ५६ ॥

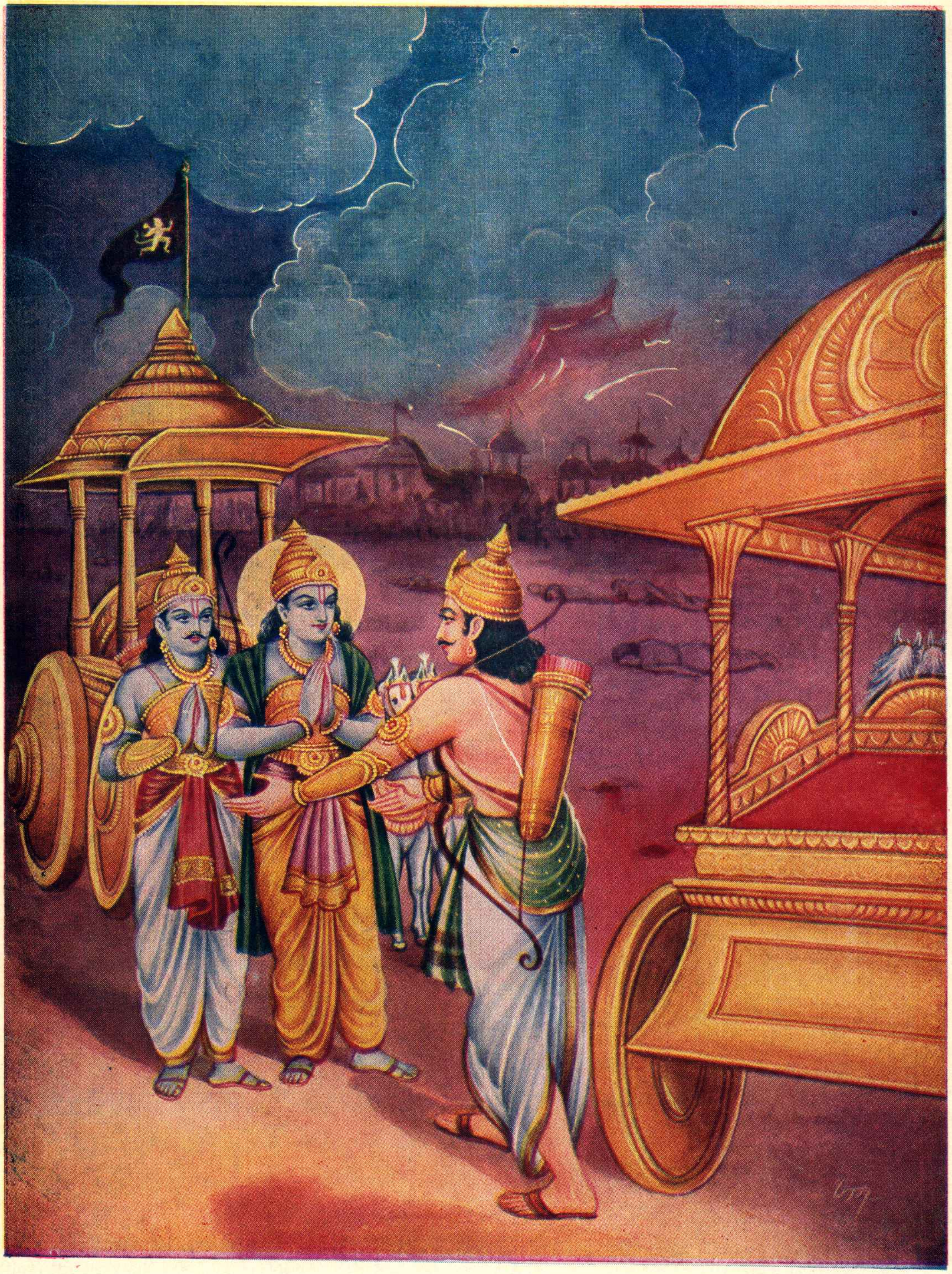
नरश्रेष्ठ! इस भूतलकी दशा देख लो। इसकी ओर दृष्टि डालना कठिन हो रहा है। यह मारे गये हाथियों, चौपट हुए रथों और मरे हुए घोड़ोंसे पट गया है। रक्त, चर्बी और मांससे यहाँ कीच जम गयी है। यह रणभूमि निशाचरों, कुत्तों, भेड़ियों और पिशाचोंके लिये आनन्द-दायिनी बन गयी है ॥ ५६ ॥

इदं महत् त्वय्युपपद्यते प्रभो
रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम्।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे
महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥

प्रभो! समराङ्गणमें यह यशोवर्धक महान् कर्म करनेकी शक्ति तुममें तथा महायुद्धमें दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले देवराज इन्द्रमें ही सम्भव है ॥ ५७ ॥

संजय उवाच

एवं संदर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने।



जयद्रथवधके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलना

स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ जुटे हुए स्वजनोंसहित पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥५८॥

स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा
जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं
निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

शत्रुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस प्रकार रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए अनायास ही अजातशत्रु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके पास पहुँचकर उनसे यह निवेदन किया कि जयद्रथ मारा गया ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ६ श्लोक मिलाकर कुल ६५ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विजयका समाचार सुनाना और युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा अर्जुन, भीम एवं सात्यकिका अभिनन्दन

संजय उवाच

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अर्जुनद्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्णने हर्षपूर्ण हृदयसे उन्हें प्रणाम किया और कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥

'राजेन्द्र! सौभाग्यसे आपका अभ्युदय हो रहा है। नरश्रेष्ठ! आपका शत्रु मारा गया। आपके छोटे भाईने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली, यह महान् सौभाग्यकी बात है' ॥

स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरंजयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥
पर्यष्वजत् तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।

भारत! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले राजा युधिष्ठिर हर्षमें भरकर अपने रथसे कूद पड़े और आनन्दके आँसू बहाते हुए उन्होंने उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको हृदयसे लगा लिया ॥ ३½ ॥

प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥
अब्रवीद् वासुदेवं च पाण्डवं च धनंजयम् ।

फिर उनके कमलके समान कान्तिमान् सुन्दर मुखपर हाथ फेरते हुए वे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ४½ ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥

'कमलनयन कृष्ण! जैसे तैरनेकी इच्छावाला पुरुष समुद्रका पार नहीं पाता, उसी प्रकार आपके मुखसे यह प्रिय समाचार सुनकर मेरे हर्षकी सीमा नहीं रह गयी है। बुद्धिमान् अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया है ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।
दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥

'आज सौभाग्यवश संग्रामभूमिमें मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हुआ देखता हूँ। यह बड़े हर्षकी बात है कि पापी नराधम सिंधुराज जयद्रथ मारा गया ॥

कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण! गोविन्द! सौभाग्यवश आपके द्वारा सुरक्षित हुए अर्जुनने पापी जयद्रथको मारकर मुझे महान् हर्ष प्रदान किया है ॥ ८ ॥

किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥ १० ॥

'परंतु जिनके आप आश्रय हैं, उन हमलोगोंके लिये विजय और सौभाग्यकी प्राप्ति अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है। मधुसूदन! सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कहीं कुछ भी दुष्कर नहीं है। गोविन्द! हम आपकी कृपासे शत्रुओंपर निश्चय ही विजय पायेंगे ॥

स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥
सुरैरिवासुरवधे शक्रं शक्रानुजाहवे ।

'उपेन्द्र! आप सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय और हित-साधनमें लगे हुए हैं। हमलोगोंने आपका ही आश्रय लेकर शस्त्रोंद्वारा युद्धकी तैयारी की है। ठीक उसी तरह, जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेकर युद्धमें असुरोंके वधका उद्योग करते हैं ॥ ११½ ॥

असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।

'जनार्दन ! आपकी ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे इस अर्जुनने यह देवताओंके लिये भी असम्भव कर्म कर दिखाया है॥

बाल्यात् प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।
तदैवाज्ञासिषं शत्रून् हतान् प्राप्तां च मेदिनीम् ॥ १४ ॥

'श्रीकृष्ण ! बाल्यावस्थासे ही आपने जो बहुत-से अलौकिक, दिव्य एवं महान् कर्म किये हैं, उन्हें जबसे मैंने सुना है, तभीसे यह निश्चितरूपसे जान लिया है कि मेरे शत्रु मारे गये और मैंने भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लिया॥१३-१४॥

त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान् सहस्रशः ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! आपकी कृपासे प्राप्त हुए पराक्रमद्वारा इन्द्र सहस्रों दैत्योंका संहार करके देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ १५ ॥

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६ ॥

'वीर हृषीकेश ! आपके ही प्रसादसे यह स्थावर-जङ्गम-रूप जगत् अपनी मर्यादामें स्थित रहकर जप और होम आदि सत्कर्मोंमें संलग्न होता है ॥ १६ ॥

एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत् तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् प्राप्तं नरोत्तम ॥ १७ ॥

'महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! पहले यह सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो अन्धकारमें विलीन हो गया था । फिर आपकी ही कृपादृष्टिसे यह वर्तमान रूपमें उपलब्ध हुआ है ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥

'जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले आप अविनाशी परमात्मा हृषीकेशका दर्शन पा जाते हैं, वे कभी मोहके वशीभूत नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९ ॥

'आप पुराण पुरुष, परमदेव, देवताओंके भी देवता, देवगुरु एवं सनातन परमात्मा हैं । जो लोग आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते हैं ॥ १९ ॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥

'हृषीकेश ! आप आदि-अन्तसे रहित विश्व-विधाता और अविकारी देवता हैं । जो आपके भक्त हैं, वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं ॥ २० ॥

परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥

'आप परम पुरातन पुरुष हैं । परसे भी पर हैं । आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले पुरुषको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥

'चारों वेद जिनके यशका गान करते हैं, जो सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं सर्वोत्तम ऐश्वर्य (कल्याण) प्राप्त करूँगा ॥ २२ ॥

परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर ।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥

'पुरुषोत्तम ! आप परमेश्वर हैं । पशु, पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं । 'परमेश्वर' कहे जानेवाले इन्द्रादि लोकपालोंके भी स्वामी हैं । सर्वेश्वर ! जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आप ही ईश्वर हैं । आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव ।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन् पृथुलोचन ॥ २४ ॥

'विशाल नेत्रोंवाले माधव ! आप ईश्वरोंके भी ईश्वर और शासक हैं । प्रभो ! आपका अभ्युदय हो । सर्वात्मन् ! आप ही सबके उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं ॥ २४ ॥

धनंजयसखा यश्च धनंजयहितश्च यः ।
धनंजयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥

'जो अर्जुनके मित्र, अर्जुनके हितैषी और अर्जुनके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेकर मनुष्य सुखी होता है ॥ २५ ॥

मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवानघ ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान् मुनिः ॥ २६ ॥

'निष्पाप श्रीकृष्ण ! प्राचीनकालके महर्षि मार्कण्डेय आपके चरित्रको जानते हैं । उन मुनिश्रेष्ठने पहले (वनवासके समय) आपके प्रभाव और माहात्म्यका मुझसे वर्णन किया था॥२६॥

असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥ २७ ॥

'असित, देवल, महातपस्वी नारद तथा मेरे पितामह व्यासने आपको ही सर्वोत्तम विधि बताया है ॥ २७ ॥

त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत् तपः ।
त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्र्यं कारणं जगतस्तथा ॥ २८ ॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ॥ २९ ॥

'आप ही तेज, आप ही परब्रह्म, आप ही सत्य, आप ही महान् तप, आप ही श्रेय, आप ही उत्तम यश और

आप ही जगत्‌के कारण हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्‌की सृष्टि की है और प्रलयकाल आनेपर यह पुनः आपहीमें लीन हो जाता है ॥२८-२९॥

अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते।
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ३० ॥
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम्।

'जगत्पते! वेदवेत्ता पुरुष आपको आदि-अन्तसे रहित, दिव्य-स्वरूप, विश्वेश्वर, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त तथा विश्वतोमुख आदि नामोंसे पुकारते हैं॥

अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ॥ ३१ ॥
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम्।
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम्।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२ ॥

'आपका रहस्य गूढ़ है। आप सबके आदि कारण और इस जगत्‌के स्वामी हैं। आप ही परमदेव, नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि तथा मुमुक्षुओंके परम आश्रय भगवान् विष्णु भी आप ही हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको देवता भी नहीं जानते हैं। आप ही परम पुराण-पुरुष तथा पुराणोंसे भी परे हैं ॥ ३१-३२ ॥

एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च।
अतीतभूतभव्यानां संख्यातात्र न विद्यते ॥ ३३ ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः।
यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ॥ ३४ ॥

'आपके ऐसे-ऐसे गुणों तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य-कालमें होनेवाले कर्मोंकी गणना करनेवाला इस भूलोकमें या स्वर्गमें भी कोई नहीं है। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम सब लोग आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय हैं। हमें आप सर्वगुणसम्पन्न सुहृद्‌के रूपमें प्राप्त हुए हैं' ॥ ३३-३४ ॥

इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर महायशस्वी भगवान् जनार्दनने उनके कथनके अनुरूप इस प्रकार उत्तर दिया—॥

भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥

'धर्मराज! आपकी उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुता तथा सरलतासे ही पापी जयद्रथ मारा गया है ॥ ३६ ॥

अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहनज्जिष्णुर्जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

'पुरुषसिंह! आपने जो निरन्तर शुभ-चिन्तन किया है, उसीसे सुरक्षित हो अर्जुनने सहस्रों योद्धाओंका संहार करके जयद्रथका वध किया है ॥ ३७ ॥

कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासम्भ्रमेऽपि च।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥

'अस्त्रोंके ज्ञान, बाहुबल, स्थिरता, शीघ्रता और अमोघ-बुद्धिता आदि गुणोंमें कहीं कोई भी कुन्तीकुमार अर्जुनकी समता करनेवाला नहीं है ॥ ३८ ॥

तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ! इसीलिये आज आपके इस छोटे भाई अर्जुनने संग्राममें शत्रुसेनाका संहार करके सिंधुराजका सिर काट लिया है' ॥ ३९ ॥

ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ४० ॥

प्रजानाथ! तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया और उनका मुँह पोंछकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—॥ ४० ॥

अतीव सुमहत् कर्म कृतवानसि फाल्गुन।
असह्यं चाविषह्यं च देवैरपि सवासवैः ॥ ४१ ॥

'फाल्गुन! आज तुमने बड़ा भारी कर्म कर दिखाया। इसका सम्पादन करना अथवा इसके भारको सह लेना इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी असम्भव था ॥ ४१ ॥

दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चासि शत्रुहन्।
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥

'शत्रुसूदन! आज तुम अपने शत्रुको मारकर प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये। यह सौभाग्यकी बात है। हर्षका विषय है कि तुमने जयद्रथको मारकर अपनी यह प्रतिज्ञा सत्य कर दिखायी' ॥ ४२ ॥

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥ ४३ ॥

महायशस्वी धर्मराज राजा युधिष्ठिरने निद्राविजयी अर्जुनसे ऐसा कहकर उनकी पीठपर पवित्र सुगन्धसे युक्त अपना हाथ फेरा ॥ ४३ ॥

एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ४४ ॥

उनके ऐसा कहनेपर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय उन पृथ्वीपति नरेशसे इस प्रकार कहा—॥४४॥

तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः।
उत्तीर्णं चापि सुमहद् धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥

'महाराज! पापी राजा जयद्रथ आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गया है तथा रणभूमिमें दुर्योधनकी विशाल सेना-से पार पाना भी आपकी कृपासे ही सम्भव हुआ है ॥ ४५ ॥

हन्यन्ते निहताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च भारत।

तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥

'भारत ! शत्रुसूदन ! ये सारे कौरव आपके क्रोधसे ही नष्ट होकर मारे गये हैं, मारे जाते हैं और भविष्यमें भी मारे जायँगे ॥ ४६ ॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥

'क्रोधपूर्ण दृष्टिपात मात्रसे विरोधीको दग्ध कर देनेवाले आप-जैसे वीरको कुपित करके दुर्बुद्धि दुर्योधन अपने मित्रों और बन्धुओंके साथ समरभूमिमें प्राणोंका परित्याग कर देगा॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४८ ॥

'जिनपर विजय पाना पहले देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, वे कुरुकुलके पितामह भीष्म आपके क्रोधसे ही दग्ध होकर इस समय बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ४८ ॥

दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुसूदन ।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥

'शत्रुसूदन पाण्डुनन्दन ! आप जिनपर कुपित हैं, उनके लिये युद्धमें विजय दुर्लभ है । वे निश्चय ही मृत्युके वशमें हो गये हैं ॥ ४९ ॥

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च।
अचिरात् तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद॥५०॥

'दूसरोंको मान देनेवाले नरेश ! जिनपर आपका क्रोध हुआ है, उनके राज्य, प्राण, सम्पत्ति, पुत्र तथा नाना प्रकारके सौख्य शीघ्र नष्ट हो जायँगे ॥ ५० ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ५१ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर ! सदा राजधर्मके पालनमें तत्पर रहनेवाले आपके कुपित होनेपर मैं कौरवोंको पुत्र, पशु तथा बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट हुआ ही मानता हूँ' ॥

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः ।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥
क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यैः परिवारितौ ।
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ॥ ५३ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी।

तदनन्तर, बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि अपने ज्येष्ठ गुरु युधिष्ठिरको प्रणाम करके भूमिपर खड़े हो गये । पाञ्चालोंसे घिरे हुए उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े सामने खड़े देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भीम और सात्यकि दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ ५२-५३½ ॥

दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥५४॥
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।

वे बोले—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम दोनों शूरवीरोंको शत्रुसेनाके समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ । वह सैन्यसागर द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके कारण दुर्द्धर्ष है और कृतवर्मा-जैसे मगरोंका वासस्थान बना हुआ है ॥ ५४½ ॥

दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥५५॥
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे ।

'युद्धमें सारे भूपाल पराजित हो गये और संग्राम-भूमिमें मैं तुम दोनोंको विजयी देख रहा हूँ—यह बड़े हर्षका विषय है॥

दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥
दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम् ।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥

'हमारे सौभाग्यसे ही आचार्य द्रोण और महाबली कृतवर्मा युद्धमें परास्त हो गये । भाग्यसे ही कर्ण भी तुम्हारे बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें पराभवको पहुँच गया । नरश्रेष्ठ वीरो ! तुम दोनोंने राजा शल्यको भी युद्धसे विमुख कर दिया॥५६-५७॥

दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥

'रथियोंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें कुशल तुम दोनों वीरोंको मैं पुनः रणभूमिसे सकुशल लौटा हुआ देख रहा हूँ—यह मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात है ॥ ५८ ॥

मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥

'मेरे प्रति गौरवसे बँधकर मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले तुम दोनों वीरोंको मैं सैन्य-समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ, यह सौभाग्यका विषय है ॥ ५९ ॥

समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ६० ॥

'तुम दोनों वीर मेरे कथनके अनुरूप ही युद्धकी श्लाघा रखनेवाले तथा समराङ्गणमें पराजित न होनेवाले हो । सौभाग्यसे मैं तुम दोनोंको यहाँ सकुशल देख रहा हूँ' ॥६०॥

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद् बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥

राजन् ! पुरुषसिंह सात्यकि और भीमसेनसे ऐसा कहकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने उन दोनोंको हृदयसे लगा लिया और वे हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ६१ ॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद् विशाम्पते ।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पाण्डवोंकी सारी सेनाने युद्धस्थलमें प्रसन्न एवं उत्साहित होकर संग्राममें ही मन लगाया ६२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्याकुल हुए दुर्योधनका खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना

संजय उवाच

सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर आपका पुत्र दुर्योधन बहुत दुखी हो गया। उसके मुँहपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। शत्रुओंको जीतनेका उसका सारा उत्साह जाता रहा॥ १॥

दुर्मना निःश्वसन् दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात्॥ २॥

जिसके दाँत तोड़ दिये गये हैं, उस दुष्ट सर्पके समान वह मन-ही-मन दुखी हो लंबी साँस खींचने लगा। सम्पूर्ण जगत्‌का अपराध करनेवाले आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा हुई॥

दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे॥ ३॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः।

युद्धस्थलमें अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिके द्वारा अपनी सेनाका अत्यन्त घोर संहार हुआ देखकर वह दीन, दुर्बल और कान्तिहीन हो गया। उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये ३½

अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते॥ ४॥
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष॥ ५॥

माननीय नरेश! उसे यह निश्चय हो गया कि 'इस भूतलपर अर्जुनके समान कोई दूसरा योद्धा नहीं है। समराङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनके सामने न द्रोण, न कर्ण, न अश्वत्थामा और न कृपाचार्य ही ठहर सकते हैं'॥ ४-५॥

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान् मम महारथान्।
अवधीत् सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत्॥ ६॥

वह सोचने लगा कि 'आजके युद्धमें अर्जुनने हमारे सभी महारथियोंको जीतकर सिंधुराजका वध कर डाला, किंतु कोई भी उन्हें समराङ्गणमें रोक न सका॥ ६॥

सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद् बलम्।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरंदरः॥ ७॥

'कौरवोंकी यह विशाल सेना अब सर्वथा नष्टप्राय ही है। साक्षात् देवराज इन्द्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकते॥ ७॥

यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः॥ ८॥

'जिसका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये शस्त्र-संग्रहकी चेष्टा की, वह कर्ण भी युद्धस्थलमें परास्त हो गया और जयद्रथ भी मारा ही गया॥ ८॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम्।
तृणवत् तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि॥ ९॥

'जिसके पराक्रमका आश्रय लेकर मैंने संधिकी याचना करनेवाले श्रीकृष्णको तिनकेके समान समझा था, वह कर्ण युद्धमें पराजित हो गया'॥ ९॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम्।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ॥ १०॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! सम्पूर्ण जगत्‌का अपराध करनेवाला आपका पुत्र जब इस प्रकार सोचते-सोचते मन-ही-मन बहुत खिन्न हो गया, तब आचार्य द्रोणका दर्शन करनेके लिये उनके पास गया॥ १०॥

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत्।
परान् विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान् निमज्जतः॥ ११॥

तदनन्तर वहाँ उसने कौरवोंके महान् संहारका वह सारा समाचार कहा और यह भी बताया कि शत्रु विजयी हो रहे हैं और महाराज धृतराष्ट्रके सभी पुत्र विपत्तिके समुद्रमें डूब रहे हैं॥ ११॥

दुर्योधन उवाच

पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम्॥ १२॥

दुर्योधन बोला—आचार्य! जिनके मस्तकपर विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया गया था, उन राजाओंका यह महान् संहार देखिये। मेरे शूरवीर पितामह भीष्मसे लेकर अबतक कितने ही नरेश मारे गये॥ १२॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते॥ १३॥

व्याधों-जैसा बर्ताव करनेवाला यह शिखण्डी भीष्मको मारकर मन-ही-मन उत्साहसे भरा हुआ है और समस्त पाञ्चाल सैनिकोंके साथ सेनाके मुहानेपर खड़ा है॥ १३॥

अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः॥ १४॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम्।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम्॥ १५॥

सव्यसाची अर्जुनने मेरी सात अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके आपके दूसरे दुर्धर्ष शिष्य राजा जयद्रथको भी मार डाला है। मुझे विजय दिलानेकी इच्छा रखनेवाले मेरे

जो-जो उपकारी सुहृद् युद्धमें प्राण देकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं, उनका ऋण मैं कैसे चुका सकूँगा ? ॥ १४-१५ ॥

ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः ।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥

जो भूमिपाल मेरे लिये इस भूमिको जीतना चाहते थे, वे स्वयं भूमण्डलका ऐश्वर्य त्यागकर भूमिपर सो रहे हैं ॥ १६ ॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् ।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥

मैं कायर हूँ, अपने मित्रोंका ऐसा संहार कराकर हजारों अश्वमेध यज्ञोंसे भी अपनेको पवित्र नहीं कर सकता ॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः ।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥

हाय ! मुझ लोभी तथा धर्मनाशक पापीके लिये युद्धके द्वारा विजय चाहनेवाले मेरे मित्रगण यमलोक चले गये ॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः ।
विवरं नाशकद् दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥

मुझ आचारभ्रष्ट और मित्रद्रोहीके लिये राजाओंके समाजमें यह पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती, जिससे मैं उसीमें समा जाऊँ ॥ १९ ॥

योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् ।
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥

मेरे पितामह भीष्म राजाओंके बीच युद्धस्थलमें मारे गये और अब खूनसे लथपथ होकर बाणशय्यापर पड़े हैं; परंतु मैं उनकी रक्षा न कर सका ॥ २० ॥

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् ।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ २१ ॥

ये परलोक-विजयी दुर्धर्ष वीर भीष्म यदि मैं उनके पास जाऊँ तो मुझ नीच, मित्रद्रोही तथा पापात्मा पुरुषसे क्या कहेंगे ? ॥ २१ ॥

जलसंधं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥

आचार्य ! देखिये तो सही, मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़कर राज्य दिलानेको उद्यत हुए महाधनुर्धर शूरवीर महारथी जलसंधको सात्यकिने मार डाला ॥ २२ ॥

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुषमेव च ।
अन्यान् बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २३ ॥

काम्बोजराज, अलम्बुष तथा अन्यान्य बहुत-से सुहृदोंको मारा गया देखकर भी अब मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २३ ॥

व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः ।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान् मम ॥ २४ ॥
तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परंतप ।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जो युद्धसे विमुख न होनेवाले शूरवीर सुहृद् मेरे लिये जूझते और मेरे शत्रुओंको जीतनेके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करते हुए मारे गये हैं, उनका अपनी शक्तिभर ऋण उतारकर आज मैं यमुनाके जलसे उन सभीका तर्पण करूँगा ॥ २४-२५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर ।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥
निहत्य तान् रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह ।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥२७॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! आज मैं अपने यज्ञ-यागादि तथा कुँआ, बावली बनवाने आदि शुभ कर्मोंकी, पराक्रमकी तथा पुत्रोंकी शपथ खाकर आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं पाण्डवोंके सहित समस्त पाञ्चालोंको युद्धमें मारकर ही शान्ति पाऊँगा अथवा मेरे वे सुहृद् युद्धमें मरकर जिन लोकोंमें गये हैं, उसीमें मैं भी चला जाऊँगा ॥ २६-२७ ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥

वे पुरुषशिरोमणि सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा ॥ २८ ॥

न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः ।
श्रेयो हि पाण्डून् मन्यन्ते न तथास्मान् महाभुज ॥२९॥

महाबाहो ! इस समय जो मेरे सहायक हैं, वे अरक्षित होनेके कारण हमारी सहायता करना नहीं चाहते हैं। वे जैसा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, वैसा हमलोगोंका नहीं ॥२९॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसंधेन संयुगे ।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥

युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ भीष्मने स्वयं ही अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी इसलिये उपेक्षा करते हैं कि अर्जुन आपके प्रिय शिष्य हैं ॥ ३० ॥

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः ।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥

इसलिये हमारी विजय चाहनेवाले सभी योद्धा मारे गये। इस समय तो मैं केवल कर्णको ही ऐसा देखता हूँ, जो सच्चे हृदयसे मेरी विजय चाहता है ॥ ३१ ॥

यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः ।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मित्रको ठीक-ठीक पहचाने बिना ही उसे मित्रके कार्यमें नियुक्त कर देता है, उसका वह काम बिगड़ जाता है ॥ ३२ ॥

तादृग् रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः ।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥ ३३ ॥

मेरे परम सुहृद् कहलानेवालोंने मोहवश धन (राज्य) चाहनेवाले मुझ लोभी, पापी और कुटिलके इस कार्यको उसी प्रकार चौपट कर दिया है ॥ ३३ ॥

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥

जयद्रथ और सोमदत्तकुमार भूरिश्रवा मारे गये। अभीषाह, शूरसेन, शिवि तथा वसातिगण भी चल बसे ॥ ३४ ॥

सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥

वे नरश्रेष्ठ सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं आज मैं भी जाऊँगा ॥ ३५ ॥

न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान् ।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥ ३६ ॥

उन पुरुषरत्न मित्रोंके बिना अब मेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। आप हम पाण्डुपुत्रोंके आचार्य हैं, अतः मुझे जानेकी आज्ञा दें ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका अनुतापविषयक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुर्योधनको उत्तर और युद्धके लिये प्रस्थान

धृतराष्ट्र उवाच

सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद् वो मनस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात! समराङ्गणमें सव्यसाची अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके तथा सात्यकिद्वारा भूरिश्रवाके मारे जानेपर उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई?

दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि ।
किमुक्तवान् परं तस्मै तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय! दुर्योधनने जब कौरव-सभामें द्रोणाचार्यसे वैसी बातें कहीं, तब उन्होंने उसे क्या उत्तर दिया? यह मुझे बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

निष्टानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत ।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भारत! सिंधुराज जयद्रथ तथा भूरिश्रवाको मारा गया देखकर आपकी सेनाओंमें महान् आर्तनाद होने लगा ॥ ३ ॥

मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे ।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

वे सब लोग आपके पुत्र दुर्योधनकी उस सारी मन्त्रणाका अनादर करने लगे, जिससे सैकड़ों क्षत्रिय-शिरोमणि कालके गालमें चले गये ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु तद् वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः ।
मुहूर्तमिव तद् ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

आपके पुत्रका पूर्वोक्त वचन सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन दुखी हो उठे। उन्होंने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर अत्यन्त आर्तभावसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

द्रोण उवाच

दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि ।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन! तुम क्यों इस प्रकार अपने वचनरूपी बाणोंसे मुझे छेद रहे हो? मैं तो सदासे ही कहता आया हूँ कि सव्यसाची अर्जुन युद्धमें अजेय हैं॥

एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे ।
यच्छिखण्ड्यवधीद् भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥७॥

कुरुनन्दन! अर्जुनको तो केवल इसी बातसे समझ लेना चाहिये था कि उनके द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने भी युद्धके मैदानमें भीष्मको मार डाला ॥ ७ ॥

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः ।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥

जो देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य थे, उन्हें युद्धमें मारा गया देख मैंने उसी समय यह जान लिया कि यह कौरवसेना अब नहीं रह सकेगी ॥ ८ ॥

यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि ।
तस्मिन् निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥

हमलोग जिन्हें तीनों लोकोंके पुरुषोंमें सबसे अधिक शूरवीर मानते थे, उन शौर्यसम्पन्न भीष्मके मारे जानेपर हम दूसरोंका क्या भरोसा करें? ॥ ९ ॥

यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अक्षान् न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥१०॥

द्यूतक्रीड़ाके समय विदुरजीने तुमसे कहा था कि 'तात! कौरव-सभामें शकुनि जिन पासोंको फेंक रहा है, उन्हें पासे न समझो, वे किसी दिन शत्रुओंको संताप देनेवाले तीखे बाण बन सकते हैं' ॥ १० ॥

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११॥

परंतु वत्स ! उस समय विदुरजीकी कही हुई बातोंको तुमने कुछ नहीं समझा। तात ! वे ही पासे ये अर्जुनके चलाये हुए बाण बनकर हमें मार रहे हैं ॥ ११ ॥

यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत्।
तस्यावमानाद् वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव ॥ १३ ॥

दुर्योधन! विदुरजी धीर हैं, महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने तुम्हारे कल्याणके लिये जो मङ्गलकारक वचन कहे थे और जिन्हें तुमने विजयके उल्लासमें अनसुना कर दिया था, उनके उन वचनोंके अनादरसे ही तुम्हारे लिये यह घोर महासंहार प्राप्त हुआ है ॥ १२-१३ ॥

योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो नचिरादिव ॥ १४ ॥

जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रोंके हितकर वचनकी अवहेलना करके मनमाना बर्ताव करता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम्।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत्।
नो चेत् पापं परे लोके त्वमच्र्छेथास्ततोऽधिकम् ॥ १६॥

इसके सिवा तुमने हमलोगोंके सामने ही जो द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया, वह अपमान उसके योग्य नहीं था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है और सम्पूर्ण धर्मोंका निरन्तर पालन करती है। गान्धारीनन्दन! द्रौपदीके अपमानरूपी तुम्हारे अधर्मका ही यह महान् फल प्राप्त हुआ है कि तुम्हारे दलका विनाश हो रहा है। यदि यहाँ यह फल नहीं मिलता तो परलोकमें तुम्हें उस पापका इससे भी अधिक दण्ड भोगना पड़ता ॥ १५-१६ ॥

यच्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह।
प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥

इतना ही नहीं, तुमने पाण्डवोंको जूएमें बेईमानीसे जीतकर और मृगचर्ममय वस्त्र पहनाकर उन्हें वनवास दे दिया (इस अधर्मका भी फल तुम्हें भोगना पड़ता है) ।१७।

पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा।
द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥

पाण्डव मेरे पुत्रके समान हैं और वे सदा धर्मका आचरण करते रहते हैं। संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह करे ॥ १८ ॥

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥

तुमने राजा धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे कौरवोंकी सभामें शकुनिके साथ बैठकर पाण्डवोंका यह क्रोध मोल लिया है ॥१९॥

दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥

इस कार्यमें दुःशासनने तुम्हारा साथ दिया है, कर्णसे भी उस क्रोधको बढ़ावा मिला है और विदुरजीके उपदेशकी अवहेलना करके तुमने बारंबार पाण्डवोंके उस क्रोधको बढ़नेका अवसर दिया है ॥ २० ॥

यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम्।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥

तुम सब लोगोंने बड़ी सावधानीसे अर्जुनको घेर लिया था। फिर सब-के-सब पराजित कैसे हो गये? तुमने सिंधुराजको आश्रय दिया था। फिर तुम्हारे बीचमें वह कैसे मारा गया?॥ २१ ॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥

कुरुनन्दन! तुम और कर्ण तो नहीं मर गये थे, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा तो जीवित थे; फिर तुम्हारे रहते सिंधुराजकी मृत्यु क्यों हुई? ॥ २२ ॥

युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥

युद्ध करते हुए समस्त राजा सिंधुराजकी रक्षाके लिये प्रचण्ड तेजका आश्रय लिये हुए थे। फिर वह आपलोगोंके बीचमें कैसे मारा गया? ॥ २३ ॥

मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि।
आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः ॥ २४ ॥

दुर्योधन! राजा जयद्रथ विशेषतः मुझपर और तुमपर ही अर्जुनसे अपनी जीवन-रक्षाका भरोसा किये बैठा था ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात्।
न किंचिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ २५ ॥

तो भी जब अर्जुनसे उसकी रक्षा न की जा सकी, तब मुझे अब अपने जीवनकी रक्षाके लिये भी कोई स्थान दिखायी नहीं देता ॥ २५ ॥

मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे।

पश्याम्यहत्वा पञ्चालान् सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥

मैं धृष्टद्युम्न और शिखण्डीसहित समस्त पाञ्चालोंका वध न करके अपने-आपको धृष्टद्युम्नके पापपूर्ण संकल्पमें डूबता-सा देख रहा हूँ ॥ २६ ॥

तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७ ॥

भारत ! ऐसी दशामें तुम स्वयं सिंधुराजकी रक्षामें असमर्थ होकर मुझे अपने वाग्बाणोंसे क्यों छेद रहे हो ? मैं तो स्वयं ही संतप्त हो रहा हूँ ॥ २७ ॥

सौवर्णं सत्यसंधस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन् युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ भीष्मके सुवर्णमय ध्वजको अब युद्धस्थलमें फहराता न देखकर भी तुम विजयकी आशा कैसे करते हो ? ॥ २८ ॥

मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥

जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके बीच सिंधुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, वहाँ तुम किसके बचनेकी आशा करते हो ? ॥ २९ ॥

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नागात् सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥

पृथ्वीपते ! दुर्धर्ष वीर कृपाचार्य यदि जीवित हैं, यदि सिंधुराजके पथपर नहीं गये हैं तो मैं उनके बल और सौभाग्यकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३० ॥

यत्रापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धरास्तीति तदाहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥

कुरुनन्दन ! नरेश ! जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी युद्धमें नहीं मार सकते थे, दुष्कर कर्म करनेवाले उन्हीं भीष्मको जबसे मैंने तुम्हारे छोटे भाई दुःशासनके देखते-देखते मारा गया देखा है, तबसे मैं यही सोचता हूँ कि अब यह पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें नहीं रह सकती ॥ ३१-३२ ॥

इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥ ३३ ॥

भारत ! वह देखो, पाण्डवों और सृंजयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर इस समय मुझपर चढ़ी आ रही हैं॥३३॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥

दुर्योधन ! अब मैं समस्त पाञ्चालोंको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा । मैं समराङ्गणमें वही कार्य करूँगा, जिससे तुम्हारा हित हो ॥ ३४ ॥

राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३५ ॥

राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामासे जाकर कहना कि 'वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए जैसे भी हो, सोमकोंको जीवित न छोड़े' ॥ ३५ ॥

यच्च पित्रानुशिष्टोऽसि तद् वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥

यह भी कहना कि 'पिताने जो तुम्हें उपदेश दिया है, उसका पालन करो । दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणोंमें स्थिर रहो ॥ ३६ ॥

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

'तुम धर्म, अर्थ और कामके साधनमें कुशल हो । अतः धर्म और अर्थको पीड़ा न देते हुए बारंबार धर्मप्रधान कर्मोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ३७ ॥

चक्षुर्मनोभ्यां संतोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८ ॥

'विनयपूर्ण दृष्टि और श्रद्धायुक्त हृदयसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना, यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार करते रहना । कभी उनका अप्रिय न करना; क्योंकि वे अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी होते हैं' ॥ ३८ ॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥ ३९ ॥

राजन् ! शत्रुसूदन ! अब मैं तुम्हारे वाग्बाणोंसे पीड़ित हो महान् युद्धके लिये शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करता हूँ ॥३९॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥

दुर्योधन ! यदि तुममें शक्ति हो तो सेनाकी रक्षा करना; क्योंकि इस समय क्रोधमें भरे हुए कौरव और सृंजय रात्रिमें भी युद्ध करेंगे ॥ ४० ॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ ४१ ॥

जैसे सूर्य नक्षत्रोंके तेज हर लेते हैं, उसी प्रकार क्षत्रियोंके तेजका अपहरण करते हुए आचार्य द्रोण दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर पाण्डवों और सृंजयोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणवाक्यविषयक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत तथा पुनः युद्धका आरम्भ

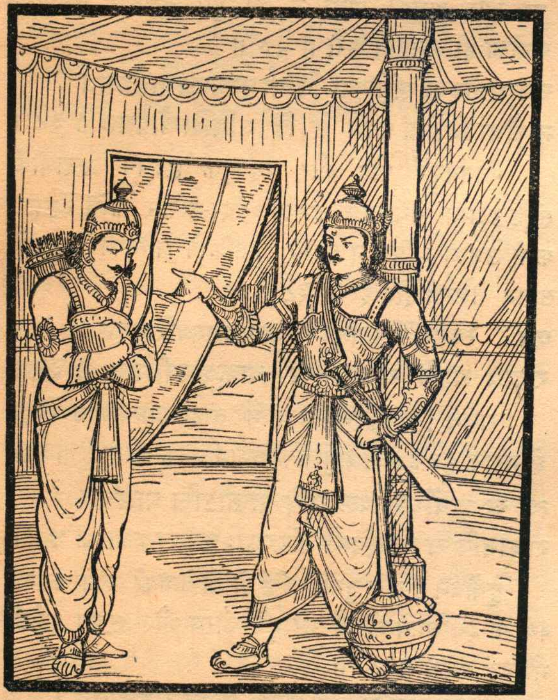
संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर द्रोणाचार्यसे इस प्रकार प्रेरित हो अमर्षमें भरे हुए राजा दुर्योधनने मन-ही-मन युद्ध करनेका ही निश्चय किया ॥ १ ॥

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः।

उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णसे इस प्रकार कहा—'कर्ण! देखो; श्रीकृष्णसहित पाण्डुपुत्र अर्जुनने आचार्यद्वारा



निर्मित व्यूहको, जिसका भेदन करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, भेदकर तुम्हारे और महात्मा द्रोणके युद्धमें तत्पर रहते हुए भी मुख्य-मुख्य योद्धाओंके देखते-देखते सिंधुराज जयद्रथको मार गिराया है ॥ २-३½ ॥

पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥ ४ ॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः।

'राधानन्दन! देखो, जैसे सिंह दूसरे वन्य पशुओंका संहार कर डालता है, उसी प्रकार एकमात्र कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा मारे गये ये भूमण्डलके श्रेष्ठ भूपाल युद्धभूमिमें पड़े हैं ॥ ४½ ॥

मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह।

'मेरे और महात्मा द्रोणके परिश्रमपूर्वक युद्ध करते रहनेपर भी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मेरी सेनाको अल्पमात्रामें ही जीवित छोड़ा है (अधिकांश सेनाको तो मार ही डाला है)॥५½॥

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥ ७ ॥

'यदि इस युद्धमें आचार्य द्रोण अर्जुनको रोकनेकी पूरी चेष्टा करते तो प्रयत्न करनेपर भी वे समराङ्गणमें उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे? सिंधुराजको मारकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये ॥ ६-७ ॥

पश्य राधेय पृथ्वीशान् पृथिव्यां पातितान् बहून्।
पार्थेन निहतान् संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥

'राधाकुमार! संग्रामभूमिमें पार्थके मारे और पृथ्वीपर गिराये हुए इन बहुसंख्यक भूपतियोंको देखो, ये सब-के-सब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी थे ॥ ८ ॥

अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः।
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः॥ ९ ॥

'वीर! यदि बलवान् द्रोणाचार्य पूरा प्रयत्न करके उन्हें व्यूहमें नहीं घुसने देना चाहते तो वे उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे? ॥ ९ ॥

दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः।
ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥ १० ॥

'शत्रुसूदन! किंतु अर्जुन तो महात्मा आचार्य द्रोणको सदा ही परम प्रिय हैं। इसीलिये उन्होंने युद्ध किये बिना ही उन्हें व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया ॥ १० ॥

अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परंतपः।
प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि ॥ ११ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्यने सिंधुराजको अभय-दान देकर भी किरीटधारी अर्जुनको व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया। देखो, मुझमें कितनी गुणहीनता है ॥११॥

यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः ॥ १२ ॥

'यदि उन्होंने पहले ही सिंधुराजको घर जानेकी आज्ञा दे दी होती तो यह इतना बड़ा जनसंहार नहीं होता ॥१२॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति ।
मयानार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं सखे ॥ १३ ॥

'सखे ! जयद्रथ अपनी जीवनरक्षाके लिये घरकी ओर पधार रहे थे, परंतु मुझ अधमने ही द्रोणाचार्यसे अभय पाकर उन्हें रोक लिया ॥ १३ ॥

(रक्षामि सैन्धवं युद्धे नैनं प्राप्स्यति फाल्गुनः ।
मम सैन्यविनाशाय रुद्धो विप्रेण सैन्धवः ॥

'मैं युद्धमें सिंधुराजकी रक्षा करूँगा; अर्जुन उसे नहीं पा सकेंगे' ऐसा कहकर इस ब्राह्मणने मेरी सेनाका संहार करानेके लिये सिंधुराजको रोक लिया ॥

तस्य मे मन्दभाग्यस्य यतमानस्य संयुगे ।
हतानि सर्वसैन्यानि हतो राजा जयद्रथः ॥

'युद्धमें प्रयत्न करनेपर भी मुझ भाग्यहीनकी सारी सेनाएँ नष्ट हो गयीं और राजा जयद्रथ भी मार डाले गये ॥

पश्य योधवरान् कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।
पार्थनामाङ्कितैर्बाणैः सर्वे नीता यमक्षयम् ॥

'कर्ण ! इन सैकड़ों-हजारों श्रेष्ठ योद्धाओंको देखो, ये सब-के-सब अर्जुनके नामसे अङ्कित बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचाये गये हैं ॥

कथमेकरथेनाजौ बहूनां नः प्रपश्यताम् ।
विपन्नः सैन्धवो राजा योधाश्चैव सहस्रशः ॥)

'हम बहुसंख्यक योद्धा देखते ही रह गये और युद्धस्थलमें एकमात्र रथकी सहायतासे अर्जुनने मेरे इन सहस्रों योद्धाओं तथा सिंधुराज जयद्रथको भी मार डाला । यह कैसे सम्भव हुआ ॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे ।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥

'आज युद्धमें हम दुरात्माओंके देखते-देखते मेरे चित्रसेन आदि भाई भीमसेनसे भिड़कर नष्ट हो गये' ॥ १४ ॥

कर्ण उवाच

आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः ।
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥

कर्ण बोला—भाई ! तुम आचार्यकी निन्दा न करो । वह ब्राह्मण तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंका भी मोह छोड़कर युद्ध करता ही है ॥ १५ ॥

यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन ॥ १६ ॥

यदि श्वेतवाहन अर्जुन आचार्य द्रोणका उल्लङ्घन करके सेनामें घुस गये तो इसमें किसी प्रकार आचार्यका कोई सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म दोष नहीं है ॥ १६ ॥

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥ १७ ॥

कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः ।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १८ ॥
प्रवर्षन् निशितान् बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः ।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् ॥ १९ ॥

अर्जुन अस्त्रविद्याके विद्वान्, दक्ष, युवावस्थासे सम्पन्न, शूरवीर, अनेक दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं । वे दिव्यास्त्रोंसे सम्पन्न एवं वानरध्वजसे उपलक्षित रथपर बैठे हुए थे । श्रीकृष्णने उनके घोड़ोंकी बागडोर ले रक्खी थी । वे अभेद्य कवचसे सुरक्षित थे । उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान है ही । ऐसी दशामें पराक्रमी अर्जुन कभी जीर्ण न होनेवाले दिव्य गाण्डीव धनुषको लेकर तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए यदि वहाँ आचार्य द्रोणको लाँघ गये तो वह उनके योग्य ही कर्म था ॥ १७–१९ ॥

आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाक्षमः ।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥

राजन् ! नरेश्वर ! आचार्य द्रोण अब बूढ़े हुए । वे शीघ्रतापूर्वक चलनेमें भी असमर्थ हैं । भुजाओंद्वारा परिश्रमपूर्वक की जानेवाली प्रत्येक चेष्टामें अब उनकी शक्ति उतनी काम नहीं देती है ॥ २० ॥

तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना ॥ २१ ॥

इसीलिये श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन द्रोणाचार्यको लाँघ गये । यही कारण है कि मैं इसमें द्रोणाचार्यका दोष नहीं देख रहा हूँ ॥ २१ ॥

अजय्यान् पाण्डवान् मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे ।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि अस्त्रवेत्ता होनेपर भी द्रोण युद्धमें पाण्डवोंको नहीं जीत सकते, तभी तो उन्हें लाँघकर श्वेतवाहन अर्जुन व्यूहमें घुस गये ॥ २२ ॥

दैवादिष्टेऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् ।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् ।

सुयोधन ! दैवके विधानमें कहीं कोई उलट-फेर नहीं हो सकता, यह मेरी मान्यता है; क्योंकि हमलोग सम्पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे थे, तो भी रणभूमिमें सिंधुराज मारे गये । इस विषयमें दैव (प्रारब्ध) को ही प्रधान माना गया है ॥ २३½ ॥

परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥
हत्वास्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात् करोति नः ।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥

समराङ्गणमें तुम्हारे साथ हमलोग भी विजयके लिये

महान् प्रयत्न करते हैं; छल-कपट तथा पराक्रमद्वारा भी सदा विजयकी चेष्टामें लगे रहते हैं, तो भी दैव हमारे पुरुषार्थको नष्ट करके हमें पीछे ढकेल देता है ॥ २४-२५ ॥

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित् ।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥ २६ ॥

दैव या दुर्भाग्यका मारा हुआ पुरुष कहीं जो भी कर्म करता है, उसके किये हुए प्रत्येक कर्मको दैव उलट देता है ॥ २६ ॥

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत् कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

मनुष्यको सदा उद्योगशील होकर निःशङ्कभावसे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये; परंतु उसकी सिद्धि दैवके ही अधीन है ॥ २७ ॥

निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत ।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ २८ ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् ।
यत्नेन च कृतं तत्तद् दैवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥

भारत ! हमलोगोंने कपट करके कुन्तीकुमारोंको छला, उन्हें मारनेके लिये विषका प्रयोग किया, लाक्षागृहमें जलाया, जूएमें हराया और राजनीतिका सहारा लेकर उन्हें वनमें भी भेजा । इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक किये हुए हमारे उन सभी कार्योंको दैवने नष्ट कर दिया ॥ २८-२९ ॥

युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् ।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ ३० ॥

फिर भी तुम दैवको व्यर्थ समझकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो । तुम्हारे और पाण्डवोंके अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्न करते रहनेपर दैव अपने गन्तव्य मार्गसे जाता रहेगा ॥ ३० ॥

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् ।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥

वीर कुरुश्रेष्ठ ! मुझे तो पाण्डवोंका बुद्धिपूर्वक किया हुआ कहीं कोई सुकृत नहीं दिखायी देता अथवा तुम्हारा बुद्धिहीनतापूर्वक किया हुआ कोई दुष्कृत भी देखनेमें नहीं आता ॥ ३१ ॥

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥

सुकृत हो या दुष्कृत, सबपर दैवका ही अधिकार है; वही उसका फल देनेवाला है । अपना ही पूर्वकृत कर्म दैव है, जो मनुष्योंके सो जानेपर भी जागता रहता है ॥ ३२ ॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव ।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥

पहले तुम्हारे पास बहुत-सी सेनाएँ और बहुत-से योद्धा थे । पाण्डवोंके पास उतने सैनिक नहीं थे । इस अवस्थामें युद्ध आरम्भ हुआ था ॥ ३३ ॥

तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः ।
शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥

तथापि उन अल्पसंख्यकोंने तुम बहुसंख्यक योद्धाओंको क्षीण कर दिया । मैं समझता हूँ, वह दैवका ही कर्म है; जिसने तुम्हारे पुरुषार्थका नाश कर दिया है ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं सम्भाषमाणानां बहु तत् तज्जनाधिप ।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार जब कर्ण और दुर्योधन परस्पर बहुत-सी बातें कर रहे थे, उसी समय युद्धस्थलमें पाण्डवोंकी सेनाएँ दिखायी दीं ॥ ३५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

राजन् ! तदनन्तर आपकी कुमन्त्रणाके अनुसार आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध छिड़ गया, जिसमें रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारम्भे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें पुनः युद्धारम्भविषयक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

(घटोत्कचवधपर्व)

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका युद्ध, दुर्योधन और युधिष्ठिरका संग्राम तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप ।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—जनेश्वर ! आपकी प्रचण्ड गजसेना पाण्डवसेनाका उल्लङ्घन करके सब ओर फैलकर युद्ध करने लगी ॥ १ ॥

पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम् ।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥

पाञ्चाल और कौरव योद्धा महान् यमराज्य एवं परलोककी दीक्षा लेकर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥

एक पक्षके शूरवीर दूसरे पक्षके शूरवीरोंसे भिड़कर बाण, तोमर और शक्तियोंसे समरभूमिमें एक-दूसरेको चोट पहुँचाने और यमलोक भेजने लगे ॥ ३ ॥

रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम्।
प्रावर्तत महद् युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥

परस्पर प्रहार करनेवाले रथियोंका रथियोंके साथ महान् युद्ध होने लगा, जो खूनकी धारा बहानेके कारण अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था ॥ ४ ॥

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम्।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥ ५ ॥

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मदमत्त हाथी परस्पर भिड़कर दाँतोंके प्रहारसे एक-दूसरेको विदीर्ण करने लगे॥

हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ ६ ॥

उस भयंकर युद्धमें महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए घुड़सवार घुड़सवारोंको प्रास, शक्ति और फरसोंद्वारा घायल कर रहे थे ॥ ६ ॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः।
अन्योन्यमार्दयन् राजन् नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥

राजन् ! हाथोंमें शस्त्र लिये सैकड़ों पैदल सैनिक सदा पराक्रमके लिये प्रयत्नशील हो एक दूसरेपर चोट कर रहे थे ॥

गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह ॥ ८ ॥

आर्य ! नाम, गोत्र और कुलोंका परिचय सुनकर ही हमलोग उस समय कौरवोंके साथ युद्ध करनेवाले पाञ्चालोंको पहचान पाते थे ॥ ८ ॥

तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः।
प्रैषयन् परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥

उस समराङ्गणमें वे समस्त योद्धा निर्भय-से विचरते हुए बाण, शक्ति और फरसोंकी मारसे एक दूसरेको परलोक भेज रहे थे ॥ ९ ॥

शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तंगतेऽपि च ॥ १० ॥

राजन् ! सूर्यास्त हो जानेके कारण उन योद्धाओंके छोड़े हुए सहस्रों बाण दसों दिशाओंमें फैलकर अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो पाते थे ॥ १० ॥

तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद् बलम् ॥ ११ ॥

भरतवंशी महाराज ! जब इस प्रकार पाण्डव-सैनिक युद्ध कर रहे थे, उस समय दुर्योधनने उस सेनामें प्रवेश किया॥

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः।
मर्तव्यमिति संचिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥१२ ॥

वह सिंधुराजके वधसे बहुत दुखी हो गया था। अतः मरनेका ही निश्चय करके उसने शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया॥

नादयन् रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम्।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥

अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आपका पुत्र पाण्डवसेनाके सम्मुख आया ॥ १३ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत।
अभवत् सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त सेनाओंका महान् विनाश करनेवाला था॥ १४॥

(धृतराष्ट्र उवाच

द्रोणः कर्णः कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
नावारयन् कथं युद्धे राजानं राजकाङ्क्षिणः ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—द्रोण, कर्ण, कृप तथा सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये तो राजाके चाहनेवालोंमेंसे हैं, इन्होंने उसे युद्धमें जानेसे रोका क्यों नहीं ? ॥

सर्वोपायैर्हि युद्धेषु रक्षितव्यो महीपतिः।
एषा नीतिः परा युद्धे दृष्टा तत्र महर्षिभिः ॥

युद्धमें सभी उपायोंसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये। महर्षियोंने युद्धविषयक इसी सर्वोत्तम नीतिका साक्षात्कार किया है ॥

प्रविष्टे वा मम सुते परेषां वै महद् बलम्।
मामका रथिनां श्रेष्ठाः किमकुर्वत संजय ॥

संजय ! जब मेरा पुत्र शत्रुओंकी विशाल सेनामें घुस गया, उस समय मेरे पक्षके श्रेष्ठ रथियोंने क्या किया ? ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं पुत्रस्य तव भारत।
एकस्य च बहूनां च शृणु मे ब्रुवतोऽद्भुतम् ॥

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके पुत्रके आश्चर्यजनक एवं अद्भुत संग्रामका, जो एकका बहुत-से योद्धाओंके साथ हुआ था, वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥

द्रोणेन वार्यमाणोऽसौ कर्णेन च कृपेण च।
प्राविशत् पाण्डवीं सेनां मकराः सागरं यथा ॥

द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्यके मना करनेपर भी जैसे मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार दुर्योधन पाण्डवसेनामें घुस गया था ॥

किरन्निषुसहस्राणि तत्र तत्र तदा तदा ।
पञ्चालान् पाण्डवांश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥

जहाँ-तहाँ सब ओर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए उसने तीखे बाणोंद्वारा पाञ्चालों और पाण्डवोंको घायल कर दिया ॥

यथोद्यन् विततं सूर्यो रश्मिभिर्नाशयेत् तमः ।
तथा पुत्रस्तव बलं नाशयत् तन्महाबलः ॥)

जैसे उदयकालका सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सर्वत्र फैले हुए अंधकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार आपके महाबली पुत्रने शत्रुसेनाका विनाश कर दिया ॥

यथा मध्यंदिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।

जैसे अपनी किरणोंसे तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर कोई देख नहीं पाता, उसी प्रकार अपने बाणोंकी ज्वालाओंसे शत्रुओंको संताप देते हुए सेनाके मध्यभागमें खड़े आपके पुत्र एवं अपने भाई दुर्योधनकी ओर उस युद्धस्थलमें पाण्डव देख नहीं पाते थे ॥ १५½ ॥

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥
पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।

महामनस्वी दुर्योधनकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक इधर-उधर भागने लगे । अब वे पलायन करनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे । उनमें शत्रुओंको जीतनेका उत्साह नहीं रह गया था ॥ १६½ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः ।

आपके धनुर्धर पुत्रके द्वारा चलाये हुए सुवर्णमय पंख तथा चमकती हुई धारवाले बाणोंसे पीड़ित होकर बहुतेरे पाण्डव सैनिक तुरंत धराशायी हो गये ॥ १७½ ॥

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥
यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! आपके सैनिकोंने रणभूमिमें वैसा पराक्रम नहीं किया था, जैसा कि आपके पुत्र राजा दुर्योधनने किया ॥

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥ १९ ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् फुल्लपङ्कजा ।

जैसे हाथी सब ओरसे खिले हुए कमलपुष्पोंसे सुशोभित पोखरेको मथ डालता है, उसी प्रकार आपके पुत्रने रणभूमिमें पाण्डव-सेनाको मथ डाला ॥ १९½ ॥

क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।

जैसे हवा और सूर्यसे पानी सूख जानेके कारण पद्मिनी हतप्रभ हो जाती है, उसी प्रकार आपके पुत्रके तेजसे तप्त होकर पाण्डव-सेना श्रीहीन हो गयी थी ॥ २०½ ॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

भारत ! आपके पुत्रद्वारा पाण्डवसेनाको मारी गयी देख पाञ्चालोंने भीमसेनको अगुआ बनाकर उसपर आक्रमण किया ॥ २१½ ॥

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ।
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।

उस समय दुर्योधनने भीमसेनको दस, माद्रीकुमारोंको तीन-तीन, विराट और द्रुपदको छः-छः, शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदिदेशके सैनिकोंको बहुत-से तीखे बाण मारे ॥२२-२३½॥

सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥२४॥
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत् ।

फिर सात्यकिको पाँच बाणोंसे घायल करके द्रौपदी-पुत्रोंको तीन-तीन बाण मारे। तत्पश्चात् समरभूमिमें घटोत्कचको घायल करके दुर्योधनने सिंहके समान गर्जना की ॥ २४½॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

उस महायुद्धमें हाथियोंसहित सैकड़ों दूसरे योद्धाओंको क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने अपने भयंकर बाणोंद्वारा उसी प्रकार काट डाला, जैसे यमराज प्रजाका विनाश करते हैं ॥

सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥ २६ ॥
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।

नरेश्वर ! उस संग्राममें आपके पुत्रके चलाये हुए बाणोंकी मार खाकर पाण्डव-सेना इधर-उधर भागने लगी॥२६½॥

तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥
नाशकन् वीक्षितुं राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।

राजन् ! उस महासमरमें तपते हुए सूर्यके समान कुरुराज दुर्योधनकी ओर पाण्डवसैनिक देख भी न सके ॥२७½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत् कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिंदमौ ॥ २९ ॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों कुरुवंशी वीर दुर्योधन

और युधिष्ठिर अपने-अपने स्वार्थके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २९½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।

तब दुर्योधनने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही युधिष्ठिरको घायल कर दिया और एक बाणसे उनका ध्वज भी काट डाला ॥ ३०½ ॥

इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान् नृप ॥ ३१ ॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ।

नरेश्वर ! उन्होंने तीन बाणोंद्वारा महात्मा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरके प्रिय सारथि इन्द्रसेनको उसके ललाटप्रदेशमें चोट पहुँचायी ॥ ३१½ ॥

धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।

फिर दूसरे बाणसे महारथी दुर्योधनने राजा युधिष्ठिरका धनुष भी काट दिया और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३२½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।

तब राजा युधिष्ठिरने कुपित हो पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और बड़े वेगसे कुरुवंशी दुर्योधनको रोका ॥ ३३½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद् धनुः ॥ ३४ ॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।

माननीय नरेश ! ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठ-वाले विशाल धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३४½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥ ३५ ॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे संलग्नाः क्षितिमाविशन् ।

साथ ही, उन्होंने अच्छी तरह चलाये हुए दस पैने बाणों-से दुर्योधनको भी घायल कर दिया। वे सारे बाण दुर्योधनके मर्म-स्थानोंमें लगकर उन्हें विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें समा गये। ३५½

ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम् ।

फिर तो भागे हुए पाण्डव-योद्धा लौट आये और युधिष्ठिरको वैसे ही घेरकर खड़े हो गये, जैसे वृत्रासुरके वधके लिये सब देवता इन्द्रको घेरकर खड़े हुए थे ॥ ३६½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७ ॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वामुञ्चद् युधिष्ठिरः ।

आर्य ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने आपके पुत्र राजा दुर्योधनपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी, अत्यन्त भयंकर तथा अनिवार्य बाण यह कहकर चलाया कि 'हाय ! तुम मारे गये' ॥ ३७½ ॥

स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।

कानोंतक खींचकर चलाये हुए उस बाणसे घायल हो कुरुवंशी दुर्योधन अत्यन्त मूर्च्छित हो गया और रथके पिछले भागमें धम्मसे बैठ गया ॥ ३८½ ॥

ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद् रवो महान् ॥ ३९ ॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४० ॥

आदरणीय राजेन्द्र ! उस समय प्रसन्न हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने 'राजा दुर्योधन मारा गया' ऐसा कहकर चारों ओर अत्यन्त महान् कोलाहल मचाया। वहाँ बाणोंका भयंकर शब्द भी सुनायी दे रहा था ॥ ३९-४० ॥

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ युद्ध-स्थलमें द्रोणाचार्य दिखायी दिये। इधर, राजा दुर्योधनने भी हर्ष और उत्साहमें भरकर सुदृढ धनुष हाथमें ले 'खड़े रहो, खड़े रहो' कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया॥४१½॥

प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४२ ॥
तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् निघ्नन् रश्मिमुचो यथा ॥ ४३ ॥

यह देख विजयाभिलाषी पाञ्चाल सैनिक तुरंत ही उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े; परंतु कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी रक्षाके लिये द्रोणाचार्यने उन सबको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उठाये हुए मेघोंको सूर्यदेव नष्ट कर देते हैं ॥ ४२-४३ ॥

ततो राजन् महानासीत् संग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ४४ ॥

राजन् ! तदनन्तर युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंका महान् संग्राम होने लगा, जिसमें बहुसंख्यक प्राणियोंका संहार हुआ ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रिकालिक युद्धके प्रसंगमें दुर्योधनकी पराजयविषयक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७ श्लोक मिलाकर कुल ५१ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रात्रियुद्धमें पाण्डव-सैनिकोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण और द्रोणाचार्यद्वारा उनका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

यत् तदा प्राविशत् पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम्।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर क्रोधमें भरे हुए बलवान् आचार्य द्रोणने जब वहाँ पाण्डव-सेनामें प्रवेश किया, उस समय रथपर बैठकर सेनाके भीतर प्रवेश करके सब ओर विचरते हुए महाधनुर्धर शूरवीर द्रोणाचार्यको पाण्डवोंने किस प्रकार रोका ? ॥ १-२ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३ ॥

उस महासमरमें बहुसंख्यक शत्रुयोद्धाओंका संहार करनेवाले आचार्य द्रोणके दायें चक्रकी किन लोगोंने रक्षा की तथा किन लोगोंने उनके रथके बायें पहियेकी रखवाली की ? ॥

के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन् वीरा वीरस्य योधिनः।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शात्रवः ॥ ४ ॥

युद्धपरायण वीर रथी आचार्यके पीछे कौन-से वीर थे और शत्रुपक्षके कौन-कौनसे वीर उनके सामने खड़े हुए थे॥

मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम्।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥

मैं तो समझता हूँ शत्रुओंको बहुत देरतक बिना मौसमके ही सर्दी लगने लगी होगी। जैसे शिशिर ऋतुमें गायें सर्दीके मारे काँपने लगती हैं, उसी तरह वे शत्रुसैनिक भी आचार्यके भयसे थर-थर काँपने लगे होंगे ॥ ५ ॥

यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः।
नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥

क्योंकि किसीसे परास्त न होनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंकी सेनामें रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए प्रवेश किया था ॥ ६ ॥

निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण क्रोधमें भरे हुए धूमकेतुके समान प्रकट होकर पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंको दग्ध कर रहे थे; फिर उनकी मृत्यु कैसे हो गयी ? ॥ ७ ॥

संजय उवाच

सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन् ! सायंकाल सिंधुराज जयद्रथका वध करके राजा युधिष्ठिरसे मिलकर कुन्तीकुमार अर्जुन और महाधनुर्धर सात्यकि दोनोंने द्रोणाचार्यपर ही धावा किया ॥

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी पृथक्-पृथक् सेनाओंके साथ तैयार हो शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण किया ॥ ९ ॥

तथैव नकुलो धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि।

इसी तरह बुद्धिमान् नकुल, दुर्जय वीर सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकयराजकुमार तथा मत्स्य और शाल्वदेशके सैनिक अपनी सेनाओंके साथ युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १०½ ॥

द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन् द्रोणमेवाभ्यवर्तत।

राजन् ! पाञ्चाल सैनिकोंसे सुरक्षित धृष्टद्युम्न-पिता राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यका ही सामना किया ॥ ११½ ॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम्।

महाधनुर्धर द्रौपदीकुमार तथा राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेनाओंके साथ महातेजस्वी द्रोणाचार्यकी ही ओर लौट आये ॥ १२½ ॥

प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।

प्रहार करनेमें कुशल छः हजार प्रभद्रक और पाञ्चाल योद्धा भी शिखण्डीको आगे करके द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १३½ ॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम्।

इसी प्रकार पाण्डव-सेनाके अन्य महारथी वीर पुरुषसिंह भी एक साथ द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी ओर ही लौट आये ॥ १४½ ॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५ ॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी।

भरतश्रेष्ठ ! युद्धके लिये उन शूरवीरोंके आ पहुँचनेपर वह रात बड़ी भयंकर हो गयी, जो भीरु पुरुषोंके भयको बढ़ानेवाली थी ॥ १५½ ॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।

राजन् ! वह रात्रि समस्त योद्धाओंके लिये अमङ्गल-कारक, भयंकर, यमराजके पास ले जानेवाली तथा हाथी, घोड़े और मनुष्योंके प्राणोंका अन्त करनेवाली थी ॥ १६½ ॥

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥
न्यवेदयन् भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।

उस घोर रजनीमें सब ओर कोलाहल करती हुई सियारिनें अपने मुँहसे आग उगलती हुई घोर भयकी सूचना दे रही थीं ॥ १७½ ॥

उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।

विशेषतः कौरवसेनामें महान् भयकी सूचना देनेवाले अत्यन्त दारुण उल्लू पक्षी भी दिखायी दे रहे थे ॥ १८½ ॥

ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १९ ॥
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चापि तुरङ्गाणां च ह्रेषितैः ॥ २० ॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर सारी सेनाओंमें रणभेरीकी भारी आवाज, मृदङ्गोंकी ध्वनि, हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने और धरतीपर उनकी टाप पड़नेसे चारों ओर अत्यन्त भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ १९–२०½ ॥

ततः समभवद् युद्धं संध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥
द्रोणस्य च महाराज सृंजयानां च सर्वशः ।

महाराज ! तत्पश्चात् संध्याकालमें समस्त सृंजय-वीरों तथा द्रोणाचार्यका अत्यन्त दारुण संग्राम होने लगा ॥ २१½ ॥

तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ २२ ॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।

सारा जगत् अंधकारसे तथा सेनाद्वारा सब ओर उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण किसीको कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥ २२½ ॥

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः ।

मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके रक्तमें सन जानेके कारण हमें धरतीकी धूल दिखायी नहीं देती थी । हम सब लोगोंपर मोह-सा छा गया था ॥ २३½ ॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४ ॥
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पतताम भूत् ।

जैसे पर्वतपर रातके समय बाँसोंका जंगल जल रहा हो और उन बाँसोंके चटखनेका घोर शब्द सुनायी दे रहा हो, उसी प्रकार शस्त्रोंके आघात-प्रत्याघातसे घोर चटचट शब्द कानोंमें पड़ रहा था ॥ २४½ ॥

मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥
फेत्कारैर्हेषितैः शब्दैः सर्वमेवाकुलं बभौ ।

मृदङ्ग और ढोलोंकी आवाजसे, झाँझ और पटहोंकी ध्वनिसे तथा हाथी-घोड़ोंके फुंकार और हींसनेके शब्दोंसे वहाँका सब कुछ व्याप्त जान पड़ता था ॥ २५½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥ २६ ॥
उन्मत्तमिव तत् सर्वं बभूव रजनीमुखे ।

राजन् ! उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें अपने और पराये-की पहचान नहीं होती थी । उस प्रदोषकालमें सब कुछ उन्मत्त-सा जान पड़ता था ॥ २६½ ॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम् ॥ २७ ॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।

राजेन्द्र ! रक्तकी धाराने धरतीकी धूलको नष्ट कर दिया । सोनेके कवचों और आभूषणोंकी चमकसे अंधकार दूर हो गया ॥ २७½ ॥

ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥
द्यौरिवासीत् सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय रात्रिकालमें मणियों तथा सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित हुई वह कौरवसेना नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान सुशोभित होती थी ॥ २८½ ॥

गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥ २९ ॥
दारुणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता ।

उस सेनाके आसपास सियारोंके समूह अपनी भयंकर बोली बोल रहे थे । शक्तियों तथा ध्वजोंसे सारी सेना व्याप्त थी । कहीं हाथी चिग्घाड़ रहे थे, कहीं योद्धा सिंहनाद कर रहे थे और कहीं एक सैनिक दूसरेको पुकारते तथा ललकारते थे । इन शब्दोंसे कोलाहलपूर्ण हुई वह सेना बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ २९½ ॥

तत्राभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३० ॥
समावृण्वन् दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः ।

थोड़ी देरमें वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला अत्यन्त भयंकर महान् शब्द गूँज उठा । ऐसा जान पड़ता था देवराज इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहट फैल गयी हो । वह शब्द वहाँ सारी दिशाओंमें छा गया था ॥ ३०½ ॥

सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती ॥ ३१ ॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता ।

महाराज ! रातके समय कौरवसेना अपने बाजूबन्द, कुण्डल, सोनेके हार तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रकाशित हो रही थी ॥ ३१½ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।

वहाँ रात्रिमें सुवर्णभूषित हाथी और रथ बिजलीसहित मेघोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ३२½ ॥

ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ।

वहाँ चारों ओर गिरते हुए ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण मूसल, प्रास और पट्टिश आदि अस्त्र आगके अंगारोंके समान प्रकाशित दिखायी देते थे ॥ ३३½ ॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।

युद्ध करनेकी इच्छावाले सैनिकोंने उस अत्यन्त भयंकर सेनामें प्रवेश किया, जो मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी । दुर्योधन उसके लिये पुरवैया हवाके समान था । रथ और हाथी बादलोंके दल थे । रणवाद्योंकी गम्भीर ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी । धनुष और ध्वज बिजलीके समान चमक रहे थे । द्रोणाचार्य और पाण्डव पर्जन्यका काम देते थे । खड्ग, शक्ति और गदाका आघात ही वज्रपात था । बाणरूपी जलकी वहाँ वर्षा होती थी । अस्त्र ही पवनके समान प्रतीत होते थे । सर्दी और गर्मीसे व्याप्त हुई वह अत्यन्त भयंकर उग्र सेना सबको विस्मयमें डालनेवाली और योद्धाओंके जीवनका उच्छेद करनेवाली थी । उससे पार होनेके लिये नौकास्वरूप कोई साधन नहीं था ३४–३६½

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।

महान् शब्दसे मुखरित एवं भयंकर रात्रिका प्रथम पहर बीत रहा था, जो कायरोंको डरानेवाला और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३७½ ॥

रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन् क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।

जब वह अत्यन्त भयंकर और दारुण रात्रियुद्ध चल रहा था, उस समय क्रोधमें भरे हुए पाण्डवों तथा संजयोंने द्रोणाचार्यपर एक साथ धावा किया ॥ ३८½ ॥

ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥
तान् सर्वान् विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।

राजन् ! जो-जो प्रमुख महारथी द्रोणाचार्यके सामने आये, उन सबको उन्होंने युद्धसे विमुख कर दिया और कितनोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३९½ ॥

तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसंघानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥

उस प्रदोषकालमें अकेले द्रोणाचार्यने अपने नाराचोंद्वारा एक हजार हाथी, दस हजार रथ तथा लाखों-करोड़ों पैदल एवं घुड़सवार नष्ट कर दिये ॥ ४०-४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यद्वारा शिबिका वध तथा भीमसेनद्वारा घुस्से और थप्पड़से कलिङ्गराजकुमारका एवं ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद् वै मतिस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अमित तेजस्वी दुर्धर्ष वीर आचार्य द्रोणने जब रोष और अमर्षमें भरकर संजयोंकी सेनामें प्रवेश किया, उस समय तुमलोगोंकी मनोवृत्ति कैसी हुई ? ॥ १ ॥

दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत् प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर जब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने शत्रुसेनामें पदार्पण किया, तब कुन्तीकुमार अर्जुनने क्या किया ? ॥ २ ॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥

सिंधुराज जयद्रथ तथा वीर भूरिश्रवाके मारे जानेपर अपराजित वीर महातेजस्वी द्रोणाचार्य जब पाञ्चालोंकी सेनामें घुसे, उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दुर्धर्ष वीरके प्रवेश कर लेनेपर दुर्योधनने उस अवसरके अनुरूप किस कार्यको मान्यता प्रदान की ॥ ३-४ ॥

के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन् वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥

उन वरदायक वीर विप्रवर द्रोणाचार्यके पीछे-पीछे कौन गये तथा युद्धपरायण शूरवीर आचार्यके पृष्ठभागमें कौन-कौन-से वीर गये ? ॥ ५ ॥

के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे।
मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो।

रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करते हुए कौन-कौन-से वीर आचार्यके आगे खड़े थे। प्रभो! मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित होकर समस्त पाण्डव शिशिर ऋतुमें दुबली-पतली गायोंके समान थर-थर काँपने लगे होंगे॥

प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥

शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महाधनुर्धर पुरुषसिंह द्रोणाचार्य पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश करके कैसे मृत्युको प्राप्त हुए?॥ ७॥

सर्वेषु योधेषु च संगतेषु
रात्रौ समेतेषु महारथेषु।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु
के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥

रात्रिके समय जब समस्त योद्धा और महारथी एकत्र होकर परस्पर जूझ रहे थे और पृथक्-पृथक् सेनाओंका मन्थन हो रहा था, उस समय तुमलोगोंमेंसे किन-किन बुद्धिमानोंकी बुद्धि ठिकाने रह सकी?॥ ८॥

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥

तुम प्रत्येक युद्धमें मेरे रथियोंको हताहत, पराजित तथा रथहीन हुआ बताते हो॥ ९॥

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम्।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत् का मतिस्तदा ॥ १० ॥

जब पाण्डवोंने उन सबको मथकर अचेत कर दिया और वे घोर अन्धकारमें डूब गये, तब मेरे उन सैनिकोंने क्या विचार किया?॥ १०॥

प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च संतुष्टांश्चैव पाण्डवान्।
शंससीहाप्रहृष्टांश्च विप्रष्टांश्चैव मामकान् ॥ ११ ॥

संजय! तुम पाण्डवोंको तो हर्ष और उत्साहसे युक्त, आगे बढ़नेवाले और संतुष्ट बताते हो और मेरे सैनिकोंको दुखी एवं युद्धसे विमुख बताया करते हो॥ ११॥

कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम्।
प्रकाशमभवद् रात्रौ कथं कुरुषु संजय ॥ १२ ॥

सूत! युद्धसे पीछे न हटनेवाले इन कुन्तीकुमारोंके दलमें रातके समय कैसे प्रकाश हुआ और कौरवदलमें भी किस प्रकार उजाला सम्भव हुआ?॥ १२॥

संजय उवाच

रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्तमाने सुदारुणे।
द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥ १३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जब वह अत्यन्त दारुण रात्रियुद्ध चलने लगा, उस समय सोमकोंसहित समस्त पाण्डवोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया॥ १३॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्।
सम्प्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने केकयों और धृष्टद्युम्नके समस्त पुत्रोंको अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया॥

तस्य प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः।
तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥ १५ ॥

भरतवंशी नरेश! जो-जो महारथी उनके सामने आये, उन सबको आचार्यने पितृलोकमें भेज दिया॥ १५॥

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान् भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करते हुए महारथी द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये प्रतापी राजा शिबि क्रोधपूर्वक आये॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम्।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः ॥ १७ ॥

पाण्डवपक्षके उन महारथी वीरको आते देख आचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए दस पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया॥ १७॥

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १८ ॥

तब शिबिने तीस तीखे सायकोंसे बेधकर बदला चुकाया और मुसकराते हुए उन्होंने एक भल्लसे उनके सारथिको मार गिराया॥ १८॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महात्मनः।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने भी महामना शिबिके घोड़ोंको मारकर सारथिका भी वध कर दिया। फिर उनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको धड़से काट लिया॥ १९॥

ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत्।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद् रिपून् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने द्रोणाचार्यको शीघ्र ही दूसरा सारथि दे दिया। जब उस नये सारथिने उनके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली, तब उन्होंने पुनः शत्रुओंपर धावा किया॥ २०॥

कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे।
पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥

उस रणभूमिमें कलिंगराजकुमारने कलिंगोंकी सेना साथ लेकर भीमसेनपर आक्रमण किया। भीमसेनने पहले उसके पिताका वध किया था। इससे उनके प्रति उसका क्रोध बढ़ा हुआ था॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
विशोकं त्रिभिरानर्च्छद् ध्वजमेकेन पत्त्रिणा ॥ २२ ॥

उसने भीमसेनको पहले पाँच बाणोंसे बेधकर पुनः सात बाणोंसे घायल कर दिया। उनके सारथि विशोकको उसने तीन बाण मारे और एक बाणसे उनकी ध्वजा छेद डाली ॥ २२ ॥

कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः।
रथाद् रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥ २३ ॥

क्रोधमें भरे हुए कलिंग देशके उस शूरवीरको कुपित हुए भीमसेनने अपने रथसे उसके रथपर कूदकर मुक्केसे मारा ॥ २३ ॥

तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥२४॥

युद्धस्थलमें बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी मार खाकर कलिंगराजकी सारी हड्डियाँ सहसा चूर-चूर हो पृथक्-पृथक् गिर गयीं ॥ २४ ॥

तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परंतप।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥

परंतप ! कर्ण और उसके भाई भीमसेनके इस पराक्रमको सहन न कर सके। उन्होंने विषधर सर्पोंके समान विषैले नाराचोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर भीमसेन शत्रुके उस रथको त्यागकर दूसरे शत्रु ध्रुवके रथपर जा चढ़े। ध्रुव लगातार बाणोंकी वर्षा कर रहा था। भीमसेनने उसे भी एक मुक्केसे मार गिराया ॥ २६ ॥

स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाभिहतोऽपतत्।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत्।

बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी चोट लगते ही वह धराशायी हो गया। महाराज ! ध्रुवको मारकर महाबली भीमसेन जयरातके रथपर जा पहुँचे और बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ २७½ ॥

जयरातमथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः।

गर्जना करते हुए ही उन्होंने बायें हाथसे जयरातको झटका देकर उसे थप्पड़से मार डाला। फिर वे कर्णके ही सामने जाकर खड़े हो गये ॥ २८½ ॥

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ २९ ॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः।

तब कर्णने पाण्डुनन्दन भीमपर सोनेकी बनी हुई शक्तिका प्रहार किया; परंतु पाण्डुनन्दन भीमने हँसते हुए ही उसे हाथसे पकड़ लिया ॥ २९½ ॥

कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना।

दुर्धर्ष वीर वृकोदरने उस युद्धस्थलमें कर्णपर ही वह शक्ति चला दी; परंतु शकुनिने कर्णपर आती हुई शक्तिको तेल पीनेवाले बाणसे काट डाला ॥ ३०½ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१ ॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम्।

अद्भुत पराक्रमी भीमसेन रणभूमिमें यह महान् पराक्रम करके पुनः अपने रथपर आ बैठे और आपकी सेनाको खदेड़ने लगे ॥ ३१½ ॥

तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥
न्यवारयन् महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान महाबाहु भीमसेनको शत्रुवधकी इच्छासे सामने आते देख आपके महारथी पुत्रोंने बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करते हुए रोका ॥ ३२-३३ ॥

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३४ ॥

तब युद्धस्थलमें हँसते हुए-से भीमसेनने दुर्मदके सारथि और घोड़ोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम्।
यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३६ ॥

तब दुर्मद दुष्कर्णके रथपर जा बैठा। फिर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दोनों भाइयोंने एक ही रथपर आरूढ़ हो युद्धके मुहानेपर भीमसेनपर धावा किया; ठीक उसी तरह, जैसे वरुण और मित्रने दैत्यराज तारकपर आक्रमण किया था ॥ ३५-३६ ॥

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्मद (दुधर्ष)और दुष्कर्ण एक ही रथपर बैठकर भीमसेनको बाणोंसे घायल करने लगे ॥

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम्।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिंदमः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकके देखते-देखते शत्रुदमन पाण्डुपुत्र भीमने वीर दुर्मद और दुष्कर्णके उस रथको लात मारकर धरतीमें धँसा दिया ॥ ३८-३९ ॥

ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥ ४० ॥

फिर आपके बलवान् एवं शूरवीर पुत्र दुर्मद और दुष्कर्णको क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने मुक्केसे मारकर मसल डाला और वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४० ॥

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन्।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥

यह देख कौरव-सेनामें हाहाकार मच गया। भीमसेनको देखकर राजालोग कहने लगे 'ये साक्षात् भगवान् रुद्र ही भीमसेनका रूप धारण करके धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः।
विसंज्ञा वाहयन् वाहान्न च द्वौ सह धावतः ॥४२॥

भारत! ऐसा कहकर सब राजा अचेत होकर अपने वाहनोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन करने लगे। उस समय दो व्यक्ति एक साथ नहीं भागते थे ॥ ४२ ॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे
सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो
युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद् बली ॥ ४३ ॥

तदनन्तर रात्रिके प्रथम प्रहरमें जब कौरवसेना अत्यन्त भयभीत हो इधर-उधर भाग गयी, तब श्रेष्ठ राजाओंने विकसित कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले महाबली भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और बलवान् भीमने राजा युधिष्ठिरका समादर किया ॥ ४३ ॥

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया
युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते
यथान्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् जैसे अन्धकासुरके मारे जानेपर देवताओंने भगवान् शङ्करका स्तवन और पूजन किया था, उसी प्रकार नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट, केकयराजकुमार तथा युधिष्ठिर भी भीमसेनकी विजयसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वृकोदरकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४४ ॥

ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा
रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा
युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥

इसके बाद वरुणपुत्रके समान पराक्रमी आपके सभी पुत्र रोषमें भरकर युद्धकी इच्छासे रथ, पैदल और हाथियोंकी सेना साथ ले महात्मा गुरु द्रोणाचार्यके साथ आये और वेग-पूर्वक भीमसेनको सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

(ततो यमौ द्रुपदसुताः ससैनिका
युधिष्ठिरद्रुपदविराटसात्वताः।
घटोत्कचो जयविजयौ द्रुमो वृकः
ससृञ्जयास्तव तनयानवारयन् ॥)

यह देख नकुल, सहदेव, सैनिकोंसहित द्रुपदपुत्र, युधिष्ठिर, द्रुपद, विराट, सात्यकि, घटोत्कच, जय, विजय, द्रुम, वृक तथा सृंजय योधाओंने आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोका ॥

ततोऽभवत् तिमिरघनैरिवावृते
महाभये भयदमतीव दारुणम्।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं
महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ॥ ४६ ॥

नृपश्रेष्ठ! फिर तो घने अन्धकारसे आवृत महाभयंकर प्रदोषकालमें उन महामनस्वी वीरोंका अत्यन्त दारुण, भयदायक तथा भेड़ियों, गीधों और कौवोंको आनन्दित करनेवाला अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४७ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्त और सात्यकिका युद्ध, सोमदत्तकी पराजय, घटोत्कच और अश्वत्थामाका युद्ध और अश्वत्थामाद्वारा घटोत्कचके पुत्रका, एक अक्षौहिणी राक्षस-सेनाका तथा द्रुपदपुत्रोंका वध एवं पाण्डव-सेनाकी पराजय

संजय उवाच

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आमरण उपवासका व्रत

लेकर बैठे हुए अपने पुत्र भूरिश्रवाके सात्यकिद्वारा मारे जानेपर उस समय सोमदत्तको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत संत्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः॥ २ ॥

'सात्वत! पूर्वकालमें महात्माओं तथा देवताओंने जिस क्षत्रियधर्मका साक्षात्कार किया है, उसे छोड़कर तुम लुटेरोंके धर्ममें कैसे प्रवृत्त हो गये?॥ २ ॥

पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद् रणे॥ ३ ॥

'सात्यके! जो युद्धसे विमुख एवं दीन होकर हथियार डाल चुका हो, उसपर रणभूमिमें क्षत्रियधर्मपरायण विद्वान् पुरुष कैसे प्रहार कर सकता है?॥ ३ ॥

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत॥ ४ ॥

'सात्वत! वृष्णिवंशियोंमें दो ही महारथी युद्धके लिये विख्यात हैं। एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे तुम॥

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि॥ ५ ॥

'अर्जुनने जिसकी बाँह काट डाली थी तथा जो आमरण अनशनका निश्चय लेकर बैठा था, उस मेरे पुत्रपर तुमने वैसा पतनकारक क्रूर प्रहार क्यों किया?॥ ५ ॥

कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे।
अद्य च्छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा॥ ६ ॥

'ओ दुराचारी मूर्ख! उस पापकर्मका फल तुम इस युद्धस्थलमें ही प्राप्त करो। आज मैं पराक्रम करके एक बाणसे तुम्हारा सिर काट डालूँ'॥ ६ ॥

शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम्॥ ७ ॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम्।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन॥ ८ ॥

'वृष्णिकुलकलंक सात्वत! मैं अपने दोनों पुत्रोंकी तथा यज्ञ और पुण्यकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि आज रात्रि बीतनेके पहले ही कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अरक्षित रहनेपर अपनेको वीर माननेवाले तुम्हें पुत्रों और भाइयोंसहित न मार डालूँ तो घोर नरकमें पड़ूँ'॥ ७-८ ॥

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च॥ ९ ॥

ऐसा कहकर महाबली सोमदत्तने अत्यन्त कुपित हो उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया और सिंहनाद किया॥ ९ ॥

ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत्॥ १० ॥

तब कमलके समान नेत्र और सिंहके सदृश दाँतवाले दुर्धर्ष वीर सात्यकि भी अत्यन्त कुपित हो सोमदत्तसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

कौरवेय न मे त्रासः कथंचिदपि विद्यते।
त्वया सार्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन॥ ११ ॥

'कौरवेय! तुम्हारे या किसी दूसरेके साथ युद्ध करते समय मेरे हृदयमें किसी तरह भी कोई भय नहीं होगा॥ ११ ॥

यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि।
तथापि न व्यथा काचित् त्वयि स्यान्मम कौरव॥ १२॥

'कौरव! यदि सारी सेनासे सुरक्षित होकर तुम मेरे साथ युद्ध करोगे तो भी तुम्हारे कारण मुझे कोई व्यथा नहीं होगी॥

युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया॥ १३ ॥

'मैं सदा क्षत्रियोचित आचारमें स्थित हूँ। युद्ध ही जिसका सार है तथा दुष्ट पुरुष ही जिसे आदर देते हैं, ऐसे कटुवाक्यसे तुम मुझे डरा नहीं सकते॥ १३ ॥

यदि तेऽस्ति युयुत्साद्य मया सह नराधिप।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते॥ १४ ॥

'नरेश्वर! यदि मेरे साथ तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा है तो निर्दयतापूर्वक पैने बाणोंद्वारा मुझपर प्रहार करो। मैं भी तुमपर प्रहार करूँगा॥ १४ ॥

हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः॥ १५ ॥

'महाराज! तुम्हारा वीर महारथी पुत्र भूरिश्रवा मारा गया। भाईके दुःखसे दुखी होकर शल भी वीरगतिको प्राप्त हुआ है॥ १५ ॥

त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम्।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः॥ १६ ॥

'अब पुत्रों और बान्धवोंसहित तुम्हें भी मार डालूँगा। तुम कुरुकुलके महारथी वीर हो। इस समय रणभूमिमें सावधान होकर खड़े रहो॥ १६ ॥

यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे॥ १७ ॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि॥ १८ ॥

'जिन महाराज युधिष्ठिरमें दान, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धृति और क्षमा आदि सारे सद्गुण अविनश्वरभावसे सदा विद्यमान रहते हैं, अपनी ध्वजामें मृदङ्गका चिह्न धारण करनेवाले उन्हीं धर्मराजके तेजसे तुम पहले ही मर चुके हो। अतः कर्ण और शकुनिके साथ ही इस युद्धस्थलमें तुम विनाशको प्राप्त होओगे॥ १७-१८ ॥

शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥

'मैं श्रीकृष्णके चरणों तथा अपने इष्टापूर्तकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि मैं युद्धमें क्रुद्ध होकर तुम-जैसे पापीको पुत्रोंसहित न मार डालूँ तो मुझे उत्तम गति न मिले ॥ १९ ॥

अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि।
एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ।

'यदि तुम उपर्युक्त बातें कहकर भी युद्ध छोड़कर भाग जाओगे तभी मेरे हाथसे छुटकारा पा सकोगे।' परस्पर ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २०½ ॥

ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥ २१ ॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः।

तदनन्तर दुर्योधन एक हजार रथों और दस हजार हाथियोंद्वारा सोमदत्तको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगा ॥ २१½ ॥

शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाला आपका नवयुवक साला महाबाहु शकुनि भी अत्यन्त कुपित हो इन्द्रके समान पराक्रमी भाइयों तथा पुत्र-पौत्रोंसे घिरकर वहाँ आ पहुँचा ॥ २२-२३ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् शकुनिके एक लाखसे अधिक घुड़सवार महाधनुर्धर सोमदत्तकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम्।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम्।

बलवान् सहायकोंसे सुरक्षित हो सोमदत्तने अपने बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित कर दिया। झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्न विशाल सेना साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे ॥ २५½ ॥

चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥
आसीद् राजन् बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम्।

राजन्! उस समय परस्पर प्रहार करनेवाली सेनाओंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ २६½ ॥

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् कुरुपुङ्गवम्।

सोमदत्तने सात्यकिको नौ बाणोंसे बींध डाला। फिर सात्यकिने भी कुरुश्रेष्ठ सोमदत्तको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले बलवान् सात्यकिके द्वारा समरभूमिमें अत्यन्त घायल किये जानेपर सोमदत्त रथकी बैठकमें जा बैठे और सुध-बुध खोकर मूर्छित हो गये ॥ २८½ ॥

तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥ २९ ॥
अपोवाह रणाद् वीरं सोमदत्तं महारथम्।

तब महारथी वीर सोमदत्तको मूर्छित हुआ देख सारथि बड़ी उतावलीके साथ उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ २९½ ॥

तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥
अभ्यद्रवत् ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया।

सोमदत्तको युयुधानके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुआ देख द्रोणाचार्य यदुवीर सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़े ॥ ३०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१ ॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम्।

द्रोणाचार्यको आते देख युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीर यदुकुलतिलक महामना सात्यकिकी रक्षाके लिये उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३१½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया।

जैसे पूर्वकालमें त्रिलोकीपर विजय पानेकी इच्छासे राजा बलिका देवताओंके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ घोर संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ३२½ ॥

ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम्।

तत्पश्चात् महातेजस्वी द्रोणाचार्यने अपने बाणसमूहसे पाण्डवसेनाको आच्छादित कर दिया और युधिष्ठिरको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा।
सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान् महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे।
अन्यांश्च सैनिकान् विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ ३७ ॥

फिर महाबाहु द्रोणने सात्यकिको दस, धृष्टद्युम्नको बीस, भीमसेनको नौ, नकुलको पाँच, सहदेवको आठ, शिखण्डीको सौ, द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच, मत्स्यराज विराटको आठ, द्रुपदको दस, युधामन्युको तीन, उत्तमौजाको छः तथा अन्य सैनिकोंको अन्यान्य बाणोंसे घायल करके युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ३४–३७ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन् वै भयाद् राजन् सार्तनादा दिशो दश॥ ३८ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सैनिक आर्तनाद करते हुए भयके मारे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ३८ ॥

काल्यमानं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किंचिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम्॥ ३९॥

द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार होता देख कुन्तीकुमार अर्जुनके हृदयमें कुछ क्रोध हो आया । वे तुरंत ही आचार्यका सामना करनेके लिये चल दिये ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा द्रोणं तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत् सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४० ॥

अर्जुनको युद्धमें द्रोणाचार्यपर धावा करते देख युधिष्ठिरकी सेना पुनः वापस लौट आयी ॥ ४० ॥

ततो युद्धमभूद् भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ ॥
व्यधमत् पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः ।

राजन् ! तदनन्तर भरद्वाजनन्दन द्रोणका पाण्डवोंके साथ पुनः युद्ध आरम्भ हुआ । आपके पुत्रोंने द्रोणाचार्यको सब ओरसे घेर रक्खा था । जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार वे पाण्डव-सेनाको तहस-नहस करने लगे ॥ ४१½ ॥

तं ज्वलन्तमिवादित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ४३ ॥
दहन्तमहितान् सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।

नरेश्वर ! प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् तथा निरन्तर बाणरूपी किरणोंसे युक्त सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले द्रोणाचार्यको धनुषको मण्डलाकार करके तपते हुए प्रभाकरके समान शत्रुओंको दग्ध करते देख पाण्डव-सेनामें कोई वीर उन्हें रोक न सका ॥ ४२-४३½ ॥

यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥ ४४ ॥
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम्।

जो-जो योद्धा पुरुष द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होता, उसी-उसीका सिर काटकर द्रोणाचार्यके बाण धरतीमें समा जाते थे ॥ ४४½ ॥

एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥ ४५ ॥
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।

इस प्रकार महात्मा द्रोणके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डव-सेना पुनः भयभीत हो सव्यसाची अर्जुनके देखते-देखते भागने लगी ॥ ४५½ ॥

सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥ ४६ ॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।

भरतनन्दन ! रातमें द्रोणाचार्यके द्वारा अपनी सेनाको भगायी हुई देख अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप द्रोणाचार्यके रथके समीप चलिये' ॥ ४६½ ॥

ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥
चोदयामास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति ।

तब दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने चाँदी, गोदुग्ध, कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओर हाँका ॥ ४७½ ॥

भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम्॥ ४८ ॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मा वह ।

अर्जुनको द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये जाते देख भीमसेनने भी अपने सारथिसे कहा—'तुम द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर मुझे ले चलो' ॥ ४८½ ॥

सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्धयान्॥४९॥
पृष्ठतः सत्यसंधस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ ! उनके सारथि विशोकने उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनके पीछे अपने घोड़ोंको बढ़ाया ॥ ४९½ ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
अन्वगच्छन् महाराज केकयाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥

महाराज ! उन दोनों भाइयोंको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर युद्धके लिये उद्यत होकर जाते देख पाञ्चाल, सृंजय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल तथा केकय महारथियोंने भी उन्हींका अनुसरण किया ॥ ५०-५१ ॥

ततो राजन्नभूद् घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२ ॥
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।

राजन् ! फिर तो वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर संग्राम आरम्भ हो गया । अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाके दक्षिणभागको और भीमसेनने वामभागको अपना लक्ष्य बनाया । उन दोनों भाइयोंके साथ विशाल रथ तथा सेनाएँ थीं ॥ ५२½ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनंजयौ ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद् राजन् सात्यकिश्च महाबलः।



घटोत्कचका रथ

राजन्! पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुनको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख धृष्टद्युम्न और महाबली सात्यकि भी वहीं जा पहुँचे ॥ ५३½ ॥

चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४ ॥
आसीद् राजन् बलौघानां तदान्योन्यमभिघ्नताम्।

महाराज! उस समय परस्पर आघात-प्रतिघात करते हुए उन सैन्यसमूहोंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ ५४½ ॥

सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥ ५५ ॥
द्रौणिरभ्यद्रवद् राजन् वधाय कृतनिश्चयः।

नरेश्वर! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके वधसे अत्यन्त कुपित हो उठा था। उसने युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर उनके वधका दृढ़ निश्चय करके उनपर आक्रमण किया ॥ ५५½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत्।

अश्वत्थामाको शिनिपौत्रके रथकी ओर जाते देख अत्यन्त कुपित हुए भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने अपने उस शत्रुको रोका ॥ ५६½ ॥

कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम्।
विक्षिप्तयन्त्रसंनाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम्।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥

घटोत्कच जिस विशाल रथपर बैठकर आया था, वह काले लोहेका बना हुआ और अत्यन्त भयंकर था। उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी। उसके भीतरी भागकी लम्बाई-चौड़ाई तीस नल्व[1] (बारह हजार हाथ) थी। उसमें यन्त्र और कवच रक्खे हुए थे। चलते समय उससे मेघोंकी भारी घटाके समान गम्भीर शब्द होता था। उसमें हाथी-जैसे विशालकाय वाहन जुते हुए थे, जो वास्तवमें न घोड़े थे और न हाथी। उस रथकी ध्वजाका डंडा बहुत ऊँचा था। वह ध्वज पंख और पंजे फैलाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखने और कूजनेवाले एक गृध्रराजसे सुशोभित था। उसकी पताका खूनसे भीगी हुई थी और उस रथको आँतोंकी मालासे विभूषित किया गया था ॥ ५७—६० ॥

अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम्।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः।

ऐसे आठ पहियोंवाले विशाल रथपर बैठा हुआ घटोत्कच भयंकर रूपवाले राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनासे घिरा हुआ था। उस समस्त सेनाने अपने हाथोंमें शूल, मुद्गर, पर्वत-शिखर और वृक्ष ले रक्खे थे ॥ ६१½ ॥

तमुद्यतमहाचापं निशाम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम्।

प्रलयकालमें दण्डधारी यमराजके समान विशाल धनुष उठाये घटोत्कचको देखकर समस्त राजा व्यथित हो उठे ॥ ६२½ ॥

ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शङ्कुकर्णं महाहनुम्।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥ ६४ ॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम्।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६५ ॥
वीक्ष्य दीप्तमिवायान्तं रिपुविक्षोभकारिणम्।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥

वह देखनेमें पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता था। उसका रूप भयानक होनेके कारण वह सबको भयकर प्रतीत होता था। उसका मुख यों ही बड़ा भीषण था; किंतु दाढ़ोंके कारण और भी विकराल हो उठा था। उसके कान कील या खूँटेके समान जान पड़ते थे। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। आँखें डरावनी थीं। मुख आगके समान प्रज्वलित था, पेट भीतरकी ओर धँसा हुआ था। उसके गलेका छेद बहुत बड़े गड्ढेके समान जान पड़ता था। सिरके बाल किरीटसे ढके हुए थे। वह मुँह बाये हुए यमराजके समान समस्त प्राणियोंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाला था। शत्रुओंको क्षुब्ध कर देनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान राक्षसराज घटोत्कचको विशाल धनुष उठाये आते देख आपके पुत्रकी सेना भयसे पीड़ित एवं क्षुब्ध हो उठी, मानो वायुसे विक्षुब्ध हुई गङ्गामें भयानक भँवरें और ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हों ॥ ६३—६७ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥

घटोत्कचके द्वारा किये हुए सिंहनादसे भयभीत हो हाथियोंके पेशाब झड़ने लगे और मनुष्य भी अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ६८ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत् तत्र समन्ततः।
संध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥

तदनन्तर उस रणभूमिमें चारों ओर संध्याकालसे ही

[1] १. भूमि नापनेका एक नाप जो चार सौ हाथका होता है।

अधिक बलवान् हुए राक्षसोंद्वारा की हुई पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६९ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥

लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र अविराम गतिसे गिरने लगे ॥ ७० ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन् दिशः ॥ ७१ ॥

उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्रामको देखकर समस्त नरेश, आपके पुत्र और कर्ण—ये सभी पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१ ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥

उस समय वहाँ अपने अस्त्र-बलपर अभिमान करनेवाला एकमात्र द्रोणकुमार स्वाभिमानी अश्वत्थामा तनिक भी व्यथित नहीं हुआ । उसने घटोत्कचकी रची हुई माया अपने बाणोंद्वारा नष्ट कर दी ॥ ७२ ॥

विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः।
विससर्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥७३॥

माया नष्ट हो जानेपर अमर्षमें भरे हुए घटोत्कचने बड़े भयंकर बाण छोड़े । वे सभी बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥ ७३ ॥

भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः।

जैसे क्रोधातुर सर्प बड़े वेगसे बाँबीमें घुसते हैं, उसी प्रकार शिलापर तेज किये हुए वे सुवर्णमय पंखवाले शीघ्रगामी बाण कृपीकुमारको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो धरतीमें घुस गये ॥ ७४½ ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया । फिर तो शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस प्रतापी वीरने क्रोधी घटोत्कचको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७५½ ॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम्।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥ ७७ ॥

द्रोणपुत्रके द्वारा मर्मस्थानोंमें गहरी चोट लगनेके कारण घटोत्कच अत्यन्त व्यथित हो उठा और उसने एक ऐसा चक्र हाथमें लिया, जिसमें एक लाख अरे थे । उसके प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे । मणियों तथा हीरोंसे विभूषित वह चक्र प्रातःकालके सूर्यके समान जान पड़ता था ॥७६-७७॥

अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया।
वेगेन महताऽऽगच्छद् विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि।

भीमसेनकुमारने अश्वत्थामाका वध करनेकी इच्छासे वह चक्र उसके ऊपर चला दिया, परंतु अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा बड़े वेगसे आते हुए उस चक्रको दूर फेंक दिया। वह भाग्यहीनके संकल्प (मनोरथ)की भाँति व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७८½ ॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ७९ ॥
द्रौणिं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम्।

तदनन्तर अपने चक्रको धरतीपर गिराया हुआ देख घटोत्कचने अपने बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे राहु सूर्यको आच्छादित कर देता है ॥७९½॥

घटोत्कचसुतः श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट्।

घटोत्कचके तेजस्वी पुत्र अंजनपर्वाने, जो कटे हुए कोयलेके ढेरके समान काला था, अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय आँधीको रोक देता है ॥ ८०½ ॥

पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः।

भीमसेनके पौत्र अंजनपर्वाके बाणोंसे आच्छादित हुआ अश्वत्थामा मेघकी जलधारासे आवृत हुए मेरुपर्वतके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ८१½ ॥

अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः।

रुद्र, विष्णु तथा इन्द्रके समान पराक्रमी अश्वत्थामाके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उसने एक बाणसे अंजनपर्वाकी ध्वजा काट डाली ॥ ८२½ ॥

द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ॥ ८३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

फिर दो बाणोंसे उसके दो सारथियोंको, तीनसे त्रिवेणुको, एकसे धनुषको और चारसे चारों घोड़ोंको काट डाला ।८३½।

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत्।

तत्पश्चात् रथहीन हुए राक्षसपुत्रके हाथसे उठे हुए सुवर्ण-बिन्दुओंसे व्याप्त खड्गको उसने एक तीखे बाणसे मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ८४½ ॥

गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बिसूनुना ॥ ८५ ॥
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाभ्याहताऽपतत्।

राजन् ! तब घटोत्कचपुत्रने तुरंत ही सोनेके अंगदसे विभूषित गदा घुमाकर अश्वत्थामापर दे मारी; परंतु

अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ८५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६ ॥
ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

तब आकाशमें उछलकर प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना करते हुए अंजनपर्वाने आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८६½ ॥

ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।

तदनन्तर द्रोणपुत्रने आकाशमें स्थित हुए मायाधारी घटोत्कचकुमारको अपने बाणोंद्वारा उसी तरह घायल कर दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा मेघोंकी घटाको गला देते हैं ॥ ८७½ ॥

सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥
महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।

इसके बाद वह नीचे उतरकर अपने स्वर्णभूषित रथपर अश्वत्थामाके सामने खड़ा हो गया। उस समय वह तेजस्वी राक्षस पृथ्वीपर खड़े हुए अत्यन्त भयंकर कज्जल-गिरिके समान जान पड़ा ॥ ८८½ ॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥ ८९ ॥
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ।

उस समय द्रोणकुमारने लोहेके कवच धारण करके आये हुए भीमसेनपौत्र अंजनपर्वाको उसी प्रकार मार डाला, जैसे भगवान् महेश्वरने अन्धकासुरका वध किया था ॥८९½॥

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।

अपने महाबली पुत्रको अश्वत्थामाद्वारा मारा गया देख चमकते हुए बाजूबंदसे विभूषित घटोत्कच बड़े रोषके साथ द्रोणकुमारके समीप आकर बढ़े हुए दावानलके समान पाण्डवसेनारूपी वनको दग्ध करते हुए उस वीर कृपी-कुमारसे बिना किसी घबराहटके इस प्रकार बोला॥९०-९१½॥

घटोत्कच उवाच

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ।

घटोत्कचने कहा—द्रोणपुत्र ! खड़े रहो, खड़े रहो। आज तुम मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे। जैसे अग्निपुत्र कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार आज मैं तुम्हारा विनाश कर डालूँगा ॥ ९२½ ॥

अश्वत्थामोवाच

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥ ९३ ॥
न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् ।

अश्वत्थामाने कहा—देवताओंके समान पराक्रमी पुत्र ! तुम जाओ, दूसरोंके साथ युद्ध करो। हिडिम्बानन्दन ! पुत्रके लिये यह उचित नहीं है कि वह पिताको भी सताये॥

कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ।

हिडिम्बाकुमार ! अभी मेरे मनमें तुम्हारे प्रति तनिक भी रोष नहीं है, परंतु यदि रोष हो जाय तो तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि रोषके वशीभूत हुआ प्राणी अपना भी विनाश कर डालता है (फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ? अतः मेरे कुपित होनेपर तुम सकुशल नहीं रह सकते) ॥ ९४½ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वैतत् क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।

संजय कहते हैं—राजन् ! पुत्रशोकमें डूबे हुए भीमसेन-कुमारने अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर क्रोधसे लाल आँखें करके रोषपूर्वक उससे कहा—॥ ९५½ ॥

किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे ॥ ९६ ॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद् वचस्तव ।

'द्रोणकुमार ! क्या मैं युद्धस्थलमें नीच लोगोंके समान कायर हूँ, जो तू मुझे अपनी बातोंसे डरा रहा है। तेरी यह बात नीचतापूर्ण है ॥ ९६½ ॥

भीमात् खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥
पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ९८ ॥

'देख, मैं कौरवोंके विशाल कुलमें भीमसेनसे उत्पन्न हुआ हूँ, समराङ्गणमें कभी पीठ न दिखानेवाले पाण्डवोंका पुत्र हूँ, राक्षसोंका राजा हूँ और दशग्रीव रावणके समान बलवान् हूँ ॥ ९७-९८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥

'द्रोणपुत्र ! 'खड़ा रह, खड़ा रह, तू मेरे हाथसे छूटकर जीवित नहीं जा सकेगा। आज इस रणाङ्गणमें मैं तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ ९९ ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥१००॥

ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये महाबली राक्षस घटोत्कचने द्रोणपुत्रपर रोषपूर्वक धावा किया, मानो सिंहने गजराजपर आक्रमण किया हो ॥ १०० ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥१०१॥

जैसे बादल पर्वतपर जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथकी धुरीके समान मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १०१ ॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥१०२॥

परंतु द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने पास आनेसे पहले ही उस बाण-वर्षाको बाणोंद्वारा नष्ट कर देता था। इससे आकाशमें बाणोंका दूसरा संग्राम-सा मच गया था ॥१०२॥

अथास्त्रसम्मर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥१०३॥

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो आगकी चिनगारियाँ छूटती थीं, उससे रात्रिके प्रथम प्रहरमें आकाश जुगनुओंसे चित्रित-सा प्रतीत होता था ॥ १०३ ॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥१०४॥

युद्धाभिमानी अश्वत्थामाके द्वारा अपनी माया नष्ट हुई देख घटोत्कचने अदृश्य होकर पुनः दूसरी मायाकी सृष्टि की॥

सोऽभवद् गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥१०५॥

वह वृक्षोंसे भरे हुए शिखरोंद्वारा सुशोभित एक बहुत ऊँचा पर्वत बन गया। वह महान् पर्वत शूल, प्रास, खड्ग और मूसलरूपी जलके झरने बहा रहा था ॥ १०५ ॥

तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसंघैर्न विव्यथे ॥१०६॥

अंजनगिरिके समान उस काले पहाड़को देखकर और वहाँसे गिरनेवाले बहुतेरे अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल होकर भी द्रोणकुमार अश्वत्थामा व्यथित नहीं हुआ ॥ १०६ ॥

ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥१०७॥

तदनन्तर द्रोणकुमारने हँसते हुए-से वज्रास्त्रको प्रकट किया। उस अस्त्रका आघात होते ही वह पर्वतराज तत्काल अदृश्य हो गया ॥ १०७ ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद् रणे ॥१०८॥

तत्पश्चात् वह आकाशमें इन्द्रधनुषसहित अत्यन्त भयंकर नील मेघ बनकर पत्थरोंकी वर्षासे रणभूमिमें अश्वत्थामाको आच्छादित करने लगा ॥ १०८ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥१०९॥

तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमारने वायव्यास्त्रका संधान करके वहाँ प्रकट हुए नील मेघको नष्ट कर दिया ॥ १०९ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥११०॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने अपने बाणसमूहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके शत्रुपक्षके एक लाख रथियोंका संहार कर डाला ॥ ११० ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायातकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥१११॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥११२॥
विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हैडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११३॥
नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥११४॥
उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥११५॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने देखा कि घटोत्कच बिना किसी घबराहटके बहुत-से राक्षसोंसे घिरा हुआ पुनः रथपर आरूढ़ होकर आ रहा है। उसने अपने धनुषको खींचकर फैला रक्खा है। उसके साथ सिंह, व्याघ्र और मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी तथा विकराल मुख, मस्तक और कण्ठवाले बहुत-से अनुचर हैं, जो हाथी, घोड़ों तथा रथपर बैठे हुए हैं। उसके अनुचरोंमें राक्षस, यातुधान तथा तामस जातिके लोग हैं, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, भाँति-भाँतिके कवच और आभूषणोंसे विभूषित, महाबली, भयंकर सिंहनाद करनेवाले तथा क्रोधसे घूरते हुए नेत्रोंवाले बहुसंख्यक रणदुर्मद राक्षस घटोत्कचकी ओरसे युद्धके लिये उपस्थित हैं। यह सब देखकर दुर्योधन विषादग्रस्त हो रहा है। इन सब बातोंपर दृष्टिपात करके अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे कहा—॥१११–११५॥

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११६॥

'दुर्योधन! आज तुम चुपचाप खड़े रहो। तुम्हें इन्द्रके समान पराक्रमी इन राजाओं तथा अपने वीर भाइयोंके साथ तनिक भी घबराना नहीं चाहिये ॥ ११६ ॥

निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवास्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥११७॥

'राजन्! मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार डालूँगा, तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती; इसके लिये मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। तुम अपनी सेनाको आश्वासन दो' ॥ ११७ ॥

दुर्योधन उवाच

न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत् ते महदिदं मनः।
अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥११८॥

दुर्योधन बोला—गौतमीनन्दन ! तुम्हारा यह हृदय इतना विशाल है कि तुम्हारे द्वारा इस कार्यका होना मैं अद्भुत नहीं मानता। हमलोगोंपर तुम्हारा अनुराग बहुत अधिक है ॥ ११८ ॥

संजय उवाच

अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत्।
वृतं रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥११९॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अश्वत्थामासे ऐसा कहकर दुर्योधन संग्राममें शोभा पानेवाले घोड़ोंसे युक्त एक हजार रथोंद्वारा घिरे हुए शकुनिसे इस प्रकार बोला—॥ ११९ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनंजयम्।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥१२०॥
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥१२१॥
पुरंजयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च संजयो विजयो जयः ॥१२२॥
कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥१२३॥

'मामा ! तुम साठ हजार रथियोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनपर आक्रमण करो। कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, उत्तर दिशाके सैनिक, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुण्डभेदी, पराक्रमी पुरंजय, दृढरथ, पताकी, हेम-कम्पन, शल्य, आरुणि, इन्द्रसेन, संजय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन—ये सभी महारथी वीर तथा साठ हजार पैदल सैनिक तुम्हारे साथ जायँगे ॥ १२०–१२३ ॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥१२४॥

'मामा ! जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार तुम भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा धर्मराज युधिष्ठिरका भी वध कर डालो। मेरी विजयकी आशा तुमपर ही अवलम्बित है ॥ १२४ ॥

दारितान् द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान्।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥१२५॥

'मातुल ! द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुन्तीकुमारोंको अपने बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला है; उनके शरीरोंको क्षत-विक्षत कर दिया है। इस अवस्थामें असुरोंका वध करनेवाले कुमार कार्तिकेयकी भाँति तुम कुन्तीपुत्रोंको मार डालो' ॥ १२५ ॥

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः।
पिप्रीषुस्ते सुतान् राजन् दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥१२६॥

राजन् ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि आपके पुत्रोंको प्रसन्न करने तथा पाण्डवोंको दग्ध कर डालनेकी इच्छासे शीघ्र ही युद्धके लिये चल दिया ॥ १२६ ॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥१२७॥

तदनन्तर रणभूमिमें रात्रिके समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा राक्षस घटोत्कचका इन्द्र और प्रह्लादके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १२७ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम्।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥१२८॥

उस समय घटोत्कचने अत्यन्त कुपित होकर विष और अग्निके समान भयंकर दस सुदृढ़ बाणोंद्वारा कृपीकुमार अश्वत्थामाकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ १२८ ॥

स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धत इव द्रुमः ॥१२९॥

भीमपुत्र घटोत्कचके चलाये हुए उन बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर रथमें बैठा हुआ अश्वत्थामा वायुके झकझोरे हुए वृक्षके समान काँपने लगा ॥ १२९ ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम्।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥१३०॥

इतनेहीमें घटोत्कचने पुनः अञ्जलिकनामक बाणसे अश्वत्थामाके हाथमें स्थित अत्यन्त कान्तिमान् धनुषको शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ १३० ॥

ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत्।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥१३१॥

तब द्रोणकुमार भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर, जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १३१ ॥

ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खचरान् खचरं प्रति ॥१३२॥

भारत ! तदनन्तर गौतमीपुत्रने सुवर्णमय पंखवाले शत्रु-नाशक आकाशचारी बाणोंको उस राक्षसपर चलाया ॥१३२॥

तद् बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम्।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३३॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका वह समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १३३ ॥

विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतरथद्विपान्।
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥१३४॥

जैसे भगवान् अग्निदेव प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको दग्ध कर देते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित बहुत-से राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दिया ॥ १३४ ॥

स दग्ध्वाक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥१३५॥

नरेश्वर ! जैसे भगवान् महेश्वर आकाशमें त्रिपुरको दग्ध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेनाको बाणोंद्वारा दग्ध करके अश्वत्थामा शोभा पाने लगा ॥ १३५ ॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥१३६॥

राजन् ! विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको भस्म कर देनेवाले संवर्तक अग्निके समान आपके शत्रुओंको दग्ध करके देदीप्यमान हो उठा ॥

ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम्।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥

तब घटोत्कचने कुपित हो भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको आदेश दिया, 'अरे ! अश्वत्थामाको मार डालो' ॥ १३७ ॥

घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याथ राक्षसाः।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥१३८॥
व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम्।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥१३९॥
हन्तुमभ्यद्रवन् द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः।

घटोत्कचकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके दाढ़ोंसे प्रकाशित, विशाल मुखवाले, घोर रूपधारी, फैले मुँह और डरावनी जीभवाले भयानक राक्षस क्रोधसे लाल आँखें किये महान् सिंहनादसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए हाथोंमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र ले अश्वत्थामाको मार डालनेके लिये उसपर टूट पड़े ॥ १३८–१३९½ ॥

शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥१४०॥
खड्गान् गदा भिन्दिपालान् मुसलानि परश्वधान्।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान् कम्पनाञ्छितान्॥१४१॥
स्थूलान् भुशुण्ड्यश्मगदाः स्थूणान् कार्ष्णायसांस्तथा।
मुद्गरांश्च महाघोरान् समरे शत्रुदारणान् ॥१४२॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४३॥

समराङ्गणमें किसीसे भी न डरनेवाले तथा क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले भयंकर पराक्रमी सैकड़ों और हजारों राक्षस अश्वत्थामाके मस्तकपर शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल, मुसल, फरसे, प्रास, कटार, तोमर, कणप, तीखे कम्पन, मोटे-मोटे पत्थर, भुशुण्डी, गदा, काले लोहेके खंभे तथा शत्रुओंको विदीर्ण करनेमें समर्थ महाघोर मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४०–१४३ ॥

तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते व्यथिताभवन् ॥१४४॥

द्रोणपुत्रके मस्तकपर अस्त्रोंकी वह बड़ी भारी वर्षा होती देख आपके समस्त सैनिक व्यथित हो उठे ॥ १४४ ॥

द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद् वर्षं घोरमुच्छ्रितम्।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥

परंतु पराक्रमी द्रोणकुमारने शिलापर तेज किये हुए अपने वज्रोपम बाणोंद्वारा वहाँ प्रकट हुई उस भयंकर अस्त्र-वर्षाका विध्वंस कर डाला ॥ १४५ ॥

ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः।
निजघ्ने राक्षसान् द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥१४६॥

तत्पश्चात् महामनस्वी अश्वत्थामाने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित सुवर्णमय पंखवाले अन्य बाणोंद्वारा तत्काल ही राक्षसोंको घायल कर दिया ॥ १४६ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम्।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१४७॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १४७ ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन् द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः॥१४८॥

द्रोणपुत्रकी मार खाकर, अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबली राक्षस उसे मार डालनेकी इच्छासे रोषपूर्वक दौड़े ॥

तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम्।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१४९॥

भारत ! वहाँ अश्वत्थामाने यह ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे समस्त प्राणियोंमें और किसीके लिये कर दिखाना असम्भव था ॥ १४९ ॥

यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित्।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥१५०॥

क्योंकि महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाने अकेले ही उस राक्षसी सेनाको राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते अपने प्रज्वलित बाणोंद्वारा क्षणभरमें भस्म कर दिया ॥ १५० ॥

स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥१५१॥

जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि समस्त प्राणियोंको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार राक्षसोंकी उस सेनाका संहार करके

युद्धस्थलमें अश्वत्थामाकी बड़ी शोभा हुई ॥ १५१ ॥

तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥१५२॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद् वीराद् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥१५३॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें पाण्डवपक्षके सहस्रों राजाओं-मेंसे वीर महाबली राक्षसराज घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई भी विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करते हुए अश्वत्थामाकी ओर देख न सका॥

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥१५४॥
स्वं सूतमब्रवीत् क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।

भरतश्रेष्ठ ! पुनः क्रोधसे घटोत्कचकी आँखें घूमने लगीं । उसने हाथसे हाथ मलकर ओठ चबा लिया और कुपित हो सारथिसे कहा—'सूत ! तू मुझे द्रोणपुत्रके पास ले चल' ॥ १५४½ ॥

स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥१५५॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।

शत्रुओंका संहार करनेवाला घटोत्कच सुन्दर पताकाओं-से सुशोभित, प्रकाशमान एवं भयंकर रथके द्वारा पुनः द्रोणपुत्रके साथ द्वैरथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ १५५½ ॥

स विनद्य महानादं सिंहवद् भीमविक्रमः ॥१५६॥
चिक्षेपाविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥१५७॥

उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने सिंहके समान बड़ी भारी गर्जना करके संग्राममें द्रोणपुत्रपर देवताओंद्वारा निर्मित तथा आठ घंटियोंसे सुशोभित एक महाभयंकर अशनि (वज्र) घुमाकर चलायी ॥ १५६–१५७ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥१५८॥

यह देख अश्वत्थामाने रथपर अपना धनुष रख उछल-कर उस अशनिको पकड़ लिया और उसे घटोत्कचके ही रथपर दे मारा । घटोत्कच उस रथसे कूद पड़ा ॥ १५८ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साशनिर्भृशदारुणा ॥१५९॥

वह अत्यन्त प्रकाशमान तथा परम दारुण अशनि घोड़े, सारथि और ध्वजसहित घटोत्कचके रथको भस्म करके पृथ्वीको छेदकर उसके भीतर समा गयी ॥ १५९ ॥

द्रौणेस्तत् कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥१६०॥

अश्वत्थामाने भगवान् शङ्करद्वारा निर्मित उस भयंकर अशनिको जो उछलकर पकड़ लिया, उसके उस कर्मको देखकर समस्त प्राणियोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥१६०॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम् ।
मुमोच निशितान् बाणान् पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥१६१॥

नरेश्वर ! उस समय भीमसेनकुमारने धृष्टद्युम्नके रथपर आरूढ़ हो इन्द्रायुधके समान विशाल एवं घोर धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाके विशाल वक्षःस्थलपर बहुत-से तीखे बाण मारे ॥ १६१ ॥

धृष्टद्युम्नस्त्वसम्भ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खान् विशिखान् द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥१६२॥

धृष्टद्युम्नने भी बिना किसी घबराहटके विषधर सर्पोंके समान सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण द्रोणपुत्रके वक्षःस्थल पर छोड़े

ततो मुमोच नाराचान् द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः ।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥१६३॥

तब अश्वत्थामाने भी उनपर सहस्रों नाराच चलाये । धृष्टद्युम्न और घटोत्कचने भी अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाके नाराचोंको काट डाला ॥ १६३ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥१६४॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहों तथा अश्वत्थामाका वह अत्यन्त उग्र और महान् युद्ध समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥ १६४ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥१६५॥

तदनन्तर एक हजार रथ, तीन सौ हाथी और छः हजार घुड़सवारोंके साथ भीमसेन उस युद्धस्थलमें आये ॥१६५॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥१६६॥

उस समय अनायास ही पराक्रम प्रकट करनेवाला धर्मात्मा अश्वत्थामा भीमपुत्र राक्षस घटोत्कच तथा सेवकों-सहित धृष्टद्युम्नके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा था ॥१६६॥

तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१६७॥

भारत ! वहाँ द्रोणपुत्रने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे कर दिखाना समस्त प्राणियोंमें दूसरेके लिये असम्भव था ॥ १६७ ॥

निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥१६८॥

उसने पलक मारते-मारते अपने पैने बाणोंसे घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिया ॥ १६८ ॥

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥१६९॥

भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते यह सब कुछ हो गया ॥ १६९ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥१७०॥

शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़नेवाले नाराचोंकी गहरी चोट खाकर बहुत-से हाथी शिखरयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो गये ॥ १७० ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥१७१॥

हाथियोंके शुण्ड कटकर इधर-उधर छटपटा रहे थे । उनसे ढकी हुई पृथ्वी रेंगते हुए सर्पोंसे आच्छादित हुई-सी शोभा पा रही थी ॥ १७१ ॥

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥१७२॥

इधर-उधर गिरे हुए सुवर्णमय दण्डवाले राजाओंके छत्रोंसे छायी हुई यह पृथ्वी प्रलयकालमें उदित हुए सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहनक्षत्रोंसे परिपूर्ण आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ १७२ ॥

प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥१७३॥
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥१७४॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥१७५॥
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥१७६॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसम्भवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१७७॥
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥१७८॥

अश्वत्थामाने उस युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जो शोणितके प्रवाहसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती थी, जिसमें कटकर गिरी हुई विशाल ध्वजाएँ मेढकोंके समान और रणभेरियाँ विशाल कछुओंके सदृश जान पड़ती थीं । राजाओंके श्वेत छत्र हंसोंकी श्रेणीके समान उस नदीका सेवन करते थे । चँवरसमूह फेनका भ्रम उत्पन्न करते थे । कंक और गीध ही बड़े-बड़े ग्राह-से जान पड़ते थे । अनेक प्रकारके आयुध वहाँ मछलियोंके समान भरे थे । विशाल हाथी शिलाखण्डोंके समान प्रतीत होते थे । मरे हुए घोड़े वहाँ मगरोंके समान व्याप्त थे । गिरे पड़े हुए रथ ऊँचे-ऊँचे टीलोंके समान जान पड़ते थे । पताकाएँ सुन्दर वृक्षोंके समान प्रतीत होती थीं । बाण ही मीन थे । देखनेमें वह बड़ी भयंकर थी । प्रास, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र डुण्डुभ सर्पके समान थे । मज्जा और मांस ही उस नदीमें महापङ्कके समान प्रतीत होते थे । तैरती हुई लाशें नौकाका भ्रम उत्पन्न करती थीं । केशरूपी सेवारोंसे वह रंग-बिरंगी दिखायी दे रही थी । वह कायरोंको मोह प्रदान करनेवाली थी । गजराजों, घोड़ों और योद्धाओंके शरीरोंका नाश होनेसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था । योद्धाओंकी आर्तवाणी ही उसकी कलकल ध्वनि थी । उस नदीसे रक्तकी लहरें उठ रही थीं । हिंसक जन्तुओंके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी । वह यमराजके राज्यरूपी महासागरमें मिलनेवाली थी ॥ १७३—१७८ ॥

निहत्य राक्षसान् बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥१७९॥
स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥१८०॥

राक्षसोंका वध करके बाणोंद्वारा अश्वत्थामाने घटोत्कचको अत्यन्त पीड़ित कर दिया । फिर उस महाबली वीरने अत्यन्त कुपित होकर अपने नाराचोंसे भीमसेन और धृष्टद्युम्नसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको घायल करके द्रुपदपुत्र सुरथको मार डाला ॥ १७९-१८० ॥

पुनः शत्रुंजयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥१८१॥

तत्पश्चात् उसने रणक्षेत्रमें द्रुपदकुमार शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वको भी मार गिराया ॥१८१॥

श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥१८२॥
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥१८३॥

आर्य ! इसके बाद द्रोणकुमारने राजा श्रुताह्वको भी यमलोक पहुँचा दिया । फिर दूसरे तीन तीखे और सुन्दर पंखवाले बाणोंद्वारा हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका भी वध कर डाला । तदनन्तर दस बाणोंसे उसने राजा कुन्तिभोजके दस पुत्रोंको कालके गालमें डाल दिया ॥

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः संधायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥१८४॥
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ।

इसके बाद अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाने एक सीधे जानेवाले अत्यन्त भयंकर एवं उत्तम बाणका संधान करके धनुषको कानतक खींचकर उसे शीघ्र ही घटोत्कच-

को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह बाण घोर यमदण्डके समान था ॥ १८४½ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥१८५॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सुपुङ्खः पृथिवीपते ।

पृथ्वीपते ! वह सुन्दर पंखोंवाला महाबाण उस राक्षसका हृदय विदीर्ण करके शीघ्र ही पृथ्वीमें समा गया ।१८५½।

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥१८६॥
द्रौणेः सकाशाद् राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् ।

राजेन्द्र ! घटोत्कचको मरकर गिरा हुआ जान महारथी धृष्टद्युम्नने अपने उत्तम रथको अश्वत्थामाके पाससे हटा लिया ॥ १८६½ ॥

ततः पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥१८७॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥१८८॥

नरेश्वर ! फिर तो युधिष्ठिरकी सेनाके सभी नरेश युद्धसे विमुख हो गये। उस सेनाको परास्त करके वीर द्रोणपुत्र रणभूमिमें गर्जना करने लगा। भारत ! उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंमें अश्वत्थामाका बड़ा समादर हुआ। आपके पुत्रोंने भी उसका बड़ा सम्मान किया ॥ १८७-१८८ ॥

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहै-
र्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् ।
निधनमुपगतैर्मही कृताभूद्
गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥१८९॥

तदनन्तर सैकड़ों बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण मरकर गिरे और मृत्युको प्राप्त हुए निशाचरोंकी लाशोंसे पटी हुई चारों ओरकी भूमि पर्वतशिखरोंसे आच्छादित हुई-सी अत्यन्त भयंकर और दुर्गम प्रतीत होने लगी ॥ १८९ ॥

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा
नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणि-
मपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥१९०॥

उस समय वहाँ सिद्धों, गन्धर्वों, पिशाचों, नागों, सुपर्णों, पितरों, पक्षियों, राक्षसों, भूतों, अप्सराओं तथा देवताओंने भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्तकी मूर्छा, भीमके द्वारा बाह्लीकका वध, धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और शकुनिके सात रथियों एवं पाँच भाइयोंका संहार तथा द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरके युद्धमें युधिष्ठिरकी विजय

संजय उवाच

द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा ।
द्रोणपुत्रेण निहतान् राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके द्वारा द्रुपद और कुन्तिभोजके पुत्रों तथा सहस्रों राक्षसोंको मारा गया देख युधिष्ठिर, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा युयुधानने भी सावधान होकर युद्धमें ही मन लगाया ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ।
महता शरवर्षेणच्छादयामास भारत ॥ ३ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर सोमदत्त पुनः कुपित हो उठे और उन्होंने बड़ी भारी बाणवर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥

ततः समभवद् युद्धमतीव भयवर्धनम् ।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४ ॥

फिर तो विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध छिड़ गया ॥

तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥

सोमदत्तको आते देख भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले दस बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५ ॥

सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ॥ ६ ॥
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् ।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥

सोमदत्तने भी वीर भीमसेनको सौ बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया। इधर सात्यकिने भी अत्यन्त कुपित हो पुत्रशोकमें डूबे हुए, नहुषनन्दन ययातिकी भाँति वृद्धताके गुणोंसे युक्त बूढ़े सोमदत्तको वज्रको भी मार गिरानेवाले दस तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ६-७ ॥

शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥

मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।

फिर शक्तिसे इन्हें विदीर्ण करके सात बाणोंद्वारा पुनः गहरी चोट पहुँचायी । तत्पश्चात् सात्यकिके लिये भीमसेनने सोमदत्तके मस्तकपर नूतन, सुदृढ़ एवं भयंकर परिघका प्रहार किया ॥ ८½ ॥

सात्वतोऽप्यग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।

इसी समय सात्यकिने भी युद्धस्थलमें कुपित हो सोमदत्तकी छातीपर सुन्दर पंखवाले, अग्निके समान तेजस्वी, उत्तम और तीखे बाणका प्रहार किया ॥ ९½ ॥

युगपत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।

वे भयंकर परिघ और बाण वीर सोमदत्तके शरीरपर एक ही साथ गिरे । इससे महारथी सोमदत्त मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १०½ ॥

व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥ ११ ॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।

अपने पुत्रके मूर्च्छित होनेपर बाह्लीकने वर्षा ऋतुमें वर्षा करनेवाले मेघके समान बाणोंकी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर धावा किया ॥ ११½ ॥

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥
प्रपीडयन् महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।

भीमसेनने सात्यकिके लिये महात्मा बाह्लीकको पीड़ित करते हुए युद्धके मुहानेपर उन्हें नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२½ ॥

प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ।

तब महाबाहु प्रतीपपुत्र बाह्लीकने अत्यन्त कुपित हो भीमसेनकी छातीमें अपनी शक्ति धँसा दी, मानो देवराज इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्र मारा हो ॥ १३½ ॥

स तथाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह ।

इस प्रकार शक्तिसे आहत होकर भीमसेन काँप उठे और मूर्च्छित हो गये । फिर सचेत होनेपर बलवान् भीमने उनपर गदाका प्रहार किया ॥ १४½ ॥

सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् ।

पाण्डुपुत्र भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने बाह्लीकका सिर उड़ा दिया । वे वज्रके मारे हुए पर्वतराजकी भाँति मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः ।

नरश्रेष्ठ ! वीर बाह्लीकके मारे जानेपर श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी आपके दस पुत्र भीमसेनको पीड़ा देने लगे ॥

नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—नागदत्त, दृढरथ(दृढरथाश्रय), महाबाहु, अयोभुज (अयोबाहु), दृढ (दृढक्षत्र), सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र (उग्रश्रवा) और अनुयायी (अग्रयायी)॥१७½॥

तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृह्ने भारसाधनान् ॥ १८ ॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।

उनको सामने देखकर भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने प्रत्येकके लिये एक-एक करके भारसाधनमें समर्थ दस बाण हाथमें लिये और उन्हें उनके मर्म-स्थानोंपर चलाया ॥ १८½ ॥

ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।

उन बाणोंसे घायल होकर आपके पुत्र अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे और पर्वतशिखरसे प्रचण्ड वायुद्वारा उखाड़े हुए वृक्षोंके समान तेजोहीन होकर रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान् निहत्य तवात्मजान् ॥ २० ॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।

आपके उन पुत्रोंको दस नाराचोंद्वारा मारकर भीमसेनने कर्णके प्यारे पुत्र वृषसेनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद् बली ।

तदनन्तर कर्णके सुविख्यात बलवान् भ्राता वृकरथने आकर भीमसेनपर भी आक्रमण किया और उन्हें नाराचोंद्वारा घायल कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः सप्त रथान् वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।

भारत ! तत्पश्चात् वीर भीमसेनने आपके सालोंमेंसे सात रथियोंको नाराचोंद्वारा मारकर शतचन्द्रको भी कालके गालमें भेज दिया ॥ २२½ ॥

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥ २४ ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।

महारथी शतचन्द्रके मारे जानेपर अमर्षमें भरे हुए शकुनिके वीर भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त—ये पाँच शूर महारथी भीमसेनपर टूट पड़े और उन्हें पैने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ २३-२४½ ॥

स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः ॥ २५ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिरथान् बली ।

जैसे वर्षाके वेगसे पर्वत आहत होता है, उसी प्रकार उनके नाराचोंसे घायल होकर बलवान् भीमसेनने अपने पाँच बाणोंद्वारा उन पाँचों अतिरथी वीरोंको मार डाला ॥

तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २६ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चानघ ॥ २७ ॥

उन पाँचों वीरोंको मारा गया देख सभी श्रेष्ठ नरेश विचलित हो उठे। निष्पाप नरेश्वर! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्य तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते आपकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २६-२७ ॥

अम्बष्ठान् मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान् स शिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध होकर युधिष्ठिरने अम्बष्ठों, मालवों, शूरवीर त्रिगर्तों तथा शिबिदेशीय सैनिकोंको भी मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ २८ ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् बाह्लीकान् सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥

अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक और वसातिदेशीय योद्धाओंको नष्ट करके राजा युधिष्ठिरने इस भूतलपर रक्तकी कीच मचा दी ॥ २९ ॥

यौधेयान् मालवान् राजन् मद्रकाणां गणान् युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥

राजन्! युधिष्ठिरने अपने बाणोंसे यौधेय, मालव तथा शूरवीर मद्रकगणोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ३० ॥

हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिरके रथके आसपास 'मारो, ले आओ, पकड़ो, घायल करो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो' इत्यादि भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ३१ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको अपनी सेनाओंको खदेड़ते देख आपके पुत्र दुर्योधनसे प्रेरित होकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३२ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला। युधिष्ठिरने भी उनके दिव्यास्त्रोंको अपने दिव्यास्त्रसे ही नष्ट कर दिया ॥ ३३ ॥

तस्मिन् विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।

उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर क्रमशः वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र नामक दिव्यास्त्र चलाया; क्योंकि वे अत्यन्त कुपित होकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको मार डालना चाहते थे ॥ ३४½ ॥

क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ॥ ३५ ॥
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।

परंतु महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यसे तनिक भी भय न खाकर उनके द्वारा चलाये गये और चलाये जानेवाले सभी अस्त्रोंको अपने दिव्यास्त्रोंसे नष्ट कर दिया ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥

भारत! द्रोणाचार्यने अपनी प्रतिज्ञाको सच्ची करनेकी इच्छासे आपके पुत्रके हितमें तत्पर हो धर्मपुत्र युधिष्ठिरको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनके ऊपर ऐन्द्र और प्राजापत्य नामक अस्त्रोंका प्रयोग किया ॥ ३६-३७ ॥

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा
माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन ॥ ३८ ॥

तब गज और सिंहके समान गतिवाले, विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित, बड़े-बड़े लाल नेत्रोंवाले, उत्कृष्ट तेजस्वी कुरुपति युधिष्ठिरने माहेन्द्र अस्त्र प्रकट किया और उसीसे अन्य सभी दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ ३८ ॥

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥

उन अस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर क्रोधभरे द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरका वध करनेकी इच्छासे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो नाज्ञासिषं किंचिद् घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४० ॥

महीपते! फिर तो मैं घोर अन्धकारसे आवृत उस युद्धस्थलमें कुछ भी जान न सका और समस्त प्राणी अत्यन्त भयभीत हो उठे ॥ ४० ॥

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र! ब्रह्मास्त्रको उद्यत देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रसे ही उस अस्त्रका निवारण कर दिया ॥ ४१ ॥

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रधान-प्रधान सैनिक सम्पूर्ण युद्धकलामें

प्रवीण, महाधनुर्धर, नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ४३ ॥

भारत ! उस समय द्रोणाचार्यने कुन्तीकुमारका सामना करना छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये वायव्यास्त्रके द्वारा द्रुपदकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ४३ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते भयके मारे भागने लगे ॥ ४४ ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥

यह देख किरीटधारी अर्जुन और भीमसेन विशाल रथ-सेनाओंके द्वारा अपनी सेनाकी रोक-थाम करते हुए सहसा उस ओर लौट पड़े ॥ ४५ ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥

अर्जुनने द्रोणाचार्यके दाहिने पार्श्वमें और भीमसेनने बायें पार्श्वमें महान् बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥

महाराज ! उस समय केकय, सृंजय, महातेजस्वी पाञ्चाल, मत्स्य तथा यादव सैनिकोंने भी उन दोनोंका अनुसरण किया ॥

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८ ॥

उस समय किरीटधारी अर्जुनकी मार खाती हुई कौरवी-सेना अंधकार और निद्रासे पीड़ित हो पुनः तितर-बितर हो गयी ॥ ४८ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य और स्वयं आपके पुत्र दुर्योधनके मना करनेपर भी उस समय आपके योद्धा रोके न जा सके ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्धविषयक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत, कृपाचार्यद्वारा कर्णको फटकारना तथा कर्णद्वारा कृपाचार्यका अपमान

संजय उवाच

उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद् बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाका जोर बढ़ते देख उसे असह्य मानकर दुर्योधनने कर्णसे कहा—॥ १ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान् महारथान् ॥ २ ॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥

'मित्रवत्सल कर्ण ! यही मित्रोंके कर्तव्यपालनका उपयुक्त अवसर आया है । क्रोधमें भरे हुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय तथा पाण्डव महारथी फुफकारते हुए सर्पोंके समान भयंकर हो उठे हैं । उनके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए मेरे समस्त महारथी योद्धाओंकी आज तुम समराङ्गणमें रक्षा करो ॥

एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

'देखो, ये विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव तथा इन्द्रके समान पराक्रमी बहुसंख्यक पाञ्चाल महारथी कैसे हर्षोत्फुल्ल होकर सिंहनाद कर रहे हैं !' ॥ ४ ॥

कर्ण उवाच

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥

कर्णने कहा—राजन् ! यदि साक्षात् इन्द्र यहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये आ गये हों तो उन्हें भी शीघ्र ही पराजित करके मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनको अवश्य मार डालूँगा ॥ ५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान् पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! तुम धैर्य धारण करो । मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि युद्धस्थलमें आये हुए पाण्डवों तथा पाञ्चालोंको निश्चय ही मारूँगा ॥ ६ ॥

जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥

जैसे अग्निकुमार कार्तिकेयने तारकासुरका विनाश करके इन्द्रको विजय दिलायी थी, उसी प्रकार मैं आज तुम्हें

विजय प्रदान करूँगा । भूपाल ! मुझे तुम्हारा प्रिय करना है, इसीलिये जीवन धारण करता हूँ ॥ ७ ॥

सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥

कुन्तीके सभी पुत्रोंमें अर्जुन ही अधिक शक्तिशाली हैं, अतः मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको अर्जुनपर ही छोडूँगा॥

तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥

मानद ! महाधनुर्धर अर्जुनके मारे जानेपर उनके सभी भाई तुम्हारे वशमें हो जायँगे अथवा पुनः वनमें चले जायँगे॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥

कुरुनन्दन ! तुम मेरे जीते-जी कभी विषाद न करो । मैं समरभूमिमें संगठित होकर आये हुए समस्त पाण्डवोंको जीत लूँगा ॥ १० ॥

पञ्चालान् केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥

मैं अपने बाणसमूहोंद्वारा रणभूमिमें पधारे हुए पाञ्चालों, केकयों और वृष्णिवंशियोंके भी टुकड़े-टुकड़े करके यह सारी पृथ्वी तुम्हें दे दूँगा ॥ ११ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस तरहकी बातें करते हुए सूतपुत्र कर्णसे शरद्वान्‌के पुत्र महाबाहु कृपाचार्यने मुसकराते हुए-से यह बात कही—॥ १२ ॥

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥

'कर्ण ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! राधापुत्र ! यदि बात बनानेसे ही कार्य सिद्ध हो जाय, तब तो तुम-जैसे सहायकको पाकर कुरुराज दुर्योधन सनाथ हो गये ॥ १३ ॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरव्यस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥

'कर्ण ! तुम कुरुनन्दन सुयोधनके समीप तो बहुत बढ़-कर बातें किया करते हो; किंतु न तो कभी कोई तुम्हारा पराक्रम देखा जाता है और न उसका कोई फल ही सामने आता है ॥

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥

'सूतनन्दन ! पाण्डुके पुत्रोंसे युद्धस्थलमें तुम्हारी अनेकों बार मुठभेड़ हुई है; परंतु सर्वत्र पाण्डवोंसे तुम्हीं परास्त हुए हो ॥ १५ ॥

ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः ॥ १६ ॥

'कर्ण ! याद है कि नहीं, जब गन्धर्व दुर्योधनको पकड़-कर लिये जा रहे थे, उस समय सारी सेना तो युद्ध कर रही थी और अकेले तुम ही सबसे पहले पलायन कर गये थे ॥

विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥

'कर्ण ! विराट नगरमें भी सम्पूर्ण कौरव एकत्र हुए थे; किंतु अर्जुनने अकेले ही वहाँ सबको हरा दिया था । कर्ण ! तुम भी अपने भाइयोंके साथ परास्त हुए थे ॥ १७ ॥

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥

'समराङ्गणमें अकेले अर्जुनका सामना करनेकी भी तुममें शक्ति नहीं है; फिर श्रीकृष्णसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेका उत्साह कैसे दिखाते हो ? ॥ १८ ॥

अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद् यस्तु तद् वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! चुपचाप युद्ध करो । तुम बातें बहुत बनाते हो । जो बिना कुछ कहे ही पराक्रम दिखाये, वही वीर है और वैसा करना ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ १९ ॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! तुम शरद् ऋतुके निष्फल बादलोंके समान गर्जना करके भी निष्फल ही दिखायी देते हो; किंतु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझ रहे हैं ॥ २० ॥

तावद् गर्जस्व राधेय यावत् पार्थं न पश्यसि ।
आरात् पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥

'राधानन्दन ! जबतक तुम अर्जुनको नहीं देखते हो, तभीतक गर्जना कर लो । कुन्तीकुमार अर्जुनको समीप देख लेनेपर फिर यह गर्जना तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायगी ॥२१॥

त्वमनासाद्य तान् बाणान् फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२ ॥

'जबतक अर्जुनके वे बाण तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ रहे हैं, तभीतक तुम जोर-जोरसे गरज रहे हो । अर्जुनके बाणोंसे घायल होनेपर तुम्हारे लिये यह गर्जन-तर्जन दुर्लभ हो जायगा॥

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।

'क्षत्रिय अपनी भुजाओंसे शौर्यका परिचय देते हैं । ब्राह्मण वाणीद्वारा प्रवचन करनेमें वीर होते हैं । अर्जुन धनुष चलाने-में शूर हैं; किंतु कर्ण केवल मनसूबे बाँधनेमें वीर है । जिन्होंने अपने

पराक्रमसे भगवान् शंकरको भी संतुष्ट किया है, उन अर्जुनको कौन मार सकता है ?' ॥ २३½ ॥

एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ।

उन कृपाचार्यके ऐसा कहनेपर योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्णने उस समय रुष्ट होकर कृपाचार्यसे इस प्रकार कहा—॥२४½॥

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।

'शूरवीर वर्षाकालके मेघोंकी तरह सदा गरजते हैं और ठीक ऋतुमें बोये हुए बीजके समान शीघ्र ही फल भी देते हैं॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
तत्तद् विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।

'युद्धस्थलमें महान् भार उठानेवाले शूरवीर यदि युद्धके मुहानेपर अपनी प्रशंसाकी भी बातें कहते हैं तो इसमें मुझे उनका कोई दोष नहीं दिखायी देता ॥ २६½ ॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।

'पुरुष अपने मनसे जिस भारको ढोनेका निश्चय करता है, उसमें दैव अवश्य ही उसकी सहायता करता है ।२७½॥

व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान् सहसात्वतान्।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २९ ॥

'मैं मनसे जिस कार्यभारका वहन कर रहा हूँ, उसकी सिद्धिमें दृढ़ निश्चय ही मेरा सहायक है । विप्रवर ! मैं कृष्ण और सात्यकिसहित समस्त पाण्डवोंको युद्धमें मारनेका निश्चय करके यदि गरज रहा हूँ तो उसमें आपका क्या नष्ट हुआ जा रहा है ? ॥ २८-२९ ॥

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥

'शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शूरवीर व्यर्थ नहीं गरजते हैं। विद्वान् पुरुष पहले अपनी सामर्थ्यको समझ लेते हैं, उसके बाद गर्जना करते हैं ॥ ३० ॥

सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥

'गौतम ! आज मैं रणभूमिमें विजयके लिये साथ-साथ प्रयत्न करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीत लेनेके लिये मन-ही-मन उत्साह रखता हूँ । इसीलिये गर्जना करता हूँ ॥

पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान्ससात्वतान्॥३२॥
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।

'ब्रह्मन् ! मेरी इस गर्जनाका फल देख लेना । मैं युद्धमें श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा अनुगामियोंसहित पाण्डवोंको मारकर इस भूमण्डलका निष्कण्टक राज्य दुर्योधनको दे दूँगा' ॥



कृप उवाच

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ३३ ॥
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥

कृपाचार्य बोले—सूतपुत्र ! तुम्हारे ये मनसूबे बाँधनेके निरर्थक प्रलाप मेरे लिये विश्वासके योग्य नहीं हैं । कर्ण ! तुम सदा ही श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर आक्षेप किया करते हो; परंतु विजय उसी पक्षकी होगी, जहाँ युद्धविशारद श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान हैं ॥ ३३-३४ ॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३५ ॥

यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्प और राक्षस भी कवच बाँधकर युद्धके लिये आ जायँ तो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको वे भी जीत नहीं सकते ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंका सम्मान करनेवाले, सदा धर्मपरायण, अस्त्रविद्यामें विशेष कुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं ॥ ३६½ ॥

भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।

इनके बलवान् भाई भी सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी कलामें परिश्रम किये हुए हैं। वे गुरुसेवापरायण, विद्वान्, धर्मतत्पर और यशस्वी हैं ॥ ३७½ ॥

सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ॥ ३९ ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥ ४० ॥

उनके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी, उनमें अनुराग रखनेवाले और प्रहार करनेमें कुशल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दुर्मुख-पुत्र जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, धर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुतेजन, द्रुपदके पुत्रगण तथा महान् अस्त्रवेत्ता द्रुपद ॥ ३८—४० ॥

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥

जिनके लिये शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय तथा समरथ—ये विराटके श्रेष्ठ भाई और इन भाइयोंसहित मत्स्यराज विराट युद्ध करनेको तैयार हैं, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र तथा राक्षस घटोत्कच—ये वीर जिनके लिये युद्ध कर रहे हैं, उन पाण्डवोंकी कभी कोई क्षति नहीं हो सकती है ॥ ४१—४३ ॥

एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतस्य वै।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम्।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके ये तथा और भी बहुत-से गुण हैं। भीमसेन और अर्जुन यदि चाहें तो अपने अस्त्रबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, नाग और हाथियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्का सर्वथा विनाश कर सकते हैं ॥ ४४-४५ ॥

युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद् घोरचक्षुषा।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥
कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान्।

युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डलको भस्म कर सकते हैं। कर्ण! जिनके लिये अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्ण भी कवच धारण करके लड़नेको तैयार हैं, उन शत्रुओंको युद्धमें जीतनेका साहस तुम कैसे कर रहे हो? ॥

महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥ ४७ ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह।

सूतपुत्र! तुम जो सदा समरभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेका उत्साह दिखाते हो, यह तुम्हारा महान् अन्याय (अक्षम्य अपराध) है ॥ ४७½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम्।

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! उनके ऐसा कहनेपर राधापुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और शरद्वान्के पुत्र गुरु कृपाचार्यसे उस समय यों बोला—॥ ४८½ ॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद् वचः ॥ ४९ ॥
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै।

'बाबाजी! पाण्डवोंके विषयमें तुमने जो बात कही है वह सब सत्य है। यही नहीं, पाण्डवोंमें और भी बहुत-से गुण हैं ॥

अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥
सदैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः।

'यह भी ठीक है कि कुन्तीके पुत्रोंको रणभूमिमें इन्द्र आदि देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस भी जीत नहीं सकते ॥ ५०½ ॥

तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ५१ ॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥

'तथापि मैं इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे कुन्तीके पुत्रोंको जीत लूँगा। ब्रह्मन्! मुझे इन्द्रने यह अमोघ शक्ति दे रक्खी है; इसके द्वारा मैं सव्यसाची अर्जुनको युद्धमें अवश्य मार डालूँगा ॥

हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥

'पाण्डुपुत्र अर्जुनके मारे जानेपर उनके बिना उनके सहोदर भाई किसी तरह इस पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकेंगे ॥

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा।
अयत्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥

'गौतम! उन सबके नष्ट हो जानेपर बिना किसी प्रयत्नके ही यह समुद्रसहित सारी पृथ्वी कौरवराज दुर्योधनके वशमें हो जायगी ॥ ५४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥

'गौतम! इस संसारमें सुनीतिपूर्ण प्रयत्नोंसे सारे कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस बातको समझकर ही मैं गर्जना करता हूँ ॥ ५५ ॥

त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चापि संयुगे।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥

'तुम तो ब्राह्मण और उसमें भी बूढ़े हो। तुममें युद्ध करनेकी शक्ति है ही नहीं। इसके सिवा, तुम कुन्तीके पुत्रोंपर स्नेह रखते हो; इसलिये मोहवश मेरा अपमान कर रहे हो ॥

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज ।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥ ५७ ॥

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण ! यदि यहाँ पुनः इस प्रकार मुझे अप्रिय लगनेवाली बात बोलोगे तो मैं अपनी तलवार उठाकर तुम्हारी जीभ काट लूँगा ॥ ५७ ॥

यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ।
भीषयन् सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज ।

'ब्रह्मन् ! दुर्मते ! तुम जो युद्धस्थलमें समस्त कौरव-सेनाओंको भयभीत करनेके लिये पाण्डवोंके गुण गाना चाहते हो, उसके विषयमें भी मैं जो यथार्थ बात कह रहा हूँ, उसे सुन लो॥

दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥ ५९ ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च ।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ६० ॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान् नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥

'दुर्योधन, द्रोण, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, तुम स्वयं, सोमदत्त, भूरि, अश्वत्थामा और विविंशति—ये युद्धकुशल सम्पूर्ण वीर जहाँ कवच बाँधकर खड़े हो जायँगे, वहाँ इन्हें कौन मनुष्य जीत सकता है ? वह इन्द्रके तुल्य बलवान् शत्रु ही क्यों न हो (इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता) ॥ ५९–६१ ॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः ।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२ ॥

'जो शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, स्वर्ग-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले, धर्मज्ञ और युद्धकुशल हैं, वे देवताओं-को भी युद्धमें मार सकते हैं ॥ ६२ ॥

एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः ।
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः ॥ ६३ ॥

'ये वीरगण कुरुराज दुर्योधनकी जय चाहते हुए पाण्डवों-के वधकी इच्छासे संग्राममें कवच बाँधकर डट जायँगे ॥६३॥

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि ।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ॥ ६४ ॥

'मैं तो बड़े-से-बड़े बलवानोंकी भी विजय दैवके ही अधीन मानता हूँ। दैवाधीन होनेके ही कारण महाबाहु भीष्म आज सैकड़ों बाणोंसे विद्ध होकर रणभूमिमें शयन करते हैं ॥ ६४ ॥

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसंधः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः ॥ ६६ ॥

'विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसंध, सुदक्षिण, रथियोंमें श्रेष्ठ शल तथा पराक्रमी भगदत्त—ये और दूसरे भी बहुत-से राजा देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय थे ॥ ६५-६६ ॥

निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः ।
किमन्यद् दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥ ६७ ॥

'परंतु उन अत्यन्त प्रबल तथा शूरवीर नरेशोंको भी पाण्डवोंने युद्धमें मार डाला। पुरुषाधम ! तुम इसमें दैव-संयोगके सिवा दूसरा कौन-सा कारण मानते हो ? ॥ ६७ ॥

यांश्च तान् स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज ।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥

'ब्रह्मन् ! तुम दुर्योधनके जिन शत्रुओंकी सदा स्तुति करते रहते हो, उनके भी तो सैकड़ों और सहस्रों शूरवीर मारे गये हैं ॥ ६८ ॥

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह ।
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथंचन ॥ ६९ ॥

'कौरव तथा पाण्डव दोनों दलोंकी सारी सेनाएँ प्रतिदिन नष्ट हो रही हैं। मुझे इसमें किसी प्रकार भी पाण्डवोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखायी देता है ॥ ६९ ॥

यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम ।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे ।
दुर्योधनहितार्थाय 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः' ॥ ७० ॥

'द्विजाधम ! तुम जिन्हें सदा बलवान् मानते रहते हो, उन्हींके साथ मैं संग्रामभूमिमें दुर्योधनके हितके लिये यथा-शक्ति युद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है' ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें कृपाचार्य और कर्णका विवादविषयक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना, दुर्योधनका उसे मनाना, पाण्डवों और पाञ्चालोंका कर्णपर आक्रमण, कर्णका पराक्रम, अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय तथा दुर्योधनका अश्वत्थामासे पाञ्चालोंके वधके लिये अनुरोध

संजय उवाच

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम्।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपने मामाके प्रति सूतपुत्र कर्णको कटु वचन सुनाते देख अश्वत्थामा बड़े वेगसे तलवार उठाकर तुरंत कर्णपर टूट पड़ा॥ १॥

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम्।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात्॥ २॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुरुराज दुर्योधनके देखते-देखते कर्णपर आक्रमण किया॥ २॥

अश्वत्थामोवाच

यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम।
शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम्॥ ३॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम्।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कश्चिद् गणयन् मृधे॥ ४॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि! नराधम! मेरे मामा सम्पूर्ण जगत्के श्रेष्ठ धनुर्धर एवं शूरवीर हैं। ये अर्जुनके सच्चे गुणोंका बखान कर रहे थे, तो भी तू द्वेषवश अपनी शूरताकी डींग हाँकता हुआ और घमण्डमें आकर आज युद्धमें किसीको कुछ न समझता हुआ जो इन्हें फटकार रहा है, उसका क्या कारण है?॥ ३-४॥

क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यत्त्वां निर्जित्य संयुगे।
गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम्॥ ५॥

जब युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनने तुझे परास्त करके तेरे देखते-देखते जयद्रथको मार डाला था, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ था? तेरे वे अस्त्र-शस्त्र कहाँ चले गये थे?॥

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः॥ ६॥

सूताधम! जिन्होंने समराङ्गणमें पहले साक्षात् महादेवजी-के साथ युद्ध किया है, उन्हें केवल मनोरथोंद्वारा जीतनेकी तू व्यर्थ इच्छा प्रकट कर रहा है॥ ६॥

यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥ ७॥
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः॥ ८॥

दुर्बुद्धि! सूत! जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं *तथा* श्रीकृष्णके साथ रहनेपर जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हीं लोकके एकमात्र अपराजित वीर अर्जुनको जीतनेके लिये इन राजाओंसहित तेरी क्या शक्ति है?॥ ७-८॥

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते॥ ९॥

दुर्बुद्धि नराधम! कर्ण! तू देख और खड़ा रह। दुर्मते! मैं अभी तेरा सिर धड़से उतार लेता हूँ॥ ९॥

संजय उवाच

तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम्।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः॥ १०॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वेगपूर्वक उठे हुए अश्वत्थामाको महातेजस्वी स्वयं राजा दुर्योधन तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने रोका॥ १०॥

कर्ण उवाच

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम॥ ११॥

कर्ण बोला—कुरुश्रेष्ठ! यह दुर्बुद्धि एवं नीच ब्राह्मण बड़ा शूरवीर बनता है और युद्धकी श्लाघा रखता है। तुम इसे छोड़ दो। आज यह मेरे पराक्रमका सामना करे॥ ११॥

अश्वत्थामोवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति॥ १२॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र! हमलोग तेरे इस अपराधको क्षमा करते हैं। तेरे इस बढ़े हुए घमण्डका नाश अर्जुन करेंगे॥ १२॥

दुर्योधन उवाच

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रं कथंचन॥ १३॥

दुर्योधन बोला—दूसरोंको मान देनेवाले (भाई) अश्वत्थामा! प्रसन्न होओ। तुम्हें क्षमा करना चाहिये। सूतपुत्र कर्णपर तुम्हें किसी प्रकार भी क्रोध करना उचित नहीं है॥

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले।
महत् कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम॥ १४॥

द्विजश्रेष्ठ! तुमपर, कर्णपर तथा कृपाचार्य, द्रोणाचार्य मद्रराज शल्य और शकुनिपर महान् कार्यभार रक्खा गया है; तुम प्रसन्न होओ॥ १४॥

एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः॥ १५॥

ब्रह्मन्! ये सामने राधापुत्र कर्णके साथ युद्धकी अभिलाषा रखकर समस्त पाण्डव-सैनिक सब ओरसे ललकारते आ रहे हैं॥

संजय उवाच

प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः॥ १६॥

संजय कहते हैं—महाराज! राजा दुर्योधनके मनानेपर क्रोधके वेगसे युक्त महामना अश्वत्थामा शान्त एवं प्रसन्न हो गया॥ १६॥

ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः।
सौम्यस्वभावाद् राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः॥ १७॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् सौम्य स्वभावके कारण शीघ्र ही मृदुता आ जानेसे महामना कृपाचार्य भी शान्त हो गये और इस प्रकार बोले॥ १७॥

कृप उवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति॥ १८॥

कृपाचार्यने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र! हमलोग तो तेरे इस अपराधको क्षमा कर देते हैं; परंतु अर्जुन तेरे इस बढ़े हुए घमंडका अवश्य नाश करेंगे॥ १८॥

संजय उवाच

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः॥ १९॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल एक साथ होकर गर्जन-तर्जन करते हुए चारों ओरसे कर्णपर चढ़ आये॥ १९॥

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव॥ २०॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः।

रथियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी एवं तेजस्वी वीर कर्ण भी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके समान प्रधान कौरव वीरोंसे घिरकर अपने बाहुबलका भरोसा करके धनुष उठाकर युद्धके लिये खड़ा हो गया॥ २०½॥

ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः॥ २१॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम्।

महाराज! तदनन्तर कर्णका पाण्डवोंके साथ भीषण युद्ध आरम्भ हुआ, जो सिंहनादसे सुशोभित हो रहा था॥ २१½॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः॥ २२॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन्।

राजन्! यशस्वी पाण्डव और पाञ्चालोंने महाबाहु कर्णको देखकर उच्चस्वरसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ २२½॥

अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे॥ २३॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन् पुरुषाधम।

'कहाँ कर्ण है? यह कर्ण है। दुरात्मन् नराधम कर्ण! इस महायुद्धमें खड़ा रह और हमारे साथ युद्ध कर'॥ २३½॥

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन्॥ २४॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता॥ २५॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः॥ २६॥
घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन्।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः॥ २७॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः।

दूसरे लोगोंने राधापुत्र कर्णको देखकर क्रोधसे लाल आँखें करके कहा—'समस्त श्रेष्ठ राजा मिलकर इस घमंडी और मूर्ख सूतपुत्रको मार डालें। इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है। यह पापात्मा पुरुष सदा कुन्तीकुमारोंके साथ अत्यन्त वैर रखता आया है। दुर्योधनकी रायमें रहकर यही सारे अनर्थोंकी जड़ बना हुआ है। अतः इसे मार डालो।' ऐसा कहते हुए समस्त क्षत्रिय महारथी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे सूतपुत्रके वधके लिये प्रेरित हो बाणोंकी बड़ी भारी वर्षाद्वारा उसे आच्छादित करते हुए उसपर टूट पड़े॥ २४—२७½॥

तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान् महारथान्॥ २८॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत।

उन समस्त महारथियोंको इस प्रकार धावा करते देख सूतपुत्रके मनमें न तो व्यथा हुई और न त्रास ही हुआ॥

दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम्॥ २९॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः॥ ३०॥
वारयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ! प्रलयकालके समान उस सैन्यसागरको उमड़ा हुआ देख संग्राममें पराजित न होनेवाले बलवान्, शीघ्रकारी और महान् शक्तिशाली कर्णने आपके पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे बाण-समूहकी वर्षा करके सब ओरसे शत्रुओंकी उस सेनाको रोक दिया॥ २९-३०½॥

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन्॥ ३१॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव॥ ३२॥

तदनन्तर सैकड़ों और सहस्रों नरेशोंने अपने धनुषोंको कम्पित करते हुए बाणोंकी वर्षासे कर्णकी भी प्रगति रोक दी। जैसे दैत्योंने इन्द्रके साथ संग्राम किया था, उसी प्रकार वे राजालोग राधापुत्र कर्णके साथ युद्ध करने लगे॥

शरवर्षं तु तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम्।
शरवर्षेण महता समन्ताद् व्यकिरत् प्रभो ॥ ३३ ॥

प्रभो ! राजाओंद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको कर्णने बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि करके सब ओर बिखेर दिया ॥ ३३ ॥

तद् युद्धमभवत् तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम्।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें दानवोंके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार घात-प्रतिघातकी इच्छावाले राजाओं तथा कर्णका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो रहा था ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम्।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३५ ॥

वहाँ हमने सूतपुत्र कर्णकी अद्भुत फुर्ती देखी, जिससे सब ओरसे प्रयत्न करनेपर भी शत्रुपक्षीय योद्धा उस युद्ध-स्थलमें कर्णको काबूमें नहीं कर पा रहे थे ॥ ३५ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान् पार्थिवानां महारथः।
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥
आत्मनामाङ्कितान् घोरान् राधेयः प्राहिणोच्छरान्।

राजाओंके उन बाणसमूहोंका निवारण करके महारथी राधापुत्र कर्णने उनके रथके जूओं, ईषादण्डों, छत्रों, ध्वजाओं तथा घोड़ोंपर अपने नाम खुदे हुए भयंकर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७ ॥
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव।

तत्पश्चात् कर्णके बाणोंसे पीड़ित और व्याकुल हुए राजा लोग सर्दीसे कष्ट पानेवाली गायोंके समान इधर-उधर चक्कर काटने लगे ॥ ३७½ ॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम संघान् कर्णेन ताडितान्।

कर्णके बाणोंकी चोट खाकर मरनेवाले घोड़ों, हाथियों और रथियोंके झुंड-के-झुंड हमने वहाँ देखे थे ॥ ३८½ ॥

शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम्।

राजन् ! युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंके कट-कटकर गिरे हुए मस्तकों और भुजाओंसे वहाँकी सारी भूमि सब ओरसे पट गयी थी ॥ ३९½ ॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम्।

कुछ लोग मारे गये थे, कुछ मारे जा रहे थे और कुछ लोग सब ओर पीड़ासे कराह रहे थे। इससे वह युद्धस्थल यमपुरीके समान भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह।

उस समय राजा दुर्योधनने कर्णका पराक्रम देख अश्वत्थामाके पास पहुँचकर यह बात कही— ॥ ४१½ ॥

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम्।
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ४३ ॥

'रणभूमिमें वह कवचधारी कर्ण समस्त राजाओंके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा है। देखो, कर्णके बाणोंसे पीड़ित हुई यह पाण्डव-सेना कार्तिकेयके द्वारा नष्ट की हुई असुरवाहिनी-के समान भागी जा रही है ॥ ४२-४३ ॥

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ४४ ॥

'बुद्धिमान् कर्णके द्वारा रणभूमिमें पराजित हुई इस सेना-को देखकर सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे ये अर्जुन आगे बढ़े जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

तद् यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम्।
न हन्यात् पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥

'अतः हमलोगोंके देखते-देखते युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसे भी महारथी सूतपुत्रको न मार सकें, वैसी नीतिसे काम लो' ॥ ४५ ॥

ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव।

तब दैत्यसेनापर आक्रमण करनेवाले इन्द्रके समान अर्जुनको कौरवसेनाकी ओर आते देख अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी कृतवर्मा सूतपुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छासे अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४६½ ॥

बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः।

राजेन्द्र ! उस समय वृत्रासुरपर चढ़ाई करनेवाले इन्द्रके समान पाञ्चालोंसे घिरे हुए अर्जुनने भी कर्णपर धावा किया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत् किमुत्तरम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! काल, अन्तक और यमके समान क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको देखकर वैकर्तन कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर दिया ? (कैसे उनका सामना किया) ॥

यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम्।

महारथी कर्ण सदा ही अर्जुनके साथ स्पर्धा रखता था और युद्धमें अत्यन्त भयंकर अर्जुनको पराजित करनेका विश्वास प्रकट करता था ॥ ४९½ ॥

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।

संजय ! उस समय अपने सदाके अत्यन्त वैरी अर्जुनको सहसा सामने पाकर सूर्यपुत्र कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर देनेका निश्चय किया ? ॥ ५०½ ॥

संजय उवाच

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ॥ ५१ ॥
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद् धनंजयम् ।

संजयने कहा—राजन् ! जैसे एक हाथीको आते देख दूसरा हाथी उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र धनंजयको आते देख कर्ण बिना किसी घबराहटके युद्धमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ ५१½ ॥

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२ ॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।

वेगसे आते हुए वैकर्तन कर्णको अर्जुनने अपने सीधे जानेवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया और कर्णने भी अर्जुनको अपने बाणोंसे ढक दिया ॥ ५२½ ॥

स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनने पुनः अपने बाणोंके जालसे कर्णको आच्छादित कर दिया । तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने तीन बाणोंसे अर्जुनको बींध डाला ॥ ५३½ ॥

तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्छिलाधौतान् प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली अर्जुन कर्णकी इस फुर्तीको न सह सके । उन्होंने सूतपुत्र कर्णको शिलापर तेज किये हुए स्वच्छ अग्रभागवाले तीन सौ बाण मारे ॥ ५४-५५ ॥

विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान् नाराचेन हसन्निव ॥ ५६ ॥

इसके सिवा कुपित हुए पराक्रमी एवं बलवान् अर्जुनने हँसते हुए-से एक नाराच नामक बाणके द्वारा कर्णकी बायीं भुजाके अग्रभागमें चोट पहुँचायी ॥ ५६ ॥

तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।

उस बाणसे घायल हुए कर्णके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा । फिर आधे निमेषमें ही उस महाबली वीरने पुनः वह धनुष लेकर सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बाण-समूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको ढक दिया ॥ ५७½ ॥

शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८ ॥
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनंजयः ।

भारत ! सूतपुत्रद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको अर्जुनने मुसकराते हुए-से बाणोंकी वृष्टि करके नष्ट कर दिया ॥ ५८½ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९ ॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

राजन् ! वे दोनों महाधनुर्धर वीर आघातका प्रतिघात करनेकी इच्छासे परस्पर बाणोंकी वर्षा करके एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ ५९½ ॥

तदद्भुतं महद् युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६० ॥
क्रुद्धयोर्वाशिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।

जैसे दो जंगली हाथी किसी हथिनीके लिये क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कर्ण और अर्जुनका वह संग्राम महान् एवं अद्भुत था ॥ ६०½ ॥

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः ।

तदनन्तर महाधनुर्धर अर्जुनने कर्णका पराक्रम देखकर उसके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे शीघ्रतापूर्वक काट दिया ॥

अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद् यमसादनम् ॥ ६२ ॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।

साथ ही उसके चारों घोड़ोंको चार भल्लोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया । फिर शत्रुसंतापी अर्जुनने उसके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ६२½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥ ६३ ॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर कर्णको पाण्डुनन्दन अर्जुनने चार बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।

जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही उतरकर बाणपीड़ित कर्ण शीघ्रतापूर्वक कृपाचार्यके रथपर चढ़ गया ॥

स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥ ६५ ॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।

अर्जुनके बाण-समूहोंसे पीड़ित और व्याप्त होकर वह काँटोंसे भरे हुए साहीके समान जान पड़ता था । अपने प्राण बचानेके लिये कर्ण कृपाचार्यके रथपर जा बैठा था ॥ ६५½ ॥

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥
धनंजयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।

भरतश्रेष्ठ ! राधापुत्र कर्णको पराजित हुआ देख आपके सैनिक अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो दसों दिशाओंमें भाग चले ॥

द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥ ६७ ॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।

नरेश्वर ! उन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने लौटाया और उस समय उनसे यह बात कही—॥ ६७½ ॥

अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान् हनिष्यामि सपञ्चालान् ससोमकान् ॥ ६९ ॥

'क्षत्रियशिरोमणि शूरवीरो ! ठहरो, तुम्हारे भागनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं स्वयं अभी अर्जुनका वध करनेके लिये युद्धभूमिमें चलता हूँ । मैं पाञ्चालों और सोमकों-सहित कुन्तीकुमारोंका वध करूँगा ॥ ६८-६९ ॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ७० ॥

'आज गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ युद्ध करते समय कुन्तीके सभी पुत्र प्रलयकालमें कालके समान मेरा पराक्रम देखेंगे ॥ ७० ॥

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः ॥ ७१ ॥

'आज समराङ्गणमें सहस्रों योद्धा मेरे छोड़े हुए हजारों बाणसमूहोंको शलभोंकी पंक्तियोंके समान देखेंगे ॥ ७१ ॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥

'जैसे वर्षाकालमें मेघ जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार धनुष हाथमें लेकर मेरेद्वारा की हुई बाणमयी वर्षाको आज युद्धस्थलमें समस्त सैनिक देखेंगे ॥ ७२ ॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥

'आज रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा मैं अर्जुनको जीत लूँगा । शूरवीरो ! तुम समरभूमिमें डटे रहो और अर्जुनसे भय छोड़ दो ॥ ७३ ॥

न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥

'जैसे समुद्र तटभूमितक पहुँचकर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार अर्जुन मेरे समीप आकर मेरा पराक्रम नहीं सह सकेंगे' ॥ ७४ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥

ऐसा कहकर दुर्धर्ष राजा दुर्योधनने क्रोधसे लाल आँखें करके विशाल सेनाके साथ अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ७५ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७६ ॥

महाबाहु दुर्योधनको अर्जुनके सामने जाते देख शरद्वान्-के पुत्र कृपाचार्यने उस समय अश्वत्थामाके पास जाकर यह बात कही—॥ ७६ ॥

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्‌धुमिच्छति ॥ ७७ ॥

'यह अमर्षशील महाबाहु राजा दुर्योधन क्रोधसे अपनी सुधबुध खो बैठा है और पतंगोंकी वृत्तिका आश्रय ले अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ७७ ॥

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः ।
न जह्यात् पुरुषव्याघ्रस्तावद् वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥

'यह पुरुषसिंह नरेश अर्जुनसे भिड़कर हमारे देखते-देखते जबतक अपने प्राणोंको त्याग न दे, उसके पहले ही तुम जाकर उस कुरुवंशी राजाको रोको ॥ ७८ ॥

यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं नाद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद् वारय संयुगे ॥ ७९ ॥

'यह कौरववंशका वीर भूपाल आज जबतक अर्जुनके बाणोंकी पहुँचके भीतर नहीं जाता है, तभीतक इसे रोक दो॥

यावत् पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसंनिभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद् युद्धान्निवार्यताम् ॥ ८० ॥

'केंचुलसे छूटे हुए सर्पोंके समान अर्जुनके भयंकर बाणों-द्वारा जबतक राजा दुर्योधन भस्म नहीं कर दिया जाता है, तबतक ही उसे युद्धसे रोक दो ॥ ८० ॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद् राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥

'मानद ! यह मुझे अनुचित-सा दिखायी देता है कि हमलोगोंके रहते हुए स्वयं राजा दुर्योधन बिना किसी सहायकके अर्जुनके साथ युद्धके लिये जाय ॥ ८१ ॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥

'जैसे सिंहके साथ हाथी युद्ध करे तो उसका जीवित रहना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार किरीटधारी कुन्ती-कुमार अर्जुनके साथ युद्धमें प्रवृत्त होनेपर कुरुवंशी दुर्योधनके जीवनको मैं दुर्लभ ही मानता हूँ' ॥ ८२ ॥

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥

मामाके ऐसा कहनेपर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामाने तुरंत ही दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार कहा—॥

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥

'गान्धारीनन्दन ! कुरुकुलरत्न ! मैं सदा तुम्हारा हित चाहनेवाला हूँ । तुम मेरे जीते-जी मेरा अनादर करके स्वयं युद्धमें न जाओ ॥ ८४ ॥

न हि ते सम्भ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥

'सुयोधन ! अर्जुनपर विजय पानेके सम्बन्धमें तुम्हें किसी प्रकार संदेह नहीं करना चाहिये । तुम खड़े रहो । मैं अर्जुनको रोकूँगा' ॥ ८५ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥

दुर्योधन बोला—द्विजश्रेष्ठ ! हमारे आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी उपेक्षा ही करते हो ॥ ८६ ॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥

अथवा मेरे दुर्भाग्यसे युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मन्द पड़ गया है । तुम धर्मराज युधिष्ठिर अथवा द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये ऐसा करते हो, इसका मुझे पता नहीं है॥८७॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥

मुझ लोभीको धिक्कार है, जिसके कारण किसीसे पराजित न होनेवाले और सुख भोगनेके योग्य मेरे सभी भाई-बन्धु महान् दुःख उठा रहे हैं ॥ ८८ ॥

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रून् न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद् गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥

कृपीकुमार अश्वत्थामाके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो शस्त्रवेत्ताओंमें प्रधान, महादेवजीके समान पराक्रमी तथा शक्तिशाली होकर भी युद्धमें शत्रुका संहार नहीं करेगा॥८९॥

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान् ममाहितान् ।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥

अश्वत्थामन् ! प्रसन्न होओ । मेरे इन शत्रुओंका नाश करो । तुम्हारे अस्त्रोंके मार्गमें देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते हैं ॥ ९० ॥

पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥

द्रोणकुमार ! तुम अनुगामियोंसहित पाञ्चालों और सोमकोंको मार डालो; फिर तुमसे ही सुरक्षित हो हमलोग अपने शेष शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ ९१ ॥

एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥

विप्रवर ! ये यशस्वी पाञ्चाल और सोमक क्रोधमें भरकर दावानलके समान मेरी सेनाओंमें विचर रहे हैं । इन्हींके साथ केकय भी हैं । महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! वे किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित हो मेरी सेनाका सर्वनाश न कर डालें । अतः पहले ही उन्हें रोको ॥ ९२–९३ ॥

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले माननीय भाई अश्वत्थामा ! तुम शीघ्र ही जाओ । पहले करो या पीछे; यह कार्य तुम्हारे ही वशका है ॥ ९४ ॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत् सर्वमपाञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥

महाबाहो ! तुम पाञ्चालोंका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो । यदि तुम तैयार हो जाओ तो निश्चय ही सारे जगत्को पाञ्चालोंसे शून्य कर दोगे ॥ ९५ ॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन् वाचो भविष्यति च तत् तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥

पुरुषसिंह ! सिद्ध पुरुषोंने तुम्हारे विषयमें ऐसी ही बातें कही हैं । वे उसी रूपमें सत्य होंगी । अतः तुम सेवकोंसहित पाञ्चालोंका वध करो ॥ ९६ ॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपाञ्चालाः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ९७ ॥

मैं तुमसे यह सच कहता हूँ कि तुम्हारे बाणोंके मार्गमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं ठहर सकते; फिर कुन्तीके पुत्रों और पाञ्चालोंकी तो बिसात ही क्या है ? ॥ ९७ ॥

न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद् योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

वीर ! सोमकोंसहित पाण्डव संग्राममें तुम्हारे साथ बलपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ९८ ॥

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥

महाबाहो ! जाओ, जाओ । हमारे इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये । देखो, अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर यह सेना भागी जा रही है ॥ ९९ ॥

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥

दूसरोंको मान देनेवाले महाबाहु वीर ! तुम अपने दिव्य तेजसे पाञ्चालों और पाण्डवोंका निग्रह करनेमें समर्थ हो ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें दुर्योधनका वचनविषयक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना

संजय उवाच

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः।
चकारारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर रणदुर्मद अश्वत्थामाने उसी प्रकार शत्रुवधके लिये प्रयत्न आरम्भ किया, जैसे इन्द्र दैत्यवधके लिये यत्न करते हैं॥१॥

प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः।
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ॥ २ ॥

उस समय महाबाहु अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे यह वचन कहा—'महाबाहु कौरवनन्दन! तुम जैसा कहते हो, यही ठीक है ॥ २ ॥

प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ॥ ३ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! पाण्डव मुझे तथा मेरे पिताजीको भी बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार उनको भी हम दोनों पिता-पुत्र प्रिय हैं, किंतु युद्धस्थलमें हमारा यह भाव नहीं रहता ॥ ३ ॥

शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत्।
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ४ ॥

'तात! हम अपने प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भय-से होकर यथाशक्ति युद्ध करते हैं। नृपश्रेष्ठ! मैं, कर्ण, शल्य, कृप और कृतवर्मा पलक मारते-मारते पाण्डव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ४ ॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुरुश्रेष्ठ! यदि युद्धस्थलमें हमलोग न रहें, तो पाण्डव भी आधे निमेषमें ही कौरव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ५ ॥

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम्।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥

'हम यथाशक्ति पाण्डवोंसे युद्ध करते हैं और वे हमलोगोंसे युद्ध करना चाहते हैं। भारत! इस प्रकार हमारा तेज परस्पर एक दूसरेसे टकराकर शान्त हो जाता है ॥६॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन्! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि पाण्डवोंके जीते-जी उनकी सेनाको बलपूर्वक जीतना असम्भव है ॥ ७ ॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥

'भरतनन्दन! पाण्डव शक्तिशाली हैं और अपने लिये युद्ध करते हैं, फिर वे किस लिये तुम्हारी सेनाओंका संहार नहीं करेंगे? ॥ ८ ॥

त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥ ९ ॥

'कौरवनरेश! तुम तो लोभी और छल-कपटकी विद्याको जाननेवाले हो। सबपर संदेह करनेवाले और अभिमानी हो; इसीलिये हमलोगोंपर भी शङ्का करते हो ॥ ९ ॥

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥

'राजन्! मेरी मान्यता है कि तुम निन्दित, पापात्मा एवं पापपुरुष हो।' क्षुद्र नरेश! तुम्हारा अन्तःकरण पापभावनासे ही पूर्ण है, इसीलिये तुम हमपर तथा दूसरोंपर भी संदेह करते हो ॥ १० ॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥

'कुरुनन्दन! मैं अभी तुम्हारे लिये जीवनका मोह छोड़कर पूरा प्रयत्न करके संग्राम-भूमिमें जा रहा हूँ ॥ ११ ॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान् वरान्।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥ १२ ॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम।

'शत्रुदमन! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रधान-प्रधान वीरोंपर विजय पाऊँगा। संग्रामभूमिमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं पाञ्चालों, सोमकों, केकयों तथा पाण्डवोंके साथ भी युद्ध करूँगा ॥ १२½ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ १३ ॥
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः।

'आज पाञ्चाल और सोमक योद्धा मेरे बाणोंसे दग्ध होकर सिंहसे पीड़ित हुई गौओंके समान सब ओर भाग जायँगे ॥ १३½ ॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः।

'आज सोमकोसहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम देखकर सम्पूर्ण जगत्‌को अश्वत्थामासे भरा हुआ मानेंगे ॥ १४½ ॥

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सोमकैः सह।

'सोमकोंसहित पाञ्चालोंको युद्धमें मारा गया देख आज धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें बड़ा निर्वेद (खेद एवं वैराग्य) होगा ॥ १५½ ॥

ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान् हनिष्यामि भारत ॥ १६ ॥
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः ।

'भारत ! जो लोग रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे, उन्हें मैं मार डालूँगा । वीर ! मेरी भुजाओंके भीतर आकर शत्रुसैनिक जीवित नहीं छूट सकेंगे' ॥ १६½ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन् सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १८ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनसे ऐसा कहकर महाबाहु अश्वत्थामा समस्त धनुर्धरोंको त्रास देता हुआ युद्धके लिये शत्रुओंके सामने डट गया । प्राणियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा आपके पुत्रोंका प्रिय करना चाहता था ॥ १७-१८ ॥

ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान् गौतमीसुतः ।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।

तदनन्तर गौतमीनन्दन अश्वत्थामाने केकयोंसहित पाञ्चालोंसे कहा—'महारथियो ! अब सब लोग मिलकर मेरे शरीरपर प्रहार करो और अपनी अस्त्र-संचालनकी फुर्ती दिखाते हुए सुस्थिर होकर युद्ध करो' ॥ १९½ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।

महाराज ! अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर वे सभी वीर उसके ऊपर उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, जैसे मेघ पर्वतपर पानी बरसाते हैं ॥ २०½ ॥

तान् निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।

प्रभो ! द्रोणकुमारने उनके उन बाणोंको नष्ट करके उनमेंसे दस वीरोंको पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके सामने ही मार गिराया ॥ २१½ ॥

ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।

समराङ्गणमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सोमक द्रोण-पुत्र अश्वत्थामाको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ २२½ ॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरान् पञ्चालान् सहसोमकान् ॥ २३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद् रणे ।

महाराज ! शूरवीर पाञ्चालों और सोमकोंको भागते देख धृष्टद्युम्नने रणक्षेत्रमें अश्वत्थामापर धावा किया ॥ २३½ ॥

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥
द्रौणिमित्यब्रवीद् वाक्यं दृष्ट्वा योधान् निपातितान् ।

तदनन्तर सुवर्णचित्रित, सजल जलधरके समान गम्भीर घोष करनेवाले तथा युद्धसे कभी पीठ न दिखाने-वाले सौ रथों एवं शूरवीर रथियोंसे घिरे हुए पाञ्चालराज-कुमार महारथी धृष्टद्युम्नने अपने योद्धाओंको मारा गया देख द्रोणकुमार अश्वत्थामासे इस प्रकार कहा—॥ २४-२५½ ॥

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः ॥ २७ ॥

'खोटी बुद्धिवाले आचार्यपुत्र ! दूसरोंको मारनेसे तुम्हें क्या लाभ है ? यदि शूरमा हो तो रणक्षेत्रमें मेरे साथ भिड़ जाओ । इस समय मेरे सामने खड़े तो हो जाओ, मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा' ॥ २६-२७ ॥

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर प्रतापी धृष्टद्युम्नने मर्मभेदी एवं पैने बाणोंद्वारा आचार्यपुत्रको घायल कर दिया ॥ २८ ॥

ते तु पङ्क्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।

सुवर्णमय पंख और स्वच्छ धारवाले, सबके शरीरोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ वे शीघ्रगामी बाण श्रेणीबद्ध होकर अश्वत्थामाके शरीरमें वैसे ही घुस गये, जैसे मधुके लोभी उद्दाम भ्रमर फूले हुए वृक्षपर बैठ जाते हैं ॥ २९½ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ॥ ३० ॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।

उन बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर मानी द्रोणकुमार पैरोंसे कुचले गये सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा और हाथमें बाण लेकर संभ्रमरहित हो इस प्रकार बोला—॥ ३०½ ॥

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥
यावत् त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

'धृष्टद्युम्न ! स्थिर होकर दो घड़ी और प्रतीक्षा कर लो, तबतक मैं तुम्हें अपने पैने बाणोंद्वारा यमलोक भेज देता हूँ' ॥

द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अश्वत्थामाने ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति अपने बाण-समूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥

स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥

द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत् तदा ।

समराङ्गणमें अश्वत्थामाद्वारा पीडित होनेपर रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने उसे वाणीद्वारा डाँट बतायी और इस प्रकार कहा—॥ ३३½ ॥

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण ! क्या तू मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्तिका वृत्तान्त नहीं जानता ? निश्चय ही, मुझे पहले द्रोणाचार्यका वध करके फिर तेरा विनाश करना है ॥ ३४½ ॥

ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥
इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।

'इसीलिये द्रोणके जीते-जी अभी युद्धस्थलमें तेरा वध नहीं कर रहा हूँ । दुर्मते ! इसी रातमें प्रभात होनेसे पहले आज तेरे पिताका वध करके फिर तुझे भी युद्धस्थलमें प्रेत-लोकको भेज दूँगा । यही मेरे मनका निश्चित विचार है ॥

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ।

'कुन्तीके पुत्रोंके प्रति जो तेरा द्वेषभाव और कौरवों-के प्रति जो भक्तिभाव है, उसे स्थिर होकर दिखा । तू जीते-जी मेरे हाथसे छुटकारा नहीं पा सकेगा ॥ ३७½ ॥

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।

'जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्वका परित्याग करके क्षत्रियधर्ममें तत्पर हो, जैसा कि मनुष्योंमें अधम तू है, वह सब लोगोंके लिये वध्य है' ॥ ३८½ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

द्रुपदकुमारके इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर द्विज-श्रेष्ठ अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ३९½ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन् पन्नगो यथा ।

उसने धृष्टद्युम्नकी ओर इस प्रकार देखा मानो अपने नेत्रोंके तेजसे उन्हें दग्ध कर डालेगा । साथ ही सर्पकी भाँति फुफकारते हुए अश्वत्थामाने उन्हें अपने बाणों-द्वारा ढक दिया ॥ ४०½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।

नृपश्रेष्ठ ! समराङ्गणमें अश्वत्थामाके द्वारा आच्छादित होनेपर भी समस्त पाञ्चालसेनाओंसे घिरे हुए महारथी महाबाहु धृष्टद्युम्न कम्पित नहीं हुए । उन्होंने अपने बल-पराक्रमका आश्रय लेकर अश्वत्थामापर नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार किया ॥ ४१-४२½ ॥

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥

वे दोनों महाधनुर्धर वीर अमर्षमें भरकर एक दूसरेपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते और उन बाण-समूहोंद्वारा परस्पर पीड़ा देते हुए प्राणोंकी बाजी लगाकर रणभूमिमें डटे रहे ॥ ४३-४४ ॥

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्नके उस घोर एवं भयानक युद्धको देखकर सिद्ध, चारण तथा वायुचारी गरुड़ आदिने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४५ ॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत् कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥

वे दोनों अपने बाण-समूहोंसे आकाश और दिशाओंको भरते हुए उनके द्वारा महान् अन्धकारकी सृष्टि करके अलक्ष्य होकर युद्ध करते रहे ॥ ४६ ॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥

उस रणक्षेत्रमें धनुषको मण्डलाकार करके वे दोनों नृत्य-सा कर रहे थे । एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्नशील होकर समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर बन गये थे ॥ ४७ ॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४८ ॥

वे महाबाहु वीर समराङ्गणमें समस्त श्रेष्ठ योद्धाओं-द्वारा हजारों बार प्रशंसित होते हुए शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ४८ ॥

तौ प्रबुद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥

वनमें लड़नेवाले दो जंगली हाथियोंके समान उन दोनोंको युद्धमें जागरूक देखकर दोनों सेनाओंमें तुमुल हर्षनाद छा गया ॥ ४९ ॥

सिंहनादरवाश्चासन् दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥

सब ओर सिंहनाद होने लगा । सैनिक शङ्खध्वनि करने लगे तथा सैकड़ों एवं सहस्रों प्रकारके रणवाद्य बजने लगे ॥ ५० ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने ।
मुहूर्तमपि तद् युद्धं समरूपं तदाभवत् ॥ ५१ ॥

कायरोंका भय बढ़ानेवाले उस तुमुल संग्राममें दो घड़ीतक उन दोनोंका समान रूपसे युद्ध चलता रहा ॥५१॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः ।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ५२ ॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद् रणे ।

महाराज ! तदनन्तर द्रोणकुमारने महामना धृष्टद्युम्नके ध्वज, धनुष, छत्र, दोनों पार्श्वरक्षक, सारथि तथा चारों घोड़ोंको नष्ट करके उस युद्धमें बड़े वेगसे धावा किया ॥

पञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ५३ ॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः ।

अनन्त आत्मबलसे सम्पन्न अश्वत्थामाने झुकी हुई गाँठवाले सैकड़ों और सहस्रों बाणोंद्वारा उन समस्त पाञ्चालोंको दूर भगा दिया ॥ ५३½ ॥

ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत् कर्म वासवस्येव संयुगे ।

भरतश्रेष्ठ ! युद्धस्थलमें इन्द्रके समान अश्वत्थामाके उस महान् कर्मको देखकर पाण्डवसेना व्यथित हो उठी ॥

शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः ॥ ५५ ॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन् वै महारथान् ।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥ ५६ ॥
नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः ।

महारथी द्रोणकुमारने पहले सौ बाणोंसे सौ पाञ्चाल योद्धाओंका वध करके फिर तीन पैने बाणोंद्वारा उनके तीन महारथियोंको भी मार गिराया और धृष्टद्युम्न तथा अर्जुनके देखते-देखते वहाँ जो बहुसंख्यक पाञ्चाल योद्धा खड़े थे, उन सबको नष्ट कर दिया ॥ ५५-५६½ ॥

ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृंजयैः ॥ ५७ ॥
अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः ।

समरभूमिमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृंजय सैनिक अश्वत्थामाको छोड़कर चल दिये, उनके रथ और ध्वज नष्ट-भ्रष्ट होकर बिखर गये थे ॥ ५७½ ॥

स जित्वा समरे शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ५८ ॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा ।

इस प्रकार रणभूमिमें शत्रुओंको जीतकर महारथी द्रोणपुत्र वर्षाकालके मेघके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ५८½ ॥

स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत ।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ॥ ५९ ॥

जैसे प्रलयकालमें अग्निदेव सम्पूर्ण भूतोंको भस्म करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामा वहाँ बहुसंख्यक शूर-वीरोंका वध करके सुशोभित हो रहा था ॥ ५९ ॥

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयै-
र्निर्जित्य संख्येऽरिगणान् सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्
यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान् निहत्य वै ॥ ६० ॥

जैसे देवराज इन्द्र शत्रुओंका संहार करके सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा संग्राममें सहस्रों शत्रुसमूहोंको परास्त करके कौरवोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अश्वत्थामाका पराक्रमविषयक एक सौ साठवाँ अध्याय परा हुआ ॥ १६० ॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और अर्जुनका आक्रमण और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः ।
अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम् ।

यह देख द्रोणाचार्यकी सेनासे घिरे हुए राजा दुर्योधनने भी रणभूमिमें पाण्डवोंपर आक्रमण किया । महाराज ! फिर तो कायरोंका भय बढ़ानेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥२½॥

अम्बष्ठान् मालवान् वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि ॥ ३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः ।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने अम्बष्ठ, मालव, वंग, शिबि तथा त्रिगर्तदेशके योद्धाओंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।

अभीषाह तथा शूरसेन देशके रणदुर्मद क्षत्रियोंको भी काट-काटकर भीमसेनने वहाँकी भूमिको खूनसे कीचड़मयी बना दिया ॥ ४½ ॥

यौधेयानद्रिजान् राजन् मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।

राजन् ! इसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा यौधेय, पर्वतीय, मद्रक तथा मालव योद्धाओंको भी मृत्युके लोकका पथिक बना दिया ॥ ५½ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ।

अनायास ही दूरतक जानेवाले उनके नाराचोंकी गहरी चोट खाकर दो दाँतोंवाले हाथी दो शिखरोंवाले पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ६½ ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥
रराज वसुधाऽऽकीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।

हाथियोंके शुण्डदण्ड कटकर इधर-उधर तड़पते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सर्प चल रहे हों । उनके द्वारा आच्छादित हुई वहाँकी भूमि अद्भुत शोभा पा रही थी ॥

क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥ ८ ॥
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।

प्रलयकालमें सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंसे व्याप्त हुए द्युलोककी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार इधर-उधर फेंके पड़े हुए राजाओंके सुवर्णचित्रित छत्रोंद्वारा उस रणभूमिकी भी शोभा हो रही थी ॥ ८½ ॥

हत प्रहरताभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ।

लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्यके रथके समीप 'मार डालो, निर्भय होकर प्रहार करो, बाणोंसे बींध डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो' इत्यादि भयंकर शब्द सुनायी पड़ता था ॥ ९½ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥
व्यधमत् तान् महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।

जैसे दुर्जय महावायु मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रके द्वारा युद्धमें समस्त शत्रुओंको तहस-नहस कर डाला ॥ १०½ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ११ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

द्रोणाचार्यकी मार खाकर भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते पाञ्चाल सैनिक भयके मारे भागने लगे ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥ १२ ॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।

तत्पश्चात् अर्जुन और भीमसेन विशाल रथसमूहसे युक्त भारी सेना साथ लेकर सहसा द्रोणाचार्यकी ओर लौट पड़े ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३ ॥
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ।
तौ तथा सृंजयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।

अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनापर दक्षिण पार्श्वसे और भीमसेनने बायें पार्श्वसे अपने बाणसमूहोंकी भारी वर्षा प्रारम्भ कर दी । महाराज ! उस समय महातेजस्वी पाञ्चालों, सृंजयों, मत्स्यों तथा सोमकोंने भी उन्हीं दोनोंके मार्गका अनुसरण किया ॥ १३-१४½ ॥



तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥
महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

राजन् ! इसी प्रकार प्रहार करनेमें कुशल आपके पुत्रके श्रेष्ठ रथी भी विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जा पहुँचे ॥ १५½ ॥

ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।

उस समय किरीटधारी अर्जुनके द्वारा मारी जाती हुई कौरवी सेना अन्धकार और निद्रा दोनोंसे पीड़ित हो पुनः भागने लगी ॥ १६½ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥

नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।

महाराज ! द्रोणाचार्यने तथा स्वयं आपके पुत्रने भी उन्हें बहुतेरा रोका, तथापि उस समय आपके सैनिक रोके न जा सके ॥ १७½ ॥

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥
तमसा संवृते लोके व्यद्रवत् सर्वतोमुखी ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण होती हुई वह विशाल सेना उस तिमिराच्छन्न जगत्में सब ओर भागने लगी ॥

उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

महाराज ! कुछ नरेश, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे, अपने वाहनोंको वहीं छोड़कर भयसे व्याकुल हो सब ओर भाग गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सोमदत्तका वध, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यसे दूर रहनेका आदेश

संजय उवाच

सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद् धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सोमदत्तको अपना विशाल धनुष हिलाते देख सात्यकिने अपने सारथिसे कहा—'मुझे सोमदत्तके पास ले चलो ॥ १ ॥

न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद् वचो मम ॥ २ ॥

'सूत ! आज मैं रणभूमिमें अपने महाबली शत्रु सोमदत्तका वध किये बिना वहाँसे पीछे नहीं लौटूँगा। मेरी यह बात सत्य है' ॥ २ ॥

ततः सम्प्रैषयद् यन्ता सैन्धवांस्तान् मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान् सर्वशब्दातिगान् रणे ॥ ३ ॥

तब सारथिने शङ्खके समान श्वेत वर्णवाले तथा सम्पूर्ण शब्दोंका अतिक्रमण करनेवाले मनके समान वेगशाली सिंधी घोड़ोंको रणभूमिमें आगे बढ़ाया ॥ ३ ॥

तेऽवहन् युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥

राजन् ! मन और वायुके समान वेगशाली वे घोड़े युयुधानको उसी प्रकार ले जाने लगे, जैसे पूर्वकालमें दैत्यवधके लिये उद्यत देवराज इन्द्रको उनके घोड़े ले गये थे ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५ ॥

वेगशाली सात्यकिको रणभूमिमें अपनी ओर आते देख महाबाहु सोमदत्त बिना किसी घबराहटके उनकी ओर लौट पड़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥

वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणसमूहोंकी वृष्टि करते हुए सोमदत्तने, जैसे बादल सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार शिनिपौत्र सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ६ ॥

असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समराङ्गणमें सम्भ्रमरहित सात्यकिने भी अपने बाणसमूहोंद्वारा सब ओरसे कुरुप्रवर सोमदत्तको आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः ॥ ८ ॥

राजन् ! फिर सोमदत्तने सात्यकिकी छातीमें साठ बाण मारे और सात्यकिने भी उन्हें तीखे बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ एक दूसरेके बाणोंसे घायल होकर वसन्त ऋतुमें सुन्दर पुष्पवाले दो विकसित पलाशवृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥

कुरुकुल और वृष्णिवंशके यश बढ़ानेवाले उन दोनों वीरोंके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे। वे नेत्रोंद्वारा एक दूसरेको जलाते हुए-से देख रहे थे ॥ १० ॥

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ११ ॥

रथ मण्डलके मार्गोंपर विचरते हुए वे दोनों शत्रुमर्दन

वीर वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान भयंकर रूप धारण किये हुए थे ॥ ११ ॥

शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र ददृशेतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! उनके शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर सब ओरसे खण्डित-से हो बाणविद्ध हिंसक पशुओंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ १२ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् ।
खद्योतैरावृतौ राजन् प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥

राजन् ! सुवर्णमय पङ्खवाले बाणोंसे व्याप्त होकर वे दोनों योद्धा वर्षाकालमें जुगनुओंसे व्याप्त हुए दो वृक्षोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १३ ॥

सम्प्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥

उन दोनों महारथियोंके सारे अङ्ग उन बाणोंसे उद्भासित हो रहे थे; इसीलिये वे दोनों, रणक्षेत्रमें उल्काओंसे प्रकाशित एवं क्रोधमें भरे हुए दो हाथियोंके समान दिखायी देते थे ॥ १४ ॥

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद् धनुः ॥ १५ ॥

महाराज ! तदनन्तर युद्धस्थलमें महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाणसे सात्यकिके विशाल धनुषको काट दिया ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥

और तत्काल ही उनपर पचीस बाणोंका प्रहार किया । शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सोमदत्तने सात्यकिको पुनः दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे सोमदत्तको बींध डाला ॥

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ।
बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥

राजन् ! फिर सात्यकिने हँसते हुए-से रणभूमिमें एक दूसरे भल्लके द्वारा बाह्लीकपुत्र सोमदत्तके सुवर्णमय ध्वजको काट दिया ॥ १८ ॥

सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥

ध्वजको गिराया हुआ देख सम्भ्रमरहित सोमदत्तने सात्यकिके शरीरमें पचीस बाण चुन दिये ॥ १९ ॥

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥

तब रणक्षेत्रमें कुपित हुए सात्यकिने भी तीखे क्षुरप्र नामक भल्लसे धनुर्धर सोमदत्तके धनुषको काट दिया ॥ २० ॥

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद् बहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् उन्होंने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले सौ बाणोंसे टूटे दाँतवाले हाथीके समान सोमदत्तके शरीरको अनेक बार बींध दिया ॥ २१ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सोमदत्तो महारथः ।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥

इसके बाद महारथी महाबली सोमदत्तने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २२ ॥

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध हुए सात्यकिने सोमदत्तको गहरी चोट पहुँचायी और सोमदत्तने भी अपने बाणसमूहद्वारा सात्यकिको पीड़ित कर दिया ॥ २३ ॥

दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्लिकात्मजम् ।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥

उस समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये सोमदत्तको दस बाण मारे । इससे सोमदत्तको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उन्होंने भी तीखे बाणोंसे भीमसेनको पीड़ित कर दिया ॥ २४ ॥

ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् ।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् सात्यकिकी ओरसे भीमसेनने सोमदत्तकी छातीको लक्ष्य करके एक नूतन सुदृढ़ एवं भयंकर परिघ छोड़ा ॥

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥

समराङ्गणमें बड़े वेगसे आते हुए उस भयंकर परिघके कुरुवंशी सोमदत्तने हँसते हुए-से दो टुकड़े कर डाले ॥ २६ ॥

स पपात द्विधाच्छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥

लोहेका वह महान् परिघ दो खण्डोंमें विभक्त होकर वज्रसे विदीर्ण किये गये महान् पर्वत-शिखरके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २७ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥

राजन् ! तदनन्तर संग्रामभूमिमें सात्यकिने एक भल्लसे सोमदत्तका धनुष काट दिया और पाँच बाणोंसे उनके दस्ताने नष्ट कर दिये ॥ २८ ॥

ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान्।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥

भारत ! फिर तत्काल ही चार बाणोंसे उन्होंने सोमदत्तके उन उत्तम घोड़ोंको प्रेतराज यमके समीप भेज दिया ॥२९॥

सारथेश्च शिरः कायाद् भल्लेन नतपर्वणा।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥

इसके बाद पुरुषसिंह शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे सोमदत्तके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सात्वतवंशी सात्यकिने प्रज्वलित पावकके समान एक महाभयंकर, सुवर्णमय पंखवाला और शिलापर तेज किया हुआ बाण सोमदत्तपर छोड़ा ॥ ३१ ॥

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ३२ ॥

भरतनन्दन ! प्रभो ! शिनिवंशी बलवान् सात्यकिके द्वारा छोड़ा हुआ वह श्रेष्ठ एवं भयंकर बाण शीघ्र ही सोमदत्तकी छातीपर जा पड़ा ॥ ३२ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥

महाराज ! सात्यकिके चलाये हुए उस बाणसे अत्यन्त घायल होकर महारथी महाबाहु सोमदत्त पृथ्वीपर गिरे और मर गये ॥ ३३ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥

सोमदत्तको मारा गया देख आपके बहुसंख्यक महारथी बाणोंकी भारी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर टूट पड़े ॥३४॥

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस समय सात्यकिको बाणोंद्वारा आच्छादित होते देख युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवोंने समस्त प्रभद्रकों-सहित विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम्।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने अपने बाणोंकी मारसे आपकी विशाल वाहिनीको द्रोणाचार्यके देखते-देखते खदेड़ना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥

द्रोणाचार्यने देखा कि युधिष्ठिर मेरे सैनिकोंको खदेड़ रहे हैं, तब वे क्रोधसे लाल आँखें करके बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ ३७ ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥

फिर उन्होंने सात तीखे बाणोंसे कुन्तीकुमार युधिष्ठिरको घायल कर दिया। अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी उन्हें पाँच बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया ॥ ३८ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन्।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥
स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥

तब अत्यन्त घायल हुए महाबाहु द्रोणाचार्य अपने दोनों गलफर चाटने लगे। उन्होंने युधिष्ठिरके ध्वज और धनुषको भी काट दिया। शीघ्रताके समय शीघ्रता करनेवाले नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरने समराङ्गणमें धनुष कट जानेपर दूसरे सुदृढ़ धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया ॥ ३९-४० ॥

ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

फिर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके राजाने घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको बींध डाला। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४१ ॥

ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन बाणोंके आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित होकर द्रोणाचार्य दो घड़ीतक रथके पिछले भागमें बैठे रहे ॥ ४२ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने महान् क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४३ ॥

असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान्।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर पराक्रमी युधिष्ठिरने सम्भ्रम-रहित हो धनुष खींचकर उनके उस अस्त्रको अपने दिव्यास्त्र-द्वारा कुण्ठित कर दिया ॥ ४४ ॥

चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः।
ततोऽन्यद् धनुरादत्त द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः।

इतना ही नहीं, उन पाण्डुकुमारने विप्रवर द्रोणाचार्यके विशाल धनुषको भी काट दिया। फिर क्षत्रियोंका मान मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लिया। परंतु कुरुप्रवर युधिष्ठिरने अपने तीखे भल्लोंसे उसको भी काट दिया ॥ ४५½ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद् भरतसत्तम ॥ ४७ ॥

तदनन्तर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—'महाबाहु युधिष्ठिर ! मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, उसे सुनो। भरतश्रेष्ठ ! तुम युद्धमें द्रोणाचार्यसे अलग रहो ॥ ४६-४७ ॥

यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे ।
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें सदा तुम्हें कैद करनेके प्रयत्नमें रहते हैं; अतः तुम्हारे साथ इनका युद्ध होना मैं उचित नहीं मानता ॥ ४८ ॥

योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥

'जो इनके विनाशके लिये उत्पन्न हुआ है, वही इन्हें मारेगा। तुम अपने गुरुदेवको छोड़कर जहाँ राजा दुर्योधन हैं, वहाँ जाओ ॥ ४९ ॥

राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते ।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५० ॥

'क्योंकि राजाको राजाके ही साथ युद्ध करना चाहिये। जो राजा नहीं है, उसके साथ उसका युद्ध अभीष्ट नहीं है। अतः कुन्तीनन्दन ! तुम हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनासे घिरे रहकर वहीं जाओ ॥ ५० ॥

यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनंजयः ।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥

'तबतक मेरे साथ रहकर अर्जुन तथा रथियोंमें सिंहके समान पराक्रमी भीमसेन कौरवोंके साथ युद्ध करते हैं' ॥ ५१ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ५२ ॥
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः ।
विनिघ्नंस्तावकान् योधान् व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दो घड़ीतक उस दारुण युद्धके विषयमें सोचा। फिर वे तुरंत वहाँ चले गये, जहाँ शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेन आपके योद्धाओंका वध करते हुए मुँह फैलाये यमराजके समान खड़े थे ॥ ५२-५३ ॥

रथघोषेण महता नादयन् वसुधातलम् ।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन् वै दिशो दश ॥ ५४ ॥
भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पार्ष्णि जग्राह पाण्डवः ।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान् व्यधमद् रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अपने रथकी भारी घर्घराहटसे भूतलको उसी प्रकार प्रतिध्वनित कर रहे थे, जैसे वर्षाकालमें गर्जना करता हुआ मेघ दसों दिशाओंको गुँजा देता है। उन्होंने शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनके पार्श्वभागकी रक्षाका भार ले लिया। उधर द्रोणाचार्य भी रात्रिके समय पाण्डव तथा पाञ्चाल सैनिकोंका संहार करने लगे ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रदीपों (मशालों) का प्रकाश

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे ।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद् ववृधे महत् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जिस समय वह भयंकर घोर युद्ध चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण जगत् अन्धकार और धूलसे आच्छादित था; इसीलिये रणभूमिमें खड़े हुए योद्धा एक दूसरेको देख नहीं पाते थे। वह महान् युद्ध अनुमानसे तथा नाम या संकेतोंद्वारा चलता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था ॥ १-२ ॥

नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् ।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम ।

उस समय अत्यन्त रोमाञ्चकारी युद्ध हो रहा था। उसमें मनुष्य, हाथी और घोड़े मथे जा रहे थे। एक ओरसे द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य ये तीन वीर युद्ध करते थे तथा दूसरी ओरसे भीमसेन, धृष्टद्युम्न एवं सात्यकि सामना कर रहे थे। नृपश्रेष्ठ ! ये एक दूसरेकी सेनाओंमें हलचल मचाये हुए थे ॥ ३½ ॥

वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात् तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः ।

उन महारथियोंद्वारा उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें सब ओरसे मारी जाती हुई सेनाएँ चारों ओर भागने लगीं ॥ ४½ ॥

ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥ ५ ॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।

महाराज ! वे योद्धा अचेत होकर सब ओर भागते थे और भागते हुए ही उस युद्धस्थलमें मारे जाते थे ॥ ५½ ॥

महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६ ॥
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।

आपके पुत्र दुर्योधनकी सलाहसे होनेवाले उस युद्धके भीतर प्रगाढ़ अन्धकारमें किंकर्तव्यविमूढ़ हुए सहस्रों महारथियोंने एक दूसरेको मार डाला ॥ ६½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ।
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर उस रणभूमिके तिमिराच्छन्न हो जानेपर समस्त सेनाएँ और सेनापति मोहित हो गये॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत् किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जिस समय तुम सब लोग अन्धकारमें डूबे हुए थे और पाण्डव तुम्हारे बल और पराक्रमको नष्ट करके तुम्हें मथे डालते थे, उस समय तुम्हारे और उन पाण्डवोंके मनकी कैसी अवस्था थी ? ॥ ८ ॥

कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा संजय संवृते ॥ ९ ॥

संजय ! जब कि सारा जगत् अन्धकारसे आवृत था, उस समय पाण्डवोंको अथवा मेरी सेनाको कैसे प्रकाश प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

संजय उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तॄनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥

संजयने कहा—राजन् ! तदनन्तर जितनी सेनाएँ मरनेसे बची हुई थीं, उन सबको तथा सेनापतियोंको आदेश देकर दुर्योधनने उनका पुनः व्यूह-निर्माण करवाया ॥१०॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्य-
स्तथा द्रौणिः पार्श्वतः सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्
राजाभ्ययाद् गोपयन् वै निशायाम् ॥ ११ ॥

राजन् ! उस व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य, मध्यभागमें शल्य तथा पार्श्वभागमें अश्वत्थामा और शकुनि थे । स्वयं राजा दुर्योधन उस रात्रिके समय सम्पूर्ण सेनाओंकी रक्षा करता हुआ युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ ११ ॥

उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान् ॥ १२ ॥

पृथ्वीनाथ ! उस समय दुर्योधनने समस्त पैदल सैनिकोंसे सान्त्वनापूर्ण वचनोंमें कहा—'वीरो ! तुम सब लोग उत्तम आयुध छोड़कर अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें ले लो' ॥ १२ ॥

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा
विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥
नागाः सयक्षोरगकिंनराश्च
हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।

नृपश्रेष्ठ दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उन पैदल सिपाहियोंने बड़े हर्षके साथ हाथोंमें मशालें ले लीं । आकाशमें खड़े हुए देवता, ऋषि, गन्धर्व, देवर्षि, विद्याधर, अप्सराओंके समूह, नाग, यक्ष, सर्प और किन्नर आदिने भी प्रसन्न होकर हाथोंमें प्रदीप ले लिये ॥ १३½ ॥

दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तो-
ऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां
सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।

दिशाओंकी अधिष्ठात्री देवियोंके यहाँसे भी सुगन्धित तैलसे भरे हुए दीप वहाँ उतरते दिखायी दिये । विशेषतः नारद और पर्वत नामक मुनियोंने कौरव और पाण्डवोंकी सुविधाके लिये वे दीप जलाये थे ॥ १४½ ॥

सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता
व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः
शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।

रातके समय अग्निकी प्रभासे वह सेना पुनः विभागपूर्वक प्रकाशित हो उठी । बहुमूल्य आभूषणों तथा सैनिकोंपर गिरनेवाले दीप्तिमान् दिव्यास्त्रोंसे भी वह सेना बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १५½ ॥

रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु
प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६ ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः
कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा
व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु ॥ १७ ॥

एक-एक रथके पास पाँच-पाँच मशालें थीं। प्रत्येक हाथीके साथ तीन-तीन प्रदीप जलते थे। प्रत्येक घोड़ेके साथ एक महाप्रदीपकी व्यवस्था की गयी थी। पाण्डवों तथा कौरवोंके द्वारा इस प्रकार व्यवस्थापूर्वक जलाये गये समस्त प्रदीप क्षणभरमें आपकी सारी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ १६-१७ ॥

सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः
पदातिभिः पावकतैलहस्तैः।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां
यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८ ॥

सब लोगोंने देखा कि मशाल और तेल हाथमें लिये पैदल सैनिकोंद्वारा सेवित सारी सेनाएँ रात्रिके समय उसी प्रकार प्रकाशित हो उठी हैं, जैसे आकाशमें बादल बिजलियोंके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठते हैं ॥ १८ ॥

प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां
द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात्।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९ ॥

राजेन्द्र! सारी सेनामें प्रकाश फैल जानेपर अग्निके समान प्रतापी द्रोणाचार्य सुवर्णमय कवच धारण करके दोपहरके सूर्यकी भाँति सब ओर देदीप्यमान होने लगे ॥ १९ ॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥

उस समय सोनेके आभूषणों, शुद्ध निष्कों, धनुषों तथा चमकीले शस्त्रोंमें वहाँ उन मशालोंकी आगके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे ॥ २० ॥

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः।
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ
पुनः पुनः संजनयन्ति दीपान् ॥ २१ ॥

अजमीढकुलनन्दन! वहाँ जो गदाएँ, शैक्य, चमकीले परिघ तथा रथ-शक्तियाँ घुमायी जा रही थीं, उनमें जो उन मशालोंकी प्रभाएँ प्रतिबिम्बित होती थीं, वे मानो पुनः-पुनः बहुत-से नूतन प्रदीप प्रकट करती थीं ॥ २१ ॥

छत्राणि बालव्यजनानि खड्गा
दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन्।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला
व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥

राजन्! छत्र, चँवर, खड्ग, प्रज्वलित विशाल उल्काएँ तथा वहाँ युद्ध करते हुए वीरोंकी हिलती हुई सुवर्णमालाएँ उस समय प्रदीपोंके प्रकाशसे बड़ी शोभा पा रही थीं ॥ २२ ॥

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं
दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत्।
प्रकाशितं चाभरणप्रभाभि-
र्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३ ॥

नरेश्वर! उस समय चमकीले अस्त्रों, प्रदीपों तथा आभूषणोंकी प्रभाओंसे प्रकाशित एवं सुशोभित आपकी सेना अत्यन्त प्रकाशसे उद्भासित होने लगी ॥ २३ ॥

पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि
वीरावधूतानि तनुच्छदानि।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र
तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २४ ॥

पानीदार एवं खूनसे रँगे हुए शस्त्र तथा वीरोंद्वारा कँपाये हुए कवच वहाँ प्रदीपोंके प्रतिबिम्ब ग्रहण करके वर्षाकालके आकाशमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति अत्यन्त उज्ज्वल प्रभा बिखेर रहे थे ॥ २४ ॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगै-
रभिघ्नतां चापततां जवेन।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां
वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५ ॥

आघातके वेगसे कम्पित, आघात करनेवाले तथा वेगपूर्वक शत्रुकी ओर झपटनेवाले वीर मनुष्योंके मुख-मण्डल उस समय वायुसे हिलाये हुए बड़े-बड़े कमलोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २५ ॥

महावने दारुमये प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत्।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता
महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥

भरतनन्दन! जैसे सूखे काठके विशाल वनमें आग लग जानेपर वहाँ सूर्यकी भी प्रभा फीकी पड़ जाती है, उसी प्रकार उस समय अधिक प्रकाशसे प्रज्वलित होती हुई-सी आपकी भयानक सेना महान् भय उत्पन्न करनेवाली प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥

तत् सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं
निशाम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा-
नचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥

हमारी सेनाको मशालोंके प्रकाशसे प्रकाशित देख कुन्ती-के पुत्रोंने भी तुरंत ही सारी सेनाके पैदल सैनिकोंको मशाल जलानेकी आज्ञा दी, अतः उन्होंने भी मशालें जला लीं ॥ २७ ॥

गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा
रथे रथे चैव दश प्रदीपाः ।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये
ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८ ॥

उनके एक-एक हाथीके लिये सात-सात और एक-एक रथके लिये दस-दस प्रदीपोंकी व्यवस्था की गयी। घोड़ोंके पृष्ठभागमें दो प्रदीप थे। अगल-बगलमें, ध्वजाओंके समीप तथा रथके पिछले भागोंमें अन्यान्य दीपकोंकी व्यवस्था की गयी थी ॥ २८ ॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये
पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च ।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता
व्यदीपयन् पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २९ ॥

सारी सेनाओंके पार्श्वभागमें, आगे, पीछे, बीचमें एवं चारों ओर भिन्न-भिन्न सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर पाण्डुपुत्रकी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ २९ ॥

मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ताः
सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा
विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तां
तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम् ।

दोनों ही सेनाओंके अन्यान्य पैदल सैनिक हाथोंमें प्रदीप धारण किये दोनों ही सेनाओंके भीतर विचरण करने लगे। सारी सेनाओंके पैदल-समूह हाथी, रथ और अश्व-समूहोंके साथ मिलकर आपकी सेनाको तथा पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित वाहिनीको भी अत्यन्त प्रकाशित करने लगे ॥३०½॥

तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं
बलं तवासीद् बलवद् बलेन ॥ ३१ ॥
भाः कुर्वता भानुमता ग्रहेण
दिवाकरेणाग्निरिवाभिगुप्तः ।

जैसे किरणोंद्वारा सुशोभित और अपनी प्रभा बिखेरनेवाले सूर्यग्रहके द्वारा सुरक्षित अग्निदेव और भी प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार प्रदीपोंकी प्रभासे अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले उस पाण्डव सैन्यके द्वारा आपकी सेनाका प्रकाश और भी बढ़ गया ॥ ३१½ ॥

तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं
सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् ।

उन दोनों सेनाओंका बढ़ा हुआ प्रकाश पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंको लाँघकर चारों ओर फैल गया। प्रदीपोंके उस प्रकाशसे आपकी तथा पाण्डवोंकी सेना भी अधिक प्रकाशित हो उठी थी ॥ ३२½ ॥

तेन प्रकाशेन दिवं गतेन
सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः
समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः ।

राजन्! स्वर्गलोकतक फैले हुए उस प्रकाशसे उद्बोधित होकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धोंके समुदाय तथा सम्पूर्ण अप्सराएँ भी युद्ध देखनेके लिये वहाँ आ पहुँचीं ॥ ३३½ ॥

तद् देवगन्धर्वसमाकुलं च
यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४ ॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भि-
रायोधनं दिव्यकल्पं बभूव ।

देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, असुरेन्द्रों और अप्सराओंके समुदायसे भरा हुआ वह युद्धस्थल वहाँ मारे जाकर स्वर्गलोक-पर अरूढ़ होनेवाले शूरवीरोंके द्वारा दिव्यलोक-सा जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं
संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५ ॥
महद् बलं व्यूढरथाश्वनागं
सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।

रथ, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, प्रदीपोंकी प्रभासे प्रकाशित, रोषमें भरे हुए योद्धाओंसे युक्त, घायल होकर भागनेवाले घोड़ोंसे उपलक्षित तथा व्यूहबद्ध रथ, घोड़े एवं हाथियोंसे सम्पन्न दोनों पक्षोंका वह महान् सैन्यसमूह देवताओं और असुरोंके सैन्यव्यूहके समान जान पड़ता था ॥ ३५½ ॥

तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं
महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं
निशि प्रवृत्तं रणदुर्दिनं तत् ।

रातमें होनेवाला वह युद्ध मेघोंकी घटासे आच्छादित दिनके समान प्रतीत होता था। उस समय शक्तियोंका समूह प्रचण्ड वायुके समान चल रहा था। विशाल रथ मेघसमूहके समान दिखायी देते थे। हाथियों और घोड़ोंके हींसने और चिग्घाड़नेका शब्द ही मानो मेघोंका गम्भीर गर्जन था। अस्त्रसमूहोंकी वर्षा ही जलकी वृष्टि थी तथा रक्तकी धारा ही जलधाराके समान जान पड़ती थी ॥ ३६½ ॥

तस्मिन् महाग्निप्रतिमो महात्मा
संतापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः॥ ३७ ॥
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को
वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

नरेन्द्र ! जैसे शरत्कालमें मध्याह्नका सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे भारी संताप देता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें महान् अग्निके समान तेजस्वी महामना विप्रवर द्रोणाचार्य पाण्डवोंके लिये संतापकारी हो रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर प्रदीपोंका प्रकाशविषयक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध और दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश

संजय उवाच

प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय धूल और अन्धकारसे ढकी हुई रणभूमिमें इस प्रकार उजेला होनेपर एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वीर सैनिक आपसमें भिड़ गये॥

ते समेत्य रणे राजञ्छस्त्रप्रासासिधारिणः।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥

महाराज ! समराङ्गणमें परस्पर भिड़कर वे नाना प्रकारके शस्त्र, प्रास और खड्ग आदि धारण करनेवाले योद्धा, जो परस्पर अपराधी थे, एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ २ ॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥

चारों ओर हजारों मशालें जल रही थीं । उनके डंडे सोनेके बने हुए थे और उनमें रत्न जड़े हुए थे । उन मशालोंपर सुगन्धित तेल डाला जाता था ॥ ३ ॥

देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥

भारत ! उन्हींमें देवताओं और गन्धर्वोंके भी दीप आदि जल रहे थे, जो अपनी विशेष प्रभाके कारण अधिक प्रकाशित हो रहे थे । उनके द्वारा उस समय रणभूमि नक्षत्रोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ ४ ॥

उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुंधरा ॥ ५ ॥

सैकड़ों प्रज्वलित उल्काओं (मशालों) से वह रणभूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो प्रलयकालमें यह सारी पृथ्वी दग्ध हो रही हो ॥ ५ ॥

व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः ॥ ६ ॥

उन प्रदीपोंसे सब ओर सारी दिशाएँ ऐसी प्रदीप्त हो उठीं, मानो वर्षाके सायंकालमें जुगनुओंसे घिरे हुए वृक्ष जगमगा रहे हों ॥ ६ ॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक्।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥

उस समय वीरगण विपक्षी वीरोंके साथ पृथक्-पृथक् भिड़ गये । हाथी हाथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझने लगे ॥ ७ ॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ८ ॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत्।

इसी प्रकार रथी श्रेष्ठ रथियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करने लगे । उस भयंकर प्रदोषकालमें आपके पुत्रकी आज्ञासे वहाँ चतुरंगिणी सेनामें भारी मारकाट मच गयी ॥ ८½ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥
व्यधमत् त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान्।

महाराज ! तदनन्तर, अर्जुन बड़ी उतावलीके साथ समस्त राजाओंका संहार करते हुए कौरव-सेनाका विनाश करने लगे ॥ ९½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! क्रोध और अमर्षमें भरे हुए दुर्धर्ष वीर अर्जुन जब मेरे पुत्रकी सेनामें प्रविष्ट हुए, उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥१०½॥

किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११ ॥
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत।

शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले अर्जुनके प्रवेश करनेपर मेरी सेनाओंने क्या किया ? तथा दुर्योधनने उस समयके अनुरूप कौन-सा कार्य उचित माना ? ॥ ११½ ॥

के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिंदमाः ॥ १२ ॥
द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।

समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा वीर अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े । श्वेतवाहन अर्जुनके कौरवसेनाके भीतर घुस आनेपर किन लोगोंने द्रोणाचार्यकी रक्षा की ॥ १२½ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥
के पृष्ठतश्चाप्यभवन् वीरा वीरान् विनिघ्नतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे ॥ १४ ॥

कौन-कौन-से योद्धा द्रोणाचार्यके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा करते थे और कौन-कौन-से बायें पहियेकी ? कौन-कौन-से वीर वीरोंका वध करनेवाले द्रोणाचार्यके पृष्ठभागके रक्षक थे और रणमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा आचार्यके आगे-आगे चलते थे ? ॥ १३-१४ ॥

यत् प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर, पराक्रमी एवं किसीसे पराजित न होनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्यने रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए वहाँ पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश किया था ॥ १५ ॥

यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥

जिन आचार्य द्रोणने क्रोधमें भरे हुए अग्निदेवके समान अपने बाणोंकी ज्वालासे पाञ्चाल महारथियोंके समुदायोंको जलाकर भस्म कर दिया था, वे कैसे मृत्युको प्राप्त हुए ? ॥

अव्यग्रानेव हि परान् कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान् संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥ १७ ॥

सूत ! तुम मेरे शत्रुओंको तो व्यग्रतारहित, अपराजित, हर्ष और उत्साहसे युक्त तथा संग्राममें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले ही बता रहे हो; परंतु मेरे पुत्रोंकी ऐसी अवस्था नहीं बताते ॥ १७ ॥

हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥

सभी युद्धोंमें मेरे पक्षके रथियोंको तुम हताहत, छिन्न-भिन्न, तितर-बितर तथा रथहीन हुआ ही बता रहे हो ॥१८॥

संजय उवाच

द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९ ॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन महाराज ! युद्धकी इच्छावाले द्रोणाचार्यका मत जानकर दुर्योधनने उस रातमें अपने वशवर्ती भाइयोंसे तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्धर्ष, दीर्घबाहु तथा जो-जो उनके पीछे चलनेवाले थे, उन सबसे इस प्रकार कहा—॥ १९-२० ॥

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥

'तुम सब लोग सावधान रहकर पराक्रमपूर्वक पीछेकी ओरसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो । कृतवर्मा उनके दाहिने पहियेकी और राजा शल्य बायें पहियेकी रक्षा करें' ॥२१॥

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान् पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥

राजन् ! त्रिगर्तोंके जो शूरवीर महारथी मरनेसे शेष रह गये थे, उन सबको आपके पुत्रने द्रोणाचार्यके आगे-आगे चलनेकी आज्ञा देते हुए कहा—॥ २२ ॥

आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ॥ २३ ॥

'आचार्य पूर्णतः सावधान हैं, पाण्डव भी विजयके लिये विशेष यत्नशील एवं सावधान हैं । तुमलोग रणभूमिमें शत्रुसैनिकोंका संहार करते हुए आचार्यकी पूरी सावधानीके साथ रक्षा करो ॥ २३ ॥

द्रोणो हि बलवान् युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत् त्रिदशान् युद्धे किमु पार्थान् ससोमकान् ॥ २४ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य बलवान्, प्रतापी और युद्धमें शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं । वे संग्राममें देवताओंको भी परास्त कर सकते हैं; फिर कुन्तीके पुत्रों और सोमकोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २४ ॥

ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद् धृष्टद्युम्नान्महारथात् ॥ २५ ॥

'इसलिये तुम सब महारथी एक साथ होकर पूर्णतः प्रयत्नशील रहते हुए पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो ॥ २५ ॥

पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद् रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥ २६ ॥

'हम पाण्डवोंकी सेनाओंमें धृष्टद्युम्नके सिवा ऐसे किसी वीर नरेशको नहीं देखते, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध कर सके ॥ २६ ॥

तस्मात् सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् ।
सुगुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृंजयांश्च ससोमकान् ॥ २७॥

'अतः मैं सब प्रकारसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करना ही इस समय आवश्यक कर्तव्य मानता हूँ। वे सुरक्षित रहें तो पाण्डवों, सृंजयों और सोमकोंका भी संहार कर सकते हैं ॥ २७ ॥

सृंजयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे ।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

'युद्धके मुहानेपर सारे सृंजयोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको भी मार डालेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २८ ॥

तथार्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः ।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः ॥ २९ ॥
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः ।

'योद्धाओ ! इसी प्रकार महारथी कर्ण अर्जुनका वध कर डालेगा तथा रणयज्ञकी दीक्षा लेकर युद्ध करनेवाला मैं भीमसेनको और तेजोहीन हुए दूसरे पाण्डवोंको भी बलपूर्वक जीत लूँगा ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ।
तस्माद् रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम् ॥ ३० ॥

'इस प्रकार अवश्य ही मेरी यह विजय चिरस्थायिनी होगी, अतः तुम सब लोग मिलकर संग्राममें महारथी द्रोणकी ही रक्षा करो' ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर आपके पुत्र दुर्योधनने उस भयंकर अन्धकारमें अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दे दी ॥ ३१ ॥

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ।
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ॥ ३२ ॥

भरतसत्तम ! फिर तो रात्रिके समय दोनों सेनाओंमें एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥३२॥

अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः ।
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं समपीडयन् ॥ ३३ ॥

अर्जुन कौरव-सेनापर और कौरव सैनिक अर्जुनपर नाना प्रकारके शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको पीड़ा देने लगे ॥ ३३ ॥

द्रौणिः पाञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृंजयान् ।
छादयांचक्रतुः संख्ये शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥

अश्वत्थामाने पाञ्चालराज द्रुपदको और द्रोणाचार्यने सृंजयोंको युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत ।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् ॥ ३५ ॥

भारत ! एक ओरसे पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंका और दूसरी ओरसे कौरव योद्धाओंका, जो एक दूसरेपर गहरी चोट कर रहे थे, घोर आर्तनाद सुनायी पड़ता था ॥ ३५ ॥

नैवास्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम् ।
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद् रौद्रं भयानकम् ॥ ३६ ॥

हमने तथा पूर्ववर्ती लोगोंने भी वैसा रौद्र एवं भयानक युद्ध न तो पहले कभी देखा था और न सुना ही था, जैसा कि वह युद्ध हो रहा था ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६४ ॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका युद्ध और कृतवर्माद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान् ।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! जब सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाला वह भयंकर रात्रियुद्ध आरम्भ हुआ, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंसे कहा—'दौड़ो, द्रोणाचार्यपर ही उन्हें मार डालनेकी इच्छासे आक्रमण करो' ॥ १-२ ॥

राज्ञस्ते वचनाद् राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ३ ॥

राजन् ! राजा युधिष्ठिरके आदेशसे पाञ्चाल और संजय भयानक गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥

वे सब-के-सब अमर्षमें भरे हुए थे और युद्धस्थलमें अपनी शक्ति, उत्साह एवं धैर्यके अनुसार बारंबार गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ४ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥

जैसे मतवाला हाथी किसी मतवाले हाथीपर आक्रमण कर रहा हो, उसी प्रकार युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख हृदिकपुत्र कृतवर्माने आगे बढ़कर उन्हें रोका ॥

शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥

राजन् ! युद्धके मुहानेपर चारों ओर बाणोंकी बौछार करते हुए शिनिपौत्र सात्यकिपर कुरुवंशी भूरिने धावा किया ॥ ६ ॥

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये आते हुए महारथी पाण्डुपुत्र सहदेवको वैकर्तन कर्णने रोका ॥ ७ ॥

भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥

मुँह बाये यमराजके समान अथवा विपक्षी बनकर आयी हुई मृत्युके समान भीमसेनका सामना स्वयं राजा दुर्योधनने किया ॥ ८ ॥

नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन् वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण युद्धकलामें कुशल योद्धाओंमें श्रेष्ठ नकुलको सुबलपुत्र शकुनिने शीघ्रतापूर्वक आकर रोका ॥ ९ ॥

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास संयुगे ॥ १० ॥

नरेश्वर ! रथसे आते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको युद्धस्थलमें शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने रोका ॥ १० ॥

प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥

महाराज ! मयूरके समान रंगवाले घोड़ोंद्वारा आते हुए प्रयत्नशील प्रतिविन्ध्यको दुःशासनने यत्नपूर्वक रोका ॥ ११ ॥

भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥

राजन् ! सैकड़ों मायाओंके प्रयोगमें कुशल भीमसेनकुमार राक्षस घटोत्कचको आते देख अश्वत्थामाने रोका ॥

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥

समराङ्गणमें द्रोणको पराजित करनेकी इच्छावाले सेना और सेवकोंसहित महारथी द्रुपदको वृषसेनने रोका ॥ १३ ॥

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत ! द्रोणको मारनेके उद्देश्यसे शीघ्रतापूर्वक आते हुए राजा विराटको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मद्रराज शल्यने रोक दिया ॥ १४ ॥

शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे रणक्षेत्रमें वेगपूर्वक आते हुए नकुलपुत्र शतानीकको चित्रसेनने अपने बाणोंद्वारा तुरंत रोक दिया ॥ १५ ॥

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥

महाराज ! कौरवसेनापर धावा करते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनको राक्षसराज अलम्बुषने रोका ॥ १६ ॥

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥ १७ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले, हर्ष और उत्साहसे युक्त, महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १७ ॥

तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान् महारथान् ।
तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥

राजन् ! इसी तरह आक्रमण करनेवाले पाण्डवपक्षके अन्य महारथियोंको आपकी सेनाके महारथियोंने बलपूर्वक रोका ॥ १८ ॥

गजारोहा गजैस्तूर्णं संनिपत्य महामृधे ।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

उस महासमरमें सैकड़ों और हजारों हाथीसवार तुरंत ही विपक्षी गजारोहियोंसे भिड़कर परस्पर जूझने और सैनिकोंको रौंदने लगे ॥ १९ ॥

निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥

राजन् ! रातके समय एक दूसरेपर वेगसे धावा करते

हुए घोड़े पंखधारी पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ २० ॥

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन् महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

महाराज ! हाथमें प्रास, शक्ति और ऋष्टि धारण किये घुड़सवार सैनिक पृथक्-पृथक् गर्जना करते हुए शत्रुपक्षके घुड़सवारोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥

नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥

उस युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैदल मनुष्य गदा और मुसल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेपर आक्रमण करते थे ॥ २२ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥

जैसे उत्ताल तरंगोंवाले महासागरको तटभूमि रोक देती है, उसी प्रकार धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए हृदिकपुत्र कृतवर्माने रोक दिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने कृतवर्माको पहले पाँच बाणोंसे घायल करके फिर बीस बाणोंसे बींध डाला और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त कुपित हुए कृतवर्माने भी एक भल्लसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरका धनुष काट दिया और उन्हें भी सात बाणोंसे बींध डाला ॥ २५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महारथी धर्मकुमार युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्माकी छाती और भुजाओंमें दस बाण मारे ॥ २६ ॥

माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७ ॥

आर्य ! रणभूमिमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे घायल होकर कृतवर्मा काँपने लगा और उसने क्रोधपूर्वक युधिष्ठिरको भी सात बाण मारे ॥ २७ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान् बाणान् पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥

राजन् ! तब कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने कृतवर्माके धनुष और दस्तानेको काटकर उसके ऊपर पाँच तीखे बाण चलाये, जो शिलापर तेज किये गये थे ॥ २८ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥

जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे बाण कृतवर्माके सुवर्णजटित बहुमूल्य कवचको छिन्न-भिन्न करके धरती फाड़कर उसके भीतर घुस गये ॥ २९ ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥

कृतवर्माने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको साठ और उनके सारथिको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद् धनुः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने विशाल धनुषको रथपर रखकर कृतवर्मापर एक सर्पाकार शक्ति चलायी ॥ ३१ ॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद् धरणीतलम् ॥ ३२ ॥

पाण्डुकुमार युधिष्ठिरकी चलायी हुई वह सुवर्णचित्रित विशाल शक्ति कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको छेदकर धरतीमें समा गयी ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३३ ॥

इसी समय युधिष्ठिरने पुनः धनुष हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माको ढक दिया ॥ ३३ ॥

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥

फिर तो वृष्णिवंशके शूरवीर श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें आधे निमेषमें ही युधिष्ठिरको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥

तब ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने ढाल-तलवार हाथमें ले ली। किंतु कृतवर्माने रणक्षेत्रमें तीखे बाण मारकर उनके उस खड्गको नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
प्रैषयत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

तब समराङ्गणमें युधिष्ठिरने सुवर्णमय दण्डसे युक्त दुर्धर्ष तोमर हाथमें लेकर उसे तुरंत ही कृतवर्मापर चला दिया ॥

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम्।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव॥ ३७ ॥

धर्मराजके हाथसे छूटकर सहसा अपने ऊपर आते हुए उस तोमरके सिद्धहस्त कृतवर्माने मुसकराते हुए-से दो टुकड़े कर दिये ॥ ३७ ॥

ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत्।
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत्॥ ३८ ॥

तब युद्धस्थलमें कृतवर्माने सैकड़ों बाणोंसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरको ढक दिया और अत्यन्त कुपित होकर उसने उनके कवचको भी तीखे बाणोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ ३८॥

हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम्।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात्॥ ३९ ॥

राजन्! कृतवर्माके बाणोंसे आच्छादित हुआ वह बहुमूल्य कवच आकाशसे तारोंके समुदायकी भाँति रणभूमिमें बिखर गया ॥ ३९ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः।
अपायासीद् रणात् तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ४० ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने, रथ नष्ट होने और कवच छिन्न-भिन्न हो जानेपर बाणोंसे पीड़ित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही युद्धसे पलायन कर गये ॥ ४० ॥

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः॥ ४१ ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिरको जीतकर कृतवर्मा पुनः महात्मा द्रोणके रथचक्रकी ही रक्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयाने नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा भूरिका वध, घटोत्कच और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा भीमके साथ दुर्योधनका युद्ध एवं दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम्।
आपतन्तमपासेधत् प्रयाणादिव कुञ्जरम्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जैसे कोई हाथीको उसके निकलनेके स्थानसे ही रोक दे, उसी प्रकार भूरिने आक्रमण करते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको समरभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ १ ॥

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत् तस्य शोणितम्॥ २ ॥

यह देख सात्यकि कुपित हो उठे और उन्होंने पाँच तीखे बाणोंसे भूरिकी छाती छेद डाली। उससे रक्तकी धारा बहने लगी ॥ २ ॥

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम्।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे॥ ३ ॥

इसी प्रकार युद्धस्थलमें कुरुवंशी भूरिने भी रणदुर्मद सात्यकिकी छातीमें दस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम्।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद् विस्फार्य कार्मुके॥ ४ ॥

महाराज! उन दोनोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। वे दोनों ही रोषसे अपने-अपने धनुष खींचकर बाणोंकी वर्षासे एक-दूसरेको अत्यन्त घायल कर रहे थे ॥ ४ ॥

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः॥ ५ ॥

राजेन्द्र! उन दोनोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी अत्यन्त भयंकर वर्षा हो रही थी। ये यम और अन्तकके समान कुपित हो परस्पर बाणोंका प्रहार कर रहे थे ॥ ५ ॥

तावन्योन्यं शरै राजन् संछाद्य समवस्थितौ।
मुहूर्तं चैव तद् युद्धं समरूपमिवाभवत्॥ ६ ॥

राजन्! वे दोनों ही एक-दूसरेको बाणोंद्वारा आच्छादित करके खड़े थे। दो घड़ीतक उनमें समानरूपसे ही युद्ध चलता रहा ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः॥ ७ ॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने हँसते हुए-से समराङ्गणमें महामना कुरुवंशी भूरिके धनुषको काट दिया ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

धनुष कट जानेपर उसकी छातीमें सात्यकिने तुरंत ही नौ तीखे बाण मारे और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥८॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥

बलवान् शत्रुके आघातसे अत्यन्त घायल हुए शत्रुतापन भूरिने दूसरा धनुष हाथमें लेकर सात्यकिको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! तीन बाणोंसे ही सात्यकिको घायल करके भूरिने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे भल्लद्वारा उनके धनुषको भी काट दिया ॥ १० ॥

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर क्रोधातुर हुए सात्यकिने भूरिके विशाल वक्षःस्थलपर एक अत्यन्त वेगशालिनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ११ ॥

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

उस शक्तिसे भूरिके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये और वह अपने उत्तम रथसे नीचे गिर पड़ा, मानो दैववश प्रदीप्त किरणोंवाला मंगलग्रह आकाशसे नीचे गिर गया हो ॥ १२ ॥

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥

शूरवीर भूरिको युद्धस्थलमें मारा गया देख महारथी अश्वत्थामा सात्यकिकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा ॥ १३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वह सात्यकिसे 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहकर उनके ऊपर उसी प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरु पर्वतपर जल बरसा रहा हो ॥ १४ ॥

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद् राजन् नादं मुक्त्वा महारथः॥१५॥

क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाको सात्यकिके रथपर आक्रमण करते देख महारथी घटोत्कचने सिंहनाद करके कहा—॥ १५ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥ १६ ॥

'द्रोणपुत्र ! खड़ा रह, खड़ा रह, मेरे हाथसे जीवित छूटकर नहीं जा सकेगा । जैसे कार्तिकेयने महिषासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं भी तुझे मार डालूँगा ॥ १६ ॥

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।

'आज समराङ्गणमें मैं तेरी युद्धविषयक श्रद्धा दूर कर दूँगा ।' ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये, शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले कुपित राक्षस घटोत्कचने अश्वत्थामापर उसी प्रकार धावा किया, जैसे सिंह किसी गजराजपर आक्रमण करता है ॥ १७½ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ॥ १८ ॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।

जैसे मेघ पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथके धुरेके समान मोटे-मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १८½ ॥

शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।

परंतु अश्वत्थामाने मुसकराते हुए समरभूमिमें अपने ऊपर आयी हुई उस बाणवर्षाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ १९½ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ २० ॥
समाचिनोद् राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिंदमम् ।

तत्पश्चात् मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले सैकड़ों पैने बाणोंद्वारा उसने शत्रुदमन राक्षसराज घटोत्कचको बींध दिया ॥ २० ॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा ।

महाराज ! अश्वत्थामाद्वारा उन बाणोंसे बिंधा हुआ वह राक्षस काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीवृषत् ।

तत्पश्चात् भीमसेनके प्रतापी पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर वज्र एवं बिजलीके समान चमकनेवाले भयंकर बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया तथा उसके ऊपर क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि अस्त्रोंकी चारों ओरसे वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५ ॥
व्यधमत् सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।

जैसे वायु बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार व्यथारहित इन्द्रियोंवाले महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने कुपित हो दिव्यास्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भयंकर बाणोंसे अपने ऊपर पड़ती हुई उस अत्यन्त दुःसह, अनुपम एवं वज्रपातके समान शब्द करनेवाली अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ २४-२५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ २६ ॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।

महाराज ! तत्पश्चात् अन्तरिक्षमें बाणोंका दूसरा भयंकर संग्राम-सा होने लगा, जो योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥

ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥ २७ ॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो चारों ओर चिनगारियाँ छूट रही थीं, उनसे आकाश प्रदोषकालमें जुगनुओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था ॥ २७½ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।

द्रोणपुत्रने आपके पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये अपने बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए उस राक्षसको भी ढक दिया ॥ २८½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।

तदनन्तर गाढ़ अन्धकारसे भरी हुई आधीरातके समय रणभूमिमें इन्द्र और प्रह्लादके समान अश्वत्थामा और घटोत्कचका घोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २९½ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसंनिभैः ।

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने युद्धस्थलमें कालाग्निके समान दस तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३२ ॥

राक्षसद्वारा चलाये हुए उन विशाल बाणोंसे घायल हो महाबली अश्वत्थामा समराङ्गणमें आँधीके हिलाये हुए वृक्षके समान काँपने लगा। वह ध्वजदण्डका सहारा ले मूर्च्छित हो गया ॥ ३१-३२ ॥

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप ।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥ ३३ ॥

नरेश्वर ! फिर तो आपकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया । प्रजानाथ ! आपके समस्त योद्धाओंने यह मान लिया कि अश्वत्थामा मारा गया ॥ ३३ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे ।
पञ्चालाः सृंजयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें अश्वत्थामाकी वैसी अवस्था देख पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ॥ ३५ ॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सचेत हो महाबली शत्रुसूदन अश्वत्थामाने बायें हाथसे धनुषको दबाकर कानतक खींचे हुए धनुषसे घटोत्कचको लक्ष्य करके यमदण्डके समान एक भयंकर एवं उत्तम बाण शीघ्र छोड़ दिया ॥ ३५-३६ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपते ! वह उत्तम एवं भयंकर बाण उस राक्षसकी छाती छेदकर पंखसहित पृथ्वीमें समा गया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान् द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥

महाराज ! युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाद्वारा अत्यन्त घायल हुआ महाबली राक्षसराज घटोत्कच रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥

हिडिम्बाकुमारको मूर्च्छित देख उसका सारथि घबरा गया और तुरंत ही उसे समराङ्गणसे, विशेषतः अश्वत्थामाके निकटसे दूर हटा ले गया ॥ ३९ ॥

तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥

इस प्रकार समरभूमिमें राक्षसराज घटोत्कचको घायल करके महारथी द्रोणपुत्रने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४० ॥

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषातिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सम्पूर्ण योद्धाओं तथा आपके पुत्रोंद्वारा पूजित हुआ अश्वत्थामा अपने शरीरसे मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्यके रथकी ओर आते हुए युद्धपरायण भीमसेनको स्वयं राजा दुर्योधनने पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष ।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥

माननीय नरेश ! तब भीमसेनने भी दुर्योधनको दस बाणोंसे घायल किया । फिर दुर्योधनने भी उन्हें बीस बाण मारे ॥ ४३ ॥

तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥

जैसे कभी-कभी चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें मेघोंके समूहसे आच्छादित हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों वीर सायकसमूहोंसे आच्छन्न दिखायी देते थे ॥

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनने भीमसेनको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥४५॥

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च दशभिः शरैः ।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥

तब भीमसेनने दस बाण मारकर उसके धनुष और ध्वज काट डाले और झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे कौरवश्रेष्ठ दुर्योधनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम् ।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ॥ ४७ ॥
अपीडयद् रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

तत्पश्चात् भरतश्रेष्ठ दुर्योधनने कुपित हो दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते पैने बाणोंद्वारा भीमसेनको पीड़ा देनी आरम्भ की ॥

तान् निहत्य शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ॥ ४८ ॥
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।

दुर्योधनके धनुषसे छूटे हुए उन सभी बाणोंको नष्ट करके भीमसेनने उस कौरव-नरेशको पचीस बाण मारे ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ॥ ४९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ।

आर्य ! इससे दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने एक क्षुरप्रसे भीमसेनका धनुष काटकर उन्हें दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ॥ ५० ॥
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ।

तब महाबली भीमसेनने दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही कौरव-नरेशको सात तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५०½ ॥

तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ५१ ॥
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा ।
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ॥ ५२ ॥
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः ।

दुर्योधनने शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति भीमसेनके उस धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया । महाराज ! भीमसेनके हाथमें लिये हुए दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें धनुषको भी विजयसे उल्लसित होनेवाले आपके मदोन्मत्त पुत्रने काट डाला ॥ ५१-५२½ ॥

स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम् ।
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव ॥ ५४ ॥

इस प्रकार जब बारंबार धनुष काटे जाने लगे, तब भीमसेनने समरभूमिमें सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक सुन्दर शक्ति चलायी, जो मौतकी सगी बहिनके समान जान पड़ती थी । वह आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रही थी ॥

सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम् ।
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ॥ ५५ ॥
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ।

आकाशमें सीमन्तकी रेखा-सी बनाती हुई अग्निके समान देदीप्यमान होनेवाली उस शक्तिके अपने पास आनेसे पहले ही कौरव-नरेशने तीन टुकड़े कर दिये । सम्पूर्ण योद्धाओं तथा महामना भीमसेनके देखते-देखते यह कार्य हो गया ॥

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ॥ ५६ ॥
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ।

महाराज ! तब भीमसेनने अपनी अत्यन्त तेजस्विनी गदाको बड़े वेगसे घुमाकर दुर्योधनके रथपर दे मारा ॥५६½॥

ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ॥ ५७ ॥
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दास्य रथं पुनः ।

युद्धस्थलमें उस भारी गदाने सहसा आपके पुत्रके चारों घोड़ों, सारथि और रथका भी मर्दन कर दिया ॥ ५७½ ॥

पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद् भीतः प्रणश्य च ॥ ५८ ॥
आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः ।

राजेन्द्र ! उस समय आपका पुत्र भीमसेनसे भयभीत हो पहले ही भागकर महामना नन्दकके रथपर जा बैठा था ॥

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ॥ ५९ ॥
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन् निशि कौरवान् ।

उस समय भीमसेनने आपके महारथी पुत्रको मारा गया मानकर रातके समय कौरवोंको डाँट बताते हुए बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद किया ॥ ५९½ ॥

तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥ ६० ॥

आपके सैनिकोंने भी राजा दुर्योधनको मरा हुआ ही मान लिया था; अतः वे सब ओर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे ॥ ६० ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन् महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२ ॥

राजन् ! उन भयभीत हुए सम्पूर्ण योद्धाओंका आर्तनाद तथा महामनस्वी भीमसेनकी गर्जना सुनकर दुर्योधनको मरा हुआ मान राजा युधिष्ठिर बड़े वेगसे उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ कुन्तीकुमार भीमसेन दहाड़ रहे थे ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृंजयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥

प्रजानाथ ! फिर तो पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और सृञ्जय योद्धा युद्धकी इच्छासे पूर्ण उद्योग करके द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ६३ ॥

तत्रासीत् सुमहद् युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६४ ॥

वहाँ शत्रुओंके साथ द्रोणाचार्यका बड़ा भारी संग्राम हुआ । सब लोग घोर अन्धकारमें डूबकर एक-दूसरेपर घातक प्रहार कर रहे थे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णके द्वारा सहदेवकी पराजय, शल्यके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय तथा अर्जुनसे पराजित होकर अलम्बुषका पलायन

संजय उवाच

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! द्रोणाचार्यको लक्ष्य करके आते हुए सहदेवको युद्धस्थलमें वैकर्तन कर्णने रोका ॥ १ ॥

सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

सहदेवने राधापुत्र कर्णको नौ बाणोंसे बींधकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा पुनः घायल कर दिया ॥ २ ॥

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥

कर्णने बदलेमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारे और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले वीर योद्धाकी भाँति उसने उनके प्रत्यञ्चासहित धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कर्णको बीस बाणोंसे घायल कर दिया । वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥

तब कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सहदेवके घोड़ोंको मारकर एक भल्लका प्रहार करके उनके सारथिको भी शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५ ॥

विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ६ ॥

रथहीन हो जानेपर सहदेवने ढाल और तलवार हाथमें ले ली; परंतु कर्णने हँसते हुए-से बाण मारकर उनकी उस तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६ ॥

अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर एक सुवर्णजटित अत्यन्त भयंकर विशाल गदा सूर्यपुत्र कर्णके रथपर दे मारी ॥ ७ ॥

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥

सहदेवके द्वारा चलायी हुई उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख कर्णने बहुत-से बाणोंद्वारा उसे स्तम्भित कर दिया और पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ८ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥

अपनी गदाको असफल होकर गिरी हुई देख सहदेवने बड़ी उतावलीके साथ कर्णपर शक्ति चलायी; किंतु उसने बाणोंद्वारा उस शक्तिको भी काट डाला ॥ ९ ॥

ससम्भ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथिं प्रति ।

महाराज ! तब सहदेव अपने उस उत्तम रथसे शीघ्र ही वेगपूर्वक कूद पड़े और युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको सामने खड़ा देख रथका एक चक्का लेकर उसके ऊपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तदापतद् वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ ११ ॥
शरैरनेकसाहस्रैरच्छिनत् सूतनन्दनः ।

उठे हुए कालचक्रके समान सहसा अपने ऊपर गिरते हुए उस रथचक्रको सूतनन्दन कर्णने कई हजार बाणोंसे काट गिराया ॥ ११½ ॥

तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥ १२ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान् बहून् ॥ १३ ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान् व्यधमच्छरैः ।

महामनस्वी सूतपुत्र कर्णके द्वारा उस रथचक्रके नष्ट कर दिये जानेपर ईषादण्ड, जोते, नाना प्रकारके जूए, हाथीके कटे हुए अङ्ग, मरे घोड़े और बहुत-सी मृत मनुष्योंकी लाशें कर्णको लक्ष्य करके चलायीं; परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा उन सबकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ १२-१३½ ॥

स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥ १४ ॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।

तत्पश्चात् माद्रीकुमार सहदेवने अपने आपको आयुधोंसे रहित समझकर कर्णके बाणोंसे अवरुद्ध हो उस रणभूमिको त्याग दिया ॥ १४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद् भरतर्षभ ॥ १५ ॥
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशाम्पते ।

भरतश्रेष्ठ ! प्रजानाथ ! तदनन्तर राधापुत्र कर्णने दो घड़ीतक सहदेवका पीछा करके उनसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—॥ १५½ ॥

मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ।

'ओ अधीर बालक ! तू युद्धस्थलमें विशिष्ट रथियोंके साथ संग्राम न करना । माद्रीकुमार ! अपने समान योद्धाओं-के साथ युद्ध किया कर । मेरी इस बातपर संदेह न करना' ॥

अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद् वचः ॥ १७ ॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥

तदनन्तर धनुषकी नोकसे उन्हें पीड़ा देते हुए कर्णने पुनः इस प्रकार कहा—'माद्रीपुत्र ! ये अर्जुन कौरवोंके साथ रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं । तू उन्हींके पास चला जा अथवा तेरा मन हो तो घरको लौट जा' ॥१७-१८॥

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥ १९ ॥

सहदेवसे ऐसा कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण पाञ्चालों और पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करता हुआ-सा रथके द्वारा उनकी ओर वेगपूर्वक चल दिया ॥ १९ ॥

वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन् सत्यसंधो महायशाः ॥ २० ॥

यद्यपि सहदेव उस समय वध करने योग्य अवस्थामें पहुँच गये थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके समराङ्गणमें शत्रुसूदन सत्यप्रतिज्ञ एवं महायशस्वी कर्णने उनका वध नहीं किया ॥ २० ॥

सहदेवस्ततो राजन् विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्छरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ २१ ॥

राजन् ! तदनन्तर सहदेव कर्णके बाणोंसे पीड़ित और उसके वचनरूपी बाणोंसे संतप्त एवं खिन्नचित्त हो अपने जीवनसे विरक्त हो गये ॥ २१ ॥

आरुरोह रथं चापि पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥

फिर वे महारथी सहदेव बड़ी उतावलीके साथ महामना पाञ्चाल-राजकुमार जनमेजयके रथपर आरूढ़ हो गये ॥२२॥

विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले सेनासहित धनुर्धर राजा विराटको मद्रराज शल्यने अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया ॥ २३ ॥

तयोः समभवद् युद्धं समरे दृढधन्विनोः।
यादृशं ह्यभवद् राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥

राजन्! फिर तो समराङ्गणमें उन दोनों सुदृढ़ धनुर्धर योद्धाओंमें वैसा ही घोर युद्ध होने लगा, जैसा कि पूर्वकालमें इन्द्र और जम्भासुरमें हुआ था ॥ २४ ॥

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम्।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २५ ॥

महाराज! मद्रराज शल्यने सेनापति राजा विराटको बड़ी उतावलीके साथ झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारकर तुरंत घायल कर दिया ॥ २५ ॥

प्रतिविव्याध तं राजन् नवभिर्निशितैः शरैः।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६ ॥

राजन्! तब विराटने मद्रराजको पहले नौ, फिर तिहत्तर और पुनः सौ तीखे बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ २६ ॥

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥

तदनन्तर मद्रराजने विराटके रथके चारों घोड़ोंको मारकर दो बाणोंसे समराङ्गणमें सारथि और ध्वजको भी काट गिराया ॥ २७ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्छरान् ॥ २८ ॥

तब उस अश्वहीन रथसे तुरंत ही कूदकर महारथी राजा विराट धनुषकी टंकार करते और तीखे बाणोंको छोड़ते हुए भूमिपर खड़े हो गये ॥ २८ ॥

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम्।
रथेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् शतानीक अपने भाईके वाहनको नष्ट हुआ देख सब लोगोंके देखते-देखते शीघ्र ही रथके द्वारा उनके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३० ॥

उस महासमरमें वहाँ आते हुए शतानीकको बहुत-से बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यने उन्हें यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३० ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥

वीर शतानीकके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ विराट तुरंत ही ध्वज-मालासे विभूषित उसी रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ३१ ॥

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥

तब क्रोधसे आँखें फाड़कर दूना पराक्रम दिखाते हुए विराटने अपने बाणोंद्वारा मद्रराजके रथको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया ॥ ३२ ॥

ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३३ ॥

इससे कुपित हुए मद्रराज शल्यने झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे सेनापति विराटकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्।
कश्मलं चाविशत् तीव्रं विराटो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

महाराज! भरतभूषण! राजा विराट अत्यन्त घायल होकर रथके पिछले भागमें धम्म-से बैठ गये और उन्हें तीव्र मूर्च्छाने दबा लिया ॥ ३४ ॥

सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम्।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना।

भरतनन्दन! समराङ्गणमें बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए राजा विराटको उनका सारथि दूर हटा ले गया। तब संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यके सैकड़ों सायकोंसे पीड़ित हुई वह विशाल सेना उस रात्रिके समय भाग खड़ी हुई ॥

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनंजयौ ॥ ३६ ॥
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः।

राजेन्द्र! उस सेनाको भागती देख श्रीकृष्ण और अर्जुन उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा शल्य खड़े थे ॥

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः ॥ ३७ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम्।

राजन्! उस समय राक्षसराज अलम्बुष आठ पहियोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो उन दोनोंका सामना करनेके लिये आगे बढ़ आया ॥ ३७½ ॥

तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८ ॥
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम्।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥

उसके उस रथमें घोड़ोंके समान मुखवाले भयंकर पिशाच जुते हुए थे। उसपर लाल रंगकी आर्द्र पताका

फहरा रही थी। उस रथको लाल रंगके फूलोंकी मालासे सजाया गया था। वह भयंकर रथ काले लोहेका बना था और उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी ॥ ३८-३९ ॥

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥
स बभौ राक्षसो राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः।

उसकी ध्वजापर विचित्र पंख और फैले हुए नेत्रोंवाला भयंकर गृध्रराज अपनी बोली बोलता था। उससे उपलक्षित उस ऊँचे डंडेवाले कान्तिमान् ध्वजसे कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान वह राक्षस बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ४०½ ॥

रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ४१ ॥
किरन् बाणगणान् राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि।

राजन्! अर्जुनके मस्तकपर सैकड़ों बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए उस राक्षसने अपनी ओर आते हुए अर्जुनको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय प्रचण्ड वायुको रोक देता है ॥ ४१½ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥
द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥

भारत! उस समय वहाँ मनुष्य और राक्षसमें बड़े जोरसे महान् संग्राम होने लगा, जो समस्त दर्शकोंका आनन्द बढ़ानेवाला और गीध, कौए, बगले, उल्लू, कङ्क तथा गीदड़ोंको हर्ष प्रदान करनेवाला था ॥ ४२-४३ ॥

तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत्।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन! अर्जुनने सौ बाणोंसे उस राक्षसको घायल कर दिया और नौ तीखे बाणोंसे उसकी ध्वजा काट डाली ॥ ४४ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम्।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥

फिर तीन बाणोंसे उसके सारथिको, तीनसे ही रथके त्रिवेणुको, एकसे उसके धनुषको और चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको काट डाला ॥ ४५ ॥

पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाच्छिनत्।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाकरोत् ॥ ४६ ॥

जब उसने पुनः दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी तो अर्जुनने उसके भी दो टुकड़े कर दिये। रथहीन होनेपर उस राक्षसने जब खड्ग उठाया, तब अर्जुनने एक बाण मारकर उसके भी दो खण्ड कर डाले ॥ ४६ ॥

अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ।
पार्थोऽविध्यद् राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद् भयात्॥४७॥

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुनने चार तीखे बाणोंद्वारा उस राक्षसराजको बींध डाला। उन बाणोंसे विद्ध होकर अलम्बुष भयके मारे भाग गया ॥ ४७ ॥

तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ।
किरञ्शरगणान् राजन् नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥

राजन्! उसे परास्त करके अर्जुन मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ोंपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही द्रोणाचार्यके समीप चले गये ॥ ४८ ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥

महाराज! उन यशस्वी पाण्डुकुमारके द्वारा मारे जाते हुए आपके सैनिक आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धड़ाधड़ पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ४९ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना।
सम्प्राद्रवद् बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥ ५० ॥

प्रजानाथ! जब इस प्रकार महात्मा अर्जुनके द्वारा उनका संहार होने लगा, तब आपके पुत्रोंकी सारी सेना भाग चली ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी और वृषसेनके द्वारा द्रुपदकी पराजय तथा प्रतिविन्ध्य एवं दुःशासनका युद्ध

संजय उवाच

शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भारत! एक ओरसे नकुलपुत्र

शतानीक अपनी शराग्निसे आपकी सेनाको भस्म करता हुआ आ रहा था। उसे आपके पुत्र चित्रसेनने रोका॥ १॥

नाकुलिश्चित्रसेनं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः॥ २॥

शतानीकने चित्रसेनको पाँच बाण मारे। चित्रसेनने भी दस पैने बाण मारकर बदला चुकाया॥ २॥

चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ ३॥

महाराज! चित्रसेनने युद्धस्थलमें पुनः नौ तीखे बाणोंद्वारा शतानीककी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ ३॥

नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म संनतपर्वभिः।
गात्रात् संच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४॥

तब नकुलपुत्रने झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाण मारकर चित्रसेनके शरीरसे उसके कवचको काट गिराया। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ॥ ४॥

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः॥ ५॥

नरेश्वर! राजेन्द्र! कवच कट जानेपर आपका पुत्र चित्रसेन समयपर केंचुल छोड़नेवाले सर्पके समान अत्यन्त सुशोभित हुआ॥ ५॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे॥ ६॥

महाराज! तदनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले चित्रसेनके ध्वज और धनुषको पैने बाणोंद्वारा काट दिया॥ ६॥

स छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम्॥ ७॥

राजेन्द्र! समराङ्गणमें धनुष और कवच कट जानेपर महारथी चित्रसेनने दूसरा धनुष हाथमें लिया, जो शत्रुको विदीर्ण करनेमें समर्थ था॥ ७॥

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः॥ ८॥

उस समय समरभूमिमें कुपित हुए भरतकुलके महारथी वीर चित्रसेनने नकुलपुत्र शतानीकको नौ बाणोंसे घायल कर दिया॥ ८॥

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष।
जघान चतुरो वाहान् सारथिं च नरोत्तमः॥ ९॥

माननीय नरेश! तब अत्यन्त कुपित हुए नरश्रेष्ठ शतानीकने चित्रसेनके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला॥

अवप्लुत्य रथात् तस्माच्चित्रसेनो महारथः।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद् बली॥ १०॥

तब बलवान् महारथी चित्रसेनने उस रथसे कूदकर नकुलपुत्र शतानीकको पचीस बाण मारे॥ १०॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम्॥ ११॥

यह देख रणक्षेत्रमें नकुलपुत्रने पूर्वोक्त कर्म करनेवाले चित्रसेनके रत्नविभूषित धनुषको एक अर्धचन्द्राकार बाणसे काट डाला॥ ११॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः॥ १२॥

धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मारे गये और वह रथहीन हो गया। उस अवस्थामें चित्रसेन तुरंत भागकर महामना कृतवर्माके रथपर जा चढ़ा॥ १२॥

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम्।
वृषसेनोऽभ्ययात् तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा॥ १३॥

द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आते हुए महारथी द्रुपदपर वृषसेनने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए तत्काल आक्रमण कर दिया॥ १३॥

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम्।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ॥ १४॥

निष्पाप नरेश! समराङ्गणमें राजा यज्ञसेन (द्रुपद) ने महारथी कर्णपुत्र वृषसेनकी छाती और भुजाओंमें साठ बाण मारे॥ १४॥

वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम्।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे॥ १५॥

तब वृषसेन अत्यन्त कुपित होकर रथपर बैठे हुए यज्ञसेनकी छातीमें बहुत-से पैने बाण मारे॥ १५॥

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥ १६॥

महाराज! उन दोनोंके ही शरीर एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। वे दोनों ही बाणरूपी कंटकोंसे युक्त हो काँटोंसे भरे हुए दो साही नामक जन्तुओंके समान शोभित हो रहे थे॥ १६॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे॥ १७॥

सोनेके पंख और स्वच्छ धारवाले बाणोंसे उस महासमरमें दोनोंके कवच कट गये थे और दोनों ही लहू-लुहान होकर अद्भुत शोभा पा रहे थे॥ १७॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ।

किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥

वे दोनों सुवर्णके समान विचित्र, कल्पवृक्षके समान अद्भुत और खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान अनूठी शोभासे सम्पन्न हो रणभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

राजन्! तदनन्तर वृषसेनने राजा द्रुपदको नौ बाणोंसे घायल करके फिर सत्तर बाणसे बींध डाला। तत्पश्चात् उन्हें तीन-तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन् विबभौ तदा।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २० ॥

महाराज! तदनन्तर सहस्रों बाणोंका प्रहार करता हुआ कर्णपुत्र वृषसेन जलकी वर्षा करनेवाले मेघके समान सुशोभित होने लगा ॥ २० ॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम्।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥

इससे क्रोधमें भरे हुए राजा द्रुपदने एक पानीदार पैने भल्लसे वृषसेनके धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ २१ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम्।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम् ॥ २२ ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं संनिरीक्ष्य च।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥

तब उसने सोनेसे मढ़े हुए दूसरे नवीन एवं सुदृढ़ धनुषको हाथमें लेकर तरकससे एक चमचमाता हुआ पानीदार, तीखा और मजबूत भल्ल निकाला। उसे धनुषपर रक्खा और कानतक खींचकर समस्त सोमकोंको भयभीत करते हुए वृषसेनने राजा द्रुपदको लक्ष्य करके वह भल्ल छोड़ दिया ॥ २२-२३ ॥

हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम्।
कश्मलं प्राविशद् राजा वृषसेनशराहतः ॥ २४ ॥

वह भल्ल द्रुपदकी छाती छेदकर धरतीपर जा गिरा। वृषसेनके उस भल्लसे आहत होकर राजा द्रुपद मूर्छित हो गये ॥ २४ ॥

सारथिस्तमपोवाह स्मरन् सारथिचेष्टितम्।
तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्।
सम्प्राद्रवत् तदा राजन् निशीथे भैरवे सति ॥ २६ ॥

राजेन्द्र! तब सारथि अपने कर्तव्यका स्मरण करके उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। पाञ्चालोंके महारथी द्रुपदके हट जानेपर बाणोंसे कटे हुए कवचवाली द्रुपदकी सारी सेना उस भयंकर आधीरातके समय वहाँसे भाग चली ॥ २५-२६ ॥

प्रदीपैर्हि परित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः।
व्यराजत मही राजन् वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥

राजन्! भागते हुए सैनिकोंने जो मशालें फेंक दी थीं, वे सब ओर जल रही थीं। उनके द्वारा वह रणभूमि ग्रह-नक्षत्रोंसे भरे हुए मेघहीन आकाशके समान सुशोभित हो रही थी ॥ २७ ॥

तथाङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुंधरा।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥

महाराज! वीरोंके गिरे हुए चमकीले बाजूबन्दोंसे वहाँकी भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे वर्षाकालमें बिजलियोंसे मेघ प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

ततः कर्णसुतात् त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥

तदनन्तर कर्णपुत्र वृषसेनके भयसे त्रस्त हो सोमकवंशी क्षत्रिय उसी प्रकार भागने लगे, जैसे तारकामय संग्राममें इन्द्रके भयसे डरे हुए दानव भागे थे ॥ २९ ॥

तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ ३० ॥

महाराज! समरभूमिमें वृषसेनसे पीड़ित होकर भागते हुए सोमक योद्धा प्रदीपोंसे प्रकाशित हो बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३० ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१ ॥

भारत! युद्धस्थलमें उन सबको जीतकर कर्णपुत्र वृषसेन भी दोपहरके प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान उद्भासित हो रहा था ॥ ३१ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

आपके और शत्रुपक्षके सहस्रों राजाओंके बीच एकमात्र प्रतापी वृषसेन ही अपने तेजसे प्रकाशित होता हुआ रणभूमिमें खड़ा था ॥ ३२ ॥

स विजित्य रणे शूरान् सोमकानां महारथान्।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥

वह युद्धके मैदानमें शूरवीर सोमक महारथियोंको परास्त करके तुरंत वहाँ चला गया, जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ३३ ॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून्।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः॥ ३४॥

दूसरी ओर क्रोधमें भरा हुआ प्रतिविन्ध्य रणक्षेत्रमें शत्रुओंको दग्ध कर रहा था। उसका सामना करनेके लिये आपका महारथी पुत्र दुःशासन आ पहुँचा॥ ३४॥

तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव॥ ३५॥

राजन्! जैसे मेघरहित आकाशमें बुध और सूर्यका समागम हो, उसी प्रकार युद्धस्थलमें उन दोनोंका अद्भुत मिलन हुआ॥ ३५॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत॥ ३६॥

समराङ्गणमें दुष्कर कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्यके ललाटमें दुःशासनने तीन बाण मारे॥ ३६॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
विरराज महाबाहुः सशृङ्ग इव पर्वतः॥ ३७॥

आपके बलवान् धनुर्धर पुत्रद्वारा चलाये हुए उन बाणोंसे अत्यन्त घायल हो महाबाहु प्रतिविन्ध्य तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ॥ ३७॥

दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ ३८॥

तत्पश्चात् महारथी प्रतिविन्ध्यने समरभूमिमें दुःशासनको नौ बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला॥ ३८॥

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम्।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः॥ ३९॥

भारत! उस समय वहाँ आपके पुत्रने एक दुष्कर पराक्रम कर दिखाया। उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा प्रतिविन्ध्यके घोड़ोंको मार गिराया॥ ३९॥

सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत्।
रथं च तिलशो राजन् व्यधमत् तस्य धन्विनः॥ ४०॥

राजन्! फिर एक भल्ल मारकर उसने धनुर्धर वीर प्रतिविन्ध्यके सारथि और ध्वजको धराशायी कर दिया तथा रथके भी तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ४०॥

पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन् योक्त्राणि च प्रभो।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः॥ ४१॥

प्रभो! क्रोधमें भरे हुए दुःशासनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे प्रतिविन्ध्यकी पताकाओं, तरकसों, उनके घोड़ोंकी बागडोरों और रथके जोतोंको भी तिल-तिल करके काट डाला॥ ४१॥

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः।
अयोधयत् तव सुतं किरञ्शरशतान् बहून्॥ ४२॥

धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथहीन हो जानेपर हाथमें धनुष लिये पृथ्वीपर खड़ा हो गया और सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करता हुआ आपके पुत्रके साथ युद्ध करने लगा॥ ४२॥

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत्॥ ४३॥

तब आपके पुत्रने एक क्षुरप्रसे प्रतिविन्ध्यका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उसे दस बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी॥ ४३॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह॥ ४४॥

उसे रथहीन हुआ देख उसके अन्य महारथी भाई विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे उसकी सहायताके लिये आ पहुँचे॥ ४४॥

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम्।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव॥ ४५॥

महाराज! तब प्रतिविन्ध्य उछलकर सुतसोमके तेजस्वी रथपर जा बैठा और हाथमें धनुष लेकर आपके पुत्रको घायल करने लगा॥ ४५॥

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः॥ ४६॥

यह देख आपके सभी योद्धा आपके पुत्र दुःशासनको सब ओरसे घेरकर विशाल सेनाके साथ वहाँ युद्धके लिये डट गये॥ ४६॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम्॥ ४७॥

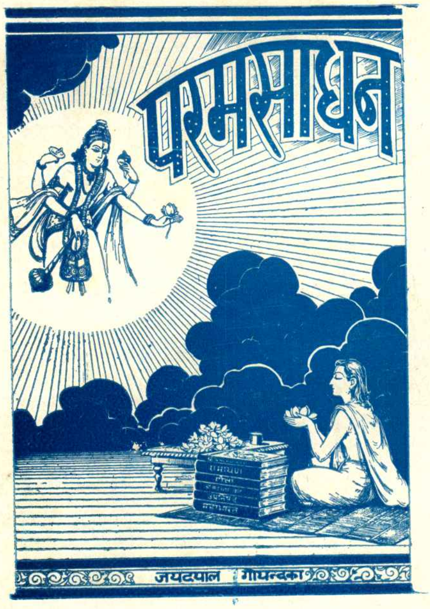
भारत! तदनन्तर उस भयंकर निशीथकालमें आपके पुत्र और द्रौपदीपुत्रोंका घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था॥ ४७॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धेऽष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय शतानीक आदिका युद्धविषयक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६८॥

रजि० सं० ए० ८५४

तीन नयी पुस्तकें ! प्रकाशित हो गयीं !!



परम साधन

लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३७२, पाँच बहुरंगे चित्र, मूल्य १) सजिल्द १।=) प्रथम संस्करण १०२५० ।

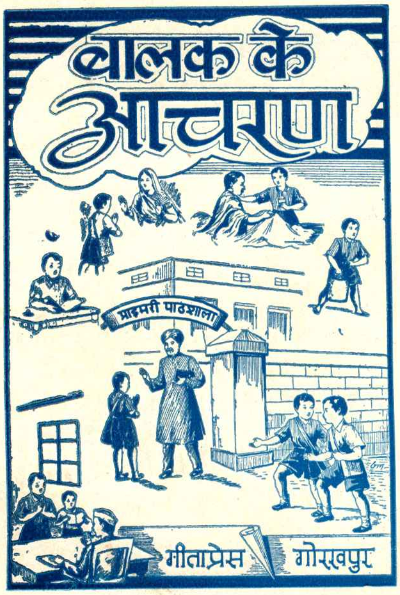
इसमें शारीरिक, भौतिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यावहारिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक आदि सब प्रकारकी उन्नतिका विवेचन किया गया है, जो कि सभीके लिये लाभदायक है। इसके सिवा, भगवत्प्राप्तिमें मनुष्यमात्रका अधिकार बतलाते हुए सत्य-पालन, निष्कामकर्म, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, बालकों और स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा तथा देशकी उन्नति आदि सर्वसाधारणके लिये उपयोगी विषयोंका भी प्रतिपादन किया गया है। साथ ही शिक्षाप्रद कथा-कहानी भी दी गयी है एवं भजन-ध्यानरूप भगवद्भक्तिका विषय तो इसमें बहुत विस्तारसे दिया ही गया है। समयकी अमोलकता, साधनके लिये चेतावनी, सत्सङ्ग और महापुरुषोंका प्रभाव तथा गोपी-प्रेमका रहस्य भी बतलाया गया है।



बालकोंको सीख

आकार२०×३०सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४०, आर्टपेपरपर छपा सुन्दर मुखपृष्ठ, मूल्य =) मात्र। प्रथम संस्करण २५००० ।

इस छोटी-सी पुस्तकमें छोटे-छोटे वाक्योंमें बालकोंके मनपर उत्तम संस्कार डालनेवाली बहुत-सी कामकी बातें दी गयी हैं, जो उनके चरित्रनिर्माणमें पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। पुस्तकमें १७ पाठ हैं, जिनके नाम हैं—'कृतज्ञ रहो, प्रतिज्ञा करो, आदर, प्रणाम करो, आज्ञापालन, स्वागत-सत्कार, व्यवहार, धक्का-मुक्की, मत करो, गंदी आदतें, घमंड मत करो, काम करनेमें लजाओ मत, अपने हाथ जगन्नाथ, तुम्हारे मित्र, उन लोगोंसे दूर रहो, भूल जाओ और मत भूलो।'



बालकके आचरण

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४०, सुन्दर आकर्षक मुखपृष्ठ, मोटे टाइपोंमें अच्छी छपाई, मूल्य =) प्रथम संस्करण २५००० ।

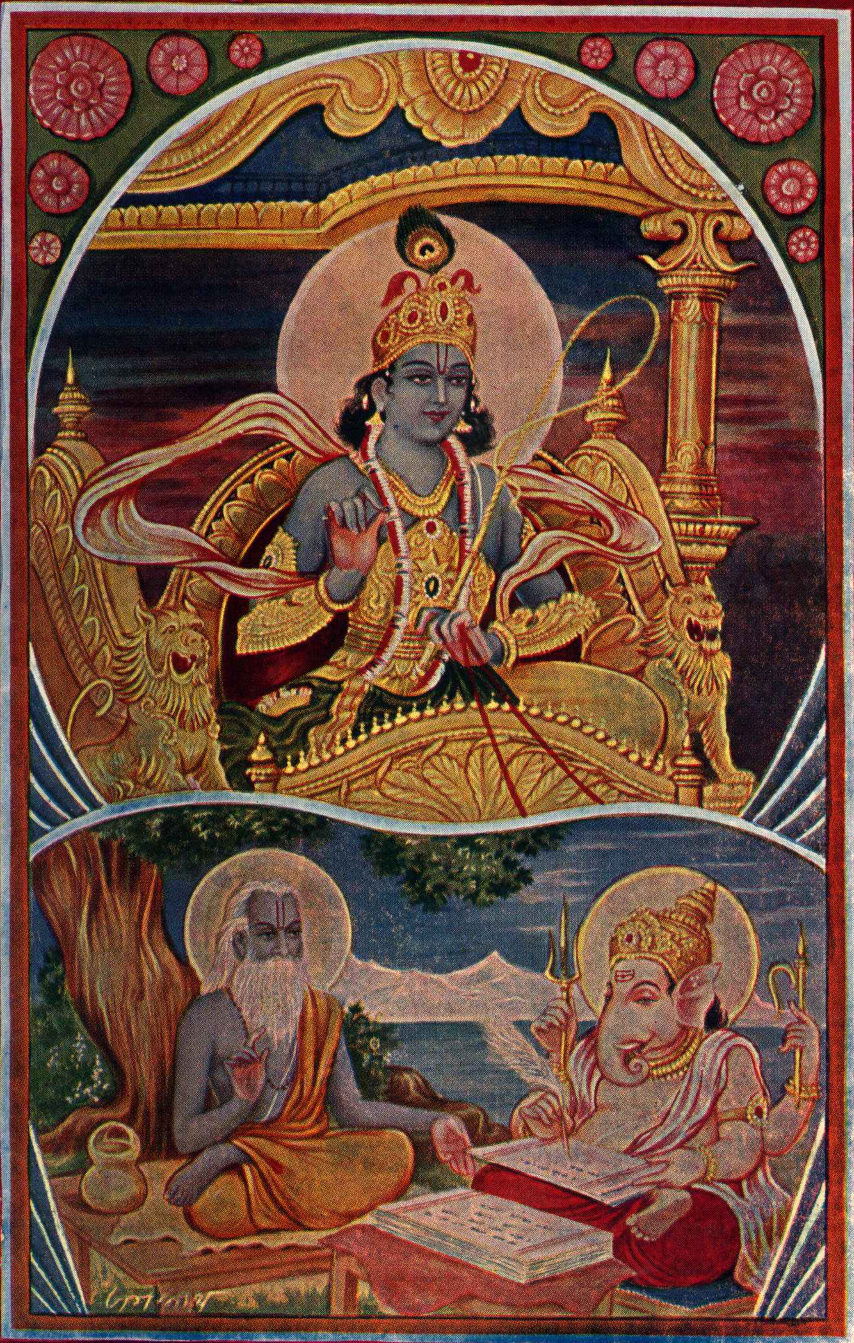
बालकके आचरण कैसे होने चाहिये, यही इस छोटी-सी पुस्तकमें दिखाया गया है। चरित्र-निर्माण शिक्षाका प्राण है, मुख्य अङ्ग है। देशकी लाज, धर्मका पालन, जातिकी मर्यादा, त्यागने योग्य काम, बिना पूछे न करो, क्षमा माँग लो, त्याग, महान् बनोगे ? स्मरण रखो, धनका उपयोग, बलका उपयोग, बुद्धिका उपयोग, अच्छे पुरुष—बुरे पुरुष, साथ-साथ, कभी मत करो और मनुष्य—इन सोलह पाठोंमें यह पुस्तक विभाजित है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल



हिन्दी अनुवाद

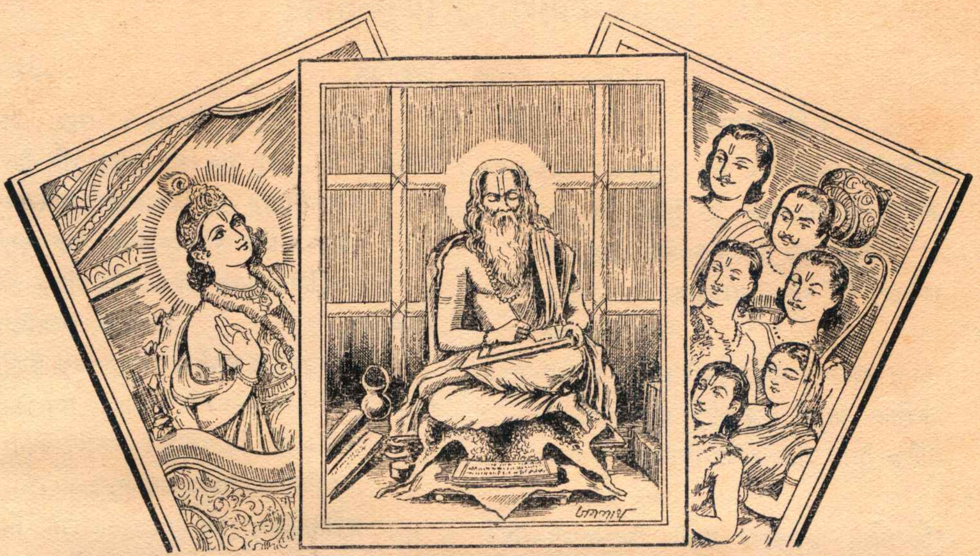
हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ७

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, वैशाख २०१४, मई १९५७ { संख्या ७ पूर्ण संख्या १९

भारत-सरोवर

भारताख्यं सरो [भाति व्यासवागमृतैर्वृतम् ।
यत्र क्षत्रकुलाब्जेषु हंसीयति हरेर्यशः ॥

महर्षि व्यासके वचनामृतसे१ परिपूर्ण भारत-सरोवर सुशोभित हो रहा है, जिसमें क्षत्रियकुलरूप कमलोंपर भगवान् श्रीहरिका यश हंसके समान विलसित होता है ।

(हरिहरसुभाषित)

वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

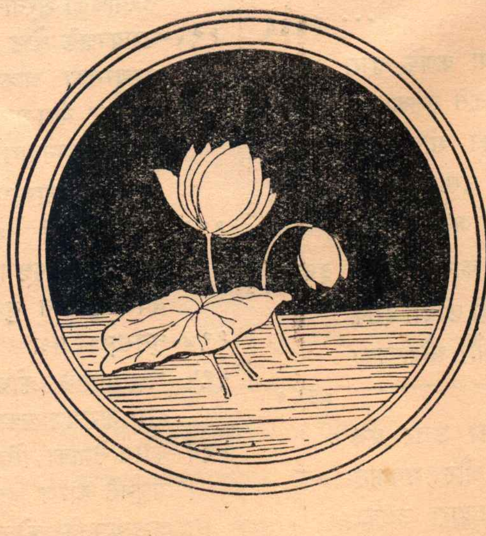
सम्पादक—**हनुमानप्रसाद पोद्दार**
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)

❀ श्रीहरिः ❀

विषय-सूची (द्रोणपर्व)

चित्र-सूची

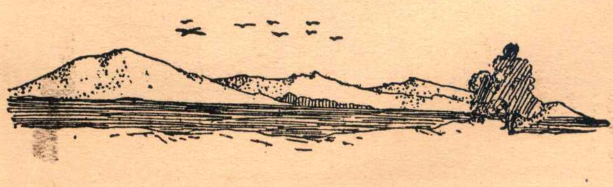


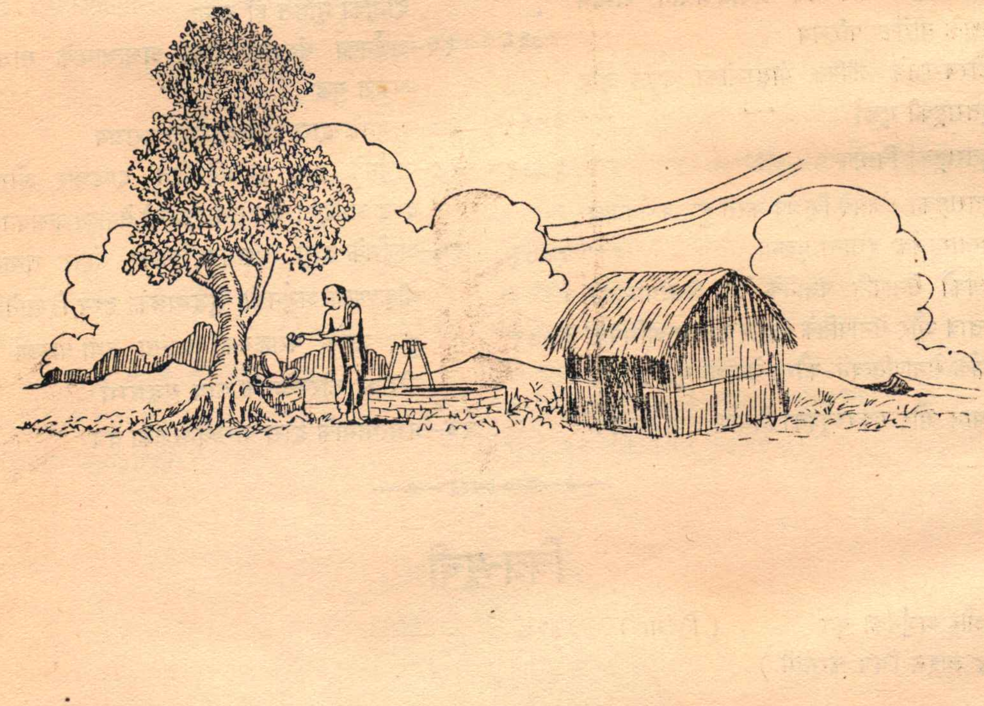
श्रीहरिः

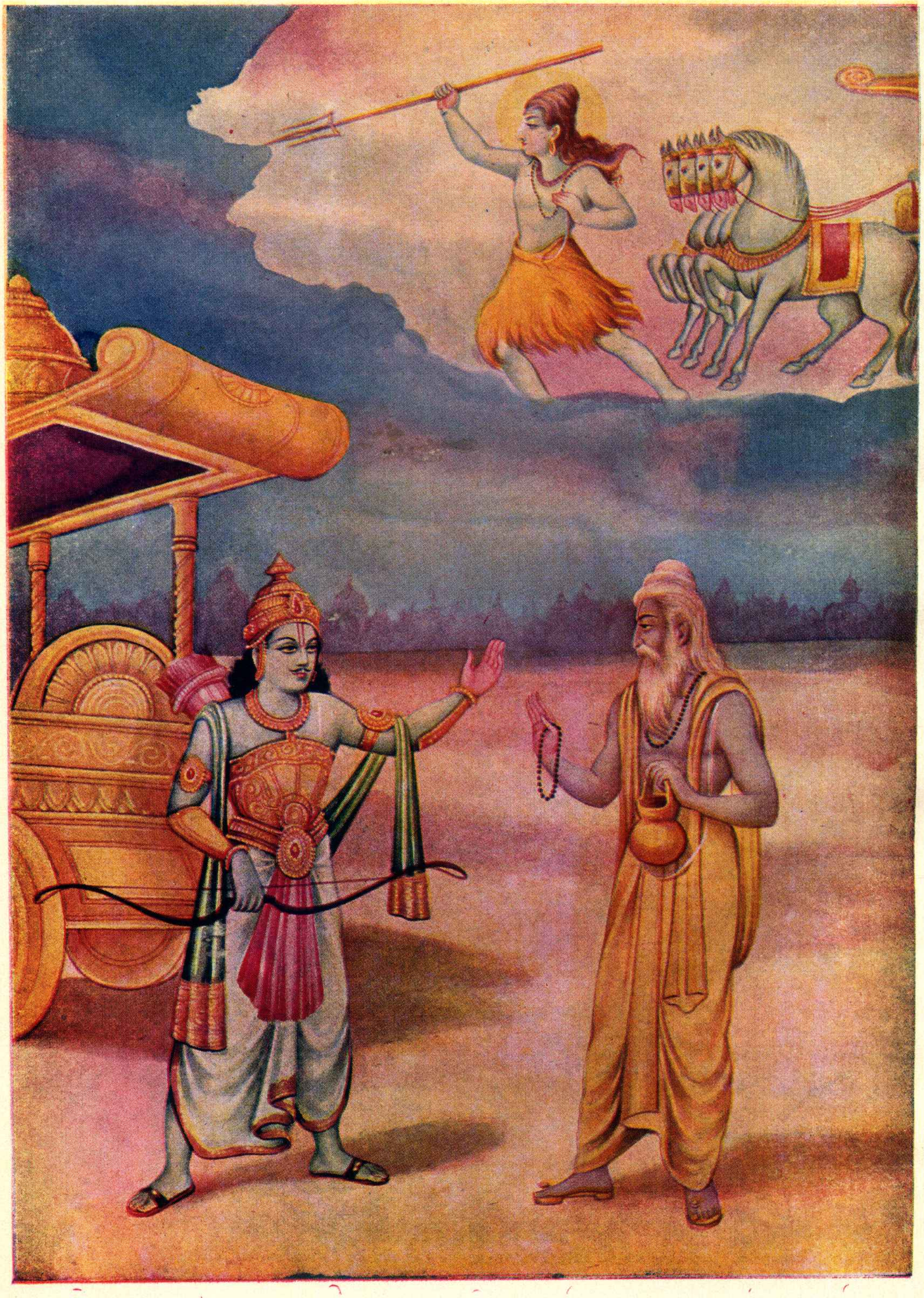
विषय-सूची

कर्णपर्व

चित्र-सूची







व्यासजी अर्जुनको शंकरजीकी महिमा कह रहे हैं

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नकुलके द्वारा शकुनिकी पराजय तथा शिखण्डी और कृपाचार्यका घोर युद्ध

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव।
अभ्ययात् सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! वेगशाली नकुल युद्धमें आपकी सेनाका संहार कर रहे थे। उनका सामना करनेके लिये क्रोधमें भरा हुआ सुबलपुत्र शकुनि आया और बोला 'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ १॥

कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २॥

उन दोनों वीरोंने पहलेसे ही आपसमें वैर बाँध रक्खा था, वे एक दूसरेका वध करना चाहते थे; इसलिये पूर्णतः कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे वे एक दूसरेको घायल करने लगे॥ २॥

यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां संदर्शयन् युधि॥ ३॥

राजन्! नकुल जैसे-जैसे बाणोंकी वर्षा करते, शकुनि भी वैसे-ही-वैसे युद्धविषयक शिक्षाका प्रदर्शन करता हुआ बाण छोड़ता था॥ ३॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥ ४॥

महाराज! वे दोनों शूरवीर समराङ्गणमें बाणरूपी कंटकोंसे युक्त होकर काँटेदार शरीरवाले साहीके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ४॥

रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे॥ ५॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे॥ ६॥

सोनेके पंख और सीधे अग्रभागवाले बाणोंसे उन दोनोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे। दोनों ही उस महासमरमें खून-से लथपथ हो सुवर्णके समान विचित्र कान्तिसे सुशोभित हो रहे थे। वे दो कल्पवृक्षों और खिले हुए दो ढाकके पेड़ोंके समान समराङ्गणमें प्रकाशित हो रहे थे॥ ५—६॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली॥ ७॥

महाराज! जैसे काँटोंसे सेमरका वृक्ष सुशोभित होता है, उसी प्रकार वे दोनों शूरवीर समरभूमिमें बाणरूपी कंटकोंसे युक्त दिखायी देते थे॥ ७॥

सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन् विवृतलोचनौ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम्॥ ८॥

राजन्! वे अत्यन्त कुटिलभावसे परस्पर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे और क्रोधसे लाल नेत्र करके एक दूसरेको ऐसे देखते थे, मानो भस्म कर देंगे॥ ८॥

श्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह॥ ९॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरकर हँसते हुए-से आपके सालेने एक तीखे कर्णी नामक बाणसे माद्रीपुत्र नकुलकी छातीमें गहरा आघात किया॥ ९॥

नकुलस्तु भृशं विद्धः श्यालेन तव धन्विना।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत्॥ १०॥

आपके धनुर्धर सालेके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए नकुल रथके पिछले भागमें बैठ गये और भारी मूर्छामें पड़ गये॥ १०॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम्।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा॥ ११॥

राजन्! अपने अत्यन्त वैरी और अभिमानी शत्रुको वैसी अवस्थामें पड़ा देख शकुनि वर्षाकालके मेघके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ११॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः।
अभ्ययात् सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः॥ १२॥

इतनेमें ही पाण्डुनन्दन नकुल होशमें आकर मुँह बाये हुए यमराजके समान पुनः सुबलपुत्रका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥ १२॥

संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे॥ १३॥

भरतश्रेष्ठ! इन्होंने कुपित होकर शकुनिको साठ बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उसकी छातीमें इन्होंने सौ नाराच मारे॥ १३॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत् तदा।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद् भूमावपातयत्॥ १४॥

तत्पश्चात् नकुलने शकुनिके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और तुरंत ही उसकी ध्वजाको भी काटकर रथसे भूमिपर गिरा दिया॥ १४॥

विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च।
ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः॥ १५॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा।

इसके बाद एक पानीदार पैने एवं तीखे बाणसे पाण्डु-नन्दन नकुलने शकुनिकी दोनों जाँघोंको विदीर्ण करके व्याध-

द्वारा विद्ध हुए पंखयुक्त बाज पक्षीके समान उसे गिरा दिया॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १६ ॥
ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा ।

महाराज ! उस बाणसे अत्यन्त घायल हुआ शकुनि, जैसे कामी पुरुष कामिनीका आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार ध्वज-यष्टि (ध्वजाके डंडे) को दोनों भुजाओंसे पकड़कर रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ १६½ ॥

तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा श्यालं तवानघ ॥ १७ ॥
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।

निष्पाप नरेश ! आपके सालेको बेहोश पड़ा देख सारथि रथके द्वारा शीघ्र ही उसे सेनाके आगेसे दूर हटा ले गया ॥

ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः ॥ १८ ॥
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १९ ॥

फिर तो कुन्तीके पुत्र और उनके सेवक बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे । इस प्रकार रणभूमिमें शत्रुको परास्त करके क्रोधमें भरे हुए शत्रुसंतापी नकुलने अपने सारथिसे कहा—'सूत ! मुझे द्रोणाचार्यकी सेनाके पास ले चलो' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात् तेन तदा राजन् यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ॥ २० ॥

राजन् ! माद्रीकुमारका वह वचन सुनकर सारथि उस रथके द्वारा जहाँ द्रोणाचार्य खड़े थे, वहाँ तत्काल जा पहुँचा ॥ २० ॥

शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत् सवेगितः ॥ २१ ॥

प्रजानाथ ! द्रोणाचार्यके साथ युद्धकी इच्छावाले शिखण्डीका समरभूमिमें सामना करनेके लिये प्रयत्नशील हो शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ २१ ॥

गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिंदमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ २२ ॥

शत्रुओंको दमन करनेवाले, द्रोण-रक्षक, गौतमगोत्रीय कृपाचार्यको शीघ्रतापूर्वक आते देख हँसते हुए-से शिखण्डीने उन्हें नौ भल्लोंसे बींध डाला ॥ २२ ॥

तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत् तव ॥ २३ ॥

महाराज ! तब आपके पुत्रोंका प्रिय करनेवाले कृपाचार्यने शिखण्डीको पाँच बाणोंसे बींधकर फिर बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

महद् युद्धं तयोरासीद् घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २४ ॥

पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर शम्बरासुर और इन्द्रमें जैसा युद्ध हुआ था, वैसा ही घोर भयानक एवं महान् युद्ध उन दोनोंमें भी हुआ ॥ २४ ॥

शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥

उन दोनों रणदुर्मद वीर महारथियोंने वर्षाकालके दो मेघोंके समान आकाशको बाणसमूहोंसे व्याप्त कर दिया ॥

प्रकृत्या घोररूपं तदासीद् घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद् घोररूपा भयानका ।

भरतश्रेष्ठ ! स्वभावसे ही भयंकर दिखायी देनेवाला आकाश उस समय और भी घोरतर हो उठा । युद्धभूमिमें शोभा पानेवाले योद्धाओंके लिये वह घोर एवं भयानक रात्रि कालरात्रिके समान प्रतीत होती थी ॥ २६½ ॥

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद् धनुः ॥ २७ ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ।

महाराज ! शिखण्डीने उस समय अर्धचन्द्राकार बाण मारकर प्रत्यञ्चा और बाणसहित कृपाचार्यके विशाल धनुषको काट दिया ॥ २७½ ॥

तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ॥ २८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ।

राजन् ! तब कृपाचार्यने कुपित होकर सोनेके दण्ड और अप्रतिहत धारवाली तथा कारीगरके द्वारा साफ की हुई एक भयंकर शक्ति उसके ऊपर चलायी ॥ २८½ ॥

तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९ ॥
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ।

अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको शिखण्डीने बहुत-से बाण मारकर काट दिया । वह अत्यन्त कान्तिमती एवं प्रकाशमान शक्ति खण्डित हो सब ओर प्रकाश बिखेरती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ।

महाराज ! तब रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर पैने बाणोंद्वारा शिखण्डीको ढक दिया ॥ ३०½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥ ३१ ॥
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ।

समरभूमिमें यशस्वी कृपाचार्यद्वारा बाणोंसे आच्छादित किया जाता हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डी रथके पिछले भागमें शिथिल होकर बैठ गया ॥ ३१½ ॥

सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥ ३२ ॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें शिखण्डीको शिथिल हुआ देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने उसपर बहुत-से बाणोंका प्रहार किया, मानो वे उसे मार डालना चाहते हों ॥ ३२½ ॥

विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३३ ॥
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।

राजा द्रुपदके उस महारथी पुत्रको युद्धविमुख हुआ देख पाञ्चालों और सोमकोंने उसे चारों ओरसे घेरकर अपने बीचमें कर लिया ॥ ३३½ ॥

तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ।

इसी प्रकार आपके पुत्रोंने भी विशाल सेनाके साथ आकर द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यको अपने बीचमें कर लिया । फिर दोनों दलोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ३४½ ॥

रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ॥ ३५ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।

राजन् ! रणभूमिमें परस्पर धावा करनेवाले रथोंकी घर्घराहटका भयंकर शब्द मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ ३५½ ॥

द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशाम्पते ॥ ३६ ॥
अन्योन्यमभितो राजन् क्रूरमायोधनं बभौ ।

प्रजापालक नरेश ! चारों ओर एक दूसरेपर आक्रमण करनेवाले घुड़सवारों और हाथीसवारोंके संघर्षसे वह रणभूमि अत्यन्त दारुण प्रतीत होने लगी ॥ ३६½ ॥

पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७ ॥
अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ।

महाराज ! दौड़ते हुए पैदल सैनिकोंके पैरोंकी धमकसे यह पृथ्वी भयभीत अबलाके समान काँपने लगी ॥ ३७½ ॥

रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ ३८ ॥
अगृह्णन् बहवो राजञ्शलभान् वायसा इव ।

राजन् ! जैसे कौए दौड़-दौड़कर टिड्डियोंको पकड़ते हैं, उसी प्रकार रथपर बैठकर बड़े वेगसे धावा करनेवाले बहुसंख्यक रथी शत्रुपक्षके सैनिकोंको दबोच लेते थे ॥ ३८½ ॥

तथा गजान् प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः ॥ ३९ ॥
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ।

भरतनन्दन ! मदस्रावी विशाल हाथी मदकी धारा बहानेवाले दूसरे गजराजोंसे सहसा भिड़कर एक दूसरेको यत्नपूर्वक काबूमें कर लेते थे ॥ ३९½ ॥

सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥ ४० ॥
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः ।

रणभूमिमें घुड़सवार घुड़सवारोंसे और पैदल पैदलसे भिड़कर परस्पर कुपित होते हुए भी एक दूसरेको लाँघकर आगे नहीं बढ़ पाते थे ॥ ४०½ ॥

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥ ४१ ॥
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि ।

उस रात्रिके समय दौड़ते, भागते और पुनः लौटते हुए सैनिकोंका महान् कोलाहल सुनायी पड़ता था ॥ ४१½ ॥

दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ।

महाराज ! रथों, हाथियों और घोड़ोंपर जलती हुई मशालें आकाशसे गिरी हुई बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान दिखायी देती थीं ॥ ४२½ ॥

सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३ ॥
दिवसप्रतिमा राजन् बभूव रणमूर्धनि ।

भरतभूषण नरेश ! प्रदीपोंसे प्रकाशित हुई वह रात्रि युद्धके मुहानेपर दिनके समान हो गयी थी ॥ ४३½ ॥

आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति ॥ ४४ ॥
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः ।

जैसे सूर्यके प्रकाशसे सम्पूर्ण जगत्‌में फैला हुआ अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इधर-उधर जलती हुई मशालोंसे वहाँका भयानक अँधेरा नष्ट हो गया था ॥ ४४½ ॥

द्यौश्चैव पृथिवी चापि दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ ४५ ॥
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः ।

धूल और अन्धकारसे व्याप्त आकाश, पृथ्वी, दिशा और विदिशाएँ प्रदीपोंकी प्रभासे पुनः प्रकाशित हो उठी थीं ॥

अस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम् ॥ ४६ ॥
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।

महामनस्वी योद्धाओंके अस्त्रों, कवचों और मणियोंकी सारी प्रभा उन प्रदीपोंके प्रकाशसे तिरोहित हो गयी थी ॥

तस्मिन् कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥ ४७ ॥
न किंचिद् विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।

भारत ! उस रात्रिके समय जब वह भयंकर कोलाहलपूर्ण संग्राम चल रहा था, तब योद्धाओंको कुछ भी पता नहीं चलता था । वे अपने आपके विषयमें भी यह नहीं जान पाते थे कि 'मैं अमुक हूँ' ॥ ४७½ ॥

अवधीत् समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहात् सखायं च सखा तथा ।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥ ४९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समराङ्गणमें मोहवश पिताने पुत्रका वध कर डाला और पुत्रने पिताका । मित्रने मित्रके प्राण ले लिये । मामाने भानजेको मार डाला और भानजेने मामाको ॥

स्वे स्वान् परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद् युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥

अपने पक्षके योद्धा अपने ही सैनिकोंपर तथा शत्रुपक्षके सैनिक भी अपने ही योद्धाओंपर परस्पर घातक प्रहार करने लगे। इस प्रकार रात्रिमें वह युद्ध मर्यादारहित होकर कायरोंके लिये अत्यन्त भयानक हो उठा ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय संकुलयुद्धविषयक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६९ ॥

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यका युद्ध, धृष्टद्युम्नद्वारा द्रुमसेनका वध, सात्यकि और कर्णका युद्ध, कर्णकी दुर्योधनको सलाह तथा शकुनिका पाण्डवसेनापर आक्रमण

संजय उवाच

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! जिस समय वह भयंकर घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की ॥ १ ॥

संदधानो धनुःश्रेष्ठं ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपने श्रेष्ठ धनुषपर बाणोंका संधान करके बारंबार उसकी प्रत्यञ्चा खींचते हुए द्रोणाचार्यके स्वर्णभूषित रथपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

महाराज! द्रोणाचार्यका अन्त करनेकी इच्छासे आते हुए धृष्टद्युम्नको पाण्डवोंसहित पाञ्चालोंने घेरकर अपने बीचमें कर लिया ॥ ३ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नको इस प्रकार रक्षकोंसे घिरा हुआ देख आपके पुत्र भी सावधान हो युद्धस्थलमें सब ओरसे आचार्यप्रवर द्रोणकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥

जैसे वायुके वेगसे उद्वेलित तथा विक्षुब्ध जल-जन्तुओंसे भरे हुए दो भयंकर समुद्र एक-दूसरेसे मिल रहे हों, उसी प्रकार उस रात्रिके समय वे सागर-सदृश दोनों सेनाएँ एक-दूसरेसे भिड़ गयीं ॥ ५ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६ ॥

महाराज! उस समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यकी छातीमें तुरंत ही पाँच बाण मारे और सिंहके समान गर्जना की ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे।
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन! तब द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको पचीस बाणोंसे घायल करके एक दूसरे भल्लके द्वारा उनके घोर टंकार करनेवाले धनुषको काट दिया ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं संदश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ! द्रोणाचार्यके द्वारा घायल किये हुए धृष्टद्युम्नने रोषपूर्वक अपने ओठको दाँतोंसे दबा लिया और उस टूटे हुए धनुषको तुरंत फेंक दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
आददेऽन्यद् धनुःश्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥

महाराज! तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका विनाश करनेकी इच्छासे दूसरा श्रेष्ठ धनुष हाथमें ले लिया ॥ ९ ॥

विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात् परवीरहा।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत् सायकं ततः ॥ १० ॥

फिर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले उस पाञ्चाल वीरने उस विचित्र धनुषको कानोंतक खींचकर उसके द्वारा द्रोणाचार्यका अन्त करनेमें समर्थ एक भयंकर बाण छोड़ा ॥ १० ॥

स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे।
भासयामास तत् सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥

उस महासमरमें बलवान् वीरके द्वारा छोड़ा हुआ वह घोर बाण उदित हुए सूर्यके समान उस सेनाको प्रकाशित करने लगा ॥ ११ ॥

तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन् द्रोणायेत्यब्रुवन् वचः ॥ १२ ॥

राजन्! समरभूमिमें उस भयंकर बाणको देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी कहने लगे कि 'द्रोणाचार्यका कल्याण हो' ॥ १२ ॥

तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति।

कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥

नरेश्वर ! आचार्यके रथकी ओर आते हुए उस बाणके कर्णने सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बारह टुकड़े कर डाले ॥ १३ ॥

स च्छिन्नो बहुधा राजन् सूतपुत्रेण धन्विना ।
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥

राजन् ! धनुर्धर सूतपुत्रके द्वारा अनेक टुकड़ोंमें कटा हुआ वह बाण विषहीन भुजंगके समान तुरंत पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः ।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः ॥ १५ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नको कर्णने दस, अश्वत्थामाने पाँच और स्वयं द्रोणने सात बाण मारे ॥ १५ ॥

शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥

फिर शल्यने दस, दुःशासनने तीन, दुर्योधनने बीस और शकुनिने पाँच बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ १६ ॥

पाञ्चाल्यं त्वरयाविध्यन् सर्व एव महारथाः ।
स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्यार्थे महाहवे ॥ १७ ॥
सर्वानसम्भ्रमाद् राजन् प्रत्यविद्ध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः ।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवात्मजम् ॥ १८ ॥

राजन् ! इस प्रकार सभी महारथियोंने बड़ी उतावलीके साथ पाञ्चालराजकुमारपर अपने-अपने बाणोंका प्रहार किया । उस महासमरमें द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सात वीरोंद्वारा घायल किये जानेपर भी धृष्टद्युम्नने बिना किसी घबराहटके उन सबको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला । फिर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण तथा आपके पुत्र दुर्योधनको भी घायल कर दिया ॥

ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे ।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥

उन धनुर्धर वीर धृष्टद्युम्नके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो उन सभी योद्धाओंने युद्धस्थलमें पुनः उन्हें पाँच-पाँच बाणोंसे शीघ्र ही बींध डाला । प्रत्येक महारथीने उनपर प्रहार किया था ॥

द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन् विव्याध पत्रिणा ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

राजन् ! उस समय द्रुमसेनने अत्यन्त कुपित होकर एक बाणसे धृष्टद्युम्नको बींध डाला । फिर तुरंत ही अन्य तीन बाणोंसे उन्हें घायल करके कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २० ॥

स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥

तब धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें सोनेके पंखवाले, शिलापर स्वच्छ किये हुए, तीन तीखे एवं प्राणान्तकारी बाणोंद्वारा द्रुमसेनको घायल कर दिया ॥ २१ ॥

भल्लेनान्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् ।
निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥

फिर दूसरे भल्लद्वारा उन पराक्रमी वीरने द्रुमसेनके सुवर्णनिर्मित कान्तिमान् कुण्डलोंद्वारा मण्डित मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २२ ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ संदष्टौष्ठपुटं रणे ।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥

रणभूमिमें उस मस्तकने अपने ओठको दाँतोंसे दबा रक्खा था । वह आँधीके द्वारा गिराये हुए पके ताल-फलके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

तान् स विद्ध्वा पुनर्योधान् वीरः सुनिशितैः शरैः ।
राधेयस्याच्छिनद् भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वीर धृष्टद्युम्नने अत्यन्त तीखे बाणोंद्वारा उन सभी योद्धाओंको पुनः घायल करके विचित्र युद्ध करनेवाले राधापुत्र कर्णके धनुषको भल्लोंसे काट डाला ॥ २४ ॥

न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा ।
निकर्तनमिवात्युग्रं लाङ्गूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥

जैसे सिंहकी पूँछ काट लेना अत्यन्त भयंकर कर्म है, उसे कोई महान् सिंह नहीं सह सकता, उसी प्रकार कर्ण अपने धनुषका काटा जाना सहन न कर सका ॥ २५ ॥

सोऽन्यद् धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥ २६ ॥

क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो रही थीं । वह दूसरा धनुष हाथमें लेकर लंबी साँस खींचता हुआ महाबली धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा और उनपर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगा ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः ।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥

कर्णको क्रोधमें भरा हुआ देख उन छहों श्रेष्ठ रथी वीरोंने पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत ही घेर लिया ॥ २७ ॥

षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८ ॥

आपकी सेनाके इन छः प्रमुख वीर योद्धाओंके सामने खड़े हुए धृष्टद्युम्नको हमलोग मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ ही मानने लगे ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान् ।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥

इसी समय दशार्हकुलभूषण सात्यकि बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ पराक्रमी धृष्टद्युम्नके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

---

१. दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, कर्ण, शल्य और शकुनि—ये ही छः श्रेष्ठ रथी यहाँ ग्रहण किये गये हैं ।

तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥ ३० ॥

वहाँ आते हुए महाधनुर्धर युद्धदुर्मद सात्यकिको राधा-पुत्र कर्णने सीधे जानेवाले दस बाणोंसे बींध डाला ॥ ३० ॥

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥

महाराज ! तब सात्यकिने भी समस्त वीरोंके देखते-देखते कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया और कहा—'खड़े रहो, भाग न जाना' ॥ ३१ ॥

स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत् समागमो राजन् बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥

राजन् ! उस समय बलवान् सात्यकि और महामनस्वी कर्णका वह संग्राम राजा बलि और इन्द्रके युद्ध-सा प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥

त्रासयन् रथघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥

अपने रथकी घर्घराहटसे क्षत्रियोंको भयभीत करते हुए क्षत्रियशिरोमणि सात्यकिने कमललोचन कर्णको अच्छी तरह घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली ।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥

महाराज ! बलवान् सूतपुत्र कर्ण भी अपने धनुषकी टंकार-से पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-सा सात्यकिके साथ युद्ध करने लगा ॥ ३४ ॥

विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत ॥ ३५ ॥

कर्णने शिनिपौत्र सात्यकिको विपाठ, कर्णी, नाराच, वत्सदन्त, क्षुर तथा सैकड़ों बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तथैव युयुधानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद् युद्धमभवत् समम् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें वृष्णिवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि भी युद्ध-तत्पर हो कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन दोनों-का वह युद्ध समान रूपसे चलने लगा ॥ ३६ ॥

तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

महाराज ! आपके अन्य योद्धा तथा कर्णका पुत्र कवचधारी वृषसेन—ये सब-के-सब चारों ओरसे तीखे बाणों-द्वारा सात्यकिको बींधने लगे ॥ ३७ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो ।
अविध्यत् सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥

प्रभो ! इससे कुपित हुए सात्यकिने उन सब योद्धाओं तथा कर्णके अस्त्रोंका अस्त्रोंद्वारा निवारण करके वृषसेनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते ।
न्यपतत् स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिके बाणसे घायल हो बलवान् वृषसेन धनुष छोड़कर मूर्च्छित हो रथपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥

तब महारथी वृषसेनको मारा गया मानकर कर्ण पुत्रशोकसे संतप्त हो सात्यकिको पीड़ा देने लगा ॥ ४० ॥

पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥

कर्णसे पीड़ित होते हुए महारथी युयुधान बड़ी उतावलीके साथ कर्णको अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा बारंबार बींधने लगे॥

स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
स हस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥

सात्वतवंशी सात्यकिने कर्णको दस और वृषसेनको सात बाणोंसे घायल करके उन दोनोंके दस्ताने और धनुष काट दिये॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयंकरे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥

तब उन दोनोंने दूसरे शत्रु-भयंकर धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सब ओरसे तीखे बाणोंद्वारा युयुधानको बींधना आरम्भ किया ॥ ४३ ॥

वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन् वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन् गाण्डीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥

राजन् ! जब बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह संग्राम चल रहा था, उसी समय वहाँ गाण्डीव धनुषकी गम्भीर टङ्कार-ध्वनि बड़े जोर-जोरसे सुनायी देने लगी ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥

नरेश्वर ! अर्जुनके रथका गम्भीर घोष और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर सूतपुत्र कर्णने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ ४५ ॥

एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् ।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥

'राजन् ! ये महाधनुर्धर कुन्तीकुमार अर्जुन हमारी सारी सेनाका संहार और मुख्य-मुख्य कुरुवंशी श्रेष्ठ पुरुषोंका वध करके अपने उत्तम धनुषकी टंकार करते हुए विजयी हो रहे हैं । उधर गाण्डीव धनुषका महान् घोष तथा गरजते हुए

मेघके समान पार्थके रथकी घोर घर्घराहट सुनायी दे रही है ॥

करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः।
एषा विदार्यते राजन् बहुधा भारती चमूः ॥ ४८ ॥

'इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि अर्जुन वहाँ अपने अनुरूप पुरुषार्थ कर रहे हैं। राजन्! भरतवंशियोंकी इस सेनाको वे अनेक भागोंमें विदीर्ण (विभक्त) किये देते हैं ॥ ४८ ॥

विप्रकीर्णान्यनेकानि न हि तिष्ठन्ति कर्हिचित्।
वातेनेव समुद्धूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे।

'उनके द्वारा तितर-बितर किये हुए हमारे बहुतसे सैन्य-दल कहीं भी ठहर नहीं पाते हैं। जैसे हवा घिरे हुए बादलों-को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनके सामने पड़-कर अपनी सारी सेना अनेक टुकड़ियोंमें बँटकर भागने लगी है। उसकी अवस्था समुद्रमें फटी हुई नौकाके समान हो रही है ॥

द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ५० ॥
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निःस्वनो महान्।

'राजन्! गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा विद्ध होकर भागते हुए सैकड़ों मुख्य-मुख्य योद्धाओंका वह महान् आर्तनाद सुनायी पड़ता है ॥ ५०½ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे।

'नृपश्रेष्ठ! इस रात्रिके समय आकाशमें मेघकी गर्जनाके समान जो अर्जुनके रथके समीप नगाड़ोंकी ध्वनि हो रही है, उसे सुनो ॥ ५१½ ॥

हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ५२ ॥
शृणु शब्दान् बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति।

'अर्जुनके रथके आसपास जो भाँति-भाँतिके हाहाकार, बारंबार सिंहनाद तथा अनेक प्रकारके और भी बहुत-से शब्द हो रहे हैं, उनको भी श्रवण करो ॥ ५२½ ॥

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः ॥५३॥
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्।

'ये सात्वतशिरोमणि सात्यकि इस समय हमलोगोंके बीचमें खड़े हैं। यदि यहाँ इन्हें हम अपने बाणोंका निशाना बना सकें तो निश्चय ही सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पा सकेंगे ॥

एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन संगतः ॥ ५४ ॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः।

'ये पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न, जो आचार्य द्रोणके साथ जूझ रहे हैं, हमारे रथियोंमें श्रेष्ठतम शूरवीर योद्धाओंद्वारा चारों ओरसे घिर गये हैं ॥ ५४½ ॥

सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ५५ ॥
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत्।

'महाराज! यदि हम सात्यकि तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न-को मार डालें तो हमारी स्थायी विजय होगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५५½ ॥

सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥ ५६ ॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ।

'राजेन्द्र! अतः हमलोग सुभद्राकुमार अभिमन्युके समान वृष्णिवंश तथा पार्षतकुलके इन दोनों महारथी वीरोंको सब ओरसे घेरकर मार डालनेका प्रयत्न करें ॥ ५६½ ॥

सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः।

'भारत! सात्यकिको बहुत-से प्रधान कौरव-वीरोंके साथ उलझा हुआ जानकर सव्यसाची अर्जुन सामनेसे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर आ रहे हैं ॥ ५७½ ॥

तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥
यावत् पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम्।
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥

'अतः बहुत-से श्रेष्ठ महारथी वहाँ उनका सामना करनेके लिये जायँ। जबतक अर्जुन यह नहीं जानते कि सात्यकि बहुसंख्यक योद्धाओंसे घिर गये हैं, तभीतक तुम सभी शूर-वीर बाणोंका प्रहार करनेमें अधिकाधिक शीघ्रता करो ।५८-५९।

यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः।
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥ ६० ॥

'महाराज! जिस उपायसे भी यहाँ ये मधुवंशी सात्यकि परलोकगामी हो जायँ, अच्छी तरह प्रयोगमें लायी हुई सुन्दर नीतिके द्वारा वैसा ही प्रयत्न करो' ॥ ६० ॥

कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम्।
यथेन्द्रः समरे राजन् प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ६१ ॥

राजन्! जैसे इन्द्र समराङ्गणमें परम यशस्वी भगवान् विष्णुसे कोई बात कहते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधन-ने कर्णकी सलाह मानकर सुबलपुत्र शकुनिसे इस प्रकार कहा—॥ ६१ ॥

वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम्।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनंजयम् ॥ ६२ ॥

'मामा! तुम युद्धसे पीछे न हटनेवाले दस हजार हाथियों और उतने ही रथोंके साथ तुरंत ही अर्जुनका सामना करनेके लिये जाओ ॥ ६२ ॥

दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥

'दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु और दुष्प्रधर्षण—ये (महारथी) बहुत-से पैदल सैनिकोंको साथ लेकर तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे॥

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥ ६४ ॥

'मेरे महाबाहु मामा ! तुम श्रीकृष्ण, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा भीमसेनको भी मार डालो ॥

देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ६५ ॥

'मामा ! जैसे देवताओंकी आशा देवराज इन्द्रपर लगी रहती है, उसी प्रकार मेरी विजयकी आशा तुमपर अवलम्बित है। जैसे अग्निकुमार स्कन्दने असुरोंका संहार किया था, उसी प्रकार तुम भी कुन्तीकुमारोंका वध करो' ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो ययौ पार्थान् पुत्रेण तव सौबलः।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ ६६ ॥

प्रभो ! आपके पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शकुनि विशाल सेना और आपके अन्य पुत्रोंके साथ कुन्तीकुमारोंका सामना करनेके लिये गया ॥ ६६ ॥

प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान्।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७ ॥

वह आपके पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये पाण्डवोंको भस्म कर देना चाहता था। फिर तो आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ६७ ॥

प्रयाते सौबले राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्।
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६८ ॥
अभ्ययात् त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान् बहून्।
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

राजन् ! जब शकुनि पाण्डव-सेनाकी ओर चला गया, तब विशाल सेनाके साथ सूतपुत्र कर्णने युद्धस्थलमें कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही सात्यकिपर आक्रमण किया। इसी प्रकार अन्य सब राजाओंने भी सात्यकिको घेर लिया ॥

भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति।
महद् युद्धं तदाऽऽसीत् तु द्रोणस्य निशि भारत।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाद्भुतम् ॥ ७० ॥

भारत ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथपर आक्रमण किया। उस रात्रिके समय वीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चालोंके साथ द्रोणाचार्यका महान् एवं अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७० ॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिसे दुर्योधनकी, अर्जुनसे शकुनि और उलूककी तथा धृष्टद्युम्नसे कौरवसेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततस्ते प्राद्रवन् सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तत्पश्चात् वे समस्त रण-दुर्मद योद्धा बड़ी उतावलीके साथ अमर्ष और क्रोधमें भरकर युयुधानके रथकी ओर दौड़े ॥ १ ॥

ते रथैः कल्पितै राजन् हेमरूप्यविभूषितैः।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥ २ ॥

नरेश्वर ! उन्होंने सोने-चाँदीसे विभूषित एवं सुसज्जित रथों, घुड़सवारों और हाथियोंके द्वारा चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया ॥ २ ॥

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब ओरसे सात्यकिको कोष्ठबद्ध-सा करके वे महारथी योद्धा सिंहनाद करने और उन्हें डाँट बताने लगे ॥

तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥

इतना ही नहीं, मधुवंशी सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे उतावले हो वे महावीर सैनिक उन सत्यपराक्रमी सात्यकिपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन् विशिखान् बहून्॥ ५ ॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु शिनिपौत्र सात्यकिने उन लोगोंको अपनेपर धावा करते देख स्वयं भी तुरंत ही बहुत-से बाणोंका प्रहार करते हुए उनका स्वागत किया॥

तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६ ॥

वहाँ महाधनुर्धर रणदुर्मद वीर सात्यकिने झुकी हुई गाँठवाले भयंकर बाणोंद्वारा बहुतेरे शत्रु-योद्धाओंके मस्तक काट डाले ॥ ६ ॥

हस्तिहस्तान् हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान्।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः ॥ ७ ॥

उन मधुवंशी वीरने आपकी सेनाके हाथियोंके शुण्डदण्डों, घोड़ोंकी गर्दनों तथा योद्धाओंकी आयुधोंसहित भुजाओंको भी क्षुरप्रोंद्वारा काट डाला ॥ ७ ॥

पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो॥ ८॥

भरतनन्दन! प्रभो! वहाँ गिरे हुए चामरों और श्वेत छत्रोंसे भरी हुई भूमि नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान जान पड़ती थी॥ ८॥

एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत।
बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव॥ ९॥

भारत! युद्धस्थलमें युयुधानके साथ जूझते हुए इन योद्धाओंका भयंकर आर्तनाद प्रेतोंके करुण-क्रन्दन-सा प्रतीत होता था॥ ९॥

तेन शब्देन महता पूरिताभूद् वसुन्धरा।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा॥ १०॥

उस महान् कोलाहलसे भरी हुई वह रणभूमि और रात्रि अत्यन्त उग्र एवं भयंकर जान पड़ती थी॥ १०॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम्।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे॥ ११॥
सुतस्तवाब्रवीद् राजन् सारथिं रथिनां वरः।
यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः॥ १२॥

राजन्! युयुधानके बाणोंसे आहत हुई अपनी सेनामें भगदड़ पड़ी देख और उस रोमाञ्चकारी निशीथकालमें वह महान् कोलाहल सुनकर रथियोंमें श्रेष्ठ आपके पुत्र दुर्योधनने अपने सारथिसे बारंबार कहा—'जहाँ यह कोलाहल हो रहा है, वहाँ मेरे घोड़ोंको हाँक ले चलो'॥ ११-१२॥

तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान्।
सूतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति॥ १३॥

उसका आदेश पाकर सारथिने उन श्रेष्ठ घोड़ोंको सात्यकिके रथकी ओर हाँक दिया॥ १३॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत्॥ १४॥

तदनन्तर दृढ़ धनुर्धर, श्रमविजयी, शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले दुर्योधनने क्रोधमें भरकर सात्यकिपर धावा किया॥ १४॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत॥ १५॥

तब मधुवंशी युयुधानने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बारह रक्तभोजी बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया॥

दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः॥ १६॥

सात्यकिने जब पहले ही अपने बाणोंसे दुर्योधनको पीड़ित कर दिया, तब उसने भी अमर्षमें भरकर उन्हें दस बाण मारे॥

ततः समभवद् युद्धं तुमुलं भरतर्षभ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम्॥ १७॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर समस्त पाञ्चालों और भरतवंशियोंका वहाँ भयंकर युद्ध होने लगा॥ १७॥

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम्।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत॥ १८॥

भारत! रणभूमिमें कुपित हुए सात्यकिने आपके महारथी पुत्रकी छातीमें असी सायकोंद्वारा प्रहार किया॥ १८॥

ततोऽस्य वाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च रथात् तूर्णं पातयामास पत्रिणा॥ १९॥

फिर समराङ्गणमें अपने बाणोंद्वारा घायल करके उसके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया और एक पंखयुक्त बाणसे मारकर उसके सारथिको भी तुरंत ही रथसे नीचे गिरा दिया॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशाम्पते।
मुमोच निशितान् बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति॥ २०॥

प्रजानाथ! तब आपका पुत्र उस अश्वहीन रथपर खड़ा हो सात्यकिके रथकी ओर पैने बाण छोड़ने लगा॥ २०॥

शरान् पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत्।
चिच्छेद समरे राजन् प्रेषितांस्तनयेन ते॥ २१॥

राजन्! परंतु आपके पुत्रद्वारा छोड़े गये पचास बाणोंको समराङ्गणमें सात्यकिने एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति काट डाला॥ २१॥

अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद् धनुः।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः॥ २२॥

तत्पश्चात् उन मधुवंशी वीरने एक दूसरे भल्लसे युद्धभूमिमें आपके पुत्रके विशाल धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे वेगपूर्वक काट दिया॥ २२॥

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः॥ २३॥

तब सम्पूर्ण जगत्का स्वामी शक्तिशाली वीर दुर्योधन धनुष और रथसे हीन होकर तुरंत ही कृतवर्माके तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो गया॥ २३॥

दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम्।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते॥ २४॥

प्रजानाथ! उस आधीरातके समय दुर्योधनके पराङ्मुख हो जानेपर सात्यकिने आपकी सेनाको अपने बाणोंद्वारा खदेड़ना आरम्भ किया॥ २४॥

शकुनिश्चार्जुनं राजन् परिवार्य समन्ततः।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चापि सहस्रशः॥ २५॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत्।

राजन्! उधर शकुनिने कई हजार रथों, सहस्रों हाथियों और सहस्रों घोड़ोंद्वारा अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर उनपर नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ २५½॥

ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ।

वे कालप्रेरित क्षत्रिय अर्जुनपर बड़े-बड़े अस्त्रोंकी वर्षा करते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २६½ ॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन् विपुलं क्षयम् ।

यद्यपि अर्जुन कौरवसेनाका महान् संहार करते-करते थक गये थे, तो भी उन्होंने उन सहस्रों रथों, हाथियों और घुड़सवारोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २७½ ॥

ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ २८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ॥ २९ ॥

उस समय समरभूमिमें सुबलकुमार शूरवीर शकुनिने हँसते हुए-से तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला । फिर सौ बाण मारकर उनके विशाल रथको अवरुद्ध कर दिया॥

तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥

भारत ! उस युद्धके मैदानमें अर्जुनने शकुनिको बीस बाण मारे और अन्य महाधनुर्धरोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

निवार्य तान् बाणगणैर्युधि राजन् धनंजयः ।
जघान तावकान् योधान् वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३१ ॥

राजन् ! युद्धस्थलमें अर्जुनने अपने बाण-समूहोंद्वारा आपके उन योद्धाओंको रोककर जैसे वज्रपाणि इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार उन सबका वध कर डाला ॥

भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥

भूपाल ! हाथीकी सूँड़के समान मोटी एवं कटी हुई भुजाओंसे आच्छादित हुई वह रणभूमि पाँच मुँहवाले सर्पोंसे ढकी हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ३२ ॥

शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥ ३३ ॥
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पतितैर्विबभौ मही ॥ ३४ ॥

जिनपर किरीट शोभा देता था, जो सुन्दर नासिका और मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित थे, जिन्होंने क्रोधपूर्वक अपने ओठोंको दाँतोंसे दबा रक्खा था, जिनकी आँखें बाहर निकल आयी थीं तथा जो निष्क एवं चूड़ामणि धारण करते और प्रिय वचन बोलते थे, क्षत्रियोंके वे मस्तक वहाँ कटकर गिरे हुए थे । उनके द्वारा रणभूमिकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो वहाँ कमल बिछा दिये गये हों ॥ ३३-३४ ॥

कृत्वा तत् कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।

भयंकर पराक्रमी अर्जुनने वह वीरोचित कर्म करके झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा पुनः शकुनिको घायल किया । साथ ही तीन बाणोंसे उलूकको भी व्यथित कर दिया ॥ ३५½ ॥

उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥ ३६ ॥
ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् ।

इस प्रकार घायल होनेपर उलूकने भगवान् श्रीकृष्णपर प्रहार किया और पृथ्वीको गुँजाते हुए-से बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३६½ ॥

अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद् रणे ॥ ३७ ॥
निन्ये च चतुरो वाहान् यमस्य सदनं प्रति ।

उस समय अर्जुनने रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा शकुनिका धनुष काट दिया और उसके चारों घोड़ोंको भी यमलोक भेज दिया ॥ ३७½ ॥

ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते ।

प्रजापालक भरतश्रेष्ठ ! तब सुबलपुत्र शकुनि अपने रथसे कूदकर तुरंत ही उलूकके रथपर जा चढ़ा ॥ ३८½ ॥

तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९ ॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाम्बुभिः ।

एक रथपर आरूढ़ हुए पिता और पुत्र दोनों महारथियोंने अर्जुनपर उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे दो मेघखण्ड अपने जलसे किसी पर्वतको सींच रहे हों ॥

तौ तु विद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः॥ ४० ॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ।

महाराज ! परंतु पाण्डुनन्दन अर्जुनने उन दोनोंको तीखे बाणोंसे घायल करके आपकी सेनाको भगाते हुए उसे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४०½ ॥

अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः॥ ४१ ॥
विच्छिन्नानि तथा राजन् बलान्यासन् विशाम्पते ।

प्रजापालक नरेश ! जैसे हवा बादलोंको चारों ओर उड़ा देती है, उसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४१½ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय रात्रिमें अर्जुनद्वारा मारी जाती हुई आपकी सेना भयसे पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखती हुई भाग चली ॥ ४२½ ॥

उत्सृज्य वाहान् समरे चोदयन्तस्तथा परे ॥ ४३ ॥
सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे ।

कुछ लोग अपने वाहनोंको समराङ्गणमें ही छोड़कर भाग चले । दूसरे लोग उन्हें तेजीसे हाँकते हुए भागे और कितने ही सैनिक भ्रान्त होकर उस दारुण अन्धकारमें चारों ओर चक्कर काटते रहे ॥ ४३½ ॥

विजित्य समरे योधांस्तावकान् भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें आपके योद्धाओंको जीतकर प्रसन्नतासे भरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन अपना-अपना शङ्ख बजाने लगे ॥ ४४½ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः॥ ४५ ॥
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।

महाराज ! उधर धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधकर तुरंत ही तीखे बाणसे उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली ॥ ४५½ ॥

तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥
आददेऽन्यद् धनुः शूरो वेगवत् सारवत्तरम् ।

तब क्षत्रियमर्दन शूरवीर द्रोणाचार्यने उस धनुषको भूमिपर रखकर दूसरा अत्यन्त प्रबल और वेगशाली धनुष हाथमें लिया ॥ ४६½ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन् विव्याध संयुगे ।

राजन् ! तत्पश्चात् द्रोणने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको सात बाणोंसे बींधकर उनके सारथिको पाँच बाँणोंसे घायल कर दिया ॥ ४७½ ॥

तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥
व्यधमत् कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।

महारथी धृष्टद्युम्नने तुरंत ही अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको रोककर कौरव-सेनाका उसी प्रकार विनाश आरम्भ किया, जैसे इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं ॥ ४८½ ॥

वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।

माननीय नरेश ! इस प्रकार जब आपके पुत्रकी उस सेनाका वध होने लगा, तब वहाँ रक्तराशिके प्रवाहसे तरङ्गित होनेवाली एक भयंकर नदी बह चली ॥ ४९½ ॥

उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥ ५० ॥
यथा वैतरणी राजन् यमराजपुरं प्रति ।

राजन् ! दोनों सेनाओंके बीचमें बहनेवाली वह नदी मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको भी बहाये लिये जाती थी, मानो वैतरणी नदी यमराजपुरीकी ओर जा रही हो ॥५०½॥

द्रावयित्वा तु तत् सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥
अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।

उस सेनाको भगाकर प्रतापी धृष्टद्युम्न देवताओंके समूहमें तेजस्वी इन्द्रके समान सुशोभित होने लगे ॥ ५१½ ॥

अथ दध्मुर्महाशङ्खान् धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ५२ ॥
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, सात्यकि तथा पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी अपने महान् शङ्खको बजाया ॥

जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ५३ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥

प्रजानाथ ! विजयसे उल्लसित होनेवाले रणोन्मत्त पाण्डव महारथी आपके पुत्र दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य तथा शूरवीर अश्वत्थामाके देखते-देखते आपकी सेनाके सहस्रों रथियोंको परास्त करके सिंहनाद करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनके उपालम्भसे द्रोणाचार्य और कर्णका घोर युद्ध, पाण्डवसेनाका पलायन, भीमसेनका सेनाको लौटाकर लाना और अर्जुनसहित भीमसेनका कौरवोंपर आक्रमण करना

संजय उवाच

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! अपनी सेनाको उन महामनस्वी वीरोंकी मार खाकर भागती देख आपके पुत्र दुर्योधनको महान् क्रोध हुआ ॥ १ ॥

अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

बातचीतकी कला जाननेवाले दुर्योधनने सहसा विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कर्ण और द्रोणाचार्यके पास जाकर अमर्षके वशीभूत हो इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥

'सव्यसाची अर्जुनके द्वारा युद्धस्थलमें सिंधुराज जयद्रथको मारा गया देख क्रोधमें भरे हुए आप दोनों वीरोंने यहाँ रातके समय इस युद्धको जारी रक्खा था ॥ ३ ॥

निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम्।
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥

'परंतु इस समय पाण्डव-सेनाद्वारा मेरी विशाल वाहिनीका विनाश हो रहा है और आपलोग उसे जीतनेमें समर्थ होकर भी असमर्थकी भाँति देख रहे हैं ॥ ४ ॥

यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि।
आवां पाण्डुसुतान् संख्ये जेष्याव इति मानदौ॥ ५ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले वीरो ! यदि आपलोग मुझे त्याग देना ही उचित समझते थे तो आपको उसी समय मुझसे यह नहीं कहना चाहिये था कि 'हमलोग पाण्डवोंको युद्धमें जीत लेंगे' ॥ ५ ॥

तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम्।
नाकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥ ६ ॥

'उसी समय आपलोगोंकी सम्मति सुनकर मैं कुन्तीपुत्रोंके साथ यह वैर नहीं करता, जो सम्पूर्ण योद्धाओंके लिये विनाशकारी हो रहा है ॥ ६ ॥

यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७ ॥

'अत्यन्त पराक्रमी पुरुषप्रवर वीरो ! यदि आप मुझे त्याग देना न चाहते हों तो अपने अनुरूप पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध कीजिये' ॥ ७ ॥

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ ॥ ८ ॥

इस प्रकार जब आपके पुत्रने अपने वचनोंकी चाबुकसे उन दोनों वीरोंको पीड़ित किया, तब उन्होंने कुचले हुए सर्पोंकी भाँति कुपित हो पुनः घोर युद्ध आरम्भ किया ॥८॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ।
शैनेयप्रमुखान् पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ॥ ९ ॥

सम्पूर्ण लोकमें विख्यात धनुर्धर, रथियोंमें श्रेष्ठ उन द्रोणाचार्य और कर्णने रणभूमिमें पुनः सात्यकि आदि पाण्डव महारथियोंपर धावा किया ॥ ९ ॥

तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥ १० ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाओंके साथ संगठित होकर आये हुए कुन्तीके पुत्र भी बारंबार गर्जनेवाले उन दोनों वीरोंका सामना करने लगे ॥ १० ॥

अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम्।
अविध्यत् त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ११ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने कुपित होकर तुरंत ही दस बाणोंसे शिनिप्रवर सात्यकिको बींध डाला ॥ ११ ॥

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ॥ १२ ॥
एते कौरव संक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन्।

फिर कर्णने दस, आपके पुत्रने सात, वृषसेनने दस और शकुनिने भी सात बाण मारे । कुरुराज ! इन वीरोंने युद्धमें शिनिपौत्र सात्यकिपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १२½ ॥

दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ॥ १३ ॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः।

समराङ्गणमें द्रोणाचार्यको पाण्डवसेनाका संहार करते देख सोमकोंने चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके उन्हें तुरंत घायल कर दिया ॥ १३½ ॥

तत्र द्रोणोऽहरत् प्राणान् क्षत्रियाणां विशाम्पते ॥१४॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः।

प्रजापालक नरेश ! जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा चारों ओरके अन्धकारको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य वहाँ क्षत्रियोंके प्राण लेने लगे ॥ १४½ ॥

द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥ १५ ॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम्।

प्रजानाथ ! द्रोणाचार्यकी मार खाकर परस्पर चीखते-चिल्लाते हुए पाञ्चालोंका घोर आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥ १६ ॥
भागिनेयान् वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान्।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितैष्सवः॥१७॥

कोई पुत्रोंको, कोई पिताओंको, कोई भाइयोंको, कोई मामा, भानजों, मित्रों, सम्बन्धियों तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपनी जान बचानेके लिये तुरंत ही भाग चले ॥

अपरे मोहिता मोहात् तमेवाभिमुखा ययुः।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे ॥ १८ ॥

कुछ पाण्डव सैनिक रणभूमिमें मोहित होकर मोहवश पुनः द्रोणाचार्यके ही सामने चले गये और मारे गये। बहुत-से सैनिक परलोक सिधार गये ॥ १८ ॥

सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना।

निशि सम्प्राद्रवद् राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १९ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ २० ॥

महामना द्रोणाचार्यसे इस प्रकार पीड़ित हुई वह पाण्डव-सेना उस रातके समय सहस्रों मशालें फेंक-फेंककर भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्नके सामने ही उनके देखते-देखते भाग रही थी ॥

तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥

उस समय पाण्डवदल अन्धकारसे आच्छन्न हो गया था। किसीको कुछ जान नहीं पड़ता था। कौरवदलमें जो प्रकाश हो रहा था, उसीसे कुछ भागते हुए सैनिक दिखायी देते थे ॥ २१ ॥

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन् किरन्तौ सायकान् बहून् ॥ २२ ॥

राजन्! महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए उस भागती हुई पाण्डव-सेनाको पीछेसे मार रहे थे ॥ २२ ॥

पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥

जब पाञ्चाल योद्धा सब ओरसे नष्ट होने और भागने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्णने दीनचित्त होकर अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥ २४ ॥

'कुन्तीनन्दन! द्रोणाचार्य और कर्ण इन दोनों महाधनुर्धरोंने एक साथ होकर धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाञ्चालोंको अपने बाणोंद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है ॥२४॥

एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणापि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥ २५ ॥

'पार्थ! इन दोनोंकी बाणवर्षासे हमारे महारथियोंके पाँव उखड़ गये हैं। हमारी सेना रोकनेपर भी रुक नहीं रही है' ॥

तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥ २६ ॥

अपनी सेनाको भागती देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने उससे कहा—'पाण्डव वीरो! भयभीत होकर भागो मत। भय छोड़ो ॥ २६ ॥

तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २७ ॥

'हम दोनों अस्त्र-शस्त्रोंसे भलीभाँति सुसज्जित सम्पूर्ण सेनाओंका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्णको बाधा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ २७ ॥

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ तव बलं नाशयेतां निशामिमाम् ॥ २८ ॥

'ये दोनों द्रोण और कर्ण बलवान्, शूरवीर, अस्त्रवेत्ता तथा विजयश्रीसे सुशोभित हैं। यदि इनकी उपेक्षा की गयी तो ये इसी रातमें तुमलोगोंकी सारी सेनाका विनाश कर डालेंगे' ॥ २८ ॥

तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद् वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥

वे दोनों इस प्रकार अपने सैनिकोंसे बातें कर ही रहे थे कि भयंकर कर्म करनेवाले महाबली भीमसेन पुनः अपनी सेनाको लौटाकर शीघ्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २९ ॥

वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद् राजन् हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥

राजन्! भीमसेनको वहाँ आते देख भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनका हर्ष बढ़ाते हुए-से पुनः इस प्रकार बोले—॥ ३० ॥

एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥ ३१ ॥

'ये युद्धकी स्पृहा रखनेवाले भीमसेन सोमक और पाण्डव योद्धाओंसे घिरकर महारथी द्रोण और कर्णका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आ रहे हैं ॥ ३१ ॥

एतेन सहितो युद्ध्य पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥

'पाण्डुनन्दन! इनके और पाञ्चाल महारथियोंके साथ रहकर तुम अपनी सारी सेनाओंको सान्त्वना देनेके लिये यहाँ युद्ध करो' ॥ ३२ ॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धके मुहानेपर द्रोणाचार्य और कर्णके सामने जाकर खड़े हो गये ॥ ३३ ॥

संजय उवाच

ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान् ममृदतुर्युधि ॥ ३४ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर युधिष्ठिरकी वह विशाल सेना पुनः लौट आयी। तत्पश्चात् द्रोणाचार्य और कर्ण युद्धके मैदानमें शत्रुओंको रौंदने लगे ॥३४॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ३५ ॥

राजन्! उस रात्रिमें चन्द्रोदयकालमें उमड़े हुए दो महासागरोंके सदृश उन दोनों दलोंका वह महान् संग्राम अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ ३५ ॥

तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६ ॥

तदनन्तर आपकी सेना अपने हाथोंसे मशालें फेंककर उन्मत्तके समान असंकुलभावसे पाण्डव सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगी ॥ ३६ ॥

रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ३७ ॥

धूल और अंधकारसे छाये हुए उस अत्यन्त भयंकर संग्राममें विजयाभिलाषी योद्धा केवल नाम और गोत्रका परिचय पाकर युद्ध करते थे ॥ ३७ ॥

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाहवे ॥ ३८ ॥

महाराज ! स्वयंवरकी भाँति उस युद्धस्थलमें भी प्रहार करनेवाले नरेशोंद्वारा सुनाये जाते हुए नाम श्रवण-गोचर हो रहे थे ॥ ३८ ॥

निःशब्दमासीत् सहसा पुनः शब्दो महानभूत्।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥ ३९ ॥

क्रोधमें भरकर युद्ध करते हुए पराजित एवं विजयी होनेवाले योद्धाओंका शब्द वहाँ सहसा बंद होकर कभी सन्नाटा छा जाता था और कभी पुनः महान् कोलाहल होने लगता था ॥ ३९ ॥

यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम।
तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥ ४० ॥

कुरुश्रेष्ठ ! जहाँ-जहाँ मशालें दिखायी देती थीं, वहाँ-वहाँ शूरवीर सैनिक पतङ्गोंकी तरह टूट पड़ते थे ॥ ४० ॥

तथा संयुध्यमानानां विगाढासीन्महानिशा।
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार युद्धमें लगे हुए पाण्डवों और कौरवोंकी वह महारात्रि सर्वथा प्रगाढ़ हो चली ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णद्वारा धृष्टद्युम्न एवं पाञ्चालोंकी पराजय, युधिष्ठिरकी घबराहट तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका घटोत्कचको प्रोत्साहन देकर कर्णके साथ युद्धके लिये भेजना

संजय उवाच

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कर्णने रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको उपस्थित देख उनकी छातीमें दस मर्मभेदी बाण मारे ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

माननीय नरेश ! तब धृष्टद्युम्नने भी हर्ष और उत्साहमें भरकर दस बाणोंद्वारा तुरंत ही कर्णको घायल करके बदला चुकाया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २ ॥

तावन्योन्यं शरैः संख्ये संछाद्य सुमहारथैः।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३ ॥

वे दोनों विशाल रथपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें एक दूसरेको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित करके पुनः धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात करने लगे ॥ ३ ॥

ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
सारथिं चतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् रणभूमिमें कर्णने अपने बाणोंद्वारा पाञ्चाल देशके प्रमुख वीर धृष्टद्युम्नके सारथि और चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥

इतना ही नहीं, उसने अपने तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नके श्रेष्ठ धनुषको भी काट दिया और एक भल्ल मारकर उनके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने एक भयंकर परिघ उठाकर उसके द्वारा कर्णके घोड़ोंको पीस डाला ॥ ६ ॥

विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्वपद्यत ॥ ७ ॥

उस समय कर्णने विषधर सर्पके समान भयंकर एवं बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया। फिर वे युधिष्ठिरकी सेनामें पैदल ही चले गये ॥ ७ ॥

आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८ ॥

आर्य ! वहाँ धृष्टद्युम्न सहदेवके रथपर जा चढ़े और पुनः कर्णका सामना करनेके लिये जानेको उद्यत हुए, किंतु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उन्हें रोक दिया ॥ ८ ॥

कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम्।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाम्बुजम् ॥ ९ ॥

उधर महातेजस्वी कर्णने सिंहनादके साथ-साथ अपने धनुषकी महती टंकारध्वनि फैलायी और उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥ १० ॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ११ ॥

युद्धमें धृष्टद्युम्नको परास्त हुआ देख अमर्षमें भरे हुए वे पाञ्चाल और सोमक महारथी सूतपुत्र कर्णके वधके लिये सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी अवधि निश्चित करके उसकी ओर चल दिये ॥

कर्णस्यापि रथे वाहानन्यान् सूतोऽभ्ययोजयत्।
शङ्खवर्णान् महावेगान् सैन्धवान् साधुवाहिनः ॥ १२॥

उधर कर्णके रथमें भी उसके सारथिने दूसरे घोड़े जोत दिये। वे सिंधी घोड़े अच्छी तरह सवारीका काम देते थे। उनका रंग शङ्खके समान सफेद था और वे बड़े वेगशाली थे ॥ १२ ॥

लब्धलक्ष्यस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान्।
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलम् ॥ १३ ॥

राधापुत्र कर्णका निशाना कभी चूकता नहीं था। जैसे मेघ किसी पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वह प्रयत्नपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके पाञ्चाल महारथियोंको पीड़ा देने लगा ॥ १३ ॥

सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः।
सम्प्राद्रवत् सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १४ ॥

कर्णके द्वारा पीड़ित होनेवाली पाञ्चालोंकी वह विशाल वाहिनी सिंहसे सतायी गयी हरिणीकी भाँति अत्यन्त भयभीत होकर वेगपूर्वक भागने लगी ॥ १४ ॥

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५ ॥

कितने ही मनुष्य वहाँ इधर-उधर घोड़ों, हाथियों और रथोंसे तुरंत ही गिरकर धराशायी हुए दिखायी देने लगे ॥

धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १६ ॥

कर्ण उस महासमरमें अपने क्षुरप्रोंद्वारा भागते हुए योद्धाकी दोनों भुजाओं तथा कुण्डलमण्डित मस्तकको भी काट डाला था ॥ १६ ॥

ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते।
वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १७ ॥

माननीय प्रजानाथ ! दूसरे योद्धा जो हाथियोंपर बैठे थे, घोड़ोंकी पीठपर सवार थे और पृथ्वीपर पैदल चलते थे, उनकी भी जाँघें कर्णने काट डालीं ॥ १७ ॥

नाज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः।
संछिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥

भागते हुए बहुत-से महारथी उस युद्धस्थलमें अपने कटे हुए अंगों और वाहनोंको नहीं जान पाते थे ॥ १८ ॥

ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९ ॥

समराङ्गणमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृंजय एक तिनकेके हिल जानेसे भी सूतपुत्र कर्णको ही आया हुआ मानने लगते थे ॥ १९ ॥

अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम्।
कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥

उस रणभूमिमें अचेत होकर भागते हुए अपने योद्धाको भी वे कर्ण ही समझ लेते और उसीसे डरकर भागने लगते थे ॥

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ २१ ॥

भारत ! भयभीत होकर भागते हुए उन सैनिकोंके पीछे बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्ण बड़े वेगसे धावा करता था ॥ २१ ॥

अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥

महामनस्वी कर्णके द्वारा कालके गालमें भेजे जाते हुए मोहित एवं अचेत पाञ्चाल सैनिक एक दूसरेकी ओर देखते हुए कहीं भी ठहर न सके ॥ २२ ॥

कर्णेनाभ्याहता राजन् पञ्चालाः परमेषुभिः।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥

राजन् ! कर्ण और द्रोणाचार्यके चलाये हुए उत्तम बाणोंसे घायल होकर पाञ्चाल सैनिक सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए भाग रहे थे ॥ २३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम्।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाको भागती देख स्वयं भी युद्धभूमिसे हट जानेका विचार करके अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २४ ॥

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २५ ॥

'पार्थ ! महाधनुर्धर कर्णको देखो; वह हाथमें धनुष लिये खड़ा है और इस भयंकर आधी रातके समय सूर्यके समान तप रहा है ॥ २५ ॥

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥

'अर्जुन ! कर्णके बाणोंसे घायल होकर अनाथके समान चीखते-चिल्लाते हुए तुम्हारे सहायक बन्धुओंका यह आर्तनाद निरन्तर सुनायी दे रहा है ॥ २६ ॥

यथा विसृजतश्चास्य संदधानस्य चाशुगान् ।
पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ २७ ॥

'कर्ण कब बाणोंको धनुषपर रखता है और कब उन्हें छोड़ता है, इसमें तनिक भी अन्तर मुझे नहीं दिखायी देता है । इससे जान पड़ता है यह निश्चय ही हमारी सारी सेनाका संहार कर डालेगा ॥ २७ ॥

यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत् कुरुष्व धनंजय ॥ २८ ॥

'धनंजय ! अब यहाँ कर्णके वधके सम्बन्धमें तुम्हें जो समयोचित कर्तव्य दिखायी देता हो, उसे करो' ॥ २८ ॥

एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् ।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याद्य विक्रमात् ॥ २९ ॥

महाराज ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'प्रभो ! आज कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर राधापुत्र कर्णके पराक्रमसे भयभीत हो गये हैं ॥ २९ ॥

एवंगते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान् व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ ३० ॥

'ऐसी अवस्थामें कर्णकी सेनाके पास हमारा जो समयोचित कर्तव्य हो, उसका आप शीघ्र निश्चय करें; क्योंकि हमारी सेना बारंबार भाग रही है ॥ ३० ॥

द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥ ३१ ॥

'मधुसूदन ! द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल और कर्णसे भयभीत होकर भागते हुए हमारे सैनिक कहीं भी ठहर नहीं पाते हैं ॥ ३१ ॥

पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान् रथोदारान् किरन्तं निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

'मैं देखता हूँ, कर्ण निर्भय-सा विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठ रथियोंपर भी पीछेसे तीखे बाणोंकी वर्षा कर रहा है॥

नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३३ ॥

'वृष्णिसिंह ! जैसे सर्प किसीके चरणोंका स्पर्श नहीं सह सकता, उसी प्रकार मैं युद्धके मुहानोंपर अपनी आँखोंके सामने कर्णका इस प्रकार विचरना नहीं सह सकूँगा ॥ ३३ ॥

स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३४ ॥

'मधुसूदन ! अतः आप शीघ्र वहीं चलिये, जहाँ महारथी कर्ण है । आज मैं इसे मार डालूँगा या यह मुझे (मार डालेगा)' ॥ ३४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—कुन्तीनन्दन ! आज युद्धस्थलमें मैं पुरुषसिंह कर्णको देवराज इन्द्रके समान अमानुषिक पराक्रम प्रकट करते और विचरते देख रहा हूँ ॥

नैतस्यान्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनंजय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद् वा घटोत्कचात् ॥ ३६ ॥

पुरुषसिंह धनंजय ! संग्रामभूमिमें तुम्हें अथवा राक्षस घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इसका सामना कर सके ॥ ३६ ॥

न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥

निष्पाप महाबाहु अर्जुन ! इस समय रणक्षेत्रमें सूतपुत्रके साथ तुम्हारा युद्ध करना मैं उचित नहीं मानता ॥ ३७ ॥

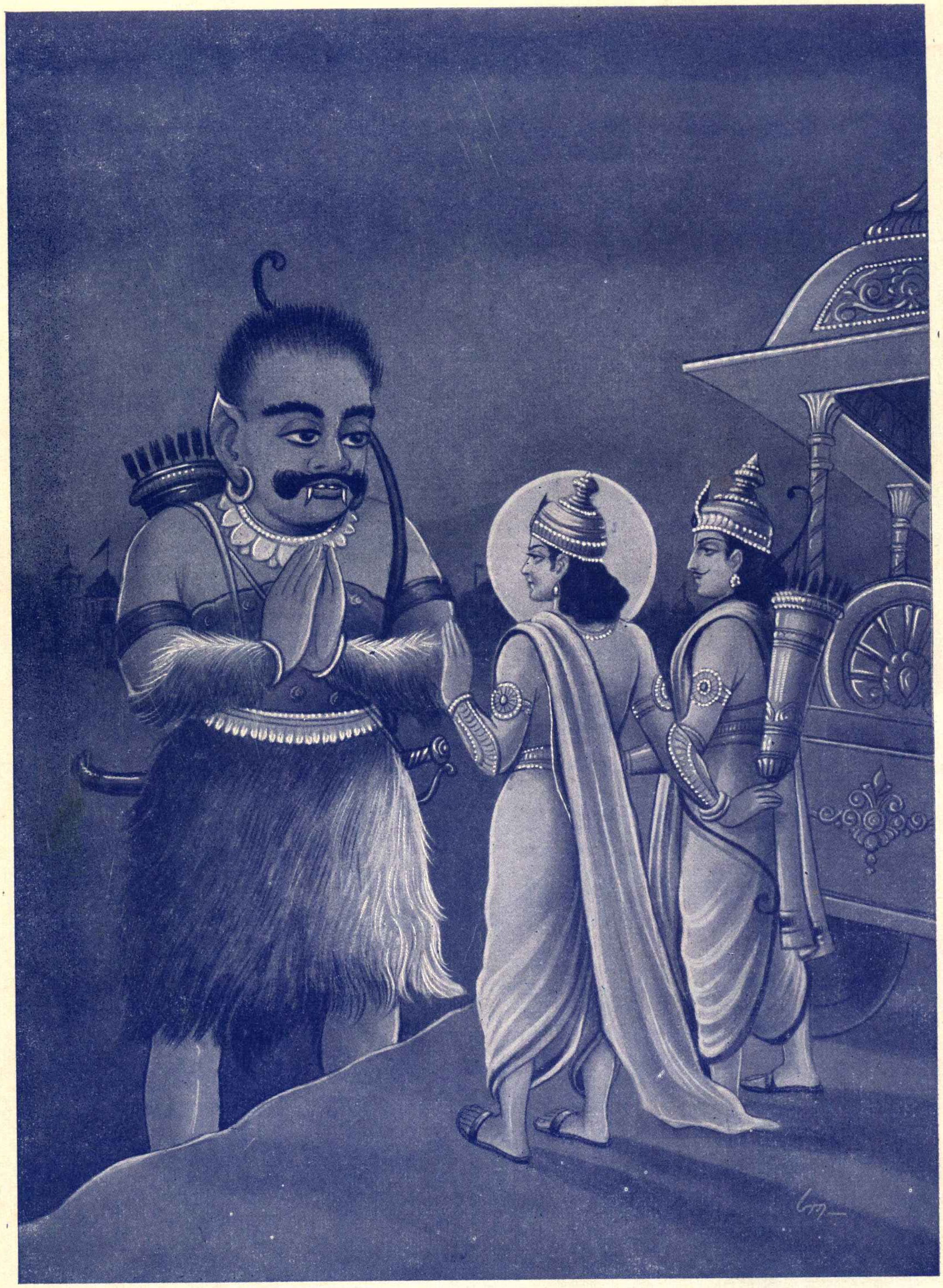
दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।

क्योंकि उसके पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति है, जो प्रज्वलित उल्काके समान प्रकाशित होती है । महाबाहो ! सूतपुत्रने युद्धस्थलमें तुम्हारे ऊपर प्रयोग करनेके लिये ही इस शक्तिको सुरक्षित रक्खा है, यह बड़ा भयंकर रूप धारण करती है ॥ ३८½ ॥

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९ ॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४० ॥

अतः मेरी रायमें इस समय महाबली घटोत्कच ही राधापुत्र कर्णका सामना करनेके लिये जाय; क्योंकि वह बलवान् भीमसेनका बेटा है, देवताओंके समान पराक्रमी है तथा उसके पास राक्षस-सम्बन्धी एवं असुर-सम्बन्धी सभी प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं ॥ ३९-४० ॥

सततं चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः ॥ ४१ ॥



घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेकी प्रेरणा

घटोत्कच तुमलोगोंका हितैषी है और सदा तुम्हारे प्रति अनुराग रखता है। वह रणभूमिमें कर्णको जीत लेगा, इसमें मुझे संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः।
आजुहावाथ तद् रक्षस्तच्चासीत् प्रादुरग्रतः ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु कमलनयन कुन्तीकुमारने राक्षस घटोत्कचका आवाहन किया और वह तत्काल उनके सामने प्रकट हो गया ॥ ४२ ॥

कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनंजयम्।
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ! उसने कवच, धनुष, बाण और खड्ग धारण कर रक्खे थे। वह श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र धनंजयको प्रणाम करके उस समय भगवान् श्रीकृष्णसे बोला—'प्रभो! यह मैं सेवामें उपस्थित हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये, क्या करूँ?' ॥४३॥

ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम्।
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥

तदनन्तर प्रज्वलित मुख और प्रकाशित कुण्डलोंवाले मेघके समान काले हिडिम्बाकुमार घटोत्कचसे भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए-से कहा ॥ ४४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

घटोत्कच विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित्॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—बेटा घटोत्कच! मैं तुमसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो और समझो। यह तुम्हारे लिये ही पराक्रम दिखानेका अवसर आया है, दूसरे किसीके लिये नहीं ॥ ४५ ॥

स भवान् मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव।
विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ॥४६॥

तुम्हारे ये बन्धु संकटके समुद्रमें डूब रहे हैं, तुम इनके लिये जहाज बन जाओ। तुम्हारे पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं और तुममें राक्षसी मायाका भी बल है ॥ ४६ ॥

पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥ ४७॥

हिडिम्बानन्दन! देखो, जैसे चरवाहा गायोंको हाँकता है, उसी प्रकार युद्धके मुहानेपर खड़ा हुआ कर्ण पाण्डवोंकी इस विशाल सेनाको खदेड़ रहा है ॥ ४७ ॥

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८॥

यह कर्ण महाधनुर्धर, बुद्धिमान् और दृढ़तापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाला है। यह पाण्डवोंकी सेनाओंमें जो श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर हैं, उनका विनाश कर रहा है ॥ ४८ ॥

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४९ ॥

इसके बाणोंकी आगसे संतप्त हो बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करनेवाले सुदृढ़ धनुर्धर वीर भी युद्धभूमिमें ठहर नहीं पाते हैं ॥ ४९ ॥

निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः ॥ ५० ॥

देखो, जैसे सिंहसे पीडित हुए मृग भागते हैं, उसी प्रकार इस आधी रातके समय सूतपुत्रके द्वारा की हुई बाण-वर्षासे व्यथित हो ये पाञ्चाल सैनिक भागे जा रहे हैं ॥५०॥

एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे।
निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥ ५१ ॥

भयंकर पराक्रमी वीर! इस युद्धस्थलमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो इस प्रकार आगे बढ़नेवाले सूतपुत्र कर्णको रोक सके ॥ ५१ ॥

स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥

महाबाहो! इसलिये तुम अपने पिता, मामा, तेज, अस्त्र-बल तथा अपनी प्रतिष्ठाके अनुरूप युद्धमें पराक्रम करो ॥

एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः।
कथं नस्तारयेद् दुःखात् स त्वं तारय बान्धवान् ॥५३॥

हिडिम्बाकुमार! मनुष्य इसीलिये पुत्रकी इच्छा करते हैं कि वह किसी प्रकार हमें दुःखसे छुड़ायेगा; अतः तुम अपने बन्धु-बान्धवोंको उबारो ॥ ५३ ॥

इच्छन्ति पितरः पुत्रान् स्वार्थहेतोर्घटोत्कच।
इहलोकात् परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥

घटोत्कच! प्रत्येक पिता अपने इसी स्वार्थके लिये पुत्रोंकी इच्छा करता है कि वे पुत्र मेरे हितैषी होकर मुझे इस लोकसे परलोकमें तार देंगे ॥ ५४ ॥

तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ५५ ॥

भीमनन्दन! संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय सदा तुम्हारा भयङ्कर बल बढ़ता है और तुम्हारी मायाएँ दुस्तर होती हैं ॥

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परंतप ॥ ५६ ॥

परंतप! रातके समय कर्णके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर पाण्डव सैनिकोंके पाँव उखड़ गये हैं और वे कौरवसेनारूपी समुद्रमें डूब रहे हैं। तुम उनके लिये तटभूमि बन जाओ ॥

रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः।
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥ ५७ ॥

रात्रिके समय राक्षसोंका अनन्त पराक्रम और भी बढ़

जाता है। वे बलवान्, परम दुर्धर्ष, शूरवीर और पराक्रमपूर्वक विचरनेवाले होते हैं ॥ ५७ ॥

जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥

तुम आधी रातके समय अपनी मायाद्वारा रणभूमिमें महाधनुर्धर कर्णको मार डालो और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवसैनिक द्रोणाचार्यका वध करेंगे ॥ ५८ ॥

संजय उवाच

केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम्।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिंदमम् ॥ ५९ ॥

संजय कहते हैं—कुरुराज ! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुनने भी शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षस घटोत्कचसे कहा—॥ ५९ ॥

घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः।
मतो मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ६० ॥

'घटोत्कच ! मेरी सम्पूर्ण सेनाओंमें तीन ही वीर श्रेष्ठ माने गये हैं—तुम, महाबाहु सात्यकि तथा पाण्डुनन्दन भीमसेन ॥ ६० ॥

तद्भवान् यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥

'अतः तुम इस निशीथकालमें कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करो और महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक होंगे ॥ ६१ ॥

जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान्।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ६२ ॥

'जैसे पूर्वकालमें स्कन्दके साथ रहकर इन्द्रने तारकासुरका वध किया था, उसी प्रकार तुम भी सात्यकिकी सहायता पाकर रणभूमिमें शूरवीर कर्णको मार डालो' ॥ ६२ ॥

घटोत्कच उवाच

(एवमेव महाबाहो यथा वदसि मां प्रभो।
त्वया नियुक्तो गच्छामि कर्णस्य वधकाङ्क्षया ॥)
अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च भारत।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

घटोत्कचने कहा—महाबाहो ! प्रभो ! आप मुझे जैसा कह रहे हैं, वैसा ही है। मैं आपका भेजा हुआ कर्णके वधकी इच्छासे जा रहा हूँ। भारत ! मैं कर्णका सामना करनेमें तो समर्थ हूँ ही, द्रोणाचार्यका भी अच्छी तरह सामना कर सकता हूँ। अस्त्र-विद्याके जाननेवाले ये जो दूसरे महामनस्वी क्षत्रिय हैं, उनके साथ भी लोहा ले सकता हूँ ॥ ६३ ॥

अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥

आज मैं इस रातमें सूतपुत्र कर्णके साथ ऐसा संग्राम करूँगा, जिसकी चर्चा जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक लोग करते रहेंगे ॥ ६४ ॥

न चात्र शूरान् मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन्।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥

इस युद्धमें मैं न तो शूरवीरोंको जीवित छोडूँगा, न डरनेवालोंको और न हाथ जोड़नेवालोंको ही। राक्षस-धर्मका आश्रय लेकर सबका ही संहार कर डालूँगा ॥ ६५ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा।
अभ्ययात् तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! श्रेष्ठ वीरोंका संहार करनेवाला महाबाहु हिडिम्बाकुमार ऐसा कहकर उस भयंकर युद्धमें आपकी सेनाको भयभीत करता हुआ कर्णका सामना करनेके लिये गया ॥ ६६ ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम्।
प्रहसन् पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ६७ ॥

क्रोधमें भरे हुए उस प्रज्वलित मुख और चमकीले केशोंवाले राक्षसको आते हुए देख पुरुषसिंह सूतपुत्र कर्णने हँसते हुए उसे अपने प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें ग्रहण किया ॥ ६७ ॥

तयोः समभवद् युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्रादयोरिव ॥ ६८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! संग्रामभूमिमें गर्जना करते हुए कर्ण और राक्षस दोनोंमें इन्द्र और प्रह्लादके समान युद्ध होने लगा ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय 'घटोत्कचको भगवानका प्रोत्साहन देना' विषयक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६९ श्लोक हैं)

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध

संजय उवाच

दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन् सूतपुत्ररथं प्रति।
आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥
अब्रवीत् तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः।
एतद् रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥
अभियाति द्रुतं कर्णं तद् वारय महारथम्।

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धस्थलमें इस प्रकार कर्णका वध करनेकी इच्छासे उद्यत हुए घटोत्कचको सूतपुत्रके रथकी ओर आते देख आपके पुत्र दुर्योधनने दुःशासनसे इस प्रकार कहा—'भाई! यह राक्षस रणभूमिमें कर्णका वेगपूर्वक पराक्रम देखकर तीव्र गतिसे उसपर आक्रमण कर रहा है; अतः उस महारथी घटोत्कचको रोको ॥ १-२½ ॥

वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।

'तुम विशाल सेनासे घिरकर वहीं जाओ, जहाँ महाबली वैकर्तन कर्ण रणभूमिमें उस राक्षसके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ३½ ॥

रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥
मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति ।

'मानद! तुम सेनाके साथ सावधान होकर रणभूमिमें कर्णकी रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि हमलोगोंके प्रमादवश वह भयंकर राक्षस कर्णका विनाश कर डाले' ॥ ४½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥ ५ ॥
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।

राजन्! इसी समय जटासुरका बलवान् पुत्र योद्धाओंमें श्रेष्ठ एक राक्षस दुर्योधनके पास आकर इस प्रकार बोला—॥

दुर्योधन तवामित्रान् प्रख्यातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥
पाण्डवान् हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।

'दुर्योधन! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं तुम्हारे विख्यात शत्रु रणदुर्मद पाण्डवोंका उनके सेवकोंसहित वध करना चाहता हूँ ॥ ६½ ॥

जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥ ७ ॥
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।

'मेरे पिता जटासुर राक्षसोंके अगुआ थे। उन्हें पूर्वकालमें इन नीच कुन्तीकुमारोंने राक्षस-विनाशक कर्म करके मार गिराया ॥ ७½ ॥

तस्यापचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ।
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥

'राजेन्द्र! मैं शत्रुओंके रक्त और मांसद्वारा पिताकी पूजा करके उनके वधका बदला लेना चाहता हूँ। आप इसके लिये मुझे आज्ञा दें' ॥ ८ ॥

तमब्रवीत् ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥ ९ ॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम्।
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसम्भवम् ॥ १० ॥

तब राजा दुर्योधनने अत्यन्त प्रसन्न होकर बारंबार उससे कहा—'वीरवर! द्रोणाचार्य और कर्ण आदिके साथ मिलकर मैं स्वयं ही तुम्हारे शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ हूँ। तुम तो मेरी आज्ञासे घटोत्कचके पास जाओ और युद्धमें उसे मार डालो। वह क्रूरकर्मा निशाचर मनुष्य और राक्षस दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ ९-१० ॥

पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११ ॥

'हाथियों, घोड़ों तथा रथोंका विनाश करनेवाला आकाशचारी राक्षस घटोत्कच सदा पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहता है। तुम युद्धमें उसे मारकर यमलोक भेज दो' ॥ ११ ॥

तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ १२ ॥

जटासुरके पुत्रका नाम अलम्बुष था। उस विशालकाय राक्षसने दुर्योधनसे 'तथास्तु' कहकर भीमसेनपुत्र घटोत्कचको ललकारा और उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १२ ॥

अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १३ ॥

जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अकेले हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने अलम्बुष, कर्ण तथा उस दुर्लङ्घ्य कौरवसेनाको भी मथ डाला ॥ १३ ॥

ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥ १४ ॥

राक्षस अलम्बुषने घटोत्कचका मायाबल देखकर उसके ऊपर तुरंत ही नाना प्रकारके बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १४ ॥

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १५ ॥

उस महाबली निशाचरने भीमसेनकुमारको बहुत-से बाणोंद्वारा घायल करके अपने बाणसमूहोंसे पाण्डवसेनाको खदेड़ना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥

भारत! उसके खदेड़े हुए पाण्डवसैनिक हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान उस निशीथकालमें चारों ओर बिखर गये॥

घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद् राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १७ ॥

राजन्! इसी प्रकार घटोत्कचके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई आपकी सेना भी सहस्रों मशालें फेंककर आधी रातके समय सब ओर भाग चली ॥ १७ ॥

अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए अलम्बुषने उस महासमरमें भीमसेन-कुमार घटोत्कचको दस बाणोंसे घायल कर दिया, मानो महावतने महान् गजराजको अङ्कुशोंसे मार दिया हो ॥ १८ ॥

तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चातिदारुणम् ॥ १९ ॥

यह देख अत्यन्त भयंकर गर्जना करते हुए घटोत्कचने अलम्बुषके सारथि, घोड़ों और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको तिल-तिल करके काट डाला ॥ १९ ॥

ततः कर्णे शरव्रातैः कुरूनन्यान् सहस्रशः ।
अलम्बुषं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् जैसे मेघ मेरुपर्वतपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार उसने भी कर्णपर, अन्यान्य सहस्रों कौरव-योद्धाओंपर तथा अलम्बुषपर भी बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २० ॥

ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चान्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥

उस राक्षससे पीड़ित हुई सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी कौरव-सेना विक्षुब्ध हो उठी और आपसमें ही एक-दूसरेको नष्ट करने लगी॥

जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाभ्यहनद् दृढम् ॥ २२ ॥

महाराज ! उस समय सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए अलम्बुषने रणभूमिमें कुपित हो घटोत्कचको बड़े जोरसे मुक्का मारा ॥ २२ ॥

मुष्टिनाभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ २३ ॥

उसके मुक्केकी मार खाकर घटोत्कच उसी प्रकार काँप उठा, जैसे भूकम्प होनेपर वृक्ष, तृण और गुल्मोंसहित पर्वत हिलने लगता है ॥ २३ ॥

ततः स परिघाभेन द्विट्संघघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् भीमसेनपुत्र घटोत्कचने शत्रुसमूहोंका नाश करनेवाली अपनी परिघ-जैसी मोटी बाँहके मुक्केसे जटासुरके पुत्रको बहुत मारा ॥ २४ ॥

तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले॥ २५ ॥

क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने उसे अच्छी तरह मथकर तुरंत ही धरतीपर दे मारा और इन्द्र-ध्वजके समान अपनी दोनों भुजाओंद्वारा उसे भूतलपर रगड़ना आरम्भ किया ॥

जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥

तब जटासुरका पुत्र अपने आपको घटोत्कचके बन्धनसे छुड़ाकर पुनः उठ गया और बड़े वेगसे उसकी ओर झपटा॥

अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष च भूतले ॥ २७ ॥

अलम्बुषने भी झटका देकर रणभूमिमें राक्षस घटोत्कचको उठाकर पटक दिया और रोषपूर्वक वह उसे पृथ्वीपर रगड़ने लगा ॥ २७ ॥

तयोः समभवद् युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥

गरजते हुए उन दोनों विशालकाय राक्षस घटोत्कच और अलम्बुषका वह युद्ध बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी था॥

विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २९ ॥

इन्द्र और बलिके समान महापराक्रमी वे दोनों अत्यन्त मायावी राक्षस अपनी मायाओंद्वारा एक दूसरेसे बढ़ जानेकी चेष्टा करते हुए परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥ २९ ॥

पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३० ॥

एकने आग बनकर आक्रमण किया तो दूसरेने महासागर बनकर उसे बुझा दिया । इसी प्रकार एक तक्षक नाग बना तो दूसरा गरुड़ । फिर एक मेघ बना तो दूसरा प्रचण्ड वायु । तत्पश्चात् एक महान् पर्वत बनकर खड़ा हुआ तो दूसरा वज्र बनकर उसपर टूट पड़ा ॥ ३० ॥

पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३१ ॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ ।

फिर वे क्रमशः हाथी और सिंह तथा सूर्य और राहु बन गये । इस प्रकार वे अलम्बुष और घटोत्कच एक दूसरेके वधकी इच्छासे सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करते हुए परस्पर अत्यन्त विचित्र युद्ध करने लगे ॥ ३१½ ॥

परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥ ३२ ॥
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।

वे दोनों निशाचर परिघ, गदा, प्रास, मुद्गर, पट्टिश, मुसल तथा पर्वतशिखरोंसे एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥

हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥ ३३ ॥
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।

उस युद्धस्थलमें वे महामायावी श्रेष्ठ राक्षस अपने हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकोंके द्वारा एक दूसरेपर प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥ ३३½ ॥

ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥ ३४ ॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।

राजन् ! तदनन्तर घटोत्कच अलम्बुषके वधकी इच्छासे

अत्यन्त कुपित होकर ऊपर उछला और जैसे बाज (चिड़िया-पर) झपटता है, उसी प्रकार उसके ऊपर टूट पड़ा ॥ ३४½ ॥

गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥
उद्यम्य न्यवधीद् भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे ।

विशालकाय राक्षसराज अलम्बुषको दोनों हाथोंसे पकड़कर घटोत्कचने युद्धस्थलमें उसे उठाकर धरतीपर दे मारा, मानो भगवान् विष्णुने मयासुरको पछाड़ दिया हो ॥ ३५½ ॥

ततो घटोत्कचः खड्गमुद्धृत्याद्भुतदर्शनम् ॥ ३६ ॥
रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।
स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चातिभैरवम् ॥ ३७ ॥
चिच्छेद महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।

महाराज ! तब अमितपराक्रमी घटोत्कचने अद्भुत दिखायी देनेवाली अपनी तलवार उठाकर समराङ्गणमें अत्यन्त भयंकर गर्जना करते और उछल-कूद मचाते हुए शत्रु अलम्बुषके भयंकर एवं विकराल मस्तकको उस भयानक राक्षसकी कायासे काटकर अलग कर दिया। ३६-३७½ ॥



शिरस्तच्चापि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥ ३८ ॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।
अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥ ३९ ॥
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद् भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥

खूनसे भीगे हुए उस मस्तकके केश पकड़कर महाबाहु राक्षस घटोत्कच दुर्योधनके रथकी ओर चल दिया और पास जाकर मुसकराते हुए उसने विकराल मुख एवं केशवाले उस सिरको उसके रथपर फेंककर वर्षाकालके मेघकी भाँति भयंकर गर्जना की ॥ ३८-४० ॥

अब्रवीच्च ततो राजन् दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् वह दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—'यह है तेरा सहायक बन्धु, इसे मैंने मार डाला। तूने देख लिया न इसका पराक्रम ? ॥ ४१ ॥

पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ।
'स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् ।

'अब तू कर्णकी तथा अपनी भी फिर ऐसी ही अवस्था देखेगा। जो अपने धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी इच्छा रखता है, उसे राजा, ब्राह्मण और स्त्रीसे खाली हाथ नहीं मिलना चाहिये (इसीलिये तेरे मित्रका यह मस्तक मैं भेंटके तौरपर लाया हूँ) ॥ ४२½ ॥

तिष्ठस्व तावत् सुप्रीतो यावत् कर्णं वधाम्यहम् ॥ ४३ ॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायात् कर्णं प्रति नरेश्वर ।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान् रुषितो रणमूर्धनि ॥ ४४ ॥

'तू तबतक यहाँ प्रसन्नतापूर्वक खड़ा रह, जबतक कि मैं कर्णका वध नहीं कर लेता।' नरेश्वर ! ऐसा कहकर क्रोधमें भरा हुआ घटोत्कच तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ युद्धके मुहानेपर कर्णके पास चला गया ॥ ४३-४४ ॥

ततः समभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ४५ ॥

महाराज ! तदनन्तर रणभूमिमें सबको विस्मयमें डालनेवाला मनुष्य और राक्षसका वह घोर एवं भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषवधे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कच और उसके रथ आदिके स्वरूपका वर्णन तथा कर्ण और घटोत्कचका घोर संग्राम

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तद् वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद् युद्धमभवत् कथम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! आधी रातके समय सूर्यपुत्र

कर्ण तथा राक्षस घटोत्कच जो एक दूसरेसे भिड़े हुए थे, उनका वह युद्ध किस प्रकार हुआ ? ॥ १ ॥

कीदृशं चाभवद् रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥ २ ॥

उस भयंकर राक्षसका रूप उस समय कैसा था ? उसका रथ कैसा था ? उसके घोड़े और सम्पूर्ण आयुध कैसे थे ? ॥

किंप्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा।
कीदृशं वर्म चैवास्य शिरस्त्राणं च कीदृशम् ॥ ३ ॥
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय।

उसके घोड़े कितने बड़े थे, रथकी ध्वजाकी ऊँचाई और धनुषकी लम्बाई कितनी थी ? उसके कवच और शिरस्त्राण कैसे थे, संजय ! मेरे प्रश्नके अनुसार ये सारी बातें बताओ; क्योंकि तुम इस कार्यमें कुशल हो ॥ ३½ ॥

संजय उवाच

लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः॥ ४ ॥
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शङ्कुकर्णो महाहनुः।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥

संजयने कहा—राजन् ! घटोत्कचका शरीर बहुत बड़ा था। उसकी आँखें सुर्ख रंगकी थीं। मुँह ताँबेके रंगका और पेट धँसा हुआ था। उसके रोएँ ऊपरकी ओर उठे हुए थे, दाढ़ी-मूँछ काली थी, ठोड़ी बड़ी दिखायी देती थी। मुँह कानोंतक फटा हुआ था, दाढ़ें तीखी होनेके कारण वह विकराल जान पड़ता था ॥ ४–५ ॥

सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः।
नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयंकरः ॥ ६ ॥

जीभ और ओठ ताँबेके समान लाल और लम्बे थे, भौंहें बड़ी-बड़ी, नाक मोटी, शरीरका रंग काला, गर्दन लाल और शरीर पर्वताकार था। वह देखनेमें बड़ा भयंकर जान पड़ता था ॥ ६ ॥

महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः।
विकृतः परुषस्पर्शो विकटोद्बद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥

उसकी देह, भुजा और मस्तक सभी विशाल थे। उसका बल भी महान् था। आकृति बेडौल थी। उसका स्पर्श कठोर था। उसकी पिंडलियाँ विकट एवं सुदृढ़ थीं ॥ ७ ॥

स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान्।
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥ ८ ॥

उसके नितम्बभाग स्थूल थे। उसकी नाभि छोटी होनेके कारण छिपी हुई थी। उसके शरीरकी बढ़ती रुक गयी थी। वह लंबे कदका था। उसने हाथोंमें आभूषण पहन रक्खे थे। भुजाओंमें बाजूबन्द धारण कर रक्खे थे। वह बड़ी-बड़ी मायाओंका जानकार था ॥ ८ ॥



उरसा धारयन् निष्कमग्निमालां यथाचलः।
तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९ ॥
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत।

वह अपनी छातीपर सुवर्णमय निष्क (पदक) पहनकर अग्निकी माला धारण किये पर्वतके समान प्रतीत होता था। उसके मस्तकपर सोनेका बना हुआ विचित्र उज्ज्वल मुकुट तोरणके समान सुशोभित हो रहा था। उस मुकुटकी विविध अङ्गोंसे बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ९½ ॥

कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥ १० ॥
धारयन् विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम्।

वह प्रभातकालके सूर्यकी भाँति कान्तिमान् दो कुण्डल, सोनेकी सुन्दर माला और काँसीका विशाल एवं चमकीला कवच धारण किये हुए था ॥ १०½ ॥

किंकिणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ११ ॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम्।

उसके रथमें सैकड़ों क्षुद्र घण्टिकाओंका मधुर घोष होता था। उसपर लाल रंगकी ध्वजा-पताका फहरा रही थी। उस रथके सम्पूर्ण अङ्गोंपर रीछकी खाल मढ़ी गयी थी। वह विशाल रथ चारों ओरसे चार सौ हाथ लंबा था ॥ ११½ ॥

सर्वायुधवरोपेतमास्थितो ध्वजशालिनम् ॥ १२ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम्।

उसपर सभी प्रकारके श्रेष्ठ आयुध रखे गये थे। उसमें आठ पहिये लगे थे और चलते समय उस रथसे मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि होती थी। विशाल ध्वज उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था। उसीपर घटोत्कच आरूढ़ था ॥ १२½ ॥

मत्तमातङ्गसंकाशा लोहिताक्षा विभीषणाः ॥ १३ ॥
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।

मतवाले हाथीके समान प्रतीत होनेवाले सौ बलवान् एवं भयंकर घोड़े उस रथमें जुते हुए थे । जिनकी आँखें लाल थीं तथा जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और मनचाहे वेगसे चलनेवाले थे ॥ १३½ ॥

वहन्तो राक्षसं घोरं वालवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥
विपुलाभिः सटाभिस्ते ह्रेषमाणा मुहुर्मुहुः ।

उन घोड़ोंके कंधोंपर लंबे-लंबे बाल थे । वे परिश्रमको जीत चुके थे । वे सभी अपने विशाल केसरों (गर्दनके लंबे वालों) से सुशोभित थे और उस भयानक राक्षसका भार वहन करते हुए वे बारंबार हिनहिना रहे थे ॥ १४½ ॥



राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥ १५ ॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः संजग्राह हयान् रणे ।
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १६ ॥

दीप्तिमान् मुख और कुण्डलोंसे युक्त विरूपाक्ष नामक राक्षस घटोत्कचका सारथि था, जो रणभूमिमें सूर्यकी किरणों-के समान चमकीली बागडोर पकड़कर उन घोड़ोंको काबूमें रखता था । उसके साथ रथपर बैठा हुआ घटोत्कच ऐसा जान पड़ता था, मानो अरुण नामक सारथिके साथ सूर्यदेव अपने रथपर विराजमान हों ॥ १५-१६ ॥

संसक्त इव चाभ्रेण यथाद्रिर्महता महान् ।
दिवःस्पृक् सुमहान् केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ॥ १७ ॥
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।

जैसे महान् पर्वत किसी महामेघसे संयुक्त हो जाय, उसी प्रकार अपने सारथिके साथ बैठे हुए घटोत्कचकी शोभा हो रही थी । उसके रथपर बहुत ऊँची गगन-चुम्बिनी पताका फहरा रही थी, जिसपर एक लाल शिरवाला अत्यन्त भयंकर मांसभोजी गीध दिखायी देता था ॥ १७½ ॥

वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥ १८ ॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन् दिशः ॥ १९ ॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ।

वीरोंका संहार करनेवाली उस रात्रिमें इन्द्रके वज्रकी भाँति भयानक टंकार करनेवाले और सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाले एक हाथ चौड़े एवं बारह अरत्नि लंबे धनुषको खींचता और रथके धुरेके समान मोटे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करता हुआ घटोत्कच (पूर्वोक्त रथपर आरूढ़ हो) कर्णकी ओर चला ॥ १८-१९½ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ २० ॥
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ।

रथपर स्थिरतापूर्वक खड़े हो जब वह अपने धनुषको खींच रहा था, उस समय उसकी टंकार वज्रकी गड़गड़ाहट-के समान सुनायी देती थी ॥ २०½ ॥

तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ॥ २१ ॥
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ।

भारत ! उस घोर शब्दसे डरायी हुई आपकी सारी सेनाएँ समुद्रकी बड़ी-बड़ी लहरोंके समान काँपने लगीं ।२१½।

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ २२ ॥
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ।

विकराल नेत्रोंवाले उस भयानक राक्षसको आते देख राधापुत्र कर्णने मुसकराते हुए-से शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़कर उसे रोका ॥ २२½ ॥

ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥ २३ ॥
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः ।

जैसे एक यूथपति गजराजका सामना करनेके लिये दूसरे यूथका अधिपति गजराज चढ़ आता है, उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करते हुए घटोत्कचपर बाणोंकी बौछार करते हुए कर्णने उसके ऊपर निकटसे आक्रमण किया ॥ २३½ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तयोरासीद् विशाम्पते ॥ २४ ॥
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ।

प्रजानाथ ! राजन् ! पूर्वकालमें जैसे इन्द्र और शम्बरा-सुरमें युद्ध हुआ था, उसी प्रकार कर्ण और राक्षसका वह संग्राम बड़ा भयंकर हुआ ॥ २४½ ॥

तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥ २५ ॥
प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ।

वे दोनों भयंकर टंकार करनेवाले अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर बड़े-बड़े बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करते हुए आच्छादित करने लगे ॥ २५½ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ।

तदनन्तर वे दोनों वीर धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा परस्पर कांस्यनिर्मित कवचोंको छिन्न-भिन्न करके एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २६½ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २७ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ।

जैसे दो सिंह नखोंसे और दो महान् गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों योद्धा रथशक्तियों और बाणोंद्वारा एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ २७½ ॥

संछिन्दन्तौ च गात्राणि संदधानौ च सायकान् ॥ २८ ॥
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः ।

वे सायकोंका संधान करके एक दूसरेके अङ्गोंको छेदते और बाणमयी उल्काओंसे दग्ध करते थे । उससे उन दोनोंकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ २८½ ॥

तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥
व्यभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ ।

उन दोनोंके सारे अङ्ग घावोंसे भर गये थे और दोनों ही खूनसे लथपथ हो गये थे । उस समय वे जलका स्रोत बहाते हुए गेरूके दो पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २९½ ॥

तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥ ३० ॥
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ।

दोनोंके अङ्ग बाणोंके अग्रभागसे छिदकर छलनी हो रहे थे । दोनों ही एक दूसरेको विदीर्ण कर रहे थे, तो भी वे महातेजस्वी वीर परस्पर विजयके प्रयत्नमें लगे रहे और एक दूसरेको कम्पित न कर सके ॥ ३०½ ॥

तत् प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ॥ ३१ ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्मृधे ।

राजन् ! युद्धके जूएमें प्राणोंकी बाजी लगाकर खेलते हुए कर्ण और राक्षसका वह रात्रियुद्ध दीर्घकालतक समानरूपमें ही चलता रहा ॥ ३१½ ॥

तस्य संदधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चासक्तमस्यतः ॥ ३२ ॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाभवन् ।

घटोत्कच तीखे बाणोंका संहार करके उन्हें इस प्रकार छोड़ता कि वे एक दूसरेसे सटे हुए निकलते थे । उसके धनुषकी टंकारसे अपने और शत्रुपक्षके योद्धा भी भयसे थर्रा उठते थे ॥ ३२½ ॥

घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥ ३३ ॥
ततः प्रादुष्करोद् दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

नरेश्वर ! जब कर्ण घटोत्कचसे बढ़ न सका, तब उस अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वीरने दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ३३½ ॥

कर्णेन संधितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥ ३४ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः ।

कर्णको दिव्यास्त्रका संधान करते देख पाण्डवनन्दन घटोत्कचने अपनी राक्षसी महामाया प्रकट की ॥ ३४½ ॥

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५ ॥
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ।

वह तत्काल ही शूल, मुद्गर, शिलाखण्ड और वृक्ष हाथमें लिये हुए घोररूपधारी राक्षसोंकी विशाल सेनासे घिर गया ॥ ३५½ ॥

तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥ ३६ ॥
भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ।

भयानक कालदण्ड धारण किये, समस्त भूतोंके प्राणहन्ता यमराजके समान उसे विशाल धनुष उठाये आते देख वहाँ उपस्थित हुए वे सभी नरेश व्यथित हो उठे ॥ ३६½ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ।

घटोत्कचके सिंहनादसे भयभीत हो हाथियोंके पेशाब झरने लगे और मनुष्य भी अत्यन्त व्यथित हो गये ॥ ३७½ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत् समन्ततः ॥ ३८ ॥
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः ।

तदनन्तर चारों ओरसे पत्थरोंकी अत्यन्त भयंकर एवं भारी वर्षा होने लगी । आधी रातके समय अधिक बलशाली हुए राक्षसोंके समुदाय वह प्रस्तर-वर्षा कर रहे थे ॥ ३८½ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥ ३९ ॥
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ।

लोहेके चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी अविरल धाराएँ गिर रही थीं ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४० ॥
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ।

नरेश्वर ! उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्रामको देखकर आपके पुत्र और योद्धा भयभीत होकर भाग चले ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ।

अपने अस्त्रबलकी प्रशंसा करनेवाला एकमात्र अभिमानी कर्ण ही वहाँ खड़ा रहा । उसके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई । उसने अपने बाणोंसे घटोत्कचद्वारा निर्मित मायाको नष्ट कर दिया ॥ ४१½ ॥

मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥ ४२ ॥
विससर्ज शरान् घोरान् सूतपुत्रं त आविशन् ।

उस मायाके नष्ट हो जानेपर घटोत्कचने अमर्षमें भरकर भयंकर बाण छोड़े, जो सूतपुत्रके शरीरमें समा गये ॥ ४२½ ॥

ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ।

तदनन्तर वे रुधिरसे रँगे हुए बाण उस महासमरमें कर्णको छेदकर कुपित हुए सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥

सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ।

इससे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाला प्रतापी वीर सूतपुत्र कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने घटोत्कचका उल्लङ्घन करके उसे दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४४½ ॥

घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम् ।

सूतपुत्रके द्वारा मर्मस्थानोंमें विदीर्ण होकर अत्यन्त व्यथित हुए घटोत्कचने दिव्य सहस्रार चक्र हाथमें लिया ॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ।

उस चक्रके किनारे-किनारे छुरे लगे हुए थे। मणि एवं रत्नोंसे विभूषित हुआ वह चक्र प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रतीत होता था। क्रोधमें भरे हुए भीमसेनकुमार घटोत्कचने अधिरथपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस चक्रको चला दिया ॥ ४६½ ॥

प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि ।

परंतु अत्यन्त वेगसे फेंका गया वह घूमता हुआ चक्र कर्णके बाणोंद्वारा आहत हो भाग्यहीनके संकल्पकी भाँति व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४७½ ॥

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥
कर्णं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

चक्रको गिराया हुआ देख क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने अपने बाणोंद्वारा कर्णको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे राहु सूर्यको ढक देता है ॥ ४८½ ॥

सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।

परंतु रुद्र, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी सूतपुत्र कर्णको इससे तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने तुरंत ही पंखदार बाणोंसे घटोत्कचके रथको आच्छादित कर दिया ॥

घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५० ॥
क्षिप्ताऽऽभ्राम्य शरैःसापि कर्णेनाभ्याहतापतत् ।

तब कुपित हुए घटोत्कचने सोनेके कड़ेसे विभूषित गदा घुमाकर चलायी, किंतु कर्णके बाणोंसे आहत होकर वह भी नीचे गिर पड़ी ॥ ५०½ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

तदनन्तर अन्तरिक्षमें उछलकर वह विशालकाय राक्षस प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना करता हुआ आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५१½ ॥

ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥ ५२ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।

तब कर्ण भीमसेनके मायावी पुत्रको अपने बाणोंद्वारा आकाशमें उसी प्रकार बींधने लगा, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा मेघोंको विद्ध कर देते हैं ॥ ५२½ ॥

तस्य सर्वान् हयान् हत्वा संछिद्य शतधा रथम् ॥ ५३ ॥
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।

उसके सारे घोड़ोंको मारकर और रथके सैकड़ों टुकड़े करके कर्णने वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी ॥ ५३½ ॥

न चास्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥ ५४ ॥
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललितो यथा ।

घटोत्कचके शरीरमें दो अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था, जो बाणोंसे विदीर्ण न हो गया हो। वह दो ही घड़ीमें काँटोंसे युक्त साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ ५४½ ॥

न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ।

समराङ्गणमें बाणोंके समूहसे घिरे हुए घटोत्कचको, उसके घोड़ोंको, रथको तथा ध्वजको भी कोई नहीं देख पाते थे ॥

स तु कर्णस्य तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥ ५६ ॥
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ।

वह मायावी राक्षस कर्णके दिव्यास्त्रको अपने अस्त्रद्वारा काटते हुए वहाँ सूतपुत्रके साथ मायामय युद्ध करने लगा ॥

सोऽयोधयत् तदा कर्णं मायया लाघवेन च ॥ ५७ ॥
अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चापतन् ।

उस समय माया तथा शीघ्रकारिताके द्वारा वह कर्णको लड़ा रहा था। आकाशसे कर्णपर अलक्षित बाणसमूहोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ५७½ ॥

भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ॥ ५८ ॥
विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत ।

कुरुश्रेष्ठ ! भरतनन्दन ! वह विशालकाय महामायावी भीमसेनकुमार घटोत्कच मायासे सबको मोहित करता हुआ-सा सब ओर विचरने लगा ॥ ५८½ ॥

स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥
अग्रसत् सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ।

उसने मायाद्वारा बहुत-से विकराल एवं अमङ्गलसूचक मुख बनाकर सूतपुत्रके दिव्यास्त्रोंको अपना ग्रास बना लिया ॥

पुनश्चापि महाकायः संछिन्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद् व्यदृश्यत ।

फिर वह महाकाय राक्षस धैर्यहीन एवं उत्साहशून्य-सा होकर रणभूमिमें आकाशसे सैकड़ों टुकड़ोंमें कटकर गिरा हुआ दिखायी दिया ॥ ६०½ ॥

तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणदन् कुरुपुङ्गवाः ॥ ६१ ॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।

उस समय उसे मरा हुआ मानकर कौरव-दलके प्रमुख वीर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। इतनेहीमें वह दूसरे बहुत-से नये-नये शरीर धारण करके सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी देने लगा ॥ ६१½ ॥

पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ६२ ॥
व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।

फिर वह बड़ी-बड़ी बाहोंवाला एक ही विशालकाय रूप धारण करके मैनाक पर्वतके समान दृष्टिगोचर हुआ। उस समय उसके सौ मस्तक तथा सौ पेट हो गये थे ॥ ६२½ ॥

अङ्गुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥ ६३ ॥
सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ।

तत्पश्चात् वह राक्षस अँगूठेके बराबर होकर उछलती हुई समुद्रकी लहरके समान कभी ऊपर और कभी इधर-उधर होने लगा ॥ ६३½ ॥

वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ।

फिर पृथ्वीको फाड़कर वह पानीमें डूब गया और दूसरी जगह पुनः जलसे ऊपर आकर दिखायी देने लगा ॥ ६४½ ॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥
क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाभ्येत्य दंशितः ।
गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत् कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥

इसके बाद आकाशसे उतरकर वह पुनः अपने सुवर्ण-मण्डित रथपर स्थित हो गया और मायासे ही पृथ्वी, आकाश एवं सम्पूर्ण दिशाओंमें घूमता हुआ कवचसे सुसज्जित हो कर्णके रथके समीप जाकर विचरने लगा। उस समय उसका मुख कुण्डलोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ ६५-६६ ॥

प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते ।
तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन् सूतपुत्र गमिष्यसि ॥ ६७ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।

प्रजानाथ! अब घटोत्कच सम्भ्रमरहित हो सूतपुत्र कर्णसे बोला—'सारथिके बेटे! खड़ा रह। अब तू मुझसे जीवित बचकर कहाँ जायगा? आज मैं समराङ्गणमें तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ ६७½ ॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ॥ ६८ ॥
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ।
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥

क्रोधसे लाल आँखें किये वह क्रूर पराक्रमी राक्षस उपर्युक्त बात कहकर आकाशमें उछला और बड़े जोरसे अट्टहास करने लगा फिर जैसे सिंह गजराजपर चोट करता है, उसी प्रकार वह कर्णपर आघात करने लगा ॥ ६८-६९ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७० ॥

जैसे बादल पर्वतपर जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णपर रथके धुरेके समान मोटे-मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ७० ॥

शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात् प्राप्तामशातयत् ।
दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ।

अपने ऊपर प्राप्त हुई उस बाणवर्षाको कर्णने दूरसे ही काट गिराया। भरतश्रेष्ठ! कर्णके द्वारा अपनी मायाको नष्ट हुई देख घटोत्कचने अदृश्य होकर पुनः दूसरी मायाकी सृष्टि की ॥ ७१½ ॥

सोऽभवद् गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ॥ ७२ ॥
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ।

वह वृक्षावलियोंद्वारा हरे-भरे शिखरोंसे सुशोभित एक अत्यन्त ऊँचा महान् पर्वत बन गया और उससे पानीके झरनेकी भाँति शूल, प्रास, खड्ग और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंका स्रोत बहने लगा ॥ ७२½ ॥

तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥ ७३ ॥
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे ।
स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥

घटोत्कचको अञ्जनराशिके समान काला पर्वत बनकर अपने झरनोंद्वारा भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंको प्रवाहित करते देख-कर भी कर्णके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। उसने मुसकराते हुए-से अपना दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ७३-७४ ॥

ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ।
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥ ७५ ॥
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् ।

उस दिव्यास्त्रद्वारा दूर फेंका गया वह पर्वतराज क्षणभरमें अदृश्य हो गया और पुनः आकाशमें इन्द्रधनुषसहित काला मेघ बनकर वह अत्यन्त भयंकर राक्षस सूतपुत्र कर्णपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥ ७५½ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ७६ ॥
व्यधमत् कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः ।

तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वैकर्तन दानी कर्णने वायव्यास्त्र-का संधान करके उस काले मेघको नष्ट कर दिया ॥ ७६½ ॥

स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ॥ ७७ ॥
जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ।

महाराज ! कर्णने अपने बाणसमूहोंद्वारा सारी दिशाओंको आच्छादित करके घटोत्कचद्वारा चलाये गये अस्त्रोंको काट डाला॥

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥ ७८ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम् ।

तब महाबली भीमसेनकुमारने जोर-जोरसे हँसकर समर-भूमिमें महारथी कर्णके प्रति अपनी महामाया प्रकट की ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ॥ ७९ ॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ।
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ॥ ८० ॥

उस समय कर्णने रथियोंमें श्रेष्ठ घटोत्कचको पुनः रथपर बैठकर आते देखा । उसके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं थी । सिंह, शार्दूल और मतवाले गजराजके समान पराक्रमी बहुत-से राक्षस उसे घेरे हुए थे ॥ ७९-८० ॥

गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥

उन राक्षसोंमेंसे कुछ हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ घोड़ोंकी पीठोंपर सवार थे । वे भयंकर निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, कवच और आभूषण धारण किये हुए थे॥

वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ८२ ॥

देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके समान क्रूर राक्षसोंसे आवृत घटोत्कचको सामने देखकर महाधनुर्धर कर्णने उस निशाचरके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ८२ ॥

घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
ननाद भैरवं नादं भीषयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥

तदनन्तर घटोत्कचने कर्णको पाँच बाणोंसे घायल करके समस्त राजाओंको भयभीत करते हुए वहाँ भयानक गर्जना की ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ सम्मार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ ८४ ॥

तत्पश्चात् अञ्जलिक नामक बाण मारकर घटोत्कचने कर्णके हाथमें स्थित हुए विशाल धनुषको बाणसमूहोंसहित शीघ्र काट डाला ॥ ८४ ॥

अथान्यद् धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
विचकर्ष बलात् कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥

तब कर्णने भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा विशाल, सुदृढ़ एवं इन्द्रधनुषके समान ऊँचा धनुष हाथमें लेकर उसे बलपूर्वक खींचा ॥ ८५ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खेचरान् राक्षसान् प्रति ॥८६॥

महाराज ! तदनन्तर कर्णने उन आकाशचारी राक्षसोंको लक्ष्य करके सोनेके पंखवाले बहुत-से शत्रुनाशक बाण चलाये॥

तद् बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवार्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८७ ॥

उन बाणोंसे पीड़ित हुआ चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका वह समूह सिंहके सताये हुए जंगली हाथियोंके झुंडकी भाँति व्याकुल हो उठा ॥ ८७ ॥

विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतगजान् विभुः ।
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ८८ ॥

जैसे प्रलयकालमें भगवान् अग्निदेव सम्पूर्ण भूतोंको भस्म कर डालते हैं, उसी प्रकार शक्तिशाली कर्णने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि और हाथियोंसहित उन राक्षसोंको संतप्त करके जला डाला ॥ ८८ ॥

स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥

जैसे पूर्वकालमें भगवान् महेश्वर आकाशमें त्रिपुरासुरका दाह करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार उस राक्षस-सेनाका संहार करके सूतनन्दन कर्ण बड़ी शोभा पाने लगा ॥ ८९ ॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥ ९० ॥

माननीय नरेश ! पाण्डवपक्षके सहस्रों राजाओंमेंसे कोई भी भूपाल उस समय कर्णकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था ॥ ९० ॥

ऋते घटोत्कचाद् राजन् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात् क्रुद्धाद् वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान भयंकर बल-पराक्रमसे सम्पन्न महाबली राक्षसराज घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई कर्णका सामना न कर सका ॥ ९१ ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन् सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥९२॥

नरेश्वर ! जैसे मशालोंसे जलती हुई तेलकी बूँदें गिरती हैं, उसी प्रकार कुद्ध हुए घटोत्कचके दोनों नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं ॥ ९२ ॥

तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ९३ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत् क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥ ९४ ॥

उसने उस समय हाथसे हाथ मलकर, दाँतोंसे ओठ चबाकर, पुनः हाथी-जैसे बलवान् एवं पिशाचोंके-से मुखवाले प्रखर गधोंसे जुते हुए मायानिर्मित रथपर बैठकर अपने सारथिसे कहा—'तुम मुझे सूतपुत्र कर्णके पास ले चलो' ॥

स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥ ९५ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ घटोत्कच पुनः उस भयंकर रथके द्वारा सूतपुत्र कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ ९५ ॥

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९६ ॥
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम्।
आयसीं निचितां शूलैः कदम्बमिव केसरैः ॥ ९७ ॥

उस राक्षसने कुपित होकर पुनः सूतपुत्र कर्णपर आठ चक्रोंसे युक्त एक अत्यन्त भयंकर रुद्रनिर्मित अशनि चलायी, जिसकी ऊँचाई दो योजन और लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजन-की थी। लोहेकी बनी हुई उस शक्तिमें शूल चुने गये थे। इससे वह केसरोंसे युक्त कदम्ब-पुष्पके समान जान पड़ती थी ॥

तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद् धनुः।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥ ९८ ॥

कर्णने अपना विशाल धनुष नीचे रख दिया और उछलकर उस अशनिको हाथसे पकड़ लिया; फिर उसे घटोत्कचपर ही चला दिया। घटोत्कच शीघ्र ही उस रथसे कूद पड़ा ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा।
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥ ९९ ॥

वह अतिशय प्रभापूर्ण अशनि घोड़े, सारथि और ध्वज-सहित घटोत्कचके रथको भस्म करके धरती फाड़कर समा गयी। यह देख वहाँ खड़े हुए सब देवता आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ९९ ॥

कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥१००॥

उस समय वहाँ सम्पूर्ण प्राणी कर्णकी प्रशंसा करने लगे; क्योंकि उसने महादेवजीकी बनायी हुई उस विशाल अशनि-को अनायास ही उछलकर पकड़ लिया था ॥ १०० ॥

एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः।
ततो मुमोच नाराचान् सूतपुत्रः परंतप ॥१०१॥

रणभूमिमें ऐसा पराक्रम करके कर्ण पुनः अपने रथपर आ बैठा। शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! फिर सूतपुत्र कर्ण नाराचोंकी वर्षा करने लगा ॥ १०१ ॥

अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद।
यदकार्षीत् तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥१०२॥

दूसरोंको सम्मान देनेवाले महाराज ! उस भयंकर संग्राममें कर्णने उस समय जो कार्य किया था, उसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें दूसरा कोई नहीं कर सकता था ॥ १०२ ॥

स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥१०३॥

जैसे पर्वतपर जलकी धाराएँ गिरती हैं, उसी प्रकार नाराचोंके प्रहारसे आहत हुआ घटोत्कच गन्धर्वनगरके समान पुनः अदृश्य हो गया ॥ १०३ ॥

एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥१०४॥

इस प्रकार शत्रुओंका संहार करनेवाले विशालकाय घटोत्कचने अपनी माया तथा अस्त्र-संचालनकी शीघ्रतासे कर्णके उन दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ १०४ ॥

निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा।
असम्भ्रान्तस्तदा कर्णस्तद् रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥१०५॥

उस राक्षसके द्वारा मायासे अपने अस्त्रोंके नष्ट हो जाने-पर भी उस समय कर्णके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। वह उस राक्षसके साथ युद्ध करता ही रहा ॥ १०५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान् ॥१०६॥

महाराज ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए महाबली भीमसेन-कुमार घटोत्कचने महारथियोंको भयभीत करते हुए अपने बहुत-से रूप बना लिये ॥ १०६ ॥

ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥१०७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओंसे सिंह, व्याघ्र, तरक्षु (जरख) अग्निमयी जिह्वावाले सर्प तथा लोहमय चंचुवाले पक्षी आक्रमण करने लगे ॥ १०७ ॥

स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः।
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०८॥

नागराजके समान घटोत्कचकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वह कर्णके धनुषसे छूटे हुए शिखाहीन बाणोंद्वारा आच्छादित हो वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ १०८ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥१०९॥
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन्।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयांचक्रिरे तदा ॥११०॥

उस समय बहुत-से राक्षस, पिशाच, यातुधान, कुत्ते और विकराल मुखवाले भेड़िये कर्णको काटनेके लिये सब ओरसे उसपर टूट पड़े और अपनी भयंकर गर्जनाओंद्वारा उसे भयभीत करने लगे ॥ १०९-११० ॥

उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ॥१११॥

कर्णने खूनसे रँगे हुए अपने बहुत-से भयंकर आयुधों तथा बाणोंद्वारा उनमेंसे प्रत्येकको बींध डाला ॥ १११ ॥

प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण राक्षसीम्।

आजघान हयानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ११२॥

अपने दिव्यास्त्रसे उस राक्षसी मायाका विनाश करके उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे घटोत्कचके घोड़ोंको मार डाला ॥ ११२ ॥

ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥११३॥

उन घोड़ोंके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे, बाणोंकी मारसे उनके पृष्ठभाग फट गये थे, अतः उस राक्षसके देखते-देखते वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ११३ ॥

स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥११४॥

इस प्रकार अपनी माया नष्ट हो जानेपर हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने सूर्यपुत्र कर्णसे कहा—'यह ले, मैं अभी तेरी मृत्युका आयोजन करता हूँ' ऐसा कहकर वह वहीं अदृश्य हो गया ॥ ११४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें कर्ण और घटोत्कचका युद्धविषयक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७५ ॥

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अलायुधका युद्धस्थलमें प्रवेश तथा उसके स्वरूप और रथ आदिका वर्णन

संजय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कर्ण और घटोत्कचका वह युद्ध चल ही रहा था कि पराक्रमी राक्षसराज अलायुध वहाँ उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २ ॥

वह सहस्रों विकराल रूपवाले राक्षसोंसे घिरकर अपनी विशाल सेनाके साथ दुर्योधनके पास आया ॥ २ ॥

नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥ ३ ॥

उसके साथ अनेक रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस मौजूद थे। वह पहलेके वैरका स्मरण करके वहाँ आया था। उसका कुटुम्बी बन्धु ब्राह्मणभक्षी पराक्रमी बकासुर भीमसेनके द्वारा मारा गया था ॥ ३ ॥

किर्मीरश्च महातेजा हैडिम्बश्च सखा तदा ।
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥

उसके सखा हिडिम्ब और महातेजस्वी किर्मीर भी उन्हींके हाथसे मारे गये थे। इस प्रकार दीर्घकालसे मनमें रक्खे हुए पहलेके वैरको उस समय वह बारंबार स्मरण कर रहा था ॥

विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद् युद्धलालसः ।

रात्रिमें होनेवाले इस संग्रामका समाचार पाकर रणभूमिमें भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे वह मतवाले हाथी और क्रोधमें भरे हुए सर्पकी भाँति युद्धकी लालसा मनमें रखकर दुर्योधनसे इस प्रकार बोला— ॥ ५½ ॥

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ।

'महाराज ! आपको तो मालूम ही होगा कि भीमसेनने हमारे राक्षस भाई-बन्धु हिडिम्ब, बक और किर्मीरका किस प्रकार वध कर डाला है ॥ ६½ ॥

परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥ ७ ॥
किमन्यद् राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ।

'इतना ही नहीं, उन्होंने मेरा तथा दूसरे राक्षसोंका अपमान करके पूर्वकालमें राक्षसकन्या हिडिम्बाके साथ भी बलात्कार किया था। इससे बढ़कर दूसरा अपराध क्या हो सकता है ? ॥ ७½ ॥

तमहं सगणं राजन् सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥
हैडिम्बिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ।

'अतः राजन् ! मैं सैन्यसमूह, घोड़े, हाथी और रथों-सहित भीमसेनको तथा मन्त्रियोंसहित हिडिम्बापुत्र घटोत्कच-को मार डालनेके लिये स्वयं यहाँ आया हूँ ॥ ८½ ॥

अद्य कुन्तीसुतान् सर्वान् वासुदेवपुरोगमान् ॥ ९ ॥
हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।

'श्रीकृष्ण जिनके अगुआ हैं, उन सभी कुन्तीपुत्रोंको मारकर आज मैं समस्त अनुचरोंके साथ उन्हें खा जाऊँगा ॥ ९½ ॥

निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥
तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।
प्रतिगृह्याब्रवीद् वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ११ ॥

'अतः आप अपनी सारी सेनाको रोक दीजिये। पाण्डवों-के साथ हमलोग युद्ध करेंगे।' उसकी यह बात सुनकर भाइयोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अलायुधका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा—॥१०-११॥

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान्।
न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥

'राक्षसराज ! सैनिकोंसहित तुम्हें आगे रखकर हमलोग भी शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे; क्योंकि जिनका मन वैरका अन्त करनेमें लगा हुआ है, वे मेरे सैनिक चुपचाप खड़े नहीं रहेंगे' ॥ १२ ॥

एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः।
अभ्ययात् त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥

'अच्छा, ऐसा ही हो।' राजा दुर्योधनसे इस प्रकार कहकर राक्षसराज अलायुध तुरंत ही राक्षसोंके साथ भीमसेन-पुत्र घटोत्कचके सामने गया ॥ १३ ॥

दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥

राजेन्द्र ! उसका शरीर देदीप्यमान हो रहा था । वह भी सूर्यके समान तेजस्वी वैसे ही रथपर आरूढ़ होकर गया, जैसे रथसे घटोत्कच आया था ॥ १४ ॥

तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥

उसका विशाल रथ भी अनेक तोरणोंसे विचित्र शोभा पा रहा था । उसकी घर्घराहट भी अनुपम थी। उसके ऊपर भी रीछका चाम मढ़ा हुआ था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी चार सौ हाथ थी ॥ १५ ॥

तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६ ॥

उसके रथमें जुते हुए घोड़े भी हाथीके समान मोटे शरीरवाले, शीघ्रगामी और गदहोंके समान उच्चस्वरसे हिन-हिनानेवाले थे। उनकी संख्या सौ थी । वे विशालकाय अश्व मांस और रक्त भोजन करते थे ॥ १६ ॥

तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥

उसके रथका गम्भीर घोष भी महामेघकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ! उसका धनुष भी विशाल, सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त तथा सुवर्णजटित होनेके कारण प्रकाशमान था ॥ १७ ॥

तस्याप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १८ ॥

उसके बाण भी शिलापर तेज किये हुए थे। वे भी धुरेके समान मोटे और सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित थे । अलायुध भी वैसा ही महाबाहु वीर था, जैसा कि घटोत्कच था ॥ १८ ॥

तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो
बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य
श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥ १९ ॥

अलायुधका ध्वज भी अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी था। वह गीदड़-समूहसे चिह्नित दिखायी देता था । उसका स्वरूप भी घटोत्कचके ही समान अत्यन्त कान्तिमान् था। उसका मुख भी विकराल एवं प्रज्वलित जान पड़ता था ॥१९॥

दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली
बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च
शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २० ॥

उसकी भुजाओंमें बाजूबंद चमक रहे थे। मस्तकपर दीप्तिमान् मुकुट प्रकाशित हो रहा था । उसने हार पहन रक्खे थे। उसकी पगड़ीमें तलवार बँधी हुई थी । उसका शरीर हाथीके समान था तथा वह गदा, भुशुण्डी, मुसल, हल और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न था ॥ २० ॥

रथेन तेनानलवर्चसा तदा
विद्रावयन् पाण्डववाहिनीं ताम्।
रराज संख्ये परिवर्तमानो
विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे ॥ २१ ॥

अग्निके समान तेजस्वी पूर्वोक्त रथके द्वारा उस समय पाण्डवसेनाको खदेड़ता हुआ अलायुध युद्धस्थलमें सब ओर घूमकर आकाशमें विद्युन्मालासे प्रकाशित मेघके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २१ ॥

ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्रा
महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्
समन्ततः पाण्डवयोधवीराः ॥ २२ ॥

राजन् ! तब पाण्डवपक्षके सर्वश्रेष्ठ महाबली वीर योद्धा नरेश भी कवच और ढालसे सुसज्जित हो हर्ष और उत्साहमें भरकर सब ओरसे उस राक्षसके साथ युद्ध करने लगे ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें अलायुधयुद्धविषयक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और अलायुधका घोर युद्ध

संजय उवाच

तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे।
हर्षमाहारयांचक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन्! युद्धस्थलमें भयंकर कर्म करनेवाले अलायुधको आया हुआ देख सभी कौरव-योद्धा बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥ २ ॥

उसी प्रकार आपके दुर्योधन आदि पुत्रोंको भी बड़ा हर्ष हुआ, मानो समुद्रके पार जानेकी इच्छावाले नौकाहीन पुरुषोंको जहाज मिल गया हो ॥ २ ॥

पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥

वे पुरुषप्रवर कौरव अपना नया जन्म हुआ मानने लगे। उन्होंने राक्षसराज अलायुधका स्वागतपूर्वक सत्कार किया ॥ ३ ॥

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ ४ ॥
(न द्रौणिर्न कृपो द्रोणो न शल्यो न च माधवः।
एक एव तु तेनासीद् योद्धा कर्णो रणे वृषा ॥)

उस रात्रिकालमें जब कर्ण और घटोत्कचका अत्यन्त भयंकर और दारुण अमानुषिक युद्ध चल रहा था। उस समय न तो अश्वत्थामा, न कृपाचार्य, न द्रोणाचार्य, न शल्य और न कृतवर्मा ही घटोत्कचका सामना कर सके। अकेला दानवीर कर्ण ही रणभूमिमें उसके साथ जूझ रहा था ॥ ४ ॥

उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः।
तथैव तावका राजन् वीक्षमाणास्ततस्ततः ॥ ५ ॥

राजन्! पाञ्चाल योद्धा अन्यान्य राजाओंके साथ विस्मित होकर वह युद्ध देखने लगे। उसी प्रकार आपके सैनिक भी इधर-उधरसे उसी युद्धका दृश्य देख रहे थे ॥५॥

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः।
तत् कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें हिडिम्बाकुमार घटोत्कचका वह अलौकिक कर्म देखकर घबराये हुए द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि 'अब हमारी यह सेना नहीं बचेगी' ॥ ६ ॥

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम्।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ७ ॥

महाराज! कर्णके जीवनसे निराश होकर आपकी सारी सेना उद्विग्न हो उठी थी। सर्वत्र हाहाकार मचा था। सबके होश उड़ गये थे ॥ ७ ॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम्।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

उस समय कर्णको बड़े भारी संकटमें पड़ा देख दुर्योधनने राक्षसराज अलायुधको बुलाकर इस प्रकार कहा-॥ ८ ॥

एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः।
कुरुते कर्म सुमहद् यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥

'वीरवर! देखो, यह सूर्यपुत्र कर्ण हिडिम्बाकुमार घटोत्कचके साथ जूझ रहा है। युद्धस्थलमें जहाँतक इसके प्रयत्नसे होना सम्भव है, वहाँतक यह महान् पराक्रम प्रकट कर रहा है ॥ ९ ॥

पश्यैतान् पार्थिवान् शूरान् निहतान् भैमसेनिना।
नानाशस्त्रैरभिहतान् पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥

'भीमसेनके पुत्रने नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा जिन शूर-वीर नरेशोंको घायल करके मार डाला है, वे हाथीके गिराये हुए वृक्षोंके समान यहाँ पड़े हैं, इन्हें देखो ॥ १० ॥

तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः।
तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥

'वीर! तुम्हारी अनुमतिसे ही समराङ्गणमें सम्पूर्ण राजाओंके बीच इस घटोत्कचको मैंने तुम्हारा भाग नियत किया है, अतः तुम पराक्रम करके इसे मार डालो ॥ ११ ॥

पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥ १२ ॥

'शत्रुसूदन! कहीं ऐसा न हो कि यह पापी घटोत्कच मायाबलका आश्रय ले वैकर्तन कर्णको पहले ही नष्ट कर दे' ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर उस भयंकर पराक्रमी महाबाहु राक्षसने 'बहुत अच्छा' कहकर घटोत्कचपर धावा किया ॥ १३ ॥

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥

प्रभो! तब घटोत्कचने भी कर्णको छोड़कर अपने समीप आते हुए शत्रुको बाणोंद्वारा पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ १४ ॥

तयोः समभवद् युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥ १५ ॥

फिर तो क्रोधमें भरे हुए उन दोनों राक्षसराजोंमें वनके भीतर हथिनीके लिये लड़नेवाले दो मतवाले हाथियोंके समान घोर युद्ध होने लगा ॥ १५ ॥

रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः।
अभ्यद्रवद् भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥

राक्षससे छूटनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भी सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा भीमसेनपर धावा किया ॥ १६ ॥

तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम्।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ १७ ॥
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः।
किरञ्छरौघान् प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥

आते हुए कर्णकी उपेक्षा करके समराङ्गणमें सिंहके चंगुलमें फँसे हुए साँड़की भाँति घटोत्कचको अलायुधका ग्रास बनते देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए अलायुधके रथकी ओर बड़े वेगसे बढ़े ॥ १७-१८ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः प्रभो।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ १९ ॥

प्रभो ! उस समय उन्हें आते देख अलायुधने घटोत्कच-को छोड़कर भीमसेनको ललकारा ॥ १९ ॥

तं भीमः सहसाभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥

राजन् ! राक्षसोंका विनाश करनेवाले भीमने सहसा निकट जाकर सैनिक-गणोंसहित राक्षसराज अलायुधको अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २० ॥

तथैवालायुधो राजञ्शिलाधौतैरजिह्मगैः।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिंदम ॥ २१ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! उसी प्रकार अलायुध भी कुन्तीकुमार भीमसेनपर शिलापर तेज किये हुए बाणों-की बारंबार वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥

तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन्।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ २२ ॥

आपके पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले वे समस्त भयंकर राक्षस हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर भीमसेनपर टूट पड़े ॥ २२ ॥

स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥

बहुत-से योद्धाओंकी मार खाकर महाबली भीमसेनने उन सबको पाँच-पाँच तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः।
विनेदुस्तुमुलान्नादान् दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ २४ ॥

भीमसेनके बाणोंकी चोट खाकर वे क्रूरबुद्धि राक्षस भयंकर चीत्कार करने और दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥२४॥

तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम्।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥

भीमके द्वारा उन राक्षसोंको भयभीत होते देख महाबली राक्षस अलायुधने बड़े वेगसे भीमसेनपर धावा किया और उन्हें बाणोंसे ढक दिया ॥ २५ ॥

तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः।
अलायुधस्तु तानस्तान् भीमेन विशिखान् रणे ॥२६॥
चिच्छेद कांश्चित् समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत्।

तब भीमसेनने समराङ्गणमें तीखी धारवाले बाणोंसे अलायुधको क्षत-विक्षत कर दिया । अलायुधने भीमसेनके चलाये हुए कुछ बाणोंको रणभूमिमें काट दिया और कुछ बाणोंको बड़ी शीघ्रताके साथ हाथसे पकड़ लिया ॥ २६½ ॥

स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा।

भयंकर पराक्रमी भीमसेनने राक्षसराज अलायुधको ऐसा पराक्रम करते देख उस समय उसके ऊपर वज्रपातके समान अपनी भयंकर गदा बड़े वेगसे चलायी ॥ २७½ ॥

तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥ २८ ॥
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत्।

ज्वालासे व्याप्त हुई उस गदाको वेगसे आती देख अलायुधने उसपर अपनी गदासे आघात किया । फिर वह गदा भीमके पास ही लौट आयी ॥ २८½ ॥

स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥
तानप्यस्याकरोन्मोघान् राक्षसो निशितैः शरैः।

फिर कुन्तीकुमार भीमसेनने राक्षसराज अलायुधपर बाणोंकी झड़ी लगा दी; परंतु उस राक्षसने अपने तीखे बाणोंद्वारा उनके वे सभी बाण व्यर्थ कर दिये ॥ २९½ ॥

ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः ॥ ३० ॥
शासनाद् राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान्।

उस रातमें भयंकर रूपधारी सम्पूर्ण राक्षसोंने भी राक्षसराज अलायुधकी आज्ञासे कितने ही रथों और हाथियों-को नष्ट कर दिया ॥ ३०½ ॥

पञ्चालाः सृंजयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः।

उन राक्षसोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर पाञ्चाल और सृंजयवंशी क्षत्रिय तथा उनके घोड़े और बड़े-बड़े हाथी भी शान्ति न पा सके ॥ ३१½ ॥

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥ ३२ ॥
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशं गतम् ॥ ३३ ॥
पदमस्यानुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।

उस महाभयंकर वर्तमान महायुद्धको देखकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार कहा— 'पाण्डुनन्दन ! देखो, महाबाहु भीमसेन राक्षसराज अलायुधके वशमें पड़ गये हैं । तुम शीघ्र उन्हींके मार्गपर चलो । कोई दूसरा विचार मनमें न लाओ ॥ ३२-३३½ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३४ ॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।

'धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, साथ रहनेवाले युधामन्यु और उत्तमौजा तथा द्रौपदीके पाँचो पुत्र—ये सभी महारथी एक साथ होकर कर्णपर धावा करें ॥ ३४½ ॥

नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
इतरान् राक्षसान् घ्नन्तु शासनात् तव पाण्डव ।

'पाण्डुपुत्र ! नकुल, सहदेव और पराक्रमी सात्यकि—ये तुम्हारे आदेशसे अन्य राक्षसोंका वध करें ॥ ३५½ ॥

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥ ३६ ॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ।

'महाबाहु ! तुम भी द्रोण जिसके अगुआ हैं, इस कौरवसेनाको आगे बढ़नेसे रोको; क्योंकि नरव्याघ्र ! पाण्डवसेनापर महान् भय आ पहुँचा है' ॥ ३६½ ॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान् रणे ।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वे सभी महारथी उनके आदेशके अनुसार रणभूमिमें वैकर्तन कर्ण तथा उन राक्षसोंका सामना करनेके लिये चले गये ॥ ३७½ ॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३८ ॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।

तदनन्तर प्रतापी राक्षसराज अलायुधने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा भीमसेनके धनुषको काट डाला ॥ ३८½ ॥

हयांश्चास्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ॥ ३९ ॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः ।

साथ ही, उस महाबली निशाचरने युद्धमें भीमसेनके देखते-देखते पैने बाणोंद्वारा उनके सारथि और घोड़ोंको भी मार डाला ॥ ३९½ ॥

सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥ ४० ॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।

घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथकी बैठकसे नीचे उतरकर गर्जते हुए भीमसेनने उस राक्षसपर अपनी भारी एवं भयंकर गदा दे मारी ॥ ४०½ ॥



ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥ ४१ ॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ।

भयानक शब्द करनेवाली उस विशाल गदाको आती देख भयंकर राक्षस अलायुधने अपनी गदासे उसपर आघात किया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४१½ ॥

तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥ ४२ ॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ।

राक्षसराज अलायुधके उस भयदायक घोर कर्मको देखकर भीमसेनका हृदय हर्ष और उत्साहसे भर गया और उन्होंने शीघ्र ही गदा हाथमें ले ली ॥ ४२½ ॥

तयोः समभवद् युद्धं तुमुलं नरराक्षसोः ॥ ४३ ॥
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् ।

फिर गदाओंके टकरानेकी आवाजसे भूतलको अत्यन्त कम्पित करते हुए उन दोनों मनुष्य और राक्षसोंमें वहाँ भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४३½ ॥

गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥ ४४ ॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

गदासे छूटते ही वे दोनों फिर एक दूसरेसे गुथ गये और वज्रपातकी-सी आवाज करनेवाले मुक्कोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४४½ ॥

रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥ ४५ ॥
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ।

तत्पश्चात् अमर्षमें भरकर वे दोनों रथके पहियों, जूओं, धुरों, बैठकों और अन्य उपकरणोंसे तथा जो भी वस्तु समीप मिल जाती, उसीको लेकर एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ४५½ ॥

तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥ ४६ ॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।

वे मदस्रावी मतवाले गजराजोंके समान अपने अङ्गोंसे रुधिरकी धारा बहाते हुए एक दूसरेसे भिड़कर बारंबार खींचातानी करने लगे ॥ ४६½ ॥

तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ।
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥ ४७ ॥

पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब वह युद्ध देखा, तब भीमसेनकी रक्षाके लिये हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको भेजा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें अलायुधयुद्धविषयक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४८ श्लोक हैं)

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध और घटोत्कचके द्वारा अलायुधका वध एवं दुर्योधनका पश्चात्ताप

संजय उवाच

संदृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद् राजन् घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! समरभूमिमें राक्षसके चंगुलमें फँसे हुए भीमसेनको निकटसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णने घटोत्कचसे यह बात कही—॥ १ ॥

पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥

'महातेजस्वी महाबाहु वीर ! देखो, युद्धस्थलमें उस राक्षसने सम्पूर्ण सेनाके और तुम्हारे देखते-देखते भीमसेनको वशमें कर लिया है ॥ २ ॥

स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात् कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥

महाबाहो ! अतः तुम कर्णको छोड़कर पहले राक्षसराज अलायुधको शीघ्रतापूर्वक मार डालो । पीछे कर्णका वध करना' ॥

स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर पराक्रमी वीर घटोत्कचने कर्णको छोड़कर बकके भाई राक्षसराज अलायुधके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवाग्रं हैडिम्बेश्चापि भारत ॥ ५ ॥

भरतनन्दन ! उस रात्रिके समय अलायुध और हिडिम्बाकुमार घटोत्कच दोनों राक्षसोंमें अत्यन्त भयंकर एवं घमासान युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥

अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान् भीमदर्शनान् ।
वेगेनापततः शूरान् प्रगृहीतशरासनान् ॥ ६ ॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥

अलायुधके सैनिक राक्षस देखनेमें बड़े भयंकर और शूरवीर थे । वे हाथमें धनुष लेकर बड़े वेगसे आक्रमण करते थे । परंतु अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महारथी युयुधान, नकुल और सहदेवने उन सबको अपने पैने बाणोंसे काट डाला ॥ ६-७ ॥

सर्वांश्च समरे राजन् किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान् ॥ ८ ॥

राजन् ! किरीटधारी अर्जुनने समराङ्गणमें सब ओर बाणोंकी वर्षा करके कौरवपक्षके समस्त क्षत्रिय शिरोमणियोंको मार भगाया ॥ ८ ॥

कर्णश्च समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन् पञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥

नरेश्वर ! कर्णने भी रणभूमिमें धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाञ्चाल महारथी नरेशोंको दूर भगा दिया ॥ ९ ॥

तान् वध्यमानान् दृष्ट्वाथ भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात् त्वरितः कर्णं विशिखान् प्रकिरन् रणे ॥ १० ॥

उन सबको बाणोंकी मारसे पीड़ित होते देख भयंकर पराक्रमी भीमसेनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ तुरंत ही कर्णपर आक्रमण किया ॥ १० ॥

ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान् यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् वे नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी राक्षसोंको मारकर वहीं आ पहुँचे, जहाँ सूतपुत्र कर्ण था ॥

ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु ।
अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिंदमम् ।

परिघेणातिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२ ॥

वे तीनों योद्धा कर्णके साथ युद्ध करने लगे और पाञ्चालदेशीय वीरोंने द्रोणाचार्यका सामना किया। उधर क्रोधमें भरे हुए अलायुधने एक विशाल परिघके द्वारा शत्रुदमन घटोत्कचके मस्तकपर आघात किया॥

स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १३ ॥

उस प्रहारसे भीमसेनपुत्र घटोत्कचको कुछ मूर्छा आ गयी। परंतु उस महाबली और पराक्रमी वीरने पुनः अपने आपको सँभाल लिया ॥ १३ ॥

ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम्।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर घटोत्कचने समराङ्गणमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी, एक सौ घंटियोंसे अलंकृत और सुवर्णभूषित अपनी गदा उसके ऊपर चलायी ॥ १४ ॥

सा हयांश्च रथं चास्य सारथिं च महास्वना।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले उस राक्षसद्वारा वेगपूर्वक फेंकी गयी उस भारी आवाज करनेवाली गदाने अलायुधके रथ, सारथि और घोड़ोंको चूर-चूर कर दिया ॥ १५ ॥

स भग्नहयचक्राक्षाद् विशीर्णध्वजकूबरात्।
उत्पपात रथात् तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १६ ॥

जिसके घोड़े, पहिये और धुरे नष्ट हो गये थे, ध्वज और कूबर बिखर गये थे, उस रथसे अलायुध राक्षसी मायाका आश्रय लेकर तुरंत ही ऊपरको उड़ गया ॥ १६ ॥

स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु।
विद्युद्विभ्राजितं चासीत् तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥ १७ ॥

उसने मायाका आश्रय लेकर बहुत रक्तकी वर्षा की। उस समय आकाशमें भयंकर मेघोंकी घटा घिर आयी थी और बिजली चमक रही थी ॥ १७ ॥

ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्रासीच्च महाहवे ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उस महासमरमें वज्रपात, मेघगर्जनाके साथ विद्युत्की गड़गड़ाहट तथा महान् चटचट शब्द होने लगे ॥

तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसस्य च।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययावधीत् ॥ १९ ॥

राक्षसकी उस विशाल मायाको देखकर राक्षसजातीय हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने ऊपर उड़कर अपनी मायासे उस मायाको नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥

अपनी मायाको मायासे ही नष्ट हुई देखकर मायावी अलायुध घटोत्कचपर पत्थरोंकी भयंकर वर्षा करने लगा ॥

अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान्।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥

किंतु पराक्रमी घटोत्कचने बाणोंकी वृष्टि करके उस भयंकर प्रस्तरवर्षाका उन-उन दिशाओंमें ही विध्वंस कर दिया। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ २१ ॥

ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम्।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२ ॥
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः ॥
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥ २३ ॥
उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः ।
शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥
इङ्गुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः।
पलाशैश्चारिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५ ॥
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः।
विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥ २६ ॥

भारत! तत्पश्चात् वे एक दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। लोहेके परिघ, शूल, गदा, मुसल, मुद्गर, पिनाक, खड्ग, तोमर, प्रास, कम्पन, तीखे नाराच, भल्ल, बाण, चक्र, फरसे, लोहेकी गोली, भिन्दिपाल, गोशीर्ष, उलूखल, बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले उखाड़े हुए नाना प्रकारके वृक्ष—शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पा, इङ्गुद, बेर, विकसित कोविदार, पलाश, अरिमेद, बड़े-बड़े पाकड़, बरगद और पीपल—इन सबके द्वारा उस महासमरमें वे एक दूसरेपर चोट करने लगे। नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त विशाल पर्वतशिखरोंद्वारा भी वे परस्पर आघात करते थे ॥ २२—२६ ॥

तेषां शब्दो महानासीद् वज्राणां भिद्यतामिव।
युद्धं समभवद् घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥
हरीन्द्रयोर्यथा राजन् वालिसुग्रीवयोः पुरा।

उन पर्वत-शिखरोंके टकरानेसे ऐसा महान् शब्द होता था, मानो वज्र फट पड़े हों। नरेश्वर! घटोत्कच और अलायुधका वह भयंकर युद्ध वैसा ही हो रहा था, जैसे पहले त्रेतायुगमें वानरराज बाली और सुग्रीवका युद्ध सुना गया है ॥ २७½ ॥

तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥ २८ ॥

नाना प्रकारके भयंकर आयुधों और बाणोंसे युद्ध करके वे दोनों राक्षस तीखी तलवारें लेकर एक दूसरेपर टूट पड़े ॥

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥

उन दोनों महाबली और विशालकाय राक्षसोंने परस्पर आक्रमण करके दोनों हाथोंसे दोनोंके केश पकड़ लिये। २९।

तौ स्विन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप।
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवाम्बुदौ ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! अत्यन्त वर्षा करनेवाले दो मेघोंके समान उन विशालकाय राक्षसोंके शरीर पसीनेसे तर हो रहे थे। वे अपने अंगोंसे पसीनोंके साथ-साथ खून भी बहा रहे थे ॥

अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम्।
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्तास्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर बड़े वेगसे झपटकर हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने उस राक्षसको पकड़ लिया और उसे घुमाकर बलपूर्वक पटक दिया। फिर उसके विशाल मस्तकको उसने काट डाला ॥

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम्।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार महाबली घटोत्कचने उसके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटकर उस समय बड़ी भयानक गर्जना की ॥

हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिंदमम्।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३३ ॥

बकासुरके विशालकाय भ्राता शत्रुदमन अलायुधको मारा गया देख पाञ्चाल और पाण्डव सिंहनाद करने लगे ॥

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च।
अवादयन् पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥ ३४ ॥

युद्धस्थलमें उस राक्षसके मारे जानेपर पाण्डवदलके सैनिकोंने सहस्रों नगाड़े और हजारों शङ्ख बजाये ॥ ३४ ॥

अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद् दीपमालिनी ॥ ३५ ॥

चारों ओरसे दीपावलियोंद्वारा प्रकाशित होनेवाली वह रात्रि उनके लिये विजयदायिनी होकर अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥ ३५ ॥

अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६ ॥

उस समय दुर्योधन अचेत-सा हो रहा था। महाबली घटोत्कचने अलायुधका वह मस्तक दुर्योधनके सामने फेंक दिया ॥ ३६ ॥

अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम्।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥

भारत ! अलायुधको मारा गया देख सेनासहित राजा दुर्योधन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा ॥ ३७ ॥

तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

अलायुधने अपने भारी बैरीको याद करते हुए स्वयं आकर दुर्योधनके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्धमें भीमसेनको मार डालूँगा ॥ ३८ ॥

ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातृणां चाप्यमन्यत ॥ ३९ ॥

इससे राजा दुर्योधन यह मान बैठा था कि अलायुध निश्चय ही भीमसेनको मार डालेगा और यही सोचकर उसने यह भी समझ लिया था कि अभी मेरे भाइयोंका जीवन चिरस्थायी है ॥

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

परंतु भीमसेनपुत्र घटोत्कचके द्वारा अलायुधको मारा गया देख उसने यह निश्चित रूपसे मान लिया कि अब भीमसेनकी प्रतिज्ञा पूरी होकर ही रहेगी ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधवधेऽष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय अलायुधका वधविषयक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७८ ॥

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा चलायी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिसे उसका वध

संजय उवाच

निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः।
ननाद विविधान् नादान् वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! राक्षस अलायुधका वध करके घटोत्कच मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह आपकी सेनाके सामने खड़ा हो नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगा ॥

तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम्।
तावकानां महाराज भयमासीत् सुदारुणम् ॥ २ ॥

महाराज ! उसकी वह भयंकर गर्जना हाथियोंको भी कँपा देनेवाली थी। उसे सुनकर आपके योद्धाओंके मनमें अत्यन्त दारुण भय समा गया ॥ २ ॥

अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम्।

दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान् समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

जिस समय महाबली घटोत्कच अलायुधके साथ उलझा हुआ था, उस समय उसे उस अवस्थामें देखकर महाबाहु कर्णने पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ३ ॥

दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥

उसने पूर्णतः खींचकर छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले दस-दस सुदृढ़ बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्न और शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् उसने अच्छे-अच्छे नाराचोंद्वारा युधामन्यु और उत्तमौजाको तथा अनेक बाणोंसे उदार महारथी सात्यकिको भी कम्पित कर दिया ॥ ५ ॥

तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! वे सात्यकि आदि भी बायें-दायें बाण चला रहे थे। उस समय उन सबके धनुष भी मण्डलाकार ही दिखायी देते थे ॥ ६ ॥

तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७ ॥

उस रात्रिके समय उनकी प्रत्यञ्चाकी टंकार तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटका शब्द वर्षाकालके मेघोंकी गर्जनाके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ७ ॥

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान् वै
धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च
संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥

राजन् ! वह संग्राम वर्षाकालीन मेघके समान प्रतीत होता था। प्रत्यञ्चाकी टंकार और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द ही उस मेघकी गर्जनाके समान था। धनुष ही विद्युन्मण्डलके समान प्रकाशित होता था और ध्वजाका अग्रभाग ही उस मेघका उच्चतम शिखर था तथा बाण-समूहोंकी वृष्टि ही उसके द्वारा की जानेवाली वर्षा थी ॥ ८ ॥

तदद्भुतं शैल इवाप्रकम्पो
वर्षं महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र
वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! महान् पर्वतके समान शक्तिशाली एवं अविचल रहनेवाले शत्रुदलसंहारक सूर्यपुत्र कर्णने रणभूमिमें उस अद्भुत बाण-वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ ९ ॥

ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः
शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून् व्यपोहत् समरे महात्मा
वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥

तत्पश्चात् आपके पुत्रके हितमें तत्पर रहनेवाले महामनस्वी वैकर्तन कर्णने समराङ्गणमें सोनेके विचित्र पंखोंसे युक्त एवं वज्रपातके तुल्य भयंकर, तुलनारहित तीखे बाणोंद्वारा शत्रुओंका संहार आरम्भ किया ॥ १० ॥

संछिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्
केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः ।
केचिद् विसूता विहयाश्च केचिद्
वैकर्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥

वैकर्तन कर्णने वहाँ शीघ्र ही किन्हींकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, किन्हींके शरीरोंको बाणोंसे पीड़ित करके विदीर्ण कर डाला, किन्हींके सारथि नष्ट कर दिये और किन्हींके घोड़े मार डाले ॥ ११ ॥

अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये
यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन् ।
तान् प्रेक्ष्य भग्नान् विमुखीकृतांश्च
घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२ ॥

योद्धालोग युद्धमें किसी तरह चैन न पाकर युधिष्ठिरकी सेनामें घुसने लगे। उन्हें तितर-बितर और युद्धसे विमुख हुआ देख घटोत्कचको बड़ा रोष हुआ ॥ १२ ॥

आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं
रथोत्तमं सिंहवत् संननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि
विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३ ॥

वह सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभायुक्त उत्तम रथपर आरूढ़ हो सिंहके समान गर्जना करने लगा और वैकर्तन कर्णके पास जाकर उसे वज्रतुल्य बाणोंद्वारा बींधने लगा ॥ १३ ॥

तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च
नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः
क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥

वे दोनों कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, असन, वत्सदन्त, वाराहकर्ण, विपाठ, सींग तथा क्षुरप्रोंकी वर्षा करते हुए अपनी गर्जनासे आकाशको गुँजाने लगे ॥

तद् बाणधारावृतमन्तरिक्षं
तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभि-
र्विचित्रपुष्पाभिरिव स्रजाभिः ॥ १५ ॥

समराङ्गणमें बाणधाराओंसे भरा हुआ आकाश उन बाणोंके सुवर्णमय पंखोंकी तिरछी दिशामें फैलनेवाली देदीप्यमान प्रभाओंसे ऐसी शोभा पा रहा था, मानो वह विचित्र पुष्पोंवाली मनोहर मालाओंसे अलंकृत हो ॥ १५ ॥

समाहितावप्रतिमप्रभावा-
वन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्
ददर्श तस्मिन् समरे विशेषम् ॥ १६ ॥

दोनोंके ही चित्त एकाग्र थे; दोनों ही अनुपम प्रभावशाली थे और उत्तम अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचा रहे थे। उन दोनों वीरशिरोमणियोंमेंसे कोई भी युद्धमें अपनी विशेषता न दिखा सका ॥ १६ ॥

अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं
दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७ ॥

सूर्यपुत्र कर्ण और भीमकुमार घटोत्कचका वह अत्यन्त विचित्र एवं घमासान युद्ध आकाशमें राहु और सूर्यके उन्मत्त संग्राम-सा प्रतीत होता था। उसकी कहीं तुलना नहीं थी। शस्त्रोंके प्रहारसे वह बड़ा भयंकर जान पड़ता था ॥ १७ ॥

संजय उवाच

घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कर्ण घटोत्कचसे अपनी विशेषता न दिखा सका, तब उसने एक भयंकर अस्त्र प्रकट किया ॥ १८ ॥

तेनास्त्रेणावधीत् तस्य रथं सहयसारथिम् ।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस अस्त्रके द्वारा उसने घटोत्कचके रथको घोड़े और सारथिसहित नष्ट कर दिया। रथहीन होनेपर घटोत्कच शीघ्र ही वहाँसे अदृश्य हो गया ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! बताओ, माया-युद्ध करनेवाले उस राक्षसके तत्काल अदृश्य हो जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या सोचा और क्या किया ? ॥ २० ॥

संजय उवाच

अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा
सम्प्राक्रोशन् कुरवः सर्व एव ।
कथं नायं राक्षसः कूटयोधी
हन्यात् कर्णं समरेऽदृश्यमानः ॥ २१ ॥

संजयने कहा—महाराज ! राक्षसराज घटोत्कचको अदृश्य हुआ जानकर समस्त कौरव-योद्धा चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे 'मायाद्वारा युद्ध करनेवाला यह निशाचर जब रणभूमिमें स्वयं दिखायी ही नहीं देता है, तब कर्णको कैसे नहीं मार डालेगा ?' ॥ २१ ॥

ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी
सर्वा दिशः प्रावृणोद् बाणजालैः ।
न वै किञ्चित् प्रापतत् तत्र भूतं
तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥

तब शीघ्रतापूर्वक विचित्र रीतिसे अस्त्रयुद्ध करनेवाले कर्णने अपने बाणोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशाओंको ढक दिया। उस समय बाणोंसे आकाशमें अँधेरा छा गया था तो भी वहाँ कोई प्राणी ऊपरसे मरकर गिरा नहीं ॥ २२ ॥

नैवाददानो न च संदधानो
न चेषुधीः स्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद् वै लाघवात् सूतपुत्रः
सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥

सूतपुत्र कर्ण जब शीघ्रतापूर्वक बाणोंद्वारा समूचे आकाशको आच्छादित कर रहा था, उस समय यह नहीं दिखायी देता था कि वह कब अपने हाथकी अंगुलियोंसे तरकसको छूता है, कब बाण निकालता है और कब उसे धनुषपर रखता है ॥ २३ ॥

ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे
घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां
देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर हमने अन्तरिक्षमें उस राक्षसद्वारा रची गयी घोर, दारुण एवं भयंकर माया देखी। पहले तो वह लाल रंगके बादलोंके रूपमें प्रकाशित हुई, फिर आगकी भयंकर लपटोंके समान प्रज्वलित हो उठी ॥ २४ ॥

ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरास-
न्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चास्याः प्रादुरासीत् सुघोरः
सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥

कौरवराज ! तत्पश्चात् उससे बिजलियाँ प्रकट हुई और जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं। साथ ही, हजारों दुन्दुभियोंके बजनेके समान बड़ी भयानक आवाज होने लगी ॥ २५ ॥

ततः शराः प्रापतन् रुक्मपुङ्खाः
शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि ।

परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः
प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ २६ ॥
मयूखिनः परिघा लोहबद्धा
गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः
शतघ्न्यश्च प्रादुरासन् समन्तात् ॥ २७ ॥

फिर उससे सोनेके पंखवाले बाण गिरने लगे। शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मुसल आदि आयुध, फरसे, तेलमें साफ किये गये खड्ग, चमचमाती हुई धारवाले तोमर, पट्टिश, तेजस्वी परिघ, लोहेसे बँधी हुई विचित्र गदा, तीखी धारवाले शूल, सोनेके पत्रसे मढी गयी भारी गदाएँ और शतघ्नियाँ चारों ओर प्रकट होने लगीं ॥ २६-२७ ॥

महाशिलाश्चापतंस्तत्र तत्र
सहस्रशः साशनयश्च वज्राः।
चक्राणि चानेकशतक्षुराणि
प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥

जहाँ-तहाँ हजारों बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरने लगीं, बिजलियोंसहित वज्र पड़ने लगे और अग्निके समान दीप्तिमान् कितने ही चक्रों तथा सैकड़ों छुरोंका प्रादुर्भाव होने लगा ॥ २८ ॥

तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां
प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम्।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं
कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥

शक्ति, प्रस्तर, फरसे, प्रास, खड्ग, वज्र, बिजली और मुद्गरोंकी गिरती हुई उस ज्वालापूर्ण विशाल वर्षाको कर्ण अपने बाणसमूहोंद्वारा नष्ट न कर सका ॥ २९ ॥

शराहतानां पततां हयानां
वज्राहतानां च तथा गजानाम्।
शिलाहतानां च महारथानां
महान् निनादः पततां बभूव ॥ ३० ॥

बाणोंसे घायल होकर गिरते हुए घोड़ों, वज्रसे आहत होकर धराशायी होते हुए हाथियों तथा शिलाओंकी मार खाकर गिरते हुए महारथियोंका महान् आर्तनाद वहाँ सुनायी देता था ॥ ३० ॥

सुभीमनानाविधशस्त्रपातै-
र्घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात्।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूप-
मावर्तमानं ददृशे भ्रमत् तत् ॥ ३१ ॥

घटोत्कचके द्वारा चलाये हुए अत्यन्त भयंकर एवं नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे हताहत हुई दुर्योधनकी सेना आर्त होकर चारों ओर घूमती और चक्कर काटती दिखायी देने लगी ॥ ३१ ॥

हाहाकृतं सम्परिवर्तमानं
संलीयमानं च विषण्णरूपम्।
ते त्वार्यभावात् पुरुषप्रवीराः
पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥

साधारण सैनिक विषादकी मूर्ति बनकर हाहाकार करते हुए सब ओर भाग-भागकर छिपने लगे; परंतु जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर थे, वे आर्यपुरुषोंके धर्मपर स्थित रहनेके कारण उस समय भी युद्धसे विमुख नहीं हुए ॥ ३२ ॥

तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां
वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम्।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्
महद् भयं तव पुत्रान् विवेश ॥ ३३ ॥

राक्षसद्वारा की हुई बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंकी वह अत्यन्त घोर एवं भयानक वर्षा तथा अपने सैन्य-समूहोंका विनाश देखकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ३३ ॥

शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः
सुभीमनादाः शतशो नदन्तीः।
रक्षोगणान् नर्दतश्चापि वीक्ष्य
नरेन्द्र योधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४ ॥

नरेन्द्र! अग्निके समान जलती हुई जीभ और भयंकर शब्दवाली सैकड़ों गीदड़ियोंको चीत्कार करते तथा राक्षस-समूहोंको गर्जते देखकर आपके सैनिक व्यथित हो उठे ॥ ३४ ॥

ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा
विभीषणाः शैलनिकाशकायाः।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता
मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥

पर्वतके समान विशाल शरीरवाले और प्रज्वलित जिह्वासे आग उगलनेवाले तीखी दाढ़ोंसे युक्त भयानक राक्षस हाथोंमें शक्ति लिये आकाशमें पहुँचकर मेघोंके समान कौरवदलपर शस्त्रोंकी उग्र वर्षा करने लगे ॥

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलै-
र्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः
शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६ ॥

उन निशाचरोंके बरसाये हुए बाण, शक्ति, शूल, गदा, उग्र प्रज्वलित परिघ, वज्र, पिनाक, बिजली, शतघ्नी और चक्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारोंसे रौंदे गये कौरव-योद्धा मर-मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥

शूला भुशुण्ड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः
स्थूणाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं
ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे राक्षस आपके पुत्रकी सेनापर लगातार शूल, भुशुण्डी, पत्थरोंके गोले, शतघ्नी और लोहेके पत्रोंसे मढ़े गये स्थूणाकार[1] शस्त्र बरसाने लगे । इससे आपके सैनिकोंपर भयंकर मोह छा गया ॥ ३७ ॥

विकीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः
सम्भग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्नाः
संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥

उस समय पत्थरोंकी मारसे आपके शूरवीरोंके मस्तक कुचल गये थे, अङ्ग भङ्ग हो गये थे, उनकी आँतें बाहर निकलकर बिखर गयी थीं और इस अवस्थामें वे वहाँ पृथ्वीपर पड़े हुए थे । घोड़ोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, हाथियोंके सारे अङ्ग कुचल गये थे और रथ चूर-चूर हो गये ॥ ३८ ॥

एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्त-
स्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।
मायासृष्टास्तत्र घटोत्कचेन
नामुञ्चन् वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार बड़ी भारी शस्त्रवर्षा करते हुए वे निशाचर इस भूतलपर भयंकर रूप धारण करके प्रकट हुए थे । घटोत्कचकी मायासे उनकी सृष्टि हुई थी । वे डरे हुए तथा प्राणोंकी भिक्षा माँगते हुएको भी नहीं छोड़ते थे ॥ ३९ ॥

तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दे
कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त
प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥

कौरव-वीरोंका विनाश करनेवाला वह घोर संग्राम मानो क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये साक्षात् कालद्वारा उपस्थित किया गया था । उसमें विद्यमान सभी कौरवयोद्धा हतोत्साह हो निम्नाङ्कित रूपसे चीखते-चिल्लाते हुए सहसा भाग चले ॥

पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति
सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां
तस्मिन् द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥

'कौरवो ! भागो, भागो, अब किसी तरह यह सेना बच नहीं सकती । पाण्डवोंके लिये इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता हमें आकर मार रहे हैं ।' इस प्रकार उस समर-सागरमें डूबते हुए कौरव-सैनिकोंके लिये सूतपुत्र कर्ण द्वीपके समान आश्रयदाता बन गया ॥ ४१ ॥

तस्मिन् संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागेऽप्रकाशे
नाज्ञायन्त कुरवो नेतरे च ॥ ४२ ॥

उस घमासान युद्धके आरम्भ होनेपर जब कौरव-सेना भागकर छिप गयी और सैनिकोंके विभाग लुप्त हो गये, उस समय कौरव अथवा पाण्डव योद्धा पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४२ ॥

निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे
सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं
कर्णं स्मैकं तत्र राजन्नपश्यन् ॥ ४३ ॥

उस मर्यादारहित और भयंकर युद्धमें जब भगदड़ पड़ गयी, उस समय भागे हुए सैनिक सारी दिशाओंको सूनी देखते थे । राजन् ! वहाँ लोगोंको एकमात्र कर्ण ही उस शस्त्रवर्षाको छातीपर झेलता हुआ दिखायी दिया ॥ ४३ ॥

ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं
दिव्यां मायां योधयन् राक्षसस्य ।
ह्रीमान् कुर्वन् दुष्करं चार्यकर्म
नैवामुह्यत् संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥

तदनन्तर राक्षसकी दिव्य मायाके साथ युद्ध करते हुए लज्जाशील सूतपुत्र कर्णने आकाशको अपने बाणोंसे ढक दिया और युद्धमें वह श्रेष्ठ वीरोचित दुष्कर कर्म करता हुआ भी मोहके वशीभूत नहीं हुआ ॥ ४४ ॥

ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं
राजन् सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च ।
असम्मोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये
सम्पश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥

राजन् ! तब सिन्धु और बाह्लीकदेशके योद्धा युद्धस्थलमें राक्षसकी विजय देखकर भी कर्णके मोहित न होनेकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसकी ओर भयभीत होकर देखने लगे ॥

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्
गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥

इसी समय घटोत्कचने एक शतघ्नी छोड़ी, जिसमें पहिये लगे हुए थे । उस शतघ्नीने कर्णके चारों घोड़ोंको एक साथ ही मार डाला । उन घोड़ोंने प्राणशून्य होकर धरतीपर घुटने टेक दिये । उनके दाँत, नेत्र और जीभें बाहर निकल आयी थीं ॥ ४६ ॥

१. खंभेके समान आकृतिवाले ।

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने
नैवामुह्यच्चिन्तयन् प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥

तब कर्ण उस अश्वहीन रथसे उतरकर मनको एकाग्र करके कुछ सोचने लगा । उस समय सारे कौरव सैनिक भाग रहे थे । उसके दिव्यास्त्र भी घटोत्कचकी मायासे नष्ट होते जा रहे थे, तो भी वह समयोचित कर्तव्यका चिन्तन करता हुआ मोहमें नहीं पड़ा ॥ ४७ ॥

ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव
कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं
नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् राक्षसकी उस भयंकर मायाको देखकर सभी कौरव कर्णसे इस प्रकार बोले—'कर्ण ! तुम आज (इन्द्रकी दी हुई) शक्तिसे तुरंत इस राक्षसको मार डालो, नहीं तो ये धृतराष्ट्रके पुत्र और कौरव नष्ट होते जा रहे हैं ॥ ४८ ॥

करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ
तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
यो नः संग्रामाद् घोररूपाद् विमुच्येत्
स नः पार्थान् सबलान् योधयेत॥ ४९॥

'भीमसेन और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे ? आधी रातके समय संताप देनेवाले इस पापी राक्षसको मार डालो । हममेंसे जो भी इस भयानक संग्रामसे छुटकारा पायेगा वही सेनासहित पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा ॥ ४९ ॥

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं
शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन ।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा
रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५० ॥

'इसलिये तुम इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे इस घोर रूपधारी राक्षसको मार डालो । कर्ण ! कहीं ऐसा न हो कि ये इन्द्रके समान पराक्रमी समस्त कौरव रात्रियुद्धमें अपने योद्धाओंके साथ नष्ट हो जायँ' ॥ ५० ॥

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे
दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च ।
महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां
मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥

राजन् ! निशीथकालमें राक्षसके प्रहारसे घायल होते हुए कर्णने अपनी सेनाको भयभीत देख कौरवोंका महान् आर्तनाद सुनकर घटोत्कचपर शक्ति छोड़नेका निश्चय कर लिया ॥५१॥

स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी
नामर्षयत् प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां
समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥

क्रोधमें भरे हुए सिंहके समान अत्यन्त अमर्षशील कर्ण रणभूमिमें घटोत्कचद्वारा अपने अस्त्रोंका प्रतिघात न सह सका । उसने उस राक्षसका वध करनेकी इच्छासे श्रेष्ठ एवं असह्य वैजयन्तीनामक शक्तिको हाथमें लिया ॥ ५२ ॥

यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान्
वधायाजौ सत्कृता फाल्गुनस्य ।
यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शक्रः
शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ ५३॥
तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां
पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां
वैकर्तनः प्राहिणोद् राक्षसाय ॥ ५४ ॥

राजन् ! जिसे उसने युद्धमें अर्जुनका वध करनेके लिये कितने ही वर्षोंसे सत्कारपूर्वक रख छोड़ा था, जिस श्रेष्ठ शक्तिको इन्द्रने सूतपुत्र कर्णके हाथमें उसके दोनों कुण्डलोंके बदलेमें दिया था, जो सबको चाट जानेके लिये उद्यत हुई यमराजके जिह्वाके समान जान पड़ती थी तथा जो मृत्युकी सगी बहिन एवं जलती हुई उल्काके समान प्रतीत होती थी, उसी पाशोंसे युक्त, प्रज्वलित दिव्य शक्तिको सूर्यपुत्र कर्णने राक्षस घटोत्कचपर चला दिया ॥ ५३-५४ ॥



तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं
दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्
कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम् ॥ ५५॥

राजन्! दूसरेके शरीरको विदीर्ण कर डालनेवाली उस उत्तम एवं प्रज्वलित शक्तिको कर्णके हाथमें देखकर भयभीत हुआ राक्षस घटोत्कच अपने शरीरको विन्ध्य पर्वतके समान विशाल बनाकर भागा ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां
नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्
सनिर्घाता चाशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥

नरेन्द्र! कर्णके हाथमें उस शक्तिको स्थित देख आकाशके प्राणी भयसे कोलाहल करने लगे। राजन्! उस समय भयंकर आँधी चलने लगी और घोर गड़गड़ाहटके साथ पृथ्वीपर वज्रपात हुआ ॥ ५६ ॥

सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती
भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां
नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ ५७ ॥

वह प्रज्वलित शक्ति राक्षस घटोत्कचकी उस मायाको भस्म करके उसके वक्षःस्थलको गहराईतक चीरकर रात्रिके समय प्रकाशित होती हुई ऊपरको चली गयी और नक्षत्रोंमें जाकर विलीन हो गयी ॥ ५७ ॥

स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगै-
र्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च।
नदन् नादान् विविधान् भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या ॥ ५८ ॥

घटोत्कचका शरीर पहलेसे ही दिव्य नाग, मनुष्य और राक्षससम्बन्धी नाना प्रकारके अस्त्र-समूहोंद्वारा छिन्न-भिन्न हो गया था। वह विविध प्रकारसे भयंकर आर्तनाद करता हुआ इन्द्रशक्तिके प्रभावसे अपने प्यारे प्राणोंसे वञ्चित हो गया ॥

इदं चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं
चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय।
तस्मिन् काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा
बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९ ॥

राजन्! मरते समय उसने शत्रुओंका संहार करनेके लिये यह दूसरा विचित्र एवं आश्चर्ययुक्त कर्म किया। यद्यपि शक्तिके प्रहारसे उसके मर्मस्थल विदीर्ण हो चुके थे तो भी वह अपना शरीर बढ़ाकर पर्वत और मेघके समान लंबा-चौड़ा प्रतीत होने लगा ॥ ५९ ॥

ततोऽन्तरिक्षादपतद् गतासुः
स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो
घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६० ॥

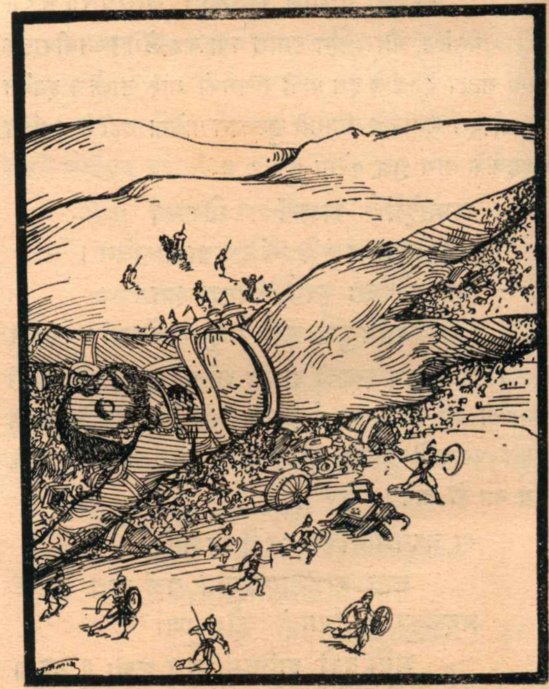
इस प्रकार विशाल रूप धारण करके विदीर्ण शरीरवाला राक्षसराज घटोत्कच नीचे सिर करके प्राणशून्य हो आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय उसका अंग-अंग अकड़ गया था और जीभ बाहर निकल आयी थी ॥ ६० ॥

स तद् रूपं भैरवं भीमकर्मा
भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेश-
मपोथयत् स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥

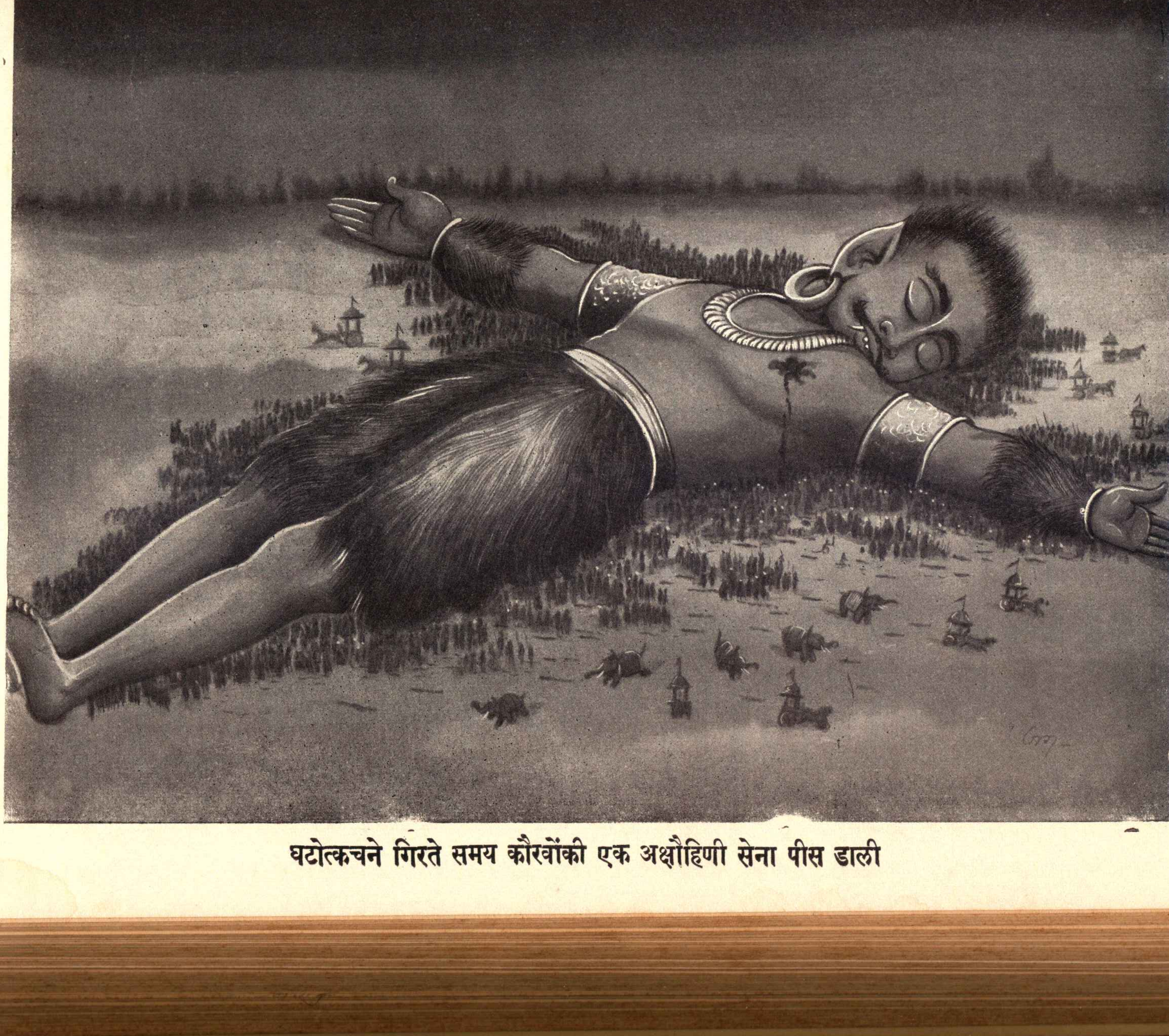
महाराज! भयंकर कर्म करनेवाला भीमसेनपुत्र घटोत्कच अपना वह भीषण रूप बनाकर नीचे गिरा। इस प्रकार मरकर भी उसने अपने शरीरसे आपकी सेनाके एक भागको कुचलकर मार डाला ॥ ६१ ॥

पतद् रक्षः स्वेन कायेन तूर्ण-
मतिप्रमाणेन विवर्धता च।
प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां गतासु-
रक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥

पाण्डवोंका प्रिय करनेवाले उस राक्षसने प्राणशून्य हो जानेपर भी अपने बढ़ते हुए अत्यन्त विशाल शरीरसे गिरकर आपकी एक अक्षौहिणी सेनाको तुरंत नष्ट कर दिया ॥ ६२ ॥



ततो मिश्राः प्राणदन् सिंहनादै-
र्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चानकाश्च।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च
दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन् कौरवेयाः ॥ ६३ ॥



घटोत्कचने गिरते समय कौरवोंकी एक अक्षौहिणी सेना पीस डाली

तदनन्तर सिंहनादोंके साथ-साथ भेरी, शङ्ख, नगाड़े और आनक आदि बाजे बजने लगे। माया भस्म हुई और राक्षस मारा गया—यह देखकर हर्षमें भरे हुए कौरव सैनिक जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ६३ ॥

ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो
यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं
हृष्टश्चापि प्राविशत् तत् स्वसैन्यम् ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् जैसे वृत्रासुरका वध होनेपर देवताओंने इन्द्रका सत्कार किया था, उसी प्रकार कौरवोंसे पूजित होते हुए कर्णने आपके पुत्रके रथपर आरूढ़ हो बड़े हर्षके साथ अपनी उस सेनामें प्रवेश किया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय घटोत्कचका वधविषयक एक सौ उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७९ ॥

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचके वधसे पाण्डवोंका शोक तथा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उसका कारण

संजय उवाच

हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम्।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जैसे पर्वत ढह गया हो, उसी प्रकार हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको मारा गया देख समस्त पाण्डवोंके नेत्रोंमें शोकके आँसू भर आये ॥ १ ॥

वासुदेवस्तु हर्षेण महताभिपरिप्लुतः।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् ॥ २ ॥

परंतु वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बड़े हर्षमें मग्न होकर सिंहनाद करने लगे। उन्होंने अर्जुनको छातीसे लगा लिया ॥ २ ॥

स विनद्य महानादमभीषून् संनियम्य च।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥

वे बड़े जोरसे गर्जना करके घोड़ोंकी रास रोककर हवाके हिलाये हुए वृक्षके समान हर्षसे झूमकर नाचने लगे ॥ ३ ॥

ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चासकृत्।
रथोपस्थगतो धीमान् प्राणदत् पुनरच्युतः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् पुनः अर्जुनको हृदयसे लगाकर बारंबार उनकी पीठ ठोंककर रथके पिछले भागमें बैठे हुए बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण फिर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥

प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः।
अर्जुनोऽथाब्रवीद् राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके मनमें अधिक प्रसन्नता हुई जानकर महाबली अर्जुन कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले—॥ ५ ॥

अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन।
शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥

'मधुसूदन! हिडिम्बाकुमार घटोत्कचके वधसे आज हमारे लिये तो शोकका अवसर प्राप्त हुआ है, परंतु आपको यह बेमौके अधिक हर्ष हो रहा है ॥ ६ ॥

विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम्।
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥

'घटोत्कचको मारा गया देख हमारी सेनाएँ यहाँ युद्धसे विमुख होकर भागी जा रही हैं। हिडिम्बाकुमारके धराशायी होनेसे हमलोग भी अत्यन्त उद्विग्न हो उठे हैं ॥ ७ ॥

नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥

'परंतु जनार्दन! आपको जो इतनी खुशी हो रही है उसका कोई छोटा-मोटा कारण न होगा। वही मैं आपसे पूछता हूँ। सत्यवक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! आप इसका मुझे यथार्थ कारण बताइये ॥ ८ ॥

यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिंदम।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

'शत्रुदमन! यदि कोई गोपनीय बात न हो तो मुझे अवश्य बतावें। मधुसूदन! आपके इस हर्ष-प्रदर्शनसे आज हमारा धैर्य छूटा जा रहा है, अतः आप इसका कारण अवश्य बतावें ॥ ९ ॥

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम्।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥

'जनार्दन! जैसे समुद्रका सूखना और मेरु पर्वतका विचलित होना आश्चर्यकी बात है, उसी प्रकार आज मैं आपके इस हर्षप्रकाशनरूपी कर्मको आश्चर्यजनक मानता हूँ' ॥

श्रीवासुदेव उवाच

अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनंजय।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धनंजय! आज वास्तवमें मुझे यह अत्यन्त हर्षका अवसर प्राप्त हुआ है, इसका क्या कारण है, यह तुम मुझसे सुनो। मेरे मनको तत्काल अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करनेवाला वह उत्तम कारण इस प्रकार है ॥

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते।
कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनंजय ॥ १२ ॥

महातेजस्वी धनंजय ! इन्द्रकी दी हुई शक्तिको घटोत्कचके द्वारा कर्णके हाथसे दूर कराकर अब तुम युद्धमें कर्णको शीघ्र मरा हुआ ही समझो ॥ १२ ॥

शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह।
य एनमभितस्तिष्ठेत् कार्तिकेयमिवाहवे ॥ १३ ॥

इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जो युद्धस्थलमें कार्तिकेयके समान शक्तिशाली कर्णके सामने खड़ा हो सके ॥ १३ ॥

दिष्ट्यापनीतकवचो दिष्ट्यापहृतकुण्डलः।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥

सौभाग्यकी बात है कि कर्णका दिव्य कवच उतर गया, सौभाग्यसे ही उसके कुण्डल छीने गये तथा सौभाग्यसे ही उसकी वह अमोघशक्ति घटोत्कचपर गिरकर उसके हाथसे निकल गयी ॥ १४ ॥

यदि हि स्यात् सकवचस्तथैव स्यात् सकुण्डलः।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद् रणे ॥ १५ ॥

यदि कर्ण कवच और कुण्डलोंसे सम्पन्न होता तो वह अकेला ही रणभूमिमें देवताओंसहित तीनों लोकोंको जीत सकता था ॥ १५ ॥

वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः।
यमो वा नोत्सहेत् कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥

उस अवस्थामें इन्द्र, कुबेर, जलेश्वर वरुण अथवा यमराज भी रणभूमिमें कर्णका सामना नहीं कर सकते थे ॥

गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाहं सुदर्शनम्।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथायुक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥

तुम गाण्डीव उठाकर और मैं सुदर्शन चक्र लेकर दोनों एक साथ जाते तो भी समराङ्गणमें कवच-कुण्डलोंसे युक्त नरश्रेष्ठ कर्णको नहीं जीत सकते थे ॥ १७ ॥

त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः।
विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरंजयः ॥ १८ ॥

तुम्हारे हितके लिये इन्द्रने शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले कर्णके दोनों कुण्डल मायासे हर लिये और उसे कवचसे भी वञ्चित कर दिया ॥ १८ ॥

उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च ते।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥

कर्णने कवच तथा उन निर्मल कुण्डलोंको स्वयं ही अपने शरीरसे कुतरकर इन्द्रको दे दिया था; इसीलिये उसका नाम वैकर्तन हुआ ॥ १९ ॥

आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा।
तथाद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः ॥ २० ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए सर्पको मन्त्रके तेजसे स्तब्ध कर दिया जाय तथा प्रज्वलित आगकी ज्वालाको बुझा दिया जाय, शक्तिसे वञ्चित हुआ कर्ण भी आज मुझे वैसा ही प्रतीत होता है ॥ २० ॥

यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता यासौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च।
तां प्राप्यामन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥

महाबाहो ! जबसे महात्मा इन्द्रने कर्णको उसके दिव्य कवच और कुण्डलोंके बदलेमें अपनी शक्ति दी थी, जिसे उसने घटोत्कचपर चला दिया है, उस शक्तिको पाकर धर्मात्मा कर्ण सदा तुम्हें रणभूमिमें मारा गया ही मानता था॥

एवंगतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन केनचित्।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह ! आज ऐसी अवस्थामें आकर भी कर्ण तुम्हारे सिवा किसी दूसरे योद्धासे नहीं मारा जा सकता। अनघ ! मैं सत्यकी शपथ खाकर यह बात कहता हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः ॥२४॥

कर्ण ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, तपस्वी, नियम और व्रतका पालक तथा शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है; इसीलिये उसे वृष (धर्मात्मा) कहा गया है ॥ २४ ॥

युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः।
केसरीव वने नर्दन् मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥
विमदान् रथशार्दूलान् कुरुते रणमूर्धनि।

महाबाहु कर्ण युद्धमें कुशल है। उसका धनुष सदा उठा ही रहता है। वनमें दहाड़नेवाले सिंहके समान वह सदा गर्जता रहता है। जैसे मतवाला हाथी कितने ही यूथपतियोंको मदरहित कर देता है, उसी प्रकार कर्ण युद्धके मुहानेपर सिंहके समान पराक्रमी महारथियोंका भी घमंड चूर कर देता है ॥ २५½ ॥

मध्यं गत इवादित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥

पुरुषसिंह ! तुम्हारे महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धा दोपहरके तपते हुए सूर्यकी भाँति कर्णकी ओर देख भी नहीं सकते। जैसे शरद्ऋतुके निर्मल आकाशमें सूर्य अपनी सहस्रों किरणें बिखेरता है, उसी प्रकार कर्ण युद्धमें अपने बाणोंका जाल-सा बिछा देता है ॥ २६-२७ ॥

तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन् मुहुः।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥

जैसे वर्षाकालमें बरसनेवाला मेघ पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार दिव्यास्त्ररूपी जल प्रदान करनेवाला कर्णरूपी मेघ बारंबार बाणधाराकी वर्षा करता रहता है ॥ २८ ॥

त्रिदशैरपि चास्मद्भिः शरवर्षं समन्ततः।
अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥ २९ ॥

चारों ओर बाणोंकी वृष्टि करके शत्रुओंके शरीरोंसे रक्त और मांस बहानेवाले देवता भी कर्णको परास्त नहीं कर सकते॥

कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! कर्ण कवच और कुण्डलसे हीन तथा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे शून्य होकर अब साधारण मनुष्यके समान हो गया है ॥ ३० ॥

एको हि योगोऽस्य भवेद् वधाय
छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम्।
कृच्छ्रं प्राप्तं रथचक्रे विमग्ने
हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥

इतनेपर भी इसके वधका एक ही उपाय है। कोई छिद्र प्राप्त होनेपर जब वह असावधान हो, तुम्हारे साथ युद्ध होते समय जब कर्णके रथका पहिया (शापवश) धरतीमें धँस जाय और वह संकटमें पड़ जाय, उस समय तुम पूर्ण सावधान हो मेरे संकेतपर ध्यान देकर उसे पहले ही मार डालना॥

न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्य-
मप्येकवीरो बलभित् सवज्रः।
जरासंधश्चेदिराजो महात्मा
महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२ ॥
एकैकशो निहताः सर्व एते
योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव।

अन्यथा जब वह युद्धके लिये अस्त्र उठा लेगा, उस समय उस अजेय वीर कर्णको त्रिलोकीके एकमात्र शूरवीर वज्रधारी इन्द्र भी नहीं मार सकेंगे। मगधराज जरासंध, महामनस्वी चेदिराज शिशुपाल और निषादजातीय महाबाहु एकलव्य—इन सबको मैंने ही तुम्हारे हितके लिये विभिन्न उपायोंद्वारा एक-एक करके मार डाला है ॥ ३२½ ॥

अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा
हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः।
अलायुधः परचक्रावमर्दी
घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३३ ॥

इनके सिवा हिडिम्ब, किर्मीर और बक आदि दूसरे-दूसरे राक्षसराज, शत्रुदलका संहार करनेवाला अलायुध और भयंकर कर्म करनेवाला वेगशाली घटोत्कच भी तुम्हारे हितके लिये ही मारे और मरवाये गये हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षे ऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय घटोत्कचका वध होनेपर श्रीकृष्णका हर्षविषयक एक सौ असीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८० ॥

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वध करनेका कारण बताना

अर्जुन उवाच

कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन।
जरासंधप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥

अर्जुनने पूछा—जनार्दन ! आपने हमलोगोंके हितके लिये कैसे किन-किन उपायोंसे जरासंध आदि राजाओंका वध कराया है ? ॥ १ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

जरासंधश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयंकराः ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! जरासंध, शिशुपाल और महाबली एकलव्य यदि ये पहले ही मारे न गये होते तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद् रथसत्तमान्।
तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥

दुर्योधन उन श्रेष्ठ रथियोंसे अपनी सहायताके लिये अवश्य प्रार्थना करता और वे हमसे सर्वदा द्वेष रखनेके कारण निश्चय ही कौरवोंका पक्ष लेते ॥ ३ ॥

ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः।
धार्तराष्ट्रीं चमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥

वे वीर महाधनुर्धर, अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा दृढ़तापूर्वक युद्ध करनेवाले थे; अतः दुर्योधनकी सारी सेनाकी देवताओंके समान रक्षा कर सकते थे ॥ ४ ॥

सूतपुत्रो जरासंधश्चेदिराजो निषादजः।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥

सूतपुत्र कर्ण, जरासंध, चेदिराज शिशुपाल और निषादनन्दन एकलव्य—ये चारों मिलकर यदि दुर्योधनका पक्ष लेते तो इस पृथ्वीको अवश्य ही जीत लेते ॥ ५ ॥

योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनंजय।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥

धनंजय ! वे जिन उपायोंसे मारे गये हैं, उन्हें बतलाता हूँ, मुझसे सुनो। बिना उपाय किये तो उन्हें युद्धमें देवता भी नहीं जीत सकते थे ॥ ६ ॥

एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां सुरवाहिनीम्।
योधयेत् समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥

कुन्तीनन्दन ! उनमेंसे अलग-अलग एक-एक वीर ऐसा था, जो लोकपालोंसे सुरक्षित समस्त देवसेनाके साथ समराङ्गणमें अकेला ही युद्ध कर सकता था ॥ ७ ॥

जरासंधो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ॥ ८ ॥

एक समयकी बात है, रोहिणीनन्दन बलरामजीने युद्धमें जरासंधको पछाड़ दिया था। इससे कुपित होकर जरासंधने हमलोगोंके वधके लिये अपनी सर्वघातिनी गदाका प्रहार किया ॥ ८ ॥

सीमन्तमिव कुर्वाणा नभसः पावकप्रभा।
अदृश्यतापतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाशनिः ॥ ९ ॥

अग्निके समान प्रज्वलित वह गदा इन्द्रके चलाये हुए वज्रकी भाँति आकाशमें सीमन्त-रेखा-सी बनाती हुई वहाँ गिरती दिखायी दी ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १० ॥

वहाँ गिरती हुई उस गदाको देखते ही उसके प्रतिघात (निवारण) के लिये रोहिणीनन्दन बलरामजीने स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रका प्रयोग किया ॥ १० ॥

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद् भुवि।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥

उस अस्त्रके वेगसे प्रतिहत होकर वह गदा पृथ्वीदेवीको विदीर्ण करती और पर्वतोंको कँपाती हुई-सी भूतलपर गिर पड़ी ॥ ११ ॥

तत्र सा राक्षसी घोरा जरानाम्नी सुविक्रमा।
संदधे सा हि संजातं जरासंधमरिंदमम् ॥ १२ ॥

जिस स्थानपर गदा गिरी, वहाँ उत्तम बल-पराक्रमसे सम्पन्न जरा नामक एक भयंकर राक्षसी रहती थी। उसीने जन्मके पश्चात् शत्रुदमन जरासंधके शरीरको जोड़ा था॥१२॥

द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक् पृथक्।
जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥

उसका आधा-आधा शरीर अलग-अलग दो माताओंके पेटसे पैदा हुआ था। जराने उसे जोड़ा था; इसीलिये उसका नाम जरासंध हुआ ॥ १३ ॥

सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥

पार्थ ! भूमिके भीतर रहनेवाली वह राक्षसी उस गदासे तथा स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रके आघातसे पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारी गयी ॥ १४ ॥

विनाभूतः स गदया जरासंधो महामृधे।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनंजय ॥ १५ ॥

धनंजय ! उस महासमरमें जरासंध बिना गदाके हो गया था; इसीलिये तुम्हारे देखते-देखते भीमसेनने उसे मार डाला ॥ १५ ॥

यदि हि स्याद् गदापाणिर्जरासंधः प्रतापवान्।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥

नरश्रेष्ठ ! यदि प्रतापी जरासंधके हाथमें वह गदा होती तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसे युद्धमें मार नहीं सकते थे ॥ १६ ॥

त्वद्धितार्थं च नैषादिरङ्गुष्ठेन वियोजितः।
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥

तुम्हारे हितके लिये ही द्रोणाचार्यने सत्यपराक्रमी एकलव्यका आचार्यत्व करके छलपूर्वक उसका अँगूठा कटवा दिया था ॥ १७ ॥

स तु बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८ ॥

सुदृढ़ पराक्रमसे सम्पन्न अत्यन्त अभिमानी एकलव्य जब हाथोंमें दस्ताने पहनकर वनमें विचरता, उस समय दूसरे परशुरामके समान जान पड़ता था ॥ १८ ॥

एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥

कुन्तीकुमार ! यदि एकलव्यका अँगूठा सुरक्षित होता तो देवता, दानव, राक्षस और नाग—ये सब मिलकर भी युद्धमें उसे कभी परास्त नहीं कर सकते थे ॥ १९ ॥

किमु मानुषमात्रेण शक्यःस्यात् प्रतिवीक्षितुम्।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥

फिर कोई मनुष्यमात्र तो उसकी ओर देख ही कैसे सकता था ! उसकी मुट्ठी मजबूत थी। वह अस्त्र-विद्याका विद्वान् था और सदा दिन-रात बाण चलानेका अभ्यास करता था ॥ २० ॥

त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥

तुम्हारे हितके लिये मैंने ही युद्धके मुहानेपर उसे मार डाला था। पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल तो तुम्हारी आँखोंके सामने ही मारा गया था ॥ २१ ॥

स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वसुरासुरैः।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया।

वह भी संग्राममें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंद्वारा जीता नहीं जा सकता था। नरव्याघ्र ! मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये और शिशुपाल एवं अन्य देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये ही तुम्हारे साथ इस जगत्‌में अवतीर्ण हुआ हूँ॥

हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥ २३ ॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः ।

हिडिम्ब, बक और किर्मीर—ये रावणके समान बलवान् थे और ब्राह्मणों तथा यज्ञोंका विनाश किया करते थे। इन तीनोंको भीमसेनने मार गिराया है॥ २३½ ॥

हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ॥ २४ ॥
हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः ।

मायावी अलायुध घटोत्कचके हाथसे मारा गया है और घटोत्कचको भी मैंने ही युक्ति लगाकर कर्णकी चलायी हुई शक्तिसे मरवा दिया है॥ २४½ ॥

यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या महामृधे ॥२५॥
मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः ।

यदि महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिद्वारा भीमसेनपुत्र घटोत्कचको नहीं मारता तो एक दिन मुझे उसका वध करना पड़ता॥ २५½ ॥

मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ २६ ॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः ।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः ॥ २७ ॥

तुमलोगोंका प्रिय करनेकी इच्छासे ही मैंने इसे पहले नहीं मारा था। यह ब्राह्मणों और यज्ञोंसे द्वेष रखनेवाला तथा धर्मका लोप करनेवाला पापात्मा राक्षस था; इसीलिये इसे मरवा दिया है॥ २६-२७ ॥

व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयानघ ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८ ॥

निष्पाप पाण्डुनन्दन ! इसी उपायसे मैंने इन्द्रकी दी हुई शक्ति भी कर्णके हाथसे दूर कर दी है। धर्मका लोप करनेवाले सभी प्राणी मेरे वध्य हैं॥ २८ ॥

धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया ।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा ॥ २९ ॥
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ।

धर्मकी स्थापनाके लिये ही मैंने यह अटल प्रतिज्ञा कर रक्खी है, मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, जहाँ वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, लज्जा, श्री, धृति और क्षमाका निवास है, वहीं मैं सदा सुखपूर्वक रहता हूँ॥ २९½ ॥

न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ ३० ॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि ।

तुम्हें वैकर्तन कर्णके विषयमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम उसका सामना कर सकोगे॥ ३०½ ॥

सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥ ३१ ॥
तस्यापि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव ।

पाण्डुनन्दन ! युद्धमें दुर्योधनका भी वध भीमसेन करेंगे। उसके वधका उपाय भी मैं तुम्हें बताऊँगा॥ ३१½ ॥

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥ ३२ ॥
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश ।

शत्रुओंकी सेनामें यह भयंकर गर्जनाका शब्द बढ़ता जा रहा है और तुम्हारे सैनिक दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं॥

लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव ।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः ॥ ३३ ॥

कौरवोंका निशाना अचूक हो रहा है। वे तुम्हारी सेनाका विनाश कर रहे हैं। इधर ये योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य तुम्हारे सैनिकोंको दग्ध किये देते हैं॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रि-युद्धके समय श्रीकृष्णका कथनविषयक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८१ ॥

द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णने अर्जुनपर शक्ति क्यों नहीं छोड़ी, इसके उत्तरमें संजयका धृतराष्ट्रसे और श्रीकृष्णका सात्यकिसे रहस्ययुक्त कथन

धृतराष्ट्र उवाच

एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा ।
कस्मात् सर्वान् समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥१॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! कर्णके पास जो शक्ति थी, वह यदि एक ही वीरका वध करके निष्फल हो जानेवाली थी तो उसने सबको छोड़कर अर्जुनपर ही उसका प्रहार क्यों नहीं किया ?॥ १ ॥

तस्मिन् हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः ।
एकवीरवधे कस्माद् युद्धे न जयमादधे ॥ २ ॥

अर्जुनके मारे जानेपर समस्त सृंजय और पाण्डव अपने

आप नष्ट हो जाते । अतः एक वीर अर्जुनका ही वध करके उसने युद्धमें क्यों नहीं विजय प्राप्त की ? ॥ २ ॥

आहूतो न निवर्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥

अर्जुनका तो यह महान् व्रत ही है कि युद्धमें किसीके बुलानेपर मैं पीछे नहीं लौट सकता; ऐसी दशामें सूतपुत्र कर्णको स्वयं ही अर्जुनकी खोज करनी चाहिये थी ॥ ३ ॥

ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया ।
जघान न वृषः कस्मात् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय ! इस प्रकार अर्जुनको द्वैरथ-युद्धमें लाकर धर्मात्मा कर्णने इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे उन्हें क्यों नहीं मार डाला ? यह मुझे बताओ ॥ ४ ॥

नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः ।
शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥

निश्चय ही मेरा पुत्र दुर्योधन बुद्धिहीन और असहाय है । शत्रुओंने उसे ठग लिया । अब वह पापी अपने शत्रुओंपर कैसे विजय पा सकता है ? ॥ ५ ॥

या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम् ।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६ ॥

जो इसकी सबसे बड़ी शक्ति और विजयका आधार-स्तम्भ थी, उस दिव्य शक्तिको घटोत्कचपर चलवाकर श्रीकृष्णने व्यर्थ कर दिया ॥ ६ ॥

कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत् फलं बलीयसा ।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥

जैसे कोई बलवान् पुरुष लुंजे (ठूंटे) के हाथका फल छीन ले, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिको घटोत्कचपर चलवाकर अन्यत्रके लिये निष्फल कर दिया ॥

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतो-
स्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः ।
मन्ये विद्वन् वासुदेवस्य तद्वद्
युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥

विद्वन् ! जैसे सूअर और कुत्तेके आपसमें लड़नेपर उन दोनोंमेंसे किसीकी भी मृत्यु हो जाय तो चाण्डालको लाभ ही होता है, उसी प्रकार कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें मैं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका ही लाभ हुआ मानता हूँ ॥ ८ ॥

घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं
परो लाभः स भवेत् पाण्डवानाम् ।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्
तथापि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥ ९ ॥

घटोत्कच यदि कर्णको मार देगा तो पाण्डवोंको बहुत बड़ा लाभ होगा और यदि वैकर्तन कर्ण घटोत्कचको मार डालेगा तो भी इन्द्रकी दी हुई शक्तिका नाश हो जानेसे उनका ही प्रयोजन सिद्ध होगा ॥ ९ ॥

इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद् विचिन्त्य
घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे ।
अघातयद् वासुदेवो नृसिंहः
प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां हितं च ॥ १० ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अपनी बुद्धिसे यही सोचकर पाण्डवोंका प्रिय तथा हित करते हुए युद्धमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा घटोत्कचको मरवा दिया ॥ १० ॥

संजय उवाच

एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः ।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
अमोघाया विघातार्थं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्ण भी उस शक्तिसे अर्जुनका ही वध करना चाहता था । उसके इस अभिप्रायको जानकर परम बुद्धिमान् मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिको नष्ट करनेके लिये ही कर्णके साथ द्वैरथ युद्धमें उस समय महापराक्रमी राक्षसराज घटोत्कचको लगाया । महाराज ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका ही फल है । ११-१२ ।

तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह ।
न रक्षेद् यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! यदि श्रीकृष्ण महारथी कर्णसे कुन्तीकुमार अर्जुनकी रक्षा न करते तो हमलोग उसी समय कृतकार्य हो गये होते ॥ १३ ॥

साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद् भुवि ।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥

महाराज धृतराष्ट्र ! यदि योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण न हों तो अर्जुन घोड़े, ध्वज और रथसहित निश्चय ही युद्धमें धराशायी हो जायँ ॥ १४ ॥

तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव ।
जयत्यभिमुखः शत्रून् पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके विभिन्न उपायोंसे श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित रहकर ही अर्जुन सम्मुख युद्धमें शत्रुओंपर विजय पाते हैं ॥ १५ ॥

स विशेषात् त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम् ।
हन्यात् क्षिप्रं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने विशेष प्रयत्न करके उस अमोघ शक्तिसे पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा की है, नहीं तो जैसे वज्र गिरकर वृक्षको भस्म कर देता है, उसी प्रकार वह शक्ति कुन्तीकुमार अर्जुनको शीघ्र ही नष्ट कर देती ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः।
यस्यैव समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मेरा पुत्र दुर्योधन सबका विरोधी और अपनेको ही सबसे अधिक बुद्धिमान् समझनेवाला है । उसके मन्त्री भी अच्छे नहीं हैं; इसीलिये अर्जुनके वध और विजय-लाभका यह अमोघ उपाय उसके हाथसे निकल गया है ॥ १७ ॥

स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
न मुक्तवान् कथं सूतताममोघां धनंजये ॥ १८ ॥

सूत ! समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण तो बड़ा बुद्धिमान् है; उसने स्वयं ही उस अमोघ शक्तिको अर्जुनपर कैसे नहीं छोड़ा ? ॥ १८ ॥

तवापि समतिक्रान्तमेतद् गावल्गणे कथम्।
एतमर्थं महाबुद्धे यत् त्वया नावबोधितः ॥ १९ ॥

परम बुद्धिमान् गवल्गणकुमार ! तुम्हारे ध्यानसे यह बात कैसे निकल गयी कि तुमने कर्णको इसके विषयमें कुछ नहीं समझाया ॥ १९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥ २० ॥
श्वः सर्वसैन्यान्युत्सृज्य जहि कर्ण धनंजयम्।
प्रेष्यवत् पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥

संजयने कहा—राजन् ! प्रतिदिन रातको दुर्योधन, शकुनि और दुःशासनका तथा मेरा भी कर्णसे यही आग्रह रहता था कि 'कर्ण ! कल सबेरे तुम सारी सेनाओंको छोड़कर अर्जुनको मार डालो । फिर तो पाण्डवों और पाञ्चालोंका हम भृत्योंके समान उपभोग करेंगे ॥ २०-२१ ॥

अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः।
स्थापयेद् यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम्॥२२॥

'यदि ऐसा सोचो कि अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण दूसरे किसी पाण्डवको युद्धके लिये खड़ा कर लेंगे तो श्रीकृष्णको ही मार डालो ॥ २२ ॥

कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः।
शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २३ ॥

'श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंकी जड़ हैं, अर्जुन ऊपरके तनेके समान हैं, अन्य कुन्तीपुत्र शाखाएँ हैं तथा पाञ्चाल सैनिक पत्तोंके समान हैं ॥ २३ ॥

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २४ ॥

'श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके आश्रय, बल और रक्षक हैं। जैसे नक्षत्रोंके परम आश्रय चन्द्रमा हैं, उसी प्रकार इन पाण्डवोंका सबसे बड़ा सहारा श्रीकृष्ण हैं ॥ २४ ॥

तस्मात् पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५ ॥

'अतः सूतनन्दन ! तुम पत्तों, डालियों और तनेको छोड़कर जड़को ही काट दो । सर्वत्र और सदा श्रीकृष्णको ही पाण्डवोंकी जड़ समझो' ॥ २५ ॥

हन्याद् यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम्।
कृत्स्ना वसुमती राजन् वशे तस्य न संशयः ॥ २६ ॥

राजन् ! यदि कर्ण यादवनन्दन श्रीकृष्णको मार डालता, तो यह सारी पृथ्वी उसके वशमें हो जाती, इसमें संशय नहीं है॥

यदि हि स निहतः शयीत भूमौ
यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा
सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २७ ॥

नरेन्द्र ! यदि यदुकुल और पाण्डवोंको आनन्दित करनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण उस शक्तिसे मारे जाकर रणभूमिमें सो जाते, तो पर्वत, समुद्र और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी आपके वशमें आ जाती ॥ २७ ॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय कर लेनेके बाद भी जब वह युद्धके समय सदा सजग रहनेवाले अप्रमेयस्वरूप देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके समीप जाता तो उसपर मोह छा जाता था ॥ २८ ॥

अर्जुनं चापि राधेयात् सदा रक्षति केशवः।
न ह्येनमैच्छत् प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको सदा राधानन्दन कर्णसे बचाये रखते थे । उन्होंने रणभूमिमें अर्जुनको सूतपुत्र कर्णके सम्मुख खड़ा करनेकी कभी इच्छा नहीं की ॥ २९ ॥

अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ ३० ॥

प्रभो ! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अन्यान्य महारथियोंको कर्णके पास इसलिये भेजा करते थे कि किसी प्रकार उस अमोघ शक्तिको व्यर्थ कर दूँ॥

यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात् कृष्णो महामनाः।
आत्मानं स कथं राजन् न रक्षेत् पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥

राजन् ! जो महामनस्वी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण कर्णसे अर्जुनकी इस प्रकार रक्षा करते हैं, वे अपनी रक्षा कैसे नहीं करेंगे ? ॥ ३१ ॥

परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिंदमम्।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥

मैं भलीभाँति सोच-विचारकर देखता हूँ तो तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर उपलब्ध नहीं होता, जो शत्रुओंका दमन करनेवाले चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णको जीत सके ॥ ३२ ॥

ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर रथियोंमें सिंहके समान शूरवीर सत्यपराक्रमी महारथी सात्यकिने महाबाहु श्रीकृष्णसे कर्णके विषयमें इस प्रकार प्रश्न किया—॥ ३३ ॥

अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चामितविक्रमा ।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा ॥ ३४ ॥

'प्रभो ! कर्णको उस शक्तिके प्रभावपर विश्वास तो था ही । वह अमित पराक्रम कर दिखानेवाली दिव्य शक्ति उसके हाथमें मौजूद भी थी, तथापि सूतपुत्रने अर्जुनपर उसका प्रयोग कैसे नहीं किया ?' ॥ ३४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः ।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम ।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥
ऋते महारथात् कर्ण कुन्तीपुत्राद् धनंजयात् ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सात्यके ! दुःशासन, कर्ण, शकुनि और जयद्रथ—ये दुर्योधनको आगे रखकर सदा गुप्त मन्त्रणा करते और कर्णको यह सलाह देते थे कि 'रणभूमिमें अनन्त पराक्रम प्रकट करनेवाले, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण ! तुम कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसीपर इस शक्तिको न छोड़ना ॥ ३५-३६½॥

स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥ ३७ ॥
तस्मिन् विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३८ ॥

'क्योंकि देवताओंमें इन्द्रके समान उन पाण्डवोंमें अर्जुन ही सबसे अधिक यशस्वी हैं । अर्जुनके मारे जानेपर सृंजयोंसहित पाण्डव मुखस्वरूप अग्निसे हीन देवताओंके समान मृतप्राय हो जायँगे' ॥ ३७-३८ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव ।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥

शिनिप्रवर ! कर्णने वैसा ही करनेकी उनके सामने प्रतिज्ञा भी की थी । कर्णके हृदयमें नित्य निरन्तर गाण्डीवधारी अर्जुनके वधका संकल्प उठता रहता था ॥ ३९ ॥

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर ।
ततो नावासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यके ! परंतु मैं ही राधापुत्र कर्णको मोहित किये रहता था; इसीलिये श्वेतवाहन अर्जुनपर उसने वह शक्ति नहीं छोड़ी ॥ ४० ॥

फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम् ।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ४१ ॥

वीरवर ! वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युस्वरूप है, इस चिन्तामें निरन्तर डूबे रहनेके कारण न तो मुझे नींद आती थी और न मेरे मनमें कभी हर्षका उदय होता था ॥ ४१ ॥

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव ।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनंजयम् ॥ ४२ ॥

शिनिवंशशिरोमणे ! वह शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी गयी, यह देखकर आज मैं यह समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुखसे निकल आये हैं ॥ ४२ ॥

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा ।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४३ ॥

मुझे युद्धमें अर्जुनकी रक्षा जितनी आवश्यक प्रतीत होती है, उतनी पिता, माता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी रक्षा भी नहीं प्रतीत होती ॥ ४३ ॥

त्रैलोक्यराज्याद् यत् किंचिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम् ।
नेच्छेयं सात्वताहं तद् विना पार्थं धनंजयम् ॥ ४४ ॥

सात्यके ! तीनों लोकोंके राज्यसे भी बढ़कर यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी मैं कुन्तीनन्दन अर्जुनके बिना नहीं पाना चाहता ॥ ४४ ॥

अतः प्रहर्षः सुमहान् युयुधानाद्य मेऽभवत् ।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनंजयम् ॥ ४५ ॥

युयुधान ! इसीलिये जैसे कोई मरकर लौट आया हो उसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनको देखकर आज मुझे बड़ा भारी हर्ष हुआ था ॥ ४५ ॥

अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः ।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४६ ॥

इसी उद्देश्यसे मैंने युद्धमें कर्णका सामना करनेके लिये उस राक्षसको भेजा था । उसके सिवा दूसरा कोई रात्रिके समय समराङ्गणमें कर्णको पीड़ित नहीं कर सकता था ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः ।
धनंजयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अर्जुनके हितमें संलग्न और उनके प्रिय साधनमें निरन्तर तत्पर रहनेवाले भगवान् देवकीनन्दनने उस समय सात्यकिसे यह बात कही थी ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका पश्चात्ताप, संजयका उत्तर एवं राजा युधिष्ठिरका शोक और भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासद्वारा उसका निवारण

धृतराष्ट्र उवाच

कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
अपनीतं महत् तात तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे ।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २ ॥
सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा ।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वापि संजय ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र बोले—तात संजय ! कर्ण, दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनिका तथा विशेषतः तुम्हारा इस विषयमें महान् अन्याय है । यदि तुम लोग जानते थे कि यह शक्ति रणभूमिमें सदा किसी एक ही वीरको मार सकती है तथा इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी न तो इसे रोक सकते हैं और न इसका आघात ही सह सकते हैं, तब तुम्हारे सुझानेसे युद्ध आरम्भ होनेपर कर्णने पहले ही देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अथवा अर्जुनपर वह शक्ति क्यों नहीं छोड़ी ? ॥ १–३ ॥

संजय उवाच

संग्रामाद् विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते ।
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ॥ ४ ॥
प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा ।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥

संजयने कहा—प्रजानाथ ! कुरुकुलश्रेष्ठ ! प्रतिदिन संग्रामसे लौटनेपर रात्रिमें हमलोगोंकी यही सलाह हुआ करती थी कि 'कर्ण ! तुम कल सबेरा होते ही श्रीकृष्ण अथवा अर्जुनपर यह शक्ति चला देना' ॥ ४-५ ॥

ततः प्रभातसमये राजन् कर्णस्य दैवतैः ।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥ ६ ॥

परंतु राजन् ! प्रातःकाल आनेपर देवतालोग कर्ण तथा अन्य योद्धाओंके उस विचारको पुनः नष्ट कर देते थे ॥ ६ ॥

दैवमेव परं मन्ये यत् कर्णो हस्तसंस्थया ।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

मैं तो दैव (प्रारब्ध) को ही सबसे बड़ा मानता हूँ, जिससे कर्णने हाथमें आयी हुई शक्तिके द्वारा रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुन अथवा देवकीनन्दन श्रीकृष्णका वध नहीं किया ॥ ७ ॥

तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता ।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ८ ॥
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया ।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ९ ॥

कर्णके हाथमें स्थित हुई वह शक्ति कालरात्रिके समान शत्रुवधके लिये उद्यत थी; परंतु दैवके द्वारा बुद्धि मारी जानेके कारण देवमायासे मोहित हुए कर्णने इन्द्रकी दी हुई उस शक्तिको देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अथवा इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनपर उनके वधके लिये नहीं छोड़ा ॥ ८-९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च ।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! निश्चय ही तुमलोग दैवके द्वारा मारे गये थे । श्रीकृष्णकी अपनी बुद्धिसे वह इन्द्रकी शक्ति तिनकेके समान घटोत्कचका वध करके चली गयी ॥ १० ॥

कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः ।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥

अब तो मैं समझता हूँ कि उस दुर्नीतिके कारण कर्ण, मेरे सभी पुत्र तथा अन्य भूपाल यमलोकमें जा पहुँचे ॥ ११ ॥

भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा ॥ १२ ॥

अब घटोत्कचके मारे जानेपर कौरवों तथा पाण्डवोंमें पुनः जिस प्रकार युद्ध आरम्भ हुआ, उसीका मुझसे वर्णन करो ॥ १२ ॥

ये च तेऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
सृंजयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन् कथं रणम् ॥ १३ ॥

प्रहार करनेमें कुशल जिन सृंजयों और पाञ्चालोंने अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यपर धावा किया था, उन्होंने किस प्रकार संग्राम किया ? ॥ १३ ॥

सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ १४ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा तथा जयद्रथके वधसे कुपित हो जब द्रोणाचार्य आये और जीवनका मोह छोड़कर पाण्डव-सेनामें उसका मन्थन करते हुए प्रवेश करने लगे, उस समय जँभाई लेते हुए व्याघ्र तथा मुँह बाये हुए यमराजके समान बाणवर्षा करते हुए द्रोणाचार्यके सम्मुख पाण्डव और सृंजय योद्धा कैसे आ सके ? ॥ १४-१५ ॥

आचार्यं ये च तेऽरक्षन् दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वाकुर्वन् किमाहवे ॥ १६ ॥

तात ! अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य तथा दुर्योधन आदि जो महारथी रणभूमिमें आचार्य द्रोणकी रक्षा करते थे, उन्होंने वहाँ क्या किया ? ॥ १६ ॥

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समार्च्छन् मामका युद्धे कथं संजय शंस मे ॥ १७ ॥

संजय ! द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छावाले अर्जुन और भीमसेनपर युद्धस्थलमें मेरे सैनिकोंने किस प्रकार आक्रमण किया ? यह मुझे बताओ ॥ १७ ॥

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ १८ ॥

सिंधुराज जयद्रथके वधसे अमर्षमें भरे हुए कौरवों तथा घटोत्कचके मारे जानेसे अत्यन्त कुपित हुए पाण्डवोंने रात्रिमें किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १८ ॥

संजय उवाच

हते घटोत्कचे राजन् कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥ २० ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब रातमें कर्णके द्वारा राक्षस घटोत्कच मारा गया, आपके सैनिक हर्षमें भरकर युद्धकी इच्छासे गर्जना करते हुए वेगपूर्वक आक्रमण करने लगे तथा पाण्डवसेना मारी जाने लगी, उस समय प्रगाढ़ रजनीमें राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन एवं दुखी हो गये ॥ १९-२० ॥

अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः ।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥
हैडिम्बेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान् ।

उन महाबाहु नरेशने भीमसेनसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो ! तुम्हीं दुर्योधनकी सेनाको रोको । घटोत्कचके मारे जानेसे मेरे मनमें महान् मोह छा गया है' ॥ २१½ ॥

एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद् घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥

इस प्रकार भीमको आदेश देकर राजा युधिष्ठिर बारंबार सिसकते हुए अपने रथपर जा बैठे । उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । वे कर्णका पराक्रम देखकर घोर चिन्तामें डूब गये थे ॥ २२-२३ ॥

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा] व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत् त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ।

उन्हें इस प्रकार व्यथित देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'कुन्तीनन्दन ! भरतश्रेष्ठ ! आप दुःख न मानिये । आपके लिये मूढ़ मनुष्योंकी-सी यह व्याकुलता शोभा नहीं देती ॥ २४½ ॥

उत्तिष्ठ राजन् युद्ध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥ २५ ॥
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ।

'राजन् ! उठिये और युद्ध कीजिये । इस महासंग्रामका गुरुतर भार सँभालिये । प्रभो ! आपके घबरा जानेपर विजय मिलनेमें संदेह है' ॥ २५½ ॥

श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ।

श्रीकृष्णका कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दोनों हाथोंसे अपनी आँखें पोंछकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ २६½ ॥

विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥ २७ ॥
ब्रह्महत्या फलं तस्य यैः कृतं नावबुध्यते ।

'महाबाहो ! मुझे धर्मकी श्रेष्ठ गति विदित है । जो मनुष्य किसीके किये हुए उपकारको याद नहीं रखता, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ २७½ ॥

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥
बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ।

'जनार्दन ! जब हमलोग वनमें थे, उन दिनों महामनस्वी हिडिम्बाकुमारने बालक होनेपर भी हमारी बड़ी भारी सहायता की थी ॥ २८½ ॥

अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥ २९ ॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद् धनंजयः ॥ ३० ॥

'श्रीकृष्ण ! श्वेतवाहन अर्जुनको अस्त्र-प्राप्तिके लिये अन्यत्र गया हुआ जानकर महाधनुर्धर घटोत्कच काम्यकवनमें मेरे पास आया और जबतक अर्जुन लौट नहीं आये तबतक हमारे साथ ही रहा ॥ २९-३० ॥

गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स तारिताः ।

पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ ३१ ॥

'गन्धमादनकी यात्रामें उसने बड़े-बड़े संकटोंसे हमें बचाया है, पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदी जब थक गयीं तो उस महाकाय वीरने उन्हें अपनी पीठपर बिठाकर ढोया ॥ ३१ ॥

आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो।
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥

'प्रभो ! युद्धके आरम्भसे ही इसने मेरा बहुत सहयोग किया है, इसने महायुद्धमें मेरे लिये दुष्कर कर्म कर दिखाया है ॥ ३२ ॥

स्वभावाद् या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन।
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥

'जनार्दन ! सहदेवपर जो मेरा स्वाभाविक प्रेम है, वही उत्तम प्रेम राक्षसराज घटोत्कचपर भी रहा है ॥ ३३ ॥

भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥

'वार्ष्णेय ! वह महाबाहु मेरा भक्त था। मैं उसे प्रिय था और वह मुझे; इसीलिये उसके शोकसे संतप्त होकर मैं मोहको प्राप्त हो रहा हूँ ॥ ३४ ॥

पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः।
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥ ३५ ॥

'वृष्णिनन्दन ! देखिये, कौरव किस प्रकार मेरी सेनाओंको खदेड़ रहे हैं तथा महारथी द्रोण और कर्ण किस प्रकार युद्धमें प्रयत्नपूर्वक लगे हुए हैं ! ॥ ३५ ॥

निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत् सैन्यप्रमर्दितम्।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ ॥

'जैसे दो मतवाले हाथी नरकुलके विशाल वनको रौंद रहे हों, उसी प्रकार इस आधीरातके समय उनकी सेनाद्वारा यह पाण्डवसेना कुचल दी गयी है ॥ ३६ ॥

अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥

'माधव ! भीमसेनके बाहुबल और अर्जुनके विचित्र अस्त्र-कौशलका अनादर करके कौरव योद्धा अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ ३८ ॥

'ये द्रोण, कर्ण तथा राजा दुर्योधन युद्धमें राक्षस घटोत्कचका वध करके बड़े हर्षके साथ सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ३८ ॥

कथं वास्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन।
हैडिम्बिः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥

'जनार्दन ! हमारे और आपके जीते-जी हिडिम्बाकुमार घटोत्कच सूतपुत्रके साथ संग्राम करके मृत्युको कैसे प्राप्त हुआ ! ॥ ३९ ॥

कदर्थीकृत्य नः सर्वान् पश्यतः सव्यसाचिनः।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥

'श्रीकृष्ण ! हम सबकी अवहेलना करके सव्यसाची अर्जुनके देखते-देखते भीमसेनकुमार महाबली राक्षस घटोत्कच मारा गया है ॥ ४० ॥

यदाभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः।
नासीत् तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ४१ ॥

'श्रीकृष्ण ! धृतराष्ट्रके दुरात्मा पुत्रोंने जब युद्धमें अभिमन्युको मारा था, उस समय महारथी अर्जुन वहाँ उपस्थित नहीं थे ॥ ४१ ॥

निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना।
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥

'दुरात्मा जयद्रथने हम सब लोगोंको भी व्यूहके बाहर ही रोक लिया था। वहाँ अभिमन्युके वधमें पुत्रसहित द्रोणाचार्य ही कारण हुए थे ॥ ४२ ॥

उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम्।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥ ४३ ॥

'गुरु द्रोणाचार्यने स्वयं ही कर्णको अभिमन्युके वधका उपाय बताया था और जब वह तलवार लेकर परिश्रमपूर्वक युद्ध कर रहा था, उस समय उन्होंने ही उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये थे ॥ ४३ ॥

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत्।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥

'इस प्रकार जब वह संकटमें पड़ गया, तब कृतवर्माने क्रूर मनुष्यकी भाँति सहसा उसके घोड़ों तथा दोनों पार्श्व-रक्षकोंको मार डाला ॥ ४४ ॥

तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन्।
अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम।

'इसी प्रकार दूसरे महाधनुर्धरोंने सुभद्राकुमारको युद्धमें मार गिराया था। यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! अभिमन्युके वधमें जयद्रथका बहुत कम अपराध था, तो भी उस छोटेसे कारणको लेकर ही गाण्डीवधारी अर्जुनने जयद्रथको मार डाला है। यह कार्य मुझे अधिक प्रिय नहीं लगा है ॥ ४५½ ॥

यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत् कर्तुं हि पाण्डवैः॥ ४६ ॥
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः।

'यदि पाण्डवोंके लिये अपने शत्रुका वध करना न्याय-संगत है, तो युद्धभूमिमें सबसे पहले कर्ण और द्रोणाचार्यको ही मार डालना चाहिये; मेरा तो यही मत है ॥ ४६½ ॥

एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥ ४७ ॥
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः ।

'पुरुषोत्तम ! ये कर्ण और द्रोण ही हमारे दुःखोंके मूल कारण हैं । रणभूमिमें इन्हींका सहारा लेकर दुर्योधनका ढाढ़स बँधा हुआ है ॥ ४७½ ॥

यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥
तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ।

'जहाँ द्रोणाचार्यका वध होना चाहिये था तथा जहाँ सेवकोंसहित सूतपुत्र कर्णको मार गिराना चाहिये था, वहाँ महाबाहु अर्जुनने दूर रहनेवाले सिंधुराज जयद्रथका वध किया है ॥ ४८½ ॥

अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥

'मुझे तो अवश्य ही सूतपुत्र कर्णका दमन करना चाहिये । अतः वीर ! मैं स्वयं ही कर्णका वध करनेकी इच्छासे युद्धभूमिमें जाऊँगा । महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी सेनाके साथ युद्ध कर रहे हैं' ॥ ४९-५० ॥

एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्रध्माप्य भैरवम् ॥ ५१ ॥

ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर भयंकर शङ्ख बजाकर अपने विशाल धनुषकी टंकार करते हुए बड़ी उतावलीके साथ तुरत वहाँसे चल दिये ॥ ५१ ॥

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥ ५२ ॥
वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ।

तदनन्तर शिखण्डी, एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े तथा पाञ्चालों और प्रभद्रकोंकी सेना साथ ले उनसे घिरा हुआ शीघ्रतापूर्वक राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गया ॥ ५२½ ॥

ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान् दध्मुश्च दंशिताः ॥ ५३ ॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ।

तब पाञ्चालों और पाण्डवोंने युधिष्ठिरको आगे करके कवच आदिसे सुसज्जित हो डंके पीटे और शङ्ख बजाये ॥ ५३½ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनंजयम् ॥ ५४ ॥
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥

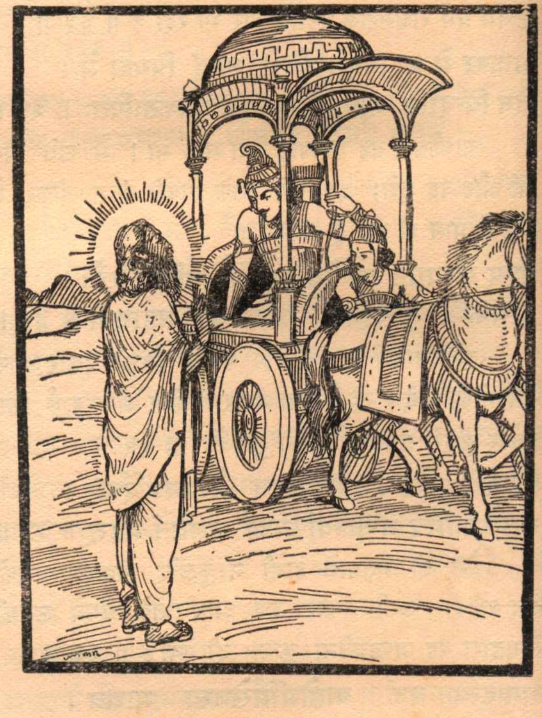
उस समय महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'ये राजा युधिष्ठिर क्रोधके आवेशसे युक्त हो सूतपुत्र कर्णका वध करनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े जा रहे हैं । इस समय इन्हें अकेले छोड़ देना उचित नहीं है' ॥ ५४-५५ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् ।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने शीघ्र ही घोड़ोंको हाँका और दूर जाते हुए राजाका अनुसरण किया ॥ ५६ ॥

तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसंकल्पं दह्यमानमिवाग्निना ॥ ५७ ॥
अभिगम्याब्रवीद् व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

धर्मराज युधिष्ठिरका संकल्प (विचार-शक्ति) शोकसे नष्ट-सा हो गया था । वे क्रोधकी आगमें जलते हुए-से जान पड़ते थे । उन्हें सूतपुत्रके वधकी इच्छासे सहसा जाते देख महर्षि व्यास उनके समीप प्रकट हो गये और इस प्रकार बोले ॥ ५७½ ॥



व्यास उवाच

कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ५८ ॥
सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्तिं रक्षितवान् हि सः ।

व्यासने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि संग्राममें कर्णका सामना करके भी अर्जुन अभी जीवित हैं; क्योंकि उसने उन्हींके वधकी इच्छासे अपने पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति रख छोड़ी थी ॥ ५८½ ॥

न चागाद् द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे ॥ ५९ ॥
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ।
वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद् युधिष्ठिर ।
ततो भवेत् ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥ ६१ ॥

उस महासमरमें कर्णके साथ द्वैरथयुद्ध करनेके लिये अर्जुन नहीं गये, यह बहुत अच्छा हुआ। ये दोनों वीर एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हैं; अतः युधिष्ठिर ! यदि ये सब प्रकारसे दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते तो फिर अपने अस्त्रोंके नष्ट होनेपर सूतनन्दन कर्ण पीड़ित हो समराङ्गणमें इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निश्चय ही अर्जुनपर चला देता। भरतश्रेष्ठ ! उस दशामें तुमपर और भयंकर विपत्ति टूट पड़ती ॥५९-६१॥

दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥

मानद ! यह हर्षकी बात है कि युद्धमें सूतपुत्र कर्णने उस राक्षसको ही मारा है। वास्तवमें इन्द्रकी शक्तिको निमित्त बनाकर कालने ही उसका वध किया है ॥ ६२ ॥

तवैव कारणाद् रक्षो निहतं तात संयुगे।
मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर।

तात ! भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे हितके लिये ही वह राक्षस युद्धमें मारा गया है; ऐसा समझकर न तो तुम किसीपर क्रोध करो और न मनमें शोकको ही स्थान दो। युधिष्ठिर ! इस जगत्‌के समस्त प्राणियोंकी अन्तमें यही गति होती है ॥६३½॥

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥
कौरवान् समरे राजन् प्रतियुध्यस्व भारत।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६५ ॥

भरतवंशी नरेश ! तुम अपने समस्त भाइयों तथा महामना भूपालोंके साथ जाकर समरभूमिमें कौरवोंका सामना करो। तात ! आजके पाँचवें दिन यह सारी पृथ्वी तुम्हारी हो जायगी ॥ ६४-६५ ॥

नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवानुचिन्तय।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥ ६६ ॥
सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः।

पुरुषसिंह पाण्डुनन्दन ! तुम सदा धर्मका ही चिन्तन करो तथा कोमलता (दयाभाव), तपस्या, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणोंका ही अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सेवन करो; क्योंकि जिस पक्षमें धर्म है, उसीकी विजय होती है ॥ ६६½ ॥

इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६७ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर महर्षि व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें व्यासवाक्यविषयक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८३ ॥

(द्रोणवधपर्व)

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

निद्रासे व्याकुल हुए उभयपक्षके सैनिकोंका अर्जुनके कहनेसे सो जाना और चन्द्रोदयके बाद पुनः उठकर युद्धमें लग जाना

संजय उवाच

व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
स्वयं कर्णवधाद् वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! व्यासजीके ऐसा कहनेपर वीर धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं कर्णका वध करनेके विचारसे हट गये ॥ १ ॥

घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम्।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

सूतपुत्रके द्वारा घटोत्कचके मारे जानेपर उस रातमें धर्मराज युधिष्ठिर दुःख और अमर्षके वशीभूत हो गये ॥२॥

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ ३ ॥

भीमसेनके द्वारा आपकी विशाल सेनाका निवारण होता देख उन्होंने धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'वीर ! तुम द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोको ॥ ३ ॥

त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात्।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥ ४ ॥

'तुम तो शत्रुओंको संताप देनेवाले हो और द्रोणका विनाश करनेके लिये ही बाण, कवच, खड्ग और धनुषसहित अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुए हो ॥ ४ ॥

अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथंचन।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥ ५ ॥
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः।

'अतः हर्षमें भरकर रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर धावा करो। तुम्हें किसी प्रकार भय नहीं होना चाहिये। जनमेजय, शिखण्डी तथा दुर्मुखपुत्र यशोधर—ये हर्ष और उत्साहमें भरकर चारों ओरसे द्रोणाचार्यपर धावा करें ॥ ५½ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनंजयः ॥ ७ ॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

'नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, पुत्रों और भाइयोंसहित द्रुपद और विराट, सात्यकि, केकय तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन—ये द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे वेगपूर्वक उनपर धावा बोल दें ॥ ६-७½ ॥

तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किंचन ॥ ८ ॥
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।

'इसी प्रकार हमारे समस्त रथी, हाथी-घोड़ोंकी जो कुछ भी सेना अवशिष्ट है वह और पैदल सैनिक—ये सभी रणभूमिमें महारथी द्रोणाचार्यको मार गिरावें' ॥ ८½ ॥

तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ॥ ९ ॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

पाण्डुनन्दन महात्मा युधिष्ठिरके इस प्रकार आदेश देनेपर वे सब वीर द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे वेगपूर्वक उनपर टूट पड़े ॥

आगच्छतस्तान् सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ १० ॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।

उन समस्त पाण्डव सैनिकोंको पूरे उद्योगके साथ सहसा आक्रमण करते देख शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने समरभूमिमें आगे बढ़कर उनका सामना किया ॥ १०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्ध इच्छन् द्रोणस्य जीवितम् ।

उस समय द्रोणाचार्यके जीवनकी रक्षा चाहते हुए राजा दुर्योधनने अत्यन्त कुपित हो पूरे प्रयत्नके साथ पाण्डवोंपर धावा किया ॥ ११½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥ १२ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।

तदनन्तर एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जते हुए पाण्डव तथा कौरव योद्धाओंमें पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ जितने वाहन और सैनिक थे, वे सभी थक गये थे ॥ १२½ ॥

निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥ १३ ॥
नाभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ।

महाराज! युद्धमें अत्यन्त थके हुए महारथी योद्धा निद्रासे अंधे हो रहे थे; अतः संग्राममें कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे ॥ १३½ ॥

त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका ॥ १४ ॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।

यह तीन पहरकी रात उनके लिये सहस्रों प्रहरोंकी रात्रिके समान घोर, भयानक एवं प्राणहारिणी प्रतीत होती थी ॥

वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।

वहाँ बाणोंकी चोट सहते और विशेषतः क्षत-विक्षत होते हुए निद्रान्ध सैनिकोंकी आधी रात बीत गयी ॥ १५½ ॥

सर्वे ह्यासन् निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥ १६ ॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।

उस समय आपकी और शत्रुओंकी सेनाके समस्त क्षत्रिय उत्साहहीन एवं दीनचित्त हो गये थे; उनके हाथोंसे अस्त्र और बाण गिर गये थे ॥ १६½ ॥

ते तदापारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।

वे उस समय अच्छी तरह युद्ध नहीं कर पा रहे थे, तो भी विशेषतः लज्जाशील होनेके कारण अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए अपनी सेना छोड़कर जा न सके ॥ १७½ ॥

अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ।

भारत! दूसरे बहुत-से सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर नींदसे अन्धे होकर सो रहे थे। कुछ लोग रथोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ लोग घोड़ोंपर ही सो गये थे ॥ १८½ ॥

निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥
तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम् ।

नरेश्वर! नींदसे बेसुध होनेके कारण वे किसी भी चेष्टाको समझ नहीं पाते थे और उन्हें दूसरे योद्धा समराङ्गणमें यमलोक भेज देते थे ॥ १९½ ॥

स्वप्नायमानांस्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥ २० ॥
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥ २१ ॥

दूसरे सैनिक शत्रुओंको स्वप्नमें पड़कर अत्यन्त बेसुध हुए देख उन्हें मार बैठते थे। कुछ लोग उस महासमरमें निद्रान्ध होकर नाना प्रकारकी बातें कहते हुए कभी अपने आपपर ही प्रहार कर बैठते थे, कभी अपने पक्षके ही लोगोंको मार डालते थे और कभी शत्रुओंका भी वध करते थे ॥

अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः ॥ २२ ॥

महाराज! हमारे पक्षके भी बहुत-से सैनिक शत्रुओंके साथ युद्ध करना है, ऐसा समझकर खड़े थे, परंतु नींदसे उनकी आँखें लाल हो गयी थीं ॥ २२ ॥

संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथा परान् ।
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥

कुछ शूरवीर निद्रान्ध होकर भी रणभूमिमें विचरते थे और उस दारुण अन्धकारमें शत्रुपक्षके शूरवीरोंका वध कर डालते थे ॥ २३ ॥

हन्यमानमथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २४ ॥

बहुत-से मनुष्य निद्रासे अत्यन्त मोहित हो जानेके कारण शत्रुओंकी ओरसे समरभूमिमें अपनेको जो मारनेकी चेष्टा होती थी, उसे समझ ही नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन् दिशः ॥ २५ ॥

उनकी ऐसी अवस्था जानकर पुरुषप्रवर अर्जुनने सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए उच्च स्वरसे इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्व एव सवाहनाः ।
तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २७ ॥

'सैनिको ! तुम सब लोग अपने वाहनोंसहित थक गये हो और नींदसे अन्धे हो रहे हो । इधर यह सारी सेना घोर अन्धकार और बहुत-सी धूलसे ढक गयी है । अतः यदि तुम ठीक समझो तो युद्ध बंद कर दो और दो घड़ीतक इस रणभूमिमें ही सो लो ॥ २६-२७ ॥

ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः ।
संसाधयिष्यथान्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥

'तत्पश्चात् चन्द्रोदय होनेपर विश्राम करनेके अनन्तर निद्रारहित हो तुम समस्त कौरव-पाण्डव योद्धा परस्पर पूर्ववत् संग्राम आरम्भ कर देना' ॥ २८ ॥

तद् वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशाम्पते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! धर्मात्मा अर्जुनका यह वचन समस्त धर्मज्ञोंको ठीक लगा । सारी सेनाओंने उसे पसंद किया और सब लोग परस्पर यही बात कहने लगे ॥ २९ ॥

चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥ ३० ॥

कौरव सैनिक 'हे कर्ण ! हे कर्ण ! हे राजा दुर्योधन !' इस प्रकार पुकारते हुए उच्चस्वरसे बोले—'आपलोग युद्ध बंद कर दें; क्योंकि पाण्डवसेना युद्धसे विरत हो गयी है' ॥

तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! जब अर्जुनने सब ओर इधर-उधर उच्चस्वरसे पूर्वोक्त प्रस्ताव उपस्थित किया, तब पाण्डवोंकी तथा आपकी सेना भी युद्धसे निवृत्त हो गयी ॥ ३१ ॥

तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ ३२ ॥

महात्मा अर्जुनके इस श्रेष्ठ वचनका सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और समस्त सैनिकोंने बड़े हर्षके साथ स्वागत किया ॥

तत् सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन् राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतवंशी नरेश ! भरतकुलभूषण ! अर्जुनके उस क्रूरता-शून्य वचनका आदर करके थकी हुई सारी सेनाएँ दो घड़ी तक सोती रहीं ॥ ३३ ॥

सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३४ ॥

भारत ! आपकी सेना विश्रामका अवसर पाकर सुखका अनुभव करने लगी । उसने वीर अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—॥ ३४ ॥

त्वयि वेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ॥ ३५ ॥

'महाबाहु निष्पाप अर्जुन ! तुममें वेद तथा अस्त्रोंका ज्ञान है । तुममें बुद्धि और पराक्रम है तथा तुममें धर्म एवं सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दया है ॥ ३५ ॥

यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! हमलोग तुम्हारी प्रेरणासे सुस्ताकर सुखी हुए हैं; इसलिये तुम्हारा कल्याण चाहते हैं । तुम्हें सुख प्राप्त हो । वीर ! तुम शीघ्र ही अपने मनको प्रिय लगनेवाले पदार्थ प्राप्त करो' ॥ ३६ ॥

इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन् विशाम्पते ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! इस प्रकार आपके महारथी नरश्रेष्ठ अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए निद्राके वशीभूत हो मौन हो गये ॥

अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे ।
गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ ॥ ३८ ॥
सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक् ॥ ३९ ॥

कुछ लोग घोड़ोंकी पीठोंपर, दूसरे रथोंकी बैठकोंमें, कुछ अन्य योद्धा हाथियोंपर तथा दूसरे बहुत-से सैनिक पृथ्वीपर ही सो रहे । कुछ लोग सभी प्रकारके आयुध लिये हुए थे । किन्हींके हाथोंमें गदाएँ थीं । कुछ लोग तलवार और फरसे लिये हुए थे तथा दूसरे बहुत-से मनुष्य प्रास और कवचसे सुशोभित थे । वे सभी अलग-अलग सो रहे थे ॥ ३८-३९ ॥

गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥ ४० ॥

नींदसे अंधे हुए हाथी सर्पोंके समान धूलमें सनी हुई सूँड़ोंसे लंबी-लंबी साँसें छोड़कर इस वसुधाको शीतल करने लगे ॥ ४० ॥

सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥ ४१ ॥

धरतीपर सोकर निःश्वास खींचते हुए गजराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो पर्वत बिखरे पड़े हों और उनमें रहनेवाले बड़े-बड़े सर्प लंबी साँसें छोड़ रहे हों ॥ ४१ ॥

समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विकृतां महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥

सोनेकी बागडोरमें बँधे हुए घोड़े अपने गर्दनके बालोंपर रथके जूए लिये टापोंसे खोद-खोदकर समतल भूमिको भी विषम बना रहे थे ॥ ४२ ॥

सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ ।
युद्धाद् विरम्य सुषुपुः श्रमेण महतान्विता ॥ ४३ ॥

राजेन्द्र ! वे रथोंमें जुते हुए ही चारों ओर सो गये । भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार घोड़े, हाथी और सैनिक भारी थकावटसे युक्त होनेके कारण युद्धसे विरत हो सो गये ॥ ४३ ॥

तत् तथा निद्रया भग्नमबोधं प्रास्वपद् भृशम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतम् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार निद्रासे बेसुध हुआ वह सैन्यसमूह गहरी नींदमें सो रहा था । वह देखनेमें ऐसा जान पड़ता था, मानो किन्हीं कुशल कलाकारोंने पटपर अद्भुत चित्र अङ्कित कर दिया हो ॥ ४४ ॥

ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः
परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां
कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ ४५ ॥

वे कुण्डलधारी तरुण क्षत्रिय परस्पर सायकोंकी मारसे सम्पूर्ण अङ्गोंमें क्षत-विक्षत हो हाथियोंके कुम्भस्थलोंसे सटकर ऐसे सो रहे थे, मानो कामिनियोंके कुचोंका आलिङ्गन करके सोये हों ॥ ४५ ॥

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् कामिनियोंके कपोलोंके समान श्वेतपीत वर्णवाले नयनानन्ददायी कुमुदनाथ चन्द्रमाने पूर्व दिशाको सुशोभित किया ॥ ४६ ॥

दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः
किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः
समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥

उदयाचलके शिखरपर चन्द्रमारूपी सिंहका उदय हुआ, जो पूर्व दिशारूपी कन्दरासे निकला था । वह किरणरूपी केसरोंसे प्रकाशित एवं पिङ्गलवर्णका था और अन्धकाररूपी गजराजोंके यूथको विदीर्ण कर रहा था ॥ ४७ ॥

हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः
स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः
प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८ ॥

भगवान् शंकरके वृषभ नन्दिकेश्वरके उत्तम अङ्गोंके समान जिसकी श्वेत कान्ति है, जो कामदेवके श्वेत पुष्पमय धनुषके समान पूर्णतः उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित होता है और नववधूकी मन्द मुसकानके सदृश सुन्दर एवं मनोहर जान पड़ता है; वह कुमुदकुल-बान्धव चन्द्रमा क्रमशः ऊपर उठकर आकाशमें अपनी चाँदनी छिटकाने लगा ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्ताद् भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभाः प्रभुः ॥ ४९ ॥

उस समय दो घड़ीके बाद शशचिह्नसे सुशोभित प्रभावशाली भगवान् चन्द्रमाने अपनी ज्योत्स्नासे नक्षत्रोंकी प्रभाको क्षीण करते हुए पहले अरुण कान्तिका दर्शन कराया ॥ ४९ ॥

अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ५० ॥

अरुण कान्तिके पश्चात् चन्द्रदेवने धीरे-धीरे सुवर्णके समान प्रभावाले विशाल किरण-जालका प्रसार आरम्भ किया ॥

उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥

फिर वे चन्द्रमाकी किरणें अपनी प्रभासे अन्धकारका निवारण करती हुई शनैः-शनैः सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और भूमण्डलमें फैलने लगीं ॥ ५१ ॥

ततो मुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥

तदनन्तर एक ही मुहूर्तमें समस्त संसार ज्योतिर्मय-सा हो गया । अन्धकारका कहीं नाम भी नहीं रह गया । वह अदृश्यभावसे तत्काल कहीं चला गया ॥ ५२ ॥

प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन् नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३ ॥

चन्द्रदेवके पूर्णतः प्रकाशित होनेपर जगत्में दिनका-सा उजाला हो गया । राजन् ! उस समय रात्रिमें विचरनेवाले कुछ प्राणी विचरण करने लगे और कुछ जहाँ-के-तहाँ पड़े रहे ॥

बोध्यमानं तु तत् सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥

नरेश्वर ! चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे सारी सेना उसी प्रकार जाग उठी, जैसे सूर्यरश्मियोंका स्पर्श पाकर कमलोंका

समूह खिल उठता है ॥ ५४ ॥

यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत्।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥

जैसे पूर्णिमाके चन्द्रमाका उदय होनेपर उससे प्रभावित होनेवाले महासागरमें ज्वार उठने लगता है, उसी प्रकार उस समय चन्द्रोदय होनेसे उस सारे सैन्यसमुद्रमें खलबली मच गयी ॥ ५५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥ ५६ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर इस जगत्में महान् जनसंहारके लिये परलोककी इच्छा रखनेवाले योद्धाओंका वह युद्ध पुनः आरम्भ हो गया ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय सेनाकी निद्राविषयक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८४ ॥

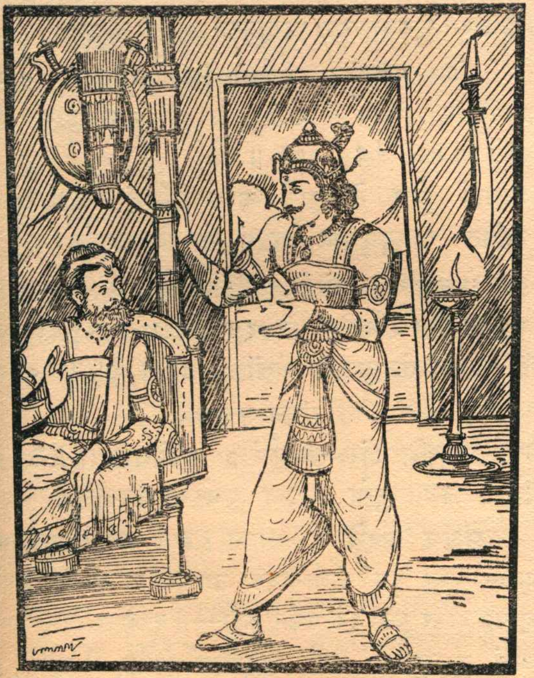
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ और द्रोणाचार्यका व्यंगपूर्ण उत्तर

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याब्रवीदिदम्।
अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनमें हर्षोत्साह और उत्तेजना पैदा करते हुए इस प्रकार कहा ॥ १ ॥



दुर्योधन उवाच

न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्ष्या विशेषतः ॥ २ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य ! युद्धमें विशेषतः वे शत्रु, जो लक्ष्य बेधनेमें कभी चूकते न हों, यदि थककर विश्राम ले रहे हों और मनमें ग्लानि भरी होनेसे युद्धविषयक उत्साह खो बैठे हों, उनके प्रति कभी क्षमा नहीं दिखानी चाहिये ॥

यत् तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥

इस समय जो हमने क्षमा की है—सोते समय शत्रुओंपर प्रहार नहीं किया है, वह केवल आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही हुआ है। इसका फल यह हुआ कि ये पाण्डव-सैनिक पूर्णतः विश्राम करके पुनः अत्यन्त प्रबल हो गये हैं ॥ ३ ॥

सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥ ४ ॥

हमलोग तेज और बलसे सर्वथा हीन हो गये हैं और वे पाण्डव आपसे सुरक्षित होनेके कारण बारंबार बढ़ते जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥

ब्रह्मास्त्र आदि जितने भी दिव्यास्त्र हैं, वे सब-के-सब विशेषरूपसे आपहीमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ५ ॥

न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

युद्ध करते समय आपकी समानता न तो पाण्डव, न हमलोग और न संसारके दूसरे धनुर्धर ही कर सकते हैं, यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ६ ॥

ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान् द्विजोत्तम !
सर्वास्त्रविद् भवान् हन्याद् दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः॥ ७ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! आप सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता हैं। अतः चाहें तो अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा देवता, असुर और गन्धर्वोंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंका विनाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है॥

स भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥

फिर भी आप इन पाण्डवोंको क्षमा करते जाते हैं। यद्यपि वे आपसे विशेष भयभीत रहते हैं, तो भी वे आपके शिष्य हैं, इस बातको सामने रखकर या मेरे दुर्भाग्यका विचार करके आप उनकी उपेक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

संजय उवाच

एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते।
समन्युरब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब इस प्रकार आपके पुत्रने द्रोणाचार्यको उत्साहित करते हुए उनका क्रोध बढ़ाया, तब वे कुपित होकर दुर्योधनसे इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥

स्थविरः सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥ १० ॥

'दुर्योधन! यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया, तथापि युद्धस्थलमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर तुम्हारी विजयके लिये चेष्टा करता हूँ, परंतु जान पड़ता है, अब तुम्हारी जीतकी इच्छासे मुझे नीच कार्य भी करना पड़ेगा ॥ १० ॥

अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः।
यद् भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ११ ॥
तद् वै कर्तास्मि कौरव्य वचनात् तव नान्यथा।

'ये सब लोग दिव्यास्त्रोंको नहीं जानते और मैं जानता हूँ, इसलिये मुझे उन्हीं अस्त्रोंद्वारा इन सबको मारना पड़ेगा। कुरुनन्दन! तुम शुभ या अशुभ जो कुछ भी कराना उचित समझो, वह तुम्हारे कहनेसे करूँगा; उसके विपरीत कुछ नहीं करूँगा ॥ ११½ ॥

निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥ १२ ॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे।

'राजन्! मैं सत्यकी शपथ खाकर अपने धनुषको छूते हुए कहता हूँ कि 'युद्धमें पराक्रम करके समस्त पाञ्चालोंका वध किये बिना कवच नहीं उतारूँगा' ॥ १२½ ॥

मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव।

'परंतु तुम जो कुन्तीकुमार अर्जुनको युद्धमें थका हुआ समझते हो, वह तुम्हारी भूल है। महाबाहु कुरुराज! मैं उनके पराक्रमका सच्चाईके साथ वर्णन करता हूँ, सुनो ॥

तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ १४ ॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम्।

'युद्धमें कुपित हुए सव्यसाची अर्जुनको न देवता, न गन्धर्व, न यक्ष और न राक्षस ही जीत सकते हैं ॥ १४½ ॥

खाण्डवे येन भगवान् प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ॥ १५ ॥
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना।

'उस महामनस्वी वीरने खाण्डववनमें वर्षा करते हुए भगवान् देवराज इन्द्रका सामना किया और अपने बाणोंद्वारा उन्हें रोक दिया ॥ १५½ ॥

यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः ॥ १६ ॥
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव।

'पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उस समय यक्ष, नाग, दैत्य तथा दूसरे भी जो बलका घमंड रखनेवाले वीर थे, उन सबको मार डाला था। यह बात तुम्हें मालूम ही है ॥ १६½ ॥

गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥ १७ ॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना।

'घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम्हें हरकर लिये जा रहे थे, उस समय सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने ही उन सबको परास्त किया और तुम्हें बन्धनसे छुड़ाया ॥ १७½ ॥

निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः।

'देवशत्रु निवातकवच नामक दानव, जिन्हें संग्राममें देवता भी नहीं मार सकते थे, उसी वीर अर्जुनसे पराजित हुए हैं ॥ १८½ ॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ १९ ॥
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम्।

'जिन पुरुषसिंह अर्जुनने हिरण्यपुरनिवासी सहस्रों दानवोंपर विजय पायी है, वे मनुष्योंद्वारा कैसे जीते जा सकते हैं? ॥ १९½ ॥

प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथाबलमिदं तव ॥ २० ॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते।

'प्रजानाथ! हमारे बहुत चेष्टा करनेपर भी पाण्डुपुत्र अर्जुनने जिस प्रकार तुम्हारी इस सेनाका संहार कर डाला है, यह सब तो तुम्हारी आँखोंके सामने ही है' ॥ २०½ ॥

संजय उवाच

तं तदाभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ॥ २१ ॥
द्रोणं तव सुतो राजन् पुनरेवेदमब्रवीत्।

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्यसे उस समय आपके पुत्रने कुपित होकर पुनः इस प्रकार कहा—॥ २१½ ॥

अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥ २२ ॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाद्य भारतीम्।
(तिष्ठ स त्वं महाबाहो नित्यं शिष्यः प्रियस्तव॥)

'आज मैं, दुःशासन, कर्ण और मेरे मामा शकुनि कौरव-सेनाको दो भागोंमें बाँटकर युद्धमें अर्जुनको मार डालेंगे। महाबाहो! आप चुपचाप खड़े रहिये, क्योंकि अर्जुन सदासे ही आपके प्रिय शिष्य हैं' ॥ २२½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्यने हँसते हुए-से उसकी बातका अनुमोदन किया और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर वे राजा दुर्योधनसे पुनः इस प्रकार बोले—॥

को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥
अक्षयं क्षपयेत् कश्चित् क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।

'नरेश्वर ! अपने तेजसे प्रज्वलित होनेवाले क्षत्रिय-शिरोमणि गाण्डीवधारी अविनाशी अर्जुनको कौन क्षत्रिय मार सकता है ? ॥ २४½ ॥

तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ॥ २५ ॥
नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।

'हाथमें धनुष धारण किये हुए अर्जुनको न तो धनाध्यक्ष कुबेर, न इन्द्र, न यमराज, न जलके स्वामी वरुण और न असुर, नाग एवं राक्षस ही नष्ट कर सकते हैं ॥ २५½ ॥

मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ॥ २६ ॥
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को व्रजेद् गृहान् ।

'भारत ! तुम जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बातें मूर्ख मनुष्य कहा करते हैं । भला, युद्धमें अर्जुनका सामना करके कौन कुशलपूर्वक घरको लौट सकता है ? ॥ २६½ ॥

त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद् वक्तुमिहेच्छसि।

'तुम निष्ठुर और पापपूर्ण विचार रखनेवाले हो; अतः तुम्हारे मनमें सबपर संदेह बना रहता है, इसीलिये तुम्हारे हितमें ही तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंको भी तुम ऐसी-ऐसी बातें सुनानेकी इच्छा रखते हो ॥ २७½ ॥

गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम्॥ २८ ॥
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ।
इमान् किं क्षत्रियान् सर्वान् घातयिष्यस्यनागसः॥२९॥

'तुम भी जाओ, अपने हितके लिये कुन्तीकुमार अर्जुनको शीघ्र ही मार डालो । तुम भी तो कुलीन क्षत्रिय हो । मैं आशा करता हूँ, तुममें भी युद्ध करनेकी शक्ति है ही, फिर इन सम्पूर्ण निरपराध क्षत्रियोंको क्यों व्यर्थ कटवाओगे ? ॥ २८-२९ ॥

त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् ।
एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे ।

'तुम इस वैरकी जड़ हो, अतः स्वयं ही जाकर अर्जुनका सामना करो, गान्धारीनन्दन ! ये कपटद्यूतके खिलाड़ी तुम्हारे मामा शकुनि भी बड़े बुद्धिमान् और क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं । ये ही युद्धमें अर्जुनपर चढ़ाई करें ॥ ३०½ ॥

एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत् कितवः शठः ॥ ३१ ॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ।

'ये पासे फेंकनेमें बड़े कुशल हैं । कुटिलता, शठता और धूर्तता तो इनमें कूट-कूटकर भरी है । ये जूएके खिलाड़ी तो हैं ही, छल-विद्याके भी अच्छे जानकार हैं । युद्धमें पाण्डवोंको अवश्य जीत लेंगे ॥ ३१½ ॥

त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥
असकृच्छून्यवन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥
पाण्डुपुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ।
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥ ३४ ॥

'दुर्योधन ! तुमने एकान्तस्थानके समान भरी सभामें धृतराष्ट्रके सुनते हुए कर्णके साथ अत्यन्त प्रसन्न-से होकर मोहवश बारंबार बहुत जोर देकर यह बात कही है कि 'तात ! मैं, कर्ण और भाई दुःशासन—ये तीन ही समरभूमिमें एक साथ होकर पाण्डवोंका वध कर डालेंगे ।' प्रत्येक सभामें ऐसी ही शेखी बघारते हुए तुम्हारी बात मैंने सुनी है ॥

अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग् भव तैः सह ।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ।

'अपनी उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करो । उन सबके साथ सत्यवादी बनो । ये तुम्हारे शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निर्भय होकर सामने खड़े हैं । क्षत्रियधर्मकी ओर दृष्टिपात करो । युद्धमें विजयकी अपेक्षा अर्जुनके हाथसे तुम्हारा वध भी हो जाय तो वह तुम्हारे लिये प्रशंसाकी बात होगी ॥ ३५½ ॥

दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥ ३६ ॥
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ।

'तुमने बहुत-सा दान कर लिया, भोग भोग लिये, स्वाध्याय भी कर लिया और मनमाना ऐश्वर्य भी पा लिया । अब तुम कृतकृत्य और देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणसे मुक्त हो गये; अतः डरो मत । पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ युद्ध करो' ॥ ३६½ ॥

इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत् तदा ॥ ३७ ॥

ऐसा कहकर द्रोणाचार्य समरभूमिमें जिस ओर शत्रुओं-की सेना थी, उधर ही लौट पड़े । तत्पश्चात् सेनाके दो विभाग करके उसी क्षण युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें द्रोणाचार्य और दुर्योधनका सम्भाषणविषयक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१८५॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३७½ श्लोक हैं)

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डव-वीरोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, द्रुपदके पौत्रों तथा द्रुपद एवं विराट आदिका वध, धृष्टद्युम्नकी प्रतिज्ञा और दोनों दलोंमें घमासान युद्ध

संजय उवाच

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! उस समय जब रात्रिके पंद्रह मुहूर्तोंमेंसे तीन मुहूर्त ही शेष रह गये थे, हर्ष तथा उत्साहमें भरे हुए कौरवों तथा पाण्डवोंका युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः ।
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥ २ ॥

तदनन्तर सूर्यके आगे चलनेवाले अरुणका उदय हुआ, जो चन्द्रमाकी प्रभाको छीनते हुए पूर्व दिशाके आकाशमें लालिमा-सी फैला रहे थे ॥ २ ॥

प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनारुणीकृतम् ।
तपनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलम् ॥ ३ ॥

प्राचीमें अरुणके द्वारा अरुण किया हुआ सूर्यदेवका मण्डल सुवर्णमय चक्रके समान सुशोभित होने लगा ॥ ३ ॥

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययाना-
न्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः ।
दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः
संध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥ ४ ॥

तब समस्त कौरव-पाण्डव सैनिक रथ, घोड़े तथा पालकी आदि सवारियोंको छोड़कर संध्या-वन्दनमें तत्पर हो सूर्यके सम्मुख हाथ जोड़कर वेदमन्त्रका जप करते हुए खड़े हो गये ॥ ४ ॥

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् ।
अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५ ॥

तदनन्तर सेनाके दो भागोंमें विभक्त हो जानेपर द्रोणाचार्यने दुर्योधनके आगे होकर सोमकों, पाण्डवों तथा पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ५ ॥

द्वैधीकृतान् कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान् सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥ ६ ॥

कौरव-सेनाको दो भागोंमें विभक्त देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! तुम अन्य शत्रुओंको बायें करके इन द्रोणाचार्यको दायें करो (और इनके बीचसे होकर आगे बढ़ चलो)' ॥ ६ ॥

स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनंजयः ।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ७ ॥

'अच्छा, ऐसा ही कीजिये' भगवान् श्रीकृष्णको यह अनुमति दे अर्जुन महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और कर्णके बायेंसे होकर निकल गये ॥ ७ ॥

अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरंजयः ।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णके इस अभिप्रायको जानकर शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले भीमसेनने युद्धके मुहानेपर पहुँचे हुए अर्जुनसे इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

भीमसेन उवाच

अर्जुनार्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद् वचो मम ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥

भीमसेन बोले—अर्जुन ! अर्जुन ! बीभत्सो ! मेरी यह बात सुनो । क्षत्राणी माता जिसके लिये बेटा पैदा करती है, उसे कर दिखानेका यह अवसर आ गया है ॥

अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे ।
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥ १० ॥

यदि इस अवसरके आनेपर भी तुम अपने पक्षका कल्याण-साधन नहीं करोगे तो तुमसे जिस शौर्य और पराक्रमकी सम्भावना की जाती है, उसके विपरीत तुम्हें पराक्रम-शून्य समझा जायगा और उस दशामें मानो तुम हमलोगोंपर अत्यन्त क्रूरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले सिद्ध होओगे ॥ १० ॥

सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणानृण्यमाप्नुहि ।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान् कुरु ॥ ११ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर ! तुम अपने पराक्रमद्वारा सत्य, लक्ष्मी, धर्म और यशका ऋण उतार दो । इन शत्रुओंको दाहिने करो और स्वयं बायें रहकर शत्रुसेनाको चीर डालो ॥ ११ ॥

संजय उवाच

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च ।
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण और भीमसेनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सव्यसाची अर्जुनने कर्ण और द्रोणको लाँघकर शत्रुसेनापर चारों ओरसे घेरा डाल दिया ॥ १२ ॥

तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १३ ॥
नाशक्नुवन् वारयितुं वर्धमानमिवानलम् ।

अर्जुन क्षत्रियशिरोमणि वीरोंको दग्ध करते हुए युद्धके मुहानेपर आ रहे थे। उस समय वे क्षत्रियप्रवर योद्धा जलती आगके समान बढ़नेवाले पराक्रमी अर्जुनको पराक्रम करके भी आगे बढ़नेसे रोक न सके ॥ १३½ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १४ ॥
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनंजयम्।

तदनन्तर दुर्योधन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि तीनों मिलकर कुन्तीपुत्र धनंजयपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥

तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥ १५ ॥
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत्।

राजेन्द्र ! तब उत्तम अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबके अस्त्रोंको नष्ट करके उन्हें बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ १५½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥
सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः।

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले जितेन्द्रिय अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका निवारण करके उन सबको दस-दस तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ १६½ ॥

उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान्।

उस समय धूलकी वर्षा ऊपर छा गयी। साथ ही बाणोंकी भी वृष्टि हो रही थी। इससे वहाँ घोर अन्धकार छा गया और बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ १७½ ॥

न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवत्।

उस अवस्थामें न आकाशका, न पृथ्वीका और न दिशाओंका ही पता लगता था। सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होकर वहाँ सब कुछ अन्धकार-मय हो गया था ॥ १८½ ॥

नैव ते न वयं राजन् प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥ १९ ॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः।

राजन् ! वे शत्रुसैनिक तथा हमलोग आपसमें कोई किसीको पहचान नहीं पाते थे। इसलिये नाम बतानेसे ही राजालोग एक दूसरेके साथ युद्ध करते थे ॥ १९½ ॥

विरथा रथिनो राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च।

महाराज ! रथीलोग रथहीन हो जानेपर परस्पर भिड़कर एक दूसरेके केश, कवच और बाँहें पकड़कर जूझने लगे ॥ २०½ ॥

हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥ २१ ॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः।

बहुत-से रथी घोड़े और सारथिके मारे जानेपर भयसे पीड़ित हो ऐसे निश्चेष्ट हो गये थे कि जीवित होते हुए भी वहाँ मरेके समान दिखायी देते थे ॥ २१½ ॥

हतान् गजान् समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥ २२ ॥
गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः।

कितने ही घोड़े और घुड़सवार मरे हुए पर्वताकार हाथियोंसे सटकर प्राणशून्य दिखायी देते थे ॥ २२½ ॥

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।

उधर द्रोणाचार्य उस युद्धस्थलसे उत्तर दिशाकी ओर जाकर धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित होते हुए रणभूमि-में खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥ २४ ॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते।

प्रजानाथ ! उन्हें युद्धके मुहानेसे हटकर एक किनारे आया देख उधर खड़ी हुई पाण्डवोंकी सेनाएँ थर-थर काँपने लगीं ॥ २४½ ॥

भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेरुर्मम्लुश्च भारत।

भारत ! तेजसे प्रज्वलित हुए-से श्रीसम्पन्न द्रोणाचार्यको वहाँ प्रकाशित होते देख शत्रु-सैनिक थर्रा उठे। कितने ही वहाँसे भाग चले और बहुतेरे मन उदास किये खड़े रहे ॥

आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २६ ॥
नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा।

जैसे दानव इन्द्रको नहीं जीत सकते, वैसे ही शत्रु-सैनिक शत्रुसेनाको ललकारते हुए मदस्रावी गजराजके समान द्रोणाचार्यको जीतनेका साहस नहीं कर सके ॥ २६½ ॥

केचिदासन् निरुत्साहाः केचित् क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥
विस्मिताश्चाभवन् केचित् केचिदासन्नमर्षिताः।

कुछ योद्धा लड़नेका उत्साह खो बैठे, कुछ मनस्वी वीर रोषमें भर गये, कितने ही योद्धा उनका पराक्रम देख आश्चर्यचकित हो उठे और कितने ही अमर्षके वशीभूत हो गये ॥ २७½ ॥

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन् नराधिपाः ॥ २८ ॥
अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः।

कोई-कोई नरेश हाथसे हाथ मलने लगे। कुछ क्रोधसे आतुर हो दाँतोंसे ओठ चबाने लगे ॥ २८½ ॥

व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चापरे भुजान् ॥ २९ ॥
अन्ये चान्वपतन् द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः।

कुछ लोग अपने आयुधोंको उछालने और धनुषकी

प्रत्यञ्चा खींचने लगे । दूसरे योद्धा अपनी भुजाओंको मसलने लगे तथा अन्य बहुत-से महातेजस्वी वीर अपने प्राणोंका मोह छोड़कर द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥२९½॥

पञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।

राजेन्द्र ! पाञ्चाल सैनिक द्रोणाचार्यके बाणोंद्वारा विशेषरूपसे पीड़ित हो अधिक वेदना सहते हुए भी समरभूमिमें डटे रहे ॥ ३०½ ॥

ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रययतू रणे ॥ ३१ ॥
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।

इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए रणदुर्जय द्रोणाचार्यपर राजा विराट और द्रुपदने एक साथ चढ़ाई की ॥

द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ।

प्रजानाथ ! तदनन्तर राजा द्रुपदके तीनों ही पौत्रों तथा चेदिदेशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने भी युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य-पर ही आक्रमण किया ॥ ३२½ ॥

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत् प्राणांस्ते हता न्यपतन् भुवि ।

तब द्रोणाचार्यने तीन तीखे बाणोंका प्रहार करके द्रुपदके तीनों पौत्रोंके प्राण हर लिये । वे तीनों मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३३½ ॥

ततो द्रोणोऽजयद् युद्धे चेदिकैकेयसृंजयान् ॥ ३४ ॥
मत्स्यांश्चैवाजयत् कृत्स्नान् भारद्वाजो महारथान् ।

तत्पश्चात् भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने युद्धमें चेदि, केकय, सृंजय तथा मत्स्य देशके सम्पूर्ण महारथियोंको परास्त कर दिया ॥ ३४½ ॥

ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५ ॥
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।

महाराज ! इसके बाद राजा द्रुपद और विराटने द्रोणाचार्यपर समराङ्गणमें क्रोधपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३५½ ॥

तं निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।

क्षत्रियमर्दन द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा उस बाण-वर्षाको नष्ट करके विराट और द्रुपद दोनोंको ढक दिया ॥

द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि ॥ ३७ ॥
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।

द्रोणाचार्यके द्वारा आच्छादित किये जानेपर क्रोधमें भरे हुए वे दोनों नरेश अत्यन्त कुपित हो युद्धके मुहानेपर बाणोंद्वारा द्रोणको घायल करने लगे ॥ ३७½ ॥

ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ३८ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः ।

महाराज ! तब आचार्य द्रोणने क्रोध और अमर्षसे युक्त हो दो अत्यन्त तीखे भल्लोंद्वारा उन दोनोंके धनुष काट डाले ॥

ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान् दश ॥ ३९ ॥
दश चिक्षेप च शरान् द्रोणस्य वधकाङ्क्षया ।

इससे कुपित हुए विराटने रणभूमिमें द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे दस तोमर और दस बाण चलाये ॥ ३९½ ॥

शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।

साथ ही क्रोधमें भरे हुए राजा द्रुपदने लोहेकी बनी हुई स्वर्णभूषित भयंकर शक्ति, जो नागराजके समान प्रतीत होती थी, द्रोणाचार्यपर चलायी ॥ ४०½ ॥

ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान् दश ॥४१॥
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।

यह देख द्रोणाचार्यने तीखे भल्लोंसे उन दसों तोमरों-को काटकर अपने बाणोंके द्वारा सुवर्ण एवं वैदूर्यमणिसे विभूषित उस शक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४१½ ॥

ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥ ४२ ॥
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।

तत्पश्चात् शत्रुमर्दन आचार्य द्रोणने दो पानीदार भल्लोंसे मारकर राजा द्रुपद और विराटको यमराजके पास भेज दिया ॥ ४२½ ॥

हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४ ॥
द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥

विराट, द्रुपद, केकय, चेदि, मत्स्य और पाञ्चाल योद्धाओं तथा राजा द्रुपदके तीनों वीर पौत्रोंके मारे जानेपर द्रोणाचार्यका वह कर्म देखकर क्रोध और दुःखसे भरे हुए महामनस्वी धृष्टद्युम्नने रथियोंके बीचमें इस प्रकार शपथ खायी—॥ ४३–४५ ॥

इष्टापूर्तात् तथा क्षात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥

'आज जिसके हाथसे द्रोणाचार्य जीवित छूट जायँ अथवा जिसे वे पराजित कर दें, वह यज्ञ करने तथा कुआँ-बावली बनवाने एवं बगीचे लगाने आदिके पुण्योंसे वञ्चित हो जाय । क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्वसे भी गिर जाय' ॥४६॥

---

१. द्रुपदकुलमें उत्पन्न होनेके कारण धृष्टद्युम्नका क्षत्रिय होना तो प्रसिद्ध ही है । परंतु याज और उपयाज नामक दो तपस्वी ब्राह्मणोंकी तपस्यासे उनकी उत्पत्ति हुई थी तथा परमेश्वरके मुखसे प्रकट हुए ब्राह्मणस्वरूप अग्निसे उनका प्रादुर्भाव हुआ था । इससे उनमें ब्राह्मणत्व भी था ।

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा॥ ४७ ॥

इस प्रकार उन सम्पूर्ण धनुर्धरोंके बीचमें प्रतिज्ञा करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके साथ द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ४७ ॥

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ४८ ॥
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन् द्रोणमाहवे ।

एक ओरसे पाण्डवोंसहित पाञ्चाल सैनिक द्रोणाचार्यको मार रहे थे और दूसरी ओरसे दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुर्योधनके मुख्य-मुख्य भाई उस युद्धमें आचार्यकी रक्षा कर रहे थे ॥ ४८½ ॥

रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।

उन सम्पूर्ण महारथियोंद्वारा सुरक्षित हुए द्रोणाचार्यकी ओर पाञ्चाल सैनिक प्रयत्न करनेपर भी आँख उठाकर देखतक न सके ॥ ४९½ ॥

तत्राक्रुध्यद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः ।

आर्य ! तब वहाँ पुरुषप्रवर भीमसेन धृष्टद्युम्नपर कुपित हो उठे और उन्हें भयंकर वाग्बाणोंद्वारा छेदने लगे ॥

भीमसेन उवाच

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥ ५१ ॥
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् ।

भीमसेन बोले—द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर और सम्पूर्ण अस्त्रोंका सबसे बड़ा विद्वान् होकर भी कौन स्वाभिमानी क्षत्रिय शत्रुको सामने खड़ा हुआ देख सकेगा ? ॥

पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान् कः परिपालयेत् ॥ ५२ ॥
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि ।

शत्रुके हाथसे पिता और पुत्रका वध पाकर, विशेषतः राजाओंकी मण्डलीमें शपथ खाकर कौन पुरुष उस शत्रुकी रक्षा करेगा ?॥ ५२½ ॥

एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥ ५३ ॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।

धनुष-बाणरूपी ईंधनसे युक्त हो तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाले ये द्रोणाचार्य अपने प्रभावसे क्षत्रियोंको दग्ध कर रहे हैं ॥ ५३½ ॥

पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ।

ये जबतक पाण्डवसेनाको समाप्त नहीं कर लेते, उसके पहले ही मैं द्रोणपर आक्रमण करता हूँ । वीरो ! तुम खड़े होकर मेरा पराक्रम देखो ॥ ५४½ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ॥ ५५॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ।

ऐसा कहकर भीमसेनने कुपित हो धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा आपकी सेनाको खदेड़ते हुए द्रोणाचार्यके सैन्यदलमें प्रवेश किया ॥ ५५½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ॥ ५६॥
आससाद रणे द्रोणं तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ।

इसी प्रकार पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने भी आपकी विशाल सेनामें घुसकर रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की। उस समय बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ५६½ ॥

नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥
यथा सूर्योदये राजन् समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।

राजन् ! उस दिन सूर्योदयके समय जैसा महान् जनसंहारकारी संग्राम हुआ, वैसा हमने पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ५७½ ॥

संसक्तान्येव चादृश्यन् रथवृन्दानि मारिष ॥ ५८ ॥
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ।

माननीय नरेश ! उस युद्धमें रथोंके समूह परस्पर सटे हुए ही दिखायी देते थे और देहधारियोंके शरीर मरकर बिखरे हुए थे ॥ ५८½ ॥

केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रुताः ॥ ५९ ॥
विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे ।

कुछ योद्धा अन्यत्र जाते हुए मार्गमें दूसरे योद्धाओंके आक्रमणके शिकार हो जाते थे । कुछ लोग युद्धसे विमुख होकर भागते समय पीठ और पार्श्वभागोंमें विपक्षियोंके बाणोंकी चोट सहते थे ॥ ५९½ ॥

तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम् ।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ ६० ॥

इस प्रकार वह अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध हो ही रहा था कि क्षणभरमें प्रातःसंध्याकी वेलामें सूर्यदेवका पूर्णतः उदय हो गया ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८६ ॥

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धस्थलकी भीषण अवस्थाका वर्णन और नकुलके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि।
संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! वे समस्त योद्धा पूर्ववत् कवच बाँधे हुए ही युद्धके मुहानेपर प्रातः-संध्याके समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित भगवान् सूर्यका उपस्थान करने लगे॥ १॥

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत॥ २॥

तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् सूर्यदेवका उदय होनेपर जब सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश छा गया, तब पुनः युद्ध होने लगा॥ २॥

द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन् संसक्तानि पुरोदयात्।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत॥ ३॥

भरतनन्दन! सूर्योदयसे पहले जिन लोगोंमें द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था, सूर्योदयके बाद भी पुनः वे ही लोग परस्पर जूझने लगे॥ ३॥

रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः॥ ४॥

रथोंसे घोड़े, घोड़ोंसे हाथी, पैदलोंसे हाथीसवार, घोड़ोंसे घोड़े तथा पैदलोंसे पैदल भिड़ गये॥ ४॥

रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन् रणे॥ ५॥

भरतश्रेष्ठ! रथोंसे रथ और हाथियोंसे हाथी गुँथ जाते थे। इस प्रकार कभी सटकर और कभी विलग होकर वे योद्धा रणभूमिमें गिरने लगे॥ ५॥

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन्॥ ६॥

वे सभी रातमें युद्ध करके थक गये थे। फिर सबेरे सूर्यकी धूप लगनेसे उनके अङ्ग-अङ्गमें भूख-प्यास व्याप्त हो गयी, जिससे बहुतेरे सैनिक अपनी सुध-बुध खो बैठे॥ ६॥

शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम्।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम्॥ ७॥
शब्दः समभवद् राजन् दिविस्पृग् भरतर्षभ।

राजन्! भरतश्रेष्ठ! उस समय शङ्ख, भेरी और मृदङ्गोंकी ध्वनि, गरजते हुए गजराजोंका चीत्कार और फैलाये तथा खींचे गये धनुषोंकी टङ्कार इन सबका सम्मिलित शब्द आकाशमें गूँज उठा था॥ ७½॥

द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि॥ ८॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम्।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्॥ ९॥

दौड़ते हुए पैदलों, गिरते हुए शस्त्रों, हिनहिनाते हुए घोड़ों, लौटते हुए रथों तथा चीखते-चिल्लाते और गरजते हुए शूरवीरोंका मिला हुआ महाभयंकर शब्द वहाँ गूँज रहा था॥ ८-९॥

विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः॥ १०॥
भूमावश्रूयत महांस्तदाऽऽसीत् कृपणं महत्।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम्॥ ११॥

वह बढ़ा हुआ अत्यन्त भयानक शब्द उस समय स्वर्गलोकतक जा पहुँचा था। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे कटकर छटपटाते हुए योद्धाओंका महान् आर्तनाद धरतीपर सुनायी दे रहा था। गिरते और गिराये जाते हुए पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंकी अत्यन्त दयनीय दशा दिखायी देती थी॥ १०-११॥

तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च स्वान् परेषां परे परान्॥ १२॥

उन सभी सेनाओंमें बारंबार मुठभेड़ होती थी और उसमें अपने ही पक्षके लोग अपने ही पक्षवालोंको मार डालते थे। शत्रुपक्षके लोग भी अपने पक्षके लोगोंको मारते थे। शत्रुपक्षके जो स्वजन थे उनको तथा शत्रुओंको भी शत्रुपक्षके योद्धा मार डालते थे॥ १२॥

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव॥ १३॥

जैसे कपड़े धोनेके घाटोंपर ढेर-के-ढेर वस्त्र दिखायी देते हैं, उसी प्रकार योद्धाओं और हाथियोंपर वीरोंकी भुजाओंद्वारा छोड़े गये अस्त्र-शस्त्रोंकी राशियाँ दिखायी देती थीं॥ १३॥

उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव॥ १४॥

शूरवीरोंके हाथोंमें उठकर विपक्षी योद्धाओंके शस्त्रोंसे टकराये हुए खड्गोंका शब्द वैसा ही जान पड़ता था, जैसे धोबियोंके पटहोंपर पीटे जानेवाले कपड़ोंका शब्द होता है॥

अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत् सुदारुणम्॥ १५॥

एक ओर धारवाली और दुधारी तलवारों, तोमरों तथा फरसोंद्वारा जो अत्यन्त निकटसे युद्ध चल रहा था, वह भी बहुत ही क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर था॥ १५॥

गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम्।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १६ ॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम्।
नदीं प्रावर्तयन् वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥

वहाँ युद्ध करनेवाले वीरोंने खूनकी नदी बहा दी, जिसका प्रवाह परलोककी ओर ले जानेवाला था। वह रक्तकी नदी हाथी और घोड़ोंकी लाशोंसे प्रकट हुई थी। मनुष्यों-के शरीरोंको बहाये लिये जाती थी। उसमें शस्त्ररूपी मछ-लियाँ भरी थीं। मांस और रक्त ही उसकी कीचड़ थे। पीड़ितोंके आर्तनाद ही उसकी कलकल ध्वनि थे तथा पताका और शस्त्र उसमें फेनके समान जान पड़ते थे ॥

शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन् गजवाजिनः ॥ १८ ॥

रात्रिके युद्धसे मोहित, अल्प चेतनावाले, बाणों और शक्तियोंसे पीड़ित तथा थके-माँदे हाथी एवं घोड़े आदि वाहन अपने सारे अङ्गोंको स्तब्ध करके वहाँ खड़े थे ॥ १८ ॥

बाहुभिः कवचैश्चित्रैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः।
युद्धोपकरणैश्चान्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥ १९ ॥

योद्धाओंकी कटी हुई भुजाओं, विचित्र कवचों, मनोहर कुण्डलमण्डित मस्तकों तथा इधर-उधर बिखरी हुई अन्यान्य युद्ध-सामग्रियोंसे रणभूमिके विभिन्न प्रदेश प्रकाशित हो रहे थे ॥ १९ ॥

क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि।
नासीद् रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २० ॥

कहीं कच्चा मांस खानेवाले प्राणियोंका समुदाय भरा था, कहीं मरे और अधमरे जीव पड़े थे। इन सबके कारण उस सारी युद्धभूमिमें कहीं भी रथ जानेके लिये रास्ता नहीं मिलता था ॥ २० ॥

मज्जत्सु चक्रेषु रथान् सत्त्वमास्थाय वाजिनः।
कथंचिदवहञ्श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ॥ २१ ॥
कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः।

रथोंके पहिये रक्तकी कीचमें डूब जाते थे, तो भी उन रथोंको बाणोंसे पीड़ित हो काँपते हुए और परिश्रमसे थके-माँदे घोड़े किसी प्रकार धैर्य धारण करके ढोते थे। वे सभी घोड़े उत्तम कुल, साहस और बलसे सम्पन्न तथा हाथियोंके समान विशालकाय थे (इसीलिये ऐसा पराक्रम कर पाते थे) ॥ २१½ ॥

विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ॥ २२ ॥
बलमासीत् तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ।
तावेवास्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥ २३ ॥
तावेवान्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम्।

भारत ! उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुन—इन दो वीरोंको छोड़कर शेष सारी सेना तुरंत विह्वल, उद्भ्रान्त, भयभीत और आतुर हो गयी। वे ही दोनों अपने-अपने पक्षके योद्धाओंके लिये छिपनेके स्थान थे और वे ही पीड़ितोंके आश्रय बने हुए थे। परंतु विपक्षी योद्धा इन्हीं दोनोंके समीप जाकर यमलोक पहुँच जाते थे ॥ २२-२३½ ॥

आविग्नमभवत् सर्वं कौरवाणां महद् बलम् ॥ २४ ॥
पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किंचन।
अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २५ ॥

कौरवों तथा पाञ्चालोंके सारे विशाल सैन्य परस्पर मिलकर व्यग्र हो उठे थे। उस समय उनमेंसे किसी दलको अलग-अलग पहचाना नहीं जाता था। वह समराङ्गण यमराजका क्रीडास्थल-सा हो रहा था और कायरोंका भय बढ़ा रहा था ॥ २४-२५ ॥

पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये।
न तत्र कर्णं द्रोणं वा नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम्।
न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥
न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च।
न चान्यान् नैव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ॥ २८ ॥
पश्याम राजन् संसक्तान् सैन्येन रजसाऽऽवृतान्।

राजन् ! भूमण्डलके राजवंशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियोंका वह महान् संहार उपस्थित होनेपर वहाँ युद्धमें तत्पर हुए सब लोग सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे ढक गये थे। इसीलिये हमलोग वहाँ न तो कर्णको देख पाते थे, न द्रोणाचार्यको। न अर्जुन दिखायी देते थे, न युधिष्ठिर। भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और सात्यकिको भी हम नहीं देख पाते थे। दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा तथा अन्य महारथी भी हमारी दृष्टिमें नहीं आते थे। औरोंकी तो बात ही क्या है ? हम अपने शरीरको भी नहीं देख पाते थे, पृथिवी और दिशाएँ भी नहीं सूझती थीं ॥ २६-२८½ ॥

सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥
द्वितीयामिव सम्प्राप्ताममन्यन्त निशां तदा।

वहाँ धूलरूपी मेघकी भयंकर एवं घोर घटा घुमड़-घुमड़कर घिर आयी थी, जिससे सब लोगोंको उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो दूसरी रात्रि आ पहुँची हो ॥ २९½ ॥

न ज्ञायन्ते कौरवेया न पञ्चाला न पाण्डवाः ॥ ३० ॥
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा।

उस अन्धकारमें न तो कौरव पहचाने जाते थे और न पाञ्चाल तथा पाण्डव ही। दिशा, आकाश, भूमण्डल

और सम-विषम स्थान आदिका भी पता नहीं चलता था ॥ ३०½ ॥

हस्तसंस्पर्शमापन्नान् परानप्यथवा स्वकान् ॥ ३१ ॥
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ।

जो हाथकी पकड़में आ गये या छू गये, वे अपने हों या पराये, विजयकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य उन्हें तत्काल युद्धमें मार गिराते थे ॥ ३१½ ॥

उद्धूतत्वात् तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥ ३२ ॥
प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ।

उस समय तेज हवा चलनेसे कुछ धूल तो ऊपर उड़ गयी और कुछ योद्धाओंके रक्तसे सिंचकर नीचे बैठ गयी। इससे भूतलकी वह सारी धूलराशि शान्त हो गयी ॥ ३२½ ॥

तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन् रुधिरोक्षिताः ।

तदनन्तर वहाँ खूनसे लथपथ हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल सैनिक पारिजातके जंगलोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३३½ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।

उस समय दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुःशासन—ये चार महारथी चार पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३४½ ॥

दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ।

दुर्योधन अपने भाई दुःशासनको साथ लेकर नकुल और सहदेवसे भिड़ गया। राधापुत्र कर्ण भीमसेनके साथ और अर्जुन आचार्य द्रोणके साथ युद्ध करने लगे ॥३५½॥

तद् घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥
रथर्षभाणामुग्राणां संनिपातममानुषम् ।

उन उग्र महारथियोंका वह घोर, अत्यन्त आश्चर्यजनक और अमानुषिक संग्राम वहाँ सब लोग सब ओरसे देखने लगे ॥ ३६½ ॥

रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥ ३७ ॥
अपश्यन् रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ।

रथके विचित्र पैंतरोंसे विचरनेवाले तथा विचित्र युद्ध करनेवाले उन महारथियोंका विचित्र रथोंसे व्याप्त वह विचित्र युद्ध वहाँ सब रथी दर्शककी भाँति देखने लगे ॥३७½॥

यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥ ३८ ॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।

एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले वे वीर योद्धा प्रयत्नपूर्वक पराक्रममें तत्पर हो वर्षाकालके मेघोंकी भाँति बाणरूपी जलकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३८½ ॥

ते रथान् सूर्यसंकाशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ॥ ३९ ॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।

सूर्यके समान तेजस्वी रथोंपर बैठे हुए वे पुरुषप्रवर योद्धा चञ्चल चपलाओंकी चमकसे युक्त शरत्कालके मेघोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ३९½ ॥

योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथान्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥

महाराज ! क्रोध और अमर्षमें भरे हुए वे परस्पर स्पर्धा रखनेवाले, विजयके लिये प्रयत्नशील और विशाल धनुष धारण करनेवाले धनुर्धर योद्धा मतवाले गजराजोंके समान एक दूसरेसे जूझ रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद् व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२ ॥

राजन् ! निश्चय ही अन्तकाल आये बिना किसीके शरीरका नाश नहीं होता है, तभी तो उस संग्राममें क्षत-विक्षत हुए वे समस्त महारथी एक साथ ही नष्ट नहीं हो गये ॥ ४२ ॥

बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४३ ॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५ ॥
शून्यैश्च नगराकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४६ ॥
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलङ्कृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४७ ॥
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च ससुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४८ ॥
उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४९ ॥

उस समय योद्धाओंके कटे हुए हाथ, पैर, कुण्डल-मण्डित मस्तक, धनुष, बाण, प्रास, खड्ग, परशु, पट्टिश, नालीक, छोटे नाराच, नखर, शक्ति, तोमर, अन्यान्य नाना प्रकारके साफ किये हुए उत्तम आयुध, भाँति-भाँतिके विचित्र कवच, टूटे हुए विचित्र रथ तथा मारे गये हाथी, घोड़े, इधर-उधर पड़े थे। वायुके समान वेगशाली, सारथिशून्य, भयभीत घोड़े जिन्हें बारंबार इधर-उधर खींच रहे थे, जिनके रथी योद्धा और ध्वज नष्ट हो गये थे, ऐसे नगराकार सुनसान रथ भी वहाँ दृष्टिगोचर हो रहे थे। आभूषणोंसे विभूषित वीरोंके मृतशरीर यत्र-तत्र गिरे हुए थे, काटकर

गिराये हुए व्यजन, कवच, ध्वज, छत्र, आभूषण, वस्त्र, सुगन्धित फूलोंके हार, रत्नोंके हार, किरीट, मुकुट, पगड़ी, किङ्किणीसमूह, छातीपर धारण की जानेवाली मणि, सोनेके निष्क और चूड़ामणि आदि वस्तुएँ भी इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं । इन सबसे भरा हुआ वह युद्धस्थल वहाँ नक्षत्रोंसे व्याप्त आकाशके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४३-४९ ॥

ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः ।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ५० ॥

इसी समय क्रुद्ध और असहिष्णु दुर्योधनका रोष और अमर्षसे भरे हुए नकुलके साथ युद्ध आरम्भ हुआ ॥५०॥

अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम् ।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ५१ ॥

माद्रीपुत्र नकुलने आपके पुत्र दुर्योधनको दाहिने कर दिया और हर्षमें भरकर उसपर सैकड़ों बाणोंकी झड़ी लगा दी; फिर तो वहाँ महान् कोलाहल हुआ ॥ ५१ ॥

अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा ।
नामृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥ ५२ ॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम् ।

अमर्षशील शत्रुके द्वारा युद्धस्थलमें अपने आपको दाहिने किया हुआ देख दुर्योधन इसे सहन न कर सका । महाराज ! फिर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भी तुरंत ही रणभूमिमें नकुलको भी अपने दाहिने ला देनेका प्रयत्न किया ॥५२½॥

ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ॥ ५३ ॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित् ।

तेजस्वी नकुल युद्धकी विचित्र प्रणालियोंके ज्ञाता थे । उन्होंने यह देखकर कि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन मुझे दाहिने लानेकी चेष्टा कर रहा है, उसे सहसा रोक दिया ॥५३½॥

स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत् सैन्याः समपूजयन् ।

नकुलने दुर्योधनको अपने बाणसमूहोंद्वारा पीड़ित करते हुए उसे सब ओरसे रोककर युद्धसे विमुख कर दिया । उनके इस पराक्रमकी समस्त सैनिक सराहना करने लगे ॥ ५४½ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव ।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत् ॥ ५५ ॥

उस समय आपकी कुमन्त्रणा तथा अपनेको प्राप्त हुए सम्पूर्ण दुःखोंको स्मरण करके नकुलने आपके पुत्रको ललकारते हुए कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें नकुलका युद्धविषयक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुःशासन और सहदेवका, कर्ण और भीमसेनका तथा द्रोणाचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध

संजय उवाच

ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् ।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अपने रथके तीव्र वेगसे पृथ्वीको कँपाते हुए-से दुःशासनने कुपित होकर सहदेवपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः ।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २ ॥

उसके आते ही शत्रुसूदन माद्रीकुमार सहदेवने शीघ्र ही एक भल्ल मारकर दुःशासनके सारथिका मस्तक शिरस्त्राण-सहित काट डाला ॥ २ ॥

नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः ।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥

इस कार्यमें उन्होंने ऐसी फुर्ती दिखायी कि न तो दुःशासन और न दूसरा ही कोई सैनिक इस बातको जान सका कि सहदेवने सारथिका सिर काट डाला है ॥ ३ ॥

यदा त्वसंगृहीतत्वात् प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् ।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥ ४ ॥

जब रास छूट जानेके कारण घोड़े अपनी मौजसे इधर-उधर भागने लगे, तब दुःशासनको यह ज्ञात हुआ कि मेरा सारथि मारा गया ॥ ४ ॥

स हयान् संनिगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः ।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुःशासन अश्व-संचालनकी कलामें निपुण था । वह रणभूमिमें स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें करके शीघ्रता-पूर्वक विचित्र रीतिसे अच्छी तरह युद्ध करने लगा ॥ ५ ॥

तदस्यापूजयन् कर्म स्वे परे चापि संयुगे ।
हतसूतरथेनाजौ व्यचरद् यदभीतवत् ॥ ६ ॥

सारथिके मारे जानेपर भी दुःशासन उस रथके द्वारा युद्धभूमिमें निर्भय-सा विचरता रहा; उसके इस कर्मकी अपने और शत्रुपक्षके लोगोंने भी प्रशंसा की ॥ ६ ॥

सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् ।
पीड्यमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७ ॥

सहदेव उन घोड़ोंपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन बाणोंसे पीड़ित हुए वे घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर भागने लगे ॥ ७ ॥

स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम्।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत्॥ ८॥

दुःशासन जब घोड़ोंकी रास सँभालने लगता तो धनुष छोड़ देता और जब धनुषसे काम लेता तो विवश होकर घोड़ोंकी रास छोड़ देता था॥ ८॥

छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत्।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवाप तत्॥ ९॥

उसकी दुर्बलताके इन्हीं अवसरोंपर माद्रीकुमार सहदेव उसे बाणोंसे ढक देते थे। उस समय आपके पुत्रकी रक्षाके लिये कर्ण बीचमें कूद पड़ा॥ ९॥

वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नद् बाह्वोरुरसि चानदत्॥ १०॥

तब भीमसेनने भी सावधान होकर धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये तीन भल्लोंद्वारा कर्णकी दोनों भुजाओं और छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। फिर वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे॥ १०॥

स निवृत्तस्ततः कर्णः संघट्टित इवोरगः।
भीममावारयामास विकिरन् निशिताञ्छरान्॥ ११॥

तदनन्तर पैरोंसे कुचले गये सर्पके समान कुपित हो कर्ण लौट पड़ा और तीखे बाणोंकी वर्षा करके भीमको रोकने लगा॥११॥

ततोऽभूत् तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ॥ १२॥

फिर तो भीमसेन और राधापुत्र कर्णमें घोर युद्ध होने लगा। दोनों ही एक दूसरेकी ओर विकृत दृष्टिसे देखते हुए साँड़ोंके समान गर्जने लगे॥ १२॥

वेगेन महतान्योन्यं संरब्धावभिपेततुः।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः॥ १३॥
विच्छिन्नशरपातत्वाद् गदायुद्धमवर्तत।

फिर दोनों परस्पर अत्यन्त कुपित हो बड़े वेगसे टूट पड़े। उन युद्धकुशल योद्धाओंके परस्पर अत्यन्त निकट आ जानेके कारण उनके बाण चलानेका क्रम टूट गया; इसलिये उनमें गदायुद्ध आरम्भ हो गया॥ १३½॥

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम्॥ १४॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

राजन्! भीमसेनने अपनी गदासे कर्णके रथका कूबर तोड़कर उसके सौ टुकड़े कर दिये, वह अद्भुत-सा कार्य हुआ॥ १४½॥

ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान्॥ १५॥
अवासृजद् रथे तां तु बिभेद गदया गदाम्।

फिर पराक्रमी राधापुत्र कर्णने भीमकी ही गदा उठा ली और उसे घुमाकर उन्हींके रथपर फेंका; किंतु भीमने दूसरी गदासे उस गदाको तोड़ डाला॥ १५½॥

ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाधिरथेर्गदाम्॥ १६॥
तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः।
प्रत्यविध्यत् पुनश्चान्यैः सा भीमं पुनरावजत्॥ १७॥

तत्पश्चात् उन्होंने अधिरथपुत्र कर्णपर पुनः एक भारी गदा छोड़ी। परंतु कर्णने तेज किये हुए सुन्दर पंखवाले दूसरे-दूसरे बहुत-से बाण मारकर उस गदाको बींध डाला। इससे वह पुनः भीमपर ही लौट आयी॥ १६-१७॥

व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता।
तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः॥ १८॥
पपात सारथिश्चास्य मुमोह च गदाहतः।

कर्णके बाणोंसे आहत हो वह गदा मन्त्रसे मारी गयी सर्पिणीके समान लौटकर भीमसेनके ही रथपर गिरी। उसके गिरनेसे भीमसेनकी विशाल ध्वजा धराशायी हो गयी और उस गदाकी चोट खाकर उनका सारथि भी मूर्छित हो गया॥१८½॥

स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत् क्रोधमूर्च्छितः॥ १९॥
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः।
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत॥ २०॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत।

तब क्रोधसे व्याकुल हुए भीमसेनने कर्णको आठ बाण मारे। भारत! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली भीमसेनने हँसते हुए-से उन तेज धारवाले तीखे बाणोंद्वारा कर्णके ध्वज, धनुष और तरकसको काट गिराया॥१९-२०½॥

कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ २१॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ २२॥

तत्पश्चात् राधापुत्र कर्णने पुनः सोनेकी पीठवाला दूसरा दुर्जय धनुष हाथमें लेकर रथपर रक्खे हुए बाणोंद्वारा भीमसेनके रीछके समान रंगवाले काले घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको शीघ्र ही मार डाला॥ २१-२२॥

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम्।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिंदमः॥ २३॥

इस तरह रथ नष्ट हो जानेसे शत्रुदमन भीमसेन जैसे सिंह पर्वतके शिखरपर चढ़ जाता है, उसी प्रकार उछलकर नकुलके रथपर जा बैठे॥ २३॥

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि॥ २४॥

राजेन्द्र! इसी प्रकार उस युद्धस्थलमें आचार्य और शिष्य महारथी द्रोण तथा अर्जुन परस्पर प्रहार करते हुए विचित्र रीतिसे युद्ध कर रहे थे॥ २४॥

लघुसंधानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च।

मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २५ ॥

शीघ्रतापूर्वक बाणोंके संधान और रथोंके योगसे अपने संग्रामद्वारा वे दोनों वीर लोगोंके नेत्रों और मनको भी मोह लेते थे ॥ २५ ॥

उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम ।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद् युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! गुरु और शिष्यके उस अपूर्व युद्धको देखते हुए सब योद्धा संग्रामसे विरत हो गये ॥ २६ ॥

विचित्रान् पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥

वे दोनों वीर सेनाके बीचमें रथके विचित्र पैंतरे प्रकट करते हुए उस समय एक दूसरेको दायें कर देनेकी चेष्टा करने लगे ॥ २७ ॥

पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः ।
तयोः समभवद् युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ॥ २८ ॥
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव ।

उन द्रोणाचार्य और पाण्डुपुत्र अर्जुनके पराक्रमको वे सब सैनिक अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे । महाराज ! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये आकाशमें दो बाज लड़ रहे हों, उसी प्रकार राज्यके लिये उन दोनों गुरु-शिष्योंमें बड़ा भारी युद्ध हो रहा था ॥ २८½ ॥

यद् यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥ २९ ॥
तत् तत् प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः ।

द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र अर्जुनको जीतनेकी इच्छासे जिस-जिस अस्त्रका प्रयोग करते थे, उस-उसको पाण्डुपुत्र अर्जुन हँसते हुए तत्काल काट देते थे ॥ २९½ ॥

यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स विशेषितुम् ॥ ३० ॥
ततः प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः ।

जब द्रोणाचार्य पाण्डुपुत्र अर्जुनकी अपेक्षा अपनी विशेषता न सिद्ध कर सके, तब अस्त्रमार्गोंके ज्ञाता गुरुदेवने दिव्यास्त्रोंको प्रकट किया ॥ ३०½ ॥

ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात् तज्जघान धनंजयः ।

द्रोणाचार्यके धनुषसे क्रमशः छूटे हुए ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य तथा वारुण नामक अस्त्रको अर्जुनने तत्काल शान्त कर दिया ॥ ३१½ ॥

अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत् ।

जब पाण्डुकुमार अर्जुन आचार्यके सभी अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक नष्ट करने लगे, तब द्रोणने परम दिव्य अस्त्रोंद्वारा अर्जुनको ढक दिया ॥ ३२½ ॥

यद् यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥
तस्य तस्य विघाताय तत् तद्धि कुरुतेऽर्जुनः ।

परंतु विजयकी इच्छासे वे पार्थपर जिस-जिस अस्त्रका प्रयोग करते थे, उस-उसके विनाशके लिये अर्जुन वैसे ही अस्त्रोंका प्रयोग करते थे ॥ ३३½ ॥

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् ।

जब अर्जुनके द्वारा उनके विधिपूर्वक चलाये हुए दिव्यास्त्र भी प्रतिहत होने लगे, तब द्रोणने अर्जुनकी मन-ही-मन सराहना की ॥ ३४½ ॥

मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामधि भारत ॥ ३५ ॥
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परंतपः ।

भारत ! शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य उस शिष्यके द्वारा अपने आपको भूमण्डलके सभी शस्त्रवेत्ताओंसे श्रेष्ठ मानने लगे ॥ ३५½ ॥

वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् ।

महामनस्वी वीरोंके बीचमें अर्जुनके द्वारा इस प्रकार रोके जाते हुए द्रोणाचार्य प्रयत्न करके प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए स्वयं भी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥
ऋषयः सिद्धसंघाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया ।

तदनन्तर वह युद्ध देखनेकी इच्छासे आकाशमें बहुत-से देवता, सहस्रों गन्धर्व, ऋषि और सिद्धसमुदाय खड़े हो गये ॥ ३७½ ॥

तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥
श्रीमदाकाशमभवद् भूयो मेघाकुलं यथा ।

अप्सराओं, यक्षों और गन्धर्वोंसे भरा हुआ आकाश ऐसी विशिष्ट शोभा पा रहा था, मानो उसमें मेघोंकी घटा घिर आयी हो ॥ ३८½ ॥

तत्र स्मान्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥
द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप ।

नरेश्वर ! वहाँ द्रोणाचार्य और अर्जुनकी स्तुतिसे युक्त अदृश्य व्यक्तियोंके मुखोंसे निकली हुई बातें बारंबार सुनायी देने लगीं ॥ ३९½ ॥

विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः ।

जब दिव्यास्त्रोंके प्रयोग होने लगे और उनके तेजसे दसों दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं, उस समय आकाशमें एकत्र हुए सिद्ध और ऋषि इस प्रकार वार्तालाप करने लगे—॥ ४०½ ॥

नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ४१ ॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम्।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ४२ ॥

'यह युद्ध न तो मनुष्योंका है, न असुरोंका, न राक्षसोंका है और न देवताओं एवं गन्धर्वोंका ही। निश्चय ही यह परम उत्तम ब्राह्म युद्ध है। ऐसा विचित्र एवं आश्चर्यजनक संग्राम हमलोगोंने न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ४१-४२ ॥

अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाप्यति पाण्डवः।
नानयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥ ४३ ॥

'आचार्य द्रोण पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बढ़कर हैं और पाण्डुपुत्र अर्जुन भी आचार्य द्रोणसे बढ़कर हैं। इन दोनोंमें कितना अन्तर है, इसे दूसरा कोई नहीं देख सकता ॥४३॥

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येतात्मानमात्मना।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४४ ॥

'यदि भगवान् शङ्कर अपने दो रूप बनाकर स्वयं ही अपने साथ युद्ध करें तो उसी युद्धसे इनकी उपमा दी जा सकती है; और कहीं इन दोनोंकी समता नहीं है ॥ ४४ ॥

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४५ ॥

'आचार्य द्रोणमें सारा ज्ञान एकत्र संचित है; परंतु पाण्डुपुत्र अर्जुनमें ज्ञानके साथ-साथ योग भी है। इसी प्रकार आचार्य द्रोणमें सारा शौर्य एक स्थानपर आ गया है; परंतु पाण्डुनन्दन अर्जुनमें शौर्यके साथ बल भी है ॥ ४५ ॥

नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४६ ॥

'ये दोनों महाधनुर्धर वीर युद्धमें दूसरे किन्हीं योद्धाओंके द्वारा नहीं मारे जा सकते। परंतु यदि ये दोनों चाहें तो देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्का विनाश कर सकते हैं' ॥४६॥

इत्यब्रुवन् महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४७ ॥

महाराज! उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको देखकर आकाशमें छिपे हुए तथा प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले प्राणी भी सब ओर यही बातें कह रहे थे ॥ ४७ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः।
संतापयन् रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् परम बुद्धिमान् द्रोणाचार्यने रणभूमिमें अर्जुनको तथा आकाशवर्ती अदृश्य प्राणियोंको संताप देते हुए ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ४८ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चापि चुक्षुभुः ॥ ४९ ॥

फिर तो पर्वत, वन और वृक्षोंसहित धरती डोलने लगी, आँधी उठ गयी और समुद्रोंमें ज्वार आ गया ॥४९॥

ततस्त्रासो महानासीत् कुरुपाण्डवसेनयोः।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥

महामना द्रोणके द्वारा ब्रह्मास्त्रके उठाये जाते ही कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंपर तथा समस्त प्राणियोंमें बड़ा भारी आतङ्क छा गया ॥ ५० ॥

ततः पार्थोऽप्यसंभ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान्।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र! तब अर्जुनने भी बिना किसी घबराहटके ब्रह्मास्त्रसे ही द्रोणाचार्यके उस अस्त्रको दबा दिया; फिर सारा उपद्रव शान्त हो गया ॥ ५१ ॥

यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा।
ततः संकुलयुद्धेन तद् युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥५२॥

जब द्रोणाचार्य और अर्जुनमेंसे कोई भी किसीको परास्त न कर सका, तब सामूहिक युद्धके द्वारा उस संग्रामको व्यापक बना दिया गया ॥ ५२ ॥

नाज्ञायत ततः किंचित् पुनरेव विशाम्पते।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ५३ ॥

प्रजानाथ! रणभूमिमें द्रोणाचार्य और अर्जुनमें घमासान युद्ध छिड़ जानेपर फिर किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था ॥ ५३ ॥

(द्रोणो मुक्त्वा रणे पार्थं पञ्चालानन्वधावत।
अर्जुनोऽपि रणे द्रोणं त्यक्त्वा प्राद्रावयत् कुरून्॥

द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें अर्जुनको छोड़कर पाञ्चालोंपर धावा किया और अर्जुनने भी वहाँ द्रोणाचार्यका मुकाबला छोड़कर कौरव-सैनिकोंको वेगपूर्वक खदेड़ना आरम्भ किया ॥

शरौघैरथ ताभ्यां तु छायाभूतं महामृधे।
तुमुलं प्रबभौ राजन् सर्वस्य जगतो भयम् ॥)

राजन्! उस महासमरमें उन दोनोंने अपने बाणसमूहों-द्वारा सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न कर दिया। वह तुमुल युद्ध सम्पूर्ण जगत्के लिये भयदायक प्रतीत हो रहा था ॥

शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाम्बरे।
नापतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥

आकाशमें इस प्रकार बाणोंका जाल बिछ गया, मानो वहाँ मेघोंकी घटा घिर आयी हो। इससे वहाँ उस समय कोई आकाशचारी पक्षी भी कहीं उड़कर न जा सका ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें घमासान युद्धविषयक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ५६ श्लोक हैं)

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नका दुःशासनको हराकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण, नकुल-सहदेवद्वारा उनकी रक्षा, दुर्योधन तथा सात्यकिका संवाद तथा युद्ध, कर्ण और भीमसेनका संग्राम और अर्जुनका कौरवोंपर आक्रमण

संजय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! इस प्रकार हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस वर्तमान युद्धमें दुःशासन धृष्टद्युम्नके साथ जूझने लगा॥ १॥

स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः।
अमर्षात् तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत्॥ २॥

धृष्टद्युम्न पहले द्रोणाचार्यके साथ उलझे हुए थे, दुःशासनके बाणोंसे पीड़ित होकर उन्होंने आपके पुत्रके घोड़ोंपर रोषपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ २॥

क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः॥ ३॥

महाराज! एक ही क्षणमें धृष्टद्युम्नके बाणोंका ऐसा ढेर लग गया कि दुःशासनका रथ ध्वजा और सारथिसहित अदृश्य हो गया॥ ३॥

दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः।
नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः॥ ४॥

राजेन्द्र! महामना धृष्टद्युम्नके बाणसमूहोंसे अत्यन्त पीड़ित हो दुःशासन उनके सामने ठहर न सका॥ ४॥

स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद् रणे॥ ५॥

इस प्रकार अपने बाणोंद्वारा दुःशासनको सामनेसे भगाकर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें पुनः द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण किया॥ ५॥

अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम्।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन्॥ ६॥

यह देख हृदिकपुत्र कृतवर्मा तथा दुःशासनके तीन भाई बीचमें आ धमके। वे चारों मिलकर धृष्टद्युम्नको रोकने लगे॥ ६॥

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम्॥ ७॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यके सम्मुख जाते देख नरश्रेष्ठ नकुल और सहदेव उनकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे चले॥ ७॥

सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः॥ ८॥

उस समय अमर्षसे भरे हुए उन सभी धैर्यशाली महारथियोंने मृत्युको सामने रखकर परस्पर युद्ध आरम्भ कर दिया॥ ८॥

शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन् स्वर्गपुरस्कृताः।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः॥ ९॥

राजन्! उन सबके हृदय शुद्ध और आचार-व्यवहार निर्मल थे। वे सभी स्वर्गकी प्राप्तिरूप लक्ष्यको अपने सामने रखते थे; अतः परस्पर विजयकी अभिलाषासे वे आर्यजनोचित युद्ध करने लगे॥ ९॥

शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम्॥ १०॥

जनेश्वर! उन सबके वंश शुद्ध और कर्म निष्कलङ्क थे; अतः वे बुद्धिमान् योद्धा उत्तम गति पानेकी इच्छासे धर्मयुद्धमें तत्पर हो गये॥ १०॥

न तत्रासीदधर्मिष्ठमशस्तं युद्धमेव च।
नात्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च बस्तिकः॥ ११॥

वहाँ अधर्मपूर्ण और निन्दनीय युद्ध नहीं हो रहा था, उसमें कर्णी[1], नालीक[2], विष लगाये हुए बाण और बस्तिक[3] नामक अस्त्रका प्रयोग नहीं होता था॥ ११॥

न सूची कपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः॥ १२॥

न सूची[4], न कपिश[5], न गायकी हड्डीका बना हुआ, न हाथीकी हड्डीका बना हुआ, न दो फलों या काटोंवाला,

---

१. जिधर बाणके फलका रुख हो, उससे विपरीत रुखवाले दो काँटोंसे युक्त बाणको 'कर्णी' कहते हैं। शरीरमें धँस जानेपर यदि उसे निकाला जाय तो वह आँतोंको भी अपने साथ खींच लेता है, इसलिये निन्द्य है। २. 'नालीक' नामक बाण अत्यन्त छोटा होता है, वह शरीरमें पूरा-का-पूरा डूब जाता है, अतः उसे निकालना कठिन हो जाता है। ३. बाणके डंडे और फलके संधि-स्थानमें, जो अत्यन्त पतला होता है, उस बाणको 'वस्तिक' कहते हैं। उसे शरीरसे निकालनेपर वह बीचसे टूट जाता है, फल भीतर रह जाता है और केवल डंडा बाहर निकल पाता है। ४. 'सूची' नामक बाण भी कर्णीके ही समान होता है। अन्तर इतना ही है कि इसमें बहुत-से कण्टक होते हैं। ५. कुछ लोग 'कपिश' को भी सूचीके ही समान मानते हैं। किन्हींके मतमें 'कपिश' का फल बंदरकी हड्डीका बना होता है। अधिकांश लोगोंका मत है कि 'कपिश' काले लोहेका बना होता है, उसका हलका आघात लगनेपर भी वह शरीरमें गहराईतक घुस जाता है। मेदिनीकोषके अनुसार कपिशका अर्थ काला है भी। ६-७. जिस-

न दुर्गन्धयुक्त और न जिह्मग (टेढ़ा जानेवाला) बाण ही काममें लाया जाता था ॥ १२ ॥

ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३ ॥

वे सब योद्धा न्याययुक्त युद्धके द्वारा उत्तम लोक और कीर्ति पानेकी अभिलाषा रखकर सरल और शुद्ध शस्त्रोंको ही धारण करते थे ॥ १३ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥

आपके चार योद्धाओंका तीन पाण्डव वीरोंके साथ जो घमासान युद्ध चल रहा था, वह सब प्रकारके दोषोंसे रहित था ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजन् रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान् वीराञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥

राजन् ! धृष्टद्युम्न शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले थे। वे नकुल और सहदेवके द्वारा कौरवपक्षके उन वीर महारथियोंको रोका गया देख स्वयं द्रोणाचार्यकी ओर बढ़ गये ॥ १५ ॥

निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६ ॥

वहाँ रोके गये वे चारों वीर उन दोनों पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ इस प्रकार भिड़ गये मानो चौआई हवा दो पर्वतोंसे टकरा रही हो ॥ १६ ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और सहदेव दो-दो कौरव रथियोंके साथ जूझने लगे। इतनेहीमें धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने जा पहुँचे ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान् ।

महाराज ! रणदुर्मद धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यकी ओर जाते और अपने दलके उन चारों वीरोंको नकुल-सहदेवके साथ युद्ध करते देख राजा दुर्योधन रक्त पीनेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके बीचमें आ धमका ॥ १८½ ॥

तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥ १९ ॥
तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥ २० ॥

यह देख सात्यकि बड़ी शीघ्रताके साथ पुनः दुर्योधनके सम्मुख आ गये। वे दोनों मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी थे। कुरुवंशी दुर्योधन और मधुवंशी सात्यकि एक दूसरेको समीप पाकर निर्भय हो हँसते हुए युद्ध करने लगे ॥ १९-२० ॥

बाल्यवृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च स्मयमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥

बचपनकी सारी बातें याद करके वे दोनों वीर एक दूसरेकी ओर देखते हुए बारंबार प्रसन्नतापूर्वक मुसकरा उठते थे ॥ २१ ॥

अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तमात्मनः ॥ २२ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने अपने बर्तावकी निरन्तर निन्दा करते हुए वहाँ अपने प्रिय सखा सात्यकिसे इस प्रकार कहा— ॥ २२ ॥

धिक् क्रोधं धिक् सखे लोभं धिङ्मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३ ॥

'सखे ! क्रोधको धिक्कार है, लोभको धिक्कार है, मोहको धिक्कार है, अमर्षको धिक्कार है, इस क्षत्रियोचित आचारको धिक्कार है तथा औरस बलको भी धिक्कार है ॥ २३ ॥

यत्र मामभिसंधत्से त्वां चाहं शिनिपुङ्गव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहं च सदा तव ॥ २४ ॥

'शिनिप्रवर ! इन क्रोध, लोभ आदिके ही अधीन होकर तुम मुझे अपने बाणोंका निशाना बनाते हो और तुम्हें मैं। वैसे तो तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय रहे हो और मैं भी तुम्हारा सदा ही प्रीतिपात्र रहा हूँ ॥ २४ ॥

स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नो रणाजिरे ॥ २५ ॥

'हम दोनोंके बचपनमें परस्पर जो बर्ताव रहे हैं, उन सबको इस समय मैं याद कर रहा हूँ; परंतु अब इस समराङ्गणमें हमारे वे सभी सद्व्यवहार जीर्ण हो गये हैं ॥

किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाद्य सात्वत ।
तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥
प्रहसन् विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ।

'सात्वत वीर ! आजका यह युद्ध ही क्रोध और लोभके सिवा दूसरा क्या है ?' उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता सात्यकिने हँसते हुए तीखे बाणोंको ऊपर उठाकर वहाँ पूर्वोक्त बातें करनेवाले दुर्योधनको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ २६½ ॥

नेयं सभा राजपुत्र नाचार्यस्य निवेशनम् ॥ २७ ॥
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन् समागतैः ।

'राजकुमार ! कौरवनरेश ! न तो यह सभा है और न आचार्यका घर ही है जहाँ एकत्र होकर हम सब लोग खेला करते थे' ॥ २७½ ॥

का फल गायकी हड्डीका बना हो, वह 'गवास्थिज' और जिसका हाथीकी हड्डीका बना हो, वह 'गजास्थिज' कहलाता है। इसका असर भी विषलिप्त बाणके समान ही होता है।

दुर्योधन उवाच

क सा क्रीडा गतास्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥ २८ ॥
क च युद्धमिदं भूयः 'कालो हि दुरतिक्रमः' ।

दुर्योधन बोला—शिनिप्रवर ! हमारा बचपनका वह खेल कहाँ चला गया और फिर यह युद्ध कहाँसे आ धमका ? हाय ! कालका उल्लंघन करना अत्यन्त ही कठिन है ॥

किं नु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥
यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात् समागताः ।

हमें धनसे या धन पानेकी इच्छासे क्या प्रयोजन है ? जो हम सब लोग यहाँ धनके लोभसे एकत्र होकर जूझ रहे हैं ॥ २९½ ॥

संजय उवाच

तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
एवंवृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजन् जहि मां मा चिरं कृथाः ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसी बात कहनेवाले राजा दुर्योधनसे सात्यकिने इस प्रकार कहा—'राजन् ! क्षत्रियोंका सनातन आचार ही ऐसा है कि वे यहाँ गुरुजनोंके साथ भी युद्ध करते हैं । यदि मैं तुम्हारा प्रिय हूँ तो तुम मुझे शीघ्र मार डालो, विलम्ब न करो ॥ ३०–३१ ॥

त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान् गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत् क्षिप्रं मयि दर्शय ॥ ३२ ॥
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऐसा करनेपर मैं पुण्यवानोंके लोकोंमें जाऊँगा । तुममें जितनी शक्ति और बल है, वह सब शीघ्र मेरे ऊपर दिखाओ; क्योंकि मैं अपने मित्रोंका वह महान् संकट नहीं देखना चाहता हूँ' ॥ ३२½ ॥

इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ॥ ३३ ॥
अभ्ययात् तूर्णमव्यग्रो दयां नाकुरुतात्मनि ।

इस प्रकार स्पष्ट बोलकर दुर्योधनकी बातका उत्तर दे सात्यकि निःशङ्क होकर तुरंत आगे बढ़े, उन्होंने अपने ऊपर दया नहीं दिखायी ॥ ३३½ ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात् तवात्मजः ॥ ३४ ॥
शरैश्चावाकिरद् राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।

राजन् ! सामने आते हुए उन महाबाहु सात्यकिको आपके पुत्रने रोका और उन्हें बाणोंसे ढक दिया ॥ ३४½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥ ३५ ॥
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।

तदनन्तर हाथी और सिंहके समान क्रोधमें भरे हुए उन कुरुवंशी और मधुवंशी सिंहोंमें परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ ३५½ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत् कुपितो दशभिः शरैः ।

तत्पश्चात् कुपित हुए दुर्योधनने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये दस बाणोंद्वारा रणदुर्मद सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ३६½ ॥

तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥
पञ्चाशता पुनश्चाजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।

इसी प्रकार सात्यकिने भी युद्धस्थलमें पहले पचास, फिर तीस और फिर दस बाणोंद्वारा दुर्योधनको बींध डाला और उसे भी अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥

सात्यकिं तु रणे राजन् प्रहसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः ।

राजन् ! तब हँसते हुए आपके पुत्रने धनुषको कानतक खींचकर छोड़े हुए तीस तीखे बाणोंद्वारा रणभूमिमें सात्यकिको क्षत-विक्षत कर डाला ॥ ३८½ ॥

ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥ ४० ॥

इसके बाद उसने क्षुरप्रसे सात्यकिके बाणसहित धनुषको काटकर उसके दो टुकड़े कर डाले । तब सात्यकिने दूसरा सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए वहाँ आपके पुत्रपर बाणोंकी श्रेणियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं ॥ ३९–४० ॥

तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुकुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥

वधके लिये अपने ऊपर सहसा आती हुई उन बाण-पंक्तियोंके राजा दुर्योधनने अनेक टुकड़े कर डाले; इससे सब लोग हर्षध्वनि करने लगे ॥ ४१ ॥

सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥ ४२ ॥

फिर शिलापर साफ किये हुए सुनहरी पाँखवाले तिहत्तर बाणोंसे, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये थे, दुर्योधनने वेगपूर्वक सात्यकिको पीड़ित कर दिया ॥४२॥

तस्य संदधतश्चेषुं संहितेषुं च कार्मुकम् ।
अच्छिनत् सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाप्यवीविधत् ॥ ४३ ॥

तब सात्यकिने संधान करते हुए दुर्योधनके बाणको और जिसपर वह बाण रक्खा गया था उस धनुषको तुरंत ही काट डाला तथा बहुत-से बाण मारकर दुर्योधनको भी घायल कर दिया ॥ ४३ ॥

स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद् रथान्तरे ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥ ४४ ॥

महाराज ! उस समय दुर्योधन सात्यकिके बाणोंसे गहरी चोट खाकर पीड़ित एवं व्यथित हो उठा और रथके भीतर चला गया ॥ ४४ ॥

समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४५ ॥

फिर धीरे-धीरे कुछ आराम मिलनेपर आपका पुत्र पुनः सात्यकिपर चढ़ आया और उनके रथपर बाणोंके जाल बिछाने लगा ॥ ४५ ॥

तथैव सात्यकिर्बाणान् दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन् राजंस्तत् संकुलमवर्तत ॥ ४६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार सात्यकि भी दुर्योधनके रथपर निरन्तर बाण-वर्षा करने लगे । इससे वह संग्राम संकुल (घमासान) युद्धके रूपमें परिणत हो गया ॥ ४६ ॥

तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षे शब्दः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥

वहाँ चलाये गये बाण जब देहधारियोंके ऊपर पड़ते थे, उस समय सूखे बाँस आदिके भारी ढेरमें लगी हुई आगके समान बड़े जोरसे शब्द होता था ॥ ४७ ॥

तयोः शरसहस्रैश्च संछन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥

उन दोनोंके हजारों बाणोंसे पृथ्वी ढक गयी और आकाशमें भी बाणोंके कारण (पक्षियोंतकका) चलना-फिरना बंद हो गया ॥ ४८ ॥

तत्राप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत् कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९ ॥

उस युद्धमें महारथी सात्यकिको प्रबल होते देख कर्ण आपके पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही बीचमें कूद पड़ा ॥४९॥

न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन् सायकान् बहून् ॥५०॥

परंतु महाबली भीमसेन उसका यह कार्य सहन न कर सके, अतः बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्होंने तुरंत ही कर्णपर धावा किया ॥ ५० ॥

तस्य कर्णः शितान् बाणान् प्रतिहत्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः ॥ ५१ ॥

तब कर्णने हँसते हुए-से उनके तीखे बाणोंको नष्ट करके धनुष और बाण भी काट डाले; फिर अनेक बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी मार डाला ॥ ५१ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाहवे रिपोः ॥ ५२ ॥

इससे अत्यन्त कुपित होकर पाण्डुनन्दन भीमसेनने गदा हाथमें ले ली और उसके द्वारा युद्धस्थलमें शत्रुके ध्वज, धनुष और सारथिको भी कुचल डाला ॥ ५२ ॥

रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः ।
भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥ ५३ ॥

इतना ही नहीं, महाबली भीमने कर्णके रथका एक पहिया भी तोड़ डाला तो भी कर्ण टूटे पहियेवाले उस रथपर गिरिराजके समान अविचल भावसे खड़ा रहा ॥ ५३ ॥

एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।
एकचक्रमिवार्कस्य रथं सप्त हया यथा ॥ ५४ ॥

कर्णके घोड़े उसके एक पहियेवाले रथको बहुत देरतक ढोते रहे, मानो सूर्यके सात अश्व उनके एक चक्रवाले रथको खींच रहे हैं ॥ ५४ ॥

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ५५ ॥

कर्णको भीमसेनका यह पराक्रम सहन नहीं हुआ । वह नाना प्रकारके बाणसमूहों तथा अनेकानेक शस्त्रोंसे रणभूमिमें उनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५५ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत् ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान् मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान् ।

इससे भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे और सूतपुत्र कर्णके साथ घोर युद्ध करने लगे । इस प्रकार जब वह युद्ध चल रहा था, उसी समय क्रोधमें भरे हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाञ्चालोंके नरव्याघ्र वीरों और पुरुषरत्न मत्स्यदेशीय योद्धाओंसे कहा—॥ ५६½ ॥

ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥ ५७ ॥
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ।
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥

'जो पुरुषशिरोमणि महारथी योद्धा हमारे प्राण और मस्तक हैं, वे ही धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ जूझ रहे हैं, फिर तुम सब लोग मूर्ख और अचेत मनुष्योंके समान यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥ ५७–५८ ॥

तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ।
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥ ५९ ॥

'वहाँ जाओ, जहाँ ये मेरे सब रथी क्षत्रियधर्मको सामने रखकर निश्चिन्त भावसे युद्ध कर रहे हैं ॥ ५९ ॥

जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ ।
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥
हता वा देवसाद् भूत्वा लोकान् प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।

'तुमलोग विजयी होओ अथवा मारे जाओ, दोनों ही दशाओंमें उत्तम गति प्राप्त करोगे ॥ जीतकर तो तुम प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त बहुसंख्यक यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करो अथवा मारे जानेपर देवरूप होकर बहुत-से पुण्यलोक प्राप्त करो' ॥ ६०½ ॥

ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥ ६१ ॥
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।

राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार प्रेरित हो उन वीर महारथियोंने युद्धके लिये उद्यत होकर क्षत्रियधर्मको सामने रखते हुए बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ६१½ ॥

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतः पर्यवारयन् ।

एक ओरसे पाञ्चाल वीर तीखे बाणोंसे द्रोणाचार्यको मारने लगे और दूसरी ओरसे भीमसेन आदि वीरोंने उन्हें घेर रक्खा था ॥ ६२½ ॥

आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥ ६३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनंजयम् ।
अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरून् द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥

पाण्डवोंके तीन महारथी कुछ कुटिल स्वभावके थे—नकुल, सहदेव और भीमसेन । इन तीनोंने अर्जुनको पुकारा—'अर्जुन ! दौड़ो, दौड़ो और शीघ्र ही द्रोणाचार्यके पाससे इन कौरवोंको भगाओ ॥ ६३-६४ ॥

तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् ।
कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥ ६५ ॥

'जब इनके रक्षक मारे जायँगे, तभी पाञ्चाल वीर इन्हें मार सकेंगे ।' तब अर्जुनने सहसा कौरवयोद्धाओंपर आक्रमण किया ॥ ६५ ॥

पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥

भारत ! उधरसे द्रोणने धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंपर ही धावा किया । उस पाँचवें दिनके युद्धमें वे सभी वीर वेगपूर्वक एक दूसरेको रौंदने लगे ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१८९॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका घोर कर्म, ऋषियोंका द्रोणको अस्त्र त्यागनेका आदेश तथा अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर द्रोणका जीवनसे निराश होना

संजय उवाच

पञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत् कदनं महत् ।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने कुपित होकर रणभूमिमें पाञ्चालोंका उसी प्रकार संहार आरम्भ किया, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने दानवोंका विनाश किया था ॥ १ ॥

द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नात्रसन्त रणे द्रोणात् सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यके अस्त्रसे मारे जानेवाले शत्रुदलके महारथी वीर बड़े धैर्यशाली थे, अतः वे रणभूमिमें उनसे तनिक भी भयभीत न हुए ॥ २ ॥

युध्यमाना महाराज पञ्चालाः सृंजयास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! युद्धपरायण पाञ्चाल और सृंजय महारथी संग्राममें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते हुए उन्हींकी ओर बढ़े आ रहे थे ॥ ३ ॥

तेषां तु च्छाद्यमानानां पञ्चालानां समन्ततः ।
अभवद् भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४ ॥

बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो सब ओरसे मारे जानेवाले पाञ्चाल वीरोंका भयंकर आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥ ४ ॥

वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत् ॥ ५ ॥

संग्राममें जब इस प्रकार महामनस्वी द्रोणाचार्यके द्वारा पाञ्चाल सैनिक मारे जाने लगे और आचार्य द्रोणके अस्त्र लगातार बरसने लगे, तब पाण्डवोंके मनमें बड़ा भय समा गया ॥ ५ ॥

दृष्ट्वाश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि ।
पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जयं तदा ॥ ६ ॥

महाराज ! युद्धस्थलमें घोड़ों और मनुष्य-योद्धाओंका वह महान् विनाश देखकर पाण्डवोंकी अपनी विजयकी आशा जाती रही ॥ ६ ॥

कच्चिद् द्रोणो न नः सर्वान् क्षपयेत् परमास्त्रवित् ।
समिद्धः शिशिरापाये दहन् कक्षमिवानलः ॥ ७ ॥

(वे सोचने लगे—) 'जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें प्रज्वलित अग्नि सूखे जंगल या घास-फूसको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता आचार्य द्रोण कहीं हम सब लोगोंका संहार न कर डालें ॥ ७ ॥

न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥

'रणभूमिमें दूसरा कोई योद्धा उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं है (युद्ध करना तो दूरकी बात है) और धर्मके

ज्ञाता अर्जुन कदापि उनके साथ (मन लगाकर) युद्ध नहीं करेंगे' ॥ ८ ॥

त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्।
मतिमाञ्छ्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

कुन्तीके पुत्रोंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित एवं भयभीत देखकर उनके कल्याणमें लगे हुए बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

नैष युद्धे न संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन ।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १० ॥

'पार्थ ! ये द्रोणाचार्य सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं, जबतक इनके हाथोंमें धनुष रहेगा, तबतक इन्हें युद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी किसी प्रकार जीत नहीं सकते ॥ १० ॥

न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥ ११ ॥
यथा वः संयुगे सर्वान् न हन्याद् रुक्मवाहनः ।

'जब ये संग्राममें हथियार डाल देंगे, तभी मनुष्योंद्वारा मारे जा सकते हैं । अतः पाण्डवो ! 'गुरुका वध करना उचित नहीं है' इस धर्मभावनाको छोड़कर उनपर विजय पानेके लिये कोई यत्न करो; जिससे सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य तुम सब लोगोंका वध न कर डालें ॥ ११½ ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः ।

'मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं कर सकते । कोई मनुष्य उनसे जाकर कहे कि 'युद्धमें अश्वत्थामा मारा गया'' ॥ १२½ ॥

एतन्नारोचयद् राजन् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १३ ॥
अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।

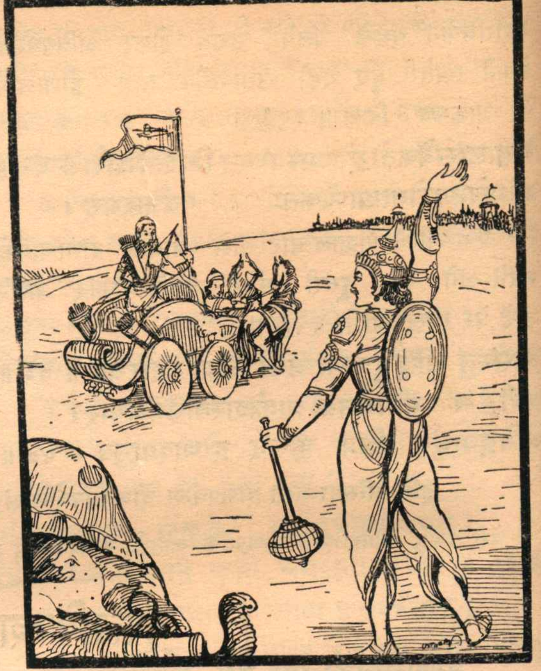
राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुनको यह बात अच्छी नहीं लगी, किंतु अन्य सब लोगोंने इस युक्तिको पसंद कर लिया । केवल कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बड़ी कठिनाईसे इस बातपर राजी हुए ॥ १३½ ॥

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत ।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ १५ ॥

राजन् ! तब महाबाहु भीमसेनने अपनी ही सेनाके एक विशाल हाथीको गदासे मार डाला । उसका नाम था अश्वत्थामा । शत्रुओंको मथ डालनेवाला वह भयंकर गजराज मालवाके राजा इन्द्रवर्माका था ॥ १४-१५ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे ।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ १६ ॥

उसे मारकर भीमसेन लजाते-लजाते युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यके पास गये और बड़े जोरसे बोले—'अश्वत्थामा मारा गया' ॥ १६ ॥



अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् ।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ १७ ॥

'अश्वत्थामा' नामसे विख्यात हाथी मारा गया था, उसीको मनमें रखकर भीमसेनने उस समय वह झूठी बात कही थी ॥ १७ ॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमाप्रियम् ।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद् यथा सैकतमम्भसि ॥ १८ ॥

भीमसेनका वह अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन शोकसे व्याकुल हो सन्न रह गये । जैसे पानी पड़ते ही बालू गल जाता है, उसी प्रकार उस दुःखद संवादसे उनका सारा शरीर शिथिल हो गया ॥ १८ ॥

शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै ।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥

फिर उनके मनमें यह संदेह हुआ कि सम्भव है, यह बात झूठी हो; क्योंकि वे अपने पुत्रके बल-पराक्रमको जानते थे; अतः उसके मारे जानेकी बात सुनकर भी धैर्यसे विचलित न हुए ॥ १९ ॥

स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् ।
अनुचिन्त्यात्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ २० ॥

उनके मनमें बारंबार यह विचार आया कि मेरा पुत्र तो शत्रुओंके लिये असह्य है; अतः क्षणभरमें ही सचेत होकर उन्होंने अपने आपको सँभाल लिया ॥ २० ॥

स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः ।
अवाकिरत् सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् अपनी मृत्युस्वरूप धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे वे उसपर टूट पड़े और कङ्कपत्रयुक्त सहस्रों तीखे बाणोंद्वारा उन्हें आच्छादित करने लगे ॥ २१ ॥

तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां नरर्षभाः ।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः ॥ २२ ॥

इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए द्रोणाचार्यपर बीस हजार नरश्रेष्ठ पाञ्चाल-वीर सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

शरैस्तैराचितं द्रोणं नापश्याम महारथम् ।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥ २३ ॥

प्रजानाथ ! जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी घटासे आच्छादित हुए सूर्य नहीं दिखायी देते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंके ढेरसे दबे हुए महारथी द्रोणको हमलोग नहीं देख पाते थे ॥ २३ ॥

विधूय तान् बाणगणान् पञ्चालानां महारथः ।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परंतपः ॥ २४ ॥
वधाय तेषां शूराणां पञ्चालानाममर्षितः ।

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले महारथी द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंके उन बाण-समूहोंको नष्ट करके शूरवीर पाञ्चालोंके वधके लिये अमर्षयुक्त होकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ २४½ ॥

ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन् सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥
शिरांस्यपातयच्चापि पञ्चालानां महामृधे ।
तथैव परिघाकारान् बाहून् कनकभूषणान् ॥ २६ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सैनिकोंका विनाश करते हुए द्रोणाचार्यकी बड़ी शोभा होने लगी । उन्होंने उस महासमरमें पाञ्चालवीरोंके मस्तक और सुवर्णभूषित परिघ-जैसी मोटी भुजाएँ काट गिरायीं ॥ २५-२६ ॥

ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः ।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥

समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके द्वारा मारे जानेवाले वे पाञ्चाल-नरेश आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धरतीपर बिछ गये ॥ २७ ॥

कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २८ ॥

भरतनन्दन ! धराशायी होते हुए हाथियों और अश्व-समूहोंके मांस तथा रक्तसे कीच जम जानेके कारण वहाँकी भूमिपर चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ २८ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान् पञ्चालानां रथव्रजान् ।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २९ ॥

उस समय पाञ्चालोंके बीस हजार रथियोंका संहार करके द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान खड़े थे ॥ २९ ॥

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ ३० ॥

प्रतापी भरद्वाजनन्दनने पुनः पूर्ववत् कुपित होकर एक भल्लके द्वारा वसुदानका मस्तक धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

पुनः पञ्चशतान् मत्स्यान् षट्सहस्रांश्च सृंजयान् ।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥ ३१ ॥

इसके बाद मत्स्यदेशके पचास योद्धाओंका, सृंजयवंशके छः हजार सैनिकोंका तथा दस हजार हाथियोंका संहार करके उन्होंने पुनः दस हजार घुड़सवारोंकी सेनाका सफाया कर दिया ॥ ३१ ॥

क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये उद्यत देख तुरंत ही अग्निदेवको आगे करके बहुत-से महर्षि वहाँ आये ॥ ३२ ॥

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ३३ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि—ये सब लोग उन्हें ब्रह्मलोक ले जानेकी इच्छासे वहाँ पधारे थे ॥ ३३ ॥

सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ३४ ॥

साथ ही सिकत, पृश्नि, गर्ग, सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले वालखिल्य, भृगु, अङ्गिरा तथा अन्य सूक्ष्मरूप-धारी महर्षि भी वहाँ आये थे ॥ ३४ ॥

त एनमब्रुवन् सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् ।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥ ३५ ॥
न्यस्यायुधं रणे द्रोण समीक्षास्मानवस्थितान् ।
नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहार्हसि ॥ ३६ ॥

उन सबने संग्राममें शोभा पानेवाले द्रोणाचार्यसे इस प्रकार कहा—'द्रोण ! तुम हथियार नीचे डालकर यहाँ खड़े हुए हमलोगोंकी ओर देखो । अबतक तुमने अधर्मसे युद्ध किया है, अब तुम्हारी मृत्युका समय आ गया है, इसलिये अब फिर यह क्रूरतापूर्ण कर्म न करो ॥ ३५-३६ ॥

वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३७ ॥

'तुम वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् हो, विशेषतः सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण हो, तुम्हारे लिये यह क्रूर कर्म शोभा नहीं देता ॥ ३७ ॥

त्यजायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ३८ ॥

'अमोघ बाणवाले द्रोणाचार्य ! अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर दो और अपने सनातन मार्गपर स्थित हो जाओ । आज इस मनुष्य-लोकमें तुम्हारे रहनेका समय पूरा हो गया ॥३८॥

ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३९ ॥

'इस भूतलपर जो लोग ब्रह्मास्त्र नहीं जानते थे, उन्हें भी तुमने ब्रह्मास्त्रसे ही दग्ध किया है। ब्रह्मन् ! तुमने जो ऐसा कर्म किया है, यह कदापि उत्तम नहीं है ॥ ३९ ॥

न्यस्यायुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः।
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥

'विप्रवर द्रोण ! रणभूमिमें अपना अस्त्र-शस्त्र रख दो, इस कार्यमें विलम्ब न करो। ब्रह्मन् ! अब फिर ऐसा अत्यन्त पापपूर्ण कर्म न करना' ॥ ४० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत्।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ॥ ४१ ॥

उन ऋषियोंकी यह बात सुनकर, भीमसेनके कथनपर विचार कर और रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको सामने देखकर आचार्य द्रोणका मन उदास हो गया ॥ ४१ ॥

संदिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥

वे संदेहमें पड़े हुए थे, अतः उन्होंने व्यथित होकर अपने पुत्रके मारे जाने या नहीं मारे जानेका समाचार कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे पूछा ॥ ४२ ॥

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम्।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४३ ॥

द्रोणाचार्यके मनमें यह दृढ़ विश्वास था कि कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी किसी प्रकार झूठ नहीं बोलेंगे ॥ ४३ ॥

तस्मात् तं परिपप्रच्छ नान्यं कश्चिद् द्विजर्षभः।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे ॥४४॥

अतः उन द्विजश्रेष्ठने उन्हींसे वह बात पूछी, दूसरे किसीसे नहीं; क्योंकि बचपनसे ही पाण्डुपुत्रकी सचाईमें आचार्यका विश्वास था ॥ ४४ ॥

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम्।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत्॥४५॥

उस समय योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोण इस पृथ्वीको पाण्डव-रहित कर डालनेके लिये उद्यत थे। उनका यह विचार जानकर भगवान् श्रीकृष्णने व्यथित हो धर्मराज युधिष्ठिर-से कहा–॥ ४५ ॥

यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ४६ ॥

'राजन् ! यदि क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्य आधे दिन भी युद्ध करते रहें, तो मैं सच कहता हूँ, तुम्हारी सेनाका सर्वनाश हो जायगा ॥ ४६ ॥

स भवांस्त्रातु नो द्रोणात् सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः।
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥

'अतः तुम द्रोणसे हमलोगोंको बचाओ; इस अवसर-पर असत्यभाषणका महत्त्व सत्यसे भी बढ़कर है । किसीकी प्राणरक्षाके लिये यदि कदाचित् असत्य बोलना पड़े तो उस बोलनेवालेको झूठका पाप नहीं लगता' ॥ ४७ ॥

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ४९ ॥
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति।
नूनं नाश्रद्दधद् वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ५१ ॥

वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि भीमसेन बोल उठे–'महाराज ! महामना द्रोणके वधका ऐसा उपाय सुनकर मैंने आपकी सेनामें विचरनेवाले मालव-नरेश इन्द्र-वर्माके अश्वत्थामानामसे विख्यात गजराजको, जो ऐरावतके समान शक्तिशाली था, युद्धमें पराक्रम करके मार डाला। फिर द्रोणाचार्यके पास जाकर कहा–'ब्रह्मन् ! अश्वत्थामा मारा गया, अब युद्धसे निवृत्त हो जाइये।' परंतु इन पुरुष-प्रवर द्रोणने निश्चय ही मेरी बातपर विश्वास नहीं किया है ॥ ४८–५१ ॥

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ॥ ५२ ॥

'नरेश्वर ! अतः आप विजय चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी बात मान लीजिये और द्रोणाचार्यसे कह दीजिये कि 'अश्वत्थामा मारा गया' ॥ ५२ ॥

त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन् द्विजर्षभः।
सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप ॥

'राजन् ! जनेश्वर ! आपके कह देनेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोण कदापि युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि आप तीनों लोकोंमें सत्यवादीके रूपमें विख्यात हैं' ॥ ५३ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४ ॥

'महाराज ! भीमकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके आदेशसे प्रेरित हो भावीवश राजा युधिष्ठिर वह झूठी बात कहनेको तैयार हो गये ॥ ५४ ॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
(अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ।)
अव्यक्तमब्रवीद् राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५५ ॥

एक ओर तो वे असत्यके भयमें डूबे हुए थे और दूसरी ओर विजयकी प्राप्तिके लिये भी आसक्तिपूर्वक प्रयत्नशील थे; अतः राजन् ! उन्होंने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह बात तो उच्चस्वरसे कही, परंतु 'हाथीका वध हुआ है,' यह बात धीरेसे कही ॥ ५५ ॥

तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ॥ ५६ ॥

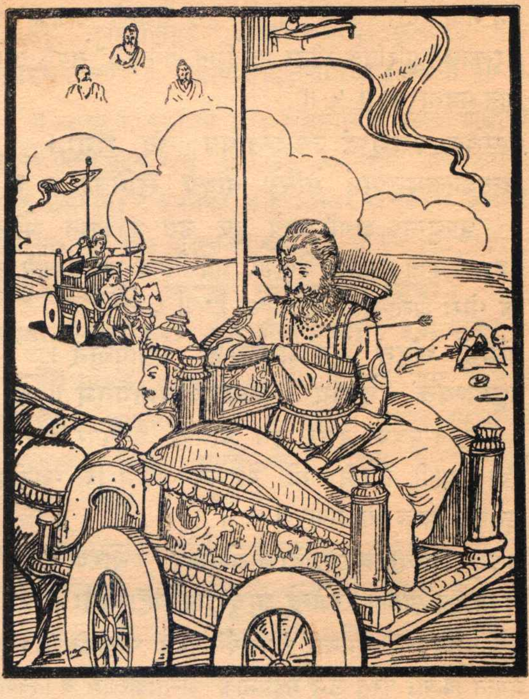
इसके पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे रहा करता था, किंतु उस दिन उनके इस प्रकार असत्य बोलते ही उनके रथके घोड़े धरतीका स्पर्श करके चलने लगे ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिरात् तु तद् वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसंतप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरके मुँहसे यह वचन सुनकर महारथी द्रोणाचार्य पुत्रशोकसे संतप्त हो अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ ५७ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥ ५८ ॥

अपने पुत्रके मारे जानेकी बात सुनकर महर्षियोंके कथनानुसार वे अपने आपको महात्मा पाण्डवोंका अपराधी-सा मानने लगे ॥ ५८ ॥



विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाशक्नुवद् राजन् यथापूर्वमरिंदमः ॥ ५९ ॥

उनकी चेतनाशक्ति लुप्त होने लगी । वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठे । राजन् ! उस समय धृष्टद्युम्नको सामने देखकर भी शत्रुओंका दमन करनेवाले द्रोणाचार्य पूर्ववत् युद्ध न कर सके ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें युधिष्ठिरका असत्यभाषणविषयक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ५९½ श्लोक हैं)

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिकी शूरवीरता और प्रशंसा

संजय उवाच

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १ ॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! राजा द्रुपदने एक महान् यज्ञमें देवाराधन करके द्रोणाचार्यका विनाश करनेके लिये प्रज्वलित अग्निसे जिस पुत्रको प्राप्त किया था, उस पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नने जब देखा कि आचार्य द्रोण बड़े उद्विग्न हैं और उनका चित्त शोकसे व्याकुल है, तब उन्होंने उनपर धावा कर दिया ॥ १-२ ॥

स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाशीविषोपमम् ॥ ३ ॥
संदधे कार्मुके तस्मिंस्तस्तमनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवानलम् ॥ ४ ॥

उस पाञ्चालपुत्रने द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा रखकर सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त, मेघगर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले, कभी जीर्ण न होनेवाले, भयंकर तथा विजयशील दिव्य धनुष हाथमें लेकर उसके ऊपर विषधर सर्पके समान भयदायक और प्रचण्ड लपटोंवाले अग्निके तुल्य तेजस्वी एक बाण रक्खा ॥ ३-४ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीद् धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।

द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥ ५ ॥

धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेसे जो मण्डलाकार घेरा बन गया था, उसके भीतर उस तेजस्वी बाणका रूप शरत्कालमें परिधिके भीतर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ ५ ॥

पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद् धनुः ।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६ ॥

धृष्टद्युम्नके हाथमें आये हुए उस प्रज्वलित अग्निके सदृश तेजस्वी धनुषको देखकर सब सैनिक यह समझने लगे कि 'मेरा अन्तकाल आ पहुँचा है' ॥ ६ ॥

तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् ।
दृष्ट्वामन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ७ ॥

द्रुपद-पुत्रके द्वारा उस बाणको धनुषपर रखा गया देख प्रतापी द्रोणने भी यह मान लिया कि 'अब इस शरीरका काल आ गया' ॥ ७ ॥

ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे ।
न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ८ ॥

राजेन्द्र ! तदनन्तर आचार्यने उस अस्त्रको रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु उन महात्माके अन्तःकरणमें वे दिव्यास्त्र पूर्ववत् प्रकट न हो सके ॥ ८ ॥

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता ।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः ॥ ९ ॥

उनके निरन्तर बाण चलाते चार दिन और एक रातका समय बीत चुका था । उस दिनके पंद्रह भागोंमेंसे तीन ही भागमें उनके सारे बाण समाप्त हो गये ॥ ९ ॥

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः ।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥ १० ॥
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः ।
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥ ११ ॥

बाणोंके समाप्त हो जानेसे पुत्रशोकसे पीड़ित हुए द्रोणाचार्य नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंके प्रकट न होनेसे महर्षियोंकी आज्ञा मानकर अब हथियार डाल देनेको उद्यत हो गये; इसीलिये तेजसे परिपूर्ण होनेपर भी वे पूर्ववत् युद्ध नहीं करते थे ॥ १०-११ ॥

भूयश्चान्यत् समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः ।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान् धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥

इसके बाद द्रोणाचार्यने पुनः आङ्गिरस नामक दिव्य धनुष तथा ब्रह्मदण्डके समान बाण हाथमें लेकर धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १२ ॥

ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥

उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर अमर्षमें भरे हुए धृष्टद्युम्नको अपनी भारी बाणवर्षासे ढक दिया और उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १३ ॥

शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाप्यपातयत् ॥ १४ ॥

इतना ही नहीं, द्रोणाचार्यने अपने तीखे बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्नके बाण, ध्वज और धनुषके सैकड़ों टुकड़े कर डाले और सारथिको भी मार गिराया ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत् पुनरादाय कार्मुकम् ।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ १५ ॥

तब धृष्टद्युम्नने हँसकर फिर दूसरा धनुष उठाया और तीखे बाणद्वारा आचार्यकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसम्भ्रान्त इव संयुगे ।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य पुनर्धनुः ॥ १६ ॥

युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होकर भी महाधनुर्धर द्रोणने बिना किसी घबराहटके तीखी धारवाले भल्लसे पुनः उनका धनुष काट दिया ॥ १६ ॥

यच्चास्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते ।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥ १७ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके जो-जो बाण, तरकस और धनुष आदि थे, उनमेंसे गदा और खड्गको छोड़कर शेष सारी वस्तुओंको दुर्धर्ष द्रोणाचार्यने काट डाला ॥ १७ ॥

धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
जीवितान्तकरैः क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ १८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणने कुपित होकर क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्नको नौ प्राणान्तकारी तीक्ष्ण बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १८ ॥

धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः ।
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी धृष्टद्युम्नने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करनेके लिये अपने रथके घोड़ोंको आचार्यके घोड़ोंसे मिला दिया ॥ १९ ॥

ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्वा भरतर्षभ ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे वायुके समान वेगशाली, कबूतरके समान रंगवाले और लाल घोड़े परस्पर मिलकर बड़ी शोभा पाने लगे ॥ २० ॥

यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे ।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१ ॥

महाराज ! जैसे वर्षाकालमें गर्जते हुए विद्युत्सहित

मेघ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार युद्धके मुहानेपर परस्पर मिले हुए वे घोड़े शोभा पाते थे ॥ २१ ॥

ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ २२ ॥

उस समय अमेय बलसम्पन्न विप्रवर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथके ईषाबन्ध, चक्रबन्ध तथा रथबन्धको नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३ ॥

धनुष, ध्वज और सारथिके नष्ट हो जानेपर भारी विपत्तिमें पड़कर पाञ्चालराजकुमार वीर धृष्टद्युम्नने गदा उठायी ॥ २३ ॥

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥

उसके द्वारा चलायी जानेवाली उस गदाको सत्य-पराक्रमी महारथी द्रोणने कुपित हो बाणोंद्वारा नष्ट कर दिया ॥ २४ ॥

तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २५ ॥

उस गदाको द्रोणाचार्यके बाणोंसे नष्ट हुई देख पुरुष-सिंह धृष्टद्युम्नने सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकीली ढाल और चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली ॥ २५ ॥

असंशयं तथाभूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥

उस अवस्थामें पाञ्चालराजकुमारने यह निःसंदेह ठीक मान लिया कि अब आचार्यप्रवर महात्मा द्रोणके वधका समय आ पहुँचा है ॥ २६ ॥

ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २७ ॥

उस समय उन्होंने तलवार और सौ चन्द्रचिह्नोंवाली ढाल लेकर अपने रथकी ईषाके मार्गसे रथकी बैठकमें बैठे हुए द्रोणपर आक्रमण किया ॥ २७ ॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् महारथी धृष्टद्युम्नने दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे उस रणभूमिमें आचार्य द्रोणकी छातीमें तलवार भोंक देनेका विचार किया ॥ २८ ॥

सोऽतिष्ठद् युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत् सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥

वे रथके जूएके ठीक बीचमें, जूएके बन्धनोंपर और द्रोणाचार्यके घोड़ोंके पिछले भागोंपर पैर जमाकर खड़े हो गये । उनके इस कार्यकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९ ॥

तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥

वे जूएके मध्यभागमें और द्रोणाचार्यके लाल घोड़ोंकी पीठपर पैर रखकर खड़े थे । उस अवस्थामें द्रोणाचार्यको उनके ऊपर प्रहार करनेका कोई अवसर ही नहीं दिखायी देता था, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३० ॥

क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥

जैसे मांसके टुकड़ेके लोभसे विचरते हुए बाजका बड़े वेगसे आक्रमण होता है, उसी प्रकार रणभूमिमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके परस्पर वेगपूर्वक आक्रमण होते थे ॥ ३१ ॥

तस्य पारावतानश्वान् रथशक्त्या पराभिनत् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान् विवर्जयन् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यने लाल घोड़ोंको बचाते हुए रथशक्तिका प्रहार करके बारी-बारीसे कबूतरके समान रंगवाले सभी घोड़ोंको मार डाला ॥ ३२ ॥

ते हता न्यपतन् भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद् विशाम्पते ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके वे घोड़े मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और लाल रंगवाले घोड़े रथके बन्धनसे मुक्त हो गये ॥ ३३ ॥

तान् हयान् निहतान् दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ३४ ॥

विप्रवर द्रोणके द्वारा अपने घोड़ोंको मारा गया देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ पार्षतवंशी महारथी द्रुपदकुमार सहन न कर सके ॥ ३४ ॥

विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वर ।
द्रोणमभ्यपतद् राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥ ३५ ॥

राजन् ! रथहीन हो जानेपर खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न खड्ग हाथमें लेकर द्रोणाचार्यपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे गरुड किसी सर्पपर झपटते हैं ॥ ३५ ॥

तस्य रूपं बभौ राजन् भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! द्रोणके वधकी इच्छा रखनेवाले धृष्टद्युम्नका रूप पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुके वधके लिये उद्यत हुए नृसिंह-रूपधारी भगवान् विष्णुके समान प्रतीत होता था ॥ ३६ ॥



स तदा विविधान् मार्गान् प्रवरांश्चैकविंशतिम्।
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन् रणे ॥ ३७ ॥

कुरुनन्दन ! रणमें विचरते हुए धृष्टद्युम्नने उस समय तलवारके इक्कीस प्रकारके विविध उत्तम हाथ दिखाये ॥ ३७ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम्।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ॥ ३८ ॥
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया ॥ ३९ ॥

उन्होंने ढाल-तलवार लेकर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत, सृत, परिवृत्त, निवृत्त, सम्पात, समुदीर्ण, भारत, कौशिक तथा सात्वत आदि मार्गोंको* अपनी शिक्षाके अनुसार दिखलाया ॥ ३८-३९ ॥

दर्शयन् व्यचरद् युद्धे द्रोणस्यान्तचिकीर्षया।
चरतस्तस्य तान् मार्गान् विचित्रान् खड्गचर्मिणः ॥ ४० ॥
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः।

वे द्रोणाचार्यका अन्त करनेकी इच्छासे युद्धमें तलवारके उपर्युक्त हाथ दिखाते हुए विचर रहे थे। ढाल-तलवार लेकर विचरते हुए धृष्टद्युम्नके उन विचित्र पैंतरोंको देखकर रणभूमिमें आये हुए योद्धा और देवता आश्चर्यचकित हो उठे थे ॥ ४०½ ॥

ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥ ४१ ॥
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः।
ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ४२ ॥
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः।

तदनन्तर, उस युद्ध-संकटके समय विप्रवर द्रोणाचार्यने एक हजार बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी सौ चाँदवाली ढाल और तलवार काट गिरायी। निकटसे युद्ध करते समय उपयोगमें आनेवाले जो एक बित्तेके बराबर वैतस्तिक नामक बाण होते हैं, वे समीपसे भी युद्ध करनेमें कुशल द्रोणाचार्यके ही पास थे, दूसरोंके नहीं ॥ ४१-४२½ ॥

ऋते शारद्वतात् पार्थाद् द्रौणेर्वैकर्तनात् तथा ॥ ४३ ॥
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत।

भारत ! कृपाचार्य, अर्जुन, अश्वत्थामा, वैकर्तन कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि और अभिमन्युको छोड़कर और किसीके पास वैसे बाण नहीं थे ॥ ४३½ ॥

अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम् ॥ ४४ ॥
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसम्मितम्।

तत्पश्चात् पुत्रतुल्य शिष्यको मार डालनेकी इच्छासे आचार्यने धनुषपर परम उत्तम सुदृढ़ बाण रक्खा ॥

तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६ ॥

परंतु उस बाणको शिनिप्रवर सात्यकिने महामना कर्ण और आपके पुत्रके देखते-देखते दस तीखे बाणोंसे काट डाला और आचार्यप्रवरके द्वारा प्राणसंकटमें पड़े हुए धृष्टद्युम्नको छुड़ा लिया ॥ ४५-४६ ॥

चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ॥ ४७ ॥
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनंजयौ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति ॥ ४८ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम्।

भारत ! उस समय सत्यपराक्रमी सात्यकि द्रोण, कर्ण और कृपाचार्यके बीचमें होकर रथके मार्गोंपर विचर रहे

---

* तलवारको मण्डलाकार घुमाना 'भ्रान्त' कहलाता है। वही कार्य बाँह ऊपर उठाकर किया जाय तो उसे 'उद्भ्रान्त' कहा गया है। अपने चारों ओर तलवारको घुमाया जाय तो उसे 'आविद्ध' कहते हैं। ये तीन कार्य शत्रुके चलाये हुए शस्त्रका निवारण करनेके लिये किये जाते हैं, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये जाना 'आप्लुत' माना गया है। तलवारकी नोकसे शत्रुके शरीरका स्पर्श करना 'प्रसृत' कहा गया है। चकमा देकर शत्रुपर शस्त्रका आघात करना 'सृत' बताया गया है। शत्रुके दायें-बायें तलवार चलाना 'परिवृत्त' कहा गया है। पीछे हटना 'निवृत्त' है। दोनों योद्धाओंका परस्पर आघात-प्रत्याघात 'सम्पात' कहलाता है। अपनी विशेषता स्थापित करना 'समुदीर्ण' है। अङ्ग-प्रत्यङ्गमें तलवार भाँजना 'भारत' माना गया है। विचित्र रीतिसे तलवार चलानेकी कला दिखाना 'कौशिक' कहा गया है। अपनेको ढालकी आड़में छिपाकर तलवार चलानेका नाम 'सात्वत' है।

थे। उन्हें उस अवस्थामें महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखा और 'साधु-साधु' कहकर सात्यकिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे युद्धमें अविचल भावसे डटे रहकर समस्त विरोधियोंके दिव्यास्त्रोंका निवारण कर रहे थे ॥ ४७-४८½ ॥

अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनंजयौ ॥ ४९ ॥
धनंजयस्ततः कृष्णमब्रवीत् पश्य केशव।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन् मधूद्वहः ॥ ५० ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुसेनामें टूट पड़े। उस समय अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'केशव! देखिये, यह मधुवंशशिरोमणि सात्यकि आचार्यकी रक्षा करनेवाले मुख्य महारथियोंके बीचमें खेल रहा है ॥ ४९-५० ॥

आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला सात्यकि मुझे बारंबार आनन्द दे रहा है और नकुल, सहदेव, भीमसेन तथा राजा युधिष्ठिरको भी आनन्दित कर रहा है ॥ ५१ ॥

यच्छिक्षयानुद्धतः सन् रणे चरति सात्यकिः।
महारथानुपक्रीडन् वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ ५२ ॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्यकिम्।
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ ५३ ॥

'वृष्णिवंशका यश बढ़ानेवाला सात्यकि उत्तम शिक्षासे युक्त होनेपर भी अभिमानशून्य हो महारथियोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ रणभूमिमें विचर रहा है। इसलिये ये सिद्धगण और सैनिक आश्चर्यचकित हो समराङ्गणमें परास्त न होनेवाले सात्यकिकी ओर देखकर 'साधु-साधु' कहते हुए इसका अभिनन्दन करते हैं और दोनों दलोंके समस्त योद्धाओंने इसके वीरोचित कर्मोंसे प्रभावित हो इसकी बड़ी प्रशंसा की है' ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९१ ॥

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयपक्षके श्रेष्ठ महारथियोंका परस्पर युद्ध, धृष्टद्युम्नका आक्रमण, द्रोणाचार्यका अस्त्र त्यागकर योगधारणाके द्वारा ब्रह्मलोक-गमन और धृष्टद्युम्नद्वारा उनके मस्तकका उच्छेद

संजय उवाच

सात्वतस्य तु तत् कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः।
शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सात्वतवंशी सात्यकिका वह कर्म देखकर दुर्योधन आदि कौरव योद्धा कुपित हो उठे और उन्होंने अनायास ही शिनिपौत्रको सब ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष।
शैनेयं त्वरयाभ्येत्य विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ २ ॥

मान्यवर! समराङ्गणमें कृपाचार्य, कर्ण और आपके पुत्र तुरंत ही सात्यकिके पास पहुँचकर उन्हें पैने बाणोंसे घायल करने लगे ॥ २ ॥

युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
भीमसेनश्च बलवान् सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुकुमार नकुल-सहदेव तथा बलवान् भीमसेनने सात्यकिकी रक्षाके लिये उन्हें अपने बीचमें कर लिया ॥ ३ ॥

कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

कर्ण, महारथी कृपाचार्य और दुर्योधन आदिने बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे सात्यकिको अवरुद्ध कर दिया ॥ ४ ॥

तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम्।
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान् महारथान् ॥ ५ ॥

राजन्! उन महारथियोंके साथ युद्ध करते हुए शिनिपौत्र सात्यकिने सहसा उठी हुई उस भयंकर बाणवर्षाको अपने अस्त्रोंद्वारा रोक दिया ॥ ५ ॥

तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम्।
वारयामास विधिवद् दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥

उन्होंने उस महासमरमें विधिपूर्वक दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके उन महामनस्वी वीरोंके छोड़े हुए दिव्य अस्त्रोंका निवारण कर दिया ॥ ६ ॥

क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन् राजसमागमे।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान् पशून् पुरा ॥ ७ ॥

राजाओंमें वह संघर्ष छिड़ जानेपर उस युद्धस्थलमें क्रूरताका ताण्डव होने लगा। जैसे पूर्व (प्रलय) कालमें क्रोधमें भरे हुए रुद्रदेवके द्वारा पशुओं (प्राणियों) का संहार होते समय निर्दयताका दृश्य उपस्थित हुआ था ॥ ७ ॥

हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत।
छत्राणां चापविद्धानां चामराणां च संचयैः ॥ ८ ॥
शरायः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे।

भारत! कटकर गिरे हुए हाथों, मस्तकों, धनुषों,

छत्रों और चँवरोंके सग्रहोंसे उस समराङ्गणके विभिन्न प्रदेशोंमें उक्त वस्तुओंके ढेर-के-ढेर दिखायी दे रहे थे ॥ ८½ ॥

भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥ ९ ॥
सादिभिश्च हतैः शूरैः संकीर्णा वसुधाभवत्।

टूटे पहियेवाले रथों, गिराये हुए विशाल ध्वजों और मारे गये शूरवीर घुड़सवारोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी ॥ ९½ ॥

बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥ १० ॥
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे।

कुरुश्रेष्ठ ! बाणोंके आघातसे कटे हुए योद्धा उस महासमरमें अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते और छटपटाते दिखायी देते थे ॥ १०½ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥ ११ ॥
अब्रवीत् क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः।
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥

देवासुर-संग्रामके समान जब वह घोर युद्ध चल रहा था, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अपने पक्षके क्षत्रिय योद्धाओंसे इस प्रकार कहा—'महारथियो ! तुम सब लोग पूर्णतः सावधान होकर द्रोणाचार्यपर धावा करो ॥ ११-१२ ॥

एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन संगतः।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ १३ ॥

'ये वीर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके साथ जूझ रहे हैं और उनके विनाशके लिये यथाशक्ति चेष्टा कर रहे हैं ॥ १३ ॥

यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे।
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम्।

'आज महासमरमें इनके जैसे रूप दिखायी देते हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि रणभूमिमें कुपित हुए धृष्टद्युम्न सब प्रकारसे द्रोणाचार्यका वध कर डालेंगे । इसलिये तुम सब लोग एक साथ होकर कुम्भजन्मा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करो' ॥ १४½ ॥

युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥ १५ ॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः।

युधिष्ठिरकी यह आज्ञा पाकर सृंजय महारथी द्रोणाचार्यको मार डालनेकी अभिलाषासे पूर्ण सावधान हो उनपर टूट पड़े ॥ १५½ ॥

तान् समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः।

महारथी द्रोणाचार्यने मरनेका निश्चय करके उन समस्त आक्रमणकारियोंका बड़े वेगसे सामना किया ॥ १६½ ॥

प्रयाते सत्यसंधे तु समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम्।

सत्यप्रतिज्ञ द्रोणाचार्यके आगे बढ़ते ही पृथ्वी काँपने लगी और वज्रपातकी आवाजके साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो सारी सेनाको डरा रही थी ॥ १७½ ॥

पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत॥ १८ ॥
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद् भयम्।

सूर्यमण्डलसे बड़ी भारी उल्का निकलकर दोनों सेनाओंको प्रकाशित करती और महान् भयकी सूचना-सी देती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १८½ ॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥ १९ ॥
रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयाश्चाश्रूण्यवासृजन्।

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यके शस्त्र जलने लगे, रथसे बड़े जोरकी आवाज उठने लगी और घोड़े आँसू बहाने लगे ॥ १९½ ॥

हतौजा इव चाप्यासीद् भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥
प्रास्फुरन्नयनं चास्य वामं बाहुस्तथैव च।

महारथी द्रोणाचार्य उस समय तेजोहीन-से हो रहे थे। उनकी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़क रही थीं ॥२०½॥

विमनाश्चाभवद् युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥

वे युद्धमें अपने सामने धृष्टद्युम्नको देखकर मन-ही-मन उदास हो गये। साथ ही ब्रह्मवादी महर्षियोंके ब्रह्मलोकमें चलनेके सम्बन्धमें कहे हुए वचनोंका स्मरण करके उन्होंने उत्तम युद्धके द्वारा अपने प्राणोंको त्याग देनेका विचार किया ॥ २१-२२ ॥

ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याभिसंवृतः।
निर्दहन् क्षत्रियव्रातान् द्रोणः पर्यचरद् रणे ॥ २३ ॥

तदनन्तर द्रुपदकी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरे हुए द्रोणाचार्य क्षत्रियसमूहोंको दग्ध करते हुए रणभूमिमें विचरने लगे ॥ २३ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः।
दशायुतानि करिणामवधीद् विशिखैः शितैः ॥ २४ ॥

शत्रुमर्दन द्रोणने वहाँ बीस हजार क्षत्रियोंका संहार करके अपने तीखे बाणोंद्वारा एक लाख हाथियोंका वध कर डाला ॥ २४ ॥

सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥

फिर वे क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका सहारा ले बड़ी सावधानीके साथ युद्धभूमिमें खड़े हो गये और

धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २५ ॥

पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ २७ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न रथहीन हो गये थे । उनके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो चुके थे और वे भारी विषादमें डूब गये थे । उस अवस्थामें शत्रुमर्दन बलवान् भीमसेन उन महामनस्वी पाञ्चाल वीरके पास तुरंत आ पहुँचे और उन्हें अपने रथपर बिठाकर द्रोणाचार्यको निकटसे बाण चलाते देख इस प्रकार बोले—॥ २६–२७ ॥

न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग् वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥

'धृष्टद्युम्न ! यहाँ तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो आचार्यके साथ जूझनेका साहस कर सके । अतः तुम पहले उनके वधके लिये ही शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो । तुमपर ही इसका सारा भार रक्खा गया है' ॥ २८ ॥

स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्याददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २९ ॥

भीमसेनके ऐसा कहनेपर महाबाहु धृष्टद्युम्नने उछलकर शीघ्रतापूर्वक सारा भार सहन करनेमें समर्थ सुदृढ़ एवं श्रेष्ठ आयुध धनुषको उठा लिया ॥ २९ ॥

संरब्धश्च शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३० ॥

फिर क्रोधमें भरकर बाण चलाते हुए उन्होंने रणभूमिमें कठिनतासे रोके जानेवाले द्रोणाचार्यको रोक देनेकी इच्छासे उन्हें बाणोंकी वर्षाद्वारा ढक दिया ॥ ३० ॥

तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥

संग्रामभूमिमें शोभा पानेवाले वे दोनों श्रेष्ठ वीर कुपित हो नाना प्रकारके दिव्यास्त्र एवं ब्रह्मास्त्र प्रकट करते हुए एक दूसरेको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ३१ ॥

स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद् रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥ ३२ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें द्रोणाचार्यके सभी अस्त्रोंको नष्ट करके उन्हें अपने महान् अस्त्रोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ३२ ॥

सवसातीञ्छिबींश्चैव बाह्लीकान् कौरवानपि ।
रक्षिष्यमाणान् संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ ३३ ॥

कभी विचलित न होनेवाले पाञ्चालवीरने संग्राममें द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेवाले वसाति, शिबि, बाह्लीक और कौरव योद्धाओंका भी संहार कर डाला ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥

राजन् ! अपने बाणोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशाओंको सब ओरसे आच्छादित करते हुए धृष्टद्युम्न किरणोंद्वारा अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद् भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर उन्हें बाणोंद्वारा घायल कर दिया और पुनः उनके मर्मस्थानोंको गहरी चोट पहुँचायी; इससे उन्हें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३५ ॥

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम् ।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! तब अपने क्रोधको दृढ़तापूर्वक बनाये रखनेवाले भीमसेन द्रोणाचार्यके उस रथसे सटकर उनसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ ३६ ॥

यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ।
स्वकर्मभिरसंतुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ ३७ ॥

'यदि शिक्षित ब्राह्मण अपने कर्मोंसे असंतुष्ट हो परधर्मका आश्रय ले युद्ध न करते तो क्षत्रियोंका यह संहार न होता ॥ ३७ ॥

अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ ३८ ॥

'प्राणियोंकी हिंसा न करनेको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना गया है । उसकी जड़ है ब्राह्मण और आप तो उन ब्राह्मणोंमें भी सबसे उत्तम ब्रह्मवेत्ता हैं ॥ ३८ ॥

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान् हत्वा चान्यान् पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद् ब्रह्मन् पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३९ ॥

'ब्रह्मन् ! ब्रह्मवेत्ता होकर भी आपने स्त्री, धन और पुत्रकी लिप्सासे मूर्ख चाण्डालोंके समान कितने ही म्लेच्छों तथा अन्य नाना प्रकारके क्षत्रियसमूहोंका संहार कर डाला है ॥ ३९ ॥

एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥

'आप अपने एक पुत्रकी जीविकाके लिये विपरीत कर्मका आश्रय ले इस पाप-विद्याके द्वारा स्वधर्मपरायण बहुसंख्यक क्षत्रियोंका वध करके लज्जित कैसे नहीं हो रहे हैं ? ॥ ४० ॥

यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाद्य पतितः शेते पृष्ठे नावेदितस्तव ॥ ४१ ॥
धर्मराजस्य तद् वाक्यं नाभिशङ्कितुमर्हसि ।

'जिसके लिये आपने शस्त्र उठाया, जिसके जीवनकी अभिलाषा रखकर आप जी रहे हैं, वह तो आज पीछे समरभूमिमें गिरकर चिरनिद्रामें सो रहा है और आपको इसकी सूचनातक नहीं दी गयी। धर्मराज युधिष्ठिरके उस कथनपर तो आपको संदेह या अविश्वास नहीं करना चाहिये' ॥ ४१½ ॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद् धनुः ॥ ४२ ॥
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।

भीमसेनके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा द्रोणाचार्य वह धनुष फेंककर अन्य सब अस्त्र-शस्त्रोंको भी त्याग देनेकी इच्छासे इस प्रकार बोले—॥ ४२½ ॥

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ ४३ ॥
संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ ४४ ॥

'कर्ण ! कर्ण ! महाधनुर्धर कृपाचार्य ! और दुर्योधन ! अब तुमलोग स्वयं ही युद्धमें विजय पानेके लिये प्रयत्न करो, यही मैं तुमसे बारंबार कहता हूँ। पाण्डवोंसे तुम लोगोंका कल्याण हो। अब मैं अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर रहा हूँ' ॥ ४३–४४ ॥

इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥ ४५ ॥
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।

महाराज ! यह कहकर उन्होंने वहाँ अश्वत्थामाका नाम ले-लेकर पुकारा। फिर सारे अस्त्र-शस्त्रोंको रणभूमिमें फेंककर वे रथके पिछले भागमें जा बैठे। फिर उन्होंने सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान दे दिया और समाधि लगा ली ॥ ४५½ ॥

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
सशरं तद् धनुर्घोरं संन्यस्याथ रथे ततः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४७ ॥

उनपर प्रहार करनेका वह अच्छा अवसर हाथ लगा जान प्रतापी धृष्टद्युम्न बाणसहित अपने भयंकर धनुषको रथपर ही रखकर तलवार हाथमें ले उस रथसे उछलकर सहसा द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ ४६–४७ ॥

हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशं गतम् ॥ ४८ ॥

उस अवस्थामें द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नके अधीन हुआ देख मनुष्य तथा अन्य प्राणी भी हाहाकार कर उठे ॥ ४८ ॥

हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः ॥ ४९ ॥

वहाँ सबने भारी हाहाकार मचाया और सभी कहने



लगे 'अहो ! धिक्कार है, धिक्कार है'। इधर आचार्य द्रोण भी शस्त्रोंका परित्याग करके परम ज्ञानस्वरूपमें स्थित हो गये ॥ ४९ ॥

तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ ५० ॥

वे महातपस्वी द्रोण पूर्वोक्त बात कहकर योगका आश्रय ले ज्योतिःस्वरूप परब्रह्मसे अभिन्नताका अनुभव करते हुए मन-ही-मन सर्वोत्कृष्ट पुराणपुरुष भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे ॥ ५० ॥

मुखं किंचित् समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥ ५१ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥
दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात् सद्भिर्दुराक्रमाम् ।

उन्होंने मुँहको कुछ ऊपर उठाकर छातीको आगेकी ओर स्थिर किया। फिर विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो नेत्र बंद करके हृदयमें धारणाको दृढ़तापूर्वक धारण किया। साथ ही 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करते हुए वे महातपस्वी आचार्य द्रोण प्रणवके अर्थभूत देवदेवेश्वर अविनाशी परम प्रभु परमात्माका चिन्तन करते-करते ज्योतिःस्वरूप हो साक्षात् उस ब्रह्मलोकको चले गये, जहाँ पहुँचना बड़े-बड़े संतोंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ५१–५२½ ॥

द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत् तस्मिंस्तथागते ॥ ५३ ॥

आचार्य द्रोणके उस प्रकार उत्क्रमण करनेपर हमें ऐसा



द्रोणाचार्यका ध्यानावस्थामें देहत्याग एवं तेजस्वी-स्वरूपसे ऊर्ध्वलोक-गमन

भान होने लगा, मानो आकाशमें दो सूर्य उदित हो गये हों ॥ ५३ ॥

एकाग्रमिव चासीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।
समपद्यत चार्काभे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यरूपी दिवाकरके उदित होनेपर सारा आकाश तेजसे परिपूर्ण हो उस ज्योतिके साथ एकाग्र-सा हो रहा था ॥ ५४ ॥

निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत् किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५॥
ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।

पलक मारते-मारते वह ज्योति आकाशमें जाकर अदृश्य हो गयी । द्रोणाचार्यके ब्रह्मलोक चले जाने और धृष्टद्युम्नके अपमानसे मोहित हो जानेपर हर्षोल्लाससे भरे हुए देवताओंका कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ५५½ ॥

वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनंजयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ५७ ॥
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।

उस समय मैं, कुन्तीपुत्र अर्जुन, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, वृष्णिवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर–इन पाँच मनुष्योंने ही योगयुक्त महात्मा द्रोणको परम धामकी ओर जाते देखा था ॥ ५६–५७½ ॥

अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः ॥ ५८ ॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।

महाराज ! अन्य सब लोगोंने योगयुक्त हो ऊर्ध्वगतिको जाते हुए बुद्धिमान् द्रोणाचार्यकी महिमाका साक्षात्कार नहीं किया ॥ ५८½ ॥

ब्रह्मलोकं महद् दिव्यं देवगुह्यं हि तत् परम् ॥ ५९ ॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नापश्यन् गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥ ६० ॥
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिंदमम् ।

ब्रह्मलोक महान्, दिव्य, देवगुह्य, उत्कृष्ट तथा परम गतिस्वरूप है । शत्रुदमन आचार्य द्रोण योगका आश्रय लेकर श्रेष्ठ महर्षियोंके साथ उसी ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए हैं । अज्ञानी मनुष्योंने उन्हें वहाँ जाते समय नहीं देखा था ॥ ५९–६०½ ॥

वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥ ६१ ॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।

उनका सारा शरीर बाणसमूहोंसे क्षत-विक्षत हो गया था । उससे रक्तकी धारा बह रही थी और वे अपना अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल चुके थे । उस दशामें धृष्टद्युम्नने उनके शरीरका स्पर्श किया । उस समय सारे प्राणी उन्हें धिक्कार रहे थे ॥ ६१½ ॥

तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥ ६२ ॥
किंचिदब्रुवतः कायाद् विचकर्तासिना शिरः ।

देहधारी द्रोणके शरीरसे प्राण निकल गये थे, अतः वे कुछ भी बोल नहीं रहे थे । इस अवस्थामें उनके मस्तकका बाल पकड़कर धृष्टद्युम्नने तलवारसे उनके सिरको धड़से काट लिया ॥ ६२½ ॥

हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन् खड्गमाहवे ।

इस प्रकार द्रोणाचार्यको मार गिरानेपर धृष्टद्युम्नको महान् हर्ष हुआ और वे रणभूमिमें तलवार घुमाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ६३½ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ॥ ६४ ॥
त्वत्कृते व्यचरत् संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।

आचार्यके शरीरका रंग साँवला था । उनकी अवस्था चार सौ वर्षकी हो चुकी थी और उनके ऊपरसे लेकर कानतकके बाल सफेद हो गये थे, तो भी आपके हितके लिये वे संग्राममें सोलह वर्षकी उम्रवाले तरुणके समान विचरते थे ॥ ६४½ ॥

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ६५ ॥
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥

यद्यपि उस समय महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने बहुत कहा–'ओ द्रुपदकुमार ! तुम आचार्यको जीते-जी ले आओ । उनका वध न करना ।' आपके सैनिक भी बारंबार कहते ही रह गये कि 'न मारो, न मारो' ॥ ६५–६६ ॥

उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।
क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥ ६७ ॥
धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।

अर्जुन तो दयावश चिल्लाते हुए धृष्टद्युम्नके पास आने लगे । परंतु उनके तथा अन्य सब राजाओंके पुकारते रहनेपर भी धृष्टद्युम्नने रथकी बैठकमें नरश्रेष्ठ द्रोणका वध कर ही डाला ॥ ६७½ ॥

शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद् भूमिमथापतत् ॥ ६८ ॥
लोहिताङ्ग इवादित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।

दुर्धर्ष द्रोणाचार्यका शरीर खूनसे लथपथ हो रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो लाल अङ्गकान्तिवाले सूर्य डूब गये हों ॥ ६८½ ॥

एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥ ६९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद् राजन् भारद्वाजशिरोऽहरत् ।

तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत् समाक्षिपत् ॥ ७० ॥

इस प्रकार सब सैनिकोंने द्रोणाचार्यका मारा जाना अपनी आँखोंसे देखा। राजन्! महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका वह सिर उठा लिया और उसे आपके पुत्रोंके सामने फेंक दिया ॥ ६९-७० ॥

ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन् भारद्वाजस्य तावकाः।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ७१ ॥

महाराज! द्रोणाचार्यके उस कटे हुए सिरको देखकर आपके सारे सैनिकोंने केवल भागनेमें ही उत्साह दिखाया और वे सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१ ॥

द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत्।
अहमेव तदाद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ७२ ॥
ऋषेः प्रसादात् कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च।

नरेश्वर! द्रोणाचार्य आकाशमें पहुँचकर नक्षत्रोंके पथमें प्रविष्ट हो गये। उस समय सत्यवतीनन्दन महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनके प्रसादसे मैंने भी द्रोणाचार्यकी वह दिव्य मृत्यु प्रत्यक्ष देख ली ॥ ७२½ ॥

विधूमामिह संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम्।

महातेजस्वी द्रोण जब आकाशको स्तब्ध करके ऊपरको जा रहे थे, उस समय हमलोगोंने यहाँसे उन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाती हुई धूमरहित प्रज्वलित उल्काके समान देखा था ॥ ७३½ ॥

हते द्रोणे निरुत्साहान् कुरून् पाण्डवसृञ्जयाः ॥ ७४ ॥
अभ्यद्रवन् महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत।

द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौरव सैनिक युद्धका उत्साह खो बैठे, फिर पाण्डवों और सृंजयोंने उनपर बड़े वेगसे आक्रमण कर दिया। इससे कौरवसेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ७४½ ॥

निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन्।

युद्धमें आपके बहुत योद्धा तीखे बाणोंद्वारा मारे गये थे और बहुत-से अधमरे हो रहे थे। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर वे सभी निष्प्राण-से हो गये ॥ ७५½ ॥

पराजयमथावाप्य परत्र च महद् भयम् ॥ ७६ ॥
उभयेनैव ते हीना नाविन्दन् धृतिमात्मनः।

इस लोकमें पराजय और परलोकमें महान् भय पाकर दोनों ही लोकोंसे वञ्चित हो वे अपने भीतर धैर्य न धारण कर सके ॥ ७६½ ॥

अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ॥ ७७ ॥
नान्वगच्छन् महाराज कबन्धायुतसंकुले।

महाराज! हमारे पक्षके राजाओंने द्रोणाचार्यके शरीरको बहुत खोजा, परंतु हजारों लाशोंसे भरे हुए युद्धस्थलमें वे उसे पा न सके ॥ ७७½ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद् यशः ॥ ७८ ॥
बाणशङ्खरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान्।

पाण्डव इस लोकमें विजय और परलोकमें महान् यश पाकर वे धनुषपर बाण रखकर उसकी टंकार करने, शङ्ख बजाने और बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ ७८½ ॥

भीमसेनस्ततो राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७९ ॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम्।

राजन्! तदनन्तर भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न एक दूसरेको हृदयसे लगाकर सेनाके बीचमें हर्षके मारे नाचने लगे ॥ ७९½ ॥

अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ८० ॥
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वज्यामि पार्षत।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥

उस समय भीमसेनने शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नसे कहा—'द्रुपदनन्दन! जब सूतपुत्र कर्ण और पापी दुर्योधन मारे जायँगे, उस समय विजयी हुए तुमको मैं फिर इसी प्रकार छातीसे लगाऊँगा' ॥ ८०-८१ ॥

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ८२ ॥

इतना कहकर अत्यन्त हर्षमें भरे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेन अपनी भुजाओंपर ताल ठोककर पृथ्वीको कम्पित-सी करने लगे ॥ ८२ ॥

तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥

उनके उस शब्दसे भयभीत हो आपके सारे सैनिक युद्धसे भाग चले। वे क्षत्रियधर्मको छोड़कर पीठ दिखाने लग गये ॥ ८३ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन् विशाम्पते।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥

प्रजानाथ! पाण्डव विजय पाकर हर्षसे खिल उठे। संग्राममें जो शत्रुओंका भारी संहार हुआ था, उससे उन्हें बड़ा सुख मिला ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें द्रोणवधविषयक एक सौ बानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९२ ॥

(नारायणास्त्रमोक्षपर्व)

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-सैनिकों तथा सेनापतियोंका भागना, अश्वत्थामाके पूछनेपर कृपाचार्यका उसे द्रोणवधका वृत्तान्त सुनाना

संजय उवाच

ततो द्रोणे हते राजन् कुरवः शस्त्रपीडिताः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हुए कौरव अपने प्रमुख वीरोंके मारे जानेसे भारी विध्वंसको प्राप्त हो अत्यन्त शोकमग्न हो गये॥ १॥

उदीर्णांश्च परान् दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन् विशाम्पते॥ २॥

प्रजानाथ! शत्रुओंको उत्कर्ष प्राप्त करते देख वे दीन और भयभीत हो बारंबार काँपने और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ २॥

विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन्॥ ३॥

उनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी थी। मोहवश उनका तेज और बल नष्ट हो चला था। वे हतोत्साह होकर अत्यन्त आर्तस्वरसे विलाप करते हुए आपके पुत्रको घेरकर खड़े हो गये॥ ३॥

रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते॥ ४॥

पूर्वकालमें हिरण्याक्षके मारे जानेपर दैत्योंकी जैसी अवस्था हुई थी, वैसी ही उनकी भी हो गयी। वे धूल-धूसर शरीरसे काँपते हुए दसों दिशाओंकी ओर देख रहे थे। आँसुओंसे उनका गला भर आया॥ ४॥

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात् तनयस्तव॥ ५॥

डरे हुए क्षुद्र मृगोंके समान उन सैनिकोंसे घिरा हुआ आपका पुत्र राजा दुर्योधन वहाँ खड़ा न रह सका। वह भागकर अन्यत्र चला गया॥ ५॥

क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत।
आदित्येनेव संतप्ता भृशं विमनसोऽभवन्॥ ६॥

भारत! आपके सभी सैनिक भूख-प्याससे व्याकुल एवं मलिन हो रहे थे, मानो सूर्यने उन्हें अपनी प्रचण्ड किरणोंसे झुलस दिया हो। वे अत्यन्त उदास हो गये थे॥ ६॥

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम्।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम्॥ ७॥

अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम्।
त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात्॥ ८॥

राजन्! जैसे सूर्यका पृथ्वीपर गिर पड़ना, समुद्रका सूख जाना, मेरुपर्वतका उलटी दिशामें चला जाना और इन्द्रका पराजित हो जाना असम्भव है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यका मारा जाना भी असम्भव समझा जाता था; परंतु द्रोणाचार्यके उस असहनीय वधको सम्भव हुआ देख सारे कौरव थर्रा उठे और भयके मारे भागने लगे॥ ७-८॥

गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत् सहितो रथैः॥ ९॥

सुवर्णमय रथवाले आचार्य द्रोणके मारे जानेका समाचार सुनकर गान्धारराज शकुनि त्रस्त हो उठा और अत्यन्त डरे हुए अपने रथियोंके साथ युद्ध-भूमिसे भाग चला॥ ९॥

वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम्।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद् भयात्॥ १०॥

सूतपुत्र कर्ण भी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एवं बड़े वेगसे भागी हुई अपनी विशाल सेनाको साथ ले भयके मारे वहाँसे भाग खड़ा हुआ॥ १०॥

रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम्।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद् भयात्॥ ११॥

मद्रराज शल्य भी रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई अपनी सेनाको आगे करके भयके मारे इधर-उधर देखते हुए भागने लगे॥ ११॥

हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत् कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्॥ १२॥

शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य बहुसंख्यक ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित बहुत-से सैनिकोंद्वारा घिरे हुए थे। उनकी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये थे। वे भी 'हाय! बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहते हुए युद्धभूमिसे खिसक गये॥

भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाह्लिकैः।
कृतवर्मा वृतो राजन् प्रायात् सुजवनैर्हयैः॥ १३॥

राजन्! कृतवर्मा भी भोजवंशियोंकी अवशिष्ट सेना तथा कलिङ्ग, अरट्ट और बाह्लिकोंकी विशाल वाहिनी साथ ले अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा भाग निकला॥ १३॥

पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन् भयार्दितः।
उलूकः प्राद्रवत् तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यको वहाँ मारा गया देख उलूक भी भयसे पीड़ित हो थर्रा उठा और पैदल योद्धाओंके साथ जोर-जोरसे भागने लगा ॥ १४ ॥

दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद् गजसंवृतः ॥ १५ ॥

जिसके शरीरमें शौर्यके चिह्न बन गये थे, वह दर्शनीय युवक दुःशासन भी भयसे अत्यन्त उद्विग्न हो अपनी गज-सेनाके साथ भाग खड़ा हुआ ॥ १५ ॥

रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम्।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्य धराशायी हो गये, यह देखकर वृषसेन भी दस हजार रथों और तीन हजार हाथियोंकी सेना साथ ले तुरंत वहाँसे चल दिया ॥ १६ ॥

गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः।
दुर्योधनो महाराज प्रायात् तत्र महारथः ॥ १७ ॥

महाराज ! हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनासे युक्त तथा पैदल सैनिकोंसे घिरा हुआ महारथी दुर्योधन भी रणभूमिसे भाग चला ॥ १७ ॥

संशप्तकगणान् गृह्य हतशेषान् किरीटिना।
सुशर्मा प्राद्रवद् राजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥१८॥

राजन् ! द्रोणाचार्यको रणभूमिमें गिराया गया देख अर्जुनके मारनेसे बचे हुए संशप्तकोंको साथ ले सुशर्मा वहाँसे भाग निकला ॥ १८ ॥

गजान् रथान् समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः।
प्राद्रवन् सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥ १९ ॥

युद्धस्थलमें सुवर्णमय रथवाले द्रोणका वध हुआ देख बहुतेरे सैनिक हाथियों और रथोंपर आरूढ़ हो तथा कितने ही योद्धा अपने घोड़ोंको भी छोड़कर सब ओरसे पलायन करने लगे ॥ १९ ॥

त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान्।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन् कुरवस्तदा ॥ २० ॥

कुछ कौरव पिता, ताऊ और चाचा आदिको, कुछ भाइयोंको, कुछ मामाओंको तथा कितने ही पुत्रों और मित्रोंको जल्दीसे भागनेकी प्रेरणा देते हुए उस समय मैदान छोड़कर चल दिये ॥ २० ॥

चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथापरे।
सम्बन्धिनस्तथान्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश॥ २१ ॥

कितने ही योद्धा अपनी सेनाओंको, दूसरे लोग भानजोंको और कितने ही अपने सगे-सम्बन्धियोंको भागनेकी आज्ञा देते हुए दसों दिशाओंकी ओर भाग खड़े हुए ॥ २१ ॥

प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥ २२ ॥

उन सबके बाल बिखरे हुए थे। वे गिरते-पड़ते भाग रहे थे। दो सैनिक एक साथ या एक ओर नहीं भागते थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब यह सेना नहीं बचेगी; इसीलिये उनके उत्साह और बल नष्ट हो गये थे ॥ २२ ॥

उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन् सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! प्रभो ! आपके कितने ही सैनिक कवच उतारकर एक-दूसरेको पुकारते हुए भाग रहे थे ॥ २३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे।
धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतात् स्वलंकृतान्।
अधिरुह्य हयान् योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥

कुछ योद्धा दूसरोंसे 'ठहरो, ठहरो' कहते, परंतु स्वयं नहीं ठहरते थे। कितने ही योद्धा सारथिशून्य रथसे सजे-सजाये घोड़ोंको खोलकर उनपर सवार हो जाते और पैरोंसे ही शीघ्रतापूर्वक उन्हें हाँकने लगते थे ॥ २४ ॥

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ २५ ॥

इस प्रकार जब सारी सेना भयभीत हो बल और उत्साह खोकर भाग रही थी, उसी समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंकी ओर बढ़ा आ रहा था, मानो कोई ग्राह नदीके प्रवाहके प्रतिकूल जा रहा हो ॥ २५ ॥

तस्यासीत् सुमहद् युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः।
प्रभद्रकैश्च पाञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥

इससे पहले अश्वत्थामाका उन प्रभद्रक, पाञ्चाल, चेदि और केकय आदि गणोंके साथ महान् युद्ध हो रहा था, जिनका प्रधान नेता शिखण्डी था (इसीलिये उसे पिताकी मृत्युका समाचार नहीं ज्ञात हुआ।) ॥ २६ ॥

हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः।
कथंचित् संकटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी रणदुर्मद अश्वत्थामा पाण्डवोंकी विविध सेनाओंका संहार करके किसी प्रकार उस युद्ध-संकटसे मुक्त हुआ था ॥ २७ ॥

द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम्।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें उसने देखा कि सारी कौरव-सेना भागी जा रही है और सभी लोग पलायन करनेमें उत्साह दिखा रहे हैं। तब द्रोणपुत्रने दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार पूछा—॥ २८ ॥

किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥

'भरतनन्दन ! क्यों यह सेना भयभीत-सी होकर भागी जा रही है ? राजेन्द्र ! इस भागती हुई सेनाको आप युद्धमें ठहरानेका प्रयत्न क्यों नहीं करते ? ॥ २९ ॥

त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३० ॥

'नरेश्वर ! तुम भी पहलेके समान स्वस्थ नहीं दिखायी देते। भूपाल! ये कर्ण आदि वीर भी रणभूमिमें खड़े नहीं हो रहे हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ ३० ॥

अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत् तदा।
कच्चित् क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ ३१ ॥

'अन्य संग्रामोंमें भी आपकी सेना इस प्रकार नहीं भागी थी। महाबाहु भरतनन्दन ! आपकी सेना सकुशल तो है न ? ॥ ३१ ॥

कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे बलं तव।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव ॥ ३२ ॥

'राजन् ! कुरुनन्दन ! किस सिंहके समान पराक्रमी रथीके मारे जानेपर आपकी यह सेना इस दुरवस्थाको पहुँच गयी है। यह मुझे बताइये' ॥ ३२ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम्।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः ॥ ३३ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ दुर्योधन यह घोर अप्रिय समाचार स्वयं उससे न कह सका॥

भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे।
बाष्पेणापिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥

मानो आपके पुत्रकी नाव मझधारमें टूट गयी थी और वह शोकके समुद्रमें डूब रहा था। रथपर बैठे हुए द्रोणकुमारको देखकर उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे॥

ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत्।
शंसात्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने कृपाचार्यसे संकोचपूर्वक कहा—'गुरुदेव ! आपका कल्याण हो। आप ही वह सब समाचार बता दीजिये, जिससे यह सब सेना भागी जा रही है' ॥ ३५ ॥

अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन् पुनः पुनः।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥

राजन् ! उस समय शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य बारंबार पीड़ाका अनुभव करते हुए जिस प्रकार द्रोणाचार्य मारे गये थे, वह समाचार उनके पुत्रको सुनाने लगे ॥ ३६ ॥

कृप उवाच

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम्।
प्रावर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥

कृपाचार्य बोले—वत्स ! हमलोगोंने भूमण्डलके श्रेष्ठ महारथी आचार्य द्रोणको आगे करके केवल पाञ्चालोंके साथ युद्ध आरम्भ किया था ॥ ३७ ॥

ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३८ ॥

युद्ध आरम्भ हो जानेपर कौरव तथा सोमक योद्धा परस्पर मिश्रित हो गये और एक-दूसरेके निकट गर्जना करते हुए शस्त्रोंद्वारा अपने-अपने शत्रुओंके शरीरोंको धराशायी करने लगे ॥ ३८ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे।
धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार युद्ध चालू होनेपर जब कौरव योद्धा क्षीण होने लगे, तब तुम्हारे पिताने अत्यन्त कुपित होकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ३९ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः।
व्यहनच्छात्रवान् भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४० ॥

ब्रह्मास्त्र प्रकट करते हुए नरश्रेष्ठ द्रोणने सैकड़ों और हजारों भल्लोंद्वारा शत्रु-सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ४० ॥

पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन् कालचोदिताः॥४१॥

पाण्डव, केकय, मत्स्य तथा विशेषतः पाञ्चाल योद्धा कालसे प्रेरित हो युद्धमें द्रोणाचार्यके रथके पास आकर नष्ट हो गये ॥ ४१ ॥

सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम्।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रके प्रयोगद्वारा मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी एक हजार श्रेष्ठ योद्धाओं तथा दो हजार हाथियोंको मौतके हवाले कर दिया ॥ ४२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥

जिनकी अङ्ग-कान्ति श्याम थी, जिनके कानोंतकके बाल पक गये थे तथा जो चार सौ वर्षकी अवस्था पूरे कर चुके थे, वे बूढ़े द्रोणाचार्य रणभूमिमें सोलह वर्षके तरुणकी भाँति सब ओर विचरते रहे ॥ ४३ ॥

क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥ ४४ ॥

जब इस प्रकार सेनाएँ कष्ट पाने लगीं तथा बहुत-से नरेश कालके गालमें जाने लगे, तब अमर्षमें भरे हुए पाञ्चाल युद्धसे विमुख हो गये ॥ ४४ ॥

तेषु किंचित् प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित्।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥ ४५ ॥

वे कुछ हतोत्साह होकर जब युद्धसे विमुख हो गये, तब दिव्य-अस्त्र प्रकट करनेवाले शत्रुविजयी द्रोणाचार्य उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४५ ॥

स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान्।
मध्यंगत इवादित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताभवत् ॥४६॥

पाण्डव-सेनाके बीचमें आकर बाणमयी रश्मियोंसे सुशोभित तुम्हारे प्रतापी पिता द्रोण दोपहरके सूर्यकी भाँति तपने लगे। उस समय उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ४६ ॥

ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥

प्रकाशमान सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यद्वारा दग्ध किये जाते हुए पाञ्चालोंके बल और पराक्रम भी दग्ध हो गये थे। वे उत्साहशून्य तथा अचेत हो गये थे ॥ ४७ ॥

तान् दृष्ट्वा पीडितान् बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

उन सबको द्रोणाचार्यके बाणोंद्वारा पीड़ित देख पाण्डवोंकी विजय चाहनेवाले मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा— ॥ ४८ ॥

नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः।
अपि वृत्रहणा संख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥

'ये द्रोणाचार्य शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ एवं रथयूथपतियोंके भी यूथपति हैं। इन्हें युद्धमें मनुष्य कदापि नहीं जीत सकते। देवराज इन्द्रके लिये भी इनपर विजय पाना असम्भव है ॥

ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः।
यथा वः संयुगे सर्वान् न हन्याद् रुक्मवाहनः ॥५०॥

'अतः पाण्डव! तुमलोग धर्मका विचार छोड़कर विजयकी रक्षाका प्रयत्न करो, जिससे सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें तुम सब लोगोंका संहार न कर सकें ॥ ५० ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ५१ ॥

'मेरा ऐसा विश्वास है कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं कर सकते; अतः कोई मनुष्य इनसे झूठे ही कह दे कि 'युद्धमें अश्वत्थामा मारा गया' ॥ ५१॥

एतन्नारोचयद् वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनको यह बात अच्छी नहीं लगी। परंतु और सब लोगोंको जँच गयी। युधिष्ठिर बड़ी कठिनाईसे इसके लिये तैयार हुए ॥ ५२ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत् पितरं तव।
अश्वत्थामा हत इति तं नाबुध्यत ते पिता ॥ ५३ ॥

तब भीमसेनने लजाते-लजाते तुम्हारे पितासे कहा— 'अश्वत्थामा मारा गया'। परंतु उनकी इस बातपर तुम्हारे पिताको विश्वास नहीं हुआ ॥ ५३ ॥

स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत।
हतं वाप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥

उनके मनमें यह संदेह हुआ कि यह समाचार झूठा है; अतः तुम्हारे पुत्रवत्सल पिताने युद्धभूमिमें धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि 'अश्वत्थामा मारा गया या नहीं' ॥ ५४ ॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर असत्यके भयमें डूबे होनेपर भी विजयमें आसक्त थे, अतः मालवनरेश इन्द्रवर्माके पर्वताकार महान् गजराज अश्वत्थामाको भीमसेनके द्वारा युद्धस्थलमें मारा गया देख द्रोणाचार्यके पास जाकर वे उच्चस्वरसे इस प्रकार बोले— ॥ ५५-५६ ॥

यस्यार्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः॥५७॥
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ॥ ५८ ॥

'आचार्य! तुम जिसके लिये हथियार उठाते हो और जिसका मुँह देखकर जीते हो, वह तुम्हारा सदाका प्यारा पुत्र अश्वत्थामा पृथ्वीपर मार गिराया गया है। जैसे वनमें सिंहका बच्चा सोता है, उसी प्रकार वह रणभूमिमें मरा पड़ा है' ॥

जानन्नप्यनृतस्याथ दोषान् स द्विजसत्तमम्।
अव्यक्तमब्रवीद् राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५९ ॥

असत्य बोलनेके दोषोंको जानते हुए भी राजा युधिष्ठिरने द्विजश्रेष्ठ द्रोणसे वैसी बात कह दी। फिर वे अस्फुट स्वरमें बोले—'वास्तवमें इस नामका हाथी मारा गया' ॥ ५९ ॥

स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा संतापतापितः।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥ ६० ॥

इस प्रकार युद्धमें तुम्हारे मारे जानेकी बात सुनकर वे शोकाग्निके तापसे संतप्त हो उठे और अपने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग बंद करके उन्होंने पहलेके समान युद्ध करना छोड़ दिया ॥ ६० ॥

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम्।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥

उन्हें अत्यन्त उद्विग्न, शोकाकुल और अचेत हुआ देख पाञ्चालराजका क्रूरकर्मा पुत्र धृष्टद्युम्न उनकी ओर दौड़ा ॥ ६१ ॥

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्॥ ६२॥

लोकतत्त्वके ज्ञानमें निपुण आचार्य अपनी दैवविहित मृत्युरूप धृष्टद्युम्नको सामने देख दिव्यास्त्रोंका परित्याग करके आमरण उपवासका नियम ले रणभूमिमें बैठ गये॥ ६२॥

ततोऽस्य केशान् सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः॥ ६३॥

तब उस द्रुपदपुत्रने समस्त वीरोंके पुकार-पुकारकर मना करनेपर भी उनकी बातें अनसुनी करके बायें हाथसे आचार्यके केश पकड़ लिये और दाहिने हाथसे उनका सिर काट लिया॥ ६३॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन्।
तथैव चार्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत्॥ ६४॥

वे सब वीर चारों ओरसे यही कह रहे थे कि 'न मारो, न मारो'। अर्जुन भी यही कहते हुए अपने रथसे उतरकर उसकी ओर दौड़ पड़े॥ ६४॥

उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित्॥ ६५॥

वे धर्मके ज्ञाता हैं, अतः अपनी एक बाँह उठाकर बड़ी उतावलीके साथ बारंबार यह कहने लगे कि 'आचार्यको जीते-जी ले आओ, मारो मत'॥ ६५॥

तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ॥ ६६॥

नरश्रेष्ठ! इस प्रकार कौरवों तथा अर्जुनके रोकनेपर भी उस नृशंसने तुम्हारे पिताकी हत्या कर ही डाली॥ ६६॥

सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ॥ ६७॥

अनघ! इस प्रकार तुम्हारे पिताके मारे जानेपर समस्त सैनिक भयसे पीड़ित होकर भाग चले हैं और हमलोग उत्साहशून्य होकर लौटे आ रहे हैं॥ ६७॥

संजय उवाच

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं पदाहत इवोरगः॥ ६८॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें इस प्रकार पिताके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पैरोंसे ठुकराये हुए सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा॥ ६८॥

ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष।
यथेन्धनं महत् प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः॥ ६९॥

माननीय नरेश! जैसे अग्निदेव सूखे काठकी बहुत बड़ी राशि पाकर प्रचण्डरूपसे प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोधसे जलने लगा॥ ६९॥

तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत्।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत् तदा॥ ७०॥

उसने हाथसे हाथ मलकर दाँतोंसे दाँत पीसे और फुफकारते हुए सर्पके समान वह लंबी साँसें खीचने लगा, उस समय उसकी आँखें लाल हो गयी थीं॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका क्रोधविषयक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९३॥

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका प्रश्न

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संजय।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अपने बूढ़े पिता ब्राह्मण द्रोणाचार्यके धृष्टद्युम्नद्वारा अधर्मपूर्वक मारे जानेका समाचार सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा?॥ १॥

मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान्।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन् नित्यं प्रतिष्ठितम्॥ २॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत्॥ ३॥

जिनमें मानव, वारुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायण नामक अस्त्र सदा प्रतिष्ठित थे, उन धर्मात्मा आचार्यको धृष्टद्युम्नद्वारा अधर्मपूर्वक युद्धमें मारा गया सुनकर पराक्रमी अश्वत्थामाने क्या कहा?॥ २-३॥

येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकाङ्क्षिणा॥ ४॥

गुणोंकी अभिलाषा रखनेवाले उन महात्मा द्रोणने इस लोकमें परशुरामजीसे धनुर्वेदकी शिक्षा पाकर वे समस्त दिव्यास्त्र अपने पुत्रको भी सिखाये थे॥ ४॥

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नान्यं कथंचन॥ ५॥

मनुष्य इस जगत्‌में केवल पुत्रको ही अपनेसे भी अधिक गुणवान् बनाना चाहते हैं, दूसरेको किसी प्रकार भी नहीं॥ ५॥

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम्।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा ॥ ६ ॥

महात्मा आचार्योंके पास बहुत-सी रहस्यकी बातें होती हैं, जिन्हें या तो वे अपने पुत्रको दे सकते हैं या अनुगत शिष्यको ॥ ६ ॥

स शिष्यः प्राप्य तत् सर्वं सविशेषं च संजय।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥

संजय ! कृपीका शूरवीर पुत्र अश्वत्थामा शिष्यभावसे विशेष रहस्यसहित सारा धनुर्वेद अपने पिता द्रोणाचार्यसे प्राप्त करके युद्धस्थलमें उनके बाद वही उस योग्यताका रह गया है ॥

रामस्य तु समः शस्त्रे पुरंदरसमो युधि।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८ ॥
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाग्निसमो युवा।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाशीविषोपमः ॥ ९ ॥
स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः।
शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे चरन् क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १० ॥

शस्त्रविद्यामें परशुरामके समान, युद्धकलामें इन्द्रके समान, बल-पराक्रममें कृतवीर्यपुत्र अर्जुनके समान, बुद्धिमें बृहस्पतिके सदृश, स्थिरता एवं धैर्यमें पर्वतके तुल्य, तेजमें अग्निके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश और क्रोधमें विषधर सर्पके समान नवयुवक अश्वत्थामा संसारका प्रधान रथी और सुदृढ़ धनुर्धर है। उसने श्रम और थकावटको जीत लिया है। वह संग्राममें वायुके समान वेगपूर्वक विचरनेवाला तथा क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान भयंकर है ॥ ८-१० ॥

अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः।
महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥

अश्वत्थामा जब रणभूमिमें बाणोंकी वर्षा करने लगता है, तब धरती भी अत्यन्त पीड़ित हो उठती है। वह सत्यपराक्रमी वीर संग्राममें कभी व्यथित नहीं होता है। वह वेदाध्ययन समाप्त करके स्नातक बन चुका है। ब्रह्मचर्यव्रतकी अवधि पूरी करके उसका भी स्नातक हो चुका है और धनुर्वेदका भी पारंगत विद्वान् है। महासागर तथा दशरथपुत्र श्रीरामके समान उसे कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता ॥ ११-१२ ॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३ ॥

उसी अश्वत्थामाने अपने धर्मिष्ठ पिता आचार्य द्रोणको युद्धमें धृष्टद्युम्नके हाथसे अधर्मपूर्वक मारा गया सुनकर क्या कहा ? ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥

(हमने सुन रखा है कि) जैसे द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये पाञ्चालदेशीय द्रुपदकुमारका जन्म हुआ था, उसी प्रकार महात्मा द्रोणने धृष्टद्युम्नकी मृत्युके लिये अश्वत्थामाको जन्म दिया था ॥ १४ ॥

तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणादीर्घदर्शिना।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १५ ॥

उस नृशंस, पापी, क्रूर और अदूरदर्शी धृष्टद्युम्नके हाथसे आचार्यका वध हुआ सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा ? ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृतराष्ट्र-प्रश्नविषयक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९४ ॥

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके क्रोधपूर्ण उद्गार और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्राकट्य

संजय उवाच

छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा।
बाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—नरश्रेष्ठ ! पापी धृष्टद्युम्नने मेरे पिताको छलसे मार डाला है, यह सुनकर अश्वत्थामाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। फिर वह रोषसे जल उठा ॥ १ ॥

तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! जैसे प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके संहारकी इच्छावाले यमराजका तेजोमय शरीर प्रज्वलित हो उठता है, उसी प्रकार वहाँ देखा गया कि क्रोधसे भरे हुए अश्वत्थामाका शरीर तमतमा उठा है ॥ २ ॥

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥

अपने आँसूभरे नेत्रोंको बारंबार पोंछकर क्रोधसे लंबी साँस खींचते हुए अश्वत्थामाने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद् विदितं मम ॥ ४ ॥

'राजन् ! मेरे पिताने जिस प्रकार हथियार डाल दिया, जिस तरह उन नीचोंने उन्हें मार गिराया तथा धर्मका ढोंग रचनेवाले युधिष्ठिरने जो पाप किया है, वह सब मुझे मालूम हो गया ॥ ४ ॥



अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम्।
युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ ॥ ५ ॥
द्वयमेतद् भवेद् राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते ।

'धर्मपुत्र युधिष्ठिरका क्रूरतापूर्ण नीच कर्म मैंने सुन लिया । राजन् ! जो लोग युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, उन्हें विजय और पराजय अवश्य प्राप्त होती है । परंतु युद्धमें होनेवाले वधकी अधिक प्रशंसा की गयी है ॥ ५½ ॥

न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत्॥ ६ ॥
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः ।

'संग्राममें जूझते हुए वीरको यदि न्यायानुकूल वध प्राप्त हो जाय, तो वह दुःखका कारण नहीं होता; क्योंकि द्विजोंने युद्धके इस परिणामको देखा है ॥ ६½ ॥

गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ॥ ७ ॥
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः ।

'पुरुषसिंह ! इसमें संशय नहीं कि मेरे पिता वीरगतिको प्राप्त हुए हैं । उस समय वे मारे गये, इस बातको लेकर उनके लिये शोक करना उचित नहीं है ॥ ७½ ॥

यत् तु धर्मप्रवृत्तः सन् केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति ।

'परंतु धर्ममें तत्पर रहनेपर भी जो समस्त सैनिकोंके देखते-देखते उनका केश पकड़ा गया, वह अपमान ही मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये देता है ॥ ८½ ॥

मयि जीवति यत् तातः केशग्रहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ।

'मेरे जीते-जी यदि पिताको अपने केश पकड़े जानेका अपमानपूर्ण कष्ट उठाना पड़ा, तब दूसरे पुत्रवान् पुरुष किस लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करेंगे ? ॥ ९½ ॥

कामात् क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद् बाल्येन वा पुनः॥ १० ॥
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च ।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥ ११ ॥
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना ।
तस्यानुबन्धं द्रष्टासौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥ १२ ॥

'लोग काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष अथवा बालोचित चपलताके कारण धर्मके विरुद्ध कार्य करते तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान कर बैठते हैं । क्रूर एवं दुरात्मा द्रुपदपुत्रने निश्चय ही मेरी अवहेलना करके यह महान् पाप कर्म कर डाला है । अतः उस धृष्टद्युम्नको उस पापका अत्यन्त भयंकर परिणाम भोगना पड़ेगा ॥ १०-१२ ॥

अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः ।
योऽसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत् तदा ॥ १३॥
तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।

'साथ ही मिथ्यावादी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी यह अत्यन्त नीच कर्म करनेके कारण इसका दारुण परिणाम देखना पड़ेगा । जिसने छल करके आचार्यसे उस समय शस्त्र रखवा दिया था, उस धर्मराज युधिष्ठिरका रक्त आज यह पृथ्वी पीयेगी ॥ १३½ ॥

शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह ॥ १४ ॥
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् जीवेयं न कथंचन ।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥

'कुरुनन्दन ! मैं अपने सत्य, इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (वापी-तड़ागनिर्माण आदि) कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि समस्त पाञ्चालोंका वध किये बिना किसी तरह जीवित नहीं रह सकूँगा । सभी उपायोंसे पाञ्चालोंको मार डालनेका प्रयत्न करूँगा ॥ १४-१५ ॥

धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताहं पापकारिणम् ।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥

'समरभूमिमें पापाचारी धृष्टद्युम्नको मैं कोमल और कठोर जिस किसी भी कर्मके द्वारा अवश्य मार डालूँगा ॥

पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव ।
यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥ १७ ॥
प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तांस्त्रायन्ते महतो भयात् ।

'कुरुनन्दन ! पाञ्चालोंका वध करके ही मैं शान्ति पा सकूँगा । पुरुषसिंह ! मनुष्य इसीलिये पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि वे प्राप्त होनेपर इह लोक और परलोकमें भी महान् भयसे रक्षा करेंगे ॥ १७½ ॥

पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥ १८ ॥
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ।

'मेरे पिताने मुझ पर्वत-सरीखे पुत्र और शिष्यके जीते-जी बन्धुहीनकी भाँति वह दुरवस्था प्राप्त की है ॥ १८½ ॥

धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि धिग् बाहू धिक् पराक्रमम् १९
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।

'मेरे दिव्यास्त्रोंको धिक्कार है ! मेरे इन दोनों भुजाओंको धिक्कार है ! तथा मेरे पराक्रमको धिक्कार है !! जब कि मेरे-जैसे पुत्रको पाकर आचार्य द्रोणने केशग्रहणका अपमान उठाया ॥ १९½ ॥

स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ॥ २० ॥
परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ।

'भरतश्रेष्ठ ! अब मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे परलोकमें गये हुए पिताके ऋणसे मुक्त हो सकूँ ॥ २०½ ॥

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।

'यद्यपि श्रेष्ठ पुरुषको कभी अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, तथापि अपने पिताके वधको न सह सकनेके कारण आज मैं यहाँ अपने पुरुषार्थका वर्णन कर रहा हूँ ॥ २१½ ॥

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥ २२ ॥
मृद्गतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।

'आज मैं सारी सेनाओंको रौंदता हुआ प्रलयकालका दृश्य उपस्थित करूँगा । अतः आज श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव मेरा पराक्रम देखें ॥ २२½ ॥

न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ॥ २३ ॥
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ।

'आज रणभूमिमें रथपर बैठे हुए मुझ अश्वत्थामाको न तो देवता, न गन्धर्व, न असुर, न राक्षस और न कोई श्रेष्ठ मानव वीर ही परास्त कर सकते हैं ॥ २३½ ॥

मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद् वास्त्रवित् क्वचित् २४
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान् ।
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥

'इस संसारमें मुझसे या अर्जुनसे बढ़कर दूसरा कोई अस्त्रवेत्ता कहीं नहीं है । आज मैं शत्रुकी सेनामें घुसकर प्रकाशमान अंशुधारियोंके बीच अंशुमाली सूर्यके समान तपता हुआ देवनिर्मित अस्त्रोंका प्रयोग करूँगा ॥ २४-२५ ॥

भुजामिष्वसनाद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥

'आज महासमरमें धनुषसे मेरे द्वारा छोड़े हुए बाण मेरा महान् पराक्रम दिखाते हुए पाण्डव योद्धाओंको मथ डालेंगे ॥ २६ ॥

अद्य सर्वा दिशो राजन् धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥

'राजन् ! जैसे बरसती हुई जलधाराओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ ढक जाती हैं, उसी प्रकार आज सब लोग मेरे तीखे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित हुई देखेंगे ॥ २७ ॥

विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून् निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ २८ ॥

'जैसे आँधी वृक्षोंको गिरा देती है, उसी प्रकार मैं सब ओर बाणसमूहोंकी वर्षा करके भयंकर गर्जना करनेवाले शत्रुओंको मार गिराऊँगा ॥ २८ ॥

न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥
न पार्षतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ३० ॥

'आज मैं जिस अस्त्रका प्रयोग करूँगा, उसे न अर्जुन जानते हैं न श्रीकृष्ण, भीमसेन, नकुल-सहदेव और राजा युधिष्ठिरको भी उसका पता नहीं है । वह दुरात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि भी उसके ज्ञानसे शून्य हैं । कुरुनन्दन ! वह तो प्रयोग और उपसंहारसहित केवल मेरे ही पास है ॥ २९-३० ॥

नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥
तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान् स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥

'पूर्वकालकी बात है, मेरे पिताने भगवान् नारायणको प्रणाम करके उन्हें विधिपूर्वक वेदस्वरूप उपहार समर्पित किया (वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति की) । भगवान्‌ने स्वयं उपस्थित होकर वह उपहार ग्रहण किया और पिताको वर दिया । मेरे पिताने वरके रूपमें उनसे सर्वोत्तम नारायणास्त्रकी याचना की ॥ ३१-३२ ॥

अथैनमब्रवीद् राजन् भगवान् देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद् युधि नरः क्वचित् ॥ ३३ ॥
न त्विदं सहसा ब्रह्मन् प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्तते ॥ ३४ ॥

'राजन् ! तब देवश्रेष्ठ भगवान् नारायणने वह अस्त्र देकर उनसे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! अब युद्धमें तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई मनुष्य कहीं नहीं रह

जायगा, परंतु तुम्हें सहसा इसका प्रयोग किसी तरह नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह अस्त्र शत्रुका वध किये बिना पीछे नहीं लौटता है ॥ ३३-३४ ॥

न चैतच्छक्यते ज्ञातुं कं न वध्येदिति प्रभो।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत् प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

'प्रभो ! यह नहीं जाना जा सकता कि यह अस्त्र किसको नहीं मारेगा। यह अवध्यका भी वध कर सकता है; अतः सहसा इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम्।
प्रयाचतां च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥
एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परंतप।
सर्वथा पीडितो हि स्यादवध्यान् पीडयन् रणे॥ ३७ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोण ! युद्धभूमिमें रथ छोड़कर उतर जाना, अपने अस्त्र-शस्त्र रख देना, अभयकी याचना करना और शत्रुकी शरण लेना—ये इस महान् अस्त्रको शान्त करनेके उपाय हैं। जो रणभूमिमें इस अस्त्रके द्वारा अवध्य मनुष्योंको पीड़ा देता है, वह स्वयं भी सब प्रकारसे पीड़ित हो सकता है' ॥ ३६-३७ ॥

तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥
अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि।
एवमुक्त्वा स भगवान् दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥

'तदनन्तर मेरे पिताने वह अस्त्र ग्रहण किया और उन पूज्य पिताने मुझे उसका उपदेश किया। (पिताको अस्त्र देते समय भगवान्ने यह भी कहा था—) 'ब्रह्मन् ! तुम संग्राममें इस अस्त्रके द्वारा सम्पूर्ण शस्त्र-वर्षाओंको बारंबार नष्ट करोगे और स्वयं भी तेजसे प्रकाशित होते रहोगे।' ऐसा कहकर भगवान् नारायण अपने दिव्य धामको चले गये ॥ ३८-३९ ॥

एतन्नारायणादस्त्रं तत् प्राप्तं पितृबन्धुना।
तेनाहं पाण्डवांश्चैव पञ्चालान् मत्स्यकेकयान् ॥ ४० ॥
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान्।

'इस प्रकार पिताने भगवान् नारायणसे यह अस्त्र प्राप्त किया और उनसे मुझे इसकी प्राप्ति हुई है। उसी अस्त्रसे मैं रणभूमिमें पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकय योद्धाओंको उसी प्रकार खदेड़ूँगा, जैसा शचीपति इन्द्रने असुरोंको मार भगाया था ॥ ४०½ ॥

यथा यथाहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥ ४१ ॥
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत।

'भारत ! मैं जैसा-जैसा चाहूँगा, वैसा ही रूप धारण करके मेरे बाण शत्रुओंके पराक्रम करनेपर भी उनपर पड़ेंगे ॥

यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥ ४२ ॥
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान्।
परश्वधांश्च निशितानुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥

'मैं युद्धमें स्थित होकर अपनी इच्छाके अनुसार पत्थरोंकी वर्षा करूँगा, लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंद्वारा बड़े-बड़े महारथियोंको भगा दूँगा तथा शत्रुओंपर तेज धारवाले फरसे भी बरसाऊँगा; इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४२-४३॥

सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्॥ ४४ ॥

'इस प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाला मैं महान् नारायणास्त्रका प्रयोग करके पाण्डवोंको पीड़ा देता हुआ अपने समस्त शत्रुओंका विध्वंस कर डालूँगा ॥ ४४ ॥

मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः।
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ४५ ॥

'मित्र, ब्राह्मण तथा गुरुसे द्रोह करनेवाला अत्यन्त निन्दित वह पाञ्चालकुलकलङ्क पामर धृष्टद्युम्न भी आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ४५ ॥

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी।
ततः सर्वे महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ४६ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी वह बात सुनकर कौरवोंकी सेना लौट आयी। फिर तो सभी पुरुषश्रेष्ठ वीर बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे ॥ ४६ ॥

भेरीश्चाभ्यहनन् हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७ ॥
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत्।

सबने प्रसन्न होकर रणभेरियाँ बजायीं, सहस्रों डंके पीटे, घोड़ोंकी टापों और रथोंके पहियोंसे पीड़ित हुई रणभूमि मानो आर्तनाद करने लगी। वह तुमुल ध्वनि आकाश, अन्तरिक्ष और भूतलको गुँजाने लगी ॥ ४७½ ॥

तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ४८ ॥
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाप्यमन्त्रयन्।

मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान उस तुमुलनादको सुनकर श्रेष्ठ पाण्डव महारथी एकत्र होकर गुप्त मन्त्रणा करने लगे ॥ ४८½ ॥

तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ॥ ४९ ॥
प्रादुश्चकार तद् दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥ ५० ॥

भारत ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पूर्वोक्त बात कहकर जलसे आचमन करके उस समय उस दिव्य नारायणास्त्रको प्रकट किया ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका क्रोधविषयक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१९५॥

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवसेनाका सिंहनाद सुनकर युधिष्ठिरका अर्जुनसे कारण पूछना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाके क्रोध एवं गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन

संजय उवाच

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो।
प्रावात् सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान्॥ १॥

संजय कहते हैं—प्रभो! तदनन्तर उस नारायणास्त्रके प्रकट होनेपर जलकी बूँदोंके साथ प्रचण्ड वायु चलने लगी। बिना बादलोंके ही आकाशमें मेघोंकी गर्जना होने लगी॥ १॥

चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः॥ २॥

पृथ्वी काँप उठी, समुद्रमें ज्वार आ गया और समुद्रमें मिलनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ अपने प्रवाहकी प्रतिकूल दिशामें बहने लगीं॥ २॥

शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे॥ ३॥

भारत! पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। हरिणोंके झुंड पाण्डवसेनाको अपने दायें करके चले गये॥ ३॥

तमसा चावकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत्।
सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत्॥ ४॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया, सूर्य मलिन हो गये और मांसभोजी जीव-जन्तु प्रसन्न-से होकर दौड़ लगाने लगे॥ ४॥

देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन् विशाम्पते।
कथंकथाभवत् तीव्रा दृष्ट्वा तद् व्याकुलं महत्॥ ५॥

प्रजानाथ! वह महान् उत्पात देखकर देवता, दानव और गन्धर्व भी त्रस्त हो उठे तथा सब लोगोंमें यह तीव्र गतिसे चर्चा होने लगी कि 'अब क्या करना चाहिये'॥ ५॥

व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चासन् विशाम्पते।
तद् दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम्॥ ६॥

महाराज! अश्वत्थामाके उस घोर एवं भयंकर अस्त्रको देखकर समस्त भूपाल व्यथित एवं भयभीत हो गये॥ ६॥

धृतराष्ट्र उवाच

निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता॥ ७॥
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत् तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ८॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अपने पिताके वधको सहन न कर सकनेवाले अत्यन्त शोकसंतप्त द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके साथ जब सारी सेनाएँ युद्धस्थलमें लौट आयीं, तब कौरवोंको आते देख पाण्डवदलमें धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये क्या विचार हुआ, वह मुझे बताओ॥ ७-८॥

संजय उवाच

प्रागेव विद्रुतान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वार्जुनमथाब्रवीत्॥ ९॥

संजयने कहा—राजन्! राजा युधिष्ठिरने पहले तो आपके सैनिकोंको भागते देखा था। फिर उन्होंने वह भयंकर शब्द सुनकर अर्जुनसे कहा॥ ९॥

युधिष्ठिर उवाच

आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे॥ १०॥
नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनंजय।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन् कुरवो रणात्॥ ११॥

युधिष्ठिर बोले—धनंजय! पूर्वकालमें जैसे वज्रधारी इन्द्रने महान् असुर वृत्रासुरको मार डाला था, उसी प्रकार युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नद्वारा आचार्य द्रोणके मारे जानेपर युद्धमें अपनी विजयसे निराश हो दीनचित्त कौरव आत्मरक्षाका विचार करके रणभूमिसे भागे जा रहे थे॥ १०-११॥

केचिद् भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैःपार्ष्णियन्तृभिः।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः॥ १२॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुग्णाश्च विशेषतः।
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः॥ १३॥

जिनके पार्श्वरक्षक और सारथि मारे गये थे, ध्वजा, पताका और छत्र नष्ट हो गये थे, कूबर टूटकर बिखर गये थे, बैठनेके स्थान चौपट हो चुके थे तथा धुरे, जूए और पहिये भी टूट-फूट गये थे, वैसे रथ भी व्याकुल घोड़ोंसे आकृष्ट हो वहाँ चक्कर लगा रहे थे और उनके द्वारा कुछ विशेष घायल हुए नरेश चारों ओर खिंचे चले जा रहे थे॥ १२-१३॥

भीताः पादैर्हयान् केचित् त्वरयन्तः स्वयं रथान्।
रथान् विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः॥ १४॥

कुछ लोग भयभीत हो घोड़ोंको पैरोंसे मार-मारकर स्वयं ही जल्दी-जल्दी रथ हाँक रहे थे और कुछ लोग टूटे हुए रथोंको छोड़कर पैदल ही भागने लगे थे॥ १४॥

हयपृष्ठगताश्चान्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः॥ १५॥
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद् दिशो दश।

कितने ही योद्धा घोड़ोंकी पीठपर बैठे, परंतु उनका आधा आसन खिसक गया और उसी अवस्थामें घोड़ोंके साथ खिंचे चले गये। कुछ लोग नाराचोंकी मार खाकर अपने आसनसे भ्रष्ट हो हाथियोंके कंधोंसे चिपक गये थे और उसी अवस्थामें बाणोंसे पीड़ित हो भागते हुए हाथी उन्हें दसों दिशाओंमें लिये जाते थे ॥ १५½ ॥

विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥ १६ ॥
संछिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।

कुछ लोगोंके अस्त्र-शस्त्र और कवच कट गये और वे अपने वाहनोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उस दशामें रथके पहियोंकी नेमिसे दबकर उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये और कितने ही घोड़ों तथा हाथियोंसे कुचल गये ॥ १६½ ॥

क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥ १७ ॥
नाभिजानन्ति चान्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।

दूसरे बहुत-से योद्धा 'हा तात ! हा पुत्र !' की रट लगाते हुए भयभीत होकर भाग रहे थे। मोहसे बल और उत्साह नष्ट हो जानेके कारण वे ऐसे अचेत हो रहे थे कि एक-दूसरेको पहचान भी नहीं पाते थे ॥ १७½ ॥

पुत्रान् पितॄन् सखीन् भ्रातॄन् समारोप्य दृढक्षतान्॥१८॥
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।

कितने ही सैनिक अधिक चोट खाये हुए अपने पुत्र, पिता, मित्र और भाइयोंको रथपर चढ़ाकर तथा उनके कवच खोलकर उनके घावोंको जलसे भिगो रहे थे ॥१८½॥

अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ॥ १९ ॥
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।

आचार्य द्रोणके मारे जानेपर वैसी दुरवस्थामें पड़कर जो सेना भाग गयी थी, उसे फिर किसने लौटाया है ? यदि तुम जानते हो तो मुझे बताओ ॥ १९½ ॥

हयानां ह्रेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ॥ २० ॥
रथनेमिस्वनैश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।

रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिला हुआ हिनहिनाते हुए घोड़ों और गर्जते हुए गजराजोंका महान् शब्द सुनायी पड़ता है ॥ २०½ ॥

एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥ २१ ॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।

कौरवसेनारूपी समुद्रमें यह कोलाहल अत्यन्त तीव्र वेगसे होने लगा है और बारंबार बढ़ता जा रहा है, जो मेरे सैनिकोंको कम्पित किये देता है ॥ २१½ ॥

य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् ग्रसेदिति मतिर्मम ।

यह जो महाभयंकर रोमाञ्चकारी शब्द सुनायी देता है, यह इन्द्रसहित तीनों लोकोंको ग्रस लेगा, ऐसा मुझे जान पड़ता है ॥ २२½ ॥

मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥ २३ ॥
द्रोणे हते कौरवार्थे व्यक्तमभ्येति वासवः ।

मैं समझता हूँ, यह भयंकर शब्द वज्रधारी इन्द्रकी गर्जना है। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौरवोंकी सहायताके लिये साक्षात् इन्द्र आ रहे हैं, यह स्पष्ट जान पड़ता है ॥

प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥
धनंजय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।

धनंजय ! यह अत्यन्त भीषण और भारी सिंहनाद सुनकर हमारे श्रेष्ठ रथी भी उद्विग्न हो उठे हैं और इनके रोंगटे खड़े हो गये हैं ॥ २४½ ॥

क एष कौरवान् दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥ २५ ॥
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ।

देवराज इन्द्रके समान यह कौन महारथी भागे हुए कौरवोंको खड़ा करके उन्हें पुनः युद्धके लिये रणभूमिमें लौटा रहा है ? ॥ २५½ ॥

अर्जुन उवाच

उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः ॥ २६ ॥
धमन्ति कौरवाः शङ्खान् यस्य वीर्यं समाश्रिताः ।
यत्र ते संशयो राजन् न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥ २७ ॥
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥
(इन्द्रविष्णुसमं वीर्ये कोपेऽन्तकमिव स्थितम् ।
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या नीतिमन्तं महारथम् ॥)
आख्यास्याम्युग्रकर्माणं कुरूणामभयंकरम् ।

अर्जुनने कहा—राजन् ! जिसके विषयमें आपको यह संदेह होता है कि शस्त्रोंका परित्याग कर देनेवाले गुरुदेव द्रोणाचार्यके मारे जानेपर यह कौन वीर कौरव-सैनिकोंको दृढ़तापूर्वक स्थापित करके सिंहनाद कर रहा है तथा जिसके बल और पराक्रमका आश्रय लेकर पराक्रमी कौरव अपनेको भयंकर कर्म करनेके लिये उद्यत करके शङ्खध्वनि कर रहे हैं; जो महाबाहु मतवाले हाथीके समान मस्तानी चालसे चलनेवाला और लज्जाशील है, जो बलमें इन्द्र और विष्णुके समान, क्रोधमें यमराजके सदृश तथा बुद्धिमें बृहस्पतिके तुल्य है, जो नीतिमान्, महारथी, उग्र कर्म करनेमें समर्थ तथा कौरवोंको अभयदान देनेवाला है, उस वीरका परिचय देता हूँ, सुनिये ॥ २६–२८½ ॥

यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् ॥ २९ ॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति ।

जिसके जन्म लेनेपर आचार्य द्रोणने परम सुयोग्य ब्राह्मणों-

को एक सहस्र गौएँ दान की थीं, वही अश्वत्थामा यह गर्जना कर रहा है ॥ २९½ ॥

जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा ॥ ३० ॥
हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः ।
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतं नाम तस्याकरोत् तदा॥ ३१ ॥
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ।

पाण्डुनन्दन ! जिस वीरने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा अश्वके समान हिनहिनाकर पृथ्वी तथा तीनों लोकोंको कम्पित कर दिया था और उस शब्दको सुनकर किसी अदृश्य प्राणीने उस समय उसका नाम 'अश्वत्थामा' रख दिया था, यह वही शूरवीर अश्वत्थामा सिंहनाद कर रहा है ॥३०-३१½॥

यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ॥ ३२ ॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ।

द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने जिनपर आक्रमण करके अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मके द्वारा जिन्हें अनाथके समान मार डाला था, उन्हींका यह रक्षक या सहायक उठ खड़ा हुआ है ॥३२½॥

गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ॥ ३३ ॥
तन्न जातु क्षमेद् द्रौणिर्जानन् पौरुषमात्मनः ।

पाञ्चालराजकुमारने जो मेरे गुरुदेवका केश पकड़कर खींचा था, उसे अपने पुरुषार्थको जाननेवाला अश्वत्थामा कभी क्षमा नहीं कर सकता ॥ ३३½ ॥

उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥ ३४ ॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान् कृतः ।

आपने धर्मज्ञ होते हुए भी राज्यके लोभसे झूठ बोलकर जो अपने गुरुको धोखा दिया, वह महान् पाप किया है ॥

चिरं स्थास्यति चाकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५ ॥
रामे वालिवधाद् यद्वदेवं द्रोणे निपातिते ।

अतः छिपकर वालीका वध करनेके कारण जैसे श्रीरामचन्द्रजीको अपयश मिला, उसी प्रकार झूठ बोलकर द्रोणाचार्यको मरवा देनेके कारण चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें आपकी अकीर्ति चिरस्थायिनी हो जायगी ॥ ३५½ ॥

सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः ॥ ३६ ॥
नायं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि ।

आचार्यने यह समझकर आपपर विश्वास किया था कि पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर सब धर्मोंके ज्ञाता और मेरे शिष्य हैं। ये कभी झूठ नहीं बोलते हैं ॥ ३६½ ॥

स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ॥ ३७ ॥
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।

परंतु आपने सत्यका चोला पहनकर आचार्यसे झूठे ही कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' उसी नामका हाथी मारा गया था, इसलिये आपने उसकी आड़ लेकर झूठ कहा ॥

ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥
आसीत् सुविह्वलो राजन् यथा दृष्टस्त्वया विभुः ।

फिर वे हथियार डालकर अपने प्राणोंकी ममतासे रहित हो अचेत हो गये। राजन्! उस समय शक्तिशाली होनेपर भी वे कितने व्याकुल हो गये थे, यह आपने प्रत्यक्ष देखा था ॥

स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३९ ॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।

पुत्रवत्सल गुरुदेव बेटेके शोकमें मग्न होकर युद्धसे विमुख हो गये थे। उस अवस्थामें आपने सनातन-धर्मकी अवहेलना करके उन्हें शस्त्रसे मरवा डाला ॥ ३९½ ॥

न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥ ४० ॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम् ।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१ ॥

जिसके पिता मारे गये हैं, वह आचार्यपुत्र अश्वत्थामा आज कुपित होकर धृष्टद्युम्नको कालका ग्रास बनाना चाहता है। अस्त्र त्यागकर निहत्थे हुए गुरुदेवको अधर्मपूर्वक मरवाकर अब आप मन्त्रियोंसहित उसके सामने जाइये और यदि शक्ति हो तो धृष्टद्युम्नकी रक्षा कीजिये ॥ ४०-४१ ॥

सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४२ ॥

आज हम सब लोग मिलकर भी धृष्टद्युम्नको नहीं बचा सकेंगे। जो अश्वत्थामा अतिमानव (अलौकिक पुरुष) है और समस्त प्राणियोंके प्रति मैत्रीका भाव रखता है, वही आज अपने पिताके केश पकड़े जानेकी बात सुनकर समराङ्गणमें हम सब लोगोंको जलाकर भस्म कर देगा ॥४२॥

विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४३ ॥

मैं आचार्यके प्राणोंकी रक्षा चाहता हुआ बारंबार पुकारता ही रह गया, परंतु स्वयं शिष्य होकर भी धृष्टद्युम्नने धर्मको लात मारकर अपने गुरुकी हत्या कर डाली ॥ ४३ ॥

यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४४ ॥

अब हमलोगोंकी आयुका अधिकांश भाग बीत चुका है और बहुत थोड़ा ही शेष रह गया है। इसीसे इस समय हमारा मस्तिष्क खराब हो गया और हमलोगोंने यह महान् पाप कर डाला है ॥ ४४ ॥

पितेव नित्यं सौहार्दात् पितेव हि च धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद् घातितो गुरुः॥४५॥

जो सदा पिताकी भाँति हमलोगोंपर स्नेह रखते और हमारा हित चाहते थे, धर्मदृष्टिसे भी जो हमारे पिताके ही

तुल्य थे, उन्हीं गुरुदेवको हमने इस क्षणभङ्गुर राज्यके लिये मरवा दिया ॥ ४५ ॥

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते ।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणको उनकी सेवामें रहनेवाले अपने पुत्रोंके साथ ही इस सारी पृथ्वीका राज्य सौंप दिया था ॥ ४६ ॥

सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः ।
अवृणीत सदा पुत्रान् मामेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥

हमारे शत्रु सदा आचार्यका सत्कार किया करते थे । उनके द्वारा वैसी उत्तम जीविका-वृत्ति पाकर भी आचार्य सदा मुझे ही अपने पुत्रसे बढ़कर मानते रहे हैं ॥ ४७ ॥

अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाहवे हतः ।
न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४८ ॥

उन्होंने आपको और मुझको देखकर युद्धमें हथियार डाल दिया और मारे गये । यदि वे युद्ध करते होते तो साक्षात् इन्द्र भी उन्हें मार नहीं सकते थे ॥ ४८ ॥

तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः ।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः ॥ ४९ ॥

हमारी बुद्धि लोभसे ग्रस्त है, हम नीचोंने राज्यके लिये सदा उपकार करनेवाले बूढ़े आचार्यके साथ द्रोह किया है ॥

अहो बत महत् पापं कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यद् राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः॥ ५० ॥

ओह ! हमने यह अत्यन्त भयंकर महान् पापकर्म कर डाला है, जो कि राज्य-सुखके लोभमें पड़कर इन आचार्य द्रोणकी पूर्णतः हत्या करा दी ॥ ५० ॥

पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् दाराञ्जीवितं चैव वासविः।
त्यजेत् सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥ ५१ ॥

मेरे गुरुदेव ऐसा समझते थे कि अर्जुन मेरे प्रेमवश आवश्यकता हो तो अपने पिता, पुत्र, भाई, स्त्री तथा प्राण—सबका त्याग कर सकता है ॥ ५१ ॥

स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः ।
तस्मादवाक्शिरा राजन् प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥

किंतु मैंने राज्यके लोभमें पड़कर उनके मारे जानेकी उपेक्षा कर दी । राजन् ! प्रभो ! इस पापके कारण अब मैं नीचे सिर करके नरकमें डाला जाऊँगा ॥ ५२ ॥

ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् ।
घातयित्वाद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम्॥ ५३ ॥

एक तो वे ब्राह्मण, दूसरे वृद्ध और तीसरे अपने आचार्य थे । इसके सिवा उन्होंने हथियार नीचे डाल दिया था और महान् मुनिवृत्तिका आश्रय लेकर बैठे हुए थे । इस अवस्थामें राज्यके लिये उनकी हत्या कराकर मैं जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक एक सौ छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५४ श्लोक हैं)

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनके वीरोचित उद्गार और धृष्टद्युम्नके द्वारा अपने कृत्यका समर्थन

संजय उवाच

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनंजयम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनकी यह बात सुनकर वहाँ बैठे हुए सब महारथी मौन रह गये । उनसे प्रिय या अप्रिय कुछ नहीं बोले ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत ।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब महाबाहु भीमसेनको क्रोध चढ़ आया । उन्होंने कुन्तीकुमार अर्जुनको फटकारते हुए-से कहा—॥२॥

मुनिर्यथारण्यगतो भाषसे धर्मसंहितम् ।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥

'पार्थ ! वनवासी मुनि अथवा किसी भी प्राणीको दण्ड न देते हुए कठोर व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण जिस प्रकार धर्मका उपदेश करता है, उसी प्रकार तुम भी धर्म-सम्मत बातें कह रहे हो ॥ ३ ॥

क्षतत्राता क्षताज्जीवन् क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु ।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः ॥ ४ ॥

'परंतु जो क्षति (संकट) से अपना तथा दूसरोंका त्राण करता है, युद्धमें शत्रुओंको क्षति पहुँचाना ही जिसकी जीविका है तथा जो स्त्रियों और साधु पुरुषोंपर क्षमाभाव रखता है, वही क्षत्रिय है और उसे ही शीघ्र इस पृथ्वीके राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः ।
अविपश्चिद् यथा वाचं व्याहरन् नाद्य शोभसे ॥५॥

'तुम समस्त क्षत्रियोचित गुणोंसे सम्पन्न और इस कुलका भार वहन करनेमें समर्थ होते हुए भी आज मूर्खके समान बातें कर रहे हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता है ॥ ५ ॥

पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः।
न चाति वर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा पराक्रम शचीपति इन्द्रके समान है। महासागर जैसे अपनी तट-भूमिका उल्लङ्घन नहीं करता, उसी प्रकार तुम भी कभी धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते हो ॥ ६ ॥

न पूजयेत् त्वां को न्वद्य यत् त्रयोदशवार्षिकम्।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे ॥ ७ ॥

'आज तेरह वर्षोंसे संचित किये हुए अमर्षको पीछे करके जो तुम धर्मकी ही अभिलाषा रखते हो, इसके लिये कौन तुम्हारी पूजा नहीं करेगा ? ॥ ७ ॥

दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥

'तात ! सौभाग्यकी बात है कि इस समय भी तुम्हारा मन अपने धर्मका ही अनुसरण करता है। धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले मेरे भाई ! तुम्हारी बुद्धि क्रूरताकी ओर न जाकर जो सदा दयाभावमें ही रम रही है, यह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ ८ ॥

यत् तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९ ॥
वनं प्रव्राजिताश्चास्म वल्कलाजिनवाससः।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १० ॥

'परंतु धर्ममें तत्पर रहनेपर भी जो शत्रुओंने अधर्मसे हमारा राज्य छीन लिया, द्रौपदीको सभामें लाकर अपमानित किया तथा हमें वल्कल और मृगचर्म पहनाकर तेरह वर्षोंके लिये जो वनमें निर्वासित कर दिया, हम वैसे बर्तावके योग्य कदापि नहीं थे ॥ ९-१० ॥

एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयानघ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥

'अनघ ! ये सारे अन्याय अमर्षके स्थान थे--असह्य थे, परंतु मैंने सब चुपचाप सह लिये। क्षत्रिय-धर्ममें आसक्त होनेके कारण ही यह सब कुछ सहन किया गया है ॥ ११ ॥

तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाद्य सहितस्त्वया।
सानुबन्धान् हनिष्यामि क्षुद्रान् राज्यहरानहम् ॥ १२ ॥

'परंतु अब उनके उन नीचतापूर्ण पापकर्मोंको याद करके मैं तुम्हारे साथ रहकर अपने राज्यका अपहरण करनेवाले इन नीच शत्रुओंको उनके सगे-सम्बन्धियों-सहित मार डालूँगा ॥ १२ ॥

त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम्।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥

'तुमने ही पहले युद्धके लिये कहा था और उसीके अनुसार हम यहाँ आकर यथाशक्ति उसके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु आज तुम्हीं हमारी निन्दा करते हो ! ॥ १३ ॥

स्वधर्मं नेच्छसे ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥

'तुम अपने क्षत्रिय-धर्मको नहीं जानना चाहते। तुम्हारी ये सारी बातें मिथ्या ही हैं। एक तो हम स्वयं ही भयसे पीड़ित हो रहे हैं, ऊपरसे तुम भी अपने वाग्बाणोंद्वारा हमारे मर्मस्थानोंको छेदे डालते हो ॥ १४ ॥

वपन् व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! जैसे कोई घायल मनुष्योंके घावपर नमक बिखेर दे (और वे वेदनासे छटपटाने लगें), उसी प्रकार तुम अपने वाग्बाणोंसे पीड़ित करके मेरे हृदयको विदीर्ण किये डालते हो ॥ १५ ॥

अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन् न बुद्ध्यसे।
यत् त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशस्यान् न प्रशंससि ॥ १६ ॥

'यद्यपि तुम और हम प्रशंसाके पात्र हैं, तो भी तुम जो अपनी और हमारी प्रशंसा नहीं करते हो, यह बहुत बड़ा अधर्म है और तुम धार्मिक होते हुए इस अधर्मको नहीं समझ रहे हो ॥ १६ ॥

वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनंजय न तेऽर्हति ॥ १७ ॥

'धनंजय ! भगवान् श्रीकृष्णके रहते हुए भी तुम द्रोणपुत्रकी प्रशंसा करते हो, जो तुम्हारी पूरी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है ॥ १७ ॥

स्वयमेवात्मनो दोषान् ब्रुवाणः किन्न लज्जसे।
दारयेयं महीं क्रोधाद् विकिरेयं च पर्वतान् ॥ १८ ॥
आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम्।
गिरिप्रकाशान् क्षितिजान् भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९ ॥

'स्वयं ही अपने दोषोंका वर्णन करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती है ? आज मैं अपनी इस सुवर्णभूषित भयंकर एवं भारी गदाको क्रोधपूर्वक घुमाकर इस पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ, पर्वतोंको चूर-चूर करके बिखेर सकता हूँ तथा प्रचण्ड आँधीकी तरह पर्वतपर प्रकाशित होनेवाले ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको भी तोड़ और उखाड़ सकता हूँ ॥ १८-१९ ॥

द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान् देवान् समागतान्।
सराक्षसगणान् पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥

'पार्थ ! असुर, नाग, मानव तथा राक्षसगणोंसहित सम्पूर्ण देवता और इन्द्र भी आ जायँ तो मैं उन्हें बाणोंद्वारा मारकर भगा सकता हूँ ॥ २० ॥

स त्वमेवंविधं जानन् भ्रातरं मां नरर्षभ।
द्रोणपुत्राद् भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥ २१ ॥

'अमित पराक्रमी नरश्रेष्ठ अर्जुन ! मुझ अपने भ्राताको ऐसा जानकर तुम्हें द्रोणपुत्रसे भय नहीं करना चाहिये ॥

अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥ २२ ॥

'अथवा अर्जुन ! तुम अपने समस्त भाइयोंके साथ यहीं खड़े रहो। मैं हाथमें गदा लेकर इस महासमरमें अकेला ही अश्वत्थामाको परास्त करूँगा' ॥ २२ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत्।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर दहाड़ते हुए नृसिंहावतारधारी भगवान् विष्णुसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुने बातें की थीं, उसी प्रकार वहाँ अर्जुनसे पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने इस प्रकार कहा ॥ २३ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम्।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन् प्रतिष्ठितः।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥

धृष्टद्युम्न बोला—अर्जुन ! यज्ञ करना और कराना, वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना तथा दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना—ये छः कर्म ही ब्राह्मणोंके लिये मनीषी पुरुषोंमें प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे किस कर्ममें द्रोणाचार्य प्रतिष्ठित थे। अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर उन्होंने क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले रक्खा था। पार्थ ! ऐसी अवस्थामें यदि मैंने द्रोणाचार्यका वध किया तो तुम इसके लिये मेरी निन्दा क्यों करते हो। वह नीच कर्म करनेवाला ब्राह्मण दिव्यास्त्रोंद्वारा हमलोगोंका संहार करता था ॥ २४–२६ ॥

तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम्।
माययैव विहन्याद् यो न युक्तं पार्थ तत्र किम्॥ २७ ॥

कुन्तीनन्दन ! जो ब्राह्मण कहलाकर भी दूसरोंके लिये मायाका प्रयोग करता हो और असह्य हो उठा हो, उसे यदि कोई मायासे ही मार डाले तो इसमें अनुचित क्या है ? ॥ २७ ॥

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २८ ॥

मेरे द्वारा द्रोणाचार्यके इस अवस्थामें मारे जानेपर यदि द्रोणपुत्र क्रोधपूर्वक भयानक गर्जना करता हो तो उसमें मेरी क्या हानि है ? ॥ २८ ॥

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया।
घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥

मैं इसे कोई अद्भुत बात नहीं मान रहा हूँ; अश्वत्थामा इस युद्धके द्वारा कौरवोंको मरवा डालेगा; क्योंकि वह स्वयं उनकी रक्षा करनेमें असमर्थ है ॥ २९ ॥

यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम्।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥

इसके सिवा तुम धार्मिक होकर जो मुझे गुरुकी हत्या करनेवाला बता रहे हो, वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि मैं इसीलिये अग्निकुण्डसे पाञ्चालराजका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ था ॥ ३० ॥

यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात् समं रणे।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनंजय ॥ ३१ ॥

धनंजय ! रणभूमिमें युद्ध करते समय जिसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्य दोनों समान हों, उसे तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कैसे कह सकते हो ? ॥ ३१ ॥

यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्च्छितः।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३२ ॥

पुरुषप्रवर ! जो क्रोधसे व्याकुल होकर ब्रह्मास्त्र न जाननेवालोंको भी ब्रह्मास्त्रसे ही मार डाले, उसका सभी उपायोंसे वध करना कैसे उचित नहीं है ?॥ ३२ ॥

विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम्।
जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥

धर्म और अर्थका तत्त्व जाननेवाले अर्जुन ! जो अपना धर्म छोड़कर परधर्म ग्रहण कर लेता है, उस विधर्मीको धर्मज्ञ पुरुषोंने धर्मात्माओंके लिये विषके तुल्य बताया है। यह सब जानते हुए भी तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३३ ॥

नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः।
तन्मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३४ ॥

बीभत्सो ! द्रोणाचार्य क्रूर एवं नृशंस थे, इसलिये मैंने रथपर ही आक्रमण करके उनको मार गिराया। अतः मैं निन्दाका पात्र नहीं हूँ। फिर तुम किस लिये मेरा अभिनन्दन नहीं करते हो ?॥ ३४ ॥

कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम्।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥

पार्थ ! द्रोणका मस्तक प्रलयकालकी अग्निके समान अत्यन्त भयंकर तथा लौकिक अग्नि, सूर्य एवं विषके तुल्य संताप देनेवाला था, अतः मैंने उसका छेदन किया है। इसके लिये तुम मेरी प्रशंसा क्यों नहीं करते ? ॥ ३५ ॥

योऽसौ ममैव नान्यस्य बान्धवान् युधि जघ्निवान्।

छित्त्वापि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥३६॥

जिसने युद्धके मैदानमें दूसरे किसीके नहीं, मेरे ही बन्धु-बान्धवोंका वध किया था, उसका मस्तक काट लेनेपर भी मेरा क्रोध और संताप शान्त नहीं हुआ है ॥ ३६ ॥

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥

जैसे तुमने जयद्रथके मस्तकको दूर फेंका था, उसी प्रकार मैंने द्रोणाचार्यके मस्तकको जो निषादोंके स्थानमें नहीं फेंक दिया, वह भूल मेरे मर्मस्थानोंका छेदन कर रही है ॥ ३७ ॥

अथावधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥

अर्जुन ! सुननेमें आया है कि शत्रुओंका वध न करना भी अधर्म ही है। क्षत्रियके लिये तो यह धर्म ही है कि वह युद्धमें शत्रुको मार डाले या फिर स्वयं उसके हाथसे मारा जाय ॥ ३८ ॥

स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥

पाण्डुनन्दन ! द्रोणाचार्य मेरे शत्रु थे, अतः मैंने युद्धमें धर्मके अनुसार ही उनका वध किया है। ठीक उसी तरह, जैसे तुमने अपने पिताके प्रिय मित्र शूरवीर भगदत्तका वध किया था ॥ ३९ ॥

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः।
मया शत्रौ हते कस्मात् पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥

तुम युद्धमें पितामहको मारकर भी अपने लिये तो धर्म मानते हो, किंतु मेरेद्वारा एक पापी शत्रुके मारे जानेपर भी इस कार्यको धर्म नहीं समझते; इसका क्या कारण है ? ॥ ४० ॥

सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥ ४१ ॥

पार्थ ! जैसे हाथी सम्बन्ध स्थापित कर लेनेपर लोगोंको अपने ऊपर चढ़ानेके लिये अपने ही शरीरकी सीढ़ी बनाकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ सम्बन्ध होनेके कारण नतमस्तक होता हूँ; अतः तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये ॥ ४१ ॥

क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नान्येन हेतुना ॥ ४२ ॥

अर्जुन ! मैं अपनी बहिन द्रौपदी और उसके पुत्रोंके नाते ही तुम्हारी इन सारी उलटी या कड़वी बातोंको सह लेता हूँ, दूसरे किसी कारणसे नहीं ॥ ४२ ॥

कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम्।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥

द्रोणाचार्यके साथ मेरा वंश-परम्परागत वैर चला आ रहा है, जो बहुत प्रसिद्ध है। उसे यह सारा संसार जानता है; क्या तुम पाण्डवोंको इसका पता नहीं है ? ॥ ४३ ॥

नानृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाहं वाधार्मिकोर्जुन।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४ ॥

अर्जुन ! तुम्हारे बड़े भाई पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर असत्यवादी नहीं हैं और न मैं ही अधर्मी हूँ। द्रोणाचार्य पापी और शिष्यद्रोही थे, इसलिये मारे गये। अब तुम युद्ध करो; विजय तुम्हारे हाथमें है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृष्टद्युम्नवाक्यविषयक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और धृष्टद्युम्नका परस्पर क्रोधपूर्वक वाग्बाणोंसे लड़ना तथा भीमसेन, सहदेव और श्रीकृष्ण एवं युधिष्ठिरके प्रयत्नसे उनका निवारण

धृतराष्ट्र उवाच

साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाधीता महात्मना।
यस्मिन् साक्षाद् धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥
यस्य प्रसादात् कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २ ॥
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ ३ ॥
नामर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक् क्षात्रं धिगमर्षिताम्।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! जिन महात्माने विधिपूर्वक अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था, जिन लज्जाशील सत्पुरुषमें साक्षात् धनुर्वेद प्रतिष्ठित था, जिनके कृपाप्रसादसे कितने ही पुरुषरत्न योद्धा संग्रामभूमिमें ऐसे-ऐसे अलौकिक पराक्रम कर दिखाते थे, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर थे; उन्हीं द्रोणाचार्यकी वह पापी, नीच, नृशंस, क्षुद्र और गुरुघाती धृष्टद्युम्न सबके सामने निन्दा कर रहा था और लोग क्रोध नहीं प्रकट करते थे। धिक्कार है ऐसे क्षत्रियोंको ! और धिक्कार है उनके अमर्षशील स्वभावको !! ॥ १-३½ ॥

पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः॥ ४ ॥
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाचक्ष्व संजय।

संजय ! भूमण्डलके जो-जो धनुर्धर नरेश वहाँ उपस्थित थे, उन सबने तथा कुन्तीके पुत्रोंने धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर उससे क्या कहा ? यह मुझे बताओ ॥ ४½ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः॥ ५ ॥
तूर्ष्णीं बभूवू राजानः सर्व एव विशाम्पते।
अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम्॥ ६ ॥
सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिग् धिगित्येव चाब्रवीत्।

संजयने कहा—प्रजानाथ ! क्रूरकर्मा द्रुपदपुत्रकी वे बातें सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी नरेश मौन रह गये। केवल अर्जुन टेढ़ी नजरोंसे उसकी ओर देखकर आँसू बहाते हुए दीर्घ निःश्वास ले इतना ही बोले कि—'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' ॥ ५-६½ ॥

युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथापरे॥ ७ ॥
आसन् सुव्रीडिता राजन् सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम्।

राजन् ! उस समय युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग भी अत्यन्त लज्जित हो चुप ही बैठे रहे, परंतु सात्यकि इस प्रकार बोल उठे—॥ ७½ ॥

नेहास्ति पुरुषः कश्चिद् य इमं पापपूरुषम्॥ ८ ॥
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम्।

'क्या यहाँ कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस प्रकार अभद्रतापूर्ण वचन बोलनेवाले इस पापी नराधमको शीघ्र ही मार डाले ॥ ८½ ॥

एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विकुत्सया॥ ९ ॥
कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव।

'धृष्टद्युम्न ! जैसे ब्राह्मण चाण्डालकी निन्दा करते हैं, उसी प्रकार ये समस्त पाण्डव उस पाप कर्मके कारण अत्यन्त घृणा प्रकट करते हुए तेरी निन्दा कर रहे हैं ॥ ९½ ॥

एतत् कृत्वा महत् पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः॥ १० ॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम्।
कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते॥ ११ ॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे।

'यह महान् पाप करके तू समस्त श्रेष्ठ पुरुषोंकी दृष्टिमें निन्दाका पात्र बन गया है। साधु पुरुषोंकी इस सुन्दर सभामें पहुँचकर ऐसी बातें करते हुए तुझे लज्जा कैसे नहीं आती है ? तेरी जीभके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते और तेरा मस्तक क्यों नहीं फट जाता ? ओ नीच ! गुरुकी निन्दा करते हुए तेरा इस पापसे पतन क्यों नहीं हो जाता ? ॥ १०-११½ ॥

वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः॥ १२ ॥
यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि।

'तू पापकर्म करके जनसमाजमें जो इस तरह अपनी बड़ाई कर रहा है, इसके कारण तू कुन्तीके सभी पुत्रों तथा अन्धक और वृष्णिवंशके यादवोंद्वारा निन्दाके योग्य हो गया है ॥ १२½ ॥

अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन्॥ १३ ॥
वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता।

'वैसा पापकर्म करके तू पुनः गुरुपर आक्षेप कर रहा है; अतः तू वध करनेके ही योग्य है। एक मुहूर्त भी तेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है ॥

कस्त्वेतद् व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम॥ १४ ॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः।

'पुरुषाधम ! तेरे सिवा दूसरा कौन श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्मा सज्जन गुरुके केश पकड़कर उनके वधका विचार भी मनमें लायेगा ॥ १४½ ॥

सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः॥ १५ ॥
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम्।

'तुझ-जैसे कुलाङ्गारको पाकर तेरे सात पीढ़ी पहलेके और सात पीढ़ी आगे होनेवाले बन्धु-बान्धव नरकमें डूब गये तथा सदाके लिये सुयशसे वञ्चित हो गये ॥१५½ ॥

उक्तवांश्चापि यत् पार्थे भीष्मं प्रति नरर्षभम्॥ १६ ॥
तथान्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना।

तूने जो कुन्तीकुमार अर्जुनपर नरश्रेष्ठ भीष्मके वधका दोष लगाया है, वह भी व्यर्थ ही है; क्योंकि महात्मा भीष्मने स्वयं ही उसी प्रकार अपनी मृत्युका विधान किया था ॥ १६½ ॥

तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः॥ १७ ॥
नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत्।

'वास्तवमें भीष्मका वध करनेवाला भी तेरा महान् पापाचारी भाई ही है। इस पृथ्वीपर पाञ्चालराजके पुत्रोंके सिवा दूसरा कोई ऐसा पाप करनेवाला नहीं है ॥ १७½ ॥

स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल॥ १८ ॥
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः।

'यह प्रसिद्ध है कि उसे भी तेरे पिताने भीष्मका अन्त करनेके लिये उत्पन्न किया था; उन्होंने महात्मा भीष्मकी मूर्तिमान् मृत्युके रूपमें ही शिखण्डीको सुरक्षित रक्खा था ॥

पञ्चालाश्चलिता धर्मात् क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः॥ १९ ॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः।

'तू और तेरा भाई दोनों समस्त साधु पुरुषोंके धिक्कारके पात्र हैं। तुम दोनोंको पाकर सारे पाञ्चाल धर्मभ्रष्ट, नीच, मित्रद्रोही तथा गुरुद्रोही बन गये हैं ॥ १९½ ॥

पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥ २० ॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।

'यदि तू पुनः मेरे समीप ऐसी बात बोलेगा तो मैं अपनी इस वज्रतुल्य गदासे तेरा सिर कुचल दूँगा ॥२०½॥

त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥ २१ ॥
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।

'तुझे ब्रह्महत्याका पाप लगा है। तुझ ब्रह्महत्यारेको देखकर लोग अपने प्रायश्चित्तके लिये सूर्यदेवका दर्शन करते हैं॥

पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२ ॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।

'दुराचारी पाञ्चाल ! तू मेरे आगे मेरे ही गुरु तथा मेरे गुरुके भी गुरुपर बारंबार आक्षेप कर रहा है, तो भी तुझे लज्जा नहीं आती ॥ २२½ ॥

तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३ ॥
तव चापि सहिष्येऽहं गदापाताननेकशः ।

'खड़ा रह, खड़ा रह', मेरी गदाकी यह एक ही चोट सह ले, फिर मैं तेरी गदाकी भी अनेक चोटें सहन करूँगा' ॥ २३½ ॥

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥ २४ ॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।

सात्वतवंशी सात्यकिके इस प्रकार कठोर वचन कहकर आक्षेप करनेपर धृष्टद्युम्न अत्यन्त कुपित हो उठे। फिर वे भी क्रोधमें भरे हुए सात्यकिसे हँसते हुए-से बोले ॥ २४½ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥ २५ ॥
सदानार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।

धृष्टद्युम्नने कहा—माधव ! मैं तेरी यह बात सुनता हूँ, सुनता हूँ और इसके लिये तुझे क्षमा भी करता हूँ। दुष्ट और अनार्य पुरुष सदा साधु जनोंपर ऐसे ही आक्षेप करनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २५½ ॥

क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६ ॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ।

यद्यपि लोकमें क्षमाभावकी प्रशंसा की जाती है, तथापि पापात्मा मनुष्य कभी क्षमाके योग्य नहीं है; क्योंकि क्षमा कर देनेपर वह पापात्मा क्षमाशील पुरुषको ऐसा समझ लेता है कि 'यह मुझसे हार गया' ॥ २६½ ॥

स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि।

तू स्वयं ही दुराचारी, नीच और पापपूर्ण विचार रखनेवाला है। नखसे शिखातक पापमें डूबा होनेके कारण निन्दाके योग्य है, तथापि दूसरोंकी निन्दा करना चाहता है ॥ २७½ ॥

यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥ २८ ॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं नु किम् ।

भूरिश्रवाकी बाँह काट डाली गयी थी। वे आमरण उपवासका नियम लेकर चुपचाप बैठे हुए थे। उस दशामें सबके मना करनेपर भी जो तूने उनका वध किया, इससे बढ़कर महान् पापकर्म और क्या हो सकता है? ॥ २८½ ॥

गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनास्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।

ओ क्रूर ! मैंने तो पहलेसे ही युद्धके मैदानमें दिव्यास्त्रद्वारा द्रोणाचार्यको मथ डाला था। फिर वे हथियार डालकर मारे गये, तो उसमें मैंने कौन-सा पाप कर डाला ॥ २९½ ॥

अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात् सात्यके स कथं वदेत् ।

सात्यके ! जो युद्धस्थलमें मुनिवृत्तिका आश्रय ले आमरण उपवासका निश्चय लेकर बैठ गया हो, जो अपने साथ युद्ध न कर रहा हो तथा जिसकी बाँह भी शत्रुओंद्वारा काट डाली गयी हो, ऐसे पुरुषको जो मार सकता है, वह दूसरेकी निन्दा कैसे कर सकता है? ॥ ३०½ ॥

निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।

जिस समय पराक्रमी भूरिश्रवा तुझे लातसे मारकर धरतीपर घसीट रहे थे, तू बड़ा श्रेष्ठ पुरुष था, तो उसी समय उन्हें क्यों नहीं मार डाला? ॥ ३१½ ॥

त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥ ३२ ॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।

जब अर्जुनने पहले ही प्रतापी शूरवीर सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाको परास्त कर दिया, उस समय तूने उनका वध किया। तू कितना नीच है? ॥ ३२½ ॥

यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।

द्रोणाचार्य जहाँ-जहाँ पाण्डव-सेनाको खदेड़ते थे, वहीं-वहीं मैं जा पहुँचता और सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके उनके छक्के छुड़ा देता था ॥ ३३½ ॥

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत् स्वयम्॥ ३४ ॥

वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात् त्वं परुषाण्यथ ।

जब तू स्वयं ही चाण्डालके समान ऐसा पाप-कर्म करके निन्दाका पात्र बन गया है, तब दूसरेको कटु वचन सुनानेका कैसे अधिकारी हो सकता है ?॥ ३४½ ॥

कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाहं वृष्णिकुलाधम ॥ ३५ ॥
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद ।

वृष्णिकुलकलंक ! तू ही ऐसे-ऐसे पाप करनेवाला और पाप-कर्मोंका भण्डार है, मैं नहीं । अतः फिर ऐसी बातें मुँहसे न निकालना ॥ ३५½ ॥

जोषमास्स्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥ ३६ ॥
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि ।

चुपचाप बैठा रह; अब फिर ऐसी बातें तुझे नहीं कहनी चाहिये । तू मुझसे जो कुछ कहना चाहता है, वह तेरी बड़ी भारी नीचता है ॥ ३६½ ॥

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम्॥ ३७ ॥
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम् ।

यदि मूर्खतावश तू पुनः मुझसे ऐसी कठोर बातें कहेगा, तो युद्धमें बाणोंद्वारा मैं अभी तुझे यमलोक भेज दूँगा ॥३७½॥

न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८ ॥
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम् ।

ओ मूर्ख ! केवल धर्मसे ही युद्ध नहीं जीता जा सकता । उन कौरवोंकी भी जो अधर्मपूर्ण चेष्टाएँ हुई हैं, उन्हें सुन ले ॥ ३८½ ॥

वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाधर्मेण सात्यके ।

सात्यके ! सबसे पहले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको अधर्मपूर्वक छला गया । फिर अधर्मसे ही द्रौपदीको अपमानित किया गया ॥ ३९½ ॥

प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ ४० ॥
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाधर्मेण बालिश ।

ओ मूर्ख ! समस्त पाण्डवोंको जो द्रौपदीके साथ वनमें भेज दिया गया और उनका सर्वस्व छीन लिया गया, वह भी अधर्मका ही कार्य था ॥ ४०½ ॥

अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परेरितः ॥ ४१ ॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः ।

शत्रुओंने अधर्मसे ही छलकर मद्रराज शल्यको अपने पक्षमें खींच लिया और सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको भी अधर्मसे ही मार डाला था ॥ ४१½ ॥

इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरंजयः ॥ ४२ ॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः ।

इस पक्षसे भी अधर्मके द्वारा ही शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले भीष्म मारे गये हैं और तू बड़ा धर्मज्ञ बनता है पर तूने भी अधर्मसे ही भूरिश्रवाका वध किया है ॥ ४२½ ॥

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत ।

सात्वत ! इस प्रकार धर्मके जाननेवाले वीर पाण्डवों तथा शत्रुओंने भी युद्धके मैदानमें अपनी विजयको सुरक्षित रखनेके लिये समय-समयपर अधर्मपूर्ण बर्ताव किया है ॥४३½॥

दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गा पितृनिवेशनम् ।

उत्तम धर्मका स्वरूप जानना अत्यन्त कठिन है । अधर्म क्या है ? इसे समझना भी सरल नहीं है । अब तू कौरवोंके साथ पूर्ववत् युद्ध कर । मुझसे विवाद करके पितृलोकमें जानेकी तैयारी न कर ॥ ४४½ ॥

संजय उवाच

एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥
श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाभवत् ।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम्॥४६ ॥
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः ।
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कितने ही क्रूर एवं कठोर वचन धृष्टद्युम्नने श्रीमान् सात्यकिको सुनाये । उन्हें सुनकर वे क्रोधसे काँपने लगे । उनकी आँखें लाल हो गयीं तथा उन्होंने सर्पके समान लंबी साँस खींचकर धनुषको तो रथपर रख दिया और हाथमें गदा उठा ली । फिर वे धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर बड़े रोषके साथ इस प्रकार बोले—'अब मैं तुझसे कठोर वचन नहीं कहूँगा । तू वधके ही योग्य है, अतः तुझे मार ही डालूँगा' ॥ ४५-४७½ ॥

तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥ ४८ ॥
पाञ्चाल्यायाभिसंक्रुद्धमन्तकायान्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥ ४९ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् ।

महाबली, अमर्षशील एवं अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए यमराज-तुल्य सात्यकि जब सहसा कालस्वरूप धृष्टद्युम्नकी ओर बढ़े, तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महाबली भीमसेनने तुरंत ही रथसे कूदकर उन्हें दोनों हाथोंसे रोक लिया ॥ ४८-४९½ ॥

द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् ।

क्रोधपूर्वक आगे बढ़ते और झपटते हुए बलवान् सात्यकिको महाबली पाण्डुपुत्र भीमने थामकर साथ-साथ चलना आरम्भ किया ॥ ५०½ ॥

स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।

फिर भीमने खड़े होकर अपने दोनों पैर जमा दिये और बलवानोंमें श्रेष्ठ शिनिप्रवर सात्यकिको छठे कदमपर बलपूर्वक काबूमें कर लिया ॥ ५१½ ॥

अवरुह्य रथात् तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! इतनेहीमें सहदेव भी तुरंत ही रथसे उतर पड़े और महाबली भीमसेनके द्वारा पकड़े गये सात्यकिसे मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले—॥ ५२½ ॥

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ५३ ॥
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।
तथैवान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥
कृष्णस्य च तथास्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते ।

'माननीय पुरुषसिंह ! अन्धक और वृष्णिवंशके यादवों तथा पाञ्चालोंसे बढ़कर दूसरा कोई हमलोगोंका मित्र नहीं है। इसी प्रकार अन्धक और वृष्णिवंशके लोगोंका तथा विशेषतः श्रीकृष्णका हमलोगोंसे बढ़कर दूसरा कोई मित्र नहीं है ॥ ५३-५४½ ॥

पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम्॥ ५५ ॥
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ।

'वार्ष्णेय ! पाञ्चाल लोग भी यदि समुद्रतककी सारी पृथ्वी खोज डालें, तो भी उन्हें दूसरा कोई वैसा मित्र नहीं मिलेगा, जैसे उनके लिये पाण्डव और वृष्णिवंशके लोग हैं ॥ ५५½ ॥

स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ॥ ५६ ॥
भवन्तश्च यथास्माकं भवतां च तथा वयम् ।

'आप भी हमारे ऐसे ही मित्र हैं, जैसा कि आप स्वयं भी मानते हैं। आपलोग जैसे हमारे मित्र हैं, वैसे ही हम भी आपके हैं ॥ ५६½ ॥

स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ५७ ॥
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात् प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ।
पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८ ॥
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद् भवेत् ।

'सब धर्मोंके ज्ञाता शिनिप्रवर ! इस प्रकार मित्रधर्मका विचार करके आप धृष्टद्युम्नकी ओरसे अपने क्रोधको रोकें और शान्त हो जायँ, आप धृष्टद्युम्नके और धृष्टद्युम्न आपके अपराधको क्षमा कर लें । हमलोग केवल क्षमा-प्रार्थना करनेवाले हैं; शान्तिसे बढ़कर श्रेष्ठ वस्तु और क्या हो सकती है ?' ॥ ५७-५८½ ॥

प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।

माननीय नरेश ! जब सहदेव सात्यकिको इस प्रकार शान्त कर रहे थे, उस समय पाञ्चालराजके पुत्रने हँसकर इस प्रकार कहा—॥ ५९½ ॥

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः ।
यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चास्य संयुगे ।

'भीमसेन ! शिनिके इस पौत्रको अपने युद्ध-कौशलपर बड़ा घमंड है । तुम इसे छोड़ दो, छोड़ दो । जैसे हवा पर्वतसे आकर टकराती है, उसी प्रकार यह मुझसे आकर भिड़े तो सही। कुन्तीनन्दन ! मैं अभी तीखे बाणोंसे इसका क्रोध उतार देता हूँ । साथ ही इसका युद्धका हौसला और जीवन भी समाप्त किये देता हूँ ॥ ६०-६१½ ॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥
सुमहत् पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ।

'परंतु मैं इस समय क्या कर सकता हूँ । पाण्डवोंका यह दूसरा ही महान् कार्य उपस्थित हो गया। ये कौरव बढ़े चले आ रहे हैं ॥ ६२½ ॥

अथवा फाल्गुनः सर्वान् वारयिष्यति संयुगे ॥ ६३ ॥
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।
मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६४ ॥
उत्सृजैनमहं चैनमेष वा मां हनिष्यति ।

'अथवा केवल अर्जुन युद्धके मैदानमें इन समस्त कौरवोंको रोकेंगे, तबतक मैं भी अपने बाणोंद्वारा इस सात्यकिका मस्तक काट गिराऊँगा । यह मुझे भी रणभूमिमें कटी हुई बाँहवाला भूरिश्रवा समझता है । तुम छोड़ दो इसे । या तो मैं इसे मार डालूँगा या यह मुझे' ॥ ६३-६४½ ॥

शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन्६५
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।

भीमसेनकी भुजाओंमें फँसे हुए बलवान् सात्यकि धृष्टद्युम्नकी बातें सुनकर फुफकारते हुए सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए निरन्तर छूटनेकी चेष्टा कर रहे थे ॥६५½॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ ६६ ॥
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर दो साँड़ोंके समान गरज रहे थे । माननीय नरेश ! उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरने शीघ्रतापूर्वक महान् प्रयत्न करके उन दोनों वीरोंको रोका ॥ ६६-६७ ॥

निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ ।

युयुत्सूनपरान् संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

क्रोधसे लाल आँखें किये उन दोनों महान् धनुर्धरोंको रोककर वे क्षत्रियशिरोमणि वीर समरभूमिमें युद्धकी इच्छासे आते हुए शत्रुओंका सामना करनेके लिये चल दिये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृष्टद्युम्न और सात्यकिका क्रोधविषयक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९८ ॥

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग, राजा युधिष्ठिरका खेद, भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए उपायसे सैनिकोंकी रक्षा, भीमसेनका वीरोचित उद्गार और उनपर उस अस्त्रका प्रबल आक्रमण

संजय उवाच

ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने प्रलयकालमें कालसे प्रेरित हो समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले यमराजके समान शत्रुओंका विनाश आरम्भ किया ॥ १ ॥

ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिंपुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २ ॥
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान् भल्लैः सोऽचिनोद् देहपर्वतम् ॥ ३ ॥

उसने शत्रु-सैनिकोंको भल्लोंसे मार-मारकर उनकी लाशोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया । ध्वजाएँ उस पहाड़के वृक्ष, शस्त्र उसके शिखर और मारे गये हाथी उसकी बड़ी-बड़ी शिलाओंके समान थे । घोड़े मानो उस पर्वतपर निवास करनेवाले किम्पुरुष थे । धनुष लताओंके समान फैलकर उसपर छाये हुए थे । मांसभक्षी जीव-जन्तु मानो वहाँ चहचहानेवाले पक्षी थे और भूतोंके समुदाय उसपर विहार करनेवाले यक्ष जान पड़ते थे ॥ २-३ ॥

ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ अश्वत्थामाने फिर बड़े वेगसे गर्जना करके आपके पुत्रको पुनः अपनी प्रतिज्ञा सुनायी ॥ ४ ॥

यस्माद् युध्यन्तमाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
तस्मात् सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान् हन्तास्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥ ६ ॥

'धर्मका चोला पहने हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने युद्धपरायण आचार्यसे 'शस्त्र त्याग दीजिये' ऐसा कहा था और शस्त्र रखवा दिया; इसलिये मैं उनके देखते-देखते उनकी सारी सेनाको खदेड़ दूँगा और समस्त सैनिकोंको भगाकर उस नीच पाञ्चाल-पुत्रको मार डालूँगा ॥ ५-६ ॥

सर्वानेतान् हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥

'यदि ये रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे तो मैं इन सबका वध कर डालूँगा, यह मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ । अतः तुम अपनी सेनाको लौटाओ' ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद् भयम् ॥ ८ ॥

यह सुनकर आपके पुत्रने महान् सिंहनादके द्वारा अपनी सेनाका भारी भय दूर करके फिर उसे लौटाया ॥ ८ ॥

ततः समागमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाभवत् तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥

राजन् ! फिर भरे हुए दो महासागरोंके समान कौरव-पाण्डव-सेनाओंमें घोर संग्राम आरम्भ हो गया ॥ ९ ॥

संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥

द्रोणपुत्रसे आश्वासन पाकर कौरव-सैनिक स्थिर हो युद्धके लिये रोष और उत्साहमें भर गये थे । उधर द्रोणाचार्यके मारे जानेसे पाण्डव और पाञ्चाल वीर पहलेसे ही उद्धत हो रहे थे ॥ १० ॥

तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद् विशाम्पते ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! वे अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल होकर अपनी ही विजय देख रहे थे । रोषावेषमें भरे हुए उन सैनिकोंका महान् वेग प्रकट हुआ ॥ ११ ॥

यथा शिलोच्चये शैलः सागरे सागरो यथा ।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन् कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! जैसे एक पहाड़ दूसरे पहाड़से टकरा जाय तथा एक समुद्र दूसरे समुद्रसे टक्कर ले, वही अवस्था कौरव-पाण्डव योद्धाओंकी भी थी ॥ १२ ॥

ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥

तदनन्तर हर्षमग्न हुए कौरव पाण्डव-सैनिक सहस्रों शङ्ख और हजारों रणभेरियाँ बजाने लगे ॥ १३ ॥

यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः।
अभवत् तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

जैसे मथे जाते हुए समुद्रका महान् शब्द सब ओर गूँज उठा था, उसी प्रकार आपकी सेनाका महान् कोलाहल भी अद्भुत एवं अनुपम था ॥ १४ ॥

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा।
अभिसंधाय पाण्डूनां पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥१५॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः।
पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव॥ १६ ॥

तत्पश्चात् द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवों और पाञ्चालों-की सेनाको लक्ष्य करके नारायणास्त्र प्रकट किया। उससे आकाशमें हजारों बाण प्रकट हुए। उन सबके अग्रभाग प्रज्वलित हो रहे थे। वे सभी बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान आकर पाण्डव-सैनिकोंका विनाश करनेको उद्यत थे ॥



ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन् महाहवे।
मुहूर्ताद् भास्करस्येव लोके राजन् गभस्तयः॥ १७ ॥

राजन्! जैसे दो ही घड़ीमें सूर्यकी किरणें सारे संसारमें फैल जाती हैं, उसी प्रकार उस महासमरमें वे बाण सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और समस्त सेनाओंमें छा गये ॥ १७ ॥

तथापरे द्योतमाना ज्योतींषीवामलाम्बरे।
प्रादुरासन् महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥

महाराज! इसी प्रकार वहाँ निर्मल आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ज्योतिर्मय ग्रह-नक्षत्रोंके समान काले लोहेके जलते हुए गोले भी प्रकट हो-होकर गिरने लगे ॥ १८ ॥

चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः॥ १९ ॥

फिर चार या दो पहियोंवाली शतघ्नियाँ (तोपें), बहुत-सी गदाएँ तथा जिनके प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे, ऐसे सूर्यमण्डलके समान कितने ही चक्र प्रकट होने लगे ॥

शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ।
दृष्ट्वान्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥

पुरुषश्रेष्ठ! उस समय आकाशको विभिन्न शस्त्रोंके आकारवाले पदार्थोंसे अत्यन्त व्याप्त हुआ-सा देख पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय योद्धा उद्विग्न हो उठे ॥ २० ॥

यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥

जनेश्वर! पाण्डव-महारथी जैसे-जैसे युद्ध करते थे, वैसे-ही-वैसे उस अस्त्रका वेग बढ़ता जाता था ॥ २१ ॥

वध्यमानास्तदास्त्रेण तेन नारायणेन वै।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥

उस नारायणास्त्रसे घायल हुए सैनिक रणभूमिमें ऐसे पीड़ित हुए मानो सब ओरसे आगमें झुलस रहे हों ॥२२॥

यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥

प्रभो! जैसे सर्दी बीतनेपर गर्मीमें लगी हुई आग सूखे काठ या जंगलको जला डाले, उसी प्रकार वह अस्त्र पाण्डव-सेनाको भस्म करने लगा ॥ २३ ॥

आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

राजन्! जब वह अस्त्र सब ओर व्याप्त हो गया और उसके द्वारा पाण्डव-सेना क्षीण होने लगी, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बड़ा भय हुआ ॥ २४ ॥

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम्।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥

उन्होंने अपनी उस सेनाको जब अचेत होकर भागती और कुन्तीपुत्र अर्जुनको तटस्थ भावसे खड़ा देखा, तब इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो गृहान् ॥२६॥

'धृष्टद्युम्न! तुम पाञ्चालोंकी सेनाके साथ भाग जाओ। सात्यके! तुम भी वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी वीरोंको साथ लेकर घर चले जाओ ॥ २६ ॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम्।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुतात्मनः ॥ २७ ॥



अश्वत्थामाके द्वारा पाण्डव-सेनापर नारायणास्त्रका प्रयोग

'धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने लिये जो उचित समझेंगे, करेंगे। ये सारे जगत्‌के कल्याणका उपदेश देते हैं, फिर अपना भला क्यों नहीं करेंगे ? ॥ २७ ॥

संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २८ ॥

'मैं तुम सभी सैनिकोंसे कह रहा हूँ, कोई भी युद्ध न करे। अब मैं भाइयोंके साथ अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥

भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥

'कायरोंके लिये दुस्तर संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्य-रूपी महासागरको पार करके मैं सगे-सम्बन्धियोंके साथ अश्वत्थामारूपी गायकी खुरीके जलमें डूब जाऊँगा ॥ २९ ॥

कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥

'अर्जुनकी मेरे प्रति जो शुभ कामना है, वह शीघ्र पूरी हो जानी चाहिये; क्योंकि सदा अपने कल्याणमें संलग्न रहने-वाले आचार्यको मैंने युद्धमें मरवा दिया है ॥ ३० ॥

येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥ ३१ ॥

'जिन्होंने युद्धकौशलसे रहित बालक सुभद्राकुमारको क्रूर स्वभाववाले बहुसंख्यक शक्तिशाली महारथियोंद्वारा मरवा दिया और उसकी रक्षा नहीं की ॥ ३१ ॥

येनाविब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥

'पुत्रसहित जिन्होंने सभामें लायी गयी द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर न देकर उसके प्रति उपेक्षा दिखायी, उस समय वह बेचारी हमारे दासभावके निवारणका प्रयत्न कर रही थी ॥

(रक्षणे च महान् यत्नः सैन्धवस्य कृतो युधि।
अर्जुनस्य विघातार्थं प्रतिज्ञा येन रक्षिता ॥

'जिन्होंने अर्जुनके विनाशके लिये युद्धमें सिंधुराजकी रक्षाके निमित्त महान् प्रयत्न किया और अपनी प्रतिज्ञा रक्खी ॥

व्यूहद्वारि वयं चैव धृता येन जिगीषवः।
वारितं च महत् सैन्यं प्रविशत् तद् यथाबलम् ॥)

'हमलोग विजयकी अभिलाषासे आगे बढ़ना चाहते थे; किंतु जिन्होंने हमें व्यूहके दरवाजेपर ही रोक रक्खा था, यथाशक्ति उसके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टामें लगी हुई हमारी विशाल सेनाको भी जिन्होंने रोक ही दिया था ॥

जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनम्।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥

'अर्जुनके घोड़े जब थक गये थे और धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जब अर्जुनके वधकी इच्छासे उनपर आक्रमण कर रहा था, उस समय जिन्होंने उसकी तथा सिंधुराजकी रक्षाके लिये उसे दिव्य कवचद्वारा सुरक्षित कर दिया था ॥ ३३ ॥

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥

'ब्रह्मास्त्रको जाननेवाले जिन आचार्यदेवने मेरी विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सत्यजित् आदि पाञ्चालवीरोंको समूल नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद् वयमधर्मतः।
निवार्यमाणा नु वयं नानुयातास्तदैषिणः ॥ ३५ ॥

'जब कौरव अधर्मपूर्वक हमें राज्यसे निर्वासित कर रहे थे, तब जिन्होंने हमें रोकने (शान्त करने) की ही चेष्टा की थी; किंतु उनका हित चाहनेवाले हमलोगोंका उस समय उन्होंने साथ नहीं दिया था ॥ ३५ ॥

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम्।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥

'जो (इस प्रकार) हमलोगोंपर अत्यन्त स्नेह करनेवाले थे वे द्रोणाचार्य मारे गये हैं; अतः उनके लिये अपने भाइयों-सहित मैं भी मर जाऊँगा' ॥ ३६ ॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय दशार्हकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही अपनी दोनों भुजाओंके संकेतसे सारी सेनाको रोककर इस प्रकार कहा— ॥ ३७ ॥

शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिषेधे महात्मना ॥ ३८ ॥

'योद्धाओ ! अपने अस्त्र-शस्त्र शीघ्र नीचे डाल दो और सवारियोंसे उतर जाओ। परमात्मा नारायणने इस अस्त्रके निवारणके लिये यही उपाय निश्चित किया है ॥ ३८ ॥

द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥

'तुम सब लोग हाथी, घोड़े और रथोंसे उतरकर पृथ्वी-पर आ जाओ। इस प्रकार भूमिपर निहत्थे खड़े हुए तुम-लोगोंको यह अस्त्र नहीं मार सकेगा ॥ ३९ ॥

यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥

'हमारे योद्धा जैसे-जैसे इस अस्त्रके विरुद्ध युद्ध करते हैं, वैसे-ही-वैसे ये कौरव अत्यन्त प्रबल होते जा रहे हैं ॥ ४० ॥

निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये।
(येऽञ्जलिं कुर्वते वीरा नमन्ति च विवाहनाः।)
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥

'जो लोग अपने वाहनोंसे उतरकर हथियार नीचे डाल

देंगे और जो वीर वाहनरहित हो इसके सामने हाथ जोड़कर नमस्कार करेंगे, उन मनुष्योंको संग्राममूमिमें यह अस्त्र नहीं मारेगा ॥ ४१ ॥

ये त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसापीह केचन।
निहनिष्यति तान् सर्वान् रसातलगतानपि ॥ ४२ ॥

'जो कोई मनसे भी इस अस्त्रका सामना करेंगे, वे रसातलमें चले गये हों तो भी यह अस्त्र वहाँ पहुँचकर उन सबको मार डालेगा' ॥ ४२ ॥

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥

भारत ! भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर सब योद्धाओंने अन्यान्य इन्द्रियों तथा मनसे भी अस्त्रको त्याग देनेका विचार कर लिया ॥ ४३ ॥

तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः।
भीमसेनोऽब्रवीद् राजन्निदं संहर्षयन् वचः ॥ ४४ ॥

राजन् ! तब उन सबको अस्त्र त्यागनेके लिये उद्यत हुआ देख पाण्डुनन्दन भीमसेनने उनमें हर्ष और उत्साह पैदा करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४४ ॥

न कथंचन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित्।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥

'किसी भी वीरको किसी तरह भी अपने हथियार नहीं डालने चाहिये। मैं अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रके अस्त्रका निवारण करूँगा ॥ ४५ ॥

गदयाप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे।
कालवत् प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ४६ ॥

'इस सुवर्णमयी भारी गदासे रणभूमिमें द्रोणपुत्रके अस्त्रोंको चूर-चूर करनेके लिये मैं कालके समान प्रहार करूँगा ॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ३७ ॥

'इस संसारमें मेरे पराक्रमकी समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्यके समान दूसरा कोई ज्योतिर्मय ग्रह नहीं है ॥ ४७ ॥

पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥

'गजराजके शुण्डोंके समान मोटी मेरी इन भुजाओंको देखो तो सही; ये हिमालयपर्वतको भी धराशायी करनेमें समर्थ हैं ॥ ४८ ॥

नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह।
शक्रो यथाप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥

'यहाँके मनुष्योंमें एक मैं ही ऐसा हूँ, जिसमें दस हजार हाथियोंके समान बल है। जैसे स्वर्गलोक और देवताओंमें केवल इन्द्र ही ऐसे हैं, जिनका दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी योद्धा नहीं है ॥ ४९ ॥

अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वारणे ॥ ५० ॥

'आज युद्धस्थलमें मोटे कंधेवाली मेरी इन दोनों भुजाओं-का बल देखो कि ये किस प्रकार अश्वत्थामाके प्रज्वलित एवं दीप्तिमान् अस्त्रके निवारणमें समर्थ होती हैं ॥ ५० ॥

यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते।
अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥

'यदि इस नारायणास्त्रका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा अबतक नहीं हुआ है, तो आज मैं कौरवों और पाण्डवोंके देखते-देखते इसका सामना करूँगा ॥ ५१ ॥

अर्जुनार्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥

'अर्जुन ! अर्जुन ! बीभत्सो ! कहीं तुम भी न अपने गाण्डीव धनुषको नीचे डाल देना; नहीं तो तुममें भी चन्द्रमा-के समान कलंक लग जायगा और वह तुम्हारी निर्मलताको नष्ट कर देगा' ॥ ५२ ॥

अर्जुन उवाच

भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च।
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

अर्जुन बोले—भैया भीमसेन ! नाराणास्त्र, गौ और ब्राह्मण—इनके समक्ष गाण्डीव धनुषको नीचे डाल दिया जाय; यही मेरा उत्तम व्रत है ॥ ५३ ॥

एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिंदमम्।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ ५४ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भीमसेन अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी तथा मेघगर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा शत्रुदमन द्रोणपुत्रका सामना करनेके लिये चल दिये ॥

(कम्पयन् मेदिनीं सर्वां त्रासयंश्च चमूं तव।
शङ्खशब्दं महत् कृत्वा भुजशब्दं च पाण्डवः ॥

पाण्डुपुत्र भीम बड़े जोरसे शङ्ख बजाकर और भुजाओं-द्वारा ताल ठोंककर सारी पृथ्वीको कँपाते और आपकी सेना-को भयभीत करते हुए चले ॥

तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा बाहुशब्दं च तावकाः।
समन्तात् कोष्ठकीकृत्य शरव्रातैरवाकिरन् ॥)

उनकी शङ्खध्वनि तथा भुजाओंद्वारा ताल ठोंकनेका शब्द सुनकर आपके सैनिकोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः।
निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ५५ ॥

शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले कुन्तीकुमार भीमसेनने पलक मारते-मारते अश्वत्थामाके पास पहुँचकर बड़ी फुर्तीसे अपने बाणोंका जाल-सा बिछाते हुए उसे ढक दिया॥

ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च।
अवाकिरत् प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः॥ ५६॥

तब अश्वत्थामाने धावा करनेवाले भीमसेनसे हँसकर बात की और उनपर नारायणास्त्रसे अभिमन्त्रित प्रज्वलित अग्रभागवाले बाणोंकी झड़ी लगा दी॥ ५६॥

पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिर्ज्वलनं रणे।
अवकीर्णोऽभवत् पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः॥ ५७॥

रणभूमिमें वे बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान आग उगल रहे थे; कुन्तीकुमार भीम उनसे ढक गये, मानो उनके ऊपर स्वर्णमयी चिनगारियाँ पड़ रही हों॥५७॥

तस्य रूपमभूद् राजन् भीमसेनस्य संयुगे।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये॥ ५८॥

राजन्! उस समय युद्धस्थलमें भीमसेनका रूप संध्याके समय जुगुनुओंसे भरे हुए पर्वतके समान प्रतीत हो रहा था॥

तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन् प्रतिसमस्यति।
अवर्धत महाराज यथाग्निरनिलोद्धतः॥ ५९॥

महाराज! भीमसेन जब द्रोणपुत्रके उस अस्त्रके सामने बाण मारने लगे, तब वह हवाका सहारा पाकर धधक उठनेवाली आगके समान प्रचण्ड वेगसे बढ़ने लगा॥ ५९॥

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम्।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद् भयमाविशत्॥ ६०॥

उस अस्त्रको बढ़ते देख भयंकर पराक्रमी भीमसेनको छोड़कर शेष सारी पाण्डवसेनापर महान् भय छा गया॥६०॥

ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले।
अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः॥ ६१॥

तब वे समस्त सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्रोंको धरतीपर डालकर रथ, हाथी और घोड़े आदि सभी वाहनोंसे उतर गये॥

तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथापतत्॥ ६२॥

उनके हथियार डाल देने और वाहनोंसे उतर जानेपर उस अस्त्रकी विशाल शक्ति केवल भीमसेनके माथेपर आ पड़ी॥

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा॥ ६३॥

तब सभी प्राणी विशेषतः पाण्डव हाहाकार कर उठे। उन्होंने देखा, भीमसेन उस अस्त्रके तेजसे आच्छादित हो गये हैं॥ ६३॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें पाण्डव-सेनाका अस्त्र-त्यागविषयक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ६७½ श्लोक हैं)

द्विशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका भीमसेनको रथसे उतारकर नारायणास्त्रको शान्त करना, अश्वत्थामाका उसके पुनः प्रयोगमें अपनी असमर्थता बताना तथा अश्वत्थामाद्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय, सात्यकिका दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और वृषसेन—इन छः महारथियोंको भगा देना फिर अश्वत्थामाद्वारा मालव, पौरव और चेदिदेशके युवराजका वध एवं भीम और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा पाण्डवसेनाका पलायन

संजय उवाच

भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनंजयः।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! भीमसेनको उस अस्त्रसे घिरा हुआ देख अर्जुनने उन्हें उसके तेजका निवारण करनेके लिये वारुणास्त्रसे ढक दिया॥ १॥

नालक्ष्यत तत् कश्चिद् वारुणास्त्रेण संवृतम्।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः॥ २॥

एक तो अर्जुनने बड़ी फुर्ती की थी, दूसरे भीमसेनपर उस अस्त्रके तेजका आवरण था, इससे कोई भी यह देख न सका कि भीमसेन वारुणास्त्रसे घिरे हुए हैं॥ २॥

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दशः॥ ३॥

घोड़े, सारथि और रथसहित भीमसेन द्रोणपुत्रके उस अस्त्रसे ढककर आगके भीतर रक्खी हुई आगके समान प्रतीत होते थे। वे ज्वालाओंसे इतने घिर गये थे कि उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था॥ ३॥

यथा रात्रिक्षये राजन् ज्योतींष्यस्तागिरिं प्रति।
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति॥ ४॥

राजन्! जैसे रात्रि समाप्त होनेके समय सारे ज्योतिर्मय ग्रह-नक्षत्र अस्ताचलकी ओर चले जाते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाके बाण भीमसेनके रथपर गिरने लगे॥ ४॥

स हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष ।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताऽभवन् ॥ ५ ॥

माननीय नरेश ! भीमसेन तथा उनके रथ, घोड़े और सारथि—ये सभी अश्वत्थामाके अस्त्रसे आच्छादित हो आगकी लपटोंके भीतर आ गये थे ॥ ५ ॥

यथा दग्ध्वा जगत् कृत्स्नं समये सचराचरम् ।
गच्छेद् वह्निर्विभोरास्यं तथास्त्रं भीममावृणोत् ॥ ६ ॥

जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण जगत्को भस्म करके परमात्माके मुखमें प्रवेश कर जाती है, उसी प्रकार उस अस्त्रने भीमसेनको चारों ओरसे ढक लिया था ॥ ६ ॥

सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद् यथा चाग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत् तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवः ॥ ७ ॥

जैसे सूर्यमें अग्नि और अग्निमें सूर्य प्रविष्ट हुए हों, उसी प्रकार उस अस्त्रका तेज तेजस्वी भीमसेनपर छा गया था; इसलिये पाण्डुपुत्र भीमसेन किसीको दिखायी नहीं पड़ते थे ॥ ७ ॥

विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ८ ॥
सर्वसैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान् महारथान् ॥ ९ ॥
अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद् वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ १० ॥

वह अस्त्र भीमसेनके रथपर छा गया था । युद्धस्थलमें कोई प्रतिद्वन्द्वी योद्धा न होनेसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा प्रबल होता जा रहा था । पाण्डवोंकी सारी सेना हथियार डालकर (भयसे) अचेत हो गयी थी और युधिष्ठिर आदि महारथी युद्धसे विमुख हो गये थे । यह सब देखकर महातेजस्वी अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वीर बड़ी उतावलीके साथ रथसे कूदकर भीमसेनकी ओर दौड़े ॥ ८–१० ॥

ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ माययाऽऽविशतां तथा ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँचकर वे दोनों अत्यन्त बलवान् वीर द्रोणपुत्रकी अस्त्र-शक्तिसे प्रकट हुई उस आगमें घुसकर माया-द्वारा उसमें प्रविष्ट हो गये ॥ ११ ॥

न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहत् सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १२ ॥

उन दोनोंने अपने हथियार रख दिये थे, वारुणास्त्रका प्रयोग किया था तथा वे दोनों कृष्ण अधिक शक्तिशाली थे; इसलिये वह अस्त्रजनित अग्नि उन्हें जला न सकी ॥ १२ ॥

ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥

तदनन्तर नर-नारायणस्वरूप अर्जुन और श्रीकृष्णने उस नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये भीमसेनको और उनके सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको बलपूर्वक रथसे नीचे खींचा ॥ १३ ॥



आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद् घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥

खींचे जाते समय कुन्तीकुमार भीमसेन और भी जोर-जोरसे गर्जना करने लगे । इससे अश्वत्थामाका वह परम दुर्जय घोर अस्त्र और भी बढ़ने लगा ॥ १४ ॥

तमब्रवीद् वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद् युद्धान्न निवर्तसे ॥ १५ ॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'पाण्डुनन्दन ! कुन्तीकुमार ! यह क्या बात है कि तुम मना करनेपर भी युद्धसे निवृत्त नहीं हो रहे हो । यदि ये कौरवनन्दन इस समय युद्धसे ही जीते जा सकते तो हम और ये सभी नरश्रेष्ठ राजा लोग युद्ध ही करते ॥ १५-१६ ॥

रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्वं एव हि तावकाः ।
तस्मात् त्वमपि कौन्तेय रथात् तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥

'तुम्हारे सभी सैनिक रथसे उतर गये हैं । कुन्तीकुमार ! अब तुम भी शीघ्र ही रथसे उतरकर युद्धसे अलग हो जाओ' ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद् भूमिमवर्तयत्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम्॥ १८॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्णने क्रोधसे लाल आँखें करके सर्पके समान फुफकारते हुए भीमसेनको रथसे भूमिपर उतार लिया॥ १८॥

यदापकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि।
ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम्॥ १९॥

जब ये रथसे उतर गये और उनसे अस्त्र-शस्त्रोंको भूमिपर रखवा लिया गया, तब वह शत्रुओंको संताप देनेवाला नारायणास्त्र स्वयं प्रशान्त हो गया॥ १९॥

संजय उवाच

तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे।
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च॥ २०॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः।
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये॥ २१॥

संजय कहते हैं—राजन्! उस विधिसे उस दुःसह तेजके शान्त हो जानेपर सारी दिशाएँ और विदिशाएँ निर्मल हो गयीं। शीतल सुखद वायु चलने लगी। पशु-पक्षियोंका आर्तनाद बंद हो गया तथा उस दुर्जय अस्त्रके शान्त होनेपर सारे वाहन भी सुखी हो गये॥ २०-२१॥

व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत।
बभौ भीमो निशापाये धीमान् सूर्य इवोदितः॥ २२॥

भारत! उस भयंकर तेजके दूर हो जानेपर बुद्धिमान् भीमसेन रात बीतनेपर उगे हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे॥ २२॥

हतशेषं बलं तत् तु पाण्डवानामतिष्ठत।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया॥ २३॥

पाण्डवोंकी जो सेना मरनेसे बच गयी थी, वह उस अस्त्रके शान्त हो जानेसे पुनः आपके पुत्रोंका विनाश करनेके लिये हर्षसे खिल उठी॥ २३॥

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत्॥ २४॥

महाराज! उस अस्त्रके प्रतिहत और पाण्डव-सेनाके सुव्यवस्थित हो जानेपर दुर्योधनने द्रोणपुत्रसे इस प्रकार कहा—॥ २४॥

अश्वत्थामन् पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत् प्रयोजय।
अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः॥ २५॥

'अश्वत्थामन्! तुम पुनः शीघ्र ही इसी अस्त्रका प्रयोग करो; क्योंकि विजयकी अभिलाषा रखनेवाले ये पाञ्चाल सैनिक पुनः युद्धके लिये आकर डट गये हैं'॥ २५॥

अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत्॥ २६॥

मान्यवर! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने अत्यन्त दीनभावसे उच्छ्वास लेकर राजासे इस प्रकार कहा—॥

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते।
आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः॥ २७॥

'राजन्! न तो यह अस्त्र फिर लौटता है और न इसका दुबारा प्रयोग ही हो सकता है। यदि इसका पुनः प्रयोग किया जाय तो यह प्रयोग करनेवालेको ही समाप्त कर देगा, इसमें संशय नहीं है॥ २७॥

एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान्।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप॥ २८॥

'जनेश्वर! श्रीकृष्णने इस अस्त्रके निवारणका उपाय बता दिया है और उसका प्रयोग किया है; अन्यथा आज युद्धमें सम्पूर्ण शत्रुओंका वध हो ही गया होता॥ २८॥

पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान् मृत्युर्न निर्जयः।
विजिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः॥ २९॥

'पराजय हो या मृत्यु, इनमें मृत्यु ही श्रेष्ठ है, पराजय नहीं। ये सारे शत्रु हार गये थे; हथियार डालकर मुर्देके समान हो गये थे'॥ २९॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर॥ ३०॥

दुर्योधन बोला—आचार्यपुत्र! तुम तो सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। यदि इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं हो सकता तो तुम दूसरे ही अस्त्रोंद्वारा इन गुरु-घातियोंका वध करो॥ ३०॥

त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि त्र्यम्बके चामितौजसि।
इच्छतो न हि ते मुच्येत् संक्रुद्धो हि पुरंदरः॥ ३१॥

तुममें तथा अमिततेजस्वी भगवान् शङ्करमें ही सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रतिष्ठित हैं। यदि तुम मारना चाहो तो क्रोधमें भरे हुए इन्द्र भी तुमसे बचकर नहीं जा सकते॥ ३१॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत् पुनः॥ ३२॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! द्रोणाचार्य छलपूर्वक मारे गये और नारायणास्त्र भी प्रतिहत हो गया, तब दुर्योधनके वैसा कहनेपर अश्वत्थामाने फिर क्या किया?॥ ३२॥

दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान्।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे॥ ३३॥

क्योंकि उसने देख लिया था कि नारायणास्त्रसे छूटे

हुए पाण्डव संग्राममें युद्धके लिये उपस्थित हैं और युद्धके मुहानेपर विचर रहे हैं ॥ ३३ ॥

संजय उवाच

जानन् पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः ।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! अश्वत्थामाकी ध्वजा-पताकामें सिंहकी पूँछका चिह्न बना हुआ था। उसने पिताके मारे जानेकी घटनाका स्मरण करके कुपित हो भय छोड़कर धृष्टद्युम्नपर धावा किया ॥ ३४ ॥

अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।
पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥

नरश्रेष्ठ ! निकट जाकर पुरुषप्रवर अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको पहले क्षुद्रक नामवाले बीस बाण मारे। फिर अत्यन्त वेगसे पाँच बाणोंका प्रहार करके उन्हें घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन् विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! तदनन्तर धृष्टद्युम्नने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी द्रोणपुत्रको तिरसठ बाणोंसे बींध डाला ॥ ३६ ॥

सारथिं चास्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

फिर शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चार तीखे सायकोंसे उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ ३७ ॥

विद्ध्वा विद्ध्वानदद् द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ३८ ॥

धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाको बींध-बींधकर पृथ्वीको कँपाते हुए-से गरज रहे थे। मानो उस महासमरमें वे सम्पूर्ण जगत्‌के प्राण ले रहे हों ॥ ३८ ॥

पार्षतस्तु बली राजन् कृतास्त्रः कृतनिश्चयः ।
द्रौणिमेवाभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३९ ॥

राजन् ! बलवान् अस्त्रवेत्ता तथा दृढ़ निश्चयवाले धृष्टद्युम्नने मृत्युको ही युद्धसे लौटनेकी अवधि निश्चित करके द्रोणपुत्रपर ही धावा किया ॥ ३९ ॥

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न, रथियोंमें श्रेष्ठ पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके मस्तकपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४० ॥

तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥

अपने पिताके वधका बारंबार स्मरण करते हुए अश्वत्थामाने भी समराङ्गणमें कुपित हुए धृष्टद्युम्नको बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया और दस बाणोंसे मारकर उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४१ ॥

द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥

इसके सिवा, अच्छी तरह छोड़े हुए दो छुरोंसे पाञ्चालराजकुमारके ध्वज और धनुषको काटकर अश्वत्थामाने दूसरे बाणोंद्वारा उन्हें भलीभाँति पीड़ित किया ॥ ४२ ॥

व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥ ४३ ॥

इतना ही नहीं, द्रोणपुत्रने उस महायुद्धमें धृष्टद्युम्नको घोड़े, सारथि तथा रथसे भी वञ्चित कर दिया। साथ ही कुपित हो उनके सारे सेवकोंको भी बाणोंसे मार-मारकर खदेड़ना शुरू किया ॥ ४३ ॥

ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते ।
सम्भ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पाञ्चालोंकी सेना भ्रान्त एवं आर्त होकर भाग चली। उसके सैनिक एक दूसरेको देखते नहीं थे ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नं च पीडितम् ।
शैनेयोऽचोदयत् तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥

योद्धाओंको युद्धसे विमुख और धृष्टद्युम्नको बाणोंसे पीड़ित देख सात्यकिने तुरंत अपना रथ अश्वत्थामाके रथकी ओर बढ़ाया ॥ ४५ ॥

अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥

उन्होंने आठ पैने बाणोंसे अश्वत्थामाको चोट पहुँचायी। तत्पश्चात् अमर्षमें भरे हुए सात्यकिने भाँति-भाँतिके बीस बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रको पुनः घायल करके उसके सारथिको भी बींध डाला और पूर्णरूपसे सावधान हो एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति उन्होंने चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको घायल करके ध्वज और धनुषको भी काट दिया ॥ ४६-४७ ॥

स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद घोड़ोंसहित उसके सुवर्णभूषित रथको भी छिन्न-भिन्न कर डाला और समराङ्गणमें तीस बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४८ ॥

एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।

शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ ४९ ॥

राजन् ! इस प्रकार बाणोंके जालसे घिरकर पीड़ित हुए महाबली अश्वत्थामाको कोई कर्तव्य नहीं सूझता था ॥

एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥ ५० ॥

गुरुपुत्रकी ऐसी अवस्था हो जानेपर आपके महारथी पुत्र दुर्योधनने कृपाचार्य और कर्ण आदिके साथ आकर सात्यकिको बाणोंसे ढक दिया ॥ ५० ॥

दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ५१ ॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ५२ ॥

दुर्योधनने बीस, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने तीन, कृतवर्माने दस, कर्णने पचास, दुःशासनने सौ तथा वृषसेनने सात पैने बाणोंद्वारा शीघ्र ही सब ओरसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ५१-५२ ॥

ततः स सात्यकी राजन् सर्वानेव महारथान् ।
विरथान् विमुखांश्चैव क्षणेनैवाकरोन्नृप ॥ ५३ ॥

राजन् ! तब सात्यकिने भी उन सभी महारथियोंको क्षणभरमें रथहीन एवं युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ५३ ॥

अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उधर अश्वत्थामाको जब चेत हुआ, तब वह दुःखसे आतुर हो बारंबार लंबी साँस खींचता हुआ कुछ देरतक चिन्तामें डूबा रहा ॥ ५४ ॥

अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परंतपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्शरशतान् बहून् ॥ ५५ ॥

फिर दूसरे रथपर आरूढ़ हो शत्रुतापन अश्वत्थामाने कई सौ बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५५ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥ ५६ ॥

रणभूमिमें द्रोणपुत्रको अपनी ओर आते देख महारथी सात्यकिने उसे पुनः रथहीन एवं युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ५६ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् ।
शङ्खशब्दान् भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥

राजन् ! सात्यकिका यह पराक्रम देख पाण्डव बड़े जोर-जोरसे शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ ५७ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान् महारथान् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार उसे रथहीन करके सत्यपराक्रमी सात्यकिने वृषसेनकी सेनाके तीन हजार विशाल रथोंको नष्ट कर दिया ॥ ५८ ॥

अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः ।
पञ्चायुतानि चाश्वानां शकुनेर्निजघान ह ॥ ५९ ॥

तदनन्तर कृपाचार्यकी सेनाके पंद्रह हजार हाथियोंका वध कर डाला; इसी तरह शकुनिके पचास हजार घोड़ोंको भी उन्होंने मार गिराया ॥ ५९ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रतिसंक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ॥ ६० ॥

महाराज ! तब पराक्रमी अश्वत्थामा रथपर आरूढ़ हो सात्यकिपर क्रोध करके उनका वध करनेकी इच्छासे आगे बढ़ा ॥ ६० ॥

पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत् क्रूरतरैः पुनः पुनररिंदम ॥ ६१ ॥

शत्रुदमन नरेश ! अश्वत्थामाको फिर आया देख सात्यकिने अत्यन्त क्रूर तीखे बाणोंद्वारा उसे बारंबार विदीर्ण किया ॥ ६१ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥

जब युयुधानने नाना प्रकारके चिह्नोंवाले बाणोंद्वारा महाधनुर्धर अश्वत्थामाको अत्यन्त घायल कर दिया, तब उसने अमर्षमें भरकर उनसे हँसते हुए कहा—॥ ६२ ॥

शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥

'शिनिपौत्र ! मैं जानता हूँ, आचार्यघाती धृष्टद्युम्नके प्रति तुम्हारा विशेष सहयोग एवं पक्षपात है; परंतु मेरे चंगुलमें फँसे हुए इस धृष्टद्युम्नको और अपनेको भी तुम बचा नहीं सकोगे ॥ ६३ ॥

शपेऽऽत्मनाहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४ ॥

'शैनेय ! मैं सत्य और तपस्याकी सौगंध खाकर कहता हूँ, सम्पूर्ण पाञ्चालोंका वध किये बिना मुझे कदापि शान्ति नहीं मिलेगी ॥ ६४ ॥

यद् बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद् बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५ ॥

'पाण्डवों और वृष्णिवंशियोंके पास जितना भी बल है, वह सब यहीं लगा दो तो भी सोमकोंका संहार कर डालूँगा' ॥ ६५ ॥

एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत् सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ६६ ॥

ऐसा कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने सात्यकिपर सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी तथा अत्यन्त तीखा उत्तम बाण छोड़ दिया; मानो इन्द्रने वृत्रासुरपर वज्रका प्रहार किया हो ॥ ६६ ॥

स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम् ।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन् बिलमिवोरगः ॥ ६७ ॥

उसका चलाया हुआ वह बाण सात्यकिके शरीरको कवचसहित विदीर्ण करके पृथ्वीको चीरता हुआ उसके भीतर उसी प्रकार घुस गया, जैसे फुफकारता हुआ सर्प बिलमें समा जाता है ॥ ६७ ॥

स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ६८ ॥
सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् ।
सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद् रथान्तरम् ॥ ६९ ॥

कवच छिन्न-भिन्न हो जानेसे शूरवीर सात्यकि अंकुशोंकी मार खाये हुए हाथीके समान व्यथित हो उठे । उनके घावोंसे अधिक रक्त बह रहा था । वे शिथिल एवं खूनसे लथपथ हो धनुष-बाण छोड़कर रथके पिछले भागमें बैठ गये । तब सारथि तुरंत ही उन्हें द्रोणपुत्रके पाससे दूसरे रथीके पास हटा ले गया ॥ ६८-६९ ॥

अथान्येन सुपुङ्खेन शरेणानतपर्वणा ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः ॥ ७० ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले अश्वत्थामाने सुन्दर पंख एवं झुकी हुई गाँठवाले दूसरे बाणसे धृष्टद्युम्न-की दोनों भौंहोंके बीचमें गहरा आघात किया ॥ ७० ॥

स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः ।
ससादाथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥ ७१ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न पहले ही बहुत घायल हो चुका था । फिर पीछे भी अत्यन्त पीड़ित हो वह रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गया और ध्वजापर अपने शरीरको टेक दिया ॥ ७१ ॥

तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम् ।
जवेनाभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ॥ ७२ ॥

राजन् ! जैसे सिंह हाथीको सताता है, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके बाणोंसे पीड़ित देखकर पाण्डव-पक्षसे पाँच शूरवीर महारथी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे ॥

किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ७३ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन, पौरव वृद्धक्षत्र, चेदिदेशके युवराज तथा मालवनरेश सुदर्शन ॥ ७३ ॥

एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ७४ ॥

इन सब वीरोंने हाहाकार करते हुए हाथमें धनुष लेकर वीर अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७४ ॥

ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन् सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥

उन सावधान रथियोंने बीसवें पगपर अमर्षशील गुरुपुत्रको पा लिया और सब ओरसे पाँच-पाँच बाणोंद्वारा एक साथ ही उसपर चोट की ॥ ७५ ॥

आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः ।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ७६ ॥

तब द्रोणकुमारने विषैले सर्पोंके समान पचीस तीखे बाणोंद्वारा एक साथ ही उनके पचीसों बाणोंको काट डाला ॥ ७६ ॥

सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् ।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ७७ ॥

इसके बाद द्रोणपुत्रने सात तीखे बाणोंसे पौरवको पीड़ित कर दिया । फिर तीन बाणोंसे मालवनरेशको, एकसे अर्जुनको और छः बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥

ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन् महारथाः ।
युगपच्च पृथक् चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७८ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् उन सब महारथियोंने एक साथ और अलग-अलग भी शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा द्रोणकुमारको घायल करना आरम्भ किया ॥ ७८ ॥

युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥

चेदिदेशके युवराजने बीस, अर्जुनने आठ तथा अन्य सब लोगोंने तीन-तीन बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान
द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् ।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भि-
र्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च ॥ ८० ॥

तदनन्तर द्रोणपुत्रने छः बाणोंसे अर्जुनको, दस बाणोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको, पाँचसे भीमको, चारसे चेदिदेशके युवराजको तथा दो-दो बाणोंद्वारा क्रमशः मालवनरेश तथा पौरवको घायल कर दिया ॥ ८० ॥

सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भि-
र्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च ।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा
द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥

इतना ही नहीं, भीमसेनके सारथिको छः तथा उनके धनुष और ध्वजको दो बाणोंसे बींधकर पुनः बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनको घायल करके अश्वत्थामाने घोर सिंहनाद किया ॥ ८१ ॥

तस्यास्यतस्तान् निशितान् पीतधारान्
द्रौणेः शरान् पृष्ठतश्चाग्रतश्च ।
धरा वियद् द्यौः प्रदिशो दिशश्च
च्छन्ना बाणैरभवन् घोररूपैः ॥ ८२ ॥

द्रोणकुमार उन पानीदार धारवाले तीखे बाणोंको आगे और पीछे भी चला रहा था। उसके उन भयानक बाणोंसे पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, दिशाएँ और विदिशाएँ भी आच्छादित हो गयी थीं ॥ ८२ ॥

आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः
सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्य-
स्त्रिभिः शरैर्युगपत् संचकर्त ॥ ८३ ॥

उस युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी एवं प्रचण्ड तेजस्वी अश्वत्थामाने अपने रथके निकट आये हुए मालवराज सुदर्शनकी इन्द्रध्वजके तुल्य प्रकाशित होनेवाली दोनों भुजाओं तथा मस्तकको तीन बाणोंद्वारा एक साथ ही काट डाला ॥ ८३ ॥

स पौरवं रथशक्त्या निहत्य
छित्त्वा रथं तिलशश्चास्य बाणैः ।
छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ
भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ८४ ॥

फिर उसने पौरवको रथशक्तिसे घायल करके अपने बाणोंद्वारा उनके रथके तिलके बराबर-बराबर टुकड़े कर डाले और सुन्दर चन्दनचर्चित उनकी दोनों भुजाओंको काटकर एक भल्लके द्वारा उनके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ ८४ ॥

युवानमिन्दीवरदामवर्णं
चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावान् प्रज्वलिताग्निकल्पै-
र्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ८५ ॥

तत्पश्चात् शीघ्रता करनेवाले अश्वत्थामाने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा नीलकमलकी मालाके समान कान्तिवाले नवयुवक चेदिदेशीय युवराजको हठपूर्वक घायल करके उन्हें घोड़ों और सारथिसहित मौतके हवाले कर दिया ॥ ८५ ॥

मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६ ॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत् परम् ।

मालवनरेश सुदर्शन, पुरुदेशके अधिपति वृद्धक्षत्र तथा चेदिदेशके युवराजको अपनी आँखोंके सामने द्रोणपुत्रके हाथसे मारा गया देख पाण्डुकुमार महाबाहु भीमसेनको बड़ा भारी क्रोध हुआ ॥ ८६½ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ॥ ८७ ॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परंतपः ।

फिर तो शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा समराङ्गणमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आच्छादित कर दिया ॥

ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥ ८८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः ।

तब महातेजस्वी अमर्षशील द्रोणकुमारने उस बाण-वर्षाको नष्ट करके भीमसेनको पैने बाणोंसे बींध डाला ॥

ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥ ८९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ।

यह देख महाबली महाबाहु भीमसेनने युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रसे अश्वत्थामाका धनुष काटकर पंखदार बाणसे उसको भी घायल कर दिया ॥ ८९½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥ ९० ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः ।

इसके बाद महामनस्वी द्रोणपुत्रने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष ले लिया और भीमसेनको अनेक बाण मारे ॥ ९०½ ॥

तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥ ९१ ॥
अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ।

अश्वत्थामा और भीमसेन दोनों वीर महान् बलवान् एवं पराक्रमी थे। वे समरभूमिमें वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान परस्पर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ९१½ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ९२ ॥
द्रौणिं संछादयामासुर्घनौघा इव भास्करम् ।

जैसे मेघोंकी घटाएँ सूर्यको ढक लेती हैं, उसी प्रकार भीमसेनके नामसे अङ्कित और सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुनहरी पाँखवाले बाणोंने द्रोणपुत्रको आच्छादित कर दिया ॥ ९२½ ॥

तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः संनतपर्वभिः ॥ ९३ ॥
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः ।

इसी तरह अश्वत्थामाके छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले लाखों बाणोंसे भीमसेन भी तत्काल ढक गये ॥ ९३½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥ ९४ ॥
न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।

महाराज ! संग्राममें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाके द्वारा समरभूमिमें ढके जानेपर भी भीमसेनको तनिक भी व्यथा नहीं हुई, वह अद्भुत-सी बात थी ॥ ९४½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥
नाराचान् दश सम्प्रैषीद् यमदण्डनिभाञ्छितान् ।

तदनन्तर महाबाहु भीमसेनने सुवर्णभूषित एवं यमदण्डके समान भयंकर दस तीखे नाराच अश्वत्थामापर चलाये ॥ ९५½ ॥

ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥ ९६ ॥
निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

माननीय नरेश ! जैसे सर्प तुरंत ही बाँबीमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे बाण द्रोणपुत्रके गलेकी हँसलीको छेदकर भीतर समा गये ॥ ९६½ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥ ९७ ॥
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।

महात्मा पाण्डुपुत्रके बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए अश्वत्थामाने ध्वजदण्ड थामकर नेत्र बंद कर लिये ॥९७½॥

स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥ ९८ ॥
क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।

नरेश्वर ! दो ही घड़ीमें पुनः सचेत हो खूनसे लथपथ हुए अश्वत्थामाने उस समराङ्गणमें अत्यन्त क्रोध प्रकट किया ॥ ९८½ ॥

दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ९९ ॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।

महामना पाण्डुपुत्रने उसे गहरी चोट पहुँचायी थी। अतः महाबाहु अश्वत्थामाने भीमसेनके रथपर ही बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ९९½ ॥

तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥१००॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।

भारत ! उसने धनुषको कानतक खींचकर प्रचण्ड तेजसे युक्त और विषैले सर्पोंके समान भयंकर सौ बाण भीमसेनपर चलाये ॥ १००½ ॥

भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥१०१॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।

युद्धकी स्पृहा रखनेवाले पाण्डुकुमार भीमसेन भी उसके इस पराक्रमकी कोई परवा न करते हुए तुरंत ही उसपर भयंकर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥१०१½॥

ततो द्रौणिर्महाराज छित्त्वास्य विशिखैर्धनुः ॥१०२॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः ।

महाराज ! तब अश्वत्थामाने कुपित हो बाणोंद्वारा भीमसेनके धनुषको काटकर उन पाण्डुपुत्रकी छातीमें पैने बाणोंका प्रहार किया ॥ १०२½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥१०३॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।

तब अमर्षमें भरे हुए भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर युद्धस्थलमें पाँच पैने बाणोंसे द्रोणपुत्रको घायल कर दिया ॥ १०३½ ॥

जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ ॥१०४॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।

वे दोनों क्रोधसे लाल आँखें करके बरसातके दो बादलोंके समान बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ १०४½ ॥

तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥१०५॥
अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

फिर ताल ठोंकनेकी भयंकर आवाजसे परस्पर त्रास उत्पन्न करते हुए वे दोनों योद्धा बड़े रोषसे युद्ध करने लगे। दोनों ही एक दूसरेके प्रहारका प्रतीकार करना चाहते थे ॥१०५½॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥१०६॥
भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात् ।
शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥१०७॥

तत्पश्चात् सुवर्णभूषित विशाल धनुषको खींचकर निकटसे बाणोंकी वर्षा करते हुए भीमसेनकी ओर अश्वत्थामाने देखा। वह शरद्‌ऋतुके मध्याह्नकालमें प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १०६-१०७ ॥

आददानस्य विशिखान् संदधानस्य चाशुगान् ।
विकर्षतो मुञ्चतश्च नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥१०८॥

वह कब बाण लेता, कब उन्हें धनुषपर रखता, कब प्रत्यञ्चा खीचता और कब उन्हें छोड़ता था तथा इन कार्योंमें कितना अन्तर पड़ता था, यह सब योद्धालोग देख नहीं पाते थे ॥ १०८ ॥

अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान् विसृजतस्तदा ॥१०९॥

महाराज ! बाण छोड़ते समय अश्वत्थामाका धनुष अलातचक्रके समान मण्डलाकार दिखायी देता था ॥१०९॥

धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवायतीः ॥११०॥

उसके धनुषसे छूटे हुए सैकड़ों और हजारों बाण आकाशमें टिड्डी-दलोंके समान दिखायी देते थे ॥ ११० ॥

ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥१११॥

अश्वत्थामाके छोड़े हुए सुवर्णभूषित भयंकर बाण भीमसेनके रथपर लगातार गिरने लगे ॥ १११ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥११२॥

भारत ! वहाँ हमलोगोंने भीमसेनका अद्भुत पराक्रम, बल, वीर्य, प्रभाव और व्यवसाय देखा ॥ ११२ ॥

तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः ।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥११३॥
द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥११४॥

वर्षाकालमें मेघसे होनेवाली अत्यन्त घोर जलवृष्टिके समान चारों ओरसे होनेवाली अश्वत्थामाकी उस बाण-वर्षापर विचार करते हुए भयंकर पराक्रमी भीमसेनने द्रोणपुत्रके वधकी इच्छा की और वे बरसातके बादलोंके समान बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ११३-११४ ॥

तद् रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे ।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवापरम् ॥११५॥

उस महासमरमें सोनेकी पीठवाला भीमसेनका भयंकर धनुष जब खींचा जाता था, तब दूसरे इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होता था ॥ ११५ ॥

तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
संछादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥११६॥

रणभूमिमें अधिक शोभा पानेवाले द्रोणकुमार अश्वत्थामाको आच्छादित करते हुए सैकड़ों और हजारों बाण भीमसेनके उस धनुषसे प्रकट हो रहे थे ॥ ११६ ॥

तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष ।
वायुरप्यन्तरा राजन् नाशक्नोत् प्रतिसर्पितुम् ॥११७॥

माननीय नरेश ! इस प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए उन दोनोंके बीचसे निकल जानेमें वायु भी असमर्थ हो गयी थी ॥ ११७ ॥

तथा द्रौणिर्महाराज शरान् हेमविभूषितान् ।
तैलधौतान् प्रसन्नाग्रान् प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया ॥११८॥

महाराज ! तदनन्तर अश्वत्थामाने भीमसेनके वधकी इच्छासे तेलमें साफ किये हुए स्वच्छ अग्रभागवाले बहुत-से स्वर्णभूषित बाण चलाये ॥ ११८ ॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ।
विशेषयन् द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥११९॥

परंतु भीमसेनने अपनी विशेषता स्थापित करते हुए अपने बाणोंद्वारा आकाशमें ही उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और द्रोणपुत्रसे कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ११९ ॥

पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः ।
व्यसृजद् बलवान् क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥१२०॥

फिर कुपित हुए पाण्डुपुत्र बलवान् भीमसेनने द्रोणपुत्रके वधकी इच्छासे उसके ऊपर पुनः घोर एवं उग्र बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १२० ॥

ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम् ।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् ॥१२१॥
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत् ।

तब महान् अस्त्रवेत्ता द्रोणपुत्रने अपने अस्त्रोंकी मायासे तुरंत ही उस बाणवर्षाका निवारण करके भीमसेनका धनुष काट डाला । साथ ही क्रोधमें भरकर उसने युद्धस्थलमें बहुसंख्यक बाणोंद्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥१२१½॥

स छिन्नधन्वा बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥१२२॥
वेगेनाविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति ।

धनुष कट जानेपर बलवान् भीमसेनने द्रोणपुत्रके रथपर एक भयंकर रथशक्ति बड़े वेगसे घुमाकर फेंकी ॥ १२२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः ॥१२३॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

बड़ी भारी उल्काके समान सहसा अपनी ओर आती हुई उस रथशक्तिको अश्वत्थामाने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए समरभूमिमें तीखे बाणोंसे काट डाला ॥१२३½॥

एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम् ॥१२४॥
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः ।

इसी बीचमें मुसकराते हुए भीमसेनने एक सुदृढ़ धनुष लेकर अनेक बाणोंसे द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥ १२४½ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् ॥१२५॥
ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा ।

महाराज ! तब अश्वत्थामाने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे भीमसेनके सारथिका ललाट छेद दिया ॥ १२५½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥१२६॥
व्यामोहमगमद् राजन् रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ।

राजन् ! बलवान् द्रोणपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किया हुआ सारथि घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर मूर्छित हो गया ॥ १२६½ ॥

ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥१२७॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

राजेन्द्र ! सारथिके मूर्छित हो जानेपर भीमसेनके घोड़े सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते तुरंत वहाँसे भाग चले ॥ १२७½ ॥

तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥१२८॥
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः ।

भागे हुए घोड़े भीमसेनको समराङ्गणसे दूर हटा ले गये, यह देखकर विजयी वीर अश्वत्थामाने अत्यन्त प्रसन्न हो अपना विशाल शङ्ख बजाया ॥ १२८½ ॥

ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥१२९॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन् दिशः ।

तब पाण्डुपुत्र भीमसेन और समस्त पाञ्चाल भयभीत हो धृष्टद्युम्नका रथ छोड़कर चारों दिशाओंमें भाग गये ॥ १२९½ ॥

तान् प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥१३०॥
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन् पाण्डुवाहिनीम् ।

उन भागते हुए सैनिकोंपर पीछेसे बाण बिखेरते और पाण्डवसेनाको खदेड़ते हुए अश्वत्थामाने बड़े वेगसे पीछा किया ॥ १३०½ ॥

ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ॥१३१॥
द्रोणपुत्रभयाद् राजन् दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥१३२॥

राजन् ! समराङ्गणमें द्रोणपुत्रके द्वारा मारे जाते हुए समस्त राजाओंने उसके भयसे भागकर सम्पूर्ण दिशाओंकी शरण ली ॥ १३१-१३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामपराक्रमे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका पराक्रमविषयक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०० ॥

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रके प्रयोगसे एक अक्षौहिणी पाण्डवसेनाका संहार; श्रीकृष्ण और अर्जुनपर उस अस्त्रका प्रभाव न होनेसे चिन्तित हुए अश्वत्थामाको व्यासजीका शिव और श्रीकृष्णकी महिमा बताना

संजय उवाच

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न कुन्तीकुमार अर्जुनने सेनाको भागती देख द्रोणपुत्रपर विजय पानेकी इच्छासे उसे रोका ॥ १ ॥

ततस्ते सैनिका राजन् नैव तत्रावतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥ २ ॥

नरेश्वर ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके द्वारा प्रयत्नपूर्वक ठहराये जानेपर भी वे सैनिक वहाँ खड़े न हो सके ॥ २ ॥

एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च संधाय कौरवान् संन्यवर्तत ॥ ३ ॥

अकेले अर्जुन ही सोमकोंकी टुकड़ियों, मत्स्यदेशीय योद्धाओं तथा अन्य लोगोंको साथ लेकर कौरवोंका सामना करनेके लिये लौटे ॥ ३ ॥

ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥

सव्यसाची अर्जुन सिंहकी पूँछके चिह्नवाली ध्वजासे युक्त महाधनुर्धर अश्वत्थामाके पास तुरंत आकर उससे इस प्रकार बोले—॥ ४ ॥

या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद् वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यश्च ते ॥ ५ ॥
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत् सर्वं मयि दर्शय ।
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥ ६ ॥

'आचार्यपुत्र ! तुममें जो शक्ति, जो विज्ञान, जो बल-पराक्रम, जो पुरुषार्थ, कौरवोंपर जो प्रेम तथा हमलोगोंपर जो तुम्हारा द्वेष हो, साथ ही तुममें जो तेज और प्रभाव हो, वह सब मुझपर दिखाओ । द्रोणाचार्यका वध करनेवाला वह धृष्टद्युम्न ही तुम्हारा सारा घमंड चूर कर देगा ॥ ५-६ ॥

कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ।
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे ॥ ७ ॥

'कालाग्निके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंके लिये यमराजके समान भयंकर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नपर तथा श्रीकृष्णसहित मुझपर भी तुम आक्रमण करो । तुम बड़े उद्दण्ड हो रहे हो । आज युद्धमें मैं तुम्हारा सारा घमंड दूर कर दूँगा' ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि संजय ।
प्रीतिर्धनंजये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात् स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! आचार्यपुत्र अश्वत्थामा बलवान् और सम्मानके योग्य है । उसका अर्जुनपर प्रेम है और वह भी महात्मा अर्जुनको प्रिय है । अर्जुनका उसके प्रति ऐसा कठोर वचन पहले कभी नहीं सुना गया । फिर उस दिन कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने मित्रके प्रति वैसी कठोर बात क्यों कही ? ॥ ८-९ ॥



अश्वत्थामाके द्वारा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग एवं उसके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार

संजय उवाच

युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे।
इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ ११ ॥
अन्तर्भेदे च संजाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ १२ ॥

संजयने कहा—प्रभो ! चेदिदेशके युवराज, पौरव वृद्धक्षत्र तथा बाणोंके प्रयोगमें कुशल मालवराज सुदर्शनके मारे जानेपर, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीमसेनके परास्त हो जानेपर अर्जुनके मनमें बड़ा कष्ट हुआ था। इसके सिवा, युधिष्ठिरके उन व्यङ्गवचनोंसे उनके मर्मस्थलमें बड़ी चोट पहुँची थी और पहलेके दुःखोंका स्मरण करके भी उनका हृदय फट गया था; अतः अधिक खेदके कारण अर्जुनके मनमें अभूतपूर्व क्रोध जाग उठा ॥ १०–१२ ॥

तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान्।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३ ॥

इसीलिये माननीय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके प्रति, जो कठोर वचन सुननेके योग्य नहीं था, अर्जुनने कायर मनुष्यसे कहने योग्य अश्लील, अप्रिय और कठोर बातें कह डालीं ॥ १३ ॥

एवमुक्तः श्वसन् क्रोधान्महेष्वासतमो नृप।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! जब अर्जुनने सारे मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देनेवाली वाणीद्वारा उससे ऐसी कठोर बात कह दी, तब श्रेष्ठ महाधनुर्धर अश्वत्थामा क्रोधके मारे लंबी साँस लेने लगा ॥ १४ ॥

द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे।

उस समय द्रोणपुत्रको अर्जुन और श्रीकृष्णपर अधिक क्रोध हुआ, उस पराक्रमी वीरने सावधानीके साथ रथपर खड़ा हो आचमन करके आग्नेयास्त्र हाथमें लिया, जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय था ॥ १५½ ॥

दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्यनन्दनः ॥ १६ ॥
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम्।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७ ॥

फिर धूमरहित अग्निके समान एक तेजस्वी बाणको अभिमन्त्रित करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले आचार्यनन्दन अश्वत्थामाने सर्वथा क्रोधावेशसे युक्त हो उसे प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रुओंके उद्देश्यसे चला दिया ॥ १६–१७ ॥



ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत।
पावकार्चिः परीतं तत् पार्थमेवाभिपुप्लुवे ॥ १८ ॥

फिर तो आकाशमें बाणोंकी भयंकर वर्षा होने लगी और सब ओर फैली हुई आगकी लपटें अर्जुनपर ही टूट पड़ीं ॥ १८ ॥

उल्काश्च गगनात् पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥ १९ ॥

आकाशसे उल्काएँ गिरने लगीं, दिशाओंका प्रकाश लुप्त हो गया और उस सेनामें सहसा भयानक अन्धकार उतर आया ॥ १९ ॥

रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः।
ववुश्चाशिशिरा वाताः सूर्यो नैव ततापं च ॥ २० ॥

राक्षस और पिशाच परस्पर मिलकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे, गरम हवा चलने लगी और सूर्यका ताप क्षीण हो गया ॥ २० ॥

वायसाश्चापि चाक्रन्दन् दिक्षु सर्वासु भैरवम्।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥

कौए सम्पूर्ण दिशाओंमें काँव-काँव करके भयानक कोलाहल मचाने लगे तथा मेघ रक्तकी वर्षा करते हुए आकाशमें गरजने लगे ॥ २१ ॥

पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ २२ ॥

पक्षी और गाय आदि पशु भी चीत्कार करने लगे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुद्धचित्त साधु पुरुष भी अत्यन्त अशान्त हो उठे ॥ २२ ॥

भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् ।

त्रैलोक्यमभिसंतप्तं ज्वराविष्टमिवाभवत् ॥ २३ ॥

सम्पूर्ण महाभूत मानो चक्कर काट रहे थे। सूर्य भी घूमता-सा प्रतीत होता था। तीनों लोकोंके प्राणी ज्वरग्रस्तके समान संतप्त हो उठे थे ॥ २३ ॥

अस्त्रतेजोऽभिसंतप्ता नागा भूमिशयास्तथा।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥

पृथ्वीपर पड़े रहनेवाले नाग भी उस अस्त्रके तेजसे संतप्त हो भयंकर आगसे छुटकारा पानेके लिये फुफकारते हुए ऊपर उछलने लगे ॥ २४ ॥

जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥

भारत ! जलाशय भी तप गये थे, जिससे दग्ध होनेवाले जलचर प्राणियोंको भी शान्ति नहीं मिल पाती थी ॥ २५ ॥

दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद् भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २६ ॥

दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सब ओरसे छोटे-बड़े नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा होने लगी, वे सभी बाण गरुड़ और वायुके समान वेगशाली थे ॥ २६ ॥

तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २७ ॥

द्रोणपुत्रके चलाये हुए उन वज्रके समान वेगशाली बाणोंसे घायल हुए शत्रुसैनिक आगके जलाये हुए वृक्षोंके समान दग्ध होकर गिरने लगे ॥ २७ ॥

दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः।
नदन्तो भैरवान् नादाञ्जलदोपमनिःस्वनान् ॥ २८ ॥

विशालकाय गजराज दग्ध हो-होकर मेघकी गर्जनाके



समान भयंकर चीत्कार करते हुए सब ओर धराशायी होने लगे ॥ २८ ॥

अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशाम्पते।
भ्रेमुर्दिशो यथा पूर्वं वने दावाग्निसंवृताः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! भयभीत होकर भागे हुए दूसरे बहुत-से हाथी सम्पूर्ण दिशाओंमें उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे पहले वनमें दावानलसे घिर जानेपर वे चारों ओर चक्कर लगाते थे ॥ २९ ॥

द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ॥ ३० ॥
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः।

माननीय नरेश ! भारत ! अश्वसमूह तथा रथवृन्द दावानलसे दग्ध हुए वृक्षोंके अग्रभागके समान दिखायी दे रहे थे और जहाँ-तहाँ सहस्रों रथसमूह गिरे पड़े थे ॥ ३०½ ॥

तत् सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः।

भरतनन्दन ! जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि सब प्राणियोंको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार उस आग्नेयास्त्रने पाण्डवोंकी उस भयभीत सेनाको युद्धस्थलमें जलाना आरम्भ कर दिया ॥ ३१½ ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टास्तावका राजन् सिंहनादान् विनेदिरे।

राजन् ! उस महासमरमें पाण्डवसेनाको दग्ध होती देख आपके सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३२½ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः।

भारत ! तदनन्तर हर्षसे उल्लसित और विजयसे सुशोभित होनेवाले आपके सैनिक नाना प्रकारके सहस्रों बाजे बजाने लगे ॥ ३३½ ॥

कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन् सव्यसाची च पाण्डवः॥ ३४ ॥
तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे।

नरेश्वर ! उस महासमरमें सब लोग अन्धकारसे आच्छन्न हो गये थे। पाण्डवोंकी सारी अक्षौहिणी सेना और सव्यसाची अर्जुन भी नहीं दिखायी देते थे ॥ ३४½ ॥

नैव नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ३५ ॥
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा।

राजन् ! अमर्षमें भरे हुए द्रोणपुत्रने जैसे अस्त्रकी सृष्टि की थी, वैसा हमलोगोंने पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ३५½ ॥

अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३६ ॥
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना।

महाराज ! उस समय अर्जुनने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया,

जिसे ब्रह्माजीने सम्पूर्ण अस्त्रोंके विनाशके लिये बनाया है ॥ ३६½ ॥

ततो मुहूर्तादिव तत् तमो व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥
प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ।

फिर तो दो ही घड़ीमें वह सारा अन्धकार दूर हो गया, शीतल वायु बहने लगी और सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥ ३७½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥ ३८ ॥
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।

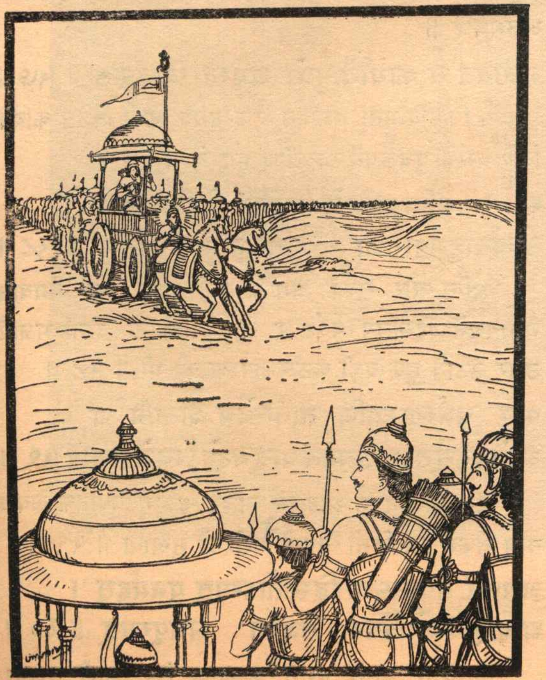
वहाँ हमलोगोंने अद्भुत दृश्य देखा । पाण्डवोंकी वह सारी अक्षौहिणी उस अस्त्रके तेजसे इस प्रकार दग्ध एवं नष्ट हो गयी थी कि उसे पहचानना असम्भव हो गया ॥ ३८½ ॥

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।

तदनन्तर उस अस्त्रसे मुक्त हुए महाधनुर्धर वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक साथ दिखायी दिये, मानो आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य प्रकट हो गये हों ॥ ३९½ ॥

ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाक्षतावुभौ ॥ ४० ॥
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो मुक्तस्तावकानां भयंकरः ॥ ४१ ॥

उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंके शरीरपर आँच नहीं आने पायी थी । पताका, ध्वज, अश्व, अनुकर्ष और श्रेष्ठ आयुधोंसहित मुक्त हुआ उनका वह रथ आपके सैनिकोंको भयभीत करता हुआ चमक उठा ॥ ४०-४१ ॥



ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥

तब पाण्डव हर्षसे खिल उठे और क्षणभरमें शङ्ख तथा भेरियोंकी ध्वनिके साथ उनका आनन्दमय कोलाहल गूँज उठा ॥ ४२ ॥

हताविति तयोरासीत् सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें उन दोनों ही सेनाओं-को यह विश्वास हो गया था कि वे मारे गये । फिर उन दोनोंको एक साथ वेगपूर्वक निकट आया देख सबको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४३ ॥

तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान् पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम् ॥ ४४ ॥

उन दोनोंके शरीरमें क्षति नहीं पहुँची थी । वे दोनों वीर आनन्दमग्न हो अपने उत्तम शङ्ख बजाने लगे । कुन्ती-के पुत्रोंको प्रसन्न देखकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ४४ ॥

विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष ॥ ४५ ॥

माननीय नरेश ! महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आग्नेयास्त्रसे मुक्त देख अश्वत्थामाको बड़ा दुःख हुआ । वह दो घड़ीतक इसी चिन्तामें डूबा रहा कि 'यह क्या हो गया !' ॥ ४५ ॥

चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत् ततः ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! चिन्ता और शोकमें मग्न होकर कुछ देरतक विचार करनेके पश्चात् अश्वत्थामा गरम-गरम दीर्घ उच्छ्वास लेने लगा और मन-ही-मन उदास हो गया ॥ ४६ ॥

ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात् प्रस्कन्द्य वेगितः ।
धिग् धिक् सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद् रणात् ४७

तत्पश्चात् द्रोणकुमार धनुष त्यागकर रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है ! धिक्कार है !! यह सब मिथ्या है' ऐसा कहकर वह रणभूमिसे वेगपूर्वक भाग चला ॥ ४७ ॥

ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥ ४८ ॥

इतनेहीमें उसे स्निग्ध मेघके समान श्याम कान्तिवाले, वेद और सरस्वतीके आवास-स्थान तथा वेदोंका विस्तार करने-वाले, पापशून्य महर्षि व्यास वहाँ दिखायी दिये ॥ ४८ ॥

तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वह ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद् वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ४९ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष ! महर्षि व्यासको सामने खड़ा

देख द्रोणकुमारका गला आँसुओंसे भर आया । उसने अत्यन्त दीनभावसे प्रणाम करके उनसे इस प्रकार पूछा—॥



भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत्।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ५० ॥

'महर्षे ! यह माया है या दैवेच्छा । मेरी समझमें नहीं आता कि यह क्या है ? यह अस्त्र झूठा कैसे हो गया ? मुझसे कौन-सी गलती हो गयी ? ॥ ५० ॥

अधरोत्तरमेतद् वा लोकानां वा पराभवः।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ५१ ॥

'इस (आग्नेय) अस्त्रके प्रभावमें कोई उलट-फेर तो नहीं हो गया अथवा सम्पूर्ण लोकोंका पराभव होनेवाला है, जिससे ये दोनों कृष्ण जीवित बच गये । निश्चय ही कालका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ५१ ॥

नासुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथंचन ॥ ५२ ॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम्।
तदिदं केवलं हत्वा शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ५३ ॥

'मेरे द्वारा प्रयोग किये हुए इस अस्त्रको असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, पक्षी और मनुष्य किसी तरह भी व्यर्थ नहीं कर सकते थे, तो भी यह प्रज्वलित अस्त्र केवल एक अक्षौहिणी सेनाको जलाकर शान्त हो गया ॥५२-५३॥

सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम्।
केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नावधीत् केशवार्जुनौ ॥ ५४ ॥

'मैंने तो अत्यन्त भयंकर एवं सर्वसंहारक अस्त्रका प्रयोग किया था; फिर उसने किस कारणसे इन मर्त्यधर्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध नहीं किया ? ॥ ५४ ॥

एतत् प्रब्रूहि भगवन् मया पृष्टो यथातथम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ॥ ५५ ॥

'भगवन् ! महामुने ! मैंने जो आपसे यह प्रश्न किया है, इसका मुझे यथार्थ उत्तर दीजिये । मैं यह सब कुछ ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ' ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच

महान्तमेवमर्थं मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात्।
तं प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५६ ॥

व्यासजी बोले—तू जिसके सम्बन्धमें आश्चर्यके साथ प्रश्न कर रहा है, उस महत्त्वपूर्ण विषयको मैं तुझसे बता रहा हूँ । तू अपने मनको एकाग्र करके सब कुछ सुन ॥

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः।
(आदिदेवो जगन्नाथो लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
आद्यः सर्वस्य लोकस्य अनादिनिधनोऽच्युतः॥

जो हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज भगवान् नारायण हैं, वे ही आदिदेव, जगन्नाथ, लोककर्ता और स्वयं ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । वे सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण तथा स्वयं आदि-अन्तसे रहित हैं । अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होने-के कारण वे अच्युत कहलाते हैं ॥

व्याकुर्वते यस्य तत्त्वं श्रुतयो मुनयश्च ह।
अतोऽजय्यः सर्वभूतैर्मनसापि जगत्पतिः ॥)

श्रुतियाँ और महर्षिगण उन्हींके तत्त्वका विवेचन करते हैं । अतः उन जगदीश्वरको समस्त प्राणी मनसे भी जीतनेमें असमर्थ हैं ॥

अजायत च कार्यार्थे पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥ ५७ ॥

वे विश्वविधाता भगवान् एक समय किसी विशेष कार्यके लिये धर्मके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ५७ ॥

स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमास्थितः।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसंनिभः ॥ ५८ ॥

अग्नि और सूर्यके समान महातेजस्वी उन भगवान् नारायणने हिमालय पर्वतपर रहकर अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये हुए बड़ी कठोर तपस्या की थी ॥ ५८ ॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
अशोषयत् तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः॥ ५९ ॥

उन कमलनयन श्रीहरिने छाछठ हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर उन दिनों अपने शरीरको सुखाया ॥ ५९ ॥

अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत् पुनर्महत्।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ ६० ॥

तदनन्तर उससे दुगुने कालतक फिर भारी तपस्या



वेदव्यासजीका अश्वत्थामाको आश्वासन

करके उन्होंने अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशके मध्यवर्ती आकाशको भर दिया ॥ ६० ॥

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाभवत्।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम्।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥ ६२ ॥

तात ! उस तपस्यासे जब वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो गये, तब उन्हें उन भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन हुआ जो सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्ति-स्थान और जगत्‌के पालक हैं, जिन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन (असम्भव) है। सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्‌से भी परम महान् हैं ॥

रुद्रमीशानवृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम्।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥

वे 'रु' अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण रुद्र कहलाते हैं। ब्रह्मा आदि लोकपालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। पापहारी, कल्याण-की प्राप्ति करानेवाले तथा जटाजूटधारी हैं। वे ही सबको चेतना प्रदान करते हैं और वे ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके परम कारण हैं ॥ ६३ ॥

दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं
महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम्।
दिव्यं चापमिषुधी चाददानं
हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४ ॥

उन्हें कहीं कोई रोक नहीं सकता, उनका दर्शन बड़ी कठिनाईसे होता है, वे दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेवाले हैं, उनका हृदय विशाल है, वे सारे क्लेशोंको हर लेनेवाले अथवा सर्वसंहारी हैं, साधु पुरुषोंके प्रति उनका हृदय अत्यन्त उदार है, वे दिव्य धनुष और दो तरकस धारण करते हैं, उनका कवच सोनेका बना हुआ है तथा वे अनन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ६४ ॥

पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं
परश्वधिं गदिनं चायतासिम्।
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं
व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम् ॥ ६५ ॥

वे अपने हाथोंमें पिनाक और वज्र धारण करते हैं, उनके एक हाथमें त्रिशूल चमकता रहता है, वे फरसा, गदा और लंबी तलवार लिये रहते हैं, मुसल, परिघ और दण्ड भी उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाते हैं, उनकी अङ्गकान्ति उज्ज्वल है, वे मस्तकपर जटा और उसके ऊपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं, उनके श्रीअङ्गमें बाघम्बर शोभा देता है ॥ ६५ ॥

शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं
विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसंघैः।
एकीभूतं तपसां संनिधानं
वयोऽतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥

उनकी भुजाओंमें सुन्दर अङ्गद (बाजूबंद) और गलेमें नागमय यज्ञोपवीत शोभा पाते हैं, वे अपने पार्षदस्वरूप सम्पूर्ण भूतसमुदायोंसे सुशोभित हैं, उन्हें एकमात्र अद्वितीय परमेश्वर समझना चाहिये, वे तपस्याकी निधि हैं और वृद्ध पुरुष प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं ॥ ६६ ॥

जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ
तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च।
नालं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता
ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥

जल, दिशा, आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि तथा जगत्‌को माप लेनेवाला काल—ये सब उन्हींके स्वरूप हैं। वे ब्रह्मद्रोहियोंके नाशक और मोक्षके परम कारण हैं, दुराचारी मनुष्य उनका दर्शन पानेमें असमर्थ हैं ॥ ६७ ॥

यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः
क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः।
तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं
तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श।
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः
संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥

जिन्होंने मनसे शोक-संतापको सर्वथा दूर कर दिया है, वे सदाचारी ब्राह्मण पापोंका क्षय हो जानेपर जिनका दर्शन कर पाते हैं, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो साक्षात् धर्म तथा स्तवन करने योग्य परमेश्वर हैं, वे ही महेश्वर वहाँ उनकी तपस्या और भक्तिके प्रभावसे प्रकट हो गये तथा तपस्वी नारायणने उनका दर्शन किया। उनका दर्शन करके मन, वाणी, बुद्धि और शरीरके साथ ही उनकी अन्तरात्मा हर्षसे खिल उठी। उन भगवान् वासुदेवने बड़े आनन्दका अनुभव किया ॥ ६८ ॥

अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम्।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसम्भवम् ॥ ६९ ॥

रुद्राक्षकी मालासे विभूषित तथा तेजकी परम निधिरूप उन विश्व-विधाताका दर्शन करके भगवान् नारायणने उनकी वन्दना की ॥ ६९ ॥

वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम्।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम्।

वे वरदायक प्रभु हृष्टपुष्ट एवं मनोहर अङ्गोंवाली पार्वती-

देवीके साथ क्रीड़ा करते हुए पधारे थे। उन अजन्मा, ईशान अव्यक्त, कारणस्वरूप और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परमात्माको उनके पार्षदस्वरूप भूतगणोंने घेर रक्खा था ॥ ७०½ ॥

(स्वजानुभ्यां महीं गत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।)
अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ७१ ॥

कमलनयन भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर और मस्तकपर हाथ जोड़कर अन्धकासुरका विनाश करनेवाले उन रुद्रदेवको प्रणाम किया और भक्तिभावसे युक्त हो उन भगवान् विरूपाक्षकी वे इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥

श्रीनारायण उवाच

त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य
गोप्तारोऽस्य भुवनस्यादिदेव।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्
पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम् ॥ ७२ ॥

श्रीनारायण बोले—सर्वश्रेष्ठ आदिदेव! जिन्होंने इस पृथ्वीमें समाकर आपकी पुरातन दिव्य सृष्टिकी रक्षा की थी तथा जो इस विश्वकी भी रक्षा करनेवाले हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापतिगण भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७२ ॥

सुरासुरान् नागरक्षःपिशाचान्
नरान् सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान्।
पृथग्विधान् भूतसंघांश्च विश्वां-
स्त्वत्सम्भूतान् विद्म सर्वांस्तथैव।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं
पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम् ॥ ७३ ॥

देवता, असुर, नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, गरुड़ आदि पक्षी, गन्धर्व तथा यक्ष आदि जो पृथक्-पृथक् प्राणियोंके अखिल समुदाय हैं, उन सबको हम आपसे ही उत्पन्न हुआ मानते हैं। इसी प्रकार इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पद, पितरोंका लोक तथा विश्वकर्माकी सुन्दर शिल्पकला आदिका आविर्भाव भी आपसे ही हुआ है ॥ ७३ ॥

रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः
स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी।
कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
त्वत्सम्भूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥ ७४ ॥

शब्द और आकाश, स्पर्श और वायु, रूप और तेज, रस और जल तथा गन्ध और पृथ्वीकी उत्पत्ति भी आपसे ही हुई है। काल, ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी आपसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ७४ ॥

अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं
ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः।
एवं विद्वान् प्रभवं चाप्ययं च
मत्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ॥ ७५ ॥

जैसे जलसे उसकी बूँदें बिलग हो जाती हैं और क्षीण होनेपर कालक्रमसे वे पुनः जलमें मिलकर उसके साथ एकरूप हो जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूत आपसे ही उत्पन्न होते और आपमें ही लीन होते हैं। ऐसा जाननेवाला विद्वान् पुरुष आपका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ७५ ॥

दिव्यामृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ
वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः।
दशाप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति
त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥ ७६ ॥

अन्तःकरणमें निवास करनेवाले दो दिव्य एवं अमृतस्वरूप पक्षी (ईश्वर और जीव) हैं। सात धातुरूप सात पीपल हैं, जो उनकी रक्षा करनेवाले हैं। वेदवाणी ही उन वृक्षोंकी विविध शाखाएँ हैं। दूसरी भी दस वस्तुएँ (इन्द्रियाँ) हैं, जो पाञ्चभौतिक शरीररूपी नगरको धारण करती हैं। ये सारे पदार्थ आपके ही रचे हुए हैं, तथापि आप इन सबसे परे हैं ॥ ७६ ॥

भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं
त्वत्सम्भूता भुवनानीह विश्वा।
भक्तं च मां भजमानं भजस्व
मा रीरिषो मामहिताहितेन ॥ ७७ ॥

भूत, वर्तमान, भविष्य तथा अजेय काल—ये सब आपके ही स्वरूप हैं। यहाँ सम्पूर्ण लोक आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। मैं आपका भजन करनेवाला भक्त हूँ, आप मुझे अपनाइये। अहित करनेवालोंको रखकर मेरी हिंसा न कराइये ॥ ७७ ॥

आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यबोधं
विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम्।
अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्
विचिन्वन् वै सदृशं देववर्य।
सुदुर्लभान् देहि वरान् ममेष्टा-
नभिष्टुतः प्रविकार्षीश्च मायाम् ॥ ७८ ॥

आप जीवात्मासे अभिन्न अनुभव किये जानेवाले सबके आत्मा हैं, ऐसा जाननेवाला विद्वान् पुरुष विशुद्ध ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। देववर्य! मैंने आपके सत्कारकी शुभ इच्छा लेकर यह स्तवन किया है। स्तुतिके सर्वथा योग्य आप परमेश्वरका मैं चिरकालसे अन्वेषण कर रहा था। जिनकी भलीभाँति स्तुति की गयी है ऐसे आप अपनी मायाको दूर कीजिये और मुझे अभीष्ट दुर्लभ वर प्रदान कीजिये ॥

व्यास उवाच

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृत्।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७९ ॥

व्यासजी कहते हैं—द्रोणकुमार ! नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करनेपर अचिन्त्यस्वरूप, पिनाकधारी, नीलकण्ठ भगवान् शिवने वर पानेके सर्वथा योग्य उन देवप्रधान नारायणको बहुत-से वर दिये ॥ ७९ ॥

श्रीभगवानुवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥

श्रीभगवान् बोले—नारायण ! तुम मेरे कृपा-प्रसादसे मनुष्यों, देवताओं तथा गन्धर्वोंमें भी असीम बल-पराक्रमसे सम्पन्न होओगे ॥ ८० ॥

न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः॥ ८१ ॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः।
न कश्चित् त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥ ८२ ॥

देवता, असुर, बड़े-बड़े सर्प, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा समस्त पशुयोनिके (सिंह, व्याघ्र आदि) प्राणी भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे । युद्धस्थलोंमें कोई देवता भी तुम्हें जीत नहीं सकेगा ॥ ८१-८२ ॥

न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च ॥ ८३ ॥
कश्चित् तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात् कथंचन।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥ ८४ ॥

शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले-सूखे पदार्थ और स्थावर एवं जङ्गम प्राणीके द्वारा भी कोई मेरी कृपासे किसी प्रकार तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता । तुम समरभूमिमें पहुँचनेपर मुझसे भी अधिक बलवान् हो जाओगे ॥ ८३-८४ ॥

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद् विद्धि शौरिणा।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ८५ ॥

तुझे मालूम होना चाहिये, इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही भगवान् शङ्करसे ये अनेक वरदान पा लिये हैं । वे ही भगवान् नारायण श्रीकृष्णके रूपमें अपनी मायासे इस संसारको मोहित करते हुए विचर रहे हैं ॥ ८५ ॥

तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम्।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥

नारायणके ही तपसे महामुनि नर प्रकट हुए हैं, जो इन भगवान्‌के ही समान शक्तिशाली हैं । तू अर्जुनको सदा उन्हीं भगवान् नरका अवतार समझ ॥ ८६ ॥

तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी।
लोकयात्राविधानार्थं संजायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥

ये दोनों ऋषि प्रमुख देवता, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रमेंसे विष्णुस्वरूप हैं और तपस्यामें बहुत बढ़े-चढ़े हैं । ये लोगोंको धर्म-मर्यादामें रखकर उनकी रक्षाके लिये युग-युगमें अवतार ग्रहण करते हैं ॥ ८७ ॥

तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च।
तेजो मन्युं च बिभ्रत्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥ ८८ ॥
स भवान् देववत् प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत्।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥

महामते ! तू भी (अपने पूर्वजन्ममें) भगवान् नारायणके ही समान ज्ञानवान् होकर उनके ही जैसे सत्कर्म तथा बड़ी भारी तपस्या करके उसके प्रभावसे पूर्ण तेज और क्रोध धारण करनेवाला रुद्रभक्त हुआ था और सम्पूर्ण जगत्‌को शङ्करमय जानकर उन्हें प्रसन्न करनेकी इच्छासे तूने नाना प्रकारके कठोर नियमोंका पालन करते हुए अपने शरीरको दुर्बल कर डाला था ॥

शुभ्रमत्र भवान् कृत्वा महापुरुषविग्रहम्।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ९० ॥

मानद ! तूने यहाँ परम पुरुष भगवान् शङ्करके उज्ज्वल विग्रहकी स्थापना करके होम, जप और उपहारोंद्वारा उनकी आराधना की थी ॥ ९० ॥

स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत्।
पुष्कलांश्च वरान् प्रादात् तव विद्वन् हृदि स्थितान्॥ ९१ ॥

विद्वन् ! इस प्रकार पूर्वजन्मके शरीरमें तुझसे पूजित होकर भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए थे और उन्होंने तुझे बहुत-से मनोवाञ्छित वर प्रदान किये थे ॥ ९१ ॥

जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां युगे युगे ॥ ९२ ॥

इस प्रकार तेरे और नर-नारायणके जन्म, कर्म, तप और योग पर्याप्त हैं । नर-नारायणने शिवलिङ्गमें तथा तूने प्रतिमामें प्रत्येक युगमें महादेवजीकी आराधना की है ॥ ९२ ॥

सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम्।
आत्मयोगाश्च तस्मिन् वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः॥ ९३ ॥

जो भगवान् शङ्करको सर्वस्वरूप जानकर शिवलिङ्गमें उनकी पूजा करता है, उसमें सनातन आत्मयोग (आत्मा-परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) तथा शास्त्रयोग (स्वाध्यायजनित ज्ञान) प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ९३ ॥

एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥ ९४ ॥

इस प्रकार आराधना करते हुए देवता, सिद्ध और

महर्षिगण लोकमें एकमात्र सर्वोत्कृष्ट भगवान् शङ्करसे ही अभीष्ट वस्तुकी प्रार्थना करते हैं; क्योंकि वे ही सब कुछ करनेवाले हैं ॥ ९४ ॥

स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ९५ ॥

ये श्रीकृष्ण भगवान् शङ्करके भक्त हैं और उन्हींसे प्रकट हुए हैं; अतः यज्ञोंद्वारा सनातनपुरुष श्रीकृष्णकी ही आराधना करनी चाहिये ॥ ९५ ॥

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ९६ ॥

जो भगवान् शिवके लिङ्गको सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका स्थान जानकर उसकी पूजा करता है, उसपर भगवान् शङ्कर अधिक प्रेम करते हैं ॥ ९६ ॥

संजय उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! व्यासजीकी यह बात सुनकर द्रोणपुत्र महारथी अश्वत्थामाने मन-ही-मन भगवान् शङ्करको प्रणाम किया और श्रीकृष्णकी भी महत्ता स्वीकार कर ली ॥ ९७ ॥

हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥ ९८ ॥

उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उसने विनीतभावसे महर्षिको प्रणाम किया और अपनी सेनाकी ओर देखकर उसे छावनीमें लौटनेकी आज्ञा दे दी ॥ ९८ ॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत् पाण्डवानां विशाम्पते।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९९ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यके मारे जानेके बाद पाण्डवों तथा दीन कौरवोंकी सेनाएँ अपने-अपने शिविरकी ओर चल दीं ॥ ९९ ॥

युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम्।
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥

राजन्! इस प्रकार वेदोंके पारंगत विद्वान् द्रोणाचार्य पाँच दिनोंतक युद्ध तथा शत्रुसेनाका संहार करके ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये शतरुद्रिये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें व्यासवाक्य तथा शतरुद्रिय स्तुतिविषयक दो सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल १०२½ श्लोक हैं)

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासजीका अर्जुनसे भगवान् शिवकी महिमा बताना तथा द्रोणपर्वके पाठ और श्रवणका फल

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! धृष्टद्युम्नके द्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने आगे कौन-सा कार्य किया? ॥ १ ॥

संजय उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम्।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ! धृष्टद्युम्नद्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर जब समस्त कौरव भाग खड़े हुए, उस समय अपनेको विजय दिलानेवाली एक अत्यन्त आश्चर्यमयी घटना देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने अकस्मात् वहाँ आये हुए वेदव्यासजीसे उसके सम्बन्धमें इस प्रकार पूछा ॥ २-३ ॥

अर्जुन उवाच

संग्रामे न्यहनं शत्रूञ्शरौघैर्विमलैरहम्।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले—महर्षे! जब मैं अपने निर्मल बाणोंद्वारा शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय मुझे दिखायी दिया कि एक अग्निके समान तेजस्वी पुरुष मेरे आगे-आगे चल रहे हैं ॥ ४ ॥

ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥

महामुने! वे जलता हुआ शूल हाथमें लेकर जिस ओर जाते उसी दिशामें मेरे शत्रु विदीर्ण हो जाते थे ॥ ५ ॥



तेन भग्नानरीन् सर्वान् मद्भग्नान् मन्यते जनः।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥ ६ ॥

उन्होंने ही मेरे समस्त शत्रुओंको मार भगाया है, किंतु लोग समझते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। शत्रुओंकी सारी सेनाएँ उन्हींके द्वारा नष्ट की गयीं, मैं तो केवल उनके पीछे-पीछे चलता था ॥ ६ ॥

भगवंस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसंनिभः ॥ ७ ॥

भगवन् ! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे ? मैंने उन्हें हाथमें त्रिशूल लिये देखा था। वे सूर्यके समान तेजस्वी थे ॥ ७ ॥

न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ८ ॥

वे अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते थे। त्रिशूलको अपने हाथसे अलग कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिशूलसे सहस्रों नये-नये शूल प्रकट होकर शत्रुओंपर गिरते थे ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम्।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम्।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥

व्यासजीने कहा—अर्जुन ! जो प्रजापतियोंमें प्रथम, तेजःस्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ हैं, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि समस्त भुवन जिनके स्वरूप हैं, जो दिव्य विग्रहधारी तथा सम्पूर्ण लोकोंके शासक एवं स्वामी हैं, उन्हीं वरदायक ईश्वर भगवान् शङ्करका तुमने दर्शन किया है। वे वरद देवता सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं, तुम उन्हींकी शरणमें जाओ ॥ ९-१० ॥

महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम्।
त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥

वे महान् देव हैं। उनका हृदय महान् है। वे सबपर शासन करनेवाले, सर्वव्यापी और जटाधारी हैं। उनके तीन नेत्र और विशाल भुजाएँ हैं, रुद्र उनकी संज्ञा है, उनके मस्तकपर शिखा तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है ॥ ११ ॥

महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम्।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥

महादेव, हर और स्थाणु आदि नामोंसे प्रसिद्ध वरदायक भगवान् शिव सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हैं। वे ही जगत्के कारणभूत अव्यक्त प्रकृति हैं। वे किसीसे भी पराजित नहीं होते हैं। जगत्को प्रेम और सुखकी प्राप्ति उन्हींसे होती है। वे ही सबके अध्यक्ष हैं ॥ १२ ॥

जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम्।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥

वे ही जगत्की उत्पत्तिके स्थान, जगत्के बीज, विजयशील, जगत्के आश्रय, सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, विश्वविधाता, विश्वरूप और यशस्वी हैं ॥ १३ ॥

विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम्।
शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥

वे ही विश्वेश्वर, विश्वनियन्ता, कर्मोंके फलदाता ईश्वर और प्रभावशाली हैं। वे ही सबका कल्याण करनेवाले और स्वयम्भू हैं। सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी तथा भूत, भविष्य और वर्तमानके कारण भी वे ही हैं ॥ १४ ॥

योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥

वे ही योग और योगेश्वर हैं, वे ही सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। सबसे श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्से श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम परमेष्ठी भी वे ही हैं ॥ १५ ॥

लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम्।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥

तीनों लोकोंके एक मात्र स्रष्टा, त्रिलोकीके आश्रय, शुद्धात्मा, भव, भीम और चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले भी वे ही हैं ॥ १६ ॥

शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम्।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १७ ॥

वे सनातन देव इस पृथ्वीको धारण करनेवाले तथा सम्पूर्ण वागीश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उन्हें जीतना असम्भव है। वे जगदीश्वर जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारोंसे परे हैं ॥ १७ ॥

ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम्।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान् वरान् ॥ १८ ॥

वे ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं। उनके स्वरूपको समझ लेना अत्यन्त कठिन है। वे अपने भक्तोंको कृपापूर्वक मनोवाञ्छित उत्तम फल देनेवाले हैं ।१८।

तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥ १९ ॥
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथापरे।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥

भगवान् शङ्करके दिव्य पार्षद नाना प्रकारके रूपोंमें दिखायी देते हैं। उनमेंसे कोई वामन (बौने), कोई जटाधारी, कोई मुण्डित मस्तकवाले और कोई छोटी गर्दनवाले हैं। किन्हींके पेट बड़े हैं तो किन्हींके सारे शरीर ही विशाल हैं। कुछ पार्षदोंके कान बहुत बड़े-बड़े हैं। वे सब बड़े उत्साही होते हैं। कितनोंके मुख विकृत हैं और कितनोंके पैर। अर्जुन! उन सबके वेष भी बड़े विकराल हैं ॥ १९-२० ॥

ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद् याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥

ऐसे स्वरूपवाले वे सभी पार्षद महान् देवता भगवान् शङ्करकी सदा ही पूजा किया करते हैं। तात! उन तेजस्वी पुरुषके रूपमें वे भगवान् शङ्कर ही कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं ॥ २१ ॥

तस्मिन् घोरे सदा पार्थ संग्रामे रोमहर्षणे।
द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसापि प्रधर्षयेत्।
ऋते देवान्महेष्वासाद् बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २३ ॥

कुन्तीनन्दन! उस रोमाञ्चकारी घोर संग्राममें अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि प्रहारकुशल बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे सुरक्षित उस कौरव-सेनाको उस समय बहुरूपधारी महाधनुर्धर भगवान् महेश्वरके सिवा दूसरा कौन मनसे भी नष्ट कर सकता था ॥ २२-२३ ॥

स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥

जब वे ही सामने आकर खड़े हो जायँ तो वहाँ ठहरनेका साहस कोई नहीं कर सकता है? तीनों लोकोंमें कोई भी प्राणी उनकी समानता करनेवाला नहीं है ॥ २४ ॥

गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥

संग्राममें भगवान् शङ्करके कुपित होनेपर उनकी गन्धसे भी शत्रु बेहोश होकर काँपने लगते और अधमरे होकर गिर जाते हैं ॥ २५ ॥

तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि।
ये चान्ये मानवा लोके ते च स्वर्गजितो नराः ॥ २६ ॥

उनको नमस्कार करनेवाले देवता सदा स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। दूसरे भी जो मानव इस लोकमें उन्हें नमस्कार करते हैं, वे भी स्वर्गलोकपर विजय पाते हैं ॥ २६ ॥

ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम्।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥
इहलोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम्।

जो भक्त मनुष्य सदा अनन्यभावसे वरदायक देवता कल्याणस्वरूप, सर्वेश्वर उमानाथ भगवान् रुद्रकी उपासना करते हैं, वे भी इहलोकमें सुख पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २७½ ॥

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥ २८ ॥
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥

कुन्तीनन्दन! अतः तुम भी उन शान्तस्वरूप भगवान् शिवको सदा नमस्कार किया करो। जो रुद्र, नीलकण्ठ, कनिष्ठ (सूक्ष्म या दीप्तिमान्), उत्तम तेजसे सम्पन्न, जटाजूटधारी, विकरालस्वरूप, पिङ्गल नेत्रवाले तथा कुबेरको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ॥

याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ ३० ॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥

जो यमके अनुकूल रहनेवाले काल हैं, अव्यक्त स्वरूप आकाश ही जिनका केश है, जो सदाचारसम्पन्न, सबका कल्याण करनेवाले, कमनीय, पिङ्गलनेत्र, सदा स्थित रहनेवाले और अन्तर्यामी पुरुष हैं, जिनके केश भूरे एवं पिङ्गल वर्णके हैं, जिनका मस्तक मुण्डित है, जो दुबले-पतले और भवसागरसे पार उतारनेवाले हैं, जो सूर्यस्वरूप, उत्तम तीर्थ और अत्यन्त वेगशाली हैं, उन देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है ॥ ३०-३१ ॥

बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ ३२ ॥

जो अनेक रूप धारण करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सबके प्रिय हैं, वल्कल आदि वस्त्र जिन्हें प्रिय है, जो मस्तक-

पर पगड़ी धारण करते हैं, जिनका मुख सुन्दर है, जिनके सहस्रों नेत्र हैं तथा जो वर्षा करनेवाले हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे ।
हिरण्यबाहवे राज्ञे उग्राय पतये दिशाम् ॥ ३३ ॥

जो पर्वतपर शयन करनेवाले, परम शान्त, यति-स्वरूप, चीरवस्त्रधारी, हिरण्यबाहु (सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बाँहवाले), राजा (दीप्तिमान्), उग्र (भयंकर) तथा दिशाओंके अधिपति हैं, (उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है) ॥ ३३ ॥

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः ।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥ ३४ ॥

जो मेघोंके अधिपति तथा सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, उन्हें नमस्कार है । वृक्षोंके पालक और गौओंके अधिपति-रूप आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च ।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥ ३५ ॥

जिनका शरीर वृक्षोंसे आच्छादित है, जो सेनाके अधिपति और शरीरके मध्यवर्ती (अन्तर्यामी) हैं, यजमान-रूपसे जो अपने हाथमें स्रुवा धारण करते हैं, जो दिव्य-स्वरूप, धनुर्धर और भृगुवंशी परशुरामस्वरूप हैं, उनको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे ।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६ ॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च ।

जिनके बहुत-से रूप हैं, जो इस विश्वके पालक होकर भी मूँजका कौपीन धारण करते हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों पैर हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ३६½ ॥

शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् ।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥ ३८ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम उन्हीं वरदायक भुवनेश्वर, उमा-वल्लभ, त्रिनेत्रधारी, दक्षयज्ञविनाशक, प्रजापति, व्यग्रता-रहित और अविनाशी भगवान् भूतनाथकी शरणमें जाओ ॥

कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम् ।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९ ॥
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् ।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥

जो जटाजूटधारी हैं, जिनका घूमना परम श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ नाभिसे सुशोभित, ध्वजापर वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, वृषदर्प (प्रबल अहंकारवाले), वृषपति (धर्मस्वरूप वृषभके अधिपति), धर्मको ही उच्चतम माननेवाले तथा धर्मसे भी सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके ध्वजमें साँड़का चिह्न अङ्कित है, जो धर्मात्माओंमें उदार, धर्मस्वरूप, वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले, श्रेष्ठ आयुध और श्रेष्ठ बाणसे युक्त, धर्मविग्रह तथा धर्मके ईश्वर, उन भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३९–४० ॥

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् ।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४१ ॥
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् ।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् ।

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेके कारण जिनका उदर और शरीर विशाल है, जो व्याघ्रचर्म ओढ़ा करते हैं, जो लोकेश्वर, वरदायक, मुण्डितमस्तक, ब्राह्मणहितैषी तथा ब्राह्मणोंके प्रिय हैं। जिनके हाथमें त्रिशूल, ढाल, तलवार और पिनाक आदि अस्त्र शोभा पाते हैं, जो वरदायक, प्रभु, सुन्दर शरीरधारी, तीनों लोकोंके स्वामी तथा साक्षात् ईश्वर हैं, उन चीरवस्त्रधारी, शरणागतवत्सल भगवान् शिवकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ४१-४२½ ॥

नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने ।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः ।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥

कुबेर जिनके सखा हैं, उन देवेश्वर शिवको नमस्कार है। प्रभो ! आप उत्तम वस्त्र, उत्तम व्रत और उत्तम धनुष धारण करते हैं। आप धनुर्धर देवताको धनुष प्रिय है, आप धन्वी, धन्वन्तर, धनुष और धन्वाचार्य हैं, आपको नमस्कार है। भयंकर आयुध धारण करनेवाले सुरश्रेष्ठ महादेवजीको नमस्कार है ॥ ४३–४५ ॥

नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने ।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥

अनेक रूपधारी शिवको नमस्कार है, बहुत-से धनुष धारण करनेवाले रुद्रदेवको नमस्कार है, आप स्थाणुरूप हैं, आपको नमस्कार है, उन तपस्वी शिवको नित्य नमस्कार है ॥ ४६ ॥

नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः ।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥

त्रिपुरनाशक और भगनेत्रविनाशक भगवान्

शिवको बारंबार नमस्कार है । वनस्पतियोंके पति तथा नरपति-रूप महादेवजीको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ४८ ॥

मातृकाओंके अधिपति और गणोंके पालक शिवको नमस्कार है । गोपति और यज्ञपति शङ्करको नित्य नमस्कार है ॥ ४८ ॥

अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥ ४९ ॥
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः ।

जलपति तथा देवपतिको नित्य नमस्कार है । पूषाके दाँत तोड़नेवाले, त्रिनेत्रधारी वरदायक शिवको नमस्कार है । नीलकण्ठ, पिङ्गलवर्ण और सुनहरे केशवाले भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ४९½ ॥

कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः ॥ ५० ॥
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।

अर्जुन ! अब मैं परम बुद्धिमान् महादेवजीके जो दिव्य कर्म हैं, उनका अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा मैंने सुन रक्खा है, वैसा ही तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ ॥ ५०½ ॥

न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१ ॥
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः ।

यदि वे कुपित हो जायँ तो देवता, असुर, गन्धर्व और राक्षस इस लोकमें अथवा पातालमें छिप जानेपर भी चैनसे नहीं रहने पाते हैं ॥ ५१½ ॥

दक्षस्य यजमानस्य विधिवत् सम्भृतं पुरा ॥ ५२ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत् तदा ।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ५३ ॥

पहलेकी बात है, वे यज्ञपरायण दक्षपर कुपित हो गये थे । उस समय उन्होंने उनके विधिपूर्वक किये जानेवाले यज्ञको नष्ट कर दिया था । उन दिनों वे निर्दय हो गये थे और धनुषद्वारा बाण छोड़कर बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे थे ॥ ५२-५३ ॥

ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा ।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ५४ ॥

देवताओंको उस समय कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिली, महेश्वरके कुपित होनेसे सहसा यज्ञमें उपद्रव खड़ा हो गया था ॥ ५४ ॥

तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥

पार्थ ! उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाके गम्भीर घोषसे अत्यन्त व्याकुल हो सम्पूर्ण लोक उनके अधीन हो गये । देवता और असुर सभी धरतीपर गिर पड़े ॥ ५५ ॥

आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुंधरा ।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ५६ ॥

समुद्रके जलमें ज्वार आ गया, धरती काँपने लगी, पर्वत टूट-फूटकर बिखरने लगे और दिग्गज मूर्छित हो गये ॥

अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः ।
जघ्निवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ५७ ॥

घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जानेके कारण सम्पूर्ण लोकोंमें कहीं भी प्रकाश नहीं रह गया । भगवान् शिवने सूर्यसहित सम्पूर्ण ज्योतियोंकी प्रभा नष्ट कर दी ॥ ५७ ॥

चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च ।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥ ५८ ॥

महर्षि भी भयभीत एवं क्षुब्ध हो उठे । वे सम्पूर्ण भूतोंके तथा अपने लिये भी सुख चाहते हुए पुण्याहवाचन आदि शान्ति कर्म करने लगे ॥ ५८ ॥

पूषाणमभ्यद्रवत शंकरः प्रहसन्निव ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्यशातयत् ॥ ५९ ॥

उस समय हँसते हुए-से भगवान् शङ्करने पूषापर आक्रमण किया । वे पुरोडाश खा रहे थे । उन्होंने उनके सारे दाँत तोड़ डाले ॥ ५९ ॥

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते ।
पुनश्च संदधे दीप्तान् देवानां निशिताञ्शरान् ॥ ६० ॥

तदनन्तर सारे देवता नतमस्तक हो भयसे थरथर काँपते हुए यज्ञशालासे बाहर निकल गये । तब भगवान् शिवने देवताओंको लक्ष्य करके तीखे और तेजस्वी बाणोंका संधान किया ॥ ६० ॥

सधूमान् सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसंनिभान् ।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।

धूम और चिनगारियोंसहित वे बाण बिजली सहित मेघोंके समान जान पड़ते थे । तब सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् महेश्वरको कुपित देख उनके चरणोंमें प्रणाम किया और रुद्रके लिये उन्होंने विशिष्ट यज्ञभागकी कल्पना की

भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ ६२ ॥
तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितस्तदा ।
भग्नाश्चापि सुरा आसन् भीताश्चाद्यापि तं प्रति ॥ ६३ ॥

राजन् ! सब देवता भयभीत हो भगवान् शङ्करकी शरणमें आये । तब क्रोध शान्त होनेपर उन्होंने उस यज्ञको पूर्ण किया । उन दिनों देवता लोग भाग खड़े हुए थे, तभीसे आजतक वे देवता उनसे डरते रहते हैं ॥ ६२-६३ ॥

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत्॥ ६४॥

पूर्वकालमें परम पराक्रमी तीन असुरोंके आकाशमें तीन नगर थे। एक लोहेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा अत्यन्त विशाल नगर सोनेका बना हुआ था॥ ६४॥

सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम्।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम्॥ ६५॥

उनमेंसे सोनेका नगर कमलाक्षके, चाँदीका तारकाक्षके तथा तीसरा लोहेका बना हुआ नगर विद्युन्मालीके अधिकारमें था॥ ६५॥

न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः॥ ६६॥

इन्द्र सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करके भी उन नगरोंका भेदन न कर सके। तब उनसे पीड़ित हुए सम्पूर्ण देवता भगवान् शङ्करकी शरणमें गये॥ ६६॥

ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः॥ ६७॥
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात् ते वरदर्पिताः।

इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने महात्मा भगवान् शङ्करसे कहा—'प्रभो! ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये त्रिपुर-निवासी घोर दैत्य सम्पूर्ण जगत्को अधिकाधिक पीड़ा दे रहे हैं; क्योंकि वरदान प्राप्त होनेसे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है॥ ६७½॥

त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथंचन॥ ६८॥
हन्तुं दैत्यान् महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः।

'देवदेवेश्वर महादेव! आपके सिवा दूसरा कोई उन दैत्योंका वध करनेमें समर्थ नहीं है; अतः आप उन देव-द्रोहियोंको मार डालिये॥ ६८½॥

रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु॥ ६९॥
निपातयिष्यसे चैतानसुरान् भुवनेश्वर।

'भुवनेश्वर! रुद्र! आप जब इन असुरोंका विनाश कर डालेंगे, तबसे सम्पूर्ण यज्ञकर्मोंमें जो पशु (यज्ञके साधनभूत उपकरण) होंगे, वे रुद्रके भाग समझे जायँगे'॥

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया॥ ७०॥
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः॥ ७१॥
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक्॥ ७२॥
अणी कृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम्॥ ७३॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् शिवने 'तथास्तु' कहकर उनके हितकी इच्छासे गन्धमादन और विन्ध्याचल इन दो पर्वतोंको अपने रथके दो पार्श्ववर्ती ध्वज बनाये। फिर समुद्र और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको रथ बनाकर नागराज शेषको उस रथका धुरा बनाया। तत्पश्चात् त्रिनेत्र-धारी पिनाकपाणि देवाधिदेव महादेवने चन्द्रमा और सूर्य दोनोंको रथके दो पहिये बनाये। एलपत्रके पुत्र और पुष्प-दन्तको जूएकी कीलें बनाया। फिर त्र्यम्बकने मलयाचलको यूप और तक्षक नागको जूआ बाँधनेकी रस्सी बना लिया॥

योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान्।
वेदान् कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान् महेश्वरः॥ ७४॥

इसी प्रकार प्रतापी भगवान् महेश्वरने अन्य प्राणियोंको जोते और बागडोर आदिके रूपमें रखकर चारों वेद ही रथके चार घोड़े बना लिये॥ ७४॥

उपवेदान् खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः॥ ७५॥

तत्पश्चात् तीनों लोकोंके स्वामी महेश्वरने उपवेदोंको लगाम बनाकर गायत्री और सावित्रीको प्रग्रह बना लिया॥

कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम्।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम्॥ ७६॥
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च।
वायुं कृत्वाथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम्॥ ७७॥

फिर ओङ्कारको चाबुक, ब्रह्माजीको सारथि, मन्दराचल-को गाण्डीव धनुष, वासुकिनागको उसकी प्रत्यञ्चा, भगवान् विष्णुको उत्तम बाण, अग्निदेवको उस बाणका फल, वायुको उसके पङ्ख और वैवस्वत यमको उसकी पूँछ बनाया॥ ७६-७७॥

विद्युत् कृत्वाथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै ध्वजम्।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः॥ ७८॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः॥ ७९॥

बिजलीको उस बाणकी तीखी धार बनाकर मेरु पर्वतको प्रधान ध्वजके स्थानमें रक्खा। इस प्रकार सर्वदेवमय दिव्य रथ तैयार करके असुरोंका अन्त करनेवाले, अतुल पराक्रमी, योद्धाओंमें श्रेष्ठ तथा सदा स्थिर रहनेवाले श्रीमान् भगवान् शिव त्रिपुरवधके लिये उसपर आरूढ़ हुए॥ ७८–७९॥

स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः॥ ८०॥
अतिष्ठत् स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान्।

पार्थ! उस समय सम्पूर्ण देवता और तपोधन महर्षि

भगवान् शङ्करकी स्तुति करने लगे। उन भगवान्ने उस अनुपम एवं दिव्य माहेश्वर स्थान (रथ) का निर्माण करके उसपर एक हजार वर्षोंतक स्थिरभावसे खड़े रहे ॥ ८०½ ॥

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥ ८१ ॥
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।

जब वे तीनों पुर आकाशमें एकत्र हुए, तब उन्होंने तीन गाँठ और तीन फलवाले बाणसे उन तीनों पुरोंको विदीर्ण कर डाला ॥ ८१½ ॥

पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८२ ॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।

उस समय दानव उन नगरोंकी ओर और कालाग्निसे संयुक्त एवं विष्णु तथा सोमकी शक्तिसे सम्पन्न उस बाणकी ओर भी आँख उठाकर देख न सके ॥ ८२½ ॥

पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥
बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।

जिस समय वे तीनों पुरोंको दग्ध कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी भी उन्हें देखनेके लिये एक पाँच शिखावाले बालकको गोदमें लेकर वहाँ गयीं ॥ ८३½ ॥

उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत् सुरान् ॥ ८४ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत् प्रभुः ॥ ८५ ॥
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।

पार्वतीदेवीने देवताओंसे पूछा—'पहचानते हो, यह कौन है ?' उनके इस प्रश्नसे इन्द्रके हृदयमें असूया और क्रोधकी आग जल उठी, वे उस बालकपर वज्रका प्रहार करना ही चाहते थे कि सर्वलोकेश्वर सर्वव्यापी भगवान् शङ्करने हँसकर उनकी वज्रसहित बाँहको स्तम्भित कर दिया ॥८४-८५½॥

ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।

तदनन्तर स्तम्भित हुई भुजाके साथ ही देवताओंसहित इन्द्र तुरंत ही वहाँसे अविनाशी भगवान् ब्रह्माजीके पास गये ॥

ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८७ ॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥

देवताओंने मस्तक झुकाकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मन् ! पार्वतीजीकी गोदमें बालरूपधारी एक अद्भुत प्राणी था, जिसे देखकर भी हमलोग पहचान नहीं सके हैं ॥ ८७–८८ ॥

तस्मात् त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरंदराः ॥ ८९ ॥

'अतः हमलोग आपसे उसके विषयमें पूछना चाहते हैं, उस बालकने बिना युद्धके ही खेल-खेलमें इन्द्रसहित हम देवताओंको परास्त कर दिया' ॥ ८९ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालं चामिततेजसम् ॥९०॥

उनकी यह बात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माने ध्यान करके अमिततेजस्वी बालरूपधारी शङ्करको पहचान लिया ॥ ९० ॥

उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥
तस्मात् परतरं नान्यत् किंचिदस्ति महेश्वरात् ।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥
स पार्वत्याः कृते शर्वः कृतवान् बालरूपताम् ।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥

तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने उन देवश्रेष्ठ इन्द्र आदिसे कहा—'देवताओ ! वे चराचर जगत्के स्वामी साक्षात् भगवान् शङ्कर थे। उन महेश्वरसे बढ़कर दूसरी कोई सत्ता नहीं है। तुमलोगोंने पार्वतीजीके साथ जिस अमिततेजस्वी बालकका दर्शन किया है, उसके रूपमें भगवान् शङ्कर ही थे। उन्होंने पार्वतीजीकी प्रसन्नताके लिये बालरूप धारण कर लिया था; अतः तुमलोग मेरे साथ उन्हींकी शरणमें चलो' ॥९१-९३॥

स एष भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।

उस बालकके रूपमें ये सर्वलोकेश्वर प्रभु भगवान् महादेव ही थे, किंतु प्रजापतियोंसहित सम्पूर्ण देवता बालसूर्यके सदृश कान्तिमान् उन जगदीश्वरको पहचान न सके ॥

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम् ॥ ९५ ॥
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ।

तदनन्तर ब्रह्माजीने निकट जाकर भगवान् महेश्वरको देखा और ये ही सबसे श्रेष्ठ हैं, ऐसा जानकर उनकी वन्दना की॥९५½॥

ब्रह्मोवाच

त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥ ९६ ॥
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ९७ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवन् ! आप ही यज्ञ, आप ही इस विश्वके सहारे और आप ही सबको शरण देनेवाले हैं, आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले भव हैं, आप ही महादेव हैं और

आप ही परमधाम एवं परमपद हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रक्खा है ॥ ९६-९७ ॥

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥ ९८ ॥

भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी भगवन्! लोकनाथ! जगत्पते! ये इन्द्र आपके क्रोधसे पीड़ित हो रहे हैं। आप इनपर कृपा कीजिये ॥ ९८ ॥

व्यास उवाच

पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाकरोत् ॥ ९९ ॥

व्यासजी कहते हैं—पार्थ! ब्रह्माजीकी बात सुनकर भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये और कृपाके लिये उद्यत हो ठठाकर हँस पड़े ॥ ९९ ॥

ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥१००॥

तब देवताओंने पार्वती देवी तथा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। फिर वज्रधारी इन्द्रकी बाँह जैसी पहले थी, वैसी हो गयी ॥ १०० ॥

तेषां प्रसन्नो भगवान् सपत्नीको वृषध्वजः।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥१०१॥

दक्षयज्ञका विनाश करनेवाले देवश्रेष्ठ भगवान् वृषध्वज अपनी पत्नी उमाके साथ देवताओंपर प्रसन्न हो गये ॥१०१॥

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित्।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥१०२॥

वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप एवं सर्वज्ञ हैं। वे ही इन्द्र और वायु हैं, वे ही दोनों अश्विनीकुमार तथा विद्युत् हैं ॥ १०२ ॥

स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥१०३॥

वे ही भव, वे ही मेघ और वे ही सनातन महादेव हैं। चन्द्रमा, ईशान, सूर्य और वरुण भी वे ही हैं ॥ १०३ ॥

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु।
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः ॥१०४॥

वे ही काल, अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि, दिन, मास, पक्ष, ऋतु, संध्या और संवत्सर हैं ॥ १०४ ॥

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥१०५॥

वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्यके कर्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओंके शरीर धारण करते हैं ॥ १०५ ॥

सर्वैर्देवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥१०६॥

सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपोंमें वे ही विराज रहे हैं ॥ १०६ ॥

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरा चान्या शिवा चान्या ते तनू बहुधा पुनः॥१०७॥

वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर मानते हैं, एक घोर और दूसरा शिव। ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं और उन्हींसे पुनः बहुसंख्यक शरीर प्रकट हो जाते हैं ॥ १०७ ॥

घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः।
सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः ॥१०८॥

उनका जो घोर शरीर है, वही अग्नि, विष्णु और सूर्य है और उनका सौम्य (शिव) शरीर ही जल, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा है ॥ १०८ ॥

वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः।
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः ॥१०९॥

वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण और अध्यात्मशास्त्रके जो सिद्धान्त हैं तथा उनमें भी जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं ॥ १०९ ॥

ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥११०॥
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन।

अर्जुन! यह है अजन्मा भगवान् महादेवका महामहिमस्वरूप। मैं सहस्रों वर्षोंतक लगातार वर्णन करता रहूँ तो भी भगवान्के समस्त गुणोंका पार नहीं पा सकता ॥११०½॥

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमन्वितान् ॥१११॥
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।

जो सब प्रकारकी ग्रहबाधाओंसे पीड़ित हैं और सम्पूर्ण पापोंमें डूबे हुए हैं, वे भी यदि शरणमें आ जायँ तो शरणागतवत्सल भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें पाप-तापसे मुक्त कर देते हैं ॥ १११½ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥११२॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः।

वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुरमात्रामें मनोवाञ्छित पदार्थ देते हैं तथा वे ही

कुपित होनेपर फिर उन सबका संहार कर डालते हैं ॥ ११२½ ॥

सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥११३॥
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ॥११४॥

इन्द्र आदि देवताओंमें उन्हींका ऐश्वर्य बताया जाता है, वे ही ईश्वर होनेके कारण लोकमें मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंके फल देनेमें संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण कामनाओंके ईश्वर भी वे ही बताये जाते हैं ॥ ११३-११४ ॥

महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥११५॥

महाभूतोंके ईश्वर होनेसे वे ही महेश्वर कहलाते हैं। वे नाना प्रकारके बहुसंख्यक रूपोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं ॥

तस्य देवस्य यद् वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम्।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत् तोयमयं हविः ॥११६॥

उन महादेवजीका जो मुख है, वह समुद्रमें स्थित है। वह 'वडवामुख' नामसे विख्यात होकर जलमय हविष्यका पान करता है ॥ ११६ ॥

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥११७॥

ये ही महादेवजी श्मशानभूमि (काशीपुरी) में नित्य निवास करते हैं। वहाँ मनुष्य 'वीरस्थानेश्वर' के नामसे इनकी आराधना करते हैं ॥ ११७ ॥

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥११८॥

इनके बहुत-से तेजस्वी घोर रूप हैं, जो लोकमें पूजित होते हैं और मनुष्य उनका कीर्तन करते रहते हैं ॥ ११८ ॥

नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत्।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात् कर्मणस्तथा ॥११९॥

उनकी महत्ता, सर्वव्यापकता तथा कर्मके अनुसार लोकमें इनके बहुत-से यथार्थ नाम बताये जाते हैं ॥ ११९ ॥

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम्।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः ॥१२०॥

यजुर्वेदमें भी परमात्मा शिवकी 'शतरुद्रिय' नामक उत्तम स्तुति बतायी गयी है। अनन्तरुद्रनामसे इनका उपस्थान बताया गया है ॥ १२० ॥

स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत् ॥१२१॥

जो दिव्य तथा मानव भोग हैं, उन सबके स्वामी ये महादेवजी ही हैं। ये देव इस विशाल विश्वमें व्याप्त हैं; इसलिये विभु और प्रभु कहलाते हैं ॥ १२१ ॥

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत् ॥१२२॥

ब्राह्मण और मुनिजन इन्हें सबसे ज्येष्ठ बताते हैं, ये देवताओंमें सबसे प्रथम हैं; इन्हींके मुखसे अग्निदेवका प्रादुर्भाव हुआ है ॥ १२२ ॥

सर्वथा यत् पशून् पाति तैश्च यद् रमते पुनः।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः ॥१२३॥

ये सर्वथा पशुओं (प्राणियों) का पालन करते और उन्हींके साथ खेला करते हैं तथा उन पशुओंके अधिपति हैं; इसलिये 'पशुपति' कहे गये हैं ॥ १२३ ॥

दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथा स्थितम्।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥१२४॥

इनका दिव्य लिङ्ग ब्रह्मचर्यसे स्थित है। ये सम्पूर्ण लोकोंको महिमान्वित करते हैं; इसलिये महेश्वर कहे गये हैं ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥१२५॥

ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ इनके ऊर्ध्वलोक-स्थित लिङ्गविग्रह (प्रतीक) की पूजा करती हैं ॥ १२५ ॥

पूज्यमाने ततस्तस्मिन् मोदते स महेश्वरः।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥१२६॥

उस लिङ्ग अर्थात् प्रतीककी पूजा होनेपर कल्याणकारी भगवान् महेश्वर आनन्दित होते हैं। सुखी, प्रसन्न तथा हर्षोल्लाससे परिपूर्ण होते हैं ॥ १२६ ॥

यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवस्थितम्।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥१२७॥

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें इनके स्थावर-जङ्गम बहुतसे रूप स्थित होते हैं; इसलिये इन्हें 'बहुरूप' नाम दिया गया है ॥ १२७ ॥

एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
क्रोधाद् यश्चाविशल्लोकांस्तस्मात् सर्व इति स्मृतः ।१२८।

यद्यपि उनके सब ओर नेत्र हैं, तथापि उनका एक विलक्षण अग्निमय नेत्र अलग भी है, जो सदा क्रोधसे प्रज्वलित रहता है; वे सब लोकोंमें समाविष्ट होनेके कारण 'सर्व' कहे गये हैं ॥ १२८ ॥

धूम्ररूपं च यत् तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते।
विश्वेदेवाश्च यत् तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥१२९॥

उनका रूप धूम्रवर्णका है; इसलिये वे 'धूर्जटि' कहलाते हैं। विश्वेदेव उन्हींमें प्रतिष्ठित हैं, इसलिये उनका एक नाम 'विश्वरूप' है ॥ १२९ ॥

तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥१३०॥

वे भगवान् भुवनेश्वर आकाश, जल और पृथ्वी इन अम्बास्वरूपा तीन देवियोंको अपनाते, उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये त्र्यम्बक कहे गये हैं ॥ १३० ॥

समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः॥१३१॥

ये मनुष्योंका कल्याण चाहते हुए उनके समस्त कर्मोंमें सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंकी समृद्धि (सिद्धि) करते हैं, इसलिये 'शिव' कहे गये हैं ॥ १३१ ॥

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥१३२॥

उनके सहस्र अथवा दस हजार नेत्र हैं अथवा वे सब ओरसे नेत्रमय ही हैं। भगवान् शिव महान् विश्वका पालन करते हैं; इसलिये 'महादेव' कहे गये हैं ॥ १३२ ॥

महत् पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत्।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात् स्थाणुरिति स्मृतः॥१३३॥

वे पूर्वकालसे ही महान् रूपमें स्थित हैं, प्राणोंकी उत्पत्ति और स्थितिके कारण हैं तथा उनका लिङ्गमय शरीर सदा स्थित रहता है; इसलिये उन्हें 'स्थाणु' कहते हैं ॥१३३॥

सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः॥१३४॥

लोकमें जो सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें प्रकाशित होती हैं, वे भगवान् त्रिलोचनके केश कही गयी हैं। वे व्योम (आकाश) में प्रकाशित होती हैं; इसलिये उनका नाम 'व्योमकेश' है ॥ १३४ ॥

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः।
भव एव ततो यस्माद् भूतभव्यभवोद्भवः ॥१३५॥

भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण जगत् भगवान् शङ्करसे ही विस्तारको प्राप्त हुआ है; इसलिये वे 'भूतभव्यभवोद्भव' कहे गये हैं ॥ १३५ ॥

कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते।
स देवदेवो भगवान् कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥१३६॥

कपि कहते हैं श्रेष्ठको और वृष नाम है धर्मका। वृष और कपि दोनों होनेके कारण देवाधिदेव भगवान् शङ्कर 'वृषाकपि' कहलाते हैं ॥ १३६ ॥

ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च।
निगृह्य हरते यस्मात् तस्माद्धर इति स्मृतः ॥१३७॥

वे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम तथा कुबेरको भी काबूमें करके उनसे उनका ऐश्वर्य हर लेते हैं; इसलिये 'हर' कहे गये हैं ॥ १३७ ॥

निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद् देवो महेश्वरः।
ललाटे नेत्रमसृजत् तेन त्र्यक्षः स उच्यते ॥१३८॥

उन भगवान् महेश्वरने दोनों नेत्रोंको बंद करके अपने ललाटमें बलपूर्वक तीसरे नेत्रकी सृष्टि की, इसलिये उन्हें त्रिनेत्र कहते हैं ॥ १३८ ॥

विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु ॥१३९॥

वे प्राणियोंके शरीरोंमें विषम संख्यावाले पाँच प्राणोंके साथ निवास करते हुए सदा समभावसे स्थित रहते हैं। विषम परिस्थितियोंमें पड़े हुए समस्त देहधारियोंके भीतर वे ही प्राणवायु और अपानवायुके रूपमें विराजमान हैं ॥१३९॥

पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥१४०॥

जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महात्मा शिवके अर्चाविग्रह अथवा लिङ्ग (प्रतीक) की पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग अथवा प्रतिमाकी पूजा करनेवाला पुरुष बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है ॥ १४० ॥

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमार्धं च शिवा तनुः।
आत्मनोऽर्धं तथा चाग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते॥१४१॥

दोनों जाँघोंसे नीचे भगवान् शिवका आधा शरीर आग्नेय अथवा घोर है तथा उससे ऊपरका आधा शरीर सोम एवं शिव है। किसी-किसीके मतमें उनके सम्पूर्ण शरीरका आधा भाग 'अग्नि' और आधा भाग 'सोम' कहलाता है ॥ १४१ ॥

तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराग्निरुच्यते ॥१४२॥

उनका जो शिव शरीर है, वह तेजोमय और परम कान्तिमान् है। वह देवताओंके उपयोगमें आता है तथा मनुष्यलोकमें उनका प्रकाशमान घोर शरीर 'अग्नि' कहलाता है॥

ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा यास्य तनुस्तया।
यास्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥१४३॥

उनकी जो शिव मूर्ति है, वह जगत्‌की रक्षाके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करती है और उनकी जो घोरतर मूर्ति है, उसके द्वारा भगवान् शङ्कर सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं ॥

यन्निर्दहति यत् तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान्।
मांसशोणितमज्जादो यत् ततो रुद्र उच्यते ॥ १४४॥

ये प्रतापी देवता प्रलयकालमें अत्यन्त तीक्ष्ण एवं उग्र रूप धारण करके सबको दग्ध कर डालते हैं और प्राणियोंके रक्त, मांस एवं मज्जाको भी भक्षण करते हैं; अतः रौद्रभावके कारण 'रुद्र' कहलाते हैं ॥ १४४ ॥

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः।
संग्रामे शात्रवान् निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक्॥ १४५॥

अर्जुन ! संग्रामभूमिमें जो तुम्हारे आगे शत्रुओंका संहार करते हुए दिखायी दिये हैं, वे ये ही पिनाकधारी भगवान् महादेव हैं ॥ १४५ ॥

सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयानघ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ॥ १४६॥
एष वै भगवान् देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः ।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥ १४७॥

निष्पाप अर्जुन ! जब तुमने सिंधुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें गिरिराजके शिखरपर जिनका दर्शन कराया था, ये वे ही भगवान् शङ्कर संग्राममें तुम्हारे आगे-आगे चल रहे हैं । उन्होंने ही तुम्हें वे दिव्यास्त्र प्रदान किये थे, जिनके द्वारा तुमने दानवोंका संहार किया है ॥ १४६-१४७ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥ १४८॥

पार्थ ! यह देवाधिदेव भगवान् शिवके 'शतरुद्रिय' स्तोत्रकी व्याख्या की गयी है। यह स्तोत्र वेदोंके समान परम पवित्र तथा धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है ॥ १४८॥

सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥ १४९॥

इसके पाठसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। यह पवित्र स्तोत्र सम्पूर्ण किल्बिषोंका नाशक, सब पापोंका निवारक तथा सब प्रकारके दुःख और भयको दूर करनेवाला है ॥ १४९ ॥

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा।
विजित्य शत्रून् सर्वान् स रुद्रलोके महीयते ॥ १५०॥

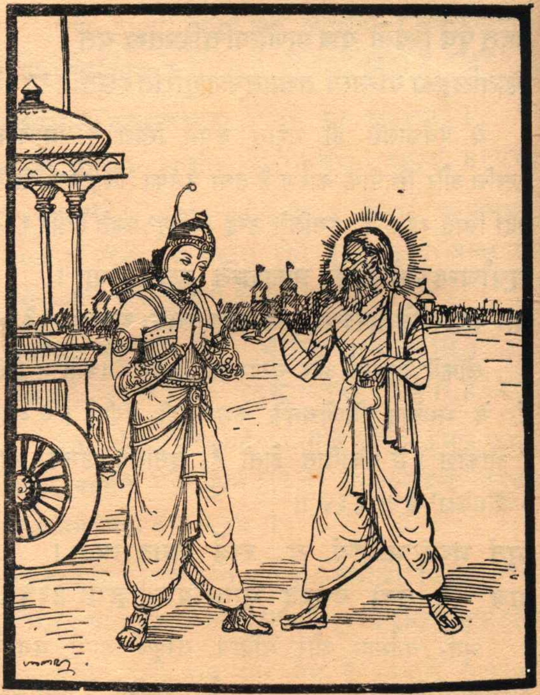
जो मनुष्य भगवान् शङ्करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश और निर्गुण निराकार—इन चतुर्विध स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले इस स्तोत्रको सदा सुनता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १५० ॥

चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम्।
पठन् वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥ १५१॥
भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा।
वरान् कामान् स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥ १५२॥

परमात्मा शिवका यह चरित सदा संग्राममें विजय दिलानेवाला है, जो सदा उद्यत रहकर शतरुद्रियको पढ़ता और सुनता है तथा मनुष्योंमें जो कोई भी निरन्तर भगवान् विश्वेश्वरका भक्तिभावसे भजन करता है, वह उन त्रिलोचनके प्रसन्न होनेपर समस्त उत्तम कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥

गच्छ युद्धयस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः ॥ १५३॥

कुन्तीनन्दन ! जाओ, युद्ध करो। तुम्हारी पराजय नहीं



हो सकती; क्योंकि तुम्हारे मन्त्री, रक्षक और पार्श्ववर्ती साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥ १५३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा।

जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिंदम ॥१५४॥

संजय कहते हैं—शत्रुओंका दमन करनेवाले भरतश्रेष्ठ ! युद्धस्थलमें अर्जुनसे ऐसा कहकर पराशरनन्दन व्यासजी जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ १५४ ॥

युद्धं कृत्वा महद् घोरं पञ्चाहानि महाबलः ।
ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥१५५॥

राजन् ! पाँच दिनोंतक अत्यन्त घोर युद्ध करके महाबली ब्राह्मण द्रोणाचार्य मारे गये और ब्रह्मलोकमें चले गये ॥

स्वधीते यत् फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद् यशः ॥१५६॥

वेदोंके स्वाध्यायसे जो फल मिलता है, वही इस पर्वके पाठ और श्रवणसे भी प्राप्त होता है । इसमें निर्भय होकर युद्ध करनेवाले वीर क्षत्रियोंके महान् यशका वर्णन है ॥१५६॥

य इदं पठते पर्व शृणुयाद् वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥१५७॥

जो प्रतिदिन इस पर्वको पढ़ता अथवा सुनता है, वह पहलेके किये हुए बड़े-बड़े पापों तथा घोर कर्मोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १५७ ॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान् पौत्रान् नित्यमिष्टांस्तथैव ॥१५८॥

इसको प्रतिदिन पढ़ने और सुननेसे ब्राह्मणको यज्ञका फल प्राप्त होता है, क्षत्रियोंको घोर युद्धमें सुयशकी प्राप्ति होती है, शेष दो वर्णके लोगोंको भी पुत्र, पौत्र आदि अभीष्ट एवं प्रिय वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं ॥ १५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें दो सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०२ ॥

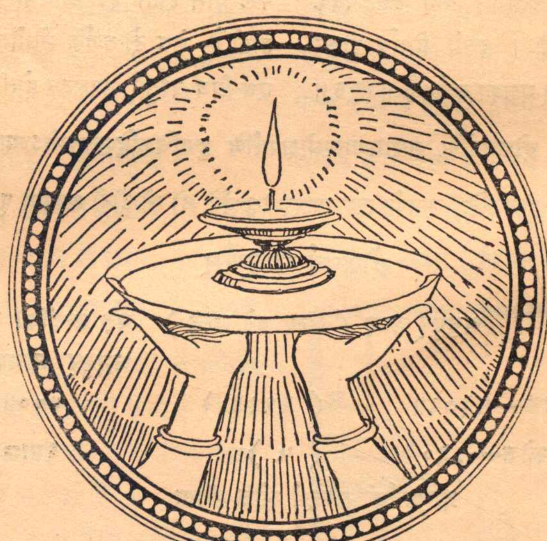
द्रोणपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप् छन्द	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक	९३७९॥	(२९१॥)	४००॥।-	९७८०।-
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक	१३०	(५)	६॥।=	१३६॥।=
द्रोणपर्वकी सम्पूर्ण श्लोक-संख्या				९९१७

श्रवण-महिमा

स्वधीते यत् फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद् यशः ॥ १ ॥
य इदं पठते पर्व शृणुयाद् वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥ २ ॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान् पौत्रान् नित्यमिष्टांस्तथैव॥ ३ ॥





कर्ण और अर्जुनका युद्ध

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

कर्णपर्व

प्रथमोऽध्यायः

कर्णवधका संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर जनमेजयका वैशम्पायनजीसे उसे विस्तारपूर्वक कहनेका अनुरोध

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर दुर्योधन आदि राजाओंका मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया था। वे सब-के-सब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास आये ॥ १ ॥

ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम्॥ २॥

मोहवश उनका बल और उत्साह नष्ट-सा हो गया था। वे द्रोणाचार्यके लिये बारंबार चिन्ता करते हुए शोकसे व्याकुल हो कृपीकुमार अश्वत्थामाके पास उसके चारों ओर बैठ गये ॥ २ ॥

ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसम्मितैः।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ३॥

वे शास्त्रानुकूल युक्तियोंद्वारा दो घड़ीतक अश्वत्थामाको सान्त्वना देते रहे। फिर रात हो जानेपर समस्त भूपाल अपने-अपने शिबिरमें चले गये ॥ ३ ॥

ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन् सुखम्।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः॥ ४॥

कुरुनन्दन! शिबिरोंमें भी वे भूपगण सुख न पा सके। संग्राममें जो घोर विनाश हुआ था, उसका चिन्तन करते हुए दुःख और शोकमें डूब गये ॥ ४ ॥

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः।
दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः॥ ५॥
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान् पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ६॥

विशेषतः सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन, दुःशासन तथा महाबली सुबलपुत्र शकुनि—ये चारों उस रातको दुर्योधनके ही शिबिरमें रहे और महात्मा पाण्डवोंको जो बड़े-बड़े क्लेश दिये गये थे, उनका चिन्तन करते रहे ॥ ५-६ ॥

यत् तद् द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभाम्।
तत् स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः॥ ७॥

द्यूत-क्रीडाके समय जो द्रुपदकुमारी कृष्णाको सभामें लाया गया और उसे सर्वथा क्लेश पहुँचाया गया, उसका बारंबार स्मरण करके वे शोकमग्न हो जाते और मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठते थे ॥ ७ ॥

तथा तु संचिन्तयतां तान् क्लेशान् द्यूतकारितान्।
दुःखेन क्षणदा राजन् जगामाब्दशतोपमा॥ ८॥

राजन्! इस प्रकार पाण्डवोंको जूएके द्वारा प्राप्त कराये गये उन क्लेशोंका चिन्तन करते-करते उनकी वह रात सौ वर्षोंके समान बड़े कष्टसे व्यतीत हुई ॥ ८ ॥

ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल आनेपर दैवके अधीन हुए समस्त कौरवोंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार शौच, स्नान, संध्या-वन्दन आदि आवश्यक कार्य पूर्ण किया ॥ ९ ॥

ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः॥ १०॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान् दधिपात्रघृताक्षतैः॥ ११॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः॥ १२॥

भरतनन्दन ! प्रतिदिनके आवश्यक कार्य सम्पन्न करके आश्वस्त हो उन्होंने सैनिकोंको कवच आदि धारण करके तैयार हो जानेकी आज्ञा दी तथा कौतुक एवं माङ्गलिक कृत्य पूर्ण करके कर्णको सेनापति बनाकर वे सब-के-सब दही, पात्र, घृत, अक्षत, गौ, अश्व, कण्ठभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करके सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा विजयसूचक आशीर्वादोंसे अभिवन्दित हो युद्धके लिये निकले ॥१०-१२॥

तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार पाण्डव भी पूर्वाह्नमें किये जानेवाले नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करके तुरंत ही शिबिरसे बाहर निकले। उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें भयंकर रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १४ ॥

तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥

राजन् ! कर्णके सेनापति हो जानेपर उन कौरव-पाण्डव सेनाओंमें दो दिनोंतक अद्भुत युद्ध हुआ ॥ १५ ॥

ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥

उस युद्धमें शत्रुओंका महान् संहार करके कर्ण धृतराष्ट्र-पुत्रोंके देखते-देखते अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १६ ॥

ततस्तु संजयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद् वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

तदनन्तर संजयने तुरंत हस्तिनापुरमें जाकर कुरुक्षेत्रमें जो घटना घटित हुई थी, वह सब धृतराष्ट्रसे कह सुनायी ॥

जनमेजय उवाच

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम् ।
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मन् ! गङ्गानन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणको मारा गया सुनकर ही बूढ़े राजा अम्बिका-नन्दन धृतराष्ट्रको बड़ी भारी वेदना हुई थी ॥ १८ ॥

स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! फिर दुर्योधनके हितैषी कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हो उन्होंने अपने प्राण कैसे धारण किये ? ॥ १९ ॥

यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः ।
तस्मिन् हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥

कुरुवंशी राजाने जिसके ऊपर अपने पुत्रोंकी विजयकी आशा बाँध रक्खी थी, उसके मारे जानेपर उन्होंने कैसे प्राण धारण किये ? ॥ २० ॥

दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥

मैं समझता हूँ कि बड़े भारी संकटमें पड़ जानेपर भी मनुष्योंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है, तभी तो कर्णवधका वृत्तान्त सुनकर भी राजा धृतराष्ट्रने इस जीवनका त्याग नहीं किया ॥ २१ ॥

तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन् बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥
तथैव चान्यान् सुहृदः पुत्रान् पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात् प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥

ब्रह्मन् ! उन्होंने वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म, बाह्लीक, द्रोण, सोमदत्त तथा भूरिश्रवाको और अन्यान्य सुहृदों, पुत्रों एवं पौत्रोंको भी शत्रुओंद्वारा मारा गया सुनकर भी जो अपने प्राण नहीं छोड़े, उससे मुझे यही मालूम होता है कि मनुष्यके लिये स्वेच्छापूर्वक मरना बहुत कठिन है ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

महामुने ! यह सारा वृत्तान्त आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहें । मैं अपने पूर्वजोंका महान् चरित्र सुनकर तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें जनमेजयवाक्यनामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

वैशम्पायन उवाच

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! कर्णके मारे जानेपर गवल्गणपुत्र संजय अत्यन्त दुखी हो वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा उसी रातमें हस्तिनापुर जा पहुँचे ॥

स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २ ॥

उस समय उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । हस्तिनापुरमें पहुँचकर वे धृतराष्ट्रके उस महलमें गये, जहाँ रहनेवाले बन्धु-बान्धव प्रायः नष्ट हो चुके थे ॥

स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ ३ ॥

मोहवश जिनके बल और उत्साह नष्ट हो गये थे, उन राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करके संजयने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ प्रणाम किया ॥ ३ ॥

सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ ४ ॥

राजा धृतराष्ट्रका यथायोग्य सम्मान करके संजयने 'हाय ! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहकर फिर इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ किया—॥ ४ ॥

संजयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यति ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! मैं संजय हूँ । आप सुखसे तो हैं न ? अपने ही अपराधोंसे विपत्तिमें पड़कर आज आप मोहित तो नहीं हो रहे हैं ? ॥ ५ ॥

हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ६ ॥

'विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और श्रीकृष्णके कहे हुए हितकारक वचन आपने स्वीकार नहीं किये थे । अब उन वचनोंको बारंबार याद करके क्या आपको व्यथा नहीं होती है ? ॥ ६ ॥

रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ७ ॥

'सभामें परशुराम, नारद और महर्षि कण्व आदिकी कही हुई हितकर बातें आपने नहीं मानी थीं । अब उन्हें स्मरण करके क्या आपके मनमें कष्ट नहीं हो रहा है ? ॥७॥

सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान् भीष्मद्रोणमुखान् परैः ।
निहतान् युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ८ ॥

'आपके हितमें लगे हुए भीष्म, द्रोण आदि जो सुहृद् युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये हैं, उन्हें याद करके क्या आप व्यथाका अनुभव नहीं करते हैं ?' ॥ ८ ॥

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

हाथ जोड़कर ऐसी बातें कहनेवाले सूतपुत्र संजयसे दुःखातुर राजा धृतराष्ट्रने लंबी साँस खींचकर इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति संजय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर गङ्गानन्दन भीष्म तथा महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेसे मेरे मनमें बड़ी भारी व्यथा हो रही है ॥ १० ॥

यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥ ११ ॥
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ १२ ॥

जो तेजस्वी भीष्म साक्षात् वसुके अवतार थे और युद्धमें प्रतिदिन दस हजार कवचधारी रथियोंका संहार करते थे । उन्हींको यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनसे सुरक्षित द्रुपदकुमार शिखण्डीने मार डाला है, यह सुनकर मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है ॥ ११-१२ ॥

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महात्मने ।
साक्षाद् रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ १३ ॥
यस्य प्रसादात् कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं सम्प्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ १४ ॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसंधं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १५ ॥

जिन महात्माको भृगुनन्दन परशुरामने उत्तम अस्त्र प्रदान किया था, जिन्हें बाल्यावस्थामें धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये साक्षात् परशुरामजीने अपना शिष्य बनाया था, जिनकी कृपासे कुन्तीके पुत्र राजकुमार पाण्डव महारथी हो गये तथा अन्यान्य नरेशोंने भी महारथी कहलानेकी योग्यता प्राप्त की थी, उन्हीं सत्य-प्रतिज्ञ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ १३–१५ ॥

ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥ १६ ॥

संसारमें चार[1] प्रकारके अस्त्रोंकी विद्यामें जिनकी

[1] १. अस्त्रोंके चार भेद इस प्रकार हैं—मुक्त, अमुक्त, यन्त्र-मुक्त तथा मुक्तामुक्त । जो धनुष या हाथसे शत्रुपर फेंके जाते हैं, वे मुक्त कहलाते हैं, जैसे बाण आदि । जिन्हें हाथमें लिये हुए ही प्रहार किया जाता है, उन अस्त्रोंको अमुक्त कहते हैं, जैसे तलवार आदि । जो यन्त्रसे फेंके जाते हैं, वे यन्त्रमुक्त कहलाते हैं, जैसे गोला आदि । तथा जिस अस्त्रको छोड़कर पुनः उसका उपसंहार किया जाता है, अर्थात् जो शत्रुपर चोट करके पुनः प्रयोग करनेवालेके हाथमें आ जाते हैं, वे मुक्तामुक्त कहलाते हैं, जैसे श्रीकृष्णका सुदर्शन चक्र और इन्द्रका वज्र आदि ।

समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है, उन्हीं द्रोणाचार्य और भीष्मको मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हो रहा है ॥ १६ ॥

त्रैलोक्ये यस्य चास्त्रेषु न पुमान् विद्यते समः ।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ १७ ॥

तीनों लोकोंमें दूसरा कोई पुरुष जिनके समान अस्त्रवेत्ता नहीं है, उन द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १७ ॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना ।
धनंजयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ॥ १८ ॥
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ॥ १९ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनने पराक्रम करके संशप्तकोंकी सारी सेनाको यमलोक पहुँचा दिया और बुद्धिमान् द्रोणकुमार अश्वत्थामाका नारायणास्त्र भी जब शान्त हो गया, उस समय अपनी सेनाओंमें भगदड़ मच जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १८-१९ ॥

विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे ।
प्लवमानान् हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ॥ २० ॥

मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे सारे सैनिक भाग चले होंगे, शोकके समुद्रमें डूब गये होंगे, उनकी दशा समुद्रमें नाव मारी जानेपर वहाँ हाथोंसे तैरनेवाले मनुष्यों-के समान संकटपूर्ण हो गयी होगी ॥ २० ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः ।
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ २१ ॥
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथान्येषां च संजय ।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत् कथम् ॥ २२ ॥

संजय ! जब सारी सेनाएँ भाग गयीं, तब दुर्योधन, कर्ण, भोजवंशी कृतवर्मा, मद्रराज शल्य, द्रोणकुमार अश्वत्थामा, कृपाचार्य, मरनेसे बचे हुए मेरे पुत्र तथा अन्य लोगोंके मुखकी कान्ति कैसी हो गयी थी ? ॥ २१-२२ ॥

एतत् सर्वं यथावृत्तं तथा गावल्गणे मम ।
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम् ॥ २३ ॥

गवल्गणकुमार ! मेरे तथा पाण्डुके पुत्रोंके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे मुझे कह सुनाओ ॥ २३ ॥

संजय उवाच

तवापराधाद् यद् वृत्तं कौरवेयेषु मारिष ।
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः॥ २४ ॥

संजयने कहा—माननीय नरेश ! आपके अपराधसे कौरवोंपर जो कुछ बीता है, उसे सुनकर दुःख न मानियेगा; क्योंकि दैववश जो दुःख प्राप्त होता है, उससे विद्वान् पुरुष व्यथित नहीं होते हैं ॥ २४ ॥

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति ।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद् व्यथते बुधः॥ २५ ॥

प्रारब्धवश मनुष्यको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो भी जाती है और नहीं भी होती है। अतः उसकी प्राप्ति हो या न हो, किसी भी दशामें कोई ज्ञानी पुरुष (हर्ष या) कष्टका अनुभव नहीं करता है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न व्यथाभ्यधिका काचिद् विद्यते मम संजय ।
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मुझे इससे अधिक कोई व्यथा नहीं होगी, मैं पहलेसे ही ऐसा मानता हूँ कि यह अवश्यंभावी दैवका विधान है; अतः तुम इच्छानुसार सारा वृत्तान्त कहो ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्र-संजयसंवादविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

दुर्योधनके द्वारा सेनाको आश्वासन देना तथा सेनापति कर्णके युद्ध और वधका संक्षिप्त वृत्तान्त

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः ।
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर आपके महारथी पुत्र विषादग्रस्त और अचेत-से हो गये । उनके मुखपर अस्वस्थताका चिह्न स्पष्ट दिखायी देने लगा ॥ १ ॥

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशाम्पते ।
अप्रेक्षमाणाः शोकार्ता नाभ्यभाषन् परस्परम् ॥ २ ॥

प्रजानाथ ! सभी शस्त्रधारी सैनिक मुँह नीचे किये शोकसे व्याकुल हो गये। वे एक दूसरेकी ओर न तो देखते थे और न बात ही करते थे ॥ २ ॥

तान् दृष्ट्वा व्यथिताकारान् सैन्यानि तव भारत ।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! उन सबको विषादमें डूबा हुआ देख

आपकी अनेक सेनाएँ भी दुःखसे संत्रस्त हो ऊपरकी ओर ही दृष्टिपात करने लगीं ॥ ३ ॥

शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! युद्धमें द्रोणाचार्यको मारा गया देख खूनसे रँगे हुए इन सैनिकोंके शस्त्र हाथोंसे छूटकर गिर पड़े ॥ ४ ॥

तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥ ५ ॥

भरतवंशी महाराज ! कमर आदिमें बँधकर लटकते हुए वे अस्त्र-शस्त्र आकाशसे टूटते हुए नक्षत्रोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ५ ॥

तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार आपकी सेनाको प्राणहीन-सी निश्चल खड़ी देख राजा दुर्योधनने कहा—॥ ६ ॥

भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥ ७ ॥

'वीरो ! आपलोगोंके बाहुबलका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा है और यह युद्ध आरम्भ किया है ॥ ७ ॥

तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत् किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥

'परंतु द्रोणाचार्यके मारे जानेपर यह सारी सेना विषादमें डूबी हुई-सी दिखायी देती है । समरभूमिमें युद्ध करनेवाले प्रायः सभी योद्धा शत्रुओंके हाथसे मारे जाते हैं । रणभूमिमें जूझनेवाले वीरको कभी विजय भी प्राप्त होती है और कभी उसका वध भी हो जाता है । इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? अतः आपलोग सब ओर मुँह करके उत्साहपूर्वक युद्ध करें ॥ ८–९ ॥

पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥

'देखिये, महामना, महाधनुर्धर और महाबली वैकर्तन कर्ण अपने दिव्यास्त्रोंके साथ किस प्रकार युद्धमें विचर रहा है ? ॥ १० ॥

यस्य वै युधि संत्रासात् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
निवर्तते सदा मन्दः सिंहात् क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥

'जिसके भयसे वह कुन्तीका मूर्ख पुत्र अर्जुन सदा उसी प्रकार मुँह मोड़ लेता है, जैसे सिंहके सामनेसे क्षुद्र मृग भाग जाता है ॥ ११ ॥

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥

'जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलवाले महाबली भीमसेनको मानव-युद्धके द्वारा ही वैसी दुरवस्थामें डाल दिया था ॥ १२ ॥

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥ १३ ॥

'जिसने रणभूमिमें भयंकर गर्जना करनेवाले दिव्यास्त्रवेत्ता, शूरवीर मायावी घटोत्कचको अपनी अमोघ शक्तिसे मार डाला था ॥ १३ ॥

तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसंधस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥

'जिसके पराक्रमको रोकना अत्यन्त कठिन है, उस सत्यप्रतिज्ञ बुद्धिमान् कर्णके अक्षय बाहुबलको आज आप लोग समराङ्गणमें देखेंगे ॥ १४ ॥

द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव ॥ १५ ॥

'आज पाण्डव भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शक्तिशाली द्रोणपुत्र तथा राधापुत्र दोनोंके पराक्रमको देखें ॥

सर्वे एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः ॥ १६ ॥
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ।

'आप सभी योद्धाओंमेंसे प्रत्येक वीर रणभूमिमें सेनासहित पाण्डवोंको मार डालनेकी शक्ति रखता है । फिर जब आपलोग संगठित होकर युद्ध करें तो क्या नहीं कर सकते हैं ? आप पराक्रमी और अस्त्रविद्याके विद्वान् हैं; अतः आज एक दूसरेको अपना-अपना पुरुषार्थ दिखावें' ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा ।
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—निष्पाप नरेश ! ऐसा कहकर आपके महापराक्रमी पुत्र दुर्योधनने अपने भाइयोंके साथ मिलकर कर्णको सेनापति बनाया ॥ १७ ॥

सैनापत्यमथावाप्य कर्णो राजन् महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥ १८ ॥

राजन् ! सेनापतिका पद पाकर महारथी कर्ण उच्चस्वरसे सिंहनाद करके रणोन्मत्त होकर युद्ध करने लगा ॥

स सृंजयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत् ॥ १९ ॥

मान्यवर ! उसने समस्त सृंजयों, पाञ्चालों, केकयों और विदेहोंका महान् संहार किया ॥ १९ ॥

तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्छरासनात् ।

अग्रे पुङ्खे च संसक्ता यथा भ्रमरपङ्क्तयः ॥ २० ॥

उसके धनुषसे सैकड़ों बाणधाराएँ, जो अग्रभाग और पुच्छभागमें परस्पर सटी हुई थीं, भ्रमरपंक्तियोंके समान प्रकट होने लगीं ॥ २० ॥

स पीडयित्वा पञ्चालान् पाण्डवांश्च तरस्विनः।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥ २१ ॥

वह पाञ्चालों और वेगशाली पाण्डवोंको पीड़ित करके सहस्रों योद्धाओंको मारकर अन्तमें अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजयवाक्यनामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका शोक और समस्त स्त्रियोंकी व्याकुलता

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
शोकस्यान्तमपश्यन् वै हतं मेने सुयोधनम् ॥ १ ॥
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! यह सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने यह मान लिया कि अब दुर्योधन भी मारा ही गया। उन्हें अपने शोकका कहीं अन्त नहीं दिखायी देता था। वे अचेत हुए हाथीके समान व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ॥ २ ॥
आर्तनादो महानासीत् स्त्रीणां भरतसत्तम।

भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ धृतराष्ट्रके व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर जानेसे महलमें स्त्रियोंका महान् आर्तनाद गूँज उठा ॥ २½ ॥

स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥ ३ ॥
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः।
रुरुदुर्दुःखशोकार्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ४ ॥

रोदनका वह शब्द वहाँके समूचे भूमण्डलमें व्याप्त हो गया। भरतकुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त घोर शोक-समुद्रमें डूब गयीं, उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया और वे दुःख-शोकसे कातर हो फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ३-४ ॥

राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ ५ ॥

भरतभूषण ! गान्धारी देवी राजा धृतराष्ट्रके समीप आकर बेहोश हो भूमिपर गिर गयीं। अन्तःपुरकी सारी स्त्रियोंकी यही दशा हुई ॥ ५ ॥

ततस्ताः संजयो राजन् समाश्वासयदातुराः।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ६ ॥

राजन् ! तब संजयने नेत्रोंसे आँसूओंकी धारा बहाती हुई राजमहलकी उन बहुसंख्यक महिलाओंको, जो आतुर एवं मूर्छित हो रही थीं, धीरे-धीरे धीरज बँधाया ॥ ६ ॥

समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ७ ॥

आश्वासन पाकर भी वे स्त्रियाँ चारों ओरसे वायुद्वारा हिलाये जाते हुए केलेके वृक्षोंकी भाँति बारंबार काँप रही थीं ॥

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् विदुरने भी ऐश्वर्यशाली कुरुवंशी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रके ऊपर जल छिड़ककर उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा की ॥ ८ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः।
उन्मत्त इव राजेन्द्र स्थितस्तूष्णीं विशाम्पते ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! प्रजानाथ ! धीरे-धीरे होशमें आनेपर धृतराष्ट्र अपने घरकी स्त्रियोंको वहाँ उपस्थित जान पागलके समान चुपचाप बैठे रह गये ॥ ९ ॥

ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वस्य च पुनः पुनः।
स्वान् पुत्रान् गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥ १० ॥

तदनन्तर दीर्घकालतक चिन्ता करनेके पश्चात् वे बारंबार लंबी साँस खींचते हुए अपने पुत्रोंकी निन्दा और पाण्डवोंकी अधिक प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥

गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

उन्होंने अपनी और सुबलपुत्र शकुनिकी बुद्धिको भी कोसा। फिर बहुत देरतक चिन्तामग्न रहनेके पश्चात् वे बारंबार काँपने लगे ॥ ११ ॥

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत संजयम् ॥ १२ ॥

फिर मनको किसी तरह स्थिर करके राजाने धैर्य धारण किया और गवल्गणके पुत्र सारथि संजयसे इस प्रकार पूछा—॥

यत् त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं संजय तन्मया।
कच्चिद् दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥ १३ ॥
जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः।
ब्रूहि संजय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १४ ॥

'संजय ! तुमने जो बात कही है, वह तो मैंने सुन ली, किंतु एक बात बताओ। निरन्तर विजयकी इच्छा रखनेवाला मेरा पुत्र दुर्योधन अपनी विजयसे निराश हो कहीं यमराजके लोकमें तो नहीं चला गया ? संजय ! तुम इस कही हुई बातको भी फिर यथार्थरूपसे कह सुनाओ' ॥ १३-१४ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्तनो राजन् सह पुत्रैर्महारथः ॥ १५ ॥
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ।

जनमेजय ! उनके ऐसा कहनेपर सारथि संजय राजासे इस प्रकार बोला—'राजन् ! महारथी वैकर्तन कर्ण अपने पुत्रों तथा शरीरका मोह छोड़कर युद्ध करनेवाले महाधनुर्धर सूतजातीय भाइयोंके साथ मार डाला गया ॥ १५½ ॥

दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद् भीमसेनेन संयुगे ॥ १६॥

'साथ ही यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनने रणभूमिमें दुःशासनको मार दिया और क्रोधपूर्वक उसका खून भी पी लिया' ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका शोकनामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत् संजयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! उपर्युक्त समाचार सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया । वे अपने सारथि संजयसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥

'तात ! अपने अल्पायु पुत्रके अन्यायसे वैकर्तन कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर जो शोक उमड़ आया है, वह मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालता है ॥ २ ॥

तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः॥ ३ ॥

'मैं इस अपार दुःखसे पार पाना चाहता हूँ। तुम मेरे इस संदेहका निवारण करो कि कौरवों तथा सृंजयोंमेंसे कौन-कौन जीवित हैं और कौन-कौन मर गये हैं ?' ॥ ३ ॥

संजय उवाच

हतः शान्तनवो राजन् दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! दुर्जय एवं प्रतापी वीर शान्तनुनन्दन भीष्म दस दिनोंमें पाण्डवदलके दस करोड़ योद्धाओंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ४ ॥

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद् रुक्मरथो हतः ॥ ५ ॥

इसी प्रकार सुवर्णमय रथवाले दुर्धर्ष वीर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य भी पाञ्चालरथियोंके समुदायोंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ५ ॥

हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ ६ ॥

भीष्म और महात्मा द्रोणके मारनेसे जो पाण्डवसेना बच गयी थी, उसके आधे भागका विनाश करके वैकर्तन कर्ण मारा गया है ॥ ६ ॥

विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥ ७ ॥

महाराज ! महाबली राजकुमार विविंशति रणभूमिमें सैकड़ों आनर्तदेशीय योद्धाओंको मारकर मरा है ॥ ७ ॥

तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान्॥ ८ ॥
घोररूपान् परिक्लेशान् दुर्योधनकृतान् बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार आपका शूरवीर पुत्र विकर्ण क्षत्रियोचित व्रतका स्मरण करके वाहनों और आयुधोंके नष्ट हो जानेपर भी शत्रुओंके सामने डटा हुआ था, परंतु दुर्योधनके दिये हुए बहुत-से भयंकर क्लेशों और अपनी प्रतिज्ञाको याद करके भीमसेनने उसे मार गिराया ॥ ८-९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥

अवन्तीदेशके महारथी राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी दुष्कर कर्म करके यमलोकको चले गये ॥ १० ॥

सिंधुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानि ह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥ ११ ॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥

राजन् ! जिस वीरके शासनमें सिन्धु सौवीर आदि दस राष्ट्र थे, जो सदा आपकी आज्ञाके अधीन रहा करता था,

उस महापराक्रमी जयद्रथको अर्जुनने आपकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंको हराकर तीखे बाणोंसे मार डाला ॥ ११-१२ ॥

तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥

दुर्योधनके रणदुर्मद वेगशाली पुत्र लक्ष्मणको, जो सदा पिताकी आज्ञाके अधीन रहता था, सुभद्राकुमारने मार गिराया ॥

तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४ ॥

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाला रणोन्मत्त शूर दुःशासनकुमार द्रौपदीके पुत्रसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १४ ॥

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १६ ॥

जो सागर-तटवर्ती किरातोंके स्वामी तथा देवराज इन्द्रके अत्यन्त आदरणीय प्रिय सखा थे, सदा क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले वे धर्मात्मा राजा भगदत्त भी अर्जुनके साथ पराक्रम दिखाकर यमराजके लोकमें चले गये ॥ १५-१६ ॥

तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥

राजन् ! कौरववंशी महायशस्वी शूरवीर भूरिश्रवा, जो अपने अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर चुके थे, युद्धस्थलमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ १७ ॥

श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरंधरः ।
चरन्नभीतवत् संख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥ १८ ॥

अम्बष्ठदेशके राजा क्षत्रिय-धुरंधर श्रुतायु भी, जो समराङ्गणमें निर्भय-से विचरते थे, सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ १८ ॥

तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

महाराज ! जो अस्त्र-विद्याका विद्वान् तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाला था, सदा अमर्षमें भरे रहनेवाले आपके उस पुत्र दुःशासनको भीमसेनने मार गिराया ॥ १९ ॥

यस्य राजन् गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥

राजन् ! जिसके अधिकारमें कई हजार हाथियोंकी अद्भुत सेना थी, वह सुदक्षिण भी संग्राममें सव्यसाची अर्जुनके बाणोंका निशाना बन गया ॥ २० ॥

कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान् परान् ।
सौभद्रेण हि विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥

कोशलनरेश शत्रुपक्षके अत्यन्त सम्मानित वीरोंका वध करके सुभद्राकुमार अभिमन्युके साथ पराक्रम दिखाते हुए यमलोकके पथिक बन गये ॥ २१ ॥

बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान् सौभद्रेण निपातितः ॥ २२ ॥

जो महारथी भीमसेनके साथ भी कई बार युद्ध कर चुका था, ढाल और तलवार लेकर शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला वह मद्रराजका शूरवीर तेजस्वी पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार डाला गया ॥ २२ ॥

समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥ २३ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २४ ॥

जो समरभूमिमें कर्णके समान ही पराक्रमी था, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, सुदृढ़ बल-विक्रमसे सम्पन्न और महान् तेजस्वी था, वह कर्णपुत्र वृषसेन अभिमन्युका वध सुनकर की हुई अपनी प्रतिज्ञाको याद रखनेवाले अर्जुनके साथ भिड़कर कर्णके देखते-देखते उनके द्वारा यमलोक पहुँचा दिया गया ॥ २३-२४ ॥

नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २५ ॥

जो पाण्डवोंके साथ सदा वैर बाँधे रखता था, उस राजा श्रुतायुको कुन्तीकुमार अर्जुनने उसकी शत्रुताका स्मरण कराकर मार डाला ॥ २५ ॥

शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन् भ्राता मातुलजो युधि ॥ २६ ॥

माननीय नरेश ! शल्यका पराक्रमी पुत्र रुक्मरथ, जो सहदेवका ममेरा भाई था, युद्धमें सहदेवके ही हाथसे मारा गया ॥ २६ ॥

राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २७ ॥

बूढ़े राजा भगीरथ और केकयनरेश बृहत्क्षत्र ये दोनों अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी वीर थे, जो युद्धमें पराक्रम दिखाते हुए मारे गये ॥ २७ ॥

भगदत्तसुतो राजन् कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २८ ॥

राजन् ! भगदत्तके विद्वान् और महाबली पुत्रको युद्धमें बाजकी तरह झपटनेवाले नकुलने मार गिराया ॥ २८ ॥

पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥

आपके पितामह बाह्लीक भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। वे भीमसेनके हाथसे बाह्लीक योद्धाओंसहित मारे गये ॥

जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासंधिर्महाबलः ।
मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥ ३० ॥

राजन्! जरासंधके महाबलवान् पुत्र मगधवासी जयत्सेनको महामना सुभद्राकुमारने युद्धमें मार डाला ॥ ३० ॥

पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन् दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३१ ॥

नरेश्वर! आपके पुत्र दुर्मुख और महारथी दुःसह ये दोनों अपनेको शूरवीर माननेवाले योद्धा थे, जो भीमसेनकी गदासे मारे गये ॥ ३१ ॥

दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय दुष्कर कर्म करके यमराजके लोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३२ ॥

उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ ।
कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥

युद्धदुर्मद कलिङ्ग और वृषक ये दोनों भाई भी दुष्कर पराक्रम प्रकट करके यमलोकके अतिथि हो चुके हैं ॥ ३३ ॥

सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३४ ॥

आपके मन्त्री परम पराक्रमी शूरवीर वृषवर्मा भीमसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक पहुँचा दिये गये ॥ ३४ ॥

तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् ।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार दस हजार हाथियोंके समान बलशाली महान् राजा पौरवको समराङ्गणमें पाण्डुकुमार सव्यसाची अर्जुनने मार डाला ॥ ३५ ॥

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३६ ॥

महाराज! प्रहारकुशल दो हजार वसातिलोग और पराक्रमी शूरसेन—ये सबके सब युद्धमें मार डाले गये हैं ॥३६॥

अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥ ३७ ॥

रणमें उन्मत्त होकर प्रहार करनेवाले कवचधारी अभीषाह और उदार रथी शिवि—ये सब कलिङ्गराजसहित मारे गये हैं ॥ ३७ ॥

गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥ ३८ ॥

जो सदा गोकुलमें पले हैं, युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर लड़ते हैं और जिन्होंने कभी युद्धमें पीठ दिखाना नहीं सीखा है, वे गोपाल भी अर्जुनके हाथसे मारे जा चुके हैं ॥

श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३९ ॥

संशप्तकगणोंकी कई हजार श्रेणियाँ थीं। वे सभी अर्जुनका सामना करके यमराजके लोकमें चले गये ॥ ३९ ॥

स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ४० ॥

महाराज! आपके दोनों साले राजा वृषक और अचल, जो आपके लिये अत्यन्त पराक्रम प्रकट करते थे, अर्जुनके द्वारा मार डाले गये ॥ ४० ॥

उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन पातितः ॥ ४१ ॥

जो महान् धनुर्धर तथा नाम और कर्मसे भी उग्रकर्मा थे, उन महाबाहु शाल्वराजको भीमसेनने मार गिराया ॥४१॥

ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ४२ ॥

महाराज! मित्रके लिये रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाले ओघवान् और बृहन्त—ये दोनों एक साथ यमलोकको प्रस्थान कर चुके हैं ॥ ४२ ॥

तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशाम्पते ।
निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ! नरेश्वर! इसी प्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ क्षेमधूर्तिको भी युद्धस्थलमें भीमसेनने अपनी गदासे मार डाला ॥४३॥

तथा राजन् महेष्वासो जलसंधो महाबलः ।
सुमहत् कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥ ४४ ॥

राजन्! महाधनुर्धर महाबली जलसंध रणभूमिमें शत्रुसेनाका महान् संहार करके अन्तमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ ४४ ॥

अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४५ ॥

घटोत्कचने पराक्रम करके गर्दभयुक्त सुन्दर रथवाले राक्षसराज अलम्बुषको यमलोक पहुँचा दिया है ॥ ४५ ॥

राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥ ४६ ॥

सूतपुत्र राधानन्दन कर्ण, उसके महारथी भाई तथा समस्त केकय भी सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥४६॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४७ ॥
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४८ ॥
पत्तीनां निहताः संघा हयानां प्रयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ४९ ॥

मालव, मद्रक, भयंकर कर्म करनेवाले द्राविड, यौधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, उशीनर, मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रीपुत्र, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य और दाक्षिणात्य, पैदल-समूह, दस लाख घोड़े, रथोंके समूह और बड़े-बड़े गजराज अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं ॥ ४७–४९ ॥

सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः।
कालेन महता यत्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः ॥ ५० ॥
ते हताः समरे राजन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा।

राजन्! पालननिपुण पुरुषोंने जिनका दीर्घकालसे पालन-पोषण किया था, जो युद्धमें सदा सावधान रहनेवाले शूरवीर थे, वे सभी अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके हाथसे ध्वज, आयुध, कवच, वस्त्र और आभूषणोंसहित समराङ्गणमें मारे गये ॥ ५०½ ॥

अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५१ ॥
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे।
हताः सहस्रशो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५२ ॥

महाराज! एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले असीम बलशाली अन्यान्य योद्धा भी मौतके घाट उतर चुके हैं। राजन्! ये तथा और भी बहुत-से नरेश रणभूमिमें अपने दलबलके साथ सहस्रोंकी संख्यामें मारे गये हैं। आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने बता दिया ॥ ५१-५२ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥ ५३ ॥
यथा कृष्णेन नरको मुरुश्च नरकारिणा।
कार्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ॥ ५४ ॥
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः।
रणे कृत्वा महद् युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ ५५ ॥
यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः।
तथार्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५६ ॥
सामात्यबान्धवो राजन् कर्णः प्रहरतां वरः।

राजन्! इस प्रकार कर्ण और अर्जुनके संग्राममें यह भारी संहार हुआ है। जैसे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको, श्रीरामचन्द्र-जीने रावणको, नरकशत्रु श्रीकृष्णने नरक और मुरुको तथा भृगुवंशी परशुरामने तीनों लोकोंको मोहित करनेवाला अत्यन्त घोर युद्ध करके समराङ्गणमें रणदुर्मद शूरवीर कृतवीर्यकुमार अर्जुनको उसके भाई-बन्धुओंसहित मार डाला था, जैसे स्कन्दने महिषासुरका और रुद्रने अन्धकासुरका संहार किया था, उसी प्रकार अर्जुनने योद्धाओंमें श्रेष्ठ युद्धदुर्मद कर्णको द्वैरथयुद्धमें उसके मन्त्री और बन्धुओंसहित मार डाला ॥ ५३–५६½ ॥

जयाशा धार्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥ ५७ ॥
तीर्णस्तत् पाण्डवो राजन् यत् पुरा नावबुध्यसे।
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकाङ्क्षिभिः ॥ ५८ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम्।

जिससे आपके पुत्रोंने विजयकी आशा लगा रक्खी थी, जो वैरका मुख बना हुआ था, उससे पाण्डुपुत्र अर्जुन पार हो गये। महाराज! पहले आपने हितैषी बन्धुओंके कहनेपर भी जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया, वही यह महान् विनाशकारी संकट प्राप्त हुआ है ॥ ५७-५८½ ॥

पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन् हितैषिणा ॥ ५९ ॥
अहितान्येव चीर्णानि तेषां तत् फलमागतम् ॥ ६० ॥

राजन्! आपने राज्यकी कामना रखनेवाले अपने पुत्रोंके हितकी इच्छा रखते हुए सदा उन पाण्डवोंके अहित ही किये हैं; आपके उन्हीं कर्मोंका यह फल प्राप्त हुआ है ॥५९-६०॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

कौरवोंद्वारा मारे गये प्रधान-प्रधान पाण्डव-पक्षके वीरोंका परिचय

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः।
हतांश्च पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात संजय! तुमने युद्धमें पाण्डवों-द्वारा मारे गये मेरे पक्षके वीरोंके नाम बताये हैं। अब मेरे योद्धाओंद्वारा मारे गये पाण्डव-योद्धाओंका परिचय दो ॥ १ ॥

संजय उवाच

कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः।
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन्! अत्यन्त धीर, महान् बलवान् और पराक्रमी जो कुन्तिभोजदेशके योद्धा थे, उन्हें गङ्गा-नन्दन भीष्मने मन्त्रियों तथा सगे-सम्बन्धियोंसहित मार गिराया ॥ २ ॥

नारायणा बलभद्राः शूराश्च शतशोऽपरे।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंमें अनुराग रखनेवाले जो नारायण और बलभद्र नामवाले सैकड़ों शूरवीर थे, उन्हें भी वीरवर भीष्मने युद्धमें धराशायी कर दिया ॥ ३ ॥

समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित् सत्यसंधेन द्रोणेन निहतो युधि ॥ ४ ॥

सत्यजित् संग्राममें किरीटधारी अर्जुनके समान बल और पराक्रमसे सम्पन्न था, जिसे युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ द्रोणाचार्यने मार डाला ॥ ४ ॥

पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन सह संगम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥

युद्धकी कलामें कुशल सम्पूर्ण पाञ्चाल महाधनुर्धर द्रोणाचार्यसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ५ ॥

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६ ॥

मित्रके लिये पराक्रम करनेवाले बूढ़े राजा विराट और द्रुपद अपने पुत्रोंसहित द्रोणाचार्यके द्वारा रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ ६ ॥

यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७ ॥
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥ ८ ॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।

जो बाल्यावस्थामें ही दुर्धर्ष वीर था और सव्यसाची अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण अथवा बलदेवजीके समान समझा जाता था तथा जो महान् रथयुद्धमें विशेष कुशल था, वह अभिमन्यु शत्रुओंका संहार करके छः बड़े-बड़े महारथियोंद्वारा, जिनका अर्जुनपर वश नहीं चलता था, चारों ओरसे घेरकर मार डाला गया ॥ ७-८½ ॥

कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान् रणे ।

महाराज ! क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाला वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु रथहीन कर दिया गया था, उस अवस्थामें दुःशासनके पुत्रने उसे रणभूमिमें मारा था ॥ ९½ ॥

सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान् मित्रहेतोः पराक्रमन् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ॥ ११ ॥
सुमहत् कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।

शत्रुहन्ता श्रीमान् अम्बष्ठपुत्र अपनी विशाल सेनासे घिरकर मित्रोंके लिये पराक्रम दिखा रहा था । वह शत्रुसेनाका महान् संहार करके रणभूमिमें दुर्योधनके वीर पुत्र लक्ष्मणसे टक्कर ले यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १०-११½ ॥

बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ १२ ॥
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

अस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ रणदुर्मद महाधनुर्धर बृहन्तको दुःशासनने बलपूर्वक यमलोक पहुँचाया था ॥ १२½ ॥

मणिमान् दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥ १३ ॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।

युद्धमें उन्मत्त होकर जूझनेवाले राजा मणिमान् और दण्डधार मित्रोंके लिये पराक्रम दिखाते थे । उन दोनोंको द्रोणाचार्यने युद्धमें मार गिराया है ॥ १३½ ॥

अंशुमान् भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥ १४ ॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

सेनासहित भोजराज महारथी अंशुमान्को भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके यमलोक पहुँचाया है ॥ १४½ ॥

सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥ १५ ॥
समुद्रसेनेन बलाद् गमितो यमसादनम् ।

भारत ! समुद्रतटवर्ती राज्यके अधिपति चित्रसेन अपने पुत्रके साथ युद्धमें आकर समुद्रसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक भेज दिया गया ॥ १५½ ॥

अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।

समुद्र-तटवासी नील और पराक्रमी व्याघ्रदत्त इन दोनोंको क्रमशः अश्वत्थामा और विकर्णने यमलोक पहुँचा दिया ॥

चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥ १७ ॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।

विचित्र युद्ध करनेवाले चित्रायुध समरमें विचित्र रीतिसे पराक्रम करते हुए कौरव-सेनाका महान् संहार करके अन्तमें विकर्णके हाथसे मारे गये ॥ १७½ ॥

वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥ १८ ॥
कैकेयेन च विक्रम्य भ्रात्रा भ्राता निपातितः ।

केकयदेशीय योद्धाओंसे घिरे हुए भीमके समान पराक्रमी केकयराजकुमारको उन्हींके भाई दूसरे केकयराजकुमारने बलपूर्वक मार गिराया ॥ १८½ ॥

जनमेजयो गदायोधी पर्वतीयः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।

महाराज ! प्रतापी पर्वतीय राजा जनमेजय गदायुद्धमें कुशल थे । उन्हें आपके पुत्र दुर्मुखने धराशायी कर दिया ॥

रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥ २० ॥
द्रोणेन युगपद् राजन् दिवं सम्प्रापितौ शरैः ।

राजन् ! दो चमकते हुए ग्रहोंके समान नरश्रेष्ठ रोचमान, जो एक ही नामके दो भाई थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बाणोंसे एक साथ ही स्वर्गलोक पहुँचा दिये गये ॥ २०½ ॥

नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।

प्रजानाथ ! और भी बहुत-से पराक्रमी नरेश आपकी

सेनाका सामना करते हुए दुष्कर पराक्रम करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ २१½ ॥

पुरुजित् कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः॥ २२ ॥
संग्रामनिर्जितॉंल्लोकान् गमितौ द्रोणसायकैः ।

पुरुजित् और कुन्तिभोज दोनों सव्यसाची अर्जुनके मामा थे। द्रोणाचार्यके सायकोंने उन्हें भी उन लोकोंमें पहुँचा दिया, जो संग्राममें मारे जानेवाले वीरोंको प्राप्त होते हैं ॥ २२½ ॥

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।

काशिराज अभिभू बहुतेरे काशीनिवासी योद्धाओंसे घिरे हुए थे। वसुदानके पुत्रने युद्धस्थलमें उनसे उनके शरीरका परित्याग करवा दिया ॥ २३½ ॥

अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।

अमितौजा, युधामन्यु तथा पराक्रमी उत्तमौजा ये सैकड़ों शूरवीरोंका संहार करके हमारे सैनिकोंद्वारा मारे गये ॥२४½॥

मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥ २५ ॥
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।

भारत ! पाञ्चालयोद्धा मित्रवर्मा और क्षत्रधर्मा महाधनुर्धर थे। उन्हें भी द्रोणाचार्यने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २५½ ॥

शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥ २६ ॥
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।

भरतवंशी नरेश ! आपके पौत्र लक्ष्मणने युद्धमें योद्धाओं-के स्वामी क्षत्रदेवको, जो शिखण्डीका पुत्र था, मार डाला ॥

सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ॥ २७ ॥
प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे ।

सुचित्र और चित्रवर्मा ये दो महावीर महारथी परस्पर पिता-पुत्र थे। रणभूमिमें विचरते हुए इन दोनोंको द्रोणाचार्यने मार डाला।

वार्द्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८ ॥
आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्तिं परमां गतः ।

महाराज ! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र उमड़ पड़ता है, उसी प्रकार वृद्धक्षेमका पुत्र भी युद्धमें उद्धत हो उठा था, परंतु उसके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये थे, इसलिये वह प्राण-शून्य हो सदाके लिये परम शान्त हो गया ॥ २८½ ॥

सेनाविन्दुसुतः श्रेष्ठः शात्रवान् प्रहरन् युधि॥ २९ ॥
बाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।

राजाधिराज ! सेनाविन्दुका श्रेष्ठ पुत्र रणभूमिमें शत्रुओंपर प्रहार कर रहा था। उस समय कौरवेन्द्र बाह्लीकने उसे मार गिराया॥

धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३० ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।

महाराज ! चेदिदेशका श्रेष्ठ रथी धृष्टकेतु भी युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकका पथिक हो गया ॥ ३०½ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे॥ ३१ ॥
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम्।

पाण्डवोंके लिये पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर सत्य-धृतिने भी रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके यमलोककी राह ली॥

सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठ कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३२ ॥
पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान् संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ३३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! सेनाविन्दु भी युद्धमें शत्रुओंका संहार करके कालके गालमें चला गया। शिशुपालका पुत्र राजा सुकेतु भी युद्धमें शत्रुसैनिकोंका वध करके स्वयं भी द्रोणाचार्य-के हाथसे मारा गया ॥ ३२-३३ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार वीर सत्यधृति, पराक्रमी मदिराश्व और बल-विक्रमशाली सूर्यदत्त भी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे गये हैं ॥

श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ३५ ॥

महाराज ! पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले श्रेणिमान्ने युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकके मार्गका आश्रय लिया है ॥

तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् ।
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥ ३६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला और उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता पराक्रमी मागध वीर भी भीष्मजीके हाथसे मारा जाकर आज रणभूमिमें सो रहा है ॥ ३७ ॥

विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत् कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३७ ॥

राजा विराटके पुत्र शङ्ख और महारथी उत्तर ये दोनों युद्धमें महान् कर्म करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३७ ॥

वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३८ ॥

वसुदान भी युद्धस्थलमें बड़ा भारी संहार मचा रहा था। परंतु भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके उसे यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३८ ॥

(पाण्ड्यराजश्च विक्रान्तो बलवान् बाहुशालिना।
अश्वत्थाम्ना हतस्तत्र गमितो वै यमक्षयम् ॥)

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले अश्वत्थामाने बलवान् एवं पराक्रमी पाण्ड्यराजको मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।

हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

ये तथा और भी बहुतसे पाण्डव महारथी, जिनके बारेमें आप मुझसे पूछ रहे थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बलपूर्वक मार डाले गये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

सप्तमोऽध्यायः

कौरवपक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन और धृतराष्ट्रकी मूर्छा

धृतराष्ट्र उवाच

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य संजय।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! प्रधान पुरुष भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिके मारे जानेसे मेरी सेनाका घमंड चूर-चूर हो गया है। मैं देखता हूँ, अब यह बच नहीं सकेगी ॥ १ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नार्थो वै जीवितेऽसति॥ २ ॥

वे दोनों कुरुश्रेष्ठ महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मेरे लिये मारे गये; यह सुन लेनेपर इस अधम जीवनको रखनेका अब कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

न च मृष्यामि राधेयं हतमाहवशोभनम्।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ॥ ३ ॥

जिसकी दोनों भुजाओंमें समानरूपसे दस-दस हजार हाथियोंका बल था, युद्धमें शोभा पानेवाले उस राधापुत्र कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर मैं इस शोकको सहन नहीं कर पाता हूँ ॥ ३ ॥

हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि संजय।
अहतानपि मे शंस येऽत्र जीवन्ति केचन ॥ ४ ॥

संजय ! जैसा कि तुम कह रहे हो कि मेरी सेनाके प्रमुख वीर मारे जा चुके हैं, उसी प्रकार यह भी बताओ कि कौन-कौन वीर नहीं मारे गये हैं। इस सेनामें जो कोई भी श्रेष्ठ वीर जीवित हैं, उनका परिचय दो ॥ ४ ॥

एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥ ५ ॥

आज तुमने जिन लोगोंके नाम लिये हैं, उनकी मृत्यु हो जानेपर तो जो भी अब जीवित हैं वे सभी मरे हुएके ही समान हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ५ ॥

संजय उवाच

यस्मिन् महास्त्राणि समर्पितानि
चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि।
दिव्यानि राजन् विहितानि चैव
द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६ ॥
महारथः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः।
स वीर्यवान् द्रोणपुत्रस्तरस्वी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने जिस वीरको चित्र (अद्भुत), शुभ्र (प्रकाशमान), दिव्य तथा धनुर्वेदोक्त चार प्रकारके महान् अस्त्र समर्पित किये थे, जो सफल प्रयत्न करनेवाला महारथी वीर है, जिसके हाथ बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं, जिसका धनुष, जिसकी मुट्ठी और जिसके बाण सभी सुदृढ़ हैं, वह वेगशाली तथा पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आपके लिये युद्धकी इच्छा रखकर समरभूमिमें डटा हुआ है ॥ ६-७ ॥

आनर्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ
महारथः सात्वतानां वरिष्ठः।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८ ॥

सात्वतकुलका श्रेष्ठ महारथी, आनर्तनिवासी, भोजवंशी अस्त्रवेत्ता, हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी आपके लिये युद्ध करनेको दृढ़ निश्चयके साथ डटा हुआ है ॥ ८ ॥

आर्तायनिः समरे दुष्प्रकम्प्यः
सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम्।
यः स्वस्रीयान् पाण्डवेयान् विसृज्य
सत्यां वाचं स्वां चिकीर्षुस्तरस्वी॥ ९ ॥
तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये
प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात्।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः
शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥१०॥

जिन्हें युद्धमें विचलित करना अत्यन्त कठिन है, जो आपके सैनिकोंके प्रथम सेनापति एवं वेगशाली वीर हैं, जो अपनी बात सच्ची कर दिखानेके लिये अपने सगे भानजे पाण्डवोंको छोड़कर तथा अजातशत्रु युधिष्ठिरके सामने युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके तेज और उत्साहको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा करके आपके पक्षमें चले आये थे, वे बलवान् दुर्धर्ष तथा इन्द्रके समान पराक्रमी ऋतायनपुत्र शल्य आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥

आजानेयैः सैन्धवैः पर्वतीयै-
र्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ११ ॥

अच्छी नस्लके सिंधी, पहाड़ी, दरियाई, काबुली और बनायु देशके बहुसंख्यक घोड़ों तथा अपनी सेनाके साथ गान्धारराज शकुनि आपके लिये युद्ध करनेको डटा हुआ है॥

शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्
महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद् भारसाहं
व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२ ॥

राजन्! अनेक प्रकारके विचित्र अस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेवाले, गौतमवंशीय शरद्वान्‌के पुत्र महाबाहु कृपाचार्य भी महान् भार सहन करनेमें समर्थ विचित्र धनुष हाथमें लेकर आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥ १२ ॥

महारथः केकयराजपुत्रः
सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर! महारथी केकयराजकुमार भी सुन्दर घोड़ोंसे जुते हुए, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित रथपर आरूढ़ हो आपके लिये युद्ध करनेकी इच्छासे डटा हुआ है ॥

तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं
रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र
व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥ १४ ॥

नरेन्द्र! कुरुकुलका प्रमुख वीर आपका पुत्र पुरुमित्र अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् रथपर आरूढ़ हो बिना बादलोंके आकाशमें सूर्यके समान प्रकाशित होता हुआ युद्धके लिये खड़ा है ॥ १४ ॥

दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये
व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन
व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः ॥ १५ ॥

हाथियोंकी सेनाके बीच जो अपने सुवर्णभूषित रथके द्वारा उपस्थित हो सिंहके समान सुशोभित होता है, वह राजा दुर्योधन भी समराङ्गणमें जूझनेके लिये खड़ा है ॥ १५ ॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो
रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो
मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६ ॥

पुरुषोंमें प्रधान वीर और कमलके समान कान्तिमान् दुर्योधन सोनेका बना हुआ विचित्र कवच धारण करके राजाओंके समुदायमें अल्प धूमवाली अग्नि एवं बादलोंके बीचमें सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १६ ॥

तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणि-
स्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं
हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७ ॥

हाथमें ढाल-तलवार लिये हुए आपके वीर पुत्र सुषेण और सत्यसेन मनमें हर्ष और उत्साह लिये समरमें जूझनेकी इच्छा रखकर चित्रसेनके साथ खड़े हैं ॥ १७ ॥

ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र
उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासंधिः प्रथमश्चाद्दढश्च
चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥ १८ ॥
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च
व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्र्याः ।

भारत! लज्जाशील भयंकर आयुधोंवाला शीघ्रभोजी और देखनेमें सुन्दर जरासंधका प्रथम पुत्र राजकुमार अद्दढ़, चित्रायुध, श्रुतवर्मा, जय, शल, सत्यव्रत और दुःशल—ये सभी श्रेष्ठ पुरुष युद्धके लिये अपनी सेनाओंके साथ खड़े हैं ॥

कैतव्यानामधिपः शूरमानी
रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥ १९ ॥
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।

प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेवाला और अपनेको शूरवीर माननेवाला एक राजकुमार, जो जुआरिओंका सरदार है तथा रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चलता है, आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़ा है॥

वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च
चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥ २० ॥
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः
प्रहारिणो मानिनः सत्यसंधाः ।

वीर श्रुतायु, धृतायुध, चित्राङ्गद और वीर चित्रसेन—ये सभी प्रहारकुशल स्वाभिमानी और सत्यप्रतिज्ञ नरश्रेष्ठ आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं ॥ २०½ ॥

कर्णात्मजः सत्यसंधो महात्मा
व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ २१ ॥
अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ
व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
बलं महद् दुर्भिदमल्पधैर्यैः
समाश्रितौ योत्स्यमानौ त्वदर्थे ॥ २२ ॥

नरेन्द्र ! कर्णका महामना एवं सत्यप्रतिज्ञ पुत्र समराङ्गणमें युद्धकी इच्छासे डटा हुआ है। इसके सिवा कर्णके दो पुत्र और हैं, जो उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं, वे भी आपकी ओरसे युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। इन दोनोंने ऐसी विशाल सेनाको अपने साथ ले रक्खा है, जिसका अल्प धैर्यवाले वीरोंके लिये भेदन करना कठिन है ॥

एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्
योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये
यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय ॥ २३ ॥

राजन् ! इनसे तथा अन्य अनन्त प्रभावशाली श्रेष्ठ एवं प्रधान योद्धाओंसे घिरा हुआ कुरुराज दुर्योधन हाथियोंके समूहमें देवराज इन्द्रके समान विजयके लिये खड़ा है ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता जीवमाना येऽपरे सैन्या यथायथम् ।
इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! अपने पक्षके जो जीवित योद्धा हैं, एवं उनसे भिन्न जो मारे जा चुके हैं, उनका तुमने यथार्थरूपसे वर्णन कर दिया। इससे जो परिणाम होनेवाला है, उसे अर्थापत्ति प्रमाणके द्वारा मैं स्पष्टरूपसे समझ रहा हूँ (मेरे पक्षकी हार सुनिश्चित है) ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किंचिच्छेषं स्वकं बलम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा व्यामोहमागच्छच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! यह कहते हुए ही अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र उस समय यह सुनकर कि अपनी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये, अधिकांश सेना नष्ट हो गयी और बहुत थोड़ी शेष रह गयी है, मूर्छित हो गये । उनकी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठीं ॥ २५½ ॥

मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ संजय ॥ २६ ॥
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥ २७ ॥

वे अचेत होते-होते बोले—'संजय ! दो घड़ी ठहर जाओ। तात ! यह महान् अप्रिय संवाद सुनकर मेरा मन व्याकुल हो गया है, चेतना लुप्त-सी हो रही है और मैं अपने अङ्गोंको धारण करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ' ॥ २६-२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्तचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र भ्रान्तचित्त (मूर्छित) हो गये ॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

जनमेजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् ।
नरेन्द्रः किंचिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले—द्विजश्रेष्ठ ! युद्धमें कर्ण मारा गया और पुत्र भी धराशायी हो गये, यह सुनकर अचेत हुए राजा धृतराष्ट्रको जब पुनः कुछ चेत हुआ, तब उन्होंने क्या कहा ? ॥ १ ॥

प्राप्तवान् परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन् यदुक्तवान् काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥२॥

धृतराष्ट्रको अपने पुत्रोंके मारे जानेके कारण बड़ा भारी दुःख प्राप्त हुआ था, उस समय उन्होंने जो कुछ कहा, उसे मैं पूछ रहा हूँ; आप मुझे बताइये ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसम्मोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥ ३ ॥
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥ ५ ॥
महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ ६ ॥
संचिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति संचिन्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥ ७ ॥
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम् ।
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥ ८ ॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन् दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कर्णका मारा जाना अद्भुत और अविश्वसनीय-सा लग रहा था । वह भयंकर कर्म उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला था, जैसे मेरु पर्वतका अपने स्थानसे हटकर अन्यत्र चला जाना ।

परम बुद्धिमान् भृगुनन्दन परशुरामजीके चित्तमें मोह उत्पन्न होना जैसे सम्भव नहीं है, जैसे भयंकर कर्म करनेवाले देवराज इन्द्रका अपने शत्रुओंसे पराजित होना असम्भव है, जैसे महातेजस्वी सूर्यके आकाशसे पृथ्वीपर गिरने और अक्षय जलवाले समुद्रके सूख जानेकी बात मनमें सोची तक नहीं जा सकती; पृथ्वी, आकाश, दिशा और जलका सर्वनाश होना एवं पाप तथा पुण्य—दोनों प्रकारके कर्मोंका निष्फल हो जाना जैसे आश्चर्यजनक घटना है; उसी प्रकार समरमें कर्ण-वधरूपी असम्भव कर्मको भी सम्भव हुआ सुनकर और उसपर बुद्धि-द्वारा अच्छी तरह विचार करके राजा धृतराष्ट्र यह सोचने लगे कि 'अब यह कौरवदल बच नहीं सकता । कर्णकी ही भाँति अन्य प्राणियोंका भी विनाश हो सकता है ।' यह सब सोचते ही उनके हृदयमें शोककी आग प्रज्वलित हो उठी और वे उससे तपने एवं दग्ध-से होने लगे । उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये । महाराज ! वे अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र दीन-भावसे लंबी साँस खींचने और अत्यन्त दुखी हो 'हाय ! हाय !' कहकर विलाप करने लगे ॥ ३–९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः ।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन् ॥ १० ॥
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्तते ।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! अधिरथका वीर पुत्र कर्ण सिंह और हाथीके समान पराक्रमी था । उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे । उसकी आँखें और चाल-ढाल भी साँड़के ही सदृश थीं । वह स्वयं भी दानकी वर्षा करनेके कारण वृषभ-स्वरूप था । रणभूमिमें विचरता हुआ कर्ण इन्द्र-जैसे शत्रुसे पाला पड़नेपर भी साँड़के समान कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता था । उसकी युवा-अवस्था थी । उसका शरीर इतना सुदृढ़ था, मानो वज्रसे गढ़ा गया हो ॥ १०-११ ॥

यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च ।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२ ॥

जिसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार तथा बाणवर्षाके भयंकर शब्दसे भयभीत हो रथी, घुड़सवार, गजारोही और पैदल सैनिक युद्धमें सामने नहीं ठहर पाते थे ॥ १२ ॥

यमाश्रित्य महाबाहुं द्विषत्संघघ्नमच्युतम् ।

यमाश्रित्य महाबाहुं विद्विषां जयकाङ्क्षया ।
दुर्योधनोऽकरोद् वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ १३ ॥

जिस महाबाहुका भरोसा करके शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छा रखते हुए दुर्योधनने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रक्खा था ॥ १३ ॥

स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४ ॥

जिसका पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य था, वह रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह कर्ण युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्र अर्जुनके द्वारा बलपूर्वक कैसे मारा गया ? ॥ १४ ॥

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनंजयम् ।
न वृष्णीन् सहितानन्यान् स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १५ ॥

जो अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर श्रीकृष्णको, अर्जुनको तथा एक साथ आये हुए अन्यान्य वृष्णिवंशियोंको भी कभी कुछ नहीं समझता था ॥ १५ ॥

शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद् रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥ १६ ॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥ १७ ॥

जो राज्यकी इच्छा रखनेवाले तथा चिन्तासे आतुर हो मुँह लटकाये बैठे हुए मेरे लोभमोहित मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे सदा यही कहा करता था कि 'मैं अकेला ही युद्धस्थलमें शार्ङ्ग और गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले दोनों अपराजित वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको उनके दिव्यरथसे एक साथ ही मार गिराऊँगा' ॥ १६-१७ ॥

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानावन्त्यान् केकयैः सह ।
गान्धारान् मद्रकान् मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान् ॥ १८ ॥
पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान् काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान् पुण्ड्रचीरकान् ॥ १९ ॥
वत्सान् कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि ।
(शबरान् परहूणांश्च प्रहूणान् सरलानपि ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपांश्चैव दुर्गानाटविकांस्तथा ॥)
जित्वैतान् समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥ २० ॥

जिस वीरने पहले समस्त काम्बोज, आवन्त्य, केकय, गान्धार, मद्र, मत्स्य, त्रिगर्त, तङ्गण, शक, पाञ्चाल, विदेह, कुलिन्द, काशी, कोसल, सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, निषाद, पुण्ड्र, चीरक, वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक तथा ऋषिक—इन सभी देशों तथा शबर, परहूण, प्रहूण और सरल जातिके लोगों, म्लेच्छ-राज्यके अधिपतियों तथा दुर्ग एवं वनोंमें रहनेवाले योद्धाओं-को समरभूमिमें जीतकर कर देनेवाला बना दिया था ॥ १८–२० ॥

शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः ।
(करमाहारयामास जित्वा सर्वानरींस्तथा ।)
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः ॥ २१ ॥
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ॥ २२ ॥
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः ।

रथियोंमें श्रेष्ठ जिस राधापुत्रने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये कङ्कपत्र-युक्त, तीखी धारवाले पैने बाण-समूहोंद्वारा समस्त

शत्रुओंको परास्त करके उनसे कर वसूल किया था, जो दिव्यास्त्रोंका ज्ञाता, उत्तम अस्त्रोंका जानकार और हमारी सेनाओंका रक्षक था, वह महातेजस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण अपने शूरवीर एवं बलशाली शत्रु पाण्डवोंद्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २१-२२½ ॥

वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥ २३ ॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।

देवताओंमें देवराज इन्द्रको वृष कहा गया है (क्योंकि वे जलकी वर्षा करते हैं), इसी प्रकार मनुष्योंमें भी कर्णको वृष कहा जाता था (क्योंकि वह याचकोंके लिये धनकी वर्षा करता था); इन दोके सिवा किसी तीसरे पुरुषको तीनों लोकोंमें वृष नाम दिया गया हो, यह मैंने नहीं सुना ॥२३½॥

उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ॥ २४ ॥
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।

जैसे घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, राजाओंमें कुबेर और देवताओंमें महेन्द्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कर्ण योद्धाओंमें ऊँचा स्थान रखता था ॥ २४½ ॥

योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥ २५ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् ।
यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः॥२६॥
अरौत्सीत् पार्थिवं क्षत्रमृते यादवकौरवान् ।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ २७ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे ।

जो पराक्रमशाली, समर्थ एवं शूरवीर नरेशोंद्वारा भी कभी जीता न जा सका, जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलपर विजय पायी थी, जिसे अपना सहायक पाकर मगधनरेश जरासंधने भी सौहार्दवश शान्त हो यादवों और कौरवोंको छोड़कर भूतलके अन्य नरेशोंको ही अपने कारागारमें कैद किया था; उसी कर्णको सव्यसाची अर्जुनने द्वैरथ-युद्धमें मार डाला, यह सुनकर मैं शोकके समुद्रमें डूब गया हूँ, मानो मेरी नाव बीच समुद्रमें जाकर टूट गयी हो।२५-२७½।

तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम् ॥ २८ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा ।

रथियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मात्मा कर्णको द्वैरथयुद्धमें मारा गया सुनकर मैं समुद्रमें नौकारहित पुरुषकी भाँति शोक-सागरमें निमग्न हो गया हूँ ॥ २८½ ॥

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय ॥ २९ ॥
वज्राद् दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् ।

संजय ! यदि ऐसे दुःखोंसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है तो मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरा यह हृदय वज्रसे भी अधिक सुदृढ़ और दुर्भेद्य है ॥ २९½ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम् ॥ ३० ॥
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात् सूत जीवितम् ।

सूत ! कुटुम्बीजनों, सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंके पराभवका यह समाचार सुनकर संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन पुरुष होगा, जो अपने जीवनका परित्याग न कर दे ॥३०½॥

विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे ।
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि संजय ॥३१॥

संजय ! मैं विष खाकर, अग्निमें प्रविष्ट होकर तथा पर्वतके शिखरसे नीचे गिरकर भी मृत्युका वरण कर लूँगा । परंतु अब ये कष्टदायक दुःख नहीं सह सकूँगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका संजयसे विलाप करते हुए कर्णवधका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त पूछना

संजय उवाच

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च ।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! साधु पुरुष इस समय आपको धन-सम्पत्ति, कुल-मर्यादा, सुयश, तपस्या और शास्त्रज्ञानमें नहुषनन्दन ययातिके समान मानते हैं ॥ १ ॥

श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव ।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २ ॥

राजन् ! वेद-शास्त्रोंके ज्ञानमें आप महर्षियोंके तुल्य हैं । आपने अपने जीवनके सम्पूर्ण कर्तव्योंका पालन कर लिया है; अतः अपने मनको स्थिर कीजिये, उसे विषादमें न डुबाइये ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ । पुरुषार्थ व्यर्थ है, उसे धिक्कार है, जिसका आश्रय लेकर शालवृक्षके समान ऊँचे शरीरवाला कर्ण भी युद्धमें मारा गया ॥ ३ ॥

हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान् ।

प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः ॥ ४ ॥
मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान्।
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरकी सेना तथा पाञ्चाल रथियोंके समुदायका संहार करके जिस महारथी वीरने अपने बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको संतप्त कर दिया और वज्रधारी इन्द्र जैसे असुरोंको अचेत कर देते हैं, उसी प्रकार जिसने रणभूमिमें कुन्ती-कुमारोंको मोहमें डाल दिया था, वही किस तरह मारा जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान धरतीपर पड़ा है ? ॥ ४-५ ॥

शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥ ६ ॥

जैसे समुद्रका पार नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार मैं इस शोकका अन्त नहीं देख पाता हूँ। मेरी चिन्ता अधिकाधिक बढ़ती जाती है और मरनेकी इच्छा प्रबल हो उठी है ॥

कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च।
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य संजय ॥ ७ ॥

संजय ! मैं कर्णकी मृत्यु और अर्जुनकी विजयका समाचार सुनकर भी कर्णके वधको विश्वासके योग्य नहीं मानता ॥ ७ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं दुर्भिदं मम।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ॥ ८ ॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्रके सारतत्त्वका बना हुआ है, अतः दुर्भेद्य है; तभी तो पुरुष-सिंह कर्णको मारा गया सुनकर भी यह विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥ ८ ॥

आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः ॥ ९ ॥

अवश्य ही पूर्वकालमें देवताओंने मेरी आयु बहुत बड़ी बना दी थी, जिसके अधीन होनेके कारण मैं कर्ण-वधका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी होनेपर भी यहाँ जी रहा हूँ ॥ ९ ॥

धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनश्च संजय।
अद्य चाहं दशामेतां गतः संजय गर्हिताम् ॥ १० ॥

संजय ! मेरे इस जीवनको धिक्कार है। आज मैं सुहृदोंसे हीन होकर इस घृणित दशाको पहुँच गया हूँ ॥ १० ॥

कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः।
अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ॥ ११ ॥
परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम्।

अब मैं मन्दबुद्धि मानव सबके लिये शोचनीय होकर दीन-दुखी मनुष्योंके समान जीवन बिताऊँगा। सूत ! मैं ही पहले सब लोगोंके सम्मानका पात्र था; किंतु अब शत्रुओंसे अपमानित होकर कैसे जीवित रह सकूँगा ? ॥ ११½ ॥

दुःखात् सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि संजय ॥ १२ ॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः।

संजय ! भीष्म, द्रोण और महामना कर्णके वधसे मुझपर लगातार एक-से-एक बढ़कर अत्यन्त दुःख तथा सङ्कट आता गया है ॥ १२½ ॥

नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ १३ ॥
स हि पारो महानासीत् पुत्राणां मम संजय।

युद्धमें सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर मैं अपने पक्षके किसी भी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो जीवित रह सके। संजय ! कर्ण ही मेरे पुत्रोंको पार उतारनेवाला महान् अवलम्ब था ॥

युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन् सायकान् बहून् ॥ १४ ॥
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम्।

शत्रुओंपर असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाला वह शूरवीर युद्धमें मार डाला गया। उस पुरुषशिरोमणिके बिना मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १४½ ॥

रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत् सायकार्दितः ॥ १५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद् विदारितम्।

जैसे वज्रके आघातसे विदीर्ण किया हुआ पर्वतशिखर धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार बाणोंसे पीड़ित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण निश्चय ही रथसे नीचे गिर पड़ा होगा ॥

स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन् रुधिरोक्षितः ॥ १६ ॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः।

जैसे मतवाले गजराजद्वारा गिराया हुआ हाथी पड़ा हो, उसी प्रकार कर्ण खूनसे लथपथ होकर अवश्य इस पृथ्वीकी शोभा बढ़ाता हुआ सो रहा है ॥ १६½ ॥

यो बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम्।

जो मेरे पुत्रोंका बल था, पाण्डवोंको जिससे सदा भय बना रहता था तथा जो धनुर्धर वीरोंके लिये आदर्श था, वह कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १७½ ॥

स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥ १८ ॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः।

जैसे देवराज इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारा गया पर्वत पृथ्वीपर पड़ा हो, उसी प्रकार मित्रोंको अभय-दान देनेवाला वह महाधनुर्धर वीर कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥ १८½ ॥

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥ १९ ॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः।

जैसे पङ्गु मनुष्यके लिये रास्ता चलना कठिन है, दरिद्रका मनोरथ पूर्ण होना असम्भव है तथा जलकी कुछ ही बूँदें जैसे प्यासेकी प्यास बुझानेमें असमर्थ हैं, उसी प्रकार दुर्योधनका अभिप्राय असम्भव अथवा सफलतासे कोसों दूर है ॥ १९½ ॥

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत् तु जायते ॥ २० ॥

अहो नु बलवद् दैवं कालश्च दुरतिक्रमः।

किसी कार्यको अन्य प्रकारसे सोचा जाता है, किंतु वह दैववश और ही प्रकारका हो जाता है। अहो! निश्चय ही दैव प्रबल और काल दुर्लङ्घ्य है॥ २०½॥

पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः॥ २१॥
कच्चिद् विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम।
कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे॥ २२॥
कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः।

सूत! क्या मेरा पुत्र दुःशासन दीनचित्त और पुरुषार्थ-शून्य होकर कायरके समान भागता हुआ मारा गया। तात! उसने युद्धस्थलमें कोई दीनतापूर्ण बर्ताव तो नहीं किया था। जैसे अन्य क्षत्रियशिरोमणि मारे गये हैं, क्या उसी प्रकार शूरवीर दुःशासन नहीं मारा गया है?॥ २१-२२½॥

युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा॥ २३॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम्।

युधिष्ठिर सदा यही कहते रहे कि 'युद्ध न करो।' परंतु मूर्ख दुर्योधनने हितकारक औषधके समान उनके उस वचनको ग्रहण नहीं किया॥ २३½॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना॥ २४॥
पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम्।
जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च॥ २५॥
अब्रवीत् स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः।
प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः॥ २६॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुङ्क्ष्व पाण्डुसुतैः सह।

बाण-शय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने अर्जुनसे पानी माँगा और उन्होंने इसके लिये पृथ्वीको छेद दिया। इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा प्रकट की हुई उस जल-धाराको देखकर महाबाहु भीष्मने दुर्योधनसे कहा—'तात! पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। संधिसे वैरकी शान्ति हो जायगी, तुमलोगोंका यह युद्ध मेरे जीवनके साथ ही समाप्त हो जाय। तुम पाण्डवोंके साथ भ्रातृभाव बनाये रखकर पृथ्वीका उपभोग करो'॥ २४-२६½॥

अकुर्वन् वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः॥ २७॥
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः।

उनकी उस बातको न माननेके कारण अवश्य ही मेरा पुत्र शोक कर रहा है। दूरदर्शी भीष्मजीकी वह बात आज सफल होकर सामने आयी है॥ २७½॥

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च संजय॥ २८॥
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः।

संजय! मेरे मन्त्री और पुत्र मारे गये। मैं तो पंख कटे हुए पक्षीके समान जूएके कारण भारी संकटमें पड़ गया हूँ॥ २८½॥

यथा हि शकुनिं गृह्य छित्त्वा पक्षौ च संजय॥ २९॥
विसर्जयन्ति संहृष्टाः क्रीडमानाः कुमारकाः।
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते॥ ३०॥
तथाहमपि सम्प्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः।

सूत! जैसे खेलते हुए बालक किसी पक्षीको पकड़कर उसकी दोनों पाँखें काट लेते और प्रसन्नतापूर्वक उसे छोड़ देते हैं। फिर पंख कट जानेके कारण उसका उड़कर कहीं जाना सम्भव नहीं हो पाता। उसी कटे हुए पंखवाले पक्षीके समान मैं भी भारी दुर्दशामें पड़ गया हूँ॥ २९-३०½॥

क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः॥ ३१॥

मैं शरीरसे दुर्बल, सारी धन-सम्पत्तिसे वञ्चित तथा कुटुम्बीजनों और बन्धु-बान्धवोंसे रहित हो शत्रुके वशमें पड़कर दीनभावसे किस दिशाको जाऊँगा?॥ ३१॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः।
प्रोवाच संजयं भूयः शोकव्याकुलमानसः॥ ३२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार विलाप करके अत्यन्त दुखी और शोकसे व्याकुलचित्त हो धृतराष्ट्रने पुनः संजयसे इस प्रकार कहा॥ ३२॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान् केकयैः सह।
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे॥ ३३॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं योऽजयत् पृथिवीं प्रभुः।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः॥ ३४॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जिसने हमारे कार्यके लिये युद्धस्थलमें सम्पूर्ण काम्बोज-निवासियों, अम्बष्ठों, केकयों, गान्धारों और विदेहोंपर विजय पायी। इन सबको जीतकर जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलको जीत लिया था। वही सामर्थ्यशाली कर्ण अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर पाण्डवोंद्वारा समराङ्गणमें परास्त हो गया॥

तस्मिन् हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना।
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ३५॥

संजय! युद्धस्थलमें किरीटधारी अर्जुनके द्वारा उस महा-धनुर्धर कर्णके मारे जानेपर कौन-कौन-से वीर ठहर सके; यह मुझे बताओ॥ ३५॥

कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः॥ ३६॥

तात! कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि कर्णको अकेला छोड़ दिया गया हो और समस्त पाण्डवोंने मिलकर उसे मार डाला हो; क्योंकि तुम पहले बता चुके हो कि वीर कर्ण मारा गया॥ ३६॥

भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ३७ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म जब युद्ध नहीं कर रहे थे, उस दशामें शिखण्डीने अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन्हें समराङ्गणमें मार गिराया ॥ ३७ ॥

तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ॥ ३८ ॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन संजय।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें अपने सारे अस्त्र-शस्त्रोंको नीचे डालकर ब्रह्मका ध्यान लगाये हुए बैठे थे, उस अवस्थामें द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नने उन्हें बहुसंख्यक बाणोंसे ढक दिया और तलवार उठाकर उनका सिर काट लिया। संजय! इस प्रकार ये दोनों वीर छिद्र मिल जानेसे विशेषतः छलपूर्वक मारे गये ॥ ३८-३९ ॥

अश्रौषमहमेतद् वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ।
भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद् वज्रभृत् स्वयम्॥४०॥
न्यायेन युध्यमानौ हि तद् वै सत्यं ब्रवीमि ते।

मैंने यह समाचार भी सुना था कि भीष्म और द्रोणाचार्य मार गिराये गये, परंतु मैं तुमसे यह सच्ची बात कहता हूँ कि ये भीष्म और द्रोण यदि समरभूमिमें न्यायपूर्वक युद्ध करते होते तो इन्हें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी नहीं मार सकते थे ॥ ४०½ ॥

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥ ४१ ॥
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्।

मैं पूछता हूँ कि युद्धमें बहुत-से दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करते हुए इन्द्रके समान पराक्रमी वीर कर्णको मृत्यु कैसे छू सकी? ॥

यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥ ४२ ॥
प्रायच्छद् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरंदरः।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः ॥ ४३ ॥
अशेत निशितः पत्री समरेष्वरिसूदनः।
भीष्मद्रोणमुखान् वीरान् योऽवमन्ये महारथान्॥४४॥
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत।
यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ॥ ४५ ॥
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत् कार्मुकं शितैः।
यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६ ॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत्।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४७ ॥
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद् धर्मचिन्तया।
यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥ ४८ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान्।
एतांश्च दिवसान् यस्य युद्धे भीतो धनंजयः ॥ ४९ ॥
नागमद् द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे।

जिसे देवराज इन्द्रने दो कुण्डलोंके बदलेमें विद्युत्के समान प्रकाशित होनेवाली तथा शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ सुवर्णभूषित दिव्य शक्ति प्रदान की थी, जिसके तूणीरमें सर्पके समान मुखवाला दिव्य, सुवर्णभूषित, कङ्कपत्रयुक्त एवं युद्धमें शत्रुसंहारक तीखा बाण सदा शयन करता था, जो भीष्म-द्रोण आदि महारथी वीरोंकी भी अवहेलना करता था, जिसने जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे अत्यन्त घोर ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा पायी थी और जिस महाबाहु वीरने सुभद्राकुमारके बाणोंसे पीड़ित हुए द्रोणाचार्य आदिको युद्धसे विमुख हुआ देख अपने तीखे बाणोंसे उसका धनुष काट डाला था, जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलशाली, वज्रके समान तीव्र वेगवाले, अपराजित वीर भीमसेनको सहसा रथहीन करके उनकी हँसी उड़ायी थी, जिसने सहदेवको जीतकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उन्हें रथहीन करके भी धर्मके विचारसे दयावश उनके प्राण नहीं लिये; जिसने सहस्रों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले विजयाभिलाषी राक्षसराज घटोत्कचको इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे मार डाला तथा इतने दिनोंतक अर्जुन जिससे भयभीत होकर उसके साथ द्वैरथ-युद्धमें सम्मिलित नहीं हो सके, वही वीर कर्ण रणभूमिमें मारा कैसे गया? ॥४२—४९½॥

संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदान्यतः ॥ ५० ॥
एतान् हत्वा हनिष्यामि पश्चाद् वैकर्तनं रणे।
इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे ॥ ५१ ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा।

'संशप्तकोंमेंसे जो योद्धा सदा मुझे दूसरी ओर युद्धके लिये बुलाया करते हैं, इन्हें पहले मारकर पीछे वैकर्तन कर्णका रणभूमिमें वध करूँगा।' ऐसा बहाना बनाकर अर्जुन जिस सूतपुत्रको युद्धस्थलमें छोड़ दिया करते थे, उसी शत्रुवीरोंके संहारक वीरवर कर्णको अर्जुनने किस प्रकार मारा? ॥५०-५१½॥

रथभङ्गो न चेत् तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः।

यदि उसका रथ नहीं टूट गया था, धनुषके टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गये थे और अस्त्र नहीं नष्ट हुए थे, तब शत्रुओंने उसे किस प्रकार मार दिया? ॥ ५२½ ॥

को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद् धनुः॥ ५३ ॥
विमुञ्चन्तं शरान् घोरान् दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४ ॥

सिंहके समान वेगशाली पुरुषसिंह कर्ण जब अपना विशाल धनुष कँपाता हुआ युद्धस्थलमें दिव्यास्त्र तथा भयंकर बाण छोड़ रहा हो, उस समय उसे कौन जीत सकता था? ॥ ५३-५४ ॥

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम्॥ ५५॥

निश्चय ही उसका धनुष कट गया होगा या रथ धरतीमें धँस गया होगा अथवा उसके अस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी जैसा कि तुम मुझे बता रहे हो, वह मारा गया होगा ॥ ५५ ॥

न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने।
न हन्मि फाल्गुनं यावत् तावत् पादौ न धावये॥५६॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः।

उसके नष्ट होनेमें और कोई कारण मुझे नहीं दिखायी देता है, जिस महामना वीरका यह भयंकर व्रत था कि 'मैं जबतक अर्जुनको मार नहीं लूँगा, तबतक दूसरोंसे अपने पैर नहीं धुलाऊँगा' ॥ ५६½ ॥

यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ५७॥
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत् पुरुषर्षभः।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः॥ ५८॥
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान् बलात्।
तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम्॥ ५९॥
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत् कुरुसंनिधौ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः॥ ६०॥
उपतिष्ठस्व भर्तारमन्यं वा वरवर्णिनि।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाश्चाश्रावयद् रुषा॥ ६१॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः।

रणभूमिमें जिसके भयसे डरे हुए पुरुषशिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिरने तेरह वर्षोंतक कभी अच्छी तरह नींद नहीं ली, जिस महामनस्वी बलवान् सूतपुत्रके बलका भरोसा करके मेरा पुत्र दुर्योधन पाण्डवोंकी पत्नीको बलपूर्वक सभामें घसीट लाया और वहाँ भी भरी सभामें उसने पाण्डवोंके देखते-देखते समस्त कुरुवंशियोंके समीप पाञ्चालराजकुमारीको दास-पत्नी बतलाया, साथ ही जिसने उसे सम्बोधित करके कहा—'कृष्णे! तेरे पति अब नहींके बराबर हैं। ये सभी थोथे तिलोंके समान नपुसंक हो गये हैं। सुन्दरि! अब तू दूसरे किसी पतिका आश्रय ले' पूर्वकालमें जिस सूतपुत्रने सभामें रोषपूर्वक द्रौपदीको ये कठोर बातें सुनायी थीं, वह स्वयं शत्रुओंद्वारा कैसे मारा गया? ॥ ५७–६१½ ॥

यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः॥६२॥
न हनिष्यति कौन्तेयान् पक्षपातात् सुयोधन।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ६३॥

जिसने मेरे पुत्रसे कहा था कि 'दुर्योधन! यदि युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीष्म अथवा रणदुर्मद द्रोणाचार्य पक्षपात करनेके कारण कुन्तीपुत्रोंको नहीं मारेंगे तो मैं उन सबको मार डालूँगा। तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये॥

किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः॥ ६४॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः।

'गाण्डीव धनुष अथवा दोनों अक्षय तरकस मेरे उस बाणका क्या कर लेंगे, जो चिकने चन्दनसे चर्चित हो शत्रुओंपर बड़े वेगसे धावा करता है' ऐसी बातें कहनेवाला कर्ण, जिसके कंधे बैलोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे, निश्चय ही अर्जुनके हाथसे कैसे मारा गया? ॥ ६४½ ॥

यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन्॥ ६५॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन् पार्थानवैक्षत।
यस्य नासीद् भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः॥ ६६॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि संजय।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः॥ ६७॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः।

संजय! जिसने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके आघातकी तनिक भी परवा न करके 'कृष्णे! अब तू पतिहीना हो गयी' ऐसा कहते हुए कुन्तीपुत्रोंकी ओर देखा था, जिसे अपने बाहुबलके भरोसे कभी दो घड़ीके लिये भी पुत्रोंसहित पाण्डवों और भगवान् श्रीकृष्णसे भी भय नहीं हुआ। तात! यदि शत्रुपक्षकी ओरसे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता भी धावा करें तो उनके द्वारा भी कर्णके वध होनेका विश्वास मुझे नहीं हो सकता था, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? ॥ ६५–६७½ ॥

न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः॥ ६८॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित् प्रमुखतोऽर्हति।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः॥ ६९॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः।

जब अधिरथपुत्र कर्ण अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका स्पर्श कर रहा हो अथवा दस्ताने पहन चुका हो, उस समय कोई पुरुष उसके सामने नहीं ठहर सकता था। सम्भव है यह पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्यकी प्रकाशमयी किरणोंसे वञ्चित हो जाय, परंतु युद्धमें पीठ न दिखानेवाले पुरुषशिरोमणि कर्णके वधकी कदापि सम्भावना नहीं थी ॥ ६८–६९½ ॥

येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च॥ ७०॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम्॥ ७१॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः।

जिस कर्ण और भाई दुःशासनको अपना सहायक पाकर मूर्ख एवं दुर्बुद्धि दुर्योधनने श्रीकृष्णके प्रस्तावको ठुकरा देना ही उचित समझा था, मैं समझता हूँ, आज बैलोंके समान पुष्ट कंधेवाले कर्णको गिरा हुआ तथा दुःशासनको भी मारा गया देख मेरा वह पुत्र निश्चय ही शोकमें मग्न हो गया होगा ॥ ७०-७१½ ॥

हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
जयतः पाण्डवान् दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

द्वैरथयुद्धमें सव्यसाची अर्जुनके हाथसे कर्णको मारा गया सुनकर और पाण्डवोंकी विजय होती देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ? ॥ ७२½ ॥

दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनं च संयुगे ॥ ७३ ॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥ ७४ ॥
विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः ।

दुर्मर्षण और वृषसेन भी युद्धमें मारे गये, महारथी पाण्डवोंकी मार खाकर सेनामें भगदड़ मच गयी, सहायक नरेश युद्धसे विमुख हो पलायन करने लगे और रथियोंने पीठ दिखा दी। यह सब देखकर मेरा बेटा शोक कर रहा होगा; ऐसा मुझे मालूम हो रहा है ॥ ७३-७४½ ॥

अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ ७५ ॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

जो किसीकी सीख नहीं मानता है, जिसे अपनी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ताका अभिमान है, उस दुर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय दुर्योधनने अपनी सेनाको हतोत्साह देखकर क्या कहा ? ॥ ७५½ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥ ७६ ॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

हितैषी सुहृदोंके मना करनेपर भी पाण्डवोंके साथ स्वयं बड़ा भारी वैर ठानकर दुर्योधनने, जब संग्राममें उसके अधिकांश सैनिक मार डाले गये, तब क्या कहा ? ॥ ७६½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७ ॥
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

युद्धस्थलमें अपने भाई दुःशासनको भीमसेनके द्वारा मारा गया देख जब कि उसका रक्त पीया जा रहा था, दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ७७½ ॥

सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ॥ ७८ ॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन् किमब्रवीत् ।

गान्धारराज शकुनिके साथ सभामें दुर्योधनने जो यह कहा था कि 'कर्ण अर्जुनको मार डालेगा', उसके विपरीत जब कर्ण स्वयं मारा गया तब उसने क्या कहा ? ॥ ७८½ ॥

द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥ ७९ ॥
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

तात ! पहले द्यूतक्रीड़ाका आयोजन करके पाण्डवोंको ठग लेनेके बाद जिसे बड़ा हर्ष हुआ था, वह सुबलपुत्र शकुनि कर्णके मारे जानेपर क्या बोला ? ॥ ७९½ ॥

कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥ ८० ॥
हतं वैकर्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ।

वैकर्तन कर्णको मारा गया देख सात्वतवंशके महाधनुर्धर महारथी हृदिकपुत्र कृतवर्माने क्या कहा ? ॥ ८०½ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ॥ ८१ ॥
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥ ८२ ॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत संजय ।

संजय ! धनुर्वेद प्राप्त करनेकी इच्छावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिस बुद्धिमान् द्रोणपुत्रके पास आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, जो सुन्दर रूपसे सम्पन्न, युवक, दर्शनीय तथा महायशस्वी है, उस अश्वत्थामाने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥ ८१-८२½ ॥

आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥ ८३ ॥
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

तात ! धनुर्वेदके आचार्य एवं रथियोंमें श्रेष्ठ, गौतमवंशी, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः ।
किमभाषत वीरोऽसौ मद्राणामधिपो बली ॥ ८५ ॥

युद्धमें शोभा पानेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, मद्रदेशके अधिपति, बलवान् वीर, महाधनुर्धर मद्रराज शल्यने अपने सारथित्वमें कर्णको मारा गया देखकर क्या कहा ? ॥

दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः ।
ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः ।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त संजय ॥ ८६ ॥

संजय ! भूमण्डलके जो कोई भी नरेश युद्धके लिये आये थे, वे समस्त रणदुर्जय योद्धा वैकर्तन कर्णको मारा गया देखकर क्या बातें कर रहे थे ? ॥ ८६ ॥

द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
के वा मुखमनीकानामासन् संजय भागशः ॥ ८७ ॥

संजय ! रथियोंमें सिंह नरश्रेष्ठ वीरवर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौन-कौनसे वीर सेनाओंके मुख (अग्रभाग) की रक्षा करते रहे ? ॥ ८७ ॥

मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८८ ॥

संजय ! रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज शल्यको कर्णके सारथिके कार्यमें कैसे नियुक्त किया गया ? यह मुझे बताओ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ८९ ॥

युद्ध करते समय भी वीर सूतपुत्रके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन-कौन कर रहे थे ? अथवा उसके बायें पहिये या पृष्ठभागकी रक्षामें कौन-कौन वीर नियुक्त थे ? ॥ ८९ ॥

के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः।
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः॥ ९०॥

किन शूरवीरोंने कर्णका साथ नहीं छोड़ा? और कौन-कौन-से नीच सैनिक वहाँसे भाग गये? तुम सब लोग जब एक साथ होकर लड़ रहे थे, तब महारथी कर्ण कैसे मारा गया?॥ ९०॥

पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः॥ ९१॥
स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा।
व्यर्थः कथं समभवत् तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ९२॥

संजय! जिस समय शूरवीर महारथी पाण्डव पानीकी धारा बरसानेवाले बादलोंके समान स्वयं ही बाणोंकी वृष्टि करते हुए आगे बढ़ने लगे, उस समय महान् बाणोंमें सर्वश्रेष्ठ दिव्य सर्पमुख बाण व्यर्थ कैसे हो गया? यह मुझे बताओ॥ ९१-९२॥

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य संजय।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति॥ ९३॥

संजय! मेरी इस सेनाका उत्कर्ष अथवा उत्साह नष्ट हो गया है। इसके प्रमुख वीर कर्णके मारे जानेपर अब यह बच सकेगी, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता है॥ ९३॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे॥ ९४॥

मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़ देनेवाले महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, यह सुनकर मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है?॥ ९४॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः॥ ९५॥

जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था, वह कर्ण पाण्डवोंद्वारा मारा गया, यह बारंबार सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता॥ ९५॥

द्रोणे हते च यद् वृत्तं कौरवाणां परैः सह।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ९६॥

संजय! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर संग्राममें नरवीर कौरवोंका शत्रुओंके साथ जैसा बर्ताव हुआ, वह मुझे बताओ॥ ९६॥

यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत्।
यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम्॥ ९७॥

शत्रुहन्ता कर्णने कुन्ती-पुत्रोंके साथ जिस प्रकार युद्धका आयोजन किया और जिस प्रकार वह रणभूमिमें शान्त हो गया, वह सारा वृत्तान्त मुझे बताओ॥ ९७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका प्रश्नविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

कर्णको सेनापति बनानेके लिये अश्वत्थामाका प्रस्ताव और सेनापतिके पदपर उसका अभिषेक

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत।
कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे॥ १॥
द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद् भ्रातृभिर्वृतः॥ २॥

संजयने कहा—भरतनन्दन महाराज! उस दिन जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य मारे गये, महारथी द्रोणपुत्रका संकल्प व्यर्थ हो गया और समुद्रके समान विशाल कौरव-सेना भागने लगी, उस समय कुन्तीकुमार अर्जुन अपनी सेनाका व्यूह बनाकर अपने भाइयोंके साथ रणभूमिमें डटे रहे॥ १-२॥

तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत्॥ ३॥

भरतश्रेष्ठ! उन्हें युद्धके लिये डटा हुआ जान आपके पुत्रने अपनी सेनाको भागती देख उसे पराक्रमपूर्वक रोका॥ ३॥

स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत॥ ४॥
लब्धलक्ष्यैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा।
संध्याकालं समासाद्य प्रत्याहारमकारयत्॥ ५॥

भारत! इस प्रकार अपनी सेनाको स्थापित करके, जिन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया था और इसीलिये जो बड़े हर्षके साथ परिश्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन विपक्षी पाण्डवोंके साथ दुर्योधनने अपने ही बाहुबलके भरोसे दीर्घ-कालतक युद्ध करके संध्याकाल आनेपर सैनिकोंको शिबिरमें लौटनेकी आज्ञा दे दी॥ ४-५॥

कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम्।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः॥ ६॥

सेनाको लौटाकर अपने शिबिरमें प्रवेश करनेके पश्चात् समस्त कौरव परस्पर अपने हितके लिये गुप्त मन्त्रणा करने लगे॥ ६॥

पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः॥ ७॥

उस समय वे सब लोग बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त मूल्यवान्

पलंगों तथा श्रेष्ठ सिंहासनोंपर बैठे हुए थे, मानो देवता सुखद शय्याओंपर विराज रहे हों ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना ।
तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम् ।
एवं गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ॥ ९ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने सान्त्वनापूर्ण परम मधुर वाणीद्वारा उन महाधनुर्धर नरेशोंको सम्बोधित करके यह समयोचित बात कही—'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ नरेश्वरो ! तुम सब लोग शीघ्र बोलो, विलम्ब न करो, इस अवस्थामें हमलोगोंको क्या करना चाहिये और सबसे अधिक आवश्यक कर्तव्य क्या है ?' ॥ ८-९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः ।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सिंहासनपर बैठे हुए पुरुषसिंह नरेश युद्धकी इच्छासे नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे ॥ १० ॥

तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम् ।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥ ११ ॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे ।

युद्धमें प्राणोंकी आहुति देनेकी इच्छा रखनेवाले उन नरेशोंकी चेष्टाएँ देखकर राजा दुर्योधनके प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी मुखकी ओर दृष्टिपात करके वाक्यविशारद, मेधावी आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने यह बात कही—॥ ११½ ॥

रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥ १२ ॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः ।

'विद्वानोंने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करानेवाले चार उपाय बताये हैं—राग (राजाके प्रति सैनिकोंकी भक्ति), योग (साधन-सम्पत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एवं कौशल) तथा नीति; परंतु वे सभी दैवके अधीन हैं ॥

लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥ १३ ॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः ।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥ १४ ॥

'हमारे पक्षमें जो देवताओंके समान पराक्रमी, विश्वविख्यात महारथी वीर, नीतिमान्, साधनसम्पन्न, दक्ष और स्वामीके प्रति अनुरक्त थे, वे सब-के-सब मारे गये, तथापि हमें अपनी विजयके प्रति निराश नहीं होना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते ।
ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥ १५ ॥
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत ।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥ १६ ॥

'यदि सारे कार्य उत्तम नीतिके अनुसार किये जायँ तो उनके द्वारा दैवको भी अनुकूल किया जा सकता है; अतः भारत ! हमलोग सर्वगुणसम्पन्न नरश्रेष्ठ कर्णका ही सेनापतिके पदपर अभिषेक करेंगे और इन्हें सेनापति बनाकर हमलोग शत्रुओंको मथ डालेंगे ॥ १५-१६ ॥

एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ १७ ॥

'ये अत्यन्त बलवान्, शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, रणदुर्मद और सूर्यपुत्र यमराजके समान शत्रुओंके लिये असह्य हैं। इसलिये ये रणभूमिमें हमारे विपक्षियोंपर विजय पा सकते हैं' ॥

एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः ।
आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा ॥ १८ ॥

राजन् ! उस समय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके मुखसे यह बात सुनकर आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णके प्रति विशेष आशा बाँध ली ॥ १८ ॥

हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥ १९ ॥
ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वास्य तद् वचः ।
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ २० ॥
स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

भरतनन्दन ! भीष्म और द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, इस आशाको हृदयमें रखकर दुर्योधनको बड़ी सान्त्वना मिली। महाराज ! वह अश्वत्थामाके उस प्रिय वचनको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् अपने बाहुबलका आश्रय ले मनको सुस्थिर करके दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे बड़े प्रेम और सत्कारके साथ अपने लिये हितकर यथार्थ और मङ्गलकारक वचन इस प्रकार कहा—॥

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि ।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥ २२ ॥

'कर्ण ! मैं तुम्हारे पराक्रमको जानता हूँ और यह भी अनुभव करता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह बहुत अधिक है। महाबाहो ! तथापि मैं तुमसे अपने हितकी बात कहना चाहता हूँ ॥ २२ ॥

श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत् तव रोचते ।
भवान् प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ २३ ॥

'वीर ! मेरी यह बात सुनकर तुम अपनी इच्छाके अनुसार जो तुम्हें अच्छा लगे, वह करो। तुम बहुत बड़े बुद्धिमान् तो हो ही, सदाके लिये मेरे सबसे बड़े सहारे भी हो ॥ २३ ॥

भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः॥ २४॥

'मेरे दो सेनापति पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण, जो अतिरथी वीर थे, युद्धमें मारे गये। अब तुम मेरे सेनानायक बनो; क्योंकि तुम उन दोनोंसे भी अधिक शक्तिशाली हो॥ २४॥

वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनंजये।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात् तव॥ २५॥

'वे दोनों महाधनुर्धर होते हुए भी बूढ़े थे और अर्जुनके प्रति उनके मनमें पक्षपात था। राधानन्दन! मैंने तुम्हारे कहनेसे ही उन दोनों वीरोंको सेनापति बनाकर सम्मानित किया था॥ २५॥

पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु॥ २६॥

'तात! भीष्मने पितामहके नातेकी ओर दृष्टिपात करके उस महासमरमें दस दिनोंतक पाण्डवोंकी रक्षा की है॥२६॥

न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे॥ २७॥

'उन दिनों तुमने हथियार रख दिया था; इसलिये महासमरमें अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके पितामह भीष्मको मार डाला था॥ २७॥

हते तस्मिन् महेष्वासे शरतल्पगते तथा।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत् पुरःसरः॥ २८॥

'पुरुषसिंह! उन महाधनुर्धर भीष्मके घायल होकर बाण-शय्यापर सो जानेके बाद तुम्हारे कहनेसे ही द्रोणाचार्य हमारी सेनाके अगुआ बनाये गये थे॥ २८॥

तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम्॥ २९॥

'मेरा विश्वास है कि उन्होंने भी अपना शिष्य समझकर कुन्तीके पुत्रोंकी रक्षा की है। वे बूढ़े आचार्य भी शीघ्र ही धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये॥ २९॥

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रम।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन्॥ ३०॥

'अमितपराक्रमी वीर! उन प्रधान सेनापतियोंके मारे जानेके पश्चात् मैं बहुत सोचनेपर भी समराङ्गणमें तुम्हारे समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देखता॥ ३०॥

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम्॥ ३१॥

'हमलोगोंमेंसे तुम्हीं शत्रुओंपर विजय पानेमें समर्थ हो, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुमने पहले, बीचमें और पीछे भी हमारा हित ही किया है॥ ३१॥

स भवान् धुर्यवत् संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना॥ ३२॥

'तुम धुरन्धर पुरुषकी भाँति युद्धस्थलमें सेना-संचालनका भार वहन करनेके योग्य हो; इसलिये स्वयं ही अपने आपको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कराओ॥ ३२॥

देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः।
तथा भवानिमां सेनां धार्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै॥ ३३॥

'जैसे अविनाशी भगवान् स्कन्द देवताओंकी सेनाका संचालन करते हैं, उसी प्रकार तुम भी धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको अपनी अध्यक्षतामें ले लो॥ ३३॥

जहि शत्रुगणान् सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव।
अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः॥ ३४॥
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः।
तस्मात् त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षैतां महाचमूम्॥ ३५॥

'जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंका संहार किया था, उसी प्रकार तुम भी समस्त शत्रुओंका वध करो। जैसे दानव भगवान् विष्णुको देखते ही भाग जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव तथा पाञ्चाल महारथी तुम्हें रणभूमिमें सेनापतिके रूपमें उपस्थित देखकर भाग खड़े होंगे; अतः पुरुषसिंह! तुम इस विशाल सेनाका संचालन करो॥ ३४-३५॥

भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृंजयाश्च ह॥३६॥

'तुम्हारे सावधानीके साथ खड़े होते ही मूर्ख पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय अपने मन्त्रियोंसहित भाग जायँगे॥३६॥

यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन् स्वेन तेजसा।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून् प्रतापय॥ ३७॥

'जैसे उदित हुआ सूर्य अपने तेजसे तपकर घोर अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंको संतप्त एवं नष्ट करो'॥ ३७॥

संजय उवाच

आशा बलवती राजन् पुत्रस्य तव याभवत्।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्।३८।
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत्।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति॥ ३९॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रके मनमें जो यह प्रबल आशा हो गयी थी कि भीष्म और द्रोणके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, वही आशा मनमें लेकर उस समय उसने कर्णसे इस प्रकार कहा—'सूतपुत्र! अर्जुन तुम्हारे सामने खड़े होकर कभी युद्ध करना नहीं चाहते हैं'॥ ३८-३९॥

कर्ण उवाच

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव संनिधौ।
जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान्॥४०

कर्णने कहा—गान्धारीनन्दन! मैंने तुम्हारे समीप

पहले ही यह बात कह दी है कि मैं पाण्डवोंको, उनके पुत्रों और श्रीकृष्णके साथ ही परास्त कर दूँगा ॥ ४० ॥

सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः।
स्थिरो भव महाराज जितान् विद्धि च पाण्डवान्॥४१॥

महाराज ! तुम धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारा सेनापति बनूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। अब पाण्डवोंको पराजित हुआ ही समझो ॥ ४१ ॥

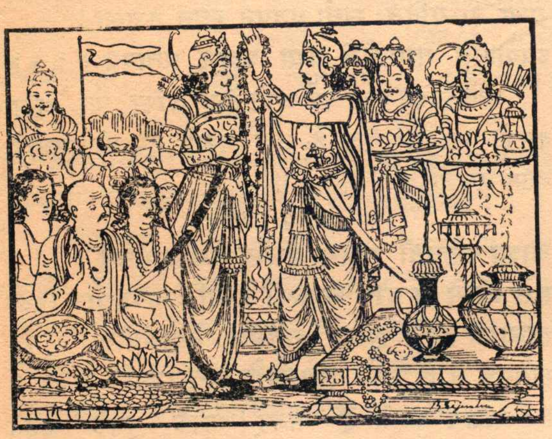
संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! कर्णके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन अन्य सामन्त नरेशोंके साथ उसी प्रकार उठकर खड़ा हो गया, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र खड़े होते हैं ॥ ४२ ॥

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः।

जैसे देवताओंने स्कन्दको सेनापति बनाकर उनका सत्कार किया था, उसी प्रकार समस्त कौरव कर्णको सेनापति बनाकर उसका सत्कार करनेके लिये उद्यत हुए। राजन् ! विजयाभिलाषी दुर्योधन आदि राजाओंने शास्त्रोक्त विधिके द्वारा कर्णका अभिषेक किया ॥ ४३½ ॥



शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥
तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृतं।
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः।
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७ ॥

अभिषेकके लिये सोने तथा मिट्टीके घड़ोंमें अभिमन्त्रित जल रक्खे गये थे। हाथीके दाँत तथा गैंडे और बैलके सींगोंके बने हुए पात्रोंमें भी पृथक्-पृथक् जल रक्खा गया था। उन पात्रोंमें मणि और मोती भी थे। अन्यान्य पवित्र गन्धशाली पदार्थ और औषध भी डाले गये थे। कर्ण गूलरकाठकी बनी हुई चौकीपर, जिसके ऊपर रेशमी कपड़ा बिछा हुआ था, सुखपूर्वक बैठा था। उस अवस्थामें शास्त्रीय विधिके अनुसार पूर्वोक्त सुसज्जित सामग्रियोंद्वारा ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा सम्मानित शूद्रोंने उसका अभिषेक किया और अभिषेक हो जानेपर श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए महामना कर्णकी उन सब लोगोंने स्तुति की ॥ ४४–४७ ॥

ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च।
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार अभिषेक-कार्य सम्पन्न हो जानेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने स्वर्णमुद्राएँ गौएँ तथा धन देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया॥

(स व्यरोचत राधेयः सूतमागधवन्दिभिः।
स्तूयमानो यथा भानुरुदये ब्रह्मवादिभिः ॥

उस समय सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनता हुआ राधापुत्र कर्ण वेदवादी ब्राह्मणों-द्वारा अभिमन्त्रित उदयकालीन सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः पुण्याहघोषेण वादित्रनिनदेन च।
जयशब्देन शूराणां तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥
जयेत्यूचुर्नृपाः सर्वे राधेयं तत्र संगताः ॥)

तत्पश्चात् पुण्याहवाचनके शब्दसे, वाद्योंकी गंभीर ध्वनिसे तथा शूरवीरोंके जय-जयकारसे मिली-जुली हुई भयंकर आवाज वहाँ सब ओर गूँज उठी। उस स्थानपर एकत्र हुए सभी राजाओंने 'राधापुत्र कर्णकी जय' के नारे लगाये ॥

जय पार्थान् सगोविन्दान् सानुगांस्तान् महामृधे।
इति तं वन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥ ४९ ॥
जहि पार्थान् सपाञ्चालान् राधेय विजयाय नः।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥ ५० ॥

बन्दीजनों तथा ब्राह्मणोंने उस समय पुरुषशिरोमणि कर्णको आशीर्वाद देते हुए कहा—'राधापुत्र ! तुम कुन्तीके पुत्रोंको, उनके सेवकों तथा श्रीकृष्णके साथ महासमरमें जीत लो और हमारी विजयके लिये कुन्तीकुमारोंको पाञ्चालों-सहित मार डालो। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य अपनी उग्र किरणोंद्वारा सदा उदय होते ही अन्धकारका विनाश कर देता है ॥ ४९-५० ॥

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ५१ ॥

'जैसे उल्लू सूर्यकी प्रज्वलित किरणोंकी ओर देखनेमें असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे छोड़े हुए बाणोंकी ओर श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव नहीं देख सकते ॥ ५१ ॥

न हि पार्थाः सपाञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः ।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ५२ ॥

'जैसे हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रके सामने दानव नहीं खड़े हो सकते, उसी प्रकार समराङ्गणमें तुम्हारे सामने पाञ्चाल और पाण्डव नहीं ठहर सकते हैं' ॥ ५२ ॥

अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः ।
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३ ॥

राजन्! इस प्रकार अभिषेकसम्पन्न हो जानेपर अमिततेजस्वी राधापुत्र कर्ण अपनी प्रभा तथा रूपसे दूसरे सूर्यके समान अधिक प्रकाशित होने लगा ॥ ५३ ॥

सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदाऽऽत्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥ ५४ ॥

कालसे प्रेरित हुआ आपका पुत्र दुर्योधन राधाकुमार कर्णको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने आपको कृतकृत्य मानने लगा ॥ ५४ ॥

कर्णोऽपि राजन् सम्प्राप्य सैनापत्यमरिंदमः ।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५ ॥

राजन्! शत्रुदमन कर्णने भी सेनापतिका पद प्राप्त करके सूर्योदयके समय सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दे दी ॥

तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

भारत! वहाँ आपके पुत्रोंसे घिरा हुआ कर्ण तारकामय संग्राममें देवताओंसे घिरे हुए स्कन्दके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिषेकविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ५८½ श्लोक हैं)

एकादशोऽध्यायः

कर्णके सेनापतित्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान और मकरव्यूहका निर्माण तथा पाण्डवसेनाके अर्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना और युद्धका आरम्भ

धृतराष्ट्र उवाच

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत् किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सेनापतिका पद पाकर जब परम बुद्धिमान् वैकर्तन कर्ण युद्धके लिये तैयार हुआ और जब स्वयं राजा दुर्योधनने उससे भाईके समान स्नेहपूर्ण वचन कहा, उस समय सूर्योदयकालमें सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देकर उसने क्या किया? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ! कर्णका मत जानकर आपके पुत्रोंने आनन्दमय वाद्योंके साथ सेनाको तैयार होनेका आदेश दिया ॥ ३ ॥

महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ४ ॥

माननीय नरेश! अत्यन्त प्रातःकालसे ही आपकी सेनामें सहसा 'तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' का शब्द गूँज उठा॥

कल्प्यतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम् ।
संनह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥ ६ ॥

प्रजानाथ! सजाये जाते हुए बड़े-बड़े गजराजों, आवरणयुक्त रथों, कवच धारण करते हुए मनुष्यों, कसे जाते हुए घोड़ों तथा उतावलीपूर्वक एक दूसरेको पुकारते हुए योद्धाओंका महान् तुमुल-नाद आकाशमें बहुत ऊँचेतक गूँज रहा था॥

ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्ष्येण केतुना ॥ ७ ॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९ ॥

तदनन्तर सूतपुत्र कर्ण निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी और सब ओरसे पताकाओंद्वारा सुशोभित रथके द्वारा रणयात्राके लिये उद्यत दिखायी दिया। उस रथमें श्वेत पताका फहरा रही थी। बगुलोंके समान सफेद रंगके घोड़े जुते हुए थे। उसपर एक ऐसा धनुष रक्खा हुआ था, जिसके पृष्ठभागपर सोना मढ़ा गया था। उस रथकी पताकापर हाथीके रस्सेका चिह्न बना हुआ था। उसमें गदाके साथ ही सैकड़ों तरकस रक्खे गये थे। रथकी रक्षाके लिये ऊपरसे आवरण लगाया गया था। उसमें शतघ्नी, किंकिणी, शक्ति, शूल और तोमर सञ्चित करके रक्खे गये थे तथा वह रथ अनेक धनुषोंसे सम्पन्न था ॥७-९॥

ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १० ॥

राजन्! कर्ण सोनेकी जालियोंसे विभूषित शङ्खको बजाता हुआ अपने सुवर्णसज्जित विशाल धनुषकी टङ्कार कर रहा था॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम्।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो घ्नन्तं दुरासदम्॥ ११॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः॥ १२॥

पुरुषसिंह ! माननीय नरेश ! रथियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर दुर्जय वीर कर्ण रथपर बैठकर उदयकालीन सूर्यके समान तम (दुःख या अन्धकार) का निवारण कर रहा था। उसे देखकर कोई भी कौरव भीष्म, द्रोण तथा दूसरे महारथियोंके मारे जानेके दुःखको कुछ नहीं समझते थे॥ ११-१२॥

ततस्तु त्वरयन् योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद् बलम्॥ १३॥

मान्यवर ! तदनन्तर शङ्खध्वनिके द्वारा योद्धाओंको जल्दी करनेका आदेश देते हुए कर्णने कौरवोंकी विशाल वाहिनीको शिबिरोंसे बाहर निकाला॥ १३॥

व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया॥ १४॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाला महाधनुर्धर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेकी इच्छासे अपनी सेनाका मकर-व्यूह बनाकर आगे बढ़ा॥ १४॥

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन् व्यवस्थितः।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः॥ १५॥

राजन् ! उस मकरव्यूहके मुखभागमें स्वयं कर्ण खड़ा हुआ, नेत्रोंके स्थानमें शूरवीर शकुनि तथा महारथी उलूक खड़े किये गये॥ १५॥

द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः॥ १६॥

शीर्षस्थानमें द्रोणकुमार अश्वत्थामा और ग्रीवाभागमें दुर्योधनके समस्त भाई स्थित हुए। मध्यस्थान (कटिप्रदेश) में विशाल सेनासे घिरा हुआ राजा दुर्योधन खड़ा हुआ॥

वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः॥ १७॥

राजेन्द्र ! उस मकरव्यूहके बायें पैरकी जगह नारायणी सेनाके रणदुर्मद गोपालोंके साथ कृतवर्मा खड़ा किया गया था॥

पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः॥ १८॥

राजन् ! व्यूहके दाहिने पैरके स्थानमें महाधनुर्धर त्रिगर्तों और दाक्षिणात्योंसे घिरे हुए सत्यपराक्रमी कृपाचार्य खड़े थे॥

अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया॥ १९॥

बायें पैरके पिछले भागमें मद्रदेशकी विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा शल्य उपस्थित थे॥ १९॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः॥ २०॥

महाराज ! दाहिने पैरके पिछले भागमें एक सहस्र रथियों और तीन सौ हाथियोंसे घिरे हुए सत्यप्रतिज्ञ सुषेण खड़े किये गये॥ २०॥

पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा।
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ॥ २१॥

व्यूहके पुच्छभागमें महापराक्रमी दोनों भाई राजा चित्र और चित्रसेन अपनी विशाल सेनाके साथ उपस्थित हुए॥

तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ २२॥

राजेन्द्र ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ कर्णके इस प्रकार यात्रा करनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—॥

पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः॥ २३॥

'वीर पार्थ ! देखो, इस समय युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेना कैसी स्थितिमें है ? कर्णने वीर महारथियोंद्वारा इसे किस प्रकार सुरक्षित कर दिया है ?॥ २३॥

हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम॥ २४॥

'महाबाहो ! कौरवोंकी इस विशाल सेनाके प्रमुख वीर तो मारे जा चुके हैं। अब इसके तुच्छ सैनिक ही शेष रह गये हैं। इस समय तो यह मुझे तिनकोंके समान जान पड़ती है॥

एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः॥ २५॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन॥ २६॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि॥ २७॥

'इस सेनामें एकमात्र महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण विराजमान है, जो रथियोंमें श्रेष्ठ है तथा जिसे देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर, बड़े-बड़े नाग एवं चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंके लोग मिलकर भी नहीं जीत सकते। महाबाहु फाल्गुन ! आज उसी कर्णको मारकर तुम्हारी विजय होगी और मेरे हृदयमें बारह वर्षोंसे जो सेल कसक रहा है, वह निकल जायगा। महाबाहो ! ऐसा जानकर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसे व्यूहकी रचना करो'॥ २५—२७॥

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम्॥ २८॥

भाईकी यह बात सुनकर श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुनने इस कौरव-सेनाके मुकाबलेमें अपनी सेनाके अर्द्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना की॥ २८॥

वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः।

दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनंजयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥

उस व्यूहके वाम पार्श्वमें भीमसेन और दाहिने पार्श्वमें महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न खड़े हुए। उसके मध्यभागमें राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र धनंजय खड़े थे। धर्मराजके पृष्ठभागमें नकुल और सहदेव थे ॥ २९-३० ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३१ ॥

पाञ्चाल महारथी युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके चक्र-रक्षक थे। किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित होकर उन दोनोंने युद्धमें कभी उनका साथ नहीं छोड़ा ॥ ३१ ॥

शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत ॥ ३२ ॥

भारत! शेष वीर नरेश कवच धारण करके व्यूहके विभिन्न भागोंमें अपने उत्साह और प्रयत्नके अनुसार खड़े हुए थे ॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३३ ॥

भरतनन्दन! इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके पाण्डवों तथा आपके महाधनुर्धरोंने युद्धमें ही मन लगाया ॥

दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान् पाण्डवान् मेने धार्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥ ३४ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा व्यूह-रचनापूर्वक खड़ी की गयी आपकी सेनाको देखकर भाइयोंसहित दुर्योधनने यह मान लिया कि 'अब तो पाण्डव मारे गये' ॥ ३४ ॥

तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्तराष्ट्रान् हतान् मेने सकर्णान् वै जनाधिपः ॥ ३५ ॥

उसी प्रकार पाण्डवसेनाका व्यूह देखकर राजा युधिष्ठिरने भी कर्णसहित आपके सभी पुत्रोंको मारा गया ही समझ लिया ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥
सेनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥ ३७ ॥

राजन्! तदनन्तर दोनों सेनाओंमें चारों ओर महान् शब्द करनेवाले शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, दुन्दुभि और झाँझ आदि बाजे बज उठे। नगाड़े पीटे जाने लगे। साथ ही विजयकी अभिलाषा रखनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद भी होने लगा ॥ ३६-३७ ॥

हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप ॥ ३८ ॥

जनेश्वर! घोड़ोंके हींसने, हाथियोंके चिग्घाड़ने तथा रथके पहियोंके घरघरानेके भयंकर शब्द प्रकट होने लगे ॥

न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥ ३९ ॥

भारत! व्यूहके मुख्य द्वारपर कवच धारण किये महा-धनुर्धर कर्णको खड़ा देख कोई भी सैनिक द्रोणाचार्यके मारे जानेके दुःखका अनुभव न कर सका ॥ ३९ ॥

उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योन्यमोजसा ॥ ४० ॥

महाराज! वे दोनों सेनाएँ हर्षोत्फुल्ल मनुष्योंसे भरी थीं। राजन्! वे बलपूर्वक परस्पर चोट करने और जूझनेकी इच्छासे मैदानमें आकर खड़ी हो गयीं ॥४०॥

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र! वहाँ रोषमें भरकर सावधानीके साथ खड़े हुए कर्ण और पाण्डव अपनी-अपनी सेनामें विचरने लगे ॥ ४१ ॥

नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तयोः पक्षप्रपक्षेभ्यो निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥ ४२ ॥

वे दोनों सेनाएँ परस्पर नृत्य करती हुई-सी भिड़ गयीं। युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर उन दोनों व्यूहोंके पक्ष और प्रपक्षसे निकलने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ४३ ॥

महाराज! तदनन्तर एक दूसरेपर आघात करनेवाले मनुष्य, हाथी, घोड़ों और रथोंका वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें व्यूहनिर्माणविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और भीमसेनके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध

संजय उवाच

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ सम्प्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! उन दोनों सेनाओंके हाथी, घोड़े और मनुष्य बहुत प्रसन्न थे। देवताओं तथा असुरोंके समान प्रकाशित होनेवाली वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगीं ॥ १ ॥

ततो नररथाश्वेभाः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः ।
सम्प्रहारान् भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् भयंकर पराक्रमी रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल सैनिक शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाले घोर प्रहार बड़े जोर-जोरसे करने लगे ॥ २ ॥

पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः ।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी वीरोंने विपक्षी पुरुष-सिंहोंके मस्तकोंको काट-काटकर उनके द्वारा धरतीको पाटने लगे । उनके वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् तथा कमलोंके समान सुगन्धित थे ॥ ३ ॥

अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥

अर्द्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र, खड्ग, पट्टिश और फरसोंद्वारा वे योद्धाओंके मस्तक काटने लगे ॥ ४ ॥

व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदाः ॥ ५ ॥

हृष्ट-पुष्ट और लंबी भुजाओंवाले वीरोंने, हृष्ट-पुष्ट और लंबी बाँहोंवाले योद्धाओंकी बाँहें पृथ्वीपर काट गिरायीं । वे भुजाएँ आयुधों और अङ्गदोंसहित शोभा पा रही थीं ॥५॥

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्ताङ्गुलितलैस्तथा ।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव॥ ६ ॥

जिनके तलवे और अङ्गुलियाँ लाल रंगकी थीं, उन तड़पती हुई भुजाओंसे रणभूमिकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो वहाँ गरुड़के गिराये हुए भयंकर पञ्चमुख सर्प छटपटा रहे हों ॥ ६ ॥

द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥

शत्रुओंद्वारा मारे गये वीर हाथी, रथ और घोड़ोंसे उसी प्रकार गिर रहे थे, जैसे स्वर्गवासी जीव पुण्य क्षीण होनेपर वहाँके विमानोंसे नीचे गिर पड़ते हैं ॥ ७ ॥

गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥

अन्य सैकड़ों वीर बड़े-बड़े वीरोंद्वारा भारी गदाओं, परिघों और मुसलोंसे कुचले जाकर रणभूमिमें गिर रहे थे ॥ ८ ॥

रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन् परमसंकुले ॥ ९ ॥

उस भारी घमासान युद्धमें रथोंने रथोंको मथ डाला, मतवाले हाथियोंने मदमत्त गजराजोंको धराशायी कर दिया और घुड़सवारोंने घुड़सवारोंको कुचल डाला ॥ ९ ॥

रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥

रथियोंद्वारा मारे गये पैदल मनुष्य, हाथियोंद्वारा कुचले गये रथ और रथी, पैदलोंद्वारा मारे गये घुड़सवार और घुड़सवारोंद्वारा कालके गालमें भेजे गये पैदल सिपाही उस युद्धभूमिमें सो रहे थे ॥ १० ॥

रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥

गजों और गजारोहियोंने रथियों, घुड़सवारों और पैदलोंको मार गिराया, पैदलोंने रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारोंको धराशायी कर दिया, घुड़सवारोंने रथियों, पैदलों और गजारोहियोंको मार डाला तथा रथियोंने भी पैदल मनुष्यों और गजारोहियोंको मार गिराया ॥ ११ ॥

रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥

पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार तथा रथियोंने रथियों, घुड़सवारों, हाथीसवारों और पैदलोंका हाथों, पैरों, अस्त्र-शस्त्रों एवं रथोंद्वारा महान् संहार कर डाला ॥ १२ ॥

तथा तस्मिन् बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥

इस प्रकार जब शूरवीरोंद्वारा वह सेना मारी जाने लगी और मारी गयी, तब कुन्तीके पुत्रोंने भीमसेनको आगे रखकर हमलोगोंपर आक्रमण किया ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥
वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, चेकितान, द्राविड सैनिकोंसहित महान् व्यूहसे घिरे हुए पाण्ड्य, चोल तथा केरल योद्धाओंने धावा किया ॥ १४½ ॥

व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥
आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।

इन सबकी छाती चौड़ी और भुजाएँ तथा आँखें बड़ी थीं । वे सब-के-सब ऊँचे कदके थे । उन्होंने भाँति-भाँतिके शिरोभूषण एवं हार धारण किये थे । उनके दाँत लाल थे और वे मतवाले हाथीके समान पराक्रमी थे ॥ १५½ ॥

नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः॥ १६ ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।

उन्होंने अनेक प्रकारके रंगीन वस्त्र पहन रक्खे थे और अपने अङ्गोंमें सुगन्धित चूर्ण लगा रक्खा था । उनकी कमरमें तलवार बँधी थी, वे हाथमें पाश लिये हुए थे और हाथियोंको भी रोक देनेकी शक्ति रखते थे ॥ १६½ ॥

समानमृत्यवो राजन् नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः ।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥

राजन् ! वे सभी सैनिक समानरूपसे मृत्युको वरण करनेकी प्रतिज्ञा करके एक दूसरेका साथ नहीं छोड़ते थे। वे मस्तकपर मोरपंख धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें धनुष शोभा पाता था। उनके केश बहुत बड़े थे और वे प्रिय वचन बोलते थे। अन्यान्य पैदल और घुड़सवार भी बड़े भयंकर पराक्रमी थे ॥ १७-१८ ॥

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः।
कारूषाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः॥ १९॥

तदनन्तर पुनः दूसरे शूरवीर चेदि, पाञ्चाल, केकय, कारूष, कोसल, काञ्चीनिवासी और मागध सैनिक भी हमी लोगोंपर चढ़ आये ॥ १९ ॥

तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ २० ॥

उनके रथ, घोड़े और हाथी उत्तम कोटिके थे। पैदल सैनिक भी बड़े भयंकर थे। वे नाना प्रकारके बाजे बजानेवालोंके साथ हर्षमें भरकर नाचते-कूदते और हँसते थे ॥

तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात् त्वदीयान् नागधूर्गतः॥ २१ ॥

उस विशाल सेनाके मध्यभागमें हाथीकी पीठपर बड़े-बड़े महावतोंसे घिरकर बैठे हुए भीमसेन आपके सैनिकोंकी ओर बढ़े आ रहे थे ॥ २१ ॥

स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत् कल्पितो बभौ।
उदयाद्र्यग्र्यभवनं यथाभ्युदितभास्करम् ॥ २२ ॥

उस अत्यन्त भयंकर गजराजको विधिपूर्वक सजाया गया था, वह सूर्योदयसे युक्त उदयाचलके उच्चतम शिखरके समान सुशोभित होता था ॥ २२ ॥

तस्यायसं वर्म वरं वररत्नविभूषितम्।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम् ॥ २३ ॥

उसका लोहेका बना हुआ उत्तम कवच श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित होकर ताराओंसे भरे हुए शरत्कालीन आकाशके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ २३ ॥

स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः।
शरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद् रिपून् ॥ २४ ॥

उस समय सुन्दर मुकुट और आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें तोमर लेकर शरत्कालके मध्याह्न सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले भीमसेन अपने तेजसे शत्रुओंको दग्ध करने लगे ॥

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात् क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥ २५ ॥

उनके उस हाथीको दूरसे ही देखकर हाथीपर ही बैठे हुए महामना क्षेमधूर्तिने महामनस्वी भीमसेनको ललकारते हुए उनपर धावा किया ॥ २५ ॥

तयोः समभवद् युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ २६ ॥

जैसे वृक्षोंसे भरे हुए दो महान् पर्वत दैवेच्छासे परस्पर टकरा रहे हों, उसी प्रकार उन भयानक रूपधारी दोनों गजराजोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ २६ ॥

संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्।
बलवत् सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वान्योन्यं विनेदतुः ॥ २७ ॥

जिनके हाथी एक दूसरेसे उलझे हुए थे, वे दोनों वीर क्षेमधूर्ति और भीमसेन सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले तोमरोंद्वारा एक दूसरेको बलपूर्वक विदीर्ण करते हुए जोर-जोरसे गर्जने लगे ॥ २७ ॥

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः।
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥ २८ ॥

फिर हाथियोंद्वारा ही पीछे हटकर वे दोनों मण्डलाकार विचरने और धनुष लेकर एक दूसरेपर बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ २८ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः ॥ २९ ॥

वे गर्जने, ताल ठोंकने और बाणोंके शब्दसे चारों ओरके योद्धाओंको हर्ष प्रदान करते हुए सिंहनाद कर रहे थे ॥

समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ॥ ३० ॥

वे दोनों महाबली और विद्वान् योद्धा उन सूँड़ उठाये हुए दोनों हाथियोंद्वारा युद्ध कर रहे थे। उस समय उन हाथियोंके ऊपर लगी हुई पताकाएँ हवाके वेगसे फहरा रही थीं॥

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः ॥ ३१ ॥

जैसे वर्षाकालके दो मेघ पानी बरसा रहे हों, उसी प्रकार शक्ति और तोमरोंकी वर्षासे एक दूसरेके धनुषको काटकर वे दोनों ही परस्पर गर्जन-तर्जन करने लगे ॥ ३१ ॥

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन् ॥ ३२ ॥

उस समय क्षेमधूर्तिने भीमसेनकी छातीमें बड़े वेगसे एक तोमर धँसा दिया। फिर गर्जना करते हुए उसने उन्हें छः तोमर और मारे ॥ ३२ ॥

स भीमसेनः शुशुभे तोमरै रङ्गमाश्रितैः।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥ ३३ ॥

अपने शरीरमें धँसे हुए उन तोमरोंद्वारा क्रोधसे उद्दीप्त शरीरवाले भीमसेन मेघोंद्वारा सात घोड़ोंवाले सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३३ ॥

ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥ ३४ ॥

तब भीमसेनने सूर्यके समान प्रकाशमान तथा सीधी

गतिसे जानेवाले एक लोहमय तोमरको अपने शत्रुपर प्रयत्नपूर्वक छोड़ा ॥ ३४ ॥

ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः।
दशभिस्तोमरं भित्त्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५॥

यह देख कुलूतदेशके राजा क्षेमधूर्तिने अपने धनुषको नवाकर दस सायकोंसे उस तोमरको काट डाला और साठ बाण मारकर भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम्।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन् पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् गर्जते हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनने मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले धनुषको लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुके हाथीको पीड़ित कर दिया ॥३६॥

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद् वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके बाणसमूहोंसे पीड़ित हुआ वह गजराज हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान रोकनेपर भी वहाँ रुक न सका ॥ ३७ ॥

तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट्।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३८ ॥

जैसे आँधीके उड़ाये हुए मेघके पीछे वायुप्रेरित दूसरा मेघ जा रहा हो, उसी प्रकार भीमसेनका भयंकर गजराज क्षेमधूर्तिके उस हाथीका पीछा करने लगा ॥ ३८ ॥

संनिवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रतापवान्।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

उस समय प्रतापी क्षेमधूर्तिने अपने हाथीको किसी प्रकार रोककर सामने आते हुए भीमसेनके हाथीको बाणोंसे बींध डाला ॥ ३९ ॥

ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ॥ ४० ॥

इसके बाद अच्छी तरह छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले क्षुर नामक बाणसे भीमसेनने शत्रुके धनुषको काटकर उसके हाथीको पुनः अच्छी तरह पीड़ित किया ॥४०॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत्।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥

तब क्षेमधूर्तिने कुपित हो रणभूमिमें भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी और अनेक नाराचोंद्वारा उनके हाथीके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया ॥ ४१ ॥

स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥ ४२ ॥

भारत ! इससे भीमसेनका महान् गजराज पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके गिरनेसे पहले ही भीमसेन कूदकर भूमिपर खड़े हो गये ॥ ४२ ॥

तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत्।
तस्मात् प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥ ४३ ॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन् वृकोदरः।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर भीमने भी अपनी गदासे क्षेमधूर्तिके हाथीको मार डाला। फिर जब उस मरे हुए हाथीसे कूदकर क्षेमधूर्ति तलवार उठाये सामने आने लगा, उस समय भीमसेनने उस-



पर भी गदासे प्रहार किया। गदाकी चोट खाकर उसके प्राणपखेरू उड़ गये और वह तलवार लिये हुए अपने हाथीके पास ही गिर पड़ा ॥ ४३-४४ ॥

वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा।
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम्।
प्राद्रवद् व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे वज्रके आघातसे टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समीप वज्रका मारा हुआ सिंह गिरा हो, उसी प्रकार उस हाथीके समीप क्षेमधूर्ति धराशायी हो रहे थे। कुलूतोंका यश बढ़ानेवाले राजा क्षेमधूर्तिको मारा गया देख आपकी सेना व्यथित होकर भागने लगी ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें क्षेमधूर्तिका वधविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध तथा सात्यकिके द्वारा विन्द और अनुविन्दका वध

संजय उवाच

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम्।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् महाधनुर्धर शूरवीर कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें पाण्डव-सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ १ ॥

तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः ॥ २ ॥

राजन्! इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए महारथी पाण्डव भी कर्णके सामने ही आपके बेटेकी सेनाका विनाश करने लगे ॥

कर्णोऽपि राजन् समरे व्यहनत् पाण्डवीं चमूम्।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ३ ॥

महाराज! कर्णके नाराच कारीगरोंद्वारा धोकर साफ किये गये थे, इसलिये सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे थे। उनके द्वारा वह भी रणभूमिमें पाण्डव-सेनाका वध करने लगा ॥ ३ ॥

तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ ४ ॥

भरतनन्दन! वहाँ कर्णके चलाये हुए नाराचोंकी मार खाकर झुंड-के-झुंड हाथी चिग्घाड़ने, पीड़ासे कराहने, मलिन होने और दसों दिशाओंमें चक्कर काटने लगे ॥ ४ ॥

वध्यमाने बले तस्मिन् सूतपुत्रेण मारिष।
नकुलोऽभ्यद्रवत् तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥ ५ ॥

माननीय नरेश! सूतपुत्रके द्वारा उस महासमरमें जब अपनी सेना मारी जाने लगी, तब नकुलने तुरंत ही कर्णपर धावा किया ॥ ५ ॥

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ॥ ६ ॥

भीमसेनने दुष्कर कर्म करते हुए अश्वत्थामाको तथा सात्यकिने केकयदेशीय विन्द और अनुविन्दको रोका ॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम् ॥ ७ ॥

सामने आते हुए श्रुतकर्माको राजा चित्रसेनने रोका तथा प्रतिविंध्यने विचित्र ध्वज और धनुषवाले चित्रका सामना किया ॥ ७ ॥

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
संशप्तकगणान् क्रुद्धो ह्यभ्यधावद् धनंजयः ॥ ८ ॥

दुर्योधनने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरपर और क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने संशप्तकगणोंपर धावा किया ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन् वीरवरक्षये।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥ ९ ॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस संग्राममें धृष्टद्युम्न कृपाचार्यके साथ युद्ध करने लगे और शिखण्डी कभी पीछे न हटनेवाले कृतवर्मासे भिड़ गया ॥ ९ ॥

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥ १० ॥

महाराज! श्रुतकीर्तिने शल्यपर और प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया ॥ १० ॥

कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत ॥ ११ ॥

भरतनन्दन! केकयराजकुमार विन्द और अनुविन्दने युद्धमें चमकीले बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको और सात्यकिने दोनों केकयराजकुमारोंको आच्छादित कर दिया ॥ ११ ॥

तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम्।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने ॥ १२ ॥

जैसे विशाल वनमें दो हाथी अपने विरोधी हाथीपर दोनों दाँतोंसे प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर भ्राता विन्द और अनुविन्द सात्यकिकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाने लगे ॥ १२ ॥

शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन् विव्यधतुः शरैः ॥ १३ ॥

राजन्! उन दोनोंके कवच बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे, तो भी उन दोनों भाइयोंने रणभूमिमें सत्यकर्मा सात्यकिको बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १३ ॥

तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन् सर्वतोदिशः।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत ॥ १४ ॥

महाराज! भरतनन्दन! सात्यकिने हँसते-हँसते सम्पूर्ण दिशाओंको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करके उन दोनों भाइयोंको रोक दिया ॥ १४ ॥

वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥ १५ ॥

सात्यकिकी बाणवर्षासे रोके जाते हुए उन दोनों राजकुमारोंने तुरंत ही उनके रथको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १५ ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे ॥ १६ ॥

तब महायशस्वी सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उन दोनोंके विचित्र धनुषोंको काटकर उन्हें युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १६ ॥

अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान्।

सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥ १७ ॥

फिर वे दोनों भाई दूसरे विचित्र धनुष और उत्तम बाण लेकर सात्यकिको आच्छादित करते हुए सुन्दर एवं शीघ्र गतिसे सब ओर विचरने लगे ॥ १७ ॥

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए स्वर्णभूषित महान् बाण, जो कङ्क और मोरके पंखोंसे सुशोभित थे, सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए गिरने लगे ॥ १८ ॥

बाणान्धकारमभवत् तयो राजन् महामृधे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥

राजन् ! उस महासमरमें उन दोनोंके बाणोंसे अन्धकार छा गया। फिर उन तीनों महारथियोंने एक दूसरेके धनुष काट डाले ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत् समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥ २० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ।

महाराज ! फिर तो रणदुर्मद सात्यकि कुपित हो उठे। उन्होंने युद्धस्थलमें दूसरा धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रके द्वारा अनुविन्दका सिर काट लिया ॥ २०½ ॥



अपतत् तच्छिरो राजन् कुण्डलोपचितं महत् ॥ २१ ॥
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे ।
शोचयन् केकयान् सर्वाञ्जगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२ ॥

राजन् ! उस महासमरमें मारे गये अनुविन्दका कुण्डलमण्डित महान् मस्तक शम्बरासुरके सिरके समान कटकर गिरा और समस्त केकयोंको शोकमें डालता हुआ शीघ्र पृथ्वीपर जा पड़ा ॥ २१-२२ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् ॥ २३ ॥

शूरवीर अनुविन्दको मारा गया देख उसके महारथी भाई विन्दने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सात्यकिको चारों ओरसे रोका ॥ २३ ॥

स षष्ट्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

उसने शिलापर तेज किये गये सुवर्णपंखयुक्त साठ बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके बड़े जोरकी गर्जना की और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २५ ॥

तदनन्तर केकय-महारथी विन्दने तुरंत ही सात्यकिकी दोनों भुजाओं और छातीमें कई हजार बाण मारे ॥ २५ ॥

स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
रराज समरे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ॥ २६ ॥

राजन् ! उन बाणोंसे समराङ्गणमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो लहू-लुहान हो गये और वे खिले हुए पलाशके समान सुशोभित होने लगे ॥ २६ ॥

सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना ।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव ॥ २७ ॥

महामना कैकेय (विन्द) के द्वारा समराङ्गणमें घायल हुए सात्यकिने हँसते हुए-से पचीस बाण मारकर कैकेयको भी घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तावन्योन्यस्य समरे संछिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥ २८ ॥

उन दोनों महारथियोंने युद्धस्थलमें एक दूसरेके सुन्दर धनुष काटकर तुरंत ही सारथि और घोड़े भी मार डाले ॥ २८ ॥

विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥ २९ ॥

फिर वे सुन्दर भुजाओंवाले दोनों वीर रथहीन होकर सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल और तलवार लिये खड्ग-युद्धके लिये उद्यत हो युद्धस्थलमें एक दूसरेके सामने आये ॥ २९ ॥

व्यरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥ ३० ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें महाबली इन्द्र और जम्भासुर

शोभा पाते थे, उसी प्रकार युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें उत्तम खड्ग धारण किये हुए वे दोनों योद्धा सुशोभित हो रहे थे ॥ ३० ॥

मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे।
अन्योन्यमभितस्तूर्ण समाजग्मतुराहवे ॥ ३१ ॥

उस महासमरमें मण्डलाकार विचरते और पैंतरे दिखाते हुए वे दोनों वीर तुरंत ही एक दूसरेके समीप आ गये ॥ ३१ ॥

अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम्।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ३२ ॥
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः।

फिर वे एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे। तदनन्तर सात्यकिने विन्दकी ढालके दो टुकड़े कर दिये। इसी प्रकार राजकुमार विन्दने भी सात्यकिकी ढाल टूक-टूक कर दी ॥ ३२½ ॥

चर्म च्छित्त्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥ ३३ ॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च।

सैकड़ों तारक-चिह्नोंसे भरी हुई सात्यकिकी ढाल काटकर विन्द गत और प्रत्यागत आदि पैंतरे बदलने लगा ॥ ३३½ ॥

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ३४ ॥
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः।

युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें श्रेष्ठ-खड्ग धारण करके विचरते हुए विन्दको सात्यकिने तिरछे हाथसे शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ ३४½ ॥

सवर्मा केकयो राजन् द्विधा छिन्नो महारणे ॥ ३५ ॥
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः।

राजन्! इस प्रकार महायुद्धमें दो टुकड़ोंमें कटा हुआ कवचसहित महाधनुर्धर केकयराज वज्रके मारे हुए पर्वतके समान गिर पड़ा ॥ ३५½ ॥

तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥ ३६ ॥
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परंतपः।

रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन रणशूर सात्यकि विन्दका वध करके तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गये ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः।
केकयानां महत् सैन्यं व्यधमत् सात्यकिः शरैः ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् विधिपूर्वक सजाकर लाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ हो सात्यकि अपने बाणोंद्वारा केकयोंकी विशाल सेनाका संहार करने लगे ॥ ३७ ॥

सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३८ ॥

समरभूमिमें मारी जाती हुई केकयोंकी वह विशाल सेना रणमें शत्रुको त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गयी ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वधविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्यद्वारा क्रमशः चित्रसेन एवं चित्रका वध, कौरवसेनाका पलायन तथा अश्वत्थामाका भीमसेनपर आक्रमण

संजय उवाच

श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम्।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रुतकर्माने समराङ्गणमें कुपित हो राजा चित्रसेनको पचास बाण मारे ॥

अभिसारस्तु तं राजन् नवभिर्नतपर्वभिः।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥

नरेश्वर! अभिसारके राजा चित्रसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंसे श्रुतकर्माको घायल करके पाँचसे उसके सारथिको भी बींध डाला ॥ २ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए श्रुतकर्माने सेनाके मुहानेपर तीखे नाराचसे चित्रसेनके मर्मस्थलपर आघात किया ॥ ३ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना।
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥ ४ ॥

महामना श्रुतकर्माके नाराचसे अत्यन्त घायल होनेपर वीर चित्रसेनको मूर्छा आ गयी। वे अचेत हो गये ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥ ५ ॥

इसी बीचमें महायशस्वी श्रुतकीर्तिने नब्बे बाणोंसे भूपाल चित्रसेनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥

तदनन्तर होशमें आकर महारथी चित्रसेनने एक भल्लसे श्रुतकर्माका धनुष काट डाला और उसे भी सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम्।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७ ॥

तब श्रुतकर्माने शत्रुओंके वेगको नष्ट करनेवाला दूसरा

सुवर्णभूषित धनुष लेकर चित्रसेनको अपने बाणोंकी लहरोंसे विचित्र रूपधारी बना दिया ॥ ७ ॥

स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
अशोभत महारङ्गे श्वाविच्छललतो यथा ॥ ८ ॥

विचित्र माला धारण करनेवाले नवयुवक राजा चित्रसेन उन बाणोंसे चित्रित हो युद्धके महान् रङ्गस्थलमें काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥

तब उस शूरवीर नरेशने श्रुतकर्माकी छातीमें बड़े वेगसे नाराचका प्रहार किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १० ॥

उस समय नाराचसे घायल हुआ श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उसी प्रकार रक्त बहाने लगा, जैसे गेरूसे भीगा हुआ पर्वत लाल रंगकी जलधारा बहाता है ॥ १० ॥

ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् खूनसे लथपथ अंगोंवाला वीर श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उस रुधिरसे अभिनव शोभा धारण करके खिले हुए पलाशवृक्षके समान सुशोभित हुआ ॥ ११ ॥

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १२ ॥

राजन् ! शत्रुके द्वारा इस प्रकार आक्रान्त होनेपर श्रुतकर्मा कुपित हो उठा और उसने राजा चित्रसेनके शत्रु-निवारक धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ १२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः ।
छादयन् समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः ॥ १३ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर चित्रसेनको आच्छादित करते हुए श्रुतकर्माने सुन्दर पंखवाले तीन सौ नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक पैनी धारवाले तीखे भल्लसे उसने महामना चित्रसेनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको काट लिया ॥ १४ ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम् ॥ १५ ॥

चित्रसेनका वह दीप्तिशाली मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो चन्द्रमा दैवेच्छावश स्वर्गसे भूतलपर आ गिरा हो ॥१५॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! अभिसार देशके अधिपति राजा चित्रसेनको मारा गया देख उनके सैनिक बड़े वेगसे भाग चले ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए महाधनुर्धर श्रुतकर्माने अपने बाणोंद्वारा उस सेनापर आक्रमण किया, मानो प्रलयकालमें कुपित हुए यमराज समस्त प्राणियोंपर धावा बोल रहे हों॥१७॥

ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥ १८ ॥

युद्धमें आपके धनुर्धर पौत्र श्रुतकर्माद्वारा मारे जाते हुए वे सैनिक दावानलसे झुलसे हुए हाथियोंके समान तुरंत ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १८ ॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १९ ॥

शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह छोड़कर भागते हुए उन सैनिकोंको देखकर अपने तीखे बाणोंसे उन्हें खदेड़ते हुए श्रुतकर्माकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १९ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥ २० ॥

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्यने पाँच बाणोंद्वारा चित्रको क्षत-विक्षत करके तीन बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया और एक बाणसे उसके ध्वजको भी बींध डाला ॥ २० ॥

तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१ ॥

तब चित्रने कङ्क और मयूरकी पाँखोंसे युक्त स्वच्छ धार और सुनहरे पंखवाले नौ भल्लोंसे प्रतिविन्ध्यकी दोनों भुजाओं और छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२ ॥

भारत ! प्रतिविन्ध्यने अपने बाणोंद्वारा उसके धनुषको काटकर पाँच तीखे बाणोंसे चित्रको भी घायल कर दिया॥२२॥

ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत् तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥ २३ ॥

महाराज ! तदनन्तर चित्रने आपके पौत्रपर घोर अग्निशिखाके समान सुवर्णमय घंटोंसे सुशोभित एक दुर्धर्ष शक्ति चलायी ॥ २३ ॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २४ ॥

समराङ्गणमें बड़ी भारी उल्काके समान सहसा आती हुई उस शक्तिको प्रतिविन्ध्यने हँसते हुए-से दो टुकड़ोंमें काट डाला ॥ २४ ॥

सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥ २५ ॥

प्रतिविन्ध्यके तीखे बाणोंसे दो टूक होकर वह शक्ति प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाली अशनिके समान गिर पड़ी ॥ २५ ॥

शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम्।
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २६॥

उस शक्तिको नष्ट हुई देख चित्रने सोनेकी जालियोंसे विभूषित एक विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे प्रतिविन्ध्य-पर छोड़ दिया ॥ २६ ॥

सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७॥

उस गदाने महासमरमें प्रतिविन्ध्यके घोड़ों और सारथिको मार डाला और रथको भी चूर-चूर करती हुई वह बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी बीचमें रथसे कूदकर प्रतिविन्ध्यने चित्रपर एक सुवर्णमय दण्डवाली सुसज्जित शक्ति चलायी ॥ २८ ॥

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन् महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥ २९ ॥

राजन् ! महामना राजा चित्रने अपनी ओर आती हुई उस शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और फिर उसीको प्रतिविन्ध्यपर दे मारा ॥ २९ ॥

समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिताभासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ ३० ॥

वह अत्यन्त कान्तिमती शक्ति रणभूमिमें शूरवीर प्रति-विन्ध्यको जा लगी और उसकी दाहिनी भुजाको विदीर्ण करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी । वह जहाँ गिरी, उस स्थानको बिजलीके समान प्रकाशित करने लगी ॥ ३० ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकाङ्क्षया ॥ ३१ ॥

राजन् ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए प्रतिविन्ध्यने चित्र-के वधकी इच्छासे उसके ऊपर एक सुवर्णभूषित तोमरका प्रहार किया ॥ ३१ ॥

स तस्य गात्रावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२ ॥

वह तोमर उसके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करता हुआ तुरंत धरतीमें समा गया, जैसे कोई बड़ा सर्प बिलमें घुस गया हो ॥ ३२ ॥

स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ ॥ ३३ ॥

तोमरसे अत्यन्त आहत हो राजा चित्र अपनी परिघके



समान मोटी और विशाल भुजाओंको फैलाकर तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३३ ॥

चित्रं सम्प्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३४ ॥

चित्रको मारा गया देख संग्राममें शोभा पानेवाले आपके योद्धा प्रतिविन्ध्यपर चारों ओरसे वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ ३४ ॥

सृजन्तो विविधान् बाणाञ्छतघ्नीश्च सकिंकिणीः ।
तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३५ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उन योद्धाओंने नाना प्रकारके बाणों और छोटी-छोटी घंटियोंसहित शतघ्नियोंका प्रहार करके उसे आच्छादित कर दिया ॥ ३५ ॥

तान् विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत् तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरोंकी सेनाको खदेड़ते हैं, उसी प्रकार युद्धस्थलमें महाबाहु प्रतिविन्ध्यने अपने बाणसमूहोंसे उन अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट करके आपकी सेनाको मार भगाया ॥

ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्राकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! समरभूमिमें पाण्डवोंकी मार खाकर आपके सैनिक हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान सहसा छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये ॥ ३७ ॥

विप्रद्रुते बले तस्मिन् वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात् तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥ ३८ ॥

उनके द्वारा मारी जाती हुई आपकी वह सेना जब चारों ओर भागने लगी, तब अकेले अश्वत्थामाने तुरंत ही महाबली भीमसेनपर आक्रमण कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९ ॥

फिर तो देवासुर-संग्राममें वृत्रासुर और इन्द्रके समान उन दोनों वीरोंमें सहसा घोर युद्ध छिड़ गया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें चित्रसेन और चित्रका वधविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अश्वत्थामा और भीमसेनका अद्भुत युद्ध तथा दोनोंका मूर्छित हो जाना

संजय उवाच

भीमसेनं ततो द्रौणी राजन् विव्याध पत्रिणा ।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अस्त्र चलनेमें अपनी फुर्ती दिखाते हुए एक बाणसे भीमसेनको बींध डाला ॥ १ ॥

अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥ २ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाके समान मर्मज्ञ अश्वत्थामाने भीमसेनके सारे मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके पुनः उनपर नब्बे तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ २ ॥

भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः ।
रराज समरे राजन् रश्मिवानिव भास्करः ॥ ३ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाके तीखे बाणोंसे समराङ्गणमें आच्छादित हुए भीमसेन किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥

तदनन्तर पाण्डुपुत्र भीमने अच्छी तरह चलाये हुए एक हजार बाणोंसे द्रोणपुत्रको आच्छादित करके घोर सिंहनाद किया ॥ ४ ॥

शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद् राजन् नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाने अपने बाणोंसे भीमसेनके बाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें उन पाण्डुपुत्रके ललाटमें मुसकराते हुए-से एक नाराचका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः ।
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! जैसे वनमें बलोन्मत्त गेंड़ा सींग धारण करता है, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने अपने ललाटमें धँसे हुए उस बाणको धारण कर रक्खा था ॥ ६ ॥

ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी भीमसेनने रणभूमिमें विजयके लिये प्रयत्नशील अश्वत्थामाके ललाटमें भी मुसकराते हुए-से तीन नाराचोंका प्रहार किया ॥ ७ ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥

ललाटमें धँसे हुए उन तीनों बाणोंद्वारा वह ब्राह्मण वर्षाकालमें भीगे हुए तीन शिखरोंवाले उत्तम पर्वतके समान अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ ८ ॥

ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥

तब अश्वत्थामाने सैकड़ों बाणोंसे पाण्डुपुत्र भीमसेनको पीड़ित किया; परंतु जैसे हवा पर्वतको नहीं हिला सकती, उसी प्रकार वह उन्हें कम्पित न कर सका ॥ ९ ॥

तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हर्ष और उत्साहमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेन भी युद्धमें सैकड़ों तीखे बाणोंका प्रहार करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको विचलित न कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे जलका महान् प्रवाह किसी पर्वतको हिला-डुला नहीं सकता ॥

तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथवर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥ ११ ॥

वे दोनों बलोन्मत्त महारथी वीर श्रेष्ठ रथोंपर बैठकर एक दूसरेको भयंकर बाणोंद्वारा आच्छादित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ११ ॥

आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥ १२ ॥

जैसे सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करनेके लिये उगे हुए दो तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंद्वारा परस्पर ताप दे रहे हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने उत्तम बाणोंद्वारा एक दूसरेको संतप्त कर रहे थे ॥ १२ ॥

ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें बदला लेनेका यत्न करते हुए वे दोनों योद्धा निर्भय-से होकर अपने बाण-समूहोंद्वारा परस्पर अस्त्रोंके घात-प्रतिघातके लिये प्रयत्नशील थे ॥ १३ ॥

व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयंकरौ ॥ १४ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ संग्रामभूमिमें दो व्याघ्रोंके समान विचर

रहे थे, धनुष ही उन व्याघ्रोंके मुख और बाण ही उनकी दाढ़ें थीं। वे दोनों ही दुर्धर्ष एवं भयंकर प्रतीत होते थे॥१४॥

अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ॥१५॥

आकाशमें मेघोंकी घटासे आच्छादित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान वे दोनों वीर सब ओरसे बाण-समूहोंद्वारा ढककर अदृश्य हो गये थे॥१५॥

चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिंदमौ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव॥१६॥

फिर दो ही घड़ीमें मेघोंके आवरणसे मुक्त हुए मंगल और बुध नामक ग्रहोंके समान वे दोनों शत्रुदमन वीर एक दूसरेके बाणोंको नष्ट करके प्रकाशित होने लगे॥१६॥

अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम्॥१७॥

इस प्रकार चलनेवाले उस भयंकर संग्राममें वहाँ द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको अपने दाहिने भागमें कर दिया॥

किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम्।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम्॥१८॥

फिर जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक-सा देता है, उसी प्रकार भयंकर एवं सैकड़ों बाणोंद्वारा वह भीमसेनको आच्छादित करने लगा; परंतु भीमसेन शत्रुके इस विजय-सूचक लक्षणको सहन न कर सके॥१८॥

प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च॥१९॥

राजन्! पाण्डुपुत्र भीमने भी गत-प्रत्यागत आदि मण्डल-मार्गों (विभिन्न पैंतरों) में अश्वत्थामाको दाहिने करके बदला चुका लिया॥१९॥

बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
चरित्वा विविधान् मार्गान् मण्डलस्थानमेव च॥२०॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंमें मण्डलाकार घूमकर भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए भयंकर युद्ध होने लगा॥२०॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम्॥२१॥

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे परस्पर चोट पहुँचाने और एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे॥

ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः॥२२॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः।

दोनों ही युद्धस्थलमें एक दूसरेको रथहीन कर देनेकी इच्छा करने लगे। तदनन्तर महारथी अश्वत्थामाने बड़े-बड़े अस्त्र प्रकट किये; परंतु पाण्डुपुत्र भीमसेनने समराङ्गणमें अपने अस्त्रोंद्वारा ही उन सबको नष्ट कर दिया॥२२½॥

ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत॥२३॥
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत्।

महाराज! फिर तो जैसे प्रजाके संहारकालमें ग्रहोंका घोर युद्ध होने लगता है, उसी प्रकार उन दोनोंमें भयंकर अस्त्र-युद्ध छिड़ गया॥२३½॥

ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत॥२४॥
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तव सैन्यं समन्ततः।

भारत! उन दोनोंके छोड़े हुए वे बाण सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए आपकी सेनाके चारों ओर गिरने लगे॥

बाणसङ्घैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत॥२५॥
उल्कापातावृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप।

नरेश्वर! उस समय बाण-समूहोंसे व्याप्त हुआ आकाश बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा; ठीक उसी तरह, जैसे प्रजाके संहारकालमें होनेवाला युद्ध उल्कापातसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त भयानक दिखायी देता है॥२५½॥

बाणाभिघातात् संजज्ञे तत्र भारत पावकः॥२६॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद् वाहिनीद्वयम्।

भरतनन्दन! वहाँ बाणोंके परस्पर टकरानेसे चिनगारियों तथा प्रज्वलित लपटोंके साथ आग प्रकट हो गयी, जो दोनों सेनाओंको दग्ध किये देती थी॥२६½॥

तत्र सिद्धा महाराज सम्पतन्तोऽब्रुवन् वचः॥२७॥
युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२८॥

प्रभो! महाराज! उस समय वहाँ उड़कर आते हुए सिद्ध परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'यह युद्ध तो सभी युद्धोंसे बढ़कर हो रहा है; अन्य सब युद्ध तो इसकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं थे॥२७-२८॥

नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन।
अहो ज्ञानेन सम्पन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ॥२९॥

'ऐसा युद्ध फिर कभी नहीं होगा। ये ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही अद्भुत ज्ञानसे सम्पन्न हैं॥२९॥

अहो शौर्येण सम्पन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ।
अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता॥३०॥

'भयंकर पराक्रम दिखानेवाले ये दोनों योद्धा अद्भुत शौर्यशाली हैं। अहो! भीमसेनका बल भयंकर है। इनका अस्त्र-ज्ञान अद्भुत है!॥३०॥

अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ॥३१॥

'अहो! इनके वीर्यकी सारता विलक्षण है। इन दोनोंका युद्धसौन्दर्य आश्चर्यजनक है। ये दोनों समराङ्गणमें कालान्तक एवं यमके समान जान पड़ते हैं॥३१॥

रुद्रौ द्वाविव सम्भूतौ यथा द्वाविव भास्करौ।

यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥ ३२ ॥

'ये भयंकर रूपधारी दोनों पुरुषसिंह रणभूमिमें दो रुद्र, दो सूर्य अथवा दो यमराजके समान प्रकट हुए हैं' ॥ ३२ ॥

इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सिद्धोंकी बातें वहाँ बारंबार सुनायी देती थीं। आकाशमें एकत्र हुए देवताओंका सिंहनाद भी प्रकट हो रहा था ॥ ३३ ॥

अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें उन दोनोंके अद्भुत एवं अचिन्त्य कर्मको देखकर सिद्धों और चारणोंके समूहोंको बड़ा विस्मय हो रहा था ॥ ३४ ॥

प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥ ३५ ॥

उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महाबाहु द्रोणकुमार ! तुम्हें साधुवाद ! भीमसेन ! तुम्हारे लिये भी साधुवाद !' ॥ ३५ ॥

तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३६ ॥

राजन् ! परस्पर अपराध करनेवाले वे दोनों शूरवीर समराङ्गणमें क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर एक दूसरेकी ओर देख रहे थे ॥ ३६ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात् प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात् संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७ ॥

क्रोधसे उन दोनोंकी आँखें लाल हो गयी थीं। क्रोधसे उनके ओठ फड़क रहे थे और क्रोधसे ही वे ओठ चबाते एवं दाँत पीसते थे ॥ ३७ ॥

अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥ ३८ ॥

वे दोनों महारथी धनुषरूपी विद्युत्से प्रकाशित होनेवाले मेघके समान हो बाणरूपी जल धारण करते थे और समराङ्गणमें बाण-वर्षा करके एक दूसरेको ढके देते थे ॥ ३८ ॥

तावन्योन्यं ध्वजं विद्ध्वा सारथिं च महारणे ।
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥ ३९ ॥

वे उस महासमरमें परस्परके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको बींधकर एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ३९ ॥

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥ ४० ॥

महाराज ! तदनन्तर उस महासमरमें कुपित हो उन दोनोंने एक दूसरेके वधकी इच्छासे तुरंत दो बाण लेकर चलाये ॥ ४० ॥

तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! वे दोनों बाण सेनाके मुहानेपर चमक उठे । उन दोनोंका वेग वज्रके समान था । उन दुर्जय बाणोंने दोनोंके पास पहुँचकर उन्हें घायल कर दिया ॥ ४१ ॥

तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥ ४२ ॥

परस्परके वेगसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो वे महापराक्रमी वीर अपने-अपने रथकी बैठकमें तत्काल गिर पड़े ॥ ४२ ॥

ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सारथि द्रोणपुत्रको अचेत जानकर सारी सेनाके देखते-देखते उसे रणक्षेत्रसे बाहर हटा ले गया ॥ ४३ ॥

तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ॥ ४४ ॥

महाराज ! इसी प्रकार बारंबार विह्वल होते हुए शत्रुतापन पाण्डुपुत्र भीमसेनको भी रथद्वारा उनका सारथि विशोक युद्धस्थलसे अन्यत्र हटा ले गया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामभीमसेनयोर्युद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और भीमसेनका युद्धविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्याभवद् रणः ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! संशप्तकोंके साथ अर्जुनका तथा अन्य पाण्डवोंके साथ दूसरे-दूसरे राजाओंका जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ ॥ १ ॥

अश्वत्थाम्नस्तु यद् युद्धमर्जुनस्य च संजय ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ २ ॥

सूत ! अश्वत्थामा और अर्जुनका जो युद्ध हुआ था तथा अन्य पाण्डवोंके साथ अन्यान्य नरेशोंका जैसा संग्राम हुआ था, उसका मुझसे वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! कौरव-वीरोंका शत्रुओंके साथ देह, पाप और प्राणोंका नाश करनेवाला संग्राम जिस प्रकार हुआ था, वह बता रहा हूँ। आप मुझसे सारी बातें सुनिये ॥ ३ ॥

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसंनिभम्।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥ ४ ॥

शत्रुनाशक अर्जुनने समुद्रके समान अपार संशप्तक-सेनामें प्रवेश करके उसे उसी प्रकार क्षुब्ध कर डाला, जैसे प्रचण्ड वायु सागरमें ज्वार उठा देती है ॥ ४ ॥

शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनंजयः।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥ ५ ॥
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव।

धनंजयने अपने तीखे भल्लोंसे वीरोंके सुन्दर नेत्र, भौंह और दाँतोंसे सुशोभित, पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले मस्तकोंको काट-काटकर तुरंत ही वहाँकी धरतीको पाट दिया, मानो वहाँ बिना नालके कमल बिछा दिये हों ॥ ५½ ॥

सुवृत्तानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ॥ ६ ॥
सायुधान् सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसंनिभान्।
बाहून् क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥ ७ ॥

अर्जुनने समरभूमिमें अपने क्षुरोंद्वारा शत्रुओंकी उन भुजाओंको भी काट डाला, जो पाँच मुखवाले सर्पोंके समान दिखायी देती थीं, जो गोल, लंबी, पुष्ट तथा अगुरु एवं चन्दनसे चर्चित थीं और जिनमें आयुध एवं दस्ताने भी मौजूद थे ॥ ६-७ ॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापानि सायकान्।
पाणीन् सरत्नानसकृद् भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ८ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजयने शत्रुओंके रथोंमें जुते हुए भारवाही घोड़ों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, बाणों और रत्नभूषणभूषित हाथोंको बारंबार काट डाला ॥ ८ ॥

रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम् ॥ ९ ॥

राजन्! अर्जुनने युद्धस्थलमें कई हजार बाण मारकर रथों, हाथियों, घोड़ों और उन सबके सवारोंको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ९ ॥

तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः।
वासितार्थमिव क्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥ १० ॥
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृङ्गैरिवर्षभाः।

उस समय संशप्तक वीर अत्यन्त रोषमें भरकर मैथुनकी इच्छावाली गायके लिये लड़नेवाले मदमत्त साँड़ोंके समान गर्जन एवं हुङ्कार करते हुए कुपित अर्जुनकी ओर टूट पड़े और जैसे साँड़ एक दूसरेको सींगोंसे मारते हैं, उसी प्रकार वे अपने ऊपर प्रहार करते हुए अर्जुनको बाणोंद्वारा चोट पहुँचाने लगे ॥

तस्य तेषां च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥
त्रैलोक्यविजये यद्वद् दैत्यानां सह वज्रिणा।

अर्जुन और संशप्तकोंका वह घोर युद्ध त्रैलोक्य-विजयके लिये वज्रधारी इन्द्रके साथ घटित हुए दैत्योंके संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ११½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥ १२ ॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणाञ्जहार सः।

अर्जुनने सब ओरसे शत्रुओंके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण कर उन्हें तुरंत ही अनेक बाणोंसे घायल करके उन सबके प्राण हर लिये ॥ १२½ ॥

छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान् हतयोधाश्वसारथीन् ॥ १३ ॥
विध्वस्तायुधतूणीरान् समुन्मथितकेतनान्।
संछिन्नयोक्त्ररश्मीकान् विवरूथान् विकूबरान् ॥ १४ ॥
विस्रस्तबन्धुरयुगान् विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान्।
रथान् विशकलीकुर्वन् महाभ्राणीव मारुतः ॥ १५ ॥
विस्मापयन् प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम्।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥ १६ ॥

अर्जुनने संशप्तकोंके रथके त्रिवेणु, चक्र और धुरोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। योद्धाओं, अश्वों तथा सारथियोंको मार डाला। आयुधों और तरकसोंका विध्वंस कर डाला। ध्वजाओंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जोत और लगाम काट डाले। रक्षाके लिये लगाये गये चर्ममय आवरण और कूबर नष्ट कर दिये। रथतल्प और जूए तोड़ दिये तथा रथकी बैठक और धुरोंको जोड़नेवाले काष्ठके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। जैसे हवा महान् मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने रथोंके खण्ड-खण्ड करके सबको आश्चर्यमें डालते हुए अकेले ही सहस्रों महारथियोंके समान दर्शनीय पराक्रम किया, जो शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था ॥ १३—१६ ॥

सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥ १७ ॥
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाचाशरीरिणी।

सिद्धों तथा देवर्षियोंके समुदायों एवं चारणोंने भी अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, आकाशसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा इस प्रकार आकाशवाणी हुई—॥ १७½ ॥

चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ॥ १८ ॥
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥ १९ ॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ।

'जो सदा चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल और सूर्यका तेज धारण करते हैं, वे ही ये दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। एक ही रथपर बैठे हुए ये दोनों वीर ब्रह्मा तथा भगवान् शङ्करके समान सर्वथा अजेय हैं। ये ही सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वश्रेष्ठ वीर नर और नारायण हैं' ॥ १८-१९½ ॥

इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २० ॥

अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद् रणे ।

भरतनन्दन! यह महान् आश्चर्यकी बात देख और सुनकर अश्वत्थामाने सावधान हो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा किया ॥ २०½ ॥

अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान् ॥ २१ ॥
सेषुणा पाणिनाऽऽहूय प्रहसन् द्रौणिरब्रवीत् ।

तदनन्तर शत्रुनाशक बाणोंका प्रहार करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको बाणयुक्त हाथसे बुलाकर अश्वत्थामाने हँसते हुए कहा—॥ २१½ ॥

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥ २२ ॥
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।

'वीर! यदि तुम मुझे यहाँ आया हुआ पूजनीय अतिथि मानो तो सब प्रकारसे आज युद्धके द्वारा मेरा आतिथ्य-सत्कार करो' ॥ २२½ ॥

एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३ ॥
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।

आचार्यपुत्रके द्वारा इस प्रकार युद्धकी इच्छासे बुलाये जानेपर अर्जुनने अपना अहोभाग्य माना और भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २३½ ॥

संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥ २४ ॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥ २५ ॥

'माधव! एक ओर तो मुझे संशप्तकोंका वध करना है, दूसरी ओर द्रोणकुमार अश्वत्थामा युद्धके लिये मेरा आह्वान कर रहा है। अतः यहाँ मेरे लिये जो पहले कर्तव्य प्राप्त हो, उसे मुझे बताइये। यदि आप ठीक समझें तो पहले उठकर अश्वत्थामाको ही आतिथ्य ग्रहण करनेका अवसर दिया जाय' ॥ २४-२५ ॥

एवमुक्तोऽवहत् पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके ।
जैत्रेण विधिनाऽऽहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥ २६ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने उन्हें विजयशील रथके द्वारा द्रोणकुमारके निकट पहुँचा दिया। ठीक वैसे ही, जैसे वैदिक विधिसे आवाहित इन्द्र देवताको वायुदेव यज्ञमें पहुँचा देते हैं ॥

तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त द्रोणकुमारको सम्बोधित करके कहा—'अश्वत्थामन्! स्थिर होकर शीघ्रतापूर्वक प्रहार करो और अपने ऊपर किये गये प्रहारको सहन करो॥

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ।२८।

'क्योंकि स्वामीके आश्रित रहकर जीवननिर्वाह करनेवाले पुरुषोंके लिये अपने रक्षकके अन्नको सफल करनेका यही अवसर आया है, ब्राह्मणोंका विवाद सूक्ष्म (बुद्धिके द्वारा साध्य) होता है; परंतु क्षत्रियोंकी जय-पराजय स्थूल अस्त्रोंद्वारा सम्पन्न होती हैं ॥ २८ ॥

यामभ्यर्थयसे मोहाद् दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम् ॥

'तुम मोहवश अर्जुनसे जिस दिव्य सत्कारकी प्रार्थना कर रहे हो, उसे पानेकी इच्छासे आज तुम स्थिर होकर पाण्डुपुत्र धनंजयके साथ युद्ध करो' ॥ २९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामाने 'बहुत अच्छा' कहकर केशवको साठ और अर्जुनको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ ३१ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर तीन बाणोंसे अश्वत्थामाका धनुष काट दिया; परंतु द्रोणकुमारने उससे भी भयंकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया ॥ ३१ ॥

सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥

उसने पलक मारते-मारते उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अर्जुन और श्रीकृष्णको बींध डाला। श्रीकृष्णको तीन सौ और अर्जुनको एक हजार बाण मारे ॥ ३२ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने प्रयत्नपूर्वक अर्जुनको युद्धस्थलमें स्तम्भित करके उनके ऊपर हजारों, लाखों और अरबों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३४ ॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥

मान्यवर! उस समय वेदवादी अश्वत्थामाके तरकस, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाँह, हाथ, छाती, मुख, नाक, आँख, कान, सिर, भिन्न-भिन्न अङ्ग, रोम, कवच, रथ और ध्वजोंसे भी बाण निकल रहे थे ॥ ३४-३५ ॥

शरजालेन महता विद्ध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बाणोंके महान् समुदायसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल करके आनन्दित हुआ द्रोणकुमार महान् मेघोंके गम्भीर घोषके समान गर्जना करने लगा ॥ ३६ ॥

(तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥

महाराज! अश्वत्थामाके धनुषसे छूटकर सब ओर गिरने-

वाले उन बाणोंद्वारा रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ढक गये॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्भारद्वाजः प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ चक्रे रणे माधवपाण्डवौ॥

तत्पश्चात् प्रतापी भरद्वाजकुलनन्दन अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंसे रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको निश्चेष्ट कर दिया॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः॥

चराचरकी रक्षा करनेवाले उन दोनों महापुरुषोंको बाणोंद्वारा आच्छादित देख समस्त स्थावर-जङ्गम जगत्में हाहाकार मच गया॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुर्वै समन्ततः।
अपि स्वस्ति भवेदद्य लोकानामिति चाब्रुवन्॥

सिद्ध और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और बोले—'आज तीनों लोकोंका मङ्गल हो'॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संजज्ञे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ छादयतो रणे॥

राजन्! मैंने इससे पहले अश्वत्थामाका वैसा पराक्रम नहीं देखा था, जैसा कि रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करते समय प्रकट हुआ था॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दं रथानां त्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य नदतो यथा॥

नरेश्वर! रणभूमिमें द्रोणकुमारके धनुषकी टङ्कार बड़े-बड़े रथियोंको भयभीत करनेवाली थी। दहाड़ते हुए सिंहके समान उसके शब्दको मैंने बहुत बार सुना था॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यं दक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्भोधरस्येव भ्राजमाना व्यदृश्यत॥

युद्धमें विचरते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा बायें-दायें बाण छोड़ते समय बादलमें बिजलीके समान चमकती दिखायी देती थी॥

स तदा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्षन्नास्ते धनंजयः॥

शीघ्रता करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले पाण्डुपुत्र धनंजय उस समय भारी मोहमें पड़कर केवल देखते रह गये थे॥

विक्रमं च हृतं मेने आत्मनस्तेन संयुगे।
तदास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दृशम्॥
द्रौणेस्तत् कुर्वतः कर्म यादृग्रूपं पिनाकिनः।

उन्हें युद्धमें ऐसा मालूम होता था कि अश्वत्थामाने मेरा पराक्रम हर लिया है। राजन्! उस समय समराङ्गणमें वैसा पराक्रम करते हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाका शरीर ऐसा डरावना हो गया था कि उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। पिनाकपाणि भगवान् रुद्रका जैसा रूप दिखायी देता है, वैसा ही उसका भी था॥

वर्धमाने ततस्तत्र द्रोणपुत्रे विशाम्पते॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णं रोषः समाविशत्।

प्रजानाथ! जब वहाँ द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्तीकुमारका पराक्रम घटने लगा, तब श्रीकृष्णको बड़ा रोष हुआ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा॥
द्रौणिं ददर्श संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं वचः॥

राजन्! वे क्रोधपूर्वक लंबी साँस खींचते हुए संग्रामभूमिमें अश्वत्थामाकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उसे अपनी दृष्टिद्वारा दग्ध कर देंगे। अर्जुनकी ओर भी वे बारंबार दृष्टिपात करने लगे। फिर कुपित हुए श्रीकृष्णने अर्जुनसे प्रेमपूर्वक कहा॥

श्रीभगवानुवाच

अत्यद्भुतमहं पार्थ त्वयि पश्यामि संयुगे।
यत् त्वां विशेषयत्याजौ द्रोणपुत्रोऽद्य भारत॥
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव॥
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे।

श्रीभगवान् बोले—पार्थ! भरतनन्दन! मैं इस युद्धमें तुम्हारे अंदर यह अत्यन्त अद्भुत परिवर्तन देख रहा हूँ कि आज द्रोणकुमार रणभूमिमें तुमसे आगे बढ़ा जा रहा है। क्या तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष है? या तुम्हारी मुट्ठी ढीली पड़ गयी? क्या तुम्हारी दोनों भुजाओंमें पहलेके समान ही बल और पराक्रम है? क्योंकि इस समय संग्राममें द्रोणपुत्रको मैं तुमसे बढ़ा-चढ़ा देख रहा हूँ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ॥
उपेक्षां मा कृथाः पार्थ नायं कालो ह्युपेक्षितुम्॥)

भरतश्रेष्ठ! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा समझकर इसे सम्मान देते हुए तुम इसकी उपेक्षा न करो। पार्थ! यह उपेक्षाका अवसर नहीं है॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत्।
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति॥ ३७॥

(भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन तथा) अश्वत्थामाके उस सिंहनादको सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'माधव! देखिये तो सही गुरुपुत्र अश्वत्थामा मेरे प्रति कैसी दुष्टता कर रहा है!॥ ३७॥

वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रावेश्य शरवेश्मनि।
एषोऽस्मि हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च॥ ३८॥

'यह अपने बाणोंके घेरेमें डालकर हम दोनोंको मारा गया समझता है। मैं अभी अपनी शिक्षा और बलसे इसके इस मनोरथको नष्ट किये देता हूँ'॥ ३८॥

अश्वत्थाम्नः शरानस्तान् छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा।

व्यधमद् भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥ ३९ ॥

ऐसा कहकर भरतश्रेष्ठ अर्जुनने अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े करके उन सबको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे हवा कुहरेको उड़ा देती है ॥ ३९ ॥

ततः संशप्तकान् भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥ ४० ॥

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुनने पुनः घोड़े, सारथि, रथ, हाथी, पैदलसमूह और ध्वजोंसहित संशप्तक-सैनिकोंको अपने भयंकर बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४० ॥

ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमात्मना ॥ ४१ ॥

उस समय वहाँ जो-जो मनुष्य जिस-जिस रूपमें दिखायी देते थे, वे-वे स्वयं ही अपने आपको बाणोंसे व्याप्त मानने लगे ॥

ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान् घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान् रणे ।४२।

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए नाना प्रकारके बाण रणभूमिमें एक कोससे अधिक दूरीपर खड़े हुए हाथियों और मनुष्योंको भी मार डालते थे ॥ ४२ ॥

भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणाम् ।
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥ ४३ ॥

जैसे जंगलमें कुल्हाड़ोंसे काटनेपर बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मदकी वर्षा करनेवाले गजराजोंके शुण्डदण्ड भल्लोंसे कट-कटकर धरतीपर गिरने लगे ॥ ४३ ॥

पश्चात्तु शैलवत् पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४४ ॥

सूँड़ कटनेके पश्चात् वे पर्वतोंके समान हाथी अपने सवारोंसहित उसी प्रकार गिर जाते थे, जैसे वज्रधारी इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होकर गिरे हुए पहाड़ोंके ढेर लगे हों ॥ ४४ ॥

गन्धर्वनगराकारान् रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान् युद्धदुर्मदैः ॥ ४५ ॥
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन् पत्तींश्चाहन् धनंजयः ॥ ४६ ॥

धनंजय अपने बाणोंद्वारा सुशिक्षित घोड़ोंसे जुते हुए, रण-दुर्मद रथियोंकी सवारीमें आये हुए एवं गन्धर्वनगरके समान आकारवाले सुसज्जित रथोंके टुकड़े-टुकड़े करते हुए शत्रुओंपर बाण बरसाते और सजे-सजाये घुड़सवारों एवं पैदलोंको भी मार गिराते थे ॥ ४५-४६ ॥

धनंजययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः ॥ ४७ ॥

अर्जुनरूपी प्रलयकालिक सूर्यने जिसका शोषण करना कठिन था, ऐसे संशप्तक-सैन्यरूपी महासागरको अपनी बाण-मयी प्रचण्ड किरणोंसे सोख लिया ॥ ४७ ॥

पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसंनिभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन् वज्रीव पर्वतम् ॥ ४८ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्रने पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार अर्जुनने महान् वेगशाली वज्रतुल्य नाराचोंद्वारा अश्वत्थामारूपी महान् शैलको पुनः वेधना आरम्भ किया ॥ ४८ ॥

तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुरागमद् योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥ ४९ ॥

तब क्रोधमें भरा हुआ आचार्यपुत्र सारथि श्रीकृष्णसहित अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बाणोंद्वारा उनके सामने उपस्थित हुआ; परंतु कुन्तीकुमार अर्जुनने उसके सभी बाण काट गिराये ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ५० ॥

तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुआ अश्वत्थामा पाण्डुपुत्र अर्जुनको उसी प्रकार अपने अस्त्र अर्पित करने लगा, जैसे कोई गृहस्थ योग्य अतिथिको अपना सारा घर सौंप देता है ॥

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपाङ्क्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पाङ्क्तेयमर्थिनम् ॥ ५१ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुन संशप्तकोंको छोड़कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सामने आये । ठीक उसी तरह, जैसे दाता पंक्तिमें बैठनेके अयोग्य ब्राह्मणोंको छोड़कर याचना करनेवाले पंक्तिपावन ब्राह्मणकी ओर जाता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और अर्जुनका संवादविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १५½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

ततः समभवद् युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आकाशमें नक्षत्र-मण्डलके निकट परस्पर युद्ध करनेवाले शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान वहाँ रणभूमिमें श्रीकृष्णके निकट शुक्र और बृहस्पतिके तुल्य तेजस्वी अश्वत्थामा और अर्जुनका युद्ध होने लगा ॥

संतापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥ २ ॥

जैसे वक्र या अतिचार गतिसे चलनेवाले दो ग्रह सम्पूर्ण जगत्के लिये त्रास उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देने लगे ॥ २ ॥

ततोऽविध्यद् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।

स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने एक नाराचसे अश्वत्थामाकी दोनों भौहोंके मध्यभागमें गहरा आघात पहुँचाया। ललाटमें धँसे हुए उस बाणसे अश्वत्थामा ऊपरकी ओर उठी हुई किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगा ॥ ३ ॥

अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम्।
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥ ४ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। उस समय वे दोनों अपनी किरणोंका प्रसार करनेवाले प्रलयकालके दो सूर्योंके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्र-
मवासृजद् वासुदेवेऽभिभूते।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत् पृषत्कै-
र्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके घायल होनेपर अर्जुनने एक ऐसे अस्त्रका प्रयोग किया, जिसकी धार सब ओर थी। उन्होंने वज्र, अग्नि और यमदण्डके समान अमोघ, दाहक और प्राणहारी बाणोंद्वारा द्रोणकुमार अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

स केशवं चार्जुनं चातितेजा
विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगै-
र्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥ ६ ॥

फिर अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाले महातेजस्वी अश्वत्थामाने भी अच्छी तरह छोड़े हुए अत्यन्त तीव्र वेगवाले बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके मर्मस्थानोंमें आघात किया। वे बाण ऐसे थे जिनकी चोट खाकर मौतको भी व्यथा हो सकती थी॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः संनिवार्य
व्यायच्छतस्तद्‌द्विगुणैः सुपुङ्खैः।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीर-
मावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥ ७ ॥

अर्जुनने परिश्रमपूर्वक बाण चलानेवाले द्रोणकुमारके उन बाणोंका सुन्दर पंखवाले उनसे दुगुने बाणोंद्वारा निवारण करके घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस एक वीरको आच्छादित कर दिया। फिर वे संशप्तकसेनाकी ओर चल दिये ॥ ७ ॥

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः
पाणीन् भुजान् पाणिगतं च शस्त्रम्।
छत्राणि केतूंस्तुरगान् रथेषां
वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ८ ॥
चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि
प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तै-
र्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ॥ ९ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उत्तम रीतिसे छोड़े गये बाणोंद्वारा युद्धमें पीठ न दिखाकर सामने खड़े हुए शत्रुओंके धनुष, बाण, तरकस, प्रत्यञ्चा, हाथ, भुजा, हाथमें रक्खे हुए शस्त्र, छत्र, ध्वज, अश्व, रथ, ईषादण्ड, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, सुन्दर कवच, समस्त प्रिय वस्तु तथा मस्तक—इन सबको काट डाला ॥ ८-९ ॥

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः
समास्थिताः कृतयत्नैर्नृवीरैः।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्ता-
स्तैरेव सार्धं नृवरैर्निपेतुः ॥ १० ॥

सुन्दर सजे-सजाये रथ, घोड़े और हाथी खड़े थे और उनपर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले नरवीर बैठे थे; परंतु अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों बाणोंसे घायल हो वे सारे वाहन उन नरवीरोंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ १० ॥

पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि
किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्तितानि
प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११ ॥

जिनके मुखकमल, सूर्य और पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर, तेजस्वी एवं मनोरम थे तथा मुकुट, माला एवं आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहे थे, ऐसे असंख्य नरमुण्ड भल्ल, अर्द्धचन्द्र तथा क्षुरनामक बाणोंसे कट-कटकर लगातार पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ११ ॥

अथ द्विपैर्देवपतिद्विपाभै-
र्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम्।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा
जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् कलिङ्ग, अङ्ग, वङ्ग और निषाद देशोंके वीर देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशाल गजराजोंपर सवार हो, देवद्रोहियोंका दर्प दलन करनेवाले प्रचण्ड वीर पाण्डुकुमार अर्जुनपर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे चढ़ आये ॥ १२ ॥

तेषां द्विपानां निचकर्त पार्थो
वर्माणि चर्माणि करान् नियन्तॄन्।
ध्वजान् पताकांश्च ततः प्रपेतु-
र्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उनके हाथियोंके कवच, चर्म, सूँड, महावत, ध्वजा और पताका—सबको काट डाला। इससे वे वज्रके मारे हुए पर्वतीय शिखरोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं
बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालै-
र्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥ १४ ॥

उनके नष्ट हो जानेपर किरीटधारी अर्जुनने प्रभातकालके

सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा गुरुपुत्र अश्वत्थामाको ढक दिया, मानो वायुने उगते हुए किरणोंवाले सूर्यको मेघोंकी बड़ी भारी घटाओंसे आच्छादित कर दिया हो ॥ १४ ॥

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य
द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ
ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ १५ ॥

तब द्रोणकुमार अश्वत्थामाने अपने तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनके बाणोंका निवारण करके श्रीकृष्ण और अर्जुनको ढक दिया और आकाशमें चन्द्रमा तथा सूर्यको आच्छादित करके गर्जनेवाले वर्षाकालके मेघकी भाँति वह गम्भीर गर्जना करने लगा ॥

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीया-
नभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः ॥ १६ ॥

उसके बाणोंसे पीडित हुए अर्जुनने आगे बढ़कर सहसा शस्त्रोंद्वारा शत्रुके बाणजनित अन्धकारको नष्ट करके उत्तम पंखवाले अपने बाणोंद्वारा अश्वत्थामा तथा आपके अन्य समस्त सैनिकोंको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नाप्याददत् संदधन्नैव मुञ्चन्
बाणान् रथेऽदृश्यत सव्यसाची ।
रथांश्च नागांस्तुरगान् पदातीन्
संस्यूतदेहान् ददृशुर्हतांश्च ॥ १७ ॥

रथपर बैठे हुए सव्यसाची अर्जुन कब तरकससे बाण लेते, कब उन्हें धनुषपर रखते और कब छोड़ते हैं, यह नहीं दिखायी देता था। सब लोग यही देखते थे कि रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके शरीर उनके बाणोंसे गुँथे हुए हैं और वे प्राणशून्य हो गये हैं ॥ १७ ॥

संधाय नाराचवरान् दशाशु
द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज ।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्
पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खाः ॥ १८ ॥

तब अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अपने धनुषपर दस उत्तम नाराच रक्खे और उन सबको एकके ही समान एक साथ छोड़ दिया। उनमेंसे पाँच सुन्दर पंखवाले नाराचोंने अर्जुनको बींध डाला और पाँचने श्रीकृष्णको क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्या-
वसृक् स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ
हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १९ ॥

उन बाणोंसे आहत होकर सम्पूर्ण मनुष्योंमें श्रेष्ठ, कुबेर और इन्द्रके समान पराक्रमी वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने अङ्गोंसे रक्त बहाने लगे। जिसकी विद्या पूरी हो चुकी थी, उस अश्वत्थामाके द्वारा इस प्रकार पराभवको प्राप्त हुए उन दोनोंको अन्य सब लोगोंने यही समझा कि 'वे रणभूमिमें मारे गये' ॥ १९ ॥

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः
प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं
कष्टो भवेद् व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ २० ॥

तब दशार्हवंशके स्वामी श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा— 'पार्थ ! तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो ? इस योद्धाको मार डालो। इसकी उपेक्षा की जायगी तो यह और भी नये-नये अपराध करेगा और जिसकी चिकित्सा न की गयी हो, उस रोगके समान अधिक कष्टदायक हो जायगा' ॥ २० ॥

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी
द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ
वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥ २१ ॥

'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा' श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर सतत सावधान रहनेवाले अर्जुन अपने बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक अश्वत्थामाको—उसके चन्दनसारचर्चित श्रेष्ठ भुजाओं, वक्षःस्थल, सिर और अनुपम जाँघोंको क्षत-विक्षत करने लगे ॥

गाण्डीवमुक्तैः कुपितोऽविकर्णै-
र्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद ।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यत्
ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥ २२ ॥

क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भेड़के कान-जैसे अग्रभागवाले बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रको विदीर्ण कर डाला। घोड़ोंकी बागडोर काटकर उन्हें अत्यन्त घायल कर दिया। इससे वे घोड़े अश्वत्थामाको रणभूमिसे बहुत दूर भगा ले गये ॥ २२ ॥

स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गै-
र्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः ।
इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं
पार्थेन सार्धं मतिमान् विमृश्य ।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे
धनंजये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गया था। जब वायुके समान वेगशाली घोड़े उसे रणभूमिसे बहुत दूर हटा ले गये, तब उस बुद्धिमान् वीरने मन-ही-मन विचार करके पुनः लौटकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा त्याग दी। अङ्गिरा गोत्रवाले ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ अश्वत्थामा यह जान गया था कि वृष्णिवीर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी विजय निश्चित है ॥

नियम्य स हयान् द्रौणिः समाश्वास्य च मारिष ।
रथाश्वनरसम्बाधं कर्णस्य प्राविशद् बलम् ॥ २४ ॥

मान्यवर ! अपने घोड़ोंको रोककर थोड़ी देर उनको

स्वस्थ कर लेनेके बाद द्रोणकुमार अश्वत्थामा रथ, घोड़े और पैदल मनुष्योंसे भरी हुई कर्णकी सेनामें प्रविष्ट हो गया ॥

प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ २५ ॥
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ २६ ॥

जैसे मन्त्र, औषध, चिकित्सा और योगके द्वारा शरीरसे रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार जब प्रतिकूल कार्य करनेवाला अश्वत्थामा चारों घोड़ोंद्वारा रणभूमिसे दूर हटा दिया गया, तब वायुसे फहराती हुई पताकाओंसे युक्त और जलप्रवाहके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन फिर संशप्तकोंकी ओर चल दिये ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी पराजयविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा हाथियोंसहित दण्डधार और दण्ड आदिका वध तथा उनकी सेनाका पलायन

संजय उवाच

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पाण्डव-सेनाके उत्तर भागमें दण्डधारके द्वारा मारे जाते हुए रथी, हाथी, घोड़े और पैदलोंका आर्तनाद गूँज उठा ॥ १ ॥

निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः ॥ २ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अपना रथ लौटाकर गरुड़ और वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुए ही अर्जुनसे कहा—॥ २ ॥

मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥

'पार्थ! यह मगधनिवासी दण्डधार भी बड़ा पराक्रमी है। इसके पास शत्रुओंको मथ डालनेवाला गजराज है। इसे युद्धकी उत्तम शिक्षा मिली है तथा यह बलवान् भी है, इन सब विशेषताओंके कारण यह पराक्रममें भगदत्तसे तनिक भी कम नहीं है ॥ ३ ॥

एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥ ४ ॥

'अतः पहले इसका वध करके तुम पुनः संशप्तकोंका संहार करना।' इतना कहते-कहते श्रीकृष्णने अर्जुनको दण्डधारके निकट पहुँचा दिया ॥ ४ ॥

स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे
ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो
महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥

मागध वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ दण्डधार अङ्कुश धारण करके हाथीद्वारा युद्ध करनेमें अपना सानी नहीं रखते थे। जैसे ग्रहोंमें केतुग्रहका वेग असह्य होता है, उसी प्रकार उनका आक्रमण भी शत्रुओंके लिये असहनीय था। जैसे धूमकेतु नामक उत्पातग्रह सम्पूर्ण भूमण्डलके लिये अनिष्ट-कारक होता है, उसी प्रकार उस भयंकर वीरने वहाँ शत्रुओं-की सम्पूर्ण सेनाको मथ डाला ॥ ५ ॥

सुकल्पितं दानवनागसंनिभं
महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान् सहस्रशः
समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६ ॥

उनका हाथी खूब सजाया गया था, वह गजासुरके समान बलशाली, महामेघके समान गर्जना करनेवाला तथा शत्रुओंको रौंद डालनेवाला था। उसपर आरूढ़ होकर दण्डधार अपने बाणोंसे सहस्रों रथों, घोड़ों, मतवाले हाथियों और पैदल मनुष्योंका भी संहार करने लगे ॥ ६ ॥

रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्
नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण
द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ॥ ७ ॥

उनका वह हाथी रथोंपर पैर रखकर सारथि और घोड़ोंसहित उन्हें चूर-चूर कर डालता था। पैदल मनुष्योंको भी पैरोंसे ही कुचल डालता था। हाथियोंको भी दोनों पैरों तथा सूँड़से मसल देता था। इस प्रकार वह गजराज कालचक्रके समान शत्रु-सेनाका संहार करने लगा ॥ ७ ॥

नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्
निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद् दन्तिवरेण शुष्मिणा
स शब्दवत् स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८ ॥

वे अपने बलवान् एवं श्रेष्ठ गजराजके द्वारा लोहेके कवच तथा उत्तम आभूषण धारण करनेवाले घुड़सवारोंको घोड़ों और पैदलोंसहित पृथ्वीपर गिराकर कुचलवा देते थे। उस समय जैसे मोटे नरकुलोंके कुचले जाते समय 'चर-चर' की आवाज होती है, उसी प्रकार उन सैनिकों-के कुचले जानेपर भी होती थी ॥ ८ ॥

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने
मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।

रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले
रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर जहाँ धनुषकी टंकार और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द गूँज रहा था, मृदङ्ग, भेरी और बहुसंख्यक शङ्खोंकी ध्वनि हो रही थी तथा जहाँ रथ, घोड़े और हाथी सहस्रोंकी संख्यामें भरे हुए थे, उस समराङ्गणमें पूर्वोक्त गजराजके समीप अर्जुन अपने उत्तम रथके द्वारा जा पहुँचे ॥ ९ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमै-
र्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभि-
स्ततो ननाद प्रजहास चासकृत् ॥ १० ॥

तब दण्डधारने अर्जुनको बारह और भगवान् श्रीकृष्णको सोलह उत्तम बाण मारे। फिर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको घायल करके वे बारंबार गर्जने और अट्टहास करने लगे ॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं
चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन् सह पादगोप्तृ-
स्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने अपने भल्लोंद्वारा प्रत्यञ्चा और बाणों-सहित दण्डधारके धनुष तथा सजे-सजाये ध्वजको भी काट गिराया। फिर हाथीके महावतों तथा पादरक्षकोंको भी मार डाला। इससे गिरिव्रजके स्वामी दण्डधार अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ११ ॥

ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना
घनाघनेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं
धनंजयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥

उन्होंने गण्डस्थलसे मदकी धारा बहानेवाले, वायुके समान वेगशाली, मदोन्मत्त गजराजके द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त घबराहटमें डालनेकी इच्छासे उसे उन दोनोंकी ओर बढ़ाया और तोमरोंसे उन दोनोंपर प्रहार किया ॥

अथास्य बाहू द्विपहस्तसंनिभौ
शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डव-
स्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनने हाथीकी सूँड़के समान मोटी दण्डधारकी दोनों भुजाओं तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उनके मस्तकको भी तीन छुरोंसे एक साथ ही काट डाला। फिर उन्होंने उनके हाथीको सौ बाण मारे ॥ १३ ॥

स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः
समाचितः काञ्चनवर्मभृद् द्विपः ।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा
दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः ॥ १४ ॥

उसके सारे शरीरमें अर्जुनके सुवर्णभूषित बाण चुभ गये थे। इससे सुवर्णमय कवच धारण करनेवाला वह हाथी उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे रात्रिमें दावानलसे जलती हुई ओषधियों और वृक्षोंसे युक्त पर्वत प्रकाशित होता है ॥

स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदं-
श्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत् ।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा
यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥ १५ ॥

वह हाथी वेदनासे पीड़ित हो मेघके समान गर्जना करता, सब ओर विचरता, घूमता और बीच-बीचमें लड़खड़ाता हुआ भागने लगा। अधिक घायल हो जानेके कारण वह महावतोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा; मानो वज्र-द्वारा विदीर्ण किया हुआ पर्वत धराशायी हो गया हो ॥ १५ ॥

हिमावदातेन सुवर्णमालिना
हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रज-
ज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनंजयम् ॥ १६ ॥

रणभूमिमें अपने भाई दण्डधारके मारे जानेपर दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे बर्फके समान सफेद, सुवर्णमालाधारी तथा हिमालयके शिखरके समान विशालकाय गजराजके द्वारा वहाँ आ पहुँचा ॥ १६ ॥

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभि-
र्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयं-
स्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः ॥ १७ ॥

उसने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले तीन तीखे तोमरोंसे श्रीकृष्णको और पाँचसे अर्जुनको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की। इतनेहीमें पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसकी दोनों बाँहें काट डालीं ॥ १७ ॥

क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ
शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात् पतन्तौ युगपद् विरेजतु-
र्यथाद्रिशृङ्गाद् रुचिरौ महोरगौ ॥ १८ ॥

क्षुरसे कटी हुई, सुन्दर बाजूबन्दसे विभूषित, चन्दन-चर्चित तथा तोमरसहित वे विशाल भुजाएँ हाथीसे एक साथ गिरते समय पर्वतके शिखरसे गिरनेवाले दो सुन्दर एवं बड़े-बड़े सर्पोंके समान विभूषित हुईं ॥ १८ ॥

तथार्धचन्द्रेण हृतं किरीटिना
पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात् ।
तच्छोणितार्द्रं निपतद् विरेजे
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए अर्धचन्द्रसे कटकर दण्डका मस्तक हाथीसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय खूनसे लथपथ हो गिरता हुआ वह मस्तक अस्ताचलसे पश्चिम दिशाकी ओर डूबते हुए सूर्यके समान शोभायमान हुआ ॥

अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसंनिभं
दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्
हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २० ॥

इसके बाद अर्जुनने श्वेत महामेघके समान सफेद रंगवाले उस हाथीको सूर्यकी किरणोंके सदृश तेजस्वी उत्तम बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला । फिर तो वह वज्रके मारे हुए हिमालयके शिखरके समान धमाकेकी आवाजके साथ धराशायी हो गया ॥

ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा
जिगीषवः संयति सव्यसाचिना ।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ
ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसीके समान जो दूसरे-दूसरे गजराज विजयकी इच्छासे युद्धके लिये आगे बढ़े, उन सबकी सव्यसाची अर्जुनने वैसी ही दशा कर डाली, जैसी कि पूर्वोक्त दोनों हाथियोंकी कर दी थी । इससे शत्रुकी उस विशाल सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ २१ ॥

गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः
परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहता
भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२ ॥

झुंड-के-झुंड हाथी, रथ, घोड़े और पैदल मनुष्य परस्पर आघात-प्रत्याघात करते हुए युद्धस्थलमें चारों ओरसे टूट पड़े थे । वे आपसमें एक दूसरेकी चोटसे अत्यन्त घायल हो लड़खड़ाते और बहुत बकझक करते हुए मरकर गिर जाते थे ॥

अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः
पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः
स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥ २३ ॥

इसके बाद इन्द्रको घेरकर खड़े हुए देवताओंके समान अपनी ही सेनाके लोग अर्जुनको घेरकर इस प्रकार बोले—'वीर ! जैसे प्रजा मौतसे डरती है, उसी प्रकार हमलोग जिससे भयभीत हो रहे थे, उस शत्रुको आपने मार डाला; यह बड़े सौभाग्यकी बात है ! ॥ २३ ॥

न चेदरक्षिष्य इमं जनं भयाद्
द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम् ।
तथाभविष्यद् विषतां प्रमोदनं
यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥

'शत्रुसूदन ! यदि आप बलवान् शत्रुओंसे इस प्रकार पीड़ित हुए इन स्वजनोंकी भयसे रक्षा नहीं करते तो इन शत्रुओंको वैसी ही प्रसन्नता होती, जैसी इस समय इनके मारे जानेपर यहाँ हमलोगोंको हो रही है' ॥ २४ ॥

इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीरिता
निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः ।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं
जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५ ॥

इस प्रकार अपने सुहृदोंकी कही हुई ये बातें बारंबार सुनकर अर्जुनको मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई । वे उन लोगोंका यथायोग्य आदर-सत्कार करके पुनः संशप्तकगणका वध करनेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दण्डधार और दण्डका वधविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा संशप्तक-सेनाका संहार, श्रीकृष्णका अर्जुनको युद्धस्थलका दृश्य दिखाते हुए उनके पराक्रमकी प्रशंसा करना तथा पाण्ड्यनरेशका कौरवसेनाके साथ युद्धारम्भ

संजय उवाच

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान् बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे मङ्गल नामक ग्रह वक्र और अतिचार गतिसे चलकर लोकके लिये अनिष्टकारी होता है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने दण्डधारकी सेनासे पुनः लौटकर बहुत-से संशप्तकोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥१॥

पार्थबाणहता राजन् नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥

भरतवंशी नरेश ! अर्जुनके बाणोंसे आहत हो हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य विचलित, भ्रान्त, पतित, मलिन तथा नष्ट होने लगे ॥ २॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापासिसायकान् ।
पाणीन् पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त नामक अस्त्रोंद्वारा समराङ्गणमें सामना करनेवाले विपक्षी वीरोंके रथोंमें जुते हुए धुरंधर अश्वों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, सायकों, तलवारों, हाथों, हाथमें रक्खे हुए शस्त्रों, भुजाओं तथा मस्तकोंको भी काट डाला ॥ ३-४ ॥

वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

जैसे मैथुनकी वासनावाली गायके लिये युद्धकी इच्छासे

बहुतेरे साँड किसी एक साँडपर टूट पड़ते हों, उसी प्रकार सैकड़ों और हजारों शूरवीर अर्जुनपर धावा बोलने लगे ॥ ५॥

तेषां तस्य च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
त्रैलोक्यविजये यादृग् दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥

उन योद्धाओं तथा अर्जुनका वह युद्ध वैसा ही रोमाञ्चकारी था, जैसा कि त्रैलोक्य-विजयके समय वज्रधारी इन्द्रके साथ दैत्योंका हुआ था ॥ ६ ॥

तमविध्यत् त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥

उस समय उग्रायुधके पुत्रने अत्यन्त डँस लेनेके स्वभाववाले सर्पोंके समान तीन बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला। तब अर्जुनने उसके सिरको धड़से उतार लिया ॥ ७ ॥

तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन्।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥

वे संशप्तक योद्धा कुपित हो अर्जुनपर सब ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो वर्षाकालमें पवनप्रेरित मेघ हिमालयपर जलकी वृष्टि कर रहे हों ॥ ८ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानहितानहनद् बहून् ॥ ९ ॥

अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त विपक्षियोंमेंसे बहुतोंको मार डाला ॥ ९ ॥

छिन्नत्रिवेणुसंघातान् हताश्वान् पार्ष्णिसारथीन्।
विस्रस्तहस्ततूणीरान् विचक्ररथकेतनान् ॥ १० ॥
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान् व्यनुकर्षयुगान् रथान् ।
विध्वस्तसर्वसंनाहान् बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ ११ ॥

अर्जुनने उस समय अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंके रथोंकी बड़ी बुरी दशा कर डाली। उनके त्रिवेणुसमूह काट डाले, घोड़ों और पार्श्वरक्षकोंको मार डाला । उन योद्धाओंके हाथोंसे खिसककर तूणीर गिर गये तथा उनके रथोंके पहिये और ध्वज भी नष्ट हो गये। घोड़ोंकी बागडोर, जोत और रथके धुरे भी काट डाले गये। उनके अनुकर्ष और जूए भी चौपट हो गये थे॥

ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥ १२ ॥

वे बहुमूल्य और बहुसंख्यक रथ, जो वहाँ टूट-फूटकर गिरे पड़े थे, आग, हवा और पानीसे नष्ट हुए धनवानोंके घरोंके समान जान पड़ते थे ॥ १२ ॥

द्विपाः सम्भिन्नवर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रवाताग्निभिर्यथा ॥ १३ ॥

वज्र और बिजलीके समान तेजस्वी बाणोंसे कवच विदीर्ण हो जानेके कारण हाथी वज्र, वायु तथा आगसे नष्ट हुए पर्वत-शिखरोंपर बने हुए गृहोंके समान गिर पड़ते थे ॥ १३ ॥

सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः॥ १४ ॥

अर्जुनके मारे हुए बहुसंख्यक घोड़े और घुड़सवार पृथ्वीपर क्षत-विक्षत होकर पड़े थे। उनकी जीभ तथा आँतें बाहर निकल आयी थीं। वे खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो गया था ॥ १४ ॥

नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १५ ॥

मान्यवर! सव्यसाची अर्जुनके नाराचोंसे गुथे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, चिल्लाते और मन मारकर रह जाते थे ॥ १५ ॥

अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः।
शरैर्निजघ्निवान् पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनने शिलापर तेज किये हुए वज्र, अशनि तथा विषके तुल्य अनेक भयंकर बाणोंद्वारा उन संशप्तक वीरोंका वध कर डाला ॥ १६ ॥

महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १७ ॥

अर्जुनद्वारा मारे गये संशप्तक वीर बहुमूल्य कवच, आभूषण, भाँति-भाँतिके वस्त्र, आयुध, रथ और ध्वजोंसहित रणभूमिमें सो रहे थे ॥ १७ ॥

विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥ १८ ॥

वे पुण्यात्मा, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा विशिष्ट शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न वीर पराजित होकर अपने शरीरोंसे तो पृथ्वीपर गिरे, परंतु प्रबल उत्तम कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकमें जा पहुँचे॥

अथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन्।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १९ ॥

तदनन्तर आपके सैनिक रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनपर टूट पड़े। वे विभिन्न जनपदोंके अधिपति थे और अपने दलबलके साथ कुपित होकर चढ़ आये थे ॥ १९ ॥

उह्यमाना रथाश्वेभैः पत्तयश्च जिघांसवः।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ २० ॥

रथों, घोड़ों और हाथियोंके सवार तथा पैदल सैनिक उन्हें मार डालनेकी इच्छासे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए शीघ्रतापूर्वक धावा बोलने लगे ॥ २० ॥

तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१ ॥

परंतु अर्जुनरूपी वायुने संशप्तक सैनिकरूपी महामेघोंद्वारा की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी उस महावृष्टिको तीखे बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ २१ ॥

साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसम्प्लवम्।
सहसा संतितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २२ ॥

अथाब्रवीद् वासुदेवः पार्थं किं क्रीडसेऽनघ।
संशप्तकान् प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २३ ॥

अर्जुन हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-समूहोंसे युक्त तथा महान् अस्त्र-शस्त्रोंके प्रवाहसे परिपूर्ण उस सैन्य-समुद्रको अपने अस्त्र-शस्त्ररूपी पुलके द्वारा सहसा पार कर जाना चाहते थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'निष्पाप पार्थ! यह क्या खिलवाड़ कर रहे हो? इन संशप्तकोंका संहार करके कर्णके वधका शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो' ॥ २२-२३ ॥

तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिघ्रान् संशप्तकांस्तदा।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद् दैत्यानिन्द्र इवावधीत् ॥ २४ ॥

तब श्रीकृष्णसे 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुन दैत्योंका वध करनेवाले इन्द्रके समान उस समय शेष संशप्तक-सेनाको अस्त्र-शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न करके उसका बलपूर्वक विनाश करने लगे ॥

आददत् संदधन्नेषून् दृष्टः कैश्चिद् रणेऽर्जुनः।
विमुञ्चन् वा शराञ्शीघ्रं दृश्यन्ते वै नरा हताः ॥ २५ ॥

उस समय रणभूमिमें किसीने यह नहीं देखा कि अर्जुन कब बाण लेते, कब उनका संधान करते अथवा कब उन्हें छोड़ते हैं? केवल उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक मारे गये मनुष्य ही दृष्टिगोचर होते थे॥

आश्चर्यमिति गोविन्दो ब्रुवन्नश्वानचोदयत्।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥ २६ ॥

'आश्चर्य है' ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंको आगे बढ़ाया। हंस तथा चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत वर्णवाले वे घोड़े शत्रुसेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस तालाबमें प्रवेश करते हैं ॥ २६ ॥

ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

जब इस प्रकार जनसंहार होने लगा, उस समय रणभूमिकी ओर देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

एष पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २८ ॥

'पार्थ! दुर्योधनके कारण यह भूमण्डलके भूपालों तथा भरतवंशियोंकी सेनाका महाभयंकर एवं महान् संहार हो रहा है॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्।
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा ॥ २९ ॥

'भरतनन्दन! देखो, बड़े-बड़े धनुर्धरोंके ये सुवर्णजटित पृष्ठभागवाले धनुष, आभूषण और तरकस पड़े हुए हैं ॥२९॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः।
तैलधौतांश्च नाराचान् विमुक्तानिव पन्नगान् ॥ ३० ॥

'सुनहरी पाँखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले ये बाण तथा तेलमें धोकर साफ किये हुए नाराच धनुषसे छूटकर सर्पोंके समान पड़े हुए हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३० ॥

आकीर्णांस्तोमरांश्चापि चित्रान् हेमभूषितान्।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१ ॥

'भारत! देखो, ये सुवर्णभूषित विचित्र तोमर चारों ओर बिखरे पड़े हैं और ये फेंकी हुई ढालें हैं, जिनके पृष्ठभागपर सोना जड़ा हुआ था ॥ ३१ ॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ ३२ ॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान्।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ ३३ ॥

'सोनेके बने हुए प्रास, सुवर्णभूषित शक्तियाँ, सोनेके पत्रोंसे जड़ी हुई विशाल गदाएँ, स्वर्णमयी ऋष्टि, सुवर्णभूषित पट्टिश तथा स्वर्णचित्रित दंडोंके साथ बहुतसे फरसे फेंके पड़े हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३२-३३॥

परिघान् भिन्दिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि।
अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च ॥ ३४ ॥

'देखो, ये परिघ, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, कुणप, लोहेके बने हुए भाले तथा भारी-भारी मुसल पड़े हुए हैं ॥ ३४ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥

'विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली वीर सैनिक हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये प्राणशून्य हो गये हैं तो भी जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३५ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान्।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः ॥ ३६ ॥

'देखो, ये सहस्रों योद्धा हाथी, घोड़ों और रथोंसे कुचल गये हैं। गदाओंके आघातसे इनके अंग चूर-चूर हो गये हैं और मुसलोंकी मारसे मस्तक फट गये हैं ॥ ३६ ॥

मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुन! बाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, खड्ग, पट्टिश, प्रास, नखर और लगुडोंकी मारसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंके कई टुकड़े हो गये हैं। वे सब-के-सब खूनसे लथपथ हो प्राणशून्य होकर पड़े हैं और उनके द्वारा सारी रणभूमि पट गयी है ॥ ३७-३८ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥

'भारत! बाजूबंद और सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, चन्दनसे चर्चित, दस्ताने और केयूरोंसे सुशोभित कटी भुजाओंद्वारा रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है ॥ ३९ ॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ४० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।

'अंगुलित्र और अलंकारोंसे अलंकृत हाथ फेंके पड़े हैं।

वेगवान् वीरोंकी हाथीकी सूँड़के समान मोटी जाँघें कटकर गिरी हैं और जिनपर सुन्दर चूड़ामणि बँधी है वे योद्धाओंके कुण्डल-मण्डित मस्तक भी खण्डित होकर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उन सबसे रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥४०½॥

रथांश्च बहुधा भग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१ ॥
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान् ।
अनुकर्षानुपासङ्गान् पताका विविधान् ध्वजान्॥ ४२॥
योधानां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।
निरस्तजिह्वान् मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् ॥४३॥

'देखो,सोनेकी छोटी-छोटी घंटियोंसे सुशोभित बहुसंख्यक रथोंके कितने ही टुकड़े हो गये हैं और नाना प्रकारके घोड़े लहूलुहान होकर पड़े हैं। अनुकर्ष, उपासंग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज, योद्धाओंके सब ओर बिखरे हुए बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख तथा कितने ही पर्वताकार हाथी जीभ निकाले सोये पड़े हैं॥

वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः ।
वारणानां परिस्तोमान् संयुक्तानेककम्बलान् ॥ ४४ ॥

'कहीं विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ पड़ी हैं, कहीं हाथी-सवार मरकर गिरे हैं और कहीं अनेक कम्बलोंसे युक्त हाथियोंके झूल बिखरे पड़े हैं। इनकी ओर दृष्टिपात करो ॥ ४४॥

विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४५ ॥

'हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कितने ही विचित्र कम्बल फट जानेके कारण विचित्र दशाको पहुँच गये हैं। कटकर गिरे हुए नाना प्रकारके घंटे गिरते हुए हाथियोंसे दबकर चूर-चूर हो गये हैं ॥ ४५ ॥

वैदूर्यमणिदण्डांश्च पतितांश्चाङ्कुशान् भुवि ।
अश्वानां च युगापीडान् रत्नचित्रानुरश्छदान्॥ ४६ ॥

'देखो, वैदूर्यमणिके बने हुए दण्ड और अंकुश भूतलपर पड़े हैं, घोड़ोंके युगापीड तथा रत्नचित्रित कवच इधर-उधर गिरे हैं॥

विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कुथाः ।
विचित्रान् मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ४७ ॥
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि ।

'घुड़सवारोंकी ध्वजाओंके अग्रभागमें हाथियोंके सुनहरे कंबल उलझ गये हैं। घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले विचित्र, मणिजटित एवं सुवर्णभूषित रंकुमृगके चमड़ेके बने हुए झूल और जीन धरतीपर पड़े हैं, इन्हें देखो ॥ ४७½ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८ ॥
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ।

'राजाओंकी चूड़ामणियाँ, विचित्र स्वर्णमालाएँ, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ४८½॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ४९ ॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णा पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् ।

'यहाँकी भूमि राजाओंके मनोहर कुण्डलयुक्त, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान् एवं दाढ़ी-मूँछवाले पूर्ण चन्द्र-तुल्य मुखोंसे ढक गयी है ॥ ४९½ ॥

कुमुदोत्पलपद्मानां षण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥ ५० ॥
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसंनिभैः ।

'जैसे तालाब कुमुद, उत्पल और कमलोंके समूहसे विकसित दिखायी देता है, उसी प्रकार राजाओंके कुमुद और उत्पल-सदृश मुखोंसे यह रणभूमि सुशोभित हो रही है ॥५०½॥

तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥ ५१ ॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् ।

'तारागणोंसे जिसकी विचित्र शोभा होती है तथा जहाँ निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी रहती है, उस आकाशके समान इस रणभूमिकी शोभाको देखो। जान पड़ता है कि यह शरद्ऋतुके नक्षत्रोंकी मालाओंसे अलंकृत है ॥ ५१½ ॥

एतत् तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२ ॥
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत् कृतमाहवे ।

'अर्जुन ! महासमरमें ऐसा पराक्रम, जो तूने किया है, या तो तुम्हारे ही योग्य है या स्वर्गमें देवराज इन्द्रके योग्य' ॥

एवं तां दर्शयन् कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥ ५३ ॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥ ५४ ॥
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ।

इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको उस युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए श्रीकृष्णने जाते-जाते ही दुर्योधनकी सेनामें महान् कोलाहल सुना। वहाँ शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि छा रही थी। भेरी और पणव आदि बाजे बज रहे थे। रथके घोड़ों और हाथियोंके हींसने एवं चिग्घाड़नेके तथा शस्त्रोंके परस्पर टकरानेके भयानक शब्द भी सुनायी पड़ते थे ॥ ५३-५४½ ॥

प्रविश्य तद् बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५ ॥
पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः ।

तब श्रीकृष्णने वायुके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा उस सेनामें प्रवेश करके देखा कि पाण्ड्यनरेशने आपकी सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है; यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ॥

स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥ ५६ ॥
न्यहनद् द्विषतां पूगान् गतासूनन्तको यथा ।

जैसे यमराज आयुरहित प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य युद्धस्थलमें नाना प्रकारके बाणोंद्वारा शत्रुसमूहोंका नाश कर रहे थे ॥ ५६½ ॥

गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७ ॥
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत् ।

प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य अपने तीखे बाणोंसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उन्हें देह और प्राणोंसे शून्य एवं धराशायी कर देते थे ॥५७½॥

शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नानाशस्त्राणि सायकैः ।

छित्त्वा तानवधीच्छत्रून् पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ५८

जैसे इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्ड्य-नरेश शत्रुवीरोंद्वारा चलाये गये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंद्वारा नष्ट करके उन शत्रुओंका वध कर डालते थे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा पाण्ड्यनरेशका वध

धृतराष्ट्र उवाच

प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया संजय कीर्तितम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! तुमने पाण्ड्यको पहले ही लोकविख्यात वीर बतलाया था; परंतु संग्राममें उनके किये हुए वीरोचित कर्मका वर्णन नहीं किया ॥ १ ॥

तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम्।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥

आज उन प्रमुख वीरके पराक्रम, शिक्षा, प्रभाव, बल, प्रमाण और दर्पका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान् धनुषि श्रेष्ठान् यान् मन्यसे रथान्॥ ३॥
यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान् महारथान्।
न मेने चात्मना तुल्यं कंचिदेव नरेश्वरम् ॥ ४ ॥
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥ ५ ॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः ॥ ६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण आदि जिन वीरोंको आप पूर्ण विद्वान्, धनुर्वेदमें श्रेष्ठ तथा महारथी मानते हैं, इन सब महारथियोंको जो अपने पराक्रमके समक्ष तुच्छ समझता था, जो किसी भी नरेशको अपने समान नहीं मानता था, जो द्रोण और भीष्मके साथ अपनी तुलना नहीं सह सकता था और जिसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे भी अपनेमें तनिक भी न्यूनता माननेकी इच्छा नहीं की, उसी सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नृपशिरोमणि पाण्ड्यने अपमानित हुए यमराजके समान कुपित हो कर्णकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ३—६ ॥

तदुदीर्णरथाश्वेभं पत्तिप्रवरसंकुलम्।
कुलालचक्रवद् भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात् ॥७॥

कौरवसेनामें रथ, घोड़े और हाथियोंकी संख्या बढ़ी-चढ़ी थी, श्रेष्ठ पैदल सैनिकोंसे भी वह सेना भरी हुई थी, तथापि पाण्ड्यनरेशके द्वारा बलपूर्वक आहत होकर वह कुम्हारके चाककी भाँति चक्कर काटने लगी ॥ ७ ॥

व्यश्वसूतध्वजरथान् विप्रविद्धायुधद्विपान्।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ८

जैसे वायु मेघोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेश-ने अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त सैनिकोंको घोड़े, सारथि, ध्वज और रथोंसे हीन कर दिया। उनके आयुधों और हाथियोंको भी मार गिराया ॥ ८ ॥

द्विरदान् द्विरदारोहान् विपताकायुधध्वजान्।
सपादरक्षानहनद् वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥ ९ ॥

जैसे पर्वतोंका हनन करनेवाले इन्द्रने वज्रद्वारा पर्वतोंपर आघात किया था, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेशने पादरक्षकोंसहित हाथियों और हाथीसवारोंको ध्वजा, पताका तथा आयुधोंसे वञ्चित करके मार डाला ॥ ९ ॥

सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान् ॥ १० ॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान् संग्रामकर्कशान्।
विशस्त्रकवचान् बाणैः कृत्वा चैवाकरोद् व्यसून् ॥११॥

शक्ति, प्रास और तरकसोंसहित घुड़सवारों तथा घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य तथा भोजप्रदेशीय रणकर्कश शूर-वीरोंको अपने बाणोंद्वारा अस्त्र-शस्त्र तथा कवचोंसे हीन करके उनके प्राण हर लिये ॥ १०-११ ॥

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात् ॥१२॥

राजा पाण्ड्यको समराङ्गणमें बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करते देख अश्वत्थामाने निर्भय होकर उनका सामना किया ॥ १२ ॥

आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत्।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयन् ॥ १३ ॥

साथ ही उन निर्भय नरेशको मधुर वाणीमें सम्बोधित करके योद्धाओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने मुसकराकर युद्धके लिये उनका आह्वान करते हुए निर्भीकके समान कहा—॥ १३ ॥

राजन् कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥ १४ ॥

'राजन् ! कमलनयन ! तुम्हारा कुल और शास्त्रज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारा सुगठित शरीर वज्रके समान कान्तिमान् है, तुम्हारे बल और पुरुषार्थ भी प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥

मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद् धनुः।

दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद् भृशम् ॥ १५॥

'तुम्हारे धनुषकी प्रत्यञ्चा एक ही समय तुम्हारी मुट्ठीमें सटी हुई तथा गोलाकार फैली हुई दिखायी देती है। जब तुम अपनी दोनों बड़ी-बड़ी भुजाओंसे विशाल धनुषको खींचने और उसकी टङ्कार करने लगते हो, उस समय महान् मेघके समान तुम्हारी बड़ी शोभा होती है ॥ १५ ॥

शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १६॥

'जब तुम अपने शत्रुओंपर बड़े वेगसे बाण-वर्षा करने लगते हो, उस समय मैं अपने सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो समराङ्गणमें तुम्हारा सामना कर सके ॥१६॥

रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून्।
मृगसंघानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥ १७॥

तुम अकेले ही बहुत-से रथ, हाथी, पैदल और घोड़ोंको मथ डालते हो। ठीक उसी तरह, जैसे वनमें भयंकर बलशाली सिंह बिना किसी भयके मृग-समूहोंका संहार कर डालता है ॥

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन्।
वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि ह्रादीव पार्थिव ॥ १८॥

'राजन्! तुम अपने रथके गम्भीर घोषसे आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए शरत्कालमें गर्जना करनेवाले सस्यनाशक मेघके समान जान पड़ते हो ॥ १८ ॥

संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान्।
मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥ १९॥

'अब तुम अपने तरकससे विषधर सर्पोंके समान तीखे बाण लेकर जैसे महादेवजीके साथ अन्धकासुरने संग्राम किया था, उसी प्रकार केवल मेरे साथ युद्ध करो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥ २०॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर पाण्ड्यनरेश बोले—'अच्छा ऐसा ही होगा। पहले तुम प्रहार करो।' इस प्रकार आक्षेपयुक्त वचन सुनकर अश्वत्थामाने उनपर अपने बाणका प्रहार किया। तब मलयध्वज पाण्ड्यनरेशने कर्णी नामक बाणके द्वारा द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥

मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः।
स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥ २१॥

तब आचार्यप्रवर अश्वत्थामाने अत्यन्त भयंकर तथा अग्निशिखाके समान तेजस्वी मर्मभेदी बाणोंद्वारा पाण्ड्यनरेशको मुसकराते हुए घायल कर दिया ॥ २१ ॥

ततोऽपरान् सुतीक्ष्णाग्रान् नाराचान् मर्मभेदिनः।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥२२॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने तीखे अग्रभागवाले दूसरे बहुत-से मर्मभेदी नाराच चलाये, जो दसवीं गतिका आश्रय लेकर छोड़े गये थे* ॥ २२ ॥

तानशरानच्छिनत् पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः।
चतुर्भिरर्दयच्चाश्वानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २३॥

परंतु पाण्ड्यनरेशने नौ तीखे सायकोंद्वारा उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर चार बाणोंसे उसके अश्वोंको अत्यन्त पीड़ा दी, जिससे वे शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ बैठे ॥

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्तांश्छित्त्वा निशितैः शरैः।
धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः ॥ २४॥

तत्पश्चात् पाण्ड्यराजने अपने तीखे बाणोंद्वारा सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाके उन बाणोंको छिन्न-भिन्न करके उसके धनुषकी फैली हुई डोरी भी काट डाली ॥ २४ ॥

दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा।
प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान् नरैरन्यान् हयोत्तमान् ॥२५॥
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः।
इषुसम्बाधमाकाशमकरोद् दिश एव च ॥ २६॥

तब शत्रुसूदन द्रोणपुत्र विप्रवर अश्वत्थामाने अपने दिव्य धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तथा यह भी देखकर कि मेरे रथमें सेवकोंने शीघ्र ही दूसरे उत्तम घोड़े लाकर जोत दिये हैं, सहस्रों बाण छोड़े तथा आकाश और दिशाओंको अपने बाणोंसे खचाखच भर दिया ॥ २५-२६ ॥

ततस्तानस्यतः सर्वान् द्रौणेर्बाणान् महात्मनः।
जानानोऽप्यक्षयान् पाण्ड्योऽशातयत् पुरुषर्षभः ॥२७॥

पुरुषशिरोमणि पाण्ड्यने बाण चलाते हुए महामनस्वी अश्वत्थामाके उन सब बाणोंको अक्षय जानते हुए भी काट डाला॥

प्रयुक्तांस्तान् प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २८॥

इस प्रकार अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंको प्रयत्नपूर्वक काटकर उसके शत्रु पाण्ड्यनरेशने पैने बाणोंद्वारा रणभूमिमें उसके दोनों चक्ररक्षकोंको मार डाला ॥ २८ ॥

---

* बाणोंकी दस गतियाँ बतायी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं—१—उन्मुखी, २—अभिमुखी, ३—तिर्यक्, ४—मन्दा, ५—गोमूत्रिका, ६—ध्रुवा, ७—स्खलिता, ८—यमकाक्रान्ता, ९—क्रुष्टा, और १०—अतिक्रुष्टा। इनमेंसे पूर्वकी तीन गतियाँ क्रमशः मस्तक, हृदय तथा पार्श्वदेशका स्पर्श करनेवाली हैं। अर्थात् उन्मुखी गतिसे छोड़ा हुआ बाण मस्तकपर, अभिमुखी गतिसे प्रेरित बाण वक्षःस्थलपर और तिर्यक् गतिसे चलाया हुआ बाण पार्श्वभागमें आघात करता है। मन्दा गतिसे छोड़े गये बाण त्वचाको कुछ-कुछ छेद पाते हैं। गोमूत्रिका गतिसे चलाये गये बाण बायें और दायें दोनों ओर जाते तथा कवचको भी काट देते हैं। ध्रुवा गति निश्चितरूपसे लक्ष्यका भेदन करानेवाली होती है। स्खलिता कहते हैं, लक्ष्यसे विचलित होनेवाली गतिको। उसके द्वारा संचालित बाण लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं। यमकाक्रान्ता वह गति है, जिसके द्वारा प्रेरित बाण बारंबार लक्ष्य वेधकर निकल जाते हैं। क्रुष्टा उस गतिका नाम है, जो लक्ष्यके एक अवयव भुजा आदिका छेदन कराती है। दसवीं गतिका नाम है अतिक्रुष्टा; जिसके द्वारा चलाया गया बाण शत्रुका मस्तक काटकर उसके साथ ही दूर जा गिरता है। (नीलकण्ठीके आधारपर)

अथारेलाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः।
प्रास्यद् द्रोणसुतो बाणान् वृष्टिं पूषानुजो यथा॥ २९ ॥

शत्रुकी यह फुर्ती देखकर द्रोणकुमारने अपने धनुषको खींच कर मण्डलाकार बना दिया और जैसे पूषाका भाई पर्जन्य जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार उसने बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी॥

अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम्।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष॥ ३० ॥

मान्यवर ! आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़ोंने जितने आयुध ढोये थे, उन सबको अश्वत्थामाने उस दिनके आठवें भागमें चलाकर समाप्त कर दिया॥ ३० ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम्।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन्॥ ३१ ॥

यमराजके समान क्रोधमें भरा हुआ अश्वत्थामा उस समय कालका भी काल-सा जान पड़ता था। जिन-जिन लोगोंने वहाँ उसे देखा, वे प्रायः बेहोश हो गये॥ ३१ ॥

पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम्।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्या व्यवीवृषत्॥ ३२ ॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वत और वृक्षोंसहित इस पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने उस सेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ३२ ॥

द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम्।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत्॥३३॥

अश्वत्थामारूपी मेघद्वारा की हुई उस दुःसह बाणवर्षाको पाण्ड्यराजरूपी वायुने वायव्यास्त्रसे छिन्न-भिन्न करके प्रसन्नतापूर्वक उड़ा दिया॥ ३३ ॥

तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम्।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्वाश्वांश्चतुरोऽहनत्॥ ३४ ॥

उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बारंबार गर्जना करते हुए पाण्ड्यके मलयाचल-सदृश ऊँचे तथा चन्दन और अगुरुसे चर्चित ध्वजको काटकर उनके चारों घोड़ोंको भी मार डाला॥

सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम्।
धनुश्छित्त्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद् रथम्॥ ३५ ॥

फिर एक बाणसे सारथिको मारकर महान् मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले उनके धनुषको भी अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा काट दिया और उनके रथको तिल-तिल करके नष्ट कर डाला॥ ३५ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्त्वा सर्वायुधानि च।
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया॥ ३६ ॥

इस प्रकार अस्त्रोंद्वारा पाण्ड्यके अस्त्रोंका निवारण करके अश्वत्थामाने उनके सारे आयुध काट डाले, तथापि युद्धकी अभिलाषासे उसने अपने वशमें आये हुए शत्रुका भी वध नहीं किया॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत्।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद् बलम्॥ ३७ ॥

इसी बीचमें कर्णने पाण्डवोंकी गजसेनापर आक्रमण किया। उस समय उसने पाण्डवोंकी विशाल सेनाको खदेड़ना आरम्भ किया॥ ३७ ॥

विरथान् रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत।
गजान् बहुभिरानर्च्छच्छरैः संनतपर्वभिः॥ ३८ ॥

भारत ! उसने बहुत-से रथियोंको रथहीन कर दिया, हाथीसवारों और घुड़सवारोंके हाथी और घोड़े मार डाले तथा झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा कितने ही हाथियोंको अत्यन्त पीड़ित कर दिया॥ ३८ ॥

अथ द्रौणिर्महेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिबर्हणम्।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद् युद्धकाङ्क्षया॥ ३९ ॥

इधर महाधनुर्धर अश्वत्थामाने शत्रुसंहारक, रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्यको रथहीन करके भी उनका वध इसलिये नहीं किया कि वह उनके साथ अभी युद्ध करना चाहता था॥ ३९ ॥

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पित-
स्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली।
तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरन्
जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम्॥ ४० ॥

इतनेहीमें एक सजा-सजाया श्रेष्ठ एवं बलवान् गजराज बड़ी उतावलीके साथ छूटकर प्रतिध्वनिका अनुसरण करता हुआ उधर आ निकला, उसके मालिक और महावत मारे जा चुके थे। अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह शीघ्रतापूर्वक पाण्ड्यराजकी ओर दौड़ा। उसने प्रतिपक्षी हाथीकी गर्जनाका शब्द सुनकर बड़े वेगसे उसी ओर धावा किया था॥४०॥

तं वारणं वारणयुद्धकोविदो
द्विपोत्तमं पर्वतसानुसंनिभम्।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन्
यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा॥ ४१ ॥

परंतु गजयुद्धविशारद मलयध्वज पाण्ड्यनरेश पर्वतशिखरके समान ऊँचे उस श्रेष्ठ गजराजपर उतनी ही शीघ्रताके साथ चढ़ गये, जैसे दहाड़ता हुआ सिंह किसी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता है॥ ४१ ॥

स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं
बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं
गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन्॥ ४२ ॥

गिरिराज मलयके स्वामी पाण्ड्यराजने तुरंत अग्रसर होनेके लिये उस हाथीको पीड़ा दी और अस्त्र-प्रहारके लिये उत्तम यत्न, बल तथा क्रोधसे प्रेरित हो सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी एक तोमर हाथमें लेकर गर्जना करते हुए उसे शीघ्र ही आचार्यपुत्रपर चला दिया॥ ४२ ॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्
पराहनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ४३ ॥

उस तोमरद्वारा उन्होंने उत्तम मणि, श्रेष्ठ हीरक, स्वर्ण, वस्त्र, माला और मुक्तासे विभूषित अश्वत्थामाके मुकुटपर बारंबार यह कहते हुए प्रसन्नतापूर्वक आघात किया कि 'तुम मारे गये, मारे गये' ॥ ४३ ॥

तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं
भृशातिपातात् पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं
यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ४४ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और अग्निके समान प्रकाशमान वह मुकुट उस तोमरके गहरे आघातसे चूर-चूर होकर महान् शब्द-के साथ उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो किसी पर्वतका शिखर भारी आवाजके साथ धराशायी हो जाता है ॥ ४४ ॥

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना
पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डसंनिभा-
निषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५ ॥

तब अश्वत्थामा पैरोंसे ठुकराये हुए नागराजके समान शीघ्र ही अत्यन्त क्रोधसे जल उठा । फिर तो उसने यमदण्डके समान शत्रुओंको संताप देनेवाले चौदह बाण हाथमें लिये ॥

द्विपस्य पादाग्रकरान् स पञ्चभि-
र्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः ।
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः
स पाण्ड्यराजानुचरान् महारथान् ॥ ४६ ॥

उसने पाँच बाणोंसे उस हाथीके पैर तथा सूँड़ काट लिये । फिर तीन बाणोंसे पाण्ड्यनरेशकी दोनों भुजाओं और मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया । इसके बाद छः बाणोंसे पाण्ड्यराजके पीछे चलनेवाले उत्तम कान्तिसे सुशोभित छः महारथियोंको भी मार डाला ॥ ४६ ॥

सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ
विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७ ॥

उत्तम, विशाल, गोलाकार, श्रेष्ठ चन्दनसे चर्चित, सुवर्ण, मुक्ता, मणि तथा हीरोंसे विभूषित पाण्ड्यनरेशकी वे दोनों भुजाएँ पृथ्वीपर गिरकर गरुड़के मारे हुए दो सर्पोंके समान छटपटाने लगीं ॥ ४७ ॥

शिरश्च तत् पूर्णशशिप्रभाननं
सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत् सकुण्डलं
विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ॥ ४८ ॥

जिसका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान तथा नेत्र क्रोधके कारण अरुणवर्ण थे, जिसकी नासिका ऊँची थी, वह पाण्ड्यराजका कुण्डलमण्डित मस्तक पृथ्वीपर गिरकर भी दो विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४८ ॥

स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः
कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः ।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता
यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा ॥ ४९ ॥

युद्धकुशल अश्वत्थामाने पाँच उत्तम बाण मारकर उस हाथीके छः टुकड़े कर दिये और फिर तीन बाणसे राजाके भी चार टुकड़े कर डाले । इस प्रकार दोनों मिलाकर दस भाग कर दिये । जैसे कि कर्मनिपुण पुरोहित दस हविर्धान यज्ञमें इन्द्र आदि दस देवताओंके लिये हविष्यके दस भाग कर देता है ॥ ४९ ॥

स पादशो राक्षसभोजनान् बहून्
प्रदाय पाण्ड्योऽश्वमनुष्यकुञ्जरान् ।
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रिय-
स्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः ॥ ५० ॥

जैसे पितरोंकी प्रिय चिताग्नि मृत शरीरको पाकर प्रज्वलित हो उसे जलाती है और अन्तमें जलका अभिषेक पाकर शान्त हो जाती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेश घोड़े, हाथी और मनुष्यों-के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें प्रचुर मात्रामें राक्षसोंके लिये भोजन देकर अन्तमें अश्वत्थामाके बाणसे सदाके लिये शान्त हो गये॥

समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः
समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा
जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ॥ ५१ ॥

जिसने पूरी विद्या समाप्त कर ली है तथा समस्त कर्तव्य-कर्म पूर्ण कर लिये हैं, उस गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पास सुहृदों-सहित आकर आपके पुत्र दुर्योधनने प्रसन्नतापूर्वक उसकी बड़ी पूजा की । ठीक उसी तरह, जैसे बलिके पराजित होनेपर देवराज इन्द्रने विष्णुका पूजन किया था ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें पाण्ड्यवधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद



संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

वर्ष २

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ८

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष २ } गोरखपुर, ज्येष्ठ २०१४, जून १९५७ { संख्या ८ पूर्ण संख्या २०

त्रिपुरनाशक शिवकी अभ्यर्थना

कल्पान्तक्रूरकेलिः क्रतुकदनकरः कुन्दकर्पूरकान्तिः
क्रीडन् कैलासकूटे कलितकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः ।
कङ्कालक्रीडनोत्कः कलितकलकलः कालकालीकलत्रः
कालिन्दीकालकण्ठः कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिकः कौ ॥

कल्पान्त ही जिनकी दुर्ललित लीला है, जो दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले हैं, जिनकी अङ्गकान्ति कुन्द एवं कर्पूरके समान है, जो कैलासपर्वतके शिखरपर क्रीडा कर रहे हैं, चन्द्रकलाको धारण करते हैं, कान्तियुक्त शरीरसे सुशोभित होते हैं, कङ्कालोंके साथ क्रीडा करनेको उत्सुक हैं, कलकल ध्वनि करनेवाले, कालरूप और कालीकान्त हैं तथा कालिन्दीके समान जिनका नीलाभ कण्ठ है, वे कोई कपाल-मालाधारी शिव इस पृथ्वीतलपर हमारी कुशल करें ।

वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)

विषय-सूची (कर्णपर्व)

चित्र-सूची



त्रिपुर-विनाशके लिये देवताओंद्वारा शंकरजीकी स्तुति

एकविंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-दलोंका भयंकर घमासान युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि संजय ।
एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब युद्धस्थलमें अश्वत्थामाद्वारा पाण्ड्यनरेश मार डाले गये और मेरे पक्षके अद्वितीय वीर कर्णने जब शत्रुसैनिकोंको मार भगाया, उस समय अर्जुनने क्या किया ? ॥ १ ॥

समाप्तविद्यो बलवान् युक्तो वीरः स पाण्डवः ।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना ॥ २ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुन युद्धविद्याकी शिक्षा समाप्त कर चुके हैं । वे विजयके प्रयत्नमें लगे हुए बलवान् वीर हैं । भगवान् शङ्करने उन्हें कृपापूर्वक अनुगृहीत करते हुए यह कह दिया है कि 'तुम समस्त प्राणियोंमें प्रधान एवं अजेय होओगे' ॥२॥

तस्मान्महद् भयं तीव्रममित्रघ्नाद् धनंजयात् ।
स यत् तत्राकरोत् पार्थस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

इसलिये उन शत्रुनाशक धनंजयसे मुझे अत्यन्त तीव्र एवं महान् भय बना रहता है । अतः संजय ! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने जो कुछ किया हो, वह मुझे बताओ ॥ ३ ॥

संजय उवाच

हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम् ।
पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान् ॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पाण्ड्यनरेशके मारे जानेपर श्रीकृष्णने बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनसे यह हितकर वचन कहा—'पार्थ ! मैं राजा युधिष्ठिरको नहीं देख रहा हूँ । युद्धस्थलसे हटे हुए अन्य पाण्डव भी मुझे नहीं दिखायी दे रहे हैं॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः ॥ ५ ॥
तथाश्वरथनागानां कृतं च कदनं महत् ।

'पुनः लौटे हुए पाण्डव-योद्धाओंने विशाल शत्रुसेनामें भगदड़ मचा दी थी; परंतु अश्वत्थामाके संकल्पके अनुसार कर्णने सृंजयोंका संहार कर डाला तथा अपनी सेनाके हाथी, घोड़े एवं रथोंका भारी विनाश कर दिया' ॥ ५½ ॥

सर्वमाख्यातवान् वीरो वासुदेवः किरीटिने ॥ ६ ॥
एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् ।
वाहयाश्वान् हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः ॥ ७ ॥

वीर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनको ये सारी बातें बतायीं। यह सुनकर तथा अपने भाईके ऊपर आये हुए इस घोर एवं महान् भयको देखकर पाण्डुकुमार अर्जुनने कहा—'हृषीकेश ! आप शीघ्र ही इन घोड़ोंको बढ़ाइये' ॥६-७॥

ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना ।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत् समागमः ॥ ८ ॥

तब भगवान् हृषीकेश जिसका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा नहीं था उस रथके द्वारा आगे बढ़े । उस समय वहाँ पुनः बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था ॥ ८ ॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ९ ॥

कौरव तथा पाण्डव योद्धा पुनः निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये थे । पाण्डव-सैनिकोंके प्रधान थे भीमसेन और हम लोगोंका प्रधान था सूतपुत्र कर्ण ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ १० ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस समय कर्णका पाण्डव-सैनिकोंके साथ जो पुनः संग्राम आरम्भ हुआ था, वह यमराजके राज्यकी श्रीवृद्धि करनेवाला था ॥ १० ॥

धनूंषि बाणान् परिघानसिपट्टिशतोमरान् ।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान् ॥ ११ ॥
गदाः प्रासाञ्छितान् कुन्तान् भिन्दिपालान् महाङ्कुशान् ।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे धनुष, बाण, परिघ, खड्ग, पट्टिश, तोमर, मुसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, गदा, प्रास, तीखे कुन्त, भिन्दिपाल और बड़े-बड़े अङ्कुश लेकर शीघ्रतापूर्वक युद्धके मैदानमें कूद पड़े थे॥

बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत् ।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान् ॥ १३ ॥

रथी वीर अपने बाणसहित धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि एवं रथके पहियोंकी घर्घराहटसे आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा तथा भूतलको शब्दायमान करते हुए शत्रुओंपर चढ़ आये ॥ १३ ॥

तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम् ।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः ॥ १४ ॥

कलहके पार जानेकी इच्छा रखनेवाले वे सभी वीर उस महान् शब्दसे हर्ष एवं उत्साहमें भरकर विपक्षी वीरोंके साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे ॥ १४ ॥

ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत् ॥ १५ ॥

प्रत्यञ्चा, हस्तत्राण और धनुषका शब्द, चिग्घाड़ते हुए हाथियोंकी आवाज तथा रणभूमिमें गिरते हुए पैदल मनुष्योंके महान् आर्तनादकी तुमुल ध्वनि वहाँ गूँजने लगी ॥ १५ ॥

तालशब्दांश्च विविधाञ्शूराणां चाभिगर्जताम् ।

श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६ ॥

सामने गर्जना करनेवाले शूरवीरोंके ताल ठोंकनेके विविध शब्द सुनकर कितने ही सैनिक वहाँ भयसे थर्रा उठते थे, कितने ही गिर पड़ते थे और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे॥

तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् ॥ १७ ॥

जोर-जोरसे गर्जते तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए उन शत्रुसैनिकोंमेंसे बहुतोंको वीर कर्णने अपने बाणोंसे मथ डाला ॥ १७ ॥

पञ्च पाञ्चालवीराणां रथान् दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान् कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १८ ॥

उसने अपने बाणोंद्वारा पाञ्चाल वीरोंमेंसे पहले पाँच, फिर दस और फिर पाँच रथियोंको घोड़े, सारथि एवं ध्वजों-सहित मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ १८ ॥

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे ।
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १९ ॥

तब समराङ्गणमें पाण्डवदलके शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले महापराक्रमी प्रधान-प्रधान योद्धाओंने तुरंत आ-कर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् ।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥ २० ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रुसेनाका मन्थन करते हुए उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे यूथ-पति गजराज पक्षियोंसे भरे हुए कमलपूर्ण सरोवरमें घुसकर उसे मथने लगता है ॥ २० ॥

द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ २१ ॥

राधापुत्र कर्ण क्रमशः शत्रुसेनाके मध्यभागमें पहुँचकर अपने उत्तम धनुषको कम्पित करता हुआ पैने बाणोंसे शत्रु-ओंके सिर काट-काटकर गिराने लगा ॥ २१ ॥

चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन् भुवि देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः ॥ २२ ॥

उस समय देहधारियोंके चमड़े और कवच कट-कटकर भूतलपर गिर रहे थे । शत्रुसैनिक कर्णके द्वितीय बाणका स्पर्श नहीं सहन कर पाते थे ॥ २२ ॥

वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत् कशया वाजिनो यथा ॥ २३ ॥

जैसे घुड़सवार घोड़ोंको कोड़ेसे पीटता है, उसी प्रकार कर्ण धनुषसे छूटकर कवच, शरीर और प्राणोंको मथ डालने-वाले बाणोंद्वारा शत्रुओंके हस्तत्राणपर भी प्रहार करने लगा ॥

पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान् ।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥ २४ ॥

जैसे सिंह अपनी दृष्टिमें पड़े हुए मृगोंको वेगपूर्वक मसल डालता है, उसी प्रकार कर्णने अपने बाणोंकी पहुँचके भीतर आये हुए पाण्डव, सृंजय तथा पाञ्चाल योद्धाओंको बड़े वेगसे रौंद डाला ॥ २४ ॥

ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २५ ॥

मान्यवर ! तब पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा नकुल, सहदेव और सात्यकि—इन सबने एक साथ आकर कर्णपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपाञ्चालपाण्डुषु ।
प्रियानसून् रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥ २६॥

उस समय जब कौरव, पाञ्चाल तथा पाण्डव योद्धा परिश्रमपूर्वक युद्धमें लगे हुए थे, सभी सैनिक रणभूमिमें अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर एक दूसरेको मारने लगे ॥

सुसंनद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥ २७ ॥
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः ।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २८ ॥

माननीय नरेश ! कमर कसे, कवच बाँधे तथा शिर-स्त्राण एवं आभूषण धारण किये हुए महाबली योद्धा गरजते, उछलते-कूदते और एक दूसरेको ललकारते हुए कालदण्डके समान गदा, मुसल और परिघ उठाये परस्पर धावा बोल रहे थे ॥ २७-२८ ॥

ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥ २९ ॥

तदनन्तर वे एक दूसरेका वध करने, परस्पर चोट खाकर धराशायी होने तथा शरीरसे रक्त बहाने लगे । उनके मस्तिष्क, नेत्र और आयुध नष्ट हो गये थे ॥ २९ ॥

दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसंनिभैः ।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥ ३० ॥

कितने ही वीरोंके शरीर अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त एवं प्राण-शून्य होकर पड़े थे; परंतु उनके खुले हुए मुखमें जो रक्त-रञ्जित दाँत थे, उनके द्वारा वे फटे हुए अनारके फलों-जैसे जान पड़ते थे और उस तरहके मुखोंद्वारा वे जीवित-से प्रतीत होते थे ॥ ३० ॥

परश्वधैश्चाप्यवरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥
ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा ।
संचकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥ ३२ ॥

महासागरके समान उस विशाल युद्धस्थलमें परस्पर कुपित हुए अन्यान्य योद्धा परशु, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, भिन्दिपाल, नखर, प्रास तथा तोमरोंद्वारा यथासम्भव एक

दूसरेका छेदन-भेदन, विदारण, क्षेपण, कर्तन और हनन करने लगे ॥ ३१-३२ ॥

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३३ ॥

जैसे लाल चन्दनके वृक्ष कट जानेपर रक्त वर्णका रस बहाने लगते हैं, उसी प्रकार परस्परके आघातसे मारे गये योद्धा खूनसे लथपथ एवं प्राणशून्य होकर युद्धभूमिमें पड़े थे और अपने अङ्गोंसे रक्त बहा रहे थे ॥ ३३ ॥

रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः ।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४ ॥

रथियोंसे रथी, हाथियोंसे हाथी, पैदल मनुष्योंसे मनुष्य और घोड़ोंसे घोड़े मारे जाकर रणभूमिमें सहस्रोंकी संख्यामें पड़े थे ॥ ३४ ॥

ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५ ॥

ध्वज, मस्तक, छत्र, हाथीकी सूँड़ तथा मनुष्योंकी भुजाएँ—ये सबके सब क्षुरों, भल्लों तथा अर्धचन्द्रोंद्वारा कट-कर भूतलपर पड़े थे ॥ ३५ ॥

नरांश्च नागान् सरथान् हयान् ममृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥
सपताकाध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।

घुड़सवारोंने कितने ही शूरवीरोंको मार डाला और बड़े-बड़े दन्तार हाथियोंकी सूँड़ें काट लीं । सूँड़ कट जानेपर उन हाथियोंने युद्धस्थलमें बहुत-से मनुष्यों, हाथियों, रथों और घोड़ोंको कुचल डाला । फिर वे पताका और ध्वजोंसहित टूटे-फूटे पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६½ ॥

पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥ ३७ ॥
हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।

पैदल वीरोंद्वारा उछल-उछलकर मारे गये और मारे जाते हुए कितने ही हाथी और रथ सवारोंसहित सब ओर पड़े थे ॥ ३७½ ॥

अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८ ॥
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते ।

कितने ही घुड़सवार बड़ी उतावलीके साथ पैदल वीरोंके पास जाकर उनके द्वारा मारे गये तथा झुंड-के-झुंड पैदल सैनिक भी घुड़सवारोंकी चोटसे मारे जाकर युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गये थे ॥ ३८½ ॥

मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥ ३९ ॥
हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे ।

उस महासमरमें मारे गये योद्धाओंके मुख और शरीर कुचले हुए कमलों और कुम्हलायी हुई मालाओंके समान श्रीहीन हो गये थे ॥ ३९½ ॥

रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४० ॥

नरेश्वर ! हाथी, घोड़े और मनुष्योंके अत्यन्त सुन्दर रूप भी वहाँ कीचड़में सने हुए वस्त्रोंके समान घिनौने हो गये थे । उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

पाण्डवसेनापर भयानक गज-सेनाका आक्रमण, पाण्डवोंद्वारा पुण्ड्रकी पराजय तथा बङ्गराज और अङ्गराजका वध, गजसेनाका विनाश और पलायन

संजय उवाच

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा पाकर बहुत-से महावत धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक हाथियोंके साथ आकर उनपर टूट पड़े ॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥
मेकलाः कोसला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा ।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४ ॥

भारत ! पूर्व और दक्षिण दिशाके श्रेष्ठ गजयोद्धा तथा अंग, बंग, पुण्ड्र, मगध, ताम्रलिप्त, मेकल, कोसल, मद्र, दशार्ण तथा निषध देशोंके समस्त गजयुद्धनिपुण वीर कलिङ्गों-के साथ मिलकर वर्षा करनेवाले मेघोंके समान समराङ्गणमें पाञ्चाल-सेनापर बाण, तोमर और नाराचोंकी वृष्टि करने लगे ॥

तान् सम्मिमर्दिषून् नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्भृशम् ।
चोदितान् पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥ ५ ॥

वे नाग शत्रुओंकी सारी सेनाको कुचल डालनेकी इच्छा रखते थे और उन्हें पैरोंकी एड़ी, अँगूठों तथा अङ्कुशोंकी मारसे बारंबार आगे बढ़नेके लिये प्रेरित किया जा रहा था । यह देखकर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने उनपर नाराच नामक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५ ॥

एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।

द्विरदानभिविव्याध क्षितैर्गिरिनिभाञ्शरैः ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नने उन पर्वताकार हाथियोंमेंसे प्रत्येकको अपने चलाये हुए दस-दस, छः-छः और आठ-आठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम् ।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥ ७ ॥

उस समय मेघोंकी घटासे ढके हुए सूर्यके समान धृष्टद्युम्नको उन हाथियोंसे आच्छादित हुआ देख पाण्डव और पाञ्चाल सैनिक तीखे आयुध लिये गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ ७ ॥

तान् नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः ।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
समन्तात् सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९ ॥

वे प्रत्यञ्चारूपी वीणाके तारको झंकारते, शूरवीरोंके दिये हुए तालसे प्रेरणा लेते तथा वीरोचित नृत्य करते हुए उन हाथियोंपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, शिखण्डी तथा पराक्रमी चेकितान—ये सभी वीर चारों ओरसे उन हाथियोंपर उसी प्रकार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, जैसे बादल पर्वतोंपर पानी बरसाते हैं ॥ ८-९ ॥

ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान् रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १० ॥

म्लेच्छोंद्वारा आगे बढ़ाये हुए वे अत्यन्त क्रोधी गजराज मनुष्यों, घोड़ों और रथोंको अपनी सूँड़ोंसे उठाकर फेंक देते और उन्हें पैरोंसे मसल डालते थे ॥ १० ॥



बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ ११ ॥

कितनोंको अपने दाँतोंके अग्रभागसे विदीर्ण कर देते और बहुतोंको सूँड़ोंसे खींचकर दूर फेंक देते थे । कितने ही योद्धा उनके दाँतोंमें गुँथकर बड़ी भयानक अवस्थामें नीचे गिरते थे ॥

प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपं वङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत् ॥ १२ ॥

इसी समय सात्यकिने अपने सामने उपस्थित हुए वंगराजके हाथीके मर्मस्थानोंको भयंकर वेगवाले नाराचसे विदीर्ण करके उसे धराशायी कर दिया ॥ १२ ॥

तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद् वक्षःसात्यकिःसोऽपतद् भुवि ॥ १३ ॥

वंगराज अपने शरीरको सिकोड़कर उस हाथीसे कूदना ही चाहता था कि सात्यकिने नाराचद्वारा उसकी छाती छेद डाली; अतः वह घायल होकर भूतलपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत् त्रिभिः ॥ १४ ॥

दूसरी ओर पुण्ड्रराज अक्रमण कर रहे थे । उनका हाथी चलते-फिरते पर्वतके समान जान पड़ता था । सहदेवने प्रयत्नपूर्वक चलाये हुए तीन नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस हाथीको पताका, महावत, कवच, ध्वज तथा प्राणोंसे हीन करके सहदेव पुनः अङ्गराजकी ओर बढ़े ॥१५॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् ॥ १६ ॥

परंतु नकुलने सहदेवको रोककर स्वयं ही अङ्गराजको पीड़ित किया । उन्होंने यमदण्डके समान तीन भयानक नाराचोंद्वारा उनके हाथीको और सौ नाराचोंसे अङ्गराजको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥ १७ ॥

अङ्गराजने नकुलपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी आठ सौ तोमर चलाये; परंतु नकुलने उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥

तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् पाण्डुकुमार नकुलने एक अर्धचन्द्रके द्वारा अङ्गराजका सिर काट लिया । इस प्रकार मारा गया म्लेच्छजातीय अङ्गराज अपने हाथीके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥ १९ ॥

गजशिक्षामें कुशल अङ्गराजके पुत्रके मारे जानेपर कुपित हुए अङ्गदेशीय महावतोंने हाथियोंद्वारा नकुलपर आक्रमण किया ॥ १९ ॥

चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥ २० ॥
मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥ २१ ॥

उन हाथियोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। उनके मुख बहुत सुन्दर थे। उनको कसनेके लिये बनी हुई रस्सी और कवच सुवर्णमय थे। वे प्रज्वलित पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उन हाथियोंके द्वारा नकुलको कुचलवा देनेकी इच्छा रखकर मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध तथा ताम्रलिप्त-देशीय योद्धा बड़ी उतावलीके साथ बाणों और तोमरोंकी वर्षा कर रहे थे। वे सब-के-सब उन्हें मार डालनेको उतारू थे ॥

तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ २२ ॥

बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलको उनके द्वारा आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक योद्धा तुरंत उन म्लेच्छोंपर टूट पड़े ॥ २२ ॥

ततस्तदभवद् युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥ २३ ॥

तब उन रथियोंका हाथियोंके साथ युद्ध छिड़ गया। वे रथी वीर उनके ऊपर सहस्रों तोमरों और बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २३ ॥

नागानां प्रास्फुटन् कुम्भा मर्माणि विविधानि च।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥ २४ ॥

नाराचोंसे अत्यन्त घायल हुए उन हाथियोंके कुम्भस्थल फूट गये, विभिन्न मर्मस्थान विदीर्ण हो गये तथा उनके दाँत और आभूषण कट गये ॥ २४ ॥

तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन् सह सादिभिः ॥ २५ ॥

सहदेवने उनमेंसे आठ महागजोंको चौसठ पैने बाणोंसे शीघ्र मार डाला। वे सब-के-सब सवारोंके साथ धराशायी हो गये ॥ २५ ॥

अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद् धनुरुत्तमम्।
नाराचैरहनन्नागान् नकुलः कुलनन्दनः ॥ २६ ॥

अपने कुलको आनन्दित करनेवाले नकुलने भी प्रयत्न-पूर्वक उत्तम धनुषको खींचकर अनायास ही दूरतक जानेवाले नाराचोंद्वारा बहुतसे हाथियोंका वध कर डाला ॥ २६ ॥

ततः पाञ्चाल्यशैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः।
शिखण्डी च महानागान् सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकगण तथा शिखण्डीने भी उन महान् गजराजोंपर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥

ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥ २८ ॥

जैसे वज्रोंकी वर्षासे पर्वत ढह जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सैनिकरूपी बादलोंद्वारा की हुई बाणोंकी वृष्टिसे आहत हो शत्रुओंके हाथीरूपी पर्वत धराशायी हो गये ॥ २८ ॥

एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उन श्रेष्ठ पाण्डव महारथियोंने आपके हाथियोंका संहार करके देखा कि आपकी सेना किनारा तोड़कर बहनेवाली नदीके समान सब ओर भाग रही है ॥ २९ ॥

तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके उन सैनिकोंने आपकी उस सेनाको मथकर उसमें हलचल पैदा करके पुनः कर्णपर धावा किया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम्।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! सहदेव क्रोधमें भरकर आपकी विशाल सेनाको दग्ध करने लगे। उस समय भाई दुःशासनने अपने उस भ्राताका सामना किया ॥ १ ॥

तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ २ ॥

उस महायुद्धमें उन दोनों भाइयोंको एकत्र हुआ देख वहाँ खड़े हुए महारथी योद्धा सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ २ ॥

ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३ ॥

भारत! उस समय कुपित हुए आपके धनुर्धर पुत्रने

अपने तीन बाणोंद्वारा बलवान् पाण्डुपुत्र सहदेवकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

सहदेवस्ततो राजन् नाराचेन तवात्मजम्।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥

राजन्! तब सहदेवने आपके पुत्रको एक नाराचसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंसे बींध डाला। तत्पश्चात् उनके सारथिको भी तीन बाण मारे॥ ४॥

दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन् महाहवे।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५॥

राजन्! उस महासमरमें दुःशासनने सहदेवका धनुष काटकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें तिहत्तर बाण मारे॥

सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे।
आविध्य प्रासृजत् तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति॥ ६॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर उस महासमरमें तलवार उठा ली और उसे घुमाकर तुरंत ही आपके पुत्रके रथकी ओर फेंका॥

समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात्॥ ७॥

उनकी वह लंबी तलवार दुःशासनके धनुष, बाण और प्रत्यञ्चाको काटकर आकाशसे भ्रष्ट हुए सर्पकी भाँति वहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ७॥

अथान्यद् धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान्।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः॥ ८॥

तदनन्तर प्रतापी सहदेवने दूसरा धनुष लेकर दुःशासन-पर एक विनाशकारी बाणका प्रहार किया॥ ८॥

तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम्।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः॥ ९॥

यमदण्डके समान प्रकाशित होनेवाले उस बाणको आते देख कुरुवंशी दुःशासनने तीखी धारवाले खड्गसे उसके दो टुकड़े कर डाले॥ ९॥

ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः।
धनुश्चान्यत् समादाय शरं जग्राह वीर्यवान्॥ १०॥

तत्पश्चात् दुःशासनने युद्धस्थलमें तुरंत ही तीखी तलवार घुमाकर सहदेवपर दे मारी; फिर उस पराक्रमी वीरने दूसरा धनुष लेकर उसपर बाणका संधान किया॥ १०॥

तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव॥ ११॥

सहदेवने हँसते हुए-से सहसा अपनी ओर आती हुई उस तलवारको तीखे बाणोंसे समरभूमिमें गिरा दिया॥ ११॥

ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत॥ १२॥

भारत! इतनेहीमें आपके पुत्रने उस महासमरमें सहदेवपर तुरंत ही चौसठ बाण चलाये॥ १२॥

ताञ्छरान् समरे राजन् वेगेनापततो बहून्।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत॥ १३॥

राजन्! सहदेवने रणभूमिमें वेगसे आते हुए उन बहु-संख्यक बाणोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर काट गिराया॥ १३॥

संनिवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान्।
अथास्मै सुबहून् बाणान् प्रेषयामास संयुगे॥ १४॥

इस प्रकार आपके पुत्रके चलाये हुए उन महाबाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें सहदेवने उसके ऊपर भी बहुत-से बाण छोड़े॥ १४॥

तान् बाणांस्तव पुत्रोऽपि छित्त्वैकैकं त्रिभिः शरैः।
ननाद सुमहानादं दारयाणो वसुन्धराम्॥ १५॥

आपके पुत्रने भी सहदेवके उन बाणोंमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाणोंसे काटकर पृथ्वीको विदीर्ण-सी करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की॥ १५॥

ततो दुःशासनो राजन् विद्ध्वा पाण्डुसुतं रणे।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत्॥ १६॥

राजन्! इसके बाद दुःशासनने रणभूमिमें पाण्डुकुमार सहदेवको घायल करके उन माद्रीकुमारके सारथिको भी नौ बाण मारे॥ १६॥

ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम्॥ १७॥

महाराज! इससे कुपित होकर प्रतापी सहदेवने अपने धनुषपर मृत्यु, काल और यमराजके समान भयंकर बाण रक्खा॥

विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत्।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत्॥ १८॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः।
ततः सम्मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः॥ १९॥

फिर उस धनुषको बलपूर्वक खींचकर उसने आपके पुत्रपर वह बाण छोड़ दिया। राजन्! वह बाण दुःशासनको तथा उसके विशाल कवचको भी वेगपूर्वक विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पके समान धरतीमें समा गया। महाराज! इससे आपका महारथी पुत्र मूर्छित हो गया॥ १८-१९॥

मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम्।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः॥ २०॥

उसे मूर्छित देख उसका सारथि तीखे बाणोंकी मार खाकर अत्यन्त भयभीत हो तुरंत ही रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥ २०॥

पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः॥ २१॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणभूमिमें पराजित करके पाण्डु-नन्दन सहदेवने दुर्योधनकी सेनाको वहाँ उपस्थित देख उसे

सब ओरसे मथ डाला ॥ २१ ॥

पिपीलिकपुटं राजन् यथा मृद्गन्नरो रुषा।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥ २२ ॥

भरतवंशी नरेश ! जैसे मनुष्य रोषमें आकर चींटियोंके दलको मसल डालता है, उसी प्रकार सहदेवने उस कौरव-सेनाको धूलमें मिला दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सहदेव और दुःशासनका युद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नकुल और कर्णका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और पाञ्चाल-सेनाका संहार

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम्।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास वै रुषा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धस्थलमें कौरव-सेनाको खदेड़ते हुए वेगशाली वीर नकुलको वैकर्तन कर्णने रोषपूर्वक रोका ॥ १ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुषा ॥ २ ॥
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम्।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ३ ॥
त्वद्दोषात् कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४ ॥

तब नकुलने कर्णसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—'आज दीर्घकालके पश्चात् देवताओंने मुझे सौम्य दृष्टिसे देखा है; यह बड़े हर्षकी बात है। पापी कर्ण ! मैं रणभूमिमें तेरी आँखोंके सामने आ गया हूँ। तू अच्छी तरह मुझे देख ले। तू ही इन सारे अनर्थोंकी तथा वैर एवं कलहकी जड़ है। तेरे ही दोषसे कौरव आपसमें लड़-भिड़कर क्षीण हो गये । आज मैं तुझे समरभूमिमें मारकर कृतकृत्य एवं निश्चिन्त हो जाऊँगा'॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५ ॥
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम्।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६ ॥

नकुलके ऐसा कहनेपर सूतनन्दन कर्णने उनसे कहा—'वीर ! तुम एक राजपुत्रके विशेषतः धनुर्धर योद्धाके योग्य कार्य करते हुए मुझपर प्रहार करो। हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे। शूर ! पहले रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करके फिर उसके विषयमें तुम्हें बढ़-बढ़कर बातें बनानी चाहिये ॥५-६॥

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः।
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥ ७ ॥

'तात ! शूरवीर समराङ्गणमें बातें न बनाकर अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करते हैं। तुम पूरी शक्ति लगाकर मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हारा घमंड चूर कर दूँगा' ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा प्राहरत् तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुकुमार नकुलपर तुरंत ही प्रहार किया। उन्हें युद्धस्थलमें तिहत्तर बाणोंसे बींध डाला॥

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९ ॥

भारत ! सूतपुत्रके द्वारा घायल होकर नकुलने उसे भी विषधर सर्पोंके समान अस्सी बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमार्दयत् ॥ १० ॥

तब महाधनुर्धर कर्णने शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे नकुलके धनुषको काटकर उन्हें तीस बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ १० ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः॥ ११ ॥

जैसे विषधर नाग धरती फोड़कर जल पी लेते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंने नकुलका कवच छिन्न-भिन्न करके युद्ध-स्थलमें उनका रक्त पी लिया ॥ ११ ॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम्।
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ १२ ॥

तत्पश्चात् नकुलने सोनेकी पीठवाला दूसरा दुर्जय धनुष हाथमें लेकर कर्णको सत्तर और उसके सारथिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥ १३ ॥

महाराज ! इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुल-ने कुपित होकर एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे कर्णका धनुष काट दिया ॥ १३ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः।
आजघ्ने प्रहसन् वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके विख्यात महारथी कर्णको वीर नकुलने हँसते-हँसते तीन सौ बाण मारे ॥ १४ ॥

कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥ १५ ॥

मान्यवर ! पाण्डुपुत्र नकुलके द्वारा कर्णको इस तरह

पीड़ित हुआ देख देवताओंसहित सम्पूर्ण रथियोंको महान् आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६ ॥

तब वैकर्तन कर्णने दूसरा धनुष लेकर नकुलके गलेकी हँसलीपर पाँच बाण मारे ॥ १६ ॥

तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यरोचत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन् प्रभाम् ॥ १७ ॥

वहाँ धँसे हुए उन बाणोंसे माद्रीकुमार नकुल उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे सम्पूर्ण जगत्‌में प्रभा बिखेरनेवाले भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं ॥ १७ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर नकुलने कर्णको सात बाणोंसे घायल करके उसके धनुषका एक कोना पुनः काट डाला ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः सर्वतोऽवारयद् दिशः ॥ १९ ॥

तब कर्णने समराङ्गणमें दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर नकुलके चारों ओर सम्पूर्ण दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः ।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ २० ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा सहसा आच्छादित होते हुए महारथी नकुलने तुरंत ही उसके बाणोंको अपने बाणोंद्वारा ही काट गिराया ॥ २० ॥

ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते ।
खद्योतानामिव व्रातैः सम्पतद्भिर्यथा नभः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आकाशमें बाणोंका जाल-सा बिछा हुआ दिखायी देने लगा, मानो वहाँ जुगनुओंके समूह उड़ रहे हों ॥ २१ ॥

तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा ।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उस समय धनुषसे छूटे हुए सौ-सौ बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ आकाश पतंगोंके समूहसे भरा हुआ-सा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः ।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥ २३ ॥

बारंबार गिरते हुए वे सुवर्णभूषित बाण श्रेणिबद्ध होकर ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-से क्रौञ्चपक्षी एक पंक्तिमें होकर उड़ रहे हों ॥ २३ ॥

बाणजालावृते व्योम्नि च्छादिते च दिवाकरे ।
न स्म सम्पतते भूम्यां किंचिदप्यन्तरिक्षगम् ॥ २४ ॥

बाणोंके जालसे आकाश और सूर्यके ढक जानेपर अन्तरिक्षकी कोई भी वस्तु उस समय पृथ्वीपर नहीं गिरती थी ॥ २४ ॥

निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसंघैः समन्ततः ।
व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ २५ ॥

बाणोंके समूहसे वहाँ सब ओरका मार्ग अवरुद्ध हो जानेपर वे दोनों महामनस्वी वीर नकुल और कर्ण प्रलयकालमें उदित हुए दो सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २५ ॥

कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्ता भृशार्दिताः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी मार खाकर सोमक-योद्धा वेदनासे कराह उठे और अत्यन्त पीड़ित हो इधर-उधर छिपने लगे ॥ २६ ॥

नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव ।
व्यशीर्यत दिशो राजन् वातनुन्ना इवाम्बुदाः ॥ २७ ॥

राजन् ! नकुलके बाणोंसे मारी जाती हुई आपकी सेना भी हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गयी ॥ २७ ॥

ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।
शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥ २८ ॥

उन दोनोंके दिव्य महाबाणोंद्वारा आहत होती हुई दोनों सेनाएँ उस समय उनके बाणोंके गिरनेके स्थानसे दूर हटकर खड़ी हो गयीं और दर्शक बनकर तमाशा देखने लगीं ॥२८॥

प्रोत्सारितजने तस्मिन् कर्णपाण्डवयोः शरैः ।
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

कर्ण और नकुलके बाणोंद्वारा जब सब लोग वहाँसे दूर हटा दिये गये, तब वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २९ ॥

विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ३० ॥

युद्धके मुहानेपर वे दोनों दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे सहसा बाणोंद्वारा आच्छादित करने लगे ॥ ३० ॥

नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥ ३१ ॥
तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे ।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥ ३२ ॥

नकुलके बाणोंमें कङ्क और मयूरके पंख लगे हुए थे । वे उनके धनुषसे छूटकर सूतपुत्रको आच्छादित करके जिस प्रकार आकाशमें स्थित होते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें सूतपुत्रके चलाये हुए बाण पाण्डुकुमार नकुलको आच्छादित करके आकाशमें छा जाते थे ॥ ३१-३२ ॥

शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥ ३३ ॥

राजन्! जैसे मेघोंद्वारा ढक जानेपर सूर्य और चन्द्रमा दिखायी नहीं देते, उसी प्रकार बाणनिर्मित भवनमें प्रविष्ट हुए उन दोनों वीरोंपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती थी ॥ ३३॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए कर्णने रणभूमिमें अत्यन्त भयंकर स्वरूप प्रकट करके चारों ओरसे बाणोंकी वर्षाद्वारा पाण्डुपुत्र नकुलको ढक दिया ॥ ३४ ॥

सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः।
न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा ॥ ३५ ॥

महाराज! सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त आच्छन्न कर दिये जानेपर भी बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलने अपने मनमें तनिक भी व्यथाका अनुभव नहीं किया ॥ ३५ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥

मान्यवर! तत्पश्चात् सूतपुत्रने बड़े जोरसे हँसकर पुनः समराङ्गणमें बाणोंके जाल बिछा दिये। उसने सैकड़ों और हजारों बाण चलाये ॥ ३६ ॥

एकच्छायमभूत् सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ३७ ॥

उस महामनस्वी वीरके गिरते हुए उत्तम बाणोंसे घिर जानेके कारण वहाँ सब कुछ एकमात्र अन्धकारमें निमग्न हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे बादलोंकी घोर घटा घिर आनेपर सब ओर अँधेरा छा जाता है ॥ ३७ ॥

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः।
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३८ ॥

महाराज! तदनन्तर हँसते हुए-से कर्णने महामना नकुलका धनुष काटकर उनके सारथिको रथकी बैठकसे मार गिराया ॥ ३८ ॥

ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९ ॥

भारत! फिर चार तीखे बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमराजके घर भेज दिया ॥ ३९ ॥

अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः।
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥ ४० ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च।

मान्यवर! इसके बाद उसने अपने बाणोंद्वारा नकुलके उस दिव्य रथको तिल-तिल करके काट दिया और पताका, चक्ररक्षकों, गदा एवं खड्गको भी छिन्न-भिन्न कर दिया। साथ ही सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित उनकी ढाल तथा अन्य सब उपकरणोंको भी उसने नष्ट कर दिया ॥ ४०½ ॥

हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥ ४१ ॥
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः।

प्रजापालक नरेश! घोड़े, रथ और कवचके नष्ट हो जानेपर नकुल तुरंत उस रथसे उतरकर हाथमें परिघ लिये खड़े हो गये ॥ ४१½ ॥

तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥ ४२ ॥
व्यहनत् सायकै राजन् सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः।

राजन्! उनके उठे हुए उस महाभयंकर परिघको सूतपुत्रने अत्यन्त तीखे तथा दुष्कर कार्यको सिद्ध करनेवाले बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ४२½ ॥

व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
आर्पयद् बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत्।

उन्हें अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन देखकर कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा और भी घायल कर दिया; परंतु उन्हें घातक पीड़ा नहीं दी ॥ ४३½ ॥

स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥ ४४ ॥
प्राद्रवत् सहसा राजन् नकुलो व्याकुलेन्द्रियः।

अत्यन्त बलवान् तथा अस्त्रविद्याके विद्वान् कर्णके द्वारा समराङ्गणमें आहत हो सहसा नकुल भाग चले। उस समय उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन् वै पुनः पुनः ॥ ४५ ॥
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत।

भारत! राधापुत्र कर्णने बारंबार हँसते हुए उनका पीछा करके उनके गलेमें प्रत्यञ्चासहित अपना धनुष डाल दिया ॥ ४५½ ॥

ततः स शुशुभे राजन् कण्ठासक्तमहाधनुः ॥ ४६ ॥
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद् व्योम्नि चन्द्रमाः।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ४७ ॥

राजन्! कण्ठमें पड़े हुए उस महाधनुषसे युक्त नकुल ऐसी शोभा पाने लगे, मानो आकाशमें चन्द्रमापर घेरा पड़ गया हो अथवा कोई श्याम मेघ इन्द्रधनुषसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ४६-४७ ॥

तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥ ४९ ॥
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ।
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥ ५० ॥

उस समय कर्णने नकुलसे कहा—'पाण्डुकुमार! तुमने व्यर्थ ही बढ़-बढ़कर बातें बनायी थीं। अब इस समय बारंबार मेरे बाणोंकी मार खाकर पुनः उसी हर्षके साथ तुम वैसी ही बातें करो तो सही। बलवान् कौरव-योद्धाओंके साथ आजसे युद्ध न करना। तात! जो तुम्हारे समान हों, उन्हीं

के साथ युद्ध किया करो। माद्रीकुमार! लज्जित न होओ। इच्छा हो तो घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों, वहीं भाग जाओ।' महाराज! ऐसा कहकर उस समय कर्णने नकुलको छोड़ दिया॥ ४८–५०॥

वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद् धर्मवित्तदा।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत्॥ ५१॥

राजन्! यद्यपि नकुल वधके योग्य अवस्थामें आ पहुँचे थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके धर्मज्ञ वीर कर्णने उस समय उन्हें मारा नहीं, जीवित छोड़ दिया॥ ५१॥

विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति॥ ५२॥

नरेश्वर! धनुर्धर सूतपुत्रके छोड़ देनेपर पाण्डुकुमार नकुल लजाते हुए-से वहाँसे युधिष्ठिरके रथके पास चले गये॥

आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः।
निःश्वसन् दुःखसंतप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः॥ ५३॥

सूतपुत्रके द्वारा सताये हुए नकुल दुःखसे संतप्त हो घड़ेमें बंद किये हुए सर्पके समान दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए युधिष्ठिरके रथपर चढ़ गये॥ ५३॥

तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च॥ ५४॥

इस प्रकार नकुलको पराजित करके कर्ण भी चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़ों और ऊँची पताकाओंसे युक्त रथके द्वारा तुरंत ही पाञ्चालोंकी ओर चला गया॥ ५४॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पञ्चालानां रथव्रजान्॥ ५५॥

प्रजानाथ! कौरव-सेनापति कर्णको पाञ्चाल रथियोंकी ओर जाते देख पाण्डव-सैनिकोंमें महान् कोलाहल मच गया॥ ५५॥

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद् विचरन् प्रभुः॥ ५६॥

महाराज! दोपहर होते-होते शक्तिशाली सूतनन्दन कर्णने चक्रके समान चारों ओर विचरण करते हुए वहाँ पाण्डव-सैनिकोंका महान् संहार मचा दिया॥ ५६॥

भग्नचक्रै रथैः कांश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः।
हताश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष॥ ५७॥
ह्रियमाणानपश्याम पञ्चालानां रथव्रजान्।

माननीय नरेश! उस समय हमलोगोंने कितने ही रथियोंको ऐसी अवस्थामें देखा कि उनके रथके पहिये टूट गये हैं, ध्वजा, पताकाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं, घोड़े और सारथि मारे गये हैं और उन रथोंके धुरे भी खण्डित हो गये हैं। उस अवस्थामें समूह-के-समूह पाञ्चाल महारथी हमें भागते दिखायी दिये॥ ५७½॥

तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुर्मत्तकुञ्जराः॥ ५८॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने।

बहुत-से मतवाले हाथी वहाँ बड़ी घबराहटमें पड़कर इधर-उधर चक्कर काट रहे थे, मानो किसी बड़े भारी जंगलमें दावानलसे उनके सारे अङ्ग झुलस गये हों॥ ५८½॥

भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः॥ ५९॥
छिन्नगात्रावराश्चैव छिन्नवालधयोऽपरे।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना॥ ६०॥

कितने ही हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये थे और वे खूनसे भीग गये थे। कितनोंकी सूँड़ें कट गयी थीं, कितनोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे, बहुतोंकी पूँछें कट गयी थीं और कितने ही हाथी महामना कर्णकी मार खाकर खण्डित हुए मेघोंके समान पृथ्वीपर गिर गये थे॥ ५९-६०॥

अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम्॥ ६१॥

दूसरे बहुत-से गजराज कर्णके नाराचों, शरों और तोमरोंसे संत्रस्त हो जैसे पतंग आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कर्णके सम्मुख चले जाते थे॥

अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः॥ ६२॥

अन्य बहुत-से बड़े-बड़े हाथी झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाते और आर्तनाद करते दिखायी देते थे॥ ६२॥

उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः॥ ६३॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान्।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि॥ ६४॥
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान् हयोत्तमान्॥ ६५॥

कितने ही घोड़ोंके उनकी छातीको छिपानेवाले कवच कटकर गिर गये थे, बालबन्ध छिन्न-भिन्न हो गये थे, सोने, चाँदी और कांस्यके आभूषण नष्ट हो गये थे, दूसरे साज-बाज भी चौपट हो गये थे, उनके मुखोंसे लगाम भी निकल गये थे, चँवर, झूल और तरकस धराशायी हो गये थे तथा संग्रामभूमिमें शोभा पानेवाले उनके शूरवीर सवार भी मारे जा चुके थे। ऐसी दशामें रण-भूमिमें भ्रान्त होकर भटकते हुए बहुत-से उत्तम घोड़ोंको हमने देखा था॥ ६३–६५॥

प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत।
हयसादीनपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः॥ ६६॥

निहतान् वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ६७ ॥

भारत ! कवच और पगड़ी धारण करनेवाले कितने ही घुड़सवारोंको हमने प्रास, खड्ग और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर मारा गया देखा । कितने ही कर्णके बाणोंकी मार खाते हुए थरथर काँप रहे थे और बहुत-से अपने शरीरके विभिन्न अवयवोंसे रहित हो यत्र-तत्र मरे पड़े थे ॥ ६६-६७ ॥

रथान् हेमपरिष्कारान् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥ ६८ ॥

वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए कितने ही सुवर्णभूषित रथ सारथि और रथियोंके मारे जानेसे वेगपूर्वक दौड़ते दिखायी देते थे ॥ ६८ ॥

भग्नाक्षकूबरान् कांश्चिद् भग्नचक्रांश्च भारत ।
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषादण्डबन्धुरान् ॥ ६९ ॥

भरतनन्दन ! कितने ही रथोंके धुरे और कूबर टूट गये थे, पहिये टूक-टूक हो गये थे, पताका और ध्वज खण्डित हो गये थे तथा ईषादण्ड और बन्धुरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे ॥ ६९ ॥

विहतान् रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः ।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान् विशाम्पते ॥ ७० ॥
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च हतान् बहून् ।

प्रजानाथ ! सूतपुत्रके तीखे बाणोंसे हताहत होकर बहुतेरे रथी वहाँ इधर-उधर भागते देखे गये । कितने ही रथी शस्त्रहीन होकर तथा दूसरे बहुत-से सशस्त्र रहकर ही मारे गये थे ॥ ७०½ ॥

तारकाजालसंछन्नान् वरघण्टाविशोभितान् ॥ ७१ ॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् ।
वारणाननुपश्याम धावमानान् समन्ततः ॥ ७२ ॥

नक्षत्रसमूहोंके चिह्नवाले कवचोंसे आच्छादित, उत्तम घंटोंसे सुशोभित तथा अनेक रंगकी विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हाथियोंको हमने चारों ओर भागते देखा था ॥

शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यांस्तथैव च ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥ ७३ ॥

हमने यह भी देखा कि कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा योद्धाओंके मस्तक, भुजाएँ और जाँघें कट-कटकर चारों ओर गिर रही हैं ॥ ७३ ॥

महान् व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः ॥ ७४ ॥

कर्णके बाणोंसे आहत हो तीखे बाणोंसे युद्ध करते हुए योद्धाओंमें वहाँ अत्यन्त भयंकर और महान् संग्राम मच गया था ॥ ७४ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ ७५ ॥

समराङ्गणमें सृंजयोंपर कर्णके बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी पतंग जैसे अग्निपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे कर्णके ही सम्मुख बढ़ते जा रहे थे ॥ ७५ ॥

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ७६ ॥

महारथी कर्ण प्रलयकालके प्रचण्ड अग्निके समान जहाँ-तहाँ पाण्डव-सेनाओंको दग्ध कर रहा था । उस समय क्षत्रिय लोग उसे छोड़कर दूर हट जाते थे ॥ ७६ ॥

हतशेषास्तु ये वीराः पञ्चालानां महारथाः ।
तान् प्रभग्नान् द्रुतान् वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ॥७७॥
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् ।
तापयामास तान् बाणैः सूतपुत्रो महाबलः ।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥ ७८ ॥

पाञ्चालोंके जो वीर महारथी मरनेसे बच गये थे, उन्हें भागते देख तेजस्वी वीर कर्ण पीछेसे उनपर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनकी ओर दौड़ा । उन योद्धाओंके कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये थे । जैसे मध्याह्नकालका सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी किरणोंद्वारा तपाता है, उसी प्रकार महाबली सूतपुत्र अपने बाणोंसे उन शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करने लगा ॥ ७७-७८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका युद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

युयुत्सु और उलूकका युद्ध, युयुत्सुका पलायन, शतानीक और धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माका तथा सुतसोम और शकुनिका घोर युद्ध एवं शकुनिद्वारा पाण्डवसेनाका विनाश

संजय उवाच

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत् ।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! दूसरी ओर युयुत्सु आपके पुत्रकी विशाल सेनाको खदेड़ रहा था । यह देख उलूक तुरंत वहाँ आ धमका और युयुत्सुसे बोला—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ १ ॥

युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा ।

उलूकं ताडयामास वज्रेणेन्द्र इवाचलम् ॥ २ ॥

राजन् ! तव युयुत्सुने तीखी धारवाले बाणसे महाबली उलूकको उसी प्रकार पीट दिया, जैसे इन्द्र पर्वत-पर वज्रका प्रहार करते हैं ॥ २ ॥

उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥

इससे उलूकको बड़ा क्रोध हुआ। उसने युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रके द्वारा आपके पुत्रका धनुष काटकर उसपर कर्णीनामक बाणका प्रहार किया ॥ ३ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम्।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥

युयुत्सुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर क्रोधसे आँखें लाल करके दूसरा अत्यन्त वेगशाली एवं विशाल धनुष हाथमें लिया ॥

शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
सारथिं त्रिभिरानर्च्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! उसने शकुनिपुत्र उलूकको साठ बाणोंसे बेध दिया और तीन बाणोंसे उसके सारथिको पीड़ित किया। तत्पश्चात् उसे और भी घायल कर दिया ॥ ५ ॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥

तब उलूकने संग्रामभूमिमें कुपित हो स्वर्णभूषित बीस बाणोंसे युयुत्सुको घायल करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट डाला ॥ ६ ॥

सच्छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः।
पपात प्रमुखे राजन् युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥ ७ ॥

राजन् ! ध्वजका दण्ड कट जानेपर युयुत्सुका वह विशाल काञ्चनध्वज छिन्न-भिन्न हो उसके सामने ही गिर पड़ा ॥ ७ ॥

ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

अपने ध्वजका यह विध्वंस देखकर युयुत्सु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया और उसने पाँच बाणोंसे उलूककी छाती छेद डाली ॥ ८ ॥

उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥

माननीय भरतभूषण ! उलूकने तेलसे साफ किये हुए भल्लके द्वारा युयुत्सुके सारथिका मस्तक काट डाला ॥

तच्छिन्नमपतद् भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥ १० ॥

उस समय युयुत्सुके सारथिका वह कटा हुआ मस्तक पृथ्वीपर उसी भाँति गिरा, मानो आकाशसे भूतलपर कोई विचित्र तारा टूट पड़ा हो ॥ १० ॥

जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् उलूकने युयुत्सुके चारों घोड़ोंको भी मार डाला और पाँच बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। उस बलवान् वीरके द्वारा अत्यन्त घायल हो युयुत्सु दूसरे रथपर आरूढ़ हो वहाँसे भाग गया ॥ ११ ॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ।
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें युयुत्सुको पराजित करके उलूक तुरंत ही पाञ्चालों और सृंजयोंकी ओर चला गया और उन्हें तीखे बाणोंसे मारने लगा ॥ १२ ॥

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः ॥ १३ ॥

महाराज! दूसरी ओर आपके पुत्र श्रुतकर्माने बिना किसी घबराहटके आधे निमेषमें ही शतानीकके रथको घोड़ों और सारथिसे शून्य कर दिया ॥ १३ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥

मान्यवर ! महारथी शतानीकने कुपित होकर अपने अश्वहीन रथपर खड़े रहकर ही आपके पुत्रके ऊपर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥

सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन्।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! वह गदा तुरंत ही श्रुतकर्माके रथ, घोड़ों और सारथिको भस्म करके पृथ्वीको विदीर्ण करती हुई-सी गिर पड़ी ॥ १५ ॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १६ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वे दोनों वीर रथहीन हो एक दूसरेको देखते हुए युद्धस्थलसे हट गये ॥ १६ ॥

पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विवित्सो रथमारुहत्।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १७ ॥

आपका पुत्र श्रुतकर्मा घबरा गया था। वह विवित्सुके रथपर जा चढ़ा और शतानीक भी तुरंत ही प्रतिविन्ध्यके रथपर चला गया ॥ १७ ॥

सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १८ ॥

दूसरी ओर शकुनि अत्यन्त कुपित हो अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमको घायल करके भी उसे विचलित न कर सका। ठीक उसी तरह, जैसे जलका प्रवाह पर्वतको नहीं हिला सकता ॥ १८ ॥

सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम्।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९ ॥

भरतनन्दन ! सुतसोमने अपने पिताके अत्यन्त वैरी शकुनिको सामने देखकर उसे कई हजार बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

ताञ्शरान्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ २० ॥
निवार्य समरे चापि शरांस्तान् निशितैः शरैः।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २१ ॥

परंतु शकुनिने तुरंत ही दूसरे बाणोंद्वारा सुतसोमके बाणोंको काट डाला। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, विचित्र युद्धमें कुशल और युद्धस्थलमें विजयश्रीसे सुशोभित होनेवाला था। उसने समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमके बाणोंका निवारण करके अत्यन्त कुपित हो तीन बाणोंद्वारा सुतसोमको भी घायल कर दिया ॥ २०-२१ ॥

तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २२ ॥

महाराज ! आपके सालेने सुतसोमके घोड़ोंको तथा ध्वज और सारथिको भी अपने बाणोंसे तिल-तिल करके काट डाला; इससे सब लोग हर्षसूचक कोलाहल करने लगे ॥

हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद् भूमावतिष्ठत ॥ २३ ॥

मान्यवर ! घोड़े, रथ और ध्वजके नष्ट हो जानेपर धनुर्धर सुतसोम अपने हाथमें श्रेष्ठ धनुष लिये रथसे उतरकर धरतीपर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

व्यसृजत् सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम् ॥ २४ ॥

फिर उसने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण छोड़े। उन बाणोंद्वारा समरभूमिमें उसने आपके सालेके रथको ढक दिया ॥ २४ ॥

शलभानामिव व्राताञ्शरव्रातान् महारथः।
रथोपगान् समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः ॥ २५ ॥
प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः।

उसके बाणसमूह टिड्डीदलोंके समान जान पड़ते थे। उन्हें अपने रथके समीप देखकर भी महारथी सुबलपुत्र शकुनिके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उस महायशस्वी वीरने अपने बाणसमूहोंद्वारा सुतसोमके सारे बाणोंको पूर्णतया मथ डाला ॥ २५½ ॥

तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥ २६ ॥
सुतसोमस्य तत् कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम्।
रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥ २७ ॥

सुतसोम जो वहाँ पैदल होकर भी रथपर बैठे हुए शकुनिके साथ युद्ध कर रहा था। उसके इस अविश्वसनीय और अद्भुत कर्मको देखकर वहाँ खड़े हुए समस्त योद्धा तथा आकाशमें स्थित हुए सिद्धगण भी बहुत संतुष्ट हुए ॥ २६-२७ ॥

तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः।
व्यहनत् कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥ २८ ॥

राजन् ! उस समय शकुनिने अत्यन्त वेगशाली और झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा सुतसोमके धनुष, तरकस तथा अन्य सब उपकरणोंको भी नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत्।
वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २९ ॥

रथ तो नष्ट हो ही चुका था, जब धनुष भी कट गया, तब सुतसोमने वैदूर्यमणि तथा नील कमलके समान श्याम रंगवाले, हाथीके दाँतकी बनी हुई मूठसे युक्त खड्गको ऊपर उठाकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २९ ॥

भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम्।
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् सुतसोमके उस निर्मल आकाशके समान कान्तिवाले खड्गको घुमाया जाता देख शकुनिने उसे अपने लिये कालदण्डके समान माना ॥ ३० ॥

सोऽचरत् सहसा खड्गी मण्डलानि समन्ततः।
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सुतसोम शिक्षा और बल दोनोंसे सम्पन्न था, वह खड्ग लेकर सहसा उसके चौदह[1] मण्डल (पैंतरे) दिखाता हुआ रणभूमिमें सब ओर विचरने लगा ॥ ३१ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम्।
सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२ ॥

उसने युद्धस्थलमें भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गतियोंको दिखाया ॥

सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान्।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३३ ॥

तब पराक्रमी सुबलपुत्रने सुतसोमपर बहुत-से बाण चलाये; परंतु उसने अपने उत्तम खड्गसे निकट आते ही उन सब बाणोंको काट गिराया ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा।
प्राहिणोत् सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥ ३४ ॥

महाराज ! इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उसने सुतसोमपर विषधर सर्पोंके समान बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३४ ॥

चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च।
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥

---

१. भ्रान्त, उद्भ्रान्त आदि सात गतियोंको अनुलोम और विलोम-क्रमसे दिखानेपर उनके चौदह भेद हो जाते हैं। भ्रान्त और उद्भ्रान्त आदिकी व्याख्या पहले पृष्ठ ३६९६में की जा चुकी है।

परंतु गरुड़के तुल्य पराक्रमी सुतसोमने अपनी शिक्षा और बलके अनुसार युद्धमें फुर्ती दिखाते हुए खड्गसे उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३५ ॥

तस्य संचरतो राजन् मण्डलावर्तने तदा।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३६ ॥

राजन्! सुतसोम जब अपनी चमकीली तलवारको मण्डलाकार घुमा रहा था, उसी समय शकुनिने तीखे क्षुरप्रसे उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३६ ॥

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते सुतसोमस्त्र भारत ॥ ३७ ॥

वह महान् खड्ग कटकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। भारत! सुन्दर मूठवाले उस खड्गका आधा भाग सुतसोमके हाथमें ही रह गया ॥ ३७ ॥

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट्।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३८ ॥

अपने उस खड्गको कटा हुआ जान महारथी सुतसोमने छः पग ऊँचे उछलकर उसके शेष भागको ही शकुनिपर दे मारा ॥ ३८ ॥

तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९ ॥

वह स्वर्ण और हीरेसे विभूषित कटा हुआ खड्ग रणभूमिमें महामना शकुनिके धनुषको प्रत्यञ्चासहित काटकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम्।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत् सुदुर्जयम् ॥ ४० ॥
अभ्ययात् पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान् बहून्।

तत्पश्चात् सुतसोम श्रुतकीर्तिके विशाल रथपर चढ़ गया। उधर शकुनि भी दूसरा अत्यन्त दुर्जय एवं भयंकर धनुष लेकर बहुत-से शत्रुओंका संहार करता हुआ पाण्डव-सेनाकी ओर चल दिया ॥ ४०½ ॥

तत्र नादो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते ॥ ४१ ॥
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत्।

प्रजानाथ! सुबलपुत्र शकुनिको समरभूमिमें निर्भय-से विचरते देख पाण्डव-दलमें महान् सिंहनाद होने लगा ॥४१½॥

तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ४२ ॥
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना।

महामना शकुनिने घमंडमें भरे हुए उन शस्त्रसम्पन्न महान् सैनिकोंको भगा दिया। यह सब हमने अपनी आँखों देखा ॥

यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४३ ॥

राजन्! जिस प्रकार देवराज इन्द्रने दैत्योंकी सेनाको कुचल दिया था, उसी प्रकार सुबलपुत्र शकुनिने पाण्डव-सेनाका विनाश कर डाला ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सुतसोम और शकुनिका युद्धविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्नका भय तथा कृतवर्माके द्वारा शिखण्डीकी पराजय

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नं कृपो राजन् वारयामास संयुगे।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद् युधि ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको आक्रमण करते देख युद्धभूमिमें उसी प्रकार उन्हें आगे बढ़नेसे रोका, जैसे वनमें शरभ[1] सिंहको रोक देता है ॥ १ ॥

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा।
पदात् पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥ २ ॥

भारत! अत्यन्त बलवान् गौतम-गोत्रीय कृपाचार्यसे अवरुद्ध होकर धृष्टद्युम्न एक पग भी चलनेमें समर्थ न हो सका॥

गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ३ ॥

कृपाचार्यके रथको धृष्टद्युम्नके रथकी ओर जाते देख समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे और धृष्टद्युम्नको नष्ट हुआ ही मानने लगे ॥ ३ ॥

तत्रावोचन् विमनसो रथिनः सादिनस्तथा।
द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४ ॥
शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः।
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ५ ॥

वहाँ सभी रथी और घुड़सवार उदास होकर कहने लगे कि 'निश्चय ही द्रोणाचार्यके मारे जानेसे दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता, उदारबुद्धि, महातेजस्वी, नरश्रेष्ठ, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे होंगे। क्या आज कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्न कुशलपूर्वक सुरक्षित रह सकेंगे? ॥ ४-५ ॥

अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात्।
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान् न नो हन्यात् समागतान् ॥ ६ ॥

[1] शरभ आठ पैरोंका एक जानवर है, जिसका आधा शरीर पशुका और आधा पक्षीका होता है। भगवान् नृसिंहकी भाँति उसका शरीर भी द्विविध आकृतियोंके सम्मिश्रणसे बना है। वह इतना प्रबल है कि सिंहको भी मार सकता है।

'क्या यह सारी सेना महान् भयसे मुक्त हो सकती है ? कहीं ऐसा न हो कि ये ब्राह्मण देवता यहाँ आये हुए हम सब लोगोंका वध कर डालें ?' ॥ ६ ॥

यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम् ।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ॥ ७ ॥

'इनका यमराजके समान जैसा अत्यन्त भयंकर रूप दिखायी देता है, उससे जान पड़ता है, आज कृपाचार्य भी द्रोणाचार्यके पथपर ही चलेंगे ॥ ७ ॥

आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि ।
अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥ ८ ॥

'कृपाचार्य शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले तथा युद्धमें सर्वथा विजय प्राप्त करनेवाले हैं । वे अस्त्रवेत्ता, पराक्रमी और क्रोध-से युक्त हैं ॥ ८ ॥

पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते ।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥ ९ ॥
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे ।

'आज इस महायुद्धमें धृष्टद्युम्न विमुख होता दिखायी देता है ।' महाराज ! इस प्रकार वहाँ धृष्टद्युम्न और कृपाचार्यका समागम होनेपर आपके सैनिकोंकी शत्रुओंके साथ होनेवाली नाना प्रकारकी बातें सुनायी देने लगीं ॥ ९½ ॥

विनिःश्वस्य ततः क्रोधात् कृपः शारद्वतो नृप ॥ १० ॥
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु ।

नरेश्वर ! तदनन्तर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने क्रोधसे लंबी साँस खींचकर निश्चेष्ट खड़े हुए धृष्टद्युम्नके सम्पूर्ण मर्म-स्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १०½ ॥

स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ॥ ११ ॥
कर्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महताऽऽवृतः ।

समराङ्गणमें महामना कृपाचार्यके द्वारा आहत होनेपर भी धृष्टद्युम्नको कोई कर्तव्य नहीं सूझता था । वे महान् मोहसे आच्छन्न हो गये थे ॥ ११½ ॥

तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित् क्षेमं तु पार्षत ॥ १२ ॥
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित् ।

तब उनके सारथिने उनसे कहा—'द्रुपदनन्दन ! कुशल तो है न ? युद्धमें आपपर कभी ऐसा संकट आया हो, यह मैंने नहीं देखा है ॥ १२½ ॥

दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन् मर्मभेदिनः ॥ १३ ॥
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः ।

'द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यने सब ओरसे आपके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके बाण चलाये थे; परंतु दैवयोगसे ही वे मर्मभेदी बाण आपके मर्मस्थानोंपर नहीं पड़े हैं ॥ १३½ ॥

व्यावर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात् ॥ १४ ॥
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः ।

'जैसे कोई शक्तिशाली पुरुष समुद्रसे नदीके वेगको पीछे लौटा दे, उसी प्रकार मैं आपके इस रथको तुरंत लौटा ले चलूँगा । मेरी समझमें ये ब्राह्मण देवता अवध्य हैं, जिनसे आज आपका पराक्रम प्रतिहत हो गया' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद् वचः ॥ १५ ॥
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे ॥ १६ ॥

राजन् ! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने धीरेसे कहा—'सारथे ! मेरे मनपर मोह छा रहा है और शरीरसे पसीना छूटने लगा है । मेरे सारे अङ्ग काँप रहे हैं और रोमाञ्च हो आया है ॥

वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः ।
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ॥ १७ ॥
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः ।

'तुम युद्धस्थलमें ब्राह्मण कृपाचार्यको छोड़ते हुए धीरे-धीरे जहाँ अर्जुन हैं, उसी ओर चल दो । समराङ्गणमें अर्जुन अथवा भीमसेनके पास पहुँचकर ही आज मैं सकुशल रह सकता हूँ, ऐसा मेरा दृढ़ विचार है' ॥ १७½ ॥

ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान् ॥ १८ ॥
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः ।

महाराज ! तब सारथि घोड़ोंको तेजीसे हाँकता हुआ उसी ओर चल दिया जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपके सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ १९ ॥
किरञ्शतशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा ।

मान्यवर नरेश ! धृष्टद्युम्नके रथको वहाँसे भागते देख कृपाचार्यने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया॥

शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिंदमः ॥ २० ॥
पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले कृपाचार्यने बारंबार शङ्खध्वनि की और जैसे इन्द्रने नमुचिको डराया था, उसी प्रकार उन्होंने धृष्टद्युम्नको भयभीत कर दिया ॥ २०½ ॥

शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् ॥ २१ ॥
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः ।

दूसरी ओर समराङ्गणमें दुर्जय वीर शिखण्डीको, जो भीष्मके लिये मृत्युस्वरूप था, कृतवर्माने बारंबार मुस्कराते हुए-से रोका ॥ २१½ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम् ॥ २२ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत् ।

हृदिकवंशी यादवोंके महारथी वीर कृतवर्माको सामने पाकर शिखण्डीने उसके गलेकी हँसलीपर पाँच तीखे भल्लों-द्वारा प्रहार किया ॥ २२½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः ॥ २३ ॥

धनुरेकेन चिच्छेद हसन् राजन् महारथः ।

राजन् ! तब महारथी कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो साठ बाणोंसे शिखण्डीको घायल करके एकसे हँसते-हँसते उसका धनुष काट डाला ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥ २४ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।

तत्पश्चात् द्रुपदके बलवान् पुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कृतवर्मासे क्रोधपूर्वक कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह'॥

ततोऽस्य नवतिं बाणान् रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ॥ २५॥
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ।

राजेन्द्र ! फिर सोनेकी पाँखवाले नब्बे पैने बाण उसने चलाये, परंतु वे कृतवर्माके कवचसे फिसलकर गिर गये ॥

वितथांस्तान् समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥ २६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम् ।

उन्हें व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिरा देख शिखण्डीने तीखे क्षुरप्रसे कृतवर्माके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २६½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ॥ २७ ॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

धनुष कट जानेपर कृतवर्माकी दशा टूटे सींगवाले बैलके समान हो गयी। उस समय शिखण्डीने कुपित होकर उसकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें अस्सी बाण मारे ॥ २७½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ २८ ॥
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम् ।

कृतवर्मा उन बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अत्यन्त कुपित हो उठा और जैसे घड़ेके मुँहसे जल गिर रहा हो, उसी प्रकार वह अपने अङ्गोंसे रक्त वमन करने लगा ॥ २८½ ॥

रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा व्यराजत ॥ २९ ॥
वर्षेण क्लेदितो राजन् यथा गैरिकपर्वतः ।

राजन् ! खूनसे लथपथ हुआ कृतवर्मा वर्षासे भीगे हुए गेरूके पहाड़के समान शोभा पा रहा था ॥ २९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत् ।

तदनन्तर शक्तिशाली कृतवर्माने बाण और प्रत्यञ्चासहित दूसरा धनुष हाथमें लेकर शिखण्डीके कंधोंपर अपने बाणसमूहोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥ ३१ ॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान् पादपो यथा ।

कंधोंमें धँसे हुए उन बाणोंसे शिखण्डी वैसी ही शोभा पाने लगा, जैसे कोई महान् वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखाओंके कारण अधिक विस्तृत दिखायी देता हो ॥ ३१½ ॥

तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥ ३२ ॥
(पोप्लूयमानौ हि यथा महान्तौ शोणितह्रदे ।)

वे दोनों महान् वीर एक दूसरेको अत्यन्त घायल करके खूनसे इस प्रकार नहा गये थे, मानो रक्तके सरोवरमें बारंबार डुबकी लगाकर आये हों ॥ ३२ ॥

अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ।

उस समय एक दूसरेके सींगोंसे चोट खाये हुए दो साँड़के समान उन दोनोंकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३२½ ॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ॥ ३३ ॥
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ।

एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्न करते हुए वे दोनों महारथी अपने रथके द्वारा वहाँ सहस्रों बार मण्डलाकार गतिसे विचरते थे ॥ ३३½ ॥

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥ ३४ ॥
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

महाराज ! कृतवर्माने रणभूमिमें सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पङ्खवाले सत्तर बाणोंसे द्रुपदपुत्र शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ।

तत्पश्चात् प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माने उसके ऊपर समराङ्गणमें बड़ी उतावलीके साथ एक भयंकर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा ॥ ३५½ ॥

स तेनाभिहतो राजन् मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥ ३६ ॥
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ।

राजन् ! उस बाणसे आहत हो शिखण्डी तत्काल मूर्छित हो गया। उसने सहसा मोहाच्छन्न होकर ध्वजदण्डका सहारा ले लिया ॥ ३६½ ॥

अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥
हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।

कृतवर्माके बाणोंसे संतप्त हो बारंबार लंबी साँस खींचते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको उसका सारथि तुरंत रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥ ३७½ ॥

पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो ।
व्यद्रवत् पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ॥ ३८ ॥

प्रभो ! शूरवीर द्रुपदपुत्रके पराजित हो जानेपर सब ओरसे मारी जाती हुई पाण्डव-सेना भागने लगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुल-युद्धविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३८½ श्लोक हैं)

सप्तविंशोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा राजा श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियोंका वध एवं संशप्तक-सेनाका संहार

संजय उवाच

श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! एक ओर श्वेतवाहन अर्जुन आपकी सेनाको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जैसे वायु रूईके ढेरको पाकर उसे सब ओर बिखेर देती है॥

प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत्॥ २॥

उस समय उनका सामना करनेके लिये त्रिगर्त, शिबि, कौरवोंसहित शाल्व, संशप्तकगण तथा नारायणी-सेनाके सैनिक आगे बढ़े॥ २॥

सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः श्रुतंजयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत॥ ३॥
त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः॥ ४॥

भरतनन्दन! सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सौश्रुति, चित्रसेन तथा मित्रवर्मा—इन सात भाइयों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें कुशल महाधनुर्धर पुत्रोंसे घिरा हुआ त्रिगर्तराज सुशर्मा समराङ्गणमें उपस्थित हुआ॥ ३-४॥

ते सृजन्तः शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम्॥ ५॥

वे सभी वीर युद्धस्थलमें अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए जैसे जलका प्रवाह समुद्रकी ओर जाता है, उसी प्रकार सहसा उनके सामने आ पहुँचे॥ ५॥

ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः।
अगच्छन् विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः॥ ६॥

परंतु जैसे गरुड़को देखते ही सर्प अपने प्राण खो देते हैं, उसी प्रकार वे सब-के-सब लाखों योद्धा अर्जुनके पास पहुँचते ही कालके गालमें चले गये॥ ६॥

ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम्॥ ७॥

जैसे पतङ्ग जलते रहनेपर भी आगमें टूटे पड़ते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें मारे जानेपर भी वे समस्त योद्धा युद्धमें पाण्डुकुमार अर्जुनको छोड़कर भाग न सके॥ ७॥

सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम्।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रदेवस्तु सप्तभिः॥ ८॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः।
श्रुतंजयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः॥ ९॥

सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तिरसठ, चन्द्रदेवने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुतिने सात, श्रुतंजयने बीस तथा सुशर्माने नौ बाणोंसे युद्धस्थलमें पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला॥

स विद्धो बहुभिः संख्ये प्रतिविव्याध तान् नृपान्।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विद्ध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः॥ १०॥

इस प्रकार रणभूमिमें बहुसंख्यक योद्धाओंद्वारा घायल किये जानेपर बदलेमें अर्जुनने भी उन सभी नरेशोंको क्षत-विक्षत कर दिया। उन्होंने सौश्रुतिको सात बाणोंसे घायल करके सत्यसेनको तीन बाण मारे॥ १०॥

श्रुतंजयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः॥ ११॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः।

श्रुतंजयको बीस, चन्द्रदेवको आठ, मित्रदेवको सौ, श्रुतसेन (चित्रसेन) को तीन, मित्रवर्माको नौ तथा सुशर्माको आठ बाणोंसे घायल कर दिया॥ ११½॥

श्रुतंजयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः॥ १२॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ १३॥

फिर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कई बाणोंसे राजा श्रुतंजयका वध करके सौश्रुतिके शिरस्त्राणसहित सिरको धड़से अलग कर दिया। फिर तुरंत ही चन्द्रदेवको भी अपने बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया॥ १२-१३॥

तथेतरान् महाराज यतमानान् महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत्॥ १४॥

महाराज! इसी प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील अन्य महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर रोक दिया॥

सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत्।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च॥ १५॥

तब सत्यसेनने अत्यन्त कुपित होकर रणभूमिमें श्रीकृष्णको लक्ष्य करके एक विशाल तोमरका प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की॥ १५॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा॥ १६॥

सुवर्णमय दण्डवाला वह लोहनिर्मित तोमर महात्मा श्रीकृष्णकी बायीं भुजापर चोट करके तत्काल धरतीपर गिर पड़ा॥

माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद् रश्मयश्च विशाम्पते॥ १७॥

प्रजानाथ! उस महासमरमें तोमरसे घायल हुए श्रीकृष्णके हाथसे चाबुक और बागडोर गिर पड़ी॥ १७॥

वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।

क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णके शरीरमें घाव देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। वे उनसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

प्रापयाश्वान् महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

'प्रभो ! महाबाहो ! आप घोड़ोंको सत्यसेनके निकट पहुँचाइये। मैं अपने तीखे बाणोंसे पहले इसीको यमलोक भेज दूँगा' ॥ १९ ॥

प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा।
वाहयामास तानश्वान् सत्यसेनरथं प्रति ॥ २० ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने दूसरा चाबुक लेकर पूर्ववत् घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और उन घोड़ोंको सत्यसेनके रथके समीप पहुँचा दिया ॥ २० ॥

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥ २१ ॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे ॥ २२ ॥

कुन्तीकुमार महारथी अर्जुनने श्रीकृष्णको घायल हुआ देख सत्यसेनको तीखे बाणोंसे रोककर तेज धारवाले भल्लोंसे सेनाके मध्यभागमें उस राजकुमारके कुण्डल-मण्डित महान् मस्तकको धड़से काट डाला ॥ २१-२२ ॥

तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत्।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥ २३ ॥

मान्यवर ! सत्यसेनको मारकर तीखे बाणोंद्वारा मित्रवर्माको और एक पैने वत्सदन्तसे उसके सारथिको भी मार गिराया॥

ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान् बली।
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः॥२४॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् अर्जुनने पुनः हजारों और सैकड़ों संशप्तकगणोंको सैकड़ों बाणोंसे मारकर धरतीपर सुला दिया ॥ २४ ॥

ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः।
मित्रदेवस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥ २५ ॥

राजन् ! फिर महारथी धनंजयने रजतमय पंखवाले क्षुरप्रसे महामना मित्रदेवके मस्तकको काट डाला ॥ २५ ॥

सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत्।
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ २६ ॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश।

साथ ही अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनने सुशर्माके गलेकी हँसलीपर भी गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो क्रोधमें भरे हुए सभी संशप्तक दसों दिशाओंको अपनी गर्जनासे प्रतिध्वनित करते हुए अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीड़ा देने लगे ॥ २६½ ॥

अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः।

उनसे पीड़ित होकर इन्द्रके तुल्य पराक्रमी तथा अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् विशाम्पते ॥ २८ ॥
ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥ २९ ॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह।
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥ ३० ॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह।
गदानां परिघानां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ३१ ॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥ ३२ ॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥ ३३ ॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते।

प्रजानाथ ! फिर तो वहाँ हजारों बाण प्रकट होने लगे। माननीय भरतवंशी प्रजापालक नरेश ! उस समय कट-कटकर गिरनेवाले ध्वज, धनुष, रथ, पताका, तरकस, जूए, धुरे, पहिये, जोत, बागडोर, कूबर, वरूथ (रथका चर्ममय आवरण), बाण, घोड़े, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, पट्टिश, चक्रयुक्त शतघ्नी, बाँह-जाँघ, कण्ठसूत्र, अङ्गद, केयूर, हार, निष्क, कवच, छत्र, व्यजन और मुकुट-सहित मस्तकोंका महान् शब्द युद्धस्थलमें जहाँ-तहाँ सब ओर सुनायी देने लगा ॥ २८-३३½ ॥

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥ ३४ ॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे।

पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डल और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मस्तक आकाशमें ताराओंके समूहकी भाँति दिखायी देते थे ॥ ३४½ ॥

सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥ ३५ ॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले।

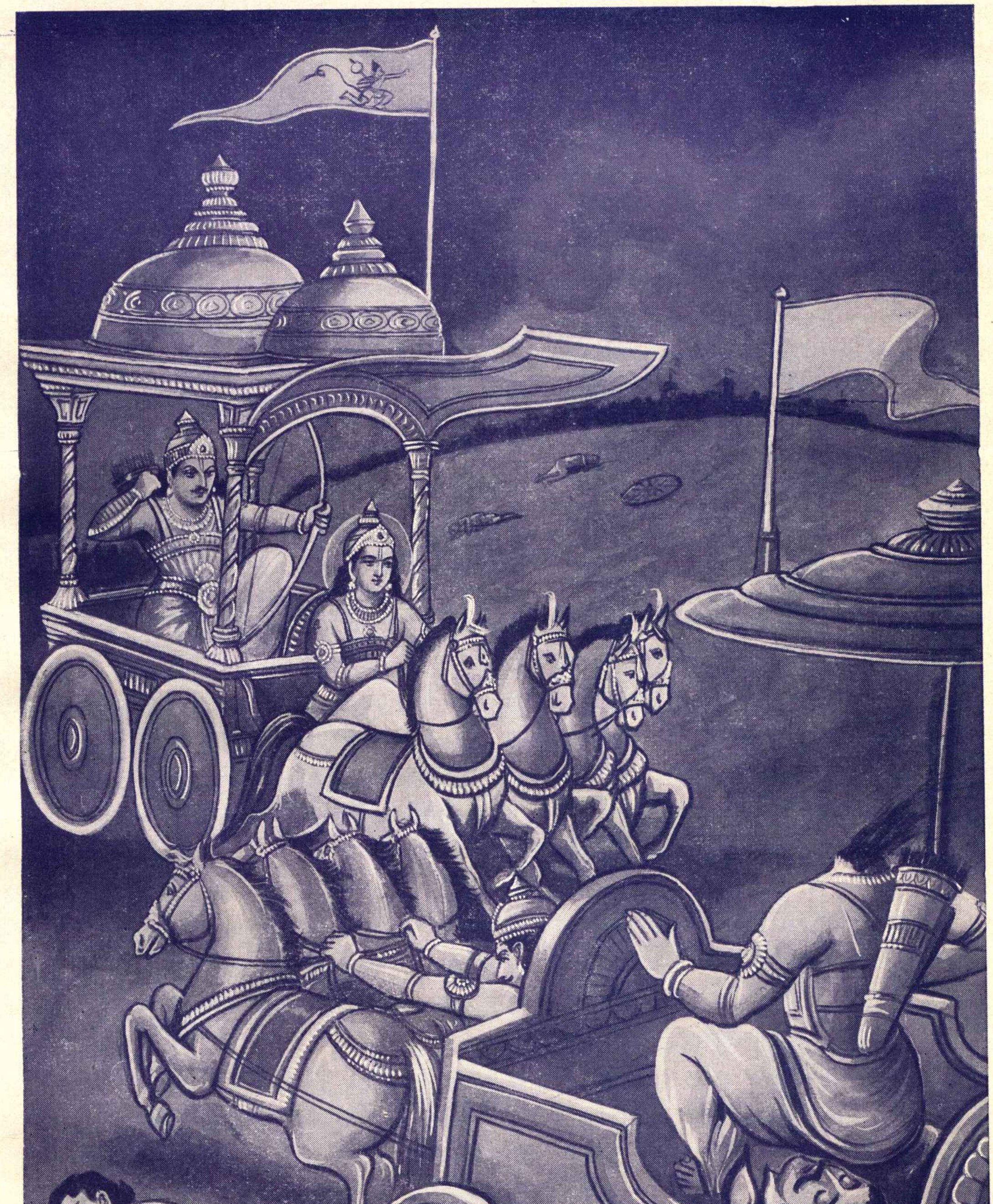
वहाँ मारे गये राजाओंके सुन्दर हारोंसे सुशोभित, उत्तम वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा चन्दनसे चर्चित शरीर पृथ्वीपर पड़े देखे जाते थे ॥ ३५½ ॥

गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ ३६ ॥
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः।

उस समय वहाँ मारे गये राजकुमारों तथा महाबली क्षत्रियोंकी लाशोंसे वह युद्धस्थल गन्धर्वनगरके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३६½ ॥

हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥ ३७ ॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः।

समराङ्गणमें टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतोंके समान धरा-



अर्जुनके द्वारा मित्रसेनका शिरश्छेद

शायी हुए हाथियों और घोड़ोंके कारण वहाँकी भूमिपर चलना-फिरना असम्भव हो गया था ॥ ३७½ ॥

नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
निघ्नतः शात्रवान् भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।

अपने भल्लोंसे शत्रुसैनिकों तथा उनके हाथी-घोड़ेके महान् समुदायको मारते-गिराते हुए महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके रथके पहियोंके लिये मार्ग नहीं मिलता था ॥३८½॥

आतङ्कादिव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥ ३९ ॥
चरतस्तस्य संग्रामे तस्मिंल्लोहितकर्दमे ।

मान्यवर ! उस संग्राममें रक्तकी कीच मच गयी थी। उसमें विचरते हुए अर्जुनके रथके पहिये मानो भयसे शिथिल होते जा रहे थे ॥ ३९½ ॥

सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥ ४० ॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।

मन और वायुके समान वेगशाली घोड़े भी वहाँ धँसते हुए पहियोंको बड़े परिश्रमसे खींच पाते थे ॥ ४०½ ॥

वध्यमानं तु तत् सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥ ४१ ॥
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।

धनुर्धर पाण्डुकुमारकी मार खाकर आपकी वह सारी सेना प्रायः पीठ दिखाकर भाग चली। वहाँ क्षणभरके लिये भी ठहर न सकी ॥ ४१½ ॥

ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान् बहून् ॥ ४२ ॥
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ४३ ॥

उस समय समराङ्गणमें उन बहुसंख्यक संशप्तकगणोंको परास्त करके विजयी कुन्तीकुमार अर्जुन धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संशप्तकजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संशप्तकोंकी पराजयविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर और दुर्योधनका युद्ध, दुर्योधनकी पराजय तथा उभयपक्षकी सेनाओंका अमर्यादित भयंकर संग्राम

संजय उवाच

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए युधिष्ठिरका स्वयं राजा दुर्योधनने एक निर्भीक वीरकी भाँति सामना किया ॥ १ ॥

तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

सहसा आते हुए आपके महारथी पुत्रको धर्मराज युधिष्ठिरने तुरंत ही घायल करके कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ ३ ॥

इससे दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। उसने युधिष्ठिरको नौ तीखे बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया और उनके सारथिपर भी एक भल्लका प्रहार किया ॥ ३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजन् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४ ॥

राजन् ! तब युधिष्ठिरने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तेरह बाण दुर्योधनपर चलाये ॥ ४ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात् सारथेश्च समाक्षिपत् ॥ ५ ॥

महारथी युधिष्ठिरने उनमेंसे चार बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ोंको मारकर पाँचवेंसे उसके सारथिका भी मस्तक धड़से काट गिराया ॥ ५ ॥

षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६ ॥

फिर छठे बाणसे राजा दुर्योधनके ध्वजको, सातवेंसे उसके धनुषको और आठवेंसे उसकी तलवारको भी पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६ ॥

पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद् भृशम् ।

तदनन्तर पाँच बाणोंसे धर्मराजने राजा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ६½ ॥

हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥ ७ ॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।

उस अश्वहीन रथसे कूदकर आपका पुत्र भारी संकटमें पड़नेपर भी वहाँ पृथ्वीपर ही खड़ा रहा (युद्ध छोड़कर भागा नहीं) ॥ ७½ ॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥ ८ ॥
अभ्यवर्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।

उसे संकटमें पड़ा देख कर्ण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य आदि वीर अपने राजाकी रक्षा चाहते हुए सहसा युधिष्ठिरके सामने आ पहुँचे ॥ ८½ ॥

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत ।

राजन् ! तत्पश्चात् समस्त पाण्डव भी युधिष्ठिरको सब

ओरसे घेरकर उनका अनुसरण करने लगे; फिर तो दोनों दलोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ९½ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥ १० ॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन् महीपते ।

भूपाल ! तदनन्तर उस महासमरमें सहस्रों बाजे बजने लगे और वहाँ किलकिलाहटकी आवाज गूँज उठी ॥ १०½ ॥

यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ॥ ११ ॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ १२ ॥

उस युद्धमें समस्त पाञ्चाल कौरवोंके साथ भिड़ गये। पैदल पैदलोंके, हाथी हाथियोंके, रथी रथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११-१२ ॥

द्वन्द्वान्यासन् महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३ ॥

महाराज ! उस रणभूमिमें होनेवाले नाना प्रकारके अचिन्तनीय, शस्त्रयुक्त तथा उत्तम द्वन्द्वयुद्ध देखने ही योग्य थे ॥ १३ ॥

ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥ १४ ॥

वे महान् वेगशाली समस्त शूरवीर समराङ्गणमें एक दूसरेके वधकी इच्छासे विचित्र, शीघ्रतापूर्ण तथा सुन्दर रीतिसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥ १५ ॥

वे वीर योद्धाके व्रतका पालन करते हुए युद्धस्थलमें एक दूसरेको मारते थे। उन्होंने किसी तरह भी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ॥ १५ ॥

मुहूर्तमेव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत ॥ १६ ॥

राजन् ! दो ही घड़ीतक वह युद्ध देखनेमें मधुर जान पड़ा। फिर तो वहाँ उन्मत्तके समान मर्यादाशून्य बर्ताव होने लगा ॥ १६ ॥

रथी नागं समासाद्य दारयन् निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः संनतपर्वभिः ॥ १७ ॥

रथी हाथीका सामना करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंद्वारा उसे विदीर्ण करते हुए कालके गालमें भेजने लगे ॥

नागा हयान् समासाद्य विक्षिपन्तो बहून् रणे ।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८ ॥

हाथी बहुत-से घोड़ोंको पकड़-पकड़कर रणभूमिमें इधर-उधर फेंकने और विदीर्ण करने लगे। उससे वहाँ उस समय बड़ा भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया ॥ १८ ॥

हयारोहाश्च बहवः परिवार्य गजोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ १९ ॥
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान् महागजान् ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥ २० ॥

बहुत-से घुड़सवार उत्तम गजराजोंको चारों ओरसे घेरकर इधर-उधर दौड़ने और ताली पीटने लगे। इससे जब वे विशालकाय हाथी दौड़ने और भागने लगते, तब वे घुड़सवार अगल-बगलसे और पीछेकी ओरसे उनपर बाणोंकी चोट करते थे ॥ १९-२० ॥

विद्राव्य च बहूनश्वान् नागा राजन् मदोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१ ॥

राजन् ! कितने ही मदोन्मत्त हाथी भी बहुत-से घोड़ोंको खदेड़कर उन्हें दाँतोंसे दबाकर मार डालते अथवा वेगपूर्वक पैरोंसे कुचल डालते थे ॥ २१ ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान् विषाणैर्विव्यधू रुषा ।
अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥ २२ ॥

कितने ही हाथियोंने रोषमें भरकर सवारोंसहित घोड़ोंको अपने दाँतोंसे विदीर्ण कर डाला तथा कुछ अत्यन्त बलवान् गजराजोंने उन घोड़ोंको पकड़कर वेगपूर्वक दूर फेंक दिया ॥

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३ ॥

प्रहारका अवसर मिलनेपर पैदल सैनिक भी चारों ओरसे हाथियोंको गहरी चोट पहुँचाते और वे घोर आर्तनाद करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग जाते थे ॥ २३ ॥

पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवप्लुत्य रणाजिरे ॥ २४ ॥
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥ २५ ॥

पैदल सैनिक युद्धस्थलमें अपने आभूषण त्यागकर तुरंत उछल-उछलकर बड़े वेगसे भागने लगे। उस समय सहसा भागते हुए उन पैदलोंके उन विचित्र आभूषणोंको अपने ऊपर प्रहार होनेमें निमित्त मानकर हाथी उन्हें सूँड़से उठा लेते और फिर दाँतोंसे दबाकर फोड़ डालते थे ॥ २४-२५ ॥

तांस्तु तत्र प्रसक्तान् वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान् निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार आभूषणोंमें उलझे हुए उन हाथियों और उनके सवारोंको चारों ओरसे घेरकर महान् वेगशाली तथा बलोन्मत्त पैदल योद्धा मार डालते थे ॥ २६ ॥

अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः ॥ २७ ॥

कितने ही पैदल सैनिक उस महासमरमें सुशिक्षित हाथियोंकी सूँड़ोंसे आकाशमें फेंक दिये जाते और उधरसे गिरते समय उन हाथियोंके दन्ताग्रभागोंद्वारा अत्यन्त विदीर्ण कर दिये जाते थे ॥ २७ ॥

अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित् तत्र महागजैः ॥ २८ ॥
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः ।
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥ २९ ॥

कितने ही योद्धा हाथियोंद्वारा पकड़े जाकर उनके दाँतोंसे ही मार डाले गये । महाराज ! बहुत-से विशालकाय गजराज सेनाके भीतर घुसकर कितने ही पैदलोंको सहसा पकड़कर उनके शरीरोंको बारंबार पटक-झटककर चूर-चूर कर देते और कितनोंको व्यजनोंके समान घुमाकर युद्धमें मार डालते थे ॥ २८-२९ ॥

पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥ ३० ॥

प्रजानाथ ! जो हाथियोंके आगे चलनेवाले पैदल थे, वे दूसरे पक्षके हाथियोंके शरीरोंको जहाँ-तहाँ रणभूमिमें अत्यन्त घायल कर देते थे ॥ ३० ॥

प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥ ३१ ॥

कहीं-कहीं पैदल सैनिक प्रास, तोमर और शक्तिद्वारा शत्रुपक्षके हाथियोंके दोनों दाँतोंके बीचके स्थानमें, कुम्भस्थलमें और ओठोंके ऊपर प्रहार करके उन्हें अत्यन्त काबूमें कर लेते थे ॥ ३१ ॥

निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्ना न्यपतन् भुवि ॥ ३२ ॥

कितने ही हाथियोंको अवरुद्ध करके पार्श्वभागमें खड़े हुए अत्यन्त भयंकर रथी और घुड़सवार उन्हें बाणोंसे विदीर्ण कर डालते, जिससे वे हाथी वहीं पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥३२॥

सहसा सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृद्नन् वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥ ३३ ॥

उस महासमरमें कितने ही हाथीसवार सहसा तोमरका प्रहार करके ढालसहित पैदल योद्धाको गिराकर उसे वेगपूर्वक धरतीपर रौंद डालते थे ॥ ३३ ॥

तथा सावरणान् कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते ।
रथान् नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥ ३४ ॥
व्याक्षिपन् सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥ ३५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।

माननीय नरेश ! उस घोर एवं भयानक युद्धमें कितने ही हाथी निकट आकर अपनी सूँड़ोंसे कुछ आवरणयुक्त रथोंको पकड़ लेते और उन्हें वेगपूर्वक खींचकर सहसा दूर फेंक देते थे । फिर वे महाबली हाथी भी नाराचोंसे मारे जाकर वज्रके तोड़े हुए पर्वत-शिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ३४-३५½ ॥

योधा योधान् समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन् युधि ॥३६॥
केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिक्षिपुर्बिभिदुश्च ह ।

बहुत-से पैदल योद्धा दूसरे योद्धाओंको निकट पाकर युद्धस्थलमें उनपर मुक्कोंसे प्रहार करने लगते थे । कितने ही एक दूसरेकी चुटिया पकड़कर परस्पर झटकते-फेंकते और एक दूसरेको घायल करते थे ॥ ३६½ ॥

उद्यम्य च भुजावन्यो निक्षिप्य च महीतले ॥ ३७ ॥
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः ।

दूसरा योद्धा अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर उनके द्वारा शत्रुको पृथ्वीपर पटक देता और एक पैरसे उसकी छातीको दबाकर उसके छटपटाते रहनेपर भी उसका सिर काट लेता था ॥ ३७½ ॥

पततश्चापरो राजन् विजहारासिना शिरः ॥ ३८ ॥
जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ।

राजन् ! दूसरा सैनिक किसी गिरते हुए योद्धाका सिर अपनी तलवारसे काट लेता था और कोई जीवित शत्रुके ही शरीरमें अपना शस्त्र घुसेड़ देता था ॥ ३८½ ॥

मुष्टियुद्धं महच्चासीद् योधानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।

भारत ! वहाँ योद्धाओंमें बहुत बड़ा मुष्टियुद्ध हो रहा था । साथ ही भयंकर केशग्रहण और भयानक बाहुयुद्ध भी चालू था ॥ ३९½ ॥

समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥ ४० ॥
जहार समरे प्राणान् नानाशस्त्रैरनेकधा ।

कोई-कोई योद्धा दूसरेके साथ उलझे हुए सैनिकसे स्वयं अपरिचित रहकर नाना प्रकारके अनेक अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा युद्धमें उसके प्राण हर लेता था ॥ ४०½ ॥

संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१ ॥
कबन्धान्युत्थितानि स्युःशतशोऽथ सहस्रशः ।

इस प्रकार जब सभी योद्धा युद्धमें लगे थे और तुमुल संग्राम चल रहा था, उस समय सैकड़ों और हजारों कबन्ध (धड़) उठ खड़े हुए थे ॥ ४१½ ॥

शोणितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२ ॥
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।

खूनसे भीगे हुए शस्त्र और कवच गाढ़े रंगमें रंगे हुए वस्त्रोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४२½ ॥

एवमेतन्महद् युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३ ॥
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।

इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह महाभयानक युद्ध बढ़ी हुई गङ्गाके समान जगत्‌को कोलाहलसे परिपूर्ण कर रहा था ॥ ४३½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥ ४४ ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।

राजन् ! बाणोंकी चोटसे व्याकुल हुए अपने और पराये योद्धा पहचानमें नहीं आते थे। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजालोग 'युद्ध करना अपना कर्तव्य है' यह समझकर जूझ रहे थे ॥ ४४½ ॥

स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान्॥ ४५ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।

महाराज ! सामने आये हुए अपने और शत्रुपक्षके योद्धाओंको भी अपने ही पक्षके लोग मार डालते थे। दोनों सेनाओंके वीर मर्यादाशून्य युद्धमें प्रवृत्त हो गये थे ॥ ४५½ ॥

रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६ ॥
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७ ॥

राजेन्द्र ! टूटे हुए रथों, धराशायी हुए हाथियों, मरकर गिरे हुए घोड़ों और गिराये गये पैदल सैनिकोंसे क्षणभरमें यह पृथ्वी ऐसी हो गयी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ ४६-४७ ॥

क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत् कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनंजयः ॥ ४८ ॥

भूपाल ! क्षणभरमें वहाँ भूतलपर खूनकी नदी बह चली। कर्णने पञ्चालोंका और अर्जुनने त्रिगर्तोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः ।
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये काङ्क्षतां विपुलं यशः ॥ ४९ ॥

राजन् ! भीमसेनने कौरवों तथा आपकी गजसेनाको सर्वथा नष्ट कर दिया। इस प्रकार सूर्यदेवके अपराह्णकालमें जाते-जाते कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओंमें महान् यशकी अभिलाषा रखनेवाले वीरोंका यह विनाश-कार्य सम्पन्न हुआ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
त्वत्तोऽहं संजयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम् ॥ १ ॥
यथा त्वं मे कथयसे तथा युद्धमवर्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमसे मैंने अबतक अत्यन्त तीव्र और दुःसह दुःख देनेवाली बहुत-सी घटनाएँ सुनी हैं। अपने पुत्रोंके विनाशकी बात भी सुन ली। सूत ! जैसा तुम मुझसे कह रहे हो और जिस प्रकार वह युद्ध सम्पन्न हुआ, उसे देखते हुए मेरा यह दृढ़ निश्चय हो रहा है कि अब कुरुवंशी जीवित नहीं रहे ॥ १-२ ॥

दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥

सुनता हूँ महारथी दुर्योधन भी वहाँ रथहीन कर दिया गया। धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उसके साथ किस प्रकार युद्ध किया अथवा राजा दुर्योधनने युधिष्ठिरके प्रति कैसा बर्ताव किया ? ॥ ३ ॥

अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४ ॥

संजय ! अपराह्णकालमें किस प्रकार वह रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम उसका वर्णन करनेमें कुशल हो ॥ ४ ॥

संजय उवाच

संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा ।

संजयने कहा—प्रजानाथ ! जब सारी सेनाएँ विभिन्न भागोंमें बँटकर जूझने और मरने लगीं, तब आपका पुत्र दुर्योधन दूसरे रथपर बैठकर विषधर सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ५½ ॥

(सर्वसैन्यमुदीक्ष्यैव क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ।
दृष्ट्वा धर्मसुतं चापि सैन्यमध्ये व्यवस्थितम् ॥
श्रिया ज्वलन्तं कौन्तेयं यथा वज्रधरं युधि ।)
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत ।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥ ७ ॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।

सारी सेनाओंपर दृष्टिपात करके क्रोधसे उसकी आँखें घूमने लगीं। उस समय युद्धस्थलमें धर्मपुत्र कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर वज्रधारी इन्द्रके समान अपनी दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होते हुए सेनाके बीचमें खड़े थे। भारत ! उन धर्मराज युधिष्ठिरको देखकर दुर्योधनने तुरंत अपने सारथिसे कहा—'सारथे ! चलो, चलो, जहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कवच बाँध-

कर छत्र धारण किये सुशोभित हो रहे हैं, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचा दो' ॥ ६-७½ ॥

स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।

राजा दुर्योधनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सारथिने उस उत्तम रथको राजा युधिष्ठिरके सामने बढ़ाया ॥ ८½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९ ॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।

तब मदस्रावी हाथीके समान कुपित हुए राजा युधिष्ठिरने भी अपने सारथिको आज्ञा दी, 'जहाँ दुर्योधन है, वहीं चलो' ॥ ९½ ॥

तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥ १० ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

इस प्रकार वे महाधनुर्धर, महावीर और महारथी दोनों रणदुर्मद बन्धु एक दूसरेके सामने आ गये और क्रोधपूर्वक आपसमें भिड़कर युद्धस्थलमें परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १०-११ ॥

ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष ।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ १२ ॥

मान्यवर ! तदनन्तर युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भल्लसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ १२ ॥

तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ १४ ॥

राजा युधिष्ठिर उस अपमानको सहन न कर सके। उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उनकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। उन्होंने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा हाथमें ले लिया। फिर उन धर्मपुत्रने सेनाके मुहानेपर दुर्योधनके ध्वज और धनुषको भी काट डाला ॥

अथान्यद् धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको बींध डाला। वे दोनों वीर अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥

सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥ १६ ॥

परस्पर विजयकी इच्छासे रोषमें भरे हुए दो सिंहोंके समान दहाड़ते अथवा दो साँड़ोंके समान गरजते हुए वे रणभूमिमें एक दूसरेपर चोट करते थे ॥ १६ ॥

अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥ १७ ॥
विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ ।

वे दोनों महारथी एक दूसरेका अन्तर (प्रहार करनेका अवसर) ढूँढ़ते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे। महाराज ! धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा वे दोनों वीर क्षत-विक्षत होकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७½ ॥

ततो राजन् विमुञ्चन्तौ सिंहनादान् मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
तलयोश्च तथा शब्दान् धनुषश्च महाहवे ।
शङ्खशब्दवरांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥ १९ ॥

राजन् ! तब वे दोनों नरेश बारंबार सिंहनाद करते हुए उस महासमरमें तालियाँ बजाने, धनुषकी टंकार करने और उत्तम शङ्खनाद फैलाने लगे ॥ १८-१९ ॥

अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥ २० ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः ।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको अत्यन्त पीड़ा दे रहे थे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने वज्रके समान वेगशाली एवं दुर्जय तीन बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी छातीमें क्रोधपूर्वक प्रहार किया ॥ २०½ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥ २१ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भी शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल करके तुरंत बदला चुकाया ॥ २१½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ २२ ॥
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ।

भारत ! इसके बाद राजा दुर्योधनने सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक तीखी शक्ति चलायी, जो उस समय बड़ी भारी उल्काके समान प्रतीत हो रही थी ॥ २२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥ २३ ॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः ।

सहसा अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरने तीन तीखे बाणोंसे तत्काल काट डाला और दुर्योधनको भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३½ ॥

निपपात ततः साथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥ २४ ॥
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसंनिभा ।

सुवर्णमय दण्डवाली वह शक्ति आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काके समान महान् शब्दके साथ गिर पड़ी। उस समय वह अग्निके तुल्य प्रकाशित हो रही थी ॥ २४½ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २५ ॥

नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ।

प्रजानाथ ! उस शक्तिको नष्ट हुई देख आपके पुत्रने नौ तीखे भल्लोंसे युधिष्ठिरको गहरी चोट पहुँचायी ॥२५½॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ २६ ॥
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ।
समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः ॥ २७ ॥

बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली युधिष्ठिरने दुर्योधनको लक्ष्य करके एक बाण हाथमें लिया और उसे धनुषके मध्यभागमें रखा ॥ २६-२७ ॥

चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी ।
स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ॥ २८ ॥
व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह ।

महाराज ! तत्पश्चात् पराक्रमी युधिष्ठिरने उस बाणको क्रोधपूर्वक चला दिया । उस बाणने आपके महारथी पुत्र दुर्योधनको घायल करके उसे मूर्च्छित कर दिया और पृथ्वीको भी विदीर्ण कर डाला ॥ २८½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥ २९ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् ।

उसके बाद क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने वेगपूर्वक गदा उठाकर कलहका अन्त कर देनेकी इच्छासे धर्मराज युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ २९½ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥
धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत् तव सूनवे ।
दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३१ ॥

दण्डधारी यमराजके समान उसे गदा उठाये देख धर्मराजने आपके उस पुत्रपर अत्यन्त वेगशालिनी महाशक्तिका प्रहार किया, जो प्रज्वलित हुई बड़ी भारी उल्काके समान देदीप्यमान हो रही थी ॥ ३०-३१ ॥

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्त्वा स्तनान्तरे ।
भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३२ ॥

रथपर बैठे हुए ही दुर्योधनका कवच फाड़कर वह शक्ति उसकी छातीमें चुभ गयी । इससे अत्यन्त उद्विग्न-चित्त होकर दुर्योधन गिरा और मूर्छित हो गया ॥ ३२ ॥

भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् ।
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत ॥ ३३ ॥

उस समय भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाका विचार करते हुए युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज ! यह राजा दुर्योधन आपका वध्य नहीं है ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिर उसके वधसे निवृत्त हो गये ॥ ३३ ॥

ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥ ३४ ॥

तब कृतवर्मा विपत्तिके समुद्रमें डूबे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनके पास तुरंत आकर उसकी रक्षाके लिये उद्यत हो गया ॥ ३४ ॥

गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥ ३५ ॥

यह देख भीमसेन भी सुवर्णपत्रजटित गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें बड़े वेगसे कृतवर्मापर टूट पड़े ॥ ३५ ॥

एवं तदभवद् युद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
अपराह्णे महाराज काङ्क्षतां विजयं युधि ॥ ३६ ॥

महाराज ! इस प्रकार अपराह्णके समय रणक्षेत्रमें विजय चाहनेवाले आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ भीषण युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

सात्यकि और कर्णका युद्ध तथा अर्जुनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार और पाण्डवोंकी विजय

संजय उवाच

ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपके रण-दुर्मद योद्धा कर्णको आगे करके पुनः लौटकर देवताओं और असुरोंके समान संग्राम करने लगे ॥ १ ॥

द्विरदनररथाश्वशङ्खशब्दैः
परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसादिसंघाः
परिकुपिताभिमुखाः प्रजह्निरे ते ॥ २ ॥

हाथी, मनुष्य, रथ, घोड़ों और शङ्खके शब्दोंसे अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरे हाथीसवार, रथी, पैदल और घुड़सवारोंके समुदाय क्रोधपूर्वक सामना करते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके एक दूसरेको मारने लगे ॥ २ ॥

शितपरश्वधसासिपट्टिशै-
रिषुभिरनेकविधैश्च सूदिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे
वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥

उस महायुद्धमें श्रेष्ठ वीर पुरुषोंने वाहनों तथा तीखे

फरसों, तलवारों, पट्टिशों और अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा सवारोंसहित हाथियों, रथों, घोड़ों एवं पैदल मनुष्योंका संहार कर डाला ॥ ३ ॥

कमलदिनकरेन्दुसंनिभैः
सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही
पुरुषशिरोभिरुपस्तृता बभौ ॥ ४ ॥

उस समय नरमुण्डोंसे ढकी हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वीरोंके वे कटे हुए मस्तक कमल, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थे। उनके सफेद दाँत चमक रहे थे। उनके मुख, नेत्र और नासिकाएँ भी बड़ी सुन्दर थीं और वे मनोहर मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित थे ॥ ४ ॥

परिघमुसलशक्तितोमरै-
र्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो
रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥

उस समय परिघ, मुसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओंकी सौ-सौ चोटें खाकर हजारों हाथी, मनुष्य और घोड़े खूनकी नदी बहाने लगे ॥ ५ ॥

प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं
प्रतिभयदर्शनमुल्बणव्रणम् ।
तदहितहतमाबभौ बलं
पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥

नष्ट हुए रथ, मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरी एवं शत्रुओंकी मारी हुई वह सेना गहरे आघातोंसे युक्त हो प्रलयकालमें यमराजके राज्यकी भाँति बड़ी भयंकर दिखायी देती थी ॥ ६ ॥

अथ तव नरदेव सैनिका-
स्तव च सुताः सुरसूनुसंनिभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे
कुरुवृषभाः शिनिपौत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥

नरदेव! तदनन्तर आपके सैनिक तथा देवकुमारोंके समान तेजस्वी कुरुकुलभूषण आपके पुत्र असंख्य सेना साथ लेकर रणभूमिमें शिनिपौत्र सात्यकिपर चढ़ आये ॥ ७ ॥

तदतिरुधिरभीममाबभौ
पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं
बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥ ८ ॥

पैदल मनुष्यों, श्रेष्ठ घोड़ों, रथों और हाथियोंसे भरी और खारे पानीके समुद्रके समान भयंकर गर्जना करनेवाली वह सेना अत्यन्त रक्तरंजित होकर देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान भयानक प्रतीत होती थी ॥ ८ ॥

सुरपतिसमविक्रमस्तत-
स्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै
रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥ ९ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी सूर्यपुत्र कर्णने युद्धस्थलमें इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके समान शक्तिशाली शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ९ ॥

तमपि सरथवाजिसारथिं
शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे
पुरुषवरं समवास्तृणोत् तदा ॥ १० ॥

तब शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ विषधर सर्पोंके समान विषैले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा रथ, घोड़े और सारथिसहित नरश्रेष्ठ कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

शिनिवृषभशरैर्निपीडितं
तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं
द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥

उस समय आपके हितैषी सुहृद् अतिरथी वीर वहाँ शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए महारथी कर्णके पास हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर तुरंत आ पहुँचे ॥ ११ ॥

तदुदधिनिभमाद्रवद् बलं
त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्
पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न आदि शीघ्रकारी शत्रुओंने आपकी समुद्र-सदृश विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया और आपकी सेना भी शत्रुओंकी ओर दौड़ी। फिर तो वहाँ मनुष्यों, रथों, घोड़ों और हाथियोंका महान् संहार होने लगा ॥ १२ ॥

अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ
भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं
तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥

तदनन्तर अपराह्णकालके कृत्य समाप्त करके विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करनेके पश्चात् नरश्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण शत्रुओंके वधका निश्चय करके तुरंत आपकी सेनापर चढ़ आये ॥ १३ ॥

जलदनिनदनिःस्वनं रथं
पवननिधूतपताककेतनम् ।

सितहयमुपयान्तमन्तिकं
हतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥ १४ ॥

अर्जुनके रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी, पवनकी प्रेरणा पाकर उसकी ऊँची पताका फहरा रही थी और उसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे। उस समय शत्रुओंने उत्साहशून्य हृदयसे उस रथको समीप आते देखा ॥ १४ ॥

अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः।
शरसम्बाधमकरोत् खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥

इसके बाद रथपर नृत्य करते हुए-से अर्जुनने गाण्डीव धनुषको फैलाकर आकाश, दिशा और विदिशाओं-को बाणोंसे भर दिया ॥ १५ ॥

रथान् विमानप्रतिमान् मज्जयन् सायुधध्वजान्।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥

जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार उस समय अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा विमान-जैसे रथोंको आयुध, ध्वज और सारथियोंसहित नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥

गजान् गजप्रयन्तृंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान्।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे पताका, ध्वज और आयुधोंसहित गजों एवं गजारोहियोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा पैदल मनुष्योंको भी यमलोक भेज दिया ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम्।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन् बाणैरजिह्मगैः ॥ १८ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान अबाध गतिवाले महारथी अर्जुनपर सीधे जानेवाले बाणोंसे प्रहार करता हुआ अकेला दुर्योधन उनका सामना करनेके लिये गया ॥ १८ ॥

तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुं च सायकैः।
हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ १९ ॥

अर्जुनने सात बाणोंसे दुर्योधनके धनुष, सारथि, घोड़ों और ध्वजको नष्ट करके एक बाणसे उसका छत्र भी काट डाला ॥ १९ ॥

नवमं च समाधाय व्यसृजत् प्राणघातिनम्।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥ २० ॥

फिर नवें प्राणघातक बाणको धनुषपर रखकर उन्होंने दुर्योधनकी ओर चला दिया; परंतु अश्वत्थामाने उस उत्तम बाणके सात टुकड़े कर डाले ॥ २० ॥

ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥

तब पाण्डुकुमार अर्जुनने अश्वत्थामाका धनुष काटकर उसके रथ और घोड़ोंको नष्ट करके अपने बाणोंद्वारा कृपाचार्यके अत्यन्त भयंकर धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ २१ ॥

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा
ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत्।
दुःशासनस्येष्वसनं
छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२ ॥

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माका धनुष काटकर उसके ध्वज और घोड़ोंको भी तत्काल नष्ट कर दिया। फिर दुःशासनके धनुषके टुकड़े-टुकड़े करके राधापुत्र कर्णपर आक्रमण किया ॥ २२ ॥

अथ सात्यकिमुत्सृज्य
त्वरन् कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या
कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥ २३ ॥

तदनन्तर कर्णने सात्यकिको छोड़कर अर्जुनको तीन बाणोंसे बींध डाला। फिर बीस बाण मारकर श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया। इस प्रकार वह दोनोंको बारंबार चोट पहुँचाने लगा ॥ २३ ॥

न ग्लानिरासीत् कर्णस्य
क्षिपतः सायकान् बहून्।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्
क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥ २४ ॥

उस समय कर्ण क्रोधमें भरे हुए इन्द्रके समान रणभूमि-में बहुत-से बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंका संहार कर रहा था; परंतु उसे इस कार्यमें तनिक भी क्लेश अथवा थकावटका अनुभव नहीं होता था ॥ २४ ॥

अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५ ॥

फिर सात्यकिने भी लौटकर कर्णको तीखे बाणोंसे घायल करके पुनः उसे एक सौ निन्यानबे भयंकर बाण मारे ॥

ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन्।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २६ ॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद् बलम् ॥ २७ ॥
चेकितानश्च बलवान् धर्मराजश्च सुव्रतः।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ॥ २८ ॥
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन्।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥ २९ ॥

इसके बाद कुन्तीपुत्रोंकी सेनाके सभी प्रमुख वीर कर्णको पीड़ा देने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल-सहदेव,

धृष्टद्युम्न, चेदि, कारूष, मत्स्य और केकय देशोंकी सेनाएँ, बलवान् चेकितान तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर—ये भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल सैनिकों-द्वारा रणभूमिमें कर्णको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। सभी भयंकर वचन बोलते हुए वहाँ कर्णके वधका निश्चय कर चुके थे ॥

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वेव मारुतः ॥ ३० ॥

जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षको तोड़कर गिरा देती है, उसी प्रकार कर्ण अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंकी उस शस्त्रवर्षाको बहुधा छिन्न-भिन्न करके अपने अस्त्रबलसे दूर हटा दिया ॥ ३० ॥

रथिनः समहामात्रान् गजानश्वान् ससादिनः।
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरा हुआ कर्ण रथियों, महावतोंसहित हाथियों, सवारोंसहित घोड़ों तथा पैदल-समूहोंका वध करता देखा जा रहा था ॥ ३१ ॥

तद् वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत् पराङ्मुखम् ॥ ३२ ॥

कर्णके अस्त्रोंके तेजसे मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेना शस्त्र, वाहन, शरीर और प्राणोंसे रहित हो प्रायः रणभूमिसे विमुख होकर भाग चली ॥ ३२ ॥

अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन्।
दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥ ३३ ॥

तब अर्जुनने मुस्कराते हुए अपने अस्त्रसे कर्णके अस्त्रको नष्ट करके बाणोंकी वर्षाद्वारा आकाश, दिशा और पृथ्वीको आच्छादित कर दिया ॥ ३३ ॥

मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥ ३४ ॥

उनके कुछ बाण मुसलोंके समान गिरते थे, कुछ परिघोंके समान, कुछ शतघ्नियोंके तुल्य तथा कुछ दूसरे बाण भयंकर वज्रोंके समान शत्रुओंपर पड़ते थे ॥ ३४ ॥

तैर्वध्यमानं तत् सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम्।
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥ ३५ ॥

उन बाणोंसे हताहत होती हुई पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंसे युक्त कौरवसेना आँख मूँदकर जोर-जोरसे चिल्लाने और चक्कर काटने लगी ॥ ३५ ॥

निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः।
हन्यमानाः शरैरार्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥

उस समय घोड़े, हाथी और मनुष्योंको ऐसा युद्ध प्राप्त हुआ, जिसमें मृत्यु निश्चित है। उन सब लोगोंपर जब बाणोंकी मार पड़ने लगी, तब वे सब-के-सब आर्त और भयभीत होकर भाग चले ॥ ३६ ॥

त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम्।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार जब आपके विजयाभिलाषी सैनिक युद्धमें संलग्न हो रहे थे, उसी समय सूर्यदेव अस्ताचल पहुँचकर डूब गये ॥ ३७ ॥

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः।
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ३८ ॥

महाराज! उस समय अन्धकार और विशेषतः धूलसे सब कुछ आच्छादित होनेके कारण हमलोग किसी भी शुभ या अशुभ वस्तुको देख नहीं पाते थे ॥ ३८ ॥

ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥ ३९ ॥

भारत! वे महाधनुर्धर योद्धा रात्रियुद्धसे डरते थे। इसलिये समस्त सैनिकोंके साथ उन्होंने वहाँसे शिविरको प्रस्थान कर दिया ॥ ३९ ॥

कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन् दिनक्षये।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः ॥ ४० ॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ ४१ ॥

राजन्! दिनके अन्तमें कौरवोंके हट जानेपर पाण्डव भी विजय पाकर प्रसन्नचित्त हो भाँति-भाँतिके बाजोंकी आवाज, सिंहनाद और गर्जनाके द्वारा शत्रुओंका उपहास और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी स्तुति करते हुए अपने शिबिरको लौट गये ॥ ४०-४१ ॥

कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रायुञ्जन्त नरेश्वराः ॥ ४२ ॥

उन वीरोंके द्वारा युद्धका उपसंहार कर दिये जानेपर समस्त सैनिक और नरेश पाण्डवोंको आशीर्वाद देने लगे॥

ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः।
निशायां शिबिरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सैनिकोंके लौटा लिये जानेपर हर्षमें भरे हुए पाण्डव-पक्षीय नरेश रातको शिबिरमें जाकर सो रहे ॥ ४३ ॥

ततो रक्षःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव संघशः।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसंनिभम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर रुद्रके क्रीडास्थल (श्मशान) सदृश उस भयंकर युद्धभूमिमें राक्षस, पिशाच और झुंड-के-झुंड हिंसक जीव-जन्तु जा पहुँचे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके सेनापतित्वमें प्रथम दिनका युद्धविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

रात्रिमें कौरवोंकी मन्त्रणा, धृतराष्ट्रके द्वारा दैवकी प्रबलताका प्रतिपादन, संजयद्वारा धृतराष्ट्रपर दोषारोप तथा कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत

धृतराष्ट्र उवाच

स्वेनच्छन्देन नः सर्वानवधीद् व्यक्तमर्जुनः।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! निश्चय ही अर्जुनने अपनी इच्छासे हमारे सब सैनिकोंका वध किया। समराङ्गणमें यदि वे शस्त्र उठा लें तो यमराज भी उनके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता॥ १॥

पार्थश्चैकोऽहरद् भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत्।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान्॥ २॥

अर्जुनने अकेले ही सुभद्राका अपहरण किया, अकेले ही खाण्डव वनमें अग्निदेवको तृप्त किया और अकेले ही इस पृथ्वीको जीतकर सम्पूर्ण नरेशोंको कर देनेवाला बना दिया॥

एको निवातकवचानहनद् दिव्यकार्मुकः।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत्॥ ३॥

उन्होंने दिव्य धनुष धारण करके अकेले ही निवातकवचोंका संहार कर डाला और किरातरूप धारण करके खड़े हुए महादेवजीके साथ भी अकेले ही युद्ध किया॥ ३॥

एको ह्यरक्षद् भरतानेको भवमतोषयत्।
तेनैकेन जिताः सर्वे महीपा ह्युग्रतेजसा॥ ४॥

अर्जुनने अकेले ही घोषयात्राके समय दुर्योधन आदि भरतवंशियोंकी रक्षा की, अकेले ही अपने पराक्रमसे महादेवजीको संतुष्ट किया और उन उग्रतेजस्वी वीरने अकेले ही (विराटनगरमें) कौरव-दलके समस्त भूमिपालोंको पराजित किया था॥

न ते निन्द्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत्।
ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत् तदा॥ ५॥

इसलिये वे हमारे पक्षके सैनिक या नरेश निन्दनीय नहीं हैं, प्रशंसाके ही पात्र हैं। उन्होंने जो कुछ किया हो, बताओ। सूत! सेनाके शिविरमें लौट आनेके पश्चात् उस समय दुर्योधनने क्या किया?॥ ५॥

संजय उवाच

हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुनिर्जिताः॥ ६॥

संजय बोले—राजन्! कौरव सैनिक बाणोंसे घायल, छिन्न-भिन्न अवयवोंसे युक्त और अपने वाहनोंसे भ्रष्ट हो गये थे। उनके कवच, आयुध और वाहन नष्ट हो गये थे। उनके स्वरोंमें दीनता थी। शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण वे स्वाभिमानी कौरव मन-ही-मन बहुत दुःख पा रहे थे॥ ६॥

शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः॥ ७॥

शिबिरमें आनेपर वे कौरव पुनः गुप्त मन्त्रणा करने लगे। उस समय उनकी दशा पैरसे कुचले गये उन सर्पोंके समान हो रही थी, जिनके दाँत तोड़ दिये और विष नष्ट कर दिये गये हों॥ ७॥

तानब्रवीत् ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम्॥ ८॥

उस समय क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान कर्णने हाथ-से-हाथ दबाकर आपके पुत्रकी ओर देखते हुए उन कौरव वीरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ८॥

यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा।
सम्बोधयति चाप्येनं यथाकालमधोक्षजः॥ ९॥

'अर्जुन सावधान, दृढ़, चतुर और धैर्यवान् हैं। साथ ही उन्हें समय-समयपर श्रीकृष्ण भी कर्तव्यका ज्ञान कराते रहते हैं॥ ९॥

सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते॥ १०॥

'इसीलिये उन्होंने सहसा अस्त्रोंका प्रयोग करके आज हमें ठग लिया है; परंतु भूपाल! कल मैं उनके सारे मनसूबेको नष्ट कर दूँगा'॥ १०॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान्।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ११॥

कर्णके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर समस्त श्रेष्ठ राजाओंको विश्रामके लिये जानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे सब नरेश अपने-अपने शिबिरोंमें चले गये॥ ११॥

सुखोषितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः।
तेऽपश्यन् विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम्॥ १२॥
प्रयत्नात् कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमते।

वहाँ रातभर सुखसे रहे। फिर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये निकले। निकलकर उन्होंने देखा कि कुरुवंशके श्रेष्ठ पुरुष धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पति और शुक्राचार्यके मतके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अपनी सेनाका दुर्जय व्यूह बना रक्खा है॥ १२½॥

अथ प्रतीपकर्तारं प्रवीरं परवीरहा॥ १३॥
सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दुर्योधनने शत्रुओंके विरुद्ध व्यूह-रचनामें समर्थ और वृषभके समान पुष्ट कंधोंवाले प्रमुख वीर कर्णका स्मरण किया॥ १३½॥

पुरंदरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले॥ १४॥
कार्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः।

कर्ण युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी, मरुद्गणोंके समान बलवान् तथा कार्तवीर्य अर्जुनके समान शक्तिशाली था। राजा दुर्योधनका मन उसीकी ओर गया ॥ १४½ ॥

सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः।
सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ १५ ॥

जैसे प्राण-संकटकालमें लोग अपने बन्धुजनोंका स्मरण करते हैं, उसी प्रकार समस्त सेनाओंमेंसे केवल महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णकी ओर ही उसका मन गया ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत्तदा।
यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ १६ ॥
अप्यपश्यत राधेयं शीतार्ता इव भास्करम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! तत्पश्चात् दुर्योधनने क्या किया। मूर्खो ! तुमलोगोंका मन जो वैकर्तन कर्णकी ओर गया था, उसका क्या कारण है। जैसे शीतसे पीड़ित हुए प्राणी सूर्यकी ओर देखते हैं, क्या उसी प्रकार तुमलोग भी राधापुत्र कर्णकी ओर देखते थे ? ॥ १६½ ॥

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ॥ १७ ॥
कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत संजय।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥ १८ ॥

संजय ! सेनाको शिविरकी ओर लौटानेके बाद जब रात बीती और प्रातःकाल पुनः संग्राम आरम्भ हुआ, उस समय वैकर्तन कर्णने वहाँ किस प्रकार युद्ध किया तथा समस्त पाण्डवोंने सूतपुत्र कर्णके साथ किस प्रकार युद्ध आरम्भ किया ?॥

कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात् पार्थान् ससृंजयान्।
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥ १९ ॥
तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः।
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥

'अकेला महाबाहु कर्ण सृंजयोंसहित समस्त कुन्तीपुत्रोंको मार सकता है। युद्धमें कर्णका बाहुबल इन्द्र और विष्णुके समान है। उसके अस्त्र-शस्त्र भयंकर हैं तथा उस महामनस्वी वीरका पराक्रम भी अद्भुत है।' यह सब सोचकर राजा दुर्योधन संग्राममें कर्णका सहारा ले मतवाला हो उठा था ॥

दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम्।
पराक्रान्तान् पाण्डुसुतान् दृष्ट्वा चापि महारथः ॥ २१ ॥

किंतु उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरद्वारा दुर्योधनको अत्यन्त पीड़ित होते और पाण्डुपुत्रोंको पराक्रम प्रकट करते देखकर भी महारथी कर्णने क्या किया ?॥ २१ ॥

कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सपुत्रान् सहकेशवान् ॥ २२ ॥

मूर्ख दुर्योधन संग्राममें कर्णका आश्रय लेकर पुनः पुत्रों-सहित कुन्तीकुमारों और श्रीकृष्णको जीतनेके लिये उत्साहित हुआ था ॥ २२ ॥

अहो बत महद् दुःखं यत्र पाण्डुसुतान् रणे।
नातरद् रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम्' ॥ २३ ॥

अहो ! यह महान् दुःखकी बात है कि वेगशाली वीर कर्ण भी रणभूमिमें पाण्डवोंसे पार न पा सका। अवश्य दैव ही सबका परम आश्रय है ॥ २३ ॥

अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्तते।
अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ २४ ॥
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि संजय।

अहो ! द्यूतक्रीडाका यह घोर परिणाम इस समय प्रकट हुआ है। संजय ! आश्चर्य है कि मैंने दुर्योधनके कारण बहुत-से तीव्र एवं भयंकर दुःख, जो काँटोंके समान कसक रहे हैं, सहन किये हैं ॥ २४½ ॥

सौबलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २५ ॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजा तं चाप्यनुव्रतः।

तात ! दुर्योधन उन दिनों शकुनिको बड़ा नीतिज्ञ मानता था तथा वेगशाली वीर कर्ण भी नीतिज्ञ है, ऐसा समझकर राजा दुर्योधन उसका भी भक्त बना रहा ॥ २५½ ॥

यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु संजय ॥ २६ ॥
अश्रौषं निहतान् पुत्रान् नित्यमेव विनिर्जितान्।
न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ॥ २७ ॥
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवं तु बलवत्तरम्।

संजय ! इस प्रकार वर्तमान महान् युद्धोंमें जो मैं प्रतिदिन ही अपने कुछ पुत्रोंको मारा गया और कुछको पराजित हुआ सुनता आ रहा हूँ, इससे मुझे यह विश्वास हो गया है कि समराङ्गणमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो पाण्डवोंको रोक सके। जैसे लोग स्त्रियोंके बीचमें निर्भय प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव मेरी सेनामें बेखटके घुस जाते हैं। अवश्य इस विषयमें दैव ही अत्यन्त प्रबल है ॥ २६-२७½ ॥

संजय उवाच

राजन् पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥ २८ ॥
अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें आपने जो द्यूतक्रीडा आदि धर्मसङ्गत कारण उपस्थित किये थे, उन्हें याद तो कीजिये। जो मनुष्य बीती हुई बातके लिये पीछे चिन्ता करता है, उसका वह कार्य तो सिद्ध होता नहीं, केवल चिन्ता करनेसे वह स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता।
न कृतं यत् त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥ ३० ॥

पाण्डवोंके राज्यके अपहरणरूपी इस कार्यमें सफलता मिलनी आपके लिये दूरकी बात थी। यह जानते हुए भी आपने पहले इस बातका विचार नहीं किया कि यह उचित है या अनुचित ॥ ३० ॥

उक्तोऽसि बहुधा राजन् मा युध्यस्वेति पाण्डवैः।
गृह्णीषे न च तन्मोहाद् वचनं च विशाम्पते ॥ ३१ ॥

राजन्! पाण्डवोंने तो आपसे बारंबार कहा था कि 'आप युद्ध न छेड़िये।' किंतु प्रजानाथ! आपने मोहवश उनकी बात नहीं मानी ॥ ३१ ॥

त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ ३२ ॥

आपने पाण्डवोंपर भयंकर अत्याचार किये हैं। आपके ही कारण राजाओंद्वारा यह घोर नरसंहार हो रहा है ॥ ३२ ॥

तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ।
शृणु सर्वं यथावृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ! वह बात तो अब बीत गयी। उसके लिये शोक न करें। युद्धका सारा वृत्तान्त यथावत् रूपसे सुनें। मैं उस भयंकर विनाशका वर्णन करता हूँ ॥ ३३ ॥

प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

जब रात बीती और प्रातःकाल हो गया, तब महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधनके पास आया और उससे मिलकर इस प्रकार बोला ॥ ३४ ॥

कर्ण उवाच

अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३५ ॥

कर्णने कहा—राजन्! आज मैं यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ संग्राम करूँगा। या तो मैं ही उस वीरको मार डालूँगा या वही मेरा वध कर डालेगा ॥ ३५ ॥

बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत।
नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३६ ॥

भरतवंशी नरेश! मेरे तथा अर्जुनके सामने बहुत-से कार्य आते गये; इसीलिये अबतक मेरा और उनका द्वैरथ युद्ध न हो सका ॥ ३६ ॥

इदं तु मे यथाप्राज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ! भरतनन्दन! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके यह जो बात कह रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। आज मैं रणभूमिमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटूँगा ॥ ३७ ॥

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन् मयि चावस्थिते युधि।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥ ३८ ॥

हमारी इस सेनाके प्रमुख वीर मारे गये हैं। अतः मैं युद्धमें जब इस सेनाके भीतर खड़ा होऊँगा, उस समय अर्जुन मुझे इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे वञ्चित जानकर अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे ॥ ३८ ॥

ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥ ३९ ॥

जनेश्वर! अब जो यहाँ हितकर बात है, उसे सुनिये। मेरे तथा अर्जुनके पास भी दिव्यास्त्रोंका समान बल है ॥ ३९ ॥

कायस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४० ॥

हाथी आदिके विशाल शरीरका भेदन करने, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाने, दूरका लक्ष्य वेधने, सुन्दर रीतिसे युद्ध करने तथा दिव्यास्त्रोंके प्रयोगमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरे समान नहीं हैं ॥ ४० ॥

प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत।
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४१ ॥

भारत! शारीरिक बल, शौर्य, अस्त्रविज्ञान, पराक्रम तथा शत्रुओंपर विजय पानेके उपायको ढूँढ़ निकालनेमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरी समानता नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥

सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

मेरे धनुषका नाम विजय है। यह समस्त आयुधोंमें श्रेष्ठ है। इसे इन्द्रका प्रिय चाहनेवाले विश्वकर्माने उन्हींके लिये बनाया था ॥ ४२ ॥

येन दैत्यगणान् राजञ्जितवान् वै शतक्रतुः।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥ ४३ ॥
तद् भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम्।
तद् दिव्यं भार्गवो मह्यमददाद् धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥

राजन्! इन्द्रने जिसके द्वारा दैत्योंको जीता था, जिसकी टङ्कारसे दैत्योंको दसों दिशाओंके पहचाननेमें भ्रम हो जाता था, उसी अपने परम प्रिय दिव्य धनुषको इन्द्रने परशुरामजीको दिया था और परशुरामजीने वह दिव्य उत्तम धनुष मुझे दे दिया है ॥ ४३-४४ ॥

तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम्।
यथेन्द्रः समरे सर्वान् दैतेयान् वै समागतान् ॥ ४५ ॥

उसी धनुषके द्वारा मैं विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। ठीक वैसे ही, जैसे समराङ्गणमें आये हुए समस्त दैत्योंके साथ इन्द्रने युद्ध किया था ॥ ४५ ॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात् तद् विशिष्यते।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥ ४६ ॥

परशुरामजीका दिया हुआ वह घोर धनुष गाण्डीवसे श्रेष्ठ है। यह वही धनुष है, जिसके द्वारा परशुरामजीने पृथ्वीपर इक्कीस बार विजय पायी थी ॥ ४६ ॥

धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः।
तद् रामो ह्यददान्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥

स्वयं भृगुनन्दन परशुरामने ही मुझे उस धनुषके दिव्य

कर्म बताये हैं और उसे उन्होंने मुझे अर्पित कर दिया है; उसी धनुषके द्वारा मैं पाण्डुकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा॥

अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम्।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम्॥ ४८॥

दुर्योधन! आज मैं समरभूमिमें विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुनका वध करके बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें आनन्दित करूँगा॥ ४८॥

सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव॥ ४९॥

भूपाल! आज उस वीरके मारे जानेपर पर्वत, वन, द्वीप और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंकी परम्परामें प्रतिष्ठित हो जायगी॥ ४९॥

नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा॥ ५०॥

जैसे उत्तम धर्ममें अनुरक्त हुए मनस्वी पुरुषके लिये सिद्धि दुर्लभ नहीं है, उसी प्रकार आज विशेषतः तुम्हारा प्रिय करनेके हेतु मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है॥ ५०॥

न हि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात्॥ ५१॥

जैसे वृक्ष अग्निका आक्रमण नहीं सह सकता, उसी प्रकार अर्जुनमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मेरा वेग सह सकें; परंतु जिस बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह भी मुझे अवश्य ही बता देना उचित है॥ ५१॥

ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी।
सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते॥ ५२॥

उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा दिव्य है। उनके पास दो बड़े-बड़े दिव्य तरकस हैं, जो कभी खाली नहीं होते तथा उनके सारथि श्रीकृष्ण हैं, ये सब मेरे पास वैसे नहीं हैं॥ ५२॥

तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि।
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम्॥ ५३॥

यदि उनके पास युद्धमें अजेय, श्रेष्ठ, दिव्य गाण्डीव धनुष है तो मेरे पास भी विजय नामक महान् दिव्य एवं उत्तम धनुष मौजूद है॥ ५३॥

तत्राहमधिकः पार्थाद् धनुषा तेन पार्थिव।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे॥ ५४॥

राजन्! धनुषकी दृष्टिसे तो मैं ही अर्जुनसे बढ़ा-चढ़ा हूँ; परंतु वीर पाण्डुकुमार अर्जुन जिसके कारण मुझसे बढ़ जाते हैं, वह भी सुन लो॥ ५४॥

रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः॥ ५५॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान् वानरो विस्मयंकरः॥ ५६॥

सर्वलोकवन्दित, दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण उनके घोड़ोंकी रास सँभालते हैं। वीर! उनके पास अग्निका दिया हुआ सुवर्णभूषित दिव्य रथ है, जिसे किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। उनके घोड़े भी मनके समान वेगशाली हैं। उनका तेजस्वी ध्वज दिव्य है, जिसके ऊपर सबको आश्चर्यमें डालनेवाला वानर बैठा रहता है॥ ५५-५६॥

कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम्॥ ५७॥

श्रीकृष्ण जगत्के स्रष्टा हैं। वे अर्जुनके उस रथकी रक्षा करते हैं। इन्हीं वस्तुओंसे हीन होकर मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनसे युद्धकी इच्छा रखता हूँ॥ ५७॥

अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत्॥ ५८॥

अवश्य ही, ये युद्धमें शोभा पानेवाले राजा शल्य श्रीकृष्णके समान हैं, यदि ये मेरे सारथिका कार्य कर सकें तो तुम्हारी विजय निश्चित है॥ ५८॥

तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः।
नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे॥ ५९॥

शत्रुओंसे सुगमतापूर्वक जीते न जा सकनेवाले राजा शल्य मेरे सारथि हो जायँ और बहुत-से छकड़े मेरे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाते रहें॥ ५९॥

रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः।
आयान्तु पश्चात् सततं मामेव भरतर्षभ॥ ६०॥

राजेन्द्र! भरतश्रेष्ठ! उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए अच्छे-अच्छे रथ सदा मेरे पीछे चलते रहें॥ ६०॥

एवमभ्यधिकः पार्थाद् भविष्यामि गुणैरहम्।
शल्योऽप्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम्॥ ६१॥

ऐसी व्यवस्था होनेपर मैं गुणोंमें पार्थसे बढ़ जाऊँगा। शल्य भी श्रीकृष्णसे बढ़े-चढ़े हैं और मैं भी अर्जुनसे श्रेष्ठ हूँ॥

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा।
तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः॥ ६२॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दशार्हवंशी श्रीकृष्ण अश्वविद्याके रहस्यको जिस प्रकार जानते हैं, उसी प्रकार महारथी शल्य भी अश्वविज्ञानके विशेषज्ञ हैं॥ ६२॥

बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन।
तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः॥ ६३॥

बाहुबलमें मद्रराज शल्यकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। उसी प्रकार अस्त्रविद्यामें मेरे समान कोई भी धनुर्धर नहीं है॥ ६३॥

तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन।
सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद् भविष्यति रथो मम॥ ६४॥

अश्वविज्ञानमें भी शल्यके समान कोई नहीं है। शल्यके

सारथि होनेपर मेरा यह रथ अर्जुनके रथसे बढ़ जायगा ॥

एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात्।
भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥ ६५ ॥
समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः।

ऐसी व्यवस्था कर लेनेपर जब मैं रथमें बैठूँगा, उस समय सभी गुणोंद्वारा अर्जुनसे बढ़ जाऊँगा। कुरुश्रेष्ठ! फिर तो मैं युद्धमें अर्जुनको अवश्य जीत लूँगा। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे ॥ ६५½ ॥

एतत् कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप ॥ ६६ ॥
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्।

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! मैं चाहता हूँ कि आपके द्वारा यही व्यवस्था हो जाय। मेरा यह मनोरथ पूर्ण किया जाय। अब आपलोगोंका यह समय व्यर्थ नहीं बीतना चाहिये ॥ ६६½ ॥

एवं कृते कृतं साह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ६७ ॥
ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत् करिष्यामि भारत।
सर्वथा पाण्डवान् संख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥ ६८ ॥

ऐसा करनेपर मेरी सम्पूर्ण इच्छाओंके अनुसार सहायता सम्पन्न हो जायगी। भारत! उस समय मैं संग्राममें जो कुछ करूँगा, उसे तुम स्वयं देख लोगे। युद्धस्थलमें आये हुए समस्त पाण्डवोंको निश्चय ही मैं सब प्रकारसे जीत लूँगा ॥

न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः।
किमु पाण्डुसुता राजन् रणे मानुषयोनयः ॥ ६९ ॥

राजन्! समराङ्गणमें देवता और असुर भी मेरा सामना नहीं कर सकते, फिर मनुष्य-योनिमें उत्पन्न हुए पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं ॥ ६९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना।
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥ ७० ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णके ऐसाकहनेपर आपके पुत्र दुर्योधनका मन प्रसन्न हो गया। फिर उसने राधापुत्र कर्णका पूर्णतः सम्मान करके उससे कहा ॥

दुर्योधन उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण! जैसा तुम ठीक समझते हो उसीके अनुसार यह सारा कार्य मैं करूँगा। युद्धस्थलमें अनेक तरकसोंसे भरे हुए बहुत-से अश्वयुक्त रथ तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे ॥ ७१ ॥

नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ७२ ॥

कई छकड़े तुम्हारे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाया करेंगे। कर्ण! हमलोग तथा समस्त भूपालगण तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥ ७२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान्।
अभिगम्याब्रवीद् राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! ऐसा कहकर आपके प्रतापी पुत्र राजा दुर्योधनने मद्रराज शल्यके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और दुर्योधनका संवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना और शल्यका इस विषयमें घोर विरोध करना, पुनः श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसे स्वीकार कर लेना

संजय उवाच

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम्।
विनयेनोपसंगम्य प्रणयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! आपका पुत्र दुर्योधन मद्रराज महारथी शल्यके पास विनीतभावसे जाकर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयंकर ॥ २ ॥
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम् ॥ ३ ॥

'महाभाग! सत्यव्रत! शत्रुओंका संताप बढ़ानेवाले मद्रराज! रणवीर! शत्रुसैन्यभयंकर! वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने कर्णकी बात सुनी है। उसीके अनुसार इन राजसिंहोंके बीचमें मैं स्वयं आपका वरण करता हूँ ॥ २-३ ॥

तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४ ॥
तस्मात् पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

'शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले, अनुपम शक्तिशाली, रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज! मैं मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक आपसे



दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना

यह याचना करता हूँ कि आप अर्जुनके विनाश और मेरे हितके लिये प्रेमपूर्वक कर्णका सारथ्य कीजिये ॥ ४-५ ॥

त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥ ६ ॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि।

'आपके सारथि होनेपर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओंको जीत लेगा। कर्णके रथकी बागडोर पकड़नेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। महाभाग! आप युद्धमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके समान हैं ॥ ६½ ॥

स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥ ७ ॥
यथा च सर्वथाऽऽपत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम्।
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८ ॥

'जैसे ब्रह्माजीने सारथि बनकर महादेवजीकी रक्षा की थी और जैसे सब प्रकारकी आपत्तियोंसे श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये। मद्रराज! आज आप राधापुत्रका प्रतिपालन कीजिये ॥ ७-८ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान् भोजश्च वीर्यवान्।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥ ९ ॥

'भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, आप, पराक्रमी कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, द्रोणकुमार अश्वत्थामा और मैं—ये ही हमारे बल हैं ॥ ९ ॥

एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते।
न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शात्रवः।

'पृथ्वीपते! इस प्रकार मेरी सेनाके ये नौ भाग किये गये थे। अब यहाँ भीष्म तथा महात्मा द्रोणाचार्यका भाग नहीं रह गया है। उन दोनोंने उनके लिये निधारित भागोंसे और आगे बढ़कर मेरे शत्रुओंका संहार किया है ॥ १०½ ॥

वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि ॥ ११ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ।
तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥ १२ ॥

'वे दोनों महाधनुर्धर योद्धा बूढ़े हो गये थे, इसलिये युद्धमें शत्रुओंद्वारा छलपूर्वक मारे गये। अनघ! वे दुष्कर कर्म करके यहाँसे स्वर्गलोकमें चले गये। इसी प्रकार दूसरे पुरुषसिंह वीर भी युद्धमें शत्रुओंद्वारा मारे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे।
त्यक्त्वा प्राणान् यथाशक्ति चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् १३

'मेरे पक्षके बहुत-से योद्धा विजयके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करके रणभूमिमें प्राण त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ १३ ॥

तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥ १४ ॥

'नरेश्वर! इस प्रकार मेरी इस सेनाका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है। पहले भी जब अपनी सारी सेना मौजूद थी, अल्पसंख्यक कुन्तीकुमारोंने कौरवसेनाका नाश कर दिया था। फिर इस समय तो कहना ही क्या है? ॥ १४ ॥

बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः।
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत् कुरु पार्थिव ॥ १५ ॥

'भूपाल! बलवान्, महामनस्वी और सत्यपराक्रमी कुन्तीकुमार मेरी शेष सेनाको जिस तरह भी नष्ट न कर सकें, ऐसा उपाय कीजिये ॥ १५ ॥

हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥ १६ ॥

'प्रभो! पाण्डवोंने समराङ्गणमें मेरी सेनाके प्रमुख वीरोंको मार डाला है। एक महाबाहु कर्ण ही ऐसा है, जो हमारे प्रिय एवं हितसाधनमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥

भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥ १७ ॥

'पुरुषसिंह शल्य! दूसरे आप भी सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात महारथी होकर हमारे हितसाधनमें संलग्न हैं। आज कर्ण रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ १७ ॥

तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप।
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥ १८ ॥

'मद्रराज! नरेश्वर! उसके मनमें विजयकी बड़ी भारी आशा है, परंतु उसके घोड़ोंकी रास पकड़नेवाला (आपके समान) दूसरा कोई इस भूतलपर नहीं है ॥ १८ ॥

पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥ १९ ॥

'जैसे संग्रामभूमिमें अर्जुनके रथकी बागडोर सँभालनेवाले श्रेष्ठ सारथि श्रीकृष्ण हैं, उसी प्रकार आप भी कर्णके रथपर बैठकर उसकी बागडोर अपने हाथमें लीजिये ॥ १९ ॥

तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥ २० ॥

'राजन्! श्रीकृष्णसे संयुक्त एवं सुरक्षित होकर पार्थ रणभूमिमें जो-जो कर्म करते हैं, वे सब आपकी आँखोंके सामने हैं ॥ २० ॥

पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून्।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥ २१ ॥

'पहले युद्धमें अर्जुन इस प्रकार शत्रुओंका वध नहीं

करते थे। इस समय श्रीकृष्णके साथ होनेसे ही इनका पराक्रम बढ़ गया है ॥ २१ ॥

कृष्णेन सहितः पार्थो धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि ॥ २२ ॥

'मद्रराज ! श्रीकृष्णके साथ अर्जुन प्रतिदिन हमारी विशाल सेनाको युद्धभूमिमें खदेड़ते देखे जाते हैं ॥ २२ ॥

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३ ॥

'महातेजस्वी नरेश ! अब कर्णका और आपका भाग शेष रह गया है। अतः आप कर्णके साथ रहकर शत्रुसेनाके उस भागको एक साथ ही नष्ट कर दीजिये ॥ २३ ॥

अरुणेन यथा सार्धं तमः सूर्यो व्यपोहति।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥ २४ ॥

'जैसे अरुणके साथ सूर्य अन्धकारका नाश करते हैं, उसी प्रकार आप महासमरमें कर्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुनका वध कीजिये ॥ २४ ॥

उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥ २५ ॥

'प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य तेजस्वी कर्ण और शल्यको उदित होते हुए दो सूर्योंके समान रणभूमिमें देखकर शत्रुसेनाके महारथी भाग जायँ ॥ २५ ॥

सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृंजयाः ॥ २६ ॥

'मान्यवर ! जैसे सूर्य और अरुणको देखते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आप दोनोंको देखकर कुन्तीके पुत्र, पाञ्चाल और सृंजय नष्ट हो जायँ ॥ २६ ॥

रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान्।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २७ ॥

'कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और आप सारथियोंके शिरोमणि हैं। संसारमें आप दोनोंका संयोग जो आज बन गया है, न तो कभी हुआ था और न आगे कभी होगा ॥ २७ ॥

यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम्।
तथा भवान् परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ २८ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण सभी अवस्थाओंमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप रणभूमिमें वैकर्तन कर्णकी रक्षा करें ॥ २८ ॥

(सारथ्यं क्रियतां तस्य युध्यमानस्य संयुगे।)
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशंकीर्वचो मम ॥ २९ ॥

'युद्धस्थलमें युद्ध करते समय कर्णके सारथिका कार्य सँभालिये। राजन् ! आपके सारथि होनेसे यह कर्ण रणभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है। आप मेरे इस कथनमें संदेह न कीजिये' ॥ २९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनकी बात सुनकर शल्यको बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके बारंबार हाथ हिलाने लगे ॥ ३० ॥

क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥

महाबाहु शल्यको अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बलका बड़ा अभिमान था। वे क्रोधसे लाल हुए विशाल नेत्रोंको घुमाकर इस प्रकार बोले ॥ ३१ ॥

शल्य उवाच

अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ ३२ ॥

शल्यने कहा—गान्धारीपुत्र ! तुम मेरा अपमान कर रहे हो, निश्चय ही तुम्हारे मनमें मेरे प्रति संदेह है, तभी तुम निर्भय होकर कह रहे हो कि आप 'सारथिका कार्य कीजिये' ॥

अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥ ३३ ॥

तुम कर्णको मुझसे श्रेष्ठ मानकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हो; परंतु युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको मैं अपने समान नहीं गिनता हूँ ॥ ३३ ॥

आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३४ ॥

राजन् ! तुम शत्रुसेनाके अधिक-से-अधिक भागको मेरे हिस्सेमें दे दो, मैं उसे जीतकर जैसे आया हूँ, वैसे लौट जाऊँगा॥

अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ ३५ ॥

अथवा कुरुनन्दन ! आज मैं अकेला ही युद्ध करूँगा। तुम संग्राममें शत्रुओंको दग्ध करते हुए मेरे पराक्रमको देख लेना॥

न चापि कामान् कौरव्य निधाय हृदये पुमान्।
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः ॥ ३६ ॥

कौरव्य ! मेरे-जैसा पुरुष अपने मनमें कुछ कामनाएँ

रखकर युद्धमें प्रवृत्त नहीं होता । अतः तुम मुझपर संदेह न करो ॥ ३६ ॥

युधि वाप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथञ्चन ।
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननौ दृढौ ॥ ३७ ॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् ।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥ ३८ ॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ।

तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार मेरा अपमान नहीं करना चाहिये । तुम मेरी मोटी और वज्रके समान गँठीली इन सुदृढ़ भुजाओंको तो देखो । मेरे इस विचित्र धनुष और विषधर सर्पके समान इन विषैले बाणोंकी ओर तो दृष्टिपात करो । गान्धारीकुमार ! वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए मेरे इस सजे-सजाये रथ और सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई गदापर भी तो दृष्टि डालो ॥ ३७-३८½ ॥

दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥ ३९ ॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ।

राजन् ! मैं सारी पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ, पर्वतोंको तोड़-फोड़कर बिखेर सकता हूँ और अपने तेजसे समुद्रोंको भी सुखा सकता हूँ ॥ ३९½ ॥

तं मामेवंविधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४० ॥
कस्माद् युनक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ।

नरेश्वर ! इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्र कर्णके सारथिके कामपर कैसे नियुक्त कर रहे हो ? ॥ ४०½ ॥

न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४१ ॥
न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ।

राजेन्द्र ! तुम्हें मुझे नीचकर्ममें नहीं लगाना चाहिये । मैं श्रेष्ठ होकर अत्यन्त नीच पापी पुरुषकी दासता नहीं कर सकता ॥ ४१½ ॥

यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ॥ ४२ ॥
वशे पापीयसो धत्ते तत् पापमधरोत्तरम् ।

जो पुरुष प्रेमवश अपने पास आकर अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाले किसी श्रेष्ठतम पुरुषको नीचतम मनुष्यके अधीन कर देता है, उसे उच्चको नीच और नीचको उच्च करनेका महान् पाप लगता है ॥ ४२½ ॥

ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात् क्षत्रं च बाहुतः ४३
ऊरुभ्यामसृजद् वैश्याञ्छूद्रान् पद्भ्यामिति श्रुतिः ।

ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको अपने मुखसे, क्षत्रियोंको भुजाओंसे, वैश्योंको जाँघोंसे और शूद्रोंको पैरोंसे उत्पन्न किया है, ऐसा श्रुतिका मत है ॥ ४३½ ॥

तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ४४ ॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।

भारत ! इन्हींसे अनुलोम और विलोम क्रमसे विभिन्न वर्णोंकी उत्पत्ति होती है । चारों वर्णोंके पारस्परिक संयोगसे अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥ ४४½ ॥

गोप्तारः संग्रहीतारो दातारः क्षत्रियाःस्मृताः ॥ ४५ ॥
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि ॥ ४६ ॥

इनमें क्षत्रिय-जातिके लोग सबकी रक्षा करनेवाले, सबसे कर लेनेवाले और दान देनेवाले बताये गये हैं । ब्राह्मण यज्ञ कराने, वेद पढ़ाने और विशुद्ध दान ग्रहण करनेके द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इस भूतलपर ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित किये गये हैं ॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ४७ ॥

कृषि, पशुपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्योंका कर्म है तथा शूद्रलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके काममें नियुक्त किये गये हैं ॥ ४७ ॥

ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ४८ ॥

सूतजातिके लोग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके सेवक नियुक्त किये गये हैं, क्षत्रिय सूतोंका सेवक हो, यह कोई किसी प्रकार कहीं नहीं सुन सकता ॥ ४८ ॥

अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनाम् ॥ ४९ ॥

मैं राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ मूर्द्धाभिषिक्त नरेश हूँ, विश्वविख्यात महारथी हूँ, सूतोंद्वारा सेव्य और वन्दीजनोंद्वारा स्तुतिके योग्य हूँ ॥ ४९ ॥

सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ५० ॥

ऐसा प्रतिष्ठित एवं शत्रुसेनाका संहार करनेमें समर्थ होकर मैं यहाँ युद्धस्थलमें एक सूतपुत्रके सारथिका कार्य कदापि नहीं कर सकता ॥ ५० ॥

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन ।
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥ ५१ ॥

गान्धारीनन्दन ! आज इस अपमानको पाकर अब मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा । अतः तुमसे आज्ञा चाहता हूँ । आज ही अपने घरको लौट जाऊँगा ॥ ५१ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः ।

उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ५२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसा कहकर युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य अमर्षमें भर गये और राजाओंके बीचसे उठकर तुरंत चल दिये ॥ ५२ ॥

प्रणयाद् बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ५३ ॥

तब आपके पुत्रने बड़े प्रेम और आदरसे उन्हें रोका



तथा सान्त्वनापूर्ण मधुर स्वरमें उनसे यह सर्वार्थसाधक वचन कहा—॥ ५३ ॥

यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर ॥ ५४ ॥

'महाराज शल्य ! आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं ऐसी ही बात है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । मेरा कोई और ही अभिप्राय है, उसे ध्यान देकर सुनिये ॥ ५४ ॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव ।
न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद् यदनृतं भवेत् ॥ ५५ ॥

'भूपाल ! न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ है और न आपके प्रति मैं संदेह ही करता हूँ । मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते, जो उनकी सत्य प्रतिज्ञाके विपरीत हो ॥

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ५६ ॥

'आपके पूर्वज श्रेष्ठ पुरुष थे और सदा सत्य ही बोला करते थे, इसीलिये आप 'आर्तायनि' कहलाते हैं; मेरी ऐसी ही धारणा है ॥ ५६ ॥

शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥ ५७ ॥

'मानद ! आप युद्धस्थलमें शत्रुओंके लिये शल्य (काँटे) के समान हैं, इसीलिये इस भूतलपर आपका शल्य नाम विख्यात है ॥ ५७ ॥

यदेतद् व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थे यद् यदुच्यते ॥ ५८ ॥

'यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाले धर्मज्ञ नरेश्वर ! आपने पहले यह जो कुछ कहा है और इस समय जो कुछ कह रहे हैं, उसीको मेरे लिये पूर्ण करें ॥ ५८ ॥

न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥ ५९ ॥

'आपकी अपेक्षा न तो राधापुत्र कर्ण बलवान् है और न मैं ही । आप उत्तम अश्वोंके सर्वश्रेष्ठ संचालक (अश्वविद्याके सर्वोत्तम ज्ञाता) हैं, इसलिये इस युद्धस्थलमें आपका वरण कर रहा हूँ ॥ ५९ ॥

मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनंजयात् ।
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥ ६० ॥

'शल्य ! मैं कर्णको अर्जुनसे अधिक गुणवान् मानता हूँ और यह सारा जगत् आपको वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ मानता है ॥ ६० ॥

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥ ६१ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कर्ण तो अर्जुनसे केवल अस्त्र-ज्ञानमें ही बढ़ा-चढ़ा है, परंतु आप श्रीकृष्णसे अश्वविद्या और बल दोनोंमें बड़े हैं ॥

यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥ ६२ ॥

'मद्रराजकुमार ! महामनस्वी श्रीकृष्ण जिस प्रकार अश्व-विद्याका रहस्य जानते हैं, वैसा ही, बल्कि उससे भी दूना आप जानते हैं' ॥ ६२ ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ६३ ॥

शल्यने कहा—कौरव ! गान्धारीपुत्र ! तुम सारी सेनाके बीचमें जो मुझे देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६३ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ६४ ॥

वीर ! जैसा तुम चाहते हो उसके अनुसार मैं पाण्डव-शिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते हुए यशस्वी कर्णका सारथिकर्म अब स्वीकार किये लेता हूँ ॥ ६४ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ६५ ॥

परंतु वीरवर ! कर्णके साथ मेरी एक शर्त रहेगी । 'मैं इसके समीप, जैसी मेरी इच्छा हो, वैसी बातें कर सकता हूँ' ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६ ॥

संजयने कहा—भारत ! भरतभूषण नरेश ! इसपर कर्णसहित आपके पुत्रने 'बहुत अच्छा' कहकर शल्यकी शर्त स्वीकार कर ली ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यका सारथिकर्मविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यसे त्रिपुरोंकी उत्पत्तिका वर्णन, त्रिपुरोंसे भयभीत इन्द्र आदि देवताओंका ब्रह्माजीके साथ भगवान् शङ्करके पास जाकर उनकी स्तुति करना

दुर्योधन उवाच

भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरावृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १ ॥
यदुक्तवान् पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥ २ ॥
निबोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा ।

दुर्योधन बोला—मद्रराज ! मैं पुनः आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनिये । प्रभो ! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर जो घटना घटित हुई थी तथा जिसे महर्षि मार्कण्डेय-ने मेरे पिताजीको सुनाया था, वह सब मैं पूर्णरूपसे बता रहा हूँ । राजर्षिप्रवर ! आप मन लगाकर इसे सुनिये, इसके विषयमें आपको कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥

देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥ ३ ॥
बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः ।

राजन् ! देवताओं और असुरोंमें परस्पर विजय पानेकी इच्छासे सर्वप्रथम तारकामय संग्राम हुआ था ॥ ३½ ॥

निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ५ ॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।

उस समय देवताओंने दैत्योंको परास्त कर दिया था, यह हमारे सुननेमें आया है । राजन् ! दैत्योंके परास्त हो जाने-पर तारकासुरके तीन पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली उग्र तपस्याका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करने लगे ॥

तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान् शत्रुतापन ॥ ६ ॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! उन तीनोंने तपस्याके द्वारा अपने शरीरोंको सुखा दिया । वे इन्द्रिय-संयम, तप, नियम और समाधिसे संयुक्त रहने लगे ॥ ६½ ॥

तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥ ७ ॥
अवध्यत्वं च ते राजन् सर्वभूतस्य सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥ ८ ॥

राजन् ! उनपर प्रसन्न होकर वरदायक भगवान् ब्रह्मा उन्हें वर देनेको उद्यत हुए । उस समय उन तीनोंने एक साथ होकर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मासे यह वर माँगा कि 'हम सदा सम्पूर्ण भूतोंसे अवध्य हों' ॥ ७-८ ॥

तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः ॥ ९ ॥
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते ।

तब लोकनाथ भगवान् ब्रह्माने उनसे कहा—'असुरो ! सबके लिये अमरत्व सम्भव नहीं है । तुम इस तपस्यासे निवृत्त हो जाओ और दूसरा कोई वर जैसा तुम्हें रुचे माँग लो' ॥९½॥

ततस्ते सहिता राजन् सम्प्रधार्यासकृत् प्रभुम् ॥ १० ॥
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन् ।

राजन् ! तब उन सबने एक साथ बारंबार विचार करके सर्वलोकेश्वर भगवान् ब्रह्माको शीश नवाकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ १०½ ॥

अस्मभ्यं त्वं वरं देव सम्प्रयच्छ पितामह ॥ ११ ॥
(वस्तुमिच्छाम नगरं कृत्वा कामगमं शुभम् ।
सर्वकामसमृद्धार्थमवध्यं देवदानवैः ॥
यक्षरक्षोरगगणैर्नानाजातिभिरेव च ।
न कृत्याभिर्न शस्त्रैश्च न शापैर्ब्रह्मवादिनाम् ॥
वध्येत त्रिपुरं देव प्रसन्ने त्वयि सादरम् ॥

'पितामह ! देव ! हम सबको आप वर प्रदान कीजिये । हमलोग इच्छानुसार चलनेवाला नगराकार सुन्दर विमान बनाकर उसमें निवास करना चाहते हैं । हमारा वह पुर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंसे सम्पन्न तथा देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो । देव ! आपके सादर प्रसन्न होनेसे हमारे तीनों पुर यक्ष, राक्षस, नाग तथा नाना जातिके अन्य प्राणियोंद्वारा भी विनष्ट न हों । उन्हें न तो कृत्याएँ नष्ट कर सकें, न शस्त्र छिन्न-भिन्न कर सकें और न ब्रह्मवादियोंके शापोंद्वारा ही इनका विनाश हो' ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

विलयः समयस्यान्ते मरणं जीवितस्य च ।
इति वित्त वधोपायं कञ्चिदेव निशाम्यत ॥)

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यो ! समय पूरा होनेपर सबका लय होता है। जो आज जीवित है, उसकी भी एक दिन मृत्यु होती है। इस बातको अच्छी तरह समझ लो और इन तीनों पुरोंके वधका कोई निमित्त कह सुनाओ।

दैत्या ऊचुः

वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम्।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः॥ १२॥

दैत्य बोले—भगवन्! हम तीनों पुरोंमें ही रहकर इस पृथ्वीपर एवं इस जगत्‌में आपके कृपा-प्रसादसे विचरेंगे॥ १२॥

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम्।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ॥ १३॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद् भगवंस्तदा।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति॥ १४॥

अनघ! तदनन्तर एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर हमलोग एक दूसरेसे मिलेंगे। भगवन्! ये तीनों पुर जब एकत्र होकर एकीभावको प्राप्त हो जायँ, उस समय जो एक ही बाणसे इन तीनों पुरोंको नष्ट कर सके, वही देवेश्वर हमारी मृत्युका कारण होगा॥ १३-१४॥

एवमस्त्विति तान् देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद् दिवम्।
ते तु लब्धवराः प्रीताः सम्प्रधार्य परस्परम्॥ १५॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम्।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम्॥ १६॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। वरदान पाकर वे तीनों असुर बड़े प्रसन्न हुए और परस्पर विचार करके उन्होंने दैत्य-दानव-पूजित, अजर-अमर विश्वकर्मा महान् असुर मयका तीन पुरोंके निर्माणके लिये वरण किया॥ १५-१६॥

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान् पुराणि च।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा॥ १७॥

तब बुद्धिमान् मयासुरने अपनी तपस्याद्वारा तीन पुरोंका निर्माण किया। उनमेंसे एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा पुर लोहेका बना था॥ १७॥

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम्।
आयसं चाभवद् भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते॥ १८॥

पृथ्वीपते! सोनेका बना हुआ पुर स्वर्गलोकमें स्थित हुआ। चाँदीका अन्तरिक्षलोकमें और लोहेका भूलोकमें स्थित हुआ; जो आज्ञाके अनुसार सर्वत्र विचरनेवाला था॥ १८॥

एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम्।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम्॥ १९॥

प्रत्येक नगरकी लंबाई-चौड़ाई बराबर-बराबर सौ योजनकी थी। सबमें बड़े-बड़े महल और अट्टालिकाएँ थीं। अनेकानेक प्राकार (परकोटे) और तोरण (फाटक) सुशोभित थे॥ १९॥

गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम्।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम्॥ २०॥

बड़े-बड़े घरोंसे वह नगर भरा था। उसकी विशाल सड़कें संकीर्णतासे रहित एवं विस्तृत थीं। नाना प्रकारके प्रासाद और द्वार उन पुरोंकी शोभा बढ़ाते थे॥ २०॥

पुरेषु चाभवन् राजन् राजानो वै पृथक्-पृथक्।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः॥ २१॥

राजन्! उन तीनों पुरोंके राजा अलग-अलग थे। सुवर्णमय विचित्र पुर महामना तारकाक्षके अधिकारमें था॥ २१॥

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम्।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा॥ २२॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः।

चाँदीका बना हुआ पुर कमलाक्षके और लोहेका विद्युन्मालीके अधिकारमें था। वे तीनों दैत्यराज अपने अस्त्रोंके तेजसे तीनों लोकोंको दबाकर रहते और कहते थे कि 'प्रजापति कौन है?'॥ २२½॥

तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च॥ २३॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः।

उन दानवशिरोमणियोंके पास लाखों, करोड़ों और अरबों अप्रतिम वीर दैत्य इधर-उधरसे आ गये थे॥ २३½॥

मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा॥ २४॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः।

वे सब-के-सब मांसभक्षी और अत्यन्त अभिमानी थे। पूर्वकालमें देवताओंने उनके साथ बहुत छल-कपट किया था। अतः वे महान् ऐश्वर्यकी इच्छा रखते हुए त्रिपुर-दुर्गके आश्रयमें आये थे॥ २४½॥

सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः॥ २५॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः।

मयासुर इन सबको सब प्रकारकी अप्राप्त वस्तुएँ प्राप्त कराता था। उसका आश्रय लेकर वे सम्पूर्ण दैत्य निर्भय होकर रहते थे॥ २५½॥

यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः॥ २६॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा।

उक्त तीनों पुरोंमें निवास करनेवाला जो भी असुर अपने मनसे जिस अभीष्ट भोगका चिन्तन करता था, उसके लिये मयासुर अपनी मायासे वह-वह भोग तत्काल प्रस्तुत कर देता था॥ २६½॥

तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः॥ २७॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत् पितामहः।

तारकाक्षका महाबली वीर पुत्र 'हरि' नामसे प्रसिद्ध था, उसने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हो गये॥ २७½॥

संतुष्टमवृणोद् देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ।

संतुष्ट हुए ब्रह्माजीसे उसने यह वर माँगा कि 'हमारे पुरोंमें एक-एक ऐसी बावड़ी हो जाय, जिसके भीतर डाल दिये जानेपर शस्त्रोंके आघातसे मरे हुए दैत्य वीर और भी प्रबल होकर जीवित हो उठें' ॥ २८½ ॥

स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥ २९ ॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो ।

प्रभो ! वह वरदान पाकर तारकाक्षके वीर पुत्र हरिने उन पुरोंमें एक-एक बावड़ीका निर्माण किया, जो मृतकोंको जीवन प्रदान करनेवाली थी ॥ २९½ ॥

येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३० ॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।

जो दैत्य जिस रूप और जैसे वेषमें रहता था, मरनेपर उस बावड़ीमें डालनेके पश्चात् वैसे ही रूप और वेषसे सम्पन्न होकर प्रकट हो जाता था ॥ ३०½ ॥

तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान् सर्वान् बबाधिरे॥३१॥
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद् राजन् क्षयो युद्धे कदाचन ॥ ३२ ॥

उस वापीमें पहुँच जानेपर नया जीवन धारण करके वे दैत्य पुनः उन सभी लोकोंको बाधा पहुँचाने लगते थे। राजन् ! वे महान् तपसे सिद्ध हुए असुर देवताओंका भय बढ़ा रहे थे । युद्धमें कभी उनका विनाश नहीं होता था ॥

ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे स्थापिताः समलूलुपन् ।३३।

उन पुरोंमें बसाये गये सभी दैत्य लोभ और मोहके वशीभूत हो विवेकहीन और निर्लज्ज होकर सब ओर लूटपाट करने लगे ॥ ३३ ॥

विद्राव्य सगणान् देवांस्तत्र तत्र तदा तदा ।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥ ३४ ॥

वरदान पानेके कारण उनका घमंड बढ़ गया था। वे विभिन्न स्थानोंमें देवताओं और उनके गणोंको भगाकर वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार विचरते थे ॥ ३४ ॥

देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम् ।
ऋषीणामाश्रमान् पुण्यान् रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥३५॥
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः ।

स्वर्गवासियोंके परम प्रिय समस्त देवोद्यानों, ऋषियोंके पवित्र आश्रमों तथा रमणीय जनपदोंको भी वे मर्यादाशून्य दुराचारी दानव नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे ॥ ३५½ ॥

(निःस्थानाश्च कृता देवा ऋषयः पितृभिः सह ।
दैत्यैस्त्रिभिस्त्रयो लोका ह्याक्रान्तास्तैः सुरेतरैः ॥)

उन देवविरोधी तीनों दैत्योंने देवताओं, पितरों और ऋषियोंको भी उनके स्थानोंसे हटाकर निराश्रय कर दिया। वे ही नहीं, तीनों लोकोंके निवासी उनके द्वारा पददलित हो रहे थे ॥

पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्‌वृतः ॥ ३६ ॥
पुराण्यायोधयांचक्रे वज्रपातैः समन्ततः ।

जब सम्पूर्ण लोकोंके प्राणी पीडित होने लगे, तब देवताओं-सहित इन्द्र चारों ओरसे वज्रपात करते हुए उन तीनों पुरोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३६½ ॥

नाशकत् तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरंदरः ॥ ३७ ॥
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप ।
तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥ ३८ ॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिंदम ।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३९ ॥

शत्रुदमननरेश्वर ! जब देवराज इन्द्र ब्रह्माजीका वर पाये हुए उन अभेद्य पुरोंका भेदन न कर सके, तब वे भयभीत हो उन पुरोंको छोड़कर उन्हीं देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास उन दैत्योंका अत्याचार बतानेके लिये गये ॥ ३७–३९ ॥

ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः सम्प्रणम्य च ।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ४० ॥

उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम किया और सारी बातें ठीक-ठीक बताकर उनसे उन दैत्योंके वधका उपाय पूछा ॥ ४० ॥

श्रुत्वा तद् भगवान् देवो देवानिदमुवाच ह ।
ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥ ४१ ॥

वह सब सुनकर भगवान् ब्रह्माने उन देवताओंसे इस प्रकार कहा—'देवगण ! जो तुम्हारी बुराई करता है, वह मेरा भी अपराधी है ॥ ४१ ॥

असुरा हि दुरात्मानः सर्व एव सुरद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान् पीडयन्त्युत ॥ ४२ ॥

'वे समस्त देवद्रोही दुरात्मा असुर, जो सदा तुम्हें पीडा देते रहते हैं, निश्चय ही मेरा भी महान् अपराध करते हैं ॥ ४२ ॥

अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥ ४३ ॥

'इसमें संशय नहीं कि समस्त प्राणियोंके प्रति मेरा समान भाव है, तथापि मैंने यह व्रत ले रखा है कि पापात्माओंका वध कर दिया जाय ॥ ४३ ॥

एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा ।
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ॥ ४४ ॥

'वे तीनों पुर एक ही बाणसे बेध दिये जायँ तो नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा नहीं; परंतु महादेवजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो उन तीनोंको एक साथ एक ही बाणसे बेध सके ॥ ४४ ॥

ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान् हन्ता सुरेतरान् ।४५।

'अतः अदितिकुमारो ! तुमलोग अनायास ही महान् कर्म करनेवाले, विजयशील, ईश्वर, महादेवजीका योद्धाके रूपमें वरण करो । वे ही उन दैत्योंको मार सकते हैं' ॥ ४५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६ ॥

उनकी यह बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजीको आगे करके महादेवजीकी शरणमें गये ॥

तपो नियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ४७ ॥

तप और नियमका आश्रय ले ऋषियोंसहित धर्मज्ञ देवता सनातन ब्रह्मस्वरूप महादेवजीकी स्तुति करते हुए सम्पूर्ण हृदयसे उनकी शरणमें गये ॥ ४७ ॥

तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भयेष्वभयदं नृप ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ४८ ॥

नरेश्वर ! जिन्होंने आत्मस्वरूपसे सबको व्याप्त कर रखा है तथा जो भयके अवसरोंपर अभय प्रदान करनेवाले हैं, उन सर्वात्मा, महात्मा भगवान् शिवकी उन देवताओंने अभीष्ट वाणीद्वारा स्तुति की ॥ ४८ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः सांख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा ॥४९॥
तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥ ५० ॥

जो नाना प्रकारकी विशेष तपस्याओंद्वारा मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके निरोधका उपाय जानते हैं, जिन्हें अपनी ज्ञानस्वरूपताका बोध नित्य बना रहता है, जिनका अन्तःकरण सदा अपने वशमें रहता है, जगत्में जिनकी कहीं भी तुलना नहीं है, उन निष्पाप, तेजोराशि, महेश्वर भगवान् उमापतिका उन देवताओंने दर्शन किया ॥ ४९–५० ॥

एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥ ५१ ॥
परस्परस्य चापश्यन् सर्वे परमविस्मिताः ।

उन्होंने एक ही भगवान् शिवको अपनी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें कल्पित किया। उन परमात्मामें अपने तथा दूसरोंके प्रतिबिम्ब देखे। यह सब देखकर परस्पर दृष्टिपात करके वे सब-के-सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ५१½ ॥

सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥ ५२ ॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।

उन सर्वभूतमय अजन्मा जगदीश्वरको देखकर सम्पूर्ण देवताओं तथा ब्रह्मर्षियोंने धरतीपर मस्तक टेक दिये ॥

तान् स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥ ५३ ॥
ब्रूत ब्रूतेति भगवान् स्मयमानोऽभ्यभाषत ।

तब भगवान् शङ्करने 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर उनका समादर करते हुए उनको उठाया और मुसकराते हुए कहा—'बोलो, बोलो; क्या है ?' ॥ ५३½ ॥

त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ॥ ५४ ॥
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन् वचः ।

भगवान् त्रिलोचनकी आज्ञा पाकर स्वस्थचित्त हुए वे देवगण इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ५४½ ॥

नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ॥ ५५ ॥
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शम्भवे ॥ ५६ ॥

'आप देवताओंके अधिदेवता, धनुर्धर और वनमालाधारी हैं । आपको नमस्कार है। आप दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले हैं, प्रजापति भी आपकी स्तुति करते हैं, सबके द्वारा आपकी ही स्तुति की गयी है, आप ही स्तुतिके योग्य हैं तथा सब लोग आपकी ही स्तुति करते हैं। आप कल्याणस्वरूप शम्भुको नमस्कार है ॥ ५५-५६ ॥

विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।
अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ॥ ५७ ॥

'आप विशेषतः लालवर्णके हैं, पापियोंको रुलानेवाले रुद्र हैं, नीलकण्ठ और त्रिशूलधारी हैं, आपका दर्शन अमोघ फल देनेवाला है, आपके नेत्र मृगोंके समान हैं तथा आप श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा युद्ध करनेवाले हैं । आपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥

अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ५८ ॥
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ५९ ॥

'आप पूजनीय, शुद्ध, प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले हैं। आपको रोकना या पराजित करना सर्वथा कठिन है । आप शुक्लवर्ण, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय, नियन्ता तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं। आप सदा तपस्यामें तत्पर रहनेवाले, पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी और कृत्तिवासा हैं। आपको नमस्कार है ॥ ५८-५९ ॥

कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्संघघातिने ॥ ६० ॥

'आप कुमार कार्तिकेयके पिता, त्रिनेत्रधारी, उत्तम आयुध धारण करनेवाले, शरणागतदुःखभञ्जन तथा

ब्रह्मद्रोहियोंके समुदायका विनाश करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ६० ॥

वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ६१ ॥

'आप वनस्पतियोंके पालक और मनुष्योंके अधिपति हैं। आप ही गौओंके स्वामी और सदा यज्ञोंके अधीश्वर हैं। आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ६१ ॥

नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान् भजस्व नः ॥ ६२ ॥

'सेनासहित आप अमिततेजस्वी भगवान् त्र्यम्बकको नमस्कार है। देव! हम मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें अपनाइये' ॥ ६२ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् स्वागतेनाभिनन्द्य च।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ६३ ॥

तब भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर स्वागत-सत्कारके द्वारा देवताओंको आनन्दित करके कहा—'देवगण! तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये; बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुराख्यानविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ६७½ श्लोक हैं)

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यको शिवके विचित्ररथका विवरण सुनाना और शिवजीद्वारा त्रिपुर-वधका उपाख्यान सुनाना एवं परशुरामजीके द्वारा कर्णको दिव्य अस्त्र मिलनेकी बात कहना

दुर्योधन उवाच

पितृदेवर्षिसंघेभ्योऽभये दत्ते महात्मना।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन्! परमात्मा शिवने जब देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके समुदायको अभय दे दिया, तब ब्रह्माजीने उन भगवान् शङ्करका सत्कार करके यह लोक-हितकारी वचन कहा—॥ १ ॥

तवातिसर्गाद् देवेश प्राजापत्यमिदं पदम्।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान् वरः ॥ २ ॥

'देवेश्वर! आपके आदेशसे इस प्रजापतिपदपर स्थित रहते हुए मैंने दानवोंको एक महान् वर दे दिया है ॥ २ ॥

तानतिक्रान्तमर्यादान् नान्यः संहर्तुमर्हति।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥ ३ ॥

'उस वरको पाकर वे मर्यादाका उल्लङ्घन कर चुके हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी महेश्वर! आपके सिवा दूसरा कोई भी उनका संहार नहीं कर सकता। उनके वधके लिये आप ही प्रतिपक्षी शत्रु हो सकते हैं ॥ ३ ॥

स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम्।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥ ४ ॥

'देव! हम सब देवता आपकी शरणमें आकर याचना करते हैं। देवेश्वर शङ्कर! आप हमपर कृपा कीजिये और इन दानवोंको मार डालिये ॥ ४॥

त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं सुखमैधत मानद।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥ ५ ॥

'मानद! आपके प्रसादसे सम्पूर्ण जगत् सुखपूर्वक उन्नति करता आया है, लोकेश्वर! आप ही आश्रयदाता हैं; इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं' ॥ ५ ॥

स्थाणुरुवाच

हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः।
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥ ६ ॥

भगवान् शिवने कहा—देवताओ! मेरा ऐसा विचार है कि तुम्हारे सभी शत्रुओंका वध किया जाय, परंतु मैं अकेला ही उन सबको नहीं मार सकता; क्योंकि वे देवद्रोही दैत्य बड़े बलवान् हैं ॥ ६ ॥

ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसा।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून् संहता हि महाबलाः ॥ ७ ॥

अतः तुम सब लोग एक साथ सङ्घ बनाकर मेरे आधे तेजसे पुष्ट हो युद्धमें उन शत्रुओंको जीत लो; क्योंकि जो संघटित होते हैं, वे महान् बलशाली हो जाते हैं ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः

अस्मत्तेजोबलं यावत् तावद्द्विगुणमाहवे।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ८ ॥

देवता बोले—प्रभो! युद्धमें हमलोगोंका जितना भी तेज और बल है, उससे दूना उन दैत्योंका है, ऐसा हम मानते हैं; क्योंकि उनके तेज और बलको हमने देख लिया है ॥ ८ ॥

स्थाणुरुवाच

वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः।
मम तेजोबलार्धेन सर्वान् निघ्नत शात्रवान् ॥ ९ ॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ! जो पापी तुमलोगोंके अपराधी हैं, वे सब प्रकारसे वधके ही योग्य हैं। मेरे तेज और बलके आधे भागसे युक्त हो तुमलोग समस्त शत्रुओंको मार डालो॥

देवा ऊचुः

बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ १० ॥

देवताओंने कहा—महेश्वर ! हम आपका आधा बल धारण नहीं कर सकते; अतः आप ही हम सब लोगोंके आधे बलसे युक्त हो शत्रुओंका वध कीजिये ॥ १० ॥

स्थाणुरुवाच

यदि शक्तिर्न वः काचिद् बिभर्तुं मामकं बलम् ।
अहमेतान् हनिष्यामि युष्मत्तेजोऽर्धबृंहितः ॥ ११ ॥

भगवान् शिव बोले—देवगण ! यदि मेरे बलको धारण करनेमें तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है तो मैं ही तुमलोगोंके आधे तेजसे परिपुष्ट हो इन दैत्योंका वध करूँगा ॥ ११ ॥

ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम ।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥ १२ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओंने देवेश्वर भगवान् शिवसे 'तथास्तु' कह दिया और उन सबके तेजका आधा भाग लेकर वे अधिक तेजस्वी हो गये ॥ १२ ॥

स तु देवो बलेनासीत् सर्वेभ्यो बलवत्तरः ।
महादेव इति ख्यातस्ततः प्रभृति शङ्करः ॥ १३ ॥

वे देव बलके द्वारा उन सबकी अपेक्षा अधिक बलशाली हो गये । इसलिये उसी समयसे उन भगवान् शङ्करका महादेव नाम विख्यात हो गया ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरो ह्यहम् ।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान् रिपून् वो दिवौकसः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् महादेवजीने कहा—'देवताओ ! मैं धनुष-बाण धारण करके रथपर बैठकर युद्धस्थलमें तुम्हारे उन शत्रुओंका वध करूँगा ॥ १४ ॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च ।
पश्यध्वं यावदद्यैतान् पातयामि महीतले ॥ १५ ॥

'अतः तुमलोग मेरे लिये रथ और धनुष-बाणकी खोज करो, जिसके द्वारा आज इन दैत्योंको भूतलपर मार गिराऊँ' ॥ १५ ॥

देवा ऊचुः

मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः ।
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥ १६ ॥
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम् ।

देवता बोले—देवेश्वर ! हमलोग तीनों लोकोंके तेजकी सारी मात्राओंको एकत्र करके आपके लिये परम तेजस्वी रथका निर्माण करेंगे । विश्वकर्माका बुद्धिपूर्वक बनाया हुआ वह रथ बहुत ही सुन्दर होगा ॥ १६½ ॥

ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् ॥ १७ ॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन् ।

तदनन्तर उन देवसंघोंने रथका निर्माण किया और विष्णु, चन्द्रमा तथा अग्नि—इन तीनोंको उनका बाण बनाया ॥ १७½ ॥

शृङ्गमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशाम्पते ॥ १८ ॥
कुड्मलश्चाभवद् विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा ।

प्रजानाथ ! उस बाणका शृङ्ग (गाँठ) अग्नि हुए । उसका भल्ल (फल) चन्द्रमा हुए और उस श्रेष्ठ बाणके अग्रभागमें भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हुए ॥ १८½ ॥

रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ॥ १९ ॥
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा ।

बड़े-बड़े नगरोंसे सुशोभित, पर्वत, वन और द्वीपोंसे युक्त, प्राणियोंकी आधारभूता पृथ्वी देवीको उस समय देवताओंने रथ बनाया ॥ १९½ ॥

मन्दरः पर्वतश्चाक्षो जङ्घा तस्य महानदी ॥ २० ॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु ।

मन्दराचल उस रथका धुरा था, महानदी गङ्गा जंघा (धुरेका आश्रय) बनी थीं, दिशाएँ और विदिशाएँ उस रथका आवरण थीं ॥ २०½ ॥

ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१ ॥
कूबरश्च रथस्यासीद् वासुकिर्भुजगोत्तमः ।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान् विन्ध्यपर्वतः ।
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥

नक्षत्रोंका समूह ईषादण्ड हुआ और कृतयुगने जुएका रूप धारण किया । नागराज वासुकि उस रथका कूबर बन गये थे । हिमालय पर्वत अपस्कर (रथके पीछेका काठ) और विन्ध्याचलने उसके आधारकाष्ठका रूप धारण किया । उदयाचल और अस्ताचल दोनोंको उन श्रेष्ठ देवताओंने पहियोंका आधारभूत काष्ठ बनाया ॥ २१-२२ ॥

समुद्रमक्षमसृजन् दानवालयमुत्तमम् ।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत् परिष्करः ॥ २३ ॥

दानवोंके उत्तम निवासस्थान समुद्रको बन्धनरज्जु बनाया। सप्तर्षियोंका समुदाय रथका परिस्कर (चक्ररक्षा आदिका साधन) बन गया ॥ २३ ॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च ।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥

गङ्गा, सरस्वती और सिंधु—इन तीनों नदियोंके साथ आकाश त्रिवेणुकाष्ठयुक्त धुरेका भाग हुआ । उस रथके बन्धन आदिकी सामग्री जल तथा सम्पूर्ण नदियाँ थीं ॥ २४ ॥

अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा ।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥ २५ ॥

दिन, रात, कला, काष्ठा और छहों ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) बन गयीं । चमकते हुए ग्रह और तारे वरूथ (रथकी रक्षाके लिये आवरण) हुए ॥ २५ ॥

धर्मार्थकामं संयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम् ।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः ॥ २६ ॥

त्रिवेणु-तुल्य धर्म, अर्थ और काम—तीनोंको संयुक्त करके

रथकी बैठक बनाया। फल और फूलोंसे युक्त ओषधियों एवं लताओंको घण्टाका रूप दिया ॥ २६ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते राज्यहनी शुभे ॥ २७ ॥

उस श्रेष्ठ रथमें सूर्य और चन्द्रमाको दोनों पहिये बनाकर सुन्दर रात्रि और दिनको वहाँ पूर्वपक्ष और अपर-पक्षके रूपमें प्रतिष्ठित किया ॥ २७ ॥

दश नागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान् ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र आदि दस नागराजोंको भी ईषादण्डमें ही स्थान दिया। फुफकारते हुए बड़े-बड़े सर्पोंको उस रथके जोत बनाये ॥ २८ ॥

द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान्।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनंजयौ ॥ २९ ॥
इतरे चाभवन् नागा हयानां वालबन्धनाः।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥ ३० ॥

द्युलोकको भी जूएमें ही स्थान दिया। प्रलयकालके मेघोंको युगचर्म बनाया। कालपृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनंजय तथा दूसरे-दूसरे नाग घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाये गये। दिशाओं और विदिशाओंने रथमें जुते हुए घोड़ों-की बागडोरका भी रूप धारण किया ॥ २९-३० ॥

संध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं संनतिमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ३१ ॥

संध्या, धृति, मेधा, स्थिति और संनतिसहित आकाशको, जो ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे विचित्र शोभा धारण करता है, चर्म (रथका ऊपरी आवरण) बनाया ॥ ३१ ॥

सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतीँल्लोकेश्वरान् हयान्।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ॥ ३२ ॥
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान्।

इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर—इन चार लोकपालोंको देवताओंने उस रथके घोड़े बनाये। सिनीवाली, अनुमति, कुहू तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली राका इनकी अधिष्ठात्री देवियोंको घोड़ोंके जोतेका रूप दिया और इनके अधिकारी देवताओंको घोड़ोंकी लगामोंके काँटे बनाया॥

धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ॥ ३३ ॥
अधिष्ठानं मनश्चासीत् परिरथ्या सरस्वती।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥ ३४ ॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन्।

धर्म, सत्य, तप और अर्थ—इनको वहाँ लगाम बनाया गया। रथकी आधारभूमि मन हुआ और सरस्वती देवी रथके आगे बढ़नेका मार्ग थीं। नाना रंगोंकी विचित्र पताकाएँ पवनसे प्रेरित होकर फहरा रही थीं, जो बिजली और इन्द्रधनुषसे बँधे हुए उस देदीप्यमान रथकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ३३-३४½ ॥

वषट्कारः प्रतोदोऽभूद् गायत्री शीर्षबन्धना ॥ ३५ ॥

वषट्कार घोड़ोंका चाबुक हुआ और गायत्री उस रथके ऊपरी भागकी बन्धन-रज्जु बनीं ॥ ३५ ॥

यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः।
संवत्सरो धनुस्तद् वै सावित्री ज्या महास्वना ॥ ३६ ॥

पूर्वकालमें जो महात्मा महादेवजीके यज्ञमें निर्मित हुआ था, वह संवत्सर ही उनके लिये धनुष बना और सावित्री उस धनुषकी महान् टंकार करनेवाली प्रत्यञ्चा बनी ॥ ३६ ॥

दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम्।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥

महादेवजीके लिये एक दिव्य कवच तैयार किया गया, जो बहुमूल्य, रत्नभूषित, रजोगुणरहित (अथवा धूलरहित स्वच्छ), अभेद्य तथा कालचक्रकी पहुँचसे परे था ॥ ३७ ॥

ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान् कनकपर्वतः।
पताकाश्चाभवन् मेघास्तडिद्भिः समलङ्कृताः ॥ ३८ ॥
रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः।

कान्तिमान् कनकमय मेरुपर्वत रथके ध्वजका दण्ड बना था। बिजलियोंसे विभूषित बादल ही पताकाओंका काम दे रहे थे, जो यजुर्वेदी ऋत्विजोंके बीचमें स्थित हुई अग्नियोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३८½ ॥

क्लृप्तं तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताऽभवन् ॥ ३९ ॥
सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥ ४० ॥

मान्यवर! वह रथ क्या था, सम्पूर्ण जगत्के तेजका पुञ्ज एकत्र हो गया था। उसे निर्मित हुआ देख सम्पूर्ण देवता आश्चर्यचकित हो उठे। फिर उन्होंने महात्मा महादेव-जीसे यह निवेदन किया कि रथ तैयार है ॥ ३९-४० ॥

एवं तस्मिन् महाराज कल्पिते रथसत्तमे।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ४१ ॥
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छङ्करो रथे।
ध्वजयष्टिं वियत् कृत्वा स्थापयामास गोवृषम् ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह! महाराज! इस प्रकार देवताओंद्वारा शत्रुओंका मर्दन करनेवाले उस श्रेष्ठ रथका निर्माण हो जानेपर भगवान् शङ्करने उसके ऊपर अपने मुख्य-मुख्य अस्त्र-शस्त्र रख दिये और ध्वजदण्डको आकाशव्यापी बनाकर उसके ऊपर अपने वृषभ नन्दीको स्थापित कर दिया ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः।
परिस्कन्दा रथस्यासन् सर्वतोदिशमुद्यताः ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड तथा ज्वर—ये

उस रथके पार्श्वरक्षक बनकर चारों ओर शस्त्र लेकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥

अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥ ४४ ॥

अथर्वा और अङ्गिरा महात्मा शिवके उस रथके पहियों-की रक्षा करने लगे। ऋग्वेद, सामवेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए ॥ ४४ ॥

इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः ॥ ४५ ॥

इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक हो गये तथा दिव्य वाणी और विद्याएँ पार्श्ववर्ती बनकर खड़ी हो गयीं ॥

स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च।
ओंकारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! स्तोत्र-कवच आदि, वषट्कार तथा ओङ्कार—ये मुखभागमें स्थित होकर अत्यन्त शोभा बढ़ाने लगे ॥

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥ ४७ ॥

छहों ऋतुओंसे युक्त संवत्सरको विचित्र धनुष बनाकर अपनी छायाको ही महादेवजीने उस धनुषकी प्रत्यञ्चा बनायी, जो रणभूमिमें कभी नष्ट होनेवाली नहीं थी ॥

कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः।
तस्माद् रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥ ४८ ॥

भगवान् रुद्र ही काल हैं, अतः कालका अवयवभूत संवत्सर ही उनका धनुष हुआ। कालरात्रि भी रुद्रका ही अंश है, अतः उसीको उन्होंने अपने धनुषकी अटूट प्रत्यञ्चा बना लिया ॥ ४८ ॥

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च।
अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णु, अग्नि और चन्द्रमा—ये ही बाण हुए थे; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोमका ही स्वरूप है। साथ ही सारा संसार वैष्णव (विष्णुमय) भी कहा जाता है ॥ ४९ ॥

विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः।
तस्माद् धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५० ॥

अमिततेजस्वी भगवान् शङ्करके आत्मा हैं विष्णु। अतः वे दैत्य भगवान् शिवके धनुषकी प्रत्यञ्चा एवं बाणका स्पर्श न सह सके ॥ ५० ॥

तस्मिञ्छरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१ ॥

महेश्वरने उस बाणमें अपने असह्य एवं प्रचण्ड कोपको तथा भृगु और अङ्गिराके रोषसे उत्पन्न हुई अत्यन्त दुःसह क्रोधाग्निको भी स्थापित कर दिया ॥ ५१ ॥

स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासाभयंकरः।
आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५२ ॥

तत्पश्चात् धूम्रवर्ण, व्याघ्रचर्मधारी, देवताओंको अभय तथा दैत्योंको भय देनेवाले, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी नीललोहित भगवान् शिव तेजोमयी ज्वालासे आवृत हो प्रकाशित होने लगे ॥ ५२ ॥

दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान् नरान् ॥ ५३ ॥

जिस लक्ष्यको मार गिराना अत्यन्त कठिन है, उसको भी गिरानेमें समर्थ, विजयशील, ब्रह्मद्रोहियोंके विनाशक भगवान् शिव धर्मका आश्रय लेनेवाले मनुष्योंकी सदा रक्षा और पापियोंका विनाश करनेवाले हैं ॥ ५३ ॥

प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः।
विभाति भगवान् स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥ ५४ ॥

उनके जो अपने उपयोगमें आनेवाले रथ आदि गुणवान् उपकरण थे, वे शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ, भयानक बलशाली, भयंकररूपधारी और मनके समान वेगवान् थे। उनसे घिरे हुए भगवान् शिवकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५४ ॥

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत्।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५ ॥

राजन्! उनके पञ्चभूतस्वरूप अङ्गोंका आश्रय लेकर ही यह अद्भुत दिखायी देनेवाला सारा चराचर जगत् स्थित एवं सुशोभित है ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची स शरासनी।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥

उस रथको जुता हुआ देख भगवान् शङ्कर कवच और धनुषसे युक्त हो चन्द्रमा, विष्णु और अग्निसे प्रकट हुए उस दिव्य बाणको लेकर युद्धके लिये उद्यत हुए ॥ ५६ ॥

तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥

राजन्! प्रभो! उस समय देवताओंने पवित्र सुगन्ध वहन करनेवाले देवश्रेष्ठ वायुको उनके लिये हवा करनेके कामपर नियुक्त किया ॥ ५७ ॥

तमास्थाय महादेवस्त्रासयन् दैवतान्यपि।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ५८ ॥

तब महादेवजी दानवोंके वधके लिये प्रयत्नशील हो देवताओंको भी डराते और पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से उस रथको थामकर उसपर चढ़ने लगे ॥ ५८ ॥

तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५९ ॥

देवेश्वर शिव रथपर चढ़ना चाहते हैं, यह देखकर

महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने उनकी स्तुति की ॥ ५९ ॥

ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥ ६० ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद् देवान् सारथिः को भविष्यति ॥ ६१ ॥

ब्रह्मर्षियोंद्वारा प्रशंसित, वन्दीजनोंद्वारा वन्दित तथा नाचती हुई नृत्य-कुशल अप्सराओंसे सुशोभित होते हुए वरदायक भगवान् शिव खड्ग, बाण और धनुष ले देवताओंसे हँसते हुए-से बोले—'मेरा सारथि कौन होगा ?' ॥ ६०-६१ ॥

तमब्रुवन् देवगणा यं भवान् संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥

यह सुनकर देवताओंने उनसे कहा—'देवेश ! आप जिसको इस कार्यमें नियुक्त करेंगे, वही आपका सारथि होगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ६२ ॥

तानब्रवीत् पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं संचिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥

तब महादेवजीने फिर कहा—'तुमलोग स्वयं ही सोच-विचारकर जो मुझसे भी श्रेष्ठतर हो, उसे मेरा सारथि बना दो, विलम्ब न करो' ॥ ६३ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥

उन महात्माके कहे हुए इस वचनको सुनकर सब देवता ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें प्रसन्न करके इस प्रकार बोले—॥

यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥

'देव ! देवशत्रुओंका दमन करनेके विषयमें आपने जैसा कहा था, वैसा ही हमने किया है । भगवान् शङ्कर हम लोगोंपर प्रसन्न हैं ॥ ६५ ॥

रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः कः स्यात् तस्मिन् रथोत्तमे ॥ ६६ ॥

'हमने उनके लिये विचित्र आयुधोंसे सम्पन्न रथ तैयार कर दिया है; परंतु उस उत्तम रथपर कौन सारथि होकर बैठेगा ? यह हम नहीं जानते हैं' ॥ ६६ ॥

तस्माद् विधीयतां कश्चित् सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥ ६७ ॥

'अतः देवश्रेष्ठ प्रभो ! आप किसीको सारथि बनाइये । देव ! आपने हमें जो वचन दिया है, उसे सफल कीजिये ॥ ६७ ॥

एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्तास्मि भवतामिति तत् कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

'भगवन् ! आपने पहले हमलोगोंसे कहा था कि 'मैं तुम लोगोंका हित करूँगा ।' अतः उसे पूर्ण कीजिये ॥ ६८ ॥

स देव युक्तो रथसत्तमो नो
दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा
विभीषयन् दानवानुद्यतोऽसौ ॥ ६९ ॥

'देव ! हमारा तैयार किया हुआ वह श्रेष्ठ रथ शत्रुओंको मार भगानेवाला और दुर्धर्ष है । पिनाकपाणि भगवान् शङ्करको उसपर योद्धा बनाकर बैठा दिया गया है और वे दानवोंको भयभीत करते हुए युद्धके लिये उद्यत हैं ॥ ६९ ॥

तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या
धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी
हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥ ७० ॥

'इसी प्रकार चारों वेद उन महात्माके उत्तम घोड़े हैं और पर्वतोंसहित पृथ्वी उनका उत्तम रथ बनी हुई है । नक्षत्र-समुदायरूपी ध्वजसे युक्त तथा आवरणसे सुशोभित भगवान् शिव उस रथपर रथी योद्धा बनकर बैठे हुए हैं; परंतु कोई सारथि नहीं दिखायी देता ॥ ७० ॥

तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥ ७१ ॥

'देव ! उस रथके लिये ऐसे सारथिका अनुसंधान करना चाहिये, जो इन सबसे बढ़कर हो; क्योंकि रथ, घोड़े और योद्धा इन सबकी प्रतिष्ठा सारथिपर ही निर्भर है ॥ ७१ ॥

कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥ ७२ ॥
त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो ।

'पितामह ! कवच, शस्त्र और धनुषकी सफलता भी सारथिपर ही निर्भर है । हमलोग आपके सिवा दूसरे किसीको वहाँ सारथि होनेके योग्य नहीं देखते हैं । प्रभो ! क्योंकि आप सभी देवताओंसे श्रेष्ठ और सर्वगुणसम्पन्न हैं ॥ ७२½ ॥

(त्वं देव शक्तो लोकेऽस्मिन् नियन्तुं प्रद्रुतानिमान् ।
वेदाश्वान् सोपनिषदः सारथिर्भव नः स्वयम् ॥

'देव ! आप ही इस जगत्‌में इन भागते हुए उपनिषद्-सहित वेदरूपी अश्वोंको नियन्त्रणमें रख सकते हैं; अतः आप स्वयं ही सारथि हो जाइये ॥

योद्धुं बलेन सत्त्वेन वीर्येण विनयेन च ।
अधिकः सारथिः कार्यो नास्ति चान्योऽधिको भवात् ॥

'बल, धैर्य, पराक्रम और विनय इन सभी गुणोंद्वारा जो रथीसे भी श्रेष्ठ हो, उसे ही युद्धके लिये सारथि बनाना चाहिये; दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो भगवान् शङ्करसे भी बढ़कर हो ॥

स भवांस्तारयत्वस्मान् कुरु सारथ्यमव्ययम् ।
भवानभ्यधिकस्त्वत्तो नान्योऽस्तीह पितामह ॥

'पितामह ! आप अक्षय सारथिकर्म कीजिये और हमें इस सङ्कटसे उबारिये । आप ही सबसे श्रेष्ठ हैं; आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है ॥

त्वं हि देवेश सर्वैस्तु विशिष्टो वदतां वर।)
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान् हयान् ॥ ७३ ॥
जयाय त्रिदेवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम्।

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर ! आप सभी गुणोंसे श्रेष्ठ हैं; इसलिये देवद्रोहियोंके वध और देवताओंकी विजयके लिये तुरंत रथपर आरूढ़ होकर इन उत्तम घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ ७३ ॥

(तव प्रसादाद् वध्येरन् देव दैवतकण्टकाः।
स नो रक्ष महाबाहो दैत्येभ्यो महतो भयात् ॥

'देव ! आपके प्रसादसे देवताओंके लिये यह कण्टकरूप दैत्य मारे जायँगे । महाबाहो ! आप दैत्योंके महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥

त्वं हि नो गतिरव्यग्र त्वं नो गोप्ता महाव्रत।
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे पूज्यन्ते त्रिदिवे प्रभो ॥)

'व्यग्रताशून्य महान् व्रतधारी प्रभो ! आप ही हमारे आश्रय तथा संरक्षक हैं; आपकी कृपासे ही समस्त देवता स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं' ॥

इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ॥ ७४ ॥
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम्।

इस प्रकार देवताओंने तीनों लोकोंके ईश्वर पितामह ब्रह्माजीके आगे मस्तक टेककर उन्हें सारथि बननेके लिये प्रसन्न किया । यह बात हमारे सुननेमें आयी है ॥ ७४½ ॥

पितामह उवाच

नात्र किंचिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः ॥ ७५ ॥
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः।

पितामह बोले—देवताओ ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । मैं युद्ध करते समय भगवान् शङ्करके घोड़ोंको काबूमें रक्खूँगा ॥ ७५½ ॥

ततः स भगवान् देवो लोकस्रष्टा पितामहः ॥ ७६ ॥
(एवमुक्त्वा जटाभारं संयम्य प्रपितामहः।
परिधायाजिनं गाढं संन्यस्य च कमण्डलुम् ॥
प्रतोदपाणिर्भगवानारुरोह रथं तदा।)

तदनन्तर लोकस्रष्टा भगवान् पितामह देवने जो जगत्के प्रपितामह हैं, उपर्युक्त बात कहकर अपनी जटाओंके बोझको बाँध लिया और मृगचर्मके वस्त्रको अच्छी तरह कसकर कमण्डलुको अलग रख दिया । तत्पश्चात् वे भगवान् ब्रह्मा हाथमें चाबुक लेकर तत्काल उस रथपर जा चढ़े ॥ ७६ ॥

सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः।
तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥ ७७ ॥
शिरोभिरगमन् भूमिं ते हया वातरंहसः।

इस प्रकार देवताओंने भगवान् शङ्करके सारथिके पदपर उन्हें प्रतिष्ठित कर दिया । जब उस लोकपूजित रथपर ब्रह्माजी चढ़ रहे थे, उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े धरतीपर माथा टेककर बैठ गये थे ॥ ७७½ ॥

आरुह्य भगवान् देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ७८ ॥
अभीषून् हि प्रतोदं च संजग्राह पितामहः।

अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए भगवान् ब्रह्माने रथारूढ़ होकर घोड़ोंकी बागडोर और चाबुक दोनों वस्तुएँ अपने हाथमें ले लीं ॥ ७८½ ॥

तत उत्थाप्य भगवांस्तान् हयाननिलोपमान् ॥ ७९ ॥
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः।

तत्पश्चात् वायुके समान तीव्रगतिवाले उन घोड़ोंको उठाकर सुरश्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माने महादेवजीसे कहा—'अब आप रथपर आरूढ़ होइये' ॥ ७९½ ॥

ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसम्भवम् ॥ ८० ॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन् परान्।

तब विष्णु, चन्द्रमा और अग्निसे उत्पन्न हुए उस बाणको हाथमें लेकर महादेवजी अपने धनुषके द्वारा शत्रुओंको कम्पित करते हुए उस रथपर चढ़ गये ॥ ८०½ ॥

तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८१ ॥
गन्धर्वा देवसंघाश्च तथैवाप्सरसां गणाः।

रथपर आरूढ़ हुए देवेश्वर शिवकी महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने स्तुति की ॥ ८१½ ॥

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥ ८२ ॥
प्रदीपयन् रथे तस्थौ त्रीँल्लोकान् स्वेन तेजसा।

खड्ग, धनुष और बाण लेकर शोभा पाते हुए वरदायक महादेवजी अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हुए रथपर स्थित हो गये ॥ ८२½ ॥

ततो भूयोऽब्रवीद् देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८३ ॥
न हन्यादिति कर्तव्यो न शोको वः कथञ्चन।
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥ ८४ ॥

तब महादेवजीने पुनः इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'शायद ये दैत्योंको न मारें' ऐसा समझकर तुम्हें किसी प्रकार भी शोक नहीं करना चाहिये । तुमलोग असुरोंको इस बाणसे 'मरा हुआ' ही समझो' ॥ ८३-८४ ॥

ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन्।
न च तद् वचनं मिथ्या यदाह भगवान् प्रभुः॥८५॥
इति संचिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन्।

यह सुनकर उन देवताओंने कहा—'प्रभो ! आपका कथन सत्य है । अवश्य ही वे दैत्य मारे गये । शक्तिशाली भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, वह वचन मिथ्या नहीं हो सकता' यह सोचकर देवताओंको बड़ा संतोष हुआ ॥८५½॥

ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥

रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह ।

राजन् ! तदनन्तर जिसकी कहीं उपमा नहीं थी, उस विशाल रथके द्वारा देवेश्वर महादेवजी समस्त देवताओंसे घिरे हुए वहाँसे चल दिये ॥ ८६½ ॥

स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः ॥ ८७ ॥
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः ।
धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम् ॥ ८८ ॥

उस समय उनके अपने पार्षद भी महायशस्वी महादेवजीकी पूजा कर रहे थे । शिवके वे दुर्धर्ष पार्षद नृत्य करते और परस्पर एक दूसरेको डाँटते हुए चारों ओर दौड़ लगाते थे । अन्य कितने ही पार्षद (भूत-प्रेतादि) मांसभक्षी थे ॥ ८७-८८ ॥

ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः ॥ ८९ ॥

महान् भाग्यशाली और उत्तम गुणसम्पन्न तपस्वी ऋषियों, देवताओं तथा अन्य लोगोंने भी सब प्रकारसे महादेवजीकी विजयके लिये शुभाशंसा की ॥ ८९ ॥

एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयंकरे ।
तुष्टमासीज्जगत् सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥ ९० ॥

नरश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण लोकोंको अभय देनेवाले देवेश्वर महादेवजीके इस प्रकार प्रस्थान करनेपर सारा जगत् संतुष्ट हो गया । देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९० ॥

ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः ।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन् पुनः पुनः ॥ ९१ ॥

राजन् ! ऋषिगण नाना प्रकारके स्तोत्रोंका पाठ करके देवेश्वर महादेवकी स्तुति करते हुए बारंबार उनका तेज बढ़ा रहे थे ॥ ९१ ॥

गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च ॥ ९२ ॥

उनके प्रस्थानके समय सहस्रों, लाखों और अरबों गन्धर्व नाना प्रकारके बाजे बजा रहे थे ॥ ९२ ॥

ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान् प्रति ।
साधु साध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ९३ ॥

रथपर आरूढ़ हो वरदायक भगवान् शङ्कर जब असुरोंकी ओर चले, तब वे विश्वनाथ ब्रह्माजीको साधुवाद देते हुए मुसकराकर बोले—॥ ९३ ॥

याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः ।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान् रणे ॥ ९४ ॥

'देव ! जिस ओर दैत्य हैं, उधर ही चलिये और सावधान होकर घोड़ोंको हाँकिये । आज रणभूमिमें जब मैं शत्रुसेनाका संहार करने लगूँ, उस समय आप मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखियेगा' ॥ ९४ ॥

ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
येन तत् त्रिपुरं राजन् दैत्यदानवरक्षितम् ॥ ९५ ॥

राजन् ! तब ब्रह्माजीने मन और पवनके समान वेगशाली घोड़ोंको उसी ओर बढ़ाया, जिस ओर दैत्यों और दानवोंद्वारा सुरक्षित वे तीनों पुर थे ॥ ९५ ॥

पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः ।
जगाम भगवान् क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥ ९६ ॥

वे लोकपूजित अश्व ऐसे तीव्र वेगसे चल रहे थे, मानो सारे आकाशको पी जायँगे । उस समय भगवान् शिव उन अश्वोंके द्वारा देवताओंकी विजयके लिये बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे ॥ ९६ ॥

प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे ।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन् दिशः ॥ ९७ ॥

रथपर आरूढ़ हो जब महादेवजी त्रिपुरकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय नन्दी वृषभने सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ९७ ॥

वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥ ९८ ॥

उस वृषभका वह अत्यन्त भयंकर सिंहनाद सुनकर बहुतसे देवशत्रु तारक नामवाले दैत्यगण वहीं विनष्ट हो गये ॥

अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा ।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः ॥ ९९ ॥

दूसरे जो दैत्य वहाँ खड़े थे, वे युद्धके लिये महादेवजीके सामने आये । महाराज ! तब त्रिशूलधारी महादेवजी क्रोधसे आतुर हो उठे ॥ ९९ ॥

त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र संदधतः शरम् ॥ १०० ॥
तस्मिन् सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः ।
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति ॥ १०१ ॥

फिर तो समस्त प्राणी भयभीत हो उठे । सारी त्रिलोकी और भूमि काँपने लगी । जब वे वहाँ धनुषपर बाणका संधान करने लगे, तब उसमें चन्द्रमा, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्रके क्षोभसे बड़े भयंकर निमित्त प्रकट हुए । धनुषके क्षोभसे वह रथ अत्यन्त शिथिल होने लगा ॥ १००-१०१ ॥

ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद् विनिःसृतः ।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् ॥ १०२ ॥

तब भगवान् नारायणने उस बाणके एक भागसे बाहर निकलकर वृषभका रूप धारण करके भगवान् शिवके विशाल रथको ऊपर उठाया ॥ १०२ ॥

सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु ।
स सम्भ्रमात् तु भगवान् नादं चक्रे महाबलः ॥ १०३ ॥

जब रथ शिथिल होने लगा और शत्रु गर्जना करने लगे,

तब महाबली भगवान् शिवने बड़े वेगसे घोर गर्जना की ॥

वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान् रुद्रो निरैक्षद् दानवं पुरम् ॥१०४॥
वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम ।
स्तनांस्तदाऽशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत्॥१०५॥

मानद ! उस समय वे वृषभके मस्तक और घोड़ेकी पीठपर खड़े थे । नरोत्तम ! भगवान् रुद्रने वृषभ तथा घोड़ेकी भी पीठपर सवार हो उस दानव-नगरको देखा । तब उन्होंने वृषभके खुरोंको चीरकर उन्हें दो भागोंमें बांट दिया और घोड़ोंके स्तन काट डाले ॥ १०४-१०५॥

ततःप्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥१०६॥
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।

राजन् ! आपका कल्याण हो । तभीसे बैलोंके दो खुर हो गये और तभीसे अद्भुत कर्म करनेवाले बलवान् रुद्रके द्वारा पीड़ित हुए घोड़ोंके स्तन नहीं उगे ॥ १०६½ ॥

अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम् ॥१०७॥
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।

तदनन्तर भगवान् रुद्रने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसके ऊपर पूर्वोक्त बाणको रक्खा और उसे पाशुपतास्त्रसे संयुक्त करके तीनों पुरोंके एकत्र होनेका चिन्तन किया ॥

तस्मिन् स्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥१०८॥
पुराणि तानि कालेन जग्मुरेकतां तदा ।

महाराज ! इस प्रकार जब रुद्रदेव धनुष चढ़ाकर खड़े हो गये, उसी समय कालकी प्रेरणासे वे तीनों पुर मिलकर एक हो गये ॥ १०८½ ॥

एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥१०९॥
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।

जब तीनों एक होकर त्रिपुर-भावको प्राप्त हुए, तब महामनस्वी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ १०९½ ॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥११०॥
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।

उस समय समस्त देवता, महर्षि और सिद्धगण महेश्वरकी स्तुति करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे ॥ ११०½ ॥

ततोऽग्रतः प्रादुरभूत् त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥१११॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।

तब असुरोंका संहार करते हुए अवर्णनीय भयङ्कर रूपवाले असह्य तेजस्वी महादेवजीके सामने वह तीनों पुरोंका समुदाय सहसा प्रकट हो गया ॥ १११½ ॥

स तद् विकृष्य भगवान् दिव्यं लोकेश्वरो धनुः॥११२॥
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।

फिर तो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् रुद्रने अपने उस दिव्य धनुषको खींचकर उसपर रक्खे हुए त्रिलोकीके सारभूत उस बाणको त्रिपुरपर छोड़ दिया ॥ ११२½ ॥

उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिंस्त्रिपुरवरे तदा ॥११३॥
महानार्तस्वरो ह्यासीत् पुराणां पततां भुवि ।
तान् सोऽसुरगणान् दग्ध्वा प्राक्षिपत् पश्चिमार्णवे११४

महाभाग ! उस समय उस श्रेष्ठ बाणके छूटते ही भूतलपर गिरते हुए उन तीनों पुरोंका महान् आर्तनाद प्रकट हुआ । भगवान्ने उन असुरोंको भस्म करके पश्चिम समुद्रमें डाल दिया ॥ ११३-११४ ॥

एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥११५॥

इस प्रकार तीनों लोकोंका हित चाहनेवाले महेश्वरने कुपित होकर उन तीनों पुरों तथा उनमें निवास करनेवाले दानवोंको दग्ध कर दिया ॥ ११५ ॥

स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ।११६।

उनके अपने क्रोधसे जो अग्नि प्रकट हुई थी, उसे भगवान् त्रिलोचनने 'हा-हा' कहकर रोक दिया और उससे कहा—'तू सम्पूर्ण जगत्को भस्म न कर' ॥ ११६ ॥

ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्त्वथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥११७॥

तब समस्त देवता, महर्षि तथा तीनों लोकोंके प्राणी स्वस्थ हो गये । सबने श्रेष्ठ वचनोंद्वारा अप्रतिम शक्तिशाली महादेवजीका स्तवन किया ॥ ११७ ॥

तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥११८॥

फिर भगवान्की आज्ञा लेकर अपने प्रयत्नसे पूर्णकाम हुए प्रजापति आदि सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ११८ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११९॥

इस प्रकार देवताओं तथा असुरोंके भी अध्यक्ष जगत्-स्रष्टा भगवान् महेश्वर देवने तीनों लोकोंका कल्याण किया था ॥

यथैव भगवान् ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥१२०॥
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥१२१॥

वहाँ विश्वविधाता सर्वोत्कृष्ट अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार रुद्रका सारथि-कर्म किया था तथा जिस प्रकार उन पितामहने रुद्रदेवके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली थी, उसी प्रकार आप भी शीघ्र ही इस महामनस्वी राधापुत्र कर्णके घोड़ोंको काबूमें कीजिये ॥ १२०-१२१ ॥

त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥१२२॥

नृपश्रेष्ठ ! आप श्रीकृष्णसे, कर्णसे और अर्जुनसे भी श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२२ ॥

युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये।
तस्माच्छको भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान्॥१२३॥

यह कर्ण युद्धक्षेत्रमें रुद्रके समान है और आप भी नीतिमें ब्रह्माजीके तुल्य हैं; अतः आप उन असुरोंकी भाँति मेरे शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १२३ ॥

यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
प्रमथ्य हन्यात् कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम्॥१२४॥

शल्य ! आप शीघ्र ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह कर्ण उस श्वेतवाहन अर्जुनको, जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं, मथकर मार डाले ॥ १२४ ॥

त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च।
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२५॥

मद्रराज ! आपपर ही मेरी राज्यप्राप्तिविषयक अभिलाषा और जीवनकी आशा निर्भर है। आपके द्वारा कर्णका सारथि-कर्म सम्पादित होनेपर जो आज विजय मिलनेवाली है, उसकी सफलता भी आपपर ही निर्भर है ॥ १२५ ॥

त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् ॥१२६॥

आपपर ही कर्ण, राज्य, हम और हमारी विजय प्रतिष्ठित हैं। इसलिये आज संग्राममें आप इन उत्तम घोड़ोंको अपने वशमें कीजिये ॥ १२६ ॥

इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे।
पितुर्मम सकाशे यद् ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥१२७॥

राजन् ! आप मुझसे फिर यह दूसरा इतिहास भी सुनिये, जिसे एक धर्मज्ञ ब्राह्मणने मेरे पिताके समीप कहा था॥१२७॥

श्रुत्वा चैतद् वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम्।
कुरु शल्य विनिश्चित्य माभूदत्र विचारणा ॥१२८॥

शल्य ! कारण और कार्यसे युक्त इस विचित्र ऐतिहासिक वार्ताको सुनकर आप अच्छी तरह सोच-विचार लेनेके पश्चात् मेरा कार्य करें, इस विषयमें आपके मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १२८ ॥

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥१२९॥

भार्गववंशमें महायशस्वी महर्षि जमदग्नि प्रकट हुए थे, जिनके तेजस्वी और गुणवान् पुत्र परशुरामके नामसे विख्यात हैं ॥ १२९ ॥

स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान् भवम्।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥१३०॥

उन्होंने अस्त्र-प्राप्तिके लिये मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रसन्न हृदयसे भारी तपस्या करके भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ १३० ॥

तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥१३१॥
(प्रत्यक्षेण महादेवः स्वां तनुं सर्वशङ्करः।)

उनकी भक्ति और मनःसंयमसे संतुष्ट हो सबका कल्याण करनेवाले महादेवजीने उनके मनोगत भावको जानकर उन्हें अपने दिव्य शरीरका प्रत्यक्ष दर्शन कराया ॥ १३१ ॥

महेश्वर उवाच

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम्।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥१३२॥

महादेवजी बोले—राम ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो, यह मुझे विदित है। अपने हृदयको शुद्ध करो। तुम्हें यह सब कुछ प्राप्त हो जायगा ॥ १३२ ॥

दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥१३३॥

जब तुम पवित्र हो जाओगे, तब तुम्हें अपने अस्त्र दूँगा, भृगुनन्दन ! अपात्र और असमर्थ पुरुषको तो ये अस्त्र जलाकर भस्म कर डालते हैं ॥ १३३ ॥

इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥१३४॥

त्रिशूलधारी देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर जमदग्निनन्दन परशुरामने उन महात्मा भगवान् शिवको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १३४ ॥

यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे।
तदा शुश्रूषवेऽस्त्राणि भवान् मे दातुमर्हति ॥१३५॥

'यदि आप देवेश्वर प्रभु मुझे अस्त्रधारणका पात्र समझें तभी मुझ सेवकको दिव्यास्त्र प्रदान करें' ॥ १३५ ॥

दुर्योधन उवाच

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥१३६॥
आराधयितवान् शर्वं बहून् वर्षगणांस्तदा।

दुर्योधन कहता है—तदनन्तर परशुरामने बहुत वर्षोंतक तपस्या, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, पूजा, उपहार, भेंट, अर्पण, होम और मन्त्र-जप आदि साधनोंद्वारा भगवान् शिवकी आराधना की ॥ १३६½ ॥

प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥१३७॥
अब्रवीत् तस्य बहुशो गुणान् देव्याः समीपतः।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥१३८॥

इससे महादेवजी महात्मा परशुरामपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने पार्वती देवीके समीप उनके गुणोंका बारंबार वर्णन किया—'ये दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले परशुराम मेरे प्रति सदा भक्तिभाव रखते हैं' ॥ १३७-१३८ ॥

एवं तस्य गुणान् प्रीतो बहुशोऽकथयत् प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥१३९॥

शत्रुसूदन ! इसी प्रकार प्रसन्न हुए भगवान् शिवने देवताओं और पितरोंके समक्ष भी बारंबार प्रसन्नतापूर्वक उनके गुणोंका वर्णन किया ॥ १३९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन् महाबलाः ।
तैस्तदा दर्पमोहार्तैरबाध्यन्त दिवौकसः ॥१४०॥

इन्हीं दिनोंकी बात है, दैत्यलोग महान् बलसे सम्पन्न हो गये थे । वे दर्प और मोह आदिके वशीभूत हो उस समय देवताओंको सताने लगे ॥ १४० ॥

ततः सम्भूय विबुधास्तान् हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥१४१॥

तब सम्पूर्ण देवताओंने एकत्र हो उन्हें मारनेका निश्चय करके शत्रुओंके वधके लिये यत्न किया; परंतु वे उन्हें जीत न सके ॥ १४१ ॥

अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ॥१४२॥

तत्पश्चात् देवताओंने उमावल्लभ महेश्वरके समीप जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रसन्न किया और कहा—'प्रभो ! हमारे शत्रुओंका संहार कीजिये' ॥ १४२ ॥

प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ॥१४३॥

तब कल्याणकारी महादेवजीने देवताओंके समक्ष उनके शत्रुओंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा करके भृगुनन्दन परशुरामको बुलाकर इस प्रकार कहा— ॥ १४३ ॥

रिपून् भार्गव देवानां जहि सर्वान् समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥१४४॥

'भार्गव ! तुम तीनों लोकोंके हितकी इच्छासे तथा मेरी प्रसन्नताके लिये देवताओंके समस्त समागत शत्रुओंका वध करो' ॥ १४४ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् ।

उनके ऐसा कहनेपर परशुरामने वरदायक भगवान् त्रिलोचनको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १४४½ ॥

राम उवाच

का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे ॥१४५॥
निहन्तुं दानवान् सर्वान् कृतास्त्रान् युद्धदुर्मदान् ।

परशुराम बोले—देवेश्वर ! मैं तो अस्त्रविद्याका ज्ञाता नहीं हूँ । फिर युद्धस्थलमें अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा रणदुर्मद समस्त दानवोंका वध करनेके लिये मुझमें क्या शक्ति है ? ॥

महेश्वर उवाच

गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान् ॥१४६॥
विजित्य च रिपून् सर्वान्गुणान् प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।

महेश्वरने कहा—राम ! तुम मेरी आज्ञासे जाओ । निश्चय ही देव-शत्रुओंका संहार करोगे । उन समस्त वैरियोंपर विजय पाकर प्रचुर गुण प्राप्त कर लोगे ॥ १४६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥१४७॥
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान् प्रति ।
अब्रवीद् देवशत्रूंस्तान् महादर्पबलान्वितान् ॥१४८॥

उनकी यह बात सुनकर उसे सब प्रकारसे शिरोधार्य करके परशुराम स्वस्तिवाचन आदि मङ्गलकृत्य करनेके पश्चात् दानवोंका सामना करनेके लिये गये और महान् दर्प एवं बलसे सम्पन्न उन देवशत्रुओंसे इस प्रकार बोले— ॥१४७–१४८॥

मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो निर्जेतुं महासुराः ॥१४९॥

'युद्धके मदसे उन्मत्त रहनेवाले दैत्यो ! मुझे युद्ध प्रदान करो । महान् असुरगण ! मुझे देवाधिदेव महादेवजीने तुम्हें परास्त करनेके लिये भेजा है' ॥ १४९ ॥

इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान् निहत्य समरे दैत्यान् भार्गवनन्दनः ॥१५०॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।
स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥१५१॥

भृगुवंशी परशुरामके ऐसा कहनेपर दैत्य उनके साथ युद्ध करने लगे । भार्गवनन्दन रामने समराङ्गणमें वज्र और विद्युत्के समान स्पर्शवाले प्रहारोंद्वारा उन दैत्योंका वध कर डाला । साथ ही उन द्विजश्रेष्ठ जमदग्निकुमारके शरीरको भी दानवोंने क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १५०–१५१ ॥

संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।
प्रीतश्च भगवान् देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५२॥

परंतु महादेवजीके हाथोंका स्पर्श पाकर परशुरामजीके सारे घाव तत्काल दूर हो गये । परशुरामके उस शत्रुविजयरूपी कर्मसे भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १५२ ॥

वरान् प्रादाद् बहुविधान् भार्गवाय महात्मने ।
उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥१५३॥

उन देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शिवने बड़ी प्रसन्नताके साथ महात्मा भार्गवको नाना प्रकारके वर प्रदान किये ॥

निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद् रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥१५४॥
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद् यथेप्सितम् ।

उन्होंने कहा—'भृगुनन्दन ! दैत्योंके अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे तुम्हारे शरीरमें जो चोट पहुँची है, उससे तुम्हारा मानवो-

चित कर्म नष्ट हो गया (अब तुम देवताओंके ही समान हो गये); अतः मुझसे अपनी इच्छाके अनुसार दिव्यास्त्र ग्रहण करो ॥' १५४½ ॥

दुर्योधन उवाच

ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥ १५५ ॥
लब्ध्वा बहुविधान् रामः प्रणम्य शिरसा भवम्।
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ॥ १५६ ॥

दुर्योधन कहता है—राजन् ! तब रामने भगवान् शिवसे समस्त दिव्यास्त्र और नाना प्रकारके मनोवाञ्छित वर पाकर उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वे महातपस्वी परशुराम देवेश्वर शिवसे आज्ञा लेकर चले गये ॥

एवमेतत् पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥ १५७ ॥
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना।

राजन् ! इस प्रकार यह पुरातन वृत्तान्त उस समय ऋषिने मेरे पिताजीसे कहा था। पुरुषसिंह ! भृगुनन्दन परशुरामने भी अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे महामना कर्णको दिव्य धनुर्वेद प्रदान किया है ॥ १५७½ ॥

वृजिनं हि भवेत् किंचिद् यदि कर्णस्य पार्थिव ॥ १५८ ॥
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद् भृगुनन्दनः।

भूपाल ! यदि कर्णमें कोई पाप या दोष होता तो भृगुनन्दन परशुराम इसे दिव्यास्त्र न देते ॥ १५८½ ॥

नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथंचन ॥ १५९ ॥
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम्।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥ १६० ॥

राजन् ! मैं किसी तरह इस बातपर विश्वास नहीं करता कि कर्ण सूतकुलमें उत्पन्न हुआ है। मैं इसे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न देवपुत्र मानता हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि इसकी माताने अपने गुप्त रहस्यको छिपानेके लिये तथा इसे अन्य कुलका बालक विख्यात करनेके लिये ही सूतकुलमें छोड़ दिया होगा ॥ १५९-१६० ॥

सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥ १६१ ॥
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति।

शल्य ! मैं सर्वथा इस बातपर विश्वास करता हूँ कि इस कर्णका जन्म सूतकुलमें नहीं हुआ है। इस महाबाहु महारथी और सूर्यके समान तेजस्वी कुण्डल-कवचविभूषित पुत्रको सूतजातिकी स्त्री कैसे पैदा कर सकती है ? क्या कोई हरिणी अपने पेटसे बाघको जन्म दे सकी है ? ॥ १६१½ ॥

यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ ॥ १६२ ॥
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
न त्वेष प्राकृतः कश्चित् कर्णो वैकर्तनो वृषः।
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ १६३ ॥

राजेन्द्र ! गजराजके शुण्डदण्डके समान जैसी इसकी मोटी भुजाएँ हैं तथा समस्त शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ जैसा इसका विशाल वक्षःस्थल है, उससे सूचित होता है कि परशुरामजीका यह प्रतापी शिष्य महामनस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण कोई प्राकृत पुरुष नहीं है ॥ १६२-१६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुरवधोपाख्यानविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७½ श्लोक मिलाकर कुल १७०½ श्लोक हैं)

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

शल्य और दुर्योधनका वार्तालाप, कर्णका सारथि होनेके लिये शल्यकी स्वीकृति

दुर्योधन उवाच

एवं स भगवान् देवः सर्वलोकपितामहः।
सारथ्यमकरोत् तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद् रथी ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन् ! इस प्रकार सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्माने वहाँ सारथिका कार्य किया और रथी हुए रुद्र ॥

रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्तव्यो रथसारथिः।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ॥ २ ॥

वीर ! रथका सारथि तो उसीको बनाना चाहिये, जो रथीसे भी बढ़कर हो। अतः पुरुषसिंह ! आप युद्धमें कर्णके घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ २ ॥

यथा देवगणैस्तत्र वृतो यत्नात् पितामहः।
तथास्माभिर्भवान् यत्नात् कर्णादभ्यधिको वृतः ॥ ३ ॥

जैसे देवताओंने वहाँ यत्नपूर्वक ब्रह्माजीका वरण किया था, उसी प्रकार हमलोगोंने विशेष चेष्टा करके कर्णसे भी अधिक बलवान् आपका सारथि-कर्मके लिये वरण किया ॥ ३ ॥

यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥ ४ ॥
नियच्छ तुरगान् युद्धे राधेयस्य महाद्युते।

महाराज ! जैसे देवताओंने महादेवजीसे भी बड़े ब्रह्माजीको उनका सारथि चुना था, उसी प्रकार हमने भी आपको चुना है। अतः महातेजस्वी नरेश ! आप युद्धमें राधापुत्र कर्णके घोड़ोंका नियन्त्रण कीजिये ॥ ४½ ॥

शल्य उवाच

मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशोऽमरसिंहयोः ॥ ५ ॥

कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम्।
यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ॥ ६ ॥
यथासुराश्च निहता इषुणैकेन भारत।

शल्यने कहा—भारत ! नरश्रेष्ठ ! मैंने भी देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और महादेवजीके इस अलौकिक एवं दिव्य उपाख्यान-को विद्वानोंके मुखसे सुना है कि किस प्रकार प्रपितामह ब्रह्मा-जीने महादेवजीका सारथि-कर्म किया था ? और कैसे एक ही बाणसे समस्त असुर मारे गये ? ॥ ५-६½ ॥

कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत् पुरा ह्यभूत् ॥ ७ ॥
यथा पितामहो जज्ञे भगवान् सारथिस्तदा।

भगवान् ब्रह्मा उस समय जिस प्रकार महादेवजीके सारथि हुए थे, यह सारा पुरातन वृत्तान्त श्रीकृष्णको भी विदित ही होगा ॥ ७½ ॥

अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ॥ ८ ॥
एतदर्थं विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान्।
स्वयंभूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥ ९ ॥

क्योंकि श्रीकृष्ण भी भूत और भविष्यको यथार्थरूपसे जानते हैं। भारत! इस विषयको अच्छी तरह जानकर ही रुद्रके सारथि ब्रह्माजीके समान श्रीकृष्ण पार्थके सारथि बने हुए हैं ॥

यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथंचन।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः ॥ १० ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम्।

यदि सूतपुत्र कर्ण किसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनको मार डालेगा तो अर्जुनको मारा गया देख श्रीकृष्ण स्वयं ही युद्ध करेंगे। उनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा होगी। वे तुम्हारी सेनाको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ १०½ ॥

न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव।

महात्मा श्रीकृष्ण कुपित होकर जब हथियार उठायेंगे, उस समय तुम्हारे पक्षका कोई भी नरेश उनके सामने ठहर नहीं सकेगा ॥ ११½ ॥

संजय उवाच

तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिंदमः ॥ १२ ॥
प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव।

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराज शल्यको ऐसी बातें करते देख आपके शत्रुदमन पुत्र महाबाहु दुर्योधनने मनमें तनिक भी दीनता न लाकर उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १२½ ॥

मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ १३ ॥
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम्।

'महाबाहो ! तुम रणक्षेत्रमें वैकर्तन कर्णका अपमान न करो। वह सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका पारङ्गत विद्वान् है ॥ १३½ ॥

यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥ १४ ॥
पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश।

'यह वही वीर है जिसकी प्रत्यञ्चाकी अत्यन्त भयानक टङ्कार सुनकर पाण्डव-सेना दसों दिशाओंमें भागने लगती है ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥ १५ ॥
मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः।

'महाबाहो ! यह तो तुमने अपनी आँखों देखा था कि किस प्रकार उस दिन रातमें सैकड़ों मायाओंका प्रयोग करने-वाला मायावी घटोत्कच कर्णके हाथसे मारा गया ॥ १५½ ॥

न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथंचन ॥ १६ ॥
एतांश्च दिवसान् सर्वान् भयेन महता वृतः।

'इन सारे दिनोंमें महान् भयसे घिरे हुए अर्जुन किसी तरह भी कर्णके सामने खड़े न हो सके थे ॥ १६½ ॥

भीमसेनश्च बलवान् धनुष्कोट्याभिचोदितः ॥ १७ ॥
उक्तश्च संज्ञया राजन् मूढ औदरिको यथा।

'राजन् ! बलवान् भीमसेनको भी इसने अपने धनुषकी कोटिसे दबाकर युद्धके लिये प्रेरित किया था और उन्हें मूर्ख, पेटू आदि नामोंसे पुकारा था ॥ १७½ ॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥ १८ ॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष।

'मान्यवर ! इसने महासमरमें शूरवीर नकुल-सहदेवको भी परास्त करके किसी विशेष प्रयोजनको सामने रखकर उन दोनों-को युद्धमें मार नहीं डाला ॥ १८½ ॥

येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ १९ ॥
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात् कृतः।

'इसने वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्वतशिरोमणि शूरवीर सात्यकिको समराङ्गणमें परास्त करके उन्हें बलपूर्वक रथहीन कर दिया था ॥ १९½ ॥

सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ २० ॥
असकृन्निर्जिताः संख्ये स्मयमानेन संयुगे।

'इसके सिवा धृष्टद्युम्न आदि समस्त सृञ्जयोंको भी इसने युद्धस्थलमें हँसते-हँसते अनेक बार परास्त किया है ॥ २०½ ॥

तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम् ॥ २१ ॥
यो हन्यात् समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरंदरम्।

'जो कुपित होनेपर वज्रधारी इन्द्रको भी समरभूमिमें मार डालनेकी शक्ति रखता है, उस महारथी वीर कर्णको पाण्डव-लोग युद्धमें कैसे जीत लेंगे ? ॥ २१½ ॥

त्वं च सर्वास्त्रविद् वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः ॥ २२ ॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन।

'आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, समस्त विद्याओं तथा अस्त्रोंके पारङ्गत विद्वान् एवं वीर हैं। इस भूतलपर बाहुबल-के द्वारा आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २२½ ॥

त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥ २३ ॥
ततस्त्वमुच्यसे राजञ्शल्य इत्यरिसूदन ।

'शत्रुसूदन नरेश ! आप पराक्रम प्रकट करते समय शत्रुओंके लिये असह्य हो उठते हैं, उनके लिये आप शल्यभूत (कण्टकस्वरूप) हैं; इसीलिये आपको शल्य कहा जाता है ॥

तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः ॥ २४ ॥
तव बाहुबलाद् राजन् किं नु कृष्णो बलाधिकः ।

'राजन् ! आपके बाहुबलको सामने पाकर सम्पूर्ण सात्वत-वंशी क्षत्रिय कभी युद्धमें टिक न सके हैं । क्या आपके बाहुबल-से श्रीकृष्णका बल अधिक है ? ॥ २४½ ॥

यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते ॥ २५ ॥
तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद् बलम् ।

'जैसे अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण पाण्डव-सेनाकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार यदि कर्ण मारा गया तो आपको मेरी विशाल वाहिनीका संरक्षण करना होगा ॥ २५½ ॥

किमर्थं समरे सैन्यं वासुदेवो न्यवारयत् ॥ २६ ॥
किमर्थं च भवान् सैन्यं न हनिष्यति मारिष ।

'मान्यवर ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण क्यों कौरव-सेनाका निवारण करेंगे और क्यों आप पाण्डव-सेनाका वध नहीं करेंगे?॥

त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष ।
सोदराणां च वीराणां सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ २७ ॥

'माननीय नरेश ! मैं तो आपके ही भरोसे युद्धमें मारे गये अपने वीर भाइयों तथा समस्त राजाओंके (ऋणसे मुक्त होनेके लिये उन्हींके) पथपर चलनेकी इच्छा करता हूँ' ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—मानद ! गान्धारीनन्दन ! तुम सम्पूर्ण सेनाके आगे जो मुझे देवकीपुत्र श्रीकृष्णसे बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २८ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ २९ ॥

वीर ! मैं यशस्वी राधापुत्र कर्णका पाण्डवशिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते समय सारथ्य करूँगा जैसा कि तुम चाहते हो ॥ २९ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ३० ॥

वीरवर ! परंतु वैकर्तन कर्णको मेरी एक शर्तका पालन करना होगा । मैं इसके समीप जो जीमें आयेगा, वैसी बातें करूँगा ॥ ३० ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष ।
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य संनिधौ ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! तब समस्त क्षत्रियोंके समीप कर्णसहित आपके पुत्रने मद्रराज शल्यसे कहा—'बहुत अच्छा, आपकी शर्त स्वीकार है' ॥ ३१ ॥

सारथ्यस्याभ्युपगमाच्छल्येनाश्वासितस्तदा ।
दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥ ३२ ॥

सारथ्य स्वीकार करके जब शल्यने आश्वासन दिया, तब राजा दुर्योधनने बड़े हर्षके साथ कर्णको हृदयसे लगा लिया ॥

अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव ।
जहि पार्थान् रणे सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् वन्दीजनोंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए आपके पुत्रने कर्णसे फिर कहा—'वीर ! तुम रणक्षेत्रमें कुन्तीके समस्त पुत्रोंको उसी प्रकार मार डालो, जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं' ॥ ३३ ॥

स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने ।
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥ ३४ ॥

शल्यके द्वारा अश्वोंका नियन्त्रण स्वीकार कर लिये जाने-पर कर्ण प्रसन्नचित्त हो पुनः दुर्योधनसे बोला—॥ ३४ ॥

नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते ।
राजन् मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥ ३५ ॥

'राजन् ! ये मद्रराज शल्य अधिक प्रसन्न होकर बात नहीं कर रहे हैं; अतः तुम मधुर वाणीद्वारा इन्हें फिरसे समझाते हुए कुछ कहो' ॥ ३५ ॥

ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम् ॥ ३६ ॥
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा ।

तब सम्पूर्ण अस्त्रोंके संचालनमें कुशल, परम बुद्धिमान् एवं बलवान् राजा दुर्योधनने मद्रदेशके राजा पृथ्वीपति शल्य-को सम्बोधित करके अपने स्वरसे वहाँके प्रदेशको गुँजाते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा इस प्रकार कहा—॥३६½॥

शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥ ३७ ॥
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ।

'शल्य ! आज कर्ण अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखता है । पुरुषसिंह ! आप रणस्थलमें इसके घोड़ोंको काबूमें रक्खें ॥ ३७½ ॥

कर्णो हत्वेतरान् सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति ॥३८॥
तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे त्वां पुनः पुनः ।

'कर्ण अन्य सब शत्रुवीरोंका संहार करके अर्जुनका वध करना चाहता है । राजन् ! आपसे उसके घोड़ोंकी बागडोर सँभालनेके लिये मैं बारंबार याचना करता हूँ ॥ ३८½ ॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥ ३९ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सचिव तथा सारथि हैं, उसी प्रकार आप भी राधापुत्र कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये' ॥ ३९ ॥

संजय उवाच

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत्।
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥ ४० ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तब मद्रराज शल्यने प्रसन्न हो आपके पुत्र शत्रुसूदन दुर्योधनको हृदयसे लगाकर कहा ॥ ४० ॥

शल्य उवाच

एवं चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन।
तस्मात् ते यत् प्रियं किंचित् तत् सर्वं करवाण्यहम्॥४१॥

शल्य बोले—गान्धारीनन्दन ! प्रियदर्शन नरेश ! यदि तुम ऐसा समझते हो तो तुम्हारा जो कुछ प्रिय कार्य है, वह सब मैं करूँगा ॥ ४१ ॥

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित्।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यधुरं तव ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं जहाँ कहीं कभी भी जिस कर्मके योग्य होऊँ, वहाँ उस कर्ममें तुम्हारे द्वारा नियुक्त कर दिये जानेपर मैं सम्पूर्ण हृदयसे उस कार्यभारको वहन करूँगा ॥ ४२ ॥

यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये।
मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः ॥ ४३ ॥

परंतु मैं हितकी इच्छा रखते हुए कर्णसे जो भी प्रिय अथवा अप्रिय वचन कहूँ, वह सब तुम और कर्ण सर्वथा क्षमा करो ॥ ४३ ॥

कर्ण उवाच

ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः ॥ ४४ ॥

कर्णने कहा—मद्रराज ! जैसे ब्रह्मा महादेवजीके और श्रीकृष्ण अर्जुनके हितमें सदा तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार आप भी निरन्तर हमारे हितसाधनमें संलग्न रहें ॥ ४४ ॥

शल्य उवाच

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥

शल्य बोले—अपनी निन्दा और प्रशंसा, परायी निन्दा और परायी स्तुति—ये चार प्रकारके बर्ताव श्रेष्ठ पुरुषोंने कभी नहीं किये हैं ॥ ४५ ॥

यत् तु विद्वन् प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ४६ ॥

परंतु विद्वन् ! मैं तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये जो अपनी प्रशंसासे भरी बात कहता हूँ, उसे तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥

अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत् प्रभो।
अप्रमादात् प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥ ४७ ॥

प्रभो ! मैं सावधानी, अश्वसंचालन, ज्ञान, विद्या तथा चिकित्सा आदि सद्गुणोंकी दृष्टिसे इन्द्रके सारथि-कर्ममें नियुक्त मातलिके समान सुयोग्य हूँ ॥ ४७ ॥

ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ।
वाहयिष्यामि तुरगान् विज्वरो भव सूतज ॥ ४८ ॥

निष्पाप सूतपुत्र कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें अर्जुनके साथ युद्ध करोगे, तब मैं तुम्हारे घोड़े अवश्य हाँकूँगा। तुम निश्चिन्त रहो ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यके सारथिकर्मको स्वीकार करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

कर्णका युद्धके लिये प्रस्थान और शल्यसे उसकी बातचीत

दुर्योधन उवाच

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण ! ये मद्रराज शल्य तुम्हारा सारथ्यकर्म करेंगे। देवराज इन्द्रके सारथि मातलिके समान ये श्रीकृष्णसे भी श्रेष्ठ रथसंचालक हैं ॥ १ ॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥ २ ॥

जैसे मातलि इन्द्रके घोड़ोंसे जुते हुए रथकी बागडोर सँभालते हैं, उसी प्रकार ये तुम्हारे रथके घोड़ोंको काबूमें रखेंगे ॥ २ ॥

योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥ ३ ॥

जब तुम योद्धा बनकर रथपर बैठोगे और मद्रराज शल्य सारथिके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे, उस समय वह श्रेष्ठ रथ निश्चय ही युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्रोंको पराजित कर देगा ॥ ३ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम्।
उवाच राजन् संग्रामेऽध्युषिते पर्युपस्थिते ॥ ४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने प्रातःकाल युद्ध उपस्थित होनेपर पुनः वेगशाली मद्रराज शल्यसे कहा—॥ ४ ॥

कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान् ।
त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनंजयम् ॥ ५ ॥

'मद्रराज ! आप संग्राममें कर्णके इन उत्तम घोड़ोंको वशमें कीजिये । आपसे सुरक्षित होकर राधापुत्र कर्ण निश्चय ही अर्जुनको जीत लेगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत ।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत् ॥ ६ ॥
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत् त्वरन् ।

भारत ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शल्यने रथका स्पर्श करके कहा—'तथास्तु ।' जब शल्यने सारथि होना पूर्णरूपसे स्वीकार कर लिया, तब कर्णने प्रसन्नचित्त होकर बारंबार अपने पूर्व सारथिसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'सूत ! तुम मेरा रथ सजाकर तैयार करो' ॥ ६½ ॥

ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् ॥ ७ ॥
विधिवत् कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ।

तब सारथिने गन्धर्वनगरके समान विशाल, विजयशील श्रेष्ठ और मङ्गलकारक रथको विधिपूर्वक सुसज्जित करके सूचित किया—'स्वामिन् ! आपकी जय हो ! रथ तैयार है' ॥ ७½ ॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ८ ॥
सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा ।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ॥ ९ ॥
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत् ।

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने वेदज्ञ पुरोहितद्वारा पहलेसे ही जिसका माङ्गलिक कृत्य सम्पन्न कर दिया गया था, उस रथकी विधिपूर्वक पूजा और प्रदक्षिणा की । तत्पश्चात् सूर्यदेवका प्रयत्नपूर्वक उपस्थान करके पास ही खड़े हुए मद्रराजसे कहा—'पहले आप रथपर बैठिये' ॥ ८-९½ ॥

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् ॥ १० ॥
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् ।

तदनन्तर जैसे सिंह पर्वतपर चढ़ता है, उसी प्रकार महातेजस्वी शल्य कर्णके दुर्जय, विशाल एवं श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हुए ॥ १०½ ॥

ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम् ॥ ११ ॥
अध्यतिष्ठद् यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः ।

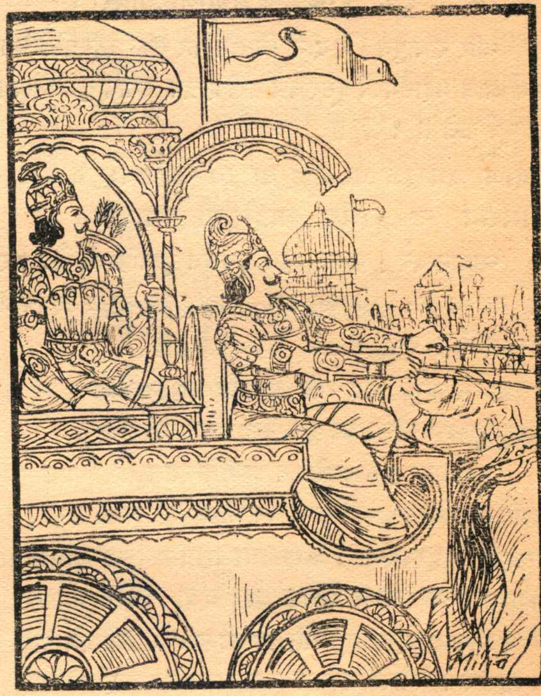
कर्ण अपने उत्तम रथको सारथि शल्यसे सनाथ हुआ देख स्वयं भी उसपर आरूढ़ हुआ, मानो सूर्यदेव बिजलियोंसे युक्त मेघपर प्रतिष्ठित हुए हों ॥ ११½ ॥

तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ॥ १२ ॥
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि ।

जैसे आकाशमें किसी महान् मेघखण्डपर एक साथ बैठे हुए सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हों, उसी प्रकार सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी कर्ण और शल्य उस एक ही रथपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पाने लगे ॥ १२½ ॥

संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ ॥ १३ ॥
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे ।

उस समय उन दोनों परम तेजस्वी वीरोंकी उसी प्रकार स्तुति होने लगी, जैसे यज्ञमण्डपमें ऋत्विजों और सदस्योंद्वारा इन्द्र और अग्नि देवताका स्तवन किया जाता है ॥



स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ ॥ १४ ॥
धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः ।

शल्यने घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ले ली । उस रथपर बैठा हुआ कर्ण अपने भयंकर धनुषको फैलाकर उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो सूर्यमण्डलपर घेरा पड़ा हो ॥

आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ॥ १५ ॥
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान् ।

उस श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ पुरुषसिंह कर्ण अपनी बाणमयी किरणोंसे युक्त हो मन्दराचलके शिखरपर देदीप्यमान होनेवाले सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १५½ ॥

तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् ॥ १६ ॥
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ।
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ॥ १७ ॥
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

युद्धके लिये रथपर बैठे हुए अमिततेजस्वी महाबाहु

राधापुत्र कर्णसे दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'वीर ! अधिरथकुमार ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य और भीष्म भी जिसे न कर सके, वही दुष्कर कर्म तुम सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते कर डालो ॥ १६–१७½ ॥

मनोगतं मम ह्यासीद् भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ १८ ॥
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ।

'मेरे मनमें यह विश्वास था कि 'महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अर्जुन और भीमसेनको अवश्य ही मार डालेंगे' ॥

ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥ १९ ॥
तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।

'वीर राधापुत्र ! वे दोनों जिसे न कर सके, वही वीरोचित कर्म आज महासमरमें दूसरे वज्रधारी इन्द्रके समान तुम निश्चय ही पूर्ण करो ॥ १९½ ॥

गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनंजयम् ॥ २० ॥
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।

'राधानन्दन ! या तो तुम धर्मराज युधिष्ठिरको कैद कर लो या अर्जुन, भीमसेन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको मार डालो ॥ २०½ ॥

जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।

'पुरुषप्रवर ! तुम्हारी जय हो । कल्याण हो । अब तुम जाओ और पाण्डुपुत्रकी सारी सेनाओंको भस्म करो' ॥२१½॥

ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ॥ २२ ॥
वाद्यमानान्यराजन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।

तदनन्तर सहस्रों तूर्य और कई सहस्र रणभेरियाँ बज उठीं, जो आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान प्रतीत हो रही थीं २२½

प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥ २३ ॥
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।
चोदयाश्वान् महाबाहो यावद्धन्मि धनंजयम् ॥ २४ ॥
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ।

रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णने दुर्योधनके उस आदेशको शिरोधार्य करके युद्धकुशल राजा शल्यसे कहा—'महाबाहो ! मेरे घोड़ोंको बढ़ाइये, जिससे कि मैं अर्जुन, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध कर सकूँ ॥

अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनंजयः ॥ २५ ॥
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।

'शल्य ! आज सैकड़ों और सहस्रों कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी वर्षा करते हुए मुझ कर्णके बाहुबलको अर्जुन देखें ॥ २५½ ॥

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान् परमतेजनान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ।

'शल्य ! आज मैं पाण्डवोंके विनाश और दुर्योधनकी विजयके लिये अत्यन्त तीखे बाण चलाऊँगा' ॥ २६½ ॥

शल्य उवाच

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रज्ञान् महेष्वासान् सर्वानेव महाबलान् ।
अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान् सत्यविक्रमान् ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—सूतपुत्र ! तुम पाण्डवोंकी अवहेलना कैसे करते हो । वे सब-के-सब तो सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, महाधनुर्धर, महाबलवान्, युद्धसे पीछे न हटनेवाले, अजेय तथा सत्यपराक्रमी हैं ॥ २७-२८ ॥

अपि संजनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि ।

वे साक्षात् इन्द्रके मनमें भी भय उत्पन्न कर सकते हैं । राधापुत्र ! जब तुम युद्धस्थलमें वज्रकी गड़गड़ाहटके समान गाण्डीव धनुषका गम्भीर घोष सुनोगे, तब ऐसी बातें नहीं कहोगे ॥ २९½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे ॥ ३० ॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि ।

जब तुम देखोगे कि भीमसेनने संग्रामभूमिमें गजराजोंकी सेनाके दाँत तोड़-तोड़कर उसका संहार कर डाला है, तब तुम इस प्रकार नहीं बोल सकोगे ॥ ३०½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ॥ ३१ ॥
शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे ।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारीँल्लघुहस्तान् दुरासदान् ।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ३२ ॥

जब तुम्हें यह दिखायी देगा कि संग्राममें धर्मपुत्र युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव तथा अन्यान्य दुर्जय भूपाल बड़ी शीघ्रताके साथ हाथ चला रहे हैं, अपने तीखे बाणोंद्वारा आकाशमें मेघोंकी छायाके समान छाया कर रहे हैं, निरन्तर बाणवर्षा करते और शत्रुओंका संहार किये डालते हैं, तब तुम ऐसी बातें मुँहसे न निकाल सकोगे ॥ ३१-३२ ॥

संजय उवाच

अनादृत्य तु तद् वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत् कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराजकी कही हुई उस बातकी उपेक्षा करके कर्णने उन वेगशाली मद्रनरेशसे कहा—'चलिये, चलिये' ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसंवादे षट्‌त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यसंवादविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

कौरवसेनामें अपशकुन, कर्णकी आत्मप्रशंसा, शल्यके द्वारा उसका उपहास और अर्जुनके बल-पराक्रमका वर्णन

संजय उवाच

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम्।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब महाधनुर्धर कर्ण युद्धकी इच्छासे समराङ्गणमें डटकर खड़ा हो गया, तब समस्त कौरव बड़े हर्षमें भरकर सब ओर कोलाहल करने लगे॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम्॥ २॥
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।

तदनन्तर आपके पक्षके समस्त वीर दुन्दुभि और भेरियोंकी ध्वनि, बाणोंकी सनसनाहट और वेगशाली वीरोंकी विविध गर्जनाओंके साथ युद्धके लिये निकल पड़े। उनके मनमें यह निश्चय था कि अब मौत ही हमें युद्धसे निवृत्त कर सकेगी॥

प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च॥ ३॥
चचाल पृथिवी राजन् ववाश च सुविस्तरम्।

राजन् ! कर्ण और कौरव योद्धाओंके प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करनेपर धरती डोलने और बड़े जोर-जोरसे अव्यक्त शब्द करने लगी॥ ३½॥

निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात् सप्त महाग्रहाः॥ ४॥
उल्कापाताश्च संजज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च।
शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः॥ ५॥

उस समय सूर्यमण्डलसे सात बड़े-बड़े ग्रह निकलते दिखायी दिये, उल्कापात होने लगे, दिशाओंमें आग-सी जल उठी, बिना वर्षाके ही बिजलियाँ गिरने लगीं और भयानक आँधी चलने लगी॥ ४-५॥

मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम्॥ ६॥

बहुतेरे मृग और पक्षी महान् भयकी सूचना देते हुए अनेक बार आपकी सेनाको दाहिने करके चले गये॥ ६॥

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद् भयानकम्॥ ७॥

कर्णके प्रस्थान करते ही उसके घोड़े पृथ्वीपर गिर पड़े और आकाशसे हड्डियोंकी भयंकर वर्षा होने लगी॥ ७॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते॥ ८॥

प्रजानाथ ! कौरवोंके शस्त्र जल उठे, ध्वज हिलने लगे और वाहन आँसू बहाने लगे॥ ८॥

एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः॥ ९॥

ये तथा और भी बहुतसे भयंकर उत्पात वहाँ प्रकट हुए, जो कौरवोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे॥ ९॥

न च तान् गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः।
निर्जितान् पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः॥ १०॥

परंतु दैवसे मोहित होनेके कारण उन सबने उन उत्पातोंको कुछ गिना ही नहीं। सूतपुत्रके प्रस्थान करनेपर सब राजा उसकी जय-जयकार बोलने लगे। कौरवोंको यह विश्वास हो गया कि अब पाण्डव परास्त हो जायँगे॥ १०॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता
भीष्मद्रोणावस्तवीर्यौ समीक्ष्य।
समुज्ज्वलद्भास्करपावकाभो
वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप॥ ११॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं
पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः
क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च॥ १२॥

नरेश्वर ! तदनन्तर प्रकाशमान सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, शत्रुवीरोंका संहार करनेमें समर्थ एवं रथपर बैठा हुआ रथिश्रेष्ठ कर्ण यह देखकर कि भीष्म और द्रोणाचार्यके पराक्रमका लोप हो गया, अर्जुनके अलौकिक कर्मका चिन्तन करके अभिमान और दर्पसे दग्ध हो उठा तथा क्रोधसे जलता हुआ-सा लंबी-लंबी साँस खींचने लगा। उस समय उसने शल्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ११-१२॥

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः
क्रुद्धाद् बिभेम्यायुधवान् रथस्थः।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयाना-
नतीव मां ह्यस्थिरता जहाति॥ १३॥

'राजन् ! मैं हाथमें आयुध लेकर रथपर बैठा रहूँ, उस अवस्थामें यदि वज्र धारण करनेवाले इन्द्र भी कुपित होकर आ जायँ तो उनसे भी मुझे भय न होगा। भीष्म आदि महारथियोंको रणभूमिमें सदाके लिये सोया हुआ देखकर भी अस्थिरता (घबराहट) मुझसे दूर ही रहती है॥ १३॥

महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ
रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परै-
स्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम्॥ १४॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य देवराज इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी, सबके द्वारा प्रशंसित, रथों, घोड़ों और गजराजोंको भी मथ डालनेवाले तथा अवध्य-तुल्य थे, जब उन्हें भी शत्रुओंने मार डाला, तब मेरी क्या गिनती है ? यह सोचकर भी आज मुझे रणभूमिमें कोई भय नहीं हो रहा है ॥ १४ ॥

समीक्ष्य संख्येऽतिबलान् नराधिपान्
ससूतमातङ्गरथान् परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान् रणेऽवधीद्
महास्त्रविद् ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः॥ १५ ॥

'युद्धस्थलमें अत्यन्त बलवान् नरेशोंको सारथि, रथ और हाथियोंसहित शत्रुओंद्वारा मारा गया देखकर भी महान् अस्त्रवेत्ता ब्राह्मणशिरोमणि आचार्य द्रोणने रणभूमिमें समस्त शत्रुओंका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ १५ ॥

स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे
ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद् रणेऽर्जुनं
समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६ ॥

'अतः महासमरमें मारे गये द्रोणाचार्यका स्मरण करके मैं सत्य कहता हूँ, कौरवो ! तुमलोग ध्यान देकर सुनो । मेरे सिवा दूसरा कोई रणभूमिमें अर्जुनका वेग नहीं सह सकता । वे सामने आये हुए भयानक रूपधारी मृत्युके समान हैं ॥

शिक्षाप्रमादश्च बलं धृतिश्च
द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा
सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७ ॥

'शिक्षा, सावधानी, बल, धैर्य, महान् अस्त्र और विनय—ये सभी सद्गुण द्रोणाचार्यमें विद्यमान थे । वे महात्मा द्रोण भी यदि मृत्युके वशमें पड़ गये तो अन्य सब लोगोंको भी मैं मरणासन्न ही समझता हूँ ॥ १७ ॥

नेह ध्रुवं किंचिदपि प्रचिन्तयन्
विद्यां लोके कर्मणो नित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ १८ ॥

'बहुत सोचनेपर भी मैं कर्म-सम्बन्धकी अनित्यताके कारण इस लोकमें किसी भी वस्तुको नित्य नहीं मानता । जब आचार्य द्रोण भी मार दिये गये, तब कौन संदेहरहित होकर आगामी सूर्योदयतक जीवित रहनेका दृढ़ विश्वास कर सकता है ? ॥ १८ ॥

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः
क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं
तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १९ ॥

'निश्चय ही अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, अच्छी नीति अथवा उत्तम आयुध आदि किसी मनुष्यको सुख पहुँचानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; क्योंकि इन सब साधनोंके होते हुए भी आचार्यको शत्रुओंने युद्धमें मार डाला है ॥ १९ ॥

हुताशनादित्यसमानतेजसं
पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं
न चैनमस्त्रं तदुपास्त दुःसहम् ॥ २० ॥

'अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी तथा सदा बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान नीतिमान् इन गुरुदेवको बचानेके लिये इनके दुःसह अस्त्र आदि पास न आ सके अर्थात् उनकी रक्षा नहीं कर सके ॥

सम्प्राकुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे
पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य
प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम् ॥ २१ ॥

'शल्य ! (द्रोणाचार्यके मारे जानेपर) जब सब ओर त्राहि-त्राहिकी पुकार हो रही है, स्त्रियाँ और बच्चे विलख-विलखकर रो रहे हैं तथा दुर्योधनका पुरुषार्थ दब गया है, ऐसे समयमें दुर्योधनको मेरी सहायताकी विशेष आवश्यकता है । मैं अपने इस कर्तव्यको अच्छी तरह समझता हूँ । इस-लिये तुम शत्रुओंकी सेनाकी ओर चलो ॥ २१ ॥

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसंधो
व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च
यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः ॥ २२ ॥

'जहाँ सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृंजय वीर तथा नकुल और सहदेव डटे हुए हैं, वहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन उन वीरोंका वेग सह सकता है ? ॥ २२ ॥

तस्मात् क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि
रणे पञ्चालान् पाण्डवान् सृञ्जयांश्च ।
तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय ॥ २३ ॥

'इसलिये मद्रराज ! तुम शीघ्र ही रणभूमिमें पाञ्चाल, पाण्डव तथा सृंजय वीरोंकी ओर रथ ले चलो । आज युद्धस्थलमें उन सबके साथ भिड़कर या तो उन्हें ही मार डालूँगा या स्वयं ही द्रोणाचार्यके मार्गसे यमलोक चला जाऊँगा ॥ २३ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये
तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ २४ ॥

'शल्य ! मैं उन शूरवीरोंके बीचमें नहीं जाऊँगा, ऐसा मुझे न समझो; क्योंकि संग्राममें पीछे हटनेपर मित्रद्रोह होगा और यह मित्रद्रोह मेरे लिये असह्य है। इसलिये मैं प्राणोंका परित्याग करके द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करूँगा ॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते
नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य ।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्
दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ २५ ॥

'विद्वान् हो या मूर्ख, आयुकी समाप्ति होनेपर सभीका यमराजके द्वारा यथायोग्य सत्कार होता है। उससे किसीको छुटकारा नहीं मिलता । अतः विद्वन् ! मैं कुन्तीके पुत्रोंपर अवश्य चढ़ाई करूँगा । निश्चय ही दैवके विधानको कोई पलट नहीं सकता ॥ २५ ॥

कल्याणवृत्तः सततं हि राजा
वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थसिद्धयर्थमहं त्यजामि
प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च ॥२६॥

'धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सदा ही मेरे कल्याण-साधनमें तत्पर रहा है; अतः आज उसके मनोरथकी सिद्धिके लिये मैं अपने प्रिय भोगोंको और जिसे त्यागना अत्यन्त कठिन है, उस जीवनको भी त्याग दूँगा ॥ २६ ॥

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं
हैमत्रिकोषं रजतत्रिवेणुम् ।
रथप्रवर्हं तुरगप्रबर्है-
र्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥ २७ ॥

'गुरुवर परशुरामजीने मुझे यह व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और उत्तम अश्वोंसे जुता हुआ श्रेष्ठ रथ प्रदान किया है। इसमें तीन सुवर्णमय कोष और रजतमय त्रिवेणु सुशोभित हैं। इसके धुरों और पहियोंसे कोई आवाज नहीं निकलती है ॥

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य
ध्वजान् गदाः सायकांश्चोग्ररूपान् ।
असिं च दीप्तं परमायुधं च
शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८ ॥

'शल्य ! तत्पश्चात् उन्होंने भलीभाँति इस रथका निरीक्षण करके बहुत-से विचित्र धनुष, भयंकर बाण, ध्वज, गदा, खड्ग, चमचमाते हुए उत्तम आयुध तथा गम्भीर ध्वनिसे युक्त भयंकर श्वेत शङ्ख भी दिये थे ॥ २८ ॥

पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं
सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं
रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९ ॥

'यह रथ सब रथोंसे उत्तम है। इसमें पताकाएँ फहरा रही हैं, सफेद घोड़े जुते हुए हैं और सुन्दर तरकस इसकी शोभा बढ़ाते हैं। चलते समय इस रथकी धमकसे वज्रपातके समान शब्द होता है । मैं इस रथपर बैठकर रणभूमिमें अर्जुनको बलपूर्वक मार डालूँगा ॥ २९ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य
यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ३० ॥

'यदि सबका संहार करनेवाली मृत्यु सदा सावधान रहकर समराङ्गणमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करे तो रणक्षेत्रमें उससे भी भिड़कर या तो मैं उसे ही मार डालूँगा या स्वयं ही भीष्मके सम्मुख यमलोकको चला जाऊँगा ॥ ३० ॥

यमवरुणकुबेरवासवा वा
यदि युगपत्सगणा महाहवे ।
जुगुपिषव इहैत्य पाण्डवं
किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ३१ ॥

'अधिक कहनेसे क्या लाभ ? यदि इस महासमरमें अपने गणोंसहित यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी एक साथ आकर यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करना चाहें तो मैं उन सबके साथ ही उन्हें जीत लूँगा' ॥ ३१ ॥

संजय उवाच

इति रणरभसस्य कत्थत-
स्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट् ।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्
प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ३२॥

संजय कहते हैं--राजन् ! पराक्रमी मद्रराज शल्य युद्धके उत्साहमें भरकर बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले कर्णके उस कथन-को सुनकर उसकी अवहेलना करके उपहास करने लगे। उन्होंने फिर ऐसी बातें कहनेसे कर्णको रोका और इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ३२ ॥

शल्य उवाच

विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् ।
क्व च हि नरवरो धनंजयः
क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३ ॥

शल्यने कहा—कर्ण ! बस, अब बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करो, बंद करो । तुम अधिक जोशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत बड़ी बात कह गये । भला, कहाँ नर-

श्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ मनुष्योंमें अधम तुम ? ॥ ३३ ॥



यदुसदनमुपेन्द्रपालितं
त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्
पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ३४ ॥

बताओ तो सही, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो साक्षात् विष्णु भगवान्से सुरक्षित यदुवंशियोंकी पुरीको, जिसकी उपमा देवराज इन्द्रद्वारा पालित देवनगरी अमरावतीसे दी जाती है, बलपूर्वक मथकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी छोटी बहिन सुभद्राका अपहरण कर सके ॥ ३४ ॥

त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं
क इह पुमान् भवमाह्वयेद् युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्
सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ३५ ॥

देवराज इन्द्रके समान बल और प्रभाव रखनेवाले अर्जुनको छोड़कर इस संसारमें दूसरा कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो एक वन्य पशुको मारनेके विषयमें उठे हुए विवादके अवसरपर ईश्वरोंके भी ईश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान् शङ्करको भी युद्धके लिये ललकार सके ॥ ३५ ॥

असुरसुरमहोरगान् नरान्
गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्
स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ३६ ॥

अर्जुनने अग्निदेवका गौरव मानकर गरुड़, पिशाच, यक्ष, राक्षस, देवता, असुर, बड़े-बड़े नाग तथा मनुष्योंको भी बाणोंद्वारा परास्त कर दिया और अग्निको अभीष्ट हविष्य प्रदान किया था ॥ ३६ ॥

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः
स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा
कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७ ॥

कर्ण ! याद है वह घटना, जब कि कुरुजाङ्गल-प्रदेशमें घोषयात्राके समय गन्धर्वोंने शत्रु बनकर दुर्योधनका अपहरण कर लिया था, उस समय इन्हीं अर्जुनने सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी उत्तमोत्तम बाणोंद्वारा उन बहुसंख्यक शत्रुओंको मारकर धृतराष्ट्रपुत्रको बन्धनसे मुक्त किया था ॥ ३७ ॥

प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें तुम सबसे पहले भाग गये थे । उस समय पाण्डवोंने गन्धर्वोंको पराजित करके कलहप्रिय धृतराष्ट्र-पुत्रोंको कैदसे छुड़ाया था । क्या ये सब बातें तुम्हें याद हैं ?॥

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ३९ ॥

विराटनगरमें गोहरणके समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने विशाल बल-वाहनसे सम्पन्न तुम सब लोगोंको द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मके सहित परास्त कर दिया था । उस समय तुमने अर्जुनको क्यों नहीं जीत लिया ? ॥ ३९ ॥

इदमपरमुपस्थितं पुन-
स्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात् पलायसे
समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ४० ॥

सूतपुत्र ! अब आज तुम्हारे वधके लिये पुनः यह दूसरा उत्तम युद्ध उपस्थित हुआ है । यदि तुम शत्रुके भयसे भाग नहीं गये तो समराङ्गणमें पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे ॥

संजय उवाच

इति बहु परुषं प्रभाषति
प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमभिरुषितः परंतपः
कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१ ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब महामना मद्रराज शल्य इस प्रकार शत्रुकी प्रशंसासे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी कड़वी बातें सुनाने लगे, तब कौरव-सेनापति शत्रुसंतापी कर्ण अत्यन्त क्रोधसे जल उठा और शल्यसे बोला ॥ ४१ ॥

कर्ण उवाच

भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम्।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥ ४२ ॥

कर्णने कहा—रहने दो, रहने दो। क्यों बहुत बड़-बड़ा रहे हो। अब तो मेरा और उनका युद्ध उपस्थित हो ही गया है। यदि अर्जुन यहाँ युद्धमें मुझे परास्त कर दें, तब तुम्हारा यह बढ़-बढ़कर बातें करना ठीक और अच्छा समझा जायगा ॥ ४२ ॥

संजय उवाच

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान्।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ४३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब मद्रराज शल्य 'एवमस्तु' कहकर चुप हो गये। उन्होंने कर्णकी उस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। तब कर्णने युद्धकी इच्छासे उनसे कहा—'शल्य! रथ आगे ले चलो' ॥ ४३ ॥

स रथः प्रययौ शत्रून्श्वेताश्वः शल्यसारथिः।
निघ्नन्नमित्रान् समरे तमो घ्नन् सविता यथा ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् शल्य जिसके सारथि थे और जिसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे, वह विशाल रथ अन्धकारका विनाश करनेवाले सूर्यदेवके समान शत्रुओंका संहार करता हुआ आगे बढ़ा ॥

ततः प्रायात् प्रीतिमान् वै रथेन
वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां
धनंजयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और श्वेत अश्वोंसे युक्त उस रथके द्वारा कर्ण बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रस्थित हुआ। उसने सामने ही पाण्डवोंकी सेनाको खड़ी देख बड़ी उतावलीके साथ धनंजयका पता पूछा ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतानेवालेको नाना प्रकारकी भोगसामग्री और इच्छानुसार धन देनेकी घोषणा

संजय उवाच

प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन् वाहिनीं तव।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान् पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! प्रस्थानकालमें आपकी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ कर्ण समराङ्गणमें पाण्डव-सैनिकोंको देखकर प्रत्येकसे पूछने और कहने लगा— ॥ १ ॥

यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम्।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २ ॥

'जो आज मुझे महात्मा श्वेतवाहन अर्जुनको दिखा देगा, उसे मैं उसका अभीष्ट धन, जिसे वह मनसे लेना चाहे, दे दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः।
शकटं रत्नसम्पूर्णं यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ ३ ॥

'यदि उतने धनसे वह संतुष्ट न होगा तो मैं उसे और धन दूँगा। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं रत्नोंसे भरा हुआ छकड़ा दूँगा ॥ ३ ॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान्।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यिकं कांस्यदोहनम् ॥ ४ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पर्याप्त न माने तो मैं उसे प्रतिदिन दूध देनेवाली सौ गौएँ और कांसका दुग्ध-पात्र प्रदान करूँगा ॥ ४ ॥

शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५ ॥
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम्।

'इतना ही नहीं, मैं अर्जुनको दिखा देनेवाले व्यक्तिके लिये सौ बड़े-बड़े गाँव दूँगा तथा जो अर्जुनका पता बता देगा उसे खच्चरियोंसे जुता हुआ एक श्वेत रथ भी भेंट करूँगा; जिसमें काले केशवाली युवतियाँ बैठी होंगी ॥ ५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६ ॥
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम्।
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥ ७ ॥
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम्।

'यदि अर्जुनका पता बतानेवाला पुरुष उस धनको पूरा न समझे तो उसे दूसरा सोनेका बना हुआ रथ प्रदान करूँगा, जिसमें हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैल जुते होंगे। साथ ही उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सौ ऐसी स्त्रियाँ दूँगा, जो श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली), सुवर्णमय कण्ठहारसे अलंकृत तथा गाने-बजानेकी कलामें विदुषी होंगी ॥ ६-७½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८ ॥
तस्मै दद्यां शतं नागाञ्शतं ग्रामाञ्शतं रथान्।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९ ॥
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्यवाहान् सुशिक्षितान्।

'अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष यदि उसे भी पूरा न समझे

तो मैं उसे सौ हाथी, सौ गाँव, पक्के सोनेके बने हुए सौ रथ तथा दस हजार अच्छे घोड़े भी दूँगा। वे घोड़े हृष्ट-पुष्ट, गुणवान्, विनीत, सुशिक्षित तथा रथका भार वहन करनेमें समर्थ होंगे ॥ ८-९½ ॥

तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १० ॥
दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम्।

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं चार सौ सवत्सा दुधारू गौएँ दूँगा, जिनके सींगोंमें सोने मढ़े होंगे ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान् पञ्चशतान् हयान्।
हेमभाण्डपरिच्छन्नान् सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पूर्ण नहीं समझेगा तो उसे और भी उत्तम धन, श्वेत रङ्गके पाँच सौ घोड़े दूँगा, जो सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित तथा विशुद्ध मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित होंगे ॥ ११-१२ ॥

सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान्।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥ १३ ॥
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम्।

'इनके सिवा, अठारह और भी घोड़े दूँगा, जो अच्छी तरह रथमें सधे हुए होंगे। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं परम उज्ज्वल और अलंकारोंसे सजाया हुआ एक सुवर्णमय रथ दूँगा, जिसमें अच्छी नस्लके काबुली घोड़े जुते होंगे ॥ १३½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १४ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट्।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान् हेममालिनः ॥ १५ ॥
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान् हस्तिशिक्षकैः।

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो उसे मैं और भी श्रेष्ठ धन दूँगा। नाना प्रकारके सुवर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित तथा सोनेकी मालाओंसे अलंकृत छः सौ ऐसे हाथी प्रदान करूँगा, जो भारतवर्षकी पश्चिमी सीमाके जङ्गलोंमें उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें गजशिक्षकोंने अच्छी तरह सुशिक्षित कर लिया है ॥ १४-१५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश।
सुस्फीतान् धनसंयुक्तान् प्रत्यासन्नवनोदकान्।
अकुतोभयान् सुसम्पन्नान् राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥ १७ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो मैं उसे दूसरा श्रेष्ठ धन प्रदान करूँगा। जिनमें वैश्य निवास करते हों ऐसे चौदह समृद्धिशाली और धनसम्पन्न ग्राम दूँगा, जिनके आसपास जङ्गल और जलकी सुविधा होगी और जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं होगा। वे चौदहों गाँव अधिक सम्पन्न तथा राजोचित भोगोंसे परिपूर्ण होंगे॥ १६-१७॥

दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ १८ ॥

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं सोनेके कण्ठहारोंसे विभूषित मगध देशकी सौ नवयुवती दासियाँ दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान्।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत् स्वयम् ॥ १९ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पर्याप्त न समझे तो मैं उसे दूसरा वर प्रदान करूँगा, जिसकी वह स्वयं इच्छा करे ॥ १९ ॥

पुत्रदारान् विहारांश्च यदन्यद् वित्तमस्ति मे।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद् यच्च मनसेच्छति ॥ २० ॥

'स्त्री, पुत्र, विहारस्थान तथा दूसरा भी जो कुछ धन-वैभव मेरे पास है, उसमेंसे जिस-जिस वस्तुको वह अपने मनसे चाहेगा, वह सब कुछ मैं उसे दे डालूँगा' ॥२०॥

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात् केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥

'जो मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं उन दोनोंको मारकर उनका सारा धन-वैभव दे दूँगा'॥२१॥

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इन सब बातोंको बारंबार कहते हुए कर्णने युद्धस्थलमें समुद्रसे उत्पन्न हुए अपने उत्तम शङ्खको उच्च स्वरसे बजाया॥

ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ २३ ॥

महाराज! सूतपुत्रकी कही हुई उस अवसरके अनुरूप उन बातोंको सुनकर दुर्योधन अपने सेवकोंसहित बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥ २४ ॥

फिर तो सब ओर दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी, मृदङ्ग बजने लगे, वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ वीरोंका सिंहनाद तथा हाथियोंके चिग्घाड़नेका शब्द वहाँ गूँज उठा ॥ २४ ॥

प्रादुरासीत् तदा राजन् सैन्येषु पुरुषर्षभ।
योधानां सम्प्रहृष्टानां तथा समभवत् स्वनः ॥ २५ ॥

पुरुषप्रवर नरेश! उस समय सभी सेनाओंमें हर्ष और उत्साहसे भरे हुए योद्धाओंका गम्भीर गर्जन होने लगा॥२५॥

तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम्।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम्।

मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

इस प्रकार हर्षसे उल्लसित हुई सेनामें जाते और बढ़-बढ़कर बातें बनाते हुए शत्रुसूदन राधापुत्र महारथी कर्णसे मद्रराज शल्यने हँसकर इस प्रकार कहा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णावलेपे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिमानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शल्यका कर्णके प्रति अत्यन्त आक्षेपपूर्ण वचन कहना

शल्य उवाच

मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम्।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनंजयम् ॥ १ ॥

शल्य बोले—सूतपुत्र ! तुम किसी पुरुषको हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैलोंसे जुता हुआ सोनेका रथ न दो। आज अवश्य ही अर्जुनको देखोगे ॥ १ ॥

बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनंजयम् ॥ २ ॥

राधापुत्र ! तुम मूर्खतासे ही यहाँ कुबेरके समान धन लुटा रहे हो, आज अर्जुनको तो तुम बिना यत्न किये ही देख लोगे ॥ २ ॥

परान् सृजसि यद् वित्तं किंचित्त्वं बहु मूढवत्।
अपात्रदाने ये दोषास्तान् मोहान्नावबुध्यसे ॥ ३ ॥

मूढ़ पुरुषोंके समान तुम अपना बहुत कुछ धन जो दूसरोंको दे रहे हो, इससे जान पड़ता है कि अपात्रको धनका दान देनेसे जो दोष पैदा होते हैं, उन्हें मोहवश तुम नहीं समझ रहे हो ॥ ३ ॥

यत् त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया।
शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ ४ ॥

सूत ! तुम जो बहुत धन देनेकी यहाँ घोषणा कर रहे हो, निश्चय ही उसके द्वारा नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान कर सकते हो; अतः तुम उन धन-वैभवोंद्वारा यज्ञोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ४ ॥

यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद् वृथैव तत्।
न हि शुश्रुम सम्मर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥ ५ ॥

और जो तुम मोहवश श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको मारना चाहते हो, वह मनसूबा तो व्यर्थ ही है; क्योंकि हमने यह बात कभी नहीं सुनी है कि किसी गीदड़ने युद्धमें दो सिंहोंको मार गिराया हो ॥ ५ ॥

अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते।
ये त्वां न वारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ ६ ॥

तुम ऐसी चीज चाहते हो, जिसकी अबतक किसीने इच्छा नहीं की थी। जान पड़ता है तुम्हारे कोई सुहृद् नहीं हैं, जो शीघ्र ही आकर तुम्हें जलती आगमें गिरनेसे रोक नहीं रहे हैं ॥ ६ ॥

कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम्।
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ ७ ॥

तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है। निःसंदेह तुम्हें कालने पका दिया है। (अतः तुम पके हुए फलके समान गिरनेवाले ही हो); अन्यथा जो जीवित रहना चाहता है, ऐसा कौन पुरुष ऐसी बहुत-सी न सुनने योग्य अटपटांग बातें कह सकता है ? ॥ ७ ॥

समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम्।
गिर्यग्राद् वा निपतनं तादृक् तव चिकीर्षितम् ॥ ८ ॥

जैसे कोई गलेमें पत्थर बाँधकर दोनों हाथोंसे समुद्र पार करना चाहे अथवा पहाड़की चोटीसे पृथ्वीपर कूदनेकी इच्छा करे, ऐसी ही तुम्हारी सारी चेष्टा और अभिलाषा है ॥ ८ ॥

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः।
धनंजयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत् प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

यदि तुम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो व्यूहरचना-पूर्वक खड़े हुए समस्त सैनिकोंके साथ सुरक्षित रहकर अर्जुन-से युद्ध करो ॥ ९ ॥

हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया।
श्रद्धस्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥ १० ॥

दुर्योधनके हितके लिये ही मैं ऐसा कह रहा हूँ, हिंसा-भावसे नहीं। यदि तुम्हें जीनेकी इच्छा है तो मेरे इस कथन-पर विश्वास करो ॥ १० ॥

कर्ण उवाच

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ ११ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके रणक्षेत्रमें अर्जुनको पाना चाहता हूँ; परंतु तुम तो मुँहसे मित्र बने हुए वास्तवमें शत्रु हो, जो मुझे यहाँ डराना चाहते हो ॥ ११ ॥

न मामस्मादभिप्रायात् कश्चिदद्य निवर्तयेत्।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथंचन ॥ १२ ॥

परंतु मुझे इस अभिप्रायसे आज कोई भी पीछे नहीं लौटा सकता। वज्र उठाये हुए इन्द्र भी मुझे किसी तरह इस निश्चयसे डिगा नहीं सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥ १२ ॥

संजय उवाच

इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णकी यह बात समाप्त होते ही मद्रराज शल्य उसे अत्यन्त कुपित करनेकी इच्छासे पुनः इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ १३॥

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता
ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः सिताग्रा-
स्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात् ॥ १४॥

'कर्ण! अर्जुनके वेगसे युक्त हो उनकी प्रत्यञ्चासे प्रेरित और सुशिक्षित हाथोंसे छोड़े हुए तीखी धारवाले कङ्कपत्र-विभूषित बाण जब तुम्हारे शरीरमें घुसने लगेंगे, तब जो तुम अर्जुनको पूछते फिरते हो, इसके लिये पश्चात्ताप करोगे॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः
प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कै-
स्तदा पश्चात् तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५ ॥

'सूतपुत्र! जब सव्यसाची कुन्तीकुमार अर्जुन अपने हाथमें दिव्य धनुष लेकर शत्रुसेनाको तपाते हुए पैने बाणों-द्वारा तुम्हें रौंदने लगेंगे, तब तुम्हें अपने कियेपर पछतावा होगा॥ १५॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो
यथा कश्चित् प्रार्थयतेऽपहर्तुम्।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं
सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६॥

'जैसे अपनी माँकी गोदमें सोया हुआ कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ लाना चाहता हो, उसी प्रकार तुम भी रथपर बैठे हुए तेजस्वी अर्जुनको आज मोहवश परास्त करना चाहते हो॥ १६॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं
सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम्।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं
युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७॥

'कर्ण! अर्जुनका पराक्रम अत्यन्त तीखी धारवाले त्रिशूलके समान है। उन्हीं अर्जुनके साथ आज जो तुम युद्ध करना चाहते हो, वह दूसरे शब्दोंमें यों है कि तुम पैनी धारवाले त्रिशूलको लेकर उसीसे अपने सारे अङ्गोंको रगड़ना या खुजलाना चाहते हो॥ १७॥

क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं
बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी।
समाह्वयेत् तद्वदेतत् तवाद्य
समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८॥

'सूतपुत्र! जैसे बालक, मूढ़ और वेगसे चौकड़ी भरनेवाला क्षुद्र मृग क्रोधमें भरे हुए विशालकाय, केसरयुक्त सिंहको ललकारे, तुम्हारा आज यह अर्जुनका युद्धके लिये आह्वान करना भी वैसा ही है॥ १८॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं
महावीर्यं केसरिणं यथैव।
वने श्रृगालः पिशितेन तृप्तो
मा पार्थमासाद्य विनङ्क्ष्यसि त्वम् ॥१९॥

'सूतपुत्र! तुम महापराक्रमी राजकुमार अर्जुनका आह्वान न करो। जैसे वनमें मांस-भक्षणसे तृप्त हुआ गीदड़ महाबली सिंहके पास जाकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी अर्जुनसे भिड़कर विनाशके गर्तमें न गिरो॥ १९॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम्।
शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २०॥

'कर्ण! जैसे कोई खरगोश ईषादण्डके समान दाँतोंवाले महान् मदस्रावी गजराजको अपने साथ युद्धके लिये बुलाता हो, उसी प्रकार तुम भी कुन्तीपुत्र धनंजयका रणक्षेत्रमें आह्वान करते हो॥ २०॥

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात् काष्ठेन विध्यसि।
महाविषं पूर्णकोपं यत् पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥ २१॥

'तुम यदि पूर्णतः क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके साथ जूझना चाहते हो तो मूर्खतावश बिलमें बैठे हुए महाविषैले काले सर्पको किसी काठकी छड़ीसे बींध रहे हो॥ २१॥

सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे।
श्रृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम् ॥ २२॥

'कर्ण! तुम मूर्ख हो; जैसे गीदड़ क्रोधमें भरे हुए केसरी सिंहका अनादर करके गर्जना करे, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी और क्रोधमें भरे हुए पाण्डुकुमार अर्जुनका लङ्घन करके गरज रहे हो॥ २२॥

सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम्।
भोगीवाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २३॥

'कर्ण! जैसे कोई सर्प अपने पतनके लिये ही पक्षियोंमें श्रेष्ठ वेगशाली विनतानन्दन गरुडका आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम भी अपने विनाशके लिये ही कुन्तीकुमार अर्जुनको ललकार रहे हो॥ २३॥

सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम्।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥ २४॥

'अरे! तुम चन्द्रोदयके समय बढ़ते हुए, जलजन्तुओंसे पूर्ण तथा उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त अगाध जलराशिवाले भयंकर समुद्रको बिना किसी नावके ही केवल दोनों हाथोंके सहारे पार करना चाहते हो॥ २४॥

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णश्रृङ्गं प्रहारिणम्।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २५॥

'बेटा कर्ण! दुन्दुभिकी ध्वनिके समान जिसका कंठस्वर गम्भीर है, जिसके सींग तीखे हैं तथा जो प्रहार करनेमें कुशल है, उस साँडके समान पराक्रमी पृथापुत्र अर्जुनको तुम युद्धके लिये ललकार रहे हो ॥ २५ ॥

महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
बाणतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६ ॥

'जैसे महाभयंकर महामेघके मुकाबिलेमें कोई मेढक टर्र-टर्र कर रहा हो, उसी प्रकार तुम संसारमें बाणरूपी जलकी वर्षा करनेवाले मानवमेघ अर्जुनको लक्ष्य करके गर्जना करते हो ॥ २६ ॥

यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २७ ॥

'कर्ण! जैसे अपने घरमें बैठा हुआ कोई कुत्ता वनमें रहनेवाले बाघकी ओर भूँके, उसी प्रकार तुम भी नरव्याघ्र अर्जुनको लक्ष्य करके भूँक रहे हो ॥ २७ ॥

शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत् सिंहं न पश्यति ॥ २८ ॥

'कर्ण! वनमें खरगोशोंके साथ रहनेवाला गीदड़ भी जबतक सिंहको नहीं देखता, तबतक अपनेको सिंह ही मानता रहता है ॥ २८ ॥

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २९ ॥

'राधानन्दन! उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखनेके कारण ही अपनेको सिंह समझना चाहते हो ॥ २९ ॥

व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत् कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३० ॥

'एक रथपर बैठे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित श्रीकृष्ण और अर्जुनको जबतक तुम नहीं देख रहे हो, तभीतक अपनेको बाघ माने बैठे हो ॥ ३० ॥

यावद् गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥ ३१ ॥

'कर्ण! महासमरमें जबतक गाण्डीवकी टङ्कार नहीं सुनते हो, तभीतक तुम जैसा चाहो, बक सकते हो ॥ ३१ ॥

रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ३२ ॥

'रथकी घर्घराहट और धनुषकी टंकारसे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए सिंहसदृश अर्जुनको जब दहाड़ते देखोगे, तब तुरंत गीदड़ बन जाओगे ॥ ३२ ॥

नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनंजयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात् क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ३३ ॥

'ओ मूढ! तुम सदासे ही गीदड़ हो और अर्जुन सदासे ही सिंह हैं। वीरोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण ही तुम गीदड़-जैसे दिखायी देते हो ॥ ३३ ॥

यथाखुः स्याद् बिडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ३४ ॥

'जैसे चूहा और बिलाव, कुत्ता और बाघ, गीदड़ और सिंह तथा खरगोश और हाथी अपनी निर्बलता और प्रबलताके लिये प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार तुम निर्बल हो और अर्जुन सबल हैं ॥ ३४ ॥

यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ३५ ॥

'जैसे झूठ और सच तथा विष और अमृत अपना अलग-अलग प्रभाव रखते हैं, उसी प्रकार तुम और अर्जुन भी अपने-अपने कर्मोंके लिये सर्वत्र विख्यात हो' ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके प्रति शल्यका आक्षेपविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका शल्यको फटकारते हुए मद्रदेशके निवासियोंकी निन्दा करना एवं उसे मार डालनेकी धमकी देना

संजय उवाच

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! अमिततेजस्वी शल्यके इस प्रकार आक्षेप करनेपर राधापुत्र कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और यह वचनरूपी शल्य (बाण) छोड़नेके कारण ही इसका नाम शल्य पड़ा है, ऐसा निश्चय करके शल्यसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥

कर्ण उवाच

गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान् वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम् ॥ २ ॥

कर्णने कहा—शल्य! गुणवान् पुरुषोंके गुणोंको गुणवान् ही जानता है, गुणहीन नहीं। तुम तो समस्त गुणोंसे शून्य हो; फिर गुण-अवगुण क्या समझोगे? ॥ २ ॥

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ॥ ३ ॥

शल्य ! मैं महात्मा अर्जुनके महान् अस्त्र, क्रोध, बल, धनुष, बाण और पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ३ ॥

तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम्।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत् तथा ॥ ४ ॥

शल्य ! इसी प्रकार महीपालशिरोमणि श्रीकृष्णके माहात्म्यको जैसा मैं जानता हूँ, वैसा तुम नहीं जानते ॥ ४ ॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ॥ ५ ॥

शल्य ! मैं अपना और पाण्डुपुत्र अर्जुनका बल-पराक्रम समझकर ही गाण्डीवधारी पार्थको युद्धके लिये बुलाता हूँ॥ ५॥

अस्ति वायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६ ॥

शल्य ! मेरा यह सुन्दर पंखोंसे युक्त बाण शत्रुओंका रक्त पीनेवाला है। यह अकेले ही एक तरकसमें रक्खा जाता है, जो बहुत ही स्वच्छ, कङ्कपत्रयुक्त और भलीभाँति अलंकृत है ॥ ६ ॥

शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ७ ॥

यह सर्पमय भयानक विषैला बाण बहुत वर्षोंतक चन्दनके चूर्णमें रखकर पूजित होता आया है, जो मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंके समुदायका संहार करनेवाला है ॥ ७ ॥

घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ८ ॥

यह अत्यन्त भयङ्कर घोर बाण कवच तथा हड्डियोंको भी चीर देनेवाला है। मैं कुपित होनेपर इस बाणके द्वारा महान् पर्वत मेरुको भी विदीर्ण कर सकता हूँ ॥ ८ ॥

तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते।
कृष्णाद् वा देवकीपुत्रात् सत्यं चापि शृणुष्व मे॥ ९ ॥

इस बाणको मैं अर्जुन अथवा देवकीपुत्र श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे किसीपर कभी नहीं छोड़ूँगा। मेरी सच्ची बातको तुम कान खोलकर सुन लो ॥ ९ ॥

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनंजयौ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत् कर्म सदृशं मम ॥ १० ॥

शल्य ! मैं अत्यन्त कुपित होकर उस बाणके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा और वह कार्य मेरे योग्य होगा ॥ १० ॥

सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति।

समस्त वृष्णिवंशी वीरोंकी सम्पत्ति श्रीकृष्णपर ही प्रतिष्ठित है और पाण्डुके सभी पुत्रोंकी विजय अर्जुनपर ही अवलम्बित है; फिर उन दोनोंको एक साथ युद्धमें पाकर कौन वीर पीछे लौट सकता है ? ॥ ११½ ॥

तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ॥ १२ ॥
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे।

शल्य ! वे दोनों पुरुषसिंह एक साथ रथपर बैठकर एकमात्र मुझपर आक्रमण करनेवाले हैं। देखो, मेरा जन्म कितना उत्तम है ! ॥ १२½ ॥

पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥ १३ ॥
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया।

धागेमें पिरोयी हुई दो मणियोंके समान प्रेमसूत्रमें बँधे हुए उन दोनों फुफेरे और ममेरे भाइयोंको, जो किसीसे पराजित नहीं होते, तुम मेरे द्वारा मारा गया देखोगे ॥ १३½॥

अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपिध्वजौ ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम।

अर्जुनके हाथमें गाण्डीव धनुष और श्रीकृष्णके हाथमें सुदर्शन चक्र है। एक कपिध्वज है तो दूसरा गरुड़ध्वज। शल्य ! ये सब वस्तुएँ कायरोंको भय देनेवाली हैं; परंतु मेरा हर्ष बढ़ाती हैं ॥ १४½ ॥

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥ १५ ॥
भयावदीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे।

तुम तो दुष्ट स्वभावके मूर्ख मनुष्य हो। बड़े-बड़े युद्धोंमें कैसे शत्रुका सामना किया जाता है, इस बातसे अनभिज्ञ हो। भयसे तुम्हारा हृदय विदीर्ण-सा हो रहा है; अतः डरके मारे बहुत-सी असङ्गत बातें कह रहे हो ॥ १५½ ॥

संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज ॥ १६ ॥
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम्।
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥ १७ ॥

दुष्ट और पापी देशमें उत्पन्न हुए नीच क्षत्रियकुलाङ्गार दुर्बुद्धि शल्य ! तुम उन दोनोंकी किसी स्वार्थसिद्धिके लिये स्तुति करते हो; परंतु आज समराङ्गणमें उन दोनोंको मारकर बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा भी वध कर डालूँगा ॥ १६-१७ ॥

सुहृद् भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि।
तौ वा मामद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम् ॥ १८ ॥

तुम मेरे शत्रु होकर भी सुहृद् बनकर मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे क्यों डरा रहे हो। आज या तो वे ही दोनों मुझे मार डालेंगे या मैं ही उन दोनोंका संहार कर दूँगा ॥ १८ ॥

नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम्।

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥ १९ ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज ।

मैं अपने बलको अच्छी तरह जानता हूँ; इसलिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कदापि नहीं डरता हूँ। नीच देशमें उत्पन्न शल्य! तुम चुप रहो। मैं अकेला ही सहस्रों श्रीकृष्णों और सैकड़ों अर्जुनोंको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ॥ २० ॥
या गाथाः सम्प्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ २१ ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद् राजसंनिधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥ २२ ॥

मूर्ख शल्य! स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े लोग, खेल-कूदमें लगे हुए मनुष्य और स्वाध्याय करनेवाले पुरुष भी दुरात्मा मद्रनिवासियोंके विषयमें जिन गाथाओंको गाया करते हैं तथा ब्राह्मणोंने पहले राजाके समीप आकर यथावत् रूपसे जिनका वर्णन किया है, उन गाथाओंको एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनो और सुनकर चुपचाप सह लो या जवाब दो ॥ २०-२२ ॥

मित्रध्रुङ्मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।
मद्रके संगतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ २३ ॥

मद्रदेशका अधम मनुष्य सदा मित्रद्रोही होता है। जो हमलोगोंसे अकारण द्वेष करता है, वह मद्रदेशका ही अधम मनुष्य है। क्षुद्रतापूर्ण वचन बोलनेवाले मद्रदेशके निवासीमें किसीके प्रति सौहार्दकी भावना नहीं होती ॥ २३ ॥

दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः ।
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥२४॥

मद्रनिवासी मनुष्य सदा ही दुरात्मा, सर्वदा झूठ बोलनेवाला और सदा ही कुटिल होता है। हमने सुन रक्खा है कि मद्रनिवासियोंमें मरते दमतक दुष्टता बनी रहती है ॥२४॥

पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च बान्धवाः ॥ २५ ॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च संगतम् ।
पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ २६ ॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा ।
पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥२७॥
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्तन्ते च कामतः ।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ २८ ॥
मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु ।

सत्तू और मांस खानेवाले जिन अशिष्ट मद्रनिवासियोंके घरोंमें पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मामा, बेटी, दामाद, भाई, नाती, पोते, अन्यान्य बन्धु-बान्धव, समवयस्क मित्र, दूसरे अभ्यागत अतिथि और दास-दासी—ये सभी अपनी इच्छाके अनुसार एक दूसरेसे मिलते हैं। परिचित-अपरिचित सभी स्त्रियाँ सभी पुरुषोंसे सम्पर्क स्थापित कर लेती हैं और गोमांससहित मदिरा पीकर रोती, हँसती, गाती, असङ्गत बातें करती तथा कामभावसे किये जानेवाले कार्योंमें प्रवृत्त होती हैं। जिनके यहाँ सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे कामसम्बन्धी प्रलाप करते हैं, जिनके पापकर्म सर्वत्र विख्यात हैं, उन घमंडी मद्रनिवासियोंमें धर्म कैसे रह सकता है? ॥ २५-२८½ ॥

नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥ २९ ॥
मद्रके संगतं नास्ति मद्रको हि सदामलः ।

मद्रनिवासीके साथ न तो वैर करे और न मित्रता ही स्थापित करे, क्योंकि उसमें सौहार्दकी भावना नहीं होती। मद्रनिवासी सदा पापमें ही डूबा रहता है ॥ २९½ ॥

मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥ ३० ॥
राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥ ३१ ॥
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
यथैव संगतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥ ३२ ॥
मद्रके संगतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् ।
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥ ३३ ॥

'ओ बिच्छू! जैसे मद्रनिवासियोंके पास रक्खी हुई धरोहर और गान्धारनिवासियोंमें शौचाचार नष्ट हो जाते हैं, जहाँ क्षत्रिय पुरोहित हो उस यजमानके यज्ञमें दिया हुआ हविष्य जैसे नष्ट हो जाता है, जैसे शूद्रोंका संस्कार करानेवाला ब्राह्मण पराभवको प्राप्त होता है, जैसे ब्रह्मद्रोही मनुष्य इस जगत्‌में सदा ही तिरस्कृत होते रहते हैं, जैसे मद्रनिवासियोंके साथ मित्रता करके मनुष्य पतित हो जाता है तथा जिस प्रकार मद्रनिवासीमें सौहार्दकी भावना सर्वथा नष्ट हो गयी है, उसी प्रकार तेरा यह विष भी नष्ट हो गया। मैंने अथर्ववेदके मन्त्रसे तेरे विषको शान्त कर दिया' ॥३०-३३॥

इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते ॥ ३४ ॥

ये उपर्युक्त बातें कहकर जो बुद्धिमान् विषवैद्य बिच्छूके काटनेपर उसके विषके वेगसे पीड़ित हुए मनुष्यकी चिकित्सा या औषध करते हैं, उनका वह कथन सत्य ही दिखायी देता है ॥ ३४ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ३५

मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥ ३६ ॥

विद्वान् राजा शल्य ! ऐसा समझकर तुम चुपचाप बैठे रहो और इसके बाद जो बात मैं कह रहा हूँ, उसे भी सुन लो। जो स्त्रियाँ मद्यसे मोहित हो कपड़े उतारकर नाचती हैं, मैथुनमें संयम एवं मर्यादाको छोड़कर प्रवृत्त होती हैं और अपनी इच्छाके अनुसार जिस किसी पुरुषका वरण कर लेती हैं, उनका पुत्र मद्रनिवासी नराधम दूसरोंको धर्मका उपदेश कैसे कर सकता है ?॥ ३५-३६ ॥

यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥ ३७ ॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि।

जो ऊँटों और गदहोंके समान खड़ी-खड़ी मूतती हैं तथा जो धर्मसे भ्रष्ट होकर लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुकी हैं, वैसी मद्रनिवासिनी स्त्रियोंके पुत्र होकर तुम मुझे यहाँ धर्मका उपदेश करना चाहते हो ॥ ३७½ ॥

सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ॥ ३८ ॥
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम्।
मा मां सुवीरकं कश्चिद् याचतां दयितं मम ॥ ३९॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम्।

यदि कोई पुरुष मद्रदेशकी किसी स्त्रीसे कांजी माँगता है तो वह उसकी कमर पकड़कर खींच ले जाती है और कांजी न देनेकी इच्छा रखकर यह कठोर वचन बोलती है—'कोई मुझसे कांजी न माँगे, क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं अपने पुत्रको दे दूँगी, पतिको भी दे दूँगी; परंतु कांजी नहीं दे सकती' ॥ ३८-३९½ ॥

गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥ ४० ॥
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम।

मद्रदेशकी स्त्रियाँ प्रायः गोरी, लंबे कदवाली, निर्लज्ज, कम्बलसे शरीरको ढकनेवाली, बहुत खानेवाली और अत्यन्त अपवित्र होती हैं, ऐसा हमने सुन रक्खा है ॥ ४०½ ॥

एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद् बहु ॥ ४१ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु।

मद्रनिवासी सिरकी चोटीसे लेकर पैरोंके नखाग्रभाग-तक निन्दाके ही योग्य हैं। वे सब-के-सब कुकर्ममें लगे रहते हैं। उनके विषयमें हम तथा दूसरे लोग भी ऐसी बहुत-सी बातें कह सकते हैं ॥ ४१½ ॥

मद्रकाः सिन्धुसौवीरा धर्मं विद्युः कथं त्विह ॥४२ ॥
पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः।

मद्र तथा सिन्धु-सौवीर देशके लोग पापपूर्ण देशमें उत्पन्न हुए म्लेच्छ हैं। उन्हें धर्म-कर्मका पता नहीं है। वे इस जगत्‌में धर्मकी बातें कैसे समझ सकते हैं ?॥ ४२½ ॥

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥ ४३ ॥
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः।

हमने सुना है कि क्षत्रियके लिये सबसे श्रेष्ठ धर्म यह है कि वह युद्धमें मारा जाकर रणभूमिमें सो जाय और सत्पुरुषोंके आदरका पात्र बने ॥ ४३½ ॥

आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः ॥ ४४ ॥
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः।

मैं अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करूँ, यही मेरे लिये प्रथम श्रेणीका कार्य है; क्योंकि मैं मृत्युके पश्चात् स्वर्ग पानेकी अभिलाषा रखता हूँ ॥ ४४½ ॥

सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः॥४५॥
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु।
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥ ४६ ॥
यथा चामित्रवत् सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे।

मैं बुद्धिमान् दुर्योधनका प्रिय मित्र हूँ। अतः मेरे पास जो कुछ धन-वैभव है, वह और मेरे प्राण भी उसीके लिये हैं। परंतु पापदेशमें उत्पन्न हुए शल्य ! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि पाण्डवोंने तुम्हें हमारा भेद लेनेके लिये ही यहाँ रख छोड़ा है; क्योंकि तुम हमारे साथ शत्रुके समान ही सारा बर्ताव कर रहे हो ॥ ४५-४६½ ॥

कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥ ४७ ॥
संग्रामाद् विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः।

जैसे सैकड़ों नास्तिक मिलकर भी धर्मज्ञ पुरुषको धर्मसे विचलित नहीं कर सकते, उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंके द्वारा भी मुझे संग्रामसे विमुख नहीं किया जा सकता, यह निश्चय है ॥ ४७½ ॥

सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च ॥ ४८ ॥
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः।

तुम धूपसे संतप्त हुए हरिणके समान चाहे विलाप करो चाहे सूख जाओ। क्षत्रियधर्ममें स्थित हुए मुझ कर्णको तुम डरा नहीं सकते ॥ ४८½ ॥

तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४९ ॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे।

पूर्वकालमें गुरुवर परशुरामजीने युद्धमें पीठ न दिखाने-वाले एवं शत्रुका सामना करते हुए प्राण विसर्जन कर देनेवाले पुरुषसिंहोंके लिये जो उत्तम गति बतायी है, उसे मैं सदा याद रखता हूँ ॥ ४९½ ॥

तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥ ५० ॥
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम्।

शल्य! तुम यह जान लो कि मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षाके लिये वैरियोंका वध करनेके लिये उद्यत हो राजा पुरूरवाके उत्तम[1] चरित्रका आश्रय लेकर युद्धभूमिमें डटा हुआ हूँ ॥ ५०½ ॥

न तद् भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥ ५१ ॥
यो मामस्मादभिप्रायाद् वारयेदिति मे मतिः।

मद्रराज! मैं तीनों लोकोंमें किसी ऐसे प्राणीको नहीं देखता, जो मुझे मेरे इस संकल्पसे विचलित कर दे, यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥ ५१½ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात् किं बहु भाषसे ॥ ५२ ॥
मा त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम।

समझदार शल्य! ऐसा जानकर चुपचाप बैठे रहो। डरके मारे बहुत बड़बड़ाते क्यों हो? मद्रदेशके नराधम! यदि तुम चुप न हुए तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करके मांसभक्षी प्राणियोंको बाँट दूँगा ॥ ५२½ ॥

मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥ ५३ ॥
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि।

शल्य! एक तो मैं मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्र दोनोंके कार्यकी ओर दृष्टि रखता हूँ, दूसरे अपनी निन्दासे डरता हूँ और तीसरे मैंने क्षमा करनेका वचन दिया है—इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ५३½ ॥

पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ॥ ५४ ॥
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया।

मद्रराज! यदि फिर ऐसी बात बोलोगे तो मैं अपनी वज्र-सरीखी गदासे तुम्हारा मस्तक चूर-चूर करके गिरा दूँगा ॥ ५४½ ॥

श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ॥ ५५ ॥
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ।

नीच देशमें उत्पन्न शल्य! आज यहाँ सुननेवाले सुनेंगे और देखनेवाले देख लेंगे कि 'श्रीकृष्ण और अर्जुनने कर्णको मारा या कर्णने ही उन दोनोंको मार गिराया' ॥ ५५½ ॥

एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशाम्पते।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहि याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ ५६ ॥

प्रजानाथ! ऐसा कहकर राधापुत्र कर्णने बिना किसी घबराहटके पुनः मद्रराज शल्यसे कहा—'चलो, चलो' ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनकी शरणमें जानेकी सलाह देना

संजय उवाच

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः।
शल्योऽब्रवीत् पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश! युद्धका अभिनन्दन करनेवाले अधिरथपुत्र कर्णकी पूर्वोक्त बात सुनकर फिर शल्यने उससे यह दृष्टान्तयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

'सूतपुत्र! मैं युद्धमें पीठ न दिखानेवाले यज्ञपरायण, मूर्धाभिषिक्त नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं भी धर्ममें तत्पर रहता हूँ ॥ २ ॥

यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥ ३ ॥

किंतु वृषभस्वरूप कर्ण! जैसे कोई मदिरासे मतवाला हो गया हो, उसी प्रकार तुम भी उन्मत्त दिखायी दे रहे हो; अतः मैं हितैषी सुहृद् होनेके नाते तुम-जैसे प्रमत्तकी आज चिकित्सा करूँगा ॥ ३ ॥

इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीन कुलपांसन ॥ ४ ॥

ओ नीच कुलाङ्गार कर्ण! मेरेद्वारा बताये जानेवाले कौएके इस दृष्टान्तको सुनो और सुनकर जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ४ ॥

नाहमात्मनि किंचिद् वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण! मुझे अपना कोई ऐसा अपराध नहीं याद आता है, जिसके कारण तुम मुझ निरपराधको भी मार डालनेकी इच्छा रखते हो ॥ ५ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम्।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६ ॥

मैं राजा दुर्योधनका हितैषी हूँ और विशेषतः रथपर सारथि बनकर बैठा हूँ; इसलिये तुम्हारे हिताहितको जानते हुए मेरा आवश्यक कर्तव्य है कि तुम्हें वह सब बता दूँ ॥ ६ ॥

---

१. युद्धसे पीछे न हटना ही राजा पुरूरवाका उत्तम चरित्र है।

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम्।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥ ७ ॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम्।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥ ९ ॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः।

सम और विषम अवस्था, रथीकी प्रबलता और निर्बलता, रथीके साथ ही घोड़ोंके सतत परिश्रम और कष्ट, अस्त्र हैं या नहीं, इसकी जानकारी, जय और पराजयकी सूचना देनेवाली पशु-पक्षियोंकी बोली, भार, अतिभार, शल्य-चिकित्सा, अस्त्रप्रयोग, युद्ध और शुभाशुभ निमित्त—इन सारी बातोंका ज्ञान रखना मेरे लिये आवश्यक है; क्योंकि मैं इस रथका एक कुटुम्बी हूँ। कर्ण! इसीलिये मैं पुनः तुमसे इस दृष्टान्तका वर्णन करता हूँ ॥ ७–९½ ॥

वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १० ॥
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ११ ॥
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः।

कहते हैं समुद्रके तटपर किसी धर्मप्रधान राजाके राज्यमें एक प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य रहता था। वह यज्ञ-यागादि करनेवाला, दानपति, क्षमाशील, अपने वर्णानुकूल कर्ममें तत्पर, पवित्र, बहुत-से पुत्रवाला, संतानप्रेमी और समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाला था ॥ १०–११½ ॥

पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥१२॥
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः।

उसके जो बहुत-से अल्पवयस्क यशस्वी पुत्र थे, उन सबकी जूठन खानेवाला एक कौआ भी वहाँ रहा करता था ॥ १२½ ॥

तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥ १३ ॥
मांसौदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी।

वैश्यके बालक उस कौएको सदा मांस, भात, दही, दूध, खीर, मधु और घी आदि दिया करते थे ॥ १३½ ॥

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ॥ १४ ॥
सदृशान् पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे।

वैश्यके बालकोंद्वारा जूठन खिला-खिलाकर पाला हुआ वह कौआ बड़े घमंडमें भरकर अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंका भी अपमान करने लगा ॥ १४½ ॥

अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः ॥ १५ ॥
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः।

एक दिनकी बात है, उस समुद्रके तटपर गरुड़के समान लंबी उड़ानें भरनेवाले मानसरोवरनिवासी राजहंस आये। उनके अङ्गोंमें चक्रके चिह्न थे और वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थे ॥ १५½ ॥

कुमारकास्तदा हंसान् दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥ १६ ॥
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम।
(पतेऽतिपातिनः पश्य विहङ्गान् वियदाश्रितान्।
एभिस्त्वमपि शक्तो हि कामान्न पतितं त्वया ॥)

उस समय उन हंसोंको देखकर कुमारोंने कौएसे इस प्रकार कहा—'विहङ्गम! तुम्हीं समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो। देखो, ये आकाशचारी हंस आकाशमें जाकर बड़ी दूरकी उड़ानें भरते हैं। तुम भी इन्हींके समान दूरतक उड़नेमें समर्थ हो। तुमने अपनी इच्छासे ही अबतक वैसी उड़ान नहीं भरी' १६½

प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥ १७ ॥
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद् दर्पाच्च मन्यते।

उन सारे अल्पबुद्धि बालकोंद्वारा ठगा गया वह पक्षी मूर्खता और अभिमानसे उनकी बातको सत्य मानने लगा ॥ १७½ ॥

तान् सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥ १८ ॥
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम्।
तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥ १९ ॥
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम्।

फिर वह जूठनपर घमंड करनेवाला कौआ इन हंसोंमें सबसे श्रेष्ठ कौन है? यह जाननेकी इच्छासे उड़कर उनके पास गया और दूरतक उड़नेवाले उन बहुसंख्यक हंसोंमेंसे जिस पक्षीको उसने श्रेष्ठ समझा, उसीको उस दुर्बुद्धिने ललकारते हुए कहा—'चलो, हम दोनों उड़ें' ॥ १८ १९½ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राहसन् हंसा ये तत्रासन् समागताः ॥२०॥
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः।
इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥ २१ ॥

बहुत काँव-काँव करनेवाले उस कौएकी वह बात सुनकर वहाँ आये हुए वे पक्षियोंमें श्रेष्ठ आकाशचारी बलवान् चक्राङ्ग हँस पड़े और कौएसे इस प्रकार बोले ॥ २०-२१ ॥

हंसा ऊचुः

वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २२ ॥

हंसोंने कहा—काक! हम मानसरोवरनिवासी हंस हैं, जो सदा इस पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। दूरतक उड़नेके कारण हमलोग सदा सभी पक्षियोंमें सम्मानित होते आये हैं॥

कथं हंसं नु बलिनं चक्राङ्गं दूरपातिनम्।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥ २३ ॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत्।

ओ खोटी बुद्धिवाले काग! तू कौआ होकर लंबी उड़ान भरनेवाले और अपने अङ्गोंमें चक्रका चिह्न धारण करनेवाले

एक बलवान् हंसको अपने साथ उड़नेके लिये कैसे ललकार रहा है ? काग ! बता तो सही, तू हमारे साथ किस प्रकार उड़ेगा ?॥ २३½ ॥

अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः ।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात् ॥ २४ ॥

हंसकी बात सुनकर बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले मूर्ख कौएने अपनी जातिगत क्षुद्रताके कारण बारंबार उसकी निन्दा करके उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २४ ॥

काक उवाच

शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः ।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥ २५ ॥

कौआ बोला—हंस ! मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें उड़ सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है । उनमेंसे प्रत्येक उड़ान सौ-सौ योजनकी होती है और वे सभी विभिन्न प्रकारकी एवं विचित्र हैं ॥ २५ ॥

उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च ।
निडीनमथ संडीनं तिर्यग्डीनगतानि च ॥ २६ ॥
विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम् ।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् ॥ २७ ॥
अवडीनं प्रडीनं च संडीनं डीनडीनकम् ।
संडीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम् ॥ २८ ॥
सम्पातं समुदीषं च ततोऽन्यद् व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतप्रतिगतं बह्वीश्च निकुलीनकाः ॥ २९॥

उनमेंसे कुछ उड़ानोंके नाम इस प्रकार हैं—उड्डीन (ऊँचा उड़ना), अवडीन (नीचा उड़ना),प्रडीन (चारों ओर उड़ना), डीन (साधारण उड़ना), निडीन (धीरे-धीरे उड़ना), संडीन (ललित गतिसे उड़ना), तिर्यग्डीन (तिरछा उड़ना), विडीन (दूसरोंकी चालकी नकल करते हुए उड़ना), परिडीन (सब ओर उड़ना), पराडीन (पीछेकी ओर उड़ना), सुडीन (स्वर्गकी ओर उड़ना), अभिडीन (सामनेकी ओर उड़ना), महाडीन (बहुत वेगसे उड़ना), निर्डीन (परोंको हिलाये बिना ही उड़ना), अतिडीन (प्रचण्डतासे उड़ना), संडीन डीन-डीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर नीचेकी ओर उड़ना), संडीनोड्डीनडीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर ऊँचा उड़ना), डीनविडीन (एक प्रकारकी उड़ानमें दूसरी उड़ान दिखाना), सम्पात (क्षणभर सुन्दरतासे उड़कर फिर पंख फड़फड़ाना), समुदीष (कभी ऊपरकी ओर और कभी नीचेकी ओर उड़ना)और व्यतिरिक्तक (किसी लक्ष्यका संकल्प करके उड़ना),—ये छब्बीस उड़ानें हैं । इनमेंसे महाडीनके सिवा अन्य सब उड़ानोंके 'गत' (किसी लक्ष्य की ओर जाना), 'आगत' (लक्ष्यतक पहुँचकर लौट आना) और 'प्रतिगत (पलटा खाना)–ये तीन भेद हैं (इस प्रकार कुल छिहत्तर भेद हुए)। इसके सिवा बहुत-से (अर्थात् पचीस) निपात भी हैं ।* (ये सब मिलकर एक सौ एक उड़ानें होती हैं) ॥ २६-२९ ॥

कर्तास्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम् ।
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम् ॥ ३० ॥
प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम् ।

आज मैं तुमलोगोंके देखते-देखते जब इतनी उड़ानें भरूँगा, उस समय मेरा बल तुम देखोगे । मैं इनमेंसे किसी भी उड़ानसे आकाशमें उड़ सकूँगा । हंसो ! तुमलोग यथोचितरूपसे विचार करके बताओ कि 'मैं किस उड़ानसे उड़ूँ?' ।३०½।

ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह ॥ ३१ ॥
पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।

अतः पक्षियो ! तुम सब लोग दृढ़ निश्चय करके आश्रय-रहित आकाशमें इन विभिन्न उड़ानोंद्वारा उड़नेके लिये मेरे साथ चलो न ॥ ३१½ ॥

एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहंगमः ॥ ३२ ॥
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे ।

राधापुत्र ! कौएके ऐसा कहनेपर एक आकाशचारी हंसने हँसकर उससे जो कुछ कहा, वह मुझसे सुनो ॥३२½॥

हंस उवाच

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहंगमाः ।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥ ३४ ॥
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे ।

हंस बोला—काग ! तू अवश्य एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता है । परंतु मैं तो जिस एक उड़ानको सारे पक्षी जानते हैं उसीसे उड़ सकता हूँ, दूसरी किसी उड़ानका मुझे पता नहीं है । लाल नेत्रवाले कौए ! तू भी जिस उड़ानसे उचित समझे, उसीसे उड़ ॥ ३३-३४½ ॥

अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन् समागताः ॥ ३५ ॥
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिभविष्यति ॥ ३६ ॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः ।

तब वहाँ आये हुए सारे कौए जोर-जोरसे हँसने लगे और आपसमें बोले—'भला यह हंस एक ही उड़ानसे सौ प्रकारकी उड़ानोंको कैसे जीत सकता है ? यह कौआ बलवान् और शीघ्रतापूर्वक उड़नेवाला है; अतः सौमेंसे एक ही

---

* महाडीनके सिवा, जो अन्य पचीस उड़ानें कही गयी हैं, उन सबका पृथक्-पृथक् एक-एक संपात (पंख फड़फड़ानेकी क्रिया) भी है. ये पचीस संपात जोड़नेसे एक सौ एक संख्याकी पूर्ति होती है।

उड़ानद्वारा हंसकी उड़ानको पराजित कर देगा' ॥ ३५-३६½ ॥

प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च।
पेतिवानथ चक्राङ्गः पेतिवानथ वायसः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हंस और कौआ दोनों होड़ लगाकर उड़े। चक्राङ्ग हंस एक ही गतिसे उड़नेवाला था और कौआ सौ उड़ानोंसे। इधरसे चक्राङ्ग उड़ा और उधरसे कौआ ३७-३८

विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः।
अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः।

कौआ विभिन्न उड़ानोंद्वारा दर्शकोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छासे अपने कार्योंका बखान करता जा रहा था। उस समय कौएकी विचित्र उड़ानोंको बारंबार देखकर दूसरे कौए बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे काँव-काँव करने लगे ॥ ३९½ ॥

हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ४१ ॥
कुर्वाणा विविधान् रावानाशंसन्तो जयं तथा।

वे दो-दो घड़ीपर बारंबार उड़-उड़कर कहते—'देखो, कौएकी यह उड़ान, वह उड़ान'। ऐसा कहकर वे हंसोंका उपहास करते और उन्हें कटु वचन सुनाते थे। साथ ही कौएकी विजयके लिये शुभाशंसा करते और भाँति-भाँतिकी बोली बोलते हुए वे कभी वृक्षोंकी शाखाओंसे भूतलपर और कभी भूतलसे वृक्षोंकी शाखाओंपर नीचे-ऊपर उड़ते रहते थे ॥ ४०—४१½ ॥

हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष।

आर्य! हंसने एक ही मृदुल गतिसे उड़ना आरम्भ किया था; अतः दो घड़ीतक वह कौएसे हारता-सा प्रतीत हुआ ॥ ४२½ ॥

अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४३ ॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते।

तब कौओंने हंसोंका अपमान करके इस प्रकार कहा—'वह जो हंस उड़ा था, वह तो इस प्रकार कौएसे पिछड़ता जा रहा है!' ॥ ४३½ ॥

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत् पश्चिमां दिशम्॥४४॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम्।

उड़नेवाले हंसने कौओंकी वह बात सुनकर बड़े वेगसे मकरालय समुद्रके ऊपर-ऊपर पश्चिम दिशाकी ओर उड़ना आरम्भ किया ॥ ४४½ ॥

ततो भीः प्राविशत् काकं तदा तत्र विचेतसम्॥४५॥
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम्।

इधर कौआ थक गया था। उसे कहीं आश्रय लेनेके लिये द्वीप या वृक्ष नहीं दिखायी दे रहे थे; अतः उसके मनमें भय समा गया और वह घबराकर अचेत-सा हो उठा ४५½

निपतेयं क्व नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥ ४६ ॥
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते ॥ ४७ ॥

कौआ सोचने लगा, 'मैं थक जानेपर इस जलराशिमें कहाँ उतरूँगा? बहुत-से जल-जन्तुओंका निवासस्थान समुद्र मेरे लिये असह्य है। असंख्य महाप्राणियोंसे उद्भासित होनेवाला यह महासागर तो आकाशसे भी बढ़कर है' ४६-४७

गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज।
दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ॥ ४८ ॥
विदूरपातात् तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः।

सूतपुत्र कर्ण! समुद्रमें विचरनेवाले मनुष्य भी उसकी गम्भीरताके कारण दिशाओंद्वारा आवृत उसकी जलराशिकी थाह नहीं जान पाते, फिर वह कौआ कुछ दूरतक उड़ने मात्रसे उस समुद्रके जलसमूहका पार कैसे पा सकता था? ४८½

अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥ ४९ ॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद् व्यपसर्पितुम्।

उधर हंस दो घड़ीतक उड़कर इधर-उधर देखता हुआ कौएकी प्रतीक्षामें आगे न जा सका ॥ ४९½ ॥

अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥
यावद् गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन्।

चक्राङ्ग कौएको लाँघकर आगे बढ़ चुका था तो भी यह सोचकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा कि यह कौआ भी उड़कर मेरे पास आ जाय ॥ ५०½ ॥

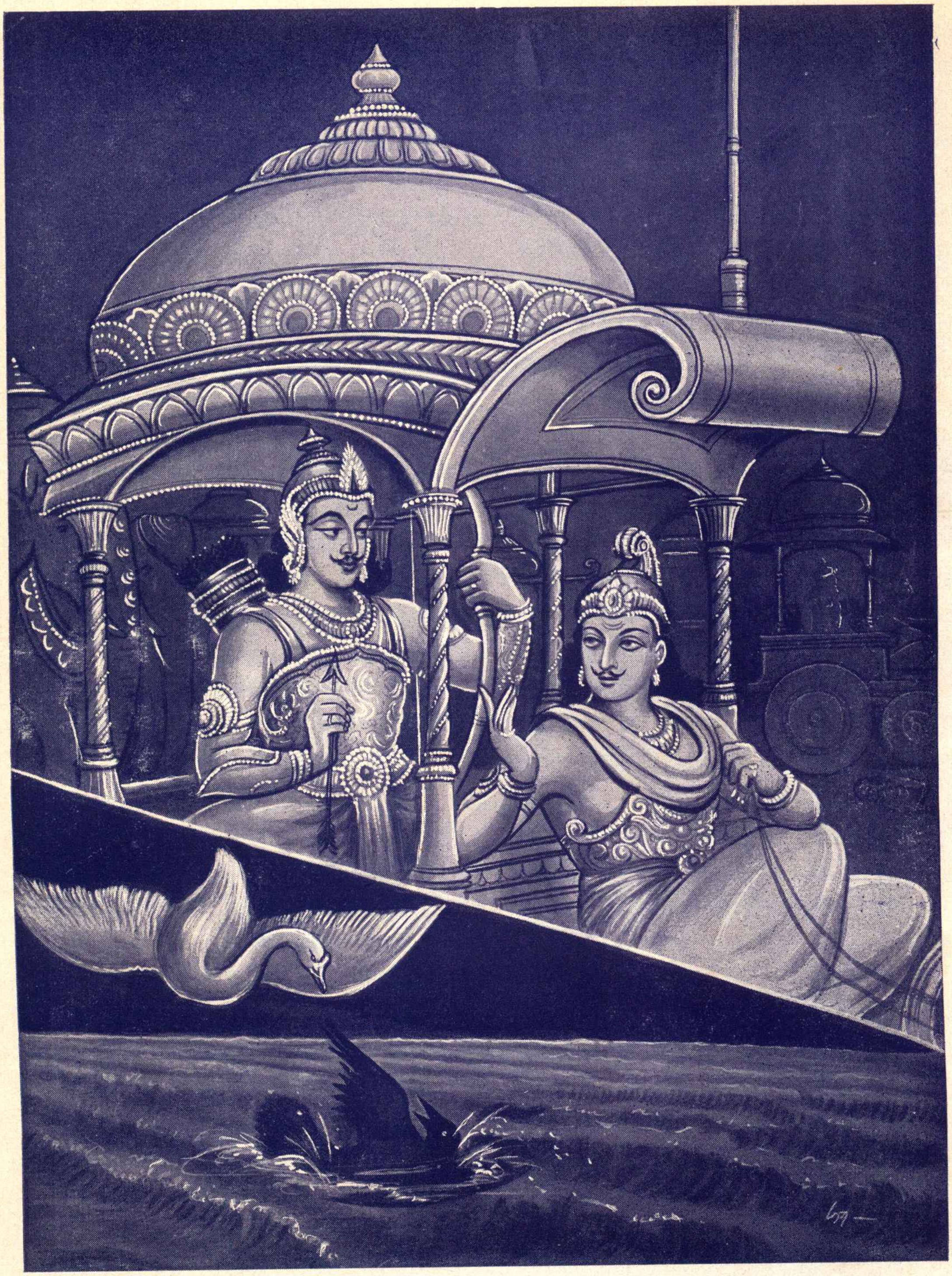
ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥
तं तथा हीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम्।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर उस समय अत्यन्त थका-मादा कौआ हंसके समीप आया। हंसने देखा, कौएकी दशा बड़ी शोचनीय हो गयी है। अब यह पानीमें डूबनेहीवाला है। तब उसने सत्पुरुषोंके व्रतका स्मरण करके उसके उद्धारकी इच्छा मनमें लेकर इस प्रकार कहा ॥ ५१—५२ ॥

हंस उवाच

बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥

हंस बोला—काग! तू तो बारंबार अपनी बहुत-सी उड़ानोंका बखान कर रहा था; परंतु उन उड़ानोंका वर्णन करते समय उनमेंसे इस गोपनीय रहस्ययुक्त उड़ानकी बात तो तूने नहीं बतायी थी ॥ ५३ ॥



शल्य कर्णको हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर अपमानित कर रहे हैं

किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम्।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः॥ ५४॥

कौए! बता तो सही, तू इस समय जिस उड़ानसे उड़ रहा है, उसका क्या नाम है? इस उड़ानमें तो तू अपने दोनों पंखों और चोंचके द्वारा जलका बार-बार स्पर्श करने लगा है॥ ५४॥

प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते वर्तसि वायस।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये॥ ५५॥

वायस! बता, बता। इस समय तू कौन-सी उड़ानमें स्थित है। कौए! आ, शीघ्र आ। मैं अभी तेरी रक्षा करता हूँ॥ ५५॥

शल्य उवाच

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा।
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत्॥ ५६॥
अपश्यन्नम्भसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम्॥ ५७॥

शल्य कहते हैं— दुष्टात्मा कर्ण! वह कौआ अत्यन्त पीड़ित हो जब अपनी दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करने लगा, उस अवस्थामें हंसने उसे देखा। वह उड़ानके वेगसे थककर शिथिलांग हो गया था और जलका कहीं आर-पार न देखकर नीचे गिरता जा रहा था। उस समय उसने हंससे इस प्रकार कहा—॥ ५६-५७॥

वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम्॥ ५८॥

'भाई हंस! हम तो कौए हैं। व्यर्थ काँव-काँव किया करते हैं। हम उड़ना क्या जानें? मैं अपने इन प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम मुझे जलके किनारे तक पहुँचा दो'॥ ५८॥

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह॥ ५९॥

ऐसा कहकर अत्यन्त थका-मादा कौआ दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करता हुआ सहसा उस महासागरमें गिर पड़ा। उस समय उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी॥५९॥

सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम्।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह॥ ६०॥

समुद्रके जलमें गिरकर अत्यन्त दीनचित्त हो मृत्युके निकट पहुँचे हुए उस कौएसे हंसने इस प्रकार कहा—॥६०॥

शतमेकं च पातानां पताम्यहमनुस्मर।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि॥ ६१॥

'काग! तूने अपनी प्रशंसा करते हुए कहा था कि मैं एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता हूँ। अब उन्हें याद कर॥ ६१॥

स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे॥ ६२॥

'सौ उड़ानोंसे उड़नेवाला तू तो मुझसे बहुत बढ़ा-चढ़ा है। फिर इस प्रकार थककर महासागरमें कैसे गिर पड़ा?'॥

प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः।
उपरिष्टं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन्॥ ६३॥

तब जलमें अत्यन्त कष्ट पाते हुए कौएने जलके ऊपर ठहरे हुए हंसकी ओर देखकर उसे प्रसन्न करनेके लिये कहा॥ ६३॥

काक उवाच

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत्।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः॥ ६४॥

कौआ बोला—भाई हंस! मैं जूठन खा-खाकर घमंडमें भर गया था और बहुत-से कौओं तथा दूसरे पक्षियोंका तिरस्कार करके अपने आपको गरुड़के समान शक्तिशाली समझने लगा था॥ ६४॥

प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम्।
यद्यहं स्वस्तिमान् हंस स्वं देशं प्राप्नुयां प्रभो॥६५॥
न कंचिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर।

हंस! अब मैं अपने प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम मुझे द्वीपके पास पहुँचा दो। शक्तिशाली हंस! यदि मैं कुशलपूर्वक अपने देशमें पहुँच जाऊँ तो अब कभी किसीका अपमान नहीं करूँगा। तुम इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करो॥ ६५½॥

तमेवं वादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम्॥ ६६॥
काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे।
कृपयाऽऽदाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम्॥ ६७॥
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः।

कर्ण! इस प्रकार कहकर कौआ अचेत-सा होकर दीनभावसे विलाप करने और काँव-काँव करते हुए महासागरके जलमें डूबने लगा। उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वह पानीसे भीग गया था। हंसने कृपापूर्वक उसे पंजोंसे उठाकर बड़े वेगसे ऊपरको उछाला और धीरेसे अपनी पीठपर चढ़ा लिया॥ ६६—६७½॥

आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम्॥ ६८॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः।

अचेत हुए कौएको पीठपर बिठाकर हंस तुरंत ही फिर उसी द्वीपमें आ पहुँचा, जहाँसे होड़ लगाकर दोनों उड़े थे॥ ६८½॥

संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम्॥ ६९॥
गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः।

उस कौएको उसके स्थानपर रखकर उसे आश्वासन

दे मनके समान शीघ्रगामी हंस पुनः अपने अभीष्ट देशको चला गया ॥ ६९३ ॥

एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥ ७० ॥
बलवीर्यमदं कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।

कर्ण ! इस प्रकार जूठन खाकर पुष्ट हुआ कौआ उस हंससे पराजित हो अपने महान् बल-पराक्रमका घमंड छोड़कर शान्त हो गया ॥७०३ ॥

उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥ ७१ ॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः ।
सदृशाञ्छ्रेयसश्चापि सर्वान् कर्णावमन्यसे॥ ७२ ॥

पूर्वकालमें वह कौआ जैसे वैश्यकुलमें सबकी जूठन खाकर पला था, उसी प्रकार धृतराष्ट्रके पुत्रोंने तुम्हें जूठन खिला-खिलाकर पाला है, इसमें संशय नहीं है । कर्ण ! इसीसे तुम अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करते हो ॥ ७१–७२ ॥

द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ७३ ॥

विराटनगरमें तो द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म तथा अन्य कौरव वीर भी तुम्हारी रक्षा कर रहे थे । फिर उस समय तुमने अकेले सामने आये हुए अर्जुनका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ ७३ ॥

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
शृगाला इव सिंहेन क ते वीर्यमभूत् तदा ॥ ७४ ॥

वहाँ तो किरीटधारी अर्जुनने अलग-अलग और सब लोगोंसे एक साथ लड़कर भी तुमलोगोंको उसी प्रकार परास्त कर दिया था, जैसे एक ही सिंहने बहुत-से सियारोंको मार भगाया हो । कर्ण ! उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ था ? ॥ ७४ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७५ ॥

सव्यसाची अर्जुनके द्वारा समराङ्गणमें अपने भाईको मारा गया देखकर कौरव वीरोंके समक्ष सबसे पहले तुम्हीं भागे थे ॥ ७५ ॥

तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७६ ॥

कर्ण ! इसी प्रकार जब द्वैतवनमें गन्धर्वोंने आक्रमण किया था, उस समय समस्त कौरवोंको छोड़कर पहले तुमने ही पीठ दिखायी थी ॥ ७६ ॥

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान् रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ॥ ७७ ॥

कर्ण ! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने ही रणभूमिमें चित्रसेन आदि गन्धर्वोंको मार-पीटकर उनपर विजय पायी थी और स्त्रियोंसहित दुर्योधनको उनकी कैदसे छुड़ाया था ॥ ७७ ॥

पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ७८ ॥

कर्ण ! पुनः तुम्हारे गुरु परशुरामजीने भी उस दिन राजसभामें अर्जुन और श्रीकृष्णके पुरातन प्रभावका वर्णन किया था ॥ ७८ ॥

सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ संनिधौ च महीक्षिताम् ॥ ७९ ॥

तुमने समस्त भूपालोंके समीप द्रोणाचार्य और भीष्मकी कही हुई बातें सदा सुनी हैं । वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुनको अवध्य बताया करते थे ॥ ७९ ॥

कियत् तत् तत् प्रवक्ष्यामि येन येन धनंजयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा॥८०॥

मैं कहाँतक गिन-गिनकर बताऊँ कि किन-किन गुणोंके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं । जैसे ब्राह्मण समस्त प्राणियोंसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अर्जुन तुमसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम् ॥ ८१ ॥

तुम इसी समय प्रधान रथपर बैठे हुए वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखोगे ॥८१॥

यथाश्रयत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनंजयम् ॥ ८२ ॥

जैसे कौआ उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर चक्राङ्गकी शरणमें गया था, उसी प्रकार तुम भी वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनकी शरण लो ॥ ८२ ॥

यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ८३ ॥

कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देखोगे, तब ऐसी बातें नहीं बोल सकोगे ॥ ८३ ॥

यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥ ८४ ॥

जब अर्जुन अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा तुम्हारा घमंड चूर-चूर कर देंगे, तब तुम स्वयं ही देख लोगे कि तुममें और अर्जुनमें कितना अन्तर है ? ॥ ८४ ॥

देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात् त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥८५॥

जैसे जुगनू प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमाका तिरस्कार करे, उसी प्रकार तुम देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें भी विख्यात उन दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनका मूर्खतावश अपमान न करो ॥ ८५ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत् तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु ॥ ८६ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा हैं, वैसे श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। वे दोनों अपने तेजसे सर्वत्र विख्यात हैं; परंतु तुम तो मनुष्योंमें जुगनूके ही समान हो ॥ ८६ ॥

एवं विद्वान् मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ।
नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥ ८७ ॥

सूतपुत्र ! तुम महात्मा पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको ऐसा जानकर उनका अपमान न करो। बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करके चुपचाप बैठे रहो ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण-शल्य-संवादके अन्तर्गत हंसकाकीयोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ८८ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावको स्वीकार करते हुए अभिमानपूर्वक शल्यको फटकारना और उनसे अपनेको परशुरामजीद्वारा और ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुए शापोंकी कथा सुनाना

संजय उवाच

मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा
वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्
यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मद्रराज शल्यकी ये अप्रिय बातें सुनकर महामनस्वी अधिरथपुत्र कर्णने असंतुष्ट होकर उनसे कहा—'शल्य ! अर्जुन और श्रीकृष्ण कैसे हैं, यह बात मुझे अच्छी तरह ज्ञात है ॥ १ ॥

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य
बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य।
अहं विजानामि यथावदद्य
परोक्षभूतं तव तत् तु शल्य ॥ २ ॥

'मद्रराज ! अर्जुनका रथ हाँकनेवाले श्रीकृष्णके बल और पाण्डुपुत्र अर्जुनके महान् दिव्यास्त्रोंको इस समय मैं भली-भाँति जानता हूँ। तुम स्वयं उनसे अपरिचित हो ॥ २ ॥

तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ।
संतापयत्यभ्यधिकं तु रामा-
च्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३ ॥

'वे दोनों कृष्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तो भी मैं उनके साथ निर्भय होकर युद्ध करूँगा। परंतु परशुरामजीसे तथा एक ब्राह्मणशिरोमणिसे मुझे जो शाप प्राप्त हुआ है, वह आज मुझे अधिक संताप दे रहा है ॥ ३ ॥

अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं
रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो
हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४ ॥

कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य
प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम्।
ममोरुमेत्य प्रविभेद कीटः
सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५ ॥

'पूर्वकालकी बात है, मैं दिव्य अस्त्रोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्राह्मणका वेष बनाकर परशुरामजीके पास रहता था। शल्य ! वहाँ भी अर्जुनका ही हित चाहनेवाले देवराज इन्द्रने मेरे कार्यमें विघ्न उपस्थित कर दिया था। एक दिन गुरुदेव मेरी जाँघपर अपना मस्तक रखकर सो गये थे। उस समय इन्द्रने एक कीड़ेके भयङ्कर शरीरमें प्रवेश करके मेरी जाँघके पास आकर उसे काट लिया, काटकर उसमें भारी घाव कर दिया और इस कार्यके द्वारा इन्होंने मेरे मनोरथमें विघ्न डाल दिया ॥ ४-५ ॥

ऊरुप्रभेदाच्च महान् बभूव
शरीरतो मे घनशोणितौघः।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानह
ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६ ॥

'जाँघमें घाव हो जानेके कारण मेरे शरीरसे गाढ़े रक्तका महान् प्रवाह बह चला; परंतु गुरुके जागनेके भयसे मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। तत्पश्चात् जब गुरुजी जागे, तब उन्होंने यह सब कुछ देखा ॥ ६ ॥

स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै
न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति।
तस्मै तदाऽऽत्मानमहं यथाव-
दाख्यातवान् सूत इत्येव शल्य ॥ ७ ॥

'शल्य ! उन्होंने मुझे ऐसे धैर्यसे युक्त देखकर पूछा—'अरे ! तू ब्राह्मण तो है नहीं; फिर कौन है ? सच-सच बता दे।' तब मैंने उनसे अपना यथार्थ परिचय देते हुए इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं सूत हूँ' ॥ ७ ॥

स मां निशम्याथ महातपस्वी
संशप्तवान् रोषपरीतचेताः।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं
न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८ ॥

'तदनन्तर मेरा वृत्तान्त सुनकर महातपस्वी परशुरामजीके मनमें मेरे प्रति अत्यन्त रोष भर गया और उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—'सूत ! तूने छल करके यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया

है। इसलिये काम पड़नेपर तेरा यह अस्त्र तुझे याद न आयेगा ॥ ८ ॥

अन्यत्र तस्मात् तव मृत्युकाला-
द्ब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवं स्यात्।
तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्र-
मस्मिन् संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९ ॥

'तेरी मृत्युके समयको छोड़कर अन्य अवसरोंपर ही यह अस्त्र तेरे काम आ सकता है; क्योंकि ब्राह्मणेतर मनुष्यमें यह ब्रह्मास्त्र सदा स्थिर नहीं रह सकता।' वह अस्त्र आज इस अत्यन्त भयङ्कर तुमुल संग्राममें पर्याप्त काम दे सकता है ॥ ९ ॥

योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः
प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्
प्रतापिता बलवान् वै विमर्दः ॥ १० ॥

'शल्य! वीरोंको आकृष्ट करनेवाला, सर्वसंहारक और अत्यन्त भयङ्कर जो यह प्रबल संग्राम भरतवंशी क्षत्रियोंपर आ पड़ा है, वह क्षत्रिय-जातिके प्रधान-प्रधान वीरोंको निश्चय ही संतप्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १० ॥

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम्।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनंजयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११ ॥

'शल्य! आज मैं युद्धमें भयङ्कर धनुष धारण करनेवाले सर्वश्रेष्ठ, वेगवान्, भयङ्कर, असह्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र अर्जुनको मौतके मुखमें भेज दूँगा ॥ ११ ॥

अस्त्रं ततोऽन्यत् प्रतिपन्नमद्य
येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान्।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं
तमुग्रधन्वानममितौजसं च ॥ १२ ॥
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं
धनंजयं संयुगेऽहं हनिष्ये।

'उस ब्रह्मास्त्रसे भिन्न एक दूसरा अस्त्र भी मुझे प्राप्त है, जिससे आज समराङ्गणमें मैं शत्रुसमूहोंको मार भगाऊँगा तथा उन भयङ्कर धनुर्धर, अमिततेजस्वी, प्रतापी, बलवान्, अस्त्रवेत्ता, क्रूर, शूर, रौद्ररूपधारी तथा शत्रुओंका वेग सहन करनेमें समर्थ अर्जुनको भी युद्धमें मार डालूँगा ॥ १२½ ॥

अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो
निमज्जयिष्यन् बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३ ॥
महावेगं संकुरुते समुद्रो
वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम्।

'जलका स्वामी, वेगवान् और अप्रमेय समुद्र बहुत लोगोंको निमग्न कर देनेके लिये अपना महान् वेग प्रकट करता है; परंतु तटकी भूमि उस अनन्त महासागरको भी रोक लेती है ॥ १३½ ॥

प्रमुञ्चन्तं बाणसंघानमेयान्
मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान् ॥ १४ ॥
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे
ज्यां कर्षतामुत्तममद्य लोके।

'उसी प्रकार मैं भी मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले, सुन्दर पंखोंसे युक्त, असंख्य, वीरविनाशक बाणसमूहोंका प्रयोग करनेवाले उन कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ रणभूमिमें युद्ध करूँगा, जो इस जगत्के भीतर प्रत्यञ्चा खींचनेवाले वीरोंमें सबसे उत्तम हैं ॥ १४½ ॥

एवं बलेनातिबलं महास्त्रं
समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥ १५ ॥
शरौघिणं पार्थिवान् मज्जयन्तं
वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये।

'कुन्तीकुमार अर्जुन अत्यन्त बलशाली, महान् अस्त्रधारी, समुद्रके समान दुर्लङ्घ्य, भयङ्कर, बाणसमूहोंकी धारा बहानेवाले और बहुसंख्यक भूपालोंको डुबो देनेवाले हैं; तथापि मैं समुद्रको रोकनेवाली तट-भूमिके समान अपने बाणोंद्वारा अर्जुनको बलपूर्वक रोकूँगा और उनका वेग सहन करूँगा ॥ १५½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६ ॥
सुरासुरान् युधि वै यो जयेत
तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम्।

'आज मैं युद्धमें जिनके समान इस समय किसी दूसरे मनुष्यको नहीं मानता, जो हाथमें धनुष लेकर रणभूमिमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त कर सकते हैं, उन्हीं वीर अर्जुनके साथ आज मेरा अत्यन्त घोर युद्ध होगा; उसे तुम देखना ॥ १६½ ॥

अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो
ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये
बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम्।

'अत्यन्त मानी पाण्डुपुत्र अर्जुन युद्धकी इच्छासे महान् दिव्यास्त्रोंद्वारा मेरे सामने आयेंगे। उस समय मैं अपने अस्त्रोंद्वारा उनके अस्त्रका निवारण करके युद्धस्थलमें उत्तम बाणोंसे कुन्तीकुमार अर्जुनको मार गिराऊँगा ॥ १७½ ॥

सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं
दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८ ॥
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं
धनंजयं छादयिष्यामि बाणैः।

'सहस्रों किरणोंवाले सूर्यके सदृश प्रकाशित हो सम्पूर्ण दिशाओंको ताप देते हुए भयङ्कर वीर अर्जुनको मैं अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार अत्यन्त आच्छादित कर दूँगा, जैसे मेघ अन्धकारनाशक सूर्यदेवको ढक देता है ॥ १८½ ॥

वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं
तेजस्विनं लोकमिदं दहन्तम् ॥ १९ ॥
पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं
तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।

'जैसे प्रलयकालका मेघ इस जगत्को दग्ध करनेवाले तेजस्वी एवं प्रज्वलित धूममयी शिखावाले संवर्तक अग्निको बुझा देता है, उसी प्रकार मैं मेघ बनकर बाणोंकी वर्षाद्वारा युद्धमें अग्निरूपी अर्जुनको शान्त कर दूँगा ॥ १९½ ॥

आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं
सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २० ॥
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।

'तीखे दाढ़ोंवाले विषधर सर्पके समान दुर्धर्ष, अप्रमेय, अग्निके समान प्रभावशाली तथा क्रोधसे प्रज्वलित अपने महान् शत्रु कुन्तीपुत्र अर्जुनको मैं भल्लोंद्वारा शान्त कर दूँगा॥२०½॥

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१ ॥
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो
धनंजयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ।

'वृक्षोंको तोड़-उखाड़ देनेवाली प्रचण्ड वायुके समान प्रमथनशील, बलवान्, प्रहारकुशल, तोड़-फोड़ करनेवाले तथा अमर्षशील क्रुद्ध अर्जुनका वेग आज मैं युद्धस्थलमें हिमालय पर्वतके समान अचल रहकर सहन करूँगा ॥ २१½ ॥

विशारदं रथमार्गेषु शक्तं
धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२ ॥
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां
धनंजयं संयुगे संसहिष्ये ।

'रथके मार्गोंपर विचरनेमें कुशल, शक्तिशाली, समराङ्गणमें सदा महान् भार वहन करनेवाले, संसारके समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, प्रमुख वीर अर्जुनका आज युद्धस्थलमें मैं डटकर सामना करूँगा ॥ २२½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३ ॥
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये
तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य संख्ये ।

'युद्धमें जिनके समान धनुर्धर मैं दूसरे किसी मनुष्यको नहीं मानता, जिन्होंने इस सारी पृथ्वीपर विजय पायी है, आज समराङ्गणमें उन्हींसे भिड़कर मैं बलपूर्वक युद्ध करूँगा ॥ २३½ ॥

यः सर्वभूतानि सदैवतानि
प्रस्थेऽजयत् खाण्डवे सव्यसाची ॥ २४ ॥
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन
युयुत्सेद् वै मानुषो मामृतेऽन्यः ।

'जिन सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें देवताओंसहित समस्त प्राणियोंको जीत लिया था, उनके साथ मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य, जो अपने जीवनकी रक्षा करना चाहता हो, युद्धकी इच्छा करेगा ॥ २४½ ॥

मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो
दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५ ॥
तस्याहमद्यातिरथस्य काया-
च्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।

'श्वेतवाहन अर्जुन मानी, अस्त्रवेत्ता, सिद्धहस्त, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको मथ डालनेवाले हैं। आज मैं अपने पैने बाणोंद्वारा उन्हीं अतिरथी वीर अर्जुनका मस्तक धड़से काट लूँगा ॥ २५½ ॥

योत्स्याम्येनं शल्य धनंजयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६ ॥
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो
युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।

'शल्य ! मैं रणभूमिमें मृत्यु अथवा विजयको सामने रखकर इन धनंजयके साथ युद्ध करूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इन्द्रके समान पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ एकमात्र रथके द्वारा युद्ध कर सके ॥ २६½॥

तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य
ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥ २७ ॥
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता
ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।

'मैं इस युद्धस्थलमें क्षत्रियोंके समाजमें बड़े हर्ष और उल्लासके साथ पाण्डुपुत्र अर्जुनके उत्साहका वर्णन कर सकता हूँ। तुम्हारे मनमें तो मूढ़ता भरी हुई है। तुम मूर्ख हो। फिर तुमने मुझसे अर्जुनके पुरुषार्थका हठपूर्वक वर्णन क्यों किया है ? ॥ २७½ ॥

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि
क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् ॥ २८ ॥
हन्यामहं तादृशानां शतानि
क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।

'जो अप्रिय, निष्ठुर, क्षुद्र हृदय और क्षमाशून्य मनुष्य क्षमाशील पुरुषोंकी निन्दा करता है; ऐसे सौ-सौ मनुष्योंका मैं वध कर सकता हूँ; परंतु कालयोगसे क्षमाभावद्वारा मैं यह सब कुछ सह लेता हूँ ॥ २८½ ॥

अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि
प्रधर्षयन् मां मूढवत् पापकर्मन् ॥ २९ ॥

मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् ।

'ओ पापी ! मूर्खके समान तुमने पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये मेरा तिरस्कार करते हुए मेरे प्रति अप्रिय वचन सुनाये हैं। मेरे प्रति सरलताका व्यवहार करना तुम्हारे लिये उचित था; परंतु तुम्हारी बुद्धिमें कुटिलता भरी हुई है, अतः तुम मित्रद्रोही होनेके कारण अपने पापसे ही मारे गये। किसीके साथ सात पग चल देने मात्रसे ही मैत्री सम्पन्न हो जाती है। (किंतु तुम्हारे मनमें उस मैत्रीका उदय नहीं हुआ)॥२९½॥

कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत् ॥ ३० ॥
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकाङ्क्षमाण-
स्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति ।

'यह बड़ा भयङ्कर समय सामने आ रहा है। राजा दुर्योधन रणभूमिमें आ पहुँचा है। मैं उसके मनोरथकी सिद्धि चाहता हूँ; किंतु तुम्हारा मन उधर लगा हुआ है, जिससे उसके कार्यकी सिद्धि होनेकी कोई सम्भावना नहीं है ॥३०½॥

मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा
संत्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥ ३१ ॥
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति
तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा ।

'मिद, नन्द, प्री, त्रा, मि अथवा मुद्* धातुओंसे निपातनद्वारा मित्र शब्दकी सिद्धि होती है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ—इन सभी धातुओंका पूरा-पूरा अर्थ मुझमें मौजूद है। राजा दुर्योधन इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं ॥ ३१½ ॥

शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा
श्रृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥ ३२ ॥
उपसर्गाद् बहुधा सूदतेश्च
प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ।

'शद्, शास्, शो, श्रृ, श्वस् अथवा षद् तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंसे युक्त सूद† धातुसे भी शत्रु शब्दकी सिद्धि होती है। मेरे प्रति इन सभी धातुओंका सारा तात्पर्य तुममें संघटित होता है ॥ ३२½ ॥

दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं
यशोऽर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥ ३३ ॥

---

* मिद आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः स्नेह, आनन्द, प्रीणन (तृप्त करना), प्राण (रक्षा), सस्नेह दर्शन और आमोद है।

† शद् आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—शातन (काटना या छेदना), शासन करना, तनूकरण (क्षीण कर देना), हिंसा करना, अवसादन (शिथिल करना) और निषूदन (वध)।

तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ
योत्स्ये यत्नात् कर्म तत् पश्य मेऽद्य ।

'अतः मैं दुर्योधनका हित, तुम्हारा प्रिय, अपने लिये यश और प्रसन्नताकी प्राप्ति तथा परमेश्वरकी प्रीतिका सम्पादन करनेके लिये पाण्डुपुत्र अर्जुन और श्रीकृष्णके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करूँगा। आज मेरे इस कर्मको तुम देखो ॥३३½॥

अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि
ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि ॥ ३४ ॥
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं
द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः ।

'आज मेरे उत्तम ब्रह्मास्त्र, दिव्यास्त्र और मानुषास्त्रोंको देखो। मैं इनके द्वारा भयङ्कर पराक्रमी अर्जुनके साथ उसी प्रकार युद्ध करूँगा, जैसे कोई अत्यन्त मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके साथ भिड़ जाता है ॥ ३४½ ॥

अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युध्यजेयं
क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे
न चेत् पतेद् विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ ३५ ॥

'मैं युद्धमें अजेय तथा असीम शक्तिशाली ब्रह्मास्त्रका मन-ही-मन स्मरण करके अपनी विजयके लिये अर्जुनपर प्रहार करूँगा। यदि मेरे रथका पहिया किसी विषम स्थानमें न फँस जाय तो उस अस्त्रसे अर्जुन रणभूमिमें जीवित नहीं छूट सकते॥

वैवस्वताद् दण्डहस्ताद्वरुणाद् वापि पाशिनः ।
सगदाद् वा धनपतेः सवज्राद् वापि वासवात् ॥ ३६॥
अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः ।
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः ॥
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ॥ ३७ ॥
सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति ।

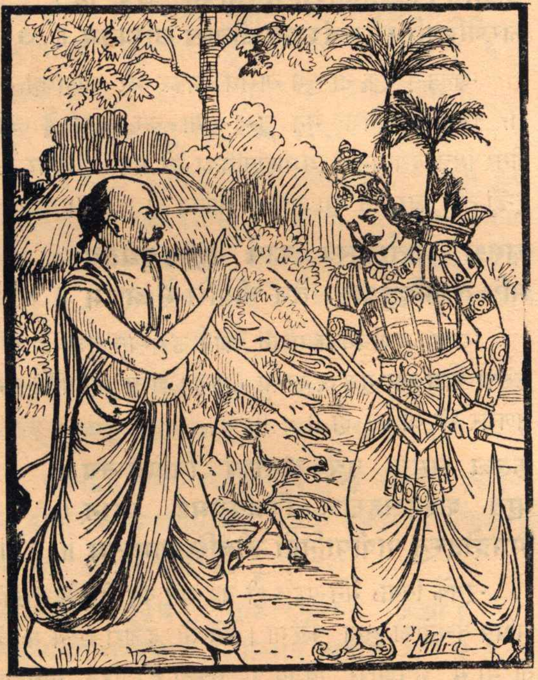
'शल्य ! मैं दण्डधारी सूर्यपुत्र यमराजसे, पाशधारी वरुणसे, गदा हाथमें लिये हुए कुबेरसे, वज्रधारी इन्द्रसे अथवा दूसरे किसी आततायी शत्रुसे भी कभी नहीं डरता। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लो। इसीलिये मुझे अर्जुन और श्रीकृष्णसे भी कोई भय नहीं है। उन दोनोंके साथ रणक्षेत्रमें मेरा युद्ध अवश्य होगा ॥ ३६—३७½ ॥

कदाचिद् विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप ॥ ३८ ॥
अज्ञानाद्धि क्षिपन् बाणान् घोररूपान् भयानकान् ।
होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम् ॥ ३९ ॥

'नरेश्वर ! एक समयकी बात है, मैं शस्त्रोंके अभ्यासके लिये विजय नामक एक ब्राह्मणके आश्रमके आसपास विचरण कर रहा था। उस समय घोर एवं भयंकर बाण चलाते हुए मैंने अनजानमें ही असावधानीके कारण उस ब्राह्मणकी होमधेनुके बछड़ेको एक बाणसे मार डाला ॥ ३८-३९ ॥

चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम्।
यस्मात् त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥ ४० ॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत्।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥ ४१ ॥

'शल्य ! तब उस ब्राह्मणने एकान्तमें घूमते हुए मुझसे आकर कहा—'तुमने प्रमादवश मेरी होमधेनुके बछड़ेको मार डाला है। इसलिये तुम जिस समय रणक्षेत्रमें युद्ध करते-करते अत्यन्त भयको प्राप्त होओ, उसी समय तुम्हारे रथका पहिया गड्ढेमें गिर जाय' ॥ ४०-४१ ॥



तस्माद् बिभेमि बलवद् ब्राह्मणव्याहृतादहम्।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ४२ ॥

'ब्राह्मणके उस शापसे मुझे अधिक भय हो रहा है। ये ब्राह्मण, जिनके राजा चन्द्रमा हैं, अपने शाप या वरदानद्वारा दूसरोंको दुःख एवं सुख देनेमें समर्थ हैं ॥ ४२ ॥

अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान्।
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥ ४३ ॥

'मद्रराज शल्य ! मैं ब्राह्मणको एक हजार गौएँ और छः सौ बैल दे रहा था; परंतु उससे उसका कृपाप्रसाद न प्राप्त कर सका ॥ ४३ ॥

ईषादन्तान् सप्तशतान् दासीदासशतानि च।
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥ ४४ ॥

'हलदण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथी और सैकड़ों दास-दासियोंके देनेपर भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मुझपर कृपा नहीं की ॥ ४४ ॥

कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश।
आहरं न लभे तस्मात् प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥ ४५ ॥

'श्वेत बछड़ेवाली चौदह हजार काली गौएँ मैं उसे देनेके लिये ले आया तो भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे अनुग्रह न पा सका ॥

ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किंचन।
तत् सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ४६ ॥

'मैं सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न समृद्धिशाली घर और जो कुछ भी धन मेरे पास था, वह सब उस ब्रह्मणको सत्कारपूर्वक देने लगा; परंतु उसने कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं की ॥

ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः।
व्याहृतं यन्मया सूत तत् तथा न तदन्यथा ॥ ४७ ॥

'उस समय मैं प्रयत्नपूर्वक अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करने लगा। तब ब्राह्मणने कहा—'सूत ! मैंने जो कह दिया, वह वैसा ही होकर रहेगा। वह पलट नहीं सकता ॥

अनृतोक्तं प्रजां हन्यात् ततः पापमवाप्नुयाम्।
तस्माद् धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥

''असत्य भाषण प्रजाका नाश कर देता है, अतः मैं झूठ बोलनेसे पापका भागी होऊँगा; इसीलिये धर्मकी रक्षाके उद्देश्यसे मैं मिथ्या भाषण नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित् कुर्यात् समाप्नुहि ॥ ४९ ॥

''तुम (लोभ देकर) ब्राह्मणकी उत्तम गतिका विनाश न करो। तुमने पश्चात्ताप और दानद्वारा उस वत्सवधका प्रायश्चित्त कर लिया। जगत्में कोई भी मेरे कहे हुए वचनको मिथ्या नहीं कर सकता; इसलिये मेरा शाप तुझे प्राप्त होगा ही' ॥ ४९ ॥

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥ ५० ॥

'मद्रराज ! यद्यपि तुमने मुझपर आक्षेप किये हैं, तथापि सुहृद् होनेके नाते मैंने तुमसे ये सारी बातें कह दी हैं। मैं जानता हूँ, तुम अब भी निन्दा करनेसे बाज न आओगे, तो भी कहता हूँ कि चुप होकर बैठो और अबसे जो कुछ कहूँ, उसे सुनो' ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना

संजय उवाच

ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिंदमः ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले राधापुत्र कर्णने शल्यको रोककर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

यत् त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा बिभीषयितुमाहवे ॥ २ ॥

'शल्य ! तुमने दृष्टान्तके लिये मेरे प्रति जो वाग्जाल फैलाया है, उसके उत्तरमें निवेदन है कि तुम इस युद्धस्थलमें मुझे अपनी बातोंसे नहीं डरा सकते ॥ २ ॥

यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं न स्यात् किमु पार्थात् सकेशवात्॥ ३ ॥

'यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता मुझसे युद्ध करने लगें तो भी मुझे उनसे कोई भय नहीं होगा । फिर श्रीकृष्ण-सहित अर्जुनसे क्या भय हो सकता है ? ॥ ३ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथंचन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥ ४ ॥

'मुझे केवल बातोंसे किसी प्रकार भी डराया नहीं जा सकता, जिसे तुम रणभूमिमें डरा सको, ऐसे किसी दूसरे ही पुरुषका पता लगाओ ॥ ४ ॥

नीचस्य बलमेतावत् पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥ ५ ॥

'तुमने मेरे प्रति जो कटु वचन कहा है, इतना ही नीच पुरुषका बल है । दुर्बुद्धे ! तुम मेरे गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ होकर बहुत-सी ऊटपटांग बातें बकते जा रहे हो ॥५॥

न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थं च तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥

'मद्रनिवासी शल्य ! कर्ण इस संसारमें भयभीत होनेके लिये नहीं पैदा हुआ है । मैं तो पराक्रम प्रकट करने और अपने यशको फैलानेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ६ ॥

सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

'शल्य ! एक तो तुम सारथि बनकर मेरे सखा हो गये हो; दूसरे सौहार्दवश मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है और तीसरे मित्र दुर्योधनकी अभीष्टसिद्धिका मेरे मनमें विचार है—इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ७ ॥

राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥ ८ ॥

'राजा दुर्योधनका महान् कार्य उपस्थित हुआ है और उसका सारा भार मुझपर रक्खा गया है। शल्य ! इसीलिये तुम क्षणभर भी जीवित हो ॥ ८ ॥

कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।
ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

'इसके सिवा, मैंने पहले ही यह शर्त कर दी है कि तुम्हारे अप्रिय वचनोंको क्षमा करूँगा । वैसे तो हजारों शल्य न रहें तो भी मैं शत्रुओंपर विजय पा सकता हूँ; परंतु मित्रद्रोह महान् पाप है, इसीलिये तुम अबतक जीवित हो' ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा मद्र आदि बाहीक देशवासियोंकी निन्दा

शल्य उवाच

ननु प्रलापाः कर्णैते यान् ब्रवीषि परान् प्रति ।
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥ १ ॥

शल्य बोले—कर्ण ! तुम दूसरोंके प्रति जो आक्षेप करते हो, ये तुम्हारे प्रलापमात्र हैं । तुम-जैसे हजारों कर्ण न रहें तो भी युद्धस्थलमें शत्रुओंपर विजय पायी जा सकती है॥

संजय उवाच

तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी कठोर बात बोलते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने पुनः दूनी कठोरता लिये अप्रिय वचन कहना आरम्भ किया ॥ २ ॥

कर्ण उवाच

इदं तु ते त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
संनिधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥

कर्ण बोला—मद्रनरेश ! तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी ये बातें सुनो । राजा धृतराष्ट्रके समीप कही जाती हुई इन सब बातोंको मैंने सुना था ॥ ३ ॥

देशांश्च विविधांश्चित्रान् पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान्।
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥ ४ ॥

एक दिन महाराज धृतराष्ट्रके घरमें बहुत-से ब्राह्मण आ-आकर नाना प्रकारके विचित्र देशों तथा पूर्ववर्ती भूपालोंके वृत्तान्त सुना रहे थे ॥ ४ ॥

तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

वहीं किसी वृद्ध एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणने वाहीक और मद्रदेश-की निन्दा करते हुए वहाँकी पूर्वघटित बातें कही थीं—॥५॥

बहिष्कृता हिमवता गङ्गया च बहिष्कृताः।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ ६ ॥
पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः।
तान् धर्मबाह्यानशुचीन् वाहीकानपि वर्जयेत् ॥ ७ ॥

'जो प्रदेश हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरु-क्षेत्रकी सीमासे बाहर हैं तथा जो सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम—इन पाँचों एवं छठी सिंधु नदीके बीचमें स्थित हैं, उन्हें वाहीक कहते हैं। वे धर्मबाह्य और अपवित्र हैं। उन्हें त्याग देना चाहिये ॥ ६-७ ॥

गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम्।
एतद् राजकुलद्वारमाकुमारात् स्मराम्यहम् ॥ ८ ॥

'गोवर्द्धन नामक वटवृक्ष और सुभद्र नामक चबूतरा—ये दोनों वहाँके राजभवनके द्वारपर स्थित हैं, जिन्हें मैं बचपनसे ही भूल नहीं पाता हूँ ॥ ८ ॥

कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया।
तत एषां समाचारः संवासाद् विदितो मम ॥ ९ ॥

'मैं अत्यन्त गुप्त कार्यवश कुछ दिनोंतक वाहीक देशमें रहा था। इससे वहाँके निवासियोंके सम्पर्कमें आकर मैंने उनके आचार-व्यवहारकी बहुत-सी बातें जान ली थीं ॥ ९ ॥

शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा।
जर्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्॥ १० ॥

'वहाँ शाकल नामक एक नगर और आपगा नामकी एक नदी है, जहाँ जर्तिक नामवाले वाहीक निवास करते हैं। उनका चरित्र अत्यन्त निन्दित है ॥ १० ॥

धाना गौड्यासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥

'वे भुने हुए जौ और लहसुनके साथ गोमांस खाते और गुड़से बनी हुई मदिरा पीकर मतवाले बने रहते हैं। पूआ, मांस और वाटी खानेवाले वाहीक देशके लोग शील और आचारसे शून्य हैं ॥ ११ ॥

गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥

'वहाँकी स्त्रियाँ बाहर दिखायी देनेवाली माला और अङ्गराग धारण करके मतवाली तथा नंगी होकर नगर एवं घरोंकी चहारदिवारियोंके पास गाती और नाचती हैं ॥ १२ ॥

मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः।
अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥ १३ ॥

'वे गदहोंके रेंकने और ऊँटोंके बलबलानेकी-सी आवाजसे मतवालेपनमें ही भाँति-भाँतिके गीत गाती हैं और मैथुन-कालमें भी परदेके भीतर नहीं रहती हैं। वे सब-की-सब सर्वथा स्वेच्छाचारिणी होती हैं ॥ १३ ॥

आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥ १४ ॥
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः।

'मदसे उन्मत्त होकर परस्पर सरस विनोदयुक्त बातें करती हुई वे एक दूसरीको 'ओ घायल की हुई! ओ किसीकी मारी हुई! हे पतिमर्दिते!' इत्यादि कहकर पुकारती और नृत्य करती हैं। पर्वों और त्योहारोंके अवसरपर तो उन संस्कारहीन रमणियोंके संयमका बाँध और भी टूट जाता है॥

तासां किलावलिप्तानां निवसन् कुरुजाङ्गले ॥ १५॥
कश्चिद् वाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ।

'उन्हीं वाहीकदेशी मदमत्त एवं दुष्ट स्त्रियोंका कोई सम्बन्धी वहाँसे आकर कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करता था। वह अत्यन्त खिन्नचित्त होकर इस प्रकार गुनगुनाया करता था—॥ १५½ ॥

सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ॥ १६॥
मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले।

"निश्चय ही वह लंबी, गोरी और महीन कम्बलकी साड़ी पहननेवाली मेरी प्रेयसी कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करनेवाले मुझ वाहीकको निरन्तर याद करती हुई सोती होगी॥ १६½ ॥

शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ॥ १७ ॥
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः।

"मैं कब सतलज और उस रमणीय रावी नदीको पार करके अपने देशमें पहुँचकर शङ्खकी बनी हुई मोटी-मोटी चूड़ियोंको धारण करनेवाली वहाँकी सुन्दरी स्त्रियोंको देखूँगा॥

मनःशिलोज्ज्वलापाङ्ग्यो गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः॥ १८॥
कम्बलाजिनसंवीताः कूर्दन्त्यः प्रियदर्शनाः।
मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥ १९ ॥

"जिनके नेत्रोंके प्रान्तभाग मैनसिलके आलेपसे उज्ज्वल हैं, दोनों नेत्र और ललाट अञ्जनसे सुशोभित हैं तथा जिनके सारे अङ्ग कम्बल और मृगचर्मसे आवृत हैं, वे गोरे रंगवाली प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) रमणियाँ मृदङ्ग, ढोल, शङ्ख और मर्दल आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ कब नृत्य करती दिखायी देंगी ॥ १८-१९ ॥

खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम्।
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २० ॥

"कब हमलोग मदोन्मत्त हो गदहे, ऊँट और खच्चरों-की सवारीद्वारा सुखद मार्गोंवाले शमी, पीलु और करीलोंके जंगलोंमें सुखसे यात्रा करेंगे ॥ २० ॥

अपूपान् सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान्।
पथि सुप्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥२१॥
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः।

'मार्गमें तक्रके साथ पूए और सत्तूके पिण्ड खाकर अत्यन्त प्रबल हो कब चलते हुए बहुत-से राहगीरोंको उनके कपड़े छीनकर हम अच्छी तरह पीटेंगे' ॥ २१½ ॥

एवंशीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु ॥ २२ ॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्तमपि मानवः।

संस्कारशून्य दुरात्मा वाहीक ऐसे ही स्वभावके होते हैं। उनके पास कौन सचेत मनुष्य दो घड़ी भी निवास करेगा ?'॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः ॥ २३ ॥
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः।

ब्राह्मणने निरर्थक आचार-विचारवाले वाहीकोंको ऐसा ही बताया है, जिनके पुण्य और पाप दोनोंका छठा भाग तुम लिया करते हो ॥ २३½ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥ २४ ॥
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत्।

शल्य ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने ये सब बातें बताकर उद्दण्ड वाहीकोंके विषयमें पुनः जो कुछ कहा था, वह भी बताता हूँ, सुनो—॥ २४½ ॥

तत्र स्म राक्षसी गाति सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥ २५ ॥
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम्।

'उस देशमें एक राक्षसी रहती है, जो सदा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको समृद्धिशाली शाकल नगरमें रातके समय दुन्दुभि बजाकर इस प्रकार गाती है—॥ २५½ ॥

कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले ॥ २६ ॥
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम्।
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृताः ॥ २७ ॥
पलाण्डुगंडूषयुतान् खादन्ती चैडकान् बहून्।

"मैं वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गोमांस खाकर और गुड़की बनी हुई मदिरा पीकर तृप्त हो अञ्जलि भर प्याजके साथ बहुत-सी भेड़ोंको खाती हुई गोरे रंगकी लंबी युवती स्त्रियोंके साथ मिलकर इस शाकल नगरमें पुनः कब इस तरहकी वाहीकसम्बन्धी गाथाओंका गान करूँगी ॥ २६-२७½ ॥

वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥२८ ॥
ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम्।

"जो सूअर, मुर्गा, गाय, गदहा, ऊँट और भेड़के मांस नहीं खाते, उनका जन्म व्यर्थ है' ॥ २८½ ॥

इति गायन्ति ये मत्ताः सीधुना शाकलाश्च ये॥ २९ ॥
सबालवृद्धाः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत्।

'जो शाकलनिवासी आबालवृद्ध नरनारी मदिरासे उन्मत्त हो चिल्ला-चिल्लाकर ऐसी गाथाएँ गाया करते हैं, उनमें धर्म कैसे रह सकता है ?' ॥ २९½ ॥

इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान् ब्राह्मणः कुरुसंसदि।

शल्य ! इस बातको अच्छी तरह समझ लो। हर्षका विषय है कि इसके सम्बन्धमें मैं तुम्हें कुछ और बातें बता रहा हूँ, जिन्हें दूसरे ब्राह्मणने कौरव-सभामें हमलोगोंसे कहा था—॥ ३०½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ॥ ३१ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः ॥ ३२ ॥
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान् व्रजेत्।

'जहाँ शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), तीसरी इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चिनाव) और वितस्ता (झेलम)—ये पाँच नदियाँ छठी सिंधु नदीके साथ बहती हैं, जहाँ पीलु नामक वृक्षोंके कई जंगल हैं, वे हिमालयकी सीमासे बाहरके प्रदेश 'आरट्ट' नामसे विख्यात हैं। वहाँका धर्म-कर्म नष्ट हो गया है। उन देशोंमें कभी न जाय ॥ ३१-३२½ ॥

व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३ ॥
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा।
तेषां प्रणष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥ ३४ ॥

'जिनके धर्म-कर्म नष्ट हो गये हैं, वे संस्कारहीन, जारज वाहीक यज्ञ-कर्मसे रहित होते हैं। उनके दिये हुए द्रव्यको देवता, पितर और ब्राह्मण भी नहीं ग्रहण करते हैं, यह बात सुननेमें आयी है' ॥ ३३-३४ ॥

ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥ ३५ ॥
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥ ३६ ॥
तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च।

किसी विद्वान् ब्राह्मणने साधु पुरुषोंकी सभामें यह भी कहा था कि 'वाहीक देशके लोग काठके कुण्डों तथा मिट्टीके बर्तनोंमें जहाँ सत्तू और मदिरा लिपटे होते हैं और जिन्हें कुत्ते चाटते रहते हैं, घृणाशून्य होकर भोजन करते हैं। वाहीक देशके निवासी भेड़, ऊँटनी और गदहीके दूध पीते और उसी दूधके बने हुए दही-घी आदि भी खाते हैं।३५-३६½।

पुत्रसंकरिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥ ३७ ॥
आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता।

'वे जारज पुत्र उत्पन्न करनेवाले नीच आरट्ट नामक बाहीक सबका अन्न खाते और सभी पशुओंके दूध पीते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको उन्हें दूरसे ही त्याग देना चाहिये।' ३७½

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥
यदन्योऽप्युक्तवान् मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

शल्य ! इस बातको याद कर लो। अभी तुमसे और भी बातें बताऊँगा, जिन्हें किसी दूसरे ब्राह्मणने कौरवसभामें स्वयं मुझसे कहा था—॥ ३८½ ॥

युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥ ३९ ॥
तद्वद् भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।

'युगन्धर नगरमें दूध पीकर अच्युतस्थल नामक नगरमें एक रात रहकर तथा भूतिलयमें स्नान करके मनुष्य कैसे स्वर्गमें जायगा ?'॥ ३९½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥ ४० ॥
आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।

जहाँ पर्वतसे निकलकर ये पूर्वोक्त पाँचों नदियाँ बहती हैं, वे आरट्ट नामसे प्रसिद्ध बाहीक प्रदेश हैं। उनमें श्रेष्ठ पुरुष दो दिन भी निवास न करे ॥ ४०½ ॥

बहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१ ॥
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान् धर्मान् ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥

विपाशा (व्यास) नदीमें दो पिशाच रहते हैं। एकका नाम है बहि और दूसरेका नाम है हीक। इन्हीं दोनोंकी संतानें बाहीक कहलाती हैं। ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि नहीं की है। वे नीच योनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य नाना प्रकारके धर्मोंको कैसे जानेंगे ? ॥ ४१-४२ ॥

कारस्करान्माहिषकान् कुरण्डान् केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

कारस्कर, माहिषक, कुरंड, केरल, कर्कोटक और वीरक—इन देशोंके धर्म (आचार-व्यवहार) दूषित हैं; अतः इनका त्याग कर देना चाहिये ॥ ४३ ॥

इति तीर्थानुसर्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४ ॥

विशाल ओखलियोंकी मेखला (करधनी) धारण करनेवाली किसी राक्षसीने किसी तीर्थयात्रीके घरमें एक रात रहकर उससे इस प्रकार कहा था ॥ ४४ ॥

आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥

जहाँ ब्रह्माजीके समकालीन (अत्यन्त प्राचीन) वेदविरुद्ध आचरणवाले नीच ब्राह्मण निवास करते हैं, वे आरट्ट नामक देश हैं और वहाँके जलका नाम बाहीक है ॥ ४५ ॥

वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥ ४६ ॥

उन अधम ब्राह्मणोंको न तो वेदोंका ज्ञान है, न वहाँ यज्ञकी वेदियाँ हैं और न उनके यहाँ यज्ञ-याग ही होते हैं। वे संस्कारहीन एवं दासोंसे समागम करनेवाली कुलटा स्त्रियोंकी संतानें हैं; अतः देवता उनका अन्न नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ४६ ॥

प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः ॥ ४७ ॥

प्रस्थल, मद्र, गान्धार, आरट्ट, खस, वसाति, सिंधु तथा सौवीर—ये देश प्रायः अत्यन्त निन्दित हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका मद्र आदि बाहीक निवासियोंके दोष बताना, शल्यका उत्तर देना और दुर्योधनका दोनोंको शान्त करना

कर्ण उवाच

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक् त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! पहले जो बातें बतायी गयी हैं, उन्हें समझो। अब मैं पुनः तुमसे कुछ कहता हूँ। मेरी कही हुई इस बातको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत् पुरातिथिः ।
आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें एक ब्राह्मण अतिथिरूपसे हमारे घरपर ठहरा था। उसने हमारे यहाँका आचार-विचार देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह बात कही—॥ २ ॥

मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३ ॥

'मैंने अकेले ही दीर्घकालतक हिमालयके शिखरपर निवास किया है और विभिन्न धर्मोंसे सम्पन्न बहुत-से देश देखे हैं ॥

न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वे हि तेऽब्रुवन् धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४ ॥

'इन सब देशोंके लोग किसी भी निमित्तसे धर्मके विरुद्ध नहीं जाते। वेदोंके पारगामी विद्वानोंने जैसा बताया है, उसी रूपमें वे लोग सम्पूर्ण धर्मको मानते और बतलाते हैं ॥ ४ ॥

अटता तु ततो देशान् नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम् ॥ ५ ॥

'महाराज ! विभिन्न धर्मोंसे युक्त अनेक देशोंमें घूमता-घामता जब मैं बाहीक देशमें आ रहा था, तब वहाँ ऐसी बातें देखने और सुननेमें आयीं ॥ ५ ॥

तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः ।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ॥ ६ ॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते ॥ ७ ॥

'उस देशमें एक ही बाहीक पहले ब्राह्मण होकर फिर क्षत्रिय होता है । तत्पश्चात् वैश्य और शूद्र भी बन जाता है । उसके बाद वह नाई होता है । नाई होकर फिर ब्राह्मण हो जाता है । ब्राह्मण होनेके पश्चात् फिर वही दास बन जाता है *॥ ६-७ ॥

भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः ।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ॥ ८ ॥

'वहाँ एक ही कुलमें कुछ लोग ब्राह्मण और कुछ लोग स्वेच्छाचारी वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाले होते हैं । गान्धार, मद्र और बाहीक—इन सभी देशोंके लोग मन्दबुद्धि हुआ करते हैं ॥ ८ ॥

एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकम् ।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ॥ ९ ॥

'उस देशमें मैंने इस प्रकार धर्मसंकरता फैलानेवाली बातें सुनीं । सारी पृथ्वीमें घूमकर केवल बाहीक देशमें ही मुझे धर्मके विपरीत आचार-व्यवहार दिखायी दिया' ॥ ९ ॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद् वाक्यं वाहीकानां च कुत्सितम्॥१०॥

शल्य ! ये सब बातें जान लो । अभी और कहता हूँ । एक दूसरे यात्रीने भी बाहीकोंके सम्बन्धमें जो घृणित बातें बतायी थीं, उन्हें सुनो ॥ १० ॥

सती पुरा हृता काचिदारट्टात् किल दस्युभिः ।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत् ततः ॥ ११ ॥

'कहते हैं, प्राचीन कालमें लुटेरे डाकुओंने आरट्ट देशसे किसी सती स्त्रीका अपहरण कर लिया और अधर्मपूर्वक उसके साथ समागम किया । तब उसने उन्हें यह शाप दे दिया—११

बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलस्य च ॥ १२ ॥
न चैवास्मात् प्रमोक्ष्यध्वं घोरात् पापान्नराधमाः।

,मैं अभी बालिका हूँ और मेरे भाई-बन्धु मौजूद हैं तो भी तुमलोगोंने अधर्मपूर्वक मेरे साथ समागम किया है । इसलिये इस कुलकी सारी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होंगी । नराधमो ! तुम्हें इस घोर पापसे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा'॥

तस्मात् तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः ॥ १३ ॥

'इसलिये उनकी धन-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी भानजे होते हैं, पुत्र नहीं ॥ १३ ॥

कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशयोऽङ्गाश्च कालिङ्गा मागधास्तथा ॥ १४ ॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।

'कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अङ्ग, कलिङ्ग, मगध और चेदिदेशोंके बड़भागी मनुष्य सनातन धर्मको जानते हैं ॥ १४½ ॥

नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्यालयादृते ॥ १५ ॥
आ मत्स्येभ्यः कुरुपञ्चालदेश्या
आ नैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः ।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो
मद्रानृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥ १६ ॥

'भिन्न-भिन्न देशोंमें बाहीकनिवासियोंको छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्रेष्ठ पुरुष उपलब्ध होते हैं । मत्स्यसे लेकर कुरु और पाञ्चाल देशतक, नैमिषारण्यसे लेकर चेदिदेशतक जो लोग निवास करते हैं, वे सभी श्रेष्ठ एवं साधु पुरुष हैं और प्राचीन धर्मका आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं । मद्र और पञ्चनद प्रदेशोंमें ऐसी बात नहीं है । वहाँके लोग कुटिल होते हैं' ॥ १५-१६ ॥

एवं विद्वान् धर्मकथासु राजं-
स्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयाः ।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा
षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ १७ ॥

राजा शल्य ! ऐसा जानकर तुम जड पुरुषोंके समान धर्मोपदेशकी ओरसे मुँह मोड़कर चुपचाप बैठे रहो । तुम बाहीक देशके लोगोंके राजा और रक्षक हो; अतः उनके पुण्य और पापका भी छठा भाग ग्रहण करते हो ॥ १७ ॥

अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्ता तेषामरक्षिता ।
रक्षिता पुण्यभाग् राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक्॥ १८ ॥

अथवा उनकी रक्षा न करनेके कारण तुम केवल उनके पापमें ही हिस्सा बँटाते हो । प्रजाकी रक्षा करनेवाला राजा ही उसके पुण्यका भागी होता है; तुम तो केवल पापके ही भागी हो ॥ १८ ॥

पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते ।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः ॥ १९ ॥

पूर्वकालमें समस्त देशोंमें प्रचलित सनातन धर्मकी जब प्रशंसा की जा रही थी, उस समय ब्रह्माजीने पञ्चनदवासियोंके धर्मपर दृष्टिपात करके कहा था कि 'धिक्कार है इन्हें !' ॥१९॥

* विभिन्न जातियोंके कर्मको अपनानेके कारण वह उन जातियोंके नामसे निर्दिष्ट होने लगता है ।

व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् ।
ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः ॥ २०॥

संस्कारहीन, जारज और पापकर्मी पञ्चनदवासियोंके धर्मकी जब ब्रह्माजीने सत्ययुगमें भी निन्दा की, तब तुम उसी देशके निवासी होकर जगत्‌में क्यों धर्मोपदेश करने चले हो ? ॥ २० ॥

इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतान् नाभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥

पितामह ब्रह्माने पञ्चनदनिवासियोंके आचार-व्यवहाररूपी धर्मका इस प्रकार अनादर किया है । अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले अन्य देशोंकी तुलनामें उन्होंने इनका आदर नहीं किया ॥ २१ ॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन् राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

शल्य ! इन सब बातोंको अच्छी तरह जान लो । अभी इस विषयमें तुमसे कुछ और भी बातें बता रहा हूँ, जिन्हें सरोवरमें डूबते हुए राक्षस कल्माषपादने कहा था—॥ २२ ॥

क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम् ।
मलं पृथिव्यां वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥ २३ ॥

'क्षत्रियका मल है भिक्षावृत्ति, ब्राह्मणका मल है वेद-शास्त्रोंके विपरीत आचरण, पृथ्वीके मल हैं बाहीक और स्त्रियोंका मल हैं मद्रदेशकी स्त्रियाँ' ॥ २३ ॥

निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद् राजा निशाचरम् ।
अपृच्छत् तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥ २४ ॥

उस डूबते हुए राक्षसका किसी राजाने उद्धार करके उससे कुछ प्रश्न किया । उनके उस प्रश्नके उत्तरमें राक्षसने जो कुछ कहा था, उसे सुनो—॥ २४ ॥

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानां शौण्डिका मलम् ।
शौण्डिकानां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥ २५ ॥

'मनुष्योंके मल हैं म्लेच्छ, म्लेच्छोंके मल हैं शराब बेचनेवाले कलाल, कलालोंके मल हैं हींजड़े और हींजड़ोंके मल हैं राजपुरोहित ॥

राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम् ।
तद् भवेद् वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६ ॥

'राजपुरोहितोंके पुरोहितों तथा मद्रदेशवासियोंका जो मल है, वह सब तुम्हें प्राप्त हो, यदि इस सरोवरसे तुम मेरा उद्धार न कर दो' ॥ २६ ॥

इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भैषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम् ॥ २७ ॥

जिनपर राक्षसोंका उपद्रव है तथा जो विषके प्रभावसे मारे गये हैं, उनके लिये यह उत्तम सिद्ध वाक्य ही राक्षसके प्रभावका निवारण करनेवाला एवं जीवनरक्षक औषध बताया गया है ॥ २७ ॥

ब्राह्मं पञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं
सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम् ।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः
स्तेना वाहीकाः संकरा वै सुराष्ट्राः ॥ २८ ॥

पाञ्चाल देशके लोग वेदोक्त धर्मका आश्रय लेते हैं, कुरुदेशके निवासी धर्मानुकूल कार्य करते हैं, मत्स्यदेशके लोग सत्य बोलते और शूरसेननिवासी यज्ञ करते हैं । पूर्वदेशके लोग दासकर्म करनेवाले, दक्षिणके निवासी वृषल, बाहीक देशके लोग चोर और सौराष्ट्रनिवासी वर्णसङ्कर होते हैं ॥ २८ ॥

कृतघ्नता परवित्तापहारो
मद्यपानं गुरुदारावमर्दः ।
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या
बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥ २९ ॥
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्मो
ह्यारट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु ।

कृतघ्नता, दूसरोंके धनका अपहरण, मदिरापान, गुरुपत्नी गमन, कटुवचनका प्रयोग, गोवध, रातके समय घरसे बाहर घूमना और दूसरोंके वस्त्रका उपभोग करना—ये सब जिनके धर्म हैं, उन आरट्टों और पञ्चनदवासियोंके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं । उन्हें धिक्कार है ! ॥ २९½ ॥

आ पाञ्चालेभ्यः कुरवो नैमिषाश्च
मत्स्याश्चैतेऽप्यथ जानन्ति धर्मम् ।
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च
शिष्टान् धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ३० ॥

पाञ्चाल, कौरव, नैमिष और मत्स्यदेशोंके निवासी धर्मको जानते हैं । उत्तर, अङ्ग तथा मगध देशोंके वृद्ध पुरुष शास्त्रोक्त धर्मोंका आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करते हैं ॥ ३० ॥

प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ३१ ॥
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान् बली ।
उदीचीं भगवान् सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥ ३२ ॥

अग्नि आदि देवता पूर्वदिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, पितर पुण्यकर्मा यमराजके द्वारा सुरक्षित दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, बलवान् वरुण देवताओंका पालन करते हुए पश्चिम दिशाकी रक्षामें तत्पर रहते हैं और भगवान् सोम ब्राह्मणोंके साथ उत्तर दिशाकी रक्षा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३३ ॥
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः ।

महाराज ! राक्षस, पिशाच और गुह्यक—ये गिरिराज हिमालय तथा गन्धमादन पर्वतकी रक्षा करते हैं और

अविनाशी एवं सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियों-का पालन करते हैं (परंतु बाहीक देशपर किसी भी देवता-का विशेष अनुग्रह नहीं है) ॥ ३३½ ॥

इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥ ३४ ॥
अर्धोक्ताः कुरुपञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः।
पर्वतीयाश्च विषमा यथैव शिबयस्तथा ॥ ३५ ॥

मगधदेशके लोग इशारेसे ही सब बात समझ लेते हैं, कोसलनिवासी नेत्रोंकी भावभङ्गीसे मनका भाव जान लेते हैं, कुरु तथा पाञ्चालदेशके लोग आधी बात कहनेपर ही पूरी बात समझ लेते हैं, शाल्वदेशके निवासी पूरी बात कह देनेपर उसे समझ पाते हैं, परंतु शिबिदेशके लोगोंकी भाँति पर्वतीय प्रान्तोंके निवासी इन सबसे विलक्षण होते हैं। वे पूरी बात कहने-पर भी नहीं समझ पाते ॥ ३४–३५ ॥

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥ ३६ ॥
प्रतिरब्धास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः।

राजन्! यद्यपि यवनजातीय म्लेच्छ सभी उपायोंसे बात समझ लेनेवाले और विशेषतः शूर होते हैं, तथापि अपने द्वारा कल्पित संज्ञाओंपर ही अधिक आग्रह रखते हैं (वैदिक धर्मको नहीं मानते)। अन्य देशोंके लोग बिना कहे हुए कोई बात नहीं समझते हैं, परंतु बाहीक देशके लोग सब काम उलटे ही करते हैं (उनकी समझ उलटी ही होती है) और मद्रदेशके कुछ निवासी तो ऐसे होते हैं कि कुछ भी नहीं समझ पाते ॥ ३६½ ॥

स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि।
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥ ३७ ॥

शल्य! ऐसे ही तुम हो। अब मेरी बातका जवाब नहीं दोगे। मद्रदेशके निवासीको पृथ्वीके सम्पूर्ण देशोंका मल बताया जाता है ॥ ३७ ॥

सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो
भ्रूणहत्या परवित्तापहारः।
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्म
आरट्टजान् पञ्चनदान् धिगस्तु ॥ ३८ ॥

मदिरापान, गुरुकी शय्याका उपभोग, भ्रूणहत्या और दूसरोंके धनका अपहरण—ये जिनके लिये धर्म हैं, उनके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। ऐसे आरट्ट और पञ्चनददेशके लोगोंको धिक्कार है! ॥ ३८ ॥

एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः।
मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

यह जानकर तुम चुपचाप बैठे रहो। फिर कोई प्रति-कूल बात मुँहसे न निकालो। अन्यथा पहले तुम्हींको मारकर पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करूँगा ॥ ३९ ॥

शल्य उवाच

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४० ॥

शल्य बोले—कर्ण! तुम जहाँके राजा बनाये गये हो, उस अङ्गदेशमें क्या होता है? अपने सगे-सम्बन्धी जब रोग-से पीड़ित हो जाते हैं तो उनका परित्याग कर दिया जाता है। अपनी ही स्त्री और बच्चोंको वहाँके लोग सरे बाजार बेचते हैं ॥ ४० ॥

रथातिरथसंख्यायां यत् त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत्।
तान् विदित्वाऽऽत्मनो दोषान् निर्मन्युर्भव माक्रुधः॥४१॥

उस दिन रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय भीष्मजीने तुमसे जो कुछ कहा था, उसके अनुसार अपने उन दोषोंको जानकर क्रोधरहित हो शान्त हो जाओ ॥ ४१ ॥

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः॥४२॥

कर्ण! सर्वत्र ब्राह्मण हैं। सब जगह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं तथा सभी देशोंमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाली साध्वी स्त्रियाँ होती हैं ॥ ४२ ॥

रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह।
अन्योन्यमवतक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥

सभी देशोंके पुरुष दूसरे पुरुषोंके साथ बात करते समय उपहासके द्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते हैं और स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं ॥ ४३ ॥

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥

दूसरोंके दोष बतानेमें सभी लोग सदा ही निपुण होते हैं; परंतु अपने दोषोंका उन्हें पता नहीं रहता, अथवा जान-कर भी अनजान बने रहते हैं ॥ ४४ ॥

सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान् निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥ ४५ ॥

सभी देशोंमें अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले राजा रहते हैं, जो दुष्टोंका दमन करते हैं तथा सर्वत्र ही धर्मात्मा मनुष्य निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ ॥

कर्ण! एक देशमें रहनेमात्रसे सब लोग पापका ही सेवन नहीं करते हैं। उसी देशमें मनुष्य अपने श्रेष्ठ शील-स्वभावके कारण ऐसे महापुरुष हो जाते हैं कि देवता भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत्।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब राजा दुर्योधनने कर्ण तथा शल्य दोनोंको रोक दिया। उसने कर्णको तो मित्रभाव-

से समझाकर मना किया और शल्यको हाथ जोड़कर रोका ॥

ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान्।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत्॥ ४८॥

मान्यवर! दुर्योधनके मना करनेपर कर्णने कोई उत्तर नहीं दिया और शल्यने भी शत्रुओंकी ओर मुँह फेर लिया। तब राधापुत्र कर्णने हँसकर शल्यको रथ बढ़ानेकी आज्ञा देते हुए कहा—'चलो, चलो'॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कौरव-सेनाकी व्यूहरचना, युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका आक्रमण, शल्यके द्वारा पाण्डवसेनाके प्रमुख वीरोंका वर्णन तथा अर्जुनकी प्रशंसा

संजय उवाच

ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम्।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम्॥ १॥
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम्॥ २॥
वेपमान इव क्रोधाद् युद्धशौण्डः परंतपः।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद् भरतर्षभ॥ ३॥
व्यधमत् पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह॥ ४॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर यह देखकर कि कुन्तीकुमारोंकी सेनाका अनुपम व्यूह बनाया गया है, जो शत्रुदलके आक्रमणको सह सकनेमें समर्थ और धृष्टद्युम्नद्वारा सुरक्षित है, शत्रुओंको संताप देनेवाला युद्धकुशल कर्ण रथकी घर्घराहट, सिंहकी-सी गर्जना तथा वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वीको कँपाता और स्वयं भी क्रोधसे काँपता हुआ-सा आगे बढ़ा। उस महातेजस्वी वीरने शत्रुओंके मुकाबलेमें अपनी सेनाकी यथोचित व्यूहरचना करके, जैसे इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सेनाका विनाश आरम्भ कर दिया और युधिष्ठिरको भी घायल करके दाहिने कर दिया॥ १–४॥

(तानि सर्वाणि सैन्यानि कर्णं दृष्ट्वा विशाम्पते।
बभूवुः सम्प्रहृष्टानि तावकानि युयुत्सया॥
अश्रूयन्त ततो वाचस्तावकानां विशाम्पते।

प्रजानाथ! (उस समय) आपके सभी सैनिक कर्णको देखकर युद्धकी इच्छासे हर्ष और उत्साहमें भर गये। राजन्! उस समय आपके योद्धाओंकी कही हुई ये बातें सुनायी देने लगीं॥

सैनिका ऊचुः

कर्णार्जुनमहायुद्धमेतदद्य भविष्यति।
अद्य दुर्योधनो राजा हतामित्रो भविष्यति॥

सैनिक बोले—आज यह कर्ण और अर्जुनका महान् युद्ध होगा। आज राजा दुर्योधनके सारे शत्रु मार डाले जायँगे॥

अद्य कर्णं रणे दृष्ट्वा फाल्गुनो विद्रविष्यति।
अद्य तावद् वयं युद्धे कर्णस्यैवानुगामिनः॥
कर्णबाणमयं भीमं युद्धं द्रक्ष्याम संयुगे।

आज अर्जुन रणभूमिमें कर्णको देखते ही भाग खड़े होंगे। आज युद्धमें हमलोग कर्णके ही अनुगामी होकर समराङ्गणमें कर्णके बाणोंसे भरा हुआ भीषण संग्राम देखेंगे॥

चिरकालागतमिदमद्येदानीं भविष्यति॥
अद्य द्रक्ष्याम संग्रामं घोरं देवासुरोपमम्।

दीर्घकालसे जिसकी सम्भावना की जाती थी, वह आज इसी समय उपस्थित होगा। आज हमलोग देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध देखेंगे॥

अद्येदानीं महद् युद्धं भविष्यति भयानकम्॥
अद्येदानीं जयो नित्यमेकस्यैकस्य वा रणे।

आज अभी बड़ा भयानक युद्ध छिड़नेवाला है। आज रणभूमिमें इन दोनोंमेंसे एक-न-एककी विजय अवश्य होगी॥

अर्जुनं किल राधेयो वधिष्यति महारणे॥
अथवा कं नरं लोके न स्पृशन्ति मनोरथाः।

निश्चय ही राधापुत्र कर्ण इस महायुद्धमें अर्जुनका वध कर डालेगा अथवा इस जगत्में किस मनुष्यके अंदर बड़े-बड़े मनसूबे नहीं उठते हैं॥

संजय उवाच

इत्युक्त्वा विविधा वाचः कुरवः कुरुनन्दन।
आजघ्नुः पटहांश्चैव तूर्यांश्चैव सहस्रशः॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन! इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर कौरवोंने सहस्रों नगाड़े पीटे और दूसरे-दूसरे बाजे भी बजवाये॥

भेरीनादांश्च विविधान् सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
मुरजानां महाशब्दानानकानां महारवान्॥

भाँति-भाँतिकी भेरी-ध्वनि हुई और बारंबार सैनिकोंद्वारा सिंहनाद किये गये। गम्भीर ध्वनि करनेवाले ढोल और मृदंगके महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँजने लगे॥

नृत्यमानाश्च बहवस्तर्जमानाश्च मारिष ।
अन्योन्यमभ्ययुर्युद्धे युद्धरङ्गगता नराः ॥

मान्यवर नरेश ! युद्धके रङ्गभूमिमें उतरे हुए बहुसंख्यक मनुष्य नृत्य तथा गर्जन-तर्जन करते हुए एक दूसरेका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥

तेषां पदाता नागानां पादरक्षाः समन्ततः ।
पट्टिशासिधराः शूराश्चापबाणभुशुण्डिनः ॥
भिन्दिपालधराश्चैव शूलहस्ताः सुचक्रिणः ।
तेषां समागमो घोरो देवासुररणोपमः ॥)

उनमें शूरवीर पैदल सैनिक चारों ओरसे पट्टिश, खड्ग, धनुष-बाण, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, त्रिशूल और चक्र हाथमें लेकर हाथियोंके पैरोंकी रक्षा कर रहे थे। उनमें देवासुरसंग्रामके समान भयंकर युद्ध छिड़ गया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संजय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् भीमसेनाभिरक्षितान् ॥ ५ ॥
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि ।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य संजय ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! राधापुत्र कर्णने देवताओंके लिये भी अजेय तथा भीमसेनद्वारा सुरक्षित धृष्टद्युम्न आदि सम्पूर्ण महाधनुर्धर पाण्डव-वीरोंके जवाबमें किस प्रकार व्यूहका निर्माण किया ? संजय ! मेरी सेनाके दोनों पक्ष और प्रपक्षके रूपमें कौन-कौनसे वीर थे ? ॥ ५-६ ॥

प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ।
कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ॥ ७ ॥

वे किस प्रकार यथोचित रूपसे योद्धाओंका विभाजन करके खड़े हुए थे ? पाण्डवोंने भी मेरे पुत्रोंके मुकाबलेमें कैसे व्यूहका निर्माण किया था ? ॥ ७ ॥

कथं चैव महद् युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
क्व च बीभत्सुरभवद् यत् कर्णोऽयाद् युधिष्ठिरम् ॥८॥

यह अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किस प्रकार आरम्भ हुआ ! अर्जुन कहाँ थे कि कर्णने युधिष्ठिरपर आक्रमण कर दिया ? ॥

को ह्यर्जुनस्य सांनिध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ।
सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान् पुरा ।
कस्तमन्यस्तु राधेयात् प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः ॥ ९ ॥

जिन्होंने पूर्वकालमें अकेले ही खाण्डववनमें समस्त प्राणियोंको परास्त कर दिया था, उन अर्जुनके समीप रहते हुए युधिष्ठिरपर कौन आक्रमण कर सकता था ? राधापुत्र कर्णके सिवा दूसरा कौन है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखते हुए भी अर्जुनके सामने युद्ध कर सके ॥ ९ ॥

संजय उवाच

शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः ।
परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद् यथा ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! व्यूहकी रचना किस प्रकार हुई थी, अर्जुन कैसे और कहाँ चले गये थे और अपने-अपने राजाको सब ओरसे घेरकर दोनों दलोंके योद्धाओंने किस प्रकार संग्राम किया था ? यह सब बताता हूँ, सुनिये ॥

कृपः शारद्वतो राजन् मागधाश्च तरस्विनः ।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ११ ॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥ १२ ॥

नरेश्वर ! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, वेगशाली मागध वीर और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये व्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर खड़े थे। महारथी शकुनि और उलूक चमचमाते हुए प्रासोंसे सुशोभित घुड़सवारोंके साथ उनके प्रपक्षमें स्थित हो आपके व्यूहकी रक्षा कर रहे थे ॥ ११-१२ ॥

गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पर्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः ॥ १३ ॥

उनके साथ कभी घबराहटमें न पड़नेवाले गान्धारदेशीय सैनिक और दुर्जय पर्वतीय वीर भी थे। पिशाचोंके समान उन योद्धाओंकी ओर देखना कठिन हो रहा था और वे टिड्डीदलोंके समान यूथ बनाकर चलते थे ॥ १३ ॥

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १४ ॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।

श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छावाले युद्धनिपुण संशप्तक योद्धा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले रथी वीर थे। उनकी संख्या चौंतीस हजार थी। वे आपके पुत्रोंके साथ रहकर व्यूहके वाम पार्श्वकी रक्षा करते थे ॥ १४½ ॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥ १५ ॥
निदेशात् सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम् ॥ १६ ॥

उनके प्रपक्षस्थानमें सूतपुत्रकी आज्ञासे रथों, घुड़सवारों और पैदलोंसहित काम्बोज, शक तथा यवन महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुनको ललकारते हुए खड़े थे ॥ १५-१६ ॥

मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः ।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन् वाहिनीमुखम् ॥ १७ ॥

कर्ण भी विचित्र कवच, अङ्गद और हार धारण करके सेनाके मुखभागकी रक्षा करता हुआ व्यूहके मुहानेपर ठीक बीचो-बीचमें खड़ा था ॥ १७ ॥

रक्ष्यमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः ।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत ॥ १८ ॥

अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।

सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण रोष और जोशमें भरकर सेनापतिकी रक्षा-में तत्पर हुए आपके पुत्रोंके साथ प्रमुख भागमें स्थित हो कौरवसेनाको अपने साथ खींचता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था, वह शत्रुओंके सामने डटा हुआ था ॥ १८½ ॥

महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ।

व्यूहके पृष्ठभागमें पिङ्गल नेत्रोंवाला प्रियदर्शन दुःशासन सेनाओंसे घिरा हुआ खड़ा था । वह एक विशाल गजराजकी पीठपर विराजमान था ॥ १९½ ॥

तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥
चित्रास्त्रैश्चित्रसंनाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥ २१ ॥
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।

महाराज ! विचित्र अस्त्र और कवच धारण करनेवाले सहोदर भाइयों तथा एक साथ आये हुए मद्र और केकय-देशके महापराक्रमी योद्धाओंद्वारा सुरक्षित साक्षात् राजा दुर्योधन दुःशासनके पीछे-पीछे चल रहा था । महाराज ! उस समय देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान उसकी शोभा हो रही थी ॥ २०—२१½ ॥

अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥ २२ ॥
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।
अन्वयुस्तद् रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा, कौरवपक्षके प्रमुख महारथी वीर, शौर्य-सम्पन्न म्लेच्छ सैनिकोंसे युक्त नित्य मतवाले हाथी वर्षा करने-वाले मेघोंके समान मदकी धारा बहाते हुए उस रथसेनाके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ २२—२३ ॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

वे हाथी ध्वजों, वैजयन्ती पताकाओं, प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्रों तथा सवारोंसे सुशोभित हो वृक्षसमूहोंसे युक्त पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥ २५ ॥

पट्टिश और खड्ग धारण किये तथा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले सहस्रों शूर सैनिक उन पैदलों एवं हाथियोंके पादरक्षक थे ॥ २५ ॥

सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलङ्कृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥ २६ ॥

अधिकाधिक सुसज्जित हाथियों, रथों और घुड़सवारोंसे सम्पन्न वह व्यूहराज देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २६ ॥

बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् ॥ २७ ॥

विद्वान् सेनापति कर्णके द्वारा बृहस्पतिकी बतायी हुई रीतिके अनुसार भलीभाँति रचा गया वह महान् व्यूह शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करता हुआ नृत्य-सा कर रहा था ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २८ ॥

उसके पक्ष और प्रपक्षोंसे युद्धके इच्छुक पैदल, घुड़-सवार, रथी और गजारोही योद्धा उसी प्रकार निकल पड़ते थे, जैसे वर्षाकालमें मेघ प्रकट होते हैं ॥ २८ ॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनंजयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९ ॥

तदनन्तर सेनाके मुहानेपर कर्णको खड़ा देख राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंका संहार करनेवाले अद्वितीय वीर धनंजयसे इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥ ३० ॥

'अर्जुन ! रणभूमिमें कर्णद्वारा रचित उस महाव्यूहको देखो । पक्षों और प्रपक्षोंसे युक्त शत्रुकी वह व्यूहबद्ध सेना कैसी प्रकाशित हो रही है ! ॥ ३० ॥



तदेतद् वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद् बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१ ॥

'अतः इस विशाल शत्रुसेनाकी ओर देखकर तुम ऐसी नीतिका निर्माण करो, जिससे वह हमें परास्त न कर सके' ॥

एवमुक्तोऽर्जुनो राजा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।

यथा भवानाह तथा तत् सर्वं न तदन्यथा ॥ ३२ ॥

राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुन हाथ जोड़कर उनसे बोले—'भारत ! आप जैसा कहते हैं वह सब वैसा ही है। उसमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है ॥ ३२ ॥

यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥

'युद्धशास्त्रमें इस व्यूहके विनाशके लिये जो उपाय बताया गया है, उसीका सम्पादन करूँगा । प्रधान सेनापतिका वध होनेपर ही इसका विनाश हो सकता है; अतः मैं वही करूँगा' ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मात् त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥ ३४ ॥
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः ।
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिर बोले—अर्जुन ! तब तुम्हीं राधापुत्र कर्णके साथ भिड़ जाओ ! भीमसेन दुर्योधनसे, नकुल वृषसेनसे, सहदेव शकुनिसे, शतानीक दुःशासनसे, सात्यकि कृतवर्मासे और धृष्टद्युम्न अश्वत्थामासे युद्ध करे तथा स्वयं मैं कृपाचार्यके साथ युद्ध करूँगा ॥ ३४-३५ ॥

द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्शिष्टान् सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३६ ॥

द्रौपदीके पुत्र शिखण्डीके साथ रहकर धृतराष्ट्रके शेष बचे हुए पुत्रोंपर धावा करें । इसी प्रकार हमारे विभिन्न सैनिक हमलोगोंके उन-उन शत्रुओंका विनाश करें ॥ ३६ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनंजयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥ ३७ ॥

धर्मराजके ऐसा कहनेपर अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर अपनी सेनाओंको युद्धके लिये आदेश दे दिया और स्वयं वे सेनाके मुहानेपर जा पहुँचे ॥ ३७ ॥

(धनंजयो महाराज दक्षिणं पक्षमाश्रितः ।
भीमसेनो महाबाहुर्वामं पक्षमुपाश्रितः ॥
सात्यकिर्द्रौपदेयाश्च स्वयं राजा च पाण्डवः ।
व्यूहस्य प्रमुखे तस्थुः स्वेनानीकेन संवृताः ॥
स्वबलेनारिसैन्यं तत् प्रत्यवस्थाप्य पाण्डवः ।
प्रत्यव्यूहत् पुरस्कृत्य धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥
तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महाबलम् ॥)

महाराज ! अर्जुन दाहिने पक्षमें खड़े हुए और महाबाहु भीमसेनने बायें पक्षका आश्रय लिया । सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर अपनी सेनासे घिरकर व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए । युधिष्ठिरने अपनी सेना द्वारा प्रतिरोध करके शत्रुकी उस सेनाको ठहर जानेके लिये विवश कर दिया और धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीको आगे करके उसके मुकाबलेमें अपनी सेनाका व्यूह बनाया । घुड़सवारों, हाथियों, पैदलों और रथोंसे भरा हुआ वह प्रबल व्यूह, जिसके प्रमुख भागमें धृष्टद्युम्न थे, बड़ी शोभा पा रहा था ॥

अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मोद्धः सप्तितां गतः ।
तस्माद् यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३८ ॥

वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रज्वलित और सबसे पहले प्रकट हुए सम्पूर्ण विश्वके नेता अग्निदेव, जो ब्रह्माजीके मुखसे सर्वप्रथम उत्पन्न हैं और इसी कारण देवता जिन्हें ब्राह्मण मानते हैं, अर्जुनके उस दिव्य रथके अश्व बने हुए थे ॥ ३८ ॥

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान् क्रमशो योऽवहत् पुरा ।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

जो प्राचीन कालमें क्रमशः ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका था, उसी आदि रथपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुओंकी ओर बढ़े चले जा रहे थे ॥ ३९ ॥

अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ४० ॥

अत्यन्त अद्भुत दिखायी देनेवाले उस रथको आते देख शल्यने रणदुर्मद सूतपुत्र कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ ४० ॥

अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ ४१ ॥
निघ्नन्नमित्रान् कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि ।

'कर्ण ! तुम जिन्हें बारंबार पूछ रहे थे, वे ही ये कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंका संहार करते हुए रथके साथ आ पहुँचे । उनके घोड़े श्वेत रंगके हैं, श्रीकृष्ण उनके सारथि हैं और वे कर्मोंके फलकी भाँति तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाओंके लिये दुर्निवार्य हैं ॥ ४१½ ॥

श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥ ४२ ॥
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनंजयौ ।

'उनके रथका भयंकर शब्द ऐसा सुनायी दे रहा है, मानो महान् मेघकी गर्जना हो रही हो । निश्चय ही वे महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ही आ रहे हैं ॥ ४२½ ॥

एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३ ॥
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी ।

'कर्ण ! यह ऊपर उठी हुई धूल आकाशको आच्छादित करके स्थित हो रही है और यह पृथ्वी अर्जुनके रथके पहियोंद्वारा संचालित-सी होकर काँपने लगी है ॥ ४३½ ॥

प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम् ।

'तुम्हारी सेनाके सब ओर यह प्रचण्ड वायु बह रही है, ये मांसभक्षी पशु-पक्षी बोल रहे हैं और मृगगण भयंकर क्रन्दन कर रहे हैं ॥ ४४½ ॥

पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।

'कर्ण ! वह देखो, रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयदायक मेघसदृश महाघोर कबन्धाकार केतु नामक ग्रह सूर्यमण्डलको घेरकर खड़ा है ॥ ४५½ ॥

पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ॥ ४६ ॥
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।

'देखो, चारों दिशाओंमें नाना प्रकारके पशुसमुदाय तथा बलवान् एवं स्वाभिमानी सिंह सूर्यकी ओर देख रहे हैं ॥

पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान् सहस्रशः ॥ ४७ ॥
स्थितानभिमुखान् घोरानन्योन्यमभिभाषतः ।

'देखो, सहस्रों घोर कङ्क और गीध एकत्र होकर सामने खड़े हैं और आपसमें कुछ बोल भी रहे हैं ॥ ४७½ ॥

रञ्जिताश्चामरा युक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८ ॥
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।

'कर्ण ! तुम्हारे विशाल रथमें बँधे हुए ये रंगीन और श्रेष्ठ चँवर सहसा प्रज्वलित हो उठे हैं और तुम्हारी ध्वजा भी जोर-जोरसे हिलने लगी है ॥ ४८½ ॥

सवेपथून् हयान् पश्य महाकायान् महाजवान् ।४९।
प्लवमानान् दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।

'देखो, ये तुम्हारे विशालकाय, महान् वेगशाली, दर्शनीय तथा आकाशमें गरुडके समान उड़नेवाले घोड़े थर्थर काँप रहे हैं ॥ ४९½ ॥

ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः।

'कर्ण ! जब ऐसे अपशकुन प्रकट हो रहे हैं तो निश्चय ही आज सैकड़ों और हजारों नरेश मारे जाकर रणभूमिमें शयन करेंगे ॥ ५०½ ॥

शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ ५१ ॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ।

'राधानन्दन ! सब ओर शङ्खों, ढोलों और मृदङ्गोंकी रोमाञ्चकारी तुमुल-ध्वनि सुनायी दे रही है ॥ ५१½ ॥

बाणशब्दान् बहुविधान् नराश्वरथनिस्वनान् ॥ ५२ ॥
ज्यातलत्रेषुशब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् ।

'कर्ण ! बाणोंके भाँति-भाँतिके शब्द, मनुष्यों, घोड़ों और रथोंके कोलाहल तथा महामनस्वी वीरोंकी प्रत्यञ्चा और दस्तानोंके शब्द सुनो ॥ ५२½ ॥

हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ॥ ५३ ॥
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः ।

रथोंकी ध्वजाओंपर सोने और चाँदीके तारोंसे खचित वस्त्रोंकी बनी हुई शिल्पियोंद्वारा निर्मित बहुरंगी पताकाएँ हवाके झोंकेसे हिलती हुई कैसी शोभा पा रही हैं ॥ ५३½ ॥

सहेमचन्द्रताराकाः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥ ५४ ॥
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामन्य इवाम्बुदे ।

'कर्ण ! देखो, अर्जुनके रथकी इन पताकाओंमें सुवर्णमय चन्द्रमा, सूर्य और तारोंके चिह्न बने हुए हैं और छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हुई हैं । रथपर फहराती हुई ये पताकाएँ मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रही हैं ॥५४½॥

ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥ ५५ ॥
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने दैवते यथा ।

'कर्ण ! देवताओंके विमान-जैसे रथपर ये ध्वज हवाके झोंके खा-खाकर कड़कड़ शब्द करते हुए शोभा पा रहे हैं ॥

सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५६ ॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७ ॥

'ये महामनस्वी पाञ्चाल वीरोंके रथ हैं, जिनपर पताकाएँ फहरा रही हैं । यह देखो, श्रेष्ठ वानरयुक्त ध्वजावाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार अर्जुन आक्रमण करनेके लिये इधर ही आ रहे हैं ॥ ५६—५७ ॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥ ५८ ॥

'अर्जुनके ध्वजके अग्रभागपर यह सब ओरसे देखने योग्य भयंकर वानर दृष्टिगोचर होता है, जो शत्रुओंका दुःख बढ़ानेवाला है ॥ ५८ ॥

एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शङ्खः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥ ५९ ॥

'ये बुद्धिमान् श्रीकृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष अत्यन्त शोभा पा रहे हैं । उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि सबसे अधिक प्रकाशित हो रही है ॥ ५९ ॥

एष शङ्खगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥ ६० ॥

'हाथोंमें शङ्ख और गदा धारण करनेवाले ये अत्यन्त पराक्रमी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली श्वेत घोड़ोंको हाँकते हुए इधर ही आ रहे हैं ॥ ६० ॥

एतत् कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ ६१ ॥

'सव्यसाची अर्जुनके हाथसे खींचे गये गाण्डीव धनुषकी यह टङ्कार होने लगी । उनके कुशल हाथोंसे छोड़े गये ये पैने बाण शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं ॥ ६१ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ ६२ ॥

'युद्ध छोड़कर पीछे न हटनेवाले राजाओंके मस्तकोंसे रणभूमि पटती जा रही है। वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुख और लाल-लाल विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं॥

एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः॥ ६३॥

'अस्त्र उठाये हुए युद्ध-कुशल वीरोंकी ये परिघ-जैसी मोटी और पवित्र सुगन्धयुक्त चन्दनसे चर्चित भुजाएँ आयुधोंसहित काटकर गिरायी जाने लगी हैं॥ ६३॥

निरस्तनेत्रजिह्वान्त्रा वाजिनः सह सादिभिः।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाश्च शेरते॥ ६४॥

'जिनके नेत्र, जीभ और आँतें बाहर निकल आयी हैं, वे गिरे और गिराये जाते हुए घुड़सवारोंसहित घोड़े क्षत-विक्षत होकर पृथ्वीपर सो रहे हैं॥ ६४॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा॥ ६५॥

'ये पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय हाथी अर्जुनके द्वारा मारे जाकर छिन्न-भिन्न हो पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे हैं॥ ६५॥

गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी॥ ६६॥

'जिनके नरेश मारे गये हैं, वे गन्धर्वनगरके समान विशाल रथ स्वर्गवासियोंके पुण्यमय विमानोंके समान नीचे गिर रहे हैं॥ ६६॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा॥ ६७॥

'देखो, किरीटधारी अर्जुनने कौरवसेनाको उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, जैसे सिंह नाना जातिके सहस्रों मृगोंको भयभीत कर देता है॥ ६७॥

घ्नन्त्येते पार्थिवान् वीराः पाण्डवाः समभिद्रुताः।
नागाश्वरथपत्त्योघांस्तावकान् समभिघ्नतः॥ ६८॥

'तुम्हारे सैनिकोंके आक्रमण करनेपर ये वीर पाण्डव-योद्धा अपने ऊपर प्रहार करनेवाले राजाओं तथा हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसमूहोंको मार रहे हैं॥ ६८॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते॥ ६९॥

'जैसे सूर्य बादलोंसे ढक जाते हैं, उसी प्रकार आड़में पड़ जानेके कारण ये अर्जुन नहीं दिखायी देते हैं; परंतु इनके ध्वजका अग्रभाग दीख रहा है और प्रत्यञ्चाकी टंकार भी सुनायी पड़ती है॥ ६९॥

अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
निघ्नन्तं शात्रवान् संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि॥ ७०॥

'कर्ण! तुम जिन्हें पूछ रहे थे, युद्धस्थलमें शत्रुओंका संहार करते हुए उन कृष्णसारथि श्वेतवाहन वीर अर्जुनको अभी देखोगे॥ ७०॥

अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परंतपौ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ॥ ७१॥

'कर्ण! लाल नेत्रोंवाले उन शत्रुसंतापी पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको आज तुम एक रथपर बैठे हुए देखोगे॥ ७१॥

सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम्।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि॥ ७२॥

'राधापुत्र! श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं और गाण्डीव जिनका धनुष है, उन अर्जुनको यदि तुमने मार लिया तो तुम हमारे राजा हो जाओगे॥ ७२॥

एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली॥ ७३॥

'यह देखो, संशप्तकोंकी ललकार सुनकर महाबली अर्जुन उन्हींकी ओर चल पड़े और अब संग्राममें उन शत्रुओंका संहार कर रहे हैं'॥ ७३॥

इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः॥ ७४॥

ऐसी बातें कहते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हीं देखो न, रोषमें भरे हुए संशप्तकोंने उनपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया है॥ ७४॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे॥ ७५॥

'यह लो, बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान अर्जुन अब नहीं दिखायी देते हैं। शल्य! अब अर्जुनका यहीं अन्त हुआ समझो। वे योद्धाओंके समुद्रमें डूब गये'॥ ७५॥

शल्य उवाच

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम्।
को वानिलं निगृह्णीयात् पिबेद् वा को महार्णवम्॥ ७६॥

शल्यने कहा—कर्ण! कौन ऐसा वीर है, जो जलसे वरुणको और ईंधनसे अग्निको मार सके? वायुको कौन कैद कर सकता है अथवा महासागरको कौन पी सकता है?॥ ७६॥

ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम्।
न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥ ७७॥

मैं युद्धमें अर्जुनके स्वरूपको ऐसा ही समझता हूँ। संग्रामभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंके द्वारा भी अर्जुन नहीं जीते जा सकते॥ ७७॥

अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव।
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम्॥ ७८॥

अथवा यदि तुम्हें इसीसे संतोष होता है तो वाणीमात्रसे अर्जुनके वधकी चर्चा करके मन-ही-मन प्रसन्न हो लो। परंतु वास्तवमें युद्धके द्वारा कोई भी अर्जुनको जीत नहीं

सकता। अतः अब तुम कोई और ही मनसूबा बाँधो ॥७८॥

बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः।
पातयेत् त्रिदिवाद् देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ७९॥

जो समराङ्गणमें अर्जुनको जीत ले, वह मानो अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होनेपर इस सारी प्रजाको दग्ध कर सकता है तथा देवताओंको भी स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है ॥ ७९ ॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम्।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥ ८० ॥

लो देख लो, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भयंकर वीर महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुन दूसरे मेरुपर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८० ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन्।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ८१ ॥

सदा क्रोधमें भरे रहकर दीर्घकालतक वैरको याद रखनेवाले ये अमर्षशील पराक्रमी भीमसेन विजयकी अभिलाषा लेकर युद्धके लिये खड़े हैं ॥ ८१ ॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ८२ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले, ये धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर भी युद्धभूमिमें खड़े हैं। शत्रुओंके लिये इन्हें पराजित करना आसान नहीं है ॥ ८२ ॥

एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३ ॥

ये अश्विनीकुमारोंके समान सुन्दर दोनों भाई पुरुषप्रवर नकुल और सहदेव भी युद्धस्थलमें खड़े हैं। इन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन है ॥ ८३ ॥

अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥ ८४ ॥

ये द्रौपदीके पाँचों पुत्र पाँच पर्वतोंके समान अविचल भावसे युद्धके लिये खड़े हैं। रणभूमिमें ये सब-के-सब अर्जुनके समान पराक्रमी हैं ॥ ८४ ॥

एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५ ॥

ये समृद्धिशाली, सत्यविजयी तथा परम बलवान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न आदि वीर युद्धके लिये डटे हुए हैं ॥ ८५ ॥

असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः।
युयुत्सुरुपयात्यस्मान् क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥ ८६ ॥

वह सामने सात्वतवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि, जो शत्रुओंके लिये इन्द्रके समान असह्य हैं, क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान युद्धकी इच्छा लेकर सामनेसे हमलोगोंकी ओर आ रहे हैं ॥ ८६ ॥

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद् भृशम् ॥ ८७ ॥

राजन्! वे दोनों पुरुषसिंह शल्य और कर्ण इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि कौरव और पाण्डवकी दोनों सेनाएँ गङ्गा और यमुनाके समान एक दूसरीसे वेगपूर्वक जा मिलीं ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १६ श्लोक मिलाकर कुल १०३ श्लोक हैं)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर युद्ध तथा अर्जुन और कर्णका पराक्रम

धृतराष्ट्र उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च संजय।
संशप्तकान् कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार जब सारी सेनाओंकी व्यूहरचना हो गयी और दोनों दलोंके योद्धा परस्पर युद्ध करने लगे, तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने संशप्तकोंपर और कर्णने पाण्डव-योद्धाओंपर कैसे धावा किया? ॥ १ ॥

एतद् विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि।
न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान् रणे ॥२॥

सूत! तुम युद्धसम्बन्धी इस समाचारका विस्तारपूर्वक वर्णन करो, क्योंकि इस कार्यमें कुशल हो। रणभूमिमें वीरोंके पराक्रमका वर्णन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥

संजय उवाच

तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत्।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज! आपके पुत्रकी दुर्नीतिके कारण शत्रुओंकी उस विशाल सेनाको युद्धमें उपस्थित जानकर अर्जुनने अपनी सेनाका भी व्यूह बनाया ॥ ३ ॥

तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम्।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद् बलम् ॥ ४ ॥

घुड़सवारों, हाथियों, रथों तथा पैदलोंसे भरे हुए उस व्यूहके मुखभागमें धृष्टद्युम्न खड़े थे, जिससे उस विशाल सेनाकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४ ॥

पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥ ५ ॥

कबूतरके समान रंगवाले घोड़ोंसे युक्त और चन्द्रमा तथा सूर्यके समान तेजस्वी धनुर्धर वीर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न वहाँ मूर्तिमान् कालके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः ।
दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ६ ॥
सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ।

दिव्य कवच और आयुध धारण किये, सिंहके समान पराक्रमी सेवकोंसहित समस्त द्रौपदीपुत्र युद्धके लिये उत्सुक हो धृष्टद्युम्नकी रक्षा करने लगे, मानो तेजस्वी शरीरवाले नक्षत्र चन्द्रमाका संरक्षण कर रहे हों ॥ ६½ ॥

अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान् रणे ॥ ७ ॥
क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः ।

इस प्रकार सेनाओंकी व्यूह-रचना हो जानेपर रणभूमिमें संशप्तकोंकी ओर देखकर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ७½ ॥

अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन् वधैषिणः ॥ ८ ॥
विजये धृतसंकल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

तब विजयका दृढ़ संकल्प लेकर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निमित्त बनाकर अर्जुनके वधकी इच्छावाले संशप्तकोंने भी उनपर धावा बोल दिया ॥ ८½ ॥

तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ॥ ९ ॥
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् ।

संशप्तकोंकी सेनामें पैदल मनुष्यों और घुड़सवारोंकी संख्या बहुत अधिक थी। मतवाले हाथी और रथ भी भरे हुए थे। पैदलोंसहित शूरवीरोंके उस समुदायने तुरंत ही अर्जुनको पीड़ा देना आरम्भ किया ॥ ९½ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत् किरीटिना ॥ १० ॥
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ्निवातकवचैः सह ।

किरीटधारी अर्जुनके साथ संशप्तकोंका वह संग्राम वैसा ही भयानक था, जैसा कि निवातकवच नामक दानवोंके साथ अर्जुनका युद्ध हमने सुन रक्खा है ॥ १०½ ॥

रथानश्वान् ध्वजान् नागान् पत्तीन् रणगतानपि॥११॥
इषून् धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ।
सायुधानुद्यतान् बाहून् विविधान्यायुधानि च॥१२॥
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः ।

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने रणस्थलमें आये हुए शत्रुपक्षके रथों, घोड़ों, ध्वजों, हाथियों और पैदलोंको भी काट डाला, उन्होंने शत्रुओंके धनुष, बाण, खड्ग, चक्र, फरसे, आयुधोंसहित उठी हुई भुजा, नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा सहस्रों मस्तक काट गिराये ॥ ११-१२½ ॥

तस्मिन् सैन्यमहावर्ते पातालतलसंनिभे ॥ १३ ॥
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तका मुदा ।

सेनाओंकी उस विशाल भँवरमें जो पातालतलके समान प्रतीत होता था, अर्जुनके उस रथको निमग्न हुआ मानकर संशप्तक सैनिक प्रसन्न हो सिंहनाद करने लगे ॥ १३½ ॥

स पुनस्तानरीन् हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् ॥ १४ ॥
दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।

तत्पश्चात् उन शत्रुओंका वध करके पुनः अर्जुनने कुपित हो उत्तर, दक्षिण और पश्चिमकी ओरसे आपकी सेनाका उसी प्रकार संहार आरम्भ किया, जैसे प्रलयकालमें रुद्रदेव पशुओं (जगत्के प्राणियों) का विनाश करते हैं ॥ १४½ ॥

अथ पञ्चालचेदीनां सृंजयानां च मारिष ॥ १५ ॥
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत् परमदारुणः ।

माननीय नरेश ! फिर आपके सैनिकोंके साथ पाञ्चाल, चेदि और सृंजय वीरोंका अत्यन्त भयंकर संग्राम होने लगा १५½

कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १६ ॥
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः ।
कोसलैः काश्यमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि ॥ १७ ॥
शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ।

रथियोंकी सेनामें प्रहार करनेमें कुशल कृपाचार्य, कृतवर्मा और सुबलपुत्र शकुनि—ये रणदुर्मद वीर अत्यन्त कुपित हो हर्षमें भरी हुई सेना साथ लेकर कोसल, काशि, मत्स्य, करूष, केकय तथा शूरसेनदेशीय शूरवीरोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १६-१७½ ॥

तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ १८ ॥
क्षत्रविट्शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् ।

उनका वह युद्ध क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रवीरोंके शरीर, पाप और प्राणोंका विनाश करनेवाला, संहारकारी, धर्मसंगत, स्वर्गदायक तथा यशकी वृद्धि करनेवाला था ॥ १८½ ॥

दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥ १९ ॥
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ।
पाण्डवैः सह पञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ॥ २० ॥
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरो व्यपालयत् ।

भरतश्रेष्ठ ! भाइयोंसहित कुरुवीर दुर्योधन कौरव वीरों तथा मद्रदेशीय महारथियोंसे सुरक्षित हो रणभूमिमें पाण्डवों, पाञ्चालों, चेदिदेशके वीरों तथा सात्यकिके साथ जूझते हुए कर्णकी रक्षा करने लगा ॥ १९-२०½ ॥

कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ॥ २१ ॥
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान् युधिष्ठिरमपीडयत् ।

कर्ण भी अपने पैने बाणोंसे विशाल पाण्डवसेनाको हताहत करके बड़े-बड़े रथियोंको धूलमें मिलाकर युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगा ॥ २१½ ॥

विवस्त्रायुधदेहासून् कृत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥ २२ ॥
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत्।

वह सहस्रों शत्रुओंको वस्त्र, आयुध, शरीर और प्राणोंसे शून्य करके उन्हें स्वर्ग और सुयशसे संयुक्त करता हुआ आत्मीयजनोंको आनन्द प्रदान करने लगा॥२२½॥

एवं मारिष संग्रामो नरवाजिगजक्षयः।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवासुरसमोऽभवत् ॥ २३ ॥

मान्यवर ! इस प्रकार मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका विनाश करनेवाला वह कौरवों तथा सृंजयोंका युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा बहुत-से योद्धाओंसहित पाण्डवसेनाका संहार, भीमसेनके द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध, नकुल और सात्यकिके साथ वृषसेनका युद्ध तथा कर्णका राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तत् प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वञ्जनक्षयम्।
कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! कर्ण कुन्तीपुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करके राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर जो जनसंहार कर रहा था, उसका समाचार मुझे सुनाओ ॥ १ ॥

के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन्।
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २ ॥

उस समय पाण्डवपक्षके किन-किन प्रमुख वीरोंने युद्धस्थलमें कर्णको आगे बढ़नेसे रोका और किन-किनको रौंदकर सूतपुत्र कर्णने युधिष्ठिरको पीड़ित किया ॥ २ ॥

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नमुखान् पार्थान् दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान्।
समभ्यधावत्त्वरितः पञ्चालाञ्छत्रुकर्षणः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्णने धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव-वीरोंको खड़ा देख बड़ी उतावलीके साथ शत्रुसंहारकारी पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ३ ॥

तं तूर्णमभिधावन्तं पञ्चाला जितकाशिनः।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥ ४ ॥

विजयसे उल्लसित होनेवाले पाञ्चाल वीर शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करते हुए महामना कर्णकी अगवानीके लिये उसी प्रकार आगे बढ़े, जैसे हंस महासागरकी ओर बढ़ते हैं ॥४॥

ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ ५ ॥

तदनन्तर दोनों सेनाओंमें सहसा सहस्रों शङ्खोंकी ध्वनि प्रकट हुई, जो हृदयको कम्पित कर देती थी। साथ ही भयंकर भेरीनाद भी होने लगा ॥ ५ ॥

नानाबाणनिपाताश्च द्विपाश्वरथनिःस्वनः।
सिंहनादश्च वीराणामभवद् दारुणस्तदा ॥ ६ ॥

उस समय नाना प्रकारके बाणोंके गिरने, हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हींसने, रथके घर्घराने तथा वीरोंके सिंह-नाद करनेका दारुण शब्द वहाँ गूँज उठा ॥ ६ ॥

साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम्।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ॥ ७ ॥

पर्वत, वृक्ष और समुद्रोंसहित पृथ्वी, वायु तथा मेघों-सहित आकाश एवं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित स्वर्ग स्पष्ट ही घूमते-से जान पड़े ॥ ७ ॥

इति भूतानि तं शब्दं मेनिरे ते च विव्यथुः।
यानि चाप्यल्पसत्त्वानि प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ८ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंने उस तुमुल नादको सुना और सब-के-सब व्यथित हो उठे। उनमें जो दुर्बल प्राणी थे, वे प्रायः मर गये ॥ ८ ॥

अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयन्।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् जैसे इन्द्र असुरोंकी सेनाका विनाश करते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कर्णने शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाकर पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ९ ॥

स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान्।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत् सप्तसप्ततिम् ॥ १० ॥

पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके बाणोंकी वर्षा करते हुए कर्णने प्रभद्रकोंके सतहत्तर प्रमुख वीरोंको मार डाला ॥१०॥

ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः।
अवधीत् पञ्चविंशत्या पञ्चालान् पञ्चविंशतिम् ॥ ११ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने सुन्दर पंखवाले पचीस पैने बाणोंद्वारा पचीस पाञ्चालोंको कालके गालमें भेज दिया ॥११॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः।
चेदिकानवधीद् वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥

वीर कर्णने शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले सुवर्णमय पंखयुक्त नाराचोंद्वारा सैकड़ों और हजारों चेदि-देशीय वीरोंका वध कर डाला ॥ १२ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ १३ ॥

महाराज ! इस प्रकार समराङ्गणमें अलौकिक कर्म करनेवाले कर्णको पाञ्चाल रथियोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥

ततः संधाय विशिखान् पञ्च भारत दुःसहान्।
पञ्चालानवधीत् पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ १४ ॥
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाविन्दुं च भारत।
तपनं शूरसेनं च पञ्चालानहनद् रणे ॥ १५ ॥

भारत ! तब उस रणक्षेत्रमें धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने पाँच दुःसह बाणोंका संधान करके भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु, तपन तथा शूरसेन—इन पाँच पाञ्चाल वीरोंका संहार कर दिया ॥ १४-१५ ॥

पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः।
हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां महाहवे ॥ १६ ॥

उस महासमरमें बाणोंद्वारा उन शूरवीर पाञ्चालोंके मारे जानेपर पाञ्चालोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥१६॥

परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश।
पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥१७॥

महाराज ! फिर दस पाञ्चाल महारथियोंने आकर कर्णको घेर लिया, परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा पुनः उन सबको तत्काल मार डाला ॥ १७ ॥

चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! कर्णके दो दुर्जय पुत्र सुषेण और चित्रसेन उसके पहियोंकी रक्षामें तत्पर हो प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते थे ॥ १८ ॥

पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ १९ ॥

कर्णका ज्येष्ठ पुत्र महारथी वृषसेन पृष्ठरक्षक था। वह स्वयं ही कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहा था ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ २० ॥
चेदिकेकयपाञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः।
समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥ २१ ॥

उस समय प्रहार करनेवाले राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रमुख प्रभद्रक वीर, चेदि, केकय और पाञ्चाल देशके योद्धा, नकुल-सहदेव तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंने कवचसे सुसज्जित हो उसपर धावा बोल दिया २०-२१

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च।
अभ्यवर्षन् विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ २२ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें बादल पर्वतपर जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार उन पाण्डव वीरोंने अपनी सेनाका मर्दन करनेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों और बाणधाराओंकी वृष्टि की ॥ २२ ॥

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः।
त्वदीयाश्चापरे राजन् वीरा वीरानवारयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! उस समय अपने पिताकी रक्षा चाहनेवाले प्रहारकुशल कर्णपुत्र तथा आपकी सेनाके दूसरे-दूसरे वीर पूर्वोक्त पाण्डववीरोंका निवारण करने लगे ॥ २३ ॥

सुषेणो भीमसेनस्य छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम्।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ २४ ॥

सुषेणने एक भल्लसे भीमसेनके धनुषको काटकर उनकी छातीमें सात नाराचोंका प्रहार करके भयंकर गर्जना की २४

अथान्यद् धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद् धनुः॥ २५ ॥

तदनन्तर भीषण पराक्रम प्रकट करनेवाले भीमसेनने दूसरा सुदृढ़ धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सुषेणके धनुषको काट डाला ॥ २५ ॥

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥ २६ ॥

साथ ही कुपित हो नृत्य-से करते हुए भीमने दस बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया और तिहत्तर पैने बाणोंसे तुरंत ही कर्णको भी पीट दिया ॥ २६ ॥

भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम्।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने हितैषी सुहृदोंके बीचमें उनके देखते-देखते कर्णके पुत्र भानुसेनको दस बाणोंसे घोड़े, सारथि, आयुध और ध्वजोंसहित मार गिराया ॥ २७ ॥



क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम्।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८ ॥

भीमसेनके क्षुरसे कटा हुआ चन्द्रोपम मुखसे युक्त भानुसेनका वह मस्तक नालसे कटकर गिरे हुए कमलपुष्पके समान सुन्दर ही दिखायी दे रहा था ॥ २८ ॥

हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान् पुनरार्दयत्।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९ ॥

कर्णके पुत्रका वध करके भीमसेनने पुनः आपके सैनिकोंका मर्दन आरम्भ किया। कृपाचार्य और कृतवर्माके धनुषोंको काटकर उन दोनोंको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२९॥

दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ॥ ३० ॥

तीन बाणोंसे दुःशासनको और छः लोहेके बाणोंसे शकुनिको भी घायल करके उलूक और पतत्रि दोनों वीरोंको रथहीन कर दिया ॥ ३० ॥

सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम्।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ३१ ॥

फिर सुषेणसे यह कहते हुए बाण हाथमें लिया कि 'अब तू मारा गया।' किंतु कर्णने भीमसेनके उस बाणको काट डाला और तीन बाणोंसे उन्हें भी घायल कर दिया ॥३१॥

अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम्।
सुषेणायासृजद् भीमस्तमप्यस्याच्छिनद् वृषः ॥ ३२ ॥

तब भीमसेनने सुन्दर गाँठ और तेज धारवाले दूसरे बाणको हाथमें लिया और उसे सुषेणपर चला दिया; किंतु कर्णने उसको भी काट डाला ॥ ३२ ॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः।
पुत्रं परीप्सन् विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ३३ ॥

फिर पुत्रके प्राण बचानेकी इच्छासे कर्णने क्रूर भीमसेनको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनपर तिहत्तर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३३ ॥

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम्।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ३४ ॥

तब सुषेणने महान् भारको सह लेनेवाले श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर नकुलकी दोनों भुजाओं और छातीमें पाँच बाणोंका प्रहार किया ॥ ३४ ॥

नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५ ॥

नकुलने भी भार सहन करनेमें समर्थ बीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा सुषेणको घायल करके कर्णके मनमें भय उत्पन्न करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥ ३६ ॥

महाराज! महारथी सुषेणने दस बाणोंसे नकुलको चोट पहुँचाकर शीघ्र ही एक क्षुरप्रके द्वारा उनका धनुष काट दिया ॥ ३६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७ ॥

तब क्रोधसे अचेत-से होकर नकुलने दूसरा धनुष हाथमें लिया और सुषेणको नौ बाण मारकर उसे युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३७ ॥

स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ॥ ३८ ॥
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा।

राजन्! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके फिर तीन बाणोंसे सुषेण और उसके सारथिको भी घायल कर दिया। साथ ही तीन भल्ल मारकर उसके सुदृढ़ धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३८½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३९ ॥
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः।

तब क्रोधसे मूर्छित हुए सुषेणने दूसरा धनुष लेकर नकुलको साठ और सहदेवको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३९½ ॥

तद् युद्धं सुमहद् घोरमासीद् देवासुरोपमम् ॥ ४० ॥
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति।

बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक एक दूसरेके वधके लिये चोट करते हुए वीरोंका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४०½ ॥

(सात्यकिर्वृषसेनं तु विद्ध्वा सप्तभिरायसैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥

सात्यकिने लोहेके बने हुए सात बाणोंसे वृषसेनको घायल करके फिर सत्तर बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही तीन बाणोंसे उसके सारथिको भी बींध डाला॥

वृषसेनस्तु शैनेयं शरेणानतपर्वणा।
आजघान महाराज शङ्खदेशे महारथम् ॥

महाराज! वृषसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे महारथी सात्यकिके कपालमें आघात किया ॥

शैनेयो वृषसेनेन पत्रिणा परिपीडितः।
कोपं चक्रे महाराज क्रुद्धो वेगं च दारुणम् ॥
जग्राहेषुवरान् वीरः शीघ्रं वै दश पञ्च च।)

महाराज! वृषसेनके उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। क्रुद्ध होनेपर उन्होंने भयंकर वेग प्रकट किया और शीघ्र ही पंद्रह श्रेष्ठ बाण हाथमें ले लिये॥

सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥ ४२ ॥

उनमेंसे तीन बाणोंद्वारा सात्यकिने वृषसेनके सारथिको

मारकर एकसे उसका धनुष काट दिया और सात बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार डाला। फिर एक बाणसे उसके ध्वजाको खण्डित करके तीन बाणोंसे वृषसेनकी छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ ४१-४२ ॥

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात् पुनरुत्थितः।
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३ ॥
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात्।

इस प्रकार रणक्षेत्रमें युयुधानके द्वारा सारथि, अश्व एवं रथकी ध्वजासे रहित किया हुआ वृषसेन दो घड़ीतक अपने रथपर ही शिथिल-सा होकर बैठा रहा। फिर उठकर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे ढाल और तलवार लेकर उनकी ओर बढ़ा ॥ ४३½ ॥

तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥ ४४ ॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।

इस प्रकार आक्रमण करते हुए वृषसेनकी तलवार और ढालको सात्यकिने वाराहकर्ण नामक दस बाणोंद्वारा शीघ्र ही खण्डित कर दिया ॥ ४४½ ॥

दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥ ४५ ॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम्।

तब दुःशासनने वृषसेनको रथ और अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन हुआ देख उसे रणसे व्याकुल हुआ मानकर तुरंत ही अपने रथपर बिठा लिया और वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ४५½ ॥

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥ ४६ ॥
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः।
भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ४७ ॥
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥ ४८ ॥
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः।
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥ ४९ ॥
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत्।

तदनन्तर महारथी वृषसेनने दूसरे रथपर बैठकर तिहत्तर बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रोंको, पाँचसे युयुधानको, चौंसठसे भीमसेनको, पाँचसे सहदेवको, तीस बाणोंसे नकुलको, सातसे शतानीकको, दस बाणोंसे शिखण्डीको और सौ बाणोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको घायल कर दिया। राजेन्द्र! प्रजानाथ! महाधनुर्धर कर्णपुत्रने विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन सभी प्रमुख वीरोंको तथा दूसरोंको भी अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया। तत्पश्चात् वह दुर्धर्ष वीर युद्धस्थलमें पुनः कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगा ॥ ४६—४९½ ॥

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥ ५० ॥
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत्।

सात्यकिने लोहेके बने हुए नौ नूतन बाणोंसे दुःशासनको सारथि, घोड़ों और रथसे वञ्चित करके उसके ललाटमें तीन बाण मारे ॥ ५०½ ॥

स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ॥ ५१ ॥
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन् बलम्।

दुःशासन विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर कर्णके बलको बढ़ाता हुआ पुनः पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद् दशभिः शरैः ॥ ५२ ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥ ५३ ॥
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ५४ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नने कर्णको दस बाणोंसे बींध डाला। फिर द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात, भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, शिखण्डीने दस और वीर धर्मराज युधिष्ठिरने सौ बाण कर्णको मारे ॥५२-५४॥

एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः।
अभ्यर्दयन् महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ५५ ॥

राजेन्द्र! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन प्रमुख वीरों तथा दूसरोंने भी उस महासमरमें महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णको बाणोंद्वारा पीड़ित कर दिया ॥ ५५ ॥

तान् सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः।
रथेनानुचरन् वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ ५६ ॥

रथसे विचरनेवाले शत्रुदमन वीर सूतपुत्र कर्णने भी उन सबको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ५६ ॥

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५७ ॥

महाभाग! हमने महामना कर्णके अस्त्र-बल और फुर्तीको वहाँ अपनी आँखों देखा था। वह सब कुछ अद्भुत-सा प्रतीत होता था ॥ ५७ ॥

न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान्।
विमुञ्चन्तं च संरम्भाददृश्यन्त हतानरीन् ॥ ५८ ॥

वह कब तरकससे बाण निकालता है, कब धनुषपर रखता है और कब क्रोधपूर्वक शत्रुओंपर छोड़ देता है, यह सब किसीने नहीं देखा। सब लोग मारे जाते हुए शत्रुओंको ही देखते थे ॥ ५८ ॥

(प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्याम लाघवात्।
न तं पश्याम राजेन्द्र क्व नु कर्णोऽधितिष्ठति॥

राजेन्द्र! हमलोग एक ही क्षणमें कर्णको पश्चिम दिशामें देखकर उसकी फुर्तीके कारण उसे पूर्व दिशामें भी देखते थे। इस समय कर्ण कहाँ खड़ा है, यह हमलोग नहीं देख पाते थे॥

इषूनेव स्म पश्यामो विनिकीर्णान् समन्ततः।
छादयानान् दिशो राजञ्शलभानामिव व्रजान्॥)

राजन्! सब ओर बिखरे हुए उसके बाण ही हमें दिखायी देते थे, जो टिड्डीदलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित किये रहते थे॥

द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन् देशे बभौ वियत्॥ ५९॥

द्युलोक, आकाश, भूमि और सम्पूर्ण दिशाएँ पैने बाणोंसे खचाखच भर गयी थीं। उस प्रदेशमें आकाश अरुण रंगके बादलोंसे ढका हुआ-सा जान पड़ता था॥ ५९॥

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान्।
यैर्विद्धः प्रत्यविद्ध्यत् तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः॥ ६०॥

प्रतापी राधापुत्र कर्ण हाथमें धनुष लेकर नृत्य-सा कर रहा था। जिन-जिन योद्धाओंने उसे एक बाणसे घायल किया, उनमेंसे प्रत्येकको उसने तीन गुने बाणोंसे बींध डाला॥६०॥

दशभिर्दशभिश्चैतान् पुनर्विद्ध्वा ननाद च।
साश्वसूतरथच्छत्रांस्ततस्ते विवरं ददुः॥ ६१॥

फिर दस-दस बाणोंसे घोड़ों, सारथि, रथ और छत्रोंसहित इन सबको घायल करके कर्णने सिंहके समान दहाड़ना आरम्भ किया। फिर तो उन शत्रुओंने उसे आगे बढ़नेके लिये जगह दे दी॥ ६१॥

तान् प्रमथ्य महेष्वासान् राधेयः शरवृष्टिभिः।
राजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः॥ ६२॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा उन महाधनुर्धरोंको रौंदकर राजा युधिष्ठिरकी सेनामें बेरोक-टोक प्रवेश किया॥ ६२॥

स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम्।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्याच्छ्र्दद् युधिष्ठिरम्॥ ६३॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले तीन सौ चेदिदेशीय रथियोंको अपने पैने बाणोंद्वारा मारकर युधिष्ठिरपर आक्रमण किया॥ ६३॥

ततस्ते पाण्डवा राजञ्शिखण्डी च ससात्यकिः।
राधेयात् परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन्॥ ६४॥

राजन्! तब पाण्डवों, शिखण्डी और सात्यकिने राधापुत्र कर्णसे राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ ६४॥

तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः॥ ६५॥

इसी प्रकार आपके सभी महाधनुर्धर शूरवीर योद्धा रणमें अनिवार्य गतिसे विचरनेवाले कर्णकी सब ओरसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे॥ ६५॥

नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् विशाम्पते।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणामभिगर्जताम्॥ ६६॥

प्रजानाथ! उस समय नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनि होने लगी और सब ओरसे गर्जना करनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद सुनायी देने लगा॥ ६६॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम्॥ ६७॥

तदनन्तर पुनः कौरव और पाण्डव योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये। एक ओर युधिष्ठिर आदि कुन्तीपुत्र थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल ७२½ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय और तिरस्कार तथा पाण्डवोंके हजारों योद्धाओंका वध और रक्त-नदीका वर्णन तथा पाण्डव महारथियोंद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस और उसका पलायन

संजय उवाच

विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत्।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! सहस्रों रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे घिरे हुए कर्णने उस सेनाको विदीर्ण करके युधिष्ठिरपर धावा किया॥ १॥

नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात्॥ २॥

धर्मात्मा कर्णने शत्रुओंके चलाये हुए नाना प्रकारके हजारों अस्त्र-शस्त्रोंको काटकर उन सबको सैकड़ों उग्र बाणोंद्वारा बिना किसी घबराहटके बींध डाला॥ २॥

निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः॥ ३॥

सूतपुत्रने पाण्डव सैनिकोंके मस्तकों, भुजाओं और जाँघोंको काट डाला। वे मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े और दूसरे बहुत-से योद्धा घायल होकर भाग गये॥ ३॥

द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे॥ ४॥

तब सात्यकिसे प्रेरित होकर द्रविड और निषाद देशोंके पैदल सैनिक कर्णको युद्धमें मार डालनेकी इच्छासे पुनः उसपर टूट पड़े ॥ ४ ॥

ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥

परंतु कर्णके बाणोंसे घायल होकर बाहु, मस्तक और कवच आदिसे रहित हो वे कटे हुए शालवनके समान एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥

एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन् दिशः ॥ ६ ॥

इस प्रकार युद्धस्थलमें मारे गये सैकड़ों, हजार और दस हजार योद्धा शरीरसे तो इस पृथ्वीपर गिर पड़े, किंतु अपने यशसे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपाञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें कुपित हुए यमराजके समान वैकर्तन कर्णको पाण्डवों और पाञ्चालोंने अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे चिकित्सक मन्त्रों और औषधोंसे रोगोंकी रोक-थाम कर लेते हैं ॥ ७ ॥

स तान् प्रमृद्याभ्यपतत् पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥ ८ ॥

परंतु मन्त्र और ओषधियोंकी क्रियासे असाध्य भयानक रोगकी भाँति कर्णने उन सबको रौंदकर पुनः युधिष्ठिरपर ही आक्रमण किया ॥ ८ ॥

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपाञ्चालकेकयैः ।
नाशकत् तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥

राजाकी रक्षा चाहनेवाले पाण्डवों, पाञ्चालों और केकयोंने पुनः कर्णको रोक दिया। जैसे मृत्यु ब्रह्मवेत्ताओंको नहीं लाँघ सकती, उसी प्रकार कर्ण उन सबको लाँघकर आगे न बढ़ सका ॥ ९ ॥

ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥

उस समय युधिष्ठिरने क्रोधसे लाल आँखें करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कर्णसे, जो पास ही रोक दिया गया था, इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥ ११ ॥
तथास्मान् बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।

'कर्ण ! कर्ण ! मिथ्यादर्शी सूतपुत्र ! मेरी बात सुनो । तुम संग्राममें वेगशाली वीर अर्जुनके साथ सदा डाह रखते और दुर्योधनके मतमें रहकर सर्वदा हमें बाधा पहुँचाते हो ॥ ११½ ॥

यद् बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु ॥ १२ ॥
तत् सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १३ ॥

'परंतु आज तुम्हारे पास जितना बल हो, जो पराक्रम हो तथा पाण्डवोंके प्रति तुम्हारे मनमें जो विद्वेष हो, वह सब महान् पुरुषार्थका आश्रय लेकर दिखाओ । आज महासमरमें मैं तुम्हारा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ १२-१३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥ १४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने लोहेके बने हुए सुवर्णपंखयुक्त दस बाणोंद्वारा कर्णको बींध डाला ॥ १४ ॥

तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिंदमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! तब शत्रुओंका दमन करनेवाले महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से वत्सदन्त नामक दस बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! सूतपुत्रके द्वारा अवज्ञापूर्वक घायल किये जानेपर फिर राजा युधिष्ठिर घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ १६ ॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत ।
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः ॥ १७ ॥

ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ युधिष्ठिरका शरीर प्रलयकालमें जगत्को दग्ध करनेकी इच्छावाले द्वितीय संवर्तक अग्निके समान दिखायी देता था ॥ १७ ॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर उन्होंने अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको फैलाकर उसपर पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले तीखे बाणका संधान किया ॥ १८ ॥

ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने सूतपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत ही धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर वह यमदण्डके समान बाण उसके ऊपर छोड़ दिया ॥ १९ ॥

स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः ।
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥ २० ॥

वेगवान् युधिष्ठिरका छोड़ा हुआ वज्र और बिजलीके समान शब्द करनेवाला वह बाण सहसा महारथी कर्णकी बायीं पसलीमें घुस गया ॥ २० ॥

स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥ २१ ॥

उस प्रहारसे पीड़ित हो महाबाहु कर्ण धनुष छोड़कर रथपर ही मूर्छित हो गया। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था ॥ २१ ॥

गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत्।
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥ २२ ॥

वह शल्यके सामने ही अचेत होकर ऐसे गिर पड़ा, मानो उसके प्राण निकल गये हों। राजा युधिष्ठिरने अर्जुनके हितकी इच्छासे कर्णपर पुनः प्रहार नहीं किया ॥ २२ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत्।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥ २३ ॥

तब कर्णको उस अवस्थामें देखकर दुर्योधनकी सारी विशाल सेनामें हाहाकार मच गया और अधिकांश सैनिकोंके मुखका रंग विषादसे फीका पड़ गया ॥ २३ ॥

सिंहनादश्च संजज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा।
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥ २४ ॥

महाराज! राजाका वह पराक्रम देखकर पाण्डव-सैनिकोंमें सिंहनाद, आनन्द, कलरव और किलकिल शब्द होने लगा ॥

प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥ २५ ॥

तब क्रूर पराक्रमी राधापुत्र कर्णने थोड़ी ही देरमें होशमें आकर राजा युधिष्ठिरको मार डालनेका विचार किया ॥२५॥

स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत्।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः ॥ २६ ॥

उस अमेय आत्मबलसे सम्पन्न वीरने विजय नामक अपने विशाल सुवर्ण-जटित धनुषको खींचकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पैने बाणोंसे ढक दिया ॥ २६ ॥

ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् दो क्षुरोंसे महात्मा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक दो पाञ्चाल वीर चन्द्रदेव और दण्डधारको युद्धस्थलमें मार डाला ॥२७॥

तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥ २८ ॥

धर्मराजके रथके समीप पार्श्वभागोंमें वे दोनों प्रमुख पाञ्चाल वीर चन्द्रमाके पास रहनेवाले दो पुनर्वसु नामक नक्षत्रोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २८ ॥

युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत् त्रिंशता शरैः।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरने पुनः तीस बाणोंसे कर्णको बींध डाला तथा सुषेण और सत्यसेनको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया॥

शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम्।
तांस्तस्य गोप्तॄन् विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ३० ॥

उन्होंने शल्यको नब्बे और सूतपुत्र कर्णको तिहत्तर बाण मारे। साथ ही उनके रक्षकोंको सीधे जानेवाले तीन-तीन बाणोंसे बेध दिया ॥ ३० ॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम्।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदत्तदा ॥ ३१ ॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने अपने धनुषको हिलाते हुए हँसकर एक भल्लद्वारा राजा युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया और उन्हें भी साठ बाणोंसे घायल करके सिंहके समान गर्जना की॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए प्रमुख पाण्डव वीर युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये दौड़े आये और कर्णको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगे ॥ ३२ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः ॥ ३४ ॥
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमताडयन्।

सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु, पाण्ड्य, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, नकुल-सहदेव, भीमसेन और शिशुपालपुत्र एवं करूष, मत्स्य, केकय, काशि और कोसल-देशोंके योद्धा—ये सभी वीर सैनिक तुरंत ही वसुषेण (कर्ण) को घायल करने लगे ॥ ३३-३४½ ॥

जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः ॥ ३५ ॥
वाराहकर्णनाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ ३६ ॥
नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिभिः।
सर्वतोऽभ्यद्रवत् कर्णं परिवार्य जिघांसया ॥ ३७ ॥

पाञ्चालवीर जनमेजयने रथ, हाथी और घुड़सवारोंकी सेना साथ लेकर सब ओरसे कर्णपर धावा किया और उसे मार डालनेकी इच्छासे घेरकर बाण, वाराहकर्ण, नाराच, नालीक, पैने बाण, वत्सदन्त, विपाठ, क्षुरप्र, चटकामुख तथा नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा चोट पहुँचाना आरम्भ किया॥

स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः।
उदीरयन् ब्राह्ममस्त्रं शरैरापूरयद् दिशः ॥ ३८ ॥

पाण्डवपक्षके प्रमुख वीरोंद्वारा सब ओरसे आक्रान्त होनेपर कर्णने ब्रह्मास्त्र प्रकट करके बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

(ततः पुनरमेयात्मा चेदीनां प्रवरान् दश।
न्यहनद् भरतश्रेष्ठ कर्णो वैकर्तनस्तदा ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न वैकर्तन

कर्णने चेदिदेशके दस प्रधान वीरोंको पुनः मार डाला ॥

तस्य बाणसहस्राणि सम्प्रपन्नानि मारिष ।
दृश्यन्ते दिक्षु सर्वासु शलभानामिव व्रजाः ॥

माननीय नरेश ! कर्णके गिरते हुए सहस्रों बाण सम्पूर्ण दिशाओंमें टिड्डीदलोंके समान दिखायी देते थे ॥

कर्णनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः सुतेजनाः ।
नराश्वकायान् निर्भिद्य पेतुरुर्व्यां समन्ततः ॥

उसके नामसे अंकित सुवर्णमय पंखवाले तेज बाण मनुष्यों और घोड़ोंके शरीरोंको विदीर्ण करके सब ओरसे पृथ्वीपर गिरने लगे ॥

कर्णेनैकेन समरे चेदीनां प्रवरा रथाः ।
सृंजयानां च सर्वेषां शतशो निहता रणे ॥

समराङ्गणमें अकेले कर्णने चेदिदेशके प्रधान रथियोंका तथा सम्पूर्ण सृंजयोंके सैकड़ों योद्धाओंका भी संहार कर डाला ॥

कर्णस्य शरसंछन्नं बभूव विपुलं तमः ।
नाज्ञायत ततः किञ्चित् परेषामात्मनोऽपि वा ॥

कर्णके बाणोंसे सारी दिशाएँ ढक जानेके कारण वहाँ महान् अन्धकार छा गया । उस समय शत्रुपक्षकी तथा अपने पक्षकी भी कोई वस्तु पहचानी नहीं जाती थी ॥

तस्मिंस्तमसि भूते च क्षत्रियाणां भयंकरे ।
विचचार महाबाहुर्निर्दहन् क्षत्रियान् बहून् ॥)

शत्रुओंके लिये भयदायक उस घोर अन्धकारमें महाबाहु कर्ण बहुसंख्यक राजपूतोंको दग्ध करता हुआ विचरने लगा ॥

ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः ।
निर्दहन् पाण्डववनं वीरः पर्यचरद् रणे ॥ ३९ ॥

उस समय वीर कर्ण अग्निके समान हो रहा था । बाण ही उसकी ऊँचेतक उठती हुई ज्वालाओंके समान थे, पराक्रम ही उसका ताप था और वह पाण्डवरूपी वनको दग्ध करता हुआ रणभूमिमें विचर रहा था ॥ ३९ ॥

(ततस्तेषां महाराज पाण्डवानां महारथाः ।
सृञ्जयानां च सर्वेषां शतशोऽथ सहस्रशः ॥
अस्त्रैः कर्णं महेष्वासं समन्तात् पर्यवारयन् ।)

महाराज ! तब सम्पूर्ण सृंजयों और पाण्डवोंके सैकड़ों-हजारों महारथियोंने महाधनुर्धर कर्णपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥

स संधाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः ।
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ४० ॥

महाधनुर्धर महामना कर्णने हँसकर महान् अस्त्रोंका संधान किया और अपने बाणोंसे महाराज युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ ४० ॥

ततः संधाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम् ।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् पलक मारते-मारते झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंका संधान करके कर्णने उन पैने बाणोंद्वारा रणभूमिमें राजा युधिष्ठिरके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ ४१ ॥

तद् वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत् ।
सविद्युदभ्रं सवितुः श्लिष्टं वातहतं यथा ॥ ४२ ॥

उनका वह सुवर्णभूषित रत्नजटित कवच गिरते समय ऐसी शोभा पा रहा था, मानो सूर्यसे सटा हुआ बिजली-सहित बादल वायुका आघात पाकर नीचे गिर रहा हो ॥४२॥

तदङ्गात् पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत ।
रत्नैरलंकृतं चित्रैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ॥ ४३ ॥
छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः ।

जैसे रात्रिमें बिना बादलका आकाश नक्षत्रमण्डलसे विचित्र शोभा धारण करता है, उसी प्रकार नरेन्द्र युधिष्ठिरके शरीरसे गिरा हुआ वह कवच विचित्र रत्नोंसे अलंकृत होनेके कारण अद्भुत शोभा पा रहा था । बाणोंसे कवच कट जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर रक्तसे भीग गये ॥ ४३½ ॥

(बभासे पुरुषश्रेष्ठ उद्यन्निव दिवाकरः ।
स शराचितसर्वाङ्गश्छिन्नवर्माथ संयुगे ॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय सिंहनादमकुर्वत ।)

उस समय युद्धस्थलमें पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर उगते हुए सूर्यके समान लाल दिखायी देते थे । उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे और कवच छिन्न-भिन्न हो गया था, तो भी वे क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेकर वहाँ सिंहके समान दहाड़ रहे थे ॥

ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥ ४४ ॥
तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः ।
सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः ॥ ४५ ॥

उन्होंने अधिरथपुत्र कर्णपर सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी, परंतु उसने सात बाणोंद्वारा उस प्रज्वलित शक्तिको आकाशमें ही काट डाला । महाधनुर्धर कर्णके सायकोंसे कटी हुई वह शक्ति पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥

ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः ।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिरने कर्णकी दोनों भुजाओं, ललाट और छातीमें चार तोमरोंका प्रहार करके सानन्द सिंहनाद किया ॥

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥४७॥
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत् ।

कर्णके शरीरसे रक्त बहने लगा । फिर तो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने एक भल्लसे युधिष्ठिरकी ध्वजा काट डाली और तीन बाणोंसे उन पाण्डुपुत्रको भी घायल कर दिया । उनके दोनों तरकस काट दिये और रथके भी तिल-तिल करके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४७½ ॥

(एतस्मिन्नन्तरे शूराः पाण्डवानां महारथाः ।
ववृषुः शरवर्षाणि राधेयं प्रति भारत ॥

भारत ! इसी बीचमें शूरवीर पाण्डव महारथी राधापुत्र कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

सात्यकिः पञ्चविंशत्या शिखण्डी नवभिः शरैः ।
अवर्षतां महाराज राधेयं शत्रुकर्शनम् ॥

महाराज ! सात्यकिने शत्रुसूदन राधापुत्रपर पचीस और शिखण्डीने नौ बाणोंकी वर्षा की ॥

शैनेयं तु ततः क्रुद्धः कर्णः पञ्चभिरायसैः ।
विव्याध समरे राजंस्त्रिभिश्चान्यैः शिलीमुखैः॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें सात्यकिको पहले लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे तीन बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥

दक्षिणं तु भुजं तस्य त्रिभिः कर्णोऽप्यविध्यत ।
सव्यं षोडशभिर्बाणैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥

इसके बाद कर्णने सात्यकिकी दाहिनी भुजाको तीन, बायीं भुजाको सोलह और सारथिको सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सूतपुत्रोऽनयत् क्षिप्रं यमस्य सदनं प्रति ॥

तदनन्तर चार पैने बाणोंसे सूतपुत्रने सात्यकिके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमलोक पहुँचा दिया ॥

अपरेणाथ भल्लेन धनुश्छित्त्वा महारथः ।
सारथेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥

फिर दूसरे भल्लसे महारथी कर्णने उनका धनुष काटकर उनके सारथिके शिरस्त्राणसहित मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया ॥

हताश्वसूते तु रथे स्थितः स शिनिपुङ्गवः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय वैडूर्यमणिभूषिताम् ॥

जिसके घोड़े और सारथि मारे गये थे, उसी रथपर खड़े हुए शिनिप्रवर सात्यकिने कर्णके ऊपर वैदूर्यमणिसे विभूषित शक्ति चलायी ॥

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत ।
कर्णो वै धन्विनां श्रेष्ठस्तांश्च सर्वानवारयत् ॥
ततस्तान् निशितैर्बाणैः पाण्डवानां महारथान् ।
न्यवारयदमेयात्मा शिक्षया च बलेन च ॥

भारत ! धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कर्णने अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके सहसा दो टुकड़े कर डाले और उन सब महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया, फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न कर्णने अपनी शिक्षा और बलके प्रभावसे तीखे बाणोंद्वारा उन सभी पाण्डव-महारथियोंकी गति अवरुद्ध कर दी ॥

अर्दयित्वा शरैस्तांस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
पीडयन् धर्मराजानं शरैः संनतपर्वभिः ॥
अभ्यद्रवत राधेयो धर्मपुत्रं शितैः शरैः ।)

जैसे सिंह छोटे मृगोंको पीड़ा देता है, उसी प्रकार राधापुत्र कर्णने उन महारथियोंको बाणोंसे पीड़ित करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंसे चोट पहुँचाते हुए वहाँ धर्मराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर पुनः आक्रमण किया ॥

कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णावहन् हयाः ॥ ४८
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद् राजा पराङ्मुखः ।

उस समय दाँतोंके समान सफेद रंग और काली पूँछवाले जो घोड़े युधिष्ठिरकी सवारीमें थे, उन्हींसे जुते हुए दूसरे रथपर बैठकर राजा युधिष्ठिर रणभूमिसे विमुख हो शिबिरकी ओर चल दिये ॥ ४८½ ॥

एवं पार्थोऽभ्यपायात् स निहतः पार्ष्णिसारथिः॥ ४९ ॥
अशक्नुवन् प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः ।

युधिष्ठिरका पृष्ठरक्षक पहले ही मार दिया गया था। उनका मन बहुत दुखी था, इसलिये वे कर्णके सामने ठहर न सके और युद्धस्थलसे हट गये ॥ ४९½ ॥

अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥
वज्रच्छत्राङ्कुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः ।
लक्षणैरुपपन्नेन पाण्डुना पाण्डुनन्दनम् ॥ ५१ ॥
पवित्रीकर्तुमात्मानं स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना ।
ग्रहीतुमिच्छन् स बलात् कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥

उस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका पीछा करके वज्र, छत्र, अङ्कुश, मत्स्य, ध्वज, कूर्म और कमल आदि शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न गोरे हाथसे उनका कंधा छूकर, मानो अपने आपको पवित्र करनेके लिये उन्हें बलपूर्वक पकड़नेकी इच्छा करने लगा। उसी समय उसे कुन्तीदेवीको दिये हुए अपने वचनका स्मरण हो आया ॥ ५०-५२ ॥

तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृह्णीथाः पार्थिवोत्तमम् ।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात्॥५३॥

उस समय राजा शल्यने कहा—'कर्ण ! इन नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको हाथ न लगाना, अन्यथा वे पकड़ते ही तुम्हारा वध करके अपनी क्रोधाग्निसे तुम्हें भस्म कर डालेंगे' ॥५३॥

अब्रवीत् प्रहसन् राजन् कुत्सयन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥
प्रजह्यात् समरं भीतः प्राणान् रक्षन् महाहवे ।
न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥ ५५ ॥

राजन् ! तब कर्ण जोर-जोरसे हँस पड़ा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी निन्दा-सा करता हुआ बोला—'युधिष्ठिर ! जो क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हो, क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहता हो, वह महासमरमें प्राणोंकी रक्षाके लिये भयभीत हो युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता है ? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुम क्षत्रिय-धर्ममें निपुण नहीं हो ॥ ५४-५५ ॥

ब्राह्मे बले भवान् युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ।
मा स्म युद्ध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान् समासदः॥५६॥

'कुन्तीकुमार ! तुम ब्राह्मबल, स्वाध्याय एवं यज्ञ-कर्ममें ही कुशल हो; अतः न तो युद्ध किया करो और न वीरोंके सामने ही जाओ ॥ ५६ ॥

मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ।
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः ॥ ५७॥

'माननीय नरेश ! न इन वीरोंसे कभी अप्रिय वचन बोलो और न महान् युद्धमें पैर ही रक्खो । यदि अप्रिय वचन बोलना ही हो तो दूसरोंसे बोलना; मेरे-जैसे वीरोंसे नहीं ॥

मादृशान् विब्रुवन् युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे ।
स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥ ५८ ॥
न हि त्वां समरे राजन् हन्यात् कर्णः कथञ्चन ।

'युद्धमें मेरे-जैसे लोगोंसे अप्रिय वचन बोलनेपर तुम्हें यही तथा दूसरा कुफल भी भोगना पड़ेगा । अतः कुन्तीनन्दन ! अपने घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों वहीं पधारो । राजन् ! कर्ण समराङ्गणमें किसी तरह भी तुम्हारा वध नहीं करेगा' ॥ ५८½ ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥ ५९ ॥
न्यहनत् पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् ।

महाबली कर्णने युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर फिर उन्हें छोड़ दिया और जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरसेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डवसेनाका विनाश आरम्भ कर दिया ॥

ततोऽपायाद् द्रुतं राजन् व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ६० ॥
अथापयातं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम् ।
चेदिपाण्डवपाञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ॥ ६१ ॥
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।

राजन् ! तब राजा युधिष्ठिर लजाते हुए-से तुरंत रणभूमिसे भाग गये । राजाको रणक्षेत्रसे हटा हुआ जानकर चेदि, पाण्डव और पाञ्चाल वीर, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके शूरवीर पुत्र तथा पाण्डुनन्दन माद्रीकुमार नकुल-सहदेव भी धर्म-मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चल दिये ॥ ६०-६१½ ॥

ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥ ६२ ॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।

तदनन्तर युधिष्ठिरकी सेनाको युद्धसे विमुख हुई देख हर्षमें भरे हुए वीर कर्णने कौरवसैनिकोंको साथ लेकर कुछ दूरतक उसका पीछा किया ॥ ६२½ ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥ ६३ ॥
बभूव धार्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।

उस समय भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और धनुषोंकी ध्वनि सब ओर फैल रही थी तथा दुर्योधनके सैनिक सिंहके समान दहाड़ रहे थे ॥ ६३½ ॥

युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥ ६४ ॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान् कर्णविक्रमम् ।

कुरुवंशी महाराज ! युधिष्ठिरके घोड़े थक गये थे; अतः उन्होंने तुरंत ही श्रुतकीर्तिके रथपर आरूढ़ हो कर्णके पराक्रमको देखा ॥ ६४½ ॥

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥
स्वान् योधानब्रवीत् क्रुद्धो निघ्नतैतान् किमासत ।

अपनी सेनाको खदेड़ी जाती हुई देख धर्मराज युधिष्ठिरने कुपित हो अपने पक्षके योद्धाओंसे कहा—'अरे ! क्यों चुप बैठे हो ? इन शत्रुओंको मार डालो' ॥ ६५½ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ॥ ६६ ॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।

राजाकी यह आज्ञा पाते ही भीमसेन आदि समस्त पाण्डव महारथी आपके पुत्रोंपर टूट पड़े ॥ ६६½ ॥

अभवत् तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥ ६७ ॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।

भारत ! फिर तो वहाँ इधर-उधर सब ओर रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल योद्धाओं एवं अस्त्र-शस्त्रोंका भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ६७½ ॥

उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८ ॥
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।

'उठो, मारो, आगे बढ़ो, टूट पड़ो' इत्यादि वाक्य बोलते हुए सब योद्धा उस महासमरमें एक दूसरेको मारने लगे ॥

अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९ ॥
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।

उस समय वहाँ अस्त्रोंसे आवृत हो परस्पर आघात करनेवाले नरश्रेष्ठ वीरोंके चलाये हुए बाणोंकी वृष्टिसे आकाशमें मेघोंकी छाया-सी छा रही थी ॥ ६९½ ॥

विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ॥ ७० ॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः।

कितने ही घायल नरेश पताका, ध्वज, छत्र, अश्व, सारथि, आयुध, शरीर तथा उसके अवयवोंसे रहित हो रणभूमिमें गिर पड़े ॥ ७०½ ॥

प्रवणादिव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१ ॥
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।

जैसे पर्वतोंके शिखर टूटकर निम्न देशसे लुढ़कते हुए नीचे गिर पड़ते हैं तथा जैसे वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वत धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मारे गये हाथी अपने सवारोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७१½ ॥

छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥ ७२ ॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।

टूटे-फूटे और अस्त-व्यस्त हुए कवच, अलंकार एवं आभूषणोंसहित सहस्रों घोड़े अपने बहादुर सवारोंके मारे जानेपर उनके साथ ही गिर पड़ते थे ॥ ७२½ ॥

विप्रविद्धायुधाङ्गाश्च द्विरदाश्वरथैर्हताः ॥ ७३ ॥
प्रतिवीरैश्च सम्मर्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ।

उस संघर्षमें विपक्षी वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथोंद्वारा मारे गये सहस्रों पैदल योद्धाओंके समुदाय रणभूमिमें सो रहे थे। उनके अस्त्र-शस्त्र और शरीरके अवयव क्षत-विक्षत होकर बिखर गये थे ॥ ७३½ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥ ७४ ॥
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।
यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ॥ ७५ ॥
विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।

युद्धकुशल वीरोंके विशाल, विस्तृत एवं लाल-लाल आँखों और कमल तथा चन्द्रमाके समान मुखवाले मस्तकोंसे सारी युद्धभूमि सब ओरसे ढक गयी थी। भूतलपर जैसा कोलाहल हो रहा था, वैसा ही आकाशमें भी लोगोंको सुनायी देता था। वहाँ विमानोंपर बैठी हुई झुंड-की-झुंड अप्सराएँ गीत और वाद्योंकी मधुर ध्वनि फैला रही थीं ॥ ७४-७५½ ॥

हतानभिमुखान् वीरान् वीरैः शतसहस्रशः ॥ ७६ ॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः ।

वीरोंके द्वारा सम्मुख लड़कर मारे गये लाखों वीरोंको अप्सराएँ विमानोंपर बिठा-बिठाकर स्वर्गलोकमें ले जाती थीं ॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥ ७७ ॥
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।

यह महान् आश्चर्यकी बात प्रत्यक्ष देखकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए शूरवीर स्वर्गकी लिप्सासे एक दूसरेको शीघ्रतापूर्वक मारने लगे ॥ ७७½ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥ ७८ ॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।

युद्धस्थलमें रथियोंके साथ रथी, पैदलोंके साथ पैदल, हाथियोंके साथ हाथी और घोड़ोंके साथ घोड़े विचित्र युद्ध करते थे ॥ ७८½ ॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ७९ ॥
सैन्येन रजसा व्याप्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ।

इस प्रकार हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस संग्रामके आरम्भ होनेपर सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश आच्छादित हो जानेपर अपने और शत्रुपक्षके योद्धा अपने ही पक्षवालोंका संहार करने लगे ॥७९½॥

कचाकचि युद्धमासीद् दन्तादन्ति नखानखि ॥ ८० ॥
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेके केश पकड़कर खींचते, दाँतोंसे काटते, नखोंसे बखोटते, मुक्कोंसे मारते और परस्पर मल्लयुद्ध करने लगते थे। इस प्रकार वह युद्ध सैनिकोंके शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाला हो रहा था ॥

तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ८१ ॥
नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
गजाश्वनरदेहान् सा व्युवाह पतितान् बहून् ॥ ८२ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंका विनाश करनेवाला वह संग्राम उसी रूपमें चलने लगा। मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके शरीरोंसे खूनकी नदी बह चली, जो अपने भीतर पड़े हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी बहुसंख्यक लाशोंको बहाये जा रही थी ॥ ८१-८२ ॥

नराश्वगजसम्बाधे नराश्वगजसादिनाम् ।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥ ८३ ॥
नराश्वगजदेहान् सा वहन्ती भीरुभीषणा ।

मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरे हुए युद्धस्थलमें मनुष्य, अश्व, हाथी और सवारोंके रक्त ही उस नदीके जल थे। उनका मांस और गाढ़ा खून उस नदीकी कीचड़के समान जान पड़ता था। मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीरोंको बहाती हुई वह महाभयंकर नदी भीरु मनुष्योंको भयभीत कर रही थी ॥ ८३½ ॥

तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥ ८४ ॥
गाधेन चाप्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे ।

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही वीर जहाँ थोड़ा रक्तमय जल था वहाँ तैरकर और जहाँ अथाह था, वहाँ गोते लगा-लगाकर उसके दूसरे पार पहुँच जाते थे ॥ ८४½ ॥

ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥ ८५ ॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।

उन सबके शरीर रक्तसे रँग गये थे। कवच, आयुध और वस्त्र भी रक्तरंजित हो गये थे। भरतश्रेष्ठ! कितने ही योद्धा उसमें नहा लेते, कितनोंके मुँहमें रक्तकी घूँट चली जाती और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे ॥ ८५½ ॥

रथानश्वान् नरान् नागानायुधाभरणानि च ॥ ८६ ॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान् हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहिताः ॥ ८७ ॥

मारे गये तथा मारे जाते हुए हाथी, घोड़े, रथ, मनुष्य, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, वस्त्र, कवच, पृथ्वी, आकाश, द्युलोक और सम्पूर्ण दिशाएँ—ये सब हमें प्रायः लाल-ही-लाल दिखायी देते थे ॥ ८६-८७ ॥

लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥ ८८ ॥
विषादः सुमहानासीत् प्रायः सैन्यस्य भारत ।

भारत! सब ओर फैली और बढ़ी हुई उस रक्त-राशिकी

गन्धसे, स्पर्शसे, रससे, रूपसे और शब्दसे भी प्रायः सारी सेनाके मनमें बड़ा विषाद हो रहा था ॥ ८८½ ॥

तत् तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९ ॥
भूयः समाद्रवन् वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा ।

भीमसेन तथा सात्यकि आदि वीरोंने विशेषरूपसे विनष्ट हुई उस कौरवसेनापर पुनः बड़े वेगसे आक्रमण किया ।८९½।

तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥ ९० ॥
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद् राजन् पराङ्मुखम् ।

राजन् ! उन आक्रमणकारी वीरोंके असह्य वेगको देखकर आपके पुत्रोंकी विशाल सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ ९०½ ॥

तत् प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥ ९१ ॥
विध्वस्तवर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत् तावकं सैन्यं लोड्यमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ९२ ॥

जैसे जंगलमें सिंहसे पीड़ित हुआ हाथियोंका यूथ व्याकुल होकर भागता है, उसी प्रकार शत्रुओंद्वारा सब ओरसे रौंदी जाती हुई मनुष्यों और घोड़ोंसे परिपूर्ण आपकी विशाल सेना भाग चली । उसके रथ, हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये, आवरण और कवच नष्ट हो गये तथा अस्त्र-शस्त्र और धनुष छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर पड़े थे॥९१-९२॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १९½ श्लोक मिलाकर कुल १११½ श्लोक हैं)

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और भीमसेनका युद्ध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १ ॥
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद् भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन् न्यवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! पाण्डवोंको आपकी सेनापर आक्रमण करते देख दुर्योधनने सब ओरसे सब प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा उन योद्धाओंको रोकने तथा अपनी सेनाको भी स्थिर करनेका प्रयत्न किया । भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! आपके पुत्रके बहुत चीखने-चिल्लानेपर भी भागती हुई सेना पीछे न लौटी ॥ १-२ ॥

ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन् रणे ॥ ३ ॥

तदनन्तर व्यूहके पक्ष और प्रपक्षभागमें खड़े हुए सैनिक, सुबलपुत्र शकुनि तथा सशस्त्र कौरववीर उस समय रणक्षेत्रमें भीमसेनपर टूट पड़े ॥ ३ ॥

कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान् सराजकान् ।
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥ ४ ॥

उधर कर्णने भी राजा दुर्योधन और उसके सैनिकोंको भागते देख मद्रराज शल्यसे कहा—'भीमसेनके रथके समीप चलो' ॥ ४ ॥

एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा
हंसवर्णान् हयानग्र्यान् प्रैषीद् यत्र वृकोदरः ॥ ५ ॥

कर्णके ऐसा कहनेपर मद्रराज शल्यने हंसके समान श्वेत वर्णवाले श्रेष्ठ घोड़ोंको उधर ही हाँक दिया, जहाँ भीमसेन खड़े थे ॥ ५ ॥

ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६ ॥

महाराज ! संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यसे संचालित हो वे घोड़े भीमसेनके रथके समीप जाकर पाण्डवसेनामें मिल गये ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णको आते देख क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने उसके विनाशका विचार किया ॥ ७ ॥

सोऽब्रवीत् सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
संशयान्महतो मुक्तं कथंचित् प्रेक्षतो मम ।

उन्होंने वीर सात्यकि तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नसे कहा—'तुमलोग धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । वे अभी-अभी मेरे देखते-देखते किसी प्रकार महान् प्राण-संकटसे मुक्त हुए हैं ॥ ८½ ॥

अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥ ९ ॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।

'दुरात्मा राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये मेरे सामने ही धर्मराजकी समस्त युद्ध-सामग्रीको छिन्न-भिन्न कर डाला है ॥ ९½ ॥

अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥ १० ॥
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥

'द्रुपदकुमार ! इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है; अतः अब मैं उसका बदला लूँगा । आज रणभूमिमें अत्यन्त घोर संग्राम करके या तो मैं ही कर्णको मार डालूँगा या वही मेरा वध करेगा; यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै ।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ १२ ॥

'इस समय राजाको धरोहरके रूपमें मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम सब लोग निश्चिन्त होकर इनकी रक्षाके लिये पूर्ण प्रयत्न करना' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति ।
सिंहनादेन महता सर्वाः संनादयन् दिशः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेन अपने महान् सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए सूतपुत्र कर्णकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ १४ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको बड़ी उतावली-के साथ आते देख मद्रदेशके स्वामी शक्तिशाली शल्यने सूत-पुत्र कर्णसे कहा ॥ १४ ॥

शल्य उवाच

पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम् ।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १५॥

शल्य बोले—कर्ण ! क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमसेनको देखो, जो दीर्घकालसे संचित किये हुए क्रोधको आज तुम्हारे ऊपर छोड़नेका दृढ़ निश्चय किये हुए हैं॥

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन ।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥ १६ ॥

कर्ण ! अभिमन्यु तथा घटोत्कच राक्षसके मारे जानेपर भी पहले कभी मैंने इनका ऐसा रूप नहीं देखा था ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे ।
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ १७ ॥

ये इस समय कुपित हो समस्त त्रिलोकीको रोक देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि प्रलयकालके अग्निके समान तेजस्वी रूप धारण कर रहे हैं ॥ १७ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप ।
अभ्यवर्तत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर ! मद्रराज शल्य राधापुत्र कर्णसे ऐसी बातें कह ही रहे थे कि क्रोधसे प्रज्वलित हुए भीमसेन उसके सामने आ पहुँचे ॥ १८ ॥

अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
अब्रवीद् वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको सामने आया देख हँसते हुए-से राधापुत्र कर्णने शल्यसे इस प्रकार कहा—॥

यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर ।
भीमसेनं प्रति विभो तत् सत्यं नात्र संशयः ॥ २० ॥

'मद्रराज ! प्रभो ! आज तुमने भीमसेनके विषयमें मेरे सामने जो बात कही है, वह सर्वथा सत्य है—इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥

एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः ।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥ २१ ॥

'ये भीमसेन शूरवीर, क्रोधी, अपने शरीर और प्राणोंका मोह न करनेवाले तथा अधिक बलशाली हैं ॥ २१ ॥

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥ २२ ॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः ।

'विराटनगरमें अज्ञातवास करते समय इन्होंने द्रौपदीका प्रिय करनेकी इच्छासे छिपे-छिपे जाकर केवल बाहुबलसे कीचकको उसके साथियोंसहित मार डाला था ॥ २२½ ॥

सोऽद्य संग्रामशिरसि संनद्धः क्रोधमूर्छितः ॥ २३ ॥
किं करोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद् रणम् ।

'वे ही आज क्रोधसे आतुर हो कवच बाँधकर युद्धके मुहानेपर उपस्थित हैं; परंतु क्या ये दण्ड धारण किये यमराज-के साथ भी युद्धके लिये रणभूमिमें उतर सकते हैं ? ॥ २३½ ॥

चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ॥ २४ ॥
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद् धनंजयः ।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद् भीमसमागमात् ॥ २५ ॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे यह अभिलाषा बनी हुई है कि समराङ्गणमें अर्जुनका वध करूँ अथवा वे ही मुझे मार डालें। कदाचित् भीमसेनके साथ समागम होनेसे मेरी वह इच्छा आज ही पूरी हो जाय ॥ २४-२५ ॥

निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते ।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥ २६ ॥
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय ।

'यदि भीमसेन मारे गये अथवा रथहीन कर दिये गये तो अर्जुन अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे, जो मेरे लिये अधिक अच्छा होगा। तुम जो यहाँ उचित समझते हो, वह शीघ्र निश्चय करके बताओ' ॥ २६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥ २७ ॥
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम् ।

अमित शक्तिशाली राधापुत्र कर्णका यह वचन सुनकर राजा शल्यने सूतपुत्रसे उस अवसरके लिये उपयुक्त वचन कहा—॥ २७½ ॥

अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम् ।

'महाबाहो ! तुम महाबली भीमसेनपर चढ़ाई करो। भीमसेनको परास्त कर देनेपर निश्चय ही अर्जुनको अपने सामने पा जाओगे ॥ २८½ ॥

यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात् प्रभृति हृद्गतः ॥ २९ ॥
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'कर्ण ! तुम्हारे हृदयमें चिरकालसे जो अभीष्ट मनोरथ संचित है, वह निश्चय ही सफल होगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ' ॥ २९½ ॥

एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥ ३० ॥
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद् धनंजयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥ ३१ ॥

उनके ऐसा कहनेपर कर्णने शल्यसे फिर कहा—'मद्रराज ! मैं युद्धमें अर्जुनको मारूँ या अर्जुन ही मुझे मार डालें । इस उद्देश्यसे युद्धमें मन लगाकर जहाँ भीमसेन हैं, उधर ही चलो' ॥ ३०-३१ ॥

संजय उवाच

ततः प्रायाद् रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! तदनन्तर शल्य रथके द्वारा तुरंत ही वहाँ जा पहुँचे, जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपकी सेनाको खदेड़ रहे थे ॥ ३२ ॥

ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ ३३ ॥

राजेन्द्र ! कर्ण और भीमसेनका संघर्ष उपस्थित होनेपर फिर तूर्य और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी ॥ ३३ ॥

भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद् बली ॥ ३४ ॥

बलवान् भीमसेनने अत्यन्त कुपित होकर चमचमाते हुए तीखे नाराचोंसे आपकी दुर्जय सेनाको सम्पूर्ण दिशाओंमें खदेड़ दिया ॥ ३४ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ।
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३५ ॥

प्रजानाथ ! महाराज ! कर्ण और भीमसेनके उस युद्धमें बड़ी भयङ्कर, भीषण और घोर मार-काट हुई ॥ ३५ ॥

ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् ।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ ३६ ॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे ।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! पाण्डुपुत्र भीमसेनने दो ही घड़ीमें कर्णपर आक्रमण कर दिया । उन्हें अपनी ओर आते देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने एक नाराचद्वारा उनकी छातीमें प्रहार किया । फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ ३६-३७ ॥

स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्रके द्वारा घायल होनेपर उन्होंने भी उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया और झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥ ३८ ॥

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।

तब कर्णने कई बाण मारकर भीमसेनके धनुषके बीचसे ही दो टुकड़े कर दिये । धनुष कट जानेपर उनकी छातीमें समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले अत्यन्त तीखे नाराचसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३९½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ४० ॥
राजन् मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥ ४१ ॥

राजन् ! मर्मज्ञ भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें पैने बाणोंद्वारा प्रहार किया और पृथ्वी तथा आकाशको कँपाते हुए-से उन्होंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥

तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ४२ ॥

कर्णने भीमसेनको पचीस नाराच मारे, मानो किसी शिकारीने वनमें दर्पयुक्त मदोन्मत्त गजराजपर उल्काओंद्वारा प्रहार किया हो ॥ ४२ ॥

ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया ॥ ४३ ॥
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ४४ ॥

फिर कर्णके बाणोंसे सारा शरीर घायल हो जानेके कारण पाण्डुपुत्र भीमसेन क्रोधसे मूर्छित हो उठे । रोष और अमर्षसे उनकी आँखें लाल हो गयीं । उन्होंने सूतपुत्रके वधकी इच्छासे अपने धनुषपर एक अत्यन्त वेगशाली, भारसाधनमें समर्थ, उत्तम और पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले बाणका संधान किया ॥ ४३-४४ ॥

विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ४५ ॥

फिर हनुमान्‌जीसे भी अधिक पराक्रम प्रकट करनेवाले महाधनुर्धर भीमसेनने धनुषको जोर-जोरसे कानतक खींचकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस बाणको क्रोधपूर्वक छोड़ दिया ॥ ४५ ॥

स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद् रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥ ४६ ॥

बलवान् भीमसेनके हाथसे छूटकर वज्र और विद्युत्के समान शब्द करनेवाले उस बाणने रणभूमिमें कर्णको चीर डाला, मानो वज्रके वेगने पर्वतको विदीर्ण कर दिया हो ॥

स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥ ४७ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! भीमसेनकी गहरी चोट खाकर सेनापति सूतपुत्र कर्ण अचेत हो रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गया ॥

(रुधिरेणावसिक्ताङ्गो गतासुवदरिंदमः।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा मद्रराजो वृकोदरम् ॥
जिह्वां छेत्तुं समायान्तं सान्त्वयन्निदमब्रवीत्।

उसका सारा शरीर रक्तसे सिंच गया। शत्रुओंका दमन करनेवाला वह वीर प्राणहीन-सा हो गया था। इसी समय भीमसेनको कर्णकी जीभ काटनेके लिये आते देख मद्रराज शल्यने उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥

शल्य उवाच

भीमसेन महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
वचनं हेतुसम्पन्नं श्रुत्वा चैतत् तथा कुरु ॥

शल्य बोले—महाबाहु भीमसेन ! मैं तुमसे जो युक्ति-युक्त वचन कह रहा हूँ, उसे सुनो और सुनकर उसका पालन करो ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधः कर्णस्य शुष्मिणः ॥
तां तथा कुरु भद्रं ते प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः।

अर्जुनने पराक्रमी कर्णके वधकी प्रतिज्ञा की है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम सव्यसाची अर्जुनके उस प्रतिज्ञाको सफल करो ॥

भीम उवाच

दृढव्रतत्वं पार्थस्य जानामि नृपसत्तम।
राज्ञस्तु धर्षणं पापः कृतवान् मम संनिधौ ॥
ततः कोपाभिभूतेन शेषं न गणितं मया।

भीमसेनने कहा—नृपश्रेष्ठ ! मैं अर्जुनकी दृढ़प्रतिज्ञता-को जानता हूँ; परंतु इस पापी कर्णने मेरे समीप ही राजा युधिष्ठिरका तिरस्कार किया है, अतः क्रोधके वशीभूत होकर मैंने और किसी बातकी परवा नहीं की है ॥

पतिते चापि राधेये न मे मन्युः शमं गतः ॥
जिह्वोद्धरणमेवास्य प्राप्तकालं मतं मम।

यद्यपि राधापुत्र कर्ण गिर गया है तो भी मेरा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ है। मैं तो इस समय इसकी जीभ खींच लेना ही उचित समझता हूँ ॥

अनेन सुनृशंसेन समवेतेषु राजसु ॥
अस्माकं शृण्वतां कृष्णा यानि वाक्यानि मातुल।
असह्यानि च नीचेन बहूनि श्रावितानि भोः ॥
नूनं चैतत् परिज्ञातं दूरस्थस्यापि पार्थिव।
छेदनं चास्य जिह्वायास्तदेवाकाङ्क्षितं मया ॥

मामाजी ! इस नीच नृशंसने जहाँ बहुत-से राजा एकत्र हुए थे, वहाँ हमारे सुनते हुए द्रौपदीके प्रति बहुत-से असह्य कटुवचन सुनाये थे। राजन् ! आप दूर होनेपर भी निश्चय ही यह समझ गये हैं कि मेरे द्वारा इसकी जीभ काटी जानेवाली है। वास्तवमें इस समय मैंने इसकी जीभ काढनेकी ही इच्छा की थी ॥

राज्ञस्तु प्रियकामेन कालोऽयं परिपालितः।
भवता तु यदुक्तोऽस्मि वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥
तद् गृहीतं महाराज कटुकस्थमिवौषधम्।

केवल राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये मैंने आज तक प्रतीक्षा की है। महाराज ! आपने जो युक्तियुक्त बात मुझसे कही है, उसे कड़वी दवाके समान मैंने ग्रहण कर लिया है ॥

हीनप्रतिज्ञो बीभत्सुर्न हि जीवेत कर्हिचित् ॥
अस्मिन् विनष्टे नष्टाः स्मः सर्व एव सकेशवाः।

क्योंकि यदि अर्जुनकी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी तो वे कभी जीवित नहीं रह सकेंगे; उनके नष्ट होनेपर श्रीकृष्ण-सहित हम सब लोग भी नष्ट ही हो जायँगे ॥

अद्य चैव नृशंसात्मा पापः पापकृतां वरः ॥
गमिष्यति पराभावं दृष्टमात्रः किरीटिना।

आज किरीटधारी अर्जुनकी दृष्टि पड़ते ही यह पापाचारियों-में श्रेष्ठ पापात्मा क्रूर कर्ण पराभवको प्राप्त हो जायगा ॥

युधिष्ठिरस्य कोपेन पूर्वं दग्धो नृशंसकृत् ॥
त्वया संरक्षितस्त्वस्य मत्समीपादुपायतः ॥)

यह नृशंस कर्ण महाराज युधिष्ठिरके क्रोधसे पहले ही दग्ध हो चुका था। आज आपने उचित उपायद्वारा मेरे निकटसे इसकी रक्षा कर ली है ॥

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम्।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर मद्रराज शल्य संग्राममें शोभा पानेवाले सूतपुत्र कर्णको अचेत हुआ देख रथके द्वारा युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये ॥ ४८ ॥

ततः पराजिते कर्णे धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्।
व्यद्रावयद् भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान् पुरा ॥ ४९ ॥

कर्णके पराजित हो जानेपर भीमसेन दुर्योधनकी विशाल सेनाको पुनः खदेड़ने लगे। ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने दानवोंको मार भगाया था ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णापयाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका पलायनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १३ श्लोक मिलाकर कुल ६२ श्लोक हैं)

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके छः पुत्रोंका वध, भीम और कर्णका युद्ध, भीमके द्वारा गजसेना, रथसेना और घुड़सवारोंका संहार तथा उभयपक्षकी सेनाओंका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! भीमसेनने तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म कर डाला कि महाबाहु कर्णको रथकी बैठकमें गिरा दिया ॥ १ ॥

कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान् सृञ्जयैः सह।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः॥ २॥

सूत ! दुर्योधन मुझसे बारंबार कहा करता था कि 'कर्ण अकेला ही रणभूमिमें सृंजयोंसहित समस्त पाण्डवोंका वध कर सकता है' ॥ २ ॥

पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
ततः परं किमकरोत् पुत्रो दुर्योधनो मम॥ ३॥

परंतु उस दिन युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित हुआ देखकर मेरे पुत्र दुर्योधनने क्या किया ?॥

संजय उवाच

विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान् समभाषत॥ ४॥

संजयने कहा—महाराज ! सूतपुत्र राधाकुमार कर्णको महासमरमें पराङ्मुख हुआ देख आपका पुत्र अपने भाइयोंसे बोला--॥ ४ ॥

शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे॥ ५॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुमलोग शीघ्र जाओ और राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो। वह भीमसेनके भयसे भरे हुए संकटके अगाध महासागरमें डूब रहा है' ॥ ५ ॥

ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा॥ ६॥

राजा दुर्योधनकी आज्ञा पाकर आपके पुत्र अत्यन्त कुपित हो भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके सामने गये, मानो पतंग आगके समीप जा पहुँचे हों ॥ ६ ॥

श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ॥ ७॥
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसंधः शलः सहः॥ ८॥
एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात् पर्यवारयन्॥ ९॥

श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ (क्रथन), विवित्सु, विकट (विकटानन), सम, निषङ्गी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह—ये महाबली और पराक्रमी आपके पुत्रगण, बहुसंख्यक रथोंसे घिरकर भीमसेनके पास जा पहुँचे और उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ७-९ ॥

ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान् नानालिङ्गान् समन्ततः।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः॥ १०॥
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप।
रथैः पञ्चाशता सार्धं पञ्चाशदहनद् रथान्॥ ११॥

वे चारों ओरसे नाना प्रकारके चिह्नोंसे युक्त बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। नरेश्वर ! उनसे पीड़ित होकर महाबली भीमसेनने पचास रथोंके साथ आये हुए आपके पुत्रोंके उन पचासों रथियोंको शीघ्र ही नष्ट कर दिया ॥ १०-११ ॥

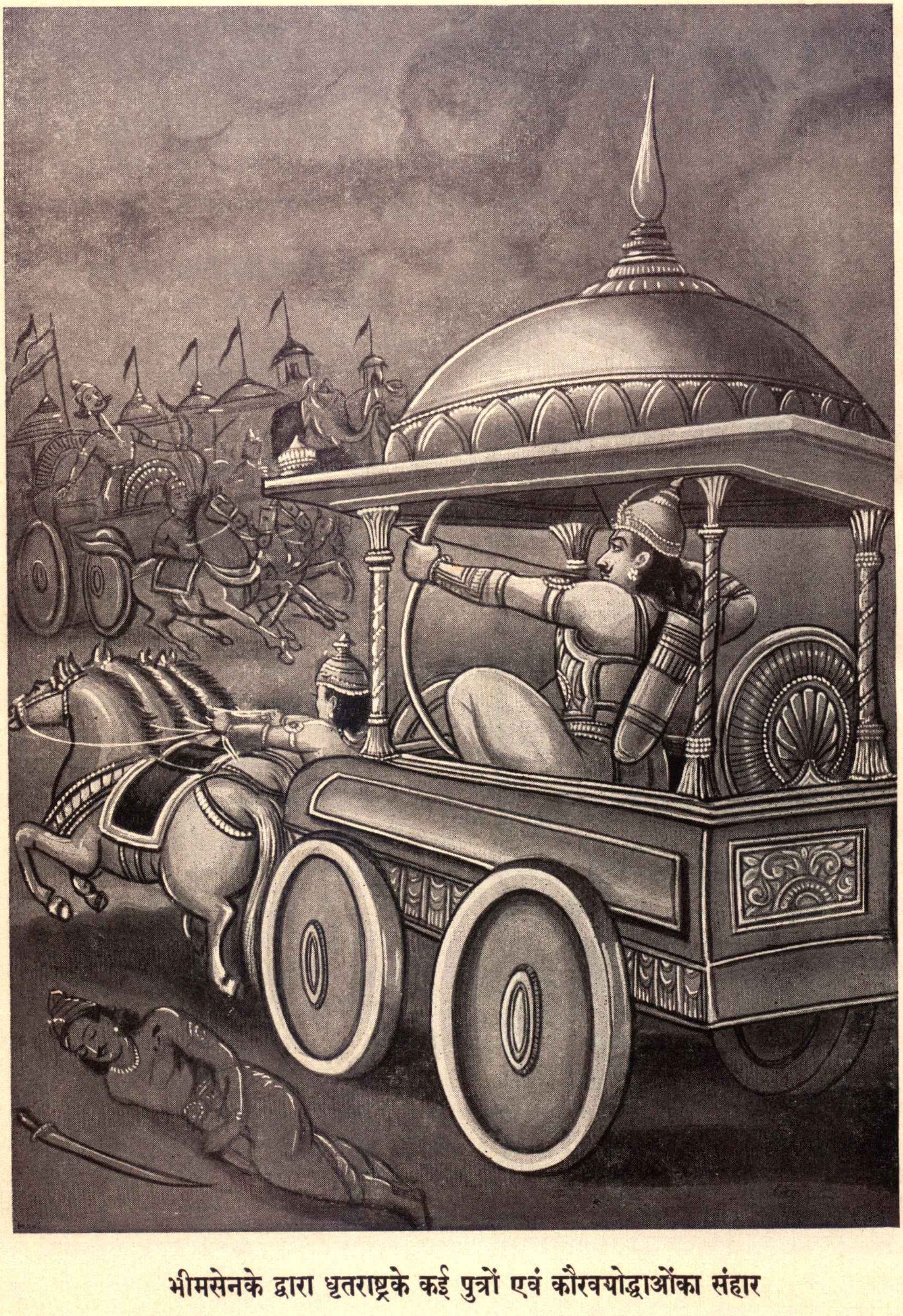
विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः।
भीमसेनो महाराज तत् पपात हतं भुवि॥ १२॥
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा।

महाराज ! तत्पश्चात् कुपित हुए भीमसेनने एक भल्लसे



विवित्सुका सिर काट लिया। उसका वह कुण्डल और शिरस्त्राणसहित कटा हुआ मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १२½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो॥ १३॥
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम्।



भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों एवं कौरवयोद्धाओंका संहार

प्रभो ! उस शूरवीरको मारा गया देख उसके भाई समरभूमिमें भयंकर पराक्रमी भीमसेनपर सब ओरसे टूट पड़े ॥ १३½ ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥ १४ ॥
जहार समरे प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः ।

तब भयानक पराक्रमसे सम्पन्न भीमसेनने उस महायुद्धमें दूसरे दो भल्लोंद्वारा रणभूमिमें आपके दो पुत्रोंके प्राण हर लिये ॥ १४½ ॥

तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ॥ १५ ॥
विकटश्च समश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप ।

नरेश्वर ! वे दोनों थे विकट (विकटानन) और सम। देवपुत्रोंके समान सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर आँधीके उखाड़े हुए दो वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद् भुवि ।

फिर लगे हाथ भीमसेनने क्राथ (क्रथन)को भी एक तीखे नाराचसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया । वह राजकुमार प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६½ ॥

हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर ॥ १७ ॥
वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु ।

जनेश्वर ! फिर आपके वीर धनुर्धर पुत्रोंके इस प्रकार वहाँ मारे जानेपर भयंकर हाहाकार मच गया ॥ १७½ ॥

तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८ ॥
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद् यमसादनम् ।

उनकी सेना चञ्चल हो उठी । फिर महाबली भीमसेनने समराङ्गणमें नन्द और उपनन्दको भी यमलोक भेज दिया१८½

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥ १९ ॥
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।

तदनन्तर आपके शेष पुत्र रणभूमिमें काल, अन्तक और यमके समान भयानक भीमसेनको देखकर भयसे व्याकुल हो वहाँसे भाग गये ॥ १९½ ॥

पुत्रांस्ते निहतान् दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २० ॥
हंसवर्णान् हयान् भूयः प्रैषयद् यत्र पाण्डवः ।

आपके पुत्रोंको मारा गया देख सूतपुत्र कर्णके मनमें बड़ा दुःख हुआ । उसने हंसके समान अपने श्वेत घोड़ोंको पुनः वहीं हँकवाया, जहाँ पाण्डुपुत्र भीमसेन मौजूद थे २०½

ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥ २१ ॥
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।

महाराज ! मद्रराजके हाँके हुए वे घोड़े बड़े वेगसे भीमसेनके रथके पास जाकर उनसे सट गये ॥ २१½ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥ २२ ॥
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।

प्रजानाथ ! महाराज ! युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनका वह संघर्ष घोर, रौद्र और अत्यन्त भयंकर था ॥२२½॥

दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥ २३ ॥
आसीद् बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।

राजेन्द्र ! वे दोनों महारथी जब परस्पर भिड़ गये, उस समय वह देखकर मेरे मनमें यह विचार उठने लगा कि न जाने यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ २३½ ॥

ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥ २४ ॥
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् ।

महाराज ! तदनन्तर युद्धका हौसला रखनेवाले भीमसेनने अपने बाणोंसे आपके पुत्रोंके देखते-देखते कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ २४½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥ २५ ॥
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः संनतपर्वभिः ।

तब उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता कर्णने अत्यन्त कुपित हो लोहेके बने हुए और झुकी हुई गाँठवाले नौ भल्लोंसे भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ २६ ॥
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।

उन भल्लोंसे आहत हो भयंकर पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने कर्णको भी कानतक खींचकर छोड़े गये सात बाणोंसे पीट दिया ॥ २६½ ॥

ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥ २७ ॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।

महाराज ! तब विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने बाणोंकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र भीमसेनको आच्छादित कर दिया ॥ २७½ ॥

भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम् ॥ २८ ॥
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।

महाबली भीमसेनने भी कौरववीरोंके देखते-देखते महारथी कर्णको बाणसमूहोंसे आच्छादित करके विकट गर्जना की ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ २९ ॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥ ३० ॥

तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया । साथ ही एक तीखे भल्लसे उनके धनुषको भी काट डाला ॥ २९-३० ॥

ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ३१ ॥
कर्णस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेपातिबलो नदन् ।

तब अत्यन्त बलवान् महाबाहु भीमसेनने कर्णके वधकी इच्छासे द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक भयंकर स्वर्णपत्र-जटित परिघ हाथमें ले उसे गरजकर कर्णपर दे मारा ॥ ३१½ ॥

तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।

वज्र और बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाले उस परिघको अपने ऊपर आते देख कर्णने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उसके बहुत-से टुकड़े कर डाले ३२½

ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥ ३३ ॥
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।

तत्पश्चात् भीमसेनने अत्यन्त सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुसैन्यसंतापी कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३३½ ॥

ततो युद्धमभूद् घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४ ॥
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।

फिर तो एक दूसरेके वधकी इच्छावाले दो सिंहोंके समान कर्ण और भीमसेनमें वहाँ अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ३४½

ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३५ ॥
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।

महाराज ! उस समय कर्णने अपने सुदृढ़ धनुषको कानके पासतक खींचकर तीन बाणोंसे भीमसेनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः ॥ ३६ ॥
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।

कर्णके द्वारा अत्यन्त घायल होकर बलवानोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर भीमसेनने एक भयंकर बाण हाथमें लिया, जो कर्णके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ था ॥ ३६½ ॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः ॥ ३७ ॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।

राजन् ! जैसे साँप बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह बाण कर्णके कवच और शरीरको छेदकर धरतीमें समा गया ॥ ३७½ ॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ॥ ३८ ॥
संचचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

उस प्रबल प्रहारसे व्यथित और विह्वल-सा होकर कर्ण रथपर ही काँपने लगा । ठीक उसी तरह, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥ ३८½ ॥

ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३९ ॥
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत् ॥ ४० ॥

महाराज ! तब रोष और अमर्षमें भरे हुए कर्णने पाण्डुपुत्र भीमसेनपर पच्चीस नाराचोंका प्रहार किया । साथ ही अन्य बहुत-से बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया और एक बाणसे उनकी ध्वजा काट डाली ॥ ३९-४० ॥

सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२ ॥

राजेन्द्र ! फिर एक भल्लसे उनके सारथिको यमलोक भेज दिया और तुरंत ही एक बाणसे उनके धनुषको भी काटकर बिना विशेष कष्टके ही मुहूर्तभरमें हँसते हुए-से कर्णने भयंकर पराक्रमी भीमसेनको रथहीन कर दिया ४१-४२

विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदां गृह्य महाबाहुरपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रथहीन होनेपर वायुके समान बलशाली महाबाहु भीमसेन गदा हाथमें लेकर हँसते हुए उस उत्तम रथसे कूद पड़े ॥ ४३ ॥

अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते ।
व्यधमद् गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! जैसे वायु शरत्कालके बादलोंको शीघ्र ही उड़ा देती है, उसी प्रकार भीमसेनने बड़े वेगसे कूदकर अपनी गदाकी चोटसे आपकी सेनाका विध्वंस आरम्भ किया ॥

नागान् सप्तशतान् राजन्नीषादन्तान् प्रहारिणः ।
व्यधमत् सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परंतपः ॥ ४५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने क्रुद्ध होकर प्रहार करनेमें कुशल और ईषादण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथियोंका सहसा संहार कर डाला ॥ ४५ ॥

दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान् नागानवधीद् बली ॥ ४६ ॥

मर्मस्थलोंको जाननेवाले बलवान् भीमसेनने उन गजराजोंके मर्मस्थानों, ओठों, नेत्रों, कुम्भस्थलों और कपोलोंपर भी गदासे चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४७ ॥

फिर तो वे हाथी भयभीत होकर भागने लगे । तत्पश्चात् महावतोंने जब उन्हें पीछे लौटाया, तब वे भीमसेनको घेरकर खड़े हो गये, मानो बादलोंने सूर्यदेवको ढक लिया हो ।४७।

तान् स सप्तशतान् नागान् सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८ ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रके द्वारा पर्वतोंपर आघात करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीपर खड़े हुए भीमसेनने सवारों, आयुधों और ध्वजाओंसहित उन सात सौ गजराजोंको गदासे ही मार डाला ॥ ४८ ॥



ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान् पुनः।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिंदमः ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीकुमार भीमने सुबलपुत्र शकुनिके अत्यन्त बलवान् बावन हाथियोंको मार गिराया ॥ ४९ ॥

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान्।
न्यहनत् पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ५० ॥

इसी प्रकार उस युद्धस्थलमें आपकी सेनाको संताप देते हुए पाण्डुकुमार भीमसेनने सौसे भी अधिक रथों और दूसरे सैकड़ों पैदल सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्न्यावाहितं यथा ॥ ५१ ॥

ऊपरसे सूर्य तपा रहे थे और नीचे महामनस्वी भीमसेन संतप्त कर रहे थे। उस अवस्थामें आपकी सेना आगपर रक्खे हुए चमड़ेके समान सिकुड़कर छोटी हो गयी ॥ ५१ ॥

ते भीमभयसंत्रस्तास्तावका भरतर्षभ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भीमके भयसे डरे हुए आपके समस्त सैनिक समराङ्गणमें उनका सामना करना छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ५२ ॥

रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः।
भीममभ्यद्रवन् घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर चर्ममय आवरणोंसे युक्त पाँच सौ रथ घर्घराहटकी आवाज फैलाते हुए चारों ओरसे भीमसेनपर चढ़ आये और बाणसमूहोंद्वारा उन्हें घायल करने लगे ॥ ५३ ॥

तान् स पञ्चशतान् वीरान् सपताकध्वजायुधान्।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४ ॥

जैसे भगवान् विष्णु असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने पताका, ध्वज और आयुधोंसहित उन पाँच सौ रथी वीरोंको गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला ॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसम्मताः।
त्रिसाहस्राभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥ ५५ ॥

तदनन्तर शकुनिके आदेशसे शूर वीरोंद्वारा सम्मानित तीन हजार घुड़सवारोंने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर भीमसेनपर धावा बोल दिया ॥ ५५ ॥

प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा।
विविधान् विचरन् मार्गान् गदया समपोथयत् ॥ ५६ ॥

यह देख शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनने बड़े वेगसे आगे जाकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदलते हुए अपनी गदासे उन घोड़ों और घुड़सवारोंको मार गिराया ॥ ५६ ॥

तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः।
अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥ ५७ ॥

भारत ! जैसे वृक्षोंपर पत्थरोंसे चोट की जाय, उसी प्रकार गदासे ताडित होनेवाले उन अश्वारोहियोंके शरीरसे सब ओर महान् शब्द प्रकट होता था ॥ ५७ ॥

एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान् हयोत्तमान्।
हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार शकुनिके तीन हजार घुड़सवारोंको मारकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन दूसरे रथपर आरूढ़ हो राधापुत्र कर्णके सामने आ पहुँचे ॥ ५८ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन् धर्मपुत्रमरिंदमम्।
स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! कर्णने भी समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बाणोंसे आच्छादित कर दिया और सारथिको भी मार गिराया ॥ ५९ ॥

ततः स प्रद्रुतं संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः।
अन्वधावत् किरन् बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ६० ॥

फिर महारथी कर्ण युधिष्ठिरके सारथिरहित रथको रणभूमिमें इधर-उधर घूमते देख कङ्कपत्रयुक्त सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥६०॥

राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥ ६१ ॥

कर्णको राजा युधिष्ठिरपर धावा करते देख वायुपुत्र भीमसेन कुपित हो उठे। उन्होंने बाणोंसे कर्णको ढककर पृथ्वी और आकाशको भी शरसमूहसे आच्छादित कर दिया ॥

संनिवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

तब शत्रुसूदन राधापुत्र कर्णने तुरंत ही लौटकर सब ओरसे पैने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ।६२।

भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ६३ ॥

भारत ! तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सात्यकिने भीमसेनके रथसे उलझे हुए कर्णको पीड़ा देना आरम्भ किया, क्योंकि वे भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे ॥ ६३ ॥

अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६४ ॥
विसृजन्तौ शरान् दीप्तान् व्यभ्राजेतां मनस्विनौ ।

कर्ण सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी भीमसेनका सामना करनेके लिये डटा रहा । वे दोनों ही सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं मनस्वी वीर थे और एक दूसरेसे भिड़कर चमकीले बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ६४½ ॥

ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ॥ ६५ ॥
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ।

राजेन्द्र ! उन दोनोंने आकाशमें बाणोंका भयंकर जाल-सा बिछा दिया, जो क्रौञ्च पक्षीके पृष्ठभागके समान लाल और भयानक दिखायी देता था ॥ ६५½ ॥

नैव सूर्यप्रभा राजन् न दिशः प्रदिशस्तथा ॥ ६६ ॥
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।

राजन् ! वहाँ छूटे हुए सहस्रों बाणोंसे न तो सूर्यकी प्रभा दिखायी देती थी, न दिशाएँ और न विदिशाएँ ही दृष्टिगोचर होती थीं । हम या हमारे शत्रु भी पहचाने नहीं जाते थे ॥ ६६½ ॥

मध्याह्ने तपतो राजन् भास्करस्य महाप्रभाः ॥ ६७ ॥
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा ।

नरेश्वर ! कर्ण और भीमसेनके बाणसमूहोंसे मध्याह्न-कालमें तपते हुए सूर्यकी सारी प्रचण्ड किरणें भी फीकी पड़ गयी थीं ॥ ६७½ ॥

सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ॥ ६८ ॥
संसक्तान् पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ।

उस समय शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यको पाण्डवोंके साथ जूझते देख भागे हुए कौरव-सैनिक फिर लौट आये ॥ ६८½ ॥

तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद् विशाम्पते ॥ ६९ ॥
उद्वृत्तानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ।

प्रजानाथ ! उस समय उनके आनेसे बड़ा भारी कोला-हल होने लगा, मानो वर्षासे बढ़े हुए समुद्रोंकी भयानक गर्जना हो रही हो ॥ ६९½ ॥

ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योन्यं महाहवे ॥ ७० ॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ।

उस महासमरमें एक दूसरीसे उलझी हुई दोनों सेनाएँ परस्पर दृष्टिपात करके बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करने लगीं ॥ ७०½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ७१ ॥
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।

तदनन्तर सूर्यके मध्याह्नकी वेलामें आ जानेपर अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ हुआ । वैसा न तो पहले कभी देखा गया था और न सुननेमें ही आया था ॥ ७१½ ॥

बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ॥ ७२ ॥
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम् ।
आसीन्निनादः सुमहान् बाणौघानां परस्परम् ॥ ७३ ॥
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान् ।

जैसे जलका प्रवाह वेगके साथ समुद्रमें जाकर मिलता है, उसी प्रकार रणभूमिमें एक सैन्यसमुदाय दूसरे सैन्यसमुदाय-से सहसा जा मिला और परस्पर टकरानेवाले बाणसमूहोंका महान् शब्द उसी प्रकार प्रकट होने लगा, जैसे गरजते हुए सागरसमुदायोंका गम्भीर नाद प्रकट हो रहा हो ।७२-७३½।

ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम् ॥ ७४ ॥
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे ।

जैसे दो नदियाँ परस्पर संगम होनेपर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार वे वेगवती सेनाएँ परस्पर मिलकर एकीभावको प्राप्त हो गयीं ॥ ७४½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशाम्पते ॥ ७५ ॥
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद् यशः ।

प्रजानाथ ! फिर महान् यश पानेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ७५½ ॥

शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥ ७६ ॥
श्रूयन्ते विविधा राजन् नामान्युद्दिश्य भारत ।

भरतवंशी नरेश ! उस समय नाम ले-लेकर गरजते हुए शूरवीरोंकी भाँति-भाँतिकी बातें अविच्छिन्नरूपसे सुनायी पड़ती थीं ॥ ७६½ ॥

यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा ॥ ७७ ॥
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि ।

रणभूमिमें जिसकी जो कुछ पिता-माता, कर्म अथवा शील-स्वभावके कारण विशेषता थी, वह युद्धस्थलमें उसको सुनाता था ॥ ७७½ ॥

तान् दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान् परस्परम् ॥ ७८ ॥
अभवन्मे मती राजन् नैषामस्तीति जीवितम् ।

राजन् ! समराङ्गणमें एक दूसरेको डाँट बताते हुए उन शूरवीरोंको देखकर मेरे मनमें यह विचार उठता था कि अब इनका जीवन नहीं रहेगा ॥ ७८½ ॥

तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥ ७९ ॥

अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद् भविष्यति।

क्रोधमें भरे हुए उन अमिततेजस्वी वीरोंके शरीर देखकर मुझे बड़ा भारी भय होता था कि यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ ७९½ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् कौरवाश्च महारथाः।
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥ ८० ॥

राजन् ! तदनन्तर पाण्डव और कौरव महारथी तीखे बाणोंसे प्रहार करते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और कौरवसेनाका व्यथित होना

संजय उवाच

क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे क्षत्रिय परस्पर वैरभाव रखकर समराङ्गणमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ १ ॥

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम् ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! रथसमूह, अश्वसमूह, हाथियोंके झुंड और पैदल मनुष्योंके समुदाय सब ओर एक दूसरेसे उलझे हुए थे॥

गदानां परिघाणां च कणपानां च क्षिप्यताम्।
प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः ॥ ३ ॥
सम्पातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे।
शलभा इव सम्पेतुः समन्ताच्छरवृष्टयः ॥ ४ ॥

उस अत्यन्त दारुण संग्राममें हमलोग निरन्तर चलाये जानेवाले परिघों, गदाओं, कणपों, प्रासों, भिन्दिपालों और भुशुण्डियोंकी धारा-सी गिरती देख रहे थे। सब ओर टिड्डी-दलोंके समान बाणोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ३-४ ॥

नागान् नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम्।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ॥ ५ ॥
पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः।
पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च ॥ ६ ॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप।

हाथी हाथियोंसे भिड़कर एक दूसरेको संताप देने लगे। उस समराङ्गणमें घोड़े घोड़ों, रथी रथियों एवं पैदल पैदल-समूहों, अश्वसमुदायों तथा रथों और हाथियोंका भी मर्दन कर रहे थे। नरेश्वर ! इसी प्रकार रथी हाथी और घोड़ोंका तथा शीघ्रगामी हाथी उस युद्धस्थलमें हाथी सेनाके अन्य तीन अङ्गोंको रौंदने लगे ॥ ५-६½ ॥

वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम् ॥ ७ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा।

वहाँ मारे जाते और एक दूसरेको कोसते हुए शूरवीरोंके आर्तनादसे वह युद्धस्थल वैसा ही भयंकर जान पड़ता था, मानो वहाँ पशुओंका वध किया जा रहा हो ॥ ७½ ॥

रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी ॥ ८ ॥
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा।

भारत ! खूनसे ढकी हुई यह पृथ्वी वर्षाकालमें वीरबहूटी नामक लाल रंगके कीड़ोंसे व्याप्त हुई भूमिके समान शोभा पाती थी ॥ ८½ ॥

यथा वा वाससी शुक्ले महारजनरञ्जिते ॥ ९ ॥
बिभृयाद् युवती श्यामा तद्वदासीद् वसुंधरा।
मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च ॥ १० ॥

अथवा जैसे कोई श्यामवर्णा युवती श्वेत रंगके वस्त्रोंको हल्दीके गाढ़े रंगमें रँगकर पहन ले, वैसी ही वह रणभूमि प्रतीत होती थी। मांस और रक्तसे चित्रित-सी जान पड़नेवाली वह भूमि सुवर्णमयी-सी प्रतीत होती थी ॥ ९-१० ॥

भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह।
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत ॥ ११ ॥
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम्।
चर्मणां सपताकानां संघास्तत्रापतन् भुवि ॥ १२ ॥

भारत ! वहाँ भूतलपर कटे हुए मस्तकों, भुजाओं, जाँघों, बड़े-बड़े कुण्डलों, अन्यान्य आभूषणों, निष्कों धनुर्धर शूरवीरोंके शरीरों, ढालों और पताकाओंके ढेर-के-ढेर पड़े थे ॥

गजा गजान् समासाद्य विषाणैरार्दयन् नृप।
विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥ १३ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! हाथी हाथियोंसे भिड़कर अपने दाँतोंसे परस्पर पीड़ा दे रहे थे। दाँतोंकी चोटसे घायल हो खूनसे भीगे शरीरवाले हाथी गेरूके रंगसे मिले हुए जलका स्रोत बहानेवाले झरनोंसे युक्त धातुमण्डित पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥

तोमरान् सादिभिर्मुक्तान् प्रतीपानास्थितान् बहून्।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभञ्जुश्चापरे तथा ॥ १५ ॥

कितने ही हाथी घुड़सवारोंके छोड़े हुए तोमरों तथा अनेक विपक्षियोंको भी सूँड़ोंसे पकड़कर रणभूमिमें विचरते थे तथा दूसरे उनको टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे ॥ १५ ॥

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः।
हिमागमे यथा राजन् व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १६ ॥

राजन्! नाराचोंसे कवच छिन्न-भिन्न होनेके कारण गजराजोंकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे हेमन्त ऋतुमें बिना बादलोंके पर्वत शोभित होते हैं ॥ १६ ॥

शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः।
उल्काभिः सम्प्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥ १७ ॥

भरतनन्दन! विचित्र प्रकारसे सजे हुए उत्तम हाथी सुवर्णमय पंखवाले बाणोंके लगनेसे उल्काओंद्वारा उद्दीप्त शिखरोंवाले पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७ ॥

केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः।
विनेशुः समरे तस्मिन् पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८ ॥

उस संग्राममें पर्वतोंके समान प्रतीत होनेवाले कितने ही हाथी हाथियोंसे घायल हो पंखधारी शैलसमूहोंके समान नष्ट हो गये ॥ १८ ॥

अपरे प्राद्रवन् नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १९ ॥

दूसरे बहुत-से हाथी बाणोंसे व्यथित और घावोंसे पीड़ित हो भाग चले और कितने ही उस महासमरमें दोनों दाँतों और कुम्भस्थलोंको धरतीपर टेककर धराशायी हो गये ॥ १९ ॥

विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान् रवान्।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुक्रुशुश्चापरे गजाः ॥ २० ॥

राजन्! दूसरे अनेक गजराज भयंकर गर्जना करते हुए सिंहके समान दहाड़ रहे थे और दूसरे बहुतेरे हाथी इधर-उधर चक्कर काटते और चीखते-चिल्लाते थे ॥ २० ॥

हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बहुसंख्यक घोड़े बाणोंद्वारा घायल होकर बैठ जाते, मलिन हो जाते और दसों दिशाओंमें भागने लगते थे ॥ २१ ॥

अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले।
भावान् बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥ २२ ॥

बाणों और तोमरोंद्वारा ताड़ित होकर कितने ही अश्व धरतीपर लोट जाते और हाथियोंद्वारा खींचे जानेपर छटपटाते हुए नाना प्रकारके भाव व्यक्त करते थे ॥ २२ ॥

नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥ २३ ॥

आर्य! वहाँ घायल होकर पृथ्वीपर पड़े हुए कितने ही मनुष्य अपने बान्धव-जनोंको देखकर कराह उठते थे। कितने ही अपने बाप-दादोंको देखकर कुछ अस्फुट स्वरमें बोलने लगते थे ॥ २३ ॥

धावमानान् परांश्चान्यान् दृष्ट्वान्ये तत्र भारत।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥ २४ ॥

भरतनन्दन! दूसरे बहुत-से मनुष्य अन्यान्य लोगोंको दौड़ते देख एक-दूसरेसे अपने प्रसिद्ध नाम और गोत्र बताने लगते थे ॥ २४ ॥

तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥ २५ ॥
निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः।

महाराज! मनुष्योंकी कटी हुई सहस्रों सुवर्णभूषित भुजाएँ कभी टेढ़ी होकर किसी शरीरसे लिपट जातीं, कभी छटपटातीं, गिरतीं, ऊपरको उछलतीं, नीचे आ जातीं और तड़पने लगती थीं ॥ २५½ ॥

वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ २६ ॥
ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २७ ॥

प्रजानाथ! सर्पोंके शरीरोंके समान प्रतीत होनेवाली कितनी ही चन्दनचर्चित भुजाएँ रणभूमिमें पाँच मुँहवाले सर्पोंके समान महान् वेग प्रकट करतीं तथा रक्तरंजित होनेके कारण सुवर्णमयी ध्वजाओंके समान अधिकाधिक शोभा पाती थीं ॥ २६-२७ ॥

वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम्।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २८ ॥

उस घोर घमासान युद्धके चालू होनेपर सम्पूर्ण योद्धा एक-दूसरेपर चोट करते हुए बिना जाने-पहचाने ही युद्ध करते थे ॥ २८ ॥

भौमेन रजसाऽऽकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले।
नैव स्वे न परे राजन् व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥ २९ ॥

राजन्! शस्त्रोंकी धारावाहिक वृष्टिसे व्याप्त तथा धरतीकी धूलसे आच्छादित हुए उस प्रदेशमें अपने और शत्रुपक्षके सैनिक अन्धकारसे आच्छादित होनेके कारण पहचानमें नहीं आते थे ॥ २९ ॥

तथा तदभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम्।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ ३० ॥

वह युद्ध ऐसा घोर एवं भयानक हो रहा था कि वहाँ बारंबार खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बह चलती थीं ॥ ३० ॥

शीर्षपाषाणसंछन्नाः केशशैवलशाद्वलाः।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥ ३१ ॥

योद्धाओंके कटे हुए मस्तक शिलाखण्डोंके समान उन नदियोंको आच्छादित किये रहते थे। उनके केश ही सेवार और घासके समान प्रतीत होते थे, हड्डियाँ ही उनमें मछलियों-के समान व्याप्त हो रही थीं, धनुष, बाण और गदाएँ नौकाके समान जान पड़ती थीं ॥ ३१ ॥

मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः।
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥ ३२ ॥

उनके भीतर मांस और रक्तकी ही कीचड़ जमी थी। रक्तके प्रवाहको बढ़ानेवाली उन घोर एवं भयंकर नदियोंको वहाँ योद्धाओंने प्रवाहित किया था ॥ ३२ ॥

भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः।
ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥ ३३ ॥

वे भयानक रूपवाली नदियाँ कायरोंको डराने और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाली थीं तथा प्राणियोंको यमलोक पहुँचाती थीं ॥ ३३ ॥

अवगाढान् मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन् भयम्।
क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥ ३४ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम्।

जो उनमें प्रवेश करते, उन्हें वे डुबो देती थीं और क्षत्रियोंके मनमें भय उत्पन्न करती थीं। नरव्याघ्र! वहाँ गरजते हुए मांसभक्षी जन्तुओंके शब्दसे वह युद्धस्थल प्रेतराजकी नगरीके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ ३५ ॥
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः।
पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥३६॥

वहाँ चारों ओर उठे हुए अगणित कबन्ध और रक्त-मांससे तृप्त हुए भूतगण नृत्य कर रहे थे। भारत! ये सब-के-सब रक्त तथा वसा पीकर छके हुए थे ॥ ३५-३६ ॥

मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रबकास्तथा ॥ ३७॥

मेदा, वसा, मज्जा और मांससे तृप्त एवं मतवाले कौए, गीध और बक सब ओर उड़ते दिखायी देते थे ॥ ३७ ॥

शूरास्तु समरे राजन् भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्।
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३८ ॥

राजन्! उस समरमें योद्धाओंके व्रतका पालन करनेमें विख्यात शूरवीर जिसका त्याग करना अत्यन्त कठिन है, उस भयको छोड़कर निर्भयके समान पराक्रम प्रकट करते थे ॥

शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३९ ॥

बाण और शक्तियोंसे व्याप्त तथा मांसभक्षी जन्तुओंसे भरे हुए उस रणक्षेत्रमें शूरवीर अपने पुरुषार्थकी ख्याति बढ़ाते हुए विचर रहे थे ॥ ३९ ॥

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो ॥ ४० ॥
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योद्धा विशाम्पते।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ४१ ॥

भारत! प्रभो! रणभूमिमें कितने ही योद्धा एक दूसरेको अपने और पिताके नाम तथा गोत्र सुनाते थे। प्रजानाथ! नाम और गोत्र सुनाते हुए बहुतेरे योद्धा शक्ति, तोमर और पट्टिशोंद्वारा एक दूसरेको धूलमें मिला रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे।
व्यषीदत् कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह दारुण एवं भयंकर युद्ध चल ही रहा था कि समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और विषाद करने लगी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा दस हजार संशप्तक योद्धाओं और उनकी सेनाका संहार

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—आर्य! जब क्षत्रियोंका संहार करनेवाला वह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर बड़े जोर-जोरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी देती थी ॥

संशप्तकानां कदनमकरोद् यत्र पाण्डवः।
कोसलानां तथा राजन् नारायणबलस्य च ॥ २ ॥

राजन्! वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुन संशप्तकोंका, कोसलदेशीय योद्धाओंका तथा नारायणी-सेनाका संहार कर रहे थे ॥

संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः।
अपातयन् पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें विजयकी इच्छा रखनेवाले संशप्तकोंने अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनके मस्तकपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन् प्रभुः।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन् रथिनां वरान् ॥ ४ ॥

राजन्! उस बाण-वर्षाको सहसा वेगपूर्वक सहते और श्रेष्ठ रथियोंका संहार करते हुए शक्तिशाली अर्जुन रणभूमिमें विचरने लगे॥

विगाह्य तद् रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥ ५ ॥

सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा प्रहार करते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन रथियोंकी सेनामें घुसकर श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले सुशर्माके पास जा पहुँचे ॥५॥

स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥ ६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्मा उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा अन्य संशप्तकोंने भी अर्जुनको अनेक बाण मारे ॥

सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद् दक्षिणे भुजे ॥ ७ ॥

सुशर्माने दस बाणोंसे अर्जुनको घायल करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजापर तीन बाण मारे ॥ ७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष।
स वानरवरो राजन् विश्वकर्मकृतो महान् ॥ ८ ॥
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च।

मान्यवर ! तदनन्तर दूसरे भल्लसे उनकी ध्वजाको बींध डाला । राजन् ! उस समय विश्वकर्माका बनाया हुआ वह महान् वानर सबको भयभीत करता हुआ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ८½ ॥

कपेस्तु निनदं श्रुत्वा संत्रस्ता तव वाहिनी ॥ ९ ॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत।

वानरकी वह गर्जना सुनकर आपकी सेना संत्रस्त हो उठी और मनमें महान् भय लेकर निश्चेष्ट हो गयी ॥ ९½ ॥

ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥ १० ॥
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम्।

नरेश्वर ! फिर वहाँ निश्चेष्ट खड़ी हुई आपकी वह सेना भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भरे हुए चैत्ररथ नामक वनके समान शोभा पाने लगी ॥ १०½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव।

कुरुश्रेष्ठ ! तदनन्तर होशमें आकर आपके योद्धा अर्जुनपर उसी प्रकार बाणोंकी बौछार करने लगे, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ ११½ ॥

परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥ १२ ॥
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः।

उन सबने मिलकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके उस विशाल रथको घेर लिया । यद्यपि उनपर तीखे बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी वे उस रथको पकड़कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे॥

ते हयान् रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥ १३ ॥
निग्रहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः।

माननीय नरेश ! क्रोधमें भरे हुए संशप्तकोंने सब ओरसे आक्रमण करके अर्जुनके रथके घोड़ों, दोनों पहियों तथा ईषादण्डको भी पकड़ना आरम्भ किया ॥ १३½ ॥

निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥ १४ ॥
निगृह्य बलवत् सर्वे सिंहनादमथानदन्।

इस प्रकार वे सब हजारों योद्धा रथको जबरदस्ती पकड़कर सिंहनाद करने लगे ॥ १४½ ॥

अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५ ॥
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा।

महाराज ! कई योद्धाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों विशाल भुजाएँ पकड़ लीं । दूसरोंने रथपर बैठे हुए अर्जुनको भी प्रसन्नतापूर्वक पकड़ लिया ॥ १५½ ॥

केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन् रणमूर्धनि ॥ १६ ॥
पातयामास तान् सर्वान् दुष्टहस्तीव हस्तिपान्।

तब जैसे दुष्ट हाथी महावतोंको नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दोनों बाँहें झटककर उन सब लोगोंको युद्धके मुहानेपर नीचे गिरा दिया ॥ १६½ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७ ॥
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम्।

फिर उन महारथियोंसे घिरे हुए अर्जुन अपने रथको पकड़ा गया और श्रीकृष्णपर भी आक्रमण हुआ देख रणभूमिमें कुपित हो उठे ॥ १७½ ॥

रथारूढांस्तु सुबहून् पदातींश्चाप्यपातयत् ॥ १८ ॥
आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः।
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

उन्होंने अपने रथपर चढ़े हुए बहुत-से पैदल सैनिकोंको धक्के देकर नीचे गिरा दिया और आसपास खड़े हुए संशप्तक-योद्धाओंको निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी बाणोंद्वारा ढक दिया एवं समराङ्गणमें भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान् बहून्।
कुर्वाणान् दारुणं कर्म वध्यमानान् सहस्रशः ॥ २० ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! देखिये, ये क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले बहुसंख्यक संशप्तक योद्धा किस प्रकार सहस्रोंकी संख्यामें मारे जा रहे हैं ॥ २० ॥

रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१ ॥

'यदुपुङ्गव ! जगत्में इस भूतलपर मेरे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस भयानक रथबन्ध (रथकी पकड़ अथवा रथोंके घेरे) का सामना कर सके' ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत्।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया । फिर भगवान् श्रीकृष्णने भी पृथ्वी और आकाशको गुँजाते हुए-से पाञ्चजन्य नामक शङ्खकी ध्वनि फैलायी ॥ २२ ॥

तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी।
संचचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद् भृशम् ॥ २३ ॥

महाराज ! उस शङ्खनादको सुनकर संशप्तकोंकी सेना काँप उठी और भयभीत होकर जोर-जोरसे भागने लगी ॥

पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा।

नागमस्त्रं महाराज सम्प्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने बारंबार नागास्त्रका प्रयोग करके उन सबके पैर बाँध लिये ॥ २४ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन् राजन्नश्मसारमया इव ॥ २५ ॥

राजन् ! उन महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा पैर बाँध दिये जानेके कारण वे संशप्तक योद्धा लोहेके बने हुए पुतलोंके समान निश्चेष्ट हो गये ॥ २५ ॥

निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत् पाण्डुनन्दनः।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥ २६ ॥

फिर पूर्वकालमें इन्द्रने तारकासुरके वधके समय समराङ्गणमें जिस प्रकार दैत्योंका वध किया था, उसी प्रकार पाण्डुनन्दन अर्जुनने निश्चेष्ट हुए संशप्तक योद्धाओंका संहार आरम्भ किया ॥ २६ ॥

ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् ।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥ २७ ॥

समराङ्गणमें बाणोंकी मार पड़नेपर उन्होंने अर्जुनके उस उत्तम रथको छोड़ दिया और उनके ऊपर अपने समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़नेका प्रयास किया ॥ २७ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन न शेकुश्चेष्टितुं नृप ।
ततस्तानवधीत् पार्थः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! उस समय पैर बँधे होनेके कारण वे हिल भी न सके । तब अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उनका वध करने लगे ॥ २८ ॥

सर्वयोधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिताभवन् ।
यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादबन्धं चकार ह ॥ २९ ॥

रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने जिन-जिन योद्धाओंको लक्ष्य करके पादबन्धास्त्रका प्रयोग किया, वे समस्त योद्धा समराङ्गणमें नागोंद्वारा जकड़ लिये गये थे ॥ २९ ॥

ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीम् ।
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ ३० ॥

राजेन्द्र ! महारथी सुशर्माने अपनी सेनाको नागोंद्वारा बँधी हुई देख तुरंत ही गारुडास्त्र प्रकट किया ॥ ३० ॥

ततः सुपर्णाः सम्पेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान् खचरान् नृप ॥ ३१ ॥

फिर तो गरुड पक्षी प्रकट होकर उन नागोंपर टूट पड़े और उन्हें खाने लगे । नरेश्वर ! उन पक्षियोंको प्रकट हुआ देख वे सारे नाग भाग चले ॥ ३१ ॥

बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद् विशाम्पते ।
मेघवृन्दाद् यथा मुक्तो भास्करस्तापयन् प्रजाः॥ ३२ ॥

प्रजानाथ ! जैसे सूर्यदेव मेघोंकी घटासे मुक्त होकर सारी प्रजाको ताप देते हुए प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार पैरोंके बन्धनसे छुटकारा पाकर वह सारी सेना बड़ी शोभा पाने लगी ॥ ३२ ॥

विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
ससृजुर्बाणसंघांश्च शस्त्रसंघांश्च मारिष ॥ ३३ ॥
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः ।

आर्य ! बन्धनमुक्त होनेपर संशप्तक योद्धा अर्जुनके रथको लक्ष्य करके बाणों तथा शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको सब ओरसे काटने लगे ॥ ३३½ ॥

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥
न्यवधींच्च ततो योधान् वासविः परवीरहा ।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे उनकी भारी अस्त्र-वृष्टिका निवारण करके उन योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

सुशर्मा तु ततो राजन् बाणेनानतपर्वणा ॥ ३५ ॥
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः ।

राजन् ! इसी समय सुशर्माने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचाकर अन्य तीन बाणोंद्वारा भी उन्हें घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३६ ॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह ।
ततः शङ्खनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ॥ ३७ ॥
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे ।

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर अर्जुन व्यथित हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। फिर तो सब लोग जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे कि 'अर्जुन मारे गये !' उस समय शङ्ख बजने लगे, भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि फैलने लगी तथा नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही योद्धाओंकी सिंहगर्जना भी होने लगी॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ ३८ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन अमेय आत्मबलसे सम्पन्न श्वेतवाहन अर्जुनने होशमें आकर बड़ी उतावलीके साथ ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ३८½ ॥

ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥ ३९ ॥
सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्ति तव वाहिनीम् ।

मान्यवर ! उससे सम्पूर्ण दिशाओंमें सहस्रों बाण प्रकट हो-होकर आपकी सेनाका संहार करते दिखायी दिये ॥३९½॥

हयान् रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥ ४० ॥
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् ।
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ॥ ४१ ॥

समराङ्गणमें शस्त्रोंद्वारा सैकड़ों और हजारों घोड़े तथा

रथ मारे जाने लगे । भारत ! इस प्रकार जब सेनाका संहार होने लगा, तब संशप्तकगणों और नारायणी सेनाके ग्वालोंको बड़ा भय हुआ ॥ ४०-४१ ॥

न हि तत्र पुमान् कश्चिद् योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ।
पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥ ४२ ॥

उस समय वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था, जो अर्जुनपर चोट कर सके । वहाँ सब वीरोंके देखते-देखते आपकी सेनाका वध होने लगा ॥ ४२ ॥

हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे ।
अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ॥ ४३ ॥
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

सारी सेना स्वयं निश्चेष्ट हो गयी थी । उससे पराक्रम करते नहीं बनता था और उस अवस्थामें वह मारी जा रही थी । मैंने यह सब अपनी आँखों देखा था । महाराज ! पाण्डुपुत्र अर्जुन रणभूमिमें वहाँ दस हजार योद्धाओंका संहार करके धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४३½ ॥

चतुर्दश सहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ॥ ४४ ॥
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ।

भारत ! उस समय संशप्तकोंके चौदह हजार पैदल, दस हजार रथ और तीन हजार हाथी शेष रह गये थे ॥ ४४½ ॥

ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥ ४५ ॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वाप्यनिवर्तनम् ।

संशप्तकोंने पुनः यह निश्चय करके कि 'मर जायँगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे, किंतु युद्धसे पीछे नहीं हटेंगे' अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तावकानां विशाम्पते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना ॥ ४६ ॥
(जित्वा तान् न्यहनत् पार्थः शत्रूञ्शक्र इवासुरान् ॥)

प्रजानाथ ! फिर तो वहाँ किरीटधारी बलवान् शूरवीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ आपके सैनिकोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ । उसमें कुन्तीपुत्र अर्जुनने उन शत्रुओंको जीतकर उनका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे देवराज इन्द्रने असुरोंका किया था ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय और सुकेतुका वध तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्माका परास्त होना

संजय उवाच

कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जह्रुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—मान्यवर ! नरेश ! कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सूतपुत्र कर्ण, उलूक, शकुनि तथा भाइयोंसहित राजा दुर्योधनने समुद्रमें टूटी हुई नावकी भाँति आपकी सेनाको पाण्डुपुत्र अर्जुनके भयसे पीड़ित और शिथिल होती देख बड़े वेगसे आकर उसका उद्धार किया ॥ १-२ ॥

ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३ ॥

भारत ! तदनन्तर दो घड़ीतक वहाँ घोर युद्ध होता रहा, जो कायरोंके लिये त्रासजनक और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३ ॥

कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥

कृपाचार्यने युद्धस्थलमें बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की । उन बाणोंने टिड्डीदलोंके समान सृञ्जयोंको आच्छादित कर दिया ॥ ४ ॥

शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम् ॥ ५ ॥

इससे शिखण्डीको बड़ा क्रोध हुआ । वह तुरंत ही विप्रवर गौतमगोत्रीय कृपाचार्यपर चढ़ आया और उनके ऊपर सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५ ॥

कृपस्तु शरवर्षं तद् विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥

महान् अस्त्रवेत्ता कृपाचार्यने शिखण्डीकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके कुपित हो उसे दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ६ ॥

(महदासीत् तयोर्युद्धं मुहूर्तमिव दारुणम् ।
क्रुद्धयोः समरे राजन् रामरावणयोरिव ॥)

राजन् ! समर-भूमिमें कुपित हुए राम और रावणके समान उन दोनों वीरोंमें दो घड़ीतक बड़ा भयंकर युद्ध चलता रहा ॥ ७ ॥

ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥

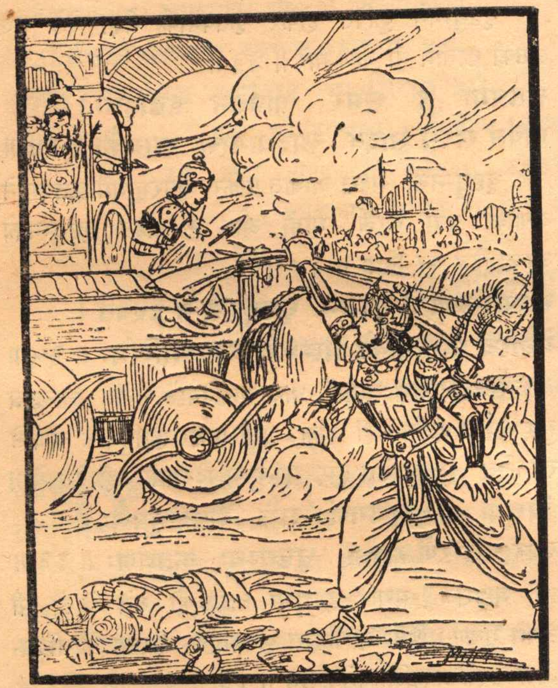
तत्पश्चात् शिखण्डीने क्रोधमें भरकर युद्धस्थलमें कङ्क-पत्रयुक्त सात सीधे बाणोंद्वारा कुपित कृपाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ७ ॥

ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः॥ ८॥

उन तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए महारथी विप्रवर कृपाचार्यने शिखण्डीको घोड़े, सारथि एवं रथसे रहित कर दिया॥ ८॥

हताश्वात् तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ॥ ९॥

तब महारथी शिखण्डी उस अश्वहीन रथसे कूदकर हाथोंमें ढाल और तलवार ले तुरंत ही ब्राह्मण कृपाचार्यकी ओर चला॥



तमापतन्तं सहसा शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत्॥ १०॥

उसे अपने ऊपर सहसा आक्रमण करते देख कृपाचार्यने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें शिखण्डीको ढक दिया, यह अद्भुत-सी बात हुई॥ १०॥

तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा।
निश्चेष्टस्तद् रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत॥ ११॥

राजन्! रणक्षेत्रमें शिखण्डी निश्चेष्ट होकर खड़ा रहा, यह वहाँ पत्थरके तैरनेके समान हमलोगोंने अद्भुत बात देखी॥

कृपेणच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम्।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः॥ १२॥

नृपश्रेष्ठ! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंसे आच्छादित हुआ देख महारथी धृष्टद्युम्न तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये आये॥ १२॥

धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः॥ १३॥

धृष्टद्युम्नको कृपाचार्यके रथकी ओर जाते देख महारथी कृतवर्माने वेगपूर्वक उन्हें रोक दिया॥ १३॥

युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत्॥ १४॥

इसी प्रकार पुत्र और सेनासहित युधिष्ठिरको कृपाचार्यके रथपर चढ़ाई करते देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रोका॥१४॥

नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन्॥ १५॥

महारथी नकुल और सहदेव भी बड़ी उतावलीके साथ चढ़े आ रहे थे, उन्हें भी आपके पुत्रने बाण-वर्षासे रोक दिया॥

भीमसेनं करूषांश्च केकयान् सह सृंजयैः।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत॥ १६॥

भारत! भीमसेनको तथा करूष, केकय और सृञ्जय योद्धाओंको वैकर्तन कर्णने युद्धमें आगे बढ़नेसे रोका॥१६॥

शिखण्डिनस्ततो बाणान् कृपः शारद्वतो युधि।
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष॥ १७॥

मान्यवर! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य युद्धस्थलमें, मानो वे शिखण्डीको दग्ध कर डालना चाहते हों, बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर बाण चलाये॥ १७॥

ताञ्छरान् प्रेषितांस्तेन समन्तात् स्वर्णभूषितान्।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः॥ १८॥

उनके चलाये हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंको शिखण्डीने बारंबार तलवार घुमाकर सब ओरसे काट डाला॥ १८॥

शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत।
व्यधमत् सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥ १९॥

भरतनन्दन! तब कृपाचार्यने अपने बाणोंसे शिखण्डीकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढालको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर डाला। इससे सब लोग कोलाहल करने लगे॥ १९॥

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत्।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः॥ २०॥

महाराज! जैसे रोगी मौतके मुँहमें पहुँच गया हो, उसी प्रकार कृपाचार्यके वशमें पड़ा हुआ शिखण्डी अपनी ढाल कट जानेपर केवल तलवार हाथमें लिये उनकी ओर दौड़ा॥

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः।
चित्रकेतुसुतो राजन् सुकेतुस्त्वरितो ययौ॥ २१॥

राजन्! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंका ग्रास बनकर पीड़ित होते देख चित्रकेतुका पुत्र महाबली सुकेतु उसकी सहायताके लिये तुरंत आगे बढ़ा॥ २१॥

विकिरन् ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति॥ २२॥

सुकेतु अमेय आत्मबलसे सम्पन्न था। वह युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैने बाणोंद्वारा ब्राह्मण कृपाचार्यको आच्छादित

करता हुआ उनके रथके समीप आ पहुँचा ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण कृपाचार्यको सुकेतुके साथ युद्धमें तत्पर देख शिखण्डी तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

सुकेतुस्तु ततो राजन् गौतमं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तदनन्तर सुकेतुने कृपाचार्यको पहले नौ बाणोंसे बींधकर फिर तिहत्तर तीरोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ २५ ॥

आर्य ! तत्पश्चात् बाणसहित उनके धनुषको काट दिया और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥

इससे कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने दूसरा नूतन सुदृढ़ धनुष लेकर सुकेतुके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें तीस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ २६ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम् ॥ २७ ॥

इससे सुकेतुका सारा शरीर विह्वल होकर उस उत्तम रथपर काँपने लगा; मानो भूकम्प आनेपर कोई वृक्ष जोर-जोरसे काँपने और झूमने लगा हो ॥ २७ ॥

चलतस्तस्य कायात् तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयद् ॥ २८ ॥

उसी अवस्थामें कृपाचार्यने एक क्षुरप्रद्वारा सुकेतुके जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त पगड़ी और शिरस्त्राणसहित मस्तकको उसकी काँपती हुई कायासे काट गिराया ॥ २८ ॥

तच्छिरः प्रापतद् भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात् प्रापतदच्युत ॥ २९ ॥

राजन् ! वह सिर बाजके लाये हुए मांसके टुकड़ेके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके बाद सुकेतुका धड़ भी धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

तस्मिन् हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः ।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥

महाराज ! सुकेतुके मारे जानेपर उसके अग्रगामी सैनिक भयभीत हो समराङ्गणमें कृपाचार्यको छोड़कर दसों दिशाओंकी ओर भाग निकले ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! दूसरी ओर महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नको रोककर बड़े हर्षके साथ कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

तदभूत् तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये दो बाज क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कृतवर्मा और धृष्टद्युम्नका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम् ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नने कुपित होकर कृतवर्माको पीड़ा देते हुए उसकी छातीमें नौ बाण मारे ॥ ३३ ॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्नका गहरा आघात पाकर समरभूमिमें कृतवर्माने बाणोंकी वर्षा करके घोड़ों और रथसहित धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया ॥ ३४ ॥

सरथश्छादितो राजन् धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ॥ ३५ ॥

राजन् ! जैसे जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंसे आच्छन्न हुए सूर्यका दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार कृतवर्माके बाणोंसे रथसहित आच्छादित हुए धृष्टद्युम्न दिखायी नहीं देते थे ॥

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ ३६ ॥

महाराज ! यद्यपि धृष्टद्युम्न घायल हो गये थे तो भी अपने सुवर्ण-भूषित बाणोंद्वारा कृतवर्माके शरसमूहको छिन्न-भिन्न करके प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत् पृतनापतिः ॥ ३७ ॥

फिर क्रोधमें भरे हुए सेनापति धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके निकट जाकर उसके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद् युधि ॥ ३८ ॥

अपने ऊपर सहसा आती हुई उस भयंकर बाणवर्षाको युद्धस्थलमें कृतवर्माने कई हजार बाण मारकर रोक दिया ॥

दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद् यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद् रथात् ॥ ४० ॥

रणभूमिमें उस दुर्जय शस्त्रवर्षाको रोकी गयी देख धृष्टद्युम्नने कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया और उसके सारथिको तीखी धारवाले भल्लसे वेगपूर्वक

मारकर यमलोक भेज दिया। मारा गया सारथि रथसे नीचे गिर पड़ा॥ ३९-४०॥

(कृतवर्मा तु संक्रुद्धो विधक्षुरिव पावकः।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् पाण्डवान् पर्यवारयत्॥

कृतवर्मा अत्यन्त क्रोधमें भरकर जलानेको उद्यत हुई आगके समान धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाण्डवोंको रोकने लगा।

ततो राजन् महेष्वासं कृतवर्माणमाशु वै।
गदां गृह्य पुनर्वेगात् कृतवर्माणमाहनत्॥

राजन्! तब धृष्टद्युम्नने गदा हाथमें लेकर पुनः बड़े वेगसे महाधनुर्धर कृतवर्मापर शीघ्र ही आघात किया॥

सोऽतिविद्धो बलवता न्यपतन्मूर्च्छया हतः।
श्रुतर्वा रथमारोप्य अपोवाह रणाजिरात्॥)

उस बलवान् वीरके गहरे आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं मूर्छित हो कृतवर्मा गिर पड़ा। तब श्रुतर्वा उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम्।
कौरवान् समरे तूर्णं वारयामास सायकैः॥ ४१॥

इस प्रकार बलवान् धृष्टद्युम्नने उस महाबली शत्रुको जीतकर बाणोंकी वर्षा करके समराङ्गणमें समस्त कौरवोंको तुरंत आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ४१॥

ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन्।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्तत॥ ४२॥

तब आपके समस्त योद्धा सिंहनाद करके धृष्टद्युम्नपर टूट पड़े। फिर वहाँ घोर युद्ध होने लगा॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४६ श्लोक हैं)

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका घोर युद्ध, सात्यकिके सारथिका वध एवं युधिष्ठिरका अश्वत्थामाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाना

संजय उवाच

द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम्।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! सात्यकि तथा शूरवीर द्रौपदी-पुत्रोंद्वारा सुरक्षित युधिष्ठिरको देखकर अश्वत्थामा बड़े हर्षके साथ उनका सामना करनेके लिये गया॥ १॥

किरन्निषुगणान् घोरान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
दर्शयन् विविधान् मार्गान् शिक्षाश्च लघुहस्तवत्॥ २॥
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित्॥ ३॥

वह बड़े-बड़े अस्त्रोंका ज्ञाता था; इसलिये शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले योद्धाके समान सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त भयंकर शरसमूहोंकी वर्षा करता और नाना प्रकारके मार्ग एवं शिक्षाका प्रदर्शन करता हुआ दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित बाणोंद्वारा समराङ्गणमें युधिष्ठिरको अवरुद्ध करके आकाशको उन बाणोंसे भरने लगा॥ २-३॥

द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन।
बाणभूतमभूत् सर्वमायोधनशिरो महत्॥ ४॥

द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छन्न हो जानेके कारण वहाँ कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। युद्धका वह सारा विशाल मैदान बाणमय हो रहा था॥ ४॥

बाणजालं दिविच्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम्।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम्॥ ५॥

भरतश्रेष्ठ! स्वर्णजाल-विभूषित वह बाणोंका जाल आकाशमें फैलकर वहाँ तने हुए वितान (चँदोवे) के समान सुशोभित होता था॥ ५॥

तेनच्छन्नं नभो राजन् बाणजालेन भास्वता।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले॥ ६॥

राजन्! उन प्रकाशमान बाणसमूहोंसे सारा आकाश-मण्डल ढक गया था। बाणोंसे रुँधे हुए आकाशमें मेघोंकी छाया-सी बन गयी थी॥ ६॥

तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे।
न स्म सम्पतते भूतं किंचिदेवान्तरिक्षगम्॥ ७॥

इस प्रकार आकाशके बाणमय हो जानेपर हमलोगोंने वहाँ यह आश्चर्यकी बात देखी कि आकाशचारी कोई भी प्राणी उधरसे उड़कर नीचे नहीं आ सकता था॥ ७॥

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम्॥ ८॥

उस समय प्रयत्नशील सात्यकि, धर्मराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यथा अन्यान्य सैनिक कोई पराक्रम न कर सके॥

लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम्॥ ९॥
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम्।

महाराज! द्रोणपुत्रकी वह फुर्ती देखकर वहाँ खड़े हुए सभी महारथी नरेश आश्चर्यचकित हो उठे और तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके॥ ९½॥

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः॥ १०॥

सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि संगताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

तदनन्तर जब पाण्डवसेना मारी जाने लगी, तब महारथी द्रौपदीपुत्र और सात्यकि तथा धर्मराज युधिष्ठिर और पाञ्चाल सैनक संगठित हो घोर मृत्युभयको छोड़कर द्रोणकुमारपर टूट पड़े ॥ १०-११ ॥

सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥

सात्यकिने सत्ताईस बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल करके पुनः सात स्वर्णभूषित नाराचोंद्वारा उसे बींध डाला ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥ १३ ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्यने सात, श्रुतकर्माने तीन, श्रुतकीर्तिने सात, सुतसोमने नौ और शतानीकने उसे सात बाण मारे तथा दूसरे बहुत-से शूरवीरोंने भी अश्वत्थामाको चारों ओरसे घायल कर दिया ॥ १३-१४ ॥

स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्रत्यविध्यच्छिलीमुखैः॥१५ ॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरकर विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए अश्वत्थामाने सात्यकिको पचीस बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ १५ ॥

श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान् द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥१७ ॥
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ।

फिर श्रुतकीर्तिको नौ, सुतसोमको पाँच, श्रुतकर्माको आठ, प्रतिविन्ध्यको तीन, शतानीकको नौ, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पाँच तथा अन्य शूरवीरोंको दो-दो बाणोंसे पीट दिया । इसके सिवा उसने पैने बाणोंद्वारा श्रुतकीर्तिके धनुषको भी काट दिया॥ १६-१७½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय श्रुतिकीर्तिर्महारथः ॥ १८ ॥
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः ।

तब महारथी श्रुतकीर्तिने दूसरा धनुष लेकर द्रोणकुमारको पहले तीन बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे-दूसरे पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १८½ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥ १९ ॥
छादयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ ।

मान्यवर भरतभूषण महाराज ! तत्पश्चात् द्रोणकुमारने अपने बाणोंकी वर्षासे युधिष्ठिरकी उस सेनाको सब ओरसे ढक दिया ॥ १९½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥ २० ॥
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन् विव्याध च शरैस्त्रिभिः ।

उसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणकुमारने धर्मराजके धनुषको काट डाला और हँसते-हँसते तीन बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततो धर्मसुतो राजन् प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः ॥ २१ ॥
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

राजन् ! तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाको बींध दिया एवं उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें सत्तर बाण मारे ॥ २१½ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ॥ २२ ॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद् भृशम् ।

इसके बाद कुपित हुए सात्यकिने रणभूमिमें प्रहार करनेवाले अश्वत्थामाके धनुषको तीखे अर्धचन्द्रसे काटकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २२½ ॥

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥२३॥
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद् द्रुतम् ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशालियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने शक्ति चलाकर शिनिपौत्र सात्यकिके सारथिको शीघ्र ही रथसे नीचे गिरा दिया ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥
शैनेयं शरवर्षेणच्छादयामास भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् प्रतापी द्रोणपुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको शरसमूहोंकी वर्षाद्वारा आच्छादित कर दिया २४½

तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥ २५ ॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।

भरतनन्दन ! उनके रथका सारथि धराशायी हो चुका था, इसलिये उनके घोड़े युद्धस्थलमें बेलगाम भागने लगे । वे विभिन्न स्थानोंमें भागते हुए ही दिखायी दे रहे थे ।२५½।

युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ॥ २६ ॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।

युधिष्ठिर आदि पाण्डव महारथी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर बड़े वेगसे पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे २६½

आगच्छमानांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान् परंतपः ॥ २७ ॥
प्रहसन् प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस महासमरमें उन पाण्डव महारथियोंको क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख हँसते हुए उनका सामना किया ॥ २७½ ॥

ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥ २८ ॥
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ।

जैसे आग वनमें सूखे काठ और घास-फूँसको जला देती है, उसी प्रकार महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें सैकड़ों बाणरूपी ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो पाण्डवसेनारूपी सूखे काठ एवं घास-फूँसको जलाना आरम्भ किया ॥ २८½ ॥

तद् बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ॥ २९ ॥
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ।

भरतश्रेष्ठ ! जैसे तिमिनामक मत्स्य नदीके प्रवाहको विक्षुब्ध कर देता है, उसी प्रकार द्रोणपुत्रके द्वारा संतप्त की हुई पाण्डवसेनामें हलचल मच गयी ॥ २९½ ॥

दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥
निहतान् मेनिरे सर्वान् पाण्डून् द्रोणसुतेन वै ।

महाराज ! द्रोणपुत्रका पराक्रम देखकर सब लोगोंने यही समझा कि द्रोणकुमार अश्वत्थामाके द्वारा सारे पाण्डव मार डाले जायँगे ॥ ३०½ ॥

युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ३१ ॥
अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः ।

तदनन्तर रोष और अमर्षमें भरे हुए द्रोणशिष्य महारथी युधिष्ठिरने द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे कहा ॥ ३१½ ॥

(युधिष्ठिर उवाच

जानामि त्वां युधि श्रेष्ठं वीर्यवन्तं महाबलम् ।
कृतास्त्रं कृतिनं चैव तथा लघुपराक्रमम् ॥

युधिष्ठिर बोले—द्रोणकुमार ! मैं जानता हूँ कि तुम युद्धमें पराक्रमी, महाबली, अस्त्रवेत्ता, विद्वान् और शीघ्रता-पूर्वक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले श्रेष्ठ वीर हो ॥

बलमेतद् भवान् सर्वं पार्षते यदि दर्शयेत् ।
ततस्त्वां बलवन्तं च कृतविद्यं च विद्महे ॥

परंतु यदि तुम अपना यह सारा बल द्रुपदपुत्रपर दिखा सको तो हम समझेंगे कि तुम बलवान् तथा अस्त्र-विद्याके विद्वान् हो ॥

न हि वै पार्षतं दृष्ट्वा समरे शत्रुसूदनम् ।
भवेत् तव बलं किंचिद् ब्रवीमि त्वा न तु द्विजम् ॥)

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नको समरभूमिमें देखकर तुम्हारा बल कुछ भी काम न करेगा । (तुम्हारे कर्मको देखते हुए) मैं तुम्हें ब्राह्मण नहीं कहूँगा ॥

नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥ ३२ ॥
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ।

पुरुषसिंह ! तुम जो आज मुझे ही मार डालना चाहते हो, यह न तो तुम्हारा प्रेम है और न कृतज्ञता ॥ ३२½ ॥

ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥ ३३ ॥
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान् ब्राह्मणब्रुवः ।

ब्राह्मणको तप, दान और वेदाध्ययन करना चाहिये । धनुष झुकाना तो क्षत्रियका काम है; अतः तुम नाममात्रके ब्राह्मण हो ॥ ३३½ ॥

मिषतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान् ॥ ३४ ॥
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ।

महाबाहो ! आज मैं तुम्हारे देखते-देखते युद्धमें कौरवोंको जीतूँगा । तुम समरमें पराक्रम प्रकट करो । निश्चय ही तुम एक स्वधर्मभ्रष्ट ब्राह्मण हो ॥ ३४½ ॥

एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥
युक्तं तत्त्वं च संचिन्त्य नोत्तरं किंचिदब्रवीत् ।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर द्रोणपुत्र मुस्कराने-सा लगा । इनका कथन युक्तियुक्त तथा यथार्थ है, ऐसा सोचकर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३५½ ॥

अनुक्त्वा च ततः किंचिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ॥ ३६ ॥
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

उसने कोई जवाब न देकर समराङ्गणमें कुपित हो बाणों-की वर्षासे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे प्रलयकालमें क्रुद्ध यमराज सारी प्रजाको अदृश्य कर देता है॥

स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥ ३७ ॥
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ।

आर्य ! द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छादित हो कुन्तीकुमार युधिष्ठिर उस समय अपनी विशाल सेनाको छोड़कर शीघ्र ही वहाँसे पलायन कर गये ॥ ३७½ ॥

अपयाते ततस्तस्मिन् धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३८ ॥
द्रोणपुत्रस्ततो राजन् प्रत्यगात् स महामनाः ।

राजन् ! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हट जानेपर फिर महामना द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दूसरी ओर चला गया ॥३८½॥

ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे ।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! फिर उस महायुद्धमें अश्वत्थामाको छोड़कर युधिष्ठिर पुनः क्रूरतापूर्ण कर्म करनेके लिये आपकी सेनाकी ओर बढ़े ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पार्थापयाने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका पलायनविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४२ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नकुल-सहदेवके साथ दुर्योधनका युद्ध, धृष्टद्युम्नसे दुर्योधनकी पराजय, कर्णद्वारा पाञ्चाल सेनासहित योद्धाओंका संहार, भीमसेनद्वारा कौरव योद्धाओंका सेनासहित विनाश, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका वध तथा अश्वत्थामाका अर्जुनके साथ घोर युद्ध करके पराजित होना

संजय उवाच

भीमसेनं सपाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाञ्चालों, चेदियों और

केकयोंसे घिरे हुए भीमसेनको स्वयं वैकर्तन कर्णने बाणोंद्वारा अवरुद्ध करके उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १ ॥

ततस्तु चेदिकारूषान् सृञ्जयांश्च महारथान्।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥

तदनन्तर समराङ्गणमें कर्णने भीमसेनके देखते-देखते चेदि, कारूष और सृंजय महारथियोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम्।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

तब भीमसेनने भी रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको छोड़कर जैसे आग घास-फूँसको जलाती है, उसी प्रकार कौरव-सेनाको दग्ध करनेके लिये उसपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान् केकयांस्तथा।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान् निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥

सूतपुत्र कर्णने समराङ्गणमें सहस्रों पाञ्चाल, केकय तथा सृंजय योद्धाओंको, जो महाधनुर्धर थे, मार डाला ॥ ४ ॥

संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥

अर्जुन संशप्तकोंकी, भीमसेन कौरवोंकी तथा कर्ण पाञ्चालों-की सेनामें घुसकर युद्ध करते थे। इन तीनों महारथियोंने बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डाला ॥ ५ ॥

ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥

अग्निके समान तेजस्वी इन तीनों वीरोंद्वारा दग्ध होते हुए क्षत्रिय समराङ्गणमें विनाशको प्राप्त हो रहे थे। राजन्! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब दुर्योधनने कुपित होकर नौ बाणोंसे नकुल तथा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ८ ॥

जनेश्वर! इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके पुत्रने एक क्षुरके द्वारा सहदेवकी सुवर्णमयी ध्वजा काट डाली॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः।
जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥

राजन्! तत्पश्चात् समर-भूमिमें आपके पुत्रको क्रोधमें भरे हुए नकुलने सात और सहदेवने पाँच बाण मारे ॥ ९ ॥

तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १० ॥

वे दोनों श्रेष्ठ वीर समस्त धनुर्धारियोंमें प्रधान थे। दुर्योधनने कुपित होकर उन दोनोंकी छातीमें पाँच-पाँच बाण मारे ॥ १० ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत।
यमयोः सहसा राजन् विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥ ११ ॥

राजन्! फिर सहसा उसने दो भल्लोंसे नकुल और सहदेवके धनुष काट डाले तथा उन दोनोंको भी इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ११ ॥

तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥ १२ ॥

फिर वे दोनों वीर इन्द्रधनुषके समान सुन्दर दूसरे श्रेष्ठ धनुष लेकर युद्धस्थलमें देवकुमारोंके समान सुशोभित होने लगे॥

ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् जैसे दो महामेघ किसी पर्वतपर जलकी वर्षा करते हों, उसी प्रकार दोनों वेगशाली बन्धु नकुल और सहदेव भाई दुर्योधनपर युद्धमें भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ १३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥

महाराज! तब आपके महारथी पुत्रने कुपित होकर उन दोनों महाधनुर्धर पाण्डुपुत्रोंको बाणोंद्वारा आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १४ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
आच्छादयन् दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा।

भारत! उस समय केवल उसका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी देता था और उससे चारों ओर छूटनेवाले बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको ढके हुए दृष्टिगोचर होते थे ॥ १५½ ॥

बाणभूते ततस्तस्मिन् संछन्ने च नभस्तले ॥ १६ ॥
यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम्।

उस समय जब आकाश आच्छादित होकर बाणमय हो रहा था, तब नकुल और सहदेवने आपके पुत्रका स्वरूप काल, अन्तक एवं यमराजके समान भयंकर देखा ॥ १६½ ॥

पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥ १७ ॥
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे।

आपके पुत्रका वह पराक्रम देखकर सब महारथी ऐसा मानने लगे कि माद्रीके दोनों पुत्र मृत्युके निकट पहुँच गये॥

ततः सेनापती राजन् पाण्डवस्य महारथः ॥ १८ ॥
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः।

राजन्! तब पाण्डव-सेनापति द्रुपदपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न जहाँ राजा दुर्योधन था, वहाँ जा पहुँचे ॥ १८½ ॥

माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥ १९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः।

महारथी शूरवीर माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको लाँघकर धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी मारसे आपके पुत्रको रोक दिया ॥

तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २० ॥
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन् पुरुषर्षभः ।

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्र पुरुष-रत्न दुर्योधनने हँसते हुए पचीस बाण मारकर धृष्टद्युम्न-को घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २१ ॥
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च ।

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्रने पैंसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २१½ ॥

तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ॥ २२ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ।

आर्य ! फिर राजा दुर्योधनने युद्धस्थलमें एक तीखे क्षुरप्रसे धृष्टद्युम्नके बाणसहित धनुष और दस्तानेको भी काट दिया ॥ २२½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ॥ २३ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर वेगपूर्वक दूसरा धनुष हाथमें ले लिया, जो भार सहनेमें समर्थ और नवीन था ॥ २३½ ॥

प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद् रुधिरेक्षणः ॥ २४ ॥
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।

उस समय उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। सारे शरीरमें घाव हो रहे थे; अतः वे महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न वेगसे जलते हुए अग्निदेवके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४½ ॥

स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव ॥ २५ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत् ।

धृष्टद्युम्नने भरतश्रेष्ठ दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसके ऊपर फुफकारते हुए सर्पोंके समान पंद्रह नाराच छोड़े॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
विविशुर्वसुधां वेगात् कङ्कबर्हिणवाससः ।

शिलापर तेज किये हुए कङ्क और मयूरके पंखोंसे युक्त वे बाण राजा दुर्योधनके सुवर्णमय कवचको छेदकर बड़े वेगसे पृथ्वीमें समा गये ॥ २६½ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ॥ २७ ॥
वसन्तकाले सुमहान् प्रफुल्ल इव किंशुकः ।

महाराज ! उस समय अत्यन्त घायल हुआ आपका पुत्र वसन्त ऋतुमें खिले हुए महान् पलाश वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २७½ ॥

सच्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

उसका कवच कट गया था और शरीर नाराचोंके प्रहारसे जर्जर कर दिया गया था। उस अवस्थामें उसने कुपित होकर एक भल्लसे धृष्टद्युम्नके धनुषको काट डाला ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥ २९ ॥
सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

राजन् ! धनुष कट जानेपर धृष्टद्युम्नकी दोनों भौहोंके मध्य-भागमें राजा दुर्योधनने तुरंत ही दस बाणोंका प्रहार किया ॥

तस्य तेऽशोभयन् वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥ ३० ॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद् भ्रमरा मधुलिप्सवः ।

कारीगरके द्वारा साफ किये गये वे बाण धृष्टद्युम्नके मुखकी ऐसी शोभा बढ़ाने लगे, मानो मधुलोभी भ्रमर प्रफुल्ल कमल-पुष्पका रसास्वादन कर रहे हों ॥ ३०½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३१ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

महामना धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर बड़े वेगसे दूसरा धनुष और सोलह भल्ल हाथमें ले लिये ॥ ३१½ ॥

ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ।

उनमेंसे पाँच भल्लोंद्वारा दुर्योधनके सारथि और घोड़ों-को मारकर एक भल्लसे उसके सुवर्ण-भूषित धनुषको काट डाला ॥ ३२½ ॥

रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥ ३३ ॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।

तत्पश्चात् दस भल्लोंसे द्रुपदकुमारने आपके पुत्रके सब सामग्रियोंसहित रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वज काट दिये ॥ ३३½ ॥

तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥ ३४ ॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।

समस्त राजाओंने देखा कि कुरुराज दुर्योधनका सोनेके अङ्गदोंसे विभूषित नाग-चिह्नयुक्त विचित्र, मणिमय एवं सुन्दर ध्वज कटकर धराशायी हो गया है ॥ ३४½ ॥

दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥ ३५ ॥
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें जिसके कवच और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये थे, उस रथहीन दुर्योधनकी उसके सगे भाई सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ ३५½ ॥

तमारोप्य रथे राजन् दण्डधारो नराधिपम् ॥ ३६ ॥
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।

राजन् ! इसी समय दण्डधार धृष्टद्युम्नके देखते-देखते राजा दुर्योधनको अपने रथपर बिठाकर बिना किसी घबराहटके रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ ३६½ ॥

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ॥ ३७ ॥
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।

राजा दुर्योधनका हित चाहनेवाला महाबली कर्ण सात्यकिको परास्त करके रणभूमिमें भयंकर बाण धारण करनेवाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नके सामने गया ॥ ३७½ ॥

तं पृष्ठतोऽभ्ययात् तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः ॥ ३८ ॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः ।

उस समय शिनिपौत्र सात्यकि अपने बाणोंसे कर्णको पीड़ा देते हुए तुरंत उसके पीछे-पीछे गये, मानो कोई गजराज अपने दोनों दाँतोंसे दूसरे गजराजकी जाँघोंमें चोट पहुँचाता हुआ उसका पीछा कर रहा हो ॥ ३८½ ॥

स भारत महानासीद् योधानां सुमहात्मनाम् ॥ ३९ ॥
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः ।

भारत ! कर्ण और धृष्टद्युम्नके बीचमें खड़े हुए आपके महामनस्वी योद्धाओंका पाण्डव-सैनिकोंके साथ महान् संग्राम हुआ ॥

न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित् पराङ्मुखः ॥ ४० ॥
प्रत्यदृश्यत् ततः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।

उस समय पाण्डवों तथा हमलोगोंमें-से कोई भी योद्धा युद्धसे मुँह फेरकर पीछे हटता नहीं दिखायी दिया । तब कर्णने तुरंत ही पाञ्चालोंपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥ ४१ ॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन् मध्यगतेऽहनि ।

नरश्रेष्ठ नरेश्वर ! मध्याह्नकी उस वेलामें दोनों पक्षोंके हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार होने लगा ॥ ४१½ ॥

पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥ ४२ ॥
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।

महाराज ! विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाञ्चाल योद्धा कर्णपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे पक्षी वृक्षकी ओर उड़े जाते हैं ॥ ४२½ ॥

तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान् मनस्विनः ॥ ४३ ॥
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् ।

अधिरथपुत्र कर्ण कुपित हो विजयके लिये प्रयत्नशील, मनस्वी एवं अग्रगामी वीरोंको मानो चुन-चुनकर बाण-समूहोंद्वारा मारने लगा ॥ ४३½ ॥

व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥ ४४ ॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।

वह व्याघ्रकेतु, सुशर्मा[1], चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान और दुर्जय वीर सिंहसेनपर जा चढ़ा ॥ ४४½ ॥

ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५ ॥
सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ।

उन सभी वीरोंने रथ-मार्गसे आकर युद्धभूमिमें शोभा पाने तथा कुपित होकर बाणोंकी वर्षा करनेवाले नरश्रेष्ठ कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

युध्यमानांस्तु तान् दूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः ।

नरेन्द्र ! प्रतापी राधापुत्र कर्णने दूरसे युद्ध करनेवाले उन आठों वीरोंको आठ पैने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४६½ ॥

अथापरान् महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४७ ॥
जघान बहुसाहस्रान् योधान् युद्धविशारदान् ।

महाराज ! तदनन्तर प्रतापी सूतपुत्रने कई हजार युद्धकुशल योद्धाओंको मार डाला ॥ ४७½ ॥

जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥ ४८ ॥
दण्डं च राजन् समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् ।
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥ ४९ ॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।

राजन् ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें जिष्णु, जिष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान तथा महारथी शलभ—इन चेदिदेशीय महारथियोंका संहार कर डाला ॥ ४८-४९½ ॥

तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५० ॥
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ।

इन वीरोंके प्राण लेते समय रक्तसे भीगे अङ्गोंवाले सूतपुत्र कर्णका शरीर प्राणियोंका संहार करनेवाले भगवान् रुद्रके विशाल शरीरकी भाँति देदीप्यमान हो रहा था ॥ ५०½ ॥

तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥ ५१ ॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ।

भारत ! वहाँ कर्णके बाणोंसे घायल हुए हाथी विशाल सेनाको व्याकुल करते हुए भयभीत हो चारों ओर भागने लगे ॥

निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥ ५२ ॥
कुर्वन्तो विविधान् नादान् वज्रनुन्ना इवाचलाः ।

कर्णके बाणोंसे आहत होकर समराङ्गणमें नाना प्रकारके आर्तनाद करते हुए वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ ५२½ ॥

गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥ ५३ ॥
रथैश्चाधिरथेर्मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी ।

सूतपुत्र कर्णके रथके मार्गमें सब ओर गिरते हुए हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और रथोंके द्वारा वहाँ सारी पृथ्वी पट गयी थी ॥

नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः ॥ ५४ ॥
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।

कर्णने उस समय रणभूमिमें जैसा पराक्रम किया था, वैसा न तो भीष्म, न द्रोणाचार्य और न आपके दूसरे कोई योद्धा ही कर सके थे ॥ ५४½ ॥

---

१. संशप्तकोंके सेनापति त्रिगर्तराज सुशर्मा कौरवोंके पक्षमें था । यह सुशर्मा उससे भिन्न पाण्डव-पक्षका योद्धा था ।

सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५ ॥
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत्।

महाराज! सूतपुत्रने हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल मनुष्योंके दलमें घुसकर बड़ा भारी संहार मचा दिया था ॥

मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत्।

जैसे सिंह मृगोंके झुंडमें निर्भय विचरता दिखायी देता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंकी सेनामें निर्भीकके समान विचरण करता था ॥ ५६½ ॥

यथा मृगगणांस्त्रस्तान् सिंहो द्रावयते दिशः ॥ ५७ ॥
पञ्चालानां रथव्रातान् कर्णो व्यद्रावयत् तथा।

जैसे भयभीत हुए मृगसमूहोंको सिंह सब ओर खदेड़ता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंके रथसमूहोंको भगा रहा था ॥

सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित्॥ ५८॥
तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः।

जैसे मृग सिंहके मुखके समीप पहुँचकर जीवित नहीं बचते, उसी प्रकार पाञ्चाल महारथी कर्णके निकट पहुँचकर जीवित नहीं रह पाते थे ॥ ५८½ ॥

वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः ॥ ५९ ॥
कर्णाग्निना रणे तद्वद् दग्धा भारत सृञ्जयाः।

भरतनन्दन! जैसे जलती आगमें पड़ जानेपर सभी मनुष्य दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार सृंजय-सैनिक रणभूमिमें कर्णरूपी अग्निसे जलकर भस्म हो गये ॥ ५९½ ॥

कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥ ६० ॥
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसम्मताः।

भारत! कर्णने चेदि, केकय और पाञ्चाल योद्धाओंमेंसे बहुत-से शूरसम्मत रथियोंको नाम सुनाकर मार डाला ॥

मम चासीन्मती राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१॥
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन् पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि।
पञ्चालान् व्यधमत् संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः॥ ६२॥

राजन्! कर्णका पराक्रम देखकर मेरे मनमें यही निश्चय हुआ कि युद्धस्थलमें एक भी पाञ्चाल योद्धा सूतपुत्रके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता; क्योंकि सूतपुत्र बारंबार युद्धस्थलमें पाञ्चालोंका ही विनाश कर रहा था ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६३ ॥

उस महासमरमें कर्णको पाञ्चालोंका संहार करते देख धर्मराज युधिष्ठिरने अत्यन्त कुपित होकर उसपर धावा बोल दिया ॥ ६३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६४ ॥

आर्य! धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे सैकड़ों मनुष्य शत्रुनाशक राधापुत्र कर्णको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥

शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५ ॥
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६६ ॥

शिखण्डी, सहदेव, नकुल, शतानीक, जनमेजय, सात्यकि तथा बहुत-से प्रभद्रकगण—ये सभी अमिततेजस्वी वीर युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके आगे होकर बाण बरसानेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए विचरने लगे ॥

तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान्।
एको बहूनभ्यपतद् गरुत्मान् पन्नगानिव ॥ ६७ ॥

सूतपुत्रने समराङ्गणमें अकेला होनेपर भी जैसे गरुड़ अनेक सर्पोंपर एक साथ आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार बहुसंख्यक चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥

तैः कर्णस्याभवद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते।
तादृग् यादृक् पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥ ६८ ॥

प्रजानाथ! उन सबके साथ कर्णका वैसा ही भयानक युद्ध हुआ, जैसा पूर्वकालमें देवताओंका दानवोंके साथ हुआ था ॥ ६८ ॥

तान् समेतान् महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥ ६९ ॥

जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण अन्धकार-राशिको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार एक ही कर्णने ढेर-के-ढेर बाण-वर्षा करनेवाले उन समस्त महाधनुर्धरोंको बिना किसी व्यग्रताके नष्ट कर दिया॥

भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह।
सर्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः।
बाह्लीकान् केकयान् मत्स्यान् वासात्यान् मद्रसैन्धवान्
एकः संख्ये महेष्वासो योधयन् बह्वशोभत।

जिस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डवोंके साथ उलझा हुआ था, उसी समय महाधनुर्धर भीमसेन क्रोधमें भरकर यमदण्डके समान भयंकर बाणोंद्वारा बाह्लीक, केकय, मत्स्य, वसातीय, मद्र तथा सिंधुदेशीय सैनिकोंका सब ओरसे संहार कर रहे थे। वे युद्धभूमिमें अकेले ही इन सबके साथ युद्ध करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ७०½ ॥

तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥ ७१ ॥
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम्।

वहाँ भीमसेनके नाराचोंद्वारा मर्मस्थानोंमें घायल हुए हाथी सवारोंसहित धराशायी हो इस पृथ्वीको कम्पित कर देते थे ॥

वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥ ७२ ॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु।

जिनके सवार मारे गये थे, वे घोड़े और पैदल सैनिक भी युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न हो मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन करते हुए प्राणशून्य होकर पड़े थे ॥ ७२½ ॥

सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः ॥ ७३ ॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः ।

सहस्रों रथी रथसे नीचे गिरा दिये गये थे। उनके अस्त्र-शस्त्र भी गिर चुके थे। वे सब-के-सब क्षत-विक्षत हो भीमसेनके भयसे भीत एवं प्राणहीन दिखायी दे रहे थे ॥ ७३½ ॥

रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ॥ ७४ ॥
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत् ।

भीमसेनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदलों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशोंसे वहाँकी धरती आच्छादित हो गयी थी ॥ ७४½ ॥

तत् स्तम्भितमिवातिष्ठद् भीमसेनभयार्दितम् ॥ ७५ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम् ।
निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन् महारणे ॥ ७६ ॥

उस महासमरमें दुर्योधनकी सारी सेना भीमसेनके भयसे पीड़ित हो स्तब्ध-सी खड़ी थी। उत्साह-शून्य, घायल, निश्चेष्ट, भयंकर और अत्यन्त दीन-सी प्रतीत होती थी ॥ ७५-७६ ॥

प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात् सागरो नृप ।
तद्वत् तव बलं तद् वै निश्चलं समवस्थितम् ॥ ७७ ॥

नरेश्वर ! जिस समय ज्वार न उठनेसे जल स्वच्छ एवं शान्त हो, उस समय जैसे समुद्र निश्चल दिखायी देता है, उसी प्रकार आपकी सारी सेना निश्चेष्ट खड़ी थी ॥ ७७ ॥

मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात् प्रत्यवरोपितम् ।
अभवत् तव पुत्रस्य तत् सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥ ७८ ॥

यद्यपि आपके सैनिकोंमें क्रोध, पराक्रम और बलकी कमी नहीं थी तो भी उनका घमंड चूर-चूर हो गया था; इसलिये उस समय आपके पुत्रकी वह सारी सेना तेजोहीन-सी प्रतीत होती थी ॥ ७८ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७९ ॥
जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।

भरतश्रेष्ठ ! परस्पर मार खाती हुई वह सेना रक्तके प्रवाहमें डूबकर खूनसे लथपथ हो गयी थी और एक दूसरेकी चोट खाकर विनाशको प्राप्त हो रही थी ॥ ७९½ ॥

सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ८० ॥
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः ।

सूतपुत्र कर्ण रणभूमिमें कुपित हो पाण्डवसेनाको और भीमसेन कौरव-सैनिकोंको खदेड़ते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥ ८१ ॥
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान् बहून् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ८२ ॥

जब इस प्रकार अद्भुत दिखायी देनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था, उस समय दूसरी ओर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुन सेनाके मध्यभागमें बहुत-से संशप्तकोंका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णसे बोले— ॥ ८१-८२ ॥

प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ।
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥ ८३ ॥
अपारयन्तो मद्बाणान् सिंहशब्दं मृगा इव ।

'जनार्दन ! युद्ध करती हुई इस संशप्तक-सेनाके पाँव उखड़ गये हैं। ये संशप्तक महारथी अपने-अपने दलके साथ भागे जा रहे हैं। जैसे मृग सिंहकी गर्जना सुनकर हतोत्साह हो जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग मेरे बाणोंकी चोट सहन करनेमें असमर्थ हो गये हैं ॥ ८३½ ॥

दीर्यते च महत् सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥ ८४ ॥
हस्तिकक्ष्यो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः ।
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥ ८५ ॥

'उधर वह सृंजयोंकी विशाल सेना भी महासमरमें विदीर्ण हो रही है। श्रीकृष्ण ! वह हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त बुद्धिमान् कर्णका ध्वज दिखायी दे रहा है। वह राजाओंकी सेनाके बीच सानन्द विचरण कर रहा है ॥ ८४-८५ ॥

न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः ।
जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥ ८६ ॥

'जनार्दन ! आप तो जानते ही हैं कि कर्ण कितना बलवान् तथा पराक्रम प्रकट करनेमें समर्थ है। अतः रणभूमिमें दूसरे महारथी उसे जीत नहीं सकते हैं ॥ ८६ ॥

तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् ।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ॥ ८७ ॥
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते ।

'श्रीकृष्ण ! जहाँ यह कर्ण हमारी सेनाको खदेड़ रहा है, वहीं चलिये। रणभूमिमें संशप्तकोंको छोड़कर अब महारथी सूतपुत्रके ही पास रथ ले चलिये। 'मुझे यही ठीक जान पड़ता है अथवा आपको जैसा जँचे, वैसा कीजिये' ॥ ८७½ ॥

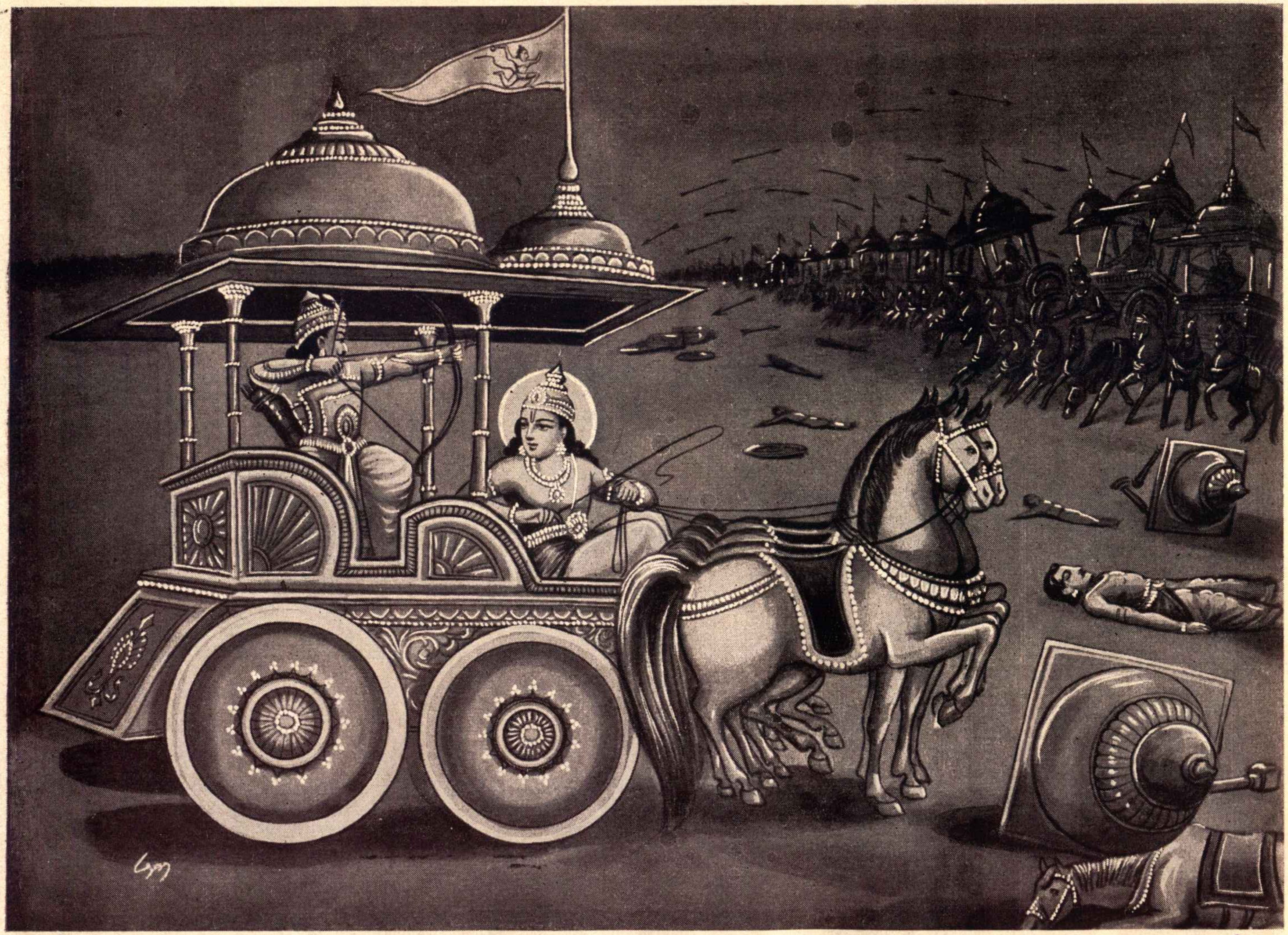
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥ ८८ ॥
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव ।

अर्जुनकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे हँसते हुए-से कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम शीघ्र ही कौरव-सैनिकोंका संहार करो' ॥ ८८½ ॥

ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ॥ ८९ ॥
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ।

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये हंसके समान श्वेत रंगवाले घोड़े श्रीकृष्ण और अर्जुनको लेकर आपकी विशाल सेनामें घुस गये ॥ ८९½ ॥

केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥ ९० ॥
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत ।



अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार

श्रीकृष्णद्वारा संचालित हुए उन सुवर्णभूषित श्वेत अश्वोंके प्रवेश करते ही आपकी सेनामें चारों ओर भगदड़ मच गयी ॥ ९०½ ॥

मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ॥ ९१ ॥
चलत्पताकस्तां सेनां विमानं द्यामिवाविशत्।

जैसे कोई विमान स्वर्गलोकमें प्रवेश कर रहा हो, उसी प्रकार चञ्चल पताकाओंसे युक्त वह कपिध्वज रथ मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर घोष करता हुआ उस सेनामें जा घुसा ॥

तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२ ॥
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती।

उस विशाल सेनाको विदीर्ण करके उसके भीतर प्रविष्ट हुए वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने महान् तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके मनमें शत्रुओंके प्रति क्रोध भरा हुआ था और उनकी आँखें रोषसे लाल हो रही थीं ॥ ९२½ ॥

युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम् ॥ ९३ ॥
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ।

जैसे यज्ञमें ऋत्विजोंद्वारा विधिपूर्वक आवाहन किये जानेपर दोनों अश्विनीकुमार नामक देवता पदार्पण करते हैं, उसी प्रकार युद्धनिपुण वे श्रीकृष्ण और अर्जुन भी मानो आह्वान किये जानेपर उस रणयज्ञमें पधारे थे ॥ ९३½ ॥

क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभूवतुः ॥ ९४ ॥
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने।

जैसे विशाल वनमें तालीकी आवाजसे कुपित हुए दो हाथी दौड़े आ रहे हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए वे दोनों पुरुषसिंह बड़े वेगसे बढ़े आ रहे थे ॥ ९४½ ॥

विगाह्य तु रथानीकमश्वसंघांश्च फाल्गुनः ॥ ९५ ॥
व्यचरत् पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः।

अर्जुन रथसेना और घुड़सवारोंके समूहमें घुसकर पाशधारी यमराजके समान कौरव-सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे ॥

तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥ ९६ ॥
संशप्तकगणान् भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत्।

भारत ! युद्धमें पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनको आपकी सेनामें घुसा हुआ देख आपके पुत्र दुर्योधनने पुनः संशप्तकगणोंको उनपर आक्रमण करनेके लिये प्रेरित किया ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥ ९७ ॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ॥ ९८ ॥
शूराणांलब्धलक्ष्याणां विदितानां समन्ततः।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं छादयन्तो महारथाः ॥ ९९ ॥
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम्।

महाराज ! तब एक हजार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े और लक्ष्य वेधनेमें निपुण, सर्वत्र विख्यात एवं शौर्यसम्पन्न दो लाख पैदल सैनिक साथ लेकर संशप्तक महारथी कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करते हुए उनपर चढ़ आये ॥ ९७–९९½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥ १०० ॥
दर्शयन् रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः।
निघ्नन् संशप्तकान् पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥ १०१ ॥

उस समय समराङ्गणमें उनके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शत्रुसैन्यसंहारक कुन्तीकुमार अर्जुन पाशधारी यमराजके समान अपना भयंकर रूप दिखाते और संशप्तकोंका वध करते हुए अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ १००-१०१ ॥

ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥ १०२ ॥

तदनन्तर किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए विद्युत्के समान प्रकाशमान सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा आच्छादित हो आकाश ठसाठस भर गया ॥ १०२ ॥

किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ १०३ ॥

प्रभो ! किरीटधारी अर्जुनकी भुजाओंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले बड़े-बड़े बाणोंसे आवृत होकर वहाँका सारा प्रदेश सर्पोंसे व्याप्त-सा प्रतीत हो रहा था ॥ १०३ ॥

रुक्मपुङ्खान् प्रसन्नाग्राञ्छरान् संनतपर्वणः।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥ १०४ ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें सुवर्णमय पङ्ख, स्वच्छ धार और झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १०४ ॥

मही वियद् दिशः सर्वाः समुद्रा गिरयोऽपि वा।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिःस्वनात् ॥ १०५ ॥

वहाँ सब लोग यही समझने लगे कि 'अर्जुनके तल-शब्द (हथेलीकी आवाज) से पृथ्वी, आकाश, सम्पूर्ण दिशाएँ समुद्र और पर्वत भी फटे जा रहे हैं ॥ १०५ ॥

हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात् ॥ १०६ ॥

महारथी कुन्तीकुमार अर्जुन सबके देखते-देखते दस हजार संशप्तक नरेशोंका वध करके तुरंत आगे बढ़ गये ॥

प्रत्यक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम्।
प्रममाथ बलं बाणैर्दानवानिव वासवः ॥ १०७ ॥

जैसे इन्द्रने दानवोंका विनाश किया था, उसी प्रकार अर्जुनने हमारी आँखोंके सामने काम्बोजराजके द्वारा सुरक्षित सेनाके पास पहुँचकर अपने बाणोंद्वारा उसका संहार कर डाला॥

प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम्।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत ॥ १०८ ॥

वे अपने भल्लके द्वारा आततायी शत्रुओंके शस्त्र, हाथ,

भुजा तथा मस्तकोंको बड़ी फुर्तीसे काट रहे थे ॥ १०८ ॥

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि।
विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥१०९॥

जैसे सब ओरसे उठी हुई आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने शरीरका एक-एक अवयव कट जानेसे वे शस्त्रहीन शत्रु भूतलपर गिर पड़ते थे ॥ १०९ ॥

हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान् निघ्नन्तमर्जुनम्।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥११०॥

तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके समूहोंका संहार करनेवाले अर्जुनपर काम्बोजराज सुदक्षिणका छोटा भाई अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥११०॥

तस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसंनिभौ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ॥१११॥

उस समय अर्जुनने बाण-वर्षा करनेवाले उस वीरकी परिघके समान मोटी और सुदृढ़ भुजाओंको दो अर्धचन्द्राकार बाणोंसे काट डाला और एक छुरेके द्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ १११ ॥

स पपात ततो वाहात् सुलोहितपरिस्रवः।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥११२॥

फिर तो वह रक्तका झरना-सा बहाता हुआ अपने वाहनसे नीचे गिर पड़ा, मानो मैनसिलके पहाड़का शिखर वज्रसे विदीर्ण होकर भूतलपर आ गिरा हो ॥ ११२ ॥

सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम्।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥११३॥
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा।

उस समय सब लोगोंने देखा कि सुदक्षिणका छोटा भाई काम्बोजदेशीय वीर जो देखनेमें अत्यन्त प्रिय, कमल-दलके समान नेत्रोंसे सुशोभित तथा सोनेके खम्भेके समान ऊँचा कदका था, मारा जाकर विदीर्ण हुए सुवर्णमय पर्वतके समान धरतीपर पड़ा है ॥ ११३½ ॥

ततोऽभवत् पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥११४॥
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युद्ध्यताम्।

तदनन्तर पुनः अत्यन्त घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा। वहाँ युद्ध करते हुए योद्धाओंकी विभिन्न अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं ॥ ११४½ ॥

एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥११५॥
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद् विशाम्पते।

प्रजानाथ ! एक-एक बाणसे मारे गये रक्तरंजित काबुली घोड़ों, यवनों और शकोंके खूनसे वह सारा युद्धस्थल लाल हो गया था ॥ ११५½ ॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥११६॥
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥११७॥

रथोंके घोड़े और सारथि, घोड़ोंके सवार, हाथियोंके आरोही, महावत और स्वयं हाथी भी मारे गये थे। महाराज ! इन सबने परस्पर प्रहार करके घोर जनसंहार मचा दिया था ॥

तस्मिन् प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥११८॥
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
आददानः शरान् घोरान् स्वरश्मीनिव भास्करः॥११९॥

उस युद्धमें जब सव्यसाची अर्जुनने शत्रुओंके पक्ष और प्रपक्ष दोनोंको मार गिराया, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाता और अपनी किरणोंको धारण करनेवाले सूर्यदेवके समान भयंकर बाण हाथमें लेता हुआ तुरंत विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके सामने आ पहुँचा ॥ ११८-११९ ॥

क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥१२०॥

उस समय क्रोध और अमर्षसे उसका मुँह खुला हुआ था, नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे तथा वह बलवान् अश्वत्थामा अन्तकालमें किङ्कर नामक दण्ड धारण करनेवाले कुपित यमराजके समान जान पड़ता था ॥ १२० ॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि संघशः।
तैर्विसृष्टैर्महाराज व्यद्रवत् पाण्डवी चमूः ॥१२१॥

महाराज ! तत्पश्चात् वह समूह-के-समूह भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके छोड़े हुए बाणोंसे व्यथित हो पाण्डवसेना भागने लगी ॥ १२१ ॥

स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥१२२॥

माननीय प्रजानाथ ! वह रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर ही पुनः उनके ऊपर भयानक बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १२२ ॥

तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥१२३॥

महाराज अश्वत्थामाके हाथोंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले उन बाणोंसे रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही ढक गये ॥ १२३ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे चक्रे माधवपाण्डवौ ॥१२४॥

तत्पश्चात् प्रतापी अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको युद्धस्थलमें निश्चेष्ट कर दिया ॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः ॥१२५॥

चराचर जगत्की रक्षा करनेवाले उन दोनों वीरोंको बाणोंसे आच्छादित हुआ देख स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी हाहाकार कर उठे ॥ १२५ ॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुस्ते समन्ततः।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥१२६॥

सिद्धों और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और यह चिन्तन करने लगे कि 'आज सम्पूर्ण जगत्का कल्याण हो' ॥ १२६ ॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः॥१२७॥

राजन्! समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंद्वारा आच्छादित करनेवाले अश्वत्थामाका जैसा पराक्रम उस दिन देखा गया, वैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥ १२७ ॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य निनदो यथा ॥१२८॥

महाराज! मैंने रणभूमिमें अश्वत्थामाके धनुषकी शत्रुओंको भयभीत कर देनेवाली टंकार बारंबार सुनी, मानो किसी सिंहके दहाड़नेकी आवाज हो रही हो ॥ १२८ ॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥१२९॥

जैसे मेघोंकी घटाके बीचमें बिजली चमकती है, उसी प्रकार युद्धमें दायें-बायें बाणवर्षापूर्वक विचरते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा भी प्रकाशित हो रही थी ॥ १२९ ॥

स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्ष्य तं द्रोणजं ततः ॥१३०॥
विक्रमं विहतं मेने आत्मनः स महायशाः।
तस्यास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दशम् ॥१३१॥

युद्धमें फुर्ती करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन द्रोणकुमारकी ओर देखकर भारी मोहमें पड़ गये और अपने पराक्रमको प्रतिहत हुआ मानने लगे। राजन्! उस समराङ्गणमें अश्वत्थामाके शरीरकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ १३०-१३१॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥१३२॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत्।

राजेन्द्र! इस प्रकार अश्वत्थामा और अर्जुनमें महान् युद्ध आरम्भ होनेपर जब महाबली द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्तीकुमार अर्जुनका पराक्रम मन्द पड़ने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १३२½ ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा ॥१३३॥
द्रौणिं ह्यपश्यत् संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।

राजन्! वे रोषसे लंबी साँस खींचते और अपने नेत्रोंद्वारा दग्ध-सा करते हुए युद्धस्थलमें अश्वत्थामा और अर्जुनकी ओर बारंबार देखने लगे ॥ १३३½ ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥१३४॥
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥१३५॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए श्रीकृष्ण उस समय अर्जुनसे प्रेमपूर्वक बोले—'पार्थ! युद्धस्थलमें तुम्हारा यह उपेक्षायुक्त अद्भुत बर्ताव देख रहा हूँ। भारत! आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुमसे सर्वथा बढ़ता जा रहा है ॥ १३४-१३५ ॥

कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव।
कच्चित् ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥१३६॥

'अर्जुन! तुम्हारी शारीरिक शक्ति पहलेके समान ही ठीक है न? अथवा तुम्हारी भुजाओंमें पूर्ववत् बल तो है न? तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष तो है न? और तुम रथपर ही खड़े हो न? १३६ ॥

कच्चित् कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥१३७॥

'क्या तुम्हारी दोनों भुजाएँ सकुशल हैं? तुम्हारी मुट्ठी तो ढीली नहीं हो गयी है? अर्जुन! मैं देखता हूँ कि युद्धस्थलमें अश्वत्थामा तुमसे बढ़ा जा रहा है ॥ १३७ ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥१३८॥

'भरतश्रेष्ठ! कुन्तीनन्दन! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा मानकर तुम इसके प्रति उपेक्षा-भाव न करो। यह समय उपेक्षा करनेका नहीं है' ॥ १३८ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥१३९॥
ध्वजं छत्रं पताकाश्च खड्गं शक्तिं गदां तथा।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥१४०॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने चौदह भल्ल हाथमें लेकर शीघ्रता करनेके अवसरपर फुर्ती दिखायी और अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला। साथ ही उसके ध्वज, छत्र, पताका, खड्ग, शक्ति और गदाके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तदनन्तर अश्वत्थामाके गलेकी हँसलीपर 'वत्सदन्त' नामक बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ १३९-१४० ॥

स मूर्च्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥१४१॥
अपोवाह रणात् सूतो रक्षमाणो धनंजयात्।

महाराज! उस आघातसे भारी मूर्छामें पड़कर अश्वत्थामा ध्वजदण्डके सहारे लुढ़क गया। शत्रुसे अत्यन्त पीड़ित एवं अचेत हुए अश्वत्थामाको उसका सारथि अर्जुनसे उसकी रक्षा करता हुआ रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ १४१½ ॥

एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥१४२॥
व्यहनत् तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ॥१४३॥

भारत ! इसी समय शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाके सैकड़ों और हजारों योद्धाओंको आपके वीर पुत्रके देखते-देखते मार डाला ॥ १४२-१४३ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह ।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥१४४॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप शत्रुओंके साथ आपके योद्धाओंका यह विनाशकारी, भयंकर एवं क्रूरतापूर्ण संग्राम हुआ ॥ १४४ ॥

संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः ।
वसुषेणश्च पञ्चालान् क्षणेन व्यधमद् रणे ॥१४५॥

उस समय रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमसेनने कौरवोंका और कर्णने पाञ्चालसैनिकोंका क्षणभरमें संहार कर डाला ॥ १४५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥१४६॥

राजन् ! जब बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भीषण संग्राम हो रहा था, उस समय चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १४६ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः ।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥१४७॥

भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें युधिष्ठिरपर बहुत अधिक प्रहार किये गये थे, जिससे उन्हें गहरी वेदना हो रही थी । वे रण-भूमिसे एक कोस दूर हटकर खड़े थे ॥ १४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन देना और अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा

संजय उवाच

दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ ।
अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दुर्योधन कर्णके पास जाकर मद्रराज शल्य तथा अन्य राजाओंसे बोला—।

यदृच्छयैतत् सम्प्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २ ॥

'कर्ण ! यह स्वर्गका खुला हुआ द्वाररूप युद्ध बिना इच्छाके अपने आप प्राप्त हुआ है। ऐसे युद्धको सुखी क्षत्रिय-गण ही पाते हैं ॥ २ ॥

सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युद्ध्यतां युधि ।
इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥

'राधानन्दन ! अपने समान बलवाले शूरवीर क्षत्रियोंके साथ रणभूमिमें जूझनेवाले शूरवीरोंको जो अभीष्ट होता है, वही यह संग्राम हमारे सामने उपस्थित है ॥ ३ ॥

हत्वा च पाण्डवान् युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ ।
निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥ ४ ॥

'तुम सब लोग युद्धस्थलमें पाण्डवोंका वध करके भूतल-का समृद्धिशाली राज्य प्राप्त करोगे अथवा शत्रुओंद्वारा युद्धमें मारे जाकर वीरगति पाओगे' ॥ ४ ॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः ।
हृष्टा नादानुदक्रोशन् वादित्राणि च सर्वशः ॥ ५ ॥

दुर्योधनकी वह बात सुनकर क्षत्रियशिरोमणि वीर हर्षमें भरकर सिंहनाद करने और सब प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥

ततः प्रमुदिते तस्मिन् दुर्योधनबले तदा ।
हर्षयंस्तावकान् योधान् द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर आनन्दमग्न हुई दुर्योधनकी उस सेनामें अश्वत्थामाने आपके योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥६॥

प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम् ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ७ ॥

'समस्त सैनिकोंके सामने आपलोगोंके देखते-देखते जिन्होंने हथियार डाल दिया था, उन मेरे पिताको धृष्टद्युम्नने मार गिराया था ॥ ७ ॥

स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद् वाक्यं मे निबोधत ॥ ८ ॥

'राजाओ ! उससे होनेवाले अमर्षके कारण तथा मित्र दुर्योधनके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं आपलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, आपलोग मेरी यह बात सुनिये ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम् ।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

'मैं धृष्टद्युम्नको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा ।' यदि यह मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जाय तो मुझे स्वर्गलोककी प्राप्ति न हो ॥ ९ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे ।
धृष्टद्युम्नस्य तं संख्ये निहनिष्यामि सायकैः ॥ १० ॥

'अर्जुन और भीमसेन आदि जो योद्धा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नकी रक्षा करेगा, उसे मैं युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा' ॥ १० ॥

एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारतीचमूः ।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः ॥ ११ ॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर सारी कौरवसेना एक साथ होकर कुन्तीपुत्रोंके सैनिकोंपर टूट पड़ी तथा पाण्डवोंने भी कौरवोंपर धावा बोल दिया ॥ ११ ॥

स संनिपातो रथयूथपानां
बभूव राजन्नतिभीमरूपः ।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः
प्रावर्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम् ॥ १२ ॥

राजन् ! रथयूथपतियोंका वह संघर्ष बड़ा भयंकर था । कौरवों और सृंजयोंके आगे प्रलयकालके समान जनसंहार आरम्भ हो गया था ॥ १२ ॥

ततः प्रवृत्ते युधि सम्प्रहारे
भूतानि सर्वाणि सदैवतानि ।
आसन् समेतानि सहाप्सरोभि-
र्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान् ॥ १३ ॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें जब भीषण मार-काट होने लगी, उस समय देवताओं तथा अप्सराओंसहित समस्त प्राणी उन नरवीरोंको देखनेकी इच्छासे एकत्र हो गये थे ॥ १३ ॥

दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान् ।
रणे स्वकर्मोद्वहतः प्रवीरा-
नवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः ॥ १४ ॥

रणभूमिमें अपने कर्मका ठीक-ठीक भार वहन करनेवाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ प्रमुख वीरोंपर हर्षमें भरी हुई अप्सराएँ दिव्य हारों, भाँति-भाँतिके सुगन्धित पदार्थों एवं नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंकी वर्षा करती थीं ॥ १४ ॥

समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्
सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान् ।
निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः
परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः ॥ १५ ॥

वायु उन सुगन्धोंको ग्रहण करके समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंकी सेवामें लग जाती थी और उस वायुसे सेवित योद्धा एक दूसरेको मारकर धराशायी हो जाते थे ॥ १५ ॥

सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा
सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः ।
नक्षत्रसंघैरिव चित्रिता द्यौः
क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा ॥ १६ ॥

दिव्य मालाओं तथा सुवर्णमय पंखवाले विचित्र बाणोंसे आच्छादित और श्रेष्ठ योद्धाओंसे विचित्र शोभाको प्राप्त हुई वह रणभूमि नक्षत्रसमूहोंसे चित्रित आकाशके समान सुशोभित हो रही थी ॥ १६ ॥

ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादै-
र्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः ।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः
समाकुलः सोऽभवत् सम्प्रहारः ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् आकाशसे भी साधुवाद एवं वाद्योंकी ध्वनि आने लगी, जिससे प्रत्यञ्चाकी टंकारों और रथोंके पहियोंके घर्घर शब्दोंसे युक्त वह संग्राम अधिक कोलाहलपूर्ण हो उठा था ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञाविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरके पास चलनेका आग्रह तथा श्रीकृष्णका उन्हें युद्धभूमि दिखाते और वहाँका समाचार बताते हुए रथको आगे बढ़ाना

संजय उवाच

एवमेष महानासीत् संग्रामः पृथिवीक्षिताम् ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार अर्जुन, कर्ण एवं पाण्डुपुत्र भीमसेनके कुपित होनेपर राजाओंका वह संग्राम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा ॥ १ ॥

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान् महारथान् ।
अब्रवीदर्जुनो राजन् वासुदेवमिदं वचः ॥ २ ॥

नरेश्वर ! द्रोणपुत्र तथा अन्यान्य महारथियोंको हराकर और उनपर विजय पाकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम् ।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान् ॥ ३ ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! देखिये, वह पाण्डवसेना भागी जा रही है तथा कर्ण समराङ्गणमें बड़े-बड़े महारथियोंको कालके गालमें भेज रहा है ॥ ३ ॥

न च पश्यामि दाशार्हं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते ॥ ४ ॥

'दाशार्ह ! इस समय मुझे धर्मराज युधिष्ठिर नहीं दिखायी दे रहे हैं । योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! धर्मराजके ध्वजका भी दर्शन नहीं हो रहा है ॥ ४ ॥

त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन ।

न च मां धार्तराष्ट्रेषु कश्चिद् युध्यति संयुगे ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! इस सम्पूर्ण दिनके ये तीन भाग ही शेष रह गये हैं। दुर्योधनकी सेनाओंमेंसे कोई भी मेरे साथ युद्ध नहीं कर रहा है ॥ ५ ॥

तस्मात् त्वं मत्प्रियं कुर्वन् याहि यत्र युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६ ॥
पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे।

'अतः आप मेरा प्रिय करनेके लिये वहीं चलिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर हैं। वार्ष्णेय ! भाइयोंसहित धर्मपुत्र युधिष्ठिरको युद्धमें सकुशल देखकर मैं पुनः समराङ्गणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ ६½ ॥

ततः प्रायाद् रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः ॥ ७ ॥
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः।

तदनन्तर अर्जुनके कथनानुसार श्रीकृष्ण तुरंत ही रथके द्वारा उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर और संजय महारथी मौजूद थे ॥ ७½ ॥

अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥
ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वे मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निमित्त बनाकर आपके योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे। तदनन्तर जहाँ वह भारी जनसंहार हो रहा था, उस संग्रामभूमिको देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण सव्यसाची अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥८-९॥

पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ १० ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, दुर्योधनके कारण भरतवंशियोंका तथा भूमण्डलके अन्य क्षत्रियोंका महाभयंकर विनाश हो रहा है ॥ १० ॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्।
मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन ! देखो, मरे हुए धनुर्धरोंके ये सोनेके पृष्ठभागवाले धनुष और बहुमूल्य तरकस फेंके पड़े हैं ॥ ११ ॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः।
तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तान् पन्नगानिव ॥ १२ ॥

'सुवर्णमय पंखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले बाण तथा तेलमें धोये हुए नाराच केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ १२ ॥

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान्।
वर्माणि चापविद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३ ॥

'भारत ! हाथीके दाँतकी बनी हुई मूँठवाले सुवर्णजटित खड्ग तथा स्वर्णभूषित कवच भी फेंके पड़े हैं ॥ १३ ॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषणाः।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ १४ ॥

'देखो, ये सुवर्णमय प्रास, स्वर्ण-भूषित शक्तियाँ तथा सोनेके बने हुए पत्रोंसे मढ़ी हुई विशाल गदाएँ पड़ी हैं॥१४॥

जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषणान्।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ १५ ॥

'स्वर्णमयी ऋष्टि, हेमभूषित पट्टिश तथा सुवर्णजटित दण्डोंसे युक्त फरसे फेंके हुए हैं ॥ १५ ॥

अयःकुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान् परिघांस्तथा ॥ १६ ॥

'लोहेके कुन्त (भाले), भारी मुसल, विचित्र शतघ्नियाँ और विशाल परिघ इधर-उधर पड़े हैं ॥ १६ ॥

चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥ १७ ॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः।

'इस महासमरमें फेंके गये इन चक्रों और तोमरोंको भी देखो। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली योद्धा नाना प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें लिये हुए ही अपने प्राण खो बैठे हैं; तथापि जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ १७½ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥ १८ ॥
गजवाजिरथक्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः।

'देखो, सहस्रों योद्धाओंके शरीर गदाओंके आघातसे चूर-चूर हो रहे हैं। मुसलोंकी मारसे उनके मस्तक फट गये हैं तथा हाथी, घोड़े एवं रथोंसे वे कुचल दिये गये हैं॥१८½॥

मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ १९ ॥
परिघैरायसैर्घोरैरयःकुन्तैः परश्वधैः।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ २० ॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः।

'शत्रुसूदन ! बाण, शक्ति, ऋष्टि, पट्टिश, लोहमय परिघ, भयंकर लोहनिर्मित कुन्त और फरसोंसे मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके बहु-संख्यक शरीर छिन्न-भिन्न होकर खूनसे लथपथ और प्राणशून्य हो गये हैं और उनके द्वारा रणभूमि आच्छादित दिखायी देती है ॥ १९-२०½ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥ २१ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी।

'भारत ! चन्दनचर्चित, अङ्गदों और केयूरोंसे अलंकृत, सोनेके अन्य आभूषणोंसे विभूषित तथा दस्तानोंसे युक्त वीरोंकी कटी हुई भुजाओंसे युद्धभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥ २२ ॥
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम्।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ २३ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुंधरा।

'साँडके समान विशाल नेत्रोंवाले वेगशाली वीरोंके दस्तानों-

सहित आभूषण-भूषित हाथ कटकर गिरे हैं। हाथियोंके शुण्ड-दण्डोंके समान मोटी जाँघें खण्डित होकर पड़ी हैं तथा श्रेष्ठ चूड़ामणि धारण किये कुण्डल-मण्डित मस्तक भी धड़से अलग होकर पड़े हैं। इन सबके द्वारा रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ २२-२३½ ॥

कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः ॥ २४ ॥
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः ।

'भरतश्रेष्ठ ! जिनकी गर्दन कट गयी है, विभिन्न अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं तथा जो खूनसे लथपथ होकर लाल दिखायी देते हैं, उन कबन्धों (धड़ों) से रणभूमि ऐसी जान पड़ती है, मानो वहाँ जगह-जगह बुझी हुई लपटोंवाले आगके अङ्गारे पड़े हों ॥ २४½ ॥

रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ २५ ॥
वाजिनश्च हतान् पश्य निष्कीर्णान्त्राञ्शराहतान् ।

'देखो, जिनमें सोनेकी छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर रथ टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े हैं। वे बाणोंसे घायल हुए घोड़े मरे पड़े हैं और उनकी आँतें बाहर निकल आयी हैं ॥ २५½ ॥

अनुकर्षानुपासंगान् पताका विविधध्वजान् ॥ २६ ॥
रथिनां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।

'अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज तथा रथियोंके बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख बिखरे पड़े हैं ॥ २६½ ॥

निरस्तजिह्वान् मातङ्गाञ्शयानान् पर्वतोपमान् ॥२७॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः ।

'जिनकी जीभें बाहर निकल आयी हैं, ऐसे अगणित पर्वताकार हाथी धरतीपर सदाके लिये सो गये हैं। विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ खण्डित होकर पड़ी हैं तथा हाथी और घोड़े मारे गये हैं ॥ २७½ ॥

वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान् ॥ २८ ॥
विपाटितविचित्रांश्च रूप्यचित्रान् कुथाङ्कशान् ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा महद्भिः पतितैर्गजैः ॥ २९ ॥

'हाथियोंके विचित्र झूल, मृगचर्म और कम्बल चिथड़े-चिथड़े होकर गिरे हैं। चाँदीके तारोंसे चित्रित झूल, अङ्कुश और अनेक टुकड़ोंमें बँटे हुए बहुत-से घंटे महान् गजराजों-के साथ ही धरतीपर गिरे पड़े हैं ॥ २८-२९ ॥

वैदूर्यदण्डांश्च शुभान् पतितानङ्कुशान् भुवि ।
बद्धाः सादिभुजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कशाः ॥ ३० ॥

'जिनमें वैदूर्यमणिके डंडे लगे हुए हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर अङ्कुश पृथ्वीपर पड़े हैं। सवारोंके हाथोंमें सटे हुए कितने ही सुवर्णनिर्मित कोड़े कटकर गिरे हैं ॥ ३० ॥

विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ।
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि॥ ३१ ॥

'विचित्र मणियोंसे जटित और सोनेके तारोंसे विभूषित रङ्कुमृगके चमड़ेके बने हुए, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जाने-वाले बहुत-से झूल भूमिपर पड़े हैं ॥ ३१ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ३२ ॥

'नरपतियोंके मणिमय मुकुट, विचित्र स्वर्णमय हार, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ३२ ॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
कॢप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ३३ ॥
वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम् ।

'देखो, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान्, मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित तथा दाढ़ी-मूँछसे युक्त वीरोंके आभूषण-भूषित मुखोंसे रणभूमि अत्यन्त आच्छादित हो गयी है और इसपर रक्तकी कीच जम गयी है ॥ ३३½ ॥

सजीवांश्चापरान् पश्य कूजमानान् समन्ततः ॥ ३४ ॥
उपास्यमानान् बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते ।
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥

'प्रजापालक अर्जुन ! उन दूसरे योद्धाओंपर दृष्टिपात करो, जिनके प्राण अभीतक शेष हैं और जो चारों ओर कराह रहे हैं। उनके बहुसंख्यक कुटुम्बी जन हथियार डालकर उनके निकट आ बैठे हैं और बारंबार रो रहे हैं ॥

व्युत्क्रान्तानपरान् योधांश्छादयित्वा तरस्विनः ।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३६ ॥

'जिनके प्राण निकल गये हैं, उन योद्धाओंको वस्त्र आदिसे ढककर विजयाभिलाषी वेगशाली वीर पुनः अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये जा रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः ।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् ॥ ३७ ॥

'दूसरे बहुत-से सैनिक रणभूमिमें गिरे हुए अपने शूरवीर कुटुम्बी जनोंके पानी माँगनेपर वहीं इधर-उधर दौड़ रहे हैं॥

जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन ।
संनिवृत्ताश्च ते शूरास्तान् वै दृष्ट्वा विचेतसः ॥ ३८॥
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् ।

'अर्जुन ! कितने ही योद्धा पानी लानेके लिये गये, इसी बीचमें पानी चाहनेवाले बहुत-से वीरोंके प्राण निकल गये। वे शूरवीर जब पानी लेकर लौटे हैं, तब अपने उन सम्बन्धियोंको चेतनारहित देखकर पानीको वहीं फेंक परस्पर चीखते-चिल्लाते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ ३८½ ॥

जलं पीत्वा मृतान् पश्य पिबतोऽन्यांश्च मारिष॥ ३९ ॥
परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान् बान्धवप्रियाः ।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे ॥ ४० ॥

'श्रेष्ठ वीर अर्जुन ! उधर देखो, कुछ लोग पानी पीकर

मर गये और कुछ लोग पीते-पीते ही अपने प्राण खो बैठे। कितने ही बान्धवजनोंके प्रेमी सैनिक अपने प्रिय बान्धवोंको छोड़कर उस महासमरमें जहाँ-तहाँ प्राण-शून्य हुए दिखायी देते हैं ॥ ३९-४० ॥

तथापरान् नरश्रेष्ठ संदष्टौष्ठपुटान् पुनः।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान् समन्ततः ॥ ४१ ॥

'नरश्रेष्ठ ! उन दूसरे योद्धाओंको देखो, जो दाँतोंसे ओठ चबाते हुए टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखोंद्वारा चारों ओर दृष्टिपात कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार बातें करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन उस महासमरमें राजाका दर्शन करनेके लिये उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥ ४२ ॥

याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत्।
तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥ ४३ ॥
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम्।
पश्य पाण्डव राजानमुपयातांश्च पार्थिवान् ॥ ४४ ॥

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बारंबार कहते थे, 'चलिये, चलिये'। भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनको युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए आगे बढ़े और धीरे-धीरे उनसे इस प्रकार बोले—'पाण्डुनन्दन ! देखो, राजाके पास बहुत-से भूपाल जा पहुँचे हैं ॥ ४३-४४ ॥

कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम्।
असौ भीमो महेष्वासः संनिवृत्तो रणं प्रति ॥ ४५ ॥

'उधर दृष्टिपात करो। कर्ण युद्धके महान् रङ्गमञ्चपर प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहा है और महाधनुर्धर भीमसेन युद्धस्थलकी ओर लौट पड़े हैं ॥ ४५ ॥

तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
पाञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥ ४६ ॥

'पाञ्चालों, सृञ्जयों और पाण्डवोंके जो धृष्टद्युम्न आदि प्रमुख वीर हैं, वे भी भीमसेनके साथ ही युद्धके लिये लौट रहे हैं ॥ ४६ ॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
कौरवान् द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥ ४७ ॥

'अर्जुन ! वह देखो, लौटे हुए पाण्डव योद्धाओंने शत्रुओंकी विशाल वाहिनीके पाँव उखाड़ दिये। भागते हुए कौरव-वीरोंको यह कर्ण रोक रहा है ॥ ४७ ॥

अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥ ४८ ॥

'कुरुनन्दन ! जो वेगमें यमराज और पराक्रममें इन्द्रके समान है, वह शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा उधर ही जा रहा है ॥ ४८ ॥

तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान् पश्य च सृञ्जयान् ॥ ४९ ॥

'महारथी धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें बड़े वेगसे जाते हुए अश्वत्थामाका ही पीछा कर रहे हैं। वह देखो, संग्राममें बहुत-से सृंजय वीर मार डाले गये' ॥ ४९ ॥

सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने।
ततो राजन् महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥ ५० ॥

राजन् ! अत्यन्त दुर्जय वीर भगवान् श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनसे ये सारी बातें बतायीं। तत्पश्चात् वहाँ अत्यन्त भयंकर महायुद्ध होने लगा ॥ ५० ॥

सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन् समागमे।
उभयोः सेनयो राजन् मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५१ ॥

नरेश्वर ! दोनों सेनाओंमें मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी अवधि नियत करके संघर्ष छिड़ गया और वीरोंके सिंहनाद होने लगे ॥ ५१ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते।
तावकानां परेषां च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ५२ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार इस भूतलपर आपकी और शत्रुओंकी सेनाओंका महान् संहार हुआ है। राजन् ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका ही फल है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वासुदेववाक्ये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें भगवान् श्रीकृष्णका वाक्यविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण तथा अर्जुनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा और अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर पुनः कौरव और सृंजय योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये। एक ओर युधिष्ठिर आदि पाण्डव-दलके लोग थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग ॥ १ ॥

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः।



श्रीकृष्ण आगे जाते हुए युधिष्ठिरको देखनेके लिये अर्जुनसे कह रहे हैं

कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २ ॥

उस समय कर्ण और पाण्डवोंका बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी संग्राम आरम्भ हुआ, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ २ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके ।
संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः ।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४ ॥

भारत ! जहाँ खून पानीके समान बहाया जाता था, उस भयंकर संग्रामके छिड़ जानेपर तथा थोड़े-से ही संशप्तक वीरोंके शेष रह जानेपर समस्त राजाओंसहित धृष्टद्युम्नने कर्णपर ही आक्रमण किया। महाराज ! अन्य पाण्डव महारथियोंने भी उन्हींका साथ दिया ॥ ३-४ ॥

आगच्छमानांस्तान् संख्ये प्रहृष्टान् विजयैषिणः ।
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें विजयकी अभिलाषा लेकर हर्ष और उल्लासके साथ आते हुए उन वीरोंको रणभूमिमें अकेले कर्णने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे जलके प्रवाहोंको पर्वत रोक देता है ॥

समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः ।
यथाचलं समासाद्य वार्योघाः सर्वतोदिशम् ॥ ६ ॥

कर्णके पास पहुँचकर वे सब महारथी बिखर गये, ठीक वैसे ही, जैसे जलके प्रवाह किसी पर्वतके पास पहुँचकर सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाते हैं ॥ ६ ॥

तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः ।
धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ७ ॥
ताडयामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

महाराज ! उस समय उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे राधापुत्र कर्णको चोट पहुँचायी और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ७½ ॥

विजयं च धनुः श्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥ ८ ॥
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान् ।
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥ ९ ॥

तब महारथी कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ धनुषको कम्पित करके धृष्टद्युम्नके धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंको भी काट डाला। फिर क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको भी घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः ।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥ १० ॥

निष्पाप नरेश ! वे बाण महामना धृष्टद्युम्नके सुवर्णनिर्मित कवचको छेदकर उनके रक्तसे रञ्जित हो इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ १० ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
अथान्यद् धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ११ ॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः संनतपर्वभिः ।

महारथी धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाण हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥

तथैव राजन् कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ १२ ॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः ।
द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार कर्णने भी समराङ्गणमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंद्वारा शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया। फिर द्रोणशत्रु महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने भी कर्णको पैने बाणोंसे घायल कर दिया ॥१२-१३॥

तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ १४ ॥

महाराज ! तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो धृष्टद्युम्नपर द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक सुवर्णभूषित बाण चलाया ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते ।
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ ! नरेश ! सहसा आते हुए उस भयंकर बाणके सात्यकिने सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति सौ टुकड़े कर डाले॥

दृष्ट्वा विनिहतं बाणं शरैः कर्णो विशाम्पते ।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १६ ॥

प्रजापालक नरेश ! सात्यकिके बाणोंसे अपने बाणको नष्ट हुआ देख कर्णने चारों ओरसे बाण बरसाकर सात्यकिको ढक दिया ॥ १६ ॥

विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः ।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥

साथ ही समराङ्गणमें सात नाराचोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया। तब सात्यकिने भी सुवर्णभूषित बाणोंसे कर्णको घायल करके बदला चुकाया ॥ १७ ॥

ततो युद्धं महाराज चक्षुःश्रोत्रभयानकम् ।
आसीद् घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः॥ १८ ॥

महाराज ! तब नेत्रोंसे देखने और कानोंसे सुननेपर भी भय उत्पन्न करनेवाला घोर एवं विचित्र युद्ध छिड़ गया, जो सब ओरसे देखने ही योग्य था ॥ १८ ॥

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत ।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! समरभूमिमें कर्ण और सात्यकिका वह कर्म देखकर समस्त प्राणियोंके रोंगटे खड़े हो गये ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात् सुमहाबलम् ।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २० ॥

इसी समय शत्रुओंके बल और प्राणोंका नाश करनेवाले शत्रुसूदन महाबली धृष्टद्युम्नके पास द्रोणकुमार अश्वत्थामा आ पहुँचा ॥ २० ॥

अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरंजयः।
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥

शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाला द्रोणपुत्र अश्वत्थामा वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त कुपित होकर बोला—'ब्रह्महत्या करनेवाले पापी ! खड़ा रह, खड़ा रह, आज तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२ ॥
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः।

ऐसा कहकर शीघ्रता करनेवाले प्रयत्नशील महारथी अश्वत्थामाने अत्यन्त तेज, घोर एवं पैने बाणोंद्वारा यथाशक्ति विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले वीर धृष्टद्युम्नको ढक दिया ॥

यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥

आर्य ! जैसे द्रोणाचार्य समरभूमिमें धृष्टद्युम्नको देखकर मन-ही-मन खिन्न हो उसे अपनी मृत्यु मानते थे, उसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न भी रणक्षेत्रमें अश्वत्थामाको देखकर अप्रसन्न हो उसे अपनी मृत्यु समझते थे॥

स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥

वे अपने आपको समरभूमिमें शस्त्रद्वारा अवध्य मानकर बड़े वेगसे अश्वत्थामाके सामने आये, मानो प्रलयके समय काल ही कालपर टूट पड़ा हो ॥ २५ ॥

द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम्।
क्रोधेन निःश्वसन् वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! वीर अश्वत्थामाने द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको सामने खड़ा देख क्रोधसे लंबी साँस खींचते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम्।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको देखते ही अत्यन्त क्रोधमें भर गये। प्रजानाथ ! फिर प्रतापी द्रोणपुत्रने बड़ी उतावलीके साथ अपने पास ही खड़े हुए धृष्टद्युम्नसे कहा—॥

पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २८ ॥
पापं हि यत् त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्।
अद्य त्वां तप्स्यते तद् वै यथा न कुशलं तथा ॥२९ ॥

'पाञ्चालकुल-कलङ्क ! आज मैं तुझे मौतके मुँहमें भेज दूँगा। तुमने पूर्वकालमें द्रोणाचार्यका वध करके जो पापकर्म किया है, वह एक अमङ्गलकारी कर्मकी भाँति आज तुझे संताप देगा ॥ २८-२९ ॥

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥

'ओ मूर्ख ! यदि तू अर्जुनसे अरक्षित रहकर युद्धभूमिमें खड़ा रहेगा, भाग नहीं जायगा तो अवश्य तुझे मार डालूँगा, यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ' ॥ ३० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे।

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर प्रतापी धृष्टद्युम्नने उससे इस प्रकार उत्तर दिया—'अरे ! तेरी इस बातका जवाब तुझे मेरी वही तलवार देगी, जिसने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले तेरे पिताको दिया था ॥ ३१½ ॥

यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात्।

'यदि मैंने नाममात्रके ब्राह्मण द्रोणाचार्यको पहले मार डाला था, तो इस समय पराक्रम करके तुझे भी मैं कैसे नहीं मार डालूँगा' ॥ ३२½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥
निशितेनातिबाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः।

महाराज ! ऐसा कहकर अमर्षशील सेनापति द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे बाणसे द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
आच्छादयद् दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया। राजन् ! उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३४½ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः।

महाराज ! उस समय सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होनेके कारण न तो आकाश दिखायी देता था, न दिशाएँ दीखती थीं और न सहस्रों योद्धा ही दृष्टिगोचर होते थे ॥ ३५½ ॥

तथैव पार्षतो राजन् द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः।

राजन् ! उसी प्रकार युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाको धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते बाणोंसे ढक दिया ॥

राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥
द्रौपदेयान् युधामन्युं सात्यकिं च महारथम्।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३८ ॥

महाराज ! सब ओरसे दर्शनीय राधापुत्र कर्णने भी

पाण्डवोंसहित पाञ्चालों, द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, युधामन्यु और महारथी सात्यकिको अकेले ही आगे बढ़नेसे रोक दिया था ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ३९ ॥
वेगवान् समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ॥ ४० ॥
हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद् व्यधमच्छरैः ।

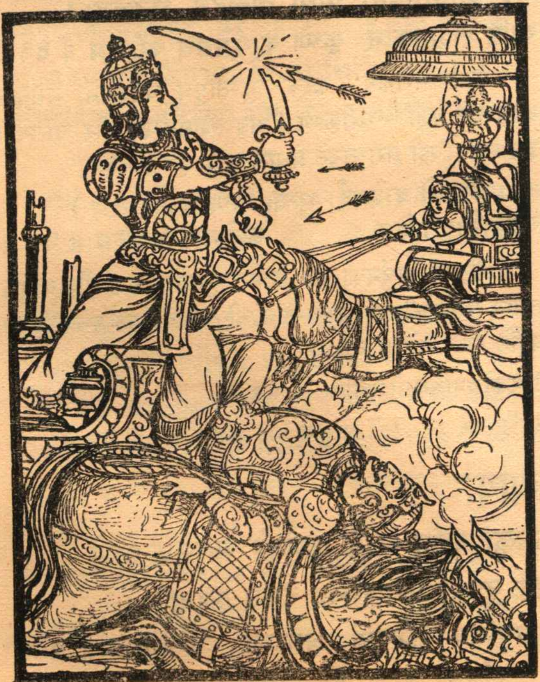
धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला । राजेन्द्र ! तब वेगवान् अश्वत्थामाने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर उनके द्वारा पलक मारते-मारते धृष्टद्युम्नके धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, अश्व, सारथि एवं रथको तहस-नहस कर दिया ॥ ३९-४०½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ४१ ॥
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने विशाल खड्ग और सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकती हुई ढाल हाथमें ले ली ॥ ४१½ ॥

द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥ ४२ ॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४३ ॥

राजेन्द्र ! शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले सुदृढ़ आयुध-धारी वीर महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें अनेक भल्लों-द्वारा रथसे उतरनेके पहले ही धृष्टद्युम्नकी उस ढाल-तलवारको भी काट दिया । वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४२-४३ ॥



धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥ ४४ ॥
नाशकद् भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः ।

भरतश्रेष्ठ ! यद्यपि धृष्टद्युम्न रथहीन हो गये थे, उनके घोड़े मारे जा चुके थे, धनुष कट गया था तथा वे बाणोंसे बारंबार घायल और अस्त्र-शस्त्रोंसे जर्जर हो गये थे तो भी महारथी अश्वत्थामा लाख प्रयत्न करनेपर भी उन्हें मार न सका ॥ ४४½ ॥

तस्यान्तमिषुभी राजन् यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥ ४५ ॥
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽभ्यगात् ।

राजन् ! जब वीर द्रोणकुमार बाणोंद्वारा उनका वध न कर सका, तब वह धनुष फेंककर तुरंत ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा ॥ ४५½ ॥

आसीदाप्लवतो वेगस्तस्य राजन् महात्मनः ॥ ४६ ॥
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ।

नरेश्वर ! रथसे उछलकर दौड़ते हुए महामना अश्वत्थामा-का वेग बहुत बड़े सर्पको पकड़नेके लिये झपटे हुए गरुड़के समान प्रतीत हुआ ॥ ४६½ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति ।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ॥ ४८ ॥

इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! वह देखो, द्रोणकुमार अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये कैसा महान् प्रयत्न कर रहा है ? वह इन्हें मार सकता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४७-४८ ॥

तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥ ४९ ॥

'महाबाहो ! शत्रुसूदन ! जैसे कोई मौतके मुखमें पड़ गया हो, उसी प्रकार अश्वत्थामाके मुखमें पहुँचे हुए धृष्टद्युम्न-को छुड़ाओ' ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत् तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ५० ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अपने घोड़ोंको उसी ओर हाँका, जहाँ द्रोणकुमार अश्वत्थामा खड़ा था ॥ ५० ॥

ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़े अश्वत्थामाके रथकी ओर इस प्रकार दौड़े, मानो आकाशको पीते जा रहे हों ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वाऽऽयातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन् महाबलः ॥ ५२ ॥

राजन् ! महापराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको आते देख महाबली अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये विशेष प्रयत्न करने लगा ॥ ५२ ॥

विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ५३ ॥

नरेश्वर ! धृष्टद्युम्नको खींचे जाते देख महाबली अर्जुनने अश्वत्थामापर बहुत-से बाण चलाये ॥ ५३ ॥

ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम्।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥

गाण्डीव धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए वे सुवर्ण-निर्मित बाण अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे सर्प बाँबीमें प्रवेश करते हैं ॥ ५४ ॥

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उत्सृज्य समरे राजन् पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनंजयशरार्दितः।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ५६ ॥

राजन् ! उन भयंकर बाणोंसे घायल हुआ प्रतापी वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समराङ्गणमें अमित बलशाली धृष्टद्युम्नको छोड़कर अपने रथपर जा चढ़ा। वह धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो चुका था; इसलिये उसने भी श्रेष्ठ धनुष हाथमें लेकर बाणोंद्वारा अर्जुनको घायल कर दिया ॥५५-५६॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें वीर सहदेव शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको अपने रथके द्वारा रणभूमिमें अन्यत्र हटा ले गये॥

अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५८ ॥

महाराज ! अर्जुनने भी अपने बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया। तब द्रोणपुत्रने अत्यन्त कुपित हो अर्जुनकी छाती और दोनों भुजाओंमें प्रहार किया ॥ ५८ ॥

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसम्मितम्।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

रणमें कुपित हुए कुन्तीकुमारने द्रोणपुत्रपर द्वितीय कालदण्डके समान साक्षात् कालस्वरूप नाराच चलाया ॥५९॥

ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६० ॥
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ।

महाराज ! वह महातेजस्वी नाराच उस ब्राह्मणके कंधेपर जा लगा। अश्वत्थामा युद्धस्थलमें उस बाणके वेगसे व्याकुल हो रथकी बैठकमें धम्म-से बैठ गया और अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥ ६०½ ॥

ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद् विजयं धनुः ॥ ६१ ॥
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२ ॥

राजराजेश्वर ! तत्पश्चात् कर्णने समराङ्गणमें कुपित हो अर्जुनकी ओर बारंबार देखते हुए विजयनामक धनुषकी टङ्कार की। वह महासमरमें अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्धकी अभिलाषा करता था ॥ ६१-६२ ॥

विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥ ६३ ॥

द्रोणकुमारको विह्वल देखकर उसका सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रथके द्वारा समराङ्गणसे दूर हटा ले गया ॥ ६३ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥ ६४ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नको संकटसे मुक्त और द्रोणपुत्रको पीड़ित देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाञ्चालोंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ६४ ॥

वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः।
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा संख्ये तदद्भुतम् ॥ ६५ ॥

उस समय सहस्रों दिव्य वाद्य बजने लगे। वे पाञ्चाल-सैनिक युद्धस्थलमें वह अद्भुत कार्य देखकर सिंहनाद करने लगे॥

एवं कृत्वाब्रवीत् पार्थो वासुदेवं धनंजयः।
याहि संशप्तकान् कृष्ण कार्यमेतत् परं मम ॥ ६६ ॥

ऐसा पराक्रम करके कुन्तीपुत्र धनंजयने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! अब संशप्तकोंकी ओर चलिये। इस समय यही मेरा सबसे प्रधान कार्य है' ॥ ६६ ॥

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम्।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनका वह कथन सुनकर मन और वायुके समान वेगशाली तथा अत्यन्त ऊँची पताकावाले रथके द्वारा वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाका पलायनविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये अर्जुनको उत्साहित करना तथा भीमसेनके दुष्कर पराक्रमका वर्णन करना

संजय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत्।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इसी समय भगवान्

श्रीकृष्णने अर्जुनको धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन कराते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥ २ ॥

'पाण्डुनन्दन! ये तुम्हारे भाई कुन्तीकुमार युधिष्ठिर हैं, जिन्हें मार डालनेकी इच्छासे महाबली महाधनुर्धर धृतराष्ट्र-पुत्र शीघ्रतापूर्वक इनका पीछा कर रहे हैं ॥ २ ॥

तं चानुयान्ति संरब्धाः पञ्चाला युद्धदुर्मदाः ।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥

'रणदुर्मद महाबली पाञ्चाल-सैनिक महात्मा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हुए बड़े रोष और आवेशमें भरकर उनके साथ जा रहे हैं ॥ ३ ॥

एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥ ४ ॥

'पार्थ! यह सम्पूर्ण जगत्‌का राजा दुर्योधन कवच धारण करके रथसेनाके साथ राजा युधिष्ठिरका पीछा कर रहा है ॥

जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह! जिनका स्पर्श विषधर सर्पोंके समान भयंकर है तथा जो सम्पूर्ण युद्ध-कलाओंमें निपुण हैं, उन भाइयोंके साथ बली दुर्योधन राजा युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे उनके पीछे लगा हुआ है ॥ ५ ॥

एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥

'जैसे याचक किसी श्रेष्ठ पुरुषको पाना चाहते हैं, उसी प्रकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित ये दुर्योधनके सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उनपर चढ़ाई करते हैं ॥ ६ ॥

पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धाधिष्ठिताः पुनः ।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवासकृत् ॥ ७ ॥

'देखो, जैसे अमृतका अपहरण करनेकी इच्छावाले दैत्योंको इन्द्र और अग्निने बारंबार रोका था, उसी प्रकार ये दुर्योधनके सैनिक सात्यकि और भीमसेनके द्वारा अवरुद्ध होकर पुनः खड़े हो गये हैं ॥ ७ ॥

एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम् ।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥

'जैसे वर्षाकालमें जलके प्रवाह अधिक होनेके कारण समुद्र-तक चले जाते हैं, उसी प्रकार ये कौरव महारथी बहुसंख्यक होनेके कारण पुनः बड़ी उतावलीके साथ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़े जा रहे हैं ॥ ८ ॥

नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान् ।
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥

'वे बलवान् और महाधनुर्धर कौरव सिंहनाद करते, शङ्ख बजाते और अपने धनुषोंको कँपाते हुए आगे बढ़ रहे हैं ॥

मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥

'मैं तो समझता हूँ कि इस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर दुर्योधनके अधीन हो मृत्युके मुखमें चले गये हैं अथवा प्रज्वलित अग्निकी आहुति बन गये हैं ॥ १० ॥

यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत सम्प्राप्तो बाणगोचरम् ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन! दुर्योधनकी सेनाका जैसा व्यूह दिखायी दे रहा है, उससे यह जान पड़ता है कि उसके बाणोंके मार्गमें आ जानेपर इन्द्र भी जीवित नहीं छूट सकते ॥ ११ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद् रणे ॥ १२ ॥

'क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान शीघ्रतापूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा करनेवाले वीर दुर्योधनका वेग इस युद्धमें कौन सह सकता है? ॥ १२ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् ॥ १३ ॥

'वीर दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कर्णके बाणोंका वेग पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकता है ॥ १३ ॥

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः ।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥

'कर्णने शत्रुओंको संताप देनेवाले, शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले, बलवान्, विद्वान् और युद्धकुशल राजा युधिष्ठिर-को युद्धसे विमुख कर दिया है ॥ १४ ॥

राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे ।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५ ॥

'धृतराष्ट्रके महाबली शूरवीर पुत्रोंके साथ रहकर राधा-पुत्र कर्ण रणभूमिमें पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरको अवश्य पीड़ा दे सकता है ॥ १५ ॥

तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संयतात्मनः ।
अन्यैरपि च पार्थस्य हतं वर्म महारथैः ॥ १६ ॥

'संग्राममें जूझते हुए संयतचित्त कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके कवचको इन दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रों तथा अन्य महारथियोंने नष्ट कर दिया है ॥ १६ ॥

उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः ॥ १७ ॥

'भरतकुलशिरोमणि राजा युधिष्ठिर उपवास करनेसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। ये ब्राह्मबलमें स्थित हैं, क्षात्रबल प्रकट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥

कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः ।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

'शत्रुओंको तपानेवाले ये पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कर्णके साथ युद्ध करके प्राणसंकटकी अवस्थामें पहुँच गये हैं ॥१८॥

न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद् भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १९ ॥
नदतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिंदमः ।
धमतां च महाशङ्खान् संग्रामे जितकाशिनाम् ॥ २० ॥

'पार्थ! मुझे जान पड़ता है कि महाराज युधिष्ठिर जीवित नहीं हैं; क्योंकि अमर्षशील शत्रुदमन भीमसेन संग्राममें विजयसे उल्लसित हो बड़े-बड़े शङ्ख बजाते और बारंबार गर्जते हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद चुपचाप सहन करते हैं ॥ १९-२० ॥

युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
संचोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ॥ २१ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! वह कर्ण महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंको यह प्रेरणा दे रहा है कि तुम सब लोग मिलकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मार डालो ॥ २१ ॥

स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ॥ २२ ॥

'पार्थ ! कौरव महारथी स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, पाशुपत तथा अन्य प्रकारके शस्त्रसमूहोंसे राजा युधिष्ठिरको आच्छादित कर रहे हैं ॥ २२ ॥

आतुरो हि कृतो राजा संनिषेव्यश्च भारत ।
यथैनमनुवर्तन्ते पञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥ २३ ॥

'भारत ! राजा युधिष्ठिर आतुर एवं सेवाके योग्य कर दिये गये हैं; जैसा कि पाण्डवोंसहित पाञ्चाल उनके पीछे-पीछे सेवाके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥

त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥ २४ ॥

'शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ बलवान् पाण्डव-योद्धा युधिष्ठिरका ऐसी अवस्थामें उद्धार करनेके लिये उत्सुक दिखायी देते हैं, मानो वे पातालमें डूब रहे हों ॥ २४ ॥

न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः ।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥ २६ ॥

'पार्थ ! राजाका ध्वज नहीं दिखायी देता है। कर्णने अपने बाणोंद्वारा उसे काट डाला है। भरतनन्दन ! प्रभो ! यह कार्य उसने नकुल-सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक, समस्त पाञ्चाल-सैनिक तथा चेदिदेशीय योद्धाओंके देखते-देखते किया है ॥ २५-२६ ॥

एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २७ ॥

'कुन्तीनन्दन ! जैसे हाथी कमलोंसे भरी हुई पुष्करिणीको मथ डालता है, उसी प्रकार यह कर्ण रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाका विध्वंस कर रहा है ॥ २७ ॥

एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे रथी भागे जा रहे हैं। पार्थ ! देखो, देखो, ये महारथी भी कैसे खिसके जा रहे हैं ॥२८॥

एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः ।
आर्तनादान् विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २९ ॥

'भारत ! कर्णके बाणोंसे मारे गये ये मतवाले हाथी आर्तनाद करते हुए दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ २९ ॥

रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः ।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥ ३० ॥

'कुन्तीकुमार ! रणभूमिमें शत्रुसूदन कर्णके द्वारा खदेड़ा हुआ यह रथियोंका समूह सब ओर पलायन कर रहा है ॥३०॥

हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह ।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥ ३१ ॥

'ध्वज धारण करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! देखो, सूतपुत्रके रथपर कैसी ध्वजा फहरा रही है ? हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त उसकी पताका रणभूमिमें यत्र-तत्र कैसे विचरण कर रही है ॥ ३१ ॥

असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरञ्छरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

'वह राधापुत्र कर्ण सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करके तुम्हारी सेनाका संहार करता हुआ भीमसेनके रथपर धावा कर रहा है ॥ ३२ ॥

एतान् पश्य च पञ्चालान् द्राव्यमाणान् महारथान् ।
शक्रेणेव यथा दैत्यान् हन्यमानान् महाहवे ॥ ३३ ॥

'जैसे देवराज इन्द्र दैत्योंको खदेड़ते और मारते हैं, उसी प्रकार महासमरमें कर्णके द्वारा खदेड़े और मारे जानेवाले इन पाञ्चाल महारथियोंको देखो ॥ ३३ ॥

एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान् पाण्डुसृञ्जयान् ।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥ ३४ ॥

'यह कर्ण रणभूमिमें पाञ्चालों, पाण्डवों और सृंजयोंको जीतकर अब तुम्हें परास्त करनेके लिये सारी दिशाओंमें दृष्टिपात कर रहा है; ऐसा मेरा मत है ॥ ३४ ॥

पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन् साधु शोभते ।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः ॥ ३५ ॥

'अर्जुन ! देखो, जैसे देवराज इन्द्र शत्रुपर विजय पाकर देवसमूहोंसे घिरे हुए शोभा पाते हैं, उसी प्रकार यह कर्ण कौरवोंके बीचमें अपने श्रेष्ठ धनुषको खींचता हुआ सुशोभित हो रहा है ॥ ३५ ॥

एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून् सृञ्जयांश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥

'कर्णका पराक्रम देखकर ये कौरवयोद्धा रणभूमिमें पाण्डवों और सृंजयोंको सब ओरसे डराते हुए जोर-जोरसे गर्जना करते हैं ॥ ३६ ॥

एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥ ३७ ॥

'मानद ! यह राधापुत्र कर्ण महासमरमें पाण्डवसैनिकोंको सर्वथा भयभीत करके अपनी सम्पूर्ण सेनाओंसे इस प्रकार कह रहा है ॥ ३७ ॥

अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥ ३८ ॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः।

'कौरवो ! तुम्हारा कल्याण हो। दौड़ो और वेगपूर्वक धावा करो। आज युद्धस्थलमें कोई सृंजय तुम्हारे हाथसे जिस प्रकार भी जीवित न छूटने पावे, सावधान होकर वैसा ही प्रयत्न करो। हम सब लोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे' ३८½

एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ ३९ ॥
पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम्।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥ ४० ॥

'ऐसा कहकर यह कर्ण पीछेसे बाण-वर्षा करता हुआ गया है। पार्थ ! रणभूमिमें श्वेतच्छत्रसे विराजमान कर्णको देखो। वह चन्द्रमासे सुशोभित उदयाचलके समान जान पड़ता है ॥ ३९-४० ॥

पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्निच्छत्रेण भारत।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥ ४१ ॥
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४२ ॥

'भारत ! प्रजानाथ ! समराङ्गणमें जिसके मस्तकपर सौ तेजस्वी शलाकाओंसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान श्वेत छत्र तना हुआ है, वही यह कर्ण तुम्हारी ओर कटाक्षपूर्वक देख रहा है। निश्चय ही यह युद्धस्थलमें उत्तम वेगका आश्रय लेकर तुम्हारे सामने आयेगा ॥ ४१-४२ ॥

पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद् धनुः।
शरांश्चाशीविषाकारान् विसृजन्तं महारणे ॥ ४३ ॥

'महाबाहो ! इसे देखो, यह अपना विशाल धनुष हिलाता हुआ महासमरमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वृष्टि कर रहा है ॥ ४३ ॥

असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम्।
प्रार्थयन् समरे पार्थ त्वया सह परंतप ॥ ४४ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार ! वह देखो, तुम्हारे वानरध्वजको देखकर समरमें तुम्हारे साथ द्वैरथ युद्ध चाहता हुआ राधापुत्र कर्ण इधर लौट पड़ा है ॥ ४४ ॥

वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा।
कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ॥ ४५ ॥
रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते।

'जैसे पतङ्ग प्रज्वलित आगके मुखमें आ पड़ता है, उसी प्रकार यह कर्ण अपने वधके लिये ही तुम्हारे पास आ रहा है। भारत ! कर्णको अकेला देख उसकी रक्षाके लिये धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी रथसेनासे घिरा हुआ इधर ही लौट रहा है ॥ ४५½ ॥

सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता।

'तुम यश, राज्य और उत्तम सुखकी अभिलाषा रखकर इन सबके साथ दुष्टात्मा कर्णका प्रयत्नपूर्वक वध कर डालो ४६½

अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ॥ ४७ ॥
देवासुरे पार्थ मृधे देवदानवयोरिव।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥ ४८ ॥

'पार्थ ! जैसे देवासुरसंग्राममें देवताओं और दानवोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार जब तुम दोनों विश्वविख्यात वीरोंमें सोत्साह युद्ध होने लगे, उस समय समस्त कौरव तुम्हारा पराक्रम देखें ॥ ४७-४८ ॥

त्वां च दृष्ट्वातिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ ४९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए तुमको और कर्णको देखकर उस क्रोधी दुर्योधनको कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ेगा ॥ ४९ ॥

आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम् ॥ ५० ॥

'भरतभूषण कुन्तीकुमार ! तुम अपनेको पुण्यात्मा तथा राधापुत्र कर्णको धर्मात्मा युधिष्ठिरका अपराधी समझकर अब समयोचित कर्तव्यका पालन करो ॥ ५० ॥

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम ॥ ५१ ॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्।
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ॥ ५२ ॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च।

'युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर तुम रथयूथपति कर्णपर चढ़ाई करो। रथियोंमें श्रेष्ठ वीर ! देखो, समरभूमिमें ये प्रचण्ड तेजस्वी, महाबली एवं मुख्य-मुख्य पाँच सौ रथी आ रहे हैं। इनके साथ ही पाँच हजार हाथी और दस हजार घोड़े हैं। कुन्तीनन्दन ! ये सब-के-सब संगठित हो दस लाख पैदल योद्धाओंको साथ ले आ रहे हैं। ५१-५२½।

अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥ ५३ ॥
द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिषूदय ।

'वीर ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आगे करके एक दूसरेके द्वारा सुरक्षित यह सेना तुमपर आक्रमण कर रही है। तुम शीघ्र ही इसका संहार कर डालो ॥ ५३½ ॥

निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥ ५४ ॥
सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना ।

'इस रथसेनाका संहार करके विश्वविख्यात महाधनुर्धर बलवान् सूतपुत्र कर्णके सामने स्वयं ही अपने आपको प्रकट करो ॥ ५४½ ॥

उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥ ५५ ॥
असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति ।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥ ५६ ॥

'भरतभूषण ! तुम उत्तम वेगका आश्रय लेकर शत्रुदल-पर आक्रमण करो। वह क्रोधमें भरा हुआ कर्ण पाञ्चालोंपर धावा बोल रहा है। मैं उसकी ध्वजाको धृष्टद्युम्नके रथके पास देख रहा हूँ ॥ ५५-५६ ॥

समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परंतप ।
आचक्षे च प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
राजासौ कुशली श्रीमान् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
असौ भीमो महाबाहुः संनिवृत्तश्चमूमुखे ॥ ५८ ॥

'परंतप ! मैं समझता हूँ, कर्ण पाञ्चालोंपर अवश्य ही आक्रमण करेगा । भरतश्रेष्ठ पार्थ ! मैं तुमसे एक प्रिय समाचार कह रहा हूँ—धर्मपुत्र श्रीमान् राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं ; क्योंकि वे महाबाहु भीमसेन सेनाके मुहानेपर लौट रहे हैं ॥ ५७-५८ ॥

वृतः सृञ्जयसैन्येन शैनेयेन च भारत ।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ॥ ५९ ॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः ।

'भारत ! उनके साथ सृंजयोंकी सेना और सात्यकि भी हैं। कुन्तीकुमार ! भीमसेन तथा महामनस्वी पाञ्चाल वीर समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंद्वारा इन कौरवोंका वध कर रहे हैं ॥ ५९½ ॥

सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा ॥ ६० ॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः ।

'भीमके बाणोंसे घायल हो दुर्योधनकी सेना युद्धसे मुँह फेरकर बड़े वेगसे भाग रही है। उसके घावोंसे रक्तकी धारा बह रही है ॥ ६०½ ॥

विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥ ६१ ॥
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ।

'भरतश्रेष्ठ ! खूनसे लथपथ हुई कौरव-सेना, जहाँकी खेती नष्ट हो गयी है उस भूमिके समान अत्यन्त दयनीय दिखायी देती है ॥ ६१½ ॥

निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ॥ ६२ ॥
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।

'कुन्तीनन्दन ! देखो, योद्धाओंके अधिपति भीमसेन लौटकर विषधर सर्पके समान कुपित हो कौरवसेनाको खदेड़ रहे हैं ॥ ६२½ ॥

पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ॥ ६३ ॥
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ।

'अर्जुन ! तारों और सूर्य-चन्द्रमाके चिह्नोंसे अलंकृत ये लाल, पीली, काली और सफेद पताकाएँ तथा ये श्वेत छत्र बिखरे पड़े हैं ॥ ६३½ ॥

सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥ ६४ ॥
केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते ।

'सोने, चाँदी तथा पीतल आदि तैजस द्रव्योंके बने हुए नाना प्रकारके ध्वज काट-काटकर गिराये जा रहे हैं। हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये हैं ॥ ६४½ ॥

रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ॥ ६५ ॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ।

'युद्धसे पीठ न दिखानेवाले पाञ्चाल-वीरोंके विभिन्न रंगोंवाले बाणोंसे मारे जाकर ये प्राणशून्य रथी रथोंसे नीचे गिर रहे हैं ॥ ६५½ ॥

निर्मनुष्यान् गजानश्वान् रथांश्चैव धनंजय ॥ ६६ ॥
समाद्रवन्ति पञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः ।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात् ॥ ६७ ॥

'धनंजय ! ये वेगशाली पुरुषसिंह पाञ्चालयोद्धा भीमसेन-के बलका आश्रय लेकर मनुष्योंसे रहित हाथियों, घोड़ों, रथों और वेगशाली धृतराष्ट्र-सैनिकोंपर आक्रमण करते और उन्हें धूलमें मिलाते जा रहे हैं ॥ ६६-६७ ॥

बलं परेषां दुर्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ।
एते नर्दन्ति पञ्चाला धमापयन्ति च वारिजान् ॥ ६८ ॥

'शत्रुदमन वीर ! दुर्जय पाञ्चाल सैनिक प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करते हुए गरजते और शङ्ख बजाते हैं ॥ ६८ ॥

अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान् ।
पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात् ॥ ६९ ॥
धार्तराष्ट्रान् विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान् ।

'अर्जुन ! देखो, इन वीरोंकी कैसी महिमा है ? जैसे क्रोधमें भरे हुए सिंह हाथियोंको मार डालते हैं, उसी प्रकार ये पाञ्चाल-योद्धा पराक्रम करके अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको रौंदते हुए रणभूमिमें सब ओर दौड़ रहे हैं ॥ ६९½ ॥

शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरायुधाः ॥ ७० ॥
तेनैवैतानमोघास्त्रा निघ्नन्ति च नदन्ति च ।

'वे स्वयं अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होनेपर भी आयुधधारी

शत्रुओंके शस्त्र छीनकर उसीसे उन्हें मार डालते और गर्जना करते हैं; उनके अस्त्रोंका निशाना कभी खाली नहीं जाता ७०½

शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥ ७१ ॥
रथनागहया वीरा यशस्याः सर्व एव च ।

'ये शत्रुओंके मस्तक, भुजाएँ, रथ, हाथी, घोड़े और समस्त यशस्वी वीर धरतीपर गिराये जा रहे हैं ॥ ७१½ ॥

सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७२ ॥
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः ।

'जैसे वेगशाली हंस मानसरोवरसे निकलकर गङ्गाजीपर सब ओरसे छा जाते हैं, उसी प्रकार पाञ्चाल-सैनिकोंद्वारा दुर्योधनकी यह विशाल सेना चारों ओरसे आक्रान्त हो रही है ॥ ७२½ ॥

सुभृशं च पराक्रान्ताः पञ्चालानां निवारणे ॥ ७३ ॥
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।

'कृपाचार्य और कर्ण आदि वीर इन पाञ्चालोंको रोकनेके लिये अत्यन्त पराक्रम दिखा रहे हैं। ठीक उसी तरह, जैसे साँड़ दूसरे साँड़ोंको दबानेकी चेष्टा करते हैं ॥ ७३½ ॥

भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान् धार्तराष्ट्रान् महारथान् ॥ ७४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून् सहस्रशः ।

'भीमसेनके बाणोंसे हतोत्साह होकर भागनेवाले कौरव-महारथियों तथा सहस्रों शत्रुओंको धृष्टद्युम्न आदि वीर मार रहे हैं ॥ ७४½ ॥

पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विषद्भिरपभीर्नदन् ॥ ७५ ॥
शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः ।

'शत्रुओंद्वारा पाञ्चालोंके पराजित होनेपर ये वायुपुत्र भीमसेन निर्भय गर्जना करते हुए शत्रुदलपर आक्रमण करके बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ ७५½ ॥

विषण्णभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७६ ॥
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः ।

'दुर्योधनकी विशाल सेनाके अधिकांश वीर अत्यन्त खिन्न हो उठे हैं और ये रथी भीमसेनके भयसे पीड़ित हो संत्रस्त हो गये हैं ॥ ७६½ ॥

पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥ ७७ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम् ।

'देखो, इन्द्रके वज्रसे आहत होकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरोंके समान ये बड़े-बड़े हाथी भीमसेनके चलाये हुए नाराचोंसे विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर रहे हैं ॥ ७७½ ॥

भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ७८ ॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ।

'भीमसेनके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए ये विशालकाय हाथी अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए भागते हैं ॥ ७८½ ॥

(एते द्रवन्ति कुरवो भीमसेनभयार्दिताः ।
त्यक्त्वा गजान् हयांश्चैव रथांश्चैव सहस्रशः ॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां द्रवतां निःस्वनं शृणु ।
भीमसेनस्य निनदं द्रावयाणस्य कौरवान् ॥)

'ये भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए कौरव-योद्धा अपने सहस्रों हाथियों, रथों और घोड़ोंको छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। भागते हुए हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका वह आर्तनाद तथा कौरवोंको खदेड़ते हुए भीमसेनकी यह गर्जना सुन लो ॥

अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥ ७९ ॥
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ।

'अर्जुन ! विजयश्रीसे सुशोभित हो गर्जना करनेवाले वीर भीमसेनका संग्राममें जो अत्यन्त दुःसह सिंहनाद हो रहा है, उसे पहचानो ॥ ७९½ ॥

एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥ ८० ॥
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ।

'यह निषादपुत्र श्रेष्ठ गजराजपर आरूढ़ हो तोमरोंद्वारा भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए दण्डपाणि यमराजके समान उनपर आक्रमण कर रहा है ॥ ८०½ ॥

सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ॥ ८१ ॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ।

'देखो, भीमसेनने गरजते हुए निषादपुत्रकी तोमरसहित दोनों भुजाओंको काट दिया और अग्नि एवं सूर्यके समान तेजस्वी दस तीखे नाराचोंद्वारा उसे मार डाला ॥ ८१½ ॥

हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान् प्रहारिणः ॥ ८२ ॥
पश्य नीलाम्बुदनिभान् महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसंघातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ८३ ॥

'इस निषादपुत्रका वध करके वे पुनः प्रहार करनेवाले दूसरे-दूसरे हाथियोंपर आक्रमण कर रहे हैं। देखो, भीमसेन शक्ति और तोमरोंके समूहोंसे काले मेघोंकी घटाके समान हाथियोंको, जिनके कंधोंपर महावत बैठे हैं, मार रहे हैं ॥ ८२-८३ ॥

सप्तसप्त च नागांस्तान् वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥ ८४ ॥

'पार्थ ! तुम्हारे बड़े भाई भीमसेनने अपने पैने बाणोंसे ध्वजसहित वैजयन्ती पताकाओंको नष्ट करके उनचास हाथियोंको काट गिराया है ॥ ८४ ॥

दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥ ८५ ॥
पुरंदरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ ।

'उन्होंने दस-दस नाराचोंसे एक-एक हाथीका वध किया है। भरतभूषण ! इन्द्रके समान पराक्रमी भीमसेनके

क्रोधपूर्वक लौटनेपर धृतराष्ट्रपुत्रोंका वह सिंहनाद अब नहीं सुनायी दे रहा है ॥ ८५½ ॥

अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः ॥ ८६ ॥

'कुपित हुए पुरुषसिंह भीमसेनने दुर्योधनकी संगठित हुई तीन अक्षौहिणी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया है ॥ ८६ ॥

न शक्नुवन्ति वै पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम् ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥ ८७ ॥

'जैसे दुर्बल नेत्रोंवाले प्राणी दोपहरके सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, उसी प्रकार राजा लोग कुन्तीकुमार भीमसेनकी ओर आँख उठाकर देख नहीं पा रहे हैं ॥ ८७ ॥

एते भीमस्य संत्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः ।
शरैः संत्रासिताः संख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥ ८८ ॥

'जैसे सिंहसे डरे हुए दूसरे मृग चैन नहीं पाते हैं, उसी प्रकार ये भीमसेनके बाणोंसे भयभीत हुए कौरवसैनिक युद्ध-स्थलमें कहीं सुख नहीं पा रहे हैं ॥ ८८ ॥

(राजानं च महाबाहुं पीडयन्त्यात्तमन्यवः ।
राधेयो बहुभिः सार्धमसौ गच्छति वेगतः ॥
वर्जयित्वा तु भीमं तं पार्श्वतो ह्यानयन् धनुः ।
तं पालयन् महाराजं धार्तराष्ट्रं बलान्वितः ॥)

'पाण्डव-सैनिक क्रोधमें भरकर महाबाहु दुर्योधनको पीड़ा दे रहे हैं। बलशाली राधापुत्र कर्ण भीमसेनको छोड़कर बगलमें धनुष लिये महाराज दुर्योधनकी रक्षाके लिये बहुतेरे सैनिकोंके साथ वेगपूर्वक उसके पास जा रहा है ॥'

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद् धनंजयः ।
भीमसेनेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ८९ ॥
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान् निशितैः शरैः ।

संजय कहते हैं—राजन् ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे यह सब सुनकर और भीमसेनके द्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको अपनी आँखों देखकर महाबाहु अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा शेष शत्रुओंको मार भगाया ॥ ८९½ ॥

ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥ ९० ॥
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः ।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥ ९१ ॥

प्रभो ! समराङ्गणमें मारे जाते हुए महाबली संशप्तकगण हतोत्साह एवं भयभीत हो दसों दिशाओंमें भाग गये और कितने ही वीर इन्द्रके अतिथि बनकर तत्काल शोकसे छुटकारा पा गये ॥ ९०-९१ ॥

पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः संनतपर्वभिः ।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥ ९२ ॥

पुरुषसिंह पार्थने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दुर्योधनकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार कर डाला ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ९६ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा शिखण्डीकी पराजय, धृष्टद्युम्न और दुःशासनका तथा वृषसेन और नकुलका युद्ध, सहदेवद्वारा उलूककी तथा सात्यकिद्वारा शकुनिकी पराजय, कृपाचार्यद्वारा युधामन्युकी एवं कृतवर्माद्वारा उत्तमौजाकी पराजय तथा भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी पराजय, गजसेनाका संहार और पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥
द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब भीमसेन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर लौट आये, पाण्डव और सृंजय मेरी सेनाका वध करने लगे और मेरा सैन्यसमुदाय आनन्दशून्य होकर बारंबार भागने लगा, उस समय कौरवोंने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

(क्षयस्तेषां महाञ्जातो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥)
दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन् भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप उन कौरवोंका महान् संहार हुआ है। महाराज !

प्रतापी सूतपुत्र महाबाहु भीमसेनको देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये उनपर टूट पड़ा ॥ ३ ॥

तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात् पराङ्मुखम्।
यत्नेन महता राजन् पर्यवस्थापयद् बली ॥ ४ ॥

राजन्! आपकी सेनाको भीमसेनके भयसे विमुख हुई देख बलवान् कर्णने बड़े यत्नसे उसे स्थिर किया ॥ ४ ॥

व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण आपके पुत्रकी सेनाको स्थिर करके रण-दुर्मद पाण्डवोंकी ओर बढ़ा ॥ ५ ॥

प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥ ६ ॥

उस समय पाण्डव-महारथी भी राधापुत्र कर्णका सामना करनेके लिये अपने धनुष हिलाते और बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें आगे बढ़े ॥ ६ ॥

भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान् सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः समन्तात् तव वाहिनीम्।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥

भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, बलवान् धृष्टद्युम्न और समस्त प्रभद्रकगण—ये सभी पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें विजयसे उल्लसित होते हुए क्रोधमें भरकर आपकी सेनाको मार डालनेकी इच्छासे चारों ओरसे उसके ऊपर टूट पड़े ॥ ७-८ ॥

तथैव तावका राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥

राजन्! इसी प्रकार आपके महारथी वीर भी पाण्डव-सेनाका वध करनेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े ॥ ९ ॥

रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम्।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥

पुरुषसिंह! रथ, हाथी, घोड़े, पैदल योद्धा और ध्वजोंसे व्याप्त हुई वह सारी सेना अद्भुत दिखायी दे रही थी ॥ १० ॥

शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥

महाराज! शिखण्डीने कर्णपर और धृष्टद्युम्नने विशाल सेनासे घिरे हुए आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया ॥

नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः।
उलूकं समरे राजन् सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥

राजन्! नकुलने वृषसेनपर, युधिष्ठिरने चित्रसेनपर तथा सहदेवने समराङ्गणमें उलूकपर चढ़ाई की ॥ १२ ॥

सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान्।
अर्जुनं च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥

सात्यकिने शकुनिपर, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अन्य कौरवोंपर तथा युद्धमें सावधान रहनेवाले महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनपर धावा किया ॥ १३ ॥

युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद् रणे।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य युद्धस्थलमें महाधनुर्धर युधामन्युपर टूट पड़े और बलवान् कृतवर्माने उत्तमौजापर आक्रमण किया ॥ १४ ॥

भीमसेनः कुरून् सर्वान् पुत्रांश्च तव मारिष।
सहानीकान् महाबाहुरेक एव न्यवारयत् ॥ १५ ॥

आर्य! महाबाहु भीमसेनने अकेले ही सेनासहित समस्त कौरवों और आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १५ ॥

शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत्।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥

महाराज! तदनन्तर भीष्महन्ता शिखण्डीने निर्भय-से विचरते हुए कर्णको अपने बाणोंके प्रहारसे रोका ॥ १६ ॥

प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥ १७ ॥

अपनी गति अवरुद्ध हो जानेपर रोषके मारे कर्णके ओठ फड़कने लगे। उसने तीन बाणोंद्वारा शिखण्डीको उसकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

धारयंस्तु स तान् बाणाञ्शिखण्डी बह्वशोभत।
राजतः पर्वतो यद्वत् त्रिभिः शृङ्गैरिवोत्थितैः ॥ १८ ॥

उन बाणोंको ललाटमें धारण किये शिखण्डी तीन उठे हुए शिखरोंसे संयुक्त रजतमय पर्वतके समान बड़ी शोभा पाने लगा ॥ १८ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए महाधनुर्धर शिखण्डीने नब्बे पैने बाणोंद्वारा कर्णको भी समर-भूमिमें घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥

महारथी कर्णने शिखण्डीके घोड़ोंको मारकर तीन बाणों-द्वारा इसके सारथिको भी नष्ट कर दिया। फिर एक क्षुरप्र-द्वारा उसकी ध्वजाको काट गिराया ॥ २० ॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥ २१ ॥

उस अश्वहीन रथसे कूदकर कुपित हुए शत्रुसंतापी महारथी शिखण्डीने कर्णपर शक्ति चलायी ॥ २१ ॥

तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

भारत ! समराङ्गणमें तीन बाणोंद्वारा उस शक्तिको काटकर कर्णने नौ तीखे बाणोंसे शिखण्डीको भी घायल कर दिया॥

कर्णचापच्युतान् बाणान् वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥ २३ ॥

तब अत्यन्त घायल हुआ नरश्रेष्ठ शिखण्डी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे बचनेके लिये तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥ २४ ॥

महाराज ! तदनन्तर महाबली कर्ण रूईके ढेरको वायुकी भाँति पाण्डव-सेनाओंको तहस-नहस करने लगा ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! आपके पुत्र दुःशासनसे पीड़ित हो धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥

आर्य ! दुःशासनने भी उसकी बायीं भुजाको बींध डाला। भारत ! सुनहरे पंख और झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे घायल हुए अमर्षशील धृष्टद्युम्नने अत्यन्त कुपित हो दुःशासनपर एक भयंकर बाण चलाया ॥ २६-२७ ॥

आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥ २८ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके चलाये हुए उस भयंकर वेगशाली बाणको अपनी ओर आते देख आपके पुत्रने तीन ही बाणोंद्वारा उसे काट डाला ॥ २८ ॥

अथान्यैः सप्तदशभिर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर उसने सुवर्ण-भूषित दूसरे सत्रह भल्लोंसे उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया ॥ २९ ॥

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३० ॥

आर्य ! तब कुपित हुए द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे दुःशासनके धनुषको काट दिया। यह देख सब लोग कोलाहल कर उठे ॥ ३० ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर आपके पुत्रने हँसते हुए-से दूसरा धनुष हाथमें लेकर अपने बाणसमूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥ ३१ ॥

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः ।
व्यस्मयन्त रणे योधाः सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३२ ॥

आपके महामनस्वी पुत्रका वह पराक्रम देखकर रणभूमिमें सब योद्धा विस्मित हो गये तथा आकाशमें सिद्धों और अप्सराओंके समूह भी आश्चर्य करने लगे ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम् ।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम् ॥ ३३ ॥

जैसे सिंह किसी महान् गजराजको काबूमें कर ले, उसी प्रकार दुःशासनसे अवरुद्ध हो यथाशक्ति छूटनेकी चेष्टा करनेवाले महाबली धृष्टद्युम्नको हम देख नहीं पाते थे ॥ ३३ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज ।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव ॥ ३४ ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ भ्राता राजन् ! तब सेनापति धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये रथों, हाथियों और घोड़ोंसहित पाञ्चालोंने आपके पुत्रको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परंतप ॥ ३५ ॥

परंतप ! फिर तो उस समय शत्रुओंके साथ आपके सैनिकोंका घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर था ॥ ३५ ॥

नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः ।
पितुः समीपे तिष्ठन् वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥ ३६ ॥

अपने पिताके पास खड़े हुए वृषसेनने लोहेके पाँच बाणोंसे नकुलको घायल करके दूसरे तीन बाणोंद्वारा पुनः बींध डाला ॥ ३६ ॥

नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम् ॥ ३७ ॥

तब शूरवीर नकुलने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे नाराचद्वारा वृषसेनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण ।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः ॥ ३८ ॥

शत्रुसूदन ! बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल हुए वृषसेनने अपने वैरी नकुलको बीस बाणोंसे बींध डाला । फिर नकुलने भी उसे पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने सहस्रों बाणोंद्वारा एक दूसरेको आच्छादित कर दिया । इसी समय कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ३९ ॥

स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः ।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! दुर्योधनकी सेनाको भागती देख सूतपुत्र कर्णने बलपूर्वक पीछा करके उसे रोका ॥ ४० ॥

निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान् ययौ।
कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ॥ ४१ ॥
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष।

आर्य ! कर्णके लौट जानेपर नकुल कौरव-सैनिकोंकी ओर बढ़ चले और कर्णका पुत्र नकुलको छोड़कर समरभूमिमें शीघ्रतापूर्वक राधापुत्र कर्णके पहियोंकी ही रक्षा करने लगा ॥

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ॥ ४२ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान्।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ४३ ॥

उसी प्रकार रणभूमिमें कुपित हुए उलूकको सहदेवने रोक दिया। प्रतापी सहदेवने उलूकके चारों घोड़ोंको मारकर उसके सारथिको भी यमलोक भेज दिया ॥ ४२-४३ ॥

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पिताको आनन्द देनेवाला उलूक उस रथसे कूदकर तुरंत ही त्रिगर्तोंकी सेनामें चला गया ॥

सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा विंशत्या निशितैः शरैः।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ४५ ॥

सात्यकिने बीस पैने बाणोंसे शकुनिको घायल करके हँसते हुए-से एक भल्लद्वारा सुबलपुत्रके ध्वजको भी काट दिया ॥ ४५ ॥

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान्।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४६ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें कुपित हुए प्रतापी सुबलपुत्रने सात्यकिके कवचको छिन्न-भिन्न करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट दिया ॥ ४६ ॥

तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! इसी प्रकार सात्यकिने भी उसे पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया और उसके सारथिपर भी तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ४७ ॥

अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः।

तत्पश्चात् उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बाण मारकर शकुनिके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया। भरतश्रेष्ठ ! तब शकुनि भी सहसा अपने रथसे कूदकर महामनस्वी उलूकके रथपर तुरंत जा चढ़ा ॥ ४८½ ॥

अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद् युद्धशालिनः ॥ ४९ ॥
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम्।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ॥ ५० ॥

उलूक युद्धमें शोभा पानेवाले सात्यकिके निकटसे अपने रथको शीघ्र दूर हटा ले गया। राजन् ! तदनन्तर सात्यकिने रणभूमिमें आपके पुत्रोंकी सेनापर बड़े वेगसे आक्रमण किया। इससे उस सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ४९-५० ॥

शैनेयशरसंछन्नं तव सैन्यं विशाम्पते।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ५१ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिके बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना शीघ्र ही दसों दिशाओंकी ओर भाग चली और प्राणहीन-सी होकर पृथ्वीपर गिरने लगी ॥ ५१ ॥

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥ ५२ ॥
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः।

आपके पुत्र दुर्योधनने युद्धस्थलमें भीमसेनको रोका। भीमसेनने दो ही घड़ीमें इस जगत्के स्वामी दुर्योधनको घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसे वञ्चित कर दिया; इससे सब लोग बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२½ ॥

ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ॥ ५३ ॥
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत्।
तत्र नादो महानासीद् भीमसेनं जिघांसताम् ॥ ५४ ॥

तब राजा दुर्योधन वहाँ भीमसेनके रास्तेसे दूर हट गया। फिर तो सारी कौरव-सेना भीमसेनपर टूट पड़ी। भीमसेनको मारनेकी इच्छासे आये हुए कौरवोंका महान् सिंहनाद सब ओर गूँज उठा ॥ ५३-५४ ॥

युधामन्युः कृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे।
अथान्यद् धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५५ ॥
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत् क्षितौ।
ततोऽपायाद् रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५६ ॥

दूसरी ओर युधामन्युने कृपाचार्यको घायल करके तुरंत ही उनके धनुषको काट दिया। तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधामन्युके ध्वज, सारथि और छत्रको धराशायी कर दिया। फिर तो महारथी युधामन्यु रथके द्वारा ही वहाँसे पलायन कर गया ॥५५-५६॥

उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम्।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ५७ ॥

दूसरी ओर उत्तमौजाने भयंकर पराक्रमी और भयानक रूपवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा सहसा उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ जलकी वर्षाद्वारा पर्वतको ढक देता है ॥ ५७ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोररूपं परंतप।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशाम्पते ॥ ५८ ॥

परंतप ! उन दोनोंका वह महान् युद्ध बड़ा भयंकर

था। प्रजानाथ ! वैसा युद्ध मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥

कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! तदनन्तर कृतवर्माने युद्धस्थलमें सहसा उत्तमौजाकी छातीमें गहरा आघात किया। उत्तमौजा अचेत-सा होकर रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ ५९ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम्।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥

तब उसका सारथि रथियोंमें श्रेष्ठ उत्तमौजाको रथके द्वारा वहाँसे दूर हटा ले गया। फिर तो सारी कौरव-सेना भीमसेनपर टूट पड़ी ॥ ६० ॥

दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्।
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत् ॥ ६१ ॥

दुःशासन और शकुनिने विशाल गजसेनाके द्वारा पाण्डुपुत्र भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंका प्रहार आरम्भ कर दिया ॥ ६१ ॥

ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम्।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ॥ ६२ ॥

उस समय भीमसेनने सैकड़ों बाणोंकी मारसे अमर्षशील दुर्योधनको युद्धसे विमुख करके हाथियोंकी उस सेनापर वेगपूर्वक आक्रमण किया ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६३ ॥

सहसा अपनी ओर आती हुई उस गजसेनाको देखते ही भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे और दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ ६३ ॥

गजैर्गजानभ्यहनद् वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।
ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम् ॥ ६४ ॥
छादयामास समरे गजान् निघ्नन् वृकोदरः।

जैसे इन्द्र वज्रके द्वारा असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने हाथियोंसे ही हाथियोंको मार डाला। तत्पश्चात् हाथियोंका संहार करते हुए भीमसेनने समरभूमिमें अपने बाणसमूहोंद्वारा सारे आकाशको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे टिड्डियोंके दलोंसे वृक्ष आच्छादित हो जाता है ॥ ६४½ ॥

ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः ॥ ६५ ॥
व्यधमत् तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः।

इसके बाद भीमसेनने जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वहाँ एकत्र हुए हाथियोंके सहस्रों समूहोंको वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ ६५½ ॥

सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥ ६६ ॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः।

सोने और मणियोंकी जालियोंसे ढके हुए वे हाथी युद्धस्थलमें बिजलियोंसहित मेघोंके समान अधिक प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६६½ ॥

ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन् विदुद्रुवुः ॥ ६७ ॥
केचिद् विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन् भुवि।

राजन् ! भीमसेनकी मार खाकर सारे हाथी भाग चले। कितने ही गजराज हृदय फट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े॥

पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः ॥ ६८ ॥
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः।

गिरे और गिरते हुए सुवर्णभूषित हाथियोंसे ढकी हुई रणभूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो वहाँ ढेर-के-ढेर पर्वतखण्ड बिखरे पड़े हों ॥ ६८½ ॥

दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ॥ ६९ ॥
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः।

दीप्तिमती प्रभा तथा रत्नोंके आभूषण धारण करके गिरे हुए हाथीसवारोंसे वह भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो पुण्य क्षीण हो जानेपर स्वर्गलोकके ग्रह वहाँ भूतलपर गिर पड़े हों ॥ ६९½ ॥

ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥ ७० ॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।

तदनन्तर भीमसेनके बाणोंसे आहत हो फूटे गण्डस्थल, विदीर्ण कुम्भस्थल और छिन्न-भिन्न शुण्डदण्डवाले सैकड़ों हाथी युद्धस्थलमें भागने लगे ॥ ७०½ ॥

केचिद् वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ॥ ७१ ॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।

भयसे पीड़ित हुए कितने ही पर्वताकार हाथी अपने सारे अङ्गोंमें बाणोंसे विद्ध होकर भयसे पीड़ित हो रक्त वमन करते हुए भागे जा रहे थे। उस समय विभिन्न धातुओंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाले पर्वतोंके समान उनकी शोभा हो रही थी ॥ ७१½ ॥

महाभुजगसंकाशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२ ॥
अपश्यं भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ।

धनुष खींचते हुए भीमसेनकी चन्दन और अगुरुसे चर्चित भुजाएँ मुझे दो बड़े सर्पोंके समान दिखायी देती थीं॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम् ॥ ७३ ॥
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम्।

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान उनकी प्रत्यञ्चाकी भयंकर टङ्कार सुनकर बहुत-से हाथी मल-मूत्र करते हुए बड़े जोरसे भाग रहे थे ॥ ७३½ ॥

भीमसेनस्य तत् कर्म राजन्नेकस्य धीमतः।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥ ७४ ॥

राजन्! अकेले बुद्धिमान् भीमसेनका वह कर्म समस्त प्राणियोंका संहार करते हुए रुद्रके समान जान पड़ता था ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ½ श्लोक मिलाकर कुल ७४½ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरपर कौरवसैनिकोंका आक्रमण

संजय उवाच

ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते।
तिष्ठन् रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सावधानीसे संचालित और श्वेत घोड़ोंसे युक्त उत्तमरथपर खड़े हुए श्रीमान् अर्जुन वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तद् बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे।
व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः ॥ २ ॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार रणभूमिमें स्थित प्रचण्ड अश्वोंसे युक्त आपकी सेनामें अर्जुनने हलचल मचा दी ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ॥ ३ ॥
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम्।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम् ॥ ४ ॥

जब श्वेतवाहन अर्जुन असावधान थे, उसी समय क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने सहसा आधी सेनाके साथ आकर अपनी ओर आते हुए अमर्षशील पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेर लिया। साथ ही तिहत्तर क्षुरप्रोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ३-४ ॥

अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत् ॥ ५ ॥

तब वहाँ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने आपके पुत्रपर तीस भल्लोंका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम्।
दुष्टभावान् पराञ्ज्ञात्वा समवेता महारथाः ॥ ६ ॥
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।

तदनन्तर कौरव-सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये दौड़े। शत्रुओंकी यह दुर्भावना जानकर एकत्र हुए पाण्डव-महारथी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे६½

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्।

नकुल, सहदेव और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—ये एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर युधिष्ठिरके पास दौड़े आये ॥ ७½ ॥

भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान् ॥ ८ ॥
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम्।

भीमसेन भी शत्रुओंसे घिरे हुए राजा युधिष्ठिरको बचानेके लिये समराङ्गणमें आपके महारथियोंको रौंदते हुए उनके पास दौड़े आये ॥ ८½ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् कर्णो वैकर्तनो नृप ॥ ९ ॥
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्।

नरेश्वर! वैकर्तन कर्णने वहाँ आये हुए सम्पूर्ण महाधनुर्धरोंको अपने बाणोंकी भारी वर्षासे रोक दिया ॥ ९½ ॥

शरौघान् विसृजन्तस्ते प्रेरयन्तश्च तोमरान् ॥ १० ॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि राधेयं प्रतिवीक्षितुम्।

वे सब महारथी प्रयत्नपूर्वक बाणसमूहोंकी वर्षा और तोमरोंका प्रहार करते हुए भी राधापुत्रको देख न सके १०½

तांश्च सर्वान् महेष्वासान् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ११ ॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत्।

सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् राधापुत्र कर्णने बड़ी भारी बाणवर्षा करके उन समस्त धनुर्धरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११½ ॥

दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ॥ १२ ॥
अविध्यत् तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान्।

इसी समय प्रतापी सहदेवने आकर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाते हुए तुरंत ही बीस बाणोंसे दुर्योधनको बींध डाला १२½

स विद्धः सहदेवेन रराजाचलसंनिभः ॥ १३ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः।

सहदेवके बाणोंसे विद्ध होकर दुर्योधन अनेक शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ। खूनसे लथपथ होकर वह मदकी धारा बहानेवाले मदमत्त हाथीके समान जान पड़ता था ॥ १३½ ॥

दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः ॥ १४ ॥
अभ्यधावद् दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः।

रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्ण आपके पुत्रको तेज बाणोंसे अत्यन्त घायल हुआ देख कुपित होकर दौड़ा ॥ १४½ ॥

दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत् ॥ १५ ॥
तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत् पार्षतं तथा ।

दुर्योधनकी वैसी अवस्था देख उसने शीघ्र अपना अस्त्र प्रकट किया और उसीके द्वारा युधिष्ठिरकी सेना एवं द्रुपदपुत्र-को घायल कर दिया ॥ १५½ ॥

ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना ॥ १६ ॥
सहसा प्राद्रवद् राजन् सूतपुत्रशरार्दितम् ।

राजन् ! महामना सूतपुत्र कर्णकी मार खाकर उसके बाणोंसे पीड़ित हो युधिष्ठिरकी सेना सहसा भाग चली ।१६½।

विविधा विशिखास्तत्र सम्पतन्तः परस्परम् ॥ १७ ॥
फलैः पुङ्खान् समाजग्मुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः ।

सूतपुत्र कर्णके धनुषसे छूटकर परस्पर गिरते हुए नाना प्रकारके बाण अपने फलोंद्वारा पहलेके गिरे हुए बाणोंके पंखोंमें जुड़ जाते थे ॥ १७½ ॥

अन्तरिक्षे शरौघाणां पततां च परस्परम् ॥ १८ ॥
संघर्षेण महाराज पावकः समजायत ।

महाराज ! आकाशमें परस्पर टकराते हुए बाणसमूहोंकी रगड़से आग प्रकट हो जाती थी ॥ १८½ ॥

ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः ॥ १९ ॥
अभ्यहंस्तरसा राजञ्शरैः परशरीरगैः ।

राजन् ! तदनन्तर कर्णने पतङ्गोंकी तरह चलकर शत्रुओंके शरीरोंमें घुस जानेवाले बाणोंद्वारा वेगपूर्वक दसों दिशाओंमें प्रहार आरम्भ किया ॥ १९½ ॥

रक्तचन्दनसंदिग्धौ मणिहेमविभूषितौ ॥ २० ॥
बाहू व्यत्यक्षिपत् कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन् ।

दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करता हुआ कर्ण मणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित तथा लाल चन्दनसे चर्चित दोनों भुजाओंको बारंबार हिला रहा था ॥ २०½ ॥

ततः सर्वा दिशो राजन् सायकैर्विप्रमोहयन् ॥ २१ ॥
अपीडयद् भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।

राजन् ! तत्पश्चात् अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको मोहित करते हुए कर्णने धर्मराज युधिष्ठिरको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत् ।

महाराज ! इससे कुपित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरने कर्णपर पचास पैने बाणोंका प्रहार किया ॥ २२½ ॥

बाणान्धकारमभवत्तद् युद्धं घोरदर्शनम् ॥ २३ ॥
हाहाकारो महानासीत्तावकानां विशाम्पते ।
वध्यमाने तदा सैन्ये धर्मपुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥

उस समय भयंकर दिखायी देनेवाला वह युद्ध बाणोंके अन्धकारसे व्याप्त हो गया । माननीय प्रजानाथ ! जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर कौरवसेनाका वध करने लगे, उस समय आपके योद्धाओंका महान् हाहाकार सब ओर गूँज उठा ॥ २३-२४ ॥

सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्त्यृष्टिमुसलैरपि ॥ २५ ॥
यत्र यत्र स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत् ।
तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्मात्मा युधिष्ठिर शिलापर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त एवं नाना प्रकारके पैने बाणों, भाँति-भाँतिके बहुसंख्यक भल्लों तथा शक्ति, ऋष्टि एवं मुसलोंद्वारा प्रहार करते हुए जहाँ-जहाँ क्रोधरूपी दोषसे पूर्ण दृष्टि डालते थे, वहीं-वहीं आपके सैनिक छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाते थे ॥ २५–२६ ॥

कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे ॥ २७ ॥
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः ।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत् ॥ २८ ॥

कर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ था । वह अमर्षशील और क्रोधी तो था ही, रोषसे उसका मुख फड़क रहा था । अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने युद्धस्थलमें नाराचों, अर्धचन्द्रों तथा वत्सदन्तोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २७–२८ ॥

युधिष्ठिरश्चापि स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः ।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ २९ ॥
उरस्यविध्यद् राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम् ।

इसी प्रकार युधिष्ठिरने भी कर्णको सोनेकी पाँखवाले पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया । तब कर्णने हँसते हुए-से शिला-पर तेज किये गये कङ्कपत्रयुक्त तीन भल्लोंद्वारा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २९½ ॥

स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत् ।

उस प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित हो धर्मराज युधिष्ठिर रथके पिछले भागमें बैठ गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'यहाँसे अन्यत्र रथ ले चलो' ॥ ३०½ ॥

अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः ।

उस समय राजा दुर्योधनसहित आपके सभी पुत्र इस प्रकार कोलाहल करने लगे—'राजा युधिष्ठिरको पकड़ लो' ऐसा कहकर वे सभी ओरसे उनकी ओर दौड़ पड़े ॥३१½॥

ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥ ३२ ॥
पञ्चालैः सहिता राजन् धार्तराष्ट्रान् न्यवारयन् ।

राजन् ! तब प्रहारकुशल सत्रह सौ केकय योद्धा पाञ्चालों-के साथ आकर आपके पुत्रोंको रोकने लगे ॥ ३२½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥ ३३ ॥
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ ॥ ३४ ॥

जिस समय वह जनसंहारकारी भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय महाबली दुर्योधन और भीमसेन एक दूसरेसे जूझने लगे ॥ ३३-३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा नकुल-सहदेवसहित युधिष्ठिरकी पराजय एवं पीड़ित होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करना

संजय उवाच

कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान् ।
व्यधमत् परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कर्ण भी अपने बाण-समूहसे सामने खड़े हुए महाधनुर्धर केकय-महारथियोंका विनाश करने लगा ॥ १ ॥

तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे ।
रथान् पञ्चशतान् कर्णः प्राहिणोद् यमसादनम् ॥ २ ॥

राधापुत्र कर्णको रोकनेके लिये प्रयत्न करनेवाले पाँच सौ रथियोंको उसने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः ।
भीमसेनमुपागच्छन् कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३ ॥

कर्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए पाण्डव-योद्धा युद्ध-स्थलमें राधापुत्र कर्णको असह्य देखकर भीमसेनके पास चले आये ॥ ३ ॥

रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा ।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंके समूहसे पाण्डवोंकी रथ-सेनाको अनेक भागोंमें विदीर्ण करके एकमात्र रथके द्वारा ही युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ४ ॥

सेनानिवेशमार्च्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम् ।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५ ॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया ।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥

उस समय वीर युधिष्ठिर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अचेत-से हो रहे थे और नकुल-सहदेवके बीचमें होकर धीरे-धीरे छावनीकी ओर जा रहे थे । उस अवस्थामें राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर सूतपुत्र कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे परम उत्तम तीन तीखे बाणोंद्वारा उन्हें पुनः घायल कर दिया ॥ ५-६ ॥

तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिरने भी राधापुत्र कर्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी । फिर तीन बाणोंसे सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परंतपौ ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥ ८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक थे । वे दोनों भी यह सोचकर कर्णकी ओर दौड़े कि यह राजा युधिष्ठिरका वध न कर डाले ॥

तौ पृथक् शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम् ।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥ ९ ॥

नकुल और सहदेव दोनों भाई उत्तम प्रयत्नका सहारा लेकर राधापुत्र कर्णपर पृथक्-पृथक् बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

तथैव तौ प्रत्यविध्यत् सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिंदमौ ॥ १० ॥

इसी प्रकार प्रतापी सूतपुत्रने भी तेज धारवाले दो भल्लों-द्वारा शत्रुओंका दमन करनेवाले उन दोनों महामनस्वी वीरों-को घायल कर दिया ॥ १० ॥

दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान् ।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान् हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

जिनकी पूँछ और गर्दनके बाल काले तथा शरीरका रंग श्वेत था और जो मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाले थे, युधिष्ठिरके उन उत्तम घोड़ोंको संग्रामभूमिमें राधापुत्र कर्णने मार डाला ॥ ११ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत् ।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से एक दूसरे भल्लके द्वारा कुन्तीकुमारके शिरस्त्राणको नीचे गिरा दिया ॥

तथैव नकुलस्यापि हयान् हत्वा प्रतापवान्।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः॥ १३॥

इसी प्रकार प्रतापी कर्णने बुद्धिमान् माद्रीकुमार नकुलके भी घोड़ोंको मारकर ईषादण्ड और धनुषको भी काट दिया॥

तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा॥ १४॥

घोड़ों एवं रथोंके नष्ट हो जानेपर अत्यन्त घायल हुए वे दोनों भाई पाण्डव उस समय सहदेवके रथपर जा चढ़े॥

तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया॥ १५॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मामा मद्रराज शल्यने उन दोनों भाइयोंको रथहीन हुआ देख कृपापूर्वक राधापुत्र कर्णसे कहा—॥ १५॥

योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः॥ १६॥

'कर्ण! आज तुम्हें कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करना है। फिर अत्यन्त रोषमें भरकर धर्मराजके साथ किस लिये जूझ रहे हो?॥ १६॥

क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैररिभिस्तथा॥ १७॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि।

'इनके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हो गये हैं। तीर और तरकस भी कट गये हैं। सारथि और घोड़े भी थके हुए हैं तथा शत्रुओंने इन्हें अस्त्रोंद्वारा आच्छादित कर दिया है। राधानन्दन! अर्जुनके सामने पहुँचकर तुम उपहासके पात्र बन जाओगे'॥ १७½॥

एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे॥ १८॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत्।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १९॥
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः।

युद्धस्थलमें मद्रराज शल्यके ऐसा कहनेपर भी कर्ण पूर्ववत् रोषमें भरकर युधिष्ठिरको बाणोंद्वारा पीड़ित करता रहा। माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको तीखे बाणोंसे घायल करके कर्णने हँसकर समराङ्गणमें बाणोंके प्रहारसे] युधिष्ठिरको युद्धसे विमुख कर दिया॥ १८-१९½॥

ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह॥ २०॥
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम्।

तब शल्यने हँसकर युधिष्ठिरके वधका दृढ़ निश्चय किये अत्यन्त क्रोधमें भरकर रथपर बैठे हुए कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½॥

यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान्॥ २१॥
तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम्।

'राधापुत्र! दुर्योधनने जिनसे जूझनेके लिये तुम्हारा सदा सम्मान किया है, उन कुन्तीकुमार अर्जुनको मारो। युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हें क्या मिलेगा?॥ २१½॥

(हते ह्यस्मिन् ध्रुवं पार्थः सर्वाञ्जेष्यति नो रथान्।
तस्मिन् हि धार्तराष्ट्रस्य निहते तु ध्रुवो जयः॥

'इनके मारे जानेपर अर्जुन निश्चय ही हमारे सारे महारथियोंको जीत लेंगे। परंतु अर्जुनके मारे जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी विजय अवश्यम्भावी है॥

ध्वजोऽसौ दृश्यते तस्य रोचमानोंऽशुमानिव।
एनं जहि महाबाहो किं ते हत्वा युधिष्ठिरम्॥)

'महाबाहो! अर्जुनका यह सूर्यके समान प्रकाशमान ध्वज दिखायी देता है। तुम इन्हींको मारो, युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हारा क्या लाभ है?॥

शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः॥ २२॥
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह।

'श्रीकृष्ण और अर्जुन शङ्ख बजा रहे हैं, जिनका यह महान् शब्द सुनायी पड़ता है। वर्षाकालके मेघकी गर्जनाके समान उनके धनुषका यह गम्भीर घोष कानोंमें पड़ रहा है॥ २२½॥

असौ निघ्नन् रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः॥ २३॥
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे।

'कर्ण! ये अर्जुन अपने बाणोंकी वर्षासे बड़े-बड़े रथियोंका संहार करते हुए हमारी सारी सेनाको कालका ग्रास बना रहे हैं। युद्धस्थलमें इनकी ओर तो देखो॥ २३½॥

पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ॥ २४॥
उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम्॥ २५॥

'शूरवीर अर्जुनके पृष्ठभागकी रक्षा युधामन्यु और उत्तमौजा कर रहे हैं। शौर्यसम्पन्न सात्यकि उनके उत्तर (बायें) चक्रकी रक्षा करते हैं और धृष्टद्युम्न दाहिने चक्रकी॥ २४-२५॥

भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते।
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम्॥ २६॥
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा।

'भीमसेन राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करते हैं। राधानन्दन! हम सब लोगोंके देखते-देखते आज भीमसेन जिस प्रकार उसे मार न डालें, वैसा प्रयत्न करो। जैसे भी सम्भव हो, हमारे राजाको भीमसेनसे छुटकारा मिलना ही चाहिये२६½

पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम्॥ २७॥
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान् भवेत्।

'देखो, युद्धमें शोभा पानेवाले दुर्योधनको भीमसेनने ग्रस लिया है। यदि तुम्हें पाकर वह संकटसे छूट जाय तो

यह महान् आश्चर्यकी घटना होगी ॥ २७½ ॥

परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ॥ २८ ॥
किं नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम् ।

'तुम चलकर जीवनके भारी संशयमें पड़े हुए राजा दुर्योधनको बचाओ। आज माद्रीकुमार नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध करके क्या होगा ?' ॥ २८½ ॥

इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ॥ २९ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ।
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ॥ ३० ॥
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीनाथ ! शल्यकी यह बात सुनकर तथा महासमरमें दुर्योधनको भीमसेनसे ग्रस्त हुआ देखकर शल्यके वचनोंसे प्रेरित हो राजाको अधिक चाहनेवाला पराक्रमी कर्ण अजातशत्रु युधिष्ठिर और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको छोड़कर आपके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये दौड़ा ॥२९-३१॥

मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ।
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवश्च मारिष ।

माननीय नरेश ! मद्रराज शल्यके हाँके हुए घोड़े ऐसे भाग रहे थे, मानो आकाशमें उड़ रहे हों। कर्णके चले जानेपर कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और सहदेव तीव्रगामी घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग गये ॥ ३२½ ॥

ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ३३ ॥
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ।
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम् ॥ ३४ ॥

नकुल और सहदेवके साथ वे नरेश लज्जित होते हुए-से तुरंत छावनीमें पहुँचकर रथसे उतर पड़े और सुन्दर शय्यापर लेट गये। उस समय उनका सारा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था ॥ ३३-३४ ॥

अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ।
सोऽब्रवीद्भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ३५ ॥

वहाँ उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये तो भी हृदयमें जो अपमानका काँटा गड़ गया था, उससे वे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। उस समय राजा दोनों भाई माद्रीकुमार महारथी नकुल-सहदेवसे इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥



(युधिष्ठिर उवाच
गच्छतं त्वरितौ वीरौ यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥)
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ।
जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिरने कहा—वीर पाण्डुकुमारो ! तुम दोनों शीघ्रतापूर्वक जहाँ भीमसेन खड़े हैं, वहाँ उनकी सेनामें जाओ। वहाँ भीमसेन मेघके समान गम्भीर गर्जना करते हुए युद्ध कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ।
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ ॥ ३७ ॥
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ ।
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ॥ ३८ ॥

तदनन्तर दूसरे रथपर बैठकर रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और तेजस्वी सहदेव वे दोनों शत्रुसूदन बन्धु तीव्र वेगवाले घोड़ोंद्वारा भीमसेनके पास जा पहुँचे। फिर वे दोनों बलवान् भाई भीमसेनके सैनिकोंके साथ खड़े होकर युद्ध करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मापयाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका पलायन विषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कौरवसेनामें भगदड़ एवं दुर्योधनसे प्रेरित कर्णद्वारा भार्गवास्त्रसे पाञ्चालोंका संहार

संजय उवाच

द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
अपतत्सहसा राजन् यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विशाल

रथसेनासे घिरा सहसा वहाँ आ पहुँचा, जहाँ अर्जुन खड़े थे॥

तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान्।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम्॥ २॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सहायक थे, उन शूरवीर कुन्तीकुमार अर्जुनने सहसा अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको तत्काल उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है॥ २॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास सायकैः॥ ३॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए प्रतापी द्रोणपुत्रने अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंसे ढक दिया॥ ३॥

अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा॥ ४॥

उस समय उन दोनोंको बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ देख समस्त कौरव महारथी महान् आश्चर्यमें पड़कर उधर ही देखने लगे॥ ४॥

अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत॥ ५॥

भारत! तब अर्जुनने हँसते हुए-से दिव्यास्त्र प्रकट किया; परंतु ब्राह्मण अश्वत्थामाने युद्धस्थलमें उनके उस दिव्यास्त्रका निवारण कर दिया॥ ५॥

यद् यद्धि व्याक्षिपद् युद्धे पाण्डवोऽस्त्रजिघांसया।
तत् तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत्॥ ६॥

रणभूमिमें पाण्डुकुमार अर्जुन अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट करनेके लिये जो-जो अस्त्र चलाते थे, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उनके उस-उस अस्त्रको काट गिराता था॥ ६॥

अस्त्रयुद्धे ततो राजन् वर्तमाने महाभये।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम्॥ ७॥

राजन्! इस प्रकार महाभयंकर अस्त्र-युद्ध आरम्भ होनेपर हमलोगोंने रणक्षेत्रमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको मुँह बाये हुए यमराजके समान देखा था॥ ७॥

स दिशः प्रदिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद् दक्षिणे भुजे॥ ८॥

उसने सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओं और कोणोंको आच्छादित करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजामें तीन बाण मारे॥ ८॥

ततोऽर्जुनो हयान् हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम्॥ ९॥

तब अर्जुनने उस महामनस्वी वीरके समस्त घोड़ोंको मारकर समरभूमिमें खूनकी नदी-सी बहा दी॥ ९॥

सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम्।
सरथान् रथिनः सर्वान् पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १०॥
द्रौणेरपहतान् संख्ये ददृशुः स च तां तथा।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा॥ ११॥

वह रक्तमयी भयंकर सरिता परलोकवाहिनी थी और सब लोगोंको अपने प्रवाहमें बहाये लिये जाती थी। वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने देखा कि अश्वत्थामाके सारे रथी अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा युद्धभूमिमें मारे गये। स्वयं अश्वत्थामाने भी उनकी वह अवस्था देखी। उस समय उसने भी महाभयंकर परलोकवाहिनी नदी बहा दी॥ १०-११॥

तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः॥ १२॥

अश्वत्थामा और अर्जुनके उस भयंकर एवं घमासान युद्धमें सब योद्धा मर्यादारहित होकर युद्ध करते हुए आगे-पीछे सब ओर भागने लगे॥ १२॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः॥ १३॥
पार्थेन समरे राजन् कृतो घोरो जनक्षयः।
विहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १४॥

रथोंके घोड़े और सारथि मार दिये गये। घोड़ोंके सवार नष्ट हो गये। गजारोही मार डाले गये और हाथी बचे रहे एवं कहीं हाथी ही मार डाले गये तथा महावत बचे रहे। राजन्! इस प्रकार समराङ्गणमें अर्जुनने घोर जनसंहार मचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे जाकर बहुत-से रथी धराशायी हो गये॥ १३-१४॥

हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः।
तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः॥ १५॥
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान्।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ १६॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः।

घोड़ोंके बन्धन खुल गये और वे चारों ओर दौड़ लगाने लगे। युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनका वह पराक्रम देखकर पराक्रमी द्रोणकुमार अश्वत्थामा तुरंत उनके पास आ गया और अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाते हुए उसने विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे ढक दिया॥ १५-१६½॥

भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा॥ १७॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम्।

महाराज! तदनन्तर द्रोणकुमारने धनुष खींचकर छोड़े हुए पंखयुक्त बाणसे कुन्तीकुमार अर्जुनकी छातीपर पुनः बड़े जोरसे निर्दयतापूर्वक प्रहार किया॥ १७½॥

सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत॥ १८॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम्॥ १९॥

भारत ! रणभूमिमें द्रोणपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये गये उदारबुद्धि गाण्डीवधारी अर्जुनने समराङ्गणमें बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके अश्वत्थामाको ढक दिया और उसके धनुषको भी काट डाला ॥ १८-१९ ॥

स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥

धनुष कट जानेपर द्रोणपुत्रने युद्धस्थलमें एक ऐसा परिघ हाथमें लिया, जिसका स्पर्श वज्रके समान कठोर था । उसने उस परिघको तत्काल ही किरीटधारी अर्जुनपर दे मारा॥

तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन् प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥

राजन् ! उस सुवर्णभूषित परिघको सहसा अपने ऊपर आते देख पाण्डुपुत्र अर्जुनने हँसते हुए-से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २१ ॥

स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
विकीर्णः पर्वतो राजन् यथा वज्रेण ताडितः ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत टूट-फूटकर सब ओर बिखर जाता है, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे कटा हुआ वह परिघ उस समय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥

महाराज ! तब महारथी द्रोणपुत्रने कुपित होकर अर्जुनपर ऐन्द्रास्त्रद्वारा वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य
पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः ।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत् तरस्वी
वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥

राजन् ! अर्जुनने अश्वत्थामाद्वारा किये हुए इन्द्रजालका विस्तार देखकर बड़े वेगसे गाण्डीव धनुष हाथमें लिया और महेन्द्रद्वारा निर्मित उत्तम अस्त्रका आश्रय लेकर उस इन्द्रजालका संहार कर दिया ॥ २४ ॥

विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं
पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य
द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इन्द्रास्त्रद्वारा छोड़े गये उस बाण-जालको विदीर्ण करके अर्जुनने निकटवर्ती होकर क्षणभरमें अश्वत्थामाके रथको ढक दिया । उस समय अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे अभिभूत हो गया था ॥ २५ ॥

विगाह्य तां पाण्डवबाणवृष्टिं
शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्ध्यत्
त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके अपना नाम प्रकाशित करते हुए सहसा सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया और अर्जुनपर भी तीन सौ बाणोंका प्रहार किया ॥ २६ ॥

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन
गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्या-
मवाकिरत् पश्यतां तावकानाम् ॥ २७ ॥

इसके बाद अर्जुनने सौ बाणोंसे गुरुपुत्रके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर दिया तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते उसके घोड़ों, सारथि, धनुष और प्रत्यञ्चापर बाणोंकी झड़ी लगा दी॥

स विद्ध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुनने अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर एक भल्लसे उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ २८ ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान् कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥
प्रायच्छत्तुरगान् यच्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
यदस्य समरे राजन् सर्वे योधा अपूजयन् ॥ ३० ॥

तब उसने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे ढक दिया । वहाँ हमने द्रोणपुत्रका शीघ्र प्रकट होनेवाला वह अद्भुत पराक्रम देखा कि वह घोड़ोंको भी काबूमें रखता था और अर्जुनके साथ युद्ध भी करता था । राजन् ! समराङ्गणमें सभी योद्धाओंने उसके इस कार्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९-३० ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विजयी अर्जुनने हँसकर युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रके घोड़ोंकी बागडोरोंको क्षुरप्रोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक काट दिया ॥

प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! इसके बाद बाणोंके वेगसे अत्यन्त पीड़ित हुए उसके घोड़े वहाँसे भाग चले । उस समय वहाँ आपकी सेनामें भयंकर कोलाहल मच गया ॥ ३२ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान् बाणान् विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥

पाण्डव विजय पाकर आपकी सेनापर टूट पड़े और पुनः विजयकी अभिलाषा ले चारों ओरसे पैने बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ ३३ ॥

पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैरभज्जि जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने दुर्योधनकी विशाल सेनामें बारंबार भगदड़ मचा दी ॥ ३४ ॥

पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥

नरेश्वर ! प्रजानाथ ! विचित्रयुद्ध करनेवाले आपके पुत्रोंके, सुबलपुत्र शकुनिके तथा कर्णके देखते-देखते यह सब हो रहा था॥

वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥

जनेश्वर ! सब ओरसे पीड़ित हुई आपकी विशाल सेना आपके पुत्रोंके बहुत रोकनेपर भी युद्धभूमिमें खड़ी न रह सकी ॥ ३६ ॥

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः ।
अभवद् व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद् बलम् ॥ ३७ ॥

महाराज ! सब ओर भागनेवाले योद्धाओंके कारण आपके पुत्रोंकी वह विशाल सेना भयभीत और व्याकुल हो उठी ॥ ३७ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्र कर्ण 'ठहरो, ठहरो' की पुकार करता ही रह गया; परंतु महामनस्वी पाण्डवोंकी मार खाती हुई वह सेना किसी तरह ठहर न सकी ॥ ३८ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥ ३९ ॥

महाराज ! दुर्योधनकी सेनाको सब ओर भागती देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत् प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम् ॥ ४० ॥

उस समय दुर्योधनने कर्णसे प्रेमपूर्वक कहा—'कर्ण ! देखो, पाञ्चालोंने मेरी इस विशाल सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है ॥ ४० ॥

त्वयि तिष्ठति संत्रासात् पलायनपरायणा ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम ॥ ४१ ॥

'शत्रुदमन महाबाहु वीर ! तुम्हारे रहते हुए भयके कारण मेरी सेना भाग रही है; यह जानकर इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो उसे करो ॥ ४१ ॥

सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

'पुरुषोत्तम ! वीर ! पाण्डवोंद्वारा खदेड़े जानेवाले सहस्रों कौरव सैनिक समराङ्गणमें तुम्हें ही पुकार रहे हैं' ॥ ४२ ॥

एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान् ।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥

महावीर राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी यह बात सुनकर मद्रराज शल्यसे हँसते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर ।
अद्य हन्मि रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह ॥ ४४ ॥
वाहयाश्वान् नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः ।

'नरेश्वर ! आज तुम मेरी दोनों भुजाओं और अस्त्रोंका बल देखो । मैं रणभूमिमें पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंका वध किये देता हूँ, इसमें संशय नहीं है । पुरुषसिंह ! आप कल्याण-चिन्तनपूर्वक ही इन घोड़ोंको आगे बढ़ाइये' ॥ ४४½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम् ।
सज्यं कृत्वा महाराज संमृज्य च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
संनिवार्य च योधान् स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ४७ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी वीर सूतपुत्र कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ एवं पुरातन धनुषको लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; फिर उसे बारंबार हाथमें लेकर सत्यकी शपथ दिलाते हुए समस्त योद्धाओंको रोका । इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस महाबली वीरने भार्गवास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो राजन् सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन् महामृधे ॥ ४८ ॥

राजन् ! फिर तो उस महासमरमें सहस्रों, लाखों, करोड़ों और अरबों तीखे बाण उस अस्त्रसे प्रकट होने लगे ॥ ४८ ॥

ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४९ ॥

कङ्क और मोरकी पाँखवाले उन प्रज्वलित एवं भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डव-सेना आच्छादित हो गयी । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ ४९ ॥

हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां विशाम्पते ।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ५० ॥

प्रजानाथ ! प्रबल भार्गवास्त्रसे समराङ्गणमें पीड़ित होनेवाले पाञ्चालोंका महान् हाहाकार सब ओर गूँजने लगा॥५०॥

निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥ ५१ ॥
प्राकम्पत मही राजन् निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत् पाण्डवानां महद् बलम् ॥ ५२ ॥

राजन् ! गिरते हुए हाथियों, सहस्रों घोड़ों, रथों और मारे गये पैदल मनुष्योंके गिरनेसे सारी पृथ्वी सब ओर कम्पित होने लगी । पाण्डवोंकी सारी विशाल सेना व्याकुल हो गयी ॥ ५१–५२ ॥

कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून् नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः ॥ ५३ ॥

नरव्याघ्र ! शत्रुओंको तपानेवाला योद्धाओंमें श्रेष्ठ एक-

मात्र कर्ण ही धूमरहित अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करता हुआ शोभा पा रहा था ॥ ५३ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥ ५४ ॥

जैसे वनमें आग लगनेपर उसमें रहनेवाले हाथी जहाँ-तहाँ दग्ध होकर मूर्छित हो जाते हैं, उसी प्रकार कर्णके द्वारा मारे जानेवाले पाञ्चाल और चेदि योद्धा यत्र-तत्र मूर्छित होकर पड़े थे ॥ ५४ ॥

चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद् भीतानां रणमूर्धनि ॥ ५५ ॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव सम्प्लवे ॥ ५६ ॥

पुरुषसिंह ! वे श्रेष्ठ योद्धा व्याघ्रोंके समान चीत्कार करते थे । राजन् ! युद्धके मुहानेपर भयभीत हो चिल्लाते और डरकर सब ओर भागते हुए उन सैनिकोंका महान् आर्तनाद प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके चीत्कारके समान जान पड़ता था ॥ ५५-५६ ॥

वध्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ ५७ ॥

आर्य ! सूतपुत्रके द्वारा मारे जाते हुए उन योद्धाओंको देखकर समस्त प्राणी पशु-पक्षी भी भयसे थर्रा उठे ॥ ५७ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृंजयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥
प्रेतराजपुरे यद्वत् प्रेतराजं विचेतसः ।

सूतपुत्रद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए सृंजय बारंबार अर्जुन और श्रीकृष्णको पुकारते थे । ठीक उसी तरह, जैसे प्रेतराजके नगरमें क्लेशसे अचेत हुए प्राणी प्रेतराजको ही पुकारते हैं ॥ ५८½ ॥

श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥ ५९ ॥
अथाब्रवीद् वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ६० ॥

कर्णके बाणोंद्वारा मारे जाते हुए उन सैनिकोंका आर्तनाद सुनकर तथा वहाँ महाभयंकर भार्गवास्त्रका प्रयोग हुआ देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१ ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! यह भार्गवास्त्रका पराक्रम देखिये । समराङ्गणमें किसी तरह इस अस्त्रको नष्ट नहीं किया जा सकता॥

सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ६२ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखिये, क्रोधमें भरा हुआ सूतपुत्र, जो पराक्रममें यमराजके समान है, महासमरमें कैसा दारुण कर्म कर रहा है ॥ ६२ ॥

अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान् प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम् ॥ ६३ ॥

'वह निरन्तर घोड़ोंको हाँकता हुआ बारंबार मेरी ही ओर देख रहा है । समरभूमिमें कर्णके सामनेसे पलायन करना मैं उचित नहीं समझता ॥ ६३ ॥

जीवन् प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥ ६४ ॥

'मनुष्य जीवित रहे तो वह युद्धमें विजय और पराजय दोनों पाता है । हृषीकेश ! मरे हुए मनुष्यका तो नाश ही हो जाता है; फिर उसकी विजय कहाँसे हो सकती है' ॥६४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनंजयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिंदमम् ॥ ६५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन अर्जुनसे यह समयोचित बात कही—॥ ६५ ॥

कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षितः ।
तं दृष्ट्वाऽऽश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि॥ ६६ ॥

'पार्थ ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है । उनसे मिलकर उन्हें धीरज बँधाकर फिर तुम कर्णका वध करना' ॥ ६६ ॥

एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते ॥ ६७ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर वे पुनः युधिष्ठिरसे मिलनेकी इच्छासे तथा कर्णको युद्धमें अधिक थकावट प्राप्त करानेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

ततो धनंजयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात् केशवाज्ञया ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञासे बाणपीड़ित राजा युधिष्ठिरको देखनेके लिये रथके द्वारा युद्धस्थलसे शीघ्रतापूर्वक गये ॥ ६८ ॥

गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत् तत्र चाग्रजम् ॥ ६९ ॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥ ७० ॥

भारत ! कुन्तीकुमार अर्जुनने द्रोणपुत्रके साथ युद्ध करके रणभूमिमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी दुःसह उस गुरुपुत्रको पराजित करनेके पश्चात् जाते समय धर्मराजको देखनेकी इच्छासे सारी सेनापर दृष्टिपात किया । परंतु वहाँ कहीं भी अपने बड़े भाईको नहीं देखा ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरकी खोजविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनको युद्धका भार सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरके पास जाना

संजय उवाच

द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा
कृत्वा महद् दुष्करं शूरकर्म।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर उत्तम धनुष धारण करनेवाले तथा शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुनने दूसरोंके लिये दुष्कर वीरोचित कर्म करके अश्वत्थामाको हराकर फिर अपनी सेनाका निरीक्षण किया॥ १॥

स युध्यमानान् पृतनामुखस्थान्
शूरः शूरान् हर्षयन् सव्यसाची।
पूर्वप्रहारैर्मथितान् प्रशंसन्
स्थिरांश्चकारात्मरथाननीके॥ २॥

सव्यसाची शूरवीर अर्जुन युद्धके मुहानेपर खड़े होकर युद्ध करनेवाले अपने शूरवीर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए तथा पहलेके प्रहारोंसे क्षत-विक्षत हुए अपने रथियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन सबको अपनी सेनामें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया॥ २॥

अपश्यमानस्तु किरीटमाली
युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम्।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य
राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा॥ ३॥

परंतु वहाँ अपने भाई अजमीढकुल-नन्दन युधिष्ठिरको न देखकर किरीटधारी अर्जुनने बड़े वेगसे भीमसेनके पास जा उनसे राजाका समाचार पूछते हुए कहा—'भैया! इस समय हमारे महाराज कहाँ हैं?'॥ ३॥

भीमसेन उवाच

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत् कथञ्चन॥ ४॥

भीमसेनने कहा—धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर यहाँसे हट गये हैं। कर्णके बाणोंसे उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे हैं। सम्भव है, वे किसी प्रकार जी रहे हों॥ ४॥

अर्जुन उवाच

तस्माद् भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु
राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः
कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ॥ ५॥

अर्जुन बोले—यदि ऐसी बात है तो आप कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका समाचार लानेके लिये शीघ्र ही यहाँसे जायँ। निश्चय ही कर्णके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर राजा शिविरमें चले गये हैं॥ ५॥

यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कै-
र्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो
द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत्॥ ६॥

स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः
संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम
स्थास्याम्यहं शत्रुगणान् निरुद्ध्य॥ ७॥

भैया भीमसेन! जो वेगशाली वीर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके द्वारा किये गये प्रहारों तथा अत्यन्त तीखे बाणोंसे अच्छी तरह घायल किये जानेपर भी विजयकी प्रतीक्षामें तबतक युद्धस्थलमें डटे रहे, जबतक कि आचार्य द्रोण मारे नहीं गये। वे महानुभाव पाण्डव-शिरोमणि आज कर्णके द्वारा संग्राममें संशयापन्न अवस्थामें डाल दिये गये हैं; अतः आप शीघ्र ही उनका समाचार जाननेके लिये जाइये, मैं यहाँ शत्रुओंको रोके रहूँगा॥ ६-७॥

भीमसेन उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव
राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य।
अहं हि यद्यर्जुन यास्यमित्रा
वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः॥ ८॥

भीमसेनने कहा—महानुभाव! तुम्हीं जाकर भरत-कुल-भूषण नरेशका समाचार जानो। अर्जुन! यदि मैं यहाँसे जाऊँगा तो मेरे वीर शत्रु मुझे डरपोक कहेंगे॥ ८॥

ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं
संशप्तकाः प्रत्यनीकं स्थिता मे।
एतानहत्वाद्य मया न शक्य-
मितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात्॥ ९॥

तब अर्जुनने भीमसेनसे कहा—'भैया! संशप्तकगण मेरे विपक्षमें खड़े हैं। इन्हें मारे बिना आज मैं इस शत्रु-समुदायरूपी गोष्ठसे बाहर नहीं जा सकता'॥ ९॥

अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः
स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर।
संशप्तकान् प्रतियोत्स्यामि संख्ये
सर्वानहं याहि धनंजय त्वम्॥ १०॥

यह सुनकर भीमसेनने अर्जुनसे कहा—'कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर धनंजय! मैं अपने ही बलका भरोसा करके संग्राम-भूमिमें सम्पूर्ण संशप्तकोंके साथ युद्ध करूँगा, तुम जाओ'॥ १०॥



धर्मराजके चरणोंमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन प्रणाम कर रहे हैं

संजय उवाच

तद् भीमसेनस्य वचो निशम्य
सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः
सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११ ॥
उवाच नारायणमप्रमेयं
कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्त्व-
स्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ।
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्
प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं— राजन् ! शत्रुओंकी मण्डलीमें अपने भाई भीमसेनका यह अत्यन्त दुष्कर वचन सुनकर कि 'मैं अकेला ही असह्य संशप्तक सेनाका सामना करूँगा' उदार हृदयवाले महात्मा कपिध्वज अर्जुनने सत्यपराक्रमी भाई भीमके उस सत्य वचनको श्रवणगोचर करके उसे अप्रमेय, वृष्णिवंशावतंस नारायणावतार भगवान् श्रीकृष्णको बताया और उस समय कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे जानेको उद्यत हो इस प्रकार कहा ॥ ११-१२ ॥

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद् बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश ! अब आप इस शत्रुसेनारूपी समुद्रको छोड़कर घोड़ोंको यहाँसे हाँक ले चलें । केशव ! मैं अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

संजय उवाच

ततो हयान् सर्वदाशार्हमुख्यः
प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम
यास्याम्यहं जहि पार्थारिसंघान् ॥ १४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर सम्पूर्ण दाशार्हवंशियोंमें प्रधान भगवान् श्रीकृष्ण अपने घोड़े हाँकते हुए वहाँ भीमसेनसे इस प्रकार बोले 'कुन्तीनन्दन भीम ! आज यह पराक्रम तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । मैं जा रहा हूँ । तुम शत्रु-समूहोंका संहार करो' ॥ १४ ॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन् वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥ १५ ॥

राजन् ! यह कहकर भगवान् हृषीकेश गरुड़के समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा शीघ्र-से-शीघ्र वहाँ जा पहुँचे, जहाँ राजा युधिष्ठिर विश्राम कर रहे थे ॥ १५ ॥

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिंदमम् ।
संदिश्य चैतं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ १६ ॥

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ
राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्
ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! शत्रुओंका सामना करनेके लिये शत्रुदमन वृकोदर भीमसेनको स्थापित करके और युद्धके विषयमें उन्हें पूर्वोक्त संदेश देकर वे दोनों पुरुष-शिरोमणि अकेले सोये हुए राजा युधिष्ठिरके पास जा रथसे नीचे उतरे और उन्होंने धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १६-१७ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ १८ ॥
तावभ्यनन्दद् राजापि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ १९ ॥

पुरुषसिंह पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण एवं अर्जुनको सकुशल देखकर तथा दोनों कृष्णोंको इन्द्रके पास गये हुए अश्विनीकुमारोंके समान प्रसन्नतापूर्वक अपने समीप आया जान राजा युधिष्ठिरने उनका उसी तरह अभिनन्दन किया, जैसे सूर्य दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वागत करते हैं । अथवा जैसे महान् असुर जम्भके मारे जानेपर बृहस्पतिने इन्द्र और विष्णुका अभिनन्दन किया था ॥ १८-१९ ॥

मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपः ॥ २० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरने कर्णको मारा गया मानकर हर्षगद्गद वाणीसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया ॥ २० ॥

अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ
शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ
युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१ ॥

सेनाके अग्रभागमें युद्ध करनेवाले पुरुषोंमें प्रमुख वीर विशाल एवं लाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन जब समीप आये, तब उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे । वे खूनसे लथपथ हो रहे थे; उन्हें देखकर युधिष्ठिरने निम्नाङ्कित रूपसे बातचीत आरम्भ की ॥ २१ ॥

महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्वना ॥ २२ ॥

एक साथ आये हुए महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर उन्हें यह पक्का विश्वास हो गया था कि गाण्डीवधारी अर्जुनने युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको मार डाला है ॥ २२ ॥

तावभ्यनन्दत् कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन् भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यही सोचकर कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने मुस्कराकर शत्रुसूदन श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए परम मधुर और सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा उन दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति श्रीकृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरके पास श्रीकृष्ण और अर्जुनका आगमनविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनंजय ।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १ ॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः ।

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! तुम्हारा स्वागत हो । धनंजय ! तुम्हारा भी स्वागत है । श्रीकृष्ण और अर्जुन ! इस समय तुम दोनोंका दर्शन मुझे अत्यन्त प्रिय लगा है; क्योंकि तुम दोनोंने स्वयं किसी प्रकारकी क्षति न उठाकर सकुशल रहते हुए महारथी कर्णको मार डाला है ॥ १½ ॥

आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २ ॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च ।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३ ॥

कर्ण युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर, सम्पूर्ण शस्त्रविद्याओंमें निपुण तथा कौरवोंका अगुआ था । वह शत्रुपक्षमें सबका कल्याण-साधक और कवच बना हुआ था । वृषसेन और सुषेण-जैसे धनुर्धर उसकी रक्षा करते थे ॥ २-३ ॥

अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम् ।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ॥ ४ ॥

परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके वह महान् शक्तिशाली और अत्यन्त दुर्जय हो गया था । समस्त संसारका सर्वश्रेष्ठ रथी एवं विश्वविख्यात वीर था ॥ ४ ॥

त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र-पुत्रोंका रक्षक, सेनाके मुहानेपर जाकर युद्ध करनेवाला, शत्रु-सैनिकोंका संहार करनेमें समर्थ तथा विरोधियोंका मान मर्दन करनेवाला था ॥ ५ ॥

दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम् ।
अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६ ॥

वह सदा दुर्योधनके हितमें संलग्न रहकर हमलोगोंको दुःख देनेके लिये उद्यत रहता था । महायुद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसे परास्त नहीं कर सकते थे ॥ ६ ॥

अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च ।
पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥ ७ ॥
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे ।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ८ ॥

वह तेजमें अग्नि, बलमें वायु और गम्भीरतामें पातालके समान था । अपने मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाला और मेरे मित्रोंके लिये यमराजके समान था । किसी असुरको जीतकर आये हुए दो देवताओंके समान तुम दोनों मित्र महासमरमें कर्णको मारकर यहाँ आ गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥

घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन ! सम्पूर्ण प्रजाका संहार करनेकी इच्छा रखनेवाले कालके समान उस कर्णने आज मेरे साथ घोर युद्ध किया था । फिर भी मैंने उसमें दीनता नहीं दिखायी॥

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी ।
हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः ।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ११ ॥

उसने सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदीपुत्र तथा पाञ्चालोंके देखते-देखते मेरी ध्वजा काट डाली, पार्श्वरक्षकोंको मार डाला और मेरे घोड़ोंका भी संहार कर डाला था ॥ १०-११ ॥

एताञ्जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान् बहून् ।
जितवान् मां महाबाहो यतमानो महारणे ॥ १२ ॥

महाबाहो ! महायुद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले महापराक्रमी कर्णने इन बहुसंख्यक शत्रुगणोंको परास्त करके मुझपर विजय पायी थी ॥ १२ ॥

अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान् बहु ।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥ १३ ॥
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनंजय ।
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर ! उसने युद्धमें मेरा पीछा करके जहाँ-तहाँ मुझे अपमानित करते हुए बहुत-से कटुवचन सुनाये हैं—इसमें संशय नहीं है । धनंजय ! मैं इस समय भीमसेनके प्रभावसे ही जीवित हूँ । यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ ? मैं उस अपमानको किसी प्रकार सह नहीं सकता ॥१३-१४॥

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद् भीतो धनंजय ।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥ १५ ॥

अर्जुन ! मैं जिससे भयभीत होकर तेरह वर्षोंतक न

तो रातमें अच्छी तरह नींद ले सका और न दिनमें ही कहीं सुख पा सका ॥ १५ ॥

तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनंजय।
आत्मनो मरणे यातो वाध्रीणस इव द्विपः ॥ १६ ॥

धनंजय ! मैं उसके द्वेषसे निरन्तर जलता रहा। जैसे वाध्रीणस नामक पशु अपनी मौतके लिये ही वधस्थानमें पहुँच जाय, उसी प्रकार मैं भी अपनी मृत्युके लिये कर्णका सामना करने चला गया था ॥ १६ ॥

तस्यायमगमत् कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम्।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥ १७ ॥

मैं कर्णको युद्धमें कैसे मार सकता हूँ, यही सोचते हुए मेरा यह दीर्घकाल व्यतीत हुआ है ॥ १७ ॥

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम्।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८ ॥

कुन्तीनन्दन ! मैं जागते और सोते समय सदा कर्णको ही देखा करता था। यह सारा जगत् मेरे लिये जहाँ-तहाँ कर्णमय हो रहा था ॥ १८ ॥

यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद् भीतो धनंजय।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ १९ ॥

धनंजय ! मैं जहाँ-जहाँ भी जाता, कर्णसे भयभीत होनेके कारण सदा उसीको अपने सामने खड़ा देखता था ॥ १९ ॥

सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ २० ॥

पार्थ ! मैं समरभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले उसी वीर कर्णके द्वारा रथ और घोड़ोंसहित परास्त करके केवल जीवित छोड़ दिया गया हूँ ॥ २० ॥

को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत् पुनः।
ममैवं विक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥ २१ ॥

अब मुझे इस जीवनसे तथा राज्यसे क्या प्रयोजन है ? जब कि आज युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णने मुझे इस प्रकार क्षत-विक्षत कर डाला है ॥ २१ ॥

न प्राप्तपूर्वं यद् भीष्मात् कृपद्रोणाच्च संयुगे।
तत् प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २२ ॥

पहले कभी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे भी मुझे युद्धस्थलमें जो अपमान नहीं प्राप्त हुआ था, वही आज महारथी सूतपुत्रसे युद्धमें प्राप्त हो गया है ॥ २२ ॥

स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २३ ॥

कुन्तीनन्दन ! इसीलिये मैं तुमसे पूछता हूँ कि आज जिस प्रकार सकुशल रहकर तुमने कर्णको मारा है, वह सारा समाचार मुझे पूर्णरूपसे बताओ ॥ २३ ॥

शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे।
रामतुल्यस्तथास्त्रेण स कथं वै निषूदितः ॥ २४ ॥

जो युद्धमें इन्द्रके समान बलवान्, यमराजके समान पराक्रमी और परशुरामजीके समान अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता था, वह कर्ण कैसे मारा गया ॥ २४ ॥

महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५ ॥
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण महाबलः।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥ २६ ॥

जो सम्पूर्ण युद्धकी कलामें कुशल, विख्यात महारथी, धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ तथा सब शत्रुओंमें प्रधान पुरुष था, जिसे पुत्रसहित धृतराष्ट्रने तुम्हारा सामना करनेके लिये ही सम्मानपूर्वक रक्खा था, वह महाबली राधापुत्र कर्ण तुम्हारे द्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २५-२६ ॥

धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥

पुरुषप्रवर अर्जुन ! दुर्योधन रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण योद्धाओंमेंसे कर्णको ही तुम्हारी मृत्यु मानता था ॥ २७ ॥

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २८ ॥

कुन्तीपुत्र ! पुरुषसिंह ! तुमने कैसे युद्धमें उस कर्णको मारा है ? कर्ण जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा मारा गया है, वह सब समाचार मुझे बताओ ॥ २८ ॥

युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम्।
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥ २९ ॥

पुरुषसिंह ! जैसे सिंह रुरु नामक मृगका मस्तक काट लेता है, उसी प्रकार तुमने समस्त सुहृदोंके देखते-देखते जो जूझते हुए कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया है, वह किस प्रकार सम्भव हुआ ॥ २९ ॥

यः पर्युपासीत् प्रदिशो दिशश्च
त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन्।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं
स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३० ॥
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः
कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं
त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥

अर्जुन ! समराङ्गणमें जो सूतपुत्र कर्ण सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें तुम्हें पानेके लिये चक्कर लगाता था और तुम्हारा पता बतानेवालेको हाथीके समान छः बैल देना चाहता था, वही दुरात्मा सूतपुत्र क्या इस समय रणभूमिमें तुम्हारे द्वारा कङ्कपत्रयुक्त तीखे बाणोंसे मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा है ? आज रणक्षेत्रमें सूतपुत्रको मारकर तुमने मेरा यह परम प्रिय कार्य पूर्ण किया है ? ॥ ३०-३१ ॥

यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे
सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः ।
स शूरमानी समरे समेत्य
कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥ ३२ ॥

जो सदा सम्मानित होकर घमंडमें भरा हुआ सूतपुत्र तुम्हारे लिये सब ओर धावा किया करता था, अपनेको शूरवीर माननेवाले उस कर्णको समराङ्गणमें उसके साथ युद्ध करके क्या तुमने मार डाला है ? ॥ ३२ ॥

रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं
रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे ।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः
कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३३ ॥

तात ! जो रणक्षेत्रमें तुम्हारा पता बतानेके लिये दूसरोंको हाथी-घोड़ोंसे युक्त सोनेका बना हुआ सुन्दर रथ देनेका हौसला रखता और सदा तुमसे होड़ लगाता था, वह पापी क्या युद्धस्थलमें तुम्हारे द्वारा मार डाला गया ? ॥ ३३ ॥

योऽसौ सदा शूरमदेन मत्तो
विकत्थते संसदि कौरवाणाम् ।
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य
कच्चित् सपापो निहतस्त्वयाद्य ॥ ३४ ॥

जो शौर्यके मदसे उन्मत्त हो कौरवोंकी सभामें सदा बढ़-बढ़कर बातें बनाया करता था और दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था, क्या उस पापी कर्णको तुमने आज मार डाला? ॥ ३४ ॥

कच्चित् समागम्य धनुःप्रयुक्तै-
स्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः ।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः
कच्चिद् भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५ ॥

क्या आज युद्धमें तुमसे भिड़कर तुम्हारे द्वारा धनुषसे छोड़े गये लाल अङ्गोंवाले आकाशचारी बाणोंसे सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वह पापी कर्ण आज पृथ्वीपर पड़ा है ? क्या उसके मरनेसे दुर्योधनकी दोनों बाँहें टूट गयीं ? ॥

योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये
दुर्योधनं हर्षयन् दर्पपूर्णः ।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात्
कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३६ ॥

जो राजाओंके बीचमें दुर्योधनका हर्ष बढ़ाता हुआ घमंडमें भरकर सदा मोहवश यह डींग हाँकता था कि मैं अर्जुनका वध कर सकता हूँ । क्या उसकी वह बात आज निष्फल हो गयी ? ॥ ३६ ॥

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचित्
यावत् स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः ।
व्रतं तस्यैतत् सर्वदा शक्रसूनो
कच्चित् त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः ॥ ३७ ॥

इन्द्रकुमार ! उस मन्दबुद्धि कर्णने सदाके लिये यह व्रत ले रक्खा था कि जबतक कुन्तीकुमार अर्जुन जीवित हैं, तबतक मैं दूसरोंसे पैर नहीं धुलाऊँगा । क्या उस कर्णको तुमने आज मार डाला ? ॥ ३७ ॥

योऽसौ कृष्णामब्रवीद् दुष्टबुद्धिः
कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे
सुदुर्बलान् पतितान् हीनसत्त्वान् ॥ ३८ ॥

जिस दुष्टबुद्धिवाले कर्णने कौरव-वीरोंके बीच भरी सभामें द्रौपदीसे कहा था कि 'कृष्णे ! तू इन अत्यन्त दुर्बल, पतित और शक्तिहीन पाण्डवोंको छोड़ क्यों नहीं देती ?' ॥ ३८ ॥

योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे
नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम् ।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः
कच्चिच्छेते शरसम्भिन्नगात्रः ॥ ३९ ॥

'जिस कर्णने तुम्हारे लिये यह प्रतिज्ञा की थी कि 'आज मैं श्रीकृष्णसहित अर्जुनको मारे बिना यहाँ नहीं लौटूँगा' क्या वह पापात्मा तुम्हारे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़ा है ? ॥ ३९ ॥

कच्चित् संग्रामो विदितो वै तवायं
समागमे सृञ्जयकौरवाणाम् ।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं
कच्चित् त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा ॥ ४० ॥

क्या तुम्हें आजके संघर्षमें सृंजयों और कौरवोंका जो यह संग्राम हुआ था, उसका समाचार ज्ञात हुआ है, जिसमें मैं ऐसी दुर्दशाको पहुँचा दिया गया । क्या तुमने आज उस दुरात्मा कर्णको मार डाला ? ॥ ४० ॥

कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धे-
र्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं
कायात् प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४१ ॥

सव्यसाची अर्जुन ! क्या तुमने युद्धस्थलमें गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये प्रज्वलित बाणोंद्वारा उस मन्दबुद्धि कर्णके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकको धड़से काट गिराया ? ॥ ४१ ॥

यत्तन्मया बाणसमर्पितेन
ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य
ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२ ॥

वीर ! जिस समय मैं बाणोंसे घायल कर दिया गया, उस समय कर्णके वधके लिये मैंने तुम्हारा चिन्तन किया था । क्या तुमने कर्णको धराशायी करके मेरे उस चिन्तनको आज सफल बना दिया ? ॥ ४२ ॥

यद् दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मा-
नुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित् त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य
भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४३ ॥

कर्णका आश्रय लेकर दुर्योधन जो बड़े घमंडमें भरकर हमलोगोंकी ओर देखा करता था। क्या तुमने दुर्योधनके उस महान् आश्रयको आज पराक्रम करके नष्ट कर दिया ?॥

यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्
सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये
त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी ॥ ४४ ॥

जिसने पूर्वकालमें सभा-भवनके भीतर कौरवोंकी आँखों-के सामने हमें थोथे तिलोंके समान नपुंसक बताया था वह अमर्षशील दुर्बुद्धि सूतपुत्र क्या आज युद्धमें आकर तुम्हारे हाथसे मारा गया ? ॥ ४४ ॥

यः सूतपुत्रः प्रहसन् दुरात्मा
पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनी-
मपीह कच्चित् स हतस्त्वयाद्य ॥ ४५ ॥

जिस दुरात्मा सूतपुत्र कर्णने हँसते-हँसते पहले दुःशासन-से यह बात कही थी कि 'सुबलपुत्रके द्वारा जीती हुई द्रुपद-कुमारीको तुम स्वयं जाकर बलपूर्वक यहाँ ले आओ, क्या तुमने आज उसे मार डाला ? ॥४५॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां
पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः ।
संख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चित्
त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन् ॥ ४६ ॥

महात्मन् ! जो पृथ्वीपर समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठतम समझा जाता था तथा जिस मूर्खने अर्धरथी गिना जानेपर पितामह भीष्मके ऊपर महान् आक्षेप किया था, उस अधि-रथपुत्रको क्या तुमने आज मार डाला ?॥४६॥

अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं
हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम ।
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण
इति ब्रुवन् प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन ॥ ४७ ॥

फाल्गुन ! मेरे हृदयमें जिस कर्णकी शठतारूपी वायुसे प्रेरित हो अमर्षकी आग सदा प्रज्वलित रहती है 'उस कर्ण-को आज युद्धमें पाकर मैंने मार डाला' ऐसा कहते हुए क्या तुम आज मेरी उस आगको बुझा दोगे ? ॥ ४७ ॥

ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य
कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर
वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः ॥ ४८ ॥

बोलो, मेरे लिये यह समाचार अत्यन्त दुर्लभ है । वीरवर ! तुमने सूतपुत्रको कैसे मारा ? मैं वृत्रासुरके मारे जानेपर भगवान् इन्द्रके समान सदा तुम्हारे विजयी स्वरूपका चिन्तन करता हूँ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनका युधिष्ठिरसे अबतक कर्णको न मार सकनेका कारण बताते हुए उसे मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना

संजय उवाच

तद् धर्मशीलस्य वचो निशम्य
राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं
युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा नरेशकी वह बात सुनकर अनन्त पराक्रमी अतिरथी महात्मा विजयशील अर्जुनने उदारचित्त एवं दुर्जय राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य
सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् ।
आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन्
द्रौणिः पुरस्तात् सहसाभ्यतिष्ठत् ॥ २ ॥

राजन् ! आज जब मैं संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय कौरवसेनाका अगुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंका प्रहार करता हुआ सहसा मेरे सामने आकर खड़ा हो गया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव
समस्तसेना च रणेऽभ्यतिष्ठत् ।
तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा
ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥

भूपालशिरोमणे ! इधर कौरवोंकी सारी सेना मेघके समान गम्भीर घर्घर ध्वनि करनेवाले मेरे रथको देखकर युद्ध-

के लिये डटकर खड़ी हो गयी, तब मैंने उस सेनामेंसे पाँच सौ वीरोंका वध करके आचार्यपुत्रपर आक्रमण किया ॥ ३॥

स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः
समभ्ययात् सिंहमिव द्विपेन्द्रः ।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां
महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४ ॥

नरेन्द्र ! जैसे गजराज सिंहकी ओर दौड़े, उसी प्रकार अश्वत्थामाने मुझे सामने पाकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो मुझपर आक्रमण किया । महाराज ! उसने मारे जाते हुए कौरव रथियोंका उद्धार करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥

ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य
आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् ।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कै-
र्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५ ॥

भारत ! तदनन्तर कौरवोंके प्रधान वीर दुर्धर्ष आचार्य-पुत्रने रणक्षेत्रमें विष और अग्निके समान भयंकर तीखे बाणों-द्वारा मुझे और श्रीकृष्णको पीड़ित करना प्रारम्भ किया ।५।

अष्टागवामष्ट शतानि बाणान्
मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणै-
र्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६ ॥

मेरे साथ युद्ध करते समय अश्वत्थामाके लिये आठ-आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़े सैकड़ों-हजारों बाण ढोते रहते थे । उसके चलाये हुए उन सभी बाणोंको मैंने अपने बाणों-से मारकर उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे वायु मेघोंके समूह-को छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ६ ॥

ततोऽपरान् बाणसंघाननेका-
नाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नै-
स्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी काली घटा जलकी वर्षा करती है, उसी प्रकार शिक्षा, अस्त्र, बल और प्रयत्नों-द्वारा धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये बहुत-से बाणसमूह उसने बरसाये ॥ ७ ॥

नैवाददानं न च संदधानं
जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन
स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥ ८ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समरभूमिमें चारों ओर चक्कर लगाने लगा । वह कब बाण लेता, कब उसे धनुषपर रखता और कब किस हाथसे बायें अथवा दायेंसे छोड़ता था, यह हम-लोग नहीं जान पाते थे ॥ ८ ॥

तस्याततं मण्डलमेव सज्यं
प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः
शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ९ ॥

केवल प्रत्यञ्चासहित तना हुआ उस द्रोणपुत्रका मण्डला-कार धनुष ही दिखायी देता था । उसने पाँच तीखे बाणोंसे मुझको और पाँचसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ ९ ॥

अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः
समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणाच्छ्वावित्समरूपो बभूव
समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥ १० ॥

तब मैंने पलक मारते-मारते वज्रके समान तीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा उसे क्षणभरमें पीड़ित कर दिया । मेरे छोड़े हुए बाणोंसे घायल होनेपर उसका स्वरूप काँटोंसे भरे साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ १० ॥

स विक्षरन् रुधिरं सर्वगात्रै-
रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतान् सैनिकानां प्रबर्हा-
नसौ प्रपश्यन् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११ ॥

तब वह सारे शरीरसे खूनकी धारा बहाता हुआ मेरेद्वारा पीड़ित हुए समस्त सैनिक शिरोमणियोंको खूनसे लथपथ देखकर सूतपुत्र कर्णकी रथसेनामें घुस गया ॥ ११ ॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं
वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य
कर्णस्त्वरन् मामुपायात् प्रमाथी ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अपनी सेनाके योद्धाओंको भयसे आक्रान्त और हाथी-घोड़ोंको भागते देख पचास मुख्य-मुख्य रथियोंको साथ ले शत्रुओंको मथ डालनेवाला कर्ण बड़ी उतावलीके साथ मेरे पास आया ॥ १२ ॥

तान् सूदयित्वाहमपास्य कर्णं
द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं
दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव ॥ १३ ॥

उन पचासों रथियोंका संहार करके कर्णको छोड़कर मैं बड़ी उतावलीके साथ आपका दर्शन करनेके लिये चला आया हूँ । जैसे गौएँ सिंहको देखकर डर जाती हैं, उसी प्रकार सारे पाञ्चालसैनिक कर्णको देखकर उद्विग्न हो उठते हैं ॥ १३ ॥

मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ।
रथांस्तु तान् सप्तशतान् निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म ॥ १४ ॥

राजन् ! मृत्युके फैले हुए मुँहके समान कर्णके पास पहुँचकर प्रभद्रकगण भारी संकटमें पड़ गये । कर्णने युद्धके समुद्रमें डूबे हुए उन सात सौ रथियोंको तत्काल मृत्युके लोक-में भेज दिया था ॥ १४ ॥

न चाप्यभूत् क्लान्तमनाः स राजन्
यावन्नास्मान् दृष्टवान् सूतपुत्रः ।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेत-
मश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च ॥ १५ ॥
मन्ये कालमपयानस्य राजन्
क्रूरात् कर्णात् तेऽहमचिन्त्यकर्मन् ।

अचिन्त्यकर्मा नरेश्वर ! जबतक सूतपुत्रने हमलोगोंको नहीं देखा था, तबतक उसके मनमें उद्वेग या खेद नहीं हुआ था। मैंने जब सुना कि उसने पहले आपपर दृष्टिपात किया था और आपसे उसका युद्ध भी हुआ था, साथ ही उससे भी पहले अश्वत्थामाने आपको क्षत-विक्षत कर दिया था, तब क्रूरकर्मा कर्णके सामनेसे आपका यहाँ चला आना ही मुझे समयोचित प्रतीत हुआ ॥ १५½ ॥

मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ताद्
युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम् ॥ १६ ॥
न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां
महारथं योऽद्य सहेत कर्णम् ।

पाण्डुनन्दन ! मैंने युद्धमें अपने सामने कर्णके इस विचित्र अस्त्रको देखा था । सृंजयोंमें दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो आज महारथी कर्णका सामना कर सके ॥१६½॥

शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ
धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥ १७ ॥
युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ
पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ ।

राजन् ! शिनिपौत्र सात्यकि और धृष्टद्युम्न मेरे चक्र-रक्षक हों; युधामन्यु और उत्तमौजा, ये दोनों शूरवीर राज-कुमार मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ १७½ ॥

रथप्रवीरेण महानुभाव
द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण ॥ १८ ॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये
वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य ।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्र-
मस्मिन् संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १९ ॥

महानुभाव ! भरतवंशी नृपश्रेष्ठ ! शत्रुसेनामें विद्यमान रथियोंमें प्रमुख वीर दुर्जय सूतपुत्र कर्णके साथ, यदि इस संग्राममें आज वह मुझे दीख जाय तो युद्धस्थलमें मिलकर मैं उसी तरह युद्ध करूँगा, जैसे वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरके साथ किया था ॥ १८-१९ ॥

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं
मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय ।
महोरगस्येव मुखं प्रपन्नाः
प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति ॥ २० ॥

आइये, देखिये, आज मैं रणभूमिमें सूतपुत्रपर विजय पानेके लिये युद्ध करना चाहता हूँ । प्रभद्रकगण कर्णपर धावा कर रहे हैं, ऐसा करके वे मानो अजगरके मुखमें पड़ गये हैं ॥ २० ॥

षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः
स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः ।
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्
सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥ २१ ॥
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या
कष्टा याता तामहं राजसिंह ।

भारत ! छः हजार राजकुमार स्वर्गलोकमें जानेके लिये युद्धके सागरमें मग्न हो गये हैं । राजन् ! राजसिंह ! यदि आज मैं बन्धुओंसहित युद्धमें तत्पर हुए कर्णको हठपूर्वक न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवालेको जो दुःखदायी गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी पाऊँगा ॥२१½॥

आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२ ॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३ ॥

मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ । आप रणभूमिमें मेरी विजयका आशीर्वाद दीजिये । नरेन्द्रसिंह ! धृतराष्ट्रके पुत्र भीमसेनको ग्रस लेनेकी चेष्टा कर रहे हैं । मैं इसके पहले ही सूतपुत्र कर्णको, उसकी सेनाको तथा सम्पूर्ण शत्रुओंको मार डालूँगा ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन

संजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं कल्यमुदारवीर्यं
क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनंजयं वाक्यमुवाच चेदं
युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कर्णके बाणोंसे संतप्त हुए अमित

तेजस्वी कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिर अधिक बलशाली कर्णको सकुशल सुनकर अर्जुनपर कुपित हो उनसे इस प्रकार बोले—॥

विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया
तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं
यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम्॥ २॥

'तात! तुम्हारी सारी सेना भाग चली है। तुमने आज उसकी ऐसी उपेक्षा की है, जो किसी प्रकार अच्छी नहीं कही जा सकती। जब तुम कर्णको जीत नहीं सके तो भयभीत हो भीमसेनको वहीं छोड़कर यहाँ चले आये॥ २॥

स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया
गर्भे समाविश्य यथा न साधु।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं
यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम्॥ ३॥

'पार्थ! तुमने कुन्तीके गर्भमें निवास करके भी अपने सगे भाईके प्रति ऐसा स्नेह निभाया, जिसे कोई अच्छा नहीं कह सकता; क्योंकि जब तुम सूतपुत्र कर्णके मारनेमें समर्थ न हो सके, तब भीमसेनको अकेले रणभूमिमें छोड़कर स्वयं वहाँसे चले आये॥ ३॥

यत् तद् वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं
कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम्।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः
कर्णाद् भीतो भीमसेनं विहाय॥ ४॥

'तुमने द्वैतवनमें जो यह सत्य वचन कहा था कि 'मैं एकमात्र रथके द्वारा युद्ध करके कर्णको मार डालूँगा' उस प्रतिज्ञाको तोड़कर कर्णसे भयभीत हो भीमसेनको छोड़कर आज तुम रणभूमिसे लौट कैसे आये?॥ ४॥

इदं यदि द्वैतवनेऽप्यचक्षः
कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे
कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ॥ ५॥

'पार्थ! यदि तुमने द्वैतवनमें यह कह दिया होता कि 'राजन्! मैं कर्णके साथ युद्ध नहीं कर सकूँगा' तो हम सब लोग समयोचित कर्तव्यका निश्चय करके उसीके अनुसार कार्य करते॥ ५॥

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य
न वै कृतं तच्च तथैव वीर।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्
समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्टा॥ ६॥

'वीर! तुमने मुझसे कर्णके वधकी प्रतिज्ञा करके उसका उसी रूपमें पालन नहीं किया। यदि ऐसा ही करना था तो हमें शत्रुओंके बीचमें लाकर पत्थरकी वेदीपर पटककर पीस क्यों डाला?॥ ६॥

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि
यियासवो बहु कल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र
फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥ ७॥

'राजकुमार अर्जुन! हमने बहुत-से मङ्गलमय अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर तुमपर आशा लगा रक्खी थी; परंतु फल चाहनेवाले मनुष्योंको अधिक फूलोंवाला फलहीन वृक्ष जैसे निराश कर देता है, उसी प्रकार तुमसे हमारी सारी आशा निष्फल हो गयी॥ ७॥

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण
संछादितं गरलमिवाशनेन।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं
राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्॥ ८॥

'मैं राज्य पाना चाहता था; किंतु तुमने मांससे ढके हुए वंशीके काँटे और भोजनसामग्रीसे आच्छादित हुए विषके समान मुझे राज्यके रूपमें अनर्थकारी विनाशका ही दर्शन कराया है॥ ८॥

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं
त्वामन्वजीविष्म धनंजयाशया।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं
तन्नः सर्वान् नरके त्वं न्यमज्जः॥ ९॥

'धनंजय! जैसे बोया हुआ बीज समयपर मेघद्वारा की हुई वर्षाकी प्रतीक्षामें जीवित रहता है, उसी प्रकार हमने तेरह वर्षोंतक सदा तुमपर ही आशा लगाकर जीवन धारण किया था; परंतु तुमने हम सब लोगोंको नरकमें डुबो दिया (भारी संकटमें डाल दिया)॥ ९॥

यत्तत् पृथां वागुवाचान्तरिक्षे
सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धे।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं
सर्वाञ्शूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति॥ १०॥

मन्दबुद्धि अर्जुन! तुम्हारे जन्म लिये अभी सात ही दिन बीते थे कि माता कुन्तीसे आकाशवाणीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'देवि! तुम्हारा यह पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी पैदा हुआ है। यह अपने समस्त शूरवीर शत्रुओंको जीत लेगा॥ १०॥

अयं जेता खाण्डवे देवसंघान्
सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः।
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकया-
नयं कुरून् राजमध्ये निहन्ता॥ ११॥

''यह उत्तम शक्तिसे सम्पन्न बालक खाण्डववनमें देवताओंके समूहों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर भी विजय प्राप्त करेगा। यह मद्र, कलिंग और केकयोंको जीतेगा तथा राजाओंकी मण्डलीमें कौरवोंका भी विनाश कर डालेगा॥ ११॥

अस्मात् परो नो भविता धनुर्धरो
नैनं भूतं किंचन जातु जेता।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्
वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥

'इससे बढ़कर दूसरा कोई धनुर्धर नहीं होगा। कोई भी प्राणी कभी भी इसे जीत नहीं सकेगा। यह अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त कर लेगा और इच्छा करते ही सभी प्राणियोंको अपने अधीन कर सकेगा ॥ १२ ॥

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः
स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या
शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः ॥ १३ ॥

'यह चन्द्रमाकी कान्ति, वायुके वेग, मेरुकी स्थिरता, पृथ्वीकी क्षमा, सूर्यकी प्रभा, कुबेरकी लक्ष्मी, इन्द्रके शौर्य और भगवान् विष्णुके बलसे सम्पन्न होगा ॥ १३ ॥

तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो
जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय
ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता ॥ १४ ॥

'कुन्ति! तुम्हारा यह महामनापुत्र अदितिके गर्भसे प्रकट हुए शत्रुहन्ता भगवान् विष्णुके समान उत्पन्न हुआ है। यह अमितबलशाली बालक स्वजनोंकी विजय और शत्रुओंके वधके लिये प्रसिद्ध एवं अपनी कुलपरम्पराका प्रवर्तक होगा' ॥ १४ ॥

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि
तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच।
एवंविधं तच्च नाभूत् तथा च
देवापि नूनमनृतं वदन्ति ॥ १५ ॥

'शतशृङ्ग पर्वतके शिखरपर तपस्वी महात्माओंके सुनते हुए आकाशवाणीने ये बातें कही थीं; परंतु उसका यह कथन सफल नहीं हुआ। निश्चय ही देवतालोग भी झूठ बोलते हैं ॥ १५ ॥

तथा परेषामृषिसत्तमानां
श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम्।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य
न त्वां जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ॥ १६ ॥

'इसी प्रकार दूसरे महर्षि भी सदा तुम्हारी प्रशंसा करते हुए ऐसी ही बातें कहा करते थे। उनकी बातें सुनकर ही मैं दुर्योधनके सामने कभी नतमस्तक न हो सका; परंतु मैं यह नहीं जानता था कि तुम अधिरथपुत्र कर्णके भयसे पीड़ित हो जाओगे ॥ १६ ॥

पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन
न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य
मौर्ख्यात् तु तन्नावबुद्धं मयाऽऽसीत् ॥ १७ ॥

'दुर्योधनने पहले ही जो यह बात कह दी थी कि 'अर्जुन युद्धमें महाबली कर्णके सामने नहीं खड़े हो सकेंगे' उसके इस कथनपर मैंने मूर्खतावश विश्वास नहीं किया था ॥ १७ ॥

तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं
यच्छत्रुवर्गे नरकं प्रविष्टः।
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं
न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथंचित् ॥ १८ ॥
ततो नाहं सृञ्जयान् केकयांश्च
समानयेयं सुहृदो रणाय।

'इसीलिये आज संतप्त हो रहा हूँ। शत्रुओंके समुदायमें फँसकर अत्यन्त असीम नरक-तुल्य सङ्कटमें पड़ गया हूँ। अर्जुन! तुम्हें पहले ही यह कह देना चाहिये था कि 'मैं सूतपुत्र कर्णके साथ किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा'। वैसी दशामें मैं सृंजयों, केकयों तथा अन्यान्य सुहृदोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं करता ॥ १८½ ॥

एवं गते किं च मयाद्य शक्यं
कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १९ ॥
तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य
ये चापि मां योद्धुकामाः समेताः।

'आज जब ऐसी परिस्थिति है, तब सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन तथा अन्य जो लोग मेरे साथ युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके साथ छिड़े हुए इस संग्राममें मैं कौन-सा कार्य कर सकता हूँ? ॥ १९½ ॥

धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥ २० ॥
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः।

'श्रीकृष्ण! मैं कौरवों, सुहृदों तथा अन्य जो लोग युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके बीचमें आज सूतपुत्र कर्णके अधीन हो गया। मेरे जीवनको धिक्कार है ॥

(एकस्तु मे भीमसेनोऽद्य नाथो
येनाभिपन्नोऽस्मि रणे महाभये।
विमोच्य मां चापि रुषान्वितस्ततः
शरेण तीक्ष्णेन बिभेद कर्णम् ॥

'आज एकमात्र भीमसेन ही मेरे रक्षक हैं, जिन्होंने महान् भयदायक संग्राममें सब ओरसे मेरी रक्षा की है। उन्होंने मुझे संकटसे मुक्त करके अपने पैने बाणसे कर्णको बींध डाला था।

त्यक्त्वा प्राणान् समरे भीमसेन-
श्चक्रे युद्धं कुरुभिः समेतैः ।
गदाग्रहस्तो रुधिरोक्षिताङ्ग-
श्चरन् रणे काल इवान्तकाले ॥
असौ हि भीमस्य महान् निनादो
मुहुर्मुहुः श्रूयते धार्तराष्ट्रैः ॥)

'भीमसेनका शरीर खूनसे नहा उठा था। फिर भी वे हाथमें गदा लेकर प्रलयकालके यमराजकी भाँति रणभूमिमें विचरते थे और प्राणोंका मोह छोड़कर समराङ्गणमें एकत्र हुए कौरवोंके साथ युद्ध करते थे। धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध करते हुए भीमसेनका वह महान् सिंहनाद बारंबार सुनायी दे रहा है ॥

यदि स्म जीवेत् स भवेन्निहन्ता
महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ
न चास्मि गन्ता समरे पराभवम् ॥ २१ ॥
अथापि जीवेत् समरे घटोत्कच-
स्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः ।

'पार्थ! यदि महारथियोंमें श्रेष्ठ और उत्तम रथी तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु जीवित होता तो वह शत्रुओंका वध अवश्य करता। फिर तो समरभूमिमें मुझे ऐसा अपमान नहीं उठाना पड़ता। यदि समराङ्गणमें घटोत्कच भी जीवित होता तो भी मुझे वहाँसे मुँह फेरकर भागना नहीं पड़ता ॥ २१½ ॥

(भीमस्य पुत्रः समराग्रयायी
महास्त्रविच्चापि तवानुरूपः ।
यत्नं समासाद्य रिपोर्बलं नो
निमीलिताक्षं भयविप्लुतं भवेत् ॥

'भीमसेनका वह पुत्र समरभूमिमें आगे चलनेवाला, महान् अस्त्रवेत्ता और तुम्हारे समान ही पराक्रमी था। उसके होनेपर हमारे शत्रुओंकी सेना यत्न करके भी सफल न होती और भयसे व्याकुल होकर आँखें बंद कर लेती ॥

चकार योऽसौ निशि युद्धमेक-
स्त्यक्त्वा रणं यस्य भयाद् द्रवन्ते ।
स चेत् समासाद्य महानुभावः
कर्णं रणे बाणगणैः प्रमोह्य ।
धैर्ये स्थितेनापि च सूतजेन
शक्त्या हतो वासवदत्तया तया ॥)

'उस महानुभाव वीरने अकेले ही रात्रिमें युद्ध किया था, जिससे शत्रुसैनिक भयके मारे रणभूमि छोड़कर भागने लगे थे। उसने कर्णपर आक्रमण करके रणभूमिमें अपने बाण-समूहोंद्वारा सबको मोहमें डाल दिया था; परंतु धैर्यमें स्थित हुए सूतपुत्र कर्णने इन्द्रकी दी हुई उस शक्तिके द्वारा उसे मार डाला ॥

मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि
पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२ ॥
तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं
ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं
यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः ॥ २३ ॥

'निश्चय ही मेरे अभाग्य और पूर्वकृत पाप इस युद्धमें प्रबल हो रहे हैं। दुरात्मा कर्णने संग्राममें तुम्हें तिनकेके समान समझकर मेरा ऐसा अपमान किया है। किसी शक्तिहीन तथा बन्धु-बान्धवोंसे रहित असहाय मनुष्यके साथ जैसा बर्ताव किया जाता है, कर्णने वैसा ही मेरे साथ किया है ॥

आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत्
स बान्धवः स्नेहयुक्तः सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति
धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४ ॥

'जो कोई पुरुष आपत्तिमें पड़े हुए मनुष्यको संकटसे छुड़ा देता है, वही बन्धु है और वही स्नेही सुहृद् । प्राचीन महर्षि ऐसा ही कहते हैं। यही सत्पुरुषोंद्वारा सदासे पालित होनेवाला धर्म है ॥ २४ ॥

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं
शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं
धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५ ॥
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं
कर्णाद् भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ ।

'कुन्तीनन्दन! तुम्हारा रथ साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ है, उसके धुरेसे कोई आवाज नहीं होती। उसपर वानरध्वजा फहराती रहती है, ऐसे शुभलक्षण रथपर आरूढ़ हो सुवर्णजटित खड्ग और चार हाथके श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव-को लेकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण-जैसे सारथिके द्वारा संचालित होकर भी तुम कर्णसे भयभीत होकर कैसे भाग आये? ॥

धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ
यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य ॥ २६ ॥
तदाहनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं
मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ।

'तुम अपना गाण्डीव धनुष भगवान् श्रीकृष्णको दे दो तथा रणभूमिमें स्वयं इनके सारथि बन जाओ। फिर जैसे इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरका वध किया था, उसी प्रकार ये श्रीकृष्ण भयंकर वीर कर्णको मार डालेंगे ॥ २६½ ॥

राधेयमेतं यदि नाद्य शक्त-
श्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥ २७ ॥
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य
त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः ।

'यदि तुम आज रणभूमिमें विचरते हुए इस भयानक वीर राधापुत्र कर्णका सामना करनेकी शक्ति नहीं रखते तो अब यह गाण्डीव धनुष दूसरे किसी ऐसे राजाको दे दो, जो अस्त्र-बलमें तुमसे बढ़कर हो ॥ २७½ ॥

अस्मान् नैवं पुत्रदारैर्विहीनान्
सुखाद्भ्रष्टान् राज्यनाशाच्च भूयः ॥ २८ ॥
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे
पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय ।

'पाण्डुनन्दन ! ऐसा हो जानेपर संसारके मनुष्य हमें फिर इस प्रकार स्त्री-पुत्रोंके संयोगसे रहित, राज्य नष्ट होनेके कारण सुखसे वञ्चित तथा पापियोंद्वारा सेवित अगाध नरक-तुल्य कष्टमें गिरा हुआ नहीं देखेंगे ॥ २८½ ॥

मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे
न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः ॥ २९ ॥
तत् ते श्रेयो राजपुत्राभविष्य-
न्न चेत् संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।

'दुरात्मा राजपुत्र ! यदि तुम पाँचवें महीनेमें माताके गर्भसे गिर गये होते अथवा माता कुन्तीके अत्यन्त कष्टदायक गर्भमें आये ही नहीं होते तो वह तुम्हारे लिये अच्छा होता; क्योंकि उस दशामें तुम्हें युद्धसे भाग आनेका कलङ्क तो नहीं प्राप्त होता ॥ २९½ ॥

धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य-
मसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते ।
धिक् ते केतुं केसरिणः सुतस्य
कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते ॥ ३० ॥

'धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव धनुषको, धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके पराक्रमको, धिक्कार है तुम्हारे इन असंख्य बाणोंको, धिक्कार है हनुमान्‌जीके द्वारा उपलक्षित तुम्हारी इस ध्वजाको तथा धिक्कार है अग्निदेवके दिये हुए इस रथको' ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका क्रोधपूर्ण वचनविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ३५ श्लोक हैं)

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णका बलाकव्याध और कौशिक मुनिकी कथा सुनाते हुए धर्मका तत्त्व बताकर समझाना

संजय उवाच

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर श्वेतवाहन कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे तलवार उठा ली ॥

तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥ २ ॥

उस समय उनका क्रोध देखकर सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—'पार्थ ! यह क्या ? तुमने तलवार कैसे उठा ली ? ॥ २ ॥

न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद् धनंजय ।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥ ३ ॥

'धनंजय ! यहाँ तुम्हें किसीके साथ युद्ध करना हो, ऐसा तो नहीं दिखायी देता; क्योंकि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बुद्धिमान् भीमसेनने कालका ग्रास बना रक्खा है ॥ ३ ॥

अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम तो यह सोचकर युद्धसे हट आये थे कि राजा युधिष्ठिरका दर्शन कर लूँ । सो तुमने राजाका दर्शन कर लिया । राजा युधिष्ठिर सब प्रकारसे सकुशल हैं ॥

स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥ ५ ॥

'सिंहके समान पराक्रमी नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको स्वस्थ देखकर जब तुम्हारे लिये हर्षका अवसर आया है, ऐसे समयमें यह मोहकारित कौन-सा कृत्य होने जा रहा है ? ॥ ५ ॥

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति ।
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! मैं किसी ऐसे मनुष्यको भी यहाँ नहीं देखता, जो तुम्हारेद्वारा वध करनेके योग्य हो । फिर तुम प्रहार क्यों करना चाहते हो ? तुम्हारे चित्तमें भ्रम तो नहीं हो गया है ? ॥ ६ ॥

कस्माद् भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः ।
तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ७ ॥
परामृशसि यत् क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।

'पार्थ ! तुम क्यों इतने उतावले होकर विशाल खड्ग हाथमें ले रहे हो । अद्भुत पराक्रमी वीर ! मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ, इस समय तुम्हें यह क्या करनेकी इच्छा हुई है, जिससे कुपित होकर तलवार उठा रहे हो ?' ॥ ७½ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।

भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान युधिष्ठिरकी ओर देखकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ ८½ ॥

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत् ॥ ९॥
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ १० ॥
समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे।
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥ ११ ॥

"जो मुझसे यह कह दे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो, उसका मैं सिर काट लूँगा।' मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है। अनन्त पराक्रमी गोविन्द! आपके सामने ही इन महाराजने मुझसे वह बात कही है, अतः मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता; इन धर्मभीरु नरेशका वध करूँगा॥

प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम्।
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२ ॥

'यदुनन्दन! इन नरश्रेष्ठका वध करके मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा; इसीलिये मैंने यह खड्ग हाथमें लिया है॥

सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः।
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १३ ॥

'जनार्दन! मैं युधिष्ठिरका वध करके उस सच्ची प्रतिज्ञाके भारसे उऋण हो शोक और चिन्तासे मुक्त हो जाऊँगा॥

किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काल उपस्थिते।
त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४ ॥
तत् तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान्।

'तात! आप इस अवसरपर क्या करना उचित समझते हैं? आप ही इस जगत्‌के भूत और भविष्यको जानते हैं, अतः आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा' ॥१४½॥

संजय उवाच

धिग् धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत् पुनः॥१५॥

संजय कहते हैं—राजन्! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे 'धिक्कार है! धिक्कार है!!' ऐसा कहकर पुनः इस प्रकार बोले॥ १५॥

श्रीकृष्ण उवाच

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया।
काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद् भवानगात्॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! इस समय मैं समझता हूँ कि तुमने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है। पुरुषसिंह! इसीलिये तुम्हें बिना अवसरके ही क्रोध आ गया है॥ १६॥

न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनंजय।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः ॥ १७ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजय! जो धर्मके विभागको जाननेवाला है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता, जैसा कि यहाँ आज तुम करना चाहते हो। वास्तवमें तुम धर्मभीरु होनेके साथ ही बुद्धिहीन भी हो॥ १७॥

अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८ ॥

पार्थ! जो करने योग्य होनेपर भी असाध्य हों तथा जो साध्य होनेपर भी निषिद्ध हों ऐसे कर्मोंसे जो सम्बन्ध जोड़ता है, वह पुरुषोंमें अधम माना गया है॥ १८॥

अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम् ॥ १९ ॥

जो स्वयं धर्मका अनुसरण एवं आचरण करके शिष्योंद्वारा उपासित होकर उन्हें धर्मका उपदेश देते हैं; धर्मके संक्षेप एवं विस्तारको जाननेवाले उन गुरुजनोंका इस विषयमें क्या निर्णय है, इसे तुम नहीं जानते॥ १९॥

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ २० ॥

पार्थ! उस निर्णयको न जाननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यके निश्चयमें तुम्हारे ही समान असमर्थ, विवेक-शून्य एवं मोहित हो जाता है॥ २०॥

न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथंचन।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१ ॥

कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान किसी तरह भी अनायास ही नहीं हो जाता है। वह सब शास्त्रसे जाना जाता है और शास्त्रका तुम्हें पता ही नहीं है॥ २१॥

अविज्ञानाद् भवान् यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित्।
प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे॥ २२ ॥

कुन्तीनन्दन! तुम अज्ञानवश अपनेको धर्मज्ञ मानकर जो धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें प्राणिहिंसाका पाप है, यह बात तुम्हारे-जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती है॥२२॥

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥ २३ ॥

तात! मेरे विचारसे प्राणियोंकी हिंसा न करना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। किसीकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, किंतु उसकी हिंसा किसी तरह न होने दे॥२३॥

स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम्।
हन्याद् भवान् नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव॥ २४ ॥

नरश्रेष्ठ! तुम दूसरे गवाँर मनुष्यके समान अपने बड़े भाई धर्मज्ञ नरेशका वध कैसे करोगे?॥ २४॥

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥ २५ ॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ २६ ॥

मानद! जो युद्ध न करता हो, शत्रुता न रखता हो,

संग्राममें विमुख होकर भागा जा रहा हो, शरणमें आता हो, हाथ जोड़कर आश्रयमें आ पड़ा हो तथा असावधान हो, ऐसे मनुष्यका वध करना श्रेष्ठ पुरुष अच्छा नहीं समझते हैं। तुम्हारे बड़े भाईमें उपर्युक्त सभी बातें हैं ॥ २५-२६ ॥

त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात् कर्म व्यवस्यसि ॥ २७ ॥

पार्थ ! तुमने नासमझ बालकके समान पहले कोई प्रतिज्ञा कर ली थी, इसीलिये तुम मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो ॥ २७ ॥

स गुरुं पार्थ कस्मात् त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

कुन्तीकुमार ! बताओ तो तुम धर्मके सूक्ष्म एवं दुर्बोध स्वरूपका अच्छी तरह विचार किये बिना ही अपने ज्येष्ठ भ्राताका वध करनेके लिये कैसे दौड़ पड़े ? ॥ २८ ॥

इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव ।
यद् ब्रूयात् तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥ २९॥
विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी।
तत् ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधैतद् धनंजय ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! मैं तुम्हें यह धर्मका रहस्य बता रहा हूँ। धनंजय ! पितामह भीष्म, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, विदुरजी अथवा यशस्विनी कुन्तीदेवी—ये लोग तुम्हें धर्मके जिस तत्त्वका उपदेश कर सकते हैं, उसीको मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। इसे ध्यान देकर सुनो ॥ २९-३० ॥

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

सत्य बोलना उत्तम है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है; परंतु यह समझ लो कि सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए सत्यके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३१ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३२ ॥

जहाँ मिथ्या बोलनेका परिणाम सत्य बोलनेके समान मङ्गलकारक हो अथवा जहाँ सत्य बोलनेका परिणाम असत्य-भाषणके समान अनिष्टकारी हो, वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिये। वहाँ असत्य बोलना ही उचित होगा ॥ ३२ ॥

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे
प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३३ ॥

विवाहकालमें, स्त्रीप्रसङ्गके समय, किसीके प्राणोंपर सङ्कट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा ब्राह्मणकी भलाईके लिये आवश्यकता हो तो असत्य बोल दे; इन पाँच अवसरोंपर झूठ बोलनेसे पाप नहीं होता ॥ ३३ ॥

सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत्।
तत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३४ ॥
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम्।

जब किसीका सर्वस्व छीना जा रहा हो तो उसे बचानेके लिये झूठ बोलना कर्तव्य है। वहाँ असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। जो मूर्ख है, वही यथाकथञ्चित् व्यवहारमें लाये हुए एक-जैसे सत्यको सर्वत्र आवश्यक समझता है ॥ ३४½ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३५ ॥

केवल अनुष्ठानमें लाया गया असत्यरूप सत्य बोलने योग्य नहीं होता, अतः वैसा सत्य न बोले। पहले सत्य और असत्यका अच्छी तरह निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करे। जो ऐसा करता है, वही धर्मका ज्ञाता है ॥ ३५ ॥

किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥ ३६ ॥

जिसकी बुद्धि शुद्ध (निष्काम) है, वह पुरुष यदि अत्यन्त कठोर होकर भी, जैसे अंधे पशुको मार देनेसे बलाक नामक व्याध पुण्यका भागी हुआ था, उसी प्रकार महान् पुण्य प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पापमापगास्विव कौशिकः॥ ३७ ॥

इसी तरह जो धर्मकी इच्छा तो रखता है, पर है मूर्ख और अज्ञानी, वह नदियोंके संगमपर बसे हुए कौशिक मुनिकी भाँति यदि अज्ञानपूर्वक धर्म करके भी महान् पापका भागी हो जाय तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३७ ॥

अर्जुन उवाच

आचक्ष्व भगवन्नेतद् यथा विन्द्याम्यहं तथा।
बलाकस्यानुसम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥ ३८ ॥

अर्जुन बोले—भगवन् ! बलाक नामक व्याध और नदियोंके संगमपर रहनेवाले कौशिक मुनिकी कथा कहिये, जिससे मैं इस विषयको अच्छी तरह समझ सकूँ ॥ ३८ ॥

वासुदेव उवाच

पुरा व्याधोऽभवत् कश्चिद् बलाको नाम भारत।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान् हन्ति न कामतः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भारत ! प्राचीनकालमें बलाक नामसे प्रसिद्ध एक व्याध रहता था, जो अपनी स्त्री और पुत्रोंकी जीवनरक्षाके लिये ही हिंसक पशुओंको मारा करता था, कामनावश नहीं ॥ ३९ ॥

वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान्।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥ ४० ॥

वह बूढ़े माता-पिता तथा अन्य आश्रित जनोंका पालन-पोषण किया करता था। सदा अपने धर्ममें लगा रहता, सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था ॥ ४० ॥

स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित्।
अपः पिबन्तं ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१ ॥

एक दिन वह पशुको मार लानेके लिये वनमें गया; किंतु कहीं किसी हिंसक पशुको न पा सका। इतनेहीमें उसे एक पानी पीता हुआ हिंसक जानवर दिखायी दिया, जो अंधा था, नाकसे सूँघकर ही आँखका काम निकाला करता था ॥ ४१ ॥

अदृष्टपूर्वमपि तत् सत्त्वं तेन हतं तदा।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥ ४२ ॥

यद्यपि वैसे जानवरको व्याधने पहले कभी नहीं देखा था, तो भी उस समय उसने मार डाला। उस अंधे पशुके मारे जाते ही आकाशसे व्याधपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥४२॥

अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम्।
विमानमगमत् स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ४३ ॥

साथ ही उस हिंसक पशुओंको मारनेवाले व्याधको ले जानेके लिये स्वर्गसे एक सुन्दर विमान उतर आया, जो अप्सराओंके गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे मुखरित होनेके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

तद् भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥ ४४ ॥

अर्जुन! लोग कहते हैं कि उस जन्तुने पूर्वजन्ममें तप करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार कर डालनेके लिये वर प्राप्त किया था; इसीलिये ब्रह्माजीने उसे अन्धा बना दिया था ॥

तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम्।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंका अन्त कर देनेके निश्चयसे युक्त उस जन्तुको मारकर बलाक स्वर्गलोकमें चला गया; अतः धर्मका स्वरूप अत्यन्त दुर्ज्ञेय है ॥ ४५ ॥

कौशिकोऽप्यभवद् विप्रस्तपस्वी नो बहुश्रुतः।
नदीनां संगमे ग्रामाददूरात् स किलावसत् ॥ ४६ ॥

इसी तरह कौशिक नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था, जो बहुत पढ़ा-लिखा या शास्त्रज्ञ नहीं था। वह गाँवके पास ही नदियोंके संगमपर निवास करता था ॥ ४६ ॥

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद् व्रतम्।
सत्यवादीति विख्यातः स तदाऽऽसीद् धनंजय॥४७॥

धनंजय! उसने यह नियम ले लिया था कि मैं सदा सत्य ही बोलूँगा। इसलिये उन दिनों वह सत्यवादीके नामसे विख्यात हो गया था ॥ ४७ ॥

अथ दस्युभयात् केचित् तदा तद् वनमाविशन्।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥ ४८ ॥

एक दिनकी बात है, कुछ लोग लुटेरोंके भयसे छिपनेके लिये उस वनमें घुस गये; परंतु वे लुटेरे कुपित हो वहाँ भी उन लोगोंका यत्नपूर्वक अनुसंधान करने लगे ॥ ४८ ॥

अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम्।
कतमेन पथा याता भगवन् बहवो जनाः ॥ ४९ ॥
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान् वेत्थ शंस नः।

उन्होंने सत्यवादी कौशिक मुनिके पास आकर पूछा—'भगवन्! बहुत-से लोग जो इधर ही आये हैं, किस रास्तेसे गये हैं? मैं सत्यकी साक्षीसे पूछता हूँ। यदि आप उन्हें जानते हों तो बताइये' ॥ ४९½ ॥

स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥ ५० ॥
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद् वनमुपाश्रिताः।
इति तान् ख्यापयामास तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥५१॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर कौशिक मुनिने उन्हें सच्ची बात बता दी—'इस वनमें जहाँ बहुत-से वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ हैं, वहीं वे गये हैं।' इस प्रकार कौशिकने उन दस्युओंको यथार्थ बात बता दी ॥ ५०-५१ ॥

ततस्ते तान् समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥ ५२ ॥
गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः।

तब उन निर्दयी डाकुओंने उन सबका पता पाकर उन्हें मार डाला, ऐसा सुना गया है। इस तरह वाणीका दुरुपयोग करनेसे कौशिकको महान् पाप लगा, जिससे उसे नरकका कष्ट भोगना पड़ा; क्योंकि वह धर्मके सूक्ष्म स्वरूपको समझनेमें कुशल नहीं था ॥ ५२½ ॥

यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ५३ ॥
वृद्धानपृष्ट्वा संदेहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति।

जिसे शास्त्रोंका बहुत थोड़ा ज्ञान है, जो विवेकशून्य होनेके कारण धर्मोंके विभागको ठीक-ठीक नहीं जानता, वह मनुष्य यदि वृद्ध पुरुषोंसे अपने संदेह नहीं पूछता तो अनुचित कर्म कर बैठनेके कारण वह महान् नरकके सदृश कष्ट भोगनेके योग्य हो जाता है ॥ ५३½ ॥

तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥ ५४ ॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ५५ ॥

धर्माधर्मके निर्णयके लिये तुम्हें संक्षेपसे कोई संकेत बताना पड़ेगा, जो इस प्रकार होगा। कुछ लोग परम ज्ञानरूप दुष्कर धर्मको तर्कके द्वारा जाननेका प्रयत्न करते हैं; परंतु एक श्रेणीके बहुसंख्यक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि धर्मका ज्ञान वेदोंसे होता है ॥ ५४-५५ ॥

तत् ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६ ॥

किंतु मैं तुम्हारे निकट इन दोनों मतोंके ऊपर कोई दोषारोपण नहीं करता; परंतु केवल वेदोंके द्वारा सभी धर्म-कर्मोंका विधान नहीं होता; इसीलिये धर्मज्ञ महर्षियोंने समस्त

प्राणियोंके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये उत्तम धर्मका प्रतिपादन किया है ॥ ५६ ॥

यत् स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५७ ॥

सिद्धान्त यह है कि जिस कार्यमें हिंसा न हो, वही धर्म है । महर्षियोंने प्राणियोंकी हिंसा न होने देनेके लिये ही उत्तम धर्मका प्रवचन किया है ॥ ५७ ॥

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ५८ ॥

धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं । इसलिये जो धारण—प्राण-रक्षासे युक्त हो—जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो, वही धर्म है । ऐसा ही धर्म-शास्त्रोंका सिद्धान्त है ॥ ५८ ॥

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन ॥ ५९ ॥

जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरोंके धन आदिका अपहरण कर लेना चाहते हैं, वे कभी अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंसे सत्यभाषणरूप धर्मका पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ानेकी चेष्टा करे, किसी तरह कुछ बोले ही नहीं ॥ ५९ ॥

अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्नप्यकूजतः ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ॥ ६० ॥

किंतु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय अथवा न बोलनेसे लुटेरोंको संदेह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है । ऐसे अवसरपर उस असत्यको ही बिना विचारे सत्य समझो ॥

यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत् ।
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य किसी कार्यके लिये प्रतिज्ञा करके उसका प्रकारान्तरसे उपपादन करता है, वह दम्भी होनेके कारण उसका फल नहीं पाता, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है ॥ ६१ ॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये ।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥ ६२ ॥
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः ।

प्राणसङ्कटकालमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बियोंके प्राणान्त-का समय उपस्थित होनेपर तथा हँसी-परिहास आरम्भ होनेपर यदि असत्य बोला गया हो तो वह असत्य नहीं माना जाता । धर्मके तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं समझते ॥ ६२½ ॥

यः स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥ ६३ ॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ।

जो झूठी शपथ खानेपर भी लुटेरोंके साथ बन्धनमें पड़नेसे छुटकारा पा सके, उसके लिये वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है । उसे बिना विचारे सत्य समझना चाहिये ॥

न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ॥ ६४ ॥
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।

जहाँतक वश चले, किसी तरह उन लुटेरोंको धन नहीं देना चाहिये; क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको भी दुःख देता है ॥ ६४½ ॥

तस्माद् धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतभाग् भवेत् ॥ ६५ ॥
एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि ।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥ ६६ ॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः ।

अतः धर्मके लिये झूठ बोलनेपर मनुष्य असत्यभाषणके दोषका भागी नहीं होता । अर्जुन ! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ, इसलिये आज मैंने अपनी बुद्धि और धर्मके अनुसार संक्षेपसे तुम्हारे लिये यह विधिपूर्वक धर्माधर्मके निर्णयका संकेत बताया है । यह सुनकर अब तुम्हीं बताओ, क्या अब भी राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वध्य हैं ॥ ६५-६६½ ॥

अर्जुन उवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ॥ ६७ ॥
हितं चैव यथास्माकं तथैतद् वचनं तव ।

अर्जुन बोले—प्रभो ! कोई बहुत बड़ा विद्वान् और परम बुद्धिमान् मनुष्य जैसा उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे हमलोगोंका हित हो सकता है, वैसा ही आपका यह भाषण हुआ है ॥ ६७½ ॥

भवान् मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च ॥ ६८ ॥
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम् ।

श्रीकृष्ण ! आप हमारे माता-पिताके तुल्य हैं । आप ही परमगति और परम आश्रय हैं ॥ ६८½ ॥

न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ ६९ ॥
तस्माद् भवान् परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् ।

तीनों लोकोंमें कहीं कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपको विदित न हो; अतः आप ही परम धर्मको सम्पूर्ण और यथार्थरूपसे जानते हैं ॥ ६९½ ॥

अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥
अस्मिंस्तु मम संकल्पे ब्रूहि किंचिदनुग्रहम् ।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥ ७१ ॥

अब मैं पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरको वधके योग्य नहीं मानता । मेरी इस मानसिक प्रतिज्ञाके विषयमें आप ही कोई अनुग्रह (भाईका वध किये बिना ही प्रतिज्ञाकी रक्षाका उपाय) बताइये । मेरे मनमें जो यहाँ कहनेयोग्य उत्तम बात है, इसे पुनः सुन लीजिये ॥ ७०-७१ ॥

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं
यो मां ब्रूयात् कश्चन मानुषेषु ।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ
त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः ॥ ७२ ॥

हन्यामहं केशव तं प्रसह्य
भीमो हन्यात् तूबरकेति चोक्तः।
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं
धनुर्देहीत्यसकृद् वृष्णिवीर ॥ ७३ ॥

दशार्हकुलनन्दन ! आप तो यह जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है ? मनुष्योंमेंसे जो कोई भी मुझसे यह कह दे कि 'पार्थ ! तुम अपना गाण्डीव धनुष किसी दूसरे ऐसे पुरुषको दे दो, जो अस्त्रोंके ज्ञान अथवा बलमें तुमसे बढ़कर हो तो केशव ! मैं उसे बलपूर्वक मार डालूँ ।' इसी प्रकार भीमसेनको कोई 'मूँछ-दाढ़ीरहित' कह दे तो वे उसे मार डालेंगे, वृष्णिवीर ! राजा युधिष्ठिरने आपके सामने ही बारंबार मुझसे कहा है कि 'तुम अपना धनुष दूसरेको दे दो' ॥ ७२-७३ ॥

तं हन्यां चेत् केशव जीवलोके
स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् ।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो
वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४ ॥

केशव ! यदि मैं युधिष्ठिरको मार डालूँ तो इस जीव-जगत्‌में थोड़ी देर भी मैं जीवित नहीं रह सकता । यदि किसी तरह पापसे छूट जाऊँ तो भी राजा युधिष्ठिरके वधका चिन्तन करके जी नहीं सकता । निश्चय ही इस समय मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पराक्रमशून्य और अचेत-सा हो गया हूँ ॥

यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ
भवेत् सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्ण
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम् ॥ ७५ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! संसारके लोगोंकी समझमें जिस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जिस प्रकार पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर और मैं दोनों जीवित रह सकें, वैसी कोई सलाह आप मुझे देनेकी कृपा करें ॥ ७५ ॥

वासुदेव उवाच

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः ।
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर
शरैर्भृशं ताडितोऽयुध्यमानः ॥ ७६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—वीर ! राजा युधिष्ठिर थक गये हैं । कर्णने युद्धस्थलमें अपने तीखे बाणसमूहोंद्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया है, इसलिये ये बहुत दुखी हैं । इतना ही नहीं, जब ये युद्ध नहीं कर रहे थे, उस समय भी सूतपुत्रने इनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करके इन्हें अत्यन्त घायल कर दिया था ॥ ७६ ॥

अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो
दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये
कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत् सः ॥ ७७ ॥

इसीलिये दुखी होनेके कारण इन्होंने तुम्हारे प्रति रोषपूर्वक ये अनुचित बातें कही हैं । इन्होंने यह भी सोचा है कि यदि अर्जुनको क्रोध न दिलाया गया तो ये युद्धमें कर्णको नहीं मार सकेंगे, इस कारणसे भी वैसी बातें कह दी हैं ॥ ७७ ॥

जानाति तं पाण्डव एष चापि
पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः ।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन
राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८ ॥

ये पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर जानते हैं कि संसारमें पापी कर्णका सामना करना तुम्हारे सिवा दूसरोंके लिये असम्भव है । पार्थ ! इसीलिये अत्यन्त रोषमें भरे हुए राजाने मेरे सामने तुम्हें कटु वचन सुनाये हैं ॥ ७८ ॥

नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये
कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ।
तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्यु-
रेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९ ॥

कर्ण नित्य-निरन्तर युद्धके लिये उद्यत और शत्रुओंके लिये असह्य है । आज रणभूमिमें हार-जीतका जूआ कर्णपर ही अवलम्बित है । कर्णके मारे जानेपर अन्य कौरव शीघ्र ही परास्त हो सकते हैं । धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें ऐसा ही विचार काम कर रहा था ॥ ७९ ॥

ततो वधं नार्हति धर्मपुत्र-
स्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया ।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि
तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८० ॥

अर्जुन ! इसलिये धर्मपुत्र युधिष्ठिर वधके योग्य नहीं हैं । इधर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन भी करना है । अतः जिस उपायसे ये जीवित रहते हुए भी मरेके समान हो जायँ, वही तुम्हारे अनुरूप होगा । उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ८० ॥

यदा मानं लभते माननार्ह-
स्तदा स वै जीवति जीवलोके ।
यदावमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ८१ ॥

इस जीवजगत्‌में माननीय पुरुष जबतक सम्मान पाता है, तभीतक वह वास्तवमें जीवित है । जब वह महान् अपमान पाने लगता है, तब वह जीते-जी मरा हुआ कहलाता है ॥

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरै-
स्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥ ८२ ॥

तुमने, भीमसेनने, नकुल-सहदेवने तथा अन्य वृद्ध पुरुषों एवं शूरवीरोंने जगत्‌में राजा युधिष्ठिरका सदा सम्मान किया है; किंतु इस समय तुम उनका थोड़ा-सा अपमान कर दो ॥ ८२ ॥

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ८३ ॥

पार्थ ! तुम युधिष्ठिरको सदा आप कहते आये हो, आज उन्हें 'तू' कह दो । भारत ! यदि किसी गुरुजनको 'तू' कह दिया जाय तो वह साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें उसका वध ही हो जाता है ॥ ८३ ॥

एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥ ८४ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम धर्मराज युधिष्ठिरके प्रति ऐसा ही बर्ताव करो । कुरुश्रेष्ठ ! उनके लिये इस समय अधर्मयुक्त वाक्यका प्रयोग करो ॥ ८४ ॥

अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥ ८५ ॥

जिसके देवता अथर्वा और अङ्गिरा हैं, ऐसी एक श्रुति है, जो सब श्रुतियोंमें उत्तम है । अपनी भलाई चाहनेवाले मनुष्योंको सदा बिना विचारे ही इस श्रुतिके अनुसार बर्ताव करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः ।
तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥ ८६ ॥

उस श्रुतिका भाव यह है—'गुरुको तू कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है ।' तुम धर्मज्ञ हो तो भी जैसा मैंने बताया है, उसके अनुसार धर्मराजके लिये 'तू' शब्दका प्रयोग करो ॥ ८६ ॥

वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराज-
स्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः ।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्
समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम् ॥ ८७ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे द्वारा किये गये इस अनुचित शब्दके प्रयोगको सुनकर ये धर्मराज अपना वध हुआ ही समझेंगे । इसके बाद तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करके इन्हें सान्त्वना देते हुए क्षमा माँग लेना और इनके प्रति न्यायोचित वचन बोलना ॥ ८७ ॥

भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु
कुर्याद् राजा धर्ममवेक्ष्य चापि ।
मुक्तोऽनृताद् भ्रातृवधाच्च पार्थ
हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर समझदार हैं । ये धर्मका ख्याल करके भी तुमपर कभी क्रोध नहीं करेंगे । इस प्रकार तुम मिथ्याभाषण और भ्रातृ-वधके पापसे मुक्त हो बड़े हर्षके साथ सूतपुत्र कर्णका वध करना ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञा-भङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर संतुष्ट करना

संजय उवाच

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन
पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् ।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराज-
मनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने हितैषी सखाके उस वचनकी बड़ी प्रशंसा की । फिर वे हठपूर्वक धर्मराजके प्रति ऐसे कठोर वचन कहने लगे, जैसे उन्होंने पहले कभी नहीं कहे थे ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व
यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद् वै ।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय
यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—राजन् ! तू तो स्वयं ही युद्धसे भागकर एक कोस दूर आ बैठा है, अतः तू मुझसे न बोल, न बोल । हाँ, भीमसेनको मेरी निन्दा करनेका अधिकार है, जो कि समस्त संसारके प्रमुख वीरोंके साथ अकेले ही जूझ रहे हैं ॥ २ ॥

काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये
हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान् ।
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्
सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान् ॥ ३ ॥
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं
हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम् ।
काम्बोजानामयुतं पर्वतीयान्
मृगान् सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४ ॥
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः
कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् ।

रथादवप्लुत्य गदां परामृशं-
स्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान् रणे ॥ ५ ॥
वरासिना चापि नराश्वकुञ्जरां-
स्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन् ।
प्रमृद्य पद्भ्यामहितान् निहन्ति
पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६ ॥
महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः
प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम् ।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे
न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः॥ ७ ॥

जो यथासमय शत्रुओंको पीड़ा देते हुए युद्धस्थलमें उन समस्त शौर्यसम्पन्न भूपतियों, प्रधान-प्रधान रथियों, श्रेष्ठ गजराजों, प्रमुख अश्वारोहियों, असंख्य वीरों, सहस्रसे भी अधिक हाथियों, दस हजार काम्बोजदेशीय अश्वों तथा पर्वतीय वीरोंका वध करके जैसे मृगोंको मारकर सिंह दहाड़ रहा हो, उसी प्रकार भयंकर सिंहनाद करते हैं, जो वीर भीमसेन हाथमें गदा ले रथसे कूदकर उसके द्वारा रणभूमिमें हाथी, घोड़ों एवं रथोंका संहार करते हैं तथा ऐसा अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट कर रहे हैं जैसा कि तू कभी नहीं कर सकता, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है, जो उत्तम खड्ग, चक्र और धनुषके द्वारा हाथी, घोड़ों, पैदल-योद्धाओं तथा अन्यान्य शत्रुओंको दग्ध किये देते हैं और जो पैरोंसे कुचलकर दोनों हाथोंसे वैरियोंका विनाश करते हैं, वे महाबली, कुबेर और यमराजके समान पराक्रमी एवं शत्रुओंकी सेनाका बलपूर्वक संहार करनेमें समर्थ भीमसेन ही मेरी निन्दा करनेके अधिकारी हैं । तू मेरी निन्दा नहीं कर सकता; क्योंकि तू अपने पराक्रमसे नहीं, हितैषी सुहृदोंद्वारा सदा सुरक्षित होता है ॥ ३—७ ॥

महारथान् नागवरान् हयांश्च
पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ८ ॥

जो शत्रुपक्षके महारथियों, गजराजों, घोड़ों और प्रधान-प्रधान पैदल योद्धाओंको भी रौंदकर दुर्योधनकी सेनाओंमें घुस गये हैं, वे एकमात्र शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ८ ॥

कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्
सदामदान्नीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगजाननेकान्
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ९ ॥

जो कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद और मगध देशोंमें उत्पन्न सदा मदमत्त रहनेवाले तथा काले मेघोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले शत्रुपक्षीय अनेकानेक हाथियोंका संहार करते हैं, वे शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ९ ॥

स युक्तमास्थाय रथं हि काले
धनुर्विधुन्वञ्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो
महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १० ॥

वीरवर भीमसेन यथासमय जुते हुए रथपर आरूढ़ हो धनुष हिलाते हुए मुट्ठीभर बाण निकालते और जैसे मेघ जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार महासमरमें बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥ १० ॥

शतान्यष्टौ वारणानामपश्यं
विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः
स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥ ११ ॥

मैंने देखा है आज भीमसेनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके आठ सौ हाथियोंको उनके कुम्भस्थल, शुण्ड और शुण्डाग्रभाग काटकर मार डाला है, वे शत्रुहन्ता भीमसेन ही मुझसे कठोर वचन कहनेके अधिकारी हैं ॥ ११ ॥

(नकुलेन राजन् गजवाजियोधा
हताश्च शूराः सहसा समेत्य ।
त्यक्त्वा प्राणान् समरे युद्धकाङ्क्षी
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥

राजन् ! नकुलने समरभूमिमें प्राणोंका मोह छोड़कर सहसा आगे बढ़-बढ़कर बहुतसे हाथी, घोड़े और शूरवीर योद्धाओंका वध किया है । युद्धकी अभिलाषा रखनेवाला वह शत्रुदमन वीर भी मुझे उलाहना दे सकता है ॥

कृतं कर्म सहदेवेन दुष्करं
यो युध्यते परसैन्यावमर्दी ।
न चाब्रवीत् किंचिदिहागतो बली
पश्यान्तरं तस्य चैवात्मनश्च ॥

सहदेवने भी दुष्कर कर्म किया है । शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाला वह बलवान् वीर निरन्तर युद्धमें लगा रहता है । वह भी यहाँ आया था, किंतु कुछ भी न बोला । देख ले, तुझमें और उसमें कितना अन्तर है ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिर्द्रौपदेया
युधामन्युश्चोत्तमौजाः शिखण्डी ।
एते च सर्वे युधि सम्प्रपीडिता-
स्ते मामुपालब्धुमर्हन्ति न त्वम् ॥)

धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, युधामन्यु, उत्तमौजा और शिखण्डी—ये सभी वीर युद्धमें अत्यन्त पीड़ा सहन करते आये हैं ; अतः ये ही मुझे उपालम्भ दे सकते हैं, तू नहीं ।

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां
क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति ।

त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च
त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम् ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका बल उनकी वाणीमें होता है और क्षत्रियका बल उनकी दोनों भुजाओंमें; परंतु तेरा बल केवल वाणीमें है, तू निष्ठुर है; मैं जैसा बलवान् हूँ, उसे तू ही अच्छी तरह जानता है ॥

यते हि नित्यं तव कर्तुमिष्टं
दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि
त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किंचित् ॥ १३ ॥

मैं सदा स्त्री, पुत्र, जीवन और यह शरीर लगाकर तेरा प्रिय कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील रहता हूँ। ऐसी दशामें भी तू मुझे अपने वाग्बाणोंसे मार रहा है; हमलोग तुझसे थोड़ा-सा भी सुख न पा सके ॥ १३ ॥

मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो
महारथान् प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनातिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किंचित् ॥ १४ ॥

तू द्रौपदीकी शय्यापर बैठा-बैठा मेरा अपमान न कर। मैं तेरे ही लिये बड़े-बड़े महारथियोंका संहार कर रहा हूँ। इसीसे तू मेरे प्रति अधिक संदेह करके निष्ठुर हो गया है। तुझसे कोई सुख मिला हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥

प्रोक्तः स्वयं सत्यसंधेन मृत्यु-
स्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा
मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ १५ ॥

नरदेव ! तेरा प्रिय करनेके लिये सत्यप्रतिज्ञ भीष्मजीने युद्धमें महामनस्वी वीर द्रुपदकुमार शिखण्डीको अपनी मृत्यु बताया था । मेरे ही द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने उन्हें मारा है ॥ १५ ॥

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं
यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्ट-
मस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥

मैं तेरे राज्यका अभिनन्दन नहीं करता; क्योंकि तू अपना ही अहित करनेके लिये जूएमें आसक्त है। स्वयं नीच पुरुषोंद्वारा सेवित पापकर्म करके अब तू हमलोगोंके द्वारा शत्रुसेनारूपी समुद्रको पार करना चाहता है ॥ १६ ॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः
श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद् यान् ।
तान् नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टां-
स्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥

जूआ खेलनेमें बहुत-से पापमय दोष बताये गये हैं, जिन्हें सहदेवने तुझसे कहा था और तूने सुना भी था, तो भी तू उन दुर्जनसेवित दोषोंका परित्याग न कर सका; इसीसे हम सब लोग नरकतुल्य कष्टमें पड़ गये ॥ १७ ॥

सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किंचिद्
यतस्त्वमक्षैर्देवितुं सम्प्रवृत्तः ।
स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्व-
मस्मांस्तीव्राः श्रावयस्यद्य वाचः ॥ १८ ॥

पाण्डुकुमार ! तुझसे थोड़ा-सा भी सुख मिला हो—यह हम नहीं जानते हैं; क्योंकि तू जूआ खेलनेके व्यसनमें पड़ा हुआ है । स्वयं यह दुर्व्यसन करके अब तू हमें कठोर बातें सुना रहा है ॥ १८ ॥

शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना
छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती ।
त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं
यस्माद् दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ १९ ॥

हमारे द्वारा मारी गयी शत्रुओंकी सेना अपने कटे हुए अङ्गोंके साथ पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी कराह रही है। तूने वह क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, जिससे पाप तो होगा ही; कौरव-वंशका विनाश भी हो जायगा ॥ १९ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या
नष्टाः प्राच्या दाक्षिणात्या विशस्ताः ।
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भि-
स्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥ २० ॥

उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिण-देशीय योद्धा काट डाले गये। शत्रुओंके और हमारे पक्षके बड़े-बड़े योद्धाओंने युद्धमें ऐसा पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है ॥ २० ॥

त्वं देवितात्वत्कृते राज्यनाश-
स्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र ।
मास्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं
भूयो राजन् कोपयेस्त्वल्पभाग्यः ॥ २१ ॥

नरेन्द्र ! तू भाग्यहीन जुआरी है। तेरे ही कारण हमारे राज्यका नाश हुआ और तुझसे ही हमें घोर सङ्कटकी प्राप्ति हुई। राजन् ! अब तू अपने वचनरूपी चाबुकोंसे हमें पीड़ा देते हुए फिर कुपित न कर ॥ २१ ॥

संजय उवाच

एता वाचः परुषाः सव्यसाची
स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः ।
बभूवासौ विमना धर्मभीरुः
कृत्वा प्राज्ञः पातकं किंचिदेवम् ॥ २२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुन धर्मभीरु हैं। उनकी बुद्धि स्थिर है तथा वे उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न हैं।

उस समय राजा युधिष्ठिरको वैसी रूखी और कठोर बातें सुनाकर वे ऐसे अनमने और उदास हो गये, मानो कोई पातक करके इस प्रकार पछता रहे हों ॥ २२ ॥

तदानुतेपे सुरराजपुत्रो
विनिःश्वसंश्चासिमथोद्बबर्ह ।
तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान्
विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम्॥ २३ ॥
ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वच-
स्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ।

देवराजकुमार अर्जुनको उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने लंबी साँस खींचते हुए फिरसे तलवार खींच ली । यह देख भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! यह क्या ? तुम आकाशके समान निर्मल इस तलवारको पुनः क्यों म्यानसे बाहर निकाल रहे हो ? तुम मुझे मेरी बातका उत्तर दो । मैं तुम्हारा अभीष्ट अर्थ सिद्ध करनेके लिये पुनः कोई योग्य उपाय बताऊँगा' ॥ २३½ ॥

इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन
सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत्॥ २४ ॥
अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव
प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ।

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुन अत्यन्त दुखी हो उनसे इस प्रकार बोले—'भगवन् ! मैंने जिसके द्वारा हठपूर्वक भाईका अपमानरूप अहितकर कार्य कर डाला है, अपने उस शरीरको ही अब नष्ट कर डालूँगा' ॥ २४½ ॥

निशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं
धनंजयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २५ ॥
राजानमेनं त्वमितीदमुक्त्वा
किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम्।
त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न
नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन्॥ २६ ॥

अर्जुनका यह वचन सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उनसे कहा—'पार्थ ! राजा युधिष्ठिरको 'तू' ऐसा कहकर तुम इतने घोर दुःखमें क्यों डूब गये ? शत्रुसूदन ! क्या तुम आत्मघात करना चाहते हो ? किरीटधारी वीर ! साधुपुरुषोंने कभी ऐसा कार्य नहीं किया है ॥ २५-२६ ॥

धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य
खड्गेन चैनं यदि हन्या नृवीर ।
धर्माद् भीतस्तत् कथं नाम ते स्यात्
किंचोत्तरं वाकरिष्यस्त्वमेव ॥ २७ ॥

'नरवीर ! यदि आज धर्मसे डरकर तुमने अपने बड़े भाई इन धर्मात्मा युधिष्ठिरको तलवारसे मार डाला होता तो तुम्हारी कैसी दशा होती और इसके बाद तुम क्या करते ? ॥

सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ
विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध।
हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं
वधाद् भ्रातुर्नरकं चातिघोरम् ॥ २८ ॥

'कुन्तीनन्दन ! धर्मका स्वरूप सूक्ष्म है । उसको जानना या समझना बहुत कठिन है । विशेषतः अज्ञानी पुरुषोंके लिये तो उसका जानना और भी मुश्किल है । अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो, भाईका वध करनेसे जिस अत्यन्त घोर नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक तुम्हें स्वयं ही अपनी हत्या करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ ।
तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो
धनंजयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥ २९ ॥
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं
शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः ।

'अतः पार्थ ! अब तुम यहाँ अपनी ही वाणीद्वारा अपने गुणोंका वर्णन करो । ऐसा करनेसे यह मान लिया जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपना वध कर लिया ।' यह सुनकर अर्जुनने उनकी बातका अभिनन्दन करते हुए कहा—'श्रीकृष्ण ! ऐसा ही हो' । फिर इन्द्रकुमार अर्जुन अपने धनुषको नवाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—'राजन् ! सुनिये ॥ २९½ ॥

न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते
धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ॥ ३० ॥
अहं हि तेनानुमतो महात्मना
क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ।

'नरदेव ! पिनाकधारी भगवान् शङ्करको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरे समान धनुर्धर नहीं है । उन महात्मा महेश्वरने मेरी वीरताका अनुमोदन किया है । मैं चाहूँ तो क्षणभरमें चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण जगत्‌को नष्ट कर डालूँ॥३०½॥

मया हि राजन् सदिगीश्वरा दिशो
विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे॥ ३१ ॥
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः
सभा च दिव्या भवतो ममौजसा।

'राजन् ! मैंने सम्पूर्ण दिशाओं और दिक्पालोंको जीतकर आपके अधीन कर दिया था । पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त राजसूय यज्ञका अनुष्ठान तथा आपकी दिव्य सभाका निर्माण मेरे ही बलसे सम्भव हुआ है ॥ ३१½ ॥

पाणौ पृषत्का निशिता ममैव
धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥ ३२ ॥
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ।

'मेरे ही हाथमें तीखे तीर और बाण तथा प्रत्यञ्चासहित विशाल धनुष है। मेरे चरणोंमें रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मेरे-जैसा वीर यदि युद्धभूमिमें पहुँच जाय तो उसे शत्रु जीत नहीं सकते ॥ ३२½ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः
प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः॥३३॥
संशप्तकानां किंचिदेवास्ति शिष्टं
सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम्।
शेते मया निहता भारतीयं
चमू राजन् देवचमूप्रकाशा ॥ ३४ ॥

'मेरेद्वारा उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिणदेशीय योद्धा काट डाले गये। संशप्तकोंका भी थोड़ा-सा ही भाग शेष रह गया है। मैंने सारी कौरव-सेनाके आधे भागको स्वयं ही नष्ट किया है। राजन्! देवताओं-की सेनाके समान प्रकाशित होनेवाली भरतवंशियोंकी यह विशाल वाहिनी मेरे ही हाथों मारी जाकर रणभूमिमें सो रही है ॥ ३३-३४ ॥

ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रै-
स्तस्माल्लोकान्नेह करोमि भस्मसात्।
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण
यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५ ॥

'जो अस्त्रविद्याके ज्ञाता हैं, उन्हींको मैं अस्त्रोंद्वारा मारता हूँ; इसीलिये मैं यहाँ सम्पूर्ण लोकोंको भस्म नहीं करता हूँ। श्रीकृष्ण! अब हम दोनों विजयशाली एवं भयंकर रथपर बैठकर सूतपुत्रका वध करनेके लिये शीघ्र ही चल दें ॥

राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं
कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

'आज ये राजा युधिष्ठिर संतुष्ट हों। मैं रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा कर्णका नाश कर डालूँगा।' यों कहकर अर्जुन पुनः धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले—॥ ३६ ॥

अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री
कुन्ती वाथो वा मया तेन वापि।
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ
शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥ ३७ ॥

'आज मेरेद्वारा सूतपुत्रकी माता पुत्रहीन हो जायगी अथवा मेरी माता कुन्ती ही कर्णके द्वारा मुझ एक पुत्रसे हीन हो जायगी। मैं सत्य कहता हूँ, आज युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा कर्णको मारे विना मैं कवच नहीं उतारूँगा॥३७॥

संजय उवाच

इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम्।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य
कोशे च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ॥ ३८ ॥
स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी
युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच।
प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं
काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे पुनः ऐसा कहकर शस्त्र खोल, धनुष नीचे डाल और तलवारको तुरंत ही म्यानमें रखकर लज्जासे नतमस्तक हो हाथ जोड़ पुनः उनसे इस प्रकार बोले—'राजन्! आप प्रसन्न हों। मैंने जो कुछ कहा है, उसके लिये क्षमा करें। समयपर आपको सब कुछ मालूम हो जायगा। इसलिये आपको मेरा नमस्कार है' ॥ ३८-३९ ॥

प्रसाद्य राजानममित्रसाहं
स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः।
नेदं चिरात् क्षिप्रमिदं भविष्य-
त्यावर्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ ४० ॥

इस प्रकार शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके प्रमुख वीर अर्जुन खड़े होकर फिर बोले—'महाराज! अब कर्णके वधमें देर नहीं है। यह कार्य शीघ्र ही होगा। वह इधर ही आ रहा है; अतः मैं भी उसीपर चढ़ाई कर रहा हूँ ॥ ४० ॥

याम्येष भीमं समरात् प्रमोक्तुं
सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम्।
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि
ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ॥ ४१ ॥

'राजन्! मैं अभी भीमसेनको संग्रामसे छुटकारा दिलाने और सब प्रकारसे सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये जा रहा हूँ। मेरा जीवन आपका प्रिय करनेके लिये ही है। यह मैं सत्य कहता हूँ। आप इसे अच्छी तरह समझ लें' ॥ ४१ ॥

इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ
समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो
भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥ ४२ ॥
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच
पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः।

इस प्रकार जानेके लिये उद्यत हो राजा युधिष्ठिरके चरण छूकर उद्दीप्त तेजवाले किरीटधारी अर्जुन उठ खड़े हुए। इधर अपने भाई अर्जुनका पूर्वोक्तरूपसे कठोर वचन सुनकर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर उस शय्यासे उठ गये और अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

कृतं मया पार्थ यथा न साधु
येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३ ॥

तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य
कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य
विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! अवश्य ही मैंने अच्छा कर्म नहीं किया है, जिससे तुमलोगोंपर अत्यन्त भयङ्कर सङ्कट आ पड़ा है। मैं कुलान्तकारी नराधम पापी, पापमय दुर्व्यसनमें आसक्त, मूढ़बुद्धि, आलसी और डरपोक हूँ; इसलिये आज तुम मेरा यह मस्तक काट डालो ॥ ४३-४४ ॥

वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव
किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम्।
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः
सुखं भवान् वर्ततां मद्विहीनः॥ ४५॥

'मैं बड़े बूढ़ोंका अनादर करनेवाला और कठोर हूँ। तुम्हें मेरी रूखी बातोंका दीर्घकालतक अनुसरण करनेकी क्या आवश्यकता है। मैं पापी आज वनमें ही चला जा रहा हूँ। तुम मुझसे अलग होकर सुखसे रहो ॥ ४५ ॥

योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा
क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्।
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्त्वेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६ ॥

'महामनस्वी भीमसेन सुयोग्य राजा होंगे। मुझ कायरको राज्य लेनेसे क्या काम है ? अब पुनः मुझमें तुम्हारे रोषपूर्वक कहे हुए इन कठोर वचनोंको सहनेकी शक्ति नहीं है ॥४६॥

भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन
न कार्यमद्यावमतस्य वीर ।
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात
राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७ ॥
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय
तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ ४८ ॥

'वीर ! भीमसेन राजा हों। आज इतना अपमान हो जानेपर मुझे जीवित रहनेकी आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर सहसा पलंग छोड़कर वहाँसे नीचे कूद पड़े और वनमें जानेकी इच्छा करने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने उनके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥४७-४८॥

राजन् विदितमेतद् वै यथा गाण्डीवधन्वनः ।
प्रतिज्ञा सत्यसंधस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ॥ ४९ ॥

'राजन् ! आपको तो यह विदित ही है कि गाण्डीवधारी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनने गाण्डीव धनुषके विषयमें कैसी प्रतिज्ञा कर रक्खी है ? उनकी वह प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

ब्रूयाद् य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत ।
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ॥

'जो अर्जुनसे यह कह दे कि 'तुम्हें अपना गाण्डीवधनुष दूसरेको दे देना चाहिये' वह मनुष्य इस जगत्में उनका वध्य है।' आपने आज अर्जुनसे ऐसी ही बात कह दी है ॥५०॥

ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता ।
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते ॥ ५१ ॥
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ।

'अतः भूपाल ! अर्जुनने अपनी उस सच्ची प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मेरी आज्ञासे आपका यह अपमान किया; क्योंकि गुरुजनोंका अपमान ही उनका वध कहा जाता है ॥

तस्मात् त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः॥ ५२ ॥
व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति ।

'इसलिये महाबाहो ! राजन् ! मेरे और अर्जुन दोनोंके सत्यकी रक्षाके लिये किये गये इस अपराधको आप क्षमा करें ॥ ५२½ ॥

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि ॥ ५३ ॥
क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभियाचतः ।

'महाराज ! हम दोनों आपकी शरणमें आये हैं और मैं चरणोंमें गिरकर आपसे क्षमा-याचना करता हूँ; आप मेरे अपराधको क्षमा करें ॥ ५३½ ॥

राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ५४ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम् ।
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् ॥ ५५ ॥

'आज पृथ्वी पापी राधापुत्र कर्णके रक्तका पान करेगी। मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, समझ लीजिये कि अब सूतपुत्र कर्ण मार दिया गया। आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन समाप्त हो गया' ॥ ५४-५५ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ॥ ५६ ॥
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ।

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने चरणोंमें पड़े हुए हृषीकेशको वेगपूर्वक उठाकर फिर दोनों हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ५६½ ॥

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम॥ ५७ ॥
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव ।
मोचिता व्यसनाद् घोराद् वयमद्य त्वयाच्युत॥ ५८ ॥

'गोविन्द ! आप जैसा कहते हैं, वह ठीक है। वास्तवमें मुझसे यह नियमका उल्लङ्घन हो गया है। माधव ! आपने अनुनयद्वारा मुझे संतुष्ट कर दिया और सङ्कटके समुद्रमें डूबनेसे बचा लिया। अच्युत ! आज आपके द्वारा हमलोग घोर विपत्तिसे बच गये ॥ ५७-५८ ॥

भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात् ।
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ ॥ ५९ ॥
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद् वयम् ।

समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स त्वयाच्युत ॥ ६० ॥

'आज आपको अपना रक्षक पाकर हम दोनों सङ्कटके भयानक समुद्रसे पार हो गये। हम दोनों ही अज्ञानसे मोहित हो रहे थे; परंतु आपकी बुद्धिरूपी नौकाका आश्रय लेकर दुःख-शोकके समुद्रसे मन्त्रियोंसहित पार हो गये। अच्युत! हम आपसे ही सनाथ हैं' ॥ ५९-६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरको आश्वासनविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

एकसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश, अर्जुन और युधिष्ठिरका प्रसन्नतापूर्वक मिलन एवं अर्जुनद्वारा कर्णवधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरका आशीर्वाद

संजय उवाच

धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! धर्मराजके मुखसे यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर यदुकुलको आनन्दित करनेवाले धर्मात्मा गोविन्द अर्जुनसे कुछ कहने लगे ॥ १ ॥

इति स्म कृष्णवचनात् प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम्।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित् कृत्वेव पातकम् ॥ २ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरके प्रति जो तिरस्कारपूर्ण वचन बोले थे, इसके कारण वे मन-ही-मन ऐसे उदास हो गये थे, मानो कोई पाप कर बैठे हों ॥ २ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम्।
कथं नाम भवेदेतद् यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥ ३ ॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम्।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः ॥ ४ ॥

उनकी यह अवस्था देख भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए-से उन पाण्डुकुमारसे बोले—'पार्थ! तुम तो राजाके प्रति केवल 'तू' कह देने मात्रसे ही इस प्रकार शोकमें डूब गये हो। फिर यदि धर्ममें स्थित रहनेवाले धर्मकुमार युधिष्ठिरको तीखी धारवाले तलवारसे मार डालते, तब तुम्हारी दशा कैसी हो जाती? ॥ ३-४ ॥

हत्वा तु नृपतिं पार्थ अकरिष्यः किमुत्तरम्।
एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५ ॥

'कुन्तीनन्दन! तुम राजाका वध करनेके पश्चात् क्या करते? इस तरह धर्मका स्वरूप सभीके लिये दुर्विज्ञेय है। विशेषतः उन लोगोंके लिये, जिनकी बुद्धि मन्द है, उसके सूक्ष्म स्वरूपको समझना अत्यन्त कठिन है ॥ ५ ॥

स भवान् धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ६ ॥

'अतः तुम धर्मभीरु होनेके कारण अपने ज्येष्ठ भाईके वधसे निश्चय ही घोर नरकरूप महान् अन्धकार (दुःख) में डूब जाते ॥ ६ ॥

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम्।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ७ ॥

'इसलिये इस विषयमें मेरा विचार यह है कि तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मपरायण कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करो ॥

प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ८ ॥

'राजा युधिष्ठिरको भक्तिभावसे प्रसन्न कर लो। जब वे प्रसन्न हो जायँ, तब हमलोग तुरंत ही युद्धके लिये सूतपुत्रके रथपर चढ़ाई करेंगे ॥ ८ ॥

हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ९ ॥

'मानद! आज तुम तीखे बाणोंसे समरभूमिमें कर्णका वध करके धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हृदयमें अत्यन्त हर्षोल्लास भर दो ॥

एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो! मुझे तो इस समय यहाँ यही करना उचित जान पड़ता है। ऐसा कर लेनेपर तुम्हारा सारा कार्य सम्पन्न हो जायगा' ॥ १० ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११ ॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः।
क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १२ ॥

'महाराज! तब अर्जुन लज्जित हो धर्मराजके चरणोंमें गिरकर मस्तक नवाकर उन भरतश्रेष्ठ नरेशसे बारंबार बोले—'राजन्! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। मैंने धर्मपालनकी इच्छासे भयभीत होकर जो अनुचित वचन कहा है, उसके लिये क्षमा कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः।
धनंजयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥
उत्थाय भ्रातरं राजा धर्मराजो धनंजयम्।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥ १४ ॥

भरतश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुसूदन, भाई धनंजयको अपने चरणोंपर गिरकर रोते देख बड़े स्नेहसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर वे भूपाल धर्मराज भी फूट-फूटकर रोने लगे ॥ १३-१४ ॥

रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती।

कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥ १५ ॥

महाराज ! वे दोनों महातेजस्वी भाई दीर्घकालतक रोते रहे । इससे उनके मनकी मैल धुल गयी और वे दोनों भाई परस्पर प्रेमसे भर गये ॥ १५ ॥

तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ॥१६॥
अब्रवीत् तं महेष्वासं धर्मराजो धनंजयम् ।

तदनन्तर अत्यन्त प्रसन्न हो बारंबार मुस्कराते हुए पाण्डुकुमार धर्मराज युधिष्ठिरने महाधनुर्धर धनंजयको बड़े प्रेमसे हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और उनसे इस प्रकार कहा—॥ १६½ ॥

कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥१७॥
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः ।
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ॥१८॥

'महाधनुर्धर ! महाबाहो ! मैं युद्धमें यत्नपूर्वक लगा हुआ था, किंतु कर्णने सारी सेनाके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा मेरे कवच, ध्वज, धनुष, शक्ति, घोड़े और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं ॥ १७-१८ ॥

सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन।
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम् ॥१९॥

'फाल्गुन ! रणभूमिमें उसके इस कर्मको देख और समझकर मैं दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ । मुझे अपना जीवन प्रिय नहीं रह गया है ॥ १९ ॥

न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे।
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम ॥ २० ॥

'यदि आज युद्धस्थलमें तुम वीर कर्णका वध नहीं करोगे, तो मैं अपने प्राणोंका ही परित्याग कर दूँगा । फिर मेरे जीवनका प्रयोजन ही क्या है ?' ॥ २० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ।
सत्येन ते शपे राजन् प्रसादेन तथैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ २१ ॥
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा ।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उत्तर दिया—'राजन् ! नरश्रेष्ठ महीपाल ! मैं आपसे सत्यकी, आपके कृपापूर्ण प्रसादकी, भीमसेनकी तथा नकुल और सहदेवकी शपथ खाकर सत्यके द्वारा अपने धनुषको छूकर कहता हूँ कि आज समरमें या तो कर्णको मार डालूँगा या स्वयं ही मारा जाकर पृथ्वीपर गिर जाऊँगा' ॥ २१-२२ ॥

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः ।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥ २३ ॥
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः ।

राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'श्रीकृष्ण ! आज रणभूमिमें मैं कर्णका वध करूँगा, इसमें संशय नहीं है । आपका कल्याण हो । आपकी बुद्धिसे ही उस दुरात्माका वध होगा' ॥ २३½ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् पार्थं केशवो राजसत्तम ॥ २४ ॥
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम् ।
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥ २५ ॥
कथं भवान् रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम ।

नृपश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'भरतश्रेष्ठ ! तुम महाबली कर्णका वध करनेमें समर्थ हो । सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महारथी वीर ! मेरे मनमें भी सदा यही इच्छा बनी रहती है कि तुम रणभूमिमें कर्णको किसी तरह मार डालो' ॥ २४-२५½ ॥

भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम् ॥ २६ ॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥

फिर बुद्धिमान् भगवान् माधवने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—'महाराज ! आप अर्जुनको सान्त्वना और दुरात्मा कर्णके वधके लिये आज्ञा प्रदान करें ॥ २६-२७ ॥

श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! राजन् ! आप कर्णके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गये हैं—यह सुनकर मैं और ये अर्जुन दोनों आपका समाचार जाननेके लिये यहाँ आये थे ॥ २८ ॥

दिष्ट्यासि राजन् न हतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २९ ॥

'निष्पाप नरेश ! सौभाग्यकी बात है कि (कर्णकेद्वारा) न तो आप मारे गये और न पकड़े ही गये । अब आप अर्जुनको सान्त्वना दें और उन्हें विजयके लिये आशीर्वाद प्रदान करें' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर बोले—कुन्तीनन्दन ! बीभत्सो ! आओ, आओ ! पाण्डुकुमार ! मेरे हृदयसे लग जाओ । तुमने तो मेरे प्रति कहने योग्य और हितकी ही बात कही है तथा मैंने उसके लिये क्षमा भी कर दी ॥ ३० ॥

अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनंजय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥३१॥

धनंजय ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कर्णका वध करो । पार्थ ! मैंने जो तुमसे कठोर वचन कहा है, उसके लिये खेद न करना ॥

संजय उवाच

ततो धनंजयो राजञ्छिरसा प्रणतस्तदा ।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! तब धनंजयने

मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे बड़े भाईके पैर पकड़ लिये ॥ ३२ ॥

तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम्।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् राजाने मन-ही-मन पीड़ाका अनुभव करनेवाले अर्जुनको उठाकर छातीसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३३ ॥

धनंजय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

'महाबाहु धनंजय ! तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया है; अतः तुम्हारी महिमा बढ़े और तुम्हें पुनः सनातन विजय प्राप्त हो' ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्जुन बोले—महाराज ! आज मैं अपने बलका घमंड रखनेवाले उस पापाचारी राधापुत्र कर्णको रणभूमिमें पाकर उसके सगे-सम्बन्धियोंसहित मृत्युके समीप भेज दूँगा ॥

येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम्।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! जिसने धनुषको दृढ़तापूर्वक खींचकर अपने बाणोंद्वारा आपको पीड़ित किया है, वह कर्ण आज अपने उस पापकर्मका अत्यन्त भयंकर फल पायेगा ॥ ३६ ॥

अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

भूपाल ! आज मैं कर्णको मारकर ही आपका दर्शन करूँगा और युद्धस्थलसे आपका अभिनन्दन करनेके लिये आऊँगा। यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ३७ ॥

नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात्।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! आज मैं कर्णको मारे बिना समराङ्गणसे नहीं लौटूँगा। इस सत्यके द्वारा मैं आपके दोनों चरण छूता हूँ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं
युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम्।
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते
जयं सदा वीर्यमरिक्षयं तदा ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी बातें कहनेवाले किरीटधारी अर्जुनसे युधिष्ठिरने प्रसन्नचित्त होकर यह महत्त्वपूर्ण बात कही—'वीर ! तुम्हें अक्षय यश, पूर्ण आयु, मनोवाञ्छित कामना, विजय तथा शत्रुनाशक पराक्रम—ये सदा प्राप्त होते रहें ॥ ३९ ॥

प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता
यथाहमिच्छामि तवास्तु तत् तथा।
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे
पुरंदरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४० ॥

'जाओ, देवता तुम्हें अभ्युदय प्रदान करें। मैं तुम्हारे लिये जैसा चाहता हूँ, वैसा ही सब कुछ तुम्हें प्राप्त हो। आगे बढ़ो और युद्धस्थलमें शीघ्र ही कर्णको मार डालो। ठीक उसी तरह, जैसे देवराज इन्द्रने अपने ही ऐश्वर्यकी वृद्धिके लिये वृत्रासुरका नाश किया था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनकी प्रतिज्ञाविषयक ~~प्रक सौ~~ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी रणयात्रा, मार्गमें शुभ शकुन तथा श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रोत्साहन देना

संजय उवाच

प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अर्जुन सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये उद्यत हो प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णसे बोले—॥ १ ॥

कल्पतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः।
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे ॥ २ ॥
उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिभिः।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३ ॥
प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया।

'गोविन्द ! अब मेरा रथ तैयार हो। उसमें पुनः उत्तम घोड़े जोते जायँ और मेरे उस विशाल रथमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र सजाकर रख दिये जायँ। अश्वारोहियोंद्वारा सिखलाये और टहलाये गये घोड़े रथ-सम्बन्धी उपकरणोंसे सुसज्जित हो शीघ्र यहाँ आवें और आप सूतपुत्रके वधकी इच्छासे जल्दी ही यहाँसे प्रस्थान कीजिये' ॥२-३½॥

एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥ ४ ॥
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत्।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥

महाराज ! महात्मा अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—'सारथे ! समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ भरतभूषण अर्जुनने जैसा कहा है, उसके अनुसार सारी तैयारी करो' ॥ ४-५ ॥

आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ६ ॥
सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः।

नृपश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णके इस प्रकार आदेश देनेपर दारुकने व्याघ्र-चर्मसे आच्छादित तथा शत्रुओंको तपानेवाले रथको जोतकर तैयार कर दिया और महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके पास आकर निवेदन किया कि 'आपका रथ सब सामग्रियोंसे सुसज्जित है' ॥ ६½ ॥

युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥ ७ ॥
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।
सुमङ्गलस्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥ ८ ॥

महामना दारुकके द्वारा जोतकर लाये हुए उस रथको देखकर अर्जुन धर्मराजसे आज्ञा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कल्याणके आश्रयभूत उस परम मङ्गलमय उत्तम रथपर आरूढ हुए ॥ ७-८ ॥

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
आशिषोऽयुङ्क्त स ततः प्रायात् कर्णरथं प्रति ॥ ९ ॥

उस समय महाबुद्धिमान् धर्मराज राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् उन्होंने कर्णके रथकी ओर प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥ १० ॥

भारत ! महाधनुर्धर अर्जुनको आते देख समस्त प्राणियोंको यह विश्वास हो गया कि अब कर्ण महामनस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके हाथसे अवश्य मारा जायगा ॥ १० ॥

बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन् समन्ततः।
चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर ॥ ११ ॥
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम्।

राजन् ! सम्पूर्ण दिशाएँ सब ओरसे निर्मल हो गयी थीं। नरेश्वर ! नीलकण्ठ, सारस और क्रौञ्च पक्षी पाण्डुनन्दन अर्जुनको दाहिने रखते हुए जाने लगे ॥ ११½ ॥

बहवः पक्षिणो राजन् पुन्नामानः शुभाः शिवाः ॥ १२ ॥
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे।

राजन् ! पुरुष जातिवाले बहुत-से शुभकारक मङ्गलदायक पक्षी अर्जुनको युद्धके लिये उतावले करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चहचहा रहे थे ॥ १२½ ॥

कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशाम्पते ॥ १३ ॥
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः।

प्रजानाथ ! कङ्क, गृध्र, वक, बाज और कौए आदि भयानक पक्षी मांसके लिये उनके आगे-आगे जा रहे थे ॥

निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे ॥ १४ ॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति।

इस प्रकार बहुत-से शुभ शकुन पाण्डुपुत्र अर्जुनको उनके शत्रुओंके विनाश तथा कर्णके वधकी सूचना दे रहे थे ॥

प्रयातस्याथ पार्थस्य महान् स्वेदो व्यजायत ॥ १५ ॥
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति।

युद्धके लिये प्रस्थान करनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनके शरीरमें बड़े जोरसे पसीना छूटने लगा तथा मन-ही-मन भारी चिन्ता होने लगी कि 'यह सब कैसे होगा ?' ॥ १५½ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा।

रथमें बैठकर चलते समय गाण्डीवधारी अर्जुनको चिन्तामग्न देख भगवान् श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा ॥

वासुदेव उवाच

गाण्डीवधन्वन् संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः ॥ १७ ॥
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते।

श्रीकृष्ण बोले—गाण्डीवधारी अर्जुन ! तुमने अपने धनुषसे जिन-जिन वीरोंपर विजय पायी है, उन्हें जीतनेवाला इस संसारमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मनुष्य नहीं है ॥ १७½ ॥

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १८ ॥
त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम्।

मैंने देखा है इन्द्रके समान पराक्रमी बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें तुझ शौर्यसम्पन्न वीरके पास आकर परम गतिको प्राप्त हो गये ॥ १८½ ॥

को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष ॥ १९ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च।
प्रत्युद्गम्य भवेत् क्षेमी यो न स्यात् त्वमिव प्रभो ॥ २० ॥

प्रभो ! आर्य ! जो तुम्हारे-जैसा वीर न हो, ऐसा कौन पुरुष द्रोणाचार्य, भीष्म, भगदत्त, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, महापराक्रमी श्रुतायु तथा अच्युतायुका सामना करके सकुशल रह सकता था ॥ १९-२० ॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च।
असम्मोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संततिः ॥ २१ ॥
वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन।
भवान् देवान् सगन्धर्वान् हन्यात् सह चराचरान् ॥ २२ ॥

तुम्हारे पास दिव्य अस्त्र हैं, तुममें फुर्ती है, बल है, युद्धके समय तुम्हें घबराहट नहीं होती, तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंका विस्तृत ज्ञान है तथा लक्ष्यको वेधने तथा गिरानेकी कला ज्ञात है। अर्जुन ! लक्ष्यको वेधते समय तुम्हारा चित्त एकाग्र रहता है। गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा चराचर प्राणियोंको तुम एक साथ मार सकते हो ॥ २१-२२ ॥

पृथिव्यां तु रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान्।
धनुर्ग्राहा हि ये केचित् क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २३ ॥
आ देवात् त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च।

कुन्तीकुमार ! इस भूमण्डलपर दूसरा कोई पुरुष तुम्हारे समान योद्धा नहीं है। यहाँसे देवलोकतक धनुष धारण करनेवाले जो कोई भी रणदुर्मद क्षत्रिय हैं, उनमेंसे किसीको भी मैं तुम्हारे समान न तो देखता हूँ और न सुनता ही हूँ ॥

ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महद् धनुः ॥ २४ ॥
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ।

पार्थ ! ब्रह्माजीने सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की है और उन्हींने ही उस विशाल धनुष गाण्डीवकी भी रचना की है, जिसके द्वारा तुम युद्ध करते हो; अतः तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २४½ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं यत् पथ्यं तव पाण्डव ॥ २५ ॥
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ।

पाण्डुनन्दन ! तो भी जो बात तुम्हारे लिये हितकर हो, उसे बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ। महाबाहो ! संग्राममें शोभा पानेवाले कर्णकी अवहेलना न करना ॥ २५½ ॥

कर्णो हि बलवान् दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः ॥ २६ ॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः ।

क्योंकि कर्ण बलवान्, अभिमानी, अस्त्रविद्याका विद्वान्, महारथी, युद्धकुशल, विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला तथा देशकालको समझनेवाला है ॥ २६½ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥ २७ ॥
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम् ।
परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥ २८ ॥

पाण्डुनन्दन ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, संक्षेपसे ही सुन लो। मैं महारथी कर्णको तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर मानता हूँ। अतः महासमरमें महान् प्रयत्न करके तुम्हें उसका वध करना होगा ॥ २७-२८ ॥

तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥ २९ ॥

कर्ण तेजमें अग्निके सदृश, वेगमें वायुके समान, क्रोधमें यमराजके तुल्य, सुदृढ़ शरीरमें सिंहके सदृश तथा बलवान् है ॥ २९ ॥

अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥ ३० ॥

उसके शरीरकी ऊँचाई आठ रत्नि[1] (एक सौ अड़सठ अंगुल) है। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी हैं। उसे जीतना अत्यन्त कठिन है। वह अभिमानी, शौर्यसम्पन्न, प्रमुख वीर और प्रियदर्शन (सुन्दर) है ॥ ३० ॥

सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः ।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१ ॥

उसमें योद्धाओंके सभी गुण हैं। वह अपने मित्रोंको अभय देनेवाला है तथा दुर्योधनके हितमें तत्पर रहकर पाण्डवोंसे सदा द्वेष रखता है ॥ ३१ ॥

सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः ।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ॥ ३२ ॥

मेरा तो ऐसा विचार है कि राधापुत्र कर्ण तुम्हें छोड़कर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अवध्य है; अतः तुम आज सूतपुत्रका वध करो ॥ ३२ ॥

देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् ।
अशक्यः स रथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ३३ ॥

समस्त देवता भी यदि रक्त-मांसयुक्त शरीरको धारण करके युद्धकी अभिलाषा लेकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो रणभूमिमें आ जायँ तो उनके लिये रथसहित कर्णको जीतना असम्भव है ॥ ३३ ॥

दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं
दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे
हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥ ३४ ॥

अतः आज तुम दुरात्मा, पापाचारी, क्रूर, पाण्डवोंके प्रति सदा दुर्भावना रखनेवाले और किसी स्वार्थके बिना ही पाण्डव-विरोधमें तत्पर हुए कर्णका वध करके सफलमनोरथ हो जाओ ॥ ३४ ॥

तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
निष्कालिकं कालवशं नयाद्य ।
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र अपनेको कालके वशमें नहीं समझता है। तुम उसे आज ही कालके अधीन कर दो। रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र कर्णको मारकर धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥

जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद्
दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च ।
सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रा-
नसौ दर्पात् सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६ ॥

पार्थ ! मैं तुम्हारे उस बल-पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ, जिसका निवारण करना देवताओं और असुरोंके लिये भी कठिन है। दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण घमंडमें आकर सदा पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ३६ ॥

आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनंजय ॥ ३७ ॥

धनंजय ! जिसके साथ होनेसे पापी दुर्योधन अपनेको वीर मानता है, वह सूतपुत्र कर्ण ही सारे पापोंकी जड़ है; अतः आज तुम उसे मार डालो ॥ ३७ ॥

खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् ।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनंजय ॥ ३८ ॥

1. मुट्ठी बँधे हुए हाथके मापको रत्नि कहते हैं।

अर्जुन ! कर्ण पुरुषोंमें सिंहके समान है, तलवार ही उसकी जिह्वा है, धनुष ही उसका फैला हुआ मुख है, बाण उसकी दाढ़ें हैं, वह अत्यन्त वेगशाली और अभिमानी है। तुम उसका वध करो ॥ ३८ ॥

अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च।
जहि कर्णं रणे शूर मातङ्गमिव केसरी ॥ ३९ ॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीको मार डालता है, उसी प्रकार तुम भी अपने बल और पराक्रमसे रणभूमिमें शूरवीर कर्णको मार डालो। इसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ ॥ ३९ ॥

यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्तनं जहि ॥ ४० ॥

पार्थ ! जिसके बलसे दुर्योधन तुम्हारे बल-पराक्रमकी अवहेलना करता है, उस वैकर्तन कर्णको आज तुम युद्धमें मार डालो ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्म और द्रोणके पराक्रमका वर्णन करते हुए अर्जुनके बलकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णका कर्ण और दुर्योधनके अन्यायकी याद दिलाकर अर्जुनको कर्णवधके लिये उत्तेजित करना

संजय उवाच

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत्।
कृतसंकल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतनन्दन ! तदनन्तर कर्णका वध करनेके लिये कृतसंकल्प होकर आते हुए अर्जुनसे अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने पुनः इस प्रकार कहा—॥१॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥ २ ॥

'भारत ! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका जो यह अत्यन्त भयंकर विनाश चल रहा है, इसे आज सत्रह दिन हो गये ॥ २ ॥

भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किंचिच्छेषा विशाम्पते॥ ३ ॥

'प्रजानाथ ! शत्रुओंके साथ-साथ तुमलोगोंके पास भी विशाल सेना जुट गयी थी; परंतु परस्पर युद्ध करके प्रायः नष्ट हो गयी, अब थोड़ी-सी ही शेष रह गयी है ॥ ३ ॥

भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥ ४ ॥

'पार्थ ! कौरवपक्षके योद्धा बहुसंख्यक हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे, परंतु तुम-जैसे वीर शत्रुको पाकर युद्धके मुहानेपर नष्ट हो गये ॥ ४ ॥

एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः॥ ५ ॥

'तुम शत्रुओंके लिये दुर्जय हो, तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर ये तुम्हारे पक्षके भूमिपाल सृञ्जय और पाण्डव योद्धा युद्धस्थलमें डटे हुए हैं ॥ ५ ॥

पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥

'तुमसे सुरक्षित हुए इन पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, करूष तथा चेदिदेशीय शत्रुनाशक वीरोंने शत्रुसमूहोंका संहार कर डाला है ॥ ६ ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे।
अन्यत्र पाण्डवान् युद्धे त्वया गुप्तान् महारथान् ।७।

'तात ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित पाण्डव महारथियोंको छोड़कर दूसरा कौन नरेश युद्धमें कौरवोंको परास्त कर सकता है ॥ ७ ॥

शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान्।
त्रीँल्लोकान् समरे युक्तान् किं पुनः कौरवं बलम्।८।

'तुम तो युद्धके लिये तैयार होकर आये हुए देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको समरभूमिमें जीत सकते हो, फिर कौरव-सेनाकी तो बात ही क्या है ? ॥ ८ ॥

भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद् वासवोपमः ॥ ९ ॥

'पुरुषसिंह ! कोई इन्द्रके समान भी पराक्रमी क्यों न हो, तुम्हारे सिवा दूसरा कौन वीर राजा भगदत्तको जीत सकता था ? ॥ ९ ॥

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम् ॥ १० ॥

'निष्पाप कुन्तीकुमार ! तुम जिसकी रक्षा करते हो, उस विशाल सेनाकी ओर सारे राजा आँख उठाकर देख भी नहीं सके हैं ॥ १० ॥

तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ११ ॥

'पार्थ ! इसी प्रकार रणक्षेत्रमें सदा तुमसे सुरक्षित रहकर ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने द्रोणाचार्य और भीष्मको मार गिराया है ॥ ११ ॥

को हि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ।
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥

'कुन्तीनन्दन ! भरतवंशियोंकी सेनाके दो महारथी इन्द्रतुल्य पराक्रमी भीष्म और द्रोणको रणभूमिमें युद्ध करते समय कौन जीत सकता था ? ॥ १२ ॥

को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम्।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥ १३ ॥
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम्।
वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवानिवर्तिनः ॥ १४ ॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान् संहतान् युद्धदुर्मदान्।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५ ॥

'नरव्याघ्र! अक्षौहिणी सेनाके अधिपति, वीर, अस्त्रवेत्ता, भयंकर पराक्रमी, संगठित, रणोन्मत्त तथा कभी पीछे न हटनेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, वैकर्तन कर्ण, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य तथा राजा दुर्योधन-जैसे समस्त महारथियोंपर इस जगत्में तुम्हारे सिवा, दूसरा कौन पुरुष विजय पा सकता है ? ॥ १३-१५ ॥

श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १६ ॥

'अमर्षशील क्षत्रियोंके बहुत-से दल थे, जो बड़े भयंकर और अनेक जनपदोंके निवासी थे, वे सब-के-सब नष्ट हो गये, उनके घोड़े, रथ और हाथी भी धूलमें मिल गये ॥१६॥

गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम् ॥१७॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत ॥ १८ ॥

'भारत! गोवास, दासमीय, वसाति, प्राच्य, वाटधान और भोजदेशनिवासी अभिमानी वीरोंकी तथा सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी सेना, जिसमें उद्दण्ड घोड़ों और उन्मत्त हाथियोंकी संख्या अधिक थी, तुम्हारे और भीमसेनके पास पहुँचकर नष्ट हो गयी ॥ १७-१८ ॥

उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः ॥ १९ ॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥ २० ॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप।

'उग्रस्वभाव, भीषण पराक्रमी एवं भयंकर कर्म करनेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय तथा समुद्रतटवर्ती योद्धा, जो युद्धकुशल, रोषावेशसे युक्त, बलवान् एवं हाथोंमें डंडे लिये हुए हैं, क्रोधमें भरकर कौरव-सैनिकोंके साथ दुर्योधनकी सहायताके लिये आये हैं; शत्रुओंको संताप देने-वाले वीर! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई इन्हें नहीं जीत सकता ॥ १९-२१½ ॥

धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद् बलम् ॥ २२ ॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात् को नु मानवः।

'यदि तुम रक्षक न होते तो व्यूहाकारमें खड़ी हुई धृतराष्ट्रपुत्रोंकी प्रचण्ड एवं विशाल सेनाको सामने देखकर कौन मनुष्य उसपर चढ़ाई कर सकता था ? ॥२२½॥

तत् सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ॥ २३ ॥
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो।

'प्रभो! तुमसे सुरक्षित रहकर ही क्रोधभरे पाण्डव योद्धाओंने धूलसे आच्छादित और समुद्रके समान उमड़ी हुई कौरवसेनाको छिन्न-भिन्न करके मार डाला है ॥ २३½ ॥

मगधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ॥ २४ ॥
अद्य सप्तैव चाहानि हतः संख्येऽभिमन्युना।

'अभी सात दिन ही हुए हैं, अभिमन्युने मगधदेशके राजा महाबली जयत्सेनको युद्धमें मार डाला था ॥ २४½ ॥

ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ॥ २५ ॥
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम्।
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २६ ॥

'तत्पश्चात् भीमसेनने राजा जयत्सेनके भयानक कर्म करनेवाले दस हजार हाथियोंको, जो उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे, गदाके आघातसे नष्ट कर दिया। तदनन्तर और भी बहुत-से हाथी तथा सैकड़ों रथ उनके द्वारा बलपूर्वक नष्ट किये गये ॥ २५-२६ ॥

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥ २७ ॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः।

'पाण्डुनन्दन! पार्थ! इस प्रकार महाभयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर तुम्हारे और भीमसेनके सामने आकर बहुत-से कौरव-सैनिक घोड़े, रथ और हाथियोंसहित यहाँसे यमलोक पधार गये ॥ २७½ ॥

तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥ २८ ॥
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष।

'माननीय कुन्तीनन्दन! पाण्डव वीरोंने जब वहाँ सेनाके प्रमुख भागका विनाश कर डाला, तब भीष्मजी भयंकर बाण-समूहोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २८½ ॥

स चेदिकाशिपाञ्चालान् करूषान् मत्स्यकेकयान् ॥२९॥
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत् परमास्त्रवित्।

'वे उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता तो थे ही, उन्होंने पाण्डवपक्षके चेदि, काशी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और केकयदेशीय योद्धाओंको अपने बाणोंसे आच्छादित करके मौतके मुखमें डाल दिया ॥ २९½ ॥

तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥ ३० ॥
पूर्णमाकाशमभवद् रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः।

'उनके धनुषसे छूटे हुए बाण शत्रुओंकी कायाको विदीर्ण कर देनेवाले थे, उनमें सोनेके पंख लगे थे और वे लक्ष्यकी ओर सीधे पहुँचते थे। उन बाणोंसे सम्पूर्ण आकाश भर गया ॥ ३०½ ॥

हन्याद् रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥ ३१ ॥
लक्षं नरद्विपान् हत्वा समेतान् समहाबलान् ।

'वे एक-एक मुट्ठी बाणसे ही युद्धस्थलमें एकत्र हुए लाखों महाबली पैदल मनुष्यों और हाथियोंका संहार करके सहस्रों रथियोंको मार सकते थे ॥ ३१½ ॥

गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥ ३२ ॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत् ।

'भीष्मजी युद्धस्थलमें दोषयुक्त आविद्ध आदि नौ गतियों-को छोड़कर केवल दशवीं गतिसे बाण छोड़ते थे । वे बाण पाण्डवपक्षके घोड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करने लगे ३२½

दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥ ३३ ॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्च गजवाजिनः ।

'लगातार दस दिनोंतक तुम्हारी सेनाका विनाश करते हुए भीष्मजीने असंख्य रथोंकी बैठकें सूनी कर दीं, बहुत-से हाथी और घोड़े मार डाले ॥ ३३½ ॥

दर्शयित्वाऽऽत्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥ ३४ ॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।

'उन्होंने रणभूमिमें भगवान् रुद्र और विष्णुके समान अपना भयंकर रूप दिखाकर पाण्डव-सेनाओंका बलपूर्वक विनाश कर डाला ॥ ३४½ ॥

विनिघ्नन् पृथिवीपालांश्चेदिपाञ्चालकेकयान् ॥ ३५ ॥
अदहत् पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ॥ ३६ ॥

'मूर्ख दुर्योधन नौकारहित विपत्तिके सागरमें डूब रहा था; अतः भीष्मजी उसका उद्धार करना चाहते थे, उन्होंने चेदि, पाञ्चाल तथा केकयनरेशोंका वध करते हुए, रथ, घोड़ों और रथियोंसे भरी हुई पाण्डवसेनाको भस्म कर डाला ॥ ३५-३६ ॥

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥ ३७ ॥
न शेकुः सृंजया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥ ३८ ॥
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवाः समभिद्रवन् ।

'कोटि सहस्र पैदल तथा हाथोंमें उत्तम आयुध धारण किये हुए सृंजय सैनिक और दूसरे नरेश सूर्यदेवके समान ताप देते और समराङ्गणमें विचरते हुए भीष्मकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके । उस समय संग्रामभूमि-में विचरते तथा विजयसे उल्लसित होते हुए भीष्मजीपर पाण्डवयोद्धा अपनी सारी शक्ति लगाकर बड़े वेगसे टूट पड़े ॥ ३७-३८½ ॥

स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान् सृंजयानपि ॥ ३९ ॥
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।

'किंतु समराङ्गणमें भीष्मजी अकेले ही पाण्डवों और सृंजयोंको खदेड़कर युद्धमें अद्वितीय वीरके रूपमें विख्यात हुए ॥ ३९½ ॥

तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥ ४० ॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः संनतपर्वभिः
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥ ४१ ॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।

'अर्जुन ! तुमसे सुरक्षित हुए शिखण्डीने महान् व्रतधारी पुरुषसिंह भीष्मजीपर चढ़ाई करके झुकी हुई गाँठवाले बाणों-द्वारा उन्हें मार गिराया, वे ही ये पितामह भीष्म तुम-जैसे पुरुषसिंहको विपक्षमें पाकर धराशायी हो शरशय्यापर सो रहे हैं । ठीक उसी तरह, जैसे वृत्रासुर इन्द्रसे टक्कर लेकर रण-शय्यापर सो गया था ॥ ४०-४१½ ॥

द्रोणः पञ्चदिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥ ४३ ॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत् प्रजाः ।

'तत्पश्चात् उग्रमूर्ति महारथी द्रोणाचार्य पाँच दिनोंतक अभेद्यव्यूहका निर्माण, शत्रुसेनाका विध्वंस, महारथियोंका विनाश तथा समराङ्गणमें जयद्रथकी रक्षा करनेके अनन्तर रात्रियुद्धमें यमराजके समान प्रजाको दग्ध करने लगे ४२-४३½

दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।

'प्रतापी भरद्वाजनन्दन वीर द्रोणाचार्य अपने बाणोंद्वारा शत्रुयोद्धाओंको दग्ध करके धृष्टद्युम्नसे भिड़कर परमगतिको प्राप्त हो गये ॥ ४४½ ॥

यदि वाद्य भवान् युद्धे सूतपुत्रमुखान् रथान् ॥ ४५ ॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनङ्क्ष्यत ।

'उस समय यदि तुम युद्धस्थलमें सूतपुत्र आदि रथियोंको न रोकते तो रणभूमिमें द्रोणाचार्यका नाश नहीं होता॥४५½॥

भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥ ४६ ॥
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनंजय ।

'धनंजय ! तुमने दुर्योधनकी सारी सेनाको रोक रक्खा था; इसीलिये धृष्टद्युम्न संग्राममें द्रोणाचार्यका वध कर सके ॥ ४६½ ॥

एवं वा को रणे कुर्यात् त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ॥ ४७ ॥
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ।

'पार्थ ! जयद्रथका वध करते समय युद्धमें तुमने जैसा पराक्रम किया था, वैसा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन क्षत्रिय कर सकता है ? ॥ ४७½ ॥

निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ।

'तुमने अपने अस्त्रोंके बल और तेजसे शूरवीर राजाओंका वध करके दुर्योधनकी विशाल सेनाको रोककर सिन्धुराज जय-द्रथको मार गिराया ॥ ४८½ ॥

आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ॥ ४९ ॥
अनाश्चर्यं हि तत् त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ।

'पार्थ ! सब राजा जानते हैं कि सिंधुराज जयद्रथका वध एक आश्चर्यभरी घटना है, किंतु तुमसे ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम असाधारण महारथी हो ॥ ४९½ ॥

त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत ॥ ५० ॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः ।

'रणभूमिमें तुम्हें पाकर सारा क्षत्रियसमाज एक दिनमें नष्ट हो सकता है, ऐसा कहना मैं युक्तिसंगत मानता हूँ । मेरी तो ऐसी ही धारणा है ॥ ५०½ ॥

सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ५१ ॥
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ।

'कुन्तीनन्दन ! जब भीष्म और द्रोणाचार्य युद्धमें मार डाले गये, तभीसे मानो दुर्योधनकी इस भयंकर सेनाके सारे वीर मारे गये—इसका सर्वस्व नष्ट हो गया ॥ ५१½ ॥

शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा ॥ ५२ ॥
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ।

'इसके प्रधान-प्रधान योद्धा नष्ट हो गये । घोड़े, रथ और हाथी भी मार डाले गये । अब यह कौरवसेना सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे रहित आकाशके समान श्रीहीन जान पड़ती है ॥ ५२½ ॥

विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम ॥ ५३ ॥
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।

'भयंकर पराक्रमी पार्थ ! रणभूमिमें विध्वंसको प्राप्त हुई यह कौरवसेना पूर्वकालमें इन्द्रके पराक्रमसे नष्ट हुई असुरोंकी सेनाके समान प्रतीत होती है ॥ ५३½ ॥

तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ॥ ५४ ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।

'इन कौरवसैनिकोंमेंसे अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य—ये पाँच प्रमुख महारथी मरनेसे बच गये हैं ॥ ५४½ ॥

तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥ ५५ ॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।

'नरव्याघ्र ! आज इन पाँचों महारथियोंको मारकर तुम शत्रुहीन हो द्वीपों और नगरोंसहित यह सारी पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको दे दो ॥ ५५½ ॥

साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ॥ ५६ ॥
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् ।

'अमित पराक्रम और कान्तिसे सम्पन्न कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आज आकाश, जल, पाताल, पर्वत और बड़े-बड़े वनोंसहित इस वसुधाको प्राप्त कर लें ॥ ५६½ ॥

एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥ ५७ ॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव हरिर्यथा ।

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने दैत्यों और दानवोंको मारकर यह त्रिलोकी इन्द्रको दे दी थी, उसी प्रकार तुम यह पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ ५७½ ॥

अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ।
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥ ५८ ॥

'जैसे भगवान् विष्णुके द्वारा दानवोंके मारे जानेपर देवता प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार आज तुम्हारे द्वारा शत्रुओं-का संहार हो जानेपर समस्त पाञ्चाल आनन्दित हो उठें ॥

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात् ॥ ५९ ॥
अत्यन्तापचितान् बन्धून् मानयन् मातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ६० ॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान् न जिघांससि ॥ ६१ ॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

'कमलनयन नरश्रेष्ठ अर्जुन ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य-का सम्मान करते हुए तुम्हारे हृदयमें यदि अश्वत्थामाके प्रति दया है, अथवा आचार्योचित गौरवके कारण कृपाचार्यके प्रति कृपाभाव है, यदि माता कुन्तीके अत्यन्त पूजनीय बन्धु-बान्धवोंके प्रति आदरका भाव रखते हुए तुम कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे यमलोक भेजना नहीं चाहते तथा माता माद्रीके भाई, मद्रदेशीय जनताके अधिपति, राजा शल्यको भी तुम दयावश मारनेकी इच्छा नहीं रखते तो न सही, किंतु पाण्डवोंके प्रति सदा पापबुद्धि रखनेवाले इस अत्यन्त नीच कर्णको तो आज अपने पैने बाणोंसे मार ही डालो ॥ ५९-६२ ॥

एतत् ते सुकृतं कर्म नात्र किंचन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ६३ ॥

'यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा । इस विषयमें कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं भी तुम्हें इसके लिये आज्ञा देता हूँ, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ६३ ॥

दहने यत् सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ॥ ६४ ॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत ।

'निष्पाप अर्जुन ! रात्रिके समय पुत्रसहित तुम्हारी माता कुन्तीको जला देने और तुम सब लोगोंके साथ जूआ खेलनेके कार्यमें जो दुर्योधनकी प्रवृत्ति हुई थी, उन सब षड्यन्त्रोंका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था ॥ ६४½ ॥

कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ॥ ६५ ॥
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।

'दुर्योधनको सदासे ही यह विश्वास बना हुआ है कि कर्ण मेरी रक्षा कर लेगा; इसीलिये वह आवेशमें आकर मुझे भी कैद करनेकी तैयारी करने लगा था ॥ ६५½ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ॥ ६६ ॥
कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः ।

'मानद ! धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनका यह दृढ़ विचार है कि कर्ण रणभूमिमें कुन्तीके सभी पुत्रोंको निःसंदेह जीत लेगा ॥ ६६½ ॥

कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ॥ ६७ ॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे बलको जानते हुए भी दुर्योधनने कर्णका भरोसा करके ही तुम्हारे साथ युद्ध छेड़ना पसंद किया है ॥ ६७½ ॥

कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान् ॥ ६८ ॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।

'कर्ण सदा ही यह कहता रहता है कि 'मैं युद्धमें एक साथ आये हुए समस्त कुन्तीपुत्रों तथा वसुदेवनन्दन महारथी श्रीकृष्णको भी जीत लूँगा' ॥ ६८½ ॥

प्रोत्साहयन् दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।

'भारत ! अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले दुरात्मा दुर्योधनका उत्साह बढ़ाता हुआ कर्ण राजसभामें उपर्युक्त बातें कहकर गर्जता रहता है; इसलिये आज तुम उसे मार डालो ॥ ६९½ ॥

यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥ ७० ॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।

'दुर्योधनने तुमलोगोंके साथ जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किया है, उन सबमें पापबुद्धि दुष्टात्मा कर्ण ही प्रधान कारण है ॥ ७०½ ॥

यच्च तद् धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥ ७१ ॥
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान् वीरान् कर्षयन्तं नरर्षभान् ॥ ७२ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान् विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तीन् व्यायुधजीविनः ॥७३॥
कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ॥ ७४ ॥
मनुष्यवाजिमातङ्गान् प्रहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ॥ ७५ ॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत् तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो॥ ७६ ॥

'सखे ! सुभद्राका वीरपुत्र अभिमन्यु साँड़के समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित तथा कुरुकुल एवं वृष्णिवंशके यशको बढ़ानेवाला था । उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान मांसल थे । वह द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि नरश्रेष्ठ वीरोंको पीड़ा दे रहा था । हाथियोंको महावतों और सवारोंसे, महारथियोंको रथोंसे, घोड़ोंको सवारोंसे तथा पैदल सैनिकोंको अस्त्र-शस्त्र एवं जीवनसे वञ्चित कर रहा था । सेनाओंका विध्वंस और महारथियोंको व्यथित करके वह मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको यमलोक भेज रहा था । बाणोंद्वारा शत्रुसेनाको दग्ध-सी करके आते हुए सुभद्राकुमारको जो दुर्योधनके छः क्रूर महारथियोंने मार डाला और उस अवस्थामें मारे गये अभिमन्युको जो मैंने अपनी आँखोंसे देखा, वह सब मेरे अङ्गोंको दग्ध किये देता है । प्रभो ! मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि उसमें भी दुष्टात्मा कर्णका ही द्रोह काम कर रहा था ॥ ७१—७६ ॥

अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ॥ ७७ ॥

'रणभूमिमें अभिमन्युके सामने खड़े होनेकी शक्ति कर्णमें नहीं रह गयी थी । वह सुभद्राकुमारके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनसे लथपथ एवं अचेत हो गया था ॥ ७७ ॥

निःश्वसन् क्रोधसंदीप्तो विमुखः सायकार्दितः ।
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ॥ ७८ ॥

'वह क्रोधसे जलकर लंबी साँस खींचता हुआ अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित हो युद्धसे मुँह मोड़ चुका था । अब उसके मनमें भाग जानेका ही उत्साह था । वह जीवनसे निराश हो चुका था ॥ ७८ ॥

तस्थौ सुविह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥ ७९ ॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

'युद्धस्थलमें प्रहारोंके कारण अधिक क्लान्त हो जानेसे वह व्याकुल होकर खड़ा रहा । तदनन्तर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यका समयोचित क्रूर वचन सुनकर कर्णने अभिमन्युके धनुषको काट डाला ॥ ७९½ ॥

ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥ ८० ॥
तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।

'उसके द्वारा धनुष कट जानेपर रणभूमिमें शेष पाँच महारथी, जो शठतापूर्ण बर्ताव करनेमें प्रवीण थे, बाणोंकी वर्षाद्वारा अभिमन्युको घायल करने लगे ॥ ८०½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् ॥ ८१ ॥
प्राहसत् स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ।

'उस वीरके इस तरह मारे जानेपर प्रायः सभीको बड़ा दुःख हुआ । केवल दुष्टात्मा कर्ण और दुर्योधन ही जोर-जोरसे हँसे थे ॥ ८१½ ॥

यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः॥ ८२ ॥
प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।

'इसके सिवा, कर्णने भरी सभामें पाण्डवों और कौरवोंके सामने एक क्रूर मनुष्यकी भाँति द्रौपदीके प्रति इस तरह कठोर वचन कहे थे ॥ ८२½ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ८३ ॥
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् ॥ ८४ ॥
प्रविशाराल पक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।
न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥ ८५ ॥

''कृष्णे ! पाण्डव तो नष्ट होकर सदाके लिये नरकमें पड़ गये। पृथुश्रोणि ! अब तू दूसरा पति वरण कर ले। मृदु-भाषिणि ! आजसे तू राजा धृतराष्ट्रकी दासी हुई; अतः राजमहलमें प्रवेश कर। टेढ़ी बरौनियोंवाली कृष्णे ! पाण्डव अब तेरे पति नहीं रहे। वे तुझपर किसी तरह कोई अधिकार नहीं रखते ॥ ८३-८५ ॥

दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने।
अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः ॥ ८६ ॥

''सुन्दरी पाञ्चालराजकुमारी ! अब तू दासोंकी भार्या और स्वयं भी दासी है। आज एकमात्र राजा दुर्योधन समस्त भूमण्डलके स्वामी मान लिये गये हैं ॥ ८६ ॥

सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते।
पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम् ॥ ८७ ॥
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा।

''अन्य सब नरेश इन्हींके योग-क्षेममें लगे हुए हैं। भद्रे ! देख, इस समय पाण्डव दुर्योधनके तेजसे एक साथ ही नष्ट-प्राय होकर एक दूसरेका मुँह देख रहे हैं ॥ ८७½ ॥

व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते निरये च निमज्जिताः ॥ ८८ ॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम्।

''निश्चय ही ये थोथे तिलोंके समान नपुंसक हैं और नरकमें डूब गये हैं। आजसे ये दासोंके समान कौरव-नरेशकी सेवामें उपस्थित होंगे' ॥ ८८½ ॥

इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥ ८९ ॥
पापः पापवचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत।

'भारत ! उस समय अधर्मका ही ज्ञान रखनेवाले परम दुर्बुद्धि पापी कर्णने तुम्हारे सुनते हुए ऐसे-ऐसे पापपूर्ण वचन कहे थे ॥ ८९½ ॥

अद्य पापस्य तद् वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥ ९० ॥
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः।

'आज तुम्हारे छोड़े हुए एवं शिलापर स्वच्छ किये हुए सुवर्णनिर्मित प्राणान्तकारी बाण पापी कर्णके उन वचनोंका उत्तर देते हुए उसे सदाके लिये शान्त कर दें ॥ ९०½ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि ॥ ९१ ॥
तान्यद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव।

'दुष्टात्मा कर्णने तुम्हारे प्रति और भी जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किये हैं, उन सबको और इसके जीवनको भी आज तुम्हारे बाण नष्ट कर दें ॥ ९१½ ॥

गाण्डीवप्रहितान् घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान् ॥ ९२ ॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः।

'आज दुष्टात्मा कर्ण अपने अङ्गोंपर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भयङ्कर बाणोंकी चोट सहता हुआ द्रोणाचार्य और भीष्मके वचनोंको याद करे ॥ ९२½ ॥

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ॥ ९३ ॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम्।

'बिजलीकी-सी प्रभा और सोनेके पङ्ख धारण करनेवाले तुम्हारे चलाये हुए शत्रुनाशक नाराच कवच छेदकर कर्णका रक्त पान करेंगे ॥ ९३½ ॥

उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः ॥ ९४ ॥
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम्।

'आज तुम्हारे हाथोंसे छूटे हुए महान् वेगशाली, भयङ्कर एवं विशाल बाण कर्णका मर्मस्थल विदीर्ण करके उसे यमलोक भेज दें ॥ ९४½ ॥

अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ॥ ९५ ॥
प्रपतन्तं रथात् कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः।

'आज तुम्हारे बाणोंसे पीड़ित हुए भूमिपाल दीन और विषादयुक्त होकर हाहाकार मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिरता देखें ॥ ९५½ ॥

अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि ॥ ९६ ॥
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः।

'आज कर्ण रक्तमें डूबकर पृथ्वीपर पड़ा सो रहा हो और उसके आयुध इधर-उधर फेंके पड़े हों। इस अवस्थामें उसके बन्धु-बान्धव दीन-दुखी होकर उसे देखें ॥ ९६½ ॥

हस्तिकक्ष्यो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः ॥ ९७ ॥

'आज हाथीके रस्सेके चिह्नसे युक्त अधिरथपुत्र कर्णका विशाल ध्वज तुम्हारे भल्लसे कटकर काँपता हुआ इस पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९७ ॥

त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम्।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥ ९८ ॥

'आज राजा शल्य भी तुम्हारे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न उस सुवर्णविभूषित रथको, जिसके रथी और घोड़े मार डाले गये हों, छोड़कर भयभीत हो भाग जायँ ॥ ९८ ॥

त्वं चेत् कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः ॥ ९९ ॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान्।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥ १०० ॥

'माननीय पुरुषोंको मान देनेवाले पार्थ! यदि तुम सूतपुत्र कर्णके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये उसके पुत्र वृषसेनको बाणोंद्वारा मार डालो तो अपने प्रिय पुत्रको मारा गया देख वह दुरात्मा कर्ण द्रोणाचार्य, भीष्म और विदुरजी-की कही हुई बातोंको याद करे ॥ ९९-१०० ॥

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥ १०१ ॥

'तत्पश्चात् आज तुम्हारे द्वारा अधिरथपुत्र कर्णको मारा गया देख तुम्हारा शत्रु दुर्योधन अपने जीवन और राज्य दोनोंसे निराश हो जाय ॥ १०१ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ १०२ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! कर्णके तीखे बाणोंकी मार खाते हुए भी ये पाञ्चालवीर पाण्डव-सैनिकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे (कर्णकी ओर ही) दौड़े जा रहे हैं ॥ १०२ ॥

पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥१०३॥
नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान् ॥ १०४॥

'अर्जुन ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि पाञ्चालयोद्धा, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्रगण, नकुलकुमार शतानीक, नकुल-सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा और सात्यकि—ये सब-के-सब कर्णके वशमें पड़ गये हैं ॥ १०३-१०४ ॥

अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे ।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परंतप ॥१०५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन ! देखो, कर्णके द्वारा घायल हुए तुम्हारे बान्धव पाञ्चालोंका वह घोर आर्तनाद रणभूमिमें स्पष्ट सुनायी दे रहा है ॥ १०५ ॥

न त्वेव भीताः पञ्चालाः कथंचित् स्युः पराङ्मुखाः ।
न हि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥१०६॥

'पाञ्चाल योद्धा किसी तरह भयभीत होकर युद्धसे विमुख नहीं हो सकते । वे महाधनुर्धर वीर महासमरमें मृत्युको कुछ नहीं गिनते हैं ॥ १०६ ॥

य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मं नासन् पराङ्मुखाः ॥१०७॥
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।

'जो सारी पाण्डवसेनाको अकेले ही अपने बाणसमूहों-द्वारा लपेट लेते थे, उन भीष्मजीका सामना करके भी पाञ्चालयोद्धा कभी युद्धसे मुँह मोड़कर नहीं भागे । वे ही महारथी वीर कर्णको सामने पाकर कैसे भाग सकते हैं ? ॥

यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन् ॥१०८॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सल ॥१०९॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥११०॥
ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिंदम ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः॥१११॥

'मित्रवत्सल ! जो वीर द्रोणाचार्य प्रतिदिन अकेले ही सम्पूर्ण पाञ्चालोंका विनाश करते हुए पाञ्चालोंकी रथसेनामें कालके समान विचरते थे, अस्त्रोंकी आगसे प्रज्वलित होते थे, सम्पूर्ण धनुर्धरोंके गुरु थे और समराङ्गणमें शत्रुसेनाको दग्ध किये देते थे, अपने बल और पराक्रमसे दुर्धर्ष उन द्रोणाचार्यको भी संग्राममें सामने पाकर वे पाञ्चाल अपने मित्र पाण्डवोंके लिये सदा डटकर युद्ध करते रहे । शत्रुदमन अर्जुन ! पाञ्चाल सैनिक युद्धमें सदा शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत रहते हैं । वे सूतपुत्र कर्णसे भयभीत हो कभी युद्धसे मुँह नहीं मोड़ सकते ॥ १०८—१११ ॥

तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥११२॥

'जैसे आग अपने पास आये हुए पतङ्गोंके प्राण ले लेती है, उसी प्रकार शूरवीर कर्ण बाणोंद्वारा अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले वेगशाली पाञ्चालोंके प्राण ले रहा है ॥ ११२ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम् ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथाकृतान् ॥११३॥

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, ये पाञ्चालयोद्धा दौड़ रहे हैं । निश्चय ही कर्ण और दूसरे-दूसरे योद्धा उन्हें दौड़ा रहे हैं । देखो, वे कैसी बुरी अवस्थामें पड़ गये हैं ? ॥ ११३ ॥

तांस्तथाभिमुखान् वीरान् मित्रार्थे त्यक्तजीवितान् ।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे ॥११४॥

'जो अपने मित्रके लिये प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुके सामने खड़े होकर जूझ रहे हैं, उन सैकड़ों पाञ्चालवीरोंको कर्ण रणभूमिमें नष्ट कर रहा है ॥ ११४ ॥

तद् भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे ।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि ॥११५॥

'भारत ! कर्णरूपी अगाध महासागरमें महाधनुर्धर पाञ्चाल बिना नावके डूब रहे हैं । तुम नौका बनकर उनका उद्धार करो ॥ ११५ ॥

अस्त्रं हि रामात् कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् ।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥११६॥

'कर्णने मुनिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीसे जो महाघोर अस्त्र प्राप्त किया है, उसीका रूप इस समय प्रकट हो रहा है ॥

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् ।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११७॥

'यह अत्यन्त भयंकर एवं घोर भार्गवास्त्र पाण्डवोंकी विशाल सेनाको आच्छादित करके अपने तेजसे प्रज्वलित हो सम्पूर्ण सैनिकोंको संतप्त कर रहा है ॥ ११७ ॥

एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः ।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान् ॥११८॥

'ये संग्राममें कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाण भ्रमरोंके समूहोंकी भाँति चलते और तुम्हारे योद्धाओंको संतप्त करते हैं ॥ ११८ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत ।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ॥११९॥

'भरतनन्दन ! जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर रक्खा है, उनके लिये कर्णके अस्त्रको रोकना अत्यन्त कठिन है । समराङ्गणमें इसकी चोट खाकर ये पाञ्चालसैनिक सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ ११९ ॥

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः।
सृञ्जयैर्योधयन् कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥१२०॥

'पार्थ ! दृढ़तापूर्वक क्रोधको धारण करनेवाले ये भीमसेन सब ओरसे सृञ्जयोंद्वारा घिरकर कर्णके साथ युद्ध करते हुए उसके पैने बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं ॥ १२० ॥

पाण्डवान् सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः ॥१२१॥

'भारत ! जैसे प्राप्त हुए रोगकी चिकित्सा न की गयी तो वह शरीरको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यदि कर्णकी उपेक्षा की गयी तो वह पाण्डवों, सृञ्जयों और पाञ्चालोंका भी नाश कर सकता है ॥ १२१ ॥

नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥१२२॥

'युधिष्ठिरकी सेनामें मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी योद्धाको ऐसा नहीं देखता, जो राधापुत्र कर्णका सामना करके कुशलपूर्वक घर लौट सके ॥ १२२ ॥

तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥१२३॥

'नरश्रेष्ठ ! पार्थ ! आज तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तीखे बाणोंसे कर्णका वध करके उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करो ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान्।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १२४॥

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! केवल तुम्हीं संग्राममें कर्णसहित सम्पूर्ण कौरवोंको जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ १२४ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म हत्वा कर्णं महारथम्।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥१२५॥

'पुरुषोत्तम पार्थ ! अतः महारथी कर्णको मारकर यह महान् कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् तुम कृतकृत्य, सफल-मनोरथ एवं सुखी हो जाओ' ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित उद्गार

संजय उवाच

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम्।
विशोकः सम्प्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— भरतनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णका यह भाषण सुनकर अर्जुन एक ही क्षणमें शोकरहित एवं हर्ष और उत्साहसे सम्पन्न हो गये ॥ १ ॥

ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ २ ॥

तत्पश्चात् धनुषकी प्रत्यञ्चाको साफ करके उन्होंने शीघ्र ही गाण्डीवधनुषकी टङ्कार की और कर्णके विनाशका दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥ ३ ॥

'गोविन्द ! जब आप मेरे स्वामी और संरक्षक हैं, तब युद्धमें मेरी विजय निश्चित ही है। संसारके भूत और भविष्यका निर्माण करनेवाले आप ही हैं। जिसके ऊपर आप प्रसन्न हैं, उसकी (अर्थात् मेरी) विजयमें आज क्या संदेह है ॥

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रीँल्लोकान् वै समागतान्।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! आपकी सहायता मिलनेपर तो मैं युद्धके लिये सामने आये हुए तीनों लोकोंको भी परलोकका पथिक बना सकता हूँ, फिर इस महासमरमें कर्णको जीतना कौन बड़ी बात है ? ॥ ४॥

पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! मैं समरभूमिमें निर्भयसे विचरते हुए कर्णको और भागती हुई पाञ्चालोंकी सेनाको भी देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाशनिम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण ! वार्ष्णेय ! सब ओरसे प्रज्वलित होनेवाले भार्गवास्त्रपर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने उसी तरह प्रकट किया है, जैसे इन्द्र वज्रका प्रयोग करते हैं ॥ ६ ॥

अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम्।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ७ ॥

'निश्चय ही यह वह संग्राम है, जहाँ कर्ण मेरे हाथसे मारा जायगा और जबतक यह पृथ्वी विद्यमान रहेगी, तबतक समस्त प्राणी इसकी चर्चा करेंगे ॥ ७ ॥

अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज मेरे हाथसे प्रेरित और गाण्डीव धनुषसे मुक्त हुए विकर्ण नामक बाण कर्णको क्षत-विक्षत करते हुए उसे यमलोक पहुँचा देंगे ॥ ८ ॥

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपनी उस बुद्धिका अनादर करेंगे, जिसके द्वारा उन्होंने राज्यके अनधिकारी दुर्योधनको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ॥ ९ ॥

अद्य राज्यात् सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात्।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो ! आज धृतराष्ट्र अपने राज्यसे, सुखसे, लक्ष्मीसे, राष्ट्रसे, नगरसे और अपने पुत्रोंसे भी बिछुड़ जायँगे॥

गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम्।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! जो गुणवान्से द्वेष करता और गुणहीन-को राजा बनाता है, वह नरेश विनाशकाल उपस्थित होनेपर शोकमग्न हो पश्चात्ताप करता है ॥ ११ ॥

यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत्।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥ १२ ॥

'जनार्दन ! जैसे कोई पुरुष आमके विशाल वनको काटकर उसके दुष्परिणामको उपस्थित देख अत्यन्त दुखी हो जाता है, उसी प्रकार आज सूतपुत्रके मारे जानेपर राजा दुर्योधन निराश हो जायगा ॥ १२ ॥

अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ। आज कर्णका वध हो जानेपर दुर्योधन अपने राज्य और जीवन दोनोंसे निराश हो जायगा ॥ १३ ॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम्।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः ॥ १४ ॥

'आज मेरे बाणोंसे कर्णके शरीरको टूक-टूक हुआ देखकर राजा दुर्योधन सन्धिके लिये कहे हुए आपके वचनोंका स्मरण करे॥ १४ ॥

अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान्।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज सुबलपुत्र जुआरी शकुनिको यह मालूम हो जाय कि मेरे बाण ही दाँव हैं, गाण्डीव धनुष ही पासा है और मेरा रथ ही मण्डल (चौपड़के खाने) है॥

अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम्।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥ १६ ॥

'गोविन्द ! आज मैं अपने पैने बाणोंसे कर्णको मारकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके चिन्ताजनित जागरणके स्थायी रोगको दूर कर दूँगा ॥ १६ ॥

अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७ ॥

'आज कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरेद्वारा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर प्रसन्नचित्त हो दीर्घकालके लिये संतुष्ट एवं सुखी हो जायँगे ॥ १७ ॥

अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम्।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ १८ ॥

'आज मैं ऐसा अनुपम और अजेय बाण छोड़ूँगा, जो कर्णको उसके प्राणोंसे वञ्चित कर देगा ॥ १८ ॥

यस्य चैतद् व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः।
पादौ नधावये तावद् यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥ १९ ॥
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन ।
पातयिष्ये रथात् कायं शरैः संनतपर्वभिः ॥ २० ॥

'मधुसूदन ! जिस दुरात्माने मेरे वधके लिये यह व्रत लिया है कि जबतक अर्जुनको मार न लूँगा, तबतक दूसरों-से पैर न धुलाऊँगा। उस पापीके इस व्रतको मिथ्या करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसके इस शरीरको रथसे नीचे गिरा दूँगा ॥ १९-२० ॥

योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २१ ॥

'जो भूमण्डलमें दूसरे किसी पुरुषको रणभूमिमें अपने समान नहीं मानता है, आज यह पृथ्वी उस सूतपुत्रके रक्त-का पान करेगी ॥ २१ ॥

अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान् गुणान्॥ २२ ॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः।
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम्॥ २३ ॥

'सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके मतमें होकर अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू पतिहीन है' उसके इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर दिखायेंगे और क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान उसके रक्तका पान करेंगे ॥ २२-२३ ॥

मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥

'मैं बाण चलानेमें सिद्धहस्त हूँ। मेरेद्वारा गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये बिजलीके समान चमकते हुए नाराच कर्णको परम गति प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत्।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन् पाण्डवान् प्रति॥ २५ ॥

'राधापुत्र कर्णने भरी सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करते हुए द्रौपदीसे जो क्रूरतापूर्ण वचन कहा था, उसके लिये उसे बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २५ ॥

ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ २६ ॥

'जो पाण्डव वहाँ थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहे गये थे, वे दुरात्मा सूतपुत्र वैकर्तन कर्णके मारे जानेपर आज अच्छे तिल और शूरवीर सिद्ध होंगे ॥ २६ ॥

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत्।
धृतराष्ट्रसुतान् कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान्॥ २७॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः।
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति॥ २८॥

'अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे जो यह कहा था कि 'मैं पाण्डवोंसे तुम्हारी रक्षा करूँगा' उसके इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर देंगे और पाण्डवोंका युद्धविषयक उद्योग समाप्त हो जायगा॥ २७-२८॥

हन्ताहं पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रानिति योऽब्रवीत्।
तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ २९॥

'जिसने यह कहा था कि मैं 'पुत्रोंसहित समस्त पाण्डवोंको मार डालूँगा' उस कर्णको आज समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं नष्ट कर दूँगा॥ २९॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान्॥ ३०॥
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम्।

'जिसके बल-पराक्रमका भरोसा करके महामनस्वी दुर्बुद्धि एवं दुरात्मा दुर्योधन सदा हमलोगोंका अपमान करता आया है, उस कर्णका आज युद्धस्थलमें वध करके मैं अपने भाई युधिष्ठिरको संतुष्ट करूँगा॥ ३०½॥

शरान् नानाविधान् मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान्।
आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः॥ ३१॥
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः।

'नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार करके मैं शत्रुसैनिकोंको भयभीत कर दूँगा। धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये यमराष्ट्रवर्धक बाणोंद्वारा धराशायी किये गये रथों और हाथियोंसे रणभूमिकी शोभा बढ़ाऊँगा॥ ३१½॥

तत्राहं वै महासंख्ये संपन्नं युद्धदुर्मदम्॥ ३२॥
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः।

'मैं महासमरमें शक्तिसम्पन्न रणदुर्मद एवं भयंकर कर्णको आज अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा॥ ३२½॥

अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः॥ ३३॥
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव।

'श्रीकृष्ण! आज कर्णके मारे जानेपर राजासहित धृतराष्ट्रके सभी पुत्र सिंहसे डरे हुए मृगोंके समान भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग जायँ॥ ३३½॥

अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम्॥ ३४॥
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने।

'आज युद्धस्थलमें पुत्रों और सुहृदोंसहित कर्णके मेरे द्वारा मारे जानेपर राजा दुर्योधन अपने लिये निरन्तर शोक करे॥

अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः॥ ३५॥
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम्।

'श्रीकृष्ण! अमर्षशील दुर्योधन आज कर्णको रणभूमिमें मारा गया देख मुझे सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझ ले॥

सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम्॥ ३६॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।

'मैं आज ही पुत्र, पौत्र, मन्त्री और सेवकोंसहित राजा धृतराष्ट्रको राज्यकी ओरसे निराश कर दूँगा॥ ३६½॥

अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः॥ ३७॥
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विहरिष्यन्ति केशव।

'केशव! आज चक्रवाक तथा भिन्न-भिन्न मांसभोजी पक्षी बाणोंसे कटे हुए कर्णके अङ्गोंको उठा ले जायँगे॥

अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन॥ ३८॥
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम्।

'मधुसूदन! आज संग्राममें समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं राधापुत्र कर्णका मस्तक काट डालूँगा॥ ३८½॥

अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन॥ ३९॥
रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः।

'श्रीकृष्ण! आज तीखे विपाठों और क्षुरोंसे रणभूमिमें दुरात्मा राधापुत्रके अङ्गोंको काट डालूँगा॥ ३९½॥

अद्य राजा महत् कृच्छ्रं संत्यक्ष्यति युधिष्ठिरः॥ ४०॥
संतापं मानसं वीरश्चिरसम्भृतमात्मनः।

'आज वीर राजा युधिष्ठिर महान् कष्ट और अपने चिरसंचित मानसिक संतापसे छुटकारा पा जायँगे॥ ४०½॥

अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सबान्धवम्॥ ४१॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।

'केशव! आज मैं बन्धु-बान्धवोंसहित राधापुत्रको मारकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करूँगा॥ ४१½॥

अद्याहमनुगान् कृष्ण कर्णस्य कृपणान् युधि॥ ४२॥
हन्ता ज्वलनसंकाशैः शरैः सर्पविषोपमैः।

'श्रीकृष्ण! आज मैं युद्धस्थलमें कर्णके पीछे चलनेवाले दीन-हीन सैनिकोंको सर्पविष और अग्निके समान बाणोंद्वारा भस्म कर डालूँगा॥ ४२½॥

अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः॥ ४३॥
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः।

'गोविन्द! आज मैं सुवर्णमय कवच और मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले भूपतियोंकी लाशोंसे रणभूमिको पाट दूँगा॥ ४३½॥

अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन॥ ४४॥
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः।

'मधुसूदन! आज पैने बाणोंसे मैं अभिमन्युके समस्त शत्रुओंके शरीरों और मस्तकोंको मथ डालूँगा॥ ४४½॥

अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम्॥ ४५॥
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि।

'केशव! या तो आज इस पृथ्वीको धृतराष्ट्रपुत्रोंसे

सूनी करके अपने भाईके अधिकारमें दे दूँगा या आप अर्जुनरहित पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ ४५½ ॥

अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥ ४६ ॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ।

'श्रीकृष्ण ! आज मैं सम्पूर्ण धनुर्धरोंके, क्रोधके, कौरवोंके, बाणोंके तथा गाण्डीव धनुषके भी ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥

अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥ ४७ ॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।

'श्रीकृष्ण ! जैसे इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं रणभूमिमें कर्णको मारकर आज तेरह वर्षोंसे संचित किये हुए दुःखका परित्याग कर दूँगा ॥ ४७½ ॥

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥ ४८ ॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ।

'आज युद्धमें कर्णके मारे जानेपर मित्रके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले सोमकवंशी महारथी अपनेको कृतकार्य समझ लें ॥

न जाने च कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥ ४९ ॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।

'माधव ! आज कर्णके मारे जाने और विजयके कारण मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जानेपर न जाने शिनिपौत्र सात्यकिको कितनी प्रसन्नता होगी ? ॥ ४९½ ॥

अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥ ५० ॥
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च ।

'मैं रणभूमिमें कर्ण और उसके महारथी पुत्रको मारकर भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा सात्यकिको प्रसन्न करूँगा ॥

धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव ॥ ५१ ॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ।

'माधव ! आज महासमरमें कर्णका वध करके मैं धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चालोंके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ॥ ५२ ॥
युध्यन्तं कौरवान् संख्ये घातयन्तं च सूतजम् ।

'आज समस्त सैनिक देखें कि संग्रामभूमिमें अमर्षशील धनंजय किस प्रकार कौरवोंसे युद्ध करता और सूतपुत्र कर्णको मारता है ॥ ५२½ ॥

भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ ५३ ॥
धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावां-
स्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥५४॥

'मैं आपके निकट पुनः अपनी प्रशंसासे भरी हुई बात कहता हूँ, धनुर्वेदमें मेरी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है । फिर पराक्रममें मेरे-जैसा कौन है ? मेरे समान क्षमाशील भी दूसरा कौन है तथा क्रोधमें भी मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है ॥ ५३-५४ ॥

अहं धनुष्मान् ससुरासुरांश्च
सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्याद् गमये पराभवं
मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५ ॥

'मैं धनुष लेकर अपने बाहुबलसे एक साथ आये हुए देवताओं, असुरों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको परास्त कर सकता हूँ । मेरे पुरुषार्थको उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५५ ॥

शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः
सर्वान् कुरून् बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्नि-
स्तथा दहेयं सगणान् प्रसह्य ॥ ५६ ॥

'मैं अकेला ही बाणोंकी ज्वालासे युक्त गाण्डीव धनुषके द्वारा समस्त कौरवों और बाह्लिकोंको दल-बलसहित मारकर ग्रीष्मऋतुमें सूखे काठमें लगी हुई आगके समान सबको भस्म कर डालूँगा ॥ ५६ ॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते
धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७ ॥

'मेरे एक हाथमें बाणके चिह्न हैं और दूसरेमें फैले हुए बाणसहित दिव्य धनुषकी रेखा है । इसी प्रकार मेरे पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं । मेरे-जैसे लक्षणोंवाला योद्धा जब युद्धमें उपस्थित होता है, तब उसे शत्रु जीत नहीं सकते हैं' ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः
क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः
कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥ ५८ ॥

भगवान्‌से ऐसा कहकर अद्वितीय वीर शत्रुसूदन अर्जुन क्रोधसे लाल आँखें किये समरभूमिमें भीमसेनको संकटसे छुड़ाने और कर्णके मस्तकको धड़से अलग करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चल दिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥